मराठी

हरि विजय

हरि अनन्त हरि-कथा अनन्ता
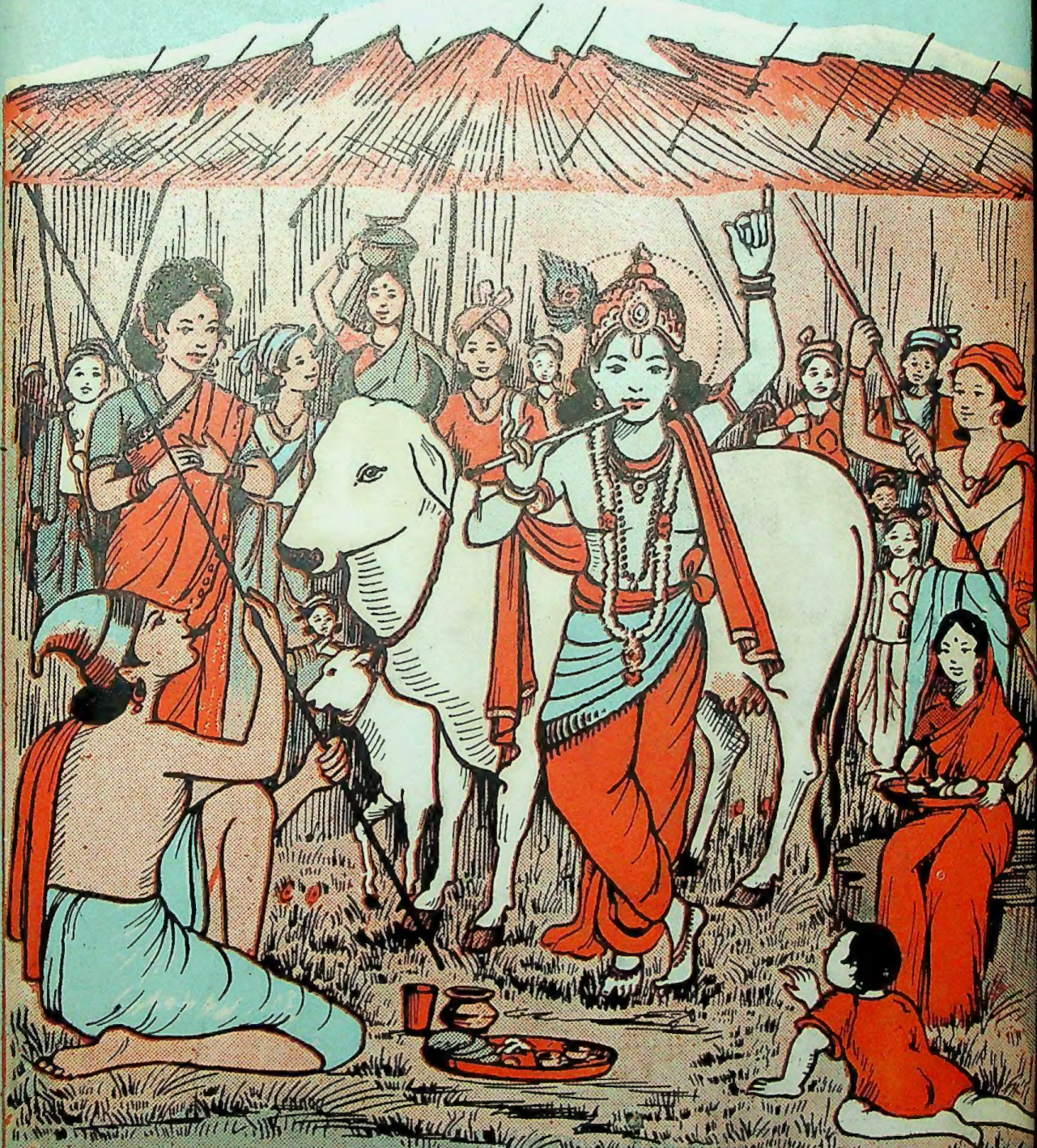
भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

मराठी

श्रीहरि विजय

(मूलपाठ सहित हिन्दी अनुवाद)

रचयिता

श्रीधर

अनुवादक

डॉ० गजानन नरसिंह साठे

भू० पू० हिन्दी विभागाध्यक्ष, रा० आ० पोद्दार वाणिज्य महाविद्यालय, बम्बई

(1472, सदाशिव पेठ, पुणे)

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चोपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

‘ प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।। ’

प्रथम संस्करण—१९८३ ई०

आकार—१८×२२÷८

पृष्ठसंख्या ८+१००४=१०१२

मूल्य— ७०·०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

‘प्रभाकर निलयम्’, ४०५/१२८, चोपटियाँ रोड, लखनऊ–२२६००३

विश्वनागरी लिपि

।। ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ।।

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता ।

संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है। यह कथन बिलकुल ठीक है। परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली, लिखी जानेवाली लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। नियमित स्वरों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। जैसा लिखना वैसा ही बोलना, वैसा ही अक्षर का एकाक्षरी नाम। उच्चारण-संस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि

मराठी (देवनागरी) वर्णमाला				
अ	आ	इ	ई	उ
ऊ	ऋ	ए	ऐ	ओ
	औ	अं	अः	
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह	ळ	क्ष
त्र	ज्ञ	ऋ	ज़	झ़

ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अतः वे सब नागरी के समान ही 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्‌भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से हिन्दी का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अतः समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता और प्राचुर्य में लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि अन्य लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरक़रार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अतः अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से अलिप्यन्तरित हमारी समस्त ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली का वाङ्मय रह गया। हमारा प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी (अर्थात् मराठी) लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नहीं करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नहीं होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को भी अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता युगों की मानव-शृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया ? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था ? अत: हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को नष्ट कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसनेवाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशत: वर्णित हैं। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। पेट्रोल अरब का है, अत: हम उसको नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी ? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना ज़रूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नहीं है। वे काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज़ को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नहीं रखती। उनको कहाँ तक और कैसे समाविष्ट किया जाय ?" यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अल्बत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं हैं— किन्तु अधिक नहीं। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आज़ादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में उन विशिष्ट भाषाई व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अरबी' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। "अिल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अरबी-पोशाक चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरों को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा में जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ; उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिप्थांग) बनते हैं। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं, प्रयत्न हैं, लहजा हैं। वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, "एक ही रूप में", अपने निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी "पहले" का

लेखानुरूप शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। उसी भाँति पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेज़ी के उद्भट विद्वान् अंग्रेज़ी में भाषण देते हैं—उनके लहजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेज़ी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार की वरीयता।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे ज़रूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुक़ामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी भाषाओं में प्रयुक्त एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ मात्राएँ हम प्रयोग में ला रहे हैं। पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल तक नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् माने। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है— (अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली व उर्दू के अै, और ओ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती है। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नी ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से

निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत क़ायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय ? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है ? क्या कभी वह पूर्ण होगा ? पूर्ण तो 'ब्रह्म' ही है। "बेस्ट् इज् द ग्रेटेस्ट् एनिमी ऑफ् गुड्।" (Best is the greatest enemy of Good) इसलिए शग़ल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं ?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "संस्कृत" को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने से हमारा अपार ज्ञान-भण्डार सबको सुलभ होता, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। किन्तु अब वह बात हाथ से बेहाथ है; और "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोबेश प्रविष्ट है।

आज क्या करना है ?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— (ही नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता चरितार्थ होगी।

—नन्दकुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

अनुवादकीय प्रस्तावना

(क) श्रीधर और उनकी रचनाएँ

(१) पृष्ठभूमि : मराठी भारतीय भाषाओं में से एक विकसित तथा साहित्यिक दृष्टि से सुसम्पन्न भाषा है। उसकी उत्पत्ति संस्कृत से विकसित महाराष्ट्री प्राकृत की उत्तराधिकारिणी महाराष्ट्री अपभ्रंश से लगभग आठवीं शताब्दी ई० में हुई। उपलब्ध मराठी साहित्यिक कृतियों में, पण्डित मुकुन्दराज-कृत 'विवेक-सिन्धु' नामक ग्रन्थ (रचना-काल ११८८ ई०) प्राचीनतम कृति है, जिसमें उपनिषदों का सारतत्त्व पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत है। तेरहवीं शताब्दी में प्रतिष्ठित 'महानुभाव सम्प्रदाय' के प्रणेता श्रीचक्रधर स्वामी की लीलाओं के संस्मरणों को उनके शिष्यवर श्रीमाहिंभट ने लगभग १२७८ ई० में गद्यात्मक रचना 'लीळा-चरित्र' में प्रस्तुत किया। यह रचना मराठी की आद्य गद्य कृति है। तदनन्तर सन्त-शिरोमणि श्री ज्ञानेश्वर ने १२९० ई० में, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के मराठी भाष्यस्वरूप 'भावार्थ-दीपिका' अर्थात 'श्री ज्ञानेश्वरी' की 'ओवी' छन्द में रचना की। मराठी भाषा और साहित्य के आदिकाल में विरचित ये तीन ग्रन्थ मराठी साहित्य के अजरामर गौरव ग्रन्थ हैं। 'महानुभाव सम्प्रदाय' के माइंभट, भास्कर भट्ट, दामोदर पण्डित आदि रचनाकारों के अनेकानेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। तेरहवीं शताब्दी में तत्कालीन प्रचलित (पण्ढरपुर के श्रीविट्ठल के भक्तों के) 'वारकरी' सम्प्रदाय को सुगठित रूप प्रदान करते हुए ज्ञानेश्वर ने भक्तिरसात्मक काव्यधारा को प्रबल गति प्रदान की। नामदेव, गोरा कुम्हार, सावन्ता माली, बहिणाबाई, तुकाराम आदि वारकरी सम्प्रदाय के बीसियों भक्त कवियों ने मध्ययुगीन मराठी साहित्य-भण्डार को सुसमृद्ध बना दिया। विट्ठल-भक्त वारकरी सम्प्रदाय के अतिरिक्त, महाराष्ट्र में सत्रहवीं शताब्दी में रामभक्ति सम्प्रदाय बहुत विकसित हुआ, जिसके प्रणेता थे सन्त श्री रामदास स्वामी। श्री रामदास तथा उनके शिष्य गिरिधर, वेणाबाई आदि ने श्रीराम सम्बन्धी अपनी भक्ति-भावना को अभिव्यक्त किया।

मराठी आख्यान काव्य-परम्परा का उद्‌गम महानुभाव सम्प्रदाय की रुक्मिणी-स्वयंवर, शिशुपाल-वध आदि श्रीकृष्ण के जीवन की घटनाओं पर विरचित काव्य कृतियों के रूप में हुआ। नामदेव ने भी इस प्रकार की आख्यानात्मक रचना की। कथा-काव्य के क्षेत्र में सोलहवीं शताब्दी में सन्तश्रेष्ठ श्री एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण' मध्ययुग की महाकाव्य स्वरूप अद्वितीय रचना है।

मध्ययुग की ऐसी रचनाओं के विधाताओं का लक्ष्य बहुविध था, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ गिनायी जा सकती हैं :—

जनमानस-रंजन, भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति और प्रचार, जन-मानस में धर्म तथा सदाचार के संस्कार उत्पन्न करना, जन-जागृति और स्वदेश तथा स्वधर्म के रक्षण के लिए कटिबद्ध होने की प्रेरणा देना, साहित्य-रचना करना इत्यादि ।

महाराष्ट्र में उन दिनों 'कीर्तन' कर्ताओं और कथावाचकों ('पुराणिकों') की परम्परा विकसित हुई । इस युग में उनके लिए रामायण, महाभारत तथा भागवत, हरिवंश, पद्मपुराण आदि पुराणों से कथा-तत्त्वों को लेकर अनेक कवियों ने विपुल मात्रा में रचना की ।

ऐसे आख्यान-काव्य की रचना करनेवालों में श्रीधर का स्थान सर्वश्रेष्ठ है ।

(२) श्रीधर : श्रीधर का जन्म 'नाझरेकर' नामक कुल में हुआ । यह कुल वाजसनेय माध्यंदिन शाखा के अन्तर्गत वासिष्ठ गोत्रीय 'देशस्थ' यजुर्वेदी ब्राह्मण कुल है । कहते हैं, पंद्रहवीं शताब्दी में 'घोडके' तथा 'खडके' कुलनामधारी राघोपन्त नामक एक व्यक्ति 'नाझरे' तहसील के 'देशपाण्डे' उर्फ़ 'देश-कुलकर्णी' के पद पर नियुक्त होकर 'नाझरे' ग्राम में आकर बस गये । यह नाझरे ग्राम श्रीक्षेत्र पण्ढरपुर (जनपद शोलापुर, महाराष्ट्र) से दक्षिण में लगभग बावन किलोमीटर की दूरी पर, 'माण' नदी के तट पर बसा हुआ है । 'नाझरे' में बस जाने के कारण इस कुल को 'नाझरेकर' नाम से जाना जाने लगा । राघोपन्त की सन्तान-परम्परा में सत्रहवीं शताब्दी में ब्रह्माजीपन्त जनमे । वे प्रकाण्ड पण्डित थे । उनकी पत्नी का नाम सावित्री था । श्री ब्रह्माजीपन्त और सावित्री के सुपुत्र हैं— श्रीधर । उनका जन्म नाझरे ग्राम में शालिवाहन शक १५८० (१६५८ ई०) में हुआ । (कुछ विद्वान इसे शा० श० १६००, अर्थात १६७८ ई० मानते हैं ।) उनका बचपन वहीं बीता । शा० शक १६०० के लगभग उनके पिता ब्रह्माजीपन्त नाझरे को छोड़कर पण्ढरपुर में आकर रह गये । कुछ वर्ष पश्चात ब्रह्माजीपन्त संन्यास ग्रहण करके 'ब्रह्मानन्द' कहाने लगे । पण्ढरपुर में ही वे समाधिस्थ हो गये ।

श्रीधर के पूर्वजों पर सरस्वती और लक्ष्मी —दोनों की बहुत कृपा रही । ये सब सदाचार-सम्पन्न तथा कर्मठ और विद्वान थे । श्रीधर को भी भक्तिशीलता, सदाचार-सम्पन्नता, ज्ञानार्जन की आसक्ति, भोग-विलास सम्बन्धी विरक्ति आदि प्रवृत्तियाँ विरासत में मिली थीं ।

पिता ब्रह्माजीपन्त— ब्रह्मानन्द श्रीधर के गुरु थे । श्रीधर ने अपने गुरु का आदरपूर्वक उल्लेख करते हुए अपनी कृतियों का श्रेय उन्हीं को

प्रदान किया है। उन्होंने संस्कृत भाषा और साहित्य तथा पुराणों का गहरा अध्ययन किया था। उसी प्रकार ज्ञानेश्वर, एकनाथ आदि पूर्ववर्ती मराठी साहित्यकारों की रचनाओं को विशेष प्रेम के साथ पढ़ा था; काव्य-शास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष आदि का सम्यक् ज्ञान पाया था। इस दृष्टि से वे सच्चे अर्थों में पण्डित थे।

श्रीधर को विद्वत्ता की भाँति, कवित्व भी पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। उनके दादा दयानन्द, पिता ब्रह्मानन्द, चाचा रंगनाथ स्वामी की रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनके चचेरे भाई विट्ठल और पुत्र दत्तात्रेय भी कवि थे। श्रीधर का कुल 'आनन्द सम्प्रदाय' में दीक्षित था। अपने पूर्वजों का उन्होंने राम-विजय, हरि-विजय आदि अपने ग्रन्थों में गर्व के साथ उल्लेख किया है।

श्रीधर 'कीर्तनकार' थे। बहुत सम्भव है कि उन्होंने कथावाचक का कार्य भी किया है। 'कीर्तनकार' के नाते उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। लोगों की रुचि और उनके सांस्कृतिक स्तर का ध्यान रखते हुए, उन्होंने उनके मन पर सद्धर्म, सदाचार, सदभिरुचि तथा भक्ति के संस्कार उत्पन्न करने का यत्न किया। वे स्वयं श्रेष्ठ कवि थे। उनकी रचनाओं की प्रतियाँ उन्हीं दिनों बनायी जाने लगी थीं।

श्रीधर ने युवावस्था में ही कविता की रचना करना आरम्भ किया। कहते हैं कि उन्होंने सवा लाख छन्दों की रचना की; फिर भी इसमें अत्युक्ति दिखायी देती है, क्योंकि उनके समस्त उपलब्ध ग्रन्थों में पचास हजार से कुछ अधिक छन्द हैं। उन्होंने मुख्यतया प्रबन्ध काव्यों की रचना की; कुछ फुटकर छन्द भी लिखे हैं। इन मराठी कृतियों के अतिरिक्त उनकी कतिपय संस्कृत कविताएँ भी उपलब्ध हैं। श्रीधर ने निम्नलिखित छोटे-बड़े प्रबन्ध काव्य लिखे हैं:—

१ हरि-विजय, २ राम-विजय, ३ पाण्डव-प्रताप, ४ वेदान्त सूर्य, ५ पाण्डुरंग-माहात्म्य, ६ मल्लारि-माहात्म्य, ७ व्यंकटेश-माहात्म्य, ८ ज्ञानेश्वर-चरित्र, ९ जैमिनी-अश्वमेध, १० शिव-लीलामृत।

'अम्बिका-विजय' नामक ग्रन्थ भी उन्होंने लिखा; फिर भी वह आज तक अप्राप्य रहा है। कुछ विद्वान 'जैमिनी-अश्वमेध' को श्रीधर-कृत रचना नहीं मानते।

'हरि-विजय' में श्रीकृष्ण की लीलाओं का, विभिन्न दैत्यों, कंस, शिशुपाल आदि पर पायी हुई विजय सम्बन्धी कथाओं का निरूपण है। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक, रामाश्वमेध आदि से कथा-सूत्र लेकर श्रीधर ने 'राम-विजय' की रचना की। 'पाण्डव-प्रताप' में उन्होंने मुख्यतः पाण्डवों के प्रताप का वर्णन प्रस्तुत किया है। 'पाण्डुरंग-

माहात्म्य ' में उन्होंने अपने निवास-स्थान पण्ढरपुर तथा भगवान विट्ठल का माहात्म्य गाया है। उन्होंने ' मल्लारि-माहात्म्य ' में अपने कुल-देवता मल्लारि की स्तुति की है। ' व्यंकटेश-माहात्म्य ' और ' ज्ञानेश्वर-चरित्र ' ग्रन्थों के नाम से ही उनके वर्ण्य-विषय और स्वरूप का परिचय मिलता है। उनका ' शिव-लीलामृत ' जनसाधारण में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है, जिसमें उन्होंने शिवजी की लीलाओं का तथा महिमा का वर्णन किया है। हजारों लोग उसका नित्य पठन करते हैं।

श्रीधर ने अपनी रचनाओं के लिए प्रधानतः मराठी के सुविख्यात ' ओवी ' छन्द का प्रयोग किया है। ' ओवी ' में चार चरण होते हैं, जिनमें से प्रथम तीन तुकान्त होते हैं। छन्दःशास्त्र के अनुसार ' ओवी ' के प्रथम तीन चरणों में से प्रत्येक में आठ-आठ अक्षर हों और अन्तिम में सात। फिर भी इस संकेत का निर्वाह प्रायः किसी भी कवि ने नहीं किया है। हाँ, पहले तीन चरणों की अपेक्षा चौथा चरण ज़रा छोटा होता है। मराठी ' ओवी ' छन्द हिन्दी के ' चौपाई ' छन्द से बहुत कुछ मिलता-जुलता है और कथा-काव्य के लिए अनुकूल माना जाता है। (छन्दःशास्त्रज्ञों के अनुसार अपभ्रंश के एक विशिष्ट छन्द से ही मराठी ' ओवी ' तथा हिन्दी ' चौपाई ' विकसित हुई है।)

उपमा, रूपक और दृष्टान्त श्रीधर के प्रिय अलंकार हैं। उन्होंने प्रायः परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है। अपनी बात को प्रभावकारी बनाने के लिए जब वे दृष्टान्तों की बौछार-सी कर देते हैं, तो देखते ही बनता है।

श्रीधर ने आसान प्रासादिक भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा-शैली और वर्णन-शैली जादू का-सा प्रभाव उत्पन्न करती है। जन-साधारण में रूढ़ भाषा का, आवश्यक परिमार्जन करते हुए उन्होंने प्रयोग किया, अतः सब उसे ठीक से समझ पाते हैं। वे घटनाओं और व्यक्तियों की चरित्र सम्बन्धी विशेषताओं का यों वर्णन करते हैं कि जान पड़ता है, पाठक वा श्रोता उन्हें चित्र-रूप में ही देखने लगते हैं। बीच-बीच में वे सदुपदेश तथा सदाचार-सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करते जाते हैं; जीवन की सच्चाइयों का निरूपण करते हैं। श्रीधर की लोकप्रियता का रहस्य उनकी उपर्युक्त ऐसी विशेषताओं में निहित है।

श्रीधर की रचनाओं में भक्ति, वीर, शृंगार जैसे रसों की प्रधानता है। प्रसंगानुसार अन्य रसों का भी उनकी रचनाओं में परिपोष हुआ है।

श्रीधर को अपने जीवन-काल में ही बहुत ख्याति प्राप्त हुई। हरि-विजय, राम-विजय, पाण्डव-प्रताप और शिवलीलामृत जैसे सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थों ने उनकी स्मृति को अमर बना दिया है। श्रीधर का

देहान्त पण्ढरपुर में शा० श० १६५१ (लगभग १७३० ई०) में हुआ। उनकी समाधि भीमा नदी के तट पर उनके पिता और गुरु श्री ब्रह्मानन्द की समाधि के समीप ही विद्यमान है।

श्रीधर का यथार्थ चित्र तो अस्तित्व में नहीं है। फिर भी श्री सामराज नामक उनके एक शिष्य ने उन्हें श्रद्धांजली समर्पित करते हुए उनका ऐसा हू-ब-हू शब्द-चित्र पद्यबद्ध किया है कि उसके आधार पर कोई कुशल चित्रकार श्रीधर का चित्र अंकित कर सके। 'श्रीधर चरित्र आणि काव्य-विवेचन' के लेखक प्रो० चिं० नी० जोशी की प्रार्थना के अनुसार उनके चित्रकार मित्र श्री शं० ना० आळंदकर ने ऐसा प्रयास किया है। उनके द्वारा अंकित चित्र का फ़ोटो इस ग्रन्थ के आरम्भ में दिया है। हम प्रो० चिं० नी० जोशी और श्री आळंदकर का ऋण स्वीकार करते हैं।

दूसरा चित्र पण्ढरपुर में स्थित श्रीधर की समाधि का है।

(३) श्रीहरि-विजय : 'श्रीहरि-विजय' मराठी में 'हरि-विजय' नाम से विख्यात है। पहले श्रीधर छोटी-बड़ी रचनाएँ प्रस्तुत करते हुए काव्य-लेखन के क्षेत्र में बहुत अभ्यस्त हो गये। तत्पश्चात उन्होंने (जैसा कि वे स्वयं 'श्रीहरि-विजय' के अन्तिम अध्याय में कहते हैं) शालिवाहन शक १६२४ (१७०२ ई०), चित्रभानु संवत्सर, मार्गशीर्ष मास, शुक्ल द्वितीया को पण्ढरपुर में इस ग्रन्थ को पूर्ण किया। जान पड़ता है कि वे नित्यप्रति कुछ छन्दों की रचना किया करते थे और सन्तों-श्रोताओं को सुनाया करते थे। इसलिए सम्भवतः उन्होंने श्रोताओं को लक्ष्य करके अनेक बातें इसमें स्थान-स्थान पर कही हैं।

नामकरण : श्रीहरि अर्थात श्रीकृष्ण ने कंस द्वारा प्रेषित अनेक दैत्यों पर, कंस शिशुपाल-वक्रदन्त आदि दुर्जनों पर विजय प्राप्त की। इस ग्रन्थ में उनकी इस विजय-यात्रा का वर्णन प्रस्तुत है। इसलिए उन्होंने इस ग्रन्थ का नाम श्रीहरि-विजय निर्धारित किया। इसके अतिरिक्त वे विश्वास करते हैं कि इस ग्रन्थ के पठन-श्रवण से पाठक-श्रोता भी सब प्रकार की विजय को प्राप्त हो जाएँगे। इस दृष्टि से, ग्रन्थ का नाम 'श्रीहरि-विजय' सार्थक है।

ग्रन्थ-विभाग : श्रीहरि-विजय दो खण्डों और छत्तीस अध्याओं में विभक्त है। पूर्वार्ध में उन्नीस अध्याय और और कुल ४२३६ छन्द समाविष्ट हैं और उसमें कृष्ण-जन्म से लेकर कंस-वध तक की कथा का वर्णन है। उत्तरार्ध में २० से ३६ तक के १७ अध्याय तथा कुल ३९०३ छन्द हैं। अतः कुल छन्द हैं ८१३९। इसके उत्तरार्ध में श्रीकृष्ण और बलराम के गुरु सान्दीपनि के आश्रम में विद्याध्ययन के हेतु जाने से लेकर शिशुपाल और वक्रदन्त के वध के पश्चात उनकी कुरुक्षेत्र की यात्रा तक की

घटनाएँ वर्णित हैं। कवि ने बताया है कि कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण गोप-जनों से मिलते हैं। इस ग्रन्थ में उन्होंने, जिस प्रकार श्रीराम-विजय में भगवान राम के निर्वाण की बात नहीं प्रस्तुत की, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के देहावसान सम्बन्धी उल्लेख नहीं किया। श्रीकृष्ण तो परब्रह्म होने के नाते अविनाशी हैं, अनन्त हैं। अतः श्रीधर ने उस घटना को टालकर दिखा दिया है कि श्रीकृष्ण स्वयं पण्ढरपुर में किस प्रकार गये और वहाँ भगवान विट्ठल के रूप में किस प्रकार रह रहे हैं। महाराष्ट्र के एक आराध्य देवता श्री विट्ठल वस्तुतः श्रीकृष्ण ही हैं।

ग्रन्थ का मूलाधार : श्रीधर ने श्रीहरि-विजय के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में कहा है कि यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्रीहरिवंश पुराण से सम्मत है। श्रीमद्भागवत का तात्पर्य उसके दशम स्कन्ध से है। इन दो मूलाधार-स्वरूप ग्रन्थों के अतिरिक्त, उन्होंने कुछ अन्य ग्रन्थों से भी कुछ बातों का चयन किया है। उदाहरणार्थ— ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर क्षीराब्धि का वर्णन; नारद पुराण से महाबल विप्र की कथा; पद्म-पुराण से इद्राणी शची के राधा के रूप में अवतरित होने की कथा तथा पाण्डुरंग एवं पण्ढरपुर-महिमा। जैमिनी भारत भी उनके सामने हैं। श्रीधर स्वयं इन ग्रन्थों का ऋण स्वीकार करते हैं।

विस्तार से कहना न होगा कि कवि ने आधार ग्रन्थों से केवल कथा-सूत्रों तथा वर्ण्य वस्तु को ग्रहण किया है और उन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि के सामने तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज था। अतः यह स्वाभाविक है कि ग्रन्थ में वर्णित लोकाचार, लोक-स्थिति आदि में तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज की झाँकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में दिखायी देती है।

दार्शनिक और साधनात्मक दृष्टिकोण : श्रीधर आनन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख श्रीहरि-विजय के अन्त में किया है। वे वेदान्त के ज्ञाता थे। श्रीहरि-विजय में वे एक प्रकार से भगवान विष्णु तथा उनके अवतार भगवान श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णस्वरूप श्रीविट्ठल के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा अभिव्यक्त करते हैं। फिर भी वे बार-बार कहते हैं कि श्रीकृष्ण वस्तुतः वह परब्रह्म हैं जो अनादि-अनन्त, अगोचर हैं, षड्विकार-रहित हैं, निर्गुण-निराकार हैं। परन्तु भक्तों के परित्राण तथा दुष्कृतों के निर्दलन के हेतु निर्गुण-निराकार ब्रह्म श्रीकृष्ण ने सगुण-साकार, ससीम रूप धारण किया। वे शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य आदि में कोई अन्तर नहीं मानते। उनके अनुसार शैवों के महाशिव, वैष्णवों के महाविष्णु, गाणपत्यों के गणपति, सौरों के सूर्य, सांख्यों के पुरुष —समस्त एक ही हैं। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। वे साधना के क्षेत्र में ज्ञान, कर्मकाण्ड, जप-तप आदि का उनके अपने-अपने स्थान पर

महत्त्व मानते ही हैं, फिर भी उनके अनुसार, ये बातें बिना हरि-भक्ति के की जाएँ, तो पूर्णतः व्यर्थ हैं। इस दृष्टि से वे भक्ति को ही सर्वोपरि मानते हैं। वे इस बात पर बल देते हैं कि यह भक्ति निष्काम हो।

वे चाहते नहीं कि भक्त घर-बार का त्याग करके वन आदि का आश्रय करके रह जाए वा संन्यास ग्रहण करे। श्रीहरि-विजय में उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार गोपियाँ अपना-अपना कार्य करते समय श्रीहरि को हृदय में धारण करती थीं अथवा भगवान के स्मरण में लीन रहते हुए अपने-अपने नित्यकर्म को करती रहती थीं। इस प्रकार कवि ने निष्काम कर्मयोगाश्रित भक्ति-मार्ग का ही प्रतिपादन किया।

श्रीहरि-विजय की (मराठी) भाषा प्रासादिक है। उसे जन साधारण आसानी से समझ सकते हैं। उपमा, रूपक तथा दृष्टान्त आदि अलंकारों से वह विभूषित हैं। इसके लिए 'ओवी' छन्द प्रयुक्त है। श्रीकृष्ण-सत्यभामा, सत्यभामा-दासी के संवाद मार्मिक हैं। पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ सुस्पष्ट रूप में चित्रित हैं। इस ग्रन्थ में वीर, वात्सल्य, भक्ति, मधुरा भक्ति जैसे रस परिपुष्ट हैं। श्रीहरि-विजय नामक एवं गुणविशिष्ट अपने काव्य-ग्रन्थ की साहित्यिक तथा साधनात्मक महत्ता का गान कवि ने स्थान-स्थान पर किया है। उसे अनुचित नहीं कहा जा सकता।

(ख) यह अनुवाद

भाषाई सेतुकरण के हेतु प्रतिष्ठित 'भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ ३' के प्रकाशन-आयोजन के अन्तर्गत मराठी श्रीहरि-विजय का यह हिन्दी गद्यानुवाद प्रकाशित हो रहा है। इसके विषय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाए:—

(अ) 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के अन्य ग्रन्थों की भाँति, इसमें भी मूल कृति अविकल, सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत की गयी है। हमने उसके मराठी शीर्षक 'हरि-विजय' के स्थान पर 'श्रीहरि-विजय' का प्रयोग किया है।

(आ) मराठी लेखन-प्रणाली (वर्तनी आदि) के विषय में महाराष्ट्र सरकार, महाराष्ट्र में स्थित विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र साहित्य परिषद आदि द्वारा अब विशिष्ट नियमावली निर्धारित की गयी है। उसके अनुसार अनुच्चरित अनुस्वार, अर्ध-अनुस्वार सूचित करनेवाले चिह्न अब प्रयुक्त नहीं किये जाते। उसी प्रकार कवि, पद्धति, वस्तु, साधु जैसे संस्कृत तत्सम शब्दों के अन्य लघु स्वर को दीर्घ में परिवर्तित करके (कवी, पद्धती, वस्तू, साधू जैसा) लिखा जाता है। चूंकि ग्रन्थ प्राचीन है, और ऐसे ग्रन्थ

परम्परागत पद्धति से ही प्रस्तुत किये जाते हैं, श्रीहरि-विजय के मराठी पाठ में उसी परम्परागत प्रणाली का ही निर्वाह किया है।

(इ) हाँ, फिर भी अ-मराठी पाठक की सुविधा और मार्गदर्शन के लिए निम्नलिखित तीन वर्णों के मुद्रण में उच्चारण को सूचित के हेतु सुधार किया है। मराठी में 'च' 'ज' और 'झ' से दो-दो ध्वनियाँ सूचित होती हैं। पहली है तालव्य 'च', 'ज', 'झ' और दूसरी है वर्त्स्य 'च़', 'ज़' और 'झ़'। हिन्दी के जानकार 'ज' और 'ज़' के उच्चारण-भेद को जानते हैं। ज़ के उच्चारण में जहाँ जिह्वा की नोक दाँतों के ऊपर तालु के अग्रभाग में लगायी जाती है, वहीं 'च' और 'झ' का उच्चारण करते समय उसे लगाने से 'च़' और 'झ़' ध्वनि निर्मित होती है। इस उच्चारण-भेद को स्पष्ट करने का निर्णय श्रीहरि-विजय का मुद्रण आरम्भ हो जाने के पश्चात किया गया। अतः दसवें अध्याय से मूल मराठी में 'च' और 'च़', 'ज' और 'ज़', 'झ' और 'झ़' का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया है (यद्यपि महाराष्ट्र में इस प्रकार नहीं किया जाता)।

(ई) जहाँ तक हो सके, यह प्रयास किया गया है कि श्रीहरि-विजय का अनुवाद मूल कृति की अभिव्यक्ति प्रणाली के निकट हो। अतः कहीं-कहीं अनुवाद वाली हिन्दी अटपटी भी जान पड़े, तो अनुवाद के लक्ष्य का ध्यान रखते हुए, उसे नजरअन्दाज़ किया जाए।

(ग) प्रकाशक— भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ

विगत बारह-तेरह वर्षों में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' का कार्य भारत भर में सुचारु रूप से परिचित हो गया है। अतः ट्रस्ट के उद्देश्य और कार्य के विषय में मैं यहाँ पर लिखना नहीं चाहूँगा। मुझे केवल इतना ही निवेदन करना है—

भुवन वाणी ट्रस्ट के मुख्य न्यासी पद्मश्री नन्दकुमारजी अवस्थी से संयोग से केवल पत्राचार द्वारा १९७० ई० के पूर्व ही मेरा परिचय हुआ। श्री अवस्थी साहब के अभूतपूर्व कार्य तथा उनके अपराजेय उत्साह को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और उन्होंने मुझे आत्मीयता के बन्धन में बाँध लिया। उनके हार्दिक स्नेह से प्रेरित होकर मैं श्रीधर-कृत श्रीराम-विजय के हिन्दी गद्यानुवाद का कार्य पूर्ण कर सका। तदनन्तर 'ट्रस्ट' ने मुझे श्रीहरि-विजय का अनुवाद करने का आदेश दिया, तो उसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया। कभी-कभी मेरे कालेज वाले काम के बोझ के फल-स्वरूप अनुवाद की गति में शिथिलता आ जाती थी। फिर भी मुख्य न्यासी श्री

नन्दकुमारजी अवस्थी की कर्मठता से और उनके सुपुत्र तथा ट्रस्ट के उप-सचिव श्री विनयकुमारजी की कर्तव्य-तत्परता से पुनः प्रेरित होकर काम में जुट जाता था। आज अनुवाद का मुद्रण पूरा होकर उसे पुस्तकाकार प्रकाशित होने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। मैं व्यक्तिशः श्री नन्दकुमारजी अवस्थी और श्री विनयकुमार अवस्थी के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करता हूँ और भगवान श्रीहरि से प्रार्थना करता हूँ कि ट्रस्ट के उद्देश्यों को पूर्ण करने और मुझ जैसे लोगों से निर्धारित कार्य पूर्ण करवाने की सामर्थ्य उन्हें प्रदान करें।
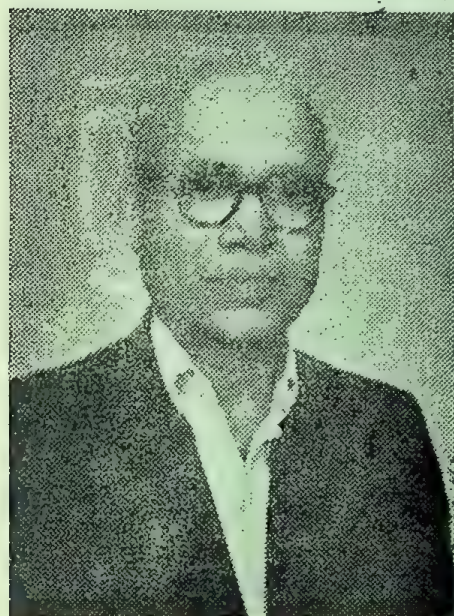
डॉ० गजानन नरसिंह साठे

इस अनुवाद में अनेकानेक त्रुटियाँ रह गयी होंगी। पाठक इसके लिए मुझे उत्तरदायी समझें। और यदि कोई सुधी पाठक उन्हें दिखा दें, तो उनका निराकरण पुनर्मुद्रण के समय किया जाएगा।

इत्यलम्।

१४७२, सदाशिव पेठ,
पूना (महाराष्ट्र) ४११०३०
१५ मार्च, १९८३

विनीत
गजानन नरसिंह साठे

श्रीधर

श्रीधरः श्रीधरः साक्षात् श्रीश्च यस्य मुखे स्थिता ॥
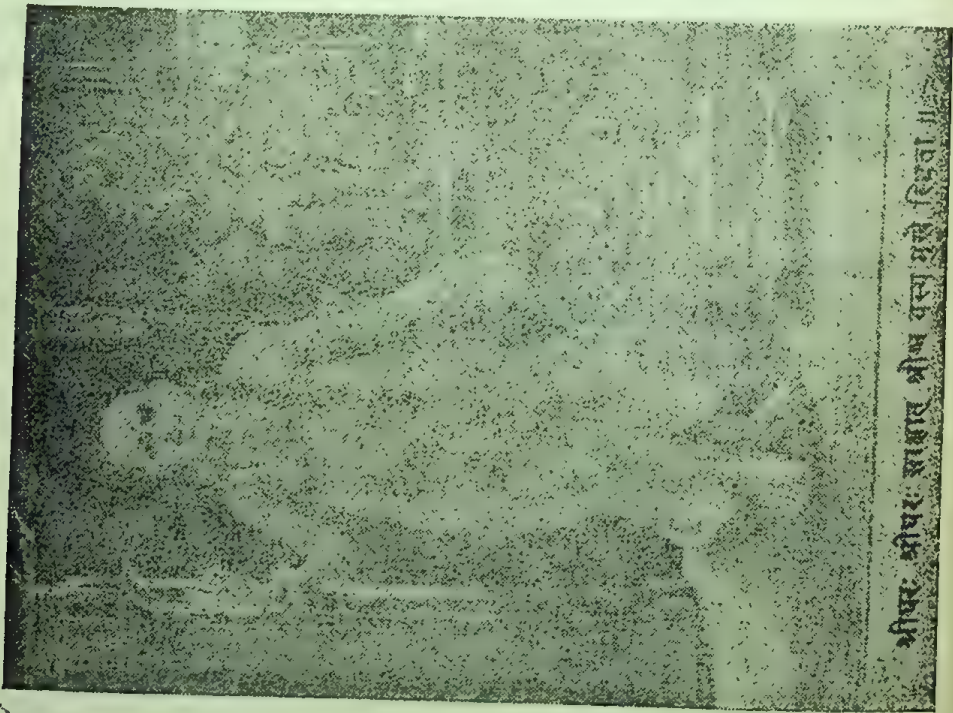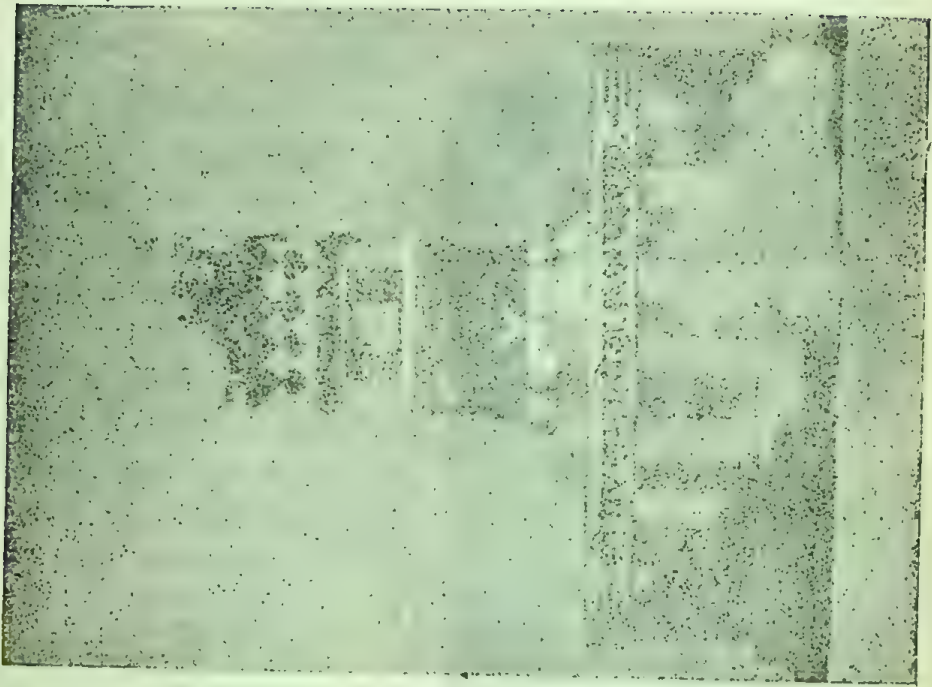
समर्पण

मराठी के मध्ययुगीन सुविख्यात कवि श्रीधर द्वारा
पौराणिक शैली में विरचित मराठी महान काव्य

श्रीहरि-विजय का यह हिन्दी गद्यानुवाद

उन समस्त देवियों और सज्जनों को
आदर-पूर्वक अर्पित है—

जो साहित्य-प्रेमी हैं तथा / अथवा श्रीहरिकथा-रसामृत की प्राप्ति के अभिलाषी हैं और जो राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से अन्यान्य भाषाओं की कृतियों का परिचय पाने की कामना करते हैं तथा भाषिक संकीर्णता से ऊपर उठकर उनका रसास्वादन करते हुए अद्भुत आनन्द-सागर में अवगाहन करते हैं एवं त्रिविध तापों से कुछ समय के लिए मुक्त हो जाते हैं।

भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ
द्वारा

इस ग्रन्थ में स्वनाम-धन्य श्रीधर की मूल कृति भी अविकल रूप में प्रस्तुत की गयी है। इस मूल कृति पर उसके निर्माता का अधिकार है। उनकी यह रचना एक दृष्टि से उनकी निजी सम्पदा है, फिर भी दूसरी दृष्टि से यह उस समाज की सम्पदा है जिसके लिए इसका निर्माण हुआ। तथापि इसे मैं किसी दूसरे को समर्पित करने की धृष्टता नहीं करना चाहूँगा। अतः श्रीहरि-लीला के गायक श्रीधर की यह कृति उन्हीं के प्रीत्यर्थ समर्पित है।

महामहिम श्रीधर की इस असाधारण कृति का मुझ जैसे अकिंचन द्वारा प्रस्तुत यह हिन्दी अनुवाद पढ़कर, यदि कोई इस मूल कृति को मराठी द्वारा समझ लेने की तनिक भी प्रेरणा प्राप्त करे, तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगा।

विनीत

१५ मार्च, १९८३ — गजानन नरसिंह साठे
अनुवादक

प्रकाशकीय प्रस्तावना

देवनागरी अक्षयवट

भुवन वाणी ट्रस्ट के 'देवनागरी अक्षयवट' की देशी-विदेशी प्रकाण्ड-शाखाओं में, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी, कश्मीरी, गुरमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, मलयाळम, तमिळ, कन्नड, तेलुगु, ओड़िया, बँगला, असमिया, नेपाली, अंग्रेज़ी, हिब्रू, ग्रीक, अरामी आदि के वाङ्मय के अनेक अनुपम ग्रन्थ-प्रसून और किसलय खिल चुके हैं, अथवा खिल रहे हैं। इस नागरी अक्षयवट की मराठी शाखा में प्रस्तुत यह श्रीधर कृत "हरिविजय" दूसरा पल्लव-रत्न है। इससे पूर्व, इन्हीं पण्डितप्रवर श्रीधर प्रणीत "रामविजय" सानुवाद १२३२ पृष्ठों में प्रकाशित हो चुका है।

विश्वबन्धुत्व और राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में लिपि और भाषा

भूमण्डल पर देश-काल-पात्र के प्रभाव से मानव जाति, विभिन्न लिपियाँ और भाषाएँ अपनाती रही है। उन सभी भाषाओं में अनेक दिव्य वाणियाँ अवतरित हैं, जो विश्वबन्धुत्व और परमात्मपरायणता का पथ-प्रदर्शन करती हैं; किन्तु उन लिपियों और भाषाओं से अपरिचित होने के कारण हम इस तथ्य को नहीं देख पाते। अपनी निजी लिपि और अपनी भाषा में ही सारा ज्ञान और सारी यथार्थता समाविष्ट मानकर, दूसरे भाषा-भाषियों को उस ज्ञान से रहित समझते हुए हम भेद-विभेद के भ्रमजाल में भ्रमित होते हैं।

भूमण्डल की बात तो दूर, हमारे अपने देश 'भारत' में ही अनेक भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित हैं। एक ब्राह्मी लिपि के मूल से उत्पन्न होने के बावजूद उन सबसे परिचित न होने के कारण हम अपने को परस्पर विघटित समझने लगते हैं। सारी लिपियाँ और भाषाएँ सीखना-समझना सम्भव भी नहीं है।

सुतरां, यथासाध्य विश्व, और अनिवार्यतः स्वराष्ट्र की सभी भाषाओं के दिव्य वाङ्मय को राष्ट्रभाषा हिन्दी और सम्पर्कलिपि नागरी में सानुवाद लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से बढ़ाकर उसको सारे राष्ट्र को सुलभ कराना, समस्त सदाचार-साहित्य-निधि को सारे देश की सम्पत्ति बनाना, यह संकल्प भगवान की प्रेरणा से सन् १९४७ में मैंने अपनाया, और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना हुई।

विश्वबन्धुत्व के सम्बन्ध में ट्रस्ट की अपेक्षाएँ

प्रश्न यह उठता है कि विश्ववाङ्मय के परस्पर लिप्यन्तरण और अनुवाद से मानव मात्र में सद्भावना की उपलब्धि क्या सम्भव है ? मेरा नम्र निवेदन है कि यह कठिन है। सृष्टि के आरम्भ से त्रिविध भूखण्डों में समय-समय पर अवतारी पुरुष और आप्त ग्रन्थ प्रकट होते रहे हैं। फिर भी संगठन और विघटन, दोनों ही वर्तमान हैं। उनमें चढ़ाव-उतार होता रहता है। तब हमारे टिट्टिभि-प्रयास की क्या बिसात है। साथ ही दूसरा प्रश्न हम रखते हैं कि यह मानते हुए कि विश्व का समस्त वाङ्मय मानव मात्र की सम्पत्ति है, क्या वह समग्र मानव की पहुँच में न बनाया जाय ? किसी एक वाङ्मय को यदि हम ग़ैर मानकर उससे विरक्त रहते हैं तो हम अपने को निर्धन बनाते हैं। उसी भाँति यदि कोई समूह किसी वाङ्मय विशेष को अपनी ही पूँजी मानकर शेष मानव समाज को उससे वञ्चित रखता है तो वह व्यक्ति अथवा समूह उस कृपण के सदृश है जो किसी निधि का न स्वयं उपभोग कर पाता है, न किसी अन्य को उपभोग करने देता है।

ट्रस्ट की यह मान्यता है कि धरातल का समस्त वाङ्मय मानवमात्र की सम्पत्ति है। लिपि और भाषा के पट को अनावृत कर उस सबको सर्वसुलभ बनाना चाहिए। भले ही मानव की पार्थक्य-भावना का मूलनाश न हो, परन्तु एकीकरण की ओर कर्तव्य करते रहना हमारे लिए श्रेयस्कर है। छोटे से भी छोटा सत्कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता, नष्ट नहीं होता—

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ॥"

—गीता ६ : ४०

नागरी और मराठी लिपि— दोनों पर समान उत्तरदायित्व

नागरी लिपि पर यह उत्तरदायित्व ठीक ही रहा कि राष्ट्र की सभी

लिपियों के साहित्य को नागरी जामा पहनाकर उसको राष्ट्र भर में फैलाए। देश का सकल साहित्य देश के कोने-कोने में सुपरिचित हो। नागरी लिपि का ही फैलाव इतना विशाल है कि इस उत्तरदायित्व को वहन कर सके।

परन्तु सौभाग्य से यही सामर्थ्य मराठी लिपि को भी प्राप्त है। मराठी लिपि पूर्णतः नागरी के समान है। मराठी क्षेत्र को भी यह गौरव स्वतः उपलब्ध है कि वह अधिक से अधिक विभिन्न भाषाई साहित्य को अपने अक्षरों का परिधान देकर राष्ट्रलिपि अथवा राष्ट्र की समस्त भाषाओं में जोड़लिपि का स्थान ग्रहण करे। जो यश नागरी लिपि को प्राप्त है वही यश मराठी लिपि को भी। नागरी लिपि की सेवाओं का प्रतिफल मराठी को और इसी भाँति मराठी लिपि की सेवाओं का सुयश नागरी लिपि को सुनिश्चित है। दोनों एक रूप हैं, दोनों का समान आसन है। अन्य भारतीय लिपियाँ अपने निजी क्षेत्र में निजी कलेवर में उत्तरोत्तर फूलते-फलते हुए नागरी अथवा मराठी लिपि का पटाम्बर धारण कर देश-विदेश का पर्यटन कर सकती हैं।

महाराष्ट्र-महिमा

महाराष्ट्र संतों की भूमि है। उत्तर भारत में अवतारों की कृपा रही। कालान्तर में जनसाधारण उनकी पूजा-अर्चना से सन्तुष्ट रहकर आचार को भूल बैठता है। किन्तु सन्त और महात्मा तो आये दिन स्थल-स्थल पर प्रकट होते और 'निवृत्ति' भाव में रहते हुए भी जनता-जनार्दन के बीच बसते हैं, पदयात्रा करते हैं और अपने उपदेश एवं निज-आचार द्वारा जनसाधारण के जीवन को सत्पथ पर अग्रसर करते रहते हैं। इनकी कड़ी टूटती नहीं। स्थल-स्थल पर वे प्रकट होकर समाज को उदात्त बनाते हैं। महाराष्ट्र में सन्तसमुदाय की कृपा सतत और अनन्य रही।

सन्त ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, नामदेव, छत्रपति महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ श्री रामदास, ऐसे अनेक महात्माओं की दिव्य वाणी न केवल महाराष्ट्र वरन् समस्त देश को सन्मार्ग दिखाती रही। ऐसे ही एक विद्वान सन्त हुए "श्रीधर"। इन महात्मा का बाहर सौ पृष्ठों से ऊपर "रामविजय" हम पहले प्रकाशित कर चुके हैं। उनका ही प्रणीत दूसरा विशाल ग्रंथ "हरिविजय" आज पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करने का पुनः सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

शिवा को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को

एक वीर कवि इस धर्मसंकट में चलायमान है कि आततायी सम्राट् औरंगजेब के विरोध में आजीवन युद्धरत दो महाशूरों— महाराष्ट्र के महाराज छत्रपति शिवाजी और बुंदेलखण्ड के महाराज छत्रसाल —इनमें किनकी सराहना की जाय। दोनों ही का पराक्रम, वीरता और बलिदान अद्वितीय है। एक का गुणगान करते समय दूसरे का गुणगान रुकना, यह वीर कवि को स्वीकार नहीं। और एक जिह्वा से एक ही समय दोनों की विरदचर्चा सम्भव नहीं।

इसी प्रकार की एक दुविधा में आज अकिञ्चन भी है। कविराज सन्त श्रीधर के पत्राकार ग्रन्थ गाँव-गाँव में पूजे, पढ़े और सुने जाते हैं। सारा महाराष्ट्र उनके दिव्यज्ञान से आप्लावित है।

दूसरी ओर डॉ० गजानन नरसिंह साठे स्मृति से नहीं हटते, जिन्होंने इन दिव्य ग्रन्थों के मूल पाठ एवं हिन्दी अनुवाद को अनन्य निष्ठा और निस्पृह भाव से समग्र राष्ट्र के लिए सुलभ बनाया। एक ओर कविवर श्रीधर की बदौलत, भक्ति, ज्ञान और कर्म के श्रीधरी उपदेश से महाराष्ट्र देदीप्यमान है, तो दूसरी ओर श्री साठे द्वारा वही प्रकाश सारे देश को उपलब्ध कराया जा रहा है। हम किसकी सराहना को प्राथमिकता दें?

'स्वारथ' का संसार है। ७६ वर्ष मेरे पूरे हुए। मुझे ट्रस्ट के भाषाई सेतुबन्ध जैसे अद्भुत और जटिल काम के लिए उत्तरोत्तर अधिक अवलम्ब चाहिए। अत: डॉ० साठे की विरदचर्चा ही मेरे तथा पाठकों के लिए अधिक समुचित है। फिर, श्री साठे महोदय ने अपनी प्रस्तावना में महात्मा श्रीधर की सांगोपांग विशद चर्चा की है। इसलिए निम्न पंक्तियों में हम डॉ० साठे का ही कुछ परिचय, प्रस्तुत कर रहे हैं। उन्होंने ही 'श्रीधर' की अमर रचना को महाराष्ट्र से आगे बढ़ाकर अखिल देश के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इस चर्चा से 'श्रीधर' के ध्यान-संस्मरण का पुण्य भी परोक्ष रूप में हमको प्राप्त हो जायगा।

डॉ० गजानन नरसिंह साठे

डॉ० गजानन नरसिंह साठे का जन्म ग्राम नांदिवडे जिला रत्नागिरि में एक महाराष्ट्र ब्राह्मण परिवार में १ फ़रवरी, १९२२ ई० को हुआ। उनके पिता पुण्यवान् भारतीय प्रवर श्री नरसिंह विष्णु साठे लगभग शतायु की पूर्णायु पाकर दिवंगत हुए। अध्यापन कार्य से अवकाश पाने के बाद वे आजीवन निःशुल्क बालकों को विद्यादान देते हुए आदर्श ब्राह्मण-जीवन का निर्वाह करते रहे।

डॉ० गजानन साठे ने बंबई विश्वविद्यालय से मराठी-अंग्रेज़ी एवं हिन्दू वि० वि० वाराणसी से हिन्दी में एम०ए०, बंबई वि० वि० से बी० टी०, बंबई वि० वि० से हिन्दी में पीएच्० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। शोध-विषय था "स्वयम्भु कृत 'पउमचरिउ' और तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का तुलनात्मक अध्ययन"। हिन्दुस्तानी शिक्षक सनद, साहित्य विशारद (मराठी), साहित्यरत्न (प्र० सा० स०) से भी डॉ० साठे समलङ्कृत हैं।

प्राइमरी पाठशाला के अध्यापक से उनकी जीविका आरम्भ हुई। ११ वर्ष कई हाई स्कूलों में अध्यापन के पश्चात् २७ वर्ष रा० आ० पोद्दार कालेज, माटुंगा (बम्बई) में हिन्दी विभागाध्यक्ष और आगे चलकर जूनियर कालेज विभाग के प्रमुख आचार्य पद पर आसीन रहे। स्नातकोत्तर कक्षा (एम० ए०) में भी अध्यापन का गौरव उन्हें प्राप्त हुआ। अनेक शिक्षक संस्थाओं, शासन की शब्दावली समिति तथा महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा आदि के सदस्य मनोनीत हुए।

राष्ट्रभाषा का अध्ययन, मराठी स्वयंशिक्षक का सम्पादन एवं लेखन के अतिरिक्त अनेक संस्थाओं से सम्बन्धित रहकर आजीवन राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में रत हैं।

और भुवन वाणी ट्रस्ट के तो लगभग १० वर्षों से दाहिने हाथ हैं। मराठी रामविजय एवं प्रस्तुत हरिविजय, गुजराती गिरधर रामायण और प्रेमानन्द रसामृत जैसे विशाल ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद और यथावश्यक नागरी लिप्यन्तरण किया। सम्प्रति संत एकनाथ की भावार्थ रामायण का अनुवाद कर रहे हैं। भुवन वाणी ट्रस्ट की विद्वत्-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य और ट्रस्ट के आजीवन न्यासी हैं। भाषाई सेतुबन्ध के लिए जो महत् कार्य स्वयं उन्होंने किये हैं, उनके अतिरिक्त ट्रस्ट के लिए विविध भाषाओं के विद्वानों को खोज निकालना, पत्राचार, परामर्श में सदैव तत्पर एवं रत रहना, तात्पर्य यह कि अवकाश-प्राप्ति के बाद भी वह अहर्निश राष्ट्रभाषा की सेवा में लगे हैं। उन्होंने अपनी पूँजी से दुर्लभ एवं सुलभ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का एक निजी संग्रहालय तैयार कर लिया है।

ऐसे गरिमावान् और निस्पृह साधक डॉ० साठे ट्रस्ट के लिए वरदान-स्वरूप हैं। भगवान् उनको स्वस्थ और सुखी दीर्घायु प्रदान करें।

आभार-प्रदर्शन

सदाशय श्रीमानों और उत्तरप्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति भी हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी-सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उसी के फलस्वरूप मराठी के लोकप्रख्यात संतकवि श्रीधर प्रणीत ग्रन्थरत्न "श्रीहरि-विजय" का प्रकाशन प्रस्तुत वर्ष में सम्पूर्ण हो सका है।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी पट, सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥

अमर भारती सलिल-सिंधु की सम-समान युगधारा।
लिपि नागरी-मराठी ने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥

नन्दकुमार अवस्थी
प्रतिष्ठाता, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

विषय-सूची

होने की कथा ४०६; माता द्वारा 'देव' कहने पर कृष्ण का रो पड़ना ४१२; नारद का कंस की राजसभा में आगमन, उनके द्वारा वसुदेव-देवकी को न मारने और बलराम-कृष्ण को खोजकर मार डालने का सुझाव देना ४१२; कंस के सेवकों द्वारा गो-ब्राह्मणों को उत्पीड़ित करना, नारद द्वारा कंस का यथाशीघ्र वध करने की श्रीकृष्ण से विनती करना ४१३; गोवत्स-वेशधारी वत्सासुर का कृष्ण द्वारा वध करना ४१४; बलराम और कृष्ण द्वारा भेड़िये उत्पन्न करके गोपों को वृन्दावन में लाकर बसाना, ४१५ गोप वेशधारी प्रलम्ब दैत्य का बलराम द्वारा संहार करना ४१७; कृष्ण द्वारा बकासुर का संहार करना ४१८; कृष्ण द्वारा शक्तिरूपधारी अरिष्टासुर का योगमाया के हाथों संहार कराना ४१९; गोकुल में कृष्ण द्वारा वीरभद्र के हाथों कागासुर का विनाश करवाना ४२०; कृष्ण द्वारा खरासुर, खगासुर और विठ्यासुर का निर्दलन, कंस का चिन्तित हो जाना ४२१; कंस द्वारा घड़े और कुम्हड़े भेजकर गोपों के लिए पहेली प्रस्तुत करना, बलराम और कृष्ण द्वारा उस पहेली को हल करना ४२१; कंस के दूतों द्वारा गोपों और गायों के चारों ओर वन में आग लगाना; कृष्ण द्वारा आग को निगलकर सबकी रक्षा करना ४२४; कवि-कृत उपसंहार ४२५।

अध्याय—१५ (कृष्ण द्वारा देवकी से वायन स्वीकार करना और देवकी-वसुदेव की रक्षा करना; कृष्ण द्वारा गोपियों का चीर-हरण) ४२७-४४२।

कवि की प्रास्ताविक उक्ति ४२७; श्रावण मास की अमावास्या के दिन पुत्र का पूजन करके वायन देने की परिपाटी; देवकी के द्वारा ग्लानि के साथ शोक करना; बालकृष्ण द्वारा यह जानकर देवकी माता के सम्मुख उपस्थित होना और वायन स्वीकार करना तथा उसे आश्वस्त करना ४२८ नारद द्वारा कंस को इस चमत्कार का समाचार बताना; कंस द्वारा वसुदेव-देवकी का वध करने का आदेश देना, कृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र भेजकर वधिकों का संहार करना, कंस द्वारा वसुदेव-देवकी को आश्वस्त करना ४३१; मथुरा की ओर जानेवाली गोपियों में राधा को देखकर कृष्ण द्वारा उसे छेड़ना और दान माँगना, अपना बड़प्पन बताना, राधा का कृष्ण की शरण में आना ४३२; मार्गशीर्ष-माहात्म्य ४३७; गोपियों द्वारा कात्यायनी-पूजन, कृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र लेकर कदम्ब पर चढ़ना, गोपियों द्वारा व्याकुलतापूर्वक कृष्ण को डाँटना-धमकाना और वस्त्र लौटाने की विनती करना, कृष्ण द्वारा उन्हें सूर्य को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने को बताना ४३७; कृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र लौटाना और उनकी कामना को पूर्ण करने का उन्हें अभिवचन देना ४४१; कवि-कृत उपसंहार ४४२।

अध्याय—१६ (ब्राह्मणों द्वारा यमुना-तट पर यज्ञ करना) ४४३-४६७।

कवि की प्रास्ताविक उक्ति ४४३; श्रीकृष्ण के प्रताप को जानते हुए भी ब्राह्मणों द्वारा उनकी निन्दा करना, भक्ति-हीन साधना की व्यर्थता बतानेवाली कवि की उक्ति ४४४; ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ आरम्भ करना, वन में खेलनेवाले श्रीकृष्ण और अन्य बालकों को भूख लगना, श्रीकृष्ण द्वारा गोपों को अन्न माँगने के लिए यज्ञ-स्थल पर भेजना, ब्राह्मणों द्वारा उन्हें अन्न न देना ४४६; श्रीकृष्ण द्वारा गोपों को ब्राह्मण-स्त्रियों के पास अन्न माँगने के लिए भेजना, स्त्रियों द्वारा कृष्ण-दर्शन की उत्कण्ठा के साथ अन्नदान देना ४५५; एक ऋषि-पत्नी का पीछे रह जाना, पति द्वारा

श्रीहरि-विजय

अध्याय—१

वन्दना प्रकरण और पृष्ठभूमि

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीकुलदेवतायै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीरुक्मिणीपाण्डुरंगाभ्यां नमः ॥ ॐ नमोजी जगद्गुरु उदारा। श्रीमद्भीमातीरविहारा। पुराणपुरुषा दिगंबरा। ब्रह्मानंदा सुखाब्धे। १ तूं सकळश्रेष्ठ साचार। तूंचि आदि मायेचा निजवर। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। तिघे पुत्र निर्मिले। २ अनंत ब्रह्मांडें त्यांहातीं। तूंचि घडविसी जगत्पती। सकळ देव वर्तती। तुझिया सत्तेकरूनियां। ३ तूंचि

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीकुलदेवतायै नमः। श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीरुक्मिणी-पाण्डुरङ्गाभ्यां नमः।

ॐ। हे उदार (-चरित, धर्मात्मा) जगद्गुरु, हे श्रीमद्भीमा[1] नदी के तट पर (बसे हुए पण्ढरपुर नामक पावन नगर में) विहार करनेवाले, हे पुराण पुरुष (भगवान), हे दिगम्बर अर्थात परमहंस संन्यासी गुरु ब्रह्मानन्द[2] (के रूप में आविर्भूत भगवान), हे सुख-सागर, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। १ आप सचमुच सर्वश्रेष्ठ हैं। आप ही आदिमाया के अपने अर्थात स्वयंसिद्ध पति हैं। आपने ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन पुत्रों का निर्माण किया। २ हे जगत्पति, आप ही उनके हाथों असंख्य ब्रह्माण्डों का निर्माण करवाते हैं (तथा उन ब्रह्माण्डों का परिपालन और अन्त में विलय करवाते हैं)। समस्त देवता आपकी

१ भीमा नदी सह्याद्रि में स्थित भीमाशंकर नामक ज्योतिर्लिंग स्थान से निकल कर बहते-बहते अन्त में कृष्णा नदी में मिल जाती है। उसके तट पर पण्ढरपुर (जि० शोलापुर, महाराष्ट्र) नामक महाराष्ट्र का विख्यात तीर्थ-स्थल बसा हुआ है। इस नगर में श्री विट्ठल (विठोबा) का मन्दिर है। श्री विट्ठल मूलतः विष्णु हैं, कृष्ण हैं। ये ही महाराष्ट्र के 'वारकरी' नामक भक्ति सम्प्रदाय के आराध्य देवता हैं। भीमा को 'भिवरा' भी कहते हैं। पण्ढरपुर के निकट उसकी धारा चन्द्र-कला की भाँति वक्र है; अतः वह वहाँ 'चन्द्रभागा' भी कहाती है।

२ ब्रह्मानन्द कवि श्रीधर के पिता थे। वे उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष थे। जीवन के उत्तरार्ध में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। श्रीधर ने उन्हीं से दीक्षा ग्रहण की थी। कहना न होगा कि साधना-क्षेत्र में गुरु भगवद्-स्वरूप, ब्रह्म-स्वरूप माने जाते हैं।

जाहलासी गजवदन। चतुर्दश विद्यांचें भुवन। महासिद्धि कर जोडून। सदा तिष्ठती तुजपुढें। ४ जय अनंतकल्याणवरदमूर्ती। त्रैलोक्यभरित तुझी कीर्ती। सुरासुर तुज नमिती। श्रीगणपति दयार्णवा। ५ अरुणसंध्याराग-रत्नज्योती। कीं उगवला बाळगभस्ती। तैसी गणपति तुझी अंगकांती। आरक्तवर्ण दिसतसे। ६ कीं शेंदुरें चर्चिला मंदराचळ। परम तेज झळके

प्रभुता के कारण (आपके अधीन रहते हुए आपके आदेश वा इच्छा के अनुसार) आचरण-व्यवहार करते हैं। ३

आप ही गणेशजी (के रूप में आविर्भूत) हो गये हैं। (उस रूप में) आप ही चौदह विद्याओं[1] के भुवन अर्थात निवास-स्थान हैं। (आठों) महासिद्धियाँ[2] आपके सामने नित्य हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। ४ हे अनन्त कल्याण का वरदान देनेवाले साक्षात मूर्ति-स्वरूप (गणेशजी), आपकी जय हो। आपकी कीर्ति तीनों लोकों[3] में भरी हुई है। हे दयार्णव गणपति, सुर और असुर आपका नमन करते हैं। ५ हे गणपति, आपके शरीर की कान्ति वैसे ही आरक्त वर्ण की दिखायी देती है, जैसे संध्याकाल (के प्रकाश) का वर्ण रक्तिम होता है, अथवा रत्न-ज्योति (रत्न से उत्पन्न कान्ति) होती है; अथवा (जान पड़ता है कि आपके रूप में आरक्त वर्ण लिये हुए) बाल सूर्य उदित हुआ है; अथवा मन्दर पर्वत में सिन्दूर पोत दिया है। आपका परम तेज

१ चौदह विद्याएँ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद (नामक चार वेद), शिक्षा, छन्दस्, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प (नामक छः शास्त्र), न्याय, मीमांसा, पुराण और धर्मशास्त्र—कुल चौदह।

२ महासिद्धियाँ—विशिष्ट पद्धति से साधना करके साधक महान सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है। ये महासिद्धियाँ आठ हैं—

अणिमा—शरीर को अणु-सदृश सूक्ष्म बनाने की शक्ति।

महिमा—शरीर को अति महान अर्थात प्रचण्ड बनाने की शक्ति।

लघिमा—शरीर के भार को अति लघु कर देने की शक्ति।

प्राप्ति—समस्त प्राणियों की इन्द्रियों के साथ तत्तत् इन्द्रियों के देवों के रूप में सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति।

प्राकाश्य—लौकिक तथा पारलौकिक स्थलों में भोग करने और दर्शन करने की सामर्थ्य।

ईशिता—ईश में शक्ति, माया आदि की स्थित प्रेरणा।

वशिता—भोगोपभोग करते हुए भी उनके विषयों से अनासक्त रहने की शक्ति।

प्राकाम्य—समस्त इच्छित सुखों को इच्छित मात्रा में पाने की शक्ति। एक अन्य मान्यता के अनुसार 'प्राकाश्य' के बदले 'गरिमा' को महासिद्धियों में स्थान दिया जाता है। शेष सात सर्व-स्वीकृत हैं।

३ त्रैलोक्य, त्रिभुवन—स्वर्ग (देवलोक), मृत्युलोक (नरलोक, पृथ्वी) और पाताल।

सोज्ज्वळ। विशाळ उदर दोंदिल। माजी त्रिभुवन सांठवलें।७ दुग्धसमुद्रीं ओपिलें। कीं निर्दोष यश आकारलें। तैसें शुभ्र वस्त्र परिधान केलें। ध्यानीं मिरवलें भक्तांच्या।८ विनायकरिपूचें कटिसूत्र। तळपे विराजमान विचित्र। जांबूनद सुवर्ण पवित्र। त्याचे अळंकार सर्वांगीं।९ जैसा पौर्णिमेचा नक्षत्रनाथ। तैसा एक दंत झळकत। कीं सौदामिनी लखलखित। मेघमंडळावेगळी।१० परशु अंकुश इक्षुदंड। पाश गदा दंतखंड। पंकज आणि कोदंड। अष्ट हस्तीं आयुधें।११ गणपति तुझें नृत्य देखोन।

अति उज्ज्वलता के कारण जगमगा रहा है। आपकी तोंद विशाल है। उसमें त्रिभुवन समाया हुआ है।६-७ जो (मानो) दूध के सागर में धोया हुआ हो, अथवा जिसके रूप में विशुद्ध यश ने आकार ग्रहण किया हो, ऐसा शुभ्र वस्त्र आपने परिधान किया है। आपका वह रूप भक्तों के मन में शोभा-सहित विराजमान हुआ है।८ गरुड़ के शत्रु सर्प-स्वरूपा आपकी विचित्र मेखला (करधनी आपकी कमर में) विराजमान होकर जगमगा रही है। जाम्बुनद सोना (सर्वाधिक) पवित्र होता है। उसके आभूषण आपके समस्त अंग पर (शोभायमान) हैं।९ जिस प्रकार पौर्णिमा का चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार आपका एक दाँत झलकता रहता है। अथवा (उसे देखकर जान पड़ता है कि) बिजली मेघ-मण्डल से अलग (होकर) चमक रही हो।१० परशु, अंकुश, इक्षु-दण्ड, पाश, गदा, दन्त-खण्ड,[1] कमल और धनुष आपके आठों हाथों में[2] (मानो आठ) आयुध (शस्त्र) हैं।११ हे गणपति, आपका नृत्य देखते हुए शिवजी

---

१ दन्त खण्ड (खण्डित दन्त)—गणेशजी का एक दन्त टूटा हुआ है और उस टूटे (खण्डित) दन्त को उन्होंने आयुध के रूप में अपने हाथ में ग्रहण किया है। गणेश के दाँत के टूट जाने के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं, जैसे—१–शिवजी ने क्रोध से गणेश के दाँत पर आघात किया था; उससे उनका एक दाँत भग्न हो गया। २–जब चन्द्र गणेश का उपहास करते हुए उन्हें हँसने लगा, तब उन्होंने झुँझलाते हुए अपने हाथ से एक दाँत तोड़कर उसके टूटे अंश को आयुध के रूप में ग्रहण कर चन्द्र पर उसे फेंक दिया। ३–गजमुखासुर ने युद्ध में गणेश पर आघात करके उनके दाँत को तोड़ डाला, तो उन्होंने उस दन्त खण्ड से उस असुर को आहत किया। ४–अपने विनायक अवतार में देवान्तक नामक असुर से लड़ते समय, उस असुर के आघात से टूटे हुए अपने दाँत के खण्ड को आयुध की भाँति प्रयुक्त करके गणेशजी ने उसे मार डाला। ६–एक बार परशुराम शिवजी के दर्शन के लिए आ गये। उस समय शिवजी-पार्वती शयन-गृह में थे, इसलिए गणेशजी ने परशुराम को समझाते-बुझाते, विनती करते हुए अन्दर जाने से रोकने का यत्न किया। परशुराम ने उनकी उपेक्षा करके क्रोध से अपना परशु उन पर फेंक दिया, तो उन्होंने उसे अपने दाँत पर झेला; फलतः उनका एक दाँत टूट गया।

२ यहाँ श्रीगणेश के अष्ट-भुजधारी रूप का वर्णन किया है।

सदाशिव सदा सुप्रसन्न। सकळ देव टाळ घेऊन। उभे राहती नृत्यकाळीं। १२ धिमकिटि धिमकिटि तकधा विचित्र। रागगौलता संगीतशास्त्र। नृत्यकळा देखोनि देवांचे नेत्र। पातीं हालवूं विसरले। १३ गंडस्थळींचा दिव्य आमोद। त्यावरी रुणझुणती षट्पद। सव्यभागीं देवांचे वृंद। वाम भागीं दानव पैं। १४ अष्टसिद्धि चामरें घेऊनी। वरी वारिती अनुदिनीं। शृंगी भृंगी मृदंगी दोनी। वाद्यकळा दाविती। १५ सुरासुर पाहती नृत्यकौतुक। जेथें जेथें तुटे थाक। मान तुकाविती ब्रह्मादिक। तालसंकेत देखतां। १६ हस्तसंकेत दावी गणपती। तडित्प्राय मुद्रिका झळकती। सर्व अळंकारांची दीप्ती। पाहतां भुलती शशिसूर्य। १७ ऐसा तूं महाराज गणनाथ। तुझें कोणा वर्णवे महत्त्व। आरंभिला हरिविजय ग्रंथ। पाववीं हा सिद्धीतें। १८ जैसा अर्भक छंद घेत। पिता कौतुकें लाड पुरवीत। तैसी येथें पदरचना समस्त। गजवदना पुरवीं तूं। १९ तुझें नाम घेतां गणपती। विघ्नें बारा

नित्य सुप्रसन्न हो जाते हैं। आपके नृत्य के समय समस्त देव (हाथों में) झाँझ लिये हुए खड़े रहते हैं। १२ धिमकिटि धिमकिटि तकधा के विचित्र ताल पर संगीत शास्त्र के अनुसार चलनेवाले राग के आलाप, तथा नृत्य-कला (में निपुणता) देखकर देवों के नेत्र पलकों को हिलाना भूल गये (-से जान पड़ते) हैं—अर्थात देव आपका नृत्य-गान अपलक देखते रहते हैं। १३ आपके गण्ड-स्थल से निकलनेवाली सुगन्ध दिव्य है। उस पर (मोहित होकर) भ्रमर मधुर गुंजारव करते रहते हैं। दायीं ओर देवों का समुदाय होता है, तो बायीं ओर दानव होते हैं। १४ प्रतिदिन आठों सिद्धियाँ चँवर लेकर (आपके) ऊपर झुलाती रहती हैं। शिवजी के शृंगी-भृंगी नामक दोनों गण मृदंग लेकर वाद्य-वादन कला प्रदर्शित करते हैं। १५ सुर और असुर आपकी अद्भुत नृत्य-लीला देखते रहते हैं। जहाँ-जहाँ गायन का ताल या आलाप सम पर आता है, वहाँ-वहाँ ताल सम्बन्धी संकेत को देखते ही ब्रह्मा आदि (दर्शक देव) सिर हिलाते रहते हैं। १६ जब गणेशजी हाथ से कोई संकेत करते हैं, तब (उनकी अँगुलियों में पहनी हुई) अंगूठियाँ बिजली की भाँति जगमगाती हैं। समस्त आभूषणों की तेजस्वी कान्ति को देखकर चन्द्र और सूर्य (अपनी दीप्ति को भूलकर) मोहित हो जाते हैं। १७ ऐसे हैं आप गणनाथजी ! आपकी महत्ता का वर्णन किससे हो पाएगा ? मैंने (श्री) हरि-विजय नामक ग्रन्थ का आरम्भ किया है (मैं आरम्भ करना चाहता हूँ) —आप इसे सिद्धि को प्राप्त कराइए। १८ जिस प्रकार कोई शिशु (किसी बात के लिए तीव्र अभिलाषा से) हठ करता है, तो (उसका) पिता प्रेम-पूर्वक उसे पूर्ण कर देता है, उसी प्रकार, हे गजवदन, यहाँ पद (पद्य-) रचना सम्बन्धी (मेरी) समस्त कामना को

वाटा पळती। जैसा प्रकटतां झंजामारुत। जलदजाल वितुळे पैं। २० मृगेंद्र येतो ऐकतां कानीं। मातंगा पळतां थोडी मेदिनी। कीं हरिनामघोष ऐकतां कानीं। दूरी पळती भुतें-प्रेतें। २१ कीं जागा देखोनि घरधनी। तस्कर पळती तेच क्षणीं। तैसें तुझें नाम घेतां वदनीं। विघ्नें पळती गजवदना। २२ देवा तुझें स्तवन न करवे। आकाशा गवसणी न घालवे। जलनिधि कैसा सांठवे। मुंगीचिया उदरांत। २३ पृथ्वीचें वजन न करी कोणी। मुष्टीं न माये वासरमणी। ब्रह्मांड विदारिता वायु बांधोनी। पालवीं कोणा आणवे। २४ ऐसा तूं सिद्धिविनायक। तुज दुसरा नसे नायक। तुझ्या कृपेनें सकळिक। शब्दब्रह्म आकळे। २५ आतां नमूं वागीश्वरी। परा

आप पूर्ण कीजिएगा। १९ हे गणपति, आपका नाम लेते ही विघ्न बारह बाट हो जाते हैं, जैसे झंझा के उत्पन्न हो जाने पर मेघ-जाल तितर-बितर होते हुए नष्ट हो जाता है। २० यह कानों से सुनते ही कि सिंह आ रहा है, हाथी सिर पर पाँव रखते हुए भाग जाता है, अथवा हरि-नाम का घोष कानों से सुनते ही भूत-प्रेत दूर भाग जाते हैं, अथवा गृह-स्वामी को जागृत देखकर चोर उसी क्षण भाग जाते हैं, उसी प्रकार, हे गज-वदन, मुँह से आपका नाम लेते ही विघ्न भाग जाते हैं। २१-२२ हे देव, आपका (सम्पूर्ण) स्तवन नहीं किया जा पाता। आकाश पर आवरण नहीं डाला जा पाता। चींटी के उदर में समुद्र कैसे समा पाएगा। २३ पृथ्वी के भार को कोई नहीं तोल सकता। सूर्य मुट्ठी में नहीं समा पाता। ब्रह्माण्ड को विदीर्ण कर देनेवाले वायु को किसके द्वारा दामन में बाँधकर लाया जा सकता है ? । २४ हे सिद्धि-विनायक, ऐसे ही हैं आप (असीम, अपरिमेय) ! आपके लिए (आप पर अधिकार चलानेवाला) कोई अन्य स्वामी नहीं है। आपकी कृपा से समस्त शब्द-ब्रह्म (के ज्ञान) का आकलन हो जाता है। २५

अब हम उस वागीश्वरी अर्थात वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का नमन करते हैं, जो परा, पश्चन्ती, मध्यमा और वैखरी (नामक) चारों[1] वाणियों की ईश्वरी (अधिष्ठात्री देवी) तथा कमलोद्भव ब्रह्मा[2]

---

१ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भारतीय मान्यता के अनुसार, वाक् (वाणी) की चार अवस्थाएँ या रूप माने गये हैं। 'परा' वह अवस्था है, जो नाद-स्वरूपा और मूलाधार चक्र से उत्पन्न है; जब वह मूलाधार से हृदय में पहुँचती है, तब वह 'पश्यन्ती' कहलाती है; वहाँ से आगे बढ़ने और बुद्धि से युक्त होने पर, उसका नाम 'मध्यमा होता है और जब वह कण्ठ में आकर सबके सुनने योग्य हो जाती है, तब उसे 'वैखरी' कहते हैं।

२ कमलोद्भव ब्रह्मा—पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान विष्णु की नाभि में से एक कमल उत्पन्न हुआ। उस कमल पुष्प में ब्रह्मा का निर्माण हुआ। अत: उन्हें कमलोद्भव कहते हैं।

पश्यंती मध्यमा वैखरी। चहूं वाचांची ईश्वरी। कमलोद्भवतनया जे। २६ अंबे तुझी कृपा जोडे। तरी मुकाही वेदशास्त्र पढे। तूं स्नेहें पाहसी पाषाणाकडे। तरी तो होय महामणी। २७ माते तुझेनि वरदानें। जन्मांधही पारखी रत्नें। रंक ते होती राणे। कृपेनें तुझ्या सरस्वती। २८ तूं कविमानसमंडुसरत्न। सकळ मातृकांचें निजजीवन। अंबे तुझें चातुर्य देखोन। रमा उमा लज्जित। २९ तुझें सौंदर्य देखोनि गाढें। मन्मथ होवोनि राहिलें वेडें। अष्टनायिका तुजपुढें। अधोवदन पाहती। ३० तूं बोलसी जेव्हां वागीश्वरी। दंततेजें झळके धरित्री। तेथींचे खडे निर्धारीं। पद्मराग पैं होती। ३१ अंबे तुझे जेथें उमटती चरण। तेथें लोळे वसंत येऊन। त्या सुवासा वेधून। भ्रमर तेथें रुंजती। ३२ तुझ्या आंगींच्या सुवासेंकरूनी। दाही दिशा गेल्या भरोनी। पारब्रह्मीं उठली जे ध्वनी। आदिजननी तेचि तूं। ३३ तप्तसूर्या जैसे सुरंग। तैसें जननि तुझें सर्वांग।

की कन्या है। २६ हे अम्ब, तुम्हारी कृपा की प्राप्ति कर ले, तो गूँगा भी वेद-शास्त्र का (स-स्वर) पाठ कर सकता है। यदि तुम स्नेह से पत्थर की ओर देखोगी, तो वह महामणि (महान रत्न) बन जाता है। २७ हे माता, तुम्हारे वरदान से जन्म से अन्धा मनुष्य तक रत्नों की परख कर सकता है। हे सरस्वती, जो रंक हों, वे तुम्हारी कृपा से राजा हो जाते हैं। २८ तुम कवि के मानसरूपी मंजूषा में स्थित रत्न हो; समस्त मात्राओं (अक्षरों) का अपना जीवन हो। हे अम्ब, तुम्हारे चातुर्य को देखकर (भगवान विष्णु की पत्नी) रमा और (शिवजी की स्त्री) उमा लज्जित हो जाती हैं। २९ तुम्हारे उत्तम सौन्दर्य को देखते हुए कामदेव आसक्त हो चुका है। आठों नायिकाएँ[1] तुम्हारे सामने (मारे लज्जा के) अधोमुख होकर (सिर झुकाये) देखती रहती हैं। ३० हे वागीश्वरी, जब तुम बोलती (रहती) हो, तब तुम्हारे दाँतों की कान्ति से धरती जगमगाती (रहती) है (और) वहाँ के कंकड़ निश्चय ही पद्म-राग (माणिक) बन जाते हैं। ३१ हे अम्ब, जहाँ तुम्हारे चरण अंकित हो जाते हैं, वहाँ आकर वसन्त पौढ़ जाता है। उस सुगन्ध की ओर आकर्षित होकर भौंरे वहाँ गुनगुनाते हुए मँडराते रहते हैं। ३२ तुम्हारे शरीर की सुगन्ध से दसों दिशाएँ[2] भर गयी हैं। परब्रह्म में जो ध्वनि उत्पन्न हो गयी, उसकी आदि माता ही तुम हो। ३३ हे जननी, तप्त सूर्य जैसे उत्तम रंगों से युक्त होता है, वैसे ही तुम्हारा समस्त शरीर है।

१ आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रम्भा, पूर्वचिति, स्वयम्प्रभा, भिन्नकेशी, जनवल्लभा, घृताची (तिलोत्तमा)।

२ दस दिशाएँ—(चार मुख्य दिशाएँ) पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर; (चार उपदिशाएँ) आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान्य; तथा ऊर्ध्व और अधस्।

पंकजनेत्र सुरेख चांग। अधर बिंबासारिखे। ३४ सरळ नासिका विशाळ भाळ। कर्णीं ताटंकांचा झळाळ। कीं शशि सूर्य निर्मळ। कर्णीं येऊन लागले। ३५ कर्णीं मुक्तघोंस ढाळ देती। गंडस्थळीं दिसे प्रदीप्ती। कीं नक्षत्रपुंज एकत्र स्थिती। कर्णीं लागती शारदेच्या। ३६ गळां मोतियांचे दिव्य हार। शुभ्र कंचुकी शुभ्र वस्त्र। आपादमस्तकावरी समग्र। दिव्य अलंकार झळकती। ३७ आरूढली हंसासनीं। दिव्य वीणा हातीं घेऊनी। आलाप करितां मधुर ध्वनी। सुरासुर आयकोनि तटस्थ। ३८ सुरासुर गण गंधर्व। सिद्ध चारण मुनिपुंगव। अंबे तुझ्या चरणीं भाव। धरिती सर्व आदरें। ३९ श्रीधर निजभावेंकरून। जननि तुज अनन्यशरण। माझ्या जिव्हाग्रीं राहोन। हरिविजय ग्रंथ बोलवीं। ४० गणेशसरस्वतीचें स्तवन। वदविलें जेणें दयेंकरून। तो ब्रह्मानंद श्रीगुरु पूर्ण। त्याचे चरण वंदूं आतां। ४१ तो ब्रह्मानंद पिता निश्चितीं। सावित्री तयाची शक्ती। हीं

(तुम्हारे) कमल-सदृश नेत्र सलोने सुन्दर हैं; होंठ बिम्बाफल जैसे (लाल-लाल) हैं। ३४ (तुम्हारी) नाक सीधी है; भाल (-प्रदेश) विशाल है; कानों में (पहने हुए) ताटंकों की जगमगाहट (ऐसी जान पड़ती) है, मानो निर्मल चन्द्र और सूर्य (ही) आकर कानों में लगे हुए हैं। ३५ कानों में (पहने हुए) मोतियों के गुच्छे कान्ति को प्रकट कर रहे हैं। उनकी विशिष्ट दीप्ति गण्ड-स्थलों (गालों) में यों दिखायी देती है कि मानो नक्षत्रों (तारों) के समूह एकत्रित होकर (आप देवी) शारदा (सरस्वती) के कानों में जुड़ गये हों। ३६ (तुम्हारे) गले में मोतियों के दिव्य हार (पहने हुए) हैं। (तुम) शुभ्र कंचुकी और शुभ्र वस्त्र (साड़ी) पहने हुए हो। तुम्हारे पाँवों से मस्तक तक समस्त (शरीर पर) दिव्य आभूषण जगमगा रहे हैं। ३७ तुम हंसरूपी आसन पर आरूढ़ हुई हो। हाथों में दिव्य वीणा को लिये हुए जब तुम मधुर ध्वनियों में आलाप लेती हो, तो सुर और असुर उसे सुनते हुए स्तब्ध, चकित हो जाते हैं। ३८ हे अम्ब, सुर और असुर गण, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, श्रेष्ठ मुनि सब तुम्हारे चरणों के प्रति (भक्ति) भाव धारण करते हैं (किये हुए हैं)। ३९ हे जननी, यह श्रीधर, अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में आया हुआ है। मेरी जिह्वा की नोक पर विराजमान रहते हुए (मेरे द्वारा इस श्री) हरिविजय (नामक) ग्रन्थ का कथन करवाइए। ४०

जिन्होंने दया से (मुझ पर दया करते हुए मेरे द्वारा इस प्रकार) गणेशजी और सरस्वती का स्तवन करवा लिया, वे मेरे पूर्ण श्रीगुरु ब्रह्मानन्दजी हैं। अब हम उनके चरणों का वन्दन करते हैं। ४१ वे ब्रह्मानन्दजो निश्चय ही मेरे पिता हैं। सावित्री (मेरी माता) उनकी

तों आदिपुरुष मूळप्रकृती। माता पिता वंदिलीं। ४२ ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम करून। वानप्रस्थही आचरून। संन्यासदीक्षा घेऊन। त्रिविध आश्रम त्यागिले। ४३ पंढरीये भीमातटीं। समाधिस्थ वाळवंटीं। पूर्णज्ञानी जैसा धूर्जटी। तापसियांमाजी श्रेष्ठ। ४४ ज्यासी बाळपणापासून। परनारी मातेसमान। परद्रव्य पाहे जैसें वमन। आनंदघनस्वरूप पैं। ४५ कामादिक षड्वैरी। जेणें लोटोनि घातले बाहेरी। ज्याच्या कृपावलोकनें निर्धारीं। ज्ञान होय प्राणियां। ४६ जें निस्सीम वेदांतज्ञान। तें ज्यास करतलामलक पूर्ण। वंदिले तयाचे चरण। ग्रंथारंभीं आदरें। ४७ गुरुपद सर्वांत श्रेष्ठ। त्याहून नाहीं कोणी वरिष्ठ। कल्पवृक्ष म्हणावा विशिष्ट। तरी कल्पिलें पुरवी तो। ४८ मातापितयांसमान। जरी म्हणावा सद्गुरु पूर्ण। ती

शक्ति है। ये तो दोनों (वस्तुतः) आदि पुरुष और मूल प्रकृति हैं। मैंने (ऐसे) उन माता-पिता का वन्दन किया है (मैं वन्दन करता हूँ)। ४२ मेरे पिता ब्रह्मानन्दजी ने ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम सम्पन्न करके और (तदनन्तर) वानप्रस्थ (आश्रम) का भी आचरण करने के पश्चात संन्यास (आश्रम) की दीक्षा ग्रहण करते हुए (उपर्युक्त) तीनों प्रकार के आश्रम[1] त्यज दिये। ४३ वे पण्ढरपुर नगर में भीमा नदी के तट पर कछार में समाधिस्थ हो गये। वे तपस्वियों में शिवजी जैसे श्रेष्ठ थे। ४४ जिनके लिए बचपन से पर-स्त्री माता के समान (प्रतीत हो जाती) थी, जो पर-धन को वमन जैसे देखते (अर्थात समझते) थे, वे (मेरे पिता ब्रह्मानन्दजी) आनन्द-घन-स्वरूप थे। ४५ जिन्होंने काम आदि छः शत्रुओं को[2] (अपने मन से) धकेलकर बाहर निकाल दिया, ऐसे उन (गुरु ब्रह्मानन्दजी) के कृपापूर्वक देखने से प्राणियों को निश्चय ही (आत्म-) ज्ञान हो जाता था। ४६ जो असीम वेदान्त ज्ञान है, वह उनके लिए पूर्णतः कर-तलामलक (हाथ पर रखे हुए आँवले) के समान (पूर्णतः स्पष्ट) हो गया था। उन (पिता तथा गुरुदेव) ब्रह्मानन्द के चरणों का मैंने ग्रन्थारम्भ में आदर-सहित वन्दन किया है। ४७ गुरु-पद (गुरु का स्थान) सब में श्रेष्ठ होता है। उनसे कोई भी वरिष्ठ नहीं होता। (गुरु को) विशिष्ट (गुणों से युक्त महान) कल्पवृक्ष कहें, तो वह (कल्पवृक्ष) तो वही पूर्ण कर देता है, जिसकी कामना की जाए। (इस दृष्टि से कल्पवृक्ष गुरु से हीन सिद्ध हो जाता है।)। ४८ यदि सद्गुरु को माता-पिता के समान कह दें, तो वह उपमा यहाँ गौण

---

१ आश्रम— (प्रथम तीन—) ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम; और (चतुर्थ) संन्यासाश्रम। कुल चार।

२ षड्वैरी (षड्रिपु)—काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ और मोह (नामक छः विकार साधना के पथ पर शत्रु माने जाते हैं।)

उपमा येथें गौण। न घडे जाण सर्वथा। ४९ ज्या ज्या जन्मा जाय प्राणी। तेथें मायबापें असती दोनी। परी सद्‌गुरु कैवल्यदानी। तो दुर्लभ सर्वदा। ५० जरी अनंत पुण्यांच्या राशी। तरीच भेटी सद्‌गुरूसी। नाहीं तरी व्यर्थ नरदेहासी। येऊनि सार्थक काय केलें। ५१ श्रीगुरुवांचोनि होय ज्ञान। हें काळत्रयीं न घडे पूर्ण। आत्मज्ञानावांचून। सुटका नव्हे कल्पांतीं। ५२ श्रीरामावतार परिपूर्ण। तोही धरी वसिष्ठाचे चरण। श्रीकृष्ण ब्रह्म सनातन। अनन्यशरण सांदीपना। ५३ व्यास नारदासी शरण रिघे। इंद्र बृहस्पतीच्या पायां लागे। उमा शिवासी शरण रिघे।

(न्यून सिद्ध) हो जाती है—(अतः) समझिए कि वह (यहाँ) बिलकुल (उचित) घटित नहीं हो पाती। ४९ प्राणी जिस-जिसके रूप में जन्म ग्रहण करे, वहाँ (उस-उस जन्म में) माता-पिता दोनों होते हैं। परन्तु वह कैवल्य-दाता (मुक्ति-दाता) सद्‌गुरु नित्यप्रति दुर्लभ (ही) होता है। ५० यदि (किसी के साथ उसके अपने किये हुए) अनन्त पुण्यों की राशि (साथ में) हो, तो ही सद्‌गुरु से (उसकी) भेंट हो जाती है। नहीं तो व्यर्थ नर-देह को प्राप्त होकर उसने (अपने जीवन को) क्या सफल बनाया (उसका जन्म ग्रहण करना कैसे चरितार्थ हुआ)? । ५१ यह तो तीनों कालों[1] में बिलकुल घटित नहीं होगा कि (किसी को) बिना सद्‌गुरु के (प्रदान किये) ज्ञान प्राप्त हो जाए। बिना आत्म-ज्ञान के (किसी की) कल्पान्त (तक) में (भी) मुक्ति नहीं हो सकती। ५२ श्रीराम को परिपूर्ण अवतार माना जाता है; (फिर भी) उन्होंने भी (ज्ञानार्जन के लिए गुरु) वसिष्ठ के पाँव पकड़ लिये थे।[2] श्रीकृष्ण सनातन ब्रह्म (समझे जाते) हैं; (फिर भी) वे (गुरु) सान्दीपनी की शरण में अनन्य भाव से (रह) गये।[3] । ५३ (आत्मज्ञान-प्राप्ति के लिए) व्यास, नारद की शरण में गये; इन्द्र, बृहस्पति के पाँव लग

१ तीन काल— भूत, वर्तमान, भविष्य।

२ राम-वसिष्ठ— वसिष्ठ स्वायम्भुव मन्वन्तर में उत्पन्न ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक थे। अपनी तपस्या के बल से इन्होंने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया। ये सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी थे। ये दशरथ राजा के पुरोहित तथा राम आदि के गुरु थे। रामायण के अनुसार, यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् श्रीराम अपने भाइयों सहित विद्यार्जन के लिए गुरु वसिष्ठ के आश्रम में जाकर रह गये। 'योगवासिष्ठ' के अनुसार भ्रम में उलझे हुए राम को गुरु वसिष्ठ ने उचित शिक्षा देकर आत्मज्ञान का लाभ करा दिया।

३ श्रीकृष्ण-सान्दीपनी— सान्दीपनी अवन्ती नगरी में रहनेवाले कश्यप-कुलोत्पन्न ब्राह्मण थे। कृष्ण और बलराम उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरु सान्दीपनी के आश्रम में विद्यार्जन के लिए रह गये थे। कहते हैं, कृष्ण ने अपने गुरु से वेदशास्त्र, धनुर्वेद, राजनीति आदि की शिक्षा प्राप्त की।

आत्मज्ञानप्राप्तीसी । ५४ शुक नारद प्रल्हाद । वाल्मीक वसिष्ठादि ऋषिवृंद । इतुकेही गुरुपद कमळींचा आमोद । भ्रमर होऊनि सेविती । ५५ उद्धव अर्जुनादिक भक्त । गुरुभजनीं रतले समस्त । अपरोक्षज्ञान प्राप्त । सद्गुरूवांचूनि न घडे । ५६ दुग्धींच नवनीत असे । हें आबालवृद्ध जाणतसे । परी मंथनाविण कैसें । हातीं सांपडे सांग पां । ५७ उगेंचि दुग्ध घुसळिलें । अवघा वेळ जरी शोधिलें । परी तें हातवटीवेगळें । नवनीत न सांपडे । ५८ जेथें जेथें प्राणी बैसत । तेथें तेथें निधानें असती बहुत । परी अंजन नेत्रीं न घालितां सत्य । न

गये ।[1] आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उमा, शिवजी के शरण में गयीं । ५४ शुक[2], नारद, प्रह्लाद, वाल्मीकि, वसिष्ठ आदि ऋषि-वृन्द—सभी गुरु के चरणरूपी कमलों की सुगन्ध का सेवन भ्रमर होकर करते थे । ५५ उद्धव,[3] अर्जुन आदि समस्त भक्त, गुरु की भक्ति में रत हो गये थे । बिना सद्गुरु के (किसी को भी साक्षात्कार-पूर्वक) आत्मज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता । ५६ बच्चे से लेकर बूढ़े तक प्रत्येक यह जानता है कि दूध में मक्खन रहता है । फिर भी यह तो कहिए कि बिना मन्थन के वह हाथ कैसे आ पाएगा । ५७ यों-ही दूध को मथ दिया, सब समय यद्यपि खोज लिया, तो भी वह मक्खन बिना कौशल के नहीं मिल सकता । ५८ जहाँ-जहाँ प्राणी निवास करते हैं, वहाँ-वहाँ बहुत गुप्त निधियाँ होती हैं; फिर भी बिना आँखों में अंजन डाले, खोदने पर भी वे

---

१ इन्द्र-बृहस्पति—बृहस्पति देवों के गुरु, आचार्य और पुरोहित थे । वे बुद्धि, युद्ध, यज्ञ, वाक्पटुता के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं । इन्द्र को उन्होंने अनेक प्रकार की शिक्षा दी और दैत्यों की पराजय करने में सहायता की । बृहस्पति गुरु, वाचस्पति, आंगिरस आदि नामों से भी विख्यात हैं ।

२ शुक—महर्षि व्यास के पुत्र शुक परम वैराग्यशील और ज्ञानी थे । उनके लौकिक गुरु बृहस्पति थे, जिनसे उन्हें वेद आदि का ज्ञान प्राप्त हुआ । स्वयं व्यास ने उन्हें इतिहास, राजनीति आदि की शिक्षा प्रदान की । व्यास से ही उन्हें श्रीमद्-भागवत पुराण की उपलब्धि हुई, जिसे आगे चलकर उन्होंने राजा परीक्षित को सुनाया।

नारद—महर्षि नारद ने समस्त विद्याएँ बृहस्पति से प्राप्त की थीं; तथापि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्हें सनत्कुमार की शरण में जाना पड़ा ।

प्रह्लाद—एक पौराणिक मान्यता के अनुसार नारद ने प्रह्लाद की माता कयाधू को ज्ञानोपदेश दिया, जो गर्भस्थ प्रह्लाद ने सुना । इससे वे जन्म से ही ज्ञानी थे । आगे चलकर हिरण्यकशिपु के वध करने के पश्चात् भगवान विष्णु ने प्रह्लाद को ज्ञानोपदेश दिया ।

३ उद्धव—देवभाग और कंसा के पुत्र उद्धव ने बृहस्पति से नीतिशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की । कृष्ण से उन्होंने आत्मानात्म विवेक की प्राप्ति की ।

अर्जुन ने गुरु द्रोण के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त की ।

सांपडती खणितांही। ५९ नेत्र उत्तम सतेजपणीं। परी नुगवतां वासरमणी। जवळी पदार्थ असोनी। न दिसे नयनीं प्राणियां। ६० तैसें सद्गुरूसी शरण न रिघतां। अपरोक्षज्ञान न लागे हाता। यालागीं ब्रह्मानंदासी तत्त्वतां। शरण अनन्य मी असें। ६१ श्रीगुरुराया तूं समर्थ। हा हरिविजय आरंभिला ग्रंथ। शेवटासी पावो यथार्थ। तुझ्या वरेंकरूनियां। ६२ तूं मेघ वर्षसी दयाळ। तरीच हें ग्रंथरोप वाढेल। साधकचातक तृप्त होतील। भक्तीची ओल बहु होय। ६३ माता करी प्रतिपाळ। तों तों वाढों लागे बाळ। तुझ्या कृपेविण बोल। न बोलवे सर्वथा। ६४ जोंवरी नाहीं वाजविता। तों पांवा न वाजे सर्वथा। सूत्रधार न हालवितां। काष्ठपुतळा नाचेना। ६५ ऐसें ऐकोनि श्रीगुरुनाथ। म्हणे सिद्धी पावेल सकळ ग्रंथ। आतां वंदूं श्रोते संत। जे कृपावंत सर्वदा। ६६ जे चातुर्यार्णवींचीं रत्नें। कीं शांतिभूमीचीं निधानें। कीं भक्तिवनींचीं सुमनें। विकासलीं साजिरीं। ६७ कीं ते वैराग्यअंबरीचे दिनकर। कीं अक्षय विज्ञानानंदचंद्र। कीं अपरोक्षज्ञान-

---

सचमुच नहीं मिल जातीं। ५९ तेजस्विता में नेत्र तो उत्तम हैं, फिर सूर्य के उदित न होते हुए, प्राणियों को पास होने पर भी कोई पदार्थ उन आँखों से नहीं दिखायी देता। ६० उसी प्रकार, सद्गुरु की शरण में न जाने पर (साक्षात्कार-पूर्वक) आत्म-ज्ञान (किसी के भी) हाथ नहीं आता। इसलिए, मैं (गुरु) ब्रह्मानन्द की शरण में सचमुच अनन्य भाव से गया हुआ हूँ। ६१ हे गुरु-राज, आप समर्थ हैं। मैंने (श्री) हरि-विजय नामक ग्रन्थ आरम्भ किया है। आपके वर से यह यथार्थ रूप से समाप्ति को प्राप्त हो जाए। ६२ हे दयालु, मेघ-स्वरूप आप (यदि) बरस जाएँ, तो ही ग्रन्थरूपी यह पौधा बढ़ जाएगा। साधक रूपी चातक तृप्त हो जाएँगे। भक्ति की आर्द्रता बहुत होती है। ६३ (जैसे-जैसे) माता प्रतिपालन करती जाती है, वैसे-वैसे बालक पलता-बढ़ता जाता है। बिना आपकी कृपा के, (मुझसे एकाध भी) वचन नहीं बोला जाता। ६४ जब तक कोई बजानेवाला न हो, तब तक मुरली (अकेली अपने आप) नहीं बजती। सूत्रधार द्वारा न हिलाये जाने पर कठपुतला नहीं नाच सकता। ६५ ऐसा सुनकर श्री गुरुनाथ ने कहा, "(तुम्हारा) समस्त ग्रन्थ सिद्धि को प्राप्त हो जाएगा"। ६५½

अब उन श्रोता सन्तों का वन्दन करें, जो नित्य कृपावान (बने रहते) हैं; जो चातुर्य-सागर के रत्न हैं, अथवा जो शान्ति-स्वरूपा भूमि के (अन्दर स्थित) निधान हैं, अथवा (जिनके रूप में) भक्ति-वन के सुन्दर फूल विकसित हो गये हैं। ६५½-६७ अथवा वे (श्रोता सन्त जन) वैराग्यरूपी आकाश के सूर्य हैं, अथवा विज्ञान (आत्मानुभव ज्ञान) के आनन्दरूपी अक्षय चन्द्र हैं, अथवा अक्षय (विज्ञान, अनुभव ज्ञान) के

समुद्र। न लागे अंत कोणातें। ६८ कीं ते प्रेमगंगेचे ओघ। कीं ते स्वानंद-सुखाचे मेघ। अखंड धारा अमोघ। वर्षती मुमुक्षुचातकां। ६९ कीं ते श्रवणामृताचे कुंभ। कीं ते कीर्तनाचे अचल स्वयंभ। कीं ते स्मरणाचे सुप्रभ। ध्वजचि पूर्ण उभारले। ७० कीं ते हरिपदपद्मींचे भ्रमर। कीं विवेक-मेरूचीं शृंगें सुंदर। कीं ते क्षमेचें तरुवर। चिदाकाशीं उंचावले। ७१ कीं ते मननजळींचे मीन। कीं ते भवगजावरी पंचानन। कीं परमार्थाचीं सदनें पूर्ण। निर्मळ शीतळ सर्वदा। ७२ कीं ते दयेचें भांडार। कीं उपरतीचें माहेर। कीं कीर्तीचीं जहाजें थोर। भक्तिशीड फडके वरी। ७३ कीं ते परलोकींचे सोयरे सखे। कीं ते अंतकाळींचे पाठिराखे। वैकुंठनाथ ज्यांचे भाके। गुंतोनि तिष्ठे त्यांपाशीं। ७४ ऐसे ते महाराज संत। जे सकळांवरी कृपावंत। जे दीनवत्सल भेदरहित। आपपर नेणती जे। ७५ देवांसमान म्हणावे संत। हे गोष्टीच असंमत। देव जैसी भक्ति देखती सत्य। होती तैसे प्रसन्न। ७६ जे सेवा करिती बहुत। त्यांस उत्तम फळ देत। जे भजन

ऐसे सागर हैं, जिसका अन्त किसी को भी नहीं समझ में आ पाता। ६८ अथवा वे प्रेम-गंगा के ओघ हैं, अथवा स्वानन्द-सुख के मेघ हैं, जो मुमुक्षु रूपी चातकों के लिए अखण्ड, अमोघ धाराएँ बरसाते रहते हैं। ६९ अथवा वे श्रवणरूपी अमृत के कुम्भ हैं, अथवा वे कीर्तन के स्वयम्भू पर्वत हैं, अथवा वे स्मरण के तेजस्वी परिपूर्ण ध्वज ही उभारे हुए (फहराये हुए) हैं। ७० अथवा वे श्रीहरि के चरण-कमलों के अर्थात् चरण-कमलों पर लुब्ध भ्रमर हैं, अथवा विवेकरूपी मेरु के सुन्दर शिखर हैं, अथवा वे क्षमारूपी बड़े-बड़े पेड़ हैं, जो चिदाकाश में ऊँचाई को प्राप्त हुए हैं। ७१ अथवा वे मननरूपी जल में रहनेवाले मीन हैं, अथवा संसाररूपी हाथी पर (विजय प्राप्त करनेवाले) सिंह हैं, अथवा परमार्थ के सदा पूर्ण निर्मल तथा शीतल रहनेवाले सदन हैं। ७२ अथवा वे दया के भण्डार हैं, अथवा उपरति (विरक्ति) का मायका है, अथवा कीर्ति के बड़े (-बड़े)) जहाज़ हैं, जिन पर भक्तिरूपी पाल फहर रहा है। ७३ अथवा वे (साधकों के लिए) परलोक के सगे-सम्बन्धी और मित्र हैं, अथवा वे अन्तकाल के रक्षक हैं, जिनके वचन में उलझकर वैकुण्ठनाथ भगवान विष्णु (स्वयं) उनके पास खड़े रहते हैं। ७४ ऐसे हैं वे महाराज सन्त, जो सब के प्रति कृपावान होते हैं, जो दीनों के प्रति वत्सल होते हैं, जो भेद-भाव रहित होते हैं, (अर्थात) जो आप-पर-भेदभाव को नहीं जानते। ७५ सन्त देवों के समान कहे जाएँ—(फिर भी) यह बात तो अनुचित है, क्योंकि देव जैसी भक्ति देखते हैं, सचमुच वैसे ही प्रसन्न होते हैं। ७६ जो उनकी बहुत सेवा करते हैं, उन्हें वे उत्तम फल प्रदान करते हैं। जो सचमुच भजन (भक्ति)

न करिती यथार्थ। त्यांवरी देव कोपती। ७७ त्यांस दरिद्र आणोनी। प्राणियांसी पाडिती अधःपतनीं। तैसी नव्हे संतांची करणी। समसमान सर्वांतें। ७८ सर्वांवरी दया समान। एक उत्तम एक हीन। हें न देखतीच संत पूर्ण। जन वन समान तयांसी। ७९ एकाचें करावें कल्याण। न भजे त्यांचें अकल्याण। देवांचें कर्तृत्व पूर्ण। संत समान सर्वांतें। ८० जैसा कायेचा विस्तार होतसे। तैसी तैसी छाया दिसे। आपण बैसतां छाया बैसे। उठतां उभी ती होय। ८१ जैसी काया तैसी छाया। याच प्रकारें देवांची क्रिया। तैसी नव्हे संतांची चर्या। समसमान सर्वांसी। ८२ वरकड जनां-समान संत। ऐसी बोलतांचि मात। तो पावेल अधःपात। दुष्टबुद्धि दुरात्मा। ८३ समुद्र आणि सौंदणी। तारागण आणि वासरमणी। कांचोटी आणि महामणी। मेरु मशक सम नव्हे। ८४ थिल्लर आणि गोदावरी। राजा आणि दरिद्री। योगी आणि दुराचारी। कैसे समान होती पैं। ८५ कस्तुरी आणि कोळसा। केसरी आणि म्हैसा। मनुष्य आणि महेशा। कैसी साम्यता होईल। ८६ सुपर्ण आणि वायस। पाषाण आणि

नहीं करते उन पर देव क्रुद्ध हो जाते हैं। ७७ वे उन प्राणियों के लिए दरिद्रता लाते हुए उन्हें अधःपतन को प्राप्त कराते हैं, अर्थात् नरक में गिरा देते हैं। (परन्तु) सन्तों की करनी ऐसी नहीं होती। वे तो सब के साथ सम-समान होते हैं। ७८ उनकी दया सब पर समान होती है। सन्त यह बिलकुल नहीं देखते कि कोई एक उत्तम है, तो (दूसरा कोई) एक हीन है। उनके लिए जन और वन समान होते हैं। ७९ किसी एक का कल्याण करें, तो जो भक्ति नहीं करता, उसका अकल्याण करें—देवों का पूर्ण कृतित्व यही है। (परन्तु) सन्त सबके प्रति समान होते हैं। ८० शरीर का जैसा-जैसा विस्तार होता है, उसकी छाया वैसी-वैसी दिखायी देती है। हमारे बैठते ही छाया (भी) बैठती है, हमारे उठते ही वह भी खड़ी हो जाती है। ८१ जैसी काया होती है, वैसी (उसकी) छाया होती है। इसी प्रकार देवों का कार्य होता है। परन्तु सन्तों की चर्या (-रीति) वैसी नहीं है। वे तो सबके प्रति सम-समान होते हैं। ८२ सन्त अन्य जनों के समान होते हैं—ऐसी बात बोलते ही वह (बोलनेवाला) दुष्ट-बुद्धि, दुरात्मा अधःपात को प्राप्त हो जाएगा। ८३ समुद्र और सरोवर, तारा-गण और सूर्य, काँच (का टुकड़ा) और महान (अनमोल) रत्न, मेरु और मच्छड़ समान नहीं हैं। ८४ (पानी का) गड्ढा और गोदावरी नदी, राजा और दरिद्र, योगी और दुराचारी (एक-दूसरे के) समान कैसे हो सकते हैं? । ८५ कस्तूरी और कोयला, सिंह और भैंसा, मनुष्य और महेश (शिवजी) की (परस्पर) समानता किस प्रकार हो सकती है? । ८६ गरुड़ और

परीस। बाभळ आणि सुतरूस। समानत्व कदा नव्हेचि। ८७ तैसे संत आणि इतर जन। जे लेखिती समसमान। ते नरदेहासी येऊन। पशू जैसे मूढ पैं। ८८ असो ऐसा संतांचा महिमा। वर्णू न शकती शिव ब्रह्मा। संत-संगाच्या सुखाची सीमा। न करवेचि कवणातें। ८९ ते संत महाराज सज्जन। ग्रंथारंभीं तयांसी नमन। श्रीवेदव्यास जगद्भूषण। सत्यवतीसुत पैं। ९० ज्याचिया मुखकमळापासून। चिद्रस द्रवला परिपूर्ण। त्या वाङ्मय अमृतेंकरून। त्रिजग जाण धालें हो। ९१ कीं एकमुखाचा ब्रह्मदेव। कीं साक्षात् द्विबाहु रमाधव। कीं भाललोचन शिव। स्वयमेव अवतरला। ९२ तो महाराज कृष्णद्वैपायन। अवतरला लोकहितालागून। सदा निगमकमल-विकास पूर्ण। व्यास चंडांशु देखतां। ९३ जो वसिष्ठाचा पणतू होय। शक्तीचा पुत्र निःसंशय। त्या पराशरसुताचें पाहें। महत्त्व कोणा वर्णवे। ९४

कौआ, पाषाण और पारस, बबूल और कल्पवृक्ष में कभी भी समानता नहीं हो सकती। ८७ उसी प्रकार, सन्तों और अन्य जनों को जो सम-समान मानते हैं, वे नर-देह को प्राप्त होने पर भी पशु जैसे मूढ़ हैं। ८८

अस्तु। सन्तों की ऐसी महिमा है। शिव जी, ब्रह्मा (तक) उसका वर्णन नहीं कर पाते। सन्तों की संगति के सुख की सीमा (बराबरी) किसी द्वारा भी नहीं की जा पाएगी। ८९ वे सन्त सज्जन महाराज (ऐसे) हैं। मैं ग्रन्थ के आरम्भ में उनका नमन कर रहा हूँ। उनमें (सर्व-प्रथम) जगद्भूषण सत्यवती-सुत श्रीवेदव्यासजी हैं,[1] जिनके मुख-कमल से चिद्रस (ब्रह्म-ज्ञान रूपी रस) परिपूर्ण रूप से द्रवित हो गया और उस वाङ्मयरूपी अमृत से, समझिए कि तीनों जगत तृप्त हो गये। ९०-९१ अथवा वे (व्यासजी मानो) एक-मुख-धारी ब्रह्मा हैं; अथवा वे प्रत्यक्ष द्विभुजधारी रमापति (भगवान विष्णु) हैं; अथवा (उनके रूप में) भाल-लोचन शिवजी स्वयं अवतरित हो गये हैं। ९२ वे कृष्ण द्वैपायन व्यासजी लोकहित के लिए अवतरित हो गये। (तब से मानो) व्यासरूपी सूर्य को देखते ही वेदरूपी कमलों का सदा (के लिए) पूर्ण विकास हो गया। ९३ देखिए, वसिष्ठ के जो प्रपौत्र

१ (श्री वेद) व्यास—व्यास महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र थे। यमुना नदी के द्वीप में उनका जन्म हुआ, इसलिए उन्हें 'द्वैपायन' कहते हैं। माता सत्यवती का नाम काली भी था, इससे उन्हें 'कृष्ण द्वैपायन' भी कहते हैं। उन्होंने वैदिक संहिताओं का विभाजन और सम्पादन किया, अतः उन्हें 'वेदव्यास' कहते हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार, व्यास महाभारत और पुराणों के रचयिता माने जाते हैं।

ऐसा तो शुकतात पूर्ण। सत्यवतींचें हृदयरत्न। त्या जगद्गुरूचे चरण। प्रेमभावें वंदिले। ९५ नमूं तो वाल्मीक आतां। जो शतकोटिग्रंथकर्ता। जो नारदकृपेनें तत्त्वतां। श्रीरामकथा बोलिला। ९६ ज्याच्या गोत्रीं जन्मलों स्पष्ट। नमूं तो स्वामी श्रीवसिष्ठ। ज्ञान ज्याचें अतिवरिष्ठ। शांतिक्षमेचा सागरु जो। ९७ दर्भावरी जेणें पृथ्वी धरिली। रविसमान ज्याची शाटी मिरवली। कमंडलु ठेवूनि भूमंडळीं। कुंभोद्भव नेला साक्षीतें। ९८ ही कथा सांगावी समस्त। तरी विशेष वाढेल ग्रंथ। ऐसा तो वसिष्ठमुनि समर्थ। नसे अंत ज्ञाना ज्याच्या। ९९ जेणें उपदेशिला रघुनाथ। तो बृहद्वासिष्ठ श्रेष्ठ ग्रंथ। छत्तीस सहस्र श्लोक निश्चित। वाल्मीकमुनिकृत

(परपोते) हैं,[1] निःसन्देह ही (वसिष्ठ के पुत्र) शक्ति (ऋषि) के जो पुत्र हैं, ऐसे उन पराशर-सुत व्यासजी की महिमा का किसके द्वारा वर्णन किया जा सकता है ? । ९४ शुक के पिता ऐसे उन व्यासजी के, सत्यवती के हृदय-रत्न व्यासजी के, उन जगद्गुरु व्यासजी के चरणों का मैंने प्रेम-भाव से वन्दन किया है। ९५ अब उन वाल्मीकि ऋषि को मैं नमस्कार करता हूँ, जो शत कोटि (रामायण) ग्रन्थों के कर्ता हैं और जिन्होंने वस्तुतः नारद मुनि की कृपा से श्रीराम की कथा कही थी[2]। ९६ जिनके गोत्र में मैं स्पष्ट रूप से जन्म को प्राप्त हो गया हूँ, जिनका ज्ञान अति वरिष्ठ है, जो क्षमा और शान्ति के (मानो) सागर थे, जिन्होंने पृथ्वी को दर्भ पर रख दिया था, जिनकी कफनी सूय के समान शोभायमान बनी रही, और जो कमण्डलु भू-मण्डल पर रखकर, कुम्भोद्भव अगस्त्यजी को साक्ष्य के लिए ले गये, ऐसे (अपने) उन कुल-स्वामी श्री वसिष्ठ को मैं (अब) नमस्कार करता हूँ। ९७-९८ यदि यह कथा समस्त कह दें, तो यह ग्रन्थ विशेष रूप से (बहुत बढ़ जाएगा। (संक्षेप में) ऐसे हैं वे समर्थ वसिष्ठ मुनि, जिनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। ९९ जिन्होंने राघुनाथ राम को उपदेश दिया, उनका बृहद्

---

१ व्यास-वसिष्ठ के प्रपौत्र—वसिष्ठ ऋषि के शक्ति नामक एक पुत्र थे, जिन्हें विश्वामित्र के पक्षपातियों ने अग्नि में झोंककर मार डाला। उस समय शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती गर्भवती थी। पराशर उसी के पुत्र थे; उनका लालन-पालन वसिष्ठ ने अपने पुत्र की भाँति किया। व्यास वसिष्ठ के पौत्र पराशर के पुत्र थे—अर्थात् वसिष्ठ के प्रपौत्र थे।

२ वाल्मीकि को रामकथा की प्राप्ति—वाल्मीकि रामायण के विषय में एक मान्यता है कि एक समय वाल्मीकि के यहाँ नारद मुनि का आगमन हुआ। तब उन्होंने उनका पूजन करके पृच्छा की—इस समय भू-तल पर धर्मज्ञ आदर्श राजा कौन है। तब नारद ने राम का परिचय देते हुए 'रामकथा' का परिचय दिया।

पैं। १०० जो सूर्यवंशाचा आदिगुरु। जो ऋषींमाजी महामेरु। ज्याचें कुळीं व्यासमुनीश्वरु। रमानाथचि अवतरला। १०१ त्याच्या उदरीं चिद्रत्न। जन्मला शुक गुणनिधान। तेणें भागवताचें श्रवण। परीक्षितीसी जाण करविलें। २ नमूं तो स्वामी शुक। जेणें जिंकिले अरि कामादिक। ज्याचें तपस्तेज अधिक। तमांतक दूसरा। ३ शुक असतां शुद्धवनीं। छळूं आली रंभेची भगिनी। ती निस्तेज होऊनि ते क्षणीं। गेली लाजोनि स्वर्गातें। ४ ज्याच्या मुखीं श्रीभागवत। प्रकटला दिव्य ग्रंथ। जेणें उद्धरिला

(योग-) वासिष्ठ[1] (नामक) श्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसमें वाल्मीकि मुनि द्वारा विरचित निश्चित रूप से छत्तीस सहस्र श्लोक (छन्द) हैं। १०० जो (वसिष्ठ ऋषि) सूर्यवंश के आदि-गुरु हैं, जो ऋषियों में महामेरु (पर्वत जैसे सर्वोच्च) हैं उनके कुल में मुनीश्वर व्यास के रूप में रमा-नाथ (भगवान विष्णु) ही अवतरित हैं। १०१ उनके उदर से चिद्रत्न, गुण-निधान शुकजी का जन्म हुआ। उन्होंने (शुकजी ने), समझिए कि (श्रीमद्) भागवत (पुराण) का परिक्षित राजा को श्रवण कराया।१०२ मैं उन स्वामी शुक को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने काम आदि (विकाररूपी) शत्रुओं को जीत लिया और जिनके तप का तेज (इतना) अधिक था (कि मानो) वे दूसरे सूर्य ही थे। १०३ शुक के शुद्ध वन में रहते हुए रम्भा की भगिनी उन्हें धोखा देने आ गयी थी; (परन्तु) वह उस क्षण निस्तेज होकर लज्जित होते हुए स्वर्ग चली गयी। १०४ उनके मुख से श्रीमद्भागवत नामक दिव्य ग्रन्थ प्रकट हो गया। उन्होंने भागवत धर्म कहते हुए (भागवत धर्म का उपदेश देते हुए) अभिमन्यु और उत्तरा के पुत्र (परिक्षित)[2] का

१ बृहद् योगवासिष्ठ—कहते हैं कि विद्यार्जन के पश्चात् श्रीराम अपने बन्धुओं सहित तीर्थ-क्षेत्रों की यात्रा करने गये। उसे पूर्ण करके अयोध्या में लौटने पर श्रीराम उदास रहने लगे। जब विश्वामित्र ने दशरथ से यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम को भेजने की विनती की, तब राम ने जीवन और जगत के विषय में अनेक शंकाएँ प्रस्तुत कीं। उन्हें सुनकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से विनती की कि वे राम की शंकाओं का उचित ज्ञानोपदेश देते हुए समाधान कर। फलस्वरूप, वसिष्ठ ने राम को उपदेश दिया। यह प्रसंग 'बृहद् योगवासिष्ठ' नामक बृहद् ग्रन्थ में वर्णित है, जिसका प्रणयन वाल्मीकि ने किया है। इस ग्रन्थ में वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण नामक छः प्रकरण हैं।

२ परीक्षित—अर्जुन के पौत्र तथा अभिमन्यु-उत्तरा के पुत्र परीक्षित ने एक बार कलि के प्रभाव में आकर शमीक नामक ऋषि के गले में मृत सर्प डाल दिया; तब उनके पुत्र ने उसे शाप दिया–आज से सातवें दिन तक्षक नामक सर्प द्वारा काटने पर तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। इससे परीक्षित पहले तो बहुत भयभीत हो गया और अपनी रक्षा के लिए हर तरह से यत्न करता रहा। अन्त में शुक ने उन्हें सात दिन तक श्रीमद्भागवत का श्रवण कराया। फलतः वह ज्ञान को प्राप्त हो गया और सातवें दिन तक्षक द्वारा काट देने पर स्वर्ग चला गया।

अभिमन्युसुत। भागवतधर्म सांगोनियां। ५ बहु पुराणें बहु ग्रंथ। त्यांत मुकुटरत्न भागवत। जैसा सकळांत मुख्य वैकुंठनाथ। तैसाचि ग्रंथ पूज्य हा। ६ जैसा देवांमाजी सहस्त्रनयन। कीं द्विजांमाजी सुपर्ण। कीं तारा-गणांमाजी अत्रिनंदन। तैसें जाण भागवत। ७ भोगियांमाजी धरणीधर। कीं तपियांत श्रेष्ठ पिनाकधर। कीं नवग्रहांमाजी दिनकर। श्रेष्ठ जैसा विराजे। ८ कीं हरींमाजी हनुमंत। कीं बोलक्यांमाजी अंगिरासुत। कीं शास्त्रांमाजी वेदांत। मुख्य जैसें मान्य पैं। ९ आश्रमांत चतुर्थाश्रम पूर्ण। कीं क्षेत्रांमाजी आनंदवन। कीं शास्त्रांमाजी सुदर्शन। तैसें जाण भागवत। ११० कीं वनचरांमाजी हरि थोर। कीं धनुर्धरांमाजी रघुवीर। कीं धातूंमाजी शातकुंभ सुंदर। तैसेंचि जाण भागवत। १११ त्याहीमाजी दशम। केवळ हरिलीला उत्तम। बोलिला व्याससुत परम। हृद्गत गुह्य जें कां। १२ दशम आणि हरिवंश। अनेक पुराणींच्या कथा विशेष। बोलिले कवि महापुरुष। श्रीकृष्णलीलामृत पैं। १३ तितुकियांचा जो

उद्धार किया। १०५ पुराण बहुत हैं; (अन्य) ग्रन्थ बहुत हैं; उन (सब) में श्रीमद्भागवत मुकुट-रत्न अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है। जिस प्राकर सब (देवों) में वैकुण्ठ-नाथ (भगवान विष्णु) मुख्य (अतएव पूज्य) हैं, उसी प्रकार समस्त पुराणों - ग्रन्थों में यह (श्रीमद्भागवत नामक) ग्रन्थ (सर्वाधिक) पूज्य है। १०६ देवों में जैसे सहस्त्र-नयन इन्द्र हैं, अथवा पक्षियों में जैसे गरुड़ है, अथवा तारा-गणों में अत्रि-नन्दन चन्द्र है, वैसे ही (समस्त पुराणों - ग्रथों में) श्रीमद्भागवत को (श्रेष्ठ) समझिए। १०७ सर्पों में जैसे धरणीधर शेष (श्रेष्ठ) है, अथवा तपस्वियों में जैसे पिनाकधारी शिवजी (श्रेष्ठ) हैं, अथवा नौ ग्रहों में[1] में सूर्य जैसे श्रेष्ठ रूप से विराजमान हैं, अथवा वानरों में हनुमान जैसे मुख्य हैं, अथवा वक्ताओं में अंगिरा-सुत बृहस्पति (श्रेष्ठ) हैं, अथवा शास्त्रों में वेदान्त जैसे मुख्य एवं मान्य है, आश्रमों में जैसे (संन्यास नामक) चौथा आश्रम पूर्ण (पूज्य) है, अथवा (तीर्थ-) क्षेत्रों में जैसे आनन्द वन अर्थात् काशी (श्रेष्ठ) है, अथवा शस्त्रों में सुदर्शन है, उसी प्रकार भागवत को (सर्वश्रेष्ठ) समझिए। १०८-११० अथवा वनचरों (वन्य जीवों) में सिंह श्रेष्ठ है; अथवा धनुर्धारियों में रघुवीर राम श्रेष्ठ हैं, अथवा धातुओं में सोना (सर्वाधिक) सुन्दर है; उसी प्रकार श्रीमद्भागवत को (समस्त ग्रन्थों में श्रेष्ठ) समझिए। १११ उसी में दशम स्कन्ध (श्रेष्ठ) है। उसमें केवल (श्री) हरि-लीला (का वर्णन) उत्तम है। जो परम गुह्य हृद्गत है, उसे उसमें व्यासजी के पुत्र शुकजी ने कहा है। ११२ (श्रीमद्) भागवत

---

१ नौ ग्रह—रवि (सूर्य), सोम (चन्द्र), मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

मथितार्थ। तो हा हरिविजय ग्रंथ। दुजा नाहीं विपरीतार्थ। सत्य सत्य त्रिवाचा। १४ ऐका हो श्रोते सादर। संपलिया रामावतार। पृथ्वीवरी दैत्य थोर। मागुती सैरा माजले। १५ कंस चाणूर मुष्टिक। अघ बक केशी प्रलंबादिक। शिशुपाळ वक्रदंत चैद्यनायक। जरासंध माजला। १६

का दशम स्कन्ध और (श्री) हरि-वंश, अनेक पुराणों की विशिष्ट कथाएँ जो कवियों, महान पुरुषों द्वारा कही गयी हैं, श्रीकृष्णलीलामृत के रूप में उन सबका जो मथितार्थ है, वह यही (श्री) हरि-विजय नामक ग्रन्थ है। इसमें कोई दूसरा विपरीत अर्थ नहीं है। मैं त्रिवार कहता हूँ, यह सत्य है, सत्य है, पूर्णतः सत्य है। ११३-११४

हे श्रोताओ, आदर-पूर्वक सुनिए। राम के अवतार (-काल) के समाप्त हो जाने पर पृथ्वी पर चारों ओर बड़े-बड़े दैत्य फिर से उन्मत्त हो गये। ११५ कंस, चाणूर, मुष्टिक, अघ, बक, केशी, प्रलम्ब आदि (असुर), चेदी-नायक शिशुपाल, वज्रदन्त, और जरासन्ध उन्मत्त हो गये। ११६ जरासन्ध की बन्दीशाला में बाईस सहस्र राजा पड़े हुए थे। (फिर) भौमासुर (नरकासुर) बल से उन्मत्त हो गया था। उसने चौदह लोकों[1] को पीड़ित किया था। ११७ बाणासुर[2] और कालयवन[3]

---

१ चौदह लोक (भवन)—भूः, भुवर्, स्वर्, महर्, जन, तप, सत्य, अतल, वितल, सुतल, महातल, तलातल, रसातल और पाताल।

२ बाणासुर—यह असुर-राज बलि वैरोचन का शिव-भक्त पुत्र था। शिवजी के अस्त्र से त्रिपुरों को जलते देखकर, बाणासुर वहाँ से निकलकर शिवजी के पास आ गया और उसने उनका पूजन किया। उससे शिवजी उस पर प्रसन्न हो गये और उन्होंने बाण की नगरी शोणितपुर को बचा लिया। आगे चलकर उसने शिव-पार्वती को प्रसन्न कर लिया, तो पार्वती ने उसे कार्तिकेय की भाँति अपना पुत्र मान लिया। शिवजी से प्राप्त वरदान के बल पर वह उन्मत्त हो गया और उसने इन्द्रादि देवों को अनेक बार जीत लिया। जब उसने श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को बन्दी बनाया, तो वे सेना-सहित उससे युद्ध करने आये। उस समय शिव-पार्वती ने उसकी रक्षा की। फिर भी कृष्ण ने उनकी अनुमति से बाणासुर के गर्व-हरण के लिए उसके सहस्र बाहुओं में से दो को छोड़कर अन्य समस्त हाथ काट डाले।

३ कालयवन—गार्ग्य ने तपस्या से शिवजी को प्रसन्न करके उनसे यादवों को पराजित करने की क्षमता रखनेवाला पुत्र वरदान के रूप में माँग लिया। फल-स्वरूप गार्ग्य के गोपाली से ऐसा पुत्र उत्पन्न हो गया। यवनाधिपति द्वारा इसका लालन-पालन हुआ। अतः इसका नाम कालयवन विख्यात हो गया। यवनराज के पश्चात् यह उसके राज्य का अधिपति हो गया। इसके भय से श्रीकृष्ण ने अपनी राजधानी बदल दी। मथुरा के निकट कृष्ण को निःशस्त्र देखकर कालयवन ने उनका पीछा किया। आगे बढ़ते-बढ़ते कृष्ण ने एक गुफा में प्रविष्ट होकर वहाँ सोये हुए मुचकुन्द ऋषि पर अपना वस्त्र डाल दिया और वे स्वयं छिपे रहे। कालयवन ने सुप्त मुचकुन्द को ही कृष्ण समझकर उन पर लत्ता-प्रहार किया, तो जग जाते ही उन ऋषि ने उसे क्रोधाग्नि में जला डाला।

जरासंधाच्या बंदिशाळे। बावीस सहस्र राजे पडिले। भौमासुर माजला बळें। लोक पीडिले चतुर्दश। १७ बाणासुर काळयवन। करिती पृथ्वीचें कंदन। गाई आणि ब्राह्मण। टाकिती मारून दुरात्मे। १८ कौरव दुष्ट माजले। राक्षस पुन्हां जन्मले। कलीचें स्वरूप सगळें। दुर्योधन जन्मला। १९ कंस आणि काळयवन। मोडिती ब्राह्मणांचीं सदनें। जो करी विष्णुभजन। त्यासी मारून टाकिती। १२० न चाले अनुष्ठान तप। राहिले ऋषींचे ध्यानजप। वर्तूं लागलें थोर पाप। धराकंप जाहला। २१ गायीच्या स्वरूपें धरित्री। उभी ठाकली ब्रह्मयाच्या द्वारीं। हांक फोडोनि आक्रोश करी। बुडालें बुडालें म्हणतसे। २२ मज न सोसवे दैत्यभार। पाप वर्तलें अपार। सकळ विष्णुभक्त द्विजवर। पीडिले फार दैत्यांनीं। २३ ऐसी पृथ्वी आक्रंदतां। जवळी आला जगत्पिता। पृथ्वीस म्हणे तूं आतां। चिंता न करीं येथोनी। २४ जैसे पर्जन्यकाळीं गंगेचे पूर। तैसे आले ऋषींचे भार। ब्रह्मयासी म्हणती विप्र। अनर्थ थोर मांडला। २५ एक म्हणती कंसें गांजिलें। एक म्हणती काळयवनें पीडिलें। एक म्हणती यज्ञ मोडिले।

पृथ्वी का संहार कर रहे थे। वे (तथा उनके समान अन्य) दुरात्मा गायों और ब्राह्मणों को मार डालते थे। ११८ (इधर) दुष्ट कौरव उन्मत्त हो गये थे। (उनके तथा अन्य दुष्टों के रूप में) पुनः राक्षसों ने जन्म ग्रहण किया था। दुर्योधन ने जन्म ग्रहण किया, (मानो उस समय) कलिकाल का समस्त स्वरूप प्रकट हो गया हो। ११९ कंस और कालयवन ब्राह्मणों के घरों को तोड़ते-फोड़ते थे। जो भगवान विष्णु की भक्ति करता था, उसे वे मार डालते थे। १२० (फलतः होम आदि का) अनुष्ठान तथा तप (कहीं भी) नहीं चल सकता था। ऋषियों का ध्यान और जप (ठप्प) रह गये। (चारों ओर) बड़ा-बड़ा पाप घटित होने लगा। (फलतः) भू-कम्प हो गया। १२१

धरती गाय के रूप में ब्रह्मा के द्वार पर खड़ी हो गयी और पुकारते हुए (दुहाई देकर) क्रन्दन करने लगी। वह कह रही थी—'डूब गयी, मैं डूब गयी। १२२ मुझसे दैत्यों (के पापों) का भार सहा नहीं जाता। (मुझ पर) अपार पाप हो गया है। दैत्यों ने समस्त विष्णु-भक्तों, द्विजवरों (ब्राह्मणों) को पीड़ित किया है।' १२३ पृथ्वी के इस प्रकार आक्रन्दन करने पर जगत्पिता ब्रह्मा पास आ गये और पृथ्वी से बोले, 'तू अब यहाँ (मन से) चिन्ता न करना। १२४ जिस प्रकार वर्षा ऋतु में गंगा में रेले (पर रेले) आते हैं, उसी प्रकार ऋषियों के समुदाय (वहाँ) आ गये। (फिर) वे ब्राह्मण ब्रह्मा से बोले, 'बड़ा अनर्थ (उत्पात) मचाया है।'। १२५ कोई एक बोले, 'कंस ने बहुत सता दिया है।' किसी एक ने कहा, 'हमें कालयवन ने पीड़ित किया

भौमासुर चांडाळें। २६ एक म्हणती कन्या धरोनी। गेला भौमासुर घेऊनी। स्त्रिया भ्रष्टविल्या दैत्यांनीं। ऐसें पाप अवनीं वर्तत। २७ अवघ्या प्रजा येऊन। ब्रह्म्यापुढें करिती रुदन। तो कोल्हाळ ऐकोन। विस्मित जाहला परमेष्ठी। २८ देवांससवेत सहस्रनयन। तोही आला न लागतां क्षण। वंदिले विष्णुपुत्राचे चरण। अतिप्रीतीं ते वेळीं। २९ ब्रह्मा म्हणे सहस्रनेत्रा। आतां जावें क्षीरसागरा। गाऱ्हाणें सांगावें जगदुद्धारा। तरीच कार्य साधेल। १३० आतां देव ऋषि प्रजाजन। सांगातें घेऊनि चतुरानन।

है।' कोई एक बोले, 'उस चण्डाल भौमासुर[1] ने यज्ञ ध्वस्त कर डाले।'। १२६ किसी एक ने कहा, 'भौमासुर (हमारी) कन्या को पकड़ कर ले गया। दैत्यों ने स्त्रियों को भ्रष्ट किया। वे पृथ्वी पर ऐसा पाप बरत रहे हैं।'। १२७ समस्त प्रजाजन आकर ब्रह्मा के सामने इस प्रकार रुदन करते हुए कह रहे थे। उस कोलाहल को सुनकर परमेष्ठी ब्रह्मा चकित हो उठे। १२८ इन्द्र भी (इतने में) देवों सहित क्षण न लगते (वहाँ) आ गये और उन्होंने उस समय विष्णु-पुत्र (ब्रह्मा) के चरणों की अति प्रेम से वन्दना की। १२९ (तत्पश्चात्) ब्रह्मा, इन्द्र से बोले, 'अब तुम क्षीर-सागर जाओ और जगत के उद्धार-कर्ता (भगवान विष्णु) से अपना दुःख कह दो, तो ही कार्य सिद्ध हो जाएगा'। १३०

अब देवों, ऋषियों, प्रजा-जनों को साथ में लिये हुए चतुरानन ब्रह्मा क्षीरसागर जाकर किस प्रकार स्तवन करेंगे ?। १३१ क्षीरसागर की महिमा कैसी है ? वहाँ परमात्मा (भगवान विष्णु) किस प्रकार रहते हैं ? यही कथा सूत, शौनक आदि श्रेष्ठ विप्रों से कहते हैं। १३२ व्यास-नन्दन (शुक) ने परीक्षित से जो कहा, वैशम्पायन[2] ने जनमेजय से

---

१ भौमासुर—एक मान्यता के अनुसार नरकासुर भूमि-पुत्र था, अतः उसी को भौमासुर भी कहते हैं। इसे वैष्णवास्त्र प्राप्त हो गया था। उससे अजेय होकर संसार भर की सम्पत्ति और स्त्रियों का अपहरण करके उसने उन्हें अपनी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर में रख दिया। देवों, ऋषियों और उत्पीड़ित प्रजाजनों को मुक्त करने के लिए कृष्ण ने भौमासुर के वध की प्रतिज्ञा की। उसके अनुसार उन्होंने लाखों असुरों का संहार करके उसका वध किया और बन्दीगृह से समस्त सोलह सहस्र आठ स्त्रियों को मुक्त किया और अपार धन लेकर वे द्वारका लौट आये।

२ वैशम्पायन—महर्षि वैशम्पायन वेद-व्यास के चार वेद-प्रवर्तक शिष्यों में से प्रमुख शिष्य तथा कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तीरीय संहिता के प्रवर्तक थे। 'विशम्प' वंशोत्पन्न होने के कारण वे वैशम्पायन कहलाते थे। वे व्यास के महाभारत परम्परा के विख्यात शिष्य थे। उन्होंने व्यास-विरचित मूल 'जय' नामक ग्रन्थ का श्रवण किया था और कहते हैं, उन्होंने उस 'जय' के आधार पर 'भारत' की रचना की। वैशम्पायन राजा जनमेजय के पुरोहित थे। उन्होंने तक्षशिला में सर्प-यज्ञ के अवसर पर जनमेजय को (महा-) भारत सुनाया था।

क्षीरसागरा जाऊन । कैसें स्तवन करतील । १३१ कैसा क्षीरसागरींचा महिमा । कोणे रीतीं तेथें परमात्मा । शौनकादि विप्रोत्तमां । सूत सांगे कथा हेचि । ३२ परीक्षितीसी सांगे व्यासनंदन । जनमेजयासी सांगे वैशंपायन । तेंच प्राकृत भाषेंत पूर्ण । श्रीधर सांगे श्रोतयां । ३३ ब्रह्मानंद-रूप तुम्ही श्रोते । कथा ऐका सावधचित्तें । जे ऐकतां समस्तें । कलि-किल्मिषें भस्म होती । ३४ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । समंत हरिवंश भागवत । चतुर संत श्रोते ऐकोत । प्रथमाध्याय गोड हा । १३५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

जो कहा, वही श्रीधर श्रोताओं को प्राकृत (जनभाषा मराठी) में पूर्ण रूप से कहने जा रहा है । १३३ आप श्रोता ब्रह्मानन्द-स्वरूप हैं, आप अवधान-सहित मन से यह कथा सुनिए, जिसे सुनने पर समस्त कलि-काल के पाप (जलकर) भस्म हो जाएँगे । १३४

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (श्री) हरि-वंश और (श्रीमद्) भागवत से सम्मत है । चतुर सन्त (श्रोता) उसके इस मधुर प्रथम अध्याय का श्रवण करें । १३५

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२

भगवान द्वारा दुष्टों के संहार के लिए अवतरित होने का अभिवचन देना

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीकेशवाय नमः ॥ जय जय यदुकुळकमळदिनकरा । दुरितकाननवैश्वानरा । दितिसुतमर्दनसमरधीरा । इंदिरावरा गोविंदा । १ द्विसहस्रवक्त्र द्विसहस्रनयन । तो अनंत बोलका विचक्षण । रसना जाहल्या चिरोन । दोन सहस्र तयाच्या । २ मग लाजोनि चक्षुःश्रवा । शय्या तुझी

श्री गणेशाय नमः ॥ श्री केशवाय नमः ॥ हे यदु-कुलरूपी कमल को विकसित करनेवाले सूर्य (स्वरूप भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण), हे पापरूपी वन को जला देनेवाले अग्नि, हे दिति के पुत्रों (दैत्यों) का मर्दन करनेवाले रणधीर, हे इन्दिरा-पति (भगवान विष्णु), हे गोविन्द, (आपकी) जय हो, जय हो । १ दो सहस्र मुखों अर्थात् जिह्वाओंवाला तथा दो सहस्र नेत्रोंवाला अनन्त शेष तो बहुत अच्छा वक्ता (या वाचाल) तथा ज्ञानी है । परन्तु (आपकी महिमा का गान करते-करते) उसकी जिह्वाएँ चिरकर दो सहस्र हो गयीं (फिर भी वह अपनी उन दो सहस्र जिह्वाओं से आपकी महिमा का गान नहीं कर पाता) । २

जाहला रमाधवा। निगम बोलका बरवा। नेति म्हणोनि तटस्थ। ३ व्यासवाल्मीकांच्या शिणल्या गती। तटस्थ राहिला बृहस्पती। पंचाननाची कुंठित मती। गुण तुझे वर्णावया। ४ तुझें गुणलक्षण चिदाकाश। तेथें व्यासादिक उडती राजहंस। भेदीत गेले आसमास। ज्यांच्या मतीस सीमा नाहीं। ५ त्यांच्या पाठीमागें शलभ। भेदीत गेले जी नभ। त्यांची गति न ठाके स्वयंभ। परी आत्मशक्ती उडावें। ६ न कळोनि निराळाचा अंत। शक्ती-ऐसें द्विज क्रमीत। तैसा हरिप्रताप अद्भुत। परी यथामति वर्णावा। ७ नृपें अर्गजाचें गृह केलें। दुर्बळें मृत्तिकेचें रचिलें। परी साउलीचें सुख न्यून आगळें। नसेचि जैसें सर्वथा। ८ म्हणोनि श्रीहरीचे गुण। वर्णावे सांडूनि अभिमान। आतां ऐसें पूर्वानुसंधान। पूर्वाध्यायीं काय जाहलें। ९ पृथ्वी

तब वह शेष लज्जित होकर, हे रमापति, आपकी शय्या बन गया। वेद (भी) अच्छे वक्ता हैं; परन्तु (वे भी आपके माहात्म्य का वर्णन सफलता-पूर्वक नहीं कर पाते अतः) वे 'न इति (ऐसा नहीं है)' कहते हुए चकित-चुप हो गये। ३ आपके गुणों का वर्णन करने में व्यास और वाल्मीकि (तथा उनके समान बड़े-बड़े ऋषियों-कवियों) की दौड़ शिथिल हो गयी (दौड़ते-दौड़ते, अर्थात् बोलते-बोलते वे थक गये) बृहस्पति चकित होकर रह गये, पंचमुखी शिवजी की मति कुण्ठित हो गयी। ४ आपके गुण और लक्षण (मानो) चिदाकाश है; व्यास आदि (कवि रूपी) राजहंस वहाँ उड़ते रहे। जिनकी मति की कोई सीमा नहीं है, ऐसे वे (अनन्त-मति कवि) नित्य उसे भेदते जाते रहे। ५ उनके पीछे (-पीछे) शलभ (टिड्डियाँ) भी उस आकाश को भेदते चले जा रहे हैं। उन (शलभों) को (यद्यपि) उन (राजहंसों) की स्वाभाविक गति प्राप्त नहीं हो सकती; फिर भी वे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उड़ (ही) जाएँ। ६ आकाश की सीमा को न जानते हुए, वे पक्षी अपनी शक्ति के अनुसार चलते ही जाते हैं, उसी प्रकार (यद्यपि) भगवान हरि का प्रताप अद्भुत है, फिर भी उसका वर्णन (प्रत्येक व्यक्ति) यथामति करता जाए। ७ किसी राजा ने अरगजे (कपूर, केसर, चन्दन आदि के मिश्रण से बने विशिष्ट प्रकार के सुगन्धित पदार्थ) का घर बनाया हो और किसी दुर्बल-दरिद्र ने मिट्टी का बनाया हो, तो भी जिस प्रकार (उन दोनों में पाये जानेवाला) छाया का सुख कम-अधिक बिलकुल होता ही नहीं, (उसी प्रकार व्यास जैसे महान पुरुष को श्रीहरि के प्रताप के वर्णन से मिलनेवाला सुख और मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति को उससे मिलनेवाला सुख एक-दूसरे से न्यूनाधिक नहीं हो सकता)। ८ इसलिए अभिमान का त्याग करके श्रीहरि के गुणों का वर्णन (समस्त लोग यथाशक्ति-यथामति) करते रहें। ८½

प्रजा ऋषिजन। कमलोद्भवासी आले शरण। आक्रोशें करिती रुदन। पीडिलें जाण दैत्यांनीं। १० इंद्रादि देव प्रजा समस्ता। सवें घेऊनि चालिला विधाता। जेथें असे आपुला जनिता। क्षीराब्धिशायी सर्वेश। ११ क्षीराब्धीचा महिमा देखतां दृष्टीं। वर्णितां न सरे वर्षें कोटी। तेथें सर्वांसमवेत परमेष्ठी। पैलतीरीं उभा ठाके। १२ त्या क्षीराब्धीचें मध्यपीठ। तेथें प्रभाकर विशाळ बेट। लक्षानुलक्ष गांवें सुभट। लांब रुंद शोभतसे। १३ तेथें निर्विकल्पवृक्ष लागले। चिदाकाश भेदूनि गेले। त्या छायेचें सुख आगळें। शिवविरिंचींसी दुर्लभ। १४ दिव्य नवरत्नीं विराजित। मध्यें मंडप शोभिवंत। लक्ष योजनें लखलखित। ओतप्रोत तितुकाचि। १५ सूर्यप्रभेसी आणिती उणें। ऐसे जेथें प्रभामय पाषाण। गरुडपाचूंच्या ज्योती पूर्ण। प्रभामय विराजती। १६ पद्मरागाचे तोळंबे स्वयंभ। वरी दिव्य

अब इससे पहले (पूर्व) अध्याय में क्या (कथित) हुआ ? वह पूर्वाख्यान ऐसा है। ९ पृथ्वी, प्रजा, ऋषिजन, ब्रह्मा की शरण में आ गये और चीखते-पुकारते रुदन करने लगे। वे बोले—"जान लीजिए कि दैत्यों ने (हमें) पीड़ित किया है।"। १० (तदनन्तर) इन्द्र आदि समस्त देवों, प्रजाजनों को साथ में लेकर विधाता वहाँ चल दिये, जहाँ उनके अपने पिता क्षीर-सागर-शायी सर्वेश भगवान विष्णु (रहते)हैं। क्षीरसागर की महिमा आँखों से देखने पर कोटि-कोटि वर्ष उसका वर्णन करते रहने पर भी समाप्त नहीं होगी। वहाँ (ऐसे उस क्षीरसागर के) उस पार तट पर परमेष्ठी ब्रह्मा सबके साथ खड़े रह गये। ११-१२ उस क्षीरसागर के (अन्दर) मध्य पीठ (स्थान) में वहाँ एक तेजस्वी विशाल द्वीप है। लाख-लाख योजन भव्य लम्बा-चौड़ा वह द्वीप शोभायमान है। १३ वहाँ निर्विकल्प (संशय-रहित ज्ञानरूपी) वृक्ष उत्पन्न हैं। वे चिदाकाश भेदकर (पार) गये हुए हैं। (उनकी) उस छाया का सुख अनोखा है; वह शिवजी और ब्रह्मा के लिए भी दुर्लभ है। १४ उस (द्वीप) के बीच में वहाँ दिव्य नवरत्नों[1] से शोभायमान, एक लाख योजन (विस्तीर्ण) एक मण्डप जगमगाता हुआ विराजमान है। वह उतना ही (शोभा से, नवरत्नों से) ओत-प्रोत (भरा-पूरा) है। १५ सूर्य की कान्ति को जो जो न्यूनता को प्राप्त कराते हैं, ऐसे जहाँ प्रभामय (तेजोयुक्त) पाषाण हैं, वहाँ पद्मराग नामक रत्नों की परिपूर्ण प्रभामय ज्योतियाँ विराजमान हैं। १६ (वहाँ) पद्मराग के स्वयम्भू तलाधार हैं—उन पर हीरों के दिव्य खम्भे हैं; नील रत्न के अति तेजस्वी खम्भों के लिए आधारभूत पत्थर हैं; उनकी कोई उपमा नहीं है। १७ जाम्बुनद जाति का जो

---

१ नवरत्न—हीरा, माणिक, मोती, गोमेद, इन्द्रनाल, पन्ना (मरकत), प्रवाल, पुष्कराज, वैदूर्य (लहसुनिया)।

हिऱ्यांचे खांब। निळयांचीं उथाळीं सुप्रभ। उपमा नाहीं तयांतें। १७ जें कां जांबूनद सुवर्ण। त्याचीं तुळवटें लंबायमान। आरक्त माणिकांचे दांडे जाण। सरळ सुवाड पसरिले। १८ शुद्ध पाचूंच्या किलच्या वरी। अभेदें जोडिल्या कळाकुसरी। दिव्य मुक्तांचा पंक वरी। अक्षय दृढ जडिलासे। १९ जैसे पंक्तीं बैसले गभस्ती। तैसा चर्या समान झळकती। नाना चक्रें ओप देती। दिव्य रत्नें अनेक। २० मध्यें शिखराचा जो कळस। भेदूनि गेला महदाकाश। सहस्र सूर्यांचा प्रकाश। एकसरां तळपतसे। २१ निळयाच्या मदलसा जडित। वरी मुक्तांचे राजहंस खेळत। रत्नपुतळ्या गात नाचत। असंख्यात प्रभा त्यांची। २२ दाही अवतार मूर्तिमंत। स्तंभाप्रती शोभले जडित। त्रैलोक्यरचना समस्त। प्रतिमा तेथें साजिऱ्या। २३ मंडपाचे अष्टकोनी ध्वज। सहस्र विजांऐसे तेजःपुंज। तळपतां तेणें सतेज। ब्रह्मांड समग्र जाहलें। २४ अनंत ब्रह्मांडांच्या स्थितिगती। रेखिल्या अनंत मूर्ती अनंत शक्ती। त्या मंडपाची पाहतां स्थिती। चंद्र सूर्य खद्योतवत। २५ ऐसा मंडप लक्ष योजन। तितुकाच उंच रुंद चतुष्कोण। चिंतामणींचीं

(अति शुद्ध) सोना होता है, उसके लम्बे लठ्ठे हैं। समझिए कि माणिक के रक्तिम वर्ण के सीधे, सुन्दर डण्डे फैलाये हुए हैं। १८ ऊपर शुद्ध पन्ने के चिप्पड़ कला-कौशल से एकात्म जोड़े हुए हैं। उस पर दिव्य मोतियों का चूना अक्षय तथा दृढतापूर्वक जड़ा हुआ है। १९ एक पंक्ति में (अनेकानेक) सूर्य बैठ गये हों, तो वे जिस प्रकार जगमगाते रहेंगे, उसी प्रकार उन्हीं के समान वे रचनाएँ (निर्मित वस्तुएँ) जगमगाती हैं। अनेकानेक चक्र और अनेक दिव्य रत्न चमक रहे हैं। २० बीच में शिखर का जो कलश है, वह महदाकाश को भेदकर (ऊपर) गया हुआ है। सहस्र (-सहस्र) सूर्यों का प्रकाश एक साथ जगमगा रहा है। २१ नील के चँदोवे जड़े हुए हैं; ऊपर मोतियों के राजहंस क्रीड़ा कर रहे हैं; रत्नों की पुतलियाँ (गुड़ियाँ) गाती-नाचती रही हैं; उनकी कान्ति असीम है। २२ दसों अवतार[1] मूर्तिमान (प्रत्यक्ष उनकी प्रतिमाएँ) खम्भों में जड़े हुए शोभायमान हैं; त्रिभुवन की समस्त रचना और प्रतिमाएँ मनोहारी (दिखायी दे रही) हैं। २३ (उपरोक्त) मण्डप के अष्टकोण ध्वज सहस्र-सहस्र बिजलियों जैसे तेजःपुंज हैं। उनके जगमगाते रहने से समस्त ब्रह्माण्ड तेजस्वी हो गया है। २४ (उस मण्डप में) अनन्त ब्रह्माण्डों की स्थितियाँ-गतियाँ, असंख्य मूर्तियाँ और शक्तियाँ रेखांकित हैं। उस मण्डप की स्थिति देखने पर चन्द्र और सूर्य जुगनुओं-से (जान पड़ते) हैं। २५ ऐसा वह मण्डप एक लाख योजन

[1] दस अवतार—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कलंकी।

सोपानें पूर्ण। चहूंकडे सतेज। २६ तयावरी जो तल्पक। शुभ्र सतेज भोगिनायक। जैसा रजताचल निष्कलंक। असंभाव्य पसरला। २७ असंभाव्य ज्याचें शरीर। मंचक योजनें साठी सहस्त्र। चतुष्कोण मावे परिकर। निजांगींच शेषाच्या। २८ ठायीं ठायीं उशा बहुवस। निजांगाच्या करी शेष। सहस्त्रफणांचीं छत्रें विशेष। प्रभा न माये निराळीं। २९ ऐसा शेष जाहला पलंग। वरी पहुडला श्रीरंग। लक्षार्ध योजनें अव्यंग। शेषशायी परमात्मा। ३० इंद्रनीळाचा मेरु पहुडला। कीं परब्रह्मरस ओतिला। भक्तांलागीं आकारला। नीलजीमूतवर्ण पैं। ३१ योजनें पन्नास सहस्त्र। सगुण लीलाविग्रही श्रीधर। श्रोते म्हणती यास आधार। कोठें आहे सांग पां। ३२ तरी ब्रह्मांडपुराणींची कथा अवधारा। नारद गेला होता क्षीरसागरा। तो पाहून आला सर्वेश्वरा। भृगूचिया आश्रमाप्रती। ३३ तेणें वर्णिलें हें ध्यान सुरेख। ऐका नारदमुखींचा श्लोक। पहुडला ब्रह्मांड-

विशाल (लम्बा) तथा उतना ही ऊँचा और चौड़ा है। (उसमें) चारों ओर चिन्तामणि रत्न की पूर्णतः तेजस्वी सीढ़ियाँ हैं। २६ उस पर जो पलंग है, वह (वस्तुतः स्वयं) शुभ्र, सतेज भोगावती-पति शेषनाग है। वह चाँदी के निष्कलंक पर्वत की भाँति असम्भाव्य (असीम) रूप से फैला हुआ है। २७ जिसका शरीर असीम है, ऐसे उन शेष के स्वयं के अंग ही पर साठ सहस्त्र योजन विस्तृत चतुष्कोण मंचक (फैल) रहा है। २८ शेष ने स्थान-स्थान पर अपने ही अंग की बहुत-सी तकिये बनाये हैं; उसके सहस्त्र फनों के छत्र हैं। उनकी विशिष्ट कान्ति आकाश में नहीं समा रही है। २९ ऐसा वह शेषनाग (स्वयं) पलंग बन गया है। उस पर अव्यंग, शेष-शायी परमात्मा श्रीरंग (विष्णु भगवान) आधे लाख योजन (विस्तार से) लेटे हुए हैं। ३० (मानो उनके रूप में) इन्द्र नील रत्न का मेरु पर्वत पौढ़ा हुआ हो; अथवा परब्रह्म (का) रस (साँचे में) ढाल दिया हुआ हो; अथवा (अपने) भक्तों के (हित के) लिए निर्गुण-निराकार ब्रह्म घनश्याम वर्ण (-धारी भगवान विष्णु के रूप में) आकार को प्राप्त हुआ हो। ३१ सगुण लीला-विग्रही श्रीधर (भगवान लक्ष्मीपति विष्णु इस प्रकार) पचास सहस्त्र योजन लेटे हुए हैं। (यह सुनकर यदि) श्रोता (कवि से) बोले, 'बताओ, इसके लिए क्या आधार है?'। ३२ तो (हे श्रोताओ,) ब्रह्माण्ड पुराण की कथा का श्रवण कीजिए। (जब) नारदजी क्षीरसागर में गये थे, तब वे सर्वेश्वर (भगवान) को देखकर भृगु ऋषि के आश्रम (लौटकर) आ गये। ३३ उन्होंने इस सुन्दर रूप का वर्णन किया है। नारदजी के मुख से (निकले) इस श्लोक (छन्द) को सुनिए—ब्रह्माण्ड-नायक (श्री भगवान विष्णु) क्षीर सागर में कैसे लेटे हुए हैं? । ३४

नायक। क्षीरसागरीं कैसा तो। ३४। श्लोक। लक्षार्धयोजनोपेतं विग्रहं कामरूपिणम्। सर्वाश्चर्यमयं देवं शयानं शेषतल्पके। १। टीका। यालागीं लक्षार्ध योजनें प्रमाण। पहुडला नीलजीमूतवर्ण। कोटी मदन ओंवाळून। नखांवरून सांडिजे। ३५ घनश्याम कमलनयन। जें मायातीत शुद्ध चैतन्य। जें पूर्णब्रह्म सनातन। क्षीरसागरीं पहुडलें। ३६ श्रीवत्सांकितभूषण। हृदयीं कौस्तुभप्रभा घन। मुक्तामाळा विराजमान। वैजयंती आपाद। ३७ कल्पांतींचे सहस्र आदित्य। तैसी दिव्य मूर्ति प्रकाशवंत। परम जाज्वल्य कुंडलें तळपत। मकराकार उभय कर्णीं। ३८ कल्पांतींच्या सहस्र विजा पूर्ण। तैसा मुकुटप्रकाश गहन। सरळ नासिका विशाळ नयन। धनुष्याकृति

(नारद ने) आधे लाख योजन फैले हुए शेषरूपी पलंग पर काम-स्वरूप तथा एक प्रकार से आश्चर्यरूप देव को सोये हुए इस प्रकार देखा। (मैं कह रहा हूँ कि) मेघ की भाँति श्यामवर्ण-शरीरी भगवान आधे लाख योजन प्रमाण (शेषरूपी पलंग पर) लेटे हुए हैं। उनके नखों (की ज्योति) पर कोटि-कोटि कामदेवों को निछावर कर दें। ३५ जो माया के परे तथा शुद्ध चैतन्य हैं, जो सनातन पूर्णब्रह्म हैं, ऐसे वे घन-श्याम, और कमल-नयन भगवान क्षीरसागर में लेटे हुए हैं। ३६ वे (अपनी छाती पर) श्रीवत्स चिह्न[1] रूपी आभूषण धारण किये हुए हैं। हृदय पर कौस्तुभ मणि की घनी प्रभा (फैली हुई) है, तथा मोतियों की माला विराजमान है; (गले में) पाँवों तक (दीर्घ) वैजयन्ती माला है। ३७ जैसे कल्पान्त काल के सूर्य के समान सहस्र सूर्य प्रकाशवान (तेजस्वी) हों, वैसे ही उनकी दिव्य मूर्ति प्रकाशवती है। उनके दोनों कानों में मकराकार (मत्स्याकृति) परम उज्ज्वल कुण्डल जगमगा रहे हैं। ३८ कल्पान्त काल की सहस्रों बिजलियाँ (जैसे जगमगाहट से युक्त) होती हैं, वैसे उनके मुकुट का प्रकाश पूर्ण गहन है। उनकी नासिका सीधी है, नयन विशाल हैं और भृकुटियाँ धनुषाकार हैं। ३९

१ श्रीवत्स चिह्न—एक बार स्वायम्भुव मनु के यज्ञ में इस बात पर विवाद हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन श्रेष्ठ हैं। अन्त में इसका पता लगाने का काम भृगु ऋषि को सौंप दिया गया। परीक्षा करने के हेतु भृगु पहले शिवजी के यहाँ गये, परन्तु नन्दी ने उन्हें शिवजी से मिलने नहीं दिया। फिर वे ब्रह्मा के यहाँ गये, परन्तु ब्रह्मा ने उन्हें नमस्कार नहीं किया। इस प्रकार अपमानित होकर वे भगवान विष्णु के यहाँ गये। उस समय विष्णु सोये हुए थे, अतः भृगु ने क्रुद्ध होकर उनके सीने पर लत्ता-प्रहार किया। तब विष्णु जग गये और बोले, आपके पाँव में चोट तो नहीं आयी। विष्णु की यह विनम्रता देखकर भृगु ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। विष्णु ने भी भृगु के लत्ता-प्रहार से वक्षःस्थल पर बने उस चिह्न को सदा के लिए धारण किया है। श्वेत बालो के भँवर से इस चिह्न को श्रीवत्स चिह्न कहते हैं।

भृकुटिया। ३६ अनंत ब्रह्मांडींचें सौंदर्य एकवटलें। संतापनाशक हें रूप ओतिलें। कीं कैवल्यसुख गोळा जाहलें। क्षीरसागरीं प्रत्यक्ष। ४० कौस्तुभतेजें क्षीरसागर। लखलखिला देदीप्यमान सुंदर। नाभि वर्तुळ गंभीर। बालदिवाकरप्रकाश जैसा। ४१ शंख चक्र गदा पद्म। परम उदार घनश्याम। जो अनंत पुराण पुरुषोत्तम। पूर्णकाम सर्वेश। ४२ चहूं भुजीं कीर्तिमुखें। मनगटीं हस्तकटकें सुरेखें। दशांगुलीं मुद्रिकांचें तेज फांके। असंभाव्य न वर्णवे। ४३ नाभिस्थानीं दिव्य कमळ। त्यांत चतुर्मुख खेळे बाळ। सहस्र वरुषें कमलनाळ। शोधितां अंत न सांपडे। ४४ सहस्र विजांचा एक भार। तैसा नेसला पीतांबर। त्या सुवासें अंबर। परिपूर्ण धालें हो। ४५ हरितनूचा सुवास पूर्ण। जाय ब्रह्मांड भेदून। कटीं मेखला विराजमान। दिव्य रत्नीं झळकतसे। ४६ माजी क्षुद्रघंटांची दाटी। अंगीं दिव्य चंदनाची उटी। श्यामवर्ण जगजेठी। चंदन जैसा वरी शोभे। ४७

(जान पड़ता है कि उनके रूप में) अनन्त ब्रह्माण्ड का सौन्दर्य एकत्रित हो गया है, अथवा उनका यह रूप सन्तापों का नाशकारी तत्त्व ही ढला हुआ है, अथवा क्षीरसागर में साक्षात् कैवल्य सुख ही इकट्ठा हुआ है। ४० कौस्तुभ मणि के तेज से क्षीर सागर सुन्दर दैदीप्यमान होकर जगमगा रहा है। नाभि-वलय (वर्तुलाकार नाभि) गहन (गहरी) है। उनका प्रकाश (तेज) बाल सूर्य का-सा है। ४१ वे (हाथों में) शंख, चक्र, गदा, पद्म (कमल पुष्प) धारण किये हुए हैं। जो अनन्त पुराण-पुरुषोत्तम तथा पूर्णकाम सर्वेश हैं, वे ही ये परम उदार (-चरित) घनश्याम (भगवान विष्णु) हैं। ४२ चारों भुजाओं में कीर्ति-मुख (नामक आभूषण) तथा कलाइयों में सुन्दर हस्त-कंकण हैं। दसों अँगुलियों में पहनी हुई अँगूठियों का तेज असीम (रूप से) फैला हुआ है; उसका वर्णन नहीं किया जा पाएगा। ४३ उनके नाभि-स्थल में (एक) दिव्य कमल (विकसित) है; उसमें चतुर्मुख-धारी एक बालक क्रीड़ा कर रहा है। उस कमल (पुष्प) के नाल का अन्त (मूल) सहस्र वर्ष खोजते रहने पर भी नहीं मिल पाएगा। ४४ जैसा सहस्र विद्युतों का एक गट्ठर (तेजस्वी दिखायी देता) हो, वैसा (तेजोमय) पीताम्बर उन्होंने पहना है। उसकी सुगन्ध से आकाश परिपूर्ण रूप से अघा गया है। ४५ भगवान हरि के तनु की सुगन्ध ब्रह्माण्ड को पूर्णतः भेदकर (परे) जा रही है। उनकी कटि में मेखला विराजमान है; वह दिव्य रत्नों से जगमगा रही है। ४६ उस (मेखला) में छोटे-छोटे घुँघरुओं की (मानो घनी) भीड़ हो गयी है। अंग में दिव्य चन्दन का उबटन (लगा हुआ) है। श्यामवर्ण जगत्-श्रेष्ठ भगवान (के शरीर पर) वह चन्दन जैसा शोभायमान है। ४७ भगवान का चन्दन के अंगराग से युक्त अंग

सांवळें सूर्यकन्येचें नीर। त्यावरी भागीरथीचें शुभ्र। कीं नीळवर्ण अंबर। त्यावरी चांदणें पौर्णिमेचें। ४८ नभाचे गाभे काढिले। तैसे जानुजघन शोभले। चरणीं तोडर खळाळे। वांकी नेपुरें रुणझुणती। ४९ कोटी चंद्र एकवटले। चरणनखीं सुरवाडले। कीं स्वशरीराचीं करूनि दहा शकलें। दशांगुळीं जडिलीं हो। ५० दिव्य मुक्तपल्लव रुळत। ऐसा दुजा पीतांबर झळकत। पांघरलासे दीननाथ। शेषशायी परमात्मा। ५१ अंगींच्या प्रकाशशिखा पूर्ण। जाती सप्तावरण भेदून। ज्याच्या श्यामप्रभेनें घन। अद्यापि सांवळा दिसतसे। ५२ क्षीरसागरींचा श्याम प्रकाश पडला। तोचि हा नभासी रंग चढला। हेचि सुनीळता डोळां। अद्यापि वरी दिसतसे। ५३ क्षीरसागरीं जगदुद्धार। मंदस्मितवदन सुंदर। दंतपंक्तींच्या तेजें थोर। कोटिसूर्य प्रकाशले। ५४ सर्व आनंदाचें सदन। मिळोनि ओतिलें हरीचें वदन। एवढी प्रभा देदीप्यमान। परी तीव्र नव्हे सर्वथा। ५५ तें तेज शांत सोज्ज्वळ। तीक्ष्ण नव्हे परम शीतळ। परी स्थूळ दृष्टीचें बळ। पहावया

ऐसा जान पड़ता है कि सूर्यकन्या यमुना का श्यामवर्ण पानी हो और उस पर भागीरथी गंगा का शुभ्र जल (फैला हुआ) हो, अथवा नील वर्णीय आकाश पर पौर्णिमा की चाँदनी (बिछी हुई) हो। ४८ उनके जानु-जघन (घुटने और जाँघें) वैसे ही शोभायमान हैं, जैसे आकाश के गाभे निकाले हुए हों। उनके पाँवों में तोड़े खनक रहे हैं; बाँके और नूपुर झनक रहे हैं। ४९ (मानो) कोटि-कोटि चन्द्र एकत्रित हो गये हैं और उनके चरणों के नखों में सुख-पूर्वक रह गये हैं, अथवा (जान पड़ता है) उन्होंने अपने शरीर के दस खण्ड करके उन्हें दसों उंगलियों में जोड़ दिया है। ५० जिसका मोतियों का दिव्य पल्लव शोभायमान है, ऐसा दूसरा पीताम्बर जगमगा रहा है—दीनानाथ शेषशायी परमात्मा ने उसे ओढ़ लिया है। ५१ शरीर से उत्पन्न प्रकाश-ज्योतियाँ सातों आवरणों को पूर्णतः भेदकर जा रही हैं, जिनकी श्याम प्रभा से मेघ अब तक भी साँवला दिखायी देता है। ५२ क्षीरसागर से जो श्याम प्रकाश (उत्पन्न होकर) छा गया है, वही यह रंग आकाश पर चढ़ गया है। वही सुन्दर नीलिमा अब तक भी आँखों को ऊपर दिखायी दे रही है। ५३ (इस प्रकार) क्षीरसागर में जगत् के उद्धारक (भगवान विष्णु विराजमान) हैं। मन्द स्मित से युक्त उनका मुख सुन्दर है। उनके दाँतों की पंक्तियों के बड़े प्रखर तेज से कोटि-कोटि सूर्य प्रकाश को प्राप्त हो गये हैं। ५४ समस्त आनन्द के सदन को मिला लेकर श्रीहरि का मुख (साँचे में) ढाल दिया है। उसकी कान्ति इतनी दैदीप्यमान है, फिर भी वह (तेज में) बिलकुल तीव्र नहीं है। ५५ वह तेज शान्त, (फिर भी) परम उज्ज्वल (जगमगाता हुआ) है; वह तीक्ष्ण (प्रखर) नहीं है, परम

तेथें चालेना। ५६ तेथें प्रत्यक्ष लक्ष्मीस दर्शन। आदर्शबिंबवत विधीस जाण। माध्यान्हींचा सूर्य पूर्ण। तैसा ऋषींसी दिसतसे। ५७ मानवी भक्तांचिये ध्यानीं। प्रगटे साक्षात येऊनी। यालागीं क्षीरसागरींचें रूप नयनीं। कोणासही न पाहवे। ५८ ज्ञानदृष्टीं जे पाहत। त्यांसी जवळी आहे भगवंत। अभक्तांसी न दिसे सत्य। कोटी वर्षें शोधितां। ५९ असो आतां त्या अवसरीं। क्षीरसागराच्या ऐलतीरीं। बद्धांजलि करूनि निर्धारीं। सुरवर उभे ठाकले। ६० पुढें मुख्य आधीं परमेष्ठी। इंद्रादि देव उभे त्यापाठीं। जयजयकाराच्या बोभाटीं। ऋषी गर्जती ते वेळीं। ६१ ॐ नमो आदिनारायणा। लक्ष्मीनारायणा मनमोहना। महाविष्णु मधुसूदना। कैटभारी केशवा। ६२ जय जय वैकुंठपीठविहारा। शेषशायी विश्वंभरा। पुराणपुरुषा रमावरा। धांवें त्वरें ये वेळीं। ६३ जय जय वेदोद्धारका। कूर्मरूपा सृष्टिपाळका। नमो सकळदैत्यांतका। दीनरक्षका दीनबंधो। ६४ जय जय हिरण्यकशिपुमर्दना। नमो त्रिविक्रमा बलिबंधना। नमो

शीतल है। फिर भी स्थूल दृष्टि का बल वहाँ देखने के लिए नहीं चलता (पर्याप्त नहीं होता)। ५६ वहाँ साक्षात् लक्ष्मी को दर्शन (प्राप्त) होता है। समझिए कि विधाता को वह दर्पण में दिखायी देनेवाले प्रतिबिम्ब की भाँति होता है (न कि साक्षात्)। ऋषियों को वे मध्याह्न के पूर्ण सूर्य जैसे दिखायी देते हैं। ५७ वे मानव भक्तों के ध्यान में प्रत्यक्ष आते हुए प्रकट हो जाते हैं। इसलिए क्षीरसागर (में स्थित भगवान विष्णु) का वह रूप किसी के भी द्वारा आँखों से नहीं देखा जा पाता। ५८ जो ज्ञान की दृष्टि से (ज्ञान-चक्षुओं से) देखते हैं, उनको भगवान निकट ही (दिखायी) देते हैं। (परन्तु) अभक्तों को—जो भक्त नहीं हैं, उनको सचमुच करोड़ वर्ष खोजने पर भी वे नहीं दिखायी देते। ५९

अस्तु। अब सुरवर (देव) उस समय क्षीरसागर के इस तट पर निर्धार-पूर्वक हाथ बाँधे (जोड़े) खड़े हो गये। ६० (सबके) आगे प्रथम मुख्य (देवता) परमेष्ठी ब्रह्मा थे। उनके पीछे इन्द्र आदि देव खड़े (रह गये) थे। उस समय जय-जयकार का महाघोष करते हुए ऋषि (स्तुति-सूचक इस प्रकार) गर्जन करने लगे। ६१

॥ॐ॥ हे आदि नारायण, आपको नमस्कार है। हे लक्ष्मी-नारायण, हे मन-मोहन, हे महाविष्णु, हे मधु-सूदन, हे कैटभारि, हे केशव, आपको नमस्कार है। ६२ हे वैकुण्ठपीठ में विहार करनेवाले, हे शेष-शायी, हे विश्वम्भर (विश्व का भरण-पोषण करनेवाले), आपकी जय हो, जय हो। हे पुराण-पुरुष, हे रमा-वर, इस समय

ब्राह्मणकुलपालना। नमो श्रीधरा गोविंदा। ६५ नमो पौलस्तिकुलकानन-दहना। नमो मीनकेतनारिहृदयजीवना। नमो चतुर्दशलोकपालना।

शीघ्रता से दौड़िए। ६३ हे वेदों के उद्धारक,[1] हे कूर्म-रूप[2] और सृष्टि पालक,[3] आपकी जय हो, जय हो। हे समस्त दैत्यों का अन्त करनेवाले, हे दीनरक्षक, हे दीन-बन्धु, आपको नमस्कार है। ६४ हे हिरण्यकशिपु का मर्दन[4] अर्थात् संहार करनेवाले (नरसिंह रूप में अवतरित भगवान), आपकी जय हो, जय हो। हे (दैत्यराज) बलि को आबद्ध करनेवाले त्रिविक्रम[5] (वामन के रूप में अवतरित भगवान), आपको नमस्कार है।

---

१ वेदों के उद्धारक (मत्स्य अवतार)—पद्म पुराण के अनुसार, कश्यप और दिति के मकर नामक दैत्य पुत्र ब्रह्मा को धोखा देकर वेदों का हरण करते हुए पाताल में भाग गया। वेदों के अपहृत होने से पृथ्वी पर अनाचार आरम्भ हो गया। तब ब्रह्मा आदि भगवान विष्णु की शरण में गये और उन्होंने रक्षा के लिए प्रार्थना की। तो उन्होंने मत्स्य अवतार धारण करके मकर दैत्य का वध किया और ब्रह्मा को वेद लौटा दिये।

२ कूर्म रूप—जब देव और दानव समुद्र-मन्थन कर रहे थे, तब मन्दराचल (जो मथानी के रूप में प्रयुक्त था), नीचे धँसने लगा, तो भगवान विष्णु ने कूर्मावतार धारण करके अपनी पीठ पर उसे सम्हाल लिया।

३ सृष्टि-पालक—कश्यप-दिति का पुत्र हिरण्याक्ष नामक असुर पृथ्वी का अपहरण करके उसे पाताल में ले गया। उस समय भगवान विष्णु वराह का रूप धारण करके अपने एक दाँत से पृथ्वी को ऊपर उठाकर उसे ले आये और उन्होंने उसकी स्थापना शेष नाग के मस्तक पर की।

४ हिरण्यकशिपु—कश्यप-दिति के हिरण्यकशिपु नामक पुत्र ने अपने भाई हिरण्याक्ष के वध का भगवान विष्णु से बदला लेने के लिए घोर तपस्या करके ब्रह्मा से अवध्यत्व का वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर वह पृथ्वी पर अत्याचार करने लगा। अपने पुत्र प्रह्लाद की विष्णु-भक्ति उसे पसन्द नहीं थी, अतः उसने मार डालने का उसे अनेक प्रकार से यत्न किया। अन्त में उसकी रक्षा के लिए भगवान विष्णु नरसिंह के रूप में खम्भे से संध्याकाल में प्रकट हो गये और उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध किया।

५ त्रिविक्रम (वामन)—प्रह्लाद के पौत्र तथा विरोचन के पुत्र दैत्यराज बलि ने गुरु शुक्राचार्य की प्रेरणा से देवों को पराजित करके स्वर्ग को जीत लिया। समुद्र-मन्थन के पश्चात इन्द्र द्वारा मारे जाने पर भी शुक्राचार्य ने बलि को पुनर्जीवित कर दिया और स्वर्ग पर पुनश्च अधिकार प्राप्त करके बलि ने वहाँ से देवों को भगा दिया। फिर उसके द्वारा उत्पीड़ित ब्राह्मणों और देवों ने भगवान विष्णु की शरण में जाते हुए उनसे रक्षा के लिए प्रार्थना की। इधर विजेता बलि जब अश्वमेध यज्ञ कर रहा था, तब वामन रूप में अवतरित होकर विष्णु ने बलि द्वारा समादृत हो कहे जाने पर उससे तीन पग भूमि माँगी। फिर प्रचण्ड रूप धारण करके प्रथम पग में पृथ्वी को, द्वितीय पग में स्वर्ग को व्याप्त करके बलि द्वारा बताने पर उसके मस्तक पर पाँव रखा और उसे पाताल में धकेल दिया। तब से पाताल बलि का निवासस्थान बन गया और भगवान विष्णु उसके द्वारपाल हो गये। तीन पगों में ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर देनेवाले वामन (स्वरूप भगवान विष्णु) त्रिविक्रम कहाते हैं।

पीतवसना माधवा। ६६ जय जय कमळनयना कमळावरा। कमळशयना कमळवक्त्रा। कमळनाभा कमळछत्रा। कमळधरा कमळाप्रिया। ६७ जय जय विश्वपाळणा। विश्वव्यापका विश्वकारणा। विश्वमतिचालका विश्व-जीवना। विश्वरक्षणा विश्वेशा। ६८ जय जय लक्ष्मीकुचकुंकुमांका। जय सकळदेवविस्तारका। जय सकळदेवपाळका। सकळदेवदीक्षागुरो। ६९

हे ब्राह्मण-कुल के पालक (-रक्षक परशुधारी भार्गव राम[1] के रूप में अवतरित भगवान), आपको नमस्कार है। हे श्रीधर, हे गोविन्द, आपको नमस्कार है। ६५ हे पौलस्त्य-कुल[2] (में उत्पन्न रावण-कुम्भकर्ण आदि राक्षसों के समूह) रूपी कानन को जला डालनेवाले (दाशरथी राम के रूप में अवतरित भगवान), आपको नमस्कार है। हे मीन-केतन अर्थात मत्स्य चिह्न से अंकित जिसका ध्वज है, ऐसे कामदेव के शत्रु[3] शिवजी के हृदय के जीवन-स्वरूप (श्रीराम), आपको नमस्कार है। हे चौदह लोकों का पालन करनेवाले, हे पीताम्बरधारी माधव, आपको नमस्कार है। ६६ हे कमल-नयन, हे कमला-वर (लक्ष्मी-पति), हे कमल-शयन, हे कमल-वदन, हे कमल-नाभ, हे कमल-छत्र, हे कमल-धारी, हे कमला (लक्ष्मी) के प्रिय (भगवान विष्णु), आपकी जय हो, जय हो। ६७ हे विश्व का पालन करनेवाले, हे विश्व-व्यापक, हे विश्व-कारक (विश्व के निर्माता), हे विश्व-मति-चालक, हे विश्व-जीवन, हे विश्व का रक्षण करनेवाले, हे विश्वेश, आपकी जय हो, जय हो। ६८ हे लक्ष्मी के कुचों पर कुंकुम अंकित करनेवाले, आपकी जय हो, जय हो। हे समस्त

---

१ ब्राह्मण-कुल-पालक (परशुराम)—हैहयराज सहस्रकर कार्तवीर्य ने जमदग्नि ऋषि की कामधेनु का अपहरण करते हुए उनके आश्रम को जला डाला। आगे चलकर युद्ध में परशुराम ने कार्तवीर्य का वध किया। परन्तु अवसर मिलते ही कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि का वध किया। फिर परशुराम ने माता रेणुका की प्रेरणा से बदला लेने के हेतु क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार करके पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन बना दिया और उद्दण्ड क्षत्रियों से उत्पीड़ित ब्राह्मण-कुल की प्रतिष्ठा की वृद्धि की। ये परशुराम भगवान विष्णु के छठे अवतार माने जाते हैं।

२ पौलस्त्य कुल—ब्रह्मा के आठ मानस-पुत्रों में से एक पुलस्त्य के पुत्र थे विश्रवा। विश्रवा से रावण-कुम्भकर्ण आदि राक्षस उत्पन्न हुए। अतः वह कुल पुलस्त्य-कुल या पौलस्त्य कुल कहाता है।

३ कामदेव के शत्रु (शिवजी)—दक्ष-यज्ञ के अवसर पर शिवजी की स्त्री सती ने अपने आपको जला लिया; तब से शिवजी तपस्या में लीन हो बैठे थे। तारकासुर के वध के लिए शिवजी को पुत्र उत्पन्न करना आवश्यक था। अतः देवों ने कामदेव को शिवजी की तपस्या में बाधा डालने की प्रेरणा दी। फलतः कामदेव के यत्न से शिवजी जब विचलित हुए, तो उन्होंने क्रुद्ध होकर तृतीय नेत्र खोल दिया और क्रोधाग्नि में कामदेव को जला डाला। (तदनन्तर देवों की विनती स्वीकार करके शिवजी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया)।

नमो निर्जरललाटपट्टलेखना। नमो सनकसनंदनमनोरंजना। नमो दानवकुल-निकृंतना। भवभंजना भवहृदया। ७० नमो मायाचक्रचालका। नमो अज्ञानतिमिरांतका। नमो वेदरूपा वेदपाळका। वेदस्थापका वेदवंद्या। ७१ नमो भवगजपंचानना। नमो पापारण्यकुठारतीक्ष्णा। नमो त्रिविधताप-दाहशमना। अनंतशयना अनंता। ७२ नमो दशावतारचरित्रचाळका। नमो अनंतवेषधारका। नमो अनंतब्रह्मांडनायका। जगदुद्धारका जगत्पते। ७३ नमो सर्गस्थित्यंतकारका। नमो कैवल्यपददायका। अज अजित सर्वात्मका। करुणालया सुखाब्धे। ७४ नमो जन्ममरणरोगवैद्या। सच्चिदानंदा स्वसंवेद्या।

देवों का विस्तार (विकास, रक्षण) करनेवाले, आपकी जय हो। हे समस्त देवों के पालक, हे समस्त देवों के दीक्षा-गुरु, आपकी जय हो। ६९ हे देवों के ललाट (भाल, मस्तक) रूपी पट्ट पर (भाग्य सम्बन्धी) लेख लिखनेवाले, आपको नमस्कार है। हे सनक-सनन्दन के मन को बहलानेवाले, आपको नमस्कार है। हे दानव-कुल का नाश करनेवाले, आपको नमस्कार है। हे भव-भंजन (सांसारिक दुःखों का नाश करनेवाले), हे भव-हृदय (संसार के या शिवजी के हृदय-स्वरूप), आपको नमस्कार है। ७० हे माया के चक्र को चलानेवाले, आपको नमस्कार है। हे अज्ञानरूपी अन्धकार को समाप्त करनेवाले, आपको नमस्कार है। हे वेद-स्वरूप, हे वेद-पालक, हे वेद-स्थापक, हे वेद-वन्द्य, आपको नमस्कार है। ७१ हे संसार के ताप-स्वरूप हाथी को मार डालनेवाले सिंह, आपको नमस्कार है। हे पाप-स्वरूप अरण्य को काट डालनेवाले तीक्ष्ण कुठार (कुल्हाड़ा) स्वरूप, आपको नमस्कार है। हे त्रिविध तापों के दाह का शमन करनेवाले, हे अनन्त-शयन (शेष-शायी), हे अनन्त, आपको नमस्कार है। ७२ हे दसों अवतारों के चरित्र (लीलाओं) के चालक, आपको नमस्कार है। हे अनन्त वेशों के धारी, आपको नमस्कार है। हे अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक, हे जगदोद्धारक, हे जगत्पति, आपको नमस्कार है। ७३ हे (ब्रह्माण्ड की) उत्पत्ति-स्थिति और समाप्ति कर देनेवाले, आपको नमस्कार है। हे कैवल्य पद अर्थात मोक्ष प्रदान करनेवाले, हे अज (अजन्मा), हे अजित, हे सर्वात्मा, हे करुणालय, हे सुख-सागर, आपको नमस्कार है। ७४ हे जन्म और मृत्यु स्वरूप रोगों का निराकरण करनेवाले वैद्य, हे सच्चिदानन्द, हे स्वसंवेद्य, हे मायातीत, हे जगद्वन्द्य, आपको नमस्कार है। आप भेद-अभेद भाव के परे हैं। ७५ हे छहों विकारो[1] से रहित, आपको

---

१ छः विकार—अस्ति (गर्भावस्था), जायते (जन्म ग्रहण करना), वर्धते (बढ़ना), विपरिणमते (युवावस्था को प्राप्त होना), अपक्षीयते (वृद्धावस्था को प्राप्त होना), विनश्यति (मृत्यु को प्राप्त होना)।

मायातीता जगद्वंद्या। भेदाभेदातीत तूं। ७५ नमो षड्विकाररहिता। नमो सकलषड्गुणालंकृता। नमो अरिषड्वर्गच्छेदक प्रतापवंता। शब्दातीता निरंजना। ७६ वृषभाचे नाकीं वेसणी। घालूनि भोवंडी अखंड धरणी। तैसे तुझ्या सत्तेंकरूनी। सकळ देव वर्तती। ७७ तुझें शिरीं धरूनि शासन। वर्ततों तुझी आज्ञा पाळून। ऐसें असतां दैत्यीं विघ्न। पृथ्वीवरी मांडिलें। ७८ कंसचाणूरादि दैत्य माजले। काळयवनें यज्ञ मोडिले। जरासंधें थोर पीडिले। बंदी घातले धर्मिष्ठ नृप। ७९ मारिले गाई ब्राह्मण। विष्णुभक्तां ओढवलें विघ्न। धर्म टाकिले मोडून। पृथ्वी संपूर्ण गांजिली। ८० ऐशियासी काय विचार। तूं दयार्णव जगदुद्धार। ऐसें बोलोनि विधि सुरवर। तटस्थरूप पाहती पैं। ८१ तों क्षीरसागराहूनी। उठली अंतरिक्षध्वनी। नाभी नाभी म्हणोनी। चिंता मनीं करूं नका। ८२ मी यादवकुळीं अवतार। घेऊन करीन दुष्टसंहार। तुम्हीं देव समग्र। यादव होऊनि येइंजे। ८३

नमस्कार है। हे समस्त छहों गुणों[1] से अलंकृत, आपको नमस्कार है। हे छहों विकारों के वर्ग स्वरूप शत्रु को छिन्न-भिन्न करनेवाले, हे प्रतापवान, हे शब्दातीत, हे निरंजन, आपको नमस्कार है। ७६ जिस प्रकार कोई किसी बैल की नाक में नकेल डालकर उसे समस्त धरती पर चक्राकार घुमा देता हो, उसी प्रकार आपकी सत्ता से समस्त देव (आपके पूर्णतः अधीन होकर उस बैल की भाँति घूमते रहते हैं, अर्थात्) आचार-व्यवहार करते हैं। ७७ आपके शासन को मस्तक पर धारण करके (शिरोधार्य मानकर) हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए आचार-व्यवहार करते हैं। ऐसा होते हुए भी दैत्यों ने पृथ्वी पर विघ्न उत्पन्न कर दिये हैं। ७८ कंस, चाणूर आदि दैत्य उन्मत्त हो गये हैं; कालयवन ने यज्ञ उध्वस्त किये हैं। जरासन्ध ने धर्म-निष्ठ राजाओं को बहुत पीड़ित किया और उन्हें बन्दी-गृह में डाला है। ७९ उन्होंने गायों और ब्राह्मणों को मार डाला। (उनके कारण) भगवान विष्णु के भक्तों पर विघ्न आ गया है। उन्होंने धर्मों (धार्मिक विधियों) को (नष्ट कर) तोड़ डाला है और सम्पूर्ण पृथ्वी को उत्पीड़ित किया है। ८० इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है? आप दया के सागर हैं, जगत के उद्धारक हैं। ऐसा बोलकर विधाता तथा देव चुप होकर देखते रहे। ८१ तब क्षीरसागर में से यह अन्तरिक्ष ध्वनि (आकाशवाणी) उत्पन्न हो गयी—न डरो, न डरो; मन में कोई चिन्ता न करो। ८२ मैं यादव-कुल में अवतार ग्रहण करके दुष्टों का संहार कर डालूँगा। तुम समस्त देव यादव बनकर (पृथ्वी पर) आ जाना। ८३ और जो समस्त उपदेव हैं, वे गोकुल में गोपाल हो जाएँ; समस्त ऋषि

१ छः गुण (ईश्वरीय)—ऐश्वर्य, धर्म, यज्ञ, श्री, ज्ञान और वैराग्य।

आणिक जे उपदेव सकळ। त्यांहीं गोकुळीं व्हावें गोपाळ। ऋषीं वत्स व्हावें सकळ। मी पाळून उद्धरीन। ८४ धर्म समीर सहस्रनयन। अश्विनौदेव दोघे जण। यांहीं कुंतीउदरीं अवतरून। भूभारहरण करावें। ८५ बृहस्पतीनें व्हावें द्रोण। द्यावें पांडवांसी विद्यादान। अग्नीनें व्हावें धृष्टद्युम्न। पांचाळाचे निजयागीं। ८६ कलह माजवावया आधीं। पार्वतीनें व्हावें द्रौपदी। लक्ष्मी रुक्मिणी त्रिशुद्धी। वैदर्भउदरीं अवतार। ८७ बळिभद्र होईल संकर्षण। वसुदेव देवकी दोघेंजण। मी त्यांच्या पोटीं अवतरोन। करीन पावन तयांसी। ८८ जें तीन जन्मपर्यंत। त्यांहीं तप केलें बहुत। तेंफळा आलें समस्त। मी होईन सुत तयांचा। ८९ ऐसी अंतरिक्षीं होतां ध्वनी। देवीं जयजयकार करूनी। नमस्कार साष्टांग घातला धरणीं। आनंद मनीं न समाये। ९० ते शब्द देवांस कैसे वाटले। कीं सुखाचे सागर लोटले। कीं चातकासी ओळले। मेघ जैसे आकाशीं। ९१ जन्मवरी दरिद्रें पीडिला। त्यासी धनाचा कूप सांपडला। कीं मरे तयासी जोडला। सुधासिंधु अकस्मात। ९२ कीं जननी चुकोनि गेली। ते बाळकासी जैसी भेटली। कीं तृषाक्रांतें देखिली। भागीरथी अकस्मात। ९३ कीं जन्मांधासी

वत्स हो जाएँ। मैं (तुम सबका) पालन (रक्षण) करते हुए उद्धार करूँगा। ८४ धर्म (यम), वायु, इन्द्र, दोनों जने अश्विनीकुमार—ये भी कुन्ती के उदर से अवतरित होकर भूमि के (दुष्ट-पापी लोगों के पाप-) भार का हरण करें। ८५ (गुरु) बृहस्पति द्रोण (के रूप में उत्पन्न) हो जाएँ और वे पाण्डवों को विद्या-दान करें। अग्नि पांचाल-राज द्रुपद के यज्ञ में धृष्टद्युम्न (के रूप में उपस्थित) हो जाएँ। ८६ पहले कलह मचा देने के हेतु पार्वती द्रौपदी (के रूप में उत्पन्न) हो जाएँ। लक्ष्मी विदर्भ-राज भामक के उदर से सचमुच रुक्मिणी के रूप में अवतार ग्रहण करें। ८७ संकर्षण बलभद्र बन जाएँ। मैं वसुदेव और देवकी दोनों जनों के उदर से अवतरित होकर उनको पावन कर दूँगा। ८८ आकाश में ऐसी ध्वनि के उत्पन्न होते ही देवों ने जय जयकार करते हुए भूमि पर साष्टांग नमस्कार किया। उनका आनन्द मन में नहीं समा रहा था। ८९-९० वे शब्द देवों को कैसे प्रतीत हुए ? (उन्हें ऐसा जान पड़ा कि उन शब्दों के रूप में) सुख के सागर उमड़ उठे हों, अथवा चातकों के लिए (वे शब्द) आकाश से मेघ जैसे बरस पड़े हों। ९१ अथवा कोई जीवन-भर दरिद्रता से पीड़ित हो गया हो और (अब) उसे धन की खान मिल गयी हो। अथवा जो मर रहा हो, उसे अकस्मात अमृत-सागर प्राप्त हो गया हो। ९२ अथवा जैसे माता भूल से बिछुड़ गयी हो और उस बालक से सहसा वह मिल गयी हो; अथवा प्यास से पीड़ित किसी (व्यक्ति) ने सहसा गंगा को देखा हो। ९३ अथवा किसी जन्मान्ध

आले नयन। कीं रोगिया जोडलें दिव्य रसायन। कीं वणव्यांत जळतां पूर्ण। अद्भुत घन वर्षला। ९४ कीं वांचवावया लक्ष्मण। हनुमंतें आणिला गिरि द्रोण। वानर सुखावले देखोन। तैसेच देव हर्षले। ९५ कीं अयोध्येसी आला रघुनाथ। देखोनि आनंदला भरत। तैसेच देव समस्त। ब्रह्मानंदें कोंदले। ९६ आनंद जाहला सकळां। देव पावले स्वस्थळा। चिंतेचा दुष्काळ गेला। सुखसोहळा थोर वाटे। ९७ इकडे यदुवंशीं शूरसेन। त्यासी जाहलें पुत्रनिधान। आनकदुंदुभि नाम पूर्ण। वसुदेव तोचि जाण पां। ९८ वसुदेवाच्या जन्मकाळीं। देवीं दुंदुभी वाजविल्या निराळीं। आनकदुंदुभि नाम ते वेळीं। वसुदेवासी ठेविलें। ९९ दुंदुभी वाजवावयाचें कारण। याचें पोटीं वासुदेव आपण। अवतरेल हें जाणून। देवीं दुंदुभी वाजविल्या। १०० याचें उदरीं अवतरेल वासुदेव। म्हणोन नांव ठेविलें वसुदेव। त्याचा आरंभिला विवाह। मथुरेमाजी गजरेंसीं। १०१ उग्रसेन मथुरानाथ। कंस दुरात्मा त्याचा सुत। परी तें पितृरेत नव्हे निश्चित।

के नयन उत्पन्न हो गये हों, अथवा किसी रोगी को दिव्य रसायन प्राप्त हो गया हो, अथवा दावानल में पूर्णतः जल जाते-जाते (उस आग को बुझाने के लिए मानो) मेघ अद्भुत रूप से बरस गया हो। ९४ अथवा (जब) लक्ष्मण को बचाने के लिए हनुमान द्रोणगिरि लाया था, (तब) उसे देखकर वानर (जिस प्रकार) सुख को प्राप्त हो गये, उसी प्रकार (उस आकाशवाणी को सुनकर) देव आनन्दित हो गये। ९५ अथवा रघुनाथ राम को अयोध्या (लौट) आये देखकर जिस प्रकार भरत आनन्दित हो गये, उसी प्रकार (आकाशवाणी को सुनकर) समस्त देव ब्रह्मानन्द से भर उठे। ९६ (इस प्रकार) सबको आनन्द हो गया। (तब) देव अपने (-अपने) स्थान चले गये। चिन्ता का अकाल समाप्त हुआ और सुख का बड़ा उत्सव प्रतीत होने लगा। ९७

इधर यदु-वंश में शूरसेन (नामक राजा) के पुत्र रूपी निधान उत्पन्न हो गया। उसका पूर्ण नाम 'आनकदुन्दुभि' (पड़ गया) था। उसी को 'वसुदेव' समझिए। ९८ वसुदेव के जन्म के समय देवों ने आकाश में दुन्दुभियाँ बजायीं; (अतः) उस समय वसुदेव का नाम 'आनकदुन्दुभि' रख दिया। ९९ दुन्दुभियाँ बजाने का (क्या) कारण है? इस (वसुदेव) के उदर से (भगवान) वासुदेव स्वयं अवतरित होंगे, यह जानकर देवों ने दुन्दुभियाँ बजा दी थीं। १०० (भगवान) वासुदेव उनके उदर से अवतरित होंगे, इसलिए उनका नाम 'वसुदेव' रख दिया। (कुछ वर्षों पश्चात् यथा-समय) मथुरा में उनका विवाह (-समारोह) आरम्भ किया। १०१ (उस समय) उग्रसेन (नामक) मथुरा का स्वामी (राजा) था। दुरात्मा कंस उसका पुत्र था। परन्तु वह निश्चय ही पितृ-वीर्य (से

अन्यवीर्य मिसळलें। २ उग्रसेनाची स्त्री पतिव्रता। परमसात्त्विक शुचिस्मिता। एक दैत्य आला अवचिता। तेणें उचलोन ते नेली। ३ अरण्यांत नेऊन बळें। सती भोगिली चांडाळें। मग दैत्य म्हणे ते वेळे। पुत्र तुज होईल। ४ मग सती काय बोले बोल। तुझा पुत्र जो का होईल। त्यासी श्रीकृष्ण वधील। आपटोन क्षणमात्रें। ५ सती देखोनि क्रोधायमान। दैत्य पळाला टाकून। त्यावरी कंस दुर्जन। पुत्र जाहला तोचि पैं। ६ सदा पितयासी द्वेषी। देखों न शके मातेसी। यादवांसी उपहासी। संगतीसी राहूं नेदी। ७ बापास मागें लोटून। स्वइच्छें राज्य करी आपण। विष्णुभक्त गाई ब्राह्मण। त्यासी आणूनि जिवें मारी। ८ दैत्य जे का दुष्ट दुर्जन। तेच केले आपुले प्रधान। गांवांतून गेले सज्जन। अधर्म पूर्ण वर्तला। ९ नरकींचे राहणार किडे। त्यांसी दुर्गंधीच बहु आवडे। विष्ठा देखोनि सुरवाडे। काक जैसा दुरात्मा। ११० जो मद्यपी दुर्जन। त्यासी नावडे तत्त्वज्ञान। दिवाभीतालागून। नावडे दिन सर्वथा। १११ शशी नावडे तस्करा। सत्संग नावडे पापी नरा।

उत्पन्न) नहीं था, उसमें किसी अन्य का वीर्य मिल गया था। १०२ (वस्तुतः) उग्रसेन की स्त्री पतिव्रता थी; वह परम सात्त्विक, सुचिस्मिता (पवित्र) थी। (एक समय) अचानक कोई एक दैत्य आ गया और वह उसे उठाकर ले गया। १०३ उस चाण्डाल ने अरण्य में ले जाकर बलात् उस सती का उपभोग किया। फिर वह दैत्य उस समय (उससे) बोला, 'तुम्हारे पुत्र (उत्पन्न) होगा।'। १०४ तब उस सती ने (उससे) क्या बात कही? 'तुम्हारे (मुझसे) जो कोई पुत्र (उत्पन्न) हो जाएगा, श्रीकृष्ण पटककर क्षणमात्र में उसका वध करेंगे।' १०५ सती को (इस प्रकार) क्रोधायमान देखकर वह दैत्य उसे (वहीं) छोड़कर भाग गया। तदनन्तर उसके कंस नामक वही दुष्ट पुत्र (उत्पन्न हो गया। १०६ वह सदा अपने पिता (उग्रसेन) से द्वेष करता था, माता को (प्रेम से) न देख पाता था, यादवों का उपहास करता और उन्हें साथ में रहने न देता था। १०७ अपने पिता को पीछे धकेलकर (हटाकर) वह अपनी इच्छा के अनुसार राज करने लगा। (भगवान) विष्णु के भक्तों, गायों, ब्राह्मणों को लाकर वह उन्हें जान से मार डालता था। १०८ जो दैत्य दुष्ट तथा दुर्जन थे, उन्हीं को उसने अपने मंत्री (नियुक्त) किया। (अतः) उस ग्राम से भले लोग चले गये। (वहाँ) पूरा-पूरा अधर्म मच गया। १०९ नरक में रहनेवाले जो कीड़े होते हैं, उन्हें दुर्गन्धि ही बहुत भाती है। कौए जैसा दुरात्मा विष्ठा को देखकर सुख को प्राप्त हो जाता है। ११० जो मद्यपी तथा दुर्जन है, उसे आत्म-ज्ञान (अथवा दर्शन शास्त्र) अच्छा नहीं लगता; उल्लू को दिवस बिलकुल नहीं भाता। १११ चोर को चन्द्र नहीं भाता; पापी

हिंसकाचिया अंतरा। दया कैंची उद्भवे। १२ कृपणासी नावडे धर्म। स्त्रीलुब्धा नावडे सत्कर्म। निंदकासी नावडे प्रेम। भजनमार्ग सर्वथा। १३ कीर्तन नावडे भूतप्रेतां। दुग्ध नावडे नवज्वरिता। टवाळासी तत्त्वतां। जपानुष्ठान नावडे। १४ तैसें कंसें मथुरेस केलें। धर्म सत्कर्म बुडालें। दैत्य अवघे मिळाले। कंसाभोंवते सर्वदा। १५ मुष्टिक आणि चाणूर। केशी प्रलंब अघासुर। जळासुर दुराचार। असुरासुर पापात्मा। १६ कागासुर आणिक खर। शल तोशल धेनुकासुर। परम निर्दय अरिष्टासुर। व्योमासुर महाक्रोधी। १७ परम सुंदर लोकमान्या। उग्रसेनासी जाहली कन्या। देवकी नामें परम धन्या। सर्वलक्षणीं युक्त जे। १८ जैसा शुक्लपक्षींचा चंद्र। तैसा ते वाढे सुकुमार। देखोनियां उपवर। वसुदेव वर नेमिला। १९ निजभारेंसी शूरसेन। मथुरेसी आला करावया लग्न। सामोरे जाऊन कंस उग्रसेन। सीमांतपूजा त्या केली। १२० परम सुंदर वसुदेव वर। पुढें भेरी धडकती चंद्रानना थोर। मुखद्वयाचे गंभीर। मृदंग वाद्यें गर्जती। २१ मुखवायूचें लागतां बळ। सनया गर्जती रसाळ। झल्लरी

नर को सत्संगति प्रिय नहीं लगती। हिंसक (वधिक) के अन्तःकरण में दया कैसे उत्पन्न होगी। ११२ कृपण को (दान सम्बन्धी) धर्म नहीं अच्छा लगता; स्त्री के प्रति लुब्ध (आसक्त) व्यक्ति को सत्कर्म नहीं भाता; निन्दक को (भगवत्) प्रेम तथा भजन (भक्ति) मार्ग बिलकुल नहीं अच्छा लगता। ११३ भूत-प्रेतों को कीर्तन नहीं भाता; नवज्वर से पीड़ित व्यक्ति को दूध नहीं भाता; उपहासक-निन्दक को जप (आदि) का अनुष्ठान सचमुच अच्छा नहीं लगता। ११४ उसी प्रकार कंस ने मथुरा में व्यवहार किया। धर्म तथा सत्कर्म डूब गया। समस्त दैत्य कंस के चारों ओर नित्य प्रति इकट्ठा हुए रहते थे, जैसे—मुष्टिक और चाणूर, केशी, प्रलम्ब, अघासुर, दुराचारी जलासुर, पापात्मा असुरासुर, कागासुर और खर, शल, तोशल, धेनुकासुर, परम निर्दय अरिष्टासुर, महाक्रोधी व्योमासुर। ११५-११७ उग्रसेन के देवकी नामक परम धन्य, परम सुन्दर, लोकमान्य (लोकप्रिय) कन्या हो गयी, जो समस्त (शुभ) लक्षणों से युक्त थी। ११८ जिस प्रकार शुक्ल पक्ष का चन्द्र विकसित होता जाता है, उसी प्रकार वह सुकुमारी बड़ी होती जा रही थी। उसे विवाह-योग्य हुई देखकर (उग्रसेन ने उसके लिए) वसुदेव को वर निर्धारित किया। ११९ अपनी सेना-सहित शूरसेन विवाह करने के लिए मथुरा आ गये, तो कंस और उग्रसेन ने अगुवानी के लिए (आगे) जाकर उनका सीमान्त-पूजन किया। १२० वसुदेव तो परम सुन्दर वर थे। आगे-आगे बड़ी चन्द्राकार भेरियाँ बज रही थीं। दो-दो मुखवाले (द्विमुखी) मृदंग आदि वाद्य गम्भीरता से बज रहे थे। १२१ मुख-वायु

टाळ घोळ। पणव ढोल गर्जती। २२ तंत वितंत घन सुस्वर। चतुर्विध वाद्यांचा गजर। लोक पहावया येती समग्र। वसुदेव वर कैसा हें। २३ जानवशासी घर। दिधलें विशाळ सुंदर। देवकप्रतिष्ठा करूनि सत्वर। लग्नघटिका घातली। २४ मिरवत आणिला वसुदेव। अंबरीं हर्षले सकळ देव। याच्या पोटीं अवतरेल वासुदेव। सत्य शब्द हा एक। २५ ज्याच्या पोटीं येईल जगज्जीवन। त्याची पूजा करी उग्रसेन। यथाविधि पाणिग्रहण। केलें बहुत आनंदें। २६ दोन सहस्र दासी आंदण। दिधले लक्ष एक वारण। पवनवेगी तुरंग सहितआभरण। दोन लक्ष दीधले। २७ मिरवावया दोघें वधूवरें। वरात काढिली कंसासुरें। रथावरी बैसविलीं ओहरें। आपण धुरें सारथी जाहला। २८ पुढें होती वाद्यांचे गजर। दारुनळियांचे भडिमार। चंद्रज्योती चंद्राकार। तेजें अंबर प्रकाशे। २९ आपण कंस जाहला सारथी। पुढें वेत्रपाणी लोकांस सारिती। रथ चालवावया वाव करिती। कंसाच्या

अर्थात फूँक लगते ही उसके बल से शहनाइयाँ मधुर गर्जन कर रही थीं—अर्थात बजने लगीं। झाँझ, करताल, छड़-कड़ियाँ, पणव, ढोल गरज रहे थे। १२२ सुस्वर, तन्तु-वितन्तु वाद्य, (घन घण्टे जैसे) चारों प्रकार के वाद्यों का गर्जन हो रहा था। तो समस्त लोग यह देखने आ गये कि वसुदेव नामक ये वर कैसे हैं। १२३ जनवासे के रूप में विशाल और सुन्दर घर दिया। (इधर) मातृकाओं की प्रतिष्ठापना और पूजा करके झट से मुहूर्त बेला जानने के लिए घटिका-पात्र (पानी में) रखा गया। १२४ (वे लोग) गाजे-बाजे के साथ शोभा-यात्रा करते हुए वसुदेव को लाये, तो आकाश में समस्त देव आनन्दित हो उठे। (वे जानते थे कि) यह एक सत्य शब्द (बात) है कि (इनके पेट से भगवान) वासुदेव अवतरित होंगे। १२५ जिनके उदर से जगज्जीवन भगवान उत्पन्न होंगे, उन (वसुदेव) की उग्रसेन ने पूजा की। (तत्पश्चात् यथासमय) वसुदेव ने (देवकी का) यथाविधि बहुत आनन्द के साथ पाणिग्रहण किया। १२६ (उग्रसेन ने) उपहार के रूप में दो सहस्र दासियाँ दे दीं, एक लाख हाथी दे दिये; आभूषणों सहित पवन-वेगी दो लाख घोड़े प्रदान किये। १२७ दोनों वधू और वर को बाजे-गाजे के साथ समारोह-पूर्वक ले जाने के लिए कंसासुर ने बारात (वरयात्रा) का आयोजन किया। उसने वधू-वर को रथ में बैठा दिया और धुरा पर स्वयं बैठकर वह सारथी हो गया। १२८ आगे (-आगे) वाद्यों का गर्जन हो रहा था आतशबाजी का धमाका हो रहा था; चन्द्राकार चन्द्र-ज्योतियों (फुलझड़ियों) के तेज से आकाश प्रकाश को प्राप्त हो गया था। १२९ कंस स्वयं सारथी हो गया; आगे (-आगे) चोबदार लोगों को ठेल रहे थे और रथ चलाने के लिए स्थान (मार्ग खुला) बना रहे थे। (उस समय) कंस के चित्त में सुख अनुभव हो

चित्तीं सुख वाटे। १३० तों अकस्मात तये वेळीं। देववाणी गर्जे निराळीं। लोक तटस्थ सकळी। वाद्यें राहिलीं वाजतां। १३१ म्हणे रे कंसा निर्दैवा। खळा धरितोस बहुत हावा। परी देवकीचा पुत्र आठवा। तुज वधील निर्धारें। ३२ ऐसें ऐकतां श्रवणीं। कंस दचकला अंतःकरणीं। म्हणे आतां कासयाची भगिनी। टाकूं वधोनि येधवां। ३३ वेणीसी देवकी धरिली। आसडोनि रथाखालीं पाडिली। जैसी रंभा ताडिली। शुंडादंडें वारणें। ३४ कीं कमळिणी सुकुमार। धक्का लागतां होय चूर। कीं शिरसफूल अरुवार। क्षणमात्रें कुंचुंबे। ३५ कंसें शस्त्र उपसिलें। देवकीच्या मानेवरी ठेविलें। करुणास्वरें ते वेळे। देवकी बोले बंधूसी। ३६ अरे तूं कंसा माझा बंधु प्रसिद्ध। काय देखिलासी सख्या अपराध। कां रे करितोसी माझा वध। बंधुराया सुजाणा। ३७ बा रे तूं माझ्या कैवारिया। कां कोपलासी कंसराया। म्हणोनि देवकी लागे पायां। करुणास्वरें रुदन करी। ३८ हिंसकें धरिली जेवीं गाय। कंठीं सुरी घाली निर्दय। कीं व्याघ्रें महापापियें। हरिणी ग्रीवें धरियेली। ३९ करुणास्वरें आक्रंदे सुंदर। परी न सोडीच

रहा था। १३० तब उस समय सहसा आकाश में देववाणी गरज उठी, तो लोग चकित हो गये और समस्त वाद्य बजने से रहे (बजते-बजते रुक गये)। १३१ वह बोली—'रे भाग्यहीन कंस, रे खल, तू बहुत अभिलाषा धारण कर रहा है; परन्तु देवकी का आठवाँ पुत्र निश्चय ही तेरा वध करेगा।'। १३२ कानों से ऐसा सुनते ही कंस अन्तःकरण में भौंचक हो गया। वह बोला (उसने विचार किया), 'अब यह किसकी (कैसी) बहन ? अभी इसका वध कर डालें।'।१३३ (यह सोचकर) उसने देवकी की बेनी पकड़ ली और उसे खींचकर रथ से नीचे गिरा दिया जैसे (मानो) हाथी ने सूँड से केले (के पौधे) पर आघात किया हो। १३४ अथवा धक्का लगते ही सुकुमार कमलिनी चूर-चूर हो जाती है, अथवा शिरीष का कोमल फूल क्षणमात्र में कुम्हला जाता है (उसी प्रकार कंस के इस कठोर व्यवहार से देवकी की स्थिति हो गयी)। १३५ (फिर) कंस ने शस्त्र खींच लिया और देवकी की गरदन पर रख लिया। उस समय देवकी अपने भाई से करुण स्वर में बोली। १३६ 'अरे कंस, तुम मेरे विख्यात बन्धु हो। हे सखा, तुमने मेरा क्या अपराध देखा है ? हे सुजान बन्धुराज, मेरा वध क्यों कर रहे हो ?। १३७ रे मेरे सहायक (पक्षपाती), हे कंस राजा, तुम क्यों कुपित हो गये हो ?' यह कहते हुए देवकी उसके पाँव लगी और करुण स्वर में रुदन करने लगी। १३८ मानो जैसे किसी हिंसक ने गाय को पकड़ लिया हो, उस निर्दय ने उसकी गरदन पर छुरी मारी हो, अथवा किसी महापापी बाघ ने किसी हरिणी की गरदन पकड़ ली हो। १३९ वह सुन्दरी करुण स्वर

दुराचार। विदेहकन्या नेतां दशकंधर। न सोडी जैसा दुरात्मा। १४० देखोन देवकीची करुणा। अश्रू आले जनांच्या नयना। परम खेद उग्रसेना। दुःखार्णवीं बुडतसे। १४१ म्हणे रे कंसा चांडाळा। कां वधिसी माझी वेल्हाळा। माझ्या गळ्याची चंपकमाळा। रुळत पडली भूतळीं। ४२ माझ्या हृदयींचें दिव्य रत्न। लज्जापंकीं गेलें बुडोन। माझें सुढाळ मुक्त जाण। दावाग्नींत पडियेलें। ४३ माझी सुकुमार सुमनकळी। पडली जनांच्या पायांतळीं। कबरीवरी पडली धुळी। म्लान मुख दिसतसे। ४४ तुटली शिरींची मुक्तजाळी। विजवरा पडिला भूमंडळीं। वदनचंद्रा लागली धुळी। मुक्तें विखुरलीं कंठींचीं। ४५ जाहला एकचि हाहाकार। रडती समस्त नारीनर। रथाखालीं शूरसेनकुमर। उडी टाकोनि पातला। ४६ येऊन धरी कंसाचा हात। म्हणे स्त्री वधितां पाप बहुत। या पापासी नाहीं गणित। धर्मशास्त्रीं बोलिलें। ४७ एक रथभरी वधितां किडे। एक मेषवधाचें पाप घडे। शत मेष मारितां पडे। एक वृषभहत्या पैं। ४८ शत वृषभ वधिले। एक गोहत्येचें पाप घडलें। शंभर गोवधांहून आगळें।

में आक्रन्दन कर रही थी, परन्तु वह दुराचारी (कंस उसे) वैसे ही नहीं छोड़ रहा था, जैसे विदेह-कन्या सीता (का अपहरण करके उसे ले जाते समय उसके द्वारा क्रन्दन करते रहने पर भी) दुरात्मा रावण उसे नहीं छोड़ रहा था। १४० देवकी की दयनीय स्थिति को देखकर, लोगों की आँखों में आँसू आ गये। उग्रसेन को भी परम खेद हो गया। वे दुःख-सागर में डूब रहे थे। १४१ वे बोले, अरे चण्डाल कंस, मेरी लाड़ली का क्यों वध कर रहा है। मेरे गले की चम्पक (-पुष्प) -माला (-सी यह कन्या) भूतल पर लोट रही है। १४२ मेरे हृदय का यह (कन्यारूपी) दिव्य रत्न लज्जारूपी कीचड़ में डूब रहा है। मेरा यह सुघड़ मोती दावानल में पड़ गया है। १४३ मेरी यह सुकुमार पुष्प-कली लोगों के पाँव तले पड़ गयी है; इस (कन्या) की बेनी पर धूल पड़ गयी है और गले में पहने हुए (हार के) मोती बिखर गये हैं।'। १४४-१४५ (उस समय) अद्भुत हाहाकार मच गया; समस्त नारी-नर रोने लगे, तो शूरसेन-कुमार वसुदेव रथ में से नीचे कूद कर वहाँ पहुँच गये। १४६ आने पर उन्होंने कंस के हाथ को थाम लिया और कहा, 'स्त्री का वध करने से बहुत पाप होता है। इस पाप का हिसाव (नाप) धर्मशास्त्र (तक) में नहीं कहा है। १४७ एक रथ-भर कीड़ों का वध करने से एक मेष (भेड़े) के वध का पाप होता है; सौ मेषों को मार डालने से एक बैल की हत्या का पाप घटित होता है। १४८ सौ लों बैका वध किया हो, तो एक गोहत्या का पाप होता है (और) सौ गो-हत्याओं (के पाप) से बड़ा पाप ब्रह्म-हत्या से होता है। १४९ सौ ब्रह्म-हत्याओं का पाप, एक

ब्रह्महत्येचें पाप पैं। ४९ शत ब्रह्महत्यांचें पाप जाण। एक स्त्रीहत्येसमान। कंसराया तूं परम सुजाण। स्त्रीदान मज देईं। १५० कंस म्हणे इचा पुत्र देख। माझिया जीवाचा घातक। मी ईस वधीन आवश्यक। म्हणोनि शस्त्र उचलिलें। १५१ वसुदेव म्हणे घेईं भाक। जो मज सुत होईल देख। तो तुज देईन निःशंक। त्रिवाचा हें सत्य पैं। ५२ भाक देऊनि ते वेळीं। सोडविली ते वेल्हाळी। अश्रु वाहती नेत्रकमळीं। अधोवदनें स्फुंदत। ५३ सोहळ्यामाजी अनर्थ। जैसें दुग्धामाजी सैंधव पडत। कीं दिव्य अन्नामाजी कालवत। विष महादुर्धर। ५४ कीं सुमनशेजे अरुवारी। पहुडला दिव्य मंदिरीं। तों तें घर आंगावरी। अकस्मात पडियेलें। ५५ कीं द्रव्याचा घट लाधला। म्हणोनि कर आंत घातला। तों तेथें भुजंग प्रकटला। तेणें डंखिलें क्षणमात्रें। ५६ साधावया जातां निधान। तों विवशी पडे गळां येऊन। कीं उपजतां वैराग्यतत्त्वज्ञान। प्रारब्ध आडवें धांवत। ५७ तैसें कंसें केलें वेळां। कैंचे साडे कैंचा सोहळा। भगिनी शालक उभयतांला। बंदिशाळे रक्षिलें। ५८ शृंखला घालून उभयतांप्रती। रक्षण दृढ ठेवी

स्त्री-हत्या के (पाप) समान समझ लो। हे कंसराजा, तुम परम सुजान हो, मुझे स्त्री-दान दे दो।'। १५० (इस पर) कंस ने कहा, 'देखो, इसका पुत्र मेरे जीव का घातक है। (इसलिए) मैं इसका अवश्य वध करूँगा।' यह कहकर उसने शस्त्र उठा लिया। १५१ (तब) वसुदेव बोले, 'मैं शपथ करता हूँ—'देखो, मेरे जो (भी) पुत्र (उत्पन्न) होगा, मैं निःसन्देह वह तुम्हें दे दूँगा—यह तीन त्रिवार (पक्का) सत्य है।' १५२ (इस प्रकार) उन्होंने शपथ करके उस समय उस प्रिय (स्त्री) को छुड़ा लिया। उसके नेत्र-कमलों से आँसू बह रहे थे और वह अधोमुख हो (सिर झुकाये हुए) सुबक रही थी। १५३ उस आनन्दोत्सव में (इस प्रकार) विघ्न (उत्पन्न) हो गया। जिस प्रकार दूध में नमक पड़ गया हो, अथवा दिव्य अन्न में किसी ने महादुर्धर विष मिला दिया हो, अथवा कोई दिव्य भवन में सुकोमल पुष्प-शय्या पर लेट गया हो, त्यों ही वह घर ढहकर अकस्मात उसके शरीर पर गिर गया हो, अथवा किसी को धन का दिव्य घट मिल गया हो और उसने उसके अन्दर हाथ डाला हो, तो वहाँ भुजंग प्रकट हो गया हो और उसने क्षणमात्र में उसे काटा हो, अथवा कोई निधान किसी के द्वारा प्राप्त करने जाते ही उसके गले पिशाचिनी आकर पड़ जाए, अथवा (किसी साधक के लिए) वैराग्य तथा आत्मज्ञान सिद्ध हो जाते ही उसका दुर्भाग्य दौड़ते हुए उसमें आड़ा आ जाए, उसी प्रकार (वसुदेव-देवकी के विवाह के आनन्दोत्सव में) कंस ने (विघ्न उपस्थित) कर दिया। कैसी साड़ियाँ? कैसा आनन्दोत्सव? (यहाँ तो कंस ने) अपनी भगिनी और श्यालक दोनों को बन्दीशाला में

भोंवतीं। जैसे चंदनासी रक्षिती। महाभुजंग सर्वदा। ५९ ऐसी कंसें केली करणी। तंव देवकी जाहली गर्भिणी। परम चिंता वाटे मनीं। तंव ते प्रसूत जाहली वो। १६० जाहला प्रथमचि पुत्र। परम सुंदर सुनेत्र। बाळ घेऊनि पवित्र। मुख पाहिलें वसुदेवें। १६१ मग वसुदेव बोले वचन। बाळा तुजला आलें रे मरण। देवकीचे आसुवें नयन। भरले तेव्हां सद्गद। ६२ वसुदेव म्हणे प्रमाण। कंसासी दिधलें भाकदान। देवकी म्हणे नेऊन। अवश्य द्यावें स्वामिया। ६३ वसुदेवें उचलिलें बाळ। भडभडां वाहे अश्रुजळ। तों कंसासी कळलें तात्काळ। आणवी बाळ क्षणमात्रें। ६४ तों देवकी म्हणे वसुदेवा। तुम्हीं पुत्र तेथें न्यावा। जरी कृपा आली बंधुवा। तरी एवढें सोडील। ६५ बाळ घेवोनि वसुदेव चालिला। परम मुखचंद्र उतरला। पायीं तैसीच शृंखला। वाजे खळखळां चालतां। ६६ श्मश्रुकेश बहु वाढले। नखांचे गुंडाळे वळले। आंग परम मळलें। शेणें घोळिलें मुक्त जैसें। ६७

रख दिया। १५४-१५८ उन दोनों को शृंखलाओं में आवद्ध करके उस (बन्दीशाला) के चारों ओर दृढ़ पहरा बैठा दिया, जैसे चन्दन की महाभुजंग नित्यप्रति रखवाली करते हैं। १५९

कंस ने इस प्रकार करनी की। तब (यथासमय) देवकी गर्भवती हो गयी। उनके मन में परम चिन्ता अनुभव हो रही थी। तब (यथा काल) वह प्रसूत हो गयी। १६० (उसके) पहले ही पुत्र उत्पन्न हो गया—वह परम सुन्दर तथा अच्छे नेत्रोंवाला था। वसुदेव ने उस पवित्र शिशु को लेकर उसके मुख को देख लिया। १६१ फिर वसुदेव ने यह बात कही, 'रे बालक, तेरे लिए मौत आ गयी है।' तब (यह सुनकर) देवकी की आँखें आँसुओं से भर गयीं। वह गद्गद हो उठी। १६२ (फिर) वसुदेव बोले, 'कंस को जो शपथपूर्वक अभिवचन दिया है, वह प्रमाण-भूत (होकर) रहेगा।' तो देवकी बोली 'हे स्वामी, (यह शिशु) ले जाकर (उसे) अवश्य दें।' १६३ (तदनन्तर) वसुदेव ने उस बच्चे को उठा लिया। उनके नेत्रों से विपुल मात्रा में लगातार अश्रु-जल बह रहा था। तब कंस को यह (समाचार) विदित हुआ, तो वह क्षणमात्र में उस बालक को तत्काल लिवा लाया (लाने का प्रबन्ध कर ही रहा था)। १६४ तब देवकी वसुदेव से बोली, 'आप पुत्र को वहाँ ले जाएँ। यदि (मेरे) वन्धु को कृपा अनुभव हो आए, तो इतने (एक बालक) को छोड़ देगा।'। १६५ (फलतः) शिशु लेकर वसुदेव चल दिये। उनका मुख-चन्द्र उतर गया (निस्तेज हो गया)। पाँवों में वैसी ही शृंखला थी, जो उनके चलते-चलते खनकती हुई बज रही थी। १६६ उनकी मूँछें और बाल बहुत बढ़ गये थे, नाखूनों की गुत्थियाँ बन गयी थीं। बदन बहुत मलिन हो गया था। जैसे मोती गोवर से

कीं केतूनें व्यापिला दिनकर। कीं राहूनें आच्छादिला क्षीराब्धिपुत्र। तैसा वसुदेव पवित्र। जातां दिसे म्लान पैं। ६८ मागें पुढें रक्षिती सेवक। कंसापाशीं आणिलें बाळक। रायापुढें ठेविलें देख। शूरसेनसुतें ते वेळीं। ६९ बाळक सुंदर देखिला। कंसासी स्नेह दाटला। मग प्रधानासी ते वेळां। काय बोलिला कंस तो। १७० म्हणे जो आठवा होईल सुत। तोचि आमुचा शत्रु निश्चित। हे कासया वधावे सात। याचे यास असोत हे। १७१ कंस म्हणे वसुदेवा। हा आपुला तुम्हीं बाळ न्यावा। मुख्य आम्हांसी आठवा द्यावा। तो मीच वधीन स्वहस्तें। ७२ ऐसें ऐकतांचि उत्तर। परतला शूरसेनकुमार। मनीं म्हणे नवल थोर। खळासी उपजला सद्भाव। ७३ म्हणे गोड कैसें जाहलें हालाहल। जातवेद कैसा जाहला शीतळ। पन्नगाच्या मुखींचें गरळ। सुधारसतुल्य जाहलें। ७४ पाषाणाचें हृदय द्रवलें। वृश्चिकें साधुपण धरिलें। कंटकशेजे निवालें। अंग आजी वाटतें। ७५ मद्यपियासी उपजलें ज्ञान। हिंसक जाहला दयाघन। महाकृपणें सकळ धन।

मल दिया हो; अथवा सूर्य को केतु ने व्याप्त कर लिया हो, अथवा राहु ने क्षीर-सागर-पुत्र चन्द्रमा को आच्छादित कर लिया हो, वैसे ही (मूलतः) पवित्र वसुदेव (कंस के पास) जाते हुए म्लान दिखायी दे रहे थे। १६७-६८ उनके आगे-पीछे सेवक रखवाली कर रहे थे। (इस प्रकार) देखिए शूरसेन के पुत्र वसुदेव बालक को कंस के पास ले आये और उन्होंने उसे राजा (अर्थात कंस) के सामने रख दिया। १६९ जब उस सुन्दर बालक को देखा, तो कंस में स्नेह उमड़ उठा। तब वह (कंस) उस समय अपने मन्त्री से क्या बोला? १७० वह बोला, 'इनके जो आठवाँ पुत्र होगा, वही निश्चित रूप से हमारा शत्रु है। (इसलिए) इन (पहले सातों (पुत्रों) का क्यों वध करें? इनके वे पुत्र इनके लिए ही रह जाएँ। १७१ (तदनन्तर) कंस बोला, 'हे वसुदेव, अपना यह बालक आप ले जाएँ। मुख्यतः हमें (अपना) आठवाँ (पुत्र) दें। मैं ही अपने हाथों उसका वध करूँगा।'। १७२ ऐसा उत्तर (वचन) सुनते ही शूरसेन-कुमार वसुदेव लौट गये। वे मन-ही-मन बोले, 'बड़ा आश्चर्य है—खल में सद्भाव उत्पन्न हो गया है। १७३ वे बोले (उन्होंने सोचा), 'हलाहल कैसे मीठा हो गया? आग शीतल कैसे हो गयी? सर्प के मुख का विष सुधारस (अमृत) के तुल्य (समान कैसे) हो गया है। १७४ पाषाण का हृदय (कैसे) पसीज उठा। बिच्छू ने साधुत्व (कैसे) धारण किया है। आज जान पड़ता है कि कंटक-शय्या पर अंग शीतलता को प्राप्त हो गया है। १७५ मद्यपी को (आत्म-) ज्ञान उत्पन्न हो गया; हिंसक दया का मेघ बन गया। आज महाकृपण ने समस्त धन दान में दे दिया १७६ बाघ ने आज शान्ति धारण की। खल में हरि-भक्ति

दान आजि दीधलें। ७६ व्याघ्रें धरिली आजि शांती। खळासी उपजली हरिभक्ती। वज्रधार निश्चितीं। नम्र आजि वाटतसे। ७७ वसुदेव वेगें ते वेळे। प्रवेशला हो बंदिशाळे। देवकीपाशीं बाळ दिधलें। सांगितलें वर्तमान। ७८ देवकीसी संतोष वाटला। जैसा प्राण जातां परतला। तंव तो नारद ते वेळां। येतां जाहला कंससभे। ७९ नारदातें कंसें पूजिलें। सकळ वर्तमान निवेदिलें। नारद म्हणे भुललें। चित्त कां तुझें कंसराया। १८० तुवां सोडिलें वसुदेवसुता। परी तुझा शत्रु कोणता। आठापासून उफराटें गणितां। तरी पहिलाच शत्रु तुझा। १८१ दुसरा कीं तिसरा चौथा। शत्रु तुझा रे तत्त्वतां। आठांमध्यें तुझ्या घाता। प्रवर्तेल कोण तो न कळे। ८२ ऐकोन ब्रह्मसुताचें वचन। कंसें तुकाविली मान। सरडा कंटकवृक्षीं बैसोन। ग्रीवा जैसी हालवी। ८३ नारद हितशत्रु होय। हित सांगोन करवी क्षय। बाळहिंसा करितां पाहें। अल्पायुषी होय तो। ८४ कुलक्षय होऊनि राज्य बुडे। ऐसे नारद सांगे निवाडे। कंसासी ते बुद्धि आवडे। म्हणे बरवें

उत्पन्न हो गयी। आज निश्चय ही वज्र की धार सौम्य लग रही है। १७७ उस समय (कंस के यहाँ से लौटकर) वसुदेव (बड़े) वेग-पूर्वक (तेज गति से) बन्दीशाला में प्रविष्ट हो गये। (फिर) उन्होंने देवकी को बालक (पकड़ा) दिया, (और) समस्त समाचार कह दिया। १७८ (उसे सुनकर) देवकी को सन्तोष अनुभव हो गया, (उसे लगा) जैसे निकल जाते-जाते प्राण लौट आये हों।

तब उस समय नारद (ऋषि) कंस की (राज-) सभा में आ गये। १७९ कंस ने नारद का पूजन किया और समस्त समाचार कह दिया, तो नारद बोले, 'हे कंसराजा, तुम्हारा चित्त क्यों मोह में (भ्रम में) पड़ गया। १८० तुमने वसुदेव के पुत्र को छोड़ दिया। परन्तु (उनके पुत्रों में से) तुम्हारा कौन शत्रु है ? आठवें से उलटे गिन लें, तो पहला ही तुम्हारा शत्रु (हो सकता) है। १८१ दूसरा अथवा तीसरा, (अथवा) चौथा, सचमुच (कोई भी) तुम्हारा शत्रु (हो सकता) है। यह समझ में नहीं आ सकता कि आठों में से कौन तुम्हारे घात (वध) के लिए प्रवृत्त होगा।'। १८२ ब्रह्मा के पुत्र नारद के इस वचन को सुनकर कंस ने सिर वैसे ही हिलाया, जैसे गिरगिट कँटीले वृक्ष पर बैठकर गरदन हिलाता है। १८३ नारद तो हित (की बात दिखाते हुए), शत्रु (की भाँति हानि कर देनेवाले) हैं। वे हित (की बात) बताते हुए क्षय करा देंगे। देखिए, बाल-हत्या करने पर वह (हत्यारा) अल्पायुषी हो जाता है। १८४ (ऐसे व्यक्ति के) कुल का क्षय हो जाने पर उसका राज्य डूब जाता है (मिट्टी में मिल जाता है)। नारद तो ऐसे ही निर्णय बताते हैं। कंस को वह बुद्धि (वह सीख) अच्छी लगी और वह बोला, 'आपने

कथिलें जी। ८५ कंस क्रोधें धांविन्नला। बंदिशाळेमाजी आला। जैसा तस्कर संचरला। धनाढयाचे निजगृहीं। ८६ कीं देववरीं रिघे श्वान। कीं मूषकबिळीं व्याळ दारुण। कीं होमशाळेमाजी मळिण। अंत्यज जैसा पातला। ८७ कीं हरिणीचें पाडस सुकुमार। न्यावया आला महाव्याघ्र। कीं गोवत्स देखोनि सुंदर। वृक जैसा धांविन्नला। ८८ ऐसा बंदिशाळेमाजी आला। देवकीसी काळच भासला। बाळ हृदयीं दृढ धरिला। आच्छादिला निजपल्लवें। ८९ कोठें गे कोठें बाळ। म्हणोनि बोले चांडाळ। देवकी म्हणे तूं स्नेहाळ। बंधुराया सुजाणा। १९० ओंटी पसरी म्लानवदन। येवढें दे मज पुत्रदान। म्हणोनि धरिले चरण। निर्दयाचे तेधवां। १९१ कंसें बळें हात घालूनी। बाळ धरिला दृढ चरणीं। येरी आरडत पडे धरणीं। केळी जैसी चंड वातें। ९२ द्वारीं होती चंड शिळ। तिजवरी निर्दयें आपटिलें बाळ। तें छिन्नभिन्न जाहलें तात्काळ। पक्व फळासारिखें। ९३ दुर्जनासी कैंची दया। वाटपाड्यासी कैंची माया। उपरति पैशून्यवादिया।

अच्छी (बात) कह दी। १८५ (तत्पश्चात्) कंस क्रोध से दौड़ा और बन्दीशाला में आ गया। जिस प्रकार कोई चोर धनाढ्य (बड़े धनवान) के अपने घर के अन्दर प्रविष्ट हो गया हो, अथवा देवालय (अथवा देवघरों) में कोई कुत्ता प्रवेश करे, अथवा चूहे के विल में भयानक साँप आ जाए, अथवा जिस प्रकार कोई मलिन (पापी) अन्त्यज होम-शाला के अन्दर पहुँच गया हो, अथवा हिरनी के सुकुमार शावक को ले जाने के लिए बाघ आ गया हो, अथवा सुन्दर बछड़े को देखकर जिस प्रकार भेड़िया दौड़ा हो, उसी प्रकार (कंस) बन्दी-शाला के अन्दर आ गया। देवकी को वह काल (-पुरुष, यम) ही प्रतीत हुआ। तो उसने अपने बच्चे को हृदय से दृढ़ता से लगा रखा और अपने आँचल से आच्छादित किया। १८६-१८९ 'री, कहाँ है, वच्चा कहाँ है!' —वह चण्डाल (इस प्रकार) बोला, तो देवकी बोली, 'हे सुजान बन्धुराज, तुम स्नेहल हो।'। १९० तब म्लान-वदन होते हुए उसने आँचल फैला दिया और 'मुझे इतना पुत्र-दान दो' कहते हुए उसने उस निर्दय के पाँव पकड़े। १९१ (फिर भी) कंस ने वल-पूर्वक हाथ बढ़ाकर उस बालक के पाँव दृढ़ता-पूर्वक पकड़ लिये, तो वह चीखती-चिल्लाती हुई भूमि पर जैसे प्रचण्ड वायु के झोंके से केले का पौधा गिर जाता है, वैसे भूमि पर गिर गयी। १९२ द्वार में एक प्रचण्ड शिला थी। उस पर उस निर्दय ने उस बालक को पटक दिया, तो वह तत्काल पक्व फल की भाँति छिन्न-विच्छिन्न हो गया। १९३ दुर्जन को दया कैसे (आएगी)? बटमार को माया कैसे (अनुभव होगी)! पाखण्ड मतवादी को पछतावा—वैराग्य किसी भी समय हो ही नहीं सकता। १९४ इस प्रकार उस बालक को मार डालकर वह खल

कदाकाळीं नव्हेचि । ९४ ऐसें मारून तें बाळ । निघोन गेला कंस खळ । मागुती गरोदर झाली ते वेल्हाळ । दुसऱ्यानें प्रसूत जाहली । ९५ स्वयें येऊन आपण । तेंही मारिलें आपटून । तिसरें जाहलें सगुण । तेंही मारिलें क्षणार्धे । ९६ चौथें पांचवें सहावें नेटें । तेंही लाविलें मृत्युवाटे । वसुदेवाचें दुःखें हृदय फुटे । म्हणे कर्म मोठें दुर्धर । ९७ कंसें सदा गर्भ वधिले । पाप असंभाव्य सांचलें । गाई विप्र भक्त गांजिले । थोर मांडिलें पाप पैं । ९८ आतां श्रीहरि क्षीरसागरीं । यावरी कैसा विचार करी । तें कथाकौतुक चतुरीं । सेविजे सादर होवोनियां । ९९ श्रीकृष्णकथाकमळ सुकुमार । सज्जन श्रोते त्यावरी भ्रमर । माजी पद्मरचना केसर । अतिसुवासें सेविजे । २०० कीं कृष्णकथा दुग्ध सुरस । सज्जन तुम्ही राजहंस । सेवा होवोनि सावकाश । निद्रा आळस टाकूनि । २०१ कीं हे कथा सुधारस सुंदर । तुम्हीं संत श्रोते निर्जर । हें अमृतपान करितां दुर्धर । जन्ममरण तुटे पैं । २ स्वर्गींचें अमृत देव प्राशिती । ते नाश पावती कल्पांतीं । त्यांसी

कंस चला गया । (तदनन्तर यथासमय) वह सुन्दरी फिर से गर्भवती हो गयी और दूसरी बार प्रसूत हो गयी । १९५ (तब कंस ने) स्वयं आकर उस (पुत्र) को भी पटककर मार डाला । (तदनन्तर) तीसरा रूप-गुण-सम्पन्न बच्चा हो गया, तो उसको भी (कंस ने) क्षणार्ध में मार डाला । १९६ (फिर) चौथा, पाँचवाँ, छठा (बालक उत्पन्न हो गया) जिसमें से प्रत्येक को (कंस ने) झट से मृत्यु-मार्ग पर भेज दिया । (यह देखते-देखते) वसुदेव का हृदय दुःख से फट गया । उसने कहा (सोचा) कर्म बड़ा ही दुर्धर है । १९७ (इस प्रकार) कंस ने छहों गर्भों (नवजात शिशुओं) का वध किया । इससे असीम पाप संचित हो गया । उसने गायों, विप्रों और (भगवद्-) भक्तों को उत्पीड़ित किया (ही था) । (इस प्रकार) बड़ा पाप (संचित) कर रखा । १९८

अब क्षीरसागर में भगवान श्रीहरि ने इस पर क्या विचार किया ? उस कथा-विनोद को चतुर (श्रोताजन) आदर-युक्त होकर सेवन (श्रवण) करें । १९९

श्रीकृष्ण-कथा रूपी (यह) कमल सुकोमल है । आप सज्जन (सन्त जन) श्रोता, उस (कमल) पर (मँडरानेवाले) भ्रमर (जैसे) हैं । उसके अन्दर पद्म-रचना रूपी केसर है । उसकी अति (उत्तम) सुगन्ध का आप सेवन करें । २०० अथवा (श्रीकृष्ण की कथा सुरस (मधुर) दूध है । आप सज्जन राजहंस बनकर निद्रा और आलस्य का त्याग करके धीरे-धीरे उसका सेवन कीजिए । २०१ अथवा यह कथा सुन्दर अमृत है (और) आप सन्त, श्रोता देव हैं । इस अमृत का पान करने से दुर्धर जन्म-मरण (का चक्र) टूट जाता है । २०२ देव स्वर्ग के अमृत

आहे पुनरावृत्ती। जन्मपंक्ति सुटेना। ३ तैसी नव्हे ही कथा। पुनरावृत्ति नाहीं कल्पांता। ब्रह्मानंदपद ये हाता। तेथींच्या अर्था पाहतां हो। ४ ब्रह्मानंदकृपेच्या बळें। हें ग्रंथजहाज चाले। भक्तीचें शीड वरी लाविलें। दयावातें फडकतसे। ५ ब्रह्मानंदरूप साचार। तुम्ही संत श्रोते निर्धार। वारंवार श्रीधर। चरण वंदी प्रीतीनें। ६ या अध्यायाचें अनुसंधान। वसुदेवाचें जाहलें लग्न। कंसें येऊनि आपण। बाळें मारिलीं सहाही। ७ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंश भागवत। चतुर परिसोत संत। द्वितीयाध्याय गोड हा। २०८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

का प्राशन करते हैं; (फिर भी) वे कल्पान्त काल में नाश को प्राप्त हो जाते हैं। उनके लिए पुनरावृत्ति अर्थात् पुनर्जन्म है—जन्म (-मरण) की पंक्ति (शृंखला उनके लिए भी) नहीं टूट सकती। २०३ (परन्तु) यह कथा वैसी नहीं है। (इस कथारूपी अमृत का सेवन करने पर) कल्पान्त तक में पुनर्जन्म नहीं हो सकता। उसके अर्थ को देखने से इस कथामृत का सेवन करने पर) ब्रह्मानन्द पद अर्थात् सायुज्य मुक्ति हाथ आती है। २०४

गुरु ब्रह्मानन्द की कृपा के वल पर यह ग्रन्थरूपी पोत (जहाज़ आगे) चल रहा है। उसमें भक्ति का पाल लगा दिया है। वह दयारूपी वायु से फहर रहा है। २०५ आप सन्त श्रोता निश्चय ही सचमुच गुरु ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं। (अतः) यह श्रीधर आपके चरणों का प्रेमपूर्वक बार-बार वन्दन कर रहा है। २०६ इस अध्याय में वर्णित आख्यान (संक्षेप में) यह है—वसुदेव का विवाह हो गया और कंस ने स्वयं आकर उनके छहों बालकों को मार डाला। २०७

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (श्री) हरि-वंश और (श्रीमद्) भागवत से सम्मत है। चतुर सन्त (श्रोता) उसके इस मधुर द्वितीय अध्याय का श्रवण करें। २०८

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३

श्रीगणेशाय नमः। जय जय अनंतब्रह्मांडनायका। चतुराननाचिया निजजनका। चौघांसीही नव्हे आवांका। तुझें स्वरूप वर्णावया। १ साही जणें वेडीं होती। अठरांची खुंटली गती। चौघीजणी तटस्थ पाहती। स्वरूपस्थिति न वर्णवे। २ पांचां नुरेचि ठाव। चारी सहजचि जाहलीं वाव। चौदाजणींची ठेव। नचले स्वरूप वर्णावया। ३ शिणल्या बहुत चौसष्टी।

श्रीगणेशाय नमः। हे अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक (स्वामी), आपकी जय हो, जय हो। हे चतुरानन ब्रह्मा के साक्षात जनक (भगवान विष्णु), चारों[1] (वेदों) को भी आपके स्वरूप का वर्णन करने की सामर्थ्य (प्राप्त) नहीं है। १ (आपके स्वरूप का वर्णन करते-करते) छहों[2] जने (शास्त्र) मूढ़ (सिद्ध) हो जाते हैं; अठारहों[3] (पुराणों) की गति कुण्ठित हो गयी; चारों[4] (मुक्तियाँ) स्तब्ध होकर देखती रह गयी हैं (—उनके द्वारा भी आपके स्वरूप और स्थिति का वर्णन नहीं किया जा रहा है)। २ पाँचों[5] (महाभूतों) को (कुछ कहने की कोई गुंजाइश ही नहीं रही है; चारों[6] (चित्त इस काम में) स्वाभाविकरूप से व्यर्थ (अर्थात् शक्ति-हीन सिद्ध) हो गये। चौदहों[7] (विद्याओं) की पूँजी (आपके) स्वरूप का वर्णन करने में चल नहीं पा रही है (काम नहीं आ रही है)। ३ आपके स्वरूप का वर्णन करते हुए चौंसठों[8] (कलाएँ) बहुत थक गयीं;

---

१ चार वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद।

२ छः शास्त्र (दर्शन)—न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा (वेदान्त), सांख्य और योग।

३ अठारह (महा-) पुराण—ब्राह्म, पद्म, विष्णु, शिव (अथवा वायु), भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, नृसिंह (अथवा लिंग), वाराह, स्कन्द, वामन, मत्स्य, कूर्म, गरुड़ और ब्रह्माण्ड।

४ चार मुक्तियाँ—सलोकता, सरूपता, समीपता और सायुज्य।

५ पाँच महाभूत—पृथ्वी, आप (जल), तेज, वायु और आकाश।

६ चार चित्त—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार।

७ चौदह विद्याएँ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद (नामक चार वेद), छन्द, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प (नामक छः वेदाङ्ग), न्याय, मीमांसा, पुराण और धर्मशास्त्र (कुल चौदह)।

८ चौंसठ कलाएँ—चौंसठ कलाओं के नामों के बारे में विभिन्न मान्यताएँ हैं। 'शिवतत्त्व-रत्नाकर' के अनुसार निम्नलिखित कलाएँ स्वीकृत हैं—इतिहास, आगम, काव्य, अलंकार, नाटक, गायन, कवित्व, कामशास्त्र, द्यूत, देशभाषा-लिपि-ज्ञान, लिपि-कर्म, पठन, गणन, व्यवहार, स्वर-शास्त्र, शाकुन, सामुद्रिक, रत्न-शास्त्र, गज-अश्व-रथ

आठजणी बहुत कष्टी। अकराही हिंपुटी। स्वरूप तुझें वर्णितां। ४ आणीक एक बारा देखण्या। सोळाजणी चतुर शाहाण्या। आणि चौघी डोळेमोडण्या। लाजोनियां तटस्थ। ५ पंचविसां जाहली वाव। तिघांचें नुरेचि नांव।

आठों[1] (सिद्धियाँ) बहुत कष्ट को प्राप्त हो गयीं और ग्यारहों[2] (रुद्र) भी कृपण (सिद्ध) हो गये (अर्थात् वे अधिक कह नहीं पाये)। ४ और भी एक (वे) बारहों[3] (राशियाँ) सुन्दर सलोनी हैं, सोलह[4] (मातृकाएँ) चतुर समझदार (कहाती) हैं और चारों[5] (प्रकार की वाणियाँ आपके स्वरूप का वर्णन करने में असफलता को प्राप्त होने पर) मूढ़ होकर आँखों को मटकाती अथवा आँखें चुराती रह गयीं—ये सब लज्जित होकर चुप हो गयी हैं। ५ पचीसों[6] (तत्त्वों) को कुछ गुंजाइश तो हो गयी, लेकिन वे भी व्यर्थता को प्राप्त हो गये। तीनों[7] (गुणों) का नाम (तक) न शेष रह पाया। आपके स्वरूप का वर्णन करते हुए आपको सगुण और निर्गुण दोनों कहना चाहिए—परन्तु यह

कौशल, मल्ल शास्त्र, सूप-शास्त्र, भूरुह-दोहद (उद्यान-शास्त्र), गन्धवाद, धातुवाद, रस-सम्बन्धी खनि-वाद, बिलवाद, अग्नि-संस्तम्भ, जल-संस्तम्भ, वाचःस्तम्भन, वायु-स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण, कला-वंचन, परकाय-प्रवेश, पादुका-सिद्धि, वाक्-सिद्धि, गुटिका-सिद्धि, ऐन्द्रजालिक, अंजन, परदृष्टि-वंचन, स्वर-वंचन, मणि-भूमि कर्म, मंत्रौषधि-सिद्धि, चौर्यकर्म, चित्र-क्रिया, लोह-क्रिया, अश्म-क्रिया, मृत्क्रिया, दारु-क्रिया, वेणुक्रिया, चर्म-क्रिया, अम्बर-क्रिया, अदृश्यकरण, दन्तीकरण, मृगयाविधि, वाणिज्य, पशुपालन, कृषि, आसवकर्म और लाव-कुक्कुट-मेषादि युद्धकारक कौशल।

१ आठ सिद्धियाँ—देखिए, पृष्ठ ३४ (अध्याय १)

२ ग्यारह रुद्र—वीरभद्र, शम्भु, गिरीश, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, भुवनाधीश्वर, कपाली, स्थाणु और भव।

३ बारह राशियाँ—मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

४ सोलह मातृकाएँ—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, माता, लोकमाता, धृति, पुष्टि, तुष्टि और कुलदेवी।

५ चार प्रकार की वाणियाँ—देखिए पृ० ३७ (अध्याय १)

६ पचीस तत्त्व—प्रकृति, पुरुष, बुद्धि अथवा महत्तत्त्व, अहंकार और मन (नामक पाँच); नेत्र, कान, त्वचा, जिह्वा और नाक (नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) हाथ, पाँव, वाणी, शिश्न और गुदा (नामक पाँच कर्मेन्द्रियाँ), शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गन्ध तन्मात्रा (नामक पंच तन्मात्र तत्त्व) पृथ्वी, आप (जल), तेज (अग्नि), वायु और आकाश (नामक पंच महाभूत) —कुल पचीस।

७ सत्व, रज, तम।

दोन्ही म्हणणें भाव। हेंही तेथें विरालें। ६ चहूं मुखांचा वर्णितां भागला। पांचां मुखांचा तटस्थ राहिला। सहा मुखांचा दडाला। कपाटामाजी जाऊनि। ७ सहस्र मुखांचा वर्णितां देख। तोही जाहला तळीं तल्पक। थोरथोरांसी पडले अटक। एक मुखें काय वर्णू । ८ जीमूतींचे बिंदू किती। हेही एक वेळां होय गणती। निराळीं पायीं वेंघती। परी तुझी स्थिति अगम्य। ९ होईल पृथ्वीचें वजन। गणवेल सिंधूचें जीवन। अवनीवरी किती तृण। मोजवेल गणितां तें। १० अंबर आहे किती विती। हेंही गणवेल रमापती। परी तुझे गुण निश्चिती। न वर्णवती कोणातें। ११ असो आतां पूर्वानुसंधान। द्वितीयाध्याय संपतां पूर्ण। कंसें देवकीचे गर्भ वधून। साही टाकिले बंदिशाळे। १२ पाप जाहलें उत्कट जाण। गांजिले गाई ब्राह्मण। यावरी क्षीरसागरीं जगज्जीवन। काय करिता जाहला। १३

भाव भी वहाँ (इसमें) नष्ट हो गया—अर्थात् आपको सगुण और निर्गुण कहना पर्याप्त तथा उचित होगा, यह भी ठीक नहीं है। ६ चार मुखोंवाले (ब्रह्मा) आपका वर्णन करते-करते थके-हारे; पाँच मुखोंवाले (शिवजी) चुप रह गये, छः मुखोंवाले कार्तिक स्वामी (शिव-पार्वती के पुत्र स्कन्द) तो वर्णन करने में असफल होने से लज्जित होकर गुफा में जाकर छिप गये। ७ देखिए, सहस्र मुखोंवाले (शेष) वर्णन करते-करते (हार मानकर आपके) नीचे शय्या-स्वरूप बन गये। (जब इस प्रकार) बड़े-बड़ों को बाधा उत्पन्न हो जाती है, जो मैं एक मुख से उसका वर्णन कैसे कर पाऊँगा। ८ मेघों में जल-बिन्दु कितने हैं ? (उनकी गिनती करना असम्भव है; फिर भी) एक बार उन्हीं की भी गणना की जा सकेगी, आकाश में पाँवों के बल भी लोग चढ़ सकेंगे (यह काम असम्भव है, फिर भी वह एक बार सम्भव हो जाए), तो भी आपकी स्थिति अगम्य है (वह समझ में नहीं आती, अतः उसका वर्णन नहीं किया जा सकता)। ९ पृथ्वी का वज़न किया जा सकेगा, समुद्र के पानी की गिनती हो सकेगी—उसे नापा जा सकेगा। गिनती करने पर यह भी गिना जा पायेगा कि धरती पर घास कितनी है। १० हे रमा-पति, यह भी नापा जाएगा कि आकाश कितने बित्ते (विशाल) है, परन्तु निश्चय ही आपके गुणों का वर्णन किसी के द्वारा भी नहीं किया जा पाएगा। ११

अस्तु, अब पूर्वकथा (का उल्लेख करें)। द्वितीय अध्याय के पूर्ण-रूप से समाप्त होते-होते यह कहा गया कि कंस ने देवकी के छहों गर्भों अर्थात् नवजात शिशुओं का बन्दीशाला में वध कर डाला। १२ समझ लीजिए कि (उन दिनों) पाप चरम सीमा तक हो गया। (कंस ने) गायों और ब्राह्मणों को उत्पीड़ित किया। इसके पश्चात् क्षीरसागर में ज़गज्जीवन भगवान विष्णु ने क्या किया। १३ अनन्त (विष्णु) ने अनन्त

अनंतासी म्हणे अनत। चला अवतार घेऊं त्वरित। करूं दुष्टांचा निःपात। संत भक्त रक्षूं पैं। १४ तंव बोले धरणीधर। मी न घें आतां अवतार। पूर्वीं मी जाहलों सौमित्र। कष्ट फार भोगिले। १५ हांसोनि बोले द्विसहस्रनयन। अष्टविंशति अयनें उपोषण। निराहार घोर अरण्य। तुम्हांसवें सेविलें जी। १६ आतां आपणचि अवतरावें। अवतारनाटच दाखवावें। गोब्राह्मण सुखी रक्षावे। प्रतिपाळावे साधुजन। १७ टाकोनि कपट कुटिलभाव। स्वामीसी हांसे भोगिराव। बोले कौतुकें रमाधव। शेषाप्रती स्वानंदें। १८ तूं माझा प्राणसखा। समरभूमीचा पाठिराखा। तुजविण भक्तटिळका। अवतार मी न घेंचि। १९ तूं माझें निजांग पूर्ण। तूं सखया माझा निजप्राण। तुजविण मज एक क्षण। न गमेचि जिवलगा। २० तूं जाहलासी पूर्वीं लक्ष्मण। लंकेसी केलें रणकंदन। बहुत सेवा करून। मज तुवां तोषविलें। २१ आतां तूं पुढें जाय सत्वर। होईं माझा ज्येष्ठ सहोदर। मी तुझी आज्ञा पाळीन निर्धार। बळिभद्र होईं तूं। २२ वडील बंधु तूं होईं। देवकीच्या गर्भीं जाऊनि राहीं। मी योगमायेस लवलाहीं।

(शेष) से कहा, 'चलो, हम शीघ्र ही अवतार ग्रहण कर लें, दुष्टों का निःपात (संहार) कर डालें और भक्तों की रक्षा कर लें।' १४ तब धरणीधर शेष बोले, 'मैं अब अवतार नहीं ग्रहण करूँगा। पूर्वकाल में मैं सौमित्र (सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण) बन गया था, (तब) मैंने बहुत कष्ट झेल लिये।' १५ (दो सहस्र आँखोंवाले) शेष हँसकर (फिर) बोले, 'मैंने आपके साथ अट्ठाईस अयन अर्थात् चौदह वर्ष तक अनशन करते हुए, निराहार रहते हुए घोर अरण्य में निवास किया। १६ अब आप ही अवतार ग्रहण कर लें, अवतार-नाटक दिखा दें। गो-ब्राह्मणों को सुखी (सकुशल) रखें, उनकी रक्षा करें और साधुजनों का प्रतिपालन करें।' १७ भोगावती के अधिपति शेष कपट-कुटिलता-भाव छोड़कर हँस दिये और अपने स्वामी भगवान विष्णु से इस प्रकार बोले। (तब) रमापति ने शेष से अपने ही (आत्मिक) आनन्द में मग्न रहते हुए कहा। १८ 'तुम तो मेरे प्राण-सखा हो, समर-भूमि में मेरे रक्षक हो। हे भक्त-तिलक, बिना तुम्हारे मैं अवतार ग्रहण करूँगा ही नहीं। १९ तुम मेरे पूर्णरूप से अंग (-भूत) हो। हे सखा, तुम मेरे अपने प्राण हो। हे प्राण-वल्लभ, बिना तुम्हारे मुझे एक क्षण तक अच्छा नहीं लगता। २० तुम पूर्वकाल में लक्ष्मण (के रूप में अवतरित) हो गये थे। तुमने लंका में विकट युद्ध किया और बहुत सेवा करके तुमने मुझे सन्तुष्ट कर दिया। २१ अब तुम झट से आगे चले जाओ और मेरे ज्येष्ठ सहोदर (बड़े भाई के रूप में अवतरित) हो जाओ। मैं निश्चय ही तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा—तुम बलभद्र (के रूप में उत्पन्न) हो जाओ। २२ तुम मेरे बड़े भाई हो जाओ; देवकी के

पाठवितों तुजमागें । २३ कंसें वधिले गर्भ सकळ । तुज योगमाया काढील । मग गोकुळीं नेऊनि ठेवील । रोहिणीच्या निजगर्भीं । २४ माया जाईल यशोदेच्या उदरा । मग मी येईन मथुरापुरा । देवकीचा गर्भवोवरा । माझा अवताररूप होय । २५ उपजतांचि गोकुळीं येईन । मग तुम्ही आम्ही खेळों दोघे जण । गोरक्षमिषें संपूर्ण । दैत्य तेथील संहारूं । २६ करून साष्टांग नमन । पुढें चालिला संकर्षण । देवकीच्या उदरीं येऊन । गर्भ राहिला सातवा । २७ दिवसेंदिवस गर्भ वाढे । मंदिरीं परम प्रकाश पडे । जैसा पळेंपळ सूर्य चढे । उदयाद्रीहूनि पश्चिमे । २८ वसुदेवाप्रती देवकी बोले । सहा वेळां मी गर्भिणी जाहलें । परी नवल वाटतें ये वेळे । या गर्भाचें मजलागीं । २९ वाटे पृथ्वी उचलीन । कीं आकाशा धीर देईन । सप्त समुद्र सांठवीन । नखाग्रीं मज वाटतसे । ३० हातीं घेऊन नांगरमुसळ । मीच मर्दीन कंसदळ । दैत्य मारावे समूळ । मनामाजी वाटतसे । ३१

गर्भ में जाकर रह जाओ । (फिर) मैं योगमाया को तुम्हारे पीछे झट से भेज दूँगा । २३ कंस ने समस्त गर्भों (नवजात शिशुओं) का वध कर डाला। (फिर भी) योगमाया तुम्हें (देवकी के गर्भाशय में से) निकाल लेगी और फिर वह तुम्हें गोकुल में ले जाकर (वसुदेव की दूसरी स्त्री) रोहिणी (जो गोकुल में रहती थी) के प्रत्यक्ष गर्भाशय में रख देगी । २४ वह (योग-) माया (स्वयं) यशोदा के उदर में (बस) जाएगी । अनन्तर मैं मथुरापुरी में देवकी के गर्भाशय में आ जाऊँगा । (वहीं) मेरा अवतार-रूप (प्रकट) हो जाएगा । २५ उत्पन्न होते ही मैं गोकुल में आ जाऊँगा । अनन्तर मैं और तुम दोनों जने खेला करेंगे और गायों की रक्षा करने के निमित्त वहाँ के समस्त दैत्यों का संहार करेंगे ।' २६ (यह सुनकर) साष्टांग नमस्कार करके संकर्षण शेष आगे चल दिये और देवकी के उदर में आते हुए सातवें गर्भ के रूप में रह गये । २७

दिन-ब-दिन गर्भ विकसित हो रहा था । घर में (उस प्रकार) परम (-प्रखर) प्रकाश फैल रहा था, जिस प्रकार (जब) उदयाद्रि से पश्चिम की ओर सूर्य पल-पल चढ़ता जाता है (तब प्रकाश फैलता जाता है) । २८ (एक दिन) देवकी वसुदेव से बोली, 'मैं छः बार गर्भवती हो गयी; फिर भी इस समय मुझे इस गर्भ के बारे में आश्चर्य अनुभव हो रहा है । २९ लगता है, मैं पृथ्वी को उठा लूँगी, अथवा आकाश को ढाढ़स बँधा दूँगी । मुझे लगता है कि मैं अपने नख के अग्र में सातों[1] समुद्रों को समा लूँगी । ३० हाथों में हल और मूसल लेकर मैं ही कंस की सेना को कुचल डालूँगी । मन में ऐसा लग रहा है, (समस्त) दैत्यों को मूल-सहित मार

१ सात समुद्र—लवण, इक्षु, सुरा, आज्य (घी), दधि, क्षीर और स्वादु-जल (शुद्ध मधुर जल)

वसुदेव म्हणे ते क्षणीं। न कळे ईश्वराची करणी। येवढा तरी वांचोनी। विजयी हो का सर्वदा। ३२ तों लागला सातवा मास। निद्रा आली देवकीस। वसुदेवही सावकाश। निद्रार्णवीं निमग्न। ३३ तंव ती हरीची योगमाया। तिची ब्रह्मादिकां न कळे चर्या। इच्छामात्रें महत्कार्या। ब्रह्मांड हें रचियेलें। ३४ ब्रह्मा विष्णु शिव तीन्ही। गर्भी आलीं बाळें तान्ही। परी एकासी नेत्र उघडूनी। स्वरूप पाहों नेदीच। ३५ आत्मसुखाचा समुद्र। त्यांत पहुडले जीव समग्र। परी चाखों नेदी अणुमात्र। गोडी तेथींची कोणातें। ३६ हे चैतन्याची बुंथी। हे अरूपाची रूपकर्त्री। ब्रह्मांडींचे पुतळे नाना गती। एका सूत्रें नाचवी पैं। ३७ इनें निर्गुण गुणासी आणिलें। इनें अनामासी नाम ठेविलें। इनें निराकारा आकारिलें। धरविले अवतार। ३८ हे पतीस न कळतां। गर्भिणी जाहली पतिव्रता। ब्रह्मांड रचिलें तत्त्वतां। इच्छामात्रेंकरूनियां। ३९ शेजे निजवूनि भ्रतार। सृष्टी घडी मोडी समग्र। समाचार अणुमात्र। कळों नेदी पतीतें। ४० हे

डालें।' ३१ उस क्षण वसुदेव बोले, 'भगवान की करनी समझ में नहीं आ रही है। (कम-से-कम) इतना (यह गर्भ) तो बचकर नित्य-प्रति विजयी हो जाए।' ३२ तब सातवाँ मास लग गया। (तदनन्तर) देवकी को नींद आ गयी। वसुदेव भी धीरे-धीरे निद्रा-सागर में निमग्न हो गये। ३३ तब हरि की उस योगमाया ने क्या किया? उसका आचार-विचार ब्रह्मा आदि की भी समझ में नहीं आता। उसने इच्छा मात्र से ही महान कार्य सम्पन्न किया है, इस ब्रह्माण्ड की रचना की है। ३४ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी—तीनों दुध-मुँहे शिशुओं के रूप में उसके गर्भ से उत्पन्न हो गये। परन्तु (उनमें से) एक को भी आँखें खोलकर उसने अपने रूप को देखने ही नहीं दिया। ३५ (वस्तुतः चारों ओर) आत्म-सुख का समुद्र (उमड़ रहा) है। उसमें समस्त जीव पौढ़े हुए हैं। फिर भी वह (माया) किसी को भी वहाँ की अणु मात्र भी मधुरता चखने नहीं देती। ३६ वह (माया) चैतन्य पर पड़ा हुआ आवरण है; वह अरूप को रूप प्रदान करनेवाली है; वह ब्रह्माण्डों के पुतलों को अनेक प्रकार की गतियों से एक ही सूत्र से नचाती रहती है। ३७ यह निर्गुण को सगुणत्व में ले आयी (उसने निर्गुण को सगुण बना दिया); इसने अनाम को नाम रख दिया; इसने निराकार को आकार प्रदान किया और उससे अवतार ग्रहण करा दिये। ३८ यह पतिव्रता (होने पर भी) अपने पति की समझ में न आते हुए गर्भवती हो गयी। इसने सचमुच इच्छा मात्र से ब्रह्माण्ड की रचना की। ३९ वह अपने भर्तार (पति) को शय्या पर सुलाते हुए इस सृष्टि को बनाती-बिगाड़ती है और (इस सम्बन्ध में) अणु मात्र समाचार भी अपने पति को विदित होने नहीं देती। ४० ये मायावती निश्चय ही व्यर्थ के देवताओं

कौटाळीण निर्धारीं। नसतींच दैवतें उभीं करी। जीव पाडिले अघोरीं। नाना योनीं हिंडवी। ४१ धरील कोणी स्वरूपाची चाड। त्यावरी घाली नसतें लिगाड। पुढें स्वर्गसुख करी आड। तेंचि गोड दाखवी। ४२ गोड तें कडवट केलें। कडवटा गोडपण दाखविलें। अहंकारमद्य जीवा पाजिलें। वेडे केले सर्वही। ४३ आतां असो हे मायाराणी। इची विपरीतचि करणी। तिनें देवकीचा गर्भ काढूनी। गोकुळासी पैं नेला। ४४ कैसा नेला काढूनी। ब्रह्मादिकां न कळे करणी। रोहिणी वसुदेवाची पत्नी। नंदगृहीं होती ते। ४५ कंसाचिया भयें जाण। नंदगृहीं राहिली लपोन। तिच्या पोटीं नेऊन। गर्भ घातला ते क्षणीं। ४६ निजले ठायीं गर्भ। पोटांत घातला स्वयंभ। परम तेजस्वी सुप्रभ। सूर्य जैसा तेजस्वी। ४७ जागी जाहली रोहिणी। तों सात मासांची गर्भिणी। म्हणे कैसी जाहली करणी। चिंता मनीं वर्तत। ४८ पुरुष नसतां गर्भ राहिला। परम चिंताक्रांत ते अबला। नंदयशोदेस कळला। समाचार सर्व तो। ४९ जीवीं झोंबला चिंताग्नी।

को उत्पन्न कर देती है (स्थापित करती है)। इसने जीवों को संकट में डाल दिया है और नाना योनियों में उन्हें भ्रमण करा रही है। ४१ कोई स्वरूप अर्थात् ब्रह्म (के दर्शन, ज्ञान, कृपा-प्राप्ति) की अभिलाषा करे, तो यह बिना किसी कारण के उसके लिए संकट उत्पन्न कर देती है। फिर बीच में स्वर्ग-सुख आड़े ला देती है और उसी को (आत्म-सुख से) मधुर (बताकर) दिखा देती है। ४२ उसने मधुर को कड़ुआ बना दिया, कड़ुए में मीठापन (उत्पन्न कर) दिखाया। जीव को अहंकार (रूपी) मद्य पिला दिया और सबको पागल बना दिया। ४३ अब अस्तु। ऐसी है यह मायारानी। इसकी करनी विपरीत ही होती है। देवकी के गर्भ को निकालकर वह गोकुल में ले गयी। ४४ वह उसे निकालकर कैसे ले गयी ? —(माया की) यह करनी तो ब्रह्मा आदि की भी समझ में नहीं आ रही है। रोहिणी वसुदेव की (दूसरी) पत्नी थी। वह नन्द के घर में (रहती) थी। ४५ समझिए कि कंस के भय से वह नन्द के घर में छिपकर रहती थी। (योगमाया ने) उस क्षण उस गर्भ को ले जाकर उसके उदर में स्थापित किया। ४६ उसके सोये रहने पर उसी स्थान पर (योगमाया ने) वह स्वयम्भू गर्भ उसके पेट में डाल दिया। वह परम तेजस्वी और प्रभा-युक्त था, सूर्य जैसा तेजस्वी था। ४७ (जब) रोहिणी जग गयी, तब वह तो सात मास की गर्भवती थी। उसने कहा (सोचा) —यह कैसी करनी हो गयी ? उसके मन में चिन्ता अनुभव होने लगी। ४८ उसके पुरुष अर्थात् पति के (पास में) न होने पर गर्भ उत्पन्न हो गया— इससे वह अबला चिन्ता से परम व्याकुल हो उठी। (फिर) वह समस्त समाचार नन्द और यशोदा को विदित हो गया। ४९ उनके जी में चिन्ता-

तों आकाशीं वदली देववाणी। चिंता करूं नको रोहिणी। वसुदेवाचा गर्भ असे। ५० पोटा येतो भोगींद्र। उतरील पृथ्वीचा भार। ऐकतां हें उत्तर। सुख जाहलें समस्तां। ५१ लोकापवाद सर्व हरला। चिंतेचा डाग धुतला। तों बळिराम जन्मला। नव मास भरतांचि। ५२ प्रकाशला सहस्रकिरण। तैसा बाळ देदीप्यमान। नंदें जातक वर्तवून। बळिभद्र नाम ठेविलें। ५३ ऐसा उपजला अहींद्र। तों यशोदा जाहली गरोदर। हरिमायेनें अवतार। तेथें घेतला तेधवां। ५४ यशोदा गर्भिणी जाहली। इकडे कथा कैसी वर्तली। देवकी पाहे घाबरली। तों गर्भ नाहीं पोटांत। ५५ नेणों कैसी जाहली करणी। सांगे वसुदेवालागोनी। म्हणे गर्भ न पडेचि धरणीं। गेला जिरोनि पोटांत। ५६ वसुदेव म्हणे ते वेळां। कंसधाकें गर्भ जिराला। न कळे ईश्वराची कळा। कंसास कळला समाचार। ५७ दूत सांगती कंसातें। गर्भ जिराला जेथिंचा तेथें। कंस म्हणे आतां आठव्यातें। बहुत जपा सर्वही। ५८ देवकी होतांचि गर्भिण। जागा नेत्रीं तेल घालून। आठव्याची आठवण। विसरूं नका सर्वथा। ५९

रूपी आग छू गयी, तब आकाश में देव-वाणी बोली (उत्पन्न हो गयी), 'हे रोहिणी, चिन्ता न करो, यह गर्भ वसुदेव से ही उत्पन्न है। ५० तुम्हारे उदर से भोगीन्द्र शेष अवतरित होने जा रहे हैं। वे पृथ्वी के पाप-भार को उतार देंगे।' यह वचन सुनते ही सबको सुख अनुभव हो गया। ५१ समस्त लोकापवाद टल गया; चिन्ता का, अर्थात् चिन्ता उत्पन्न कर देनेवाला कलंक रूपी धब्बा धुल गया। तब नौ मास पूर्ण होने पर बलराम जन्म को प्राप्त हो गये। ५२ सूर्य प्रकट (उदित) हो जाता है, (तो वह जैसा तेजस्वी दिखायी देता है) वैसा वह बालक देदीप्यमान था। (अनन्तर) नन्द ने उसका जातक कहलवाते हुए उसका नाम बलभद्र रखा। ५३ इस प्रकार अहीन्द्र शेष उत्पन्न हो गये। तब तक (उधर) यशोदा गर्भवती हो गयी। तब उसके यहाँ (उसके उदर से भगवान) हरि की माया ने अवतार ग्रहण किया। ५४ यशोदा गर्भवती हो गयी, तब इधर कैसी कथा (घटना) घटित हो गयी। देवकी ने देखा कि पेट में गर्भ नहीं है, तो वह घबरा उठी। ५५ उसने वसुदेव से कहा, 'न जाने कैसी करनी हो गयी।' (फिर) वह बोली, 'गर्भ तो धरती पर नहीं गिरा— वह पेट में ही लय को प्राप्त हो गया है।' ५६ उस समय वसुदेव बोले, 'कंस के भय से गर्भ विलीन हो गया है। भगवान की करनी समझ में नहीं आती।' (उधर) कंस को यह समाचार विदित हो गया। ५७ दूतों ने कंस से कहा, 'गर्भ जहाँ-का-तहाँ नष्ट हो गया है।' (इस पर) कंस ने कहा, 'अब तुम सभी आठवें का बहुत ध्यान रखना। ५८ देवकी के गर्भवती हो जाने पर ही आँखों में तेल डालकर जागते रहो।

देवकीउदरींचा आठवा। निजध्यास बसला कंसभावा। जनीं वनीं आघवा। आठवा आठवा आठवत। ६० जागृतीं सुषुप्तीं स्वप्नीं। आठवा दिसे ध्यानीं मनीं। आठवा दिसे भोजनीं। आठवा शयनीं सोडीना। ६१ भूमि दिसे आठव्याऐसी। आठवा दिसे आकाशीं। आठव्यानें व्यापिलें त्यासी। दिवसनिशीं आठवा। ६२ क्षीरसागरीं श्रीहरी। क्षीराब्धिसुतेसी आज्ञा करी। पद्माक्षि तूं क्षितीवरी। क्षितीपाळउदरीं अवतरें। ६३ वैदर्भदेशींचा भीमक राजा। तयाची तूं होय आत्मजा। तात्काळ चालली कमळजा। नमस्कारूनि हरीतें। ६४ जगद्वंद्य स्वयें आपण। प्रवेशला मथुरापट्टण। देवकीचे गर्भीं येऊन। राहता जाहला कौतुकें। ६५ गर्भवासा आला भगवंत। म्हणतां हांसतील साधुसंत। लीलावतारी जगन्नाथ। जन्ममृत्यु त्या कैंचा। ६६ ज्याचें करितां स्मरण। जाय जन्ममृत्यु खंडोन। तो राहिला गर्भीं येऊन। कल्पांतींही घडेना। ६७ उगाच लौकिकभाव।

आठवें का स्मरण (ध्यान) बिल्कुल न भूलो।' ५९ देवकी के उदर का आठवाँ (गर्भ) कंस के मन में आतंक-युक्त स्मरण के रूप में बैठ गया। उसे जन-वन में एक मात्र आठवाँ-आठवाँ स्मरण में आ रहा था। ६० जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न[1] (—तीनों अवस्थाओं) में ध्यान में, मन में, उसे आठवाँ दिखाई दे रहा था; भोजन में आठवाँ दिखायी दे रहा था; शयन (तक) में आठवाँ उसे नहीं छोड़ रहा था। ६१ भूमि उसे आठवें जैसी दिखायी दे रही थी। उसे आकाश में आठवाँ दिखायी दे रहा था। इस आठवें ने उसे व्याप्त किया था, —दिन-रात आठवाँ दीख रहा था। ६२

इधर क्षीरसागर में (भगवान) श्रीहरि ने क्षीराब्धिसुता[2] लक्ष्मी को आज्ञा दी, 'हे पद्माक्षी, तुम पृथ्वी पर राजा (की पत्नी के उदर) से अवतार ग्रहण कर लो। ६३ विदर्भ देश में भीमक नामक राजा हैं, तुम उनकी कन्या (के रूप में अवतरित) हो जाओ।' (यह सुनकर) तत्काल कमलजा लक्ष्मी श्रीहरि को नमस्कार करके चल दी। ६४ (तत्पश्चात्) जगद्वन्द्य भगवान श्रीहरि स्वयं मथुरा नगरी में प्रविष्ट हो गये और देवकी के गर्भ (के रूप) में आकर लीला-पूर्वक रह गये। ६५ भगवान गर्भ-वास को प्राप्त हो गये, ऐसा कहने पर साधु-सन्त (यह सोचकर) हँसने लगेंगे कि भगवान जगन्नाथ तो लीलावतारी हैं, उनका कैसा जन्म और मृत्यु ?। ६६ यह तो कल्पान्त तक में घटित नहीं होगा कि जिनका स्मरण करने से जन्म-मृत्यु (के बन्धन)

१ जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न मन की चार अवस्थाओं में से तीन हैं। चौथी अवस्था उन्मनी है।

२ क्षीराब्धि-सुता लक्ष्मी—जब देवों और दानवों ने अमृत के लिए क्षीर-सागर का मन्थन किया, तब उसमें से निकले हुए चौदह रत्नों में से लक्ष्मी एक हैं। इस दृष्टि से लक्ष्मी क्षीर-सागर की कन्या हैं। विष्णु ने उनका पाणिग्रहण किया।

दाविली मृत्युलोकींची टेव। तो ब्रह्मानंद स्वयमेव। जन्म मृत्यु त्या कैंचा। ६८ क्षीरसागरींहून हरि आला। तरी तो ठाव काय ओस पडिला। तो तैसाचि संचला। लक्ष्मीशेषांसमवेत। ६९ अनंत रूपें अनंत नामें। अनंत अवतार अनंत कर्में। अनंत लीला घनश्यामें। भक्तांलागीं दाविल्या। ७० अनंत ब्रह्मांडें अनंत शक्ती। अनंत युगींच्या अनंत कीर्ती। अनंत रूपें अनंत मूर्ती। अतर्क्य गति वेदशास्त्रां। ७१ असो लौकिक विचार देख। गर्भी आला लक्ष्मीनायक। कंसासी लाविला धाक। देखिला नसतां सर्वदा। ७२ देवकी जाहली गर्भिणी। तेज न माये गगनीं। खेद कांही न वाटे मनीं। सुखेंकरूनि डुल्लत। ७३ पोटा आला विदेही हरी। देवकी नाहीं देहावरी। जनीं वनीं दिगंतरीं। अवघा मुरारी दिसतसे। ७४ वसुदेव म्हणे देवकीप्रती। तुज चिंता कां न वाटे चित्तीं। आठव्याची कैसी गती। होईल ते न कळे पां। ७५ कंस जपतो बहुत। आठव्याचा करावया घात।

खण्डित हो जाते हैं, वे गर्भ में आकर रह गये हों। ६७ यह तो यों ही लौकिक धारणा है और (कवि ने) मृत्यु-लोक की रीति दिखा दी है। वे ब्रह्मानन्द तो स्वयमेव (अनादि-अनन्त) हैं, तो उनका कैसा जन्म और कैसी मृत्यु। ६८ यदि क्षीरसागर में से श्रीहरि (निकलकर) आ गये हों, तो क्या वह स्थान सूना हो गया ? वे तो वैसे ही लक्ष्मी और शेष सहित भरे हुए (व्याप्त) हैं। ६९ उनके अनन्त रूप हैं, अनन्त नाम हैं। उनके अनन्त अवतार हैं, अनन्त कर्म हैं। घनश्याम (भगवान श्रीहरि) ने भक्तों के लिए अनन्त लीलाएँ प्रदर्शित की हैं। ७० उनके द्वारा अनन्त ब्रह्माण्ड निर्मित हैं; उनकी शक्ति अनन्त है; अनन्त युगों में अनन्त कीर्तियाँ उन्होंने प्राप्त की हैं। उनके अनन्त रूप हैं, उनकी अनन्त मूर्तियाँ हैं। उनकी गतियाँ वेदों और शास्त्रों के लिए भी अतर्क्य (तर्क, अनुमान के परे) हैं। ७१ अस्तु। (यहाँ केवल) लौकिक विचार देखिए। (वह यह है कि) लक्ष्मी-पति भगवान श्रीहरि (देवकी के) गर्भ में आ गये और कंस द्वारा कभी भी नहीं देखे जाने पर भी उन्होंने उसे आतंकित कर दिया। ७२ (जब) देवकी गर्भवती हो गयी, तो उसका तेज आकाश में नहीं समा रहा था। मन में उसे कुछ भी खेद नहीं अनुभव हो रहा था। वह तो सुख पूर्वक डोल रही थी। ७३ (यद्यपि) विदेह (देह-रहित, निराकर) भगवान हरि गर्भ में आ गये, तो भी देवकी देह-भाव से युक्त नहीं थी—अर्थात् देह सम्बन्धी सुध-बुध उसे नहीं थी; वह विदेहावस्था को प्राप्त हो गई थी। उसे जन में, वन में दिगन्तर में केवल भगवान मुरारि दिखायी दे रहे थे। ७४ (तब) वसुदेव ने देवकी से कहा (पूछा), 'तुम्हें मन में कोई भी चिन्ता क्यों नहीं हो रही है ? यह समझ में नहीं आ रहा है कि (अपने) आठवें (बच्चे) की कैसी स्थिति होगी। ७५ आठवें को मार डालने के

यावरी देवकी बोलत। प्रतिउत्तर काय तेव्हां। ७६ भुजा पिटोनि बोले वचन। कंसास मारीन आपटोन। मुष्टिकचाणूरांचा प्राण। क्षणमात्रें घेईन मी। ७७ हांक फोडोन गर्जे थोर। उतरीन पृथ्वीचा भार। करूनि दैत्यांचा संहार। बंदिशाळा फोडीन मी। ७८ आणीं वेगें धनुष्यबाण। युद्ध करीन मी दारुण। जरासंध रथीं बांधोन। सत्रा वेळां आणीन मी। ७९ भस्म करीन कालयवन। रचीन द्वारकापट्टण। सकळ नृपां शिक्षा लावून। पट्टराणी आणीन मी। ८० हांक फोडिली क्रोधें थोर। जिवें मारीन भौमासुर। निवटीन कौरवभार। निजभक्तकैवारें। ८१ मी भक्तांचा सारथि होईन। दुष्ट सर्व संहारीन। मी ब्रह्मानंद परिपूर्ण। अवतरलों पृथ्वीवर। ८२ वसुदेवासी चिंता वाटे। ही गर्जते येवढ्या नेटें। जरी बाहेर मात प्रकटे। तरी अनर्थ होईल पां। ८३ वसुदेव बोले वचन। देवकी धरीं आतां मौन। येरी म्हणे कैंची देवकी पूर्ण। ब्रह्म सनातन मी असें। ८४ स्त्री पुरुष नपुंसक। त्यांहूनि वेगळा मी निष्कलंक। सकळमायाचक्रचाळक। कर्ता हर्ता मीच पैं। ८५ मी सर्वद्रष्टा अतींद्रिय। मी अज अव्यय निरामय।

लिए कंस बहुत ध्यान रख रहा है।' तब इस पर प्रत्युत्तर स्वरूप देवकी क्या बोली ?। ७६ उसने ताल ठोंककर यह बात कही, 'मैं कंस को पटककर मार डालूँगी। मैं क्षण मात्र में मुष्टिक और चाणूर के प्राण ले लूँगी।' ७७ वह चिल्लाकर ज़ोर से गरज उठी, 'मैं पृथ्वी के (पाप-) भार को उतार दूँगा और दैत्यों का संहार करके मैं बन्दीशाला तोड़ दूँगा। ७८ झट से धनुष-बाण लाओ। मैं दारुण युद्ध करूँगा और जरासन्ध को सत्रह बार रथ में बाँधकर ले आऊँगा। ७९ मैं कालयवन को (क्रोधाग्नि में जलाकर) भस्म कर दूँगा और द्वारिकापुरी का निर्माण करूँगा। (फिर) समस्त राजाओं को दण्डित करके पटरानी को ले आऊँगा।' ८० (फिर) वह क्रोध-पूर्वक ज़ोर से चिल्ला उठी, 'मैं भौमासुर को जी-जान से मार डालूँगा; कौरवों के दल (-भार) को अपने भक्त का पक्षपात (समर्थन) करते हुए नष्ट कर डालूँगा। ८१ मैं भक्तों का सारथी बनूँगा; समस्त दुष्टों का संहार कर डालूँगा। मैं तो परिपूर्ण ब्रह्मानन्द (आनन्द-रूप ब्रह्म) ही पृथ्वी पर अवतरित हुआ हूँ।' ८२ (यह सुनकर) वसुदेव को चिन्ता अनुभव होने लगी—यह तो इतने ज़ोर से गरज रही है; यदि यह बात बाहर प्रकट (विदित) हो जाए, तो अनर्थ हो जाएगा। ८३ (तब) वसुदेव ने यह बात कही, 'हे देवकी, अब तुम मौन धारण करो।' तो वह बोली, 'कहाँ की देवकी ? मैं तो पूर्ण सनातन ब्रह्म हूँ। ८४ स्त्री, पुरुष, नपुंसक—इनसे मैं भिन्न (परे) हूँ, निष्कलंक हूँ। मैं समस्त माया के चक्र का चालक हूँ। कर्ता, हर्ता मैं ही हूँ। ८५ मैं सर्व-द्रष्टा ((सर्व-साक्षी), अतीन्द्रिय हूँ। मैं अजन्मा, अव्यय (अक्षय),

अजित अपार निष्क्रिय। आनंदमय वर्ते मी।८६ मी प्रळयकाळाचा शास्ता। मी आदिमायेचा नियंता। मी चहूं वाचांपरता। मायानिर्मिता मीच पैं।८७ मीच सगुण मीच निर्गुण। मीच थोर मीच लहान। देव दैत्य निर्मून। पाळिता हर्ता मीच पैं।८८ ऐसें देवकी बोलोन। मागुती धरिलें मौन। तों आकाशीं देव संपूर्ण। गजर करिती दुंदुभींचा।८९ अवतरेल आतां भगवंत। करील दुष्टांचा निःपात। देव मिळोनि समस्त। गुप्त मथुरेंत उतरले।९० ब्रह्मादिक आणि चंद्र। बंदिशाळे पातले समग्र। देवकीस प्रदक्षिणा करिती सुरवर। एक नमस्कार घालिती।९१ उभे ठाकूनि बद्धांजली। गर्भस्तुति आरंभिली। जय सच्चिदानंद वनमाळी। देवकी-जठरगर्भा।९२ जय हरे नारायणा गोविंदा। इंदिरावरा आनंदकंदा। सर्वेशा मुकुंदा परमानंदा। परमपुरुषा परज्ञा।९३ पद्मजजनका पुरातना। पंकजनेत्रा परमपावना। पद्मवल्लभा पशुपतिजीवना। पयोब्धिवासा परेशा।९४ पतितपावना पंकजधारका। कमनीयरूपा निष्कलंका।

निरामय हूँ। मैं अजित, अपार (असीम), निष्क्रिय हूँ। (फिर भी) मैं आनन्दमय बना रहता हूँ।८६ मैं प्रलयकाल का शास्ता हूँ; मैं आदिमाया का नियमन करनेवाला हूँ। मैं चारों (प्रकार की) वाचाओं से परे हूँ। मैं ही माया का निर्माता हूँ।८७ मैं ही सगुण हूँ और मैं ही निर्गुण हूँ। मैं ही बड़ा और मैं ही छोटा हूँ। देवों और दैत्यों का निर्माण करते हुए उनका पालन-कर्ता तथा उनका विनाश-कर्ता मैं ही हूँ।' ८८ ऐसा बोलकर देवकी ने फिर मौन धारण किया। तब समस्त देव आकाश में दुन्दुभियों का गर्जन करने लगे (दुन्दुभियाँ बजाने लगे)।८९ अब भगवान अवतीर्ण होंगे और दुष्टों का निःपात करेंगे—(इस विचार से) समस्त देव मिलकर गुप्त रूप से मथुरा में उतर (कर ठहर) गये।९० ब्रह्मा आदि देव, चन्द्र समस्त बन्दीशाला में आ पहुँचे। उन देवश्रेष्ठों ने देवकी की परिक्रमा की और कुछ एक ने नमस्कार किया।९१ हाथ जोड़े खड़े रहकर उन्होंने (भगवान की) गर्भ-स्तुति आरम्भ की। (वे बोले—) हे सच्चिदानन्द, हे वनमाली, हे देवकी के उदर में स्थित गर्भ-स्वरूप, (आपकी) जय हो।९२ हे हरि, हे नारायण, हे गोविन्द, (आपकी) जय हो। हे इन्दिरा-वर (लक्ष्मी-पति), हे आनन्द-कन्द, हे सर्वेश, हे मुकुन्द (-मोक्ष-दाता), हे परमानन्द (-स्वरूप), हे परमपुरुष, हे परज्ञ (दूसरे सबको जाननेवाले, आपकी) जय हो।९३ हे पद्मज (-ब्रह्मा) के जनक, हे पुरातन अर्थात् आदिपुरुष, हे पंकज-नेत्र, हे परम पावन (-स्वरूप), हे पद्म-वल्लभ (लक्ष्मी-वल्लभ), हे पशुपति शिवजी के लिए जीवन (-स्वरूप), हे क्षीरसागर के निवासी, हे परेश, (आपकी जय हो)।९४ हे पतित-पावन, हे पंकज-धारक (हाथ में कमल धारण करने-

कमळस्वरूपा कमलानायका। किल्विषमोचका कमलेशा। ६५ कर्ममोचका करिवरतारणा। कैवल्यनिधि कैटभभंजना। करुणाकरा कामविहीना। काळनाशना काळात्मया। ६६ आदिकेशवा विश्वभूषणा। विश्वंभरा वेदपाळणा। वेदपुरुषा वेदस्थापना। विश्वाधीशा विश्वपते। ६७ अनंतवेषा अनंतवदना। अनंतनामा अनंतनयना। अनंतपाणि अनंतचरणा। अनंत-

वाले), हे कमनीय रूपवाले, हे निष्कलंक, हे कमल-स्वरूप, हे कमला (लक्ष्मी) के स्वामी, हे किल्विष अर्थात् पाप से मुक्त करनेवाले, हे कमलेश, हे कर्म (के बन्धन) को छुड़ानेवाले, हे करिवर अर्थात् गजेन्द्र[1] का उद्धार करनेवाले, हे कैवल्य-निधि, हे कैटभ-भंजन[2], हे करुणाकर, हे काम-विहीन, हे काल (के भय) का नाश करनेवाले, हे कालात्मा, हे आदिकेशव (आदि-पुरुष), हे विश्व-भूषण, हे विश्वम्भर, हे वेदों के पालन-कर्ता (रक्षक), हे वेद-पुरुष, हे वेद-प्रतिस्थापक, हे विश्व के अधीश्वर, हे विश्व-पति, हे अनन्त-वेश (अनन्त-वेश अथवा रूप-धारी), हे अनन्त-वदन (असंख्य हैं मुख जिनके), हे अनन्त-नाम (असंख्य हैं नाम जिनके), हे अनन्त-नयन (असंख्य हैं नेत्र जिनके), हे अनन्त-पाणि (असंख्य हैं हाथ जिनके), हे अनन्त-चरण

---

१ गजेन्द्र का उद्धार—कर्दम प्रजापति के देवहूति से उत्पन्न जय और विजय नामक दो पुत्र भगवान विष्णु के परम भक्त तथा यज्ञ-कर्म-कुशल थे। एक समय मरुत राजा द्वारा आयोजित यज्ञ-कर्म में दक्षिणा के वितरण को लेकर उन दोनों में विवाद आरम्भ हुआ, तो जय ने क्रोधपूर्वक विजय को 'नक्र (मगर)' हो जाने का अभिशाप दिया। इधर विजय ने जय को 'गज (हाथी)' हो जाने का अभिशाप दिया। परन्तु शीघ्र ही पछताते हुए वे दोनों भगवान विष्णु की शरण में गये, तो उन्होंने यथाकाल उनका उद्धार करने का अभिवचन दिया। उपरोक्त अभिशाप के फलस्वरूप जय-विजय क्रमशः नक्र और गज होकर गण्डकी नदी के तट पर रहने लगे। एक दिन गज कार्तिक स्नान हेतु जब पानी में प्रविष्ट हो गया, तो नक्र ने उसका पैर पकड़कर उसे अन्दर खींचना आरम्भ किया। उस समय गज ने भगवान विष्णु की आर्त-रव में स्तुति करके रक्षा करने की विनती की। उसे सुनकर वे तत्काल वहाँ आविर्भूत हुए। उन्होंने नक्र का वध किया और गज की रक्षा की—इस प्रकार उन्हें शाप-मुक्त करते हुए उनका उद्धार किया।

२ कैटभ-भंजन—पुराणों की एक मान्यता के अनुसार मधु और कैटभ नामक दो असुर ब्रह्मा के पसीने से (तो दूसरी मान्यता के अनुसार भगवान विष्णु के कान के मल से) उत्पन्न हो गये थे। उन्होंने तपस्या के बल पर ब्रह्मा के वरदान से अजेयता प्राप्त की। फिर वे नाना प्रकार से जगत को पीड़ा पहुँचाते रहे। वे विप्रों को मार डालते थे। तदनन्तर पाँच सहस्र वर्ष तक युद्ध करते रहने पर भी भगवान विष्णु उन्हें जीतने में असमर्थ रहे। तब अन्त में उन दैत्यों को मोहित करके भगवान विष्णु ने उनसे मृत्यु का वरदान मँगवाया और यथावसर उन दोनों को गोद में लेकर उनका वध किया। इससे भगवान विष्णु मधुसूदन, मधुकैटभारि, कैटभ-भंजन आदि नामों से विख्यात हो गये।

कल्याणा नमोस्तु ते। ९८ अव्ययरूपा अपरंपारा। अगण्या अगुणा अगोचरा। अनामा असंगा अक्षरा। आदिकारणा आत्मया। ९९ अमानुषा अविद्या-छेदना। आनंदरूपा आनंदसदना। अभेदा अबोधी अमळपूर्णा। आदिमूळा अव्यक्ता। १०० सर्वातीता सर्वज्ञा। गुणसागरा गुणज्ञा। आम्ही सकळ सुर तवाज्ञा। पाळोनियां राहतों। १०१ ऐसी स्तुति करूनि जाणा। देव पावले अंतर्धाना। आनंद न माये मना। सुरवरांच्या तेधवां। २ कंसास रात्रंदिवस। लागला आठव्याचा निजध्यास। आठही प्रहर तयास। आठवावयास दुजें नाहीं। ३ दूतींप्रती पुसे कंस। गर्भास किती जाहले मास। त्या म्हणती संपावयास। नव मासां अवधि थोडी हो। ४ आपण येऊन कंसासुर। उभा राहे देवकीसमोर। तंव ते आनंदरूप साचार। चिंता अणुमात्र नाहींच। ५ नासाग्रीं ठेवून दृष्टी। कृष्णरूप पाहे सृष्टी। कृष्णरूप पाहे पाठीं पोटीं। बोलतां ओठीं कृष्णचि ये। ६ कृष्णरूप आसन वसन।

(असंख्य हैं पाद जिनके), हे अनन्त-कल्याण (के कर्ता), आपको नमस्कार है। ९५-९८ हे अव्यय-रूप (जिनके रूप का कभी क्षय अर्थात् नाश नहीं होता), हे अपरंपार (जिनका कोई पार या अन्त नहीं है), हे अगण्य (जिनके बड़प्पन की गिनती या नाप नहीं हो पाती), हे अगुण, हे अगोचर (इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान आदि पाने के परे), हे अनाम, हे असंग, हे अक्षर, हे आदिकारण, हे (परम) आत्मा, हे अमानुष (अमानवीय), हे अविद्या (अज्ञान) के छेदक अर्थात् नाश करनेवाले, हे आनन्द-स्वरूप, हे आनन्द-सदन, हे अभेद्य, हे अबोध्य अर्थात् अगम्य, हे पूर्णतः अमल (निर्मल, शुद्ध), हे (ब्रह्माण्ड के) आद्य मूल (-तत्त्व), हे अव्यक्त, हे सबके अतीत (परे), हे सर्वज्ञ, हे गुण-सागर, हे गुणज्ञ, हम सब देव आपकी आज्ञा का पालन करते रहते हैं। ९९-१०१ समझिए कि ऐसी स्तुति करके देव अन्तर्धान को प्राप्त हो गये (अदृश्य हो गये)। तब देवों के मन में आनन्द नहीं समा रहा था। १०२ (उधर) कंस को रात-दिन (वसुदेव-देवकी के) आठवें (पुत्र) का अविरत ध्यान लगा रहा था। आठों ही पहर स्मरण करते रहने के लिए उसे कोई और बात थी (ही) नहीं रही। १०३ कंस ने दूतियों से पूछा, 'गर्भ के कितने मास हो गये।' तो उन्होंने कहा, 'नौ मास समाप्त होने को थोड़ी अवधि शेष है। १०४ (अनन्तर) कंसासुर स्वयं आकर देवकी के सामने खड़ा हो गया। तब वह सचमुच आनन्द-स्वरूप हो गयी थी, (अतः) उसे अणु मात्र (तक) चिन्ता अनुभव ही नहीं हो रही थी। १०५ नाक के अग्र पर दृष्टि लगाये हुए वह सृष्टि को कृष्ण-स्वरूप देख रही थी। वह पीछे तथा आगे (सब कुछ) कृष्ण-रूप (कृष्णमय) देख रही थी। बोलते समय ओठों पर कृष्ण (का) ही (नाम) आता था। १०६ उसे आसन और वसन (वस्त्र) कृष्ण-रूप

कृष्णरूप अन्न पान। कृष्णरूप दिसे सदन। भूषण संपूर्ण कृष्णरूप। ७ पृथ्वी आप तेज वायु निराळ। कृष्णरूप दिसे सकळ। स्थावर जंगम निर्मळ। घननीळरूप दिसतसे। ८ पुढें उभा कंस देख। परी निर्भय देवकी सुरेख। महेशापुढें मशक। तैसा कंस भासतसे। ९ इंद्रापुढें जैसा रंक। कीं ज्ञानियापुढें महामूर्ख। कीं केसरीपुढें जंबुक। कीं सूर्यापुढें खद्योत पैं। ११० कीं हंसापुढें बग। कीं कोकिळेपुढें काग। कीं विप्रासमोर मांग। तैसा खळ उभा तेथें। १११ कीं नामापुढें पाप देख। कीं वेदांतापुढें चार्वाक। कीं शंकरापुढें मशक। कीं मीनकेतन उभा जैसा। १२ कीं पंडितापुढें अजापाळक। कीं श्रोतियापुढें हिंसक। कीं वासुकीपुढें मूषक। लक्षणें पाहूं पातला। १३ अग्नीपुढें जैसें तृण। कीं ज्ञानियापुढें अज्ञान। कीं महावातासी

दिखायी दे रहा था; अन्न और पान (पेय, पानी अर्थात् खान-पान) कृष्ण-रूप दिखायी दे रहा था। उसे घर कृष्ण-रूप दीख रहा था; आभूषण सम्पूर्ण कृष्ण-रूप दिखायी दे रहे थे। १०७ उसे पृथ्वी, आप (जल), तेज, वायु, आकाश समस्त (पंच महाभूत) कृष्ण-रूप दिखायी दे रहे थे; स्थावर तथा जंगम निर्मल घन-नील (घनश्याम कृष्ण-) स्वरूप दीख रहे थे। १०८ देखिए, सामने कंस खड़ा था, फिर भी सुन्दरी देवकी निर्भय (बनी रही) थी। कंस (देवकी के सामने) वैसा ही आभासित हो रहा था, जैसा महेश शिवजी के सामने मच्छड़ होता हो। १०९ अथवा इन्द्र के सामने जैसे कोई दरिद्र हो, अथवा ज्ञानी के सामने कोई महामूर्ख हो, अथवा सिंह के सम्मुख सियार हो, अथवा सूर्य के सामने जुगनू हो, अथवा हंस के सामने बगुला हो, अथवा कोयल के सामने कौआ हो, अथवा किसी ब्राह्मण के सामने कोई मातंग हो, वैसा ही वह खल वहाँ (देवकी के सामने) खड़ा (दिखायी दे रहा) था। ११०-१११ अथवा देखिए, (जैसे भगवान के) नाम के सामने पाप हो, अथवा वेदान्त के सामने चार्वाक[1] हों, अथवा शिवजी के सामने मच्छड़ या मीन-केतन कामदेव जैसे खड़ा हो, अथवा किसी पण्डित के सामने कोई गड़रिया, अथवा श्रोत्रीय ब्राह्मण के सामने हिंसक (कसाई), अथवा वासुकी नाग के सामने चूहा उसके लक्षण देखने के लिए आ पहुँचा हो; अथवा अग्नि के सामने जैसे घास हो, अथवा किसी ज्ञानी के सामने कोई अज्ञान हो, अथवा प्रचण्ड वायु को रोकने के लिए जैसे

१ चार्वाक—चार्वाक नास्तिक भौतिक जड़वाद के प्रणेता माने जाते हैं। ये बृहस्पति के शिष्य थे। इनके अनुसार, केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही सबका निर्धारण करने की परम कसौटी है और ऐहिक सुख ही सर्वोपरि है; महाभूतों के विशिष्ट प्रमाण में बने योग से चैतन्य की उत्पत्ति होती है और मरण के पश्चात् जीव या चैतन्य का कोई अस्तित्व नहीं रहता। अत: ब्रह्म, परमात्मा, स्वर्ग आदि का अस्तित्व चार्वाक नहीं मानते। इस दृष्टि से चार्वाक-मत वेदान्त-मत का परम विरोधी मत है।

आडवें पूर्ण। जलदजाल जैसें कां। १४ ऐसा कंस देवकीपुढें। तीस न्याहाळूनि पाहे निवाडें। तंव तें चतुर्भुज रूपडें। शंखचक्रयुक्त दिसे। १५ न दिसे स्त्रियेची आकृती। परम देदीप्यमान विष्णुमूर्ती। आरक्तनेत्र सुदर्शन हातीं। ऊर्ध्व करूनि उभी असे। १६ मुरकुंडी कंसाची वळली। शस्त्रें हातींचीं गळालीं। बोबडी तोंडासी पडली। हांक फोडिली भयें तेव्हां। १७ आरडोनियां कंस पळे। थरथरां कांपे वाटे अडखळे। पिशाचवत संचरलें। गृहामाजी आपुलिया। १८ कंस तेव्हां शस्त्र घेऊनी। रागें आपटीत मेदिनीं। आठव्यास जिवें मारूनी। टाकीन मी निर्धारें। १९ आठव्यानें मज व्यापिलें। त्यास मी गिळीन सगळें। कंस रागें फिरवी डोळे। आल्यागेल्यावरी पैं। १२० आतां श्रीकृष्णाचा जन्मकाळ। पाहों आले निर्जर सकळ। दुंदुभिनादें निराळ। दुमदुमलें तेधवां। १२१ विमानांची जाहली दाटी। वाव नाहीं नभापोटीं। करिती दिव्य सुमनवृष्टी। आनंद पोटीं न समाये। २२ वर्षाऋतु श्रावणमास। बुधाष्टमी कृष्णपक्ष। अवतरला कमलदलाक्ष।

मेघजाल पूर्णतः आड़े आ गया हो, वैसे ही कंस देवकी के सामने (आकर) उसे निरखकर देखने लगा, तब उसे वह चतुर्भुज सुन्दर रूप शंख-चक्र से युक्त दिखायी देने लगी। १२-१५ उसे स्त्री की आकृति नहीं दिखायी दे रही थी, (परन्तु वहाँ) भगवान विष्णु की परम देदीप्यमान तथा आरक्त-नेत्र मूर्ति हाथ में सुदर्शनचक्र ऊपर उठाये हुए खड़ी थी। १६ (उसे देखते ही) कंस भय से व्याकुल होकर लोट-पोट हो गया। उसके हाथों के शस्त्र गिर पड़े; उसकी घिग्घी बँध गयी। तब वह भय से चीख उठा। १७ चिल्लाते हुए कंस भागने लगा। वह थरथराहट के साथ काँप रहा था; मार्ग में लड़खड़ा रहा था। उसके अपने ही घर में उस पर पिशाच का-सा संचार हो गया। १८ (फिर) तब कंस शस्त्र लेकर भूमि पर क्रोध-पूर्वक पटकने लगा। (वह बोला—) मैं निश्चय ही (देवकी के) आठवें (पुत्र) को जान से मार डालूँगा। १९ मुझे उस आठवें ने व्याप्त कर लिया है, उसे मैं पूरा(-पूरा) निगल डालूँगा। (फिर) वह आने-जानेवाले पर क्रोध-पूर्वक आँखें तरेरते हुए मटकाने लगा। १२० अब श्रीकृष्ण के जन्म-काल को देखने के लिए समस्त देव आ गये। तब आकाश दुन्दुभियों (के गर्जन) से गूँज उठा। १२१ विमानों की भीड़ हो गयी। आकाश के उदर में अर्थात् आकाश में कोई (रिक्त) स्थान न रहा। वे (देव) दिव्य सुमनों की बौछार करने लगे। उनके मन में आनन्द समा नहीं रहा था (वे फूले नहीं समा रहे थे)। २२ वह वर्षा ऋतु थी, श्रावण मास था[1]। बुधवार और कृष्ण पक्ष की अष्टमी थी। उस दिन रोहिणी नक्षत्र था; (ऐसे

[1] दक्षिण में मास का आरम्भ शुक्ला प्रतिपदा से और अन्त अमावास्या पर माना जाता है। इस दृष्टि से उत्तर के भाद्रपद का कृष्णपक्ष दक्षिण में श्रावण का उत्तरार्द्ध हुआ।

रोहिणी नक्षत्र ते दिवशीं। २३ सोमवंशीं अवतार। म्हणोनि साधिला चंद्रपुत्रवार। जाहला शशीचा उद्धार। दशा आली वंशासी। २४ मध्यरात्रीं अष्टमीस। देवकीपुढें परमपुरुष। चतुर्भुज हृषीकेश। निमासुर डोळस पैं। २५ आठां वर्षांची मूर्ती। असंभाव्य पडली दीप्ती। तेजें दश दिशा उजळती। तेथें लपती शशिसूर्य। २६ पदकमळींचा आमोद सेवावया। भ्रमरी जाहली क्षीराब्धितनया। सर्वकाळ न विसंबे पायां। कृपण जैसा धनातें। २७ भागीरथी चरणीं उद्भवली। सागरीं ते एक जाहली। परी न विसंबे निजमुळीं। कदाकाळीं तुटेना। २८ अरुणबालार्कसंध्याराग। दिव्य रत्नांचे काढिले रंग। तैसे तळवे आरक्त सुरंग। श्रीरंगाचे शोभती। २९ चंद्र क्षयरोगें जाहला कष्टी। मग राहिला चरणांगुष्ठीं। कीं दशधा होऊनि दाही बोटीं। सुरवाडला शशी तो। १३० वज्र ध्वज पद्म अंकुश। ऊर्ध्व-

---

दिन) कमल-दलाक्ष (श्रीकृष्ण) अवतरित हो गये। २३ उनका अवतार सोमवंश में हुआ, अतः उन्होंने चन्द्र के पुत्र (बुध) के नाम पर नामकरण किया हुआ दिन (बुधवार[1] अवतार ग्रहण के लिए) अपना लिया। (जब) चन्द्र का उद्धार अर्थात् उदय हो गया, तब उस (सोम) वंश के लिए अच्छी दशा प्राप्त हो गयी। २४ अष्टमी के दिन आधी रात को देवकी के सम्मुख लावण्यमय तथा सुन्दर (आँखोंवाले) चतुर्भुज-धारी (भगवान) हृषीकेश आविर्भूत हो गये। २५ (उनकी) वह (मूर्ति) आठ वर्षों की मूर्ति थी। उससे असीम कान्ति उत्पन्न हो रही थी। उसके तेज से दसों दिशाएँ उज्ज्वल हो गयी थीं; (उस तेज में) वहाँ (मानो) चन्द्र और सूर्य छिप गये थे। २६ उनके पद-कमलों की सुगन्धि का सेवन करने के लिए क्षीराब्धि-तनया लक्ष्मी भ्रमरी हो गयी थी। जैसे कृपण धन को कभी भी नहीं भूल पाता उसी प्रकार वह उन पदों को समस्त समय अर्थात् कभी भी नहीं भूलती है, नहीं छोड़ती है। २७ गंगा नदी उनके चरणों से उत्पन्न हो गयी और सागर में मिलकर उसके साथ वह एक अर्थात एकात्म हो गयी; फिर भी वह उन चरणों को नहीं छोड़ती और अपने मूल (उद्गम) स्थान से किसी भी समय छूटकर अलग नहीं होती। १२८ अरुण की कान्ति और बाल-सूर्य की कान्ति, सन्ध्याकाल का रंग जैसे शोभायमान होता है, दिव्य रत्नों के रंग निकाल लिये हों, तो वे जैसे शोभायमान होते हों, वैसे ही भगवान श्रीरंग के आरक्त (लाल-से) तथा अच्छे रंग से युक्त तलुवे शोभायमान थे। १२९ चन्द्र क्षय रोग से दुःखी हो गया है और फिर भगवान के चरणों के अंगूठों में निवास करके रह गया है, अथवा चन्द्र दस खण्डों में विभक्त होकर उनके दसों अंगुलियों में सुख-पूर्वक रह

---

[1] बुध—एक पौराणिक मान्यता के अनुसार चन्द्र (सोम) ने बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण किया था। सोम के तारा से बुध नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

रेखा चक्र पदीं विशेष। सामुद्रिक चिन्हें सुरस। काय अर्थ सुचविला। ३१
साधकास ऊर्ध्वरेखा। ऊर्ध्वमार्ग दावी देखा। सत्त्वशीळा प्रेमळ भाविका।
ऊर्ध्वसंकेत दावीतसे। ३२ विद्यामदें जाहले जे मस्त। कोणास न लेखिती
गज उन्मत्त। त्यांसी आकर्षावया वैकुंठनाथ। क्षमांकुश धरी पदीं। ३३
पद्म कां धरिलें पायीं। पद्मा वसे तया ठायीं। आणिकांतें प्राप्त नाहीं।
घोर तप आचरतां। ३४ अहंकार पर्वत थोर। भक्तांस बाधक जड फार।
तो फोडावया वज्र। हरीनें पायीं धरियेलें। ३५ कीं तें चरणलक्षण जहाज।
वरी विशाळ भक्तिध्वज। भक्त तारावया अधोक्षज। सदा उदित वाट
पाहे। ३६ जीव शरण येती जडरूप। त्यांचें छेदावया सर्व पाप। चक्र
पायीं देदीप्य। तेज अमूप झळकतसे। ३७ प्रपदें दिसती विमल। घोटी
त्रिकोण सोज्ज्वळ। इंद्रनीळमणि सुढाळ। परी उपमे पुरेना। ३८ तळवे
आरक्त विराजती। कीं बहु श्रमली सरस्वती। म्हणोनि घ्यावया विश्रांती।

रहा है। १३० वज्र, ध्वज, पद्म, अंकुश, ऊर्ध्वरेखा, चक्र जैसे विशिष्ट सुन्दर (शुभ) सामुद्रिक चिह्न क्या अर्थ सूचित कर रहे हैं। १३१ देखिए, ऊर्ध्वरेखा साधक को उर्ध्व मार्ग (उद्धार, मुक्ति की ओर जानेवाला) मार्ग दिखा रही है, तो सत्त्वशील और प्रेमी भक्त को ऊर्ध्व की ओर संकेत कर रही है। १३२ जो विद्यारूपी मद से उन्मत्त हो गये हैं और वे उन्मत्त गज (-से) किसी को गिनते ही नहीं हैं, उनको वश में कर लेने के लिए वैकुण्ठनाथ (भगवान विष्णु) ने क्षमा रूपी अंकुश पाँवों में धारण किये हैं। १३३ उन्होंने पाँवों में कमल क्यों धारण किया है ? (इसलिए कि) उस स्थान पर पद्मा (लक्ष्मी) निवास कर रही है और विकट तप का आचरण करने पर भी वे (पद) दूसरों को प्राप्त नहीं हो सकते। १३४ अहंकार रूपी प्रचण्ड, बहुत भारी पर्वत भक्तों के लिए बाधा उत्पन्न करनेवाला होता है। उसे फोड़ डालने के लिए भगवान हरि ने पाँवों में वज्र धारण किया है। १३५ अथवा वह चरण पर अंकित चिह्न मानो जलपोत (जहाज) है। उस पर भक्ति-स्वरूप ध्वज (फहर रहा) है। अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए अधोक्षज भगवान विष्णु नित्य तत्पर होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। १३६ जीव जड़ रूप से उनकी शरण में आते रहते हैं; उनके समस्त पापों को काटकर नष्ट करने के लिए उनके पाँव में देदीप्यमान चक्र अपार तेज से जगमगा रहा है। १३७ उनके पाँव (आगे के तलुवे) निर्मल दिखायी देते हैं; टखने त्रिकोण के आकारवाले तथा परम उज्ज्वल हैं। इन्द्रनील रत्न चमकीला तो होता है; फिर भी वह उपमा के लिए पर्याप्त नहीं है। १३८ उनके आरक्त तलुवे शोभायमान हैं। अथवा (जान पड़ता है कि) सरस्वती बहुत थक गयी है और विश्राम करने के लिए भगवान हरि के तलुओं (की

तळवां राहिली हरीच्या। ३९ विश्वाचीं पापें किती हरावीं। म्हणोनि श्रमली जान्हवी। शुभ्र वांकीरूप जाहली बरवी। म्हणोनि सत्कवि वर्णिती हो। १४० कालिंदी कृतांताची भगिनी। ऐसें बोलिजे सर्व जनीं। तो अपवाद चुकवावयालागूनी। मांड्या सुनीळ झाली ते। १४१ ऐसी हरिपदीं त्रिवेणी सुरंग। अज्ञान-छेदक दिव्य प्रयाग। अक्षयवट सुरंग। ध्वजांकुश तेचि पैं। ४२ चरणीं सुरवाडले प्रेमळ। तेच तेथें पूर्ण मराळ। वांकींवरी रत्नें तेजाळ। तपोधन तपती ते। ४३ प्रयागीं मोक्ष ठेविलां देह। येथींच्या श्रवणें होय विदेह। भावें माघमासीं निःसंदेह। त्रिवेणीमाधव सेविजे। ४४ त्या प्रयागीं जातां कष्ट। हा ध्यानींच होतो प्रगट। या प्रयागीं नीलकंठ। क्षेत्रसंन्यास घेत पैं। ४५ वांकी नेपुरें तोडर। करिती दैत्यांवरी गजर। पोटऱ्या जंघा सुकुमार। श्यामसुंदर दिसती पैं। ४६ कीं ते सरळ कर्दळी

शरण) में रह गयी है। १३९ विश्व के कितने पापों का हरण (क्षालन) करें ? (वह असम्भव है) अतः जाह्नवी गंगा (उन्हें धो डालते हुए) थक गयी और वह अच्छी शुभ्र वाँक-स्वरूप हो गयी (और भगवान के बाहु में शोभायमान हो गयी) —ऐसा कहते हुए सत्कवि (भगवान के बाहुओं में पहनी हुई बाँकों का) वर्णन करते हैं। १४० सब लोगों में ऐसा कहा जाता है कि कालिन्दी (यमुना) कृतान्त यमदेव की भगिनी है। इस (लोक-) अपवाद को टालने के हेतु वह (भगवान श्रीहरि की) जाँघ-स्वरूप बन गयी। १४१ भगवान हरि के चरणों में इस प्रकार अच्छे-अच्छे रंगों से युक्त त्रिवेणी (सरस्वती, गंगा और यमुना का एकात्म-रूप) है, (वहीं) अज्ञान को नष्ट करनेवाला दिव्य (तीर्थ-स्थल) प्रयाग (बसा हुआ) है। अच्छे रंग से युक्त अक्षयवट (विराजमान) है। (भगवान के चरणों में अंकित) ध्वज और अंकुश (वस्तुतः) वे ही (प्रयाग और अक्षयवट) हैं। १४२ (भगवान के) चरणों में जो भावुक भक्तिशील लोग सुख-पूर्वक निवास करते हैं, वे ही वहाँ पूर्णतः हंस (-स्वरूप) हैं। बाँकों में जो तेजस्वी रत्न जगमगा रहे हैं, वे ही मानो तपोधन (तपस्वी तपस्यारूपी अग्नि में) तपते रहते हैं। १४३ प्रयाग में देह छोड़ने पर मोक्ष प्राप्त होता है। यहाँ (भगवान के नाम, लीलाओं का) श्रवण करने से (भक्त) विदेह हो जाता है। इसलिए निःसन्देह माघ मास में (भक्ति) भाव-पूर्वक त्रिवेणी माधव की सेवा कीजिए। १४४ (फिर भी) उस प्रयाग नगरी में जाने में कष्ट हो जाते हैं; परन्तु (भगवच्चरण रूपी) यह प्रयाग ध्यान (हृदय) में ही प्रकट हो जाता है। इस प्रयाग में नीलकण्ठ शिवजी क्षेत्र-संन्यास ग्रहण करते हैं। १४५ (भगवान द्वारा पहने हुए) बाँकें, नूपुर और तोड़े दैत्यों पर गरजते हैं। पिंडलियाँ और जाँघें सुकुमार श्याम-सुन्दर दिखायी देती हैं। १४६ अथवा वे सीधे

स्तंभ। कीं गरुडपांचूंचे उगवले कोंभ। कीं शोधूनियां सुनीळ नभ। जानु जंघा ओतिल्या। ४७ कीं मिळोनि सहस्र सौदामिनी। शीतळ होऊनि पीतवसनीं। जडल्या चंचळपण टाकूनी। हरिजघनीं सर्वदा। ४८ कटीं मेखळेचें तेज आगळें। दिव्य रत्नें मिरवती सुढाळें। कीं एकहारी सूर्यमंडळें। हरिजघनीं जडलीं पैं। ४९ नाभि वर्तुळ गंभीर। जैसा कां बालभास्कर। तेथें उद्भवला चतुर्वक्त्र। सृष्टीचिये आदिकाळीं। १५० उदरीं त्रिवळी सुकुमार। कौस्तुभतेजें झांके अंबर। वैजयंती मुक्ताहार। चरणांगुष्ठापर्यंत पैं। १५१ वक्षःस्थळीं श्रीवत्सलांछन। सव्यभागीं शोभायमान। वामभागीं श्रीनिकेतन। वास्तव्यस्थळ श्रीचें पैं। ५२ शंख चक्र गदा पद्म। चतुर्बाहु उत्तमोत्तम। कीं धर्मार्थमोक्षकाम। चारी पुरुषार्थ उभारिले। ५३ पांघुरला जो पीतांबर। जडितपल्लव मनोहर। कीं तेणें रूपें सहस्रकर। अवतरला भासतसे। ५४ चांदणें शोभे शुद्ध निराळीं। तैसी उटी आंगीं शोभली। कीं इंद्रनीळा गवसणी घातली। काश्मीराची सुरंग। ५५ कंबुकंठ विराजमान।

कदली-स्तम्भ ही हैं, अथवा मरकत (पन्ने) के अंकुर फूट आये हैं अथवा सुनील आकाश (के वर्ण) को शुद्ध और परिष्कृत करके उससे भगवान के घुटनों और जाँघों को (साँचे में) ढाल दिया है। १४७ अथवा सहस्रों सौदामिनियाँ (बिजलियाँ) इकट्ठा होकर शीतल होते हुए अपनी चंचलता को छोड़कर भगवान हरि के जघन में पहने हुए पीताम्बर में नित्य (के लिए) जुड़ गयी हैं। १४८ कटि में पहनी हुई मेखला का तेज अनोखा है। उसमें दिव्य सुडौल रत्न शोभायमान हैं अथवा (जान पड़ता है कि) सूर्य-मण्डल एक पंक्ति में श्रीहरि के जघन पर जुड़ गये हैं। १४९ नाभि वृत्त गम्भीर (गहन, गहरा) है, वहाँ सृष्टि के आदिकाल में चतुर्मुख ब्रह्मा का उद्भव हो गया। तेज में मानो वे बाल-सूर्य ही हों। १५० उदर पर सुकुमार त्रिबली है। कौस्तुभमणि के तेज से आकाश व्याप्त हो गया है। वैजयन्ती माला और मोतियों का हार पाँवों के अंगूठे तक (लटक रहे) हैं। १५१ उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स लांच्छन चिह्न दाहिने भाग में शोभायमान है, तो बायें भाग में श्री-निकेतन अर्थात् श्रीलक्ष्मी का निवास-स्थान है। १५२ (चारों हाथों में) शंख, चक्र, गदा और कमल हैं। उनके चारों बाहु उत्तमोत्तम हैं, अथवा (उनके रूप में) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थ उभार दिये हैं। १५३ उन्होंने जो पीताम्बर ओढ़ लिया है, उसका पल्लव (रत्नादि से) जड़ा हुआ तथा मनोहर है। अथवा उसके रूप में सूर्य ही अवतरित हुआ जान पड़ता है। १५४ जिस प्रकार निर्मल आकाश में चाँदनी शोभायमान होती है, उसी प्रकार उनके अंग पर अंगराग शोभायमान है; अथवा (जान पड़ता है कि) इन्द्रनील रत्न पर सुन्दर रंग से युक्त रेशम का आच्छादन डाल

नासिक सरळ सुहास्यवदन। मंदस्मित झळकती दशन। चंद्रतेज उणें पैं। ५६ कीं सर्वही आनंद मिळोन। हरिमुखीं वसती अनुदिन। त्रैलोक्यसौंदर्य विसांवोन। तेथेंच गोळा जाहलें। ५७ कुंडलें तळपती मकराकार। तेजें लखलखिलें अंबर। मज वाटे शशिदिनकर। हरिश्रोत्रीं लागले। ५८ कुंडलांची दिव्य दीप्ती। गंडस्थळीं झळके ज्योती। कुंडलांस कर्ण शोभविती। कर्णाची दीप्ती विशेष। ५९ कृष्णतनूच्या सुरवाडे। अलंकारांसी प्रभा चढे। कपाळीं टिळक निवाडे। मृगमदाचा सतेज। १६० कल्पांतींचा सूर्य प्रगटला। तैसा मुकुट तेजागळा। वरी दिव्य मणि भिरवला। तो वर्णिला नव जाय। ६१ बाहुदंडीं कीर्तिमुखें। हस्तकंकणें दिव्य सुरेखें। मुद्रिकांचें तेज झळके। चपळेहूनि विशेष। ६२ ऐसा एकाएकीं बंदिशाळे। देवकी देखे घनसांवळें। जिवाचें निंबलोण केलें। हरीवरूनि तेधवां। ६३ आनंद न माये अंबरीं। म्हणे भक्तवत्सला श्रीहरि। तूं माझिया निजोदरीं। पुत्र होवोनि

दिया हो। १५५ उनका कम्बु (शंख) -सा कण्ठ शोभायमान है। नाक सीधी है; मुख सुहास्य से युक्त है। उनके दाँत उनके मन्दस्मित करते समय चमकते हैं; (उनकी तुलना में) चन्द्र-कान्ति कम (जान पड़ती) है। १५६ अथवा सभी (प्रकार के) आनन्द इकट्ठा होकर श्रीहरि के मुख पर प्रतिदिन निवास कर रहे हैं, (अथवा) तीनों लोकों की सुन्दरता विश्राम को प्राप्त होते हुए वहीं इकट्ठा हो गये हैं। १५७ उनके मकराकार कुण्डल जगमगा रहे हैं; उनके तेज से आकाश जगमगा रहा है। मुझे जान पड़ता है, चन्द्र और सूर्य (ही) श्रीहरि के कानों में जुड़ गये हैं। १५८ कुण्डलों की (तेजोमय) कान्ति दिव्य थी; उससे जान पड़ता था कि गण्ड-स्थलों में ज्योति झलक रही है। कुण्डलों को उनके कान शोभा-वृद्धि दे रहे हैं; इतनी उनके कानों की दीप्ति विशिष्ट है। १५९ भगवान की श्याम-देह की शोभा से (उनके द्वारा पहने हुए) आभूषणों पर कान्ति फैल रही है। उनके भाल पर कस्तूरी का तेजस्वी तिलक झलक रहा है। १६० उनका मुकुट वैसे ही तेज को प्राप्त हो गया है, मानो कल्पान्त काल का सूर्य ही प्रकट हो गया हो। उस पर दिव्यमणि शोभायमान है। उसका वर्णन नहीं किया जा रहा है। १६१ बाहुओं में कीर्तिमुख (नामक आभूषण बँधे हुए) हैं। हाथों में दिव्य सुडौल कंकण हैं और अँगूठियों का तेज बिजली से भी अधिक विशेष रूप से जगमगा रहा है। १६२ इस प्रकार (के रूप को धारण करनेवाले) घनश्याम भगवान (की मूर्ति) को देवकी ने बन्दीशाला में अचानक (अपने सम्मुख आविर्भूत) देखा। तब उसने अपने जीव को भगवान श्रीहरि पर निछावर कर दिया। १६३ उसका आनन्द गगन में नहीं समा रहा था। वह बोली, ‘ हे भक्त-वत्सल श्रीहरि,

अवतरें। ६४ तूं विश्वंभर बहु थोर। परी लोक म्हणती माझा पुत्र। ऐसा होईं तूं राजीवनेत्र। आळी माझी पुरवावी। ६५ हरी म्हणे ते वेळा। मी बाळक होईन अवलीळा। परी मज सत्वर गोकुळा। नेऊनियां घालावें। ६६ तेथें माझा प्राणमित्र। ज्येष्ठ बंधु बळिभद्र। मग दोघेही येऊं साचार। दर्शनालागीं तुमच्या। ६७ ऐसें बोलून जगज्जीवन। हास्यवदनें अवलोकून। आपुली योगमाया घालून। देवकीसी मोहिलें। ६८ सच्चिदानंद घननीळ। देवकीपुढें जाहला बाळ। तीस वाटलें केवळ। माझे उदरीं जन्मला। ६९ पहिला प्रताप विसरली। बाळ देखोन घाबरली। असंभाव्य प्रभा पडली। बंदिशाळे न समाये। १७० रात्र जाहली दोन प्रहर। वसुदेवासी उठवी सुंदर। म्हणे शब्द जाईल बाहेर। तरी कंस धांवेल पैं। १७१ कोठें तरी कृष्ण लपवावा। बाहेर तर्क कळों न द्यावा। मौनेंचि हृदयीं धरावा। तरीच लाभेल कृष्ण हा। ७२ वसुदेव लवलाहें धांविन्नला। श्रीकृष्ण हृदयीं धरिला। म्हणे कोठें लपवूं याला। हा झांकिला नव जाय। ७३ सूर्य काय

आप मेरे अपने उदर से पुत्र होकर (पुत्र रूप से) अवतरित हो जाइए। १६४ आप विश्वम्भर हैं, बहुत बड़े हैं; फिर भी आप राजीव-नेत्र ऐसे हो जाइए, जिससे लोग आपको मेरा पुत्र कहें। मेरी इतनी कामना पूर्ण करें'। १६५ उस समय (यह सुनकर) भगवान हरि बोले, 'मैं अभी बालक बन जाऊँगा; परन्तु मुझे झट से ले जाकर गोकुल में रख देना। १६६ वहाँ मेरा प्राण-सखा, मेरा ज्येष्ठ बन्धु बलभद्र है। फिर (हम) दोनों सचमुच तुम्हारे दर्शन के लिए आ जाएँगे। १६७ ऐसा बोलकर जगज्जीवन (भगवान) ने मुस्कराते हुए, देखकर अपनी योगमाया से प्रभावित करके देवकी को मोहित कर दिया। १६८ (तत्क्षण) सच्चिदानन्द घन-नील भगवान श्रीहरि देवकी के सम्मुख शिशु (-रूप में परिवर्तित)हो गये। उसे केवल ऐसा ही जान पड़ा कि यह(शिशु)मेरे उदर से जन्म को प्राप्त हो गया है। १६९ वह (अपने) पहले प्रताप को भूल गयी और उस बालक को देखकर घबरा उठी। (उस बालक की) ऐसी असीम कान्ति फैल गयी थी, जो उस बन्दीशाला में समा नहीं रही थी। १७० (तब तक) दो पहर रात हो गयी थी, तो उस सुन्दरी ने वसुदेव को जगा लिया और कहा—'यदि ध्वनि बाहर जाएगी, तो कंस दौड़ेगा (दौड़ते हुए यहाँ आ जाएगा,। १७१ इसलिए कृष्ण को कहीं भी छिपा देना और बाहर यह बात विदित न होने देना। मौनपूर्वक इसे हृदय से लगायें, तो ही यह कृष्ण हमें प्राप्त हो जाएगा'। १७२ (यह सुनकर) वसुदेव झट से दौड़े और उन्होंने कृष्ण को हृदय से लगा लिया। (फिर) वे बोले (वे विचार करने लगे) —इसे कहाँ छिपा दें, यह तो छिपाया नहीं जा पाएगा। १७३ क्या सूर्य मुट्ठी में आच्छादित हो सकता है

मुष्टींत झांके। चंद्र न लपे कदा काखें। ऐरावत शक्राचा देखें। लपे कैसा पर्णकुटीं। ७४ सिंधु न माये रांजणीं। बोचक्यांत न लपे कदा अग्नी। मेरु काखेसी घालूनी। कोणा लपवे सांग पां। ७५ मूर्खांमाजी पंडित। अभाग्यांत श्रीमंत। क्लीबांमाजी प्रतापवंत। शूर कैसा झांके पां। ७६ लवणाचा घट थोर। आवरूं न शके गंगापूर। वानरांमाजीं रघुवीर। कदाकाळीं झांकेना। ७७ भूतांमाजी शंकर। किरडांमाजी धरणीधर। रंकामाजी राजेंद्र। कदा झांकिला जाईना। ७८ कस्तूरी चोरिली चोरें। परी परिमळें हाट भरे। तैसा कृष्ण न झांके वो सुंदरे। लपविता कोठेंही। ७९ बाहेर प्रकटतां मात। तात्काळ होईल अनर्थ। ज्यासी द्रव्यकूप सांपडत। तेणें लोकांतें न सांगावें। १८० तों हळूच बोले देवकी बोला। हा अयोनि-संभव पुतळा। यास नेऊन घाला गोकुळा। भय तुम्हांला कदा नाहीं। ८१ तंव वसुदेव म्हणे। पदीं शृंखला द्वारीं रक्षणें। लोहारें ठोकूनि घणें। कुलुपें कपाटें दृढ केलीं। ८२ मध्यरात्रीं पर्जन्यकाळ। यमुनेसी पूर असे

(छिपाया जा सकता है) ? चन्द्र बगल में कभी भी छिपाया नहीं जा सकता। देखिए, इन्द्र का ऐरावत पर्णकुटी में कैसे छिपाया जा सकता है ?। १७४ मिट्टी के घड़े में समुद्र नहीं समा पाता; अग्नि गठरी में कभी भी छिपायी नहीं जा सकती। कहो तो, मेरु को बगल में रखकर किसके द्वारा छिपाया जा सकता है ?। १७५ मूर्खों में पण्डित, अभागों (दरिद्रों) में धनवान, नपुंसकों में प्रतापवान शूर कैसे छिपाया जा सकता है ?। १७६ नमक का बड़ा घड़ा गंगा की बाढ़ को रोक नहीं सकता। बानरों के बीच रघुवीर राम किसी भी समय नहीं छिप पाते। १७७ भूतों में शिवजी, सँपोलों में धरणीधर शेष, रंकों में राजेन्द्र कभी भी छिपाये नहीं जा पाएँगे। १७८ किसी चोर ने कस्तूरी चुरायी हो, तो भी उसकी सुगन्ध से हाट (बाज़ार) भर जाता है। (अर्थात् वह चोरी खुल ही जाती है, छिपायी नहीं जा सकती)। उसी प्रकार, हे सुन्दरी, छिपाये जाने (का यत्न करने) पर भी कृष्ण कहीं भी छिप नहीं सकता। १७९ इस बात के, बाहर प्रकट हो जाने पर तत्काल अनर्थ हो जाएगा। (फिर भी) जिसे धन का कूप (खान) मिल जाता हो, उसे यह लोगों से कहना नहीं चाहिए'। १८० तब देवकी धीमे से यह बात बोली, 'यह तो अयोनि-सम्भव पुतला (मूर्ति) है; इसे ले जाकर गोकुल में रख दीजिए। आपको इसमें कदापि भय (की कोई बात) नहीं है'। १८१ तब वसुदेव बोले 'पाँवों में बेड़ियाँ हैं, द्वार पर पहरा है (और) लुहार ने घन से ठोंक (-ठोंक) कर तालों किवाड़ों को दृढ़ कर दिया है। १८२ आधी रात (हो गयी) है; (फिर) यह वर्षा काल है। यमुना में घोर बाढ़ आयी है। (मेरे चलते समय) बेड़ियाँ खनखन बजेंगी; (फिर)

तुंबळ। बेडी वाजे खळखळ। द्वारपाळ जागे पैं। ८३ घन वर्षतो मंदमंद। वसुदेव जाहला सद्गद। हृदयीं धरिला ब्रह्मानंद। चैतन्यघन श्रीकृष्ण। ८४ अवलोकितां श्रीकृष्णवदन। वेडी तुटली न लागतां क्षण। ज्यांचें करितांच स्मरण। भवबंधन निरसे पैं। ८५ नवल वाटलें वसुदेवा। घेवोनि चालिला वासुदेवा। माय धांवोनि तेधवां। वदन विलोकी पुत्राचें। ८६ पुन्हां बाळा दावीं वदन। आसुवें भरले तेव्हां नयन। कृष्ण करी हास्यवदन। मातेकडे पाहोनियां। ८७ तों चहूं दारवंटा ते वेळे। दृढ कुलुपें ठोकिले खिळे। जवळी येतां घननीळें। पायें स्पर्शिलीं कपाटें। ८८ तात्काळ उघडलीं चारी द्वारें। रक्षक व्यापिले निद्राभरें। वसुदेव चालिला त्वरें। कोणी दुसरें आढळेना। ८९ वर्षती पर्जन्याच्या धारा। तों फणींद्र धांविन्नला त्वरा। विशाळ फळा ते अवसरा। कृष्णावरी उभारिल्या। १९० खालीं पिता नेत राजीवनेत्र। भोगींद्र वरी जाहला छत्र। वेगें पावला यमुनातीर। तों महापूर भरलासे। १९१ मागें पुढें वसुदेव पाहे। म्हणे येथें करावें काय।

द्वारपाल (प्रहरी) तो जागृत हैं'। १८३ बादल धीमे-धीमे बरस रहा था; (तब) वसुदेव गद्गद हो उठे। उन्होंने चैतन्य के घन-स्वरूप ब्रह्मानन्द श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया। १८४ जिनका स्मरण करते ही सांसारिक बन्धन टूट (कर नष्ट हो) जाता है, उन श्रीकृष्ण के मुख को (वसुदेव द्वारा देखते ही क्षण न लगते बेड़ी टूट गयी। १८५ तो वसुदेव को अचरज अनुभव हो गया। (फिर) वे (वसुदेव कृष्ण को) लेकर चल दिये, तो माता (देवकी) तब दौड़कर अपने पुत्र के मुख को देख रही थी। १८६ (वह बोली—) 'अरे बच्चे, अपना मुँह फिर दिखा देना।' तब उसकी आँखें आँसुओं से भर गयीं। (उस समय) कृष्ण माता की ओर देखते हुए मुस्करा रहे थे। १८७ तब उस समय चारों (द्वारों के) किवाड़ों में मज़बूत ताले लगाकर कीलें ठोंकी हुई थीं। (इधर) निकट आते ही घननील श्रीकृष्ण ने अपने पाँव से उन किवाड़ों को स्पर्श किया। १८८ तो चारों द्वार तत्काल खुल गये। (इधर) प्रगाढ़ निद्रा ने रक्षकों को व्याप्त कर डाला, अर्थात् वे निद्रा में डूब गये। (यह देखते ही) वसुदेव झट से चल दिये। उन्हें कोई अन्य नहीं दिखायी दे रहा था। १८९ वर्षा की धाराएँ बरस रही थीं; (फिर भी) भोगीन्द्र शेष झट से दौड़ते हुए आये और उन्होंने उस समय अपना विशाल फन कृष्ण के ऊपर फैला दिया। १९० नीचे पिता (वसुदेव) राजीव-नेत्र (कमल-नयन) श्रीकृष्ण को लिए जा रहे थे और ऊपर भोगीन्द्र शेष छत्र (-स्वरूप) हो गये थे। (इस प्रकार) वे वेग-पूर्वक (तेज गति से) यमुना के तीर पर आ पहुँचे। तब (उसमें) बड़ी बाढ़ आ गयी थी। १९१ (फिर) वसुदेव पीछे और आगे देखने लगे। वे बोले (उन्होंने सोचा)—(अब)

उदकामाजी लवलाहें। बाळ घेवोन संचरला। ९२ जों जों उचली कृष्णातें। तों तों जीवन चढे वरुतें। स्पर्शावया जगज्जीवनातें। यमुनेतें आल्हाद। ९३ वरी उचलितां माधवा। आकंठ उदक जाहलें वसुदेवा। वसुदेव म्हणे कमळाधवा। वैकुंठपति धांवें कां। ९४ तंव श्रीकृष्णें दक्षिण चरण। तात्काळ बाहेर काढून। स्पर्शिलें यमुनाजीवन। जाहली पावन तेणें ते। ९५ परमसुखें यमुना सवेग। तात्काळ जाहली दोन भाग। जैसा स्त्रिया करिती भांग। क्षणमात्र नलगतां। ९६ वसुदेव उतरून यमुना। तात्काळ आला नंदभवना। तंव यशोदेसी जाहली कन्या। परी ते कांहीं नेणेंचि। ९७ ते योगमाया हरीची पूर्ण। तिनें निद्रिस्त केले सकळ जन। यशोदेसी न कळे वर्तमान। कन्यारत्न पुढें तें। ९८ कपाटें मोकळीं सर्वही। वसुदेव प्रवेशला अंतर्गृहीं। कृष्णा ठेवूनि लवलाही। कन्या वेगें उचलिली। ९९ पुत्र ठेवूनि कन्या नेली। कोणासी न कळे गोकुळीं। वसुदेव तेच वेळीं। बंदिशाळे पातला। २०० वसुदेव परम ठकला। कृष्ण हातींचा दूर टाकिला। माया

यहाँ क्या करें ? (फिर भी) वे उस शिशु को लेकर उस पानी के अन्दर झट से पैठ गये। १९२ वे कृष्ण को जैसे-जैसे (ऊपर) उठा रहे थे, वैसे-वैसे पानी ऊपर बढ़ रहा था। (मानो) जगज्जीवन भगवान को स्पर्श करने के लिए यमुना में आह्लाद (आनन्द) आ रहा था। १९३ माधव (श्रीकृष्ण) को ऊपर उठाने पर पानी वसुदेव के कण्ठ तक बढ़ गया। तो वसुदेव बोले, ' हे लक्ष्मी-पति, हे वैकुण्ठ-पति, दौड़िए। १९४ तब श्रीकृष्ण ने दाहिना पाँव (आच्छादन-स्वरूप वस्त्र में से) बाहर निकालते हुए यमुना के जल को स्पर्श किया; तो उससे वह पावन हो गयी। १९५ (फिर) यमुना परम सुख से झट से तत्काल दो भागों में विभक्त हो गयी, जैसे नारियाँ क्षण तक न लगते (अपने बालों में) माँग बना लेती हैं। १९६ (तदनन्तर) वसुदेव यमुना को पार करके तत्काल नन्द के घर आ गये। तब यशोदा के कन्या उत्पन्न हो गयी थी; फिर भी वह कुछ भी नहीं जानती थी। १९७ वह हरि की पूर्ण अर्थात् साक्षात् योगमाया थी। उसने समस्त जनों को निद्राधीन बना दिया था। यह बात (भी) यशोदा की समझ में नहीं आ रही थी कि सामने एक कन्या-रत्न है। १९८ सभी दरवाजे खुले थे; तो वसुदेव अन्तर्गृह में प्रविष्ट हो गये और उन्होंने शीघ्रता से कृष्ण को (वहाँ) रखते हुए उस कन्या को झट से उठा लिया। १९९ गोकुल में किसी को यह विदित नहीं हुआ कि पुत्र को रखकर कोई कन्या को ले गया है। (फिर) उसी समय वसुदेव (उस कन्या को लिये हुए) बन्दीशाला पहुँच गये। २०० (इससे) वसुदेव परम चकित हो गये—उन्होंने हाथ के अर्थात अपने (पुत्र) कृष्ण को दूर फेंक दिया था और माया को ले आते ही

आणितां श्रृंखला। पायीं दृढ तैसीच। २०१ कपाटें तैसींच सकळिक। द्वारीं जागती सेवक। मायेसी घेतां अटक। सर्व जाह्ली पूढती। २ हिरा ठेवूनि आणिली गार। सूर्य देऊनि घेतला अंधकार। पाच देऊनि निर्धार। कांच घरा आणिली। ३ परीस देऊनि घेतला खडा। पंडित देऊनि आणिला वेडा। चिंतामणि देऊनि रोकडा। पलांडू घेतला बळेंचि। ४ अमृत देऊनि घेतली कांजी। कल्पवृक्ष देऊनि घेतली भाजी। कामधेनु देऊनि सहजी। अजा घेतली पालटें। ५ निजसुख देऊनि घेतलें दुःख। कस्तूरी देऊनि घेतली राख। सोनें देऊनि सुरेख। शेण जैसें घेतलें। ६ हंस देऊनि घेतला काग। विप्र देऊनि घेतला मांग। मुक्त देऊनि सुरंग। गुंज जैसी घेतली। ७ देवोनियां रायकेळें। घेतलीं अर्कीचीं फळें। ज्ञान देऊनि घेतलें। अज्ञानत्व जैसें पैं। ८ तैसें वसुदेवें केलें। कृष्ण ठेवूनि मायेसी आणिलें। तंव ते कन्या कोल्हाळें। रडतां कळलें रक्षकां। ९ चहूंकडून सेवक धांवत। राया देवकी जाह्ली प्रसूत। येरू उठिला त्वरित। पिशाचवत धांवतसे। २१० बिडालक धांवे मूषकावरी। तैसा आला बंदिशाळेभीतरी। कोठें गे कोठें

उनके पाँवों में बेड़ियाँ वैसी ही दृढ़ (बँधी हुई) थीं। २०१ समस्त किवाड़ वैसे ही (बन्द) थे; द्वारों में सेवक (वैसे ही) जागृत थे। (इस प्रकार) माया को लेते ही समस्त बन्धन आगे आ गये। २०२ (उन्हें ऐसा जान पड़ा कि) जैसे हीरा (अन्यत्र) रखकर (उसके बदले में) स्फटिक ले आये हैं; सूर्य देकर अन्धकार ले लिया है, पन्ना देकर निश्चय ही घर में काँच ले आये हैं; पारस देकर कंकड़ ले लिया है; पण्डित को (छोड़) देकर किसी मूढ़ को ले आये हैं और मूर्तिमान चिन्तामणि रत्न को देकर बलात् प्याज ले लिया है; अमृत देकर (उसके बदले में) काँजी ले ली है; कल्पवृक्ष देकर शाक (सब्जी) ली है; कामधेनु देकर आसानी से उसके बदले बकरी ले ली है; आत्म-सुख देकर दुःख ले लिया है; कस्तूरी देकर राख ली है; जैसे सुन्दर सोना देकर गोबर ले लिया है; हंस देकर कौवा लिया है, ब्राह्मण देकर मातंग लिया है, सुन्दर रंग से युक्त मोती देकर जैसे गुंजा-फल ले लिया है; राज-केला देकर आक के फल ले लिये हैं; जैसे (ब्रह्म-) ज्ञान देकर अज्ञानत्व (ग्रहण कर) लिया है। वैसे ही वसुदेव ने किया था। कृष्ण देकर (उनके बदले) वे माया को ले आये थे। तब (इधर) उस कन्या के आक्रन्दन करते हुए रोने लगते ही रक्षकों को विदित हो गया (कि देवकी प्रसूत हुई)। २०३-२०९ चारों ओर से सेवक दौड़े (और वे बोले) —'हे राजा देवकी प्रसूत हो गयी है।' तो वह झट से उठ गया और पिशाच की भाँति दौड़ा। २१० (जिस प्रकार) बिल्ली चूहे की ओर दौड़ती है, उसी प्रकार (दौड़ते हुए) वह बन्दीशाला के अन्दर आ गया और वह ढीठ बोला, 'कहाँ है ?

आठवा अरी। म्हणोनियां धीट बोलत। २११ तों देवकी म्हणे बंधु। करूं नको येवढा वधु। देवकी रडे करी खेदु। काकुळती येतसे। १२ देवकी वोसंगा घेऊनि बैसली। कंस ओढीत तये वेळीं। पुत्र कीं कन्या नाहीं ओळखिली। रात्रिभागीं तेधवां। १३ रागें भोवंडी दुराचारी। आपटावी जंव शिळेवरी। तंव ते महाशक्ति झडकरी। गेली अंबरी निसटूनियां। १४ सहस्त्र कडकडती चपला। तैसा प्रलय तेव्हां वर्तला। कंस भयभीत जाहला। म्हणे वैरी गेला हातींचा। १५ कंस जंव वरतें पाहे। तंव महाशक्ति तळपत आहे। तेज अंबरीं न समाये। बोले काय कंसासी। १६ अरे मूढा दुराचारा। महामलिना खळा निष्ठुरा। तुझा वैरी पामरा। पृथ्वीवरी वाढतसे। १७ ऐकतांच ऐसें वचन। धगधगलें कंसाचें मन। शक्ति गेली अदृश्य होऊन। कंस आला मंदिरासी। १८ श्रोतीं व्हावें सादर। पुढें कथा मनोहर। गोकुळा गेला जगदुद्धार। परिसा चरित्र तयाचें। १९ श्रीकृष्णकथा मुक्तमाळा। सभाग्य श्रोते हो घाला गळां। ब्रह्मानंद श्रीकृष्ण

अरी, (तेरा) आठवाँ (पुत्र, मेरा) शत्रु कहाँ है ? '। २११ तब देवकी बोली, 'हे बन्धु, इसका वध न करो।' (फिर) देवकी रोने लगी। वह खेद अनुभव कर रही थी। वह दीन-भाव को प्राप्त हो गयी। २१२ देवकी (उस शिशु को) गोद में लिये हुए बैठी थी, तो उस समय कंस उस (शिशु) को खींचने लगा। तब रात में उसने यह नहीं जाना कि वह पुत्र है अथवा कन्या। २१३ उस दुराचारी ने उसे क्रोध से (हाथ से उठाकर) घुमा लिया और ज्योंही वह उसे शिला पर पटकने जा रहा था, त्योंही वह (कन्या-स्वरूप) महाशक्ति (उसके हाथ में से) छूटकर झट से आकाश में चली गयी। २१४ जिस प्रकार (जब) सहस्रों बिजलियाँ गर्जन करती हैं (और प्रलय हो जाता है), उसी प्रकार तब प्रलय हो गया। कंस भय-भीत हो गया और बोला, 'हाथ का (अर्थात् हाथ आया हुआ) वैरी (निकल) गया'। २१५ (फिर) कंस ने जब ऊपर (की ओर) देखा, तो (दिखायी दिया कि) वह महाशक्ति जगमगा रही है और उसका तेज आकाश में नहीं समा रहा है। (फिर) वह कंस से क्या बोली। २१६ 'अरे मूढ़, अरे दुराचारी, अरे महामलिन, खल, निष्ठुर, अरे पामर, तेरा वैरी पृथ्वी पर बढ़ रहा है'। २१७ ऐसा वचन सुनते ही कंस का मन (हृदय) धड़कने लगा। (इधर) वह शक्ति अदृश्य हो गयी और (उधर) कंस अपने घर आ गया। २१८

(अब) श्रोता सावधान हो जाएँ। आगे (की) कथा मनोहारी है। जगत् के उद्धारक (भगवान श्रीहरि-श्रीकृष्ण) गोकुल में (चले) गये। उनकी चरित्र-लीला (आगे) सुनिए। २१९ श्रीकृष्ण की कथा (मानो) मोतियों की माला है। हे भागवान श्रोताओ, उस (माला)

पुतळा। धन्य गोकुळा करील तो। २२० तुमच्या हृदयगोकुळीं। शांति-यशोदेजवळी। शेजे पहुडला वनमाळी। पुराणपुरुष तो पहा। २२१ ब्रह्मानंद म्हणे श्रीधर। धन्य तें गोकुळ पवित्र। जेथें अवतरला यादवेंद्र। त्रिभुवनसुंदर जगदात्मा। २२ या अध्यायाचें निरूपण। कंस येऊनि आपण। माया आपटावी जों धरून। तंव ते हातींची निसटली। २३ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। विचक्षण परिसोत संत। तृतीयाध्याय गोड हा। २२४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

को (अपने) गले में पहन लीजिए। श्रीकृष्ण तो ब्रह्मानन्द के पुतले हैं (साक्षात आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं)। वे गोकुल को धन्य बना देंगे। २२० वह देखिए, आपके अपने हृदय रूपी गोकुल में शान्ति रूपी यशोदा के समीप वनमाली (के रूप में) पुराण-पुरुष (भगवान) पौढ़े हुए हैं। २२१ तो (गुरु) ब्रह्मानन्द ने कहा, हे श्रीधर, वह पवित्र गोकुल धन्य है, जहाँ यादवेन्द्र (श्रीकृष्ण के रूप में) त्रिभुवन-सुन्दर जगदात्मा अवतरित हो गये। २२२ इस अध्याय में (इस घटना का) निरूपण हुआ—(श्रीकृष्ण के जन्म के पश्चात) कंस स्वयं आते हुए माया को पकड़कर पटकने लगा, त्योंही वह (उसके) हाथ में से निकल गयी। २२३

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (श्री) हरिवंश तथा (श्रीमद्) भागवत (पुराण) द्वारा सम्मत है। उसके इस मधुर तृतीय अध्याय का श्रद्धालु ज्ञानी सन्त श्रवण करें। २२४

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—४

कृष्ण-जन्मोत्सव और कंस द्वारा कृष्ण का वध करवाने का यत्न

श्रीगणेशाय नमः। जय जय श्रीकृष्णचंडांशा। गोपीनयनसरोजविकाशा। सत्यज्ञानचित्प्रकाशा। गोकुळवासा गोविंदा। १ जय जय श्रीकृष्ण उदारा।

श्री गणेशाय नमः। हे श्रीकृष्ण-स्वरूप सूर्य, हे गोपियों के नेत्र-कमलों को (अपने दर्शन से) विकसित कर देनेवाले (कृष्ण रूपी सूर्य), हे सत्य ज्ञान और चित् के प्रकाश (-स्वरूप कृष्ण), हे गोकुल-निवासी, हे गोविन्द, आपकी जय हो, जय हो। १ हे उदार (-चरित) श्रीकृष्ण, हे अपने (प्रिय, भक्तजनों) के मन रूपी चकोरों के लिए (अपने दर्शन और कृपा से प्रसन्न कर देनेवाले)

निजजनमानसचकोरचंद्रा। ब्रह्मानंदा ज्ञानसमुद्रा। मायातीता अनंता। २ जय भवहृदयानंदकंदा। प्रेमळभक्तचातकजलदा। पूर्णानंदा पूर्णसुखदा। भेदाभेदातीत तूं। ३ जय जय मायाविपिनदहना। मधुकैटभारे मुरमर्दना। धर्मपाळका सद्गुणवर्धना। सच्चिदानंदा परेशा। ४ जय जय कमळनाभा कमळपत्राक्षा। मनमोहना निर्विकल्पवृक्षा। मायाचक्रचाळका सर्वसाक्षा। दानवशिक्षाकारणा। ५ षड्गुणैश्वर्यसंपन्ना। यशःश्रीकीर्तिऔदार्यविज्ञाना। जय अरिषड्वर्गमदभंजना। निरंजना निरुपाधिका। ६ हरे अनंतशायी

चन्द्र (-स्वरूप श्रीकृष्ण), हे ब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप ब्रह्म), हे ज्ञान के समुद्र, हे माया से परे रहनेवाले, हे अनन्त, आपकी जय हो, जय हो। २ हे भव अर्थात् शिवजी के हृदय में (स्थित) आनन्द के कन्द (-स्वरूप भगवान), हे प्रेममय भक्त रूपी चातकों के लिए मेघ (-स्वरूप), हे पूर्णानन्द, हे पूर्ण सुख के दाता, आपकी जय हो। आप भेद और अभेद के अतीत (परे) हैं। ३ हे माया (द्वारा निर्मित अज्ञान, दुःख आदि के) अरण्य को जला (कर नष्ट कर) देनेवाले (अग्नि-स्वरूप श्रीकृष्ण), हे मधु-कैटभ के शत्रु[1] हे मुर दैत्य को कुचल कर नष्ट कर देनेवाले[2], हे धर्म-पालक, हे सद्गुण के वर्धक, हे सच्चिदानन्द, हे परेश, आपकी जय हो, जय हो। ४ हे कमल-नाभ (भगवान नारायण), हे कमल-पत्र सदृश नेत्रों के धारी (कमल-दल-नयन), हे मन-मोहन, हे निर्विकल्पवृक्ष, हे माया के चक्र को चलाते रहनेवाले, हे सर्वसाक्षी, हे दानवों को दण्ड देने के लिए आविर्भूत (भगवान), आपकी जय हो, जय हो। ५ हे छः गुण रूपी ऐश्वर्य[3] से सम्पन्न, हे यश-श्री-कीर्ति-औदार्य और विज्ञान (के धारी, आपकी जय हो), हे छः जाति के शत्रुओं[4] के मद को नष्ट कर देनेवाले, हे निरंजन, हे निरुपाधिक आपकी जय हो। ६ हे हरि,

१ मधु-कैटभारि—देखिए पृ० ९२ (अध्याय ३-९६)

२ मुर दैत्य—मुर दैत्य ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न तालजंघ नामक दैत्य का पुत्र था। उसने समस्त देवों को पराजित किया। भगवान विष्णु भी रणभूमि से भागकर बदरिकाश्रम के समीप सिंहावती नामक गुफा में छिपे रहे। परन्तु मुर भी उनका पीछा करते हुए वहाँ पहुँच गया। तब उन्होंने अपनी योगमाया से एक देवी का निर्माण करके उसके द्वारा मुर का वध करवाया।

दूसरी एक मान्यता के अनुसार, कश्यप और दनु के पुत्र मुर ने तपस्या के बल पर शिवजी से यह वर प्राप्त कर लिया कि वह जिसके हृदय-स्थल पर हाथ रखेगा, वह तत्काल मर जाएगा। श्वेत द्वीप में भगवान कृष्ण ने इसके साथ लड़ते हुए उसे उसके अपने हृदय पर हाथ रखने को बाध्य कर दिया, और उसका वध कर डाला। तब से कृष्ण रूपधारी विष्णु मुरारि कहाने लगे।

३ छः गुण रूपी ऐश्वर्य— सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि ज्ञान, ऽवातंत्र्य, शक्तिप्रकाशन, अनन्तशक्ति। ४ छः प्रकार के शत्रु—काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर।

अनंता। पुढें बोलें हरिविजय ग्रंथा। तुझी लीला जगन्नाथा। तूंच बोलें सर्वही। ७ तिसरे अध्यायीं निरूपण। गोकुळीं गेला मनमोहन। वसुदेवास आडवें विघ्न। मायाजाळ पैं आलें। ८ धरितां स्वरूपानुसंधान। आडवें येत मायाविघ्न। तैसा हरि उदरा येऊन। वसुदेव बांधिला मायेनें। ९ साधकां जों स्वरूपप्राप्ति होत। तंव सिद्धि पुढें आडवी येत। सिद्धिसंगें परमार्थ। सर्व जातो हातींचा। १० सिद्धिपाठीं जो लागला। तो दिवसाच चोरीं नागविला। आत्मप्राप्ति तयाला। कल्पांतींही नव्हेचि। ११ देवाच्या बापाच्या पायीं वहिली। मायेनें बेडी ठोकिली। मायिक जीव सकळी। मुक्त कैसे होती पां। १२ ऐसी दुर्धर हरीची माया। तीस कंस गेला आपटावया। तंव ते गेली निसटोनियां। न ये ते आया सुरासुरांच्या। १३ ब्रह्मादिकां पडली मायाअटक। तेथें कंस काय मशक। लागला कंसासी परम धाक। निशिदिवस विसरे ना। १४ जवळी प्रधान कारभारी। कंस

हे अनन्त-(शेष)-शायी, हे अनन्त, आप (अब) इस (श्री) हरि-विजय नामक ग्रन्थ को कहला दीजिए (मेरे द्वारा इसकी रचना करवाइए)। हे जगन्नाथ, आप ही अपनी समस्त लीला ही को कह दीजिए। ७ तीसरे अध्याय में इसका निरूपण किया है कि मनमोहन (बालकृष्ण) गोकुल में गये और वसुदेव के लिए माया-जाल-स्वरूप विघ्न आड़े उपस्थित हो आया। (तात्पर्य यह है कि भगवान ने उनके यहाँ अवतार ग्रहण किया, फिर भी उन्हें अपने यहाँ रखने में वे असमर्थ रहे; दूसरी ओर वे भगवान की माया को अपने यहाँ लाने को बाध्य हो गये।)। ८ (जिस प्रकार) किसी साधक के द्वारा स्वरूप अर्थात् ब्रह्म की खोज करते रहने पर उसके मार्ग में माया द्वारा निर्मित विघ्न (उपस्थित) हो आते हैं, उसी प्रकार भगवान श्रीहरि द्वारा उनके यहाँ जन्म लेने पर भी माया ने वसुदेव को आबद्ध कर डाला। ९ साधकों को ज्यों ही स्वरूप अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति होती है (होनेवाली होती है), त्यों ही सिद्धि आगे आड़े आ जाती है। (और फलस्वरूप) सिद्धि की संगति (में उलझे रहने) से हाथ लगा हुआ परमार्थ पूरा-पूरा निकल जाता है। १० जो सिद्धि के पीछे पड़ गया हो, वह मानो, दिन-दहाड़े ही चोरों द्वारा लूट लिया गया हो। उसे कल्पान्त तक में भी आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। ११ माया ने भगवान के पिता के पाँवों में पहली बेड़ी पहना दी; तो माया के वश रहनेवाले समस्त जीव कैसे मुक्त होंगे। १२ श्रीहरि की माया ऐसी दुर्धर है। कंस उसे पटकने गया, तब वह (उसके हाथ में से निकल गयी। (ऐसी) वह (माया) सुरों और असुरों के विचार या कल्पना की पकड़ में नहीं आती। १३ ब्रह्मा आदि को माया के बन्धन पड़ गये हैं। वहाँ कंस कैसा मच्छड़ है (मच्छड़ जैसे कंस की क्या स्थिति है)।

धांवे तयांवरी। अरे तुम्ही माझे सर्व अरी। मज मारूं पाहतां। १५ भोंवते सेवकांचे भार। तों हांक फोडी कंसासुर। म्हणे अवघेचि दावेदार। मजभोंवते मिळाले। १६ असो आतां गोकुळीं चक्रपाणी। पहुडला यशोदेचे शयनीं। जागी जाहली नंदराणी। निजनयनीं अवलोकी। १७ यशोदा केवळ ज्ञानकळा। हरिप्राप्ति जाहली तिजला। सायास न करितां आला। घरा आपण गोविंद। १८ यशोदेचें भाग्य विशेष। कवडी देऊनि घेतला परीस। कोंडा देऊनि कल्पवृक्ष। हाता आला निजभाग्यें। १९ धुवण देऊनि घेतलें अमृत। कीं अजापालटें ऐरावत। जंबुक देऊनि यथार्थ। सिंह घरा आणिला। २० एकें चिंतामणि गोफणिला। तो येऊनि अंगणांत पडिला। तैसा यशोदेसी लाभ जाहला। घरा आला श्रीहरी। २१ यशोदा बैसली उठोन। तों सेजे देखिलें निधान। अमलदलराजीवनयन। मोहिलें मन यशोदेचें। २२ हांसे वरी मुख करोनी। आपुले चरणींचा अंगुष्ठ

कंस को तो परम आतंक अनुभव हो रहा था। वह (श्रीकृष्ण को) रात-दिन नहीं भूल पाता था। १४ पास में (जो) मन्त्री और कार्यवाह थे, उनकी ओर कंस दौड़ा और बोला, 'अरे तुम सब मेरे शत्रु हो; तुम मुझे मार डालना चाहते हो'। १५ चारों ओर सेवकों के दल थे; तब कंसासुर चीख उठा और बोला, (ये) सभी शत्रु (प्रतिद्वंदी) मेरे चारों ओर इकट्ठा हो गये हैं। १६ अस्तु। अब गोकुल में चक्रपाणि (भगवान श्रीकृष्ण) यशोदा की शय्या में पौढ़े हुए थे। जब नन्द राजा की रानी (स्त्री यशोदा) जाग उठी, तो उसने उन्हें अपनी आँखों से देखा। १७ यशोदा तो केवल ज्ञान की कला है। उसे श्रीहरि (पुत्र रूप में) प्राप्त हो गये। (इस प्रकार) बिना यत्न किये स्वयं भगवान गोविन्द उसके घर आ गये। १८ यशोदा का भाग्य विशिष्ट है—उसने तो कौड़ी देकर (उसके बदले में मानो) पारस (मोल) ले लिया, अथवा भूसा देकर (उसके बदले में) उसके अपने भाग्य से (पूर्वकृत पुण्य के फलस्वरूप) कल्पवृक्ष उसके हाथ आ गया। १९ अथवा उसने धोवन देकर अमृत ले लिया, अथवा वह बकरी के बदले ऐरावत, अथवा सियार देकर सचमुच अपने घर सिंह लायी। २० किसी एक ने चिन्तामणि रत्न गोफन से फेंक दिया हो और वह (किसी दूसरे के) आँगन में आकर पड़ गया हो; उसी प्रकार यशोदा को लाभ हो गया—श्रीहरि उसके घर आ गये। २१ (तदनन्तर) यशोदा उठकर बैठ गयी। तब उसने निर्मल दलों से युक्त कमल-से नेत्रोंवाले (उस शिशु श्रीकृष्ण रूपी) उस निधान को देखा तो यशोदा का मन मोहित हो गया। २२ वह (शिशु) ऊपर मुँह करके मुस्करा रहा था। अपने पाँव के अँगूठे को पकड़कर उसने अपने मुँह में डाल दिया। (उस समय) उसका तेज घर में समा नहीं रहा

धरोनी। घाली आपुलें वदनीं। तेज सदनीं न समाये। २३ यशोदेसी पुत्र जाहला म्हणोनी। धांवती रोहिणी आणि गौळिणी। आनंद न समाये त्रिभुवनीं। धन्य राणी नंदाची। २४ द्वारीं उभे मंडप केले। समस्त ब्राह्मण जवळी आले। कुळींचा उपाध्याय ते वेळे। गर्गमुनि धांविन्नला। २५ गोकुळीं अवतरला श्रीहरी। वाद्यें वाजती अतिगजरीं। दाटी झाली नंदद्वारीं। देव अंबरीं पाहती। २६ नंदें करूनि मंगलस्नान। पाहों चालिला पुत्रवदन। गर्ग आदिकरून ब्राह्मण। त्रिकाळज्ञानी पातले। २७ करूनियां पुण्याहवाचन। मग पाहे कृष्णवदन। मधुबिंदु मुखीं घालोन। मधुसूदन तोषविला। २८ श्रीवासुदेवाचें वदन। पाहतां नंद आनंदघन। म्हणे अनंत जन्मींचें पुण्य। एकदांचि फळा आलें। २९ दोन लक्ष गोधनें। नाना परींचीं दिव्य रत्नें। विचित्र अलंकार भूषणें। वाटितां जाहला नंद तो। ३० अक्षय वाणें घेऊनी। धांवती नगरींच्या गौळिणी। अहेर अलंकारें ते क्षणीं। गौळी पूजिती नंदातें। ३१ मंडित सर्व अलंकारें। गौळिणी नेसल्या कनकांबरें।

था। २३ यशोदा के पुत्र हो गया, इसलिए रोहिणी और अन्य ग्वालिनें दौड़ीं। उन (सब) का आनन्द त्रिभुवन में नहीं समा रहा था। (वे कह रही थीं—) नन्द की यह रानी (स्त्री) धन्य है। २४ (तदनन्तर नन्द ने) द्वार पर मण्डप छवा दिये (बना लिये)। समस्त ब्राह्मण उसके पास आ गये और उस समय कुल के पुरोहित गर्ग मुनि दौड़े (आये)। २५ श्रीहरि गोकुल में अवतरित हो गये; (इसलिए) वाद्य बहुत गर्जन के साथ बज रहे थे। नन्द के द्वार पर भीड़ हो गयी और देव आकाश में (आकर) देख रहे थे। २६ (इधर) मंगल स्नान करके नन्द अपने पुत्र का मुख देखने के लिए चल दिये। (उधर) गर्ग आदि त्रिकाल-ज्ञानी ब्राह्मण पहुँच गये। २७ पुण्याह-वाचन करके उसने अनन्तर कृष्ण के मुख को देखा। (फिर) मधु की बूँद मुख में डालकर मधुसूदन[1] अर्थात् विष्णु के अवतार (श्रीकृष्ण भगवान) को सन्तुष्ट किया। २८ आनन्द-घन श्रीवासुदेव (वासुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण) के मुख को देखते हुए नन्द बोला, 'असंख्य जन्मों का पुण्य जैसे-तैसे एक बार फल को प्राप्त हो गया'। २९ (तदनन्तर) नन्द ने दो लाख गौ रूपी धन (धन-स्वरूप गायें), नाना प्रकार के दिव्य रत्न, विचित्र (वस्त्र-) अलंकार तथा आभूषण (दान या भेंट-स्वरूप) बाँट दिये। ३० नगर की ग्वालिनें अक्षय बायन लेकर दौड़ीं, तो उसी क्षण ग्वालों ने नन्द का नेगों और आभूषणों सहित (नेग और आभूषण देते हुए) पूजन किया। ३१ समस्त आभूषणों से विभूषित वे ग्वालिनें कनकाम्बर (जरी के वस्त्र) पहनी हुई थीं। यशोदा के घर (की ओर) जाते हुए उनके पाँवों में (पहने हुए) नूपुर गर्जन करते हुए बज रहे

१ मधुसूदन—देखिए पृष्ठ ६२ (अध्याय ३)

पायीं पैंजण वाजती गजरें। यशोदेच्या गृहीं जातां। ३२ हळदीकुंकुमाची ताटें भरोनी। धांवताती नितंबिनी। म्हणती धन्य त्रिभुवनीं। यशोदा देखिली समर्थ। ३३ एक म्हणती हें बाळ। सखे दिसतें बहु विशाळ। एक म्हणती त्रिभुवनास घालील। पालाण हा पुरुषार्थे। ३४ एक म्हणती होईल महावीर। एक म्हणती दिसतो उदार। एक म्हणती सहस्रकर। उणा तेजासी याचिया। ३५ एक म्हणती नखावरोनी। काम सांडावा कुवंडी करोनी। एक म्हणती ओंवाळूनी। जाऊं तुजवरोनि बाळका। ३६ एक म्हणती बोलूं नका गोष्टी। बाळास लागेल गे दृष्टी। यशोदेनें जगजेठी। पुढें ओसंगा घेतला। ३७ ज्या मंदिरीं उपजला श्रीपती। केशरकस्तूरीनें लिंपिल्या भिंती। आरक्त चांदवे विराजती। मुक्तझालरी भोंवत्या। ३८ रत्नजडित पलंग। त्यापुढें ठेविला रत्नखचित चौरंग। त्यावरी यशोदा श्रीरंग। घेऊनियां बैसली। ३९ ओसंगा घेतला चक्रपाणी। श्वेत चामरें

थे। ३२ वे नितम्बिनियाँ (जिनके नितम्ब सुन्दर हैं ऐसी वे स्त्रियाँ) हल्दी-कुंकुम से भरे थाल लेकर दौड़ीं और बोलीं—'धन्य है। त्रिभुवन में समर्थ यशोदा को हम देख रही हैं'। ३३ कोई एक कह रही थीं—'हे सखी, यह बालक बहुत विशाल (बड़ा) दिखायी दे रहा है।' तो अन्य कोई एक बोलीं, 'यह अपने पुरुषार्थ से त्रिभुवन (-रूपी घोड़े पर) पालन (ज़िन) बिछा देगा' (अर्थात् त्रिभुवन को अपने वश में कर लेगा)। ३४ कोई एक बोली, 'यह महान वीर हो जाएगा,' तो कुछ (-एक) ने कहा, 'यह उदार (-चरित) दिखायी दे रहा है।' कुछ-एक बोलीं, 'इसके तेज (की तुलना) में सूर्य न्यून है'। ३५ कुछ-एक बोलीं, 'इसके नखों पर कामदेव को निछावर कर दें'। कोई-कोई बोलीं, 'हे बालक, हम तुझ पर निछावर हो जाएँगी'। ३६ कोई-कोई बोलीं, 'बातें मत करो; इस बालक को नज़र लग जाएगी।' (तब) यशोदा ने जगश्रेष्ठ (भगवान बाल-) कृष्ण को गोद में ले लिया। ३७ जिस घर में श्रीपति उत्पन्न हुए, उसकी दीवारों का कस्तूरी-केसर से लेपन किया। चारों पर लाल-लाल चँदोवे और मोतियों की झालरें शोभायमान थीं। ३८ (वहाँ) रत्नों से जड़ा हुआ पलंग था। उसके सामने रत्न-जटित चौका रखा गया। यशोदा श्रीरंग (कृष्ण) को लेकर उस पर बैठ गयी। ३९ उसने (जब) चक्रपाणि (भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण) को गोद में लिया, तो दो स्त्रियाँ हाथों में श्वेत चामर लेकर आनन्द के साथ झुलाती रहीं। ४० तेरह गुणों से युक्त बीड़े[1] दो स्त्रियों ने दे दिये, तो कुछ-एक

[1] तेरह गुणों से युक्त बीड़े—बीड़े के निम्नलिखित तेरह गुण माने गये हैं—कटुत्व, सुगन्धि, ऊष्णता, मधुरता, क्षारत्व, तीताई, जन्तुघ्नता, दुर्गन्धि-नाशकता, पित्त-शामकता, कफ-नाशकता, मुख-शोभा-वर्धकता, मुख-शुद्धि-कारिता और कामोद्दीपकता।

करीं घेऊनी । ढाळिताती दोघीजणी । यशोदेवरी स्वानंदें । ४० तांबूल त्रयोदशगुणी । विडे देती दोघीजणी । एक पिकपात्र धरोनि । उभी असे जवळिकें । ४१ कनकांबराची बुंथी । घेऊनि बैसली यशोदा सती । ओसंगा घेतला श्रीपती । आनंद चित्तीं न समाये । ४२ भोंवते वेष्टिले विद्वज्जन । गर्गमुनि पुढें होऊन । पाहे बाळकाचें लक्षण । नयनीं वदन विलोकी । ४३ जातक वर्णीत गर्गमुनी । नंद यशोदा ऐकती श्रवणीं । जें श्रवण करितां पापधुणी । होय एकदां सर्वांची । ४४ हात पाहोनि गर्ग । म्हणे इंदिरावर श्रीरंग । धन्य यशोदे तुझें भाग्य । न वर्णवे शेषातें । ४५ जें क्षीरसागरींचें निधान । जें क्षीराब्धितनयेचें जीवन । क्षितिधरावरी करी शयन । तो हा निधान पुत्र तुझा । ४६ कमलनयन कमलवदन । कमलनाभ कमलभूषण । कमलप्रिय कमलशयन । तो हा पूर्ण पुत्र तुझा । ४७ हा उपजला तुझ्या उदरीं । परी कीर्ति करील त्रैलोक्यभरी । यास असती बहुत वैरी । परी नाटोपे कोणा हा । ४८ महाविषें स्तन भरोनी । कोणी येईल कामिनी ।

पिक-पात्र (पिक-दान) लेकर (उसके) पास खड़ी रह गयीं । ४१ सती यशोदा कनकाम्बर (जरी) का ओढ़ावन ओढ़कर बैठी हुई थी । वह श्रीपति को गोद में लिए हुए थी (तब) उसके चित्त में आनन्द नहीं समा रहा था । ४२ चारों ओर विप्रगण घेरे हुए थे । तो गर्गमुनि आगे बढ़कर बालक के लक्षण देखने लगे । उन्होंने अपनी आँखों से उसके मुख को (ध्यान से) देखा । ४३ (तदनन्तर) गर्गमुनि जातक बताने लगे, तो नन्द और यशोदा उसे कानों से श्रवण कर रहे थे, जिसके सुनने से सबके पापों का एकबारगी क्षालन हो जाता है । ४४ (शिशु के) हाथ को देखकर गर्गमुनि बोले, 'ये तो इन्दिरा-वर (लक्ष्मी-पति) श्रीरंग (विष्णु) हैं । हे यशोदा, तुम्हारे भाग्य धन्य हैं । शेष द्वारा भी उनका वर्णन नहीं किया जाएगा । ४५ जो क्षीर-सागर के निधान हैं, जो क्षीराब्धि-तनया (सागर-कन्या) लक्ष्मी के (साक्षात) जीवन (-स्वरूप, पति) हैं, जो धरणीधर शेष पर शयन किया करते हैं, वे ही निधान-स्वरूप तुम्हारे पुत्र हैं । ४६ जो कमल-नयन, कमल-वदन, कमल-नाभ (जिनकी नाभि में कमल उत्पन्न है, ऐसे), कमल-भूषण (जिन्होंने हाथ में कमल-स्वरूप आभूषण धारण किया है, ऐसे), कमल-प्रिय, कमल-शयन (भगवान विष्णु) हैं, वे ही ये तुम्हारे पूर्ण रूप से पुत्र हैं । ४७ ये तुम्हारे उदर से उत्पन्न हैं, फिर भी ये (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल जैसे) तीनों लोकों भर में अपनी कीर्ति (विस्तारित) कर देंगे । इसके बहुत वैरी हैं, फिर भी ये किसी भी के द्वारा अपने अधीन नहीं किये जा पाएँगे । ४८ कोई स्त्री महाविष (अति प्रखर विष) से अपने स्तनों को भरकर आएगी; परन्तु स्तन (से उत्पन्न दूध उसके द्वारा) पिलाने लगते ही ये चक्रपाणि भगवान उसे सोख

स्तन पाजितां चक्रपाणी। तीस शोषोनि टाकील। ४९ चंडवायु उडवूनि यातें। घेऊनि जाईल आकाशपंथें। मर्दूनियां त्या दैत्यातें। विजयी होईल पुत्र हा। ५० आंगावरी येईल गाडा। त्याचाही करील चुराडा। दोनी वृक्ष कडकडां। मोडूनि पडतील यावरी। ५१ हा होईल चित्तचोर। गोरस उरों नेदी अणुमात्र। ऐकतां हांसती सकळ विप्र। यशोदा नंद सुखावती। ५२ मायाचक्रचाळक चक्रपाणी। मोहील अवघ्या गौळिणी। यास थोर यमुनाजीवनीं। महासर्पभय असे। ५३ तेथें विजयी होईल आपेंआप। आणिक एक बापासी गिळील सर्प। परी तेथेंही याचा प्रताप। विशेष वाढेल जननीये। ५४ द्वादश योजनें महाअग्न। ग्रासील हा न लागतां क्षण। महापर्वत उचलोन। नखाग्रींच धरील हा। ५५ गोरक्षण करील हा माते। कंसास मृत्यु याचेनि हातें। संहारील सर्व दैत्यांतें। बंदींचीं समस्तें सोडवील। ५६ गुरुपुत्र गेला मरोन। तो पुन्हां देईल आणून। समुद्रांत एक पट्टण। नवेंचि रचील अद्‍भुत। ५७ महादैत्य संहारूनी। वरील मुख्य पट्टराणी। आणिक सोळा सहस्र जणी। एकलाचि पर्णील। ५८ षोडश-

---

(कर मार) डालेंगे। ४९ प्रचण्ड वायु (के) रूप में (आकर कोई) एक दैत्य इन्हें उड़ाकर आकाश मार्ग पर ले जाएगा; परन्तु ये (तुम्हारे) पुत्र उस दैत्य का मर्दन करके विजयी हो जाएँगे। ५० इनके बदन पर बड़ी गाड़ी आ (ढिह) जाएगी, परन्तु ये उसको भी पीसकर चूर-चूरकर डालेंगे। फिर दो वृक्ष इन पर कड़कड़ाहट के साथ टूटकर गिर जाएँगे। ५१ ये (सबके) चित्त के चोर (सिद्ध) होंगे। ये अणु मात्र (तक) गोरस (दूध) शेष नहीं रहने देंगे।' यह सुनते हुए समस्त विप्र हँसने लगे। (परन्तु) यशोदा और नन्द (दोनों) सुख को प्राप्त हो गये। ५२ गर्गमुनि ने कहा, 'ये माया के चक्र को चलानेवाले चक्रपाणि (भगवान के अवतार) समस्त ग्वालनों को मोहित कर देंगे। यमुना के गहन पानी में इन्हें एक महासर्प से भय है। ५३ (परन्तु) वहाँ ये अपने आप विजयी हो जाएँगे। एक अन्य सर्प इनके पिता को निगल जाएगा, परन्तु हे जननी, वहाँ भी इनका प्रताप विशेष रूप से बढ़ जाएगा। ५४ बारह योजन (फैली हुई) बड़ी आग (दावाग्नि) को ये क्षण न लगते निगल जाएँगे। (तदनन्तर) ये एक महापर्वत को उठाकर अपने नख के अग्रभाग (नोक) पर रख देंगे। ५५ हे माता, ये गायों की रक्षा करेंगे। कंस को इन्हीं के हाथों मृत्यु आनेवाली है। ये समस्त दैत्यों का संहार करेंगे और बन्दीगृह के समस्त लोगों को छुड़ा देंगे। ५६ इनके गुरु का पुत्र मर जाएगा, उसे ये (पुनः जीवित करके) ला देंगे। ये समुद्र में एक नये ही अद्‍भुत नगर का निर्माण करेंगे। ५७ महान दैत्यों का संहार करके ये एक मुख्य पटरानी का वरण करेंगे। और अन्य सोलह सहस्र

सहस्र एक शत। आणिक आठजणी विख्यात। संतति वाढेल अपरिमित। नाहीं अंत निजभाग्या। ५९ घेईल भक्तांचा कैवार। उतरील धरणीचा सर्व भार। याची लीला गातां सर्वत्र। प्राणी तरती त्रिभुवनींचे। ६० धर्माघरीं उच्छिष्टें प्रीतीं। काढील हा श्रीपती। होईल भक्तांचा सारथी। लाज चित्तीं धरीना। ६१ दिवसेंदिवस लीलाचरित्र। दावील गति चित्रविचित्र। निजधामा जातां स्वगोत्र। समागमें नेईल हा। ६२ ऐसें जातक ऐकतां श्रवणीं। तटस्थ जाहली नंदराणी। तों स्तनपान करितां चक्रपाणी। परतोन पाहे द्विजाकडे। ६३ माझी लीला सांगितली सर्वत्र। म्हणोनि हास्य करी राजीवनेत्र। जो ब्रह्मानंद सर्वेश्वर। लीलाकौतुक दावी तो। ६४ बारा दिवसपर्यंत। सोहळा होतसे अद्‌भुत। नंदें द्रव्य अपरिमित। वांटिलें विप्रां तेधवां। ६५ तेरावे दिवशीं पाळणां। पहुडविला वैकुंठराणा। श्रीकृष्ण हें नाम जाणा। गर्गें स्थापिलें जाणोनि। ६६ करितां नाना साधना। न ये ब्रह्मादिकांच्या ध्याना। त्यासी घालूनि पाळणां। जो जो म्हणोनि

नारियों से ये अकेले ही परिणय करेंगे। ५८ इनके सोलह सहस्र एक सौ और अधिक आठ विख्यात स्त्रियाँ होंगी। इनकी सन्तति भी अनगिनत रूप से बढ़ जाएगी। इनके अपने भाग्य का कोई अन्त (सीमा) नहीं है। ५९ ये भक्तों का पक्ष लेकर उनकी सहायता कर लेंगे और धरती पर के समस्त (पाप-) भार को उतार देंगे। इनकी लीला को गाने पर त्रिभुवन के प्राणी सर्वत्र तैर जाएँगे (उद्धार को प्राप्त हो जाएँगे)। ६० ये श्रीपति भगवान धर्मराज के घर प्रेम-पूर्वक जूठे थाल (आदि) उठा लेंगे। ये अपने (एक) भक्त के सारथी बन जाएँगे—इसमें वे मन में कोई लज्जा नहीं धारण करेंगे। ६१ दिन-प्रति-दिन ये अपनी चित्र-विचित्र चरित्र-लीलाएँ और गतियाँ दिखाएँगे और (अन्त में) ये निजधाम जाते-जाते अपने गोत्र (में उत्पन्न हुओं) को अपने साथ ले जाएँगे। ६२ कानों से इस प्रकार के जातक को सुनकर नन्दरानी (यशोदा) चकित-चुप हो गयीं। तब चक्रपाणि भगवान स्तन-पान करते-करते उन ब्राह्मण—गर्गमुनि—की ओर मुड़कर देखने लगे। ६३ इन्होंने मेरी लीला कह दी है—इसलिए (ऐसा सोचकर) राजीव-नेत्र भगवान मुस्कराने लगे। जो ब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप ब्रह्म) हैं, सर्वेश्वर हैं, वे बाल-कृष्ण (के रूप में इस प्रकार) लीला-कौतुक दिखा रहे थे। ६४ बारह दिन तक अद्‌भुत आनन्दोत्सव चल रहा था। तब नन्द ने ब्राह्मणों को अपार धन (दान में) दे दिया। ६५ तेरहवें दिन वैकुण्ठराज (विष्णु के अवतार उस शिशु) को पालने में पौढ़ा दिया और समझिए कि गर्ग ने जान-बूझकर उसका नाम श्रीकृष्ण रख दिया। ६६ नाना प्रकार की साधना करने पर भी जो ब्रह्मा आदि के ध्यान में नहीं

हालविती। ६७ वेदशास्त्रां न ये आया। भोगींद्र झाला हरीची शय्या। तो पाळणां निजोनियां। लीला दावी भक्तांतें। ६८ जो पयोब्धिहृदयनिवासी। पद्मा सेवी पादपद्मांसी। उरगरिपु वहन ज्यासी। पाळणां त्यासी पहुडविलें। ६९ जलजनाभ जलजलोचन। जलधिशायी जलदवर्ण। जय विजय कर जोडून। द्वारीं उभे जयाच्या। ७० सनकादिक सनत्कुमार। हृदयीं चिंतिती निरंतर। जें मन्मथशत्रुध्येय साचार। नारदादिकां गुह्य जें कां। ७१ जें मूळ आदिमायेचें। जें पक्व फळ निगमवल्लीचें। जें दैवतार्चन कमलोद्भवाचें। पाळण्यांत खेळतसे। ७२ जो विद्वज्जनमानसमराळ। जो वैकुंठींचा वेल्हाळ। निजभक्तवरद तमालनील। तो पहुडला पाळणां। ७३ जो अनंतगुणसंपन्न। अनंतनेत्र अनंतवदन। अनंतबाहु अनंतचरण। त्यास जो जो म्हणोनि हालवी। ७४ जो अलक्ष्य अपरंपार। जो आदिमायेचा

आते, उन्हें पालने में रखकर (नारियाँ) लोरियाँ गाते-गाते झुलाने लगीं। ६७ वे वेदों और शास्त्रों की (कल्पना की) पकड़ (तक) में नहीं आते; (ऐसे) उन भगवान हरि की शय्या भोगीन्द्र शेष हो गये। वे (हरि) पालने में लेट कर भक्तों को लीला दिखा रहे हैं। ६८ जो समुद्र के हृदय (-स्थल) के निवासी हैं, जिनके चरण-कमलों की सेवा कमला अर्थात् लक्ष्मी करती हैं, सर्प-शत्रु गरुड़ जिनके लिए वाहन-स्वरूप हो गये हैं, ऐसे उन भगवान (विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण) को पालने में पौढ़ा दिया। ६९ वे कमल-नाभ, वे कमल-नयन, वे क्षीरसागर-शायी, वे मेघ (की भाँति श्याम-) वर्ण भगवान, जिनके द्वार पर जय-विजय[1] (नामक पार्षद) हाथ जोड़े खड़े हैं, जिनका सनकादिक सनत्कुमार (जैसे ऋषि) अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करते हैं, जो सचमुच कामदेव के शत्रु शिवजी द्वारा ध्यान करने योग्य हैं, जो नारद आदि के लिए भी गूढ़ (अगम्य) हैं, जो आदिमाया के मूल (-स्थान) हैं, जो वेद-स्वरूप लता में उत्पन्न पक्व फल हैं, जो ब्रह्मा के लिए पूजन-योग्य देवता हैं, पालने में खेल रहे थे। ७०-७२ जो विद्वान लोगों के मन रूपी मान-सरोवर के हंस हैं, जो वैकुण्ठ लोक के प्रिय (निवासी) हैं, जो अपने भक्तों को वरदान देनेवाले तमाल-नील भगवान हैं, वे (यहाँ गोकुल में) पालने में पौढ़े हुए थे। ७३ जो अनन्त गुणों से सम्पन्न हैं, जो अनन्त नेत्रों के धारी हैं, जो अनन्त-मुख-धारी हैं, जो अनन्त बाहुओं के धारी हैं, जिनके अनन्त चरण हैं, उन्हें लोरियाँ गाते हुए वे (स्त्रियाँ) झुला रही थीं। ७४ जो अलक्ष्य

१ जय-विजय कर्दम प्रजापति के देवहूति से उत्पन्न यज्ञकर्म-कुशल विष्णु-भक्त पुत्र थे। गज और ग्राह का रूप धारण किये हुए उन दोनों का भगवान विष्णु ने उद्धार करके उन्हें अपने द्वारपाल नियुक्त किया। (गज-ग्राह कथा के लिए देखिए पृ० ६२ (अध्याय ३)।

निजवर। जो त्रिभुवनाचा आधार। जो वंद्य निगमागमां।७५ जो विराट्वृक्षाचें मूळबीज। जो योगियांची विश्रांतिशेज। जो आदिप्रणवाचें निजगुज। तो पाळणां पहुडविला।७६ जो वेदविद्याचलदिनकर। जो ब्रह्मांडनगरीचा स्तंभ थोर। जो दानवसमरप्रतापधीर। पाळणां तो पहुडविला।७७ अज्ञानगज-छेदकपंचानन। जो मायाघोरविपिनदहन। जो सर्वआनंद आद्यकारण। ब्रह्म पूर्ण श्रीकृष्ण।७८ पाळण्याभोंवत्या सुवासिनी। शांति क्षमा दया उन्मनी। उपरति सद्विद्या कामिनी। जो जो शब्दें हालविती।७९ निर्वाणदीक्षा तितिक्षा स्वरूपस्थिती। मुमुक्षा निष्कामना प्रतीती। सुलीनता समाधि सद्गती। लीला गाती आनंदें।८० परा पश्यंती मध्या वैखरी। गजरें गाती चारी नारी। चारी मुक्ति निर्धारीं। चहूं कोनीं तटस्थ।८१ घरांत मुख्य या सुंदरी। इतर बैसल्या बाहेरी। जागृती सुषुप्ति नारी। त्यांस हरी दिसेना।८२ असंभावना

(अलख) हैं, जो अपरम्पार (अपरिमित-अनन्त) हैं, जो आदिमाया के अपने मूर्तिमान पति हैं, जो त्रिभुवन के आधार (-स्वरूप) हैं, जो निगमागम (वेद-शास्त्र) के लिए वन्दनीय हैं, जो ब्रह्माण्ड रूपी विराट वृक्ष के मूल बीज हैं, जो योगियों की विश्राम-शय्या है, जो आदि प्रणव (ॐ-कार ध्वनि) का अपना गुह्य (मूल) हैं, वे (भगवान) पालने में पौढ़ाये गये। ७५-७६ जो वेद-विद्या रूपी पर्वत पर उदित होनेवाले सूर्य हैं, जो ब्रह्माण्ड रूपी नगरी के बड़े (आधार-) स्तम्भ हैं, जो दानवों के साथ युद्ध करने में प्रतापवान तथा धैर्यधारी होते हैं, वे (भगवान) पालने में पौढ़ाये गये। ७७ जो अज्ञान रूपी हाथी को छिन्न-भिन्न करनेवाले सिंह हैं, जो माया के घोर वन को जलानेवाले हैं, जो सर्वतः आनन्द (-स्वरूप) हैं, जो (सबके) आद्य निर्माता हैं, वे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण (के रूप में उत्पन्न हैं और पालने में पौढ़ाये गये) हैं। ७८ शान्ति, क्षमा, दया, उन्मनी, उपरति, सद्विद्या (मानो स्वयं) सौभाग्यवती कामिनियाँ (बनकर) पालने के चारों ओर (खड़ी होकर) लोरियाँ गाते हुए (पालना) झुला रही थीं। ७९ निर्वाण दीक्षा, तितिक्षा (क्षमा), स्वरूप-स्थिति (ब्रह्म-स्वरूपता), मुमुक्षा, निष्कामना, प्रतीति, सुलीनता, समाधि, सद्गति (नामक प्रवृतियाँ मानो नारी-वेष में) आनन्द-पूर्वक (भगवान की) लीला का गान कर रही थीं। ८० परा, पश्चन्ती, मध्यमा और वैखरी—ये चारों (प्रकार की वाक्-स्वरूपा) नारियाँ गर्जन के साथ, अर्थात् उच्च स्वर में गा रही थीं। (सरूपता, सलोकता, समीपता और सायुज्यता नामक) चारों (प्रकार की) मुक्तियाँ (नारी रूप में) चारों कोनों में स्तब्ध (खड़ी) थीं। ८१ घर के अन्दर ये मुख्य सुन्दरियाँ (स्त्रियाँ) थीं। अन्य (घर के) बाहर बैठी हुई थीं। जागृति और सुषुप्ति-स्वरूपा (जो) नारियाँ थीं, उन (नारियों) को हरि

विपरीतभावना। विक्षिप्ता त्यागिता येतां जाणा। तुर्या दावी शहाणपणा। जाणती असें बहुत मी। ८३ बारा सोळा चौदा नारी। गलबला करिती बाहेरी। चौसष्टी दाविती कलाकुसरी। परी अंतरीं प्रवेश नव्हे। ८४ असो आतां सकल नितंबिनी। ओंटी यशोदेची भरोनी। अलंकार वस्त्रें अर्पूनी। सदना आपुल्या त्या गेल्या। ८५ वस्त्रें भूषणें देऊन। नंदें बोळविले ब्राह्मण। गर्ग गौरविला संपूर्ण। वस्त्राभरणीं तेधवां। ८६ गोकुळीं अवतरतां गोपाळ। सकळ वृक्ष सदाफळ। धेनु दुभती त्रिकाळ। दुग्ध तुंबळ वर्षती। ८७ आधिव्याधिरहित लोक। नाहीं चिंता दरिद्रदुःख। शुष्क धरणीस अपार पिक। पिको लागलें तेधवां। ८८ अवतरतांचि

दिखायी नहीं दे रहे थे। ८२ समझिए असम्भावना, विपरीत भावना, विक्षिप्ता और त्यागिता[1] के आने पर तुरीया बहुत समझदारी (बुद्धिमानी) दिखा रही है कि वह स्वयं बहुत समझदार (ज्ञानी) है। ८३ बारह (राशियाँ)[2], सोलह (मातृकाएँ) और चौदह (विद्याएँ) नारियाँ (अर्थात नारियों के रूप में) बाहर शोर कर रही थीं। चौंसठों (कलाओं) ने बहुत कौशल दिखा दिया, परन्तु उनका अन्दर प्रवेश नहीं हो पाया। ८४ अस्तु। वे समस्त स्त्रियाँ यशोदा की कोंछ भरकर उसे आभूषण और वस्त्र समर्पित करके अपने-अपने घर गयीं। ८५ नन्द ने वस्त्र और आभूषण देकर ब्राह्मणों को बिदा किया। तब उन्होंने वस्त्रों और आभूषणों (के उपहार) से गर्ग का सम्पूर्ण रूप से गौरव किया। ८६ गोपाल (कृष्ण) के गोकुल में अवतरित हो जाने पर समस्त वृक्ष सदा-फल अर्थात नित्य फलों से युक्त हो (कर रह) गये। गायें तीनों काल (प्रातः दुपहर और शाम) दूध देने लगीं, वे मानो अपार दूध बरसाने लगीं। ८७ लोग आधि-व्याधियों (मानसिक और शारीरिक दुःखों) से मुक्त हो गये। उन्हें कोई चिन्ता, दरिद्रता, दुःख नहीं रहा। तब सूखी भूमि में (भी)

---

१ वेदान्त के अनुसार 'असम्भावना' निम्नलिखित दोनों प्रकार के संशयों को कहते हैं:—

(अ) जीव और ब्रह्म भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं—(प्रमाणगत संशय) और (आ) जीव और ब्रह्म की भिन्नता सत्य है (वा असत्य)—(प्रमेयगत संशय)

विपरीत भावना—उस विपरीत भावना को कहते हैं, जिसके अनुसार यह माना जाता है कि देह और आत्मा भिन्न हैं अथवा देह ही आत्मा है।

विक्षिप्ता—विपरीत ज्ञान, मन की व्यग्रता तथा चंचलता।

त्यागिता—वैराग्य वृत्ति।

तुरीया—समाधि अवस्था।

२ बारह, सोलह, चौदह, चौंसठ : देखिए—टिप्पणियाँ पृ० ८० और ८१ (अध्याय ३—छन्द २ से ५)।

रमारमण। जग जरारहित जाहलें तरुण। विकल्प पाप समूळून। देशधडी जाहलें। ८९ दरिद्री ते जाहले भाग्यवंत। मूर्ख ते होती बोलके पंडित। कुरूप ते जाहले रूपवंत। देदीप्यमान तेजस्वी। ९० अवतरतां श्रीकृष्णपरब्रह्म। निःशेष गेलें रजतम। गौळियां सुकाळ परम। स्वानंदाचा जाहला। ९१ गृहीं प्रकाशतां प्रभाकर। मग कैंचा उरेल अंधकार। गृहस्वामी येतांच तस्कर। पळोनि जाती चहूंकडे। ९२ कीं बोलतां ज्ञानवेदांत। सकळ मतें होती कुंठित। कीं सद्विवेक होतां प्राप्त। संसारदुःख वितळे पैं। ९३ कीं प्रवेशतां वैराग्य शांती। दुष्ट कामक्रोध पळती। तैसा अवतरतां कमलापती। दोषदुष्काळ पळाले। ९४ असो इकडे मथुरेप्रती। दुश्चिन्हें कंसास जाणवती। राजद्वारीं शुनी रडती। विजा पडती सभेवरी। ९५ महास्फोट होऊनि धरा। क्षणक्षणां कांपे थरथरां। मेघ पडला नसतां धारा। शोणिताच्या वर्षताती। ९६ कंस सभेसी चालिला। उगाच मुकुट खालीं पडिला। गेली सभेची सर्व कळा। प्रेतवत वीर दिसती। ९७ आपुलें शिरीं तेल शेंदूर।

अपार फसल आने लगी। ८८ रमा-रमण (श्री विष्णु) के अवतरित हो जाते ही जगत जरा-रहित (वृद्धत्व-हीन अर्थात्) युवा हो गया; विकल्प और पाप (जड़-) मूल-सहित देश से निष्कासित हो गया। ८९ जो दरिद्र थे, वे भाग्यवान (अर्थात धनवान) हो गये; जो मूर्ख थे, वे अच्छे वक्ता, पण्डित हो गये; जो कुरूप थे, वे सुन्दर (रूपधारी) तथा देदीप्यमान, तेजस्वी हो गये। ९० परब्रह्म श्रीकृष्ण के अवतरित हो जाने पर रजोगुण और तमोगुण पूर्णतः चले गये और ग्वालों के लिए आत्मिक आनन्द का परम अच्छा काल आ गया। ९१ घर में सूर्य के प्रकाशित हो जाने पर, फिर अन्धकार कैसे शेष रहेगा? गृह-स्वामी के आ जाने पर, चोर चारों ओर भाग जाते हैं। ९२ अथवा वेदान्त ज्ञान कहने पर (अन्य) समस्त मत कुण्ठित हो जाते हैं। अथवा सद्विवेक प्राप्त हो जाने पर सांसारिक दुःख (पिघलते हुए) नष्ट हो जाता है। ९३ वैराग्य और शान्ति के प्रविष्ट हो जाने पर दुष्ट काम और क्रोध (जैसे दुष्ट विकार) भाग जाते हैं। उसी प्रकार, कमला-पति (भगवान विष्णु) के अवतरित हो जाने पर दोष और अकाल (अर्थात दोष तथा कु-समय) भाग गये। ९४ अस्तु। इधर मथुरा में कंस को अपशकुन समझ में आने (दिखायी देने) लगे। (जैसे-) राज-द्वार में कुतियाँ रोने लगीं; सभा (-गृह) पर बिजलियाँ गिर गयीं (विद्युत्पात हो गया)। ९५ महा-स्फोट होकर पृथ्वी क्षण-क्षण थर्राती हुई काँपने लगी। मेघ के न बरसते रहने पर भी रक्त की धाराएँ बरस रही थीं। ९६ जब कंस सभा (-गृह) की ओर चला जा रहा था, तो यों ही (उसका मुकुट नीचे गिर पड़ा। सभा (में उपस्थित सभा-जनों) की समस्त कान्ति (नष्ट हो)

स्वप्नीं देखे कंसासुर। दिवाभीतांचे घुंघाट स्वर। दिवसाच कंस आयके। ९८ उगेंच छत्र मोडून पडलें। कंसा वाटे मरण आलें। कंस-स्त्रियांनीं स्वप्नीं देखिलें। महादुश्चिन्ह दारुण। ९९ विधवा स्त्रिया स्वप्नकाळीं। ओंटी भरिती घेऊनि धुळी। मंगळसूत्र गळसरी तोडिली। काळपुरुषें अकस्मात। १०० नाना विघ्नें देखोनी। कंस भयभीत मनीं। सदा जाळी चिंताग्नी। कदा शयनीं नीज न ये। १०१ प्रधानाशीं कंस विचार करी। आम्हुचा वैरी उर्वीवरी। अवतरला परी निर्धारीं। ठायीं न पडे शोधितां। २ कोणे ग्रामीं कोणे घरीं। वाढतो न कळे माझा वैरी। जो ठायीं पाडील निर्धारीं। त्यासी इच्छिलें देईन मी। ३ शत्रू जों लहान आहे। तों वेगें करावा क्षय। दंशशूक लघु म्हणों नये। देखतांचि वधावा। ४ तृणामाजी किंचित् अग्न। तो जाळील नलगतां क्षण। घर जों न पडे मोडून। तों बाहेर आधीं व्हावें। ५ शस्त्राचा घाय जों न पडे। तों आधींच वोढण करावें पुढें। तैसा शत्रु जो न वाढे। तों आधींच घात योजावा। ६ प्रधान म्हणे ते

गयी। समस्त वीर प्रेतों जैसे दिखायी दे रहे थे। ९७ कंसासुर ने अपने सिर में तेल और सिंदूर मले हुए (अपने आपको) स्वप्न में देखा। कंस दिन में ही उल्लुओं का घुघुत्कार सुनता था। ९८ उसका छत्र टूटकर गिर पड़ा, तो कंस को लगने लगा कि (उसकी) मौत (ही) आ गयी। (इसके अतिरिक्त) कंस की स्त्रियों ने स्वप्न में एक दारुण बड़ा अपशकुन देखा। ९९ विधवा स्त्रियाँ स्वप्न-समय में धूल लेकर उनकी कोंछ भर रही थीं; उनका मंगल-सूत्र कालपुरुष ने सहसा तोड़ डाला। १०० (इस प्रकार के) अनेक विघ्न देखकर कंस मन में भयभीत हो गया। उसे चिन्ता रूपी अग्नि नित्य जलाती रही। (फलस्वरूप) शय्या में उसे नींद नहीं आती थी। १०१ (तदनन्तर) कंस ने (अपने) मन्त्री से विचार (-विमर्श) किया। (वह बोला—) 'हमारा वैरी पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, फिर भी खोजने पर निश्चय ही किसी स्थान पर भी उसका पता नहीं (मिल) रहा है। २ समझ में नहीं आ रहा है कि वह किस गाँव में, किस घर में बढ़ (अर्थात पल) रहा है; जो उसका (खोजकर) पता लगाएगा, उसे मैं उसका (मन-) चाहा दे दूँगा। ३ शत्रु जब छोटा होता है, तो ही उसका झट से नाश कर दें। साँप को छोटा नहीं कहें; देखते ही उसे मार डालें। ४ घास में (यदि) अल्प-सी अग्नि (आग) हो, तो वह भी क्षण न लगते उसे जला डालेगी। जब तक घर टूटकर गिर (ढह) नहीं जाता, तब तक पहले ही बाहर हो जाएँ। ५ जब तक शस्त्र का आघात नहीं होता, तब तक (उसके) पहले ही ढाल आगे कर दें। उसी प्रकार शत्रु जब तक नहीं बढ़ता, तब उससे पहले ही आघात करने की योजना करें।'। ६ उस

वेळीं। जनवदंता ऐसी ऐकिली। वैरी वाढतो गोकुळीं। गौळियाघरीं म्हणोनियां। ७ लक्षानुलक्ष गौळिणी। गोकुळीं असती बाळंतिणी। परी वैरी असे कोण्या सदनीं। तोचि ठायीं पाडिजे। ८ कापटचवेषें दैत्य बरवा। धूर्त तार्किकी पाठवावा। अरि ठायीं पाडोन वधावा। नाना उपायें-करोनी। ९ तों महाबळ नामें दैत्य। कंसासी पैज बोलत। मी विप्र होऊनि त्वरित। पाळती घेतों गोकुळीं। ११० कंस बहुत संतोषला। महाबळ दैत्य गौरविला। तेणें तत्काळ धरियेला। विप्रवेष कापटचें। १११ धोत्रें कळोत्रें नेसला। यज्ञोपवीत रुळे गळां। कापटचवेष अवलंबिला। हातीं पंचांग घेतलें। १२ धोत्रें वोळी सरसावी। टिळे वाटे लोकांस दावी। मी ब्राह्मणच हें लटिकेंचि मिरवी। परी अंतरीं कापटच। १३ लटिका दाखवी आचार। परी अंतरीं दुराचार। वृंदावनफळ वरीच सुंदर। अंतरीं काळकूट भरियेलें। १४ कीं बक पक्षियाचें शुष्क ध्यान। कीं धन-लुब्धकाचें तत्त्वज्ञान। कीं दांभिकाचें भजन। वरी वरी दावी असत्य। १५

समय मन्त्री ने कहा, लोगों में ऐसी किंवदन्ती सुनी है कि (आपका) वैरी गोकुल में एक ग्वाले के घर बढ़ (-पल) रहा है। ७ गोकुल में लक्ष-लक्ष ग्वालिनें प्रसूता हैं। परन्तु यही खोज लिया जाए कि वह वैरी किस घर में है। ८ कपटवेश में कोई भला दैत्य, धूर्त कुशाग्र-बुद्धि (व्यक्ति) भेजा जाए (और) फिर शत्रु को खोजकर नाना उपाय करके उसका वध करें। ९ तब महाबल नामक दैत्य बाज़ी लगाते हुए कंस से बोला, 'मैं विप्र बनकर झट से गोकुल में (जाकर उसे) खोज लूँगा'। ११० (यह सुनकर) कंस बहुत संतुष्ट हो गया (अतः) उसने उस महाबल नामक दैत्य का गौरव किया। तब उस (दैत्य) ने कपट-पूर्वक तत्काल विप्र-वेश धारण किया। १११ उसने धोती और उपवस्त्र पहन लिया। उसके गले में यज्ञोपवीत (जनेऊ) लटकते हुए शोभायमान हो रहा था। (इस प्रकार) उसने कपट-वेश धारण किया और हाथ में पत्रा ले लिया। १२ वह अपनी धोती आगे की ओर झुला रहा था और लोगों को (अपने माथे पर लगाये हुए) तिलक दिखा रहा था। वह झूठ-मूठ ठाट-बाट के साथ प्रदर्शित कर रहा था कि वह ब्राह्मण ही है। परन्तु उसके अन्तःकरण में कपट था। १३ वह मिथ्या आचार प्रदर्शित कर रहा था; फिर भी उसके अन्तःकरण में दुराचार (का भाव) था। वृन्दावन फल ऊपर से ही सुन्दर होता है, पर उसके अन्दर विष भरा होता है। १४ अथवा बगुला पक्षी द्वारा धारण किया हुआ ध्यान शुष्क (झूठा) होता है; अथवा धन के लोभी का (ब्रह्म-) तत्त्वज्ञान (बताना व्यर्थ) होता है; अथवा दाम्भिक की भक्ति (दिखावटी) होती है। ये सब ऊपर ही ऊपर असत्य प्रदर्शित करते हैं। १५ अथवा स्त्री सम्बन्धी लम्पट (अत्यधिक

स्त्रीलंपटाचें विरक्तपण। कीं वेश्येचें मुखमंडण। कीं कोल्हाटियाचें शूरत्व पूर्ण। वरी वरी व्यर्थ पैं। १६ विश्वासघातक्याचे बोल। वरी वरी दिसती रसाळ। कीं मैंदाची शांति निर्मळ। वरी धरीच व्यर्थ पैं। १७ तैसा तो दैत्य महाबळ। वरी वरी जाहला सुशीळ। प्रवेशता जाहला गोकुळ। धूर्त कुटिल दुरात्मा। १८ पुसताहे लोकां सकळां। कोणाचे घरीं होतो पुत्र-सोहळा। तों ते सांगती कृष्ण अवतरला। नंदाचिये मंदिरीं। १९ हरिवंश-भागवतीं पाहीं। महाबळ विप्राची कथा नाहीं। शोध करितां सर्वांठायीं। नारदपुराणीं देखिली। १२० तेथें ही कथा लिहिली जाण। श्रोतीं न धरावा अनमान। मुळावेगळी कथा पूर्ण। सहसाही वाढेना। १२१ नाना पुराणींचे इतिहास। बोलिला स्वामी वेदव्यास। यालागीं कदापि दोष। न ठेवावा ग्रंथातें। २२ असो तो धूर्त महाबळ विप्र। प्रवेशला नंदाचें मंदिर। गौळी करिती नमस्कार। भावेंकरोनि विप्रातें। २३ बैसावया दिधलें आसन। केलें ब्राह्मणाचें पूजन। यशोदा कृष्णासी घेऊन। स्तनपान करवीत। २४

कामासक्त) व्यक्ति का विरक्तपना, अथवा वेश्या के मुख की शोभा, अथवा बाज़ीगर का पूर्ण शूरत्व ऊपर-ही-ऊपर (सत्य दिखायी देता है, फिर भी वह) व्यर्थ (ही) होता है। १६ विश्वासघाती के वचन ऊपर-ऊपर रसमय (मधुर) दिखायी देते हैं; अथवा लुटेरे की धारण की हुई शान्ति ऊपर ही ऊपर निर्मल होती है; फिर भी वह उसे व्यर्थ ही धारण करता है। १७ उसी प्रकार महाबल नामक वह दैत्य ऊपर-ही-ऊपर सुशील बन गया। (तदनन्तर) वह धूर्त कुटिल दुरात्मा गोकुल में प्रविष्ट हो गया। १८ उसने समस्त लोगों से पूछा कि किसके घर पुत्र-जन्मोत्सव हो गया, तो उन्होंने कहा—‘ नन्द के घर कृष्ण अवतरित हो गये हैं ’। १९ देखिए हरिवंश और भागवत (पुराण) में महाबल नामक इस विप्र की कथा नहीं है; (परन्तु) समस्त स्थलों में खोज करने पर मैंने वह नारद पुराण में देखी (पायी)। १२० समझिए कि वहाँ (उस ग्रन्थ में) यह कथा लिखी हुई है। (अतः) श्रोता (इसके सम्बन्ध में) शंका धारण (करते हुए इसका अनादर) न करें। मूल आधार के बिना (कोई भी) कथा (इस प्रकार) साधारणतः पूर्ण नहीं विकसित हो जाती। १२१ स्वामी वेदव्यास ने नाना पुराणों के (आधार पर) इतिहास कह दिये हैं। इसलिए इस ग्रन्थ को कदापि दोष न लगाएँ। २२ अस्तु। महाबल नामक वह धूर्त ब्राह्मण (वेषधारी दैत्य) नन्द के घर में प्रविष्ट हो गया, तो उस ब्राह्मण को ग्वालों ने श्रद्धा-भाव-पूर्वक नमस्कार किया। २३ उन्होंने उसे बैठने के लिए आसन दिया; उस ब्राह्मण का पूजन किया। (तब) यशोदा कृष्ण को लिये हुए उन्हें स्तन-पान करा रही थी। २४ (उस समय) यशोदा उस

यशोदा म्हणे ब्राह्मणासी। शुभ ग्रह पहा कृष्णासी। जन्मकाळाची दशा कैसी। तें आम्हांसी सांगिजे। २५ पूर्वी गर्गें केलें जातक। परमकल्याण शुभसूचक। तुम्हीं सांगावें सम्यक। दशा पाहोन कृष्णाची। २६ तंव तो कापटयेंकरून। पंचांग पाहे उकलोन। क्षणएक ग्रीवा तुकावून। सांगता जाहला तेधवां। २७ म्हणे गर्गादि ऋषीश्वर। सकळ चुकले गुणाकार। सर्वांचे मुळीं साचार। कृष्ण उपजला जाण पां। २८ यास उपजतां लागलें मूळ। हा करील सर्वांचें निर्मूळ। याच्या पायीं गोकुळ। निर्दाळेल सर्वही। २९ हा उपजला हो मूळीं। करील स्वगोत्राची होळी। तरी तुम्ही सकळ मिळोनि गौळी। लेंकरूं बाहेर टाका हें। १३० गर्तेमाजी नेऊनी। जितेंचि पुरावें ये क्षणीं। तरीच कल्याण तुम्हांलागुनी। निश्चयेंसीं जाणिजे। १३१ बाळ नव्हे हा काळ। गिळील तुमचें कुळ सकळ। ऐसें ऐकतांच वैकुंठपाळ। काय चरित्र मांडिलें। ३२ जो सकळचराचरव्यापक। जो मायाचक्रचाळक। जग हाचि पट सुरेख। परी तंतु देख श्रीकृष्ण। ३३ नाना परींचे विचित्र मणी। परी ओंविले एकच गुणीं। कीं अनेक तरंग

ब्राह्मण से बोली, 'आप कृष्ण के शुभ (-अशुभ) ग्रहों को देखिए। हमें यह बताइएगा कि उसके जन्म के समय कैसी ग्रह-दशा थी। २५ पहले गर्ग ने इसके जातक का वर्णन किया है, जो परम कल्याण-कारी तथा शुभ-सूचक (बताया हुआ) है। आप (भी) कृष्ण की (ग्रह-) दशा देखकर ठीक से (पूरा-पूरा) बताइए'। २६ तब वह कपट से पंचांग खोलकर देखने लगा। फिर एक क्षण गर्दन झुकाकर उसने कहा। २७ वह बोला, 'गर्ग आदि समस्त ऋषिवरों ने गुणा (करके गुणन-फल) बताने में भूल की है। समझ लो कि यह कृष्ण सचमुच सबके नाश के लिए उत्पन्न हो गया है। २८ जनमते ही इसे मूल नक्षत्र लग गया है। (मूल नक्षत्र लगते ही उसका जन्म हुआ है, अतः) यह सबका निर्मूलन (जड़-मूल सहित नाश) कर डालेगा। इसके कारण सभी गोकुल नाश को प्राप्त हो जाएगा। २९ अहो, यह मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ है। यह अपने गोत्र को जला डालेगा। इसलिए तुम सब गोप मिलकर इस बच्चे को बाहर फेंक दो। १३० इसे ले जाकर इसी क्षण गड्ढे में जीवित ही गाड़ दें, निश्चय ही समझ लो कि (ऐसा करोगे) तभी तुम्हारा कल्याण होगा। १३१ यह बाल नहीं है, यह (तो) काल है। यह तुम्हारे समस्त कुल को निगल डालेगा।' ऐसा सुनते ही वैकुण्ठ-पाल (भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण) ने क्या लीला आरम्भ की। ३२ यह जगत एक सुन्दर वस्त्र है। फिर भी देखिए, जो सकल चराचर को व्याप्त करनेवाले हैं, जो माया के चक्र को चलानेवाले हैं, वे श्रीकृष्ण (इस वस्त्र के लिए मूल) तन्तु हैं। ३३ मनके नाना प्रकार के, और

सिंधुजीवनीं। परी उदक एकचि निर्धारें। ३४ कीं नाना घटीं एक दिनकर। कीं बहु मंदिरें एक अंबर। कीं एक सुवर्ण नाना अलंकार। तैसा व्यापक श्रीहरी। ३५ कीं नाना मातृकांचा उच्चार। परी त्यांत एकचि ॐकार। नाना घटांचे आकार। परी मृत्तिका एकचि। ३६ तैसा श्रीकृष्ण सर्वचित्त-चाळक। जो मनोबुद्धीचा प्रवर्तक। तेणें मांडिलें हो कौतुक। परम नाटकी श्रीहरी। ३७ बाहेर टाकावा बाळ। ऐसें बोलतां महाबळ। तों दह्यांचें मडकें सबळ। कपाळावरी आदळलें। ३८ बोलतो उत्तरें अमंगळें। म्हणोनि लाटणें आवेशलें। मुखामाजी उभेंचि शिरलें। कपटियाच्या तेधवां। ३९ ऐसें कौतुक गौळी पाहती। तंव घरांतून देव्हारे पाट धांवती। उरावरी धडधडां आदळती। नाहीं शक्ति पळावया। १४० पाटे वरवंटे मोडिती पाय। कपटिया तेथूनि पळों पाहे। बाजही आडवी उभी राहे। वाट नेदी दुर्जना। १४१ पाट चौक्या पाहारा अर्गळा। घण कुदळी कुऱ्हाडी

विचित्र होते हैं, फिर भी उन्हें एक ही धागे में पिरोया हुआ होता है। अथवा समुद्र के पानी में अनेक तरंगें होती हैं; परन्तु निश्चय ही पानी एक ही होता है। ३४ अथवा नाना घटों में एक ही सूर्य (प्रतिबिम्बित हुआ) होता है; अथवा घर अनेक होते हैं, परन्तु आकाश एक ही होता है; अथवा सुवर्ण एक ही होने पर भी उसके अनेक आभूषण (बनाये जाते) हैं। उसी प्रकार (चराचर पदार्थों के अनेक होने पर भी, उन सबको भगवान श्रीकृष्ण व्याप्त किये रहनेवाले होते हैं। ३५ अथवा उच्चारण तो नाना मात्राओं का होता है; फिर भी उन (सब) में एक ही ॐ-कार (ध्वनि व्याप्त किये हुए) है। नाना घटों के (नाना) आकार होते हैं; फिर भी उनमें मिट्टी एक ही होती है। ३६ उसी प्रकार जो श्रीकृष्ण सबके अन्तःकरण के चलानेवाले अर्थात प्रेरक हैं, जो (सबके) मन और बुद्धि के प्रवर्तक हैं, अहो, उन्होंने यह लीला आरम्भ की। श्रीहरि तो परम नाटक करनेवाले हैं। ३७ 'इस बालक को बाहर फेंक दो' —तब महाबल के ऐसा बोलते ही, दही का ठोस (कठिन) मटका उसके सिर से टकरा गया। ३८ यह तो अमंगल वचन बोल रहा था; अतः बेलन आवेश को प्राप्त हो गया और तब वह उस कपटी के मुख में सीधा (पूरा-पूरा) पैठ गया। ३९ गोप ऐसी लीला देख ही रहे थे कि तब घर में से देवघरे, पीढ़े दौड़े और उसकी छाती पर धड़धड़ाहट के साथ टकरा गये। उसमें भाग जाने के लिए शक्ति (ही शेष) न रही। १४० पीढ़ों, बट्टों ने (उस पर टकराते हुए) उसके पाँवों को तोड़ डाला। (जब) वह कपटी वहाँ से भागना चाहता था, तब खटिया भी (मार्ग में) आड़ी खड़ी रह गयी और उस दुर्जन को मार्ग नहीं दे रही थी। १४१ पीढ़ों, चौकियों, रंभों (सब्बरों), अर्गलों, घनों,

सबळा। गोंवऱ्यांसी जीव आला। पक्ष्यांसारिख्या धांवती। ४२ होती मुसळांचे मार। धोत्र फिटोनि गेलें समग्र। पंचांग फाटोन जाहलें चूर। जानवें गेलें तुटोनि। ४३ ढुंगणाचें धोत्र गळालें। नागवाचि कपटी पळे। पदार्थ तितुके धांवती बळें। मार देती दारुण। ४४ गौळी हांसती सकळ। आमच्या कृष्णासी ठेविला बोल। परी त्याचें फळ तात्काळ। प्राप्त जाहलें तयासी। ४५ गदगदां हांसती गौळिणी। अपवित्र बोलिला पापखाणी। जळो जळो त्याची वाणी। बरा झोडिला भगवंतें। ४६ इकडे कपटी नागवाचि पळत। पावला त्वरें मथुरेआंत। चळचळां कांपत रडत। कंसाजवळी पातला। ४७ कंसासी म्हणे तुझा अरी। वाढतो गोकुळाभीतरी। तो अनिवार सकळ धरित्री। निर्वैर करील वाटतें। ४८ थोर मार जो मज बैसला। पदार्थमात्रासी जीव आला। हे नव्हे मानवी कळा। तो अवतरला श्रीविष्णु। ४९ कंसासी म्हणे महाबळ। गोकुळीं वाढतो तुझा काळ। तो दिसतो जरी बाळ। परी नाकळे कृतांता। १५० कंसा मज वाटते पूर्ण।

कुदालों, ठोस कुल्हाड़ों, गोहरों में चैतन्य (उत्पन्न हो) आया और वे भी पक्षियों की भाँति दौड़ने—उड़ने लगे। ४२ उस पर मूसलों की मार पड़ने लगी। उसकी धोती पूरी-पूरी छूट गयी; पंचांग फटकर चूर-चूर (तार-तार) हो गया और जनेऊ भी टूट गया (टूटकर गिर पड़ा)। ४३ कटि की धोती छूट गयी; तो वह कपटी नंगा ही दौड़ता रहा। (फिर भी) उतने ही सब पदार्थ बलपूर्वक दौड़ते रहे और उस पर दारुण आघात करते रहे। ४४ (यह देखकर) समस्त गोप हँस रहे थे। (वे बोले—) हमारे कृष्ण को दोष दिया; परन्तु उसे उसका फल तत्काल प्राप्त हो गया है। ४५ गोप स्त्रियाँ ठहाका मारकर हँसने लगीं। (वे बोलीं—) इस पाप की खान ने अभद्र (अमंगल) कह दिया है। जल जाए—जल जाए इसकी वाणी। भगवान ने भली भाँति पीट लिया। ४६ इधर वह कपटी (दैत्य) नंगा ही दौड़ता रहा और शीघ्रता-पूर्वक मथुरा के अन्दर पहुँच गया। थर-थर काँपते हुए रोते-रोते वह कंस के पास पहुँच गया। ४७ वह कंस से बोला, 'आपका शत्रु गोकुल में बढ़ (पल) रहा है। लगता है, वह दुर्निवार बनकर समस्त धरती को निर्वैर (शत्रु-हीन) कर देगा। ४८ मुझपर जो भारी मार पड़ी, निर्जीव पदार्थ-मात्र में जो प्राण उत्पन्न हो आया (उससे लगता है,) यह कोई मानवीय रीति नहीं है। (इसके रूप में) श्रीविष्णु अवतरित हो गये हैं'। ४९ महाबल ने कंस से (फिर) कहा, 'आपका काल गोकुल में पल रहा है। यद्यपि वह बच्चा दिखायी दे रहा है, तथापि वह कृतान्त यम से भी वश में नहीं किया जा पाएगा। १५० हे कंस, मुझे पूरा-पूरा लग रहा है कि आपकी मौत निकट आ गयी है।' तब

कीं जवळी आल तुझें मरण। ऐकतां दचकलें मन। कंसरायाचें तेधवां। १५१ केसरीचा प्रताप ऐकोन। थरथरां कांपे वारण। कीं गरुडाचें ऐकोन स्तवन। उरग चित्तीं दचकती। ५२ ऐकोन सभाग्याची स्तुती। दुर्जन दचके परम चित्तीं। कीं वेदांतींच्या ऐकोन श्रुती। मतवादी भयभीत। ५३ तैसाच कंस दचकोन। म्हणे दिसतें वर्तमान कठिण। आतां वैरियासी शोधून। कोण मारील सत्वर। ५४ कीं व्याधि जों उद्भव न धरी। तों निर्मूळ करावा लौकरी। अग्नि आणि वैरी। धाकुटा म्हणों नये कीं। ५५ लघु म्हणूं नये दंदशूक। पुढें दुष्ट विघ्नकारक। तों पूतना येऊनि संमुख। पैज बोले कंसासी। ५६ क्षणामाजी तुझा वैरी। शोधूनि मारीन निर्धारीं। मी जाणें कपटकळाकुसरी। आज्ञा देईं मज आतां। ५७ कंस परम संतोषला। गौरवोनि निरोप दिधला। कपटस्वरूप ते वेळां। नटली रंभेसारखी। ५८ पायीं रुणझुणती पैंजण। नेत्रीं सोगयाचें अंजन। सर्व अळंकारीं नटली पूर्ण। परम पापीण पूतना। ५९ कंस म्हणे पूतने अवधारीं। गांवोगांवींचीं बाळकें मारीं। त्यांत सांपडेल माझा वैरी। तो तूं झडकरी वधीं कां। १६० आधीं

यह सुनते ही राजा कंस का मन चौंक उठा। १५१ सिंह के प्रताप को सुनकर हाथी थर-थर काँप उठता है; अथवा गरुड़ की प्रशंसा सुनकर साँप मन में चौंक उठते हैं। ५२ अथवा भाग्यवान की स्तुति सुनकर दुर्जनमन में बहुत चौंकते हैं, अथवा वेदान्त की श्रुतियाँ (उक्तियाँ) सुनकर (अन्य) मत-वादी (मतावलम्बी) भयभीत हो जाते हैं। ५३ उसी प्रकार चौंककर कंस बोला, 'स्थिति कठिन दिखायी देती है। (अतः) अब वैरी को खोजकर उसे झट से कौन मार सकेगा। ५४ अथवा व्याधि जब तक उद्भव को प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक ही उसका शीघ्र ही निर्मूलन करें। अग्नि और वैरी को नन्हा नहीं कहें। ५५ साँप को लघु नहीं कहें—वह तो आगे (चलकर) दुष्ट और विघ्नकारी (सिद्ध) हो सकता है'। तब सामने आकर पूतना कंस से शर्त बदती हुई बोली। ५६ 'मैं निश्चय ही आपके वैरी को क्षण में खोजकर मार डालूँगी। मैं कापट्य कला-कारीगरी जानती हूँ। (अतः) मुझे अब आज्ञा दीजिए'। ५७ (यह सुनकर, कंस परम सन्तुष्ट हो गया। उसने उसे गौरवान्वित करते हुए बिदा किया। उस समय वह कपट-स्वरूपा (नारी) रम्भा का-सा सिंगार सज गयी। ५८ उसके पाँवों में नूपुर झनझना रहे थे। उसने नेत्रों में सुरमा अंजन मला था। वह परम पापिनी पूतना समस्त आभूषणों से पूर्णतः सज गयी। ५९ तो कंस बोला, री पूतना, सुन लो! गाँव-गाँव के बच्चों को मार डालो। उनमें मेरा वैरी मिल जाएगा—तुम झट से उसका वध कर दो। १६० पूतना पहले ही परम चण्डालिनी अर्थात् दुष्ट थी। तिस

पूतना परम चांडाळी। त्यावरी कंसाची आज्ञा झाली। येरीनें तेचि हृदयीं धरिली। अतिप्रीतीनें तेधवां। १६१ आधींच शंख करावयाची हौस। त्यावरी पातला फाल्गुनमास। कीं राजाज्ञा झाली तस्करास। यथासुखें हिंडावया। ६२ आधींच जार दुराचारी। तो स्त्रीराज्यांत कारभारी। आधींच पैशुन्यदुष्ट अघोरी। त्यावरी नृपति पाठिराखा। ६३ कीं मदिरा पाजिली मर्कटाला। त्यांत भूतसंचारही जाहला। त्यामाजी वृश्चिकें दंश केला। तैसें जाहलें पूतनेसी। ६४ कीं मद्यपियानें देखिलें शिंदीवन। कीं वमन देखोनि धांवे श्वान। कीं काग क्षत देखोन। अतिसाक्षेपें उकरी पैं। ६५ तैसी राक्षसी ते अवसरीं। गांवोगांवींचीं बाळकें मारी। प्रवेशतां लोकमंदिरीं। न वारिती कोणीच। ६६ तीस लोक देखोन म्हणती। लक्ष्मीच आली कीं गृहाप्रती। बाळें मारी गुप्तगती। तें कोणास कळेना। ६७ ऐसी ते बाळकांची महामारी। प्रवेशली गोकुळामाझारी। स्तन मुखीं लावितांच झडकरी। बाळें प्राण टाकिती। ६८ महाविषें भरोनि स्तन।

पर उसे कंस की आज्ञा प्राप्त हो गयी। उसने तब उसी को अति प्रीति-पूर्वक हृदय में धारण कर लिया। १६१ किसी को पहले ही चीखने-चिल्लाने की हविस हो और तिस पर फागुन मास आ पहुँचा हो; अथवा किसी चोर को सुख से भ्रमण करने की आज्ञा प्राप्त हो गयी हो; अथवा पहले से ही कोई जार दुराचारी हो, तिस पर वह स्त्रियों के राज्य में प्रशासक बन गया हो, अथवा कोई पहले से खल-दुष्ट, अमंगल-कर्मा हो और तिस पर राजा उसका समर्थक-सहायक हो गया हो; अथवा किसी बन्दर (-से व्यक्ति) को मदिरा पिलायी हो, फिर इस (स्थिति) में उसमें भूत का संचरण हो गया हो, ऐसी स्थिति में उसे बिच्छू ने काट दिया हो, तो उसकी जैसी स्थिति हो जाएगी, पूतना के बारे में वैसे ही हो गया। ६२-६४ अथवा किसी मद्यपी ने (एक प्रकार के) जंगली खजूर (जिससे मादक पेय पदार्थ बनाते हैं) का वन देखा हो, अथवा वमन को देखकर जैसे कुत्ता दौड़ता है, अथवा घाव को देखते ही कौआ उसे बड़ी लगन से कुरेदने लगता है, (पूतना) राक्षसी (की स्थिति वैसी ही हो गयी और वह) उस समय गाँव-गाँव के बालकों को मार डालने लगी। (दूसरे) लोगों के घरों में प्रवेश करने पर उसे कोई भी नहीं रोक पाता था। ६५-६६ लोग उसे देखकर कहते, 'लक्ष्मी ही घर आ गयी है'; परन्तु यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि वह गुप्त गति (रीति) से बच्चों को मार डालती थी। ६७ ऐसी वह बालकों के लिए (मानो) महामारी (-सी, हैज़े-सी) गोकुल में प्रविष्ट हो गयी। (उसके द्वारा बालकों के) मुख में स्तन लगाते ही झट से बालक प्राण छोड़ते थे। ६८ महाविष से स्तन भरकर वह यशोदा के घर में प्रविष्ट हो

प्रवेशली यशोदेचें सदन। यशोदा म्हणे बाळकृष्ण। पहावया आली गोपी हे। ६९ पाळण्याजवळी आली पूतना। दृष्टीं अवलोकी राजीवनयना। ते बाळलीला देखोन मना। परम सुख वाटतें। १७० नीलवर्ण केश कुरळ। आकर्ण नेत्र विशाळ भाळ। दिव्य पिंपळपान सुढाळ। झगझगीत सतेज। १७१ कर्णीं कुंडलें तळपती। लघुदंत चौकींचे झळकती। सुहास्यवदन श्रीपती। कंठीं शोभती वाघनखें। ७२ पदक एकावळी मुक्ताहार। तेणें शोभला बाळ दिगंबर। वांकी बिंदलीं परिकर। तडित्प्राय झळकती। ७३ चिमणीं बोटें चिमणे हात। चिमण्या मुद्रिका लखलखित। चिमणीच कटी मेखळा झळकत। क्षुद्रघंटा किणकिणती। ७४ पायीं पैंजण वाळे वाजती। चरणांगुष्ठ धरिला हातीं। वदनीं घालूनि रमापती। चोखी प्रीतीकरूनिया। ७५ तो वैकुंठपती वरिष्ठ। कां मुखीं घातला चरणांगुष्ठ। तरी चरणीं गोडी आहे उत्कृष्ट। ऐसें भक्त बोलती। ७६ जे ते भक्त चरणीं रंगती। गोड म्हणोनि वाखाणिती। ते गोडी पहावया श्रीपती। जपत होता बहुत दिवस। ७७

गयी, तो उस (यशोदा) ने कहा (मान लिया) कि यह (कोई) गोपी बालकृष्ण को ही देखने आ गयी है। ६९ (तदनन्तर) पूतना पालने के पास आ गयी और अपनी आँखों से राजीव-नयन (कृष्ण) को देखने लगी। उसकी बाल-लीला को देखकर उसके मन को परम-सुख हो गया। १७० उसका वर्ण नीला था, केश घुँघराले थे, उसके नेत्र कानों तक (फैले हुए) अर्थात् विशाल थे, भाल-प्रदेश विशाल था। (बालों में मस्तक पर बँधा हुआ) पीपल-पर्ण (-से आकार का आभूषण) दिव्य, सुडौल तथा जगमगाता हुआ, तेजस्वी था। १७१ कानों में कुण्डल जगमगा रहे थे। छोटी-छोटी दँतियों का चौका झलक रहा था। श्रीपति श्रीकृष्ण सुहास्य-वदन थे। उनके गले में बाघ के (बँधे) नख शोभायमान थे। ७२ पदिक और इकलड़े मोतीहार से, वह दिगम्बर (नंगा) बालक शोभायमान था। सुन्दर बाँकें, हथ-साँकले बिजली-से जगमगा रहे थे। ७३ नन्ही-सी अँगुलियाँ, नन्हे-से हाथ थे। उनमें नन्ही (-नन्ही) जगमगाती हुई अँगूठियाँ थीं। नन्ही-सी ही कटि-मेखला (करधनी) दमक रही थी और उसमें बँधे घुँघरू रुनझुना रहे थे। ७४ पाँवों में पैंजने और झाँझन बज रहे थे। रमापति विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण ने पाँव के अँगूठे को हाथ से पकड़ लिया था और वह मुँह में डालकर वे प्रेम-पूर्वक चूस रहे थे। ७५ वे वैकुण्ठपति तो वरिष्ट हैं, तो फिर उन्होंने पाँव का अँगूठा मुँह में क्यों डाला ? तो भक्त ऐसा कहते हैं कि उनके चरणों में उत्तम मिठास है। ७६ जो भक्त, चरणों में रंग जाते हैं (अत्यधिक आनन्द में मग्न हो जाते हैं) और उन्हें मीठा कहते हुए उनकी सराहना करते हैं, उस मधुरता को देखने का श्रीपति बहुत दिन से यत्न कर रहे थे। ७७ गोकुल में स्पष्ट रूप से

तें गोकुळां फावलें स्पष्ट । म्हणवोनि चोखी चरणांगुष्ठ । कीं स्वचरणींचा महिमा वरिष्ठ । आबाळ लोक नेणती । ७८ जैसें पितयानें अमृतफळ आणिलें । ते बाळकाहातीं दिधलें । परी त्याची गोडी त्यासी न कळे । वदनीं न घाली सर्वथा । ७९ तेंच फळ पिता चोखितां । बाळ झोंबोनि लागे हाता । तैसा हा जगत्पितयाचा पिता । गोडी आधीं सेवीत । १८० गोडीनें चरण चोखी श्रीपती । यालागीं भक्तांच्या मिठ्या पडती । असो पालखा-जवळी निश्चितीं । पूतना ते उभी असे । १८१ पूतना उचली वनमाळी । स्तन घातला मुखकमळीं । परम आवडीनें ते वेळीं । स्तनपान करीतसे । ८२ हातीं धरोनियां स्तन । मुखीं घाली जगज्जीवन । पूतनेच्या खांद्यावरी जाण । एक हात ठेविला । ८३ विष शोषिलें संपूर्ण । दुग्धही गेलें सरोन । सर्वांगींच्या शिरा ओढून । तुंबडी एकचि लागली । ८४ पूतनेसी नवल वाटलें । म्हणे विष शोषून बाळ वांचलें । सर्वांग तिचें कांपों लागलें । सोडीं म्हणे श्रीकृष्णा । ८५ गोपाळा गोविंदा श्रीपती । सोडीं सोडीं कां मजप्रती । मी परतोनि न यें मागुती । या गोकुळामाजीं पैं । ८६ सांवळे

उसका अवसर प्राप्त हो गया । इसलिए वे अपने चरण का अँगूठा चूसने लगे । अथवा उनके चरणों की महत्तम महिमा को बच्चों से लेकर बूढ़ों तक लोग नहीं जानते । ७८ अथवा पिता अमृत-सा मधुर फल लाये हों और उन्होंने वह (फल) बालक के हाथ में दिया हो, परन्तु उसकी समझ में उस (फल) की मधुरता न आयी हो, तो वह उसे मुँह में बिलकुल नहीं डालता । ७९ (परन्तु) उसी फल को (जब) पिता द्वारा चूसने लगते ही बालक उसके हाथ से लिपट जाता है, उसी प्रकार ये जगत्पिता (ब्रह्मा) के पिता (भगवान विष्णु) उसकी मधुरता का सेवन पहले ही कर रहे थे । १८० श्रीपति रुचि के साथ अपने चरण (के अँगूठे) को चूसते हैं, इसलिए भक्त उसे गले लगाते हैं । अस्तु, वह पूतना निश्चय-पूर्वक पालने के समीप खड़ी रह गयी । १८१ (फिर) पूतना ने वनमाली कृष्ण को उठा लिया और उनके मुख-कमल में अपने स्तन को डाल दिया । तो वे परम रुचि के साथ उस समय स्तन-पान करने लगे । ८२ जगज्जीवन कृष्ण ने हाथ से पकड़ कर स्तन मुँह में डाल दिया और समझ लीजिए कि एक हाथ पूतना के कंधे पर रखा । ८३ उन्होंने सम्पूर्ण विष सोख लिया । दूध भी समाप्त हो गया । (फिर) उसके समस्त शरीर की नसें खिंच गयीं और उसमें अनोखी सींगी(-सी)लग गयी । ८४ (इससे) पूतना को अचरज अनुभव हो गया । उसने कहा (सोचा)—विष चूसने पर भी यह बच्चा बच गया है । (तब) उसका सारा शरीर काँपने लगा, तो वह बोली, ' अरे श्रीकृष्ण, छोड़ दे । ८५ रे गोपाल, रे गोविन्द, रे श्रीपति, मुझे छोड़ दे, छोड़ दे । मैं इस गोकुल में फिर से लौटकर

गोपाळे माझे आई। सोडीं सोडीं कृष्णे कान्हाई। म्हणोनि मुखाकडे ते समयीं। पूतना विलोकी सद्गद। ८७ सोडीं वेधका वनमाळी। तुझी माता कैसी वांचली। धन्य ती यशोदा वेल्हाळी। स्तनपान करवी तूंतें। ८८ माझा शोषिसी कां जीवप्राण। सोडीं न यें मी आतां परतोन। खालीं पडे मूर्च्छा येऊन। तरी जगज्जीवन सोडीना। ८९ सकळ गात्रें शोषिलीं। पूतना अवलोकी वनमाळी। तंव ते मूर्ति सांवळी। हृदयावरी विराजे। १९० अवलोकित कृष्णाचें वदन। हृदयीं बिंबलें तेंच ध्यान। मुखीं करी हरिस्मरण। कृष्णा गोविंदा माधवा। १९१ जय जय मुकुंदा मुरारी। पुराणपुरुषा श्रीहरी। माझा भवपाश निर्धारीं। छेदीं आतां विश्वेशा। ९२ जो सजलजलदवर्ण। वदन उदार आकर्णनयन। अवलोकितां सोडिला प्राण। पूतनेनें तेधवां। ९३ स्थूल लिंग कारण महाकारण। हरीनें शोषिलें न

नहीं आऊँगी। ८६ अरे साँवले गोपाल, मेरी मैया, हे कृष्ण, हे कन्हैया, छोड़ दे, छोड़ दे'। ऐसा कहते हुए पूतना अति गदगद होकर उस समय उनके मुख की ओर देखने लगी। ८७ 'रे (मनो-) वेधक (मनमोहक) वनमाली, छोड़ दे। तेरी माता कैसे बच गयी ? वह प्यारी यशोदा धन्य है, जो तुझे स्तन-पान कराती है। ८८ मेरे जीव-प्राणों को क्यों सोख रहा है ? छोड़ दे। मैं अब लौटकर नहीं आऊँगी।' (ऐसा कहते हुए) मूर्च्छा आने से वह नीचे गिर पड़ी; फिर भी जगज्जीवन श्रीकृष्ण उसे नहीं छोड़ रहे थे। ८९ उन्होंने उसके समस्त गात्रों (के रक्त) को सोख लिया। (फिर जब) पूतना ने वनमाली को देखा तो (उसे दिखायी दिया कि) वह साँवली मूर्ति उसके हृदय पर विराजमान है। १९० वह कृष्ण के मुख का अवलोकन कर रही थी, तो उनका वही रूप उसके हृदय में अंकित हो गया। (फिर) वह मुख से श्रीहरि का स्मरण (जाप) करने लगी— हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे माधव, हे मुकुन्द, हे मुरारि, जय हो, जय हो। हे पुराण-पुरुष, हे श्रीहरि, हे विश्वेश, मेरे सांसारिक पाश को निश्चय ही अब काट दे। ९१-९२ तब जो जल-युक्त मेघ के-से वर्णवाले अर्थात श्यामवर्ण हैं, जिनका मुख सरल भाव से युक्त है, जिनके नेत्र आकर्ण (कानों तक फैले हुए अर्थात विशाल) हैं, उन्हें देखते हुए पूतना ने प्राण त्यज दिये। ९३ श्रीहरि ने उसके स्थूल, लिंग, कारण और महाकारण नामक चारों प्रकार के शरीरों[१] को

१ योगशास्त्र के अनुसार शरीर के चार भेद माने गये हैं :—

1 स्थूल—वस्तुमात्र का पंचमहाभूतात्मक शरीर। 2 सूक्ष्म अथवा लिंग—वासनात्मक शरीर जो मन, बुद्धि, दस इन्द्रियों, तथा पाँच प्राणों का अर्थात् कुल सत्रह तत्त्वों का बना हुआ माना जाता है। 3 कारण—अज्ञान या अविद्या पर अधिष्ठित शरीर। 4 महाकारण-विशुद्ध ज्ञानमय देह।

लागतां क्षण। दश इंद्रियें पंच प्राण। शोषी अंतःकरणचतुष्टयासी। ९४ अवस्था भोग भोगून स्थानें। संपूर्ण शोषिलीं जगज्जीवनें। पूतनेचें भाग्य वानावें कवणें। केली धन्य भगवंतें। ९५ गेला पूतनेचा प्राण। तरी न सोडी जगज्जीवन। यशोदा पाहे घरांत येऊन। तों विशाळ असुरी पसरली। ९६ महाभयानक विक्राळ वदन। दंत दाढा भ्यासुर पूर्ण। जिव्हा लांब सिंदूरवर्ण। लळलळे मुखाबाहेरी। ९७ भाळीं चर्चिला शेंदूर। बाबरझोटी भयंकर। कीं हे ताटिकाच निर्धार। कृष्णावतारीं जन्मली हे। ९८ नरशिरांच्या रुळती माळा। यशोदेनें देखिली ते वेळां। हांक फोडोनि बोलावी सकळां। धांवा धांवा म्हणतसे। ९९ गौळी पातले समस्त।

क्षण न लगते सोख लिया। उन्होंने दसों इन्द्रियों[1] और पाँचों प्राणों को[2] चारों अन्तःकरणों[3] को सोख लिया। ९४ जगज्जीवन श्रीकृष्ण ने चारों अवस्थाओं[4] भोगों[5] और स्थानों[6] का भोग करके सम्पूर्ण रूप से सोख लिया। (ऐसी) उस पूतना के भाग्य की सराहना किसके द्वारा हो सकती है? भगवान ने उसे धन्य (चरितार्थ) बना दिया। ९५ पूतना के प्राण (निकल) गये, फिर भी जगज्जीवन (श्रीकृष्ण) उसे नहीं छोड़ रहे थे। (जब) यशोदा ने घर में आकर देखा तो (दिखायी दिया कि) एक विशाल (-देही) असुरी (की देह) फैली हुई (पौढ़ी हुई) है। ९६ उसका मुँह महाभयानक तथा विकराल था। उसके दाँत और डाढ़ें पूर्णतः भयावह थीं और सिन्दूरवर्ण की (अर्थात् लाल-लाल) लम्बी जिह्वा मुँह के बाहर (आकर) लपलपा रही थी। ९७ उसके भाल पर सिंदूर मला हुआ था; वह भयावह झोंटों से युक्त थी। अथवा (जान पड़ता था कि) यह निश्चय ही ताड़का[7] ही श्रीकृष्ण के (अवतार-) काल में जन्म को प्राप्त हुई हो। ९८ (उसके गले में) नर-मस्तकों की मालाएँ (लटकती हुई) शोभायमान थीं। उस समय (जब) यशोदा ने उसे देखा, तो वह चीखते-चिल्लाते हुए सबको बुलाने लगी। वह कह रही थी— 'दौड़ो, दौड़ो'। ९९ (उसे

---

१ दस इन्द्रियाँ—हाथ, पाँव, वाणी, उपस्थ, गुद (नामक पाँच कर्मेन्द्रियाँ), कान, त्वचा, आँखें, जिह्वा, नाक (नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ)—कुल दस।

२ पाँच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। ३ चार अन्तःकरणः—मन, बुद्धि, अहंकार और महान्। ४ चार अवस्थाएँ—जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया। ५ चार भोग—स्थूल, प्रविविक्त, वासनारूप आनन्द, आनन्दावभास। ६ चार स्थान—नेत्र, कण्ठ, हृदय, मूर्धा।

७ ताड़का (त्राटिका)—मूलतः यक्षिणी होने के कारण ताड़का नामक यह राक्षसी मनचाहा रूप धारण कर सकती थी। उसमें सहस्र हाथियों का बल था। ब्रह्मा के वर से सुकेतु नामक यक्ष के पुत्री के रूप में यह उत्पन्न थी और सुन्द से उसका विवाह हुआ था। मारीच और सुबाहु उसके पुत्र थे। अपने पुत्र सुबाहु को लेकर वह विश्वामित्र के यज्ञ को ध्वस्त किया करती थी। अन्त में भगवान राम ने इसका वध किया।

थरथरां यशोदा कांपत। महाभयानक प्रेत। राक्षसीचें पसरलें। २०० गौळी पाहती सकळ। तों तिच्या वक्षःस्थळीं घननीळ। सच्चिदानंदघन निर्मळ। स्तन मुखीं धरिलासे। २०१ गौळियानें कृष्ण उचलिला। यशोदेपाशीं दिधला। अश्रू वाहती मातेच्या डोळां। हृदयीं धरोनि स्फुंदत। २ मोठा चुकला गे अनर्थ। कैंची राक्षसी आली घरांत। मागुती कृष्णवदन पाहात। अश्रू पडती हरीवरी। ३ भ्याला असेल गे श्रीपती। म्हणोनि आपुले पायींची माती। कृष्णाचे ललाटीं लाविती। नवल भक्ति तयांची। ४ एक करिती निंबलोण। एकीं कृष्णाचें पाहोनि वदन। म्हणती जाऊं ओंवाळून। तुजवरोन डोळसा। ५ भालदोरी करूनि गोरटी। घालिती हरीच्या निजकंठीं। दृढ बांधिती रिठें गांठीं। होईल दृष्टि म्हणवोनि। ६ श्रीकृष्णकथा प्रयाग थोर। भाव माघमासी सुंदर। येथें माघस्नान भक्तनर। त्रिकाळ करिती अनुतापें। ७ कीं हा हरिविजय ग्रंथराशी। हें आनंदवन वाराणसी। येथें जे होती क्षेत्रवासी। ते कृष्णासी परम प्रिय। ८ जो

सुनकर) समस्त गोप आ पहुँचे, तो (उन्होंने देखा कि) यशोदा थरथर काँप रही थी और एक राक्षसी का महाभयानक प्रेत फैला (पौढ़ा) हुआ था। २०० (जब) उन समस्त गोपों ने देखा, तो उसके वक्षःस्थल पर घन-नील निर्मल सच्चिदानन्द-घन (श्रीकृष्ण) उसके स्तन को मुँह में पकड़े हुए थे। २०१ (फिर) एक गोप ने श्रीकृष्ण को (वहाँ से) उठा लिया और यशोदा को दिया। तब उस माता की आँखों से आँसू बह रहे थे। उस (बालक) को हृदय से लगाकर वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। २ (वह सोचने लगी—) अरी, कैसा बड़ा अनर्थ टल गया। कैसी राक्षसी घर में आ गयी! फिर वह कृष्ण के मुँह की ओर देखने लगी। उसके आँसू श्रीहरि पर गिर रहे थे। ३ यह सोचकर कि श्रीकृष्ण भयभीत हुए होंगे, उन्होंने (गोपियों ने) अपने पैरों (तले) की मिट्टी श्रीकृष्ण के ललाट पर लगा दी। उनकी यह भक्ति आश्चर्यकारी है। ४ कुछ एक ने राई-नोन उतार लिया, तो कुछ एक ने कृष्ण के मुँह को देखकर कहा, 'रे सुन्दर आँखों वाले, हम तुझ पर निछावर हो रही हैं'। ५ कुछ सुन्दर गोपियों ने डोरा अभिमंत्रित करके श्रीहरि के गले में बाँध दिया। तो कुछ एक ने यह सोचकर कि उसे नज़र लग जाएगी, गाँठ में दृढ़तापूर्वक रीठा बाँध लिया। ६

श्रीकृष्ण की कथा (मानो) महान प्रयाग (-सा तीर्थस्थल) है। (भक्ति-) भाव रूपी सुन्दर माघ मास है। वहाँ भक्त जन अनुताप-पूर्वक (प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकाल) तीनों समय माघ-स्नान किया करते हैं। ७ अथवा यह '(श्री) हरि-विजय' नामक बृहद्-ग्रन्थ (मानो) आनन्दवन-स्वरूपा वाराणसी है। यहाँ जो क्षेत्र-वासी

भीमातीरविहार। श्रीब्रह्मानंद जगदुद्धार। जो श्रीधरवरद उदार। त्याचें चरित्र परिसा आतां। ९ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंश-भागवत। चतुर श्रोते परिसोत। चतुर्थाध्याय गोड हा। २१०

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

हो जाते हैं, अर्थात इस क्षेत्र में जो निवास करते हैं, वे श्रीकृष्ण को परम-प्रिय हो जाते हैं। ८

अब जो भीमा नदी के तट पर विहार करनेवाले हैं, जो श्रीब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप ब्रह्म) हैं, जगत के उद्धार-कर्ता हैं, जो कवि श्रीधर के लिए उदार-चरित वर-दाता हैं, उनका चरित्र सुन लीजिए। ९

॥ इति ॥ 'श्रीहरि-विजय' नामक यह ग्रन्थ (श्री) हरिवंश और (श्रीमद्) भागवत (पुराण) से सम्मत है। उसके इस मधुर चौथे अध्याय का चतुर श्रोता श्रवण करें। २१०

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—५

कृष्ण द्वारा शकटासुर और तृणावर्त का संहार और कृष्ण की बाललीला

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय जगदंकुरकंदा। सत्यज्ञाना श्रीब्रह्मानंदा। सच्चिदानंदमूर्ति अभेदा। जगद्वंद्या श्रीहरे। १ जय जय गलितभेद अखिला। परमपुरुषा अतिनिर्मळा। अनंतकोटिब्रह्मांडपाळा। तुझी लीला अगम्य। २ नमो अनंगदहनप्रिया अनंगा। सकलांगांगचालका श्रीरंगा। निर्विकारा निर्द्वंद्वा अभंगा। अक्षय अव्यंगा जगद्गुरो। ३ नमो महामायाआदिकारणा।

श्रीगणेशाय नमः। हे कन्द (अर्थात् बीज-स्वरूप ब्रह्म) जिससे जगत (रूपी इस प्रचण्ड वृक्ष) का अंकुर फूटा है, हे सत्य और ज्ञान (-स्वरूप), हे श्रीब्रह्मानन्द (अर्थात् गुरु ब्रह्मानन्द के रूप में उपस्थित आनन्द-स्वरूप ब्रह्म), हे सच्चिदानन्द की मूर्ति (सत, चित और आनन्द के मूर्त रूप, हे अभेद (एकमेव अद्वय), हे जगद्वन्द्य श्रीहरि, (आपकी जय हो, जय हो। १ हे अखिल ब्रह्म जिसमें (सब प्रकार के) भेद नष्ट हैं (अर्थात् जो अद्वैत है), हे परम पुरुष, हे अति निर्मल, हे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के पालक, (आपकी) जय हो, जय हो। आपकी लीला अगम्य है। २ हे अनंग-दहन (कामदेव को जला डालनेवाले शिवजी) के प्रिय, हे अनंग (निराकार, अमूर्त), हे समस्त (जगत के) अंगों का संचालन करनेवाले,

जय वेदनिलया वेदरक्षणा। अविनाश तूं वैकुंठराणा। विष पिऊनि अक्षय।४ चौथा अध्याय संपतां तेथें। पूतना शोषिली जगन्नाथें। यशोदा कडे घेऊनि कृष्णातें। सद्गद जाहली सप्रेम।५ म्हणे थोर अरिष्ट टळलें। भगवंतें बाळ वांचविलें। माझें पूर्वपुण्य फळासी आलें। विघ्न टळलें तरीच हें।६ नंद तेव्हां नव्हता गोकुळीं। घेऊनि संगें श्रेष्ठ श्रेष्ठ गौळी। राज्यद्रव्य द्यावया ते वेळीं। मथुरेसी गेला होता तो।७ असो पूतनेचें प्रेत पडिलें। असंभाव्य कोणासही न ढळे। गौळी बहुत मिळाले। परी न उचले कोणासी।८ विशाळ प्रेत घोर थोर। न निघे मंदिराबाहेर। मग आणूनि तीक्ष्ण कुठार। खंडें केलीं तियेचीं।९ वृक्षशाखा तोडिती बळें। तैसे हस्तचरण केले वेगळे। गांवाबाहेर सरण रचिलें। बहुत काष्ठें आणूनि।१० चेतविला वैश्वानर। माजी घातलें प्रेत थोर। अग्निशिखा प्रचंड तीव्र। अंबर कवळूं धांवती।११ गौळी पाहती ते वेळां। अग्निसंगें सुवास सुटला।

हे श्रीरंग, हे निर्विकार, हे निर्द्वन्द्व, हे अभंग, हे अक्षय, हे अव्यंग (दोष-रहित), हे जगद्गुरु, आपको नमस्कार है। ३ हे आदिमाया से युक्त (विश्व के) आदि-कारण (मूल बीज-स्वरूप ब्रह्म), आपको नमस्कार है। हे वेदों के निलय (उत्पत्ति तथा निवास-स्थान), हे वेद-रक्षक, (आपकी) जय हो। हे वैकुण्ठ के राजा, आप अविनाशी हैं, (इसलिए पूतना राक्षसी के स्तन में से) विष पीकर (भी) आप अक्षय (सिद्ध हो गये) हैं। ४ चौथे अध्याय के समाप्त होते-होते वहाँ (उसमें यह कहा गया कि) जगन्नाथ श्रीकृष्ण ने पूतना (के मानो प्राणों) को सोख डाला; (और तदनन्तर) यशोदा कृष्ण को गोद में उठा लेकर प्रेम से अति गदगद हो उठी। ५ वह बोली, 'बड़ा संकट टल गया; भगवान ने इस बच्चे को बचा लिया। मेरा पूर्व (-जन्म में किया हुआ) पुण्य फल को प्राप्त हो गया है; तो ही यह विघ्न टल गया। ६ तब नन्द गोकुल में नहीं थे। उस समय वे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ ग्वालों को साथ में लेकर राज्य-द्रव्य (कर, लगान) देने के लिए मथुरा गया हुए थे। ७ अस्तु। पूतना का शव पड़ा हुआ था। वह अति प्रचण्ड शव किसी भी द्वारा हिलाया (तक) नहीं जा रहा था। बहुत गोप इकट्ठा हो गये; फिर भी वह किसी से (भी) उठाया नहीं जा रहा था। ८ वह प्रेत विशाल, अति प्रचण्ड था। वह घर के बाहर नहीं निकल रहा था (नहीं निकाला जा रहा था)। तब तीक्ष्ण (पैनी धारवाली) कुल्हाड़ी लाकर उन्होंने उसके टुकड़े (-टुकड़े) कर डाले। ९ जिस प्रकार वृक्ष की शाखाओं को बल-पूर्वक काटते हैं, उसी प्रकार उन्होंने (पूतना के) हाथ और पाँव (काटकर) अलग-अलग कर दिये। (फिर) बहुत लकड़ियाँ लाकर (उन्होंने) गाँव के बाहर चिता रच दी। १० (तदनन्तर) उन्होंनें आग जला दी (और) उसके अन्दर उस प्रेत को रख दिया। आग की

जनप्राणदेवता सकळा। तटस्थ जाहल्या सुवासें। १२ येवढा सुवास अद्भुत। कासयाचा असंभावित। तरी पूतनेच्या हृदयीं जगन्नाथ। क्रीडला अतिप्रीतीनें। १३ हरि सच्चिदानंदतनु। जो मायातीत निर्गुण अतनु। जो निर्विकार पुरातनु। सकळ तनूंचा साक्षी पैं। १४ जो अयोनिसंभव श्रीहरी। जगन्निवास लीलावतारी। तो पूतनेच्या हृदयमंदिरीं। अंतर्बाह्य पूर्ण भरला। १५ म्हणोनि अग्निसंगें सुवास येत। गोकुळीं जन जाहले तटस्थ। नंद आला अकस्मात। मथुरेहूनि ते वेळां। १६ लोकीं वर्तमान सांगितलें। बाळ पूर्वभाग्यें वांचलें। नंद आला ते वेळे। सकळ गौळियांसमवेत। १७ तों यशोदा बैसली कृष्ण घेऊन। सद्गदकंठ सजलनयन। नंद जवळी गेला धांवोन। हरीस उचलोन आलिंगी। १८ वदन सर्वानंदसदन। नंद पाहे अवलोकून। म्हणे विघ्न चुकलें दारुण। उत्साह पूर्ण मांडिला। १९ मंडप द्वारीं उभवोन। मेळवून सकळ ब्राह्मण। गोभूहिरण्यअन्नदान। उत्साह

प्रचण्ड और प्रखर ज्वालाएँ (मानो) आकाश को लपेटने के लिए दौड़ रही थीं। ११ उस समय उन गोपों ने देखा कि अग्नि के (प्रज्वलित होने के) साथ ही सुगन्ध निकलने लगी और समस्त लोगों की नासिकाओं की अधिष्ठात्री देवियाँ उस सुगन्ध से (अघाते हुए) चकित हो गयीं। १२ इतनी यह अद्भुत तथा असीम सुगन्ध किसकी हो सकती है ? तो (कहा गया है कि) पूतना के हृदय-स्थल पर जगन्नाथ श्रीकृष्ण बड़े प्रेम से क्रीड़ा कर रहे थे। १३ हरि अर्थात् श्रीकृष्ण (वे) शरीरधारी सच्चिदानन्द (परमात्मा) हैं, जो माया के परे हैं, जो निर्गुण तथा अशरीरी (निराकार) हैं, जो निर्विकार हैं, पुरातन हैं, जो समस्त देहों (के धारियों) के लिए साक्षी-स्वरूप हैं। १४ जो श्रीहरि अयोनि-सम्भव (जो किसी भी स्त्री की योनि से जन्म को प्राप्त नहीं हुए हैं, अर्थात स्वयंभू) हैं, जगन्निवास तथा लीलावतारी हैं, वे पूतना के हृदयरूपी मन्दिर में अन्तर्बाह्य पूर्ण (रूप से) समाये हुए थे। १५ इसलिए उस (चिता की) आग के साथ सुगन्ध निकल रही थी। (यह देखकर) गोकुल में लोग चकित हो गये। अकस्मात उस समय नन्द मथुरा से (लौट) आ गये। १६ तो लोगों ने उन्हें समाचार बता दिया। (और कहा)— 'यह बच्चा पूर्व भाग्य से बच गया है'। उस समय (जब) नन्द समस्त गोपों सहित आ गये, तब यशोदा कृष्ण को लिये हुए बैठी थी। उनका कण्ठ गदगद हो गया था और नयन सजल हो गये थे। (तब) नन्द दौड़ते हुए (उसके) पास गये और उन्होंने हरि को उठाकर गले लगा लिया। १७-१८ उनके समस्त आनन्दों के सदन-स्वरूप मुख को नन्द ने ध्यान से देखा और कहा, 'दारुण विघ्न टल गया'। (तदनन्तर) उन्होंने पूर्ण रूप से (आनन्द-) उत्सव आरम्भ किया। १९ द्वार पर (आँगन में) मण्डप छवाकर नन्द ने समस्त

संपूर्ण नंद करी। २० नंदास कैसें वाटलें। कीं जहाज बुडतां कडे लागलें। कीं अमृतमेघ वर्षले। आपणावरी निजभाग्यें। २१ मरणकाळीं सुधारस जोडला। कीं आनंदाचा ध्वज उभारिला। नंद ब्रह्मानंदें धाला। तो सोहळा न वर्णवे। २२ कळलें कंसास वर्तमान। पूतना पावली मोक्षसाधन। दचकलें कंसाचें मन। भयेंकरूनि व्यापिला। २३ मनीं म्हणे काय करूं विचार। वैरी होतो हळू हळू थोर। पेटत चालिला वैश्वानर। मग नाटोपे विझवितां। २४ वाटे क्षयरोग लागला। काळसर्प गिळितो मला। आयुष्यवृक्ष कडाडिला। उन्मळोनि पडे आतां। २५ वाटे महाविषें अंग करपलें। गमे काळें बोलावूं धाडिलें। माझ्या बळसिंधूचें जळ शोषिलें। निस्तेज झालें सर्वांग। २६ असो गोकुळीं नंदमंदिरीं। हरि निजविला माजघरीं। तो कलथला सव्य अंगावरी। आरंभ करी रांगावया। २७ एका अंगावरी कलथला। नंदें उत्साह थोर केला। वस्त्रें भूषणें द्विजकुळा। वांटितां जाहला नंद पैं। २८ ऐके दिवशीं प्रातःकाळीं। सूर्यदर्शन करविलें

ब्राह्मणों को बुलाते हुए गौएँ, भूमि, सोना और अन्न दान दिया और उत्सव को पूर्णरूप से सम्पन्न किया। २० यह नन्द को कैसे जान पड़ा? (मानो) डूबते (-डूबते) नौका तीर पर लग गयी हो, अथवा हमारे भाग्य से हम पर अमृत के मेघ बरस गये हों, अथवा मृत्यु के समय अमृत-रस मिल गया हो, अथवा आनन्द का ध्वज फहरा दिया हो। (इससे) नन्द ब्रह्मानन्द (की प्राप्ति) से तृप्त हो गया। उस आनन्दोत्सव का वर्णन नहीं किया जा सकता। २१-२२ कंस को यह समाचार विदित हो गया कि पूतना मोक्ष-सिद्धि को प्राप्त हो गयी; तो उस (कंस) का मन चौंक उठा और वह भय से व्याप्त हो गया। २३ उसने मन में कहा (सोचा)— अब मैं क्या विचार (उपाय आयोजित) करूँ। बैरी धीरे-धीरे बड़ा हो रहा है; आग सुलग रही है, फिर वह बुझाते न रुकेगी (बुझेगी, काबू में आएगी)। २४ (उसे) जान पड़ा— मुझे क्षयरोग ही हो गया है, (अथवा) मुझे काल-सर्प निगल रहा है, आयु रूपी वृक्ष कड़ाके के साथ टूट रहा है और वह अब उखड़कर गिर जाएगा। २५ (उसे) लग रहा था, महाविष से अंग झुलस गया है। जान पड़ा, (मुझे) काल (-देवता) ने बुलावा भेजा है; मेरे बल-सागर का जल सोख लिया गया है। (इससे) उसका समस्त शरीर निस्तेज हो गया। २६ अस्तु। गोकुल में नन्द के घर मध्यभाग में हरि को सुला दिया। (कुछ दिन पश्चात्) वह दायीं करवट मुड़ने लगा और (यथाकाल) उसने घुटनों के बल चलना आरम्भ किया। २७ उसने (जब पहले पहल) एक करवट बदली, तो नन्द ने (उसके निमित्त) बड़ा आनन्दोत्सव सम्पन्न कर लिया और उन्होंने ब्राह्मण-समुदाय को वस्त्र और आभूषण वितरित किए। २८ एक दिन (उन्होंने) सवेरे वनमाली श्रीकृष्ण

वनमाळीं। अंगणीं निजविला ते वेळीं। मायादेवीनें प्रीतीनें। २९ चिमणांच घातला तल्पक। वरी पहुडविला वैकुंठनायक। उदरावरी सुरेख। वस्त्र झांकी यशोदा। ३० जगाचें कवच जगज्जीवन। माया त्यासी घाली पांघरूण। ऐसा कृष्ण आंगणीं निजवून। माया गेली घरांत। ३१ नंदही गेला बाहेरी। आंगणीं एकलाच श्रीहरी। तों शकटासुर दुराचारी। कंस तया पाठवीत। ३२ कंसासी म्हणे शकटासुर। मी तुझा शत्रु वधीन साचार। मी गाडा होऊनि दुर्धर। जाईन नंदआंगणीं। ३३ कृष्ण आंगणीं क्रीडतां। वरी लोटेन अवचितां। कंसें ऐसें ऐकतां। गौरविला दुरात्मा। ३४ तो आंगणीं गुप्त रूपें येऊनी। जपत होता पापखाणी। एकांत देखोनि ते क्षणीं। कृष्णावरी लोटला। ३५ सरसावोनि बळें सवेग। रगडूं पाहे हरीचें अंग। जवळी येतां श्रीरंग। चरण झाडी अवलीळा। ३६ नगमस्तकीं पडतां वज्र। चूर होवोनि जाय समग्र। तैसा चरणघातें शकटासुर। पिष्ट केला हरीनें। ३७ लागतां हरीचा चरणप्रहार। प्राण

को सूर्य-दर्शन कराया। उस समय मायादेवी ने प्रीति-पूर्वक उसे आँगन में सुला दिया (लिटा दिया)। २९ उसने नन्हा-सा ही पलंग डाल दिया और उस पर वैकुण्ठ-नायक (भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण) को पौढ़ा दिया। (फिर) यशोदा ने उसके पेट पर सुन्दर वस्त्र बिछा (फैला) दिया। ३० जगज्जीवन (-स्वरूप श्रीकृष्ण) जगत के लिए कवच (-स्वरूप) हैं। माया (-स्वरूपा) यशोदा ने उनपर ओढ़ावन डाल दिया। ऐसे उन कृष्ण को आँगन में सुलाकर माया (-स्वरूपा यशोदा) घर के अन्दर चली गयी। ३१ नन्द भी बाहर चले गये (और इधर) आँगन में श्रीहरि अकेले ही (सोये हुए) थे। तब कंस ने दुराचारी शकटासुर को भेज दिया। ३२ (जाने से पहले) शकटासुर ने कंस से कहा, 'मैं सचमुच आपके शत्रु का वध करूँगा। मैं दुर्धर गाड़ा (छकड़ा, शकट, बड़ी गाड़ी) बनकर नन्द के आँगन में जाऊँगा। ३३ आँगन में कृष्ण के खेलते रहने पर मैं अचानक उसपर लुढ़क जाऊँगा।' ऐसा सुनने पर कंस ने उस दुरात्मा का गौरव किया। ३४ गुप्त रूप से आँगन में आकर वह पाप की खान (-स्वरूप शकटासुर) घात लगाये बैठा था। एकान्त देखकर वह उस क्षण कृष्ण पर लुढ़क पड़ा। ३५ बल-पूर्वक तथा वेग के साथ (आगे) लपककर वह हरि के शरीर को रगड़ना चाहता था (रगड़ डालने की ताक में था)। (परन्तु) श्रीरंग ने उसके पास आते ही लीलया पाँव झटके (उछाले) तो जिस प्रकार पर्वत-शिखर पर वज्र के गिरने से वह पूरा-पूरा चूरचूर हो जाता है, उसी प्रकार हरि ने शकटासुर को अपने पाँव के आघात से पीस डाला। ३६-३७ हरि के चरण-प्रहार के लगते ही शकटासुर ने प्राण छोड़ दिये। (इस प्रकार) भगवान (श्रीहरि) ने अपने चरण के

सोडी शकटासुर । उद्धरिला दैत्य दुराचार । चरणस्पर्शें भगवंतें । ३८ पूर्वीं केला अहल्योद्धार । आतां चरणीं उद्धरिला शकटासुर । गाड्याचा झाला चूर । तों माया बाहेर पातली । ३९ नंद आला बाहेरून । तों गाड्याचें झालेंसें चूर्ण । मिळाले सकळ गौळीजन । आश्चर्य करिती तेधवां । ४० म्हणती कैंचा गाडा कोणें आणिला । बाळासमीप चूर्ण जाहला । जरी असता वरी लोटला । तरी उरी कांहीं न उरती । ४१ नंद म्हणे यशोदे सुंदरी । विघ्नें येतात कृष्णावरी । तूं यास न विसंबे अहोरात्रीं । हृदयीं धरीं सर्वदा । ४२ आसनीं शयनीं भोजनीं । विसंबूं नको चक्रपाणी । जागृतीं सुषुप्तीं स्वप्नीं । विसरूं नको हरीतें । ४३ दळितां कांडितां घुसळितां । विसरूं नको कृष्णनाथा । यशोदेसी तें ऐकतां । परम सुख वाटलें । ४४ परी गाडा कोणीं चूर केला । कोणास न कळे हरिलीला ।

स्पर्श से उस दुराचारी दैत्य का उद्धार कर दिया । ३८ पहले (भगवान ने) अहल्या का उद्धार[1] किया था; अब (इस अवतार काल में) अपने चरणों से शकटासुर को उबारा । (इधर) वह गाड़ा चूरचूर हो गया, तब माता (यशोदा) बाहर आ गयी । ३९ (इधर) नन्द बाहर से आ गये, तो (उन्होंने देखा कि एक) गाड़ा चूरचूर हो गया है । तब समस्त गोपजन इकट्ठा हो गये और उन्होंने अचरज अनुभव किया । ४० वे बोले, 'यह कैसा गाड़ा ? कौन इसे लाया ? बच्चे के पास वह चूरचूर हो गया है । यदि उसपर लुढ़क गया होता, तो उसका कुछ भी शेष न रहता' । ४१ (तदनन्तर) नन्द बोले, 'हे सुन्दरी यशोदा, कृष्ण पर विघ्न आ रहे हैं, (अतः) तुम इसे दिन-रात न भूलना, इसे नित्य हृदय से लगाये रखो । ४२ आसन में, शय्या में, भोजन में इस चक्रपाणि को न भूलना; जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न में इस हरि को न भूलना । ४३ पीसते, कूटते, मथते (समय) तुम कृष्णनाथ को न भूल जाना ।' यह सुनकर यशोदा को परम सुख प्रतीत हुआ । ४४ परन्तु किसने उस गाड़े को चूरचूर कर डाला ? हरि की यह लीला किसी की समझ में नहीं आयी । अस्तु । (यथाकाल) साँवला (कृष्ण) आँगन में धीरे-धीरे घुटनों के बल चलने लगा । ४५

---

१ अहल्योद्धार—ब्रह्मा द्वारा निर्मित अनिन्द्य सुन्दरी अहल्या का विवाह पृथ्वी-प्रदक्षिणा सम्बन्धी शर्त सर्वप्रथम पूर्ण करनेवाले गौतम ऋषि से हो गया । इसे प्राप्त करने के अभिलाषी इन्द्र आदि देव निराश हो गये । तत्पश्चात् एक दिन इन्द्र ने कपट से गौतम का रूप धारण करके अहल्या से सम्भोग किया । गौतम को इसका पता चला तो उन्होंने उसे शिला बन जाने का अभिशाप दिया । फलस्वरूप अहल्या शिला हो गयी । जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्र ऋषि के साथ जा रहे थे, तब संयोग से राम का उस शिला से चरण-स्पर्श हो गया । उससे वह शिला अहल्या बन गयी । इस प्रकार पापिनी अहल्या का राम ने उद्धार किया और वह गौतम ऋषि के पास चली गयी ।

असो आंगणीं सांवळा। रांगूं लागला हळहळू। ४५ चिखलीं रांगे वनमाळी। दाटूनि लोळे आंगणीं धुळीं। बळिरामही आला जवळी। खेळावया पाठिराखा। ४६ साक्षात् शेषनारायण। ते हे यादववंशीं बळिरामकृष्ण। गोष्ठांगणीं दोघेजण। रांगताती कौतुकें। ४७ एक गौर एक श्यामवर्ण। कीं एक विष्णु एक मदनदहन। तैसे रांगती दोघेजण। चरणीं नेपुरें रुणझुणती। ४८ दोघे लोळती नंदांगणीं। जैसे उडुपति आणि दिनमणी। दोघेही धुळी घेऊनी। जावळामाजी घालिती। ४९ धुळीनें भरलें अंग वदन। हांसती एकाकडे एक पाहोन। झळकती लघु लघु दशन। आकर्णनयन दोघांचे। ५० कीं ते बाळ दिगंबर। दोघेही डोलती सुकुमार। कीं ते तपस्वी निर्विकार। नंदागणीं शोभले। ५१ यशोदा आणि रोहिणी। येऊनि पाहती जों आंगणीं। तों दोघे दोहींकडे धांवोनी। हांसतचि पातले। ५२ मातेचें जें जानुयुगुळ। तेथें मिठी घालूनि घननीळ। वरी करूनि मुखकमळ। गदगदां हांसतसे। ५३ धुळीनें भरळें निजांग। मातेनें उचलिला सवेग। पूर्णब्रह्मानंद श्रीरंग। हृदयीं दृढ धरियेला। ५४ पदरें

वनमाली (कृष्ण) कीचड़ में घुटनों के बल चलते, (कभी) बलात् आँगन में धूल में लोटते-पोटते। उनके सखा बलराम भी उसके पास खेलने के लिए आ जाते। ४६ (वस्तुतः) जो साक्षात् शेष और नारायण हैं, वे ही ये यादववंश में बलराम और कृष्ण (के रूप में आविर्भूत हो गये) हैं। वे दोनों जने गोठ के आँगन में लीला-पूर्वक घुटनों के बल चलते थे। ४७ (उनमें से) एक (अर्थात बलराम) गोरे हैं, तो (दूसरे) एक श्यामवर्णीय (साँवले) हैं। अथवा (जान पड़ता था कि) एक भगवान विष्णु हैं, तो दूसरे मदन-दहन शिवजी हैं। वे वैसे ही दोनों जने घुटनों के बल चलते थे, तो उनके पाँवों में (पहने हुए) नूपुर झनकते थे। ४८ वे दोनों नन्द के आँगन में लोटते-पोटते थे, मानो वे उडुपति (चन्द्रमा) और दिनमणि (सूर्य) हों। वे दोनों धूल (हाथों में) लेकर (अपने) बालों में डालते थे। ४९ उनका अंग और मुँह धूल से भरा हुआ था। वे (दोनों) एक-दूसरे की ओर देखते हुए हँसते थे, तो उनके नन्हे-नन्हे दाँत चमकते थे। उनके नयन आकर्ण अर्थात् कानों तक फैले हुए, विशाल थे। ५० अथवा वे दोनों सुकुमार दिगम्बर बाल संन्यासी ही डोलते (-झूमते) थे; अथवा वे मानो निर्विकार तपस्वी नन्द के आँगन में शोभायमान थे। ५१ जब यशोदा और रोहिणी ने आकर आँगन में देखा, तो वे दोनों दौड़कर उन दोनों के पास हँसते-हँसते आ पहुँचे। ५२ माता (यशोदा) के जो दोनों घुटने थे, (वहाँ पास ही बैठकर) घननील (कृष्ण) लिपटकर अपने मुख-कमल को ऊपर उठाये हुए खिल-खिलाकर हँसने लगे। ५३ उनकी अपनी देह धूल से भरी हुई (सनी हुई) थी। माता ने उस पूर्णब्रह्मानन्द-स्वरूप श्रीरंग

पुसिली अंगींची धुळी। मातेचें वदन विलोकी वनमाळी। धन्य ते यशोदा वेल्हाळी। चुंबन देत हरीतें। ५५ शेषनारायण उचलिले। दोघे गृहांत नेऊनि सोडिले। तों गौळणी पातल्या ते वेळे। खेळवावया कृष्णातें। ५६ तों श्रीरंग दुडदुडां धांवत। रांगत बैसोनि पिरंगत। सवेंचि बळरामाकडे पाहात। गदगदां हांसती दोघेही। ५७ आकर्णनेत्र कर्णीं कुंडलें। कंठीं वाघनखपदक शोभलें। वांकी मणगटचा बिंदलीं सुढाळें। झळकताती मुद्रिका। ५८ कटीं झळके कटिसूत्र। क्षुद्रघंटा किणकिणित सुस्वर। जैशा वेदश्रुती गंभीर। सूक्ष्म अर्थ बोलती। ५९ नेपुरें रुणझुणती साजिरीं। मातेनें कृष्ण धरूनि करीं। पाचबंदभूमीवरी। हळूहळू चालवीत। ६० मंद मंद चाले गोविंद। हळूच नेपुरें करिती शब्द। तों जवळी पातला नंद। हस्त धरीत हरीचा। ६१ नंदहस्ताश्रयेंकरून। चाले वैकुंठींचें निधान। सवेंचि पडतो अडखळोन। नंद सांवरोन धरीतसे। ६२ बळिराम आणि जगज्जीवन। एक एकाचा आश्रय करून। कांपत कांपत दोघेजण। उठोनि

(श्रीकृष्ण) को उठा लिया और दृढ़ता-पूर्वक हृदय से लगा लिया। ५४ माता ने उनके शरीर में लगी धूल को आँचल से पोंछ लिया, तो वनमाली (कृष्ण) उसके मुँह की ओर देख रहे थे। वह सुन्दरी यशोदा धन्य है, जिसने हरि को चूम लिया। ५५ (उन दोनों स्त्रियों ने) शेष (के अवतार बलराम) और नारायण (के अवतार श्रीकृष्ण) को उठा लिया और उन दोनों को घर के अन्दर ले जाकर छोड़ दिया। तब उस समय गोपियाँ कृष्ण को खेलाने के लिए आ पहुँचीं। ५६ तब श्रीरंग उछलते-फुदकते हुए दौड़े, (फिर) घुटनों के बल चलकर बैठते हुए ठुनकने लगे; साथ ही वे बलराम की ओर देखने लगे, तो वे दोनों ही खिल-खिलाकर हँसने लगे। ५७ उनके नेत्र कानों तक फैले हुए अर्थात विशाल थे; कानों में कुण्डल (पहने हुए) थे; गले में बघनखे से युक्त पदिक शोभायमान था; (हाथों में) बाँके, काँच के गुहारों के बने आभूषण, हथ-साँकल और (अंगुलियों में) अँगूठियाँ कान्ति से चमक रही थीं। ५८ कमर में कटि-सूत्र (अर्थात् मेखला) झलक रहा था; घँघरू सुरीले झनक रहे थे, मानो गम्भीर वेद-श्रुतियाँ सूक्ष्म अर्थ ध्वनित कर रही हों (प्रकट कर रही हों)। ५९ सुन्दर नूपुर झनक रहे थे। माता कृष्ण का हाथ थामे हुए मरकत-खचित भूमि पर हौले-हौले चलाने लगी। ६० गोविन्द (कृष्ण) मन्द-मन्द चल रहे थे, तब नूपुर धीमे-धीमे ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे। तब नन्द उसके पास आ गये और उन्होंने हरि का हाथ थाम लिया। ६१ नन्द के हाथ के आधार से वैकुण्ठ के निधान (कृष्ण) चल रहे थे; तो साथ ही (बीच-बीच में) वे लड़खड़ाकर गिर पड़ते थे, तो नन्द उन्हें सम्हालते हुए पकड़ते थे। ६२ (कभी) बलराम और जगज्जीवन कृष्ण दोनों जने एक दूसरे

उभे राहती। ६३ सर्वेचि आदळती धरणीं। गदगदां हांसे चक्रपाणी। सर्वेचि उभे राहोनी। दुडदुडां नाचताती। ६४ नंद आणि यशोदा जननी। भोंवत्या मिळाल्या नितंबिनी। शेष आणि चक्रपाणी। नाचती दोघे पाहती तें। ६५ लास्य आणि तांडव। दोन्ही नृत्यांचे भाव। लास्यकळा माधव। दावीतसे तेधवां। ६६ करटाळिया नितंबिनी। वाजविती कौतुकेंकरूनी। म्हणती नाच नाच रे चक्रपाणी। नंद नयनीं पाहत। ६७ हस्तसंकेत दावी भगवंत। नृत्य करी डोलत डोलत। भोंवत्या गौळिणी हांसत। हरि पाहत त्यांकडे। ६८ वेष्टित गौळिणी सुकुमार। त्याच कमळकर्णिका सुंदर। मध्यें श्रीरंग भ्रमर। नीळवर्ण रुणझुणे। ६९ सूर्याभोंवतीं जैसीं किरणें। कीं शशिवेष्टित तारागणें। कीं मुगुटाभोंवतीं रत्नें। तैशा कामिनी

का आधार लेते हुए, काँपते-काँपते उठकर खड़े होते थे। ६३ (फिर) साथ ही भूमि पर लुढक पड़ते, तो चक्रपाणि कृष्ण खिल-खिलाकर हँस देते। साथ ही खड़े होकर वे (दोनों) उछलते-फुदकते हुए नाचने लगते। ६४ नन्द और माता यशोदा के चारों ओर सुन्दर (नितम्ब-धारिणी) स्त्रियाँ इकट्ठा हो गयीं और शेष (के अवतार बलराम) और नारायण (के अवतार कृष्ण) —दोनों को नाचते देखने लगीं। ६५ उस समय माधव (कृष्ण) लास्य और ताण्डव[1] नामक दोनों प्रकार के नृत्य के भाव, (और फिर) लास्य (नृत्य) कला प्रदर्शित करने लगे। ६६ वे नितम्बिनियाँ (स्त्रियाँ) आनन्द और दुलार से तालियाँ बजाने लगीं और बोलीं— 'हे चक्रपाणि, नाचो, नाचो'। नन्द यह (सब) अपनी आँखों से देख रहे थे। ६७ (तदनन्तर) भगवान (कृष्ण) ने हाथ से संकेत किया और वे डोलते-झूमते नृत्य करने लगे। चारों ओर गोपियाँ (देखते-देखते) हँस रही थीं और कृष्ण उनकी ओर देख रहे थे। ६८ सुकुमार गोपियों ने उन्हें घेर लिया। वे ही (मानो) सुन्दर कमल-कर्णिकाएँ (कमल की कलियाँ) बन गयीं और (उनके) बीच में नील-वर्ण श्रीरंग (कृष्ण-) रूपी भ्रमर रुनझुना रहे थे। ६९ जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर किरणें (शोभायमान) होती हैं, अथवा चन्द्रमा को घेरे हुए तारागण होते हैं, अथवा मुकुट के चारों ओर रत्न होते हैं, उसी प्रकार वे कामिनियाँ (कृष्ण को घेरे हुए) शोभायमान थीं। ७० अथवा देवों ने

---

१ लास्य और ताण्डव—ये नृत्य के दो विशिष्ट भेद हैं। लास्य वह नृत्य कहलाता है, जिसमें कोमल अंग-भंगियों के द्वारा मधुर भावों का प्रदर्शन होता है और जो शृंगार आदि कोमल रसों को परिपुष्ट करनेवाला होता है। इसमें गायन और वादन का भी योग रहता है। ताण्डव नृत्य बहुत ही उग्र और विकट होता है; उसमें उग्रतापूर्वक अंग-भंगियों के साथ कठोर भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। वह रौद्र, भयानक जैसे रसों का परिपोषक होता है।

विलसती। ७० कीं देवीं वेष्टिला सहस्रनयन। कीं प्रेमळ भक्तीं उमारमण। कीं ऋषिवेष्टित कमळासन। जगज्जीवन तेवीं शोभे। ७१ नृत्य करी जगज्जीवन। मंद मंद हांसे उदारवदन। ते नृत्यकळा देखोन। सकळा गौळिणी विस्मित। ७२ विचित्र कळा दावी माधव। दशावतारींचा हाव-भाव। देखतां सद्गद सर्व। गौळिणी तेव्हां जाहल्या। ७३ नंद यशोदा गौळिणी। नाचती तेव्हां प्रेमेंकरोनी। तों आकाश आणि धरणी। नाचूं लागलीं तेधवां। ७४ तेज वायु जळ। नाचों लागती सुरवर सकळ। नाचे कैलासीं जाश्वनीळ। भवानीसहित आदरें। ७५ नाचे वैकुंठ सत्यलोक। चंद्र सूर्य शचीनायक। गण गंधर्व वसु अष्टक। ऋषिमंडळ नाचतसे। ७६ स्वर्ग मृत्यु पाताळ। नाचती चतुर्दश लोक सकळ। नाचती पृथ्वीचे नृपाळ।

सहस्रनयन इन्द्र को घेर लिया हो, अथवा प्रेममय भक्तों द्वारा उमा-रमण शिवजी (घिरे हुए) हों, अथवा ऋषियों द्वारा कमलासन ब्रह्मा वेष्टित हों, उसी प्रकार जगज्जीवन (कृष्ण गोपियों द्वारा वेष्टित) शोभायमान थे। ७१ जगज्जीवन कृष्ण नृत्य कर रहे थे, वे उदार-वदन से मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उनकी इस नृत्य-कला को देखकर समस्त गोपियाँ विस्मित हो गयीं। ७२ माधव कृष्ण विचित्र (नृत्य) कला प्रदर्शित कर रहे थे। तब (उनके द्वारा प्रदर्शित) दस अवतारों[1] का अभिनय देखते-देखते समस्त गोपियाँ बहुत गदगद हो उठीं। ७३ नन्द, यशोदा और गोपियाँ तब (सब) प्रेम से नाचने लगे; तो उस समय आकाश और धरणी (पृथ्वी) नाचने लगे। ७४ तेज, वायु, पानी, (जैसे पंच महाभूत), समस्त सुरवर (श्रेष्ठ देव) नाचने लगे। कैलास पर आदर-पूर्वक भवानी (पार्वती) सहित शिवजी नाचने लगे। ७५ (भगवान विष्णु का) वैकुण्ठ (-लोक), (ब्रह्माजी का) सत्यलोक, चन्द्र, सूर्य, शची-नायक इन्द्र, गण, गन्धर्व, अष्ट वसु[2], ऋषि-मण्डल नाचने लगे। ७६ स्वर्ग, मृत्यु (-लोक), पाताल, समस्त चौदह लोक[3], पृथ्वी के नृपाल (राजा) उस समय स-परिवार नाचने लगे। ७७ हरि (कृष्ण) के प्रताप से नौ खण्ड[4] तथा सातों द्वीप[5]

१ दस अवतार—देखिए, टिप्पणी १—पृ० ५६ (अध्याय २—२३)

२ अष्ट वसु—ध्रुव, घोर, सोम, आप, नल, अनिल, प्रत्यूष, प्रभास। (अथवा—) द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, विभावसु। ये विशिष्ट देव हैं।

३ चौदह लोक—देखिए, टिप्पणी पृ० १, पृ० ५०, अध्याय १—१७

४ नौ खण्ड—पुराणों के अनुसार पृथ्वी के नौ प्रमुख खण्ड (भाग) माने गये हैं, जैसे— इलावृत्त, भद्राश्व, हरिवर्ष, किम्पुरुष वर्ष, केतुमाल, रम्यक, भरतवर्ष, हिरण्मय, उत्तरकुरु। (इस सम्बन्ध में अन्यान्य सूचियाँ भी उपलब्ध हैं।)

५ सात द्वीप—पुराणों के अनुसार पृथ्वी सात प्रमुख द्वीपों में विभक्त मानी गयी है, जैसे—जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर। (भरतखण्ड जम्बुद्वीप के अन्दर स्थित है)।

परिवारेंसीं तेधवां। ७७ नव खंडें सप्त द्वीपें। नाचताती हरिप्रतापें। छप्पन्न देश अनुतापें। नाचताती तेधवां। ७८ मेरु पर्वत थोर थोर। वनस्पती नाचती अठरा भार। वेद शास्त्रें पुराणें सग्रम। कृष्णच्छंदें नाचती। ७९ नाचती गोकुळींचीं मंदिरें। नाचती उतरंडीं देव्हारे। धातु-मूर्ति एकसरें। नाचतचि त्या येती। ८० उखळें जांतीं मुसळें। पदार्थमात्र एकेचि वेळे। नाचों लागलीं घननीळें। कौतुक भक्तां दाखविलें। ८१ नंद धांवोनि जवळी आला। म्हणे सुकुमार माझा भागला। हृदयीं धरूनि आलिंगिला। चुंबन दिधलें तेधवां। ८२ नंदें अनंत जन्में तप केलें। तें एकदांचि फळा आलें। कीं यशोदेचें सुकृत प्रगटलें। एकदांचि ये वेळे। ८३ त्या दोघीं मातापितरीं। वाटे तप केलें हिमकेदारीं। तरीच मांडीवरी श्रीहरी। रात्रंदिवस खेळतसे। ८४ कीं शरीर कर्वतीं घालून। टाकिलें प्रयागीं त्रिवेणीं। तरीच हरिमुख चुंबूनी। वारंवार पाहती। ८५ कीं

नाच रहे थे। उस समय छप्पन देश[1] अनुताप (पश्चात्ताप) से नाच रहे थे। ७८ मेरु तथा बड़े-बड़े (अन्यान्य) पर्वत, अठारहों भार (अर्थात् अनेकानेक प्रकार की) वनस्पतियाँ, समस्त वेद, शास्त्र, पुराण कृष्ण के प्रभाव (और आकर्षण) से नाच रहे थे। ७९ गोकुल के मन्दिर (भवन) नाच रहे थे; भँडेहर (थाक), देवघर नाच रहे थे; धातुओं की मूर्तियाँ एक साथ (एक पंक्ति में) नाचते-नाचते आ गयीं। ८० ऊखल, चक्कियाँ, मूसल, —समस्त पदार्थ मात्र एक ही समय नाचने लगे। (इस प्रकार) घन-नील (कृष्ण) ने (अपने) भक्तों को लीला दिखा दी। ८१ (तब) नन्द दौड़ते (-दौड़ते) पास आ गये और बोले, 'मेरा सुकुमार (बच्चा) थक गया।' उन्होंने (उसे) हृदय से लगाते हुए उसका आलिंगन किया और उस समय उसका चुम्बन किया। ८२ नन्द ने (जो) अनन्त जन्म तपस्या की थी, वह एक बार फल को प्राप्त हो गयी; अथवा यशोदा का सुकृत (पुण्य) इस समय एक बार (कृष्ण के रूप में) प्रकट हो गया। ८३ जान पड़ता है, उन दोनों माता-पिता ने हिमगिरि पर बदरिकाश्रम में तप किया था, तो ही उनकी गोद में श्रीहरि (भगवान विष्णु) रात-दिन खेल रहे थे। ८४ अथवा उन्होंने (पूर्वजन्म में) अपने शरीरों को करवत से काटकर प्रयाग में त्रिवेणी में डाल दिया होगा; तो ही वे हरि के मुख को

१ छप्पन देश—प्राचीन काल में भारत में नीचे लिखे अनुसार छप्पन देशों का अस्तित्व माना जाता था :— कोसल, कुरु, पांचाल, शूरसेन, जांगल, आर्यावर्त, यामुन, माथुर, मत्स्य, सारस्वत, मरुधन्व, गुर्जर, आभीर, मागध, सौवीर, आनर्त, मलय, विदर्भ, कीटक, कान्यकुब्ज; सुराष्ट्र, पाण्डुदेश, विदेह, कुशावर्त, कोक, चेक, सिन्धु, सौराष्ट्र, मैथिल, कैकेय, द्विकूटक, शाल्व, कर्नाटक, आवन्त्य, निषध, पौण्ड्र, मद्र, वंग, अंग, कलिंग, कारुष, सृंजय, आन्ध्र, त्रिगर्त, द्राविड़, मालव, केरल, कीकल, ऊशीर, कुंतल, कांबोज, भोज, कंक मधु, महाराष्ट्र और अर्ण। (एक अन्य सूची भी उपलब्ध है।)

साधिलें पंचाग्निसाधन। कीं निराहार तृणशेजे शयन। तरीच त्यास पुढें घेऊन। यशोदा नंद निजताती। ८६ कीं महाक्रतु केले थोर। विपुल हस्तें पूजिले धरामर। तरीच सांगातें घेऊनि सर्वेश्वर। नंद यशोदा जेवीत। ८७ कीं सप्रेम केलें हरिकीर्तन। कीं केलें संतांचें अर्चन। तरीच नवपंकजदलनयन। मिठी घाली निजगळां। ८८ जो ब्रह्मानंद परात्पर। तो जाहला नंदाचा कुमर। कीं गौळियांचे तपतरुवर। उंचावले ब्रह्मांडीं। ८९ जो नाकळे वेदश्रुती। त्यास गौळिणी बोलूं शिकविती। बोबडें बोलूनि श्रीपती। मन मोही तयांचें। ९० जो बोल बोले हृषीकेशी। अर्थ न कळे ब्रह्मादिकांसी। गौळिणी म्हणती कृष्णासी। गूढ बोलणें न कळे तुझें। ९१ शेष आणि नारायण। आंगणीं धांवती दोघेजण। यशोदेच्या गळां येऊन। मिठी घालिती साक्षेपें। ९२ एक गौर एक सांवळें। यशोदेसी दृढ धरिलें। बळिभद्र म्हणे ते वेळे। माझी माय यशोदा। ९३ कृष्ण म्हणे माझी माय। बळिभद्र म्हणे माझी होय। कृष्ण म्हणे गे माय। बळिभद्रासी सांग

बारबार चूमकर देख रहे थे। ८५ अथवा उन्होंने (पूर्वजन्म में) पंचाग्नि साधना[1] सम्पन्न की हो, अथवा निराहार रहते हुए तृण (घास)-शय्या पर शयन किया होगा; तभी तो यशोदा और नन्द उन्हें पास में लेकर सोया करते थे। ८६ अथवा (उन्होंने) बहुत बड़े महायज्ञ किये होंगे और उदार हाथों से भू-देवों (ब्राह्मणों) का पूजन किया होगा; तभी तो नन्द और यशोदा सर्वेश्वर कृष्ण को साथ में लेकर भोजन किया करते थे। ८७ अथवा उन्होंने (पूर्वकाल में) प्रेम-पूर्वक हरि-कीर्तन किया होगा, अथवा सन्तों का पूजन किया होगा, तभी तो नव कमल के दलों-से नेत्रवाले कृष्ण उनके गले लिपट जाते थे (गले लगते थे)। ८८ जो परात्पर ब्रह्मानन्द (आनन्द स्वरूप ब्रह्म) हैं, वे नन्द के पुत्र हो गये थे; अथवा गोपों के तप-रूपी तरुवर ब्रह्माण्ड में ऊँचाई को प्राप्त हो गये थे। ८९ जो वेद-श्रुतियों की समझ में नहीं आते हैं, उन श्रीपति को गोपियाँ बोलना सिखाती थीं और वे तुतली (बोली) बोलकर उनके मन को मोह लेते थे। ९० हृषीकेशी (कृष्ण) जो बोल (शब्द, वचन) बोलते थे, उनका अर्थ ब्रह्मा आदि की समझ में नहीं आता; (फिर भी) गोपियाँ उन कृष्ण से कहती थीं कि तुम्हारा गूढ़ बोलना समझ में नहीं आ रहा है। ९१ शेष और नारायण (बलराम और कृष्ण) दोनों जने आँगन में दौड़ते थे और आकर हठात् यशोदा के गले लिपट जाते थे। ९२ एक (बलराम) गोरे थे, तो एक (दूसरे कृष्ण) साँवले थे— दोनों ने यशोदा को दृढ़ता से पकड़ लिया था। उस समय बलभद्र बोले— 'मेरी माँ यशोदा है'। ९३ तो कृष्ण ने

[1] पंचाग्नि साधना—चारों ओर चार कुण्डों में अग्नि प्रज्वलित करके दिन भर धूप में बैठकर की जानेवाली विशिष्ट साधना।

कांहीं। ९४ तंव तो बळिभद्र उगा न राहे। मागुती म्हणे माझी माय। कृष्ण लोळणी लवलाहें। घातली तेव्हां रडतांचि। ९५ यशोदा हरीस हृदयीं धरून। म्हणे मी जननी तुझीच पूर्ण। मागुती खेळावया दोघेजण। गृहाबाहेर चालिले। ९६ भलतीकडे दोघे धांवती। गारी कंटक न पाहती। एकामागें एक पळती। अडखळती वाटेसी। ९७ मागुती दोघे उठोन। भलतीकडे जाती धांवोन। बळिरामासी म्हणे जगज्जीवन। पक्षी धरूनि नेऊं चला। ९८ रावे काग साळिया। दोघे धांवती धरावया। तों पक्षी जाती उडोनियां। क्षणमात्र नलगतां। ९९ मग ऊर्ध्व वदनें करोनी। तटस्थ विलोकिती नयनीं। कृष्ण म्हणे उडोनी। पक्षी आणीन अवघेचि। १०० हरि म्हणे मी आकाशीं उडेन। येरू म्हणे मी पृथ्वी उचलीन। ऐसे ते शेष-जगज्जीवन। बाळलीला दाविती। १०१ सोडिती तान्हीं वांसरें। तीं उडती नाना विकारें। वत्सांसारिख्या उडचा निर्धारें। दोघे घेती एकदांचि। २ वांसरें हुंबरती नाना गती। आपणही तैसेंच करिती। वत्सें कौतुकें नाचती।

कहा— 'वह मेरी माँ है'। (इस पर) बलभद्र बोले— 'मेरी है'। (यह सुनकर) कृष्ण ने कहा, 'री अम्मा, बलभद्र को कुछ बता दो न'। ९४ तब वे बलभद्र (भी) चुप नहीं रहे; उसने फिर से कहा— '(वह) मेरी माँ है'। (यह देखकर) कृष्ण रोते-रोते ही तत्काल (झट से) लोटने-पोटने लगे। ९५ (यह देखकर) यशोदा हरि को हृदय से लगाकर बोली, 'मैं तेरी ही पूरी-पूरी (सच्ची, सचमुच) माँ हूँ।' तो अनन्तर वे दोनों जने खेलने के लिए घर के बाहर चल दिये। ९६ वे दोनों किसी अन्य (अनचाही, अनिष्ट) दिशा में दौड़े। वे कंकड़ (-पत्थर), कंटक (काँटे) नहीं देख रहे थे (उनकी चिन्ता नहीं कर रहे थे)। वे एक-दूसरे के पीछे दौड़ रहे थे और मार्ग में लड़खड़ाते हुए गिरते थे। ९७ फिर वे दोनों उठकर अन्य (अनिष्ट) दिशा में दौड़कर गये। (तब) जगज्जीवन कृष्ण बलराम से बोले, 'चल पक्षी पकड़कर ले आएँ'। ९८ वे दोनों तोतों, कौओं, मैनाओं को पकड़ने के लिए दौड़ने लगे, तो क्षणमात्र न लगते, वे पक्षी उड़कर चले गये। ९९ अनन्तर वे मुँह ऊपर किये अपनी आँखों से चुपचाप देखते रहे। (तब) कृष्ण बोले, 'मैं उड़कर सभी पक्षियों को ले आऊँगा'। १०० कृष्ण ने (फिर) कहा— 'मैं आकाश में उड़ूँगा' तो दूसरे (बलराम) ने कहा— 'मैं पृथ्वी को उठा लूँगा।' वे शेष और नारायण (के अवतार) इस प्रकार बाल-लीलाएँ प्रदर्शित किया करते थे। १०१ वे (कभी) दुध-मुँहे बछड़ों को खोल देते, तो वे (बछड़े) नाना भावों से उछलने-कूदने लगते। (यह देखकर) वे दोनों उन बछड़ों की भाँति निर्धार-पूर्वक एक साथ ही छलाँगें लगाया करते। २ नाना प्रकार की गति को अपनाते हुए वे बछड़े रँभाते, तो (उनके अनुकरण में) वे स्वयं

थै थै म्हणती दोघेजण। ३ आळोआळीं पिटिती वांसरें। धांवतां धांपा टाकिती त्वरें। तों एक बाळ बोले चांचरें। त्यास तैसेंच वेडाविती। ४ धाकुटे मेळवूनि गोपाळ। मध्यें शोभतो वैकुंठपाळ। खेळतसे नाना खेळ। बाळलीला करोनियां। ५ इकडे मथुरेस कंस चिंताक्रांत। म्हणे वैरी वाढतो गोकुळांत। आतां कोण जाऊनि अकस्मात। वधूनि येईल तयातें। ६ तों तृणावर्त म्हणे कंसातें। मी वधीन तुझ्या अरीतें। वायुरूपें गगनपंथें। अकस्मात आणीन मी। ७ जैसा पक्षी आमिष उचलीत। तैसा उडवीन

वैसा ही किया करते थे। (जब) वे बछड़े आनन्दपूर्वक नाचते, तो वे दोनों जने थय्-थय्कार कर देते। ३ (कभी वे) बछड़ों को गली-गली में भगाया करते, तो वे दौड़ते-दौड़ते शीघ्रता से हाँपने लगते। तब कोई एक बच्चा हकलाते हुए बोला, तो वे (बलराम और कृष्ण) उसे वैसे ही मुँह बनाकर चिढ़ाने लगे। ४ छोटे-छोटे गोपाल (ग्वाल-बालों) को इकट्ठा करके वैकुण्ठ-पालक (भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण) उनके बीच में शोभायमान (दिखायी देते) थे। वे (सब) बाल-लीला प्रदर्शित करते हुए अनेक (प्रकार के) खेल खेला करते। १०५

इधर मथुरा में कंस चिन्ताक्रान्त हो गया। उसने कहा (सोचा)— 'वैरी गोकुल में बढ़ रहा है। अब (वहाँ) सहसा जाकर कौन उसका वध करके आएगा'। १०६ तब तृणावर्त (नामक एक असुर) कंस से बोला, 'मैं आपके शत्रु का वध करूँगा; वायु-रूप से मैं उसे आकाशमार्ग से सहसा ले आऊँगा। ७ जिस प्रकार, पक्षी मांस (-खण्ड) उठा लेता है, उसी प्रकार मैं सहसा उसे उड़ा ले लूँगा, अथवा सर्प-रिपु गरुड़ जिस प्रकार अमृत के घट को झट से ले गया[1], उसी प्रकार मैं शत्रु को यकायक उठाकर

---

१ गरुड़ द्वारा अमृतघट को ले जाना—कश्यप-विनता के पुत्र अरुण का जन्म माता विनता की उतावली के कारण अविकसित रूप में हुआ, इससे अरुण ने उसे विनता को उसकी सौत कद्रू की पाँच सौ वर्ष तक दासी होने का अभिशाप दिया। आगे चलकर कद्रू ने उच्चःश्रवा घोड़े की पूँछ के वर्ण को लेकर लगायी हुई होड़ में छल-कपट से पराजित करके उसे अपनी दासी बनाया। दासी विनता बहुत पीड़ित और अपमानित रूप में दिन बिता रही थी। विनता के दूसरे पुत्र गरुड़ ने अपनी माता की दासता से मुक्ति की बात पूछी, तो उसने कहा, उसे अमृत मिल जाए तो वह विनता को दासता से मुक्त करेगी। फलस्वरूप गरुड़ अमृत लाने के लिए चल दिया। मार्ग में अनेक बाधाओं का उसे सामना करना पड़ा। देवों ने उसे रोकने का यत्न किया, फिर भी वे पराजित हो गये। अन्त में गरुड़ उस स्थान पर आ गया, जहाँ अमृत घट रखा हुआ था। वह सूक्ष्म रूप धारण करके वहाँ रखे हुए विराट चक्र की धुरा में से कुण्ड तक पहुँच गया, तो उसे वहाँ दो भयावह सर्प अमृत-कलश की रक्षा करते हुए दिखायी दिये। अन्त में गरुड़ ने उन सर्पों की आँखों में चतुराई से धूल झोंक दी, तो वे आँखें मलने लगे। इसी समय गरुड़ अमृतघट को उठाकर वेग-पूर्वक चल दिया और कद्रू को देकर अपनी माता को दासता से मुक्त किया।

अकस्मात। कीं सुधारसघट त्वरित। उरगरिपु नेत जैसा। ८ तैसा अकस्मात शत्रूसी। उचलूनि आणीन तुजपासीं। तृणावर्त बोलतां मानसीं। कंसरावो संतोषला। ९ वस्त्रें भूषणें देऊनि गौरविला। तृणावर्त वायुरूपें चालिला। गोकुळासमीप पातला। वात सुटला अद्भुत। ११० इकडे यशोदा आपलें आंगणीं। कडे घेऊनि चक्रपाणी। उभी ठाकली ते क्षणीं। गौळिणींस बोलत। १११ जगदात्मा मनमोहन। तृणावर्त येतो जाणोन। काय करी जगज्जीवन। जड बहुत जाहला। १२ जड बहुत हरि वाटला। यशोदेनें खालीं उतरिला। हरि दुडदुडां बाहेर गेला। तों सुटला वात प्रचंड। १३ सुटला हो प्रलयसमीर। धुळीनें भरलें अंबर। त्यामाजीं गोकुळ समग्र। दिसेनासें जाहलें। १४ एक मुहूर्तपर्यंत। हलकल्लोळ गोकुळीं होत। वृक्ष उन्मळोनि जात। आकाशमार्गें द्विज जैसे। १५ न दिसे कोणी कोणातें। माता नोळखे बाळकांतें। नेत्र झांकोनि निजहस्तें। जन जाहले मूर्च्छित पैं। १६ वाटे पृथ्वी जाते रसातळांत। कीं गोकुळ उडालें आकाशपंथें। कीं गगन आलें खालतें। अवनी वरी गेली पैं। १७ चहूंकडे वृक्ष उडोन। पडती गोकुळावरी कडकडोन। मंदिरें जाती मोडून।

आपके पास ले आऊँगा।' तृणावर्त के (इस प्रकार) कहने पर कंस राजा मन में सन्तुष्ट हो गया। ८-९ (फिर उसने उसे) वस्त्र और आभूषण देकर गौरवान्वित किया। तो तृणावर्त वायु के रूप में चल दिया और गोकुल के समीप आ पहुँचा। (फलस्वरूप) अद्भुत वायु (हवा) चलने लगी। ११० (इधर) उस क्षण यशोदा अपने आँगन में चक्रपाणि कृष्ण को गोद में लेकर खड़ी थी और गोपियों से बोल रही थी। १११ जगदात्मा, मनमोहन, जगज्जीवन कृष्ण ने यह जानकर कि तृणावर्त आ रहा है, क्या किया ? वे बहुत भारी हो गये। १२ जब हरि बहुत भारी लगने लगे, तो यशोदा ने उन्हें नीचे उतार दिया। (फिर) वे (हरि) उछलते-फुदकते बाहर गये, तो प्रचण्ड वायु बहने लगी। १३ अहो, प्रचण्ड प्रलय (काल की-सी) वायु चलने लगी। धूल से आकाश भर गया। उसमें समग्र गोकुल दिखायी नहीं देता रहा (अदृश्य हो गया)। १४ एक मुहूर्त तक गोकुल में कोलाहल मच गया। वृक्ष उखड़कर पक्षियों सदृश आकाश-मार्ग से (उड़) जाने लगे। १५ कोई किसी को नहीं दिखायी दे रहा था। माता (अपने) बालकों को पहचान (तक) नहीं पा रही थी। अपने (-अपने) हाथों से आँखों को बन्द करके लोग मूर्च्छित हो गये। १६ लगता था कि पृथ्वी रसातल (पाताल) में जा रही है, अथवा गोकुल आकाश-मार्ग पर उड़ गया है, अथवा आकाश नीचे आ गया है, अथवा पृथ्वी ऊपर (अन्तरीक्ष में उड़) गयी है। १७ चारों ओर (के) वृक्ष उड़कर कड़कड़ते हुए गोकुल पर गिरने लगे। घर टूट जाने लगे—

विदारती प्रळयवातें। १८ तृणावर्त हरीस उचलोन। निराळमार्गें गेला घेऊन। तें जाणोनि मनमोहन। स्वरूप अद्भुत प्रकटवी। १९ ग्रीवेसी धरिला तृणावर्त। श्रीहरीचें बळ अद्भुत। शिरकमळ अकस्मात। पिळूनि खुडिलें केशवें। १२० गोकुळप्रदेशीं अरण्यांत। पडिलें तृणावर्ताचें प्रेत। मागुती कमलदलाक्ष गोकुळांत। प्रवेशला तेधवां। १२१ वायु राहिला अद्भुत। लोक झाले सावचित। यशोदा म्हणे कृष्णनाथ। काय जाहला येथूनि। २२ यशोदा चहूंकडे धांवत। आळोआळीं कृष्ण पाहत। धबधबां वक्षःस्थळ बडवीत। थोर आकांत जाहला। २३ नंद धांवे बिदोबिदीं। गौळी हुडकिती सांदोसांदीं। यशोदेभोंवतीं मांदी। गौळिणींची मिळाली हो। २४ गोकुळींचे जन समस्त। बुडाले शोकसमुद्रांत। तों दुडदुडां धांवत। कृष्ण येतां देखिला। २५ मायेनें धांवोनि उचलिला। सप्रेम हृदयीं आलिंगिला। नंद गौळी ते वेळां। परमानंदें धांवती। २६ नंदें हरि कडे घेतला। म्हणे कोठें गेला होतासी बाळा। इंदिरावर मंदिरीं आणिला। मोठा सोहळा नंद करी। २७ गोभूहिरण्यरत्नदानें। द्विजांसी दिधलीं नंदानें।

प्रलय-वायु से वे विदीर्ण हो रहे थे। १८ (इस स्थिति में) तृणावर्त हरि को उठाकर आकाश-मार्ग पर ले गया। यह जानकर मनमोहन (कृष्ण) ने अद्भुत स्वरूप प्रकट कर दिया। १९ उन्होंने तृणावर्त को गरदन में पकड़ लिया। श्रीहरि का बल अद्भुत था। उन केशव (कृष्ण) ने उसका मस्तकरूपी कमल सहसा मरोड़कर तोड़ डाला। १२० तृणावर्त का शव गोकुल प्रदेश के अन्दर एक वन में गिर गया। अनन्तर, उस समय कमल-दलाक्ष कृष्ण गोकुल में प्रविष्ट हो गये। १२१ (जब) अद्भुत वायु रुक गयी, तो लोग सावधान हो गये (सचेत हो गये, होश में आ गये); (तब) यशोदा बोली, 'यहाँ से नाथ कृष्ण क्या हो गया— (क्या अदृश्य हो गया ? उसका क्या हुआ ?)। २२ फिर यशोदा चारों ओर दौड़ने लगी, गली-गली में कृष्ण को देखने लगी— अर्थात् कृष्ण को खोजने लगी। वह धमाधम छाती पीट रही थी। (वहाँ इस प्रकार) बड़ा हाहाकार हो गया। २३ नन्द गली-गली में दौड़ने लगे। गोप कोने-कोने में ढूँढ़ रहे थे। (इधर) यशोदा के चारों ओर गोपियों का समुदाय इकट्ठा हो गया। २४ जब (इस प्रकार) गोकुल के समस्त जन शोक-समुद्र में डूब गये थे, तो उन्होंने कृष्ण को उछलते-फुदकते हुए आते देखा। २५ (त्योंही) माता ने दौड़कर उसे उठा लिया और प्रेम से हृदय से लगा लिया। उस समय नन्द, (तथा अन्य) गोप परम आनन्द के साथ दौड़े (आये)। २६ नन्द ने हरि को गोद में उठा लिया और कहा (पूछा)— 'रे बच्चे, तू कहाँ गया था ?' (फिर) नन्द (इन्दिरावर भगवान विष्णु के अवतार) उन कृष्ण को घर के अन्दर ले आये और उन्होंने बड़ा

मग यशोदेसी नंद म्हणे। न विसंबें कृष्णासी। १२८ असो कंसासी कळला वृत्तांत। प्राणासी मुकला तृणावर्त। कंस परम चिंताक्रांत। धगधगीत मनामाजी। १२९ गात्रें जाहलीं विकळें। जैसा सर्प वणव्यानें आहाळे। कीं महाव्याघ्र आरंबळे। कपाळशूळेंकरूनियां। १३० कीं पंकगर्तेमाजीं वारण। कीं कूपीं अडकला पंचानन। कीं इंद्रजित पडलियावरी रावण। चिंताक्रांत जैसा पैं। १३१ असो इकडे गोकुळीं। वोसंगी घेऊनि वनमाळी। स्तनपान करवी वेल्हाळी। यशोदादेवी एकदां। ३२ पिंपळपान नीट केलें। जावळ मागें सरसाविलें। तों जांभई दिधली ते वेळे। मुख विकासलें हरीचें। ३३ कानामागील मळी। काढीत यशोदा वेल्हाळी। जांभई देतां ते वेळीं। मुखामाजी विलोकीत। ३४ तों ब्रह्मांडरचना समस्त। मुखामाजी तेव्हां दिसत। असंख्य कृष्णमूर्ति तेथ। घवघवीत दिसती हो। ३५ द्वीपें खंडें शैल सागर। सप्त पाताळ उरगेंद्र। गंगा काननें मनोहर। मुखामाजीं दिसती पैं। ३६ वैकुंठ कैलास क्षीरसागर। अनंतशायी सर्वेश्वर। दिसती

आनन्दोत्सव मना लिया। २७ नन्द ने ब्राह्मणों को गायें, भूमि, सोना, रत्न दान में दिये। अनन्तर उन्होंने यशोदा से कहा— 'कृष्ण को (कहीं) दूर न किये रखना'। १२८

अस्तु। कंस को यह समाचार विदित हुआ कि तृणावर्त प्राणों को खो चुका है। तो वह (कंस) बहुत चिन्ताक्रान्त हो गया। उसके मन में (चिन्तारूपी आग) प्रज्वलित हो गयी। २९ उसके अंग (-अंग) विकल हो गये, जैसे साँप दावानल में झुलस गया हो, अथवा मस्तक-शूल (सिर-दर्द) से बड़ा बाघ गर्जन कर रहा हो, अथवा कीचड़ के गड्ढे में कोई हाथी, अथवा कुएँ में कोई सिंह फँस गया हो। अथवा जिस प्रकार (युद्ध में) इन्द्रजित के गिर जाने (काम आने) पर रावण चिन्ताक्रान्त हो गया, उसी प्रकार कंस तृणावर्त की मृत्यु के कारण चिन्ताक्रान्त हो गया। १३०-३१ अस्तु। इधर गोकुल में एक समय सुन्दरी यशोदादेवी वनमाली कृष्ण को गोद में लेकर स्तन-पान करा रही थी। ३२ उसने (उनके भाल प्रदेश पर पहने हुए) पीपल पत्ते (-से आभूषण) को ठीक किया, बाल पीछे हटा दिये, तो हरि ने जम्हाई ली; उस समय उनका मुँह खुल गया। ३३ (उस समय) सुन्दरी यशोदादेवी कान के पीछे से मैल (किट्ट) निकाल रही थी। कृष्ण के जम्हाई लेते समय उसने मुँह के अन्दर देखा। ३४ तो उसे तब (उनके) मुख के अन्दर समस्त ब्रह्माण्ड-रचना दिखायी दी। अहो! वहाँ उसे असंख्य ठोस-ठोस कृष्ण की मूर्तियाँ (कृष्ण के रूप) दिखायी दीं। ३५ उस मुख के अन्दर द्वीप, खण्ड, पर्वत, समुद्र, सातों पाताल[1], उरगेन्द्र गरुड़, गंगा नदी, मनोहर वन दिखायी दिये। ३६ वैकुण्ठ, कैलास,

[1] सात पाताल—अतल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, तलातल, और पाताल।

असंख्य हरीचे अवतार। दिसती भार ऋषींचे। ३७ इंद्र अग्नि यम नैऋत्यपती। वरुण समीर कुबेर उमापती। लोकसमवेत निश्चितीं। मुखीं दिसती हरीच्या। ३८ गोकुळ गोपाळ यशोदा नंद। मुखामाजीं दिसती विशद। तेथे स्तनपान करी गोविंद। मायेपुढें दिसतसे। ३९ तेथेंही जांभई जगज्जीवन। देतसे मुख पसरून। त्यांत दुसरें ब्रह्मांड पूर्ण। यशोदा तें पाहतसे। १४० अनंतब्रह्मांडनाथ। लीला त्याची परमाद्भुत। यशोदा झाली तटस्थ। बोलों चालों विसरली। १४१ अनंत यशोदा अनंत कृष्ण। अनंत नामें अनंत गुण। पाहतां यशोदेचें मन। झालें उन्मन ब्रह्मानंदीं। ४२ सर्वेचि घातलें मायाजाळ। जैसें सूर्याआड जलदपटळ। मागुती स्तनपान गोपाळ। पूर्ववत करीतसे। ४३ मुखीं दाविलें विश्वरूप। धन्य धन्य जननीचें तप। ब्रह्मानंद तो अरूप। मायेनें पुढें घेतलासे। ४४ जो लावण्यामृतसागर। जो आदिमायेचा प्रियकर। जो भक्तमंदिरांगणमांदार।

क्षीरसागर, सर्वेश्वर अनन्तशायी (शेष-शायी भगवान विष्णु) श्रीहरि के असंख्य अवतार दिखायी दिये, ऋषियों के समुदाय दिखायी दिये। ३७ हरि के मुख में निश्चय ही (अपने-अपने) लोक-सहित इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत्य पति (निर्ऋति), वरुण, समीर (वायु), कुबेर, उमापति शिवजी दिखायी दिये। ३८ मुख के अन्दर गोकुल, गोपाल, यशोदा, नन्द स्पष्ट रूप से दिखायी दिये; वहाँ माता के सामने (गोद में लेटकर) गोविन्द कृष्ण स्तन-पान करते दिखायी दे रहे थे। ३९ वहाँ भी जगज्जीवन कृष्ण मुँह को खोलकर (फैलाकर) जम्हाई ले रहे थे— (और) उस (मुख) के अन्दर दूसरा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड था (और) यशोदा उसे देख रही थी। १४० ये कृष्ण अनन्त ब्रह्माण्डों के नाथ (स्वामी) हैं— उनकी लीला परम अद्भुत है। (उसे देखते-देखते) यशोदा चकित हो गयी और बोलना-चालना भूल गयी। १४१ अनन्त (असंख्य) यशोदाओं, अनन्त कृष्णों, अनन्त नामों, अनन्त गुणों को देखते हुए यशोदा का मन ब्रह्मानन्द में उन्मन (मग्न) हो गया। ४२ साथ ही (उन्होंने माता यशोदा के मन पर) माया-जाल बिछा दिया, जैसे सूर्य के आड़े मेघ-समूह आ जाता है (और उससे सूर्य छिप-सा जाता है, वैसे ही माया-जाल की ओट में यशोदा की सत्य के दर्शन करनेवाली दृष्टि आच्छन्न हो गयी और उसे ब्रह्म-स्वरूप कृष्ण के स्थान पर केवल अपना पुत्र दिखायी देने लगा)। अनन्तर गोपाल कृष्ण पहले की भाँति स्तन-पान करने लगे। ४३ (भगवान कृष्ण ने) अपने मुख में (यशोदा को) विश्व का रूप दिखा दिया। उस माता की तपस्या धन्य है, धन्य है। आनन्द-स्वरूप, अरूप (निराकार) ब्रह्म को (ब्रह्मानन्द को) माता ने अपने पास (गोद में) ले लिया। ४४ जो लावण्यरूपी अमृत के सागर हैं, जो आदिमाया के प्रियकर (पति, स्वामी) हैं, जो भक्तों के घर के आँगन

जलजोद्भवजनक जो। ४५ जो भक्तमानसचकोरचंद्र। अज्ञानतिमिरच्छेदक दिवाकर। जो षड्गुणैश्वर्यसमुद्र। लीला दावी भक्तांतें। ४६ यशोदेनें उचलिला। रत्नजडित पालखीं निजविला। गीत गातसे वेल्हाळा। यशोदादेवी तेधवां। ४७ श्रीरामचरित्र चांगलें। यशोदेनें तेव्हां गाइलें। ऐकतां जें सकळें। कलिकिल्मिषें न होती। ४८ पाळणां सावध कृष्णनाथ। आपुली पूर्वलीला कौतुकें ऐकत। यशोदा स्वानंदें डुल्लत। पालखा हालवीत हरीच्या। ४९ जो कमळिणीमित्रकुळभूषण। अनंगदहनहृदयजीवन। विद्वज्जनमानससमांदुसरत्न। तो रघुनंदन साजिरा। १५० जो ब्रह्मानंद निर्मळ। तो झाला दशरथाचा बाळ। लीलावतारी तमालनीळ। अयोध्येमाजी अवतरला। ५१ जो जलजनाभ जलदवर्ण। जलधिशायी

में (उत्पन्न) कल्पवृक्ष हैं, जो कमलोद्भव ब्रह्मा के जनक (भगवान नारायण) हैं, जो भक्तों के मानसरूपी चकोरों[1] के लिए चन्द्रमा हैं, जो (माया-जन्य) अज्ञानरूपी अन्धकार को हटा देनेवाले सूर्य हैं, जो छः गुणोंरू पी ऐश्वर्य[2] के सागर हैं, वे (कृष्ण इस प्रकार अपने) भक्तों को लीला दिखा रहे थे। ४५-४६ (तदनन्तर) यशोदा ने उन्हें उठा लिया और रत्न-जटित पालने में सुला दिया (लिटा दिया)। उस समय सुन्दरी यशोदादेवी गीत गाने लगी। ४७ तब यशोदा ने उस श्रीराम-चरित्र का अच्छी तरह गान किया, जिसे सुनते ही (श्रोताओं के लिए) समस्त कलियुग के पाप (उत्पन्न) नहीं होते। ४८ पालने में नाथ कृष्ण तो सावधान थे। वे अपनी ही पूर्व (अवतार में प्रदर्शित) लीला आनन्द-पूर्वक सुन रहे थे। यशोदा अपने आनन्द में डोल रही थी और हरि (कृष्ण) को पालना झुला रही थी। १४९

जो कमलिनी के मित्र अर्थात् सूर्य के कुल (सूर्य-कुल, सूर्य-वंश) में उत्पन्न (पुत्र रूपी) आभूषण हैं, जो कामदेव को जलानेवाले (शिवजी) के हृदय के लिए जीवन-स्वरूप हैं, जो विद्वज्जनों के मानसरूपी मंजूषा (पेटी) में स्थित रत्न (जैसे) हैं, वे हैं ये सलोने रघुनन्दन (राम)। १५० जो निर्मल आनन्द-स्वरूप-ब्रह्म हैं, वे दशरथ के पुत्र (रूप में उत्पन्न) हो गये। (अर्थात्) लीला अवतार धारण करनेवाले तमाल (-पत्र से) नील (वर्ण की देह धारण करनेवाले भगवान) विष्णु (राम के रूप में) अयोध्या में

१ चकोर-चन्द्रमा—'चकोर' एक प्रकार का पहाड़ी तीतर है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार यह चन्द्रमा से अत्यधिक प्रेम करता है और उसकी किरणों से झरनेवाले अमृत को पीकर जीवित रहता है। अतः यह चन्द्रमा की ओर एकटक देखता रहता है—यहाँ तक कि आग की चिनगारियों को चन्द्र की किरणें समझकर निगल जाता है। कविजनों ने इस एकनिष्ठ प्रेम को भक्ति का प्रतीक माना है।

२ छः गुण-ऐश्वर्य—देखिए टिप्पणी १, पृ० ६५, अध्याय २–७६

जलजलोचन। भवजलतारक जलजवदन। जगत्प्राण जगद्गुरु। ५२ जो कमलोद्भवाचा गुरु पूर्ण। तो वसिष्ठासी रिघाला शरण। गुरुमुखें निजज्ञान। रघुनंदन श्रवण करी। ५३ दशरथासीं मागे विश्वामित्र। म्हणे दे तुझा राम राजीवनेत्र। पिशिताशन अपवित्र। क्रतु माझा भंगिती। ५४ सौमित्रा-समवेत स्मरारिमित्र। घेऊनि चालिला गाधिपुत्र। वाटेसी ताटिका दुर्धर। राक्षसी उभी ठाकली। ५५ दशसहस्र कुंजरांचें बळ। येवढी ताटिका सबळ। गाई ब्राह्मण देखतां तत्काळ। दाढे घालूनि रगडीत। ५६ ऐसिया ताटिकेसी राजीवनयनें। निर्दाळिलें एकेचि बाणें। पुढें सिद्धाश्रमीं रघुनंदनें। कीर्ति केली अगाध। ५७ वीस कोटी सेनेसहित सुबाहु। तत्काळ मारी आजानुबाहु। पिशिताशनांचे समूहु। राजीवनेत्रें भंगिले। ५८ मिथिलेसी येतां रघुनंदन।

अवतरित हो गये। ५१ जो जलज-नाभ (कमल-नाभ, जिनकी नाभि में कमल उत्पन्न हुआ) है, जो जलद अर्थात् मेघ के-से वर्ण वाले हैं, जो जलधि-शायी (क्षीर-समुद्र में शयन करनेवाले) हैं, जो जलज (कमल)-नेत्र हैं, जो संसाररूपी (सागर-) जल के पार लगानेवाले हैं, जो जलज (कमल) -वदन हैं, जो जगत के लिए प्राण-स्वरूप हैं और जगत के लिए गुरु हैं, जो (कमल में से उत्पन्न) ब्रह्मा के पूर्ण रूप से गुरु हैं, वे (गुरु) वसिष्ठ (ऋषि) की शरण में जाने के लिए निकले (शरण में गये) और ऐसे उन रघुनन्दन राम ने गुरु-मुख से अपना ही ज्ञान (आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान) श्रवण किया। ५२-५३ (तत्पश्चात्) विश्वामित्र ने दशरथ से उन्हें माँग लिया। वे बोले, 'मुझे अपना राजीव-नेत्र (कमलनयन) राम दीजिए। अपवित्र (आचार-व्यवहार वाले) राक्षस मेरा यज्ञ उध्वस्त कर रहे हैं'। ५४ सौमित्र (लक्ष्मण) सहित मदनारि शिवजी के मित्र राम को गाधि-पुत्र विश्वामित्र (अपने साथ) लेकर चल दिये। रास्ते में ताड़का नामकी एक दुर्दम्य राक्षसी खड़ी हो गयी (उपस्थित हो गयी)। ५५ उसमें दस सहस्र हाथियों का बल था— ताड़का इतनी बलवती थी। गायों और ब्राह्मणों को देखते ही वह उन्हें तत्काल डाढ़ों में डालकर पीस डालती थी। ५६ राजीव-नयन राम ने ऐसी उस ताड़का का एक ही बाण से निर्दालन (संहार) किया। आगे (चलकर) सिद्धाश्रम में राम ने असीम कीर्ति प्राप्त की। ५७ आजानुबाहु (जिनके बाहु घुटनों तक दीर्घ हैं, ऐसे) राजीव-नयन राम ने बीस करोड़ सेना-सहित (ताड़का-पुत्र) सुबाहु[1] को तत्काल मार डाला और

[1] ताड़का-सुबाहु—सुकेतु नामक यक्ष के ब्रह्मा के वरदान से एक कन्या उत्पन्न हो गयी। उसका नाम ताड़का था। यक्षिणी होने के कारण यह मनचाहे रूप धारण कर सकती थी। उसमें सहस्रों हाथियों का बल भी था। जम्भ-पुत्र सुन्द की यह पत्नी थी। उसके मारीच और सुबाहु नामक दो पुत्र थे। एक बार किसी अपराध के फलस्वरूप सुन्द को अगस्त्य ऋषि ने अभिशाप देकर नष्ट कर डाला, तो अपने पति की मृत्यु का बदला लेने के लिए ताड़का ने अपने पुत्रों को लेकर अगस्त्य पर आक्रमण

वेष्टित समागमें विद्वज्जन। जैसा श्रुतिवेष्टित वेदोनारायण। तैसा रघुनंदन जातसे। ५९ कीं निर्जरांसमवेत सहस्राक्ष। कीं तापसवेष्टित विरूपाक्ष। तैसा राम कमलपत्राक्ष। धरामरीं वेष्टिला। १६० तो पद्मजातकन्यका सुंदरी। पद्माक्षीवर वाटेस उद्धरी। चरणरजें ते पद्मनेत्री। पावन झाली तेधवां। १६१ जे गौतमाची प्रिय ललना। ते नमस्कारूनि रविकुळभूषणा। म्हणे सजलजलदवर्णा। उद्धरिलें मजलागीं। ६२ पुढें त्र्यंबकधनु भंगूनि रघुवीरें। जानकी पर्णिली प्रतापशूरें। पुढें भार्गव जिकोनि त्वरें। अयोध्येसी राम आले। ६३ कैकेयीवरदानानिमित्त। वना चालला रघुनाथ। सीतासौमित्रांसमवेत। राम जात तपोवना। ६४ वनासी गेलिया रघुनंदन। मागें दशरथ पावला मरण। चौदा वर्षें महा अरण्य। कौसल्यात्मजें सेविलें। ६५ श्रीराम आला पंचवटीं। सौमित्रासमवेत गोरटी। रणरंगधीर जगजेठी। राहिला तटीं गौतमीच्या। ६६ तेथें कपटें येऊनि

राक्षसों के समुदाय को नष्ट कर डाला। ५८ मिथिला की ओर जाते हुए रघुनन्दन राम विद्वज्जनों द्वारा घेरे गये; जिस प्रकार वेदोनारायण (वेद-स्वरूप भगवान नारायण) श्रुतियों द्वारा वेष्टित होते हैं, उसी प्रकार ऋषियों द्वारा घेरे हुए) रघुनन्दन राम जा रहे थे। ५९ अथवा देवों सहित सहस्राक्ष इन्द्र हों, अथवा तापसों द्वारा वेष्टित शिवजी हों, उसी प्रकार कमल-दल-से नेत्रोंवाले राम पृथ्वी के देवों अर्थात् ब्राह्मणों द्वारा घिरे हुए थे। १६० तब रास्ते में ब्रह्मा-कुमारी सुन्दरी अहल्या का पद्माक्षी (लक्ष्मी)-वर (भगवान विष्णु के अवतार राम) ने उद्धार किया। वे कमल-नयना अहल्या उस समय (राम के) चरणों की धूली से पावन हो गयीं। १६१ जो गौतम ऋषि की प्रिय स्त्री थी, वे (अहल्या) रविकुल-भूषण राम को नमस्कार करके बोलीं— 'हे जल-सहित मेघ के-से (नील) वर्णधारी, आपने मेरा उद्धार किया'। ६२ आगे (तदनन्तर) प्रतापी, शूर रघुवीर राम ने शिव-धनुष को तोड़कर जानकी से परिणय (विवाह) किया। अनन्तर भार्गव परशुराम को जीतकर राम झट से अयोध्या आ गये। ६३ कैकेयी को (दशरथ द्वारा) दिये हुए वरदान के निमित्त रघुनाथ राम वन की ओर चल दिये। वे (राम) सीता और लक्ष्मण-सहित तपोवन गये। ६४ रघुनाथ के वन में चले जाने पर (इधर) पीछे (अयोध्या में) दशरथ मृत्यु को प्राप्त हो गये। कौशल्यात्मज राम ने महान अरण्य में चौदह वर्ष निवास किया। ६५ रणरंगधीर जगत्श्रेष्ठी श्रीराम गोरी अर्थात् सीता और लक्ष्मण-सहित पंचवटी में आ गये और गौतमी (गोदावरी) नदी के

किया। तब उन्होंने इन सबको राक्षस हो जाने का अभिशाप दिया। तब से ये वन में रहने लगे। ये विश्वामित्र के यज्ञ-कर्म में बाधा उत्पन्न करने लगे। अतः विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए बुला लाये।

रावण। करी जानकीचें हरण। तों श्रीकृष्णें पाळण्यांतून। गर्जोनि हांक फोडिली। ६७ पाळण्याखालीं उडी टाकून। हातीं घेऊनि धनुष्यबाण। सुंदर निमासुर वदन। रघुनंदन उभा तेथें। ६८ आरक्त दिसती राजीवनयन। चाप ओढिलेंसे आकर्ण। म्हणे कोठें दावीं तो रावण। टाकीन छेदून क्षणार्धें। ६९ कोठें नळ नीळ सौमित्र। कोठें निराळोद्भवपुत्र। कोठें जांबुवंत तरणिकुमर। वालिसुत कोठें आहे। १७० पाषाणीं झांका रे समुद्र। सुवेळेसी जाऊं द्या दलभार। लंकेसी अग्नि लावा सत्वर। रजनीचर संहारा। ७१ बाहेर रावण आणा रे त्वरें। छेदितों आतां दाही शिरें। हांक दिधली आवेशें थोरें। पंकजनेत्रें तेधवां। ७२ यशोदा भयभीत तटस्थ। म्हणे काय मांडिला कल्पांत। एकाएकीं रघुनाथ। अकस्मात प्रकटला। ७३ ऐसें कौतुक यादवरायें। दाविलें आपुले जननीये। सवेंचि यशोदा पाळण्यांत पाहे। तों रडत आहे स्वच्छंदें। ७४ यशोदेसी नवल वाटलें। म्हणे मीं काय स्वप्न देखिलें। अद्‌भुत हरिलीला न कळे। भवविरिंचींसी पाहतां। ७५ कृष्ण म्हणे वो जननीये। मज

तट पर ठहर गये। ६६ वहाँ कपट से आकर रावण ने सीता का अपहरण किया। तो (यह सुनते ही) पालने में श्रीकृष्ण गरजते हुए चिल्ला उठे। ६७ पालने के नीचे कूदकर सुन्दर सलोने मुखवाले रघुनन्दन राम वहाँ हाथों में धनुष-बाण लिए हुए खड़े रहे (दीख पड़े)। ६८ उनके कमल-से नेत्र लाल दिखायी दे रहे थे। उन्होंने धनुष (की डोरी) को कान तक खींचा था और वे बोले— 'दिखा दो, कहाँ है वह रावण? मैं उसे आधे क्षण में छेद डालूँगा। ६९ कहाँ हैं नल, नील और लक्ष्मण? पवनकुमार हनुमान कहाँ हैं? जाम्बवान और सूर्य-पुत्र सुग्रीव कहाँ हैं? बाली-सुत अंगद कहाँ है?। १७० अरे, पत्थरों से समुद्र को आच्छादित कर दो (पाट दो)। सेना को सुवेल जाने दो, झट से लंका में आग लगा दो, राक्षसों का संहार कर दो। १७१ अरे, रावण को झट से ला दो, मैं अब उसके दसों सिर छेद डालता हूँ'। तब (ऐसा कहते हुए) कमलनयन (राम) बड़े आवेश के साथ गरज उठे। ७२ (यह देखकर) यशोदा भयभीत, चकित हो उठी। उसने कहा (सोचा)— यह क्या (कैसा) कल्पान्त कर देनेवाला प्रलय मचाया है? यकायक अकस्मात रघुनाथ (कैसे) प्रगट हो गये?। ७३ यादवराज कृष्ण ने अपनी माता को ऐसी अद्‌भुत लीला दिखा दी। साथ ही (जब) यशोदा ने पालने में देखा, तो वे वहाँ अपनी ही धुन में रो रहे थे। ७४ (यह देखकर) यशोदा को अचरज अनुभव हुआ। वह बोली— 'मैंने क्या यह सपना ही देखा?' देखने पर भी शिवजी और ब्रह्माजी की समझ में यह अद्‌भुत हरि-लीला नहीं आ पाती। १७५

घेईं वेगें कडिये। आंगणीं तूं उभी राहें। मी खेळेन क्षणभरी। ७६ धन्य धन्य तें नंदाचें आंगण। जेथें क्रीडे मनमोहन। तों नीलबंदभूमीवरी जगज्जीवन। सहज जाऊनि बैसला। ७७ कृष्ण केवळ घननीळ। नीलबंदभूमिका सुढाळ। दोहींचे एकरूप निर्मळ। दुसरेपण दिसेना। ७८ जवळी असोनि घननीळ। माय म्हणे काय जाहला बाळ। घाबरली यशोदा वेल्हाळ। मंदिरामाजीं पाहात। ७९ मागुती धांवे आंगणीं। म्हणे कोठें गेला चक्रपाणी। आळोआळीं नंदराणी। धुंडीत हिंडे हरीतें। १८० हिंडली संपूर्ण गोकुळ। परीं ठायीं न पडे घननीळ। गोपी धांवल्या सकळ। नंदमंदिरीं तेधवां। ८१ यशोदा परतोनि आली मंदिरीं। हृदय पिटीत दोहीं करीं। म्हणे मी आतां कडेवरी। घेतला होता श्रीकृष्ण। ८२ पृथ्वीमाजी अदृश्य जाहला। कीं गंधर्वीं उचलोनि नेला। म्हणोनि यशोदा वेल्हाळा। शोक करीत अद्भुत। ८३ आंगणीं असोनि श्रीहरी। परी न दिसे तिच्या नेत्रीं। जन

(तब) कृष्ण बोले, ‘ री जननी (माँ), मुझे झट से गोद में उठा लो, तुम आँगन में खड़ी रह जाओ, मैं क्षण-भर खेलूँगा ’। ७६ धन्य है, धन्य है नन्द का वह आँगन, जहाँ मनमोहन कृष्ण खेला करते थे। तब जगज्जीवन कृष्ण नीलम-जटित भूमि पर लीलया जाकर बैठ गये। ७७ कृष्ण तो केवल घन-नील (वर्ण के) थे, (और) वह भूमि नीलम-जटित कान्तिमान (चमकीली) थी। उन दोनों ही का रूप एक तथा निर्मल था— उनमें भिन्नता नहीं दिखायी दे रही थी। ७८ घन-नील कृष्ण के समीप होने पर भी (उनके दिखायी न दिये जाने के कारण) माता बोली— ‘ बच्चे का क्या हुआ (बच्चा कहाँ गया) ? ’ (फिर) यशोदा सुन्दरी भयभीत हो उठी। वह घर के अन्दर देखने लगी। ७९ फिर से वह आँगन में दौड़ी और बोली, ‘ चक्रपाणि कहाँ गया ? ’ नन्द की रानी (स्त्री यशोदा) गली-गली में कृष्ण को ढूँढ़ती हुई घूम रही थी। १८० वह सम्पूर्ण गोकुल में घूम चुकी, परन्तु घन-नील कृष्ण का पता न चला। उस समय समस्त गोपियाँ नन्द के घर के अन्दर दौड़ी आयीं। १८१ (इधर) यशोदा (भी) लौटकर घर के अन्दर आ गयी। वह दोनों हाथों से छाती पीट रही थी। वह बोली, ‘ मैंने श्रीकृष्ण को अभी गोद में उठा लिया था। ८२ (क्या) वह पृथ्वी में (समाकर) अदृश्य हो गया; अथवा (क्या) उसे गन्धर्व उठाकर ले गये। ’ ऐसा कहते हुए सुन्दरी यशोदा अद्भुत (रूप से) शोक करने लगी। ८३ आँगन में श्रीकृष्ण के होते हुए भी वे उसके नेत्रों को नहीं दिखायी दे रहे थे। इसी प्रकार (भगवान के निकट होने पर भी) लोग मोहित हो जाते हैं (और उन्हें न देखने पर उनकी प्राप्ति के लिए) नाना (प्रकार की) साधनाएँ करते रहते हैं। ८४

भुलले याचपरी। नाना साधनें भजती हो। ८४ जवळी असोन जगज्जीवन। कां सेविती थोर विपिन। निराहार पंचाग्निसाधन। नाना यज्ञ करिती एक। ८५ एक घेती वायुआहार। एक नग्न मौनी जटाधर। एक हिंडती दिगंबर। परी श्रीधर न सांपडे। ८६ शम दम अष्टांगसाधन। नानाव्रताचरण तीर्थाटन। एक वेदाभ्यासीं शास्त्रीं निपुण। परी तें निधान न सांपडे। ८७ ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम। वानप्रस्थ चतुर्थाश्रम। परी ठायीं न पडे मेघश्याम। व्यर्थ श्रम पावती ते ८८। न करितां सारासारविचार। टांगून घेती पिती धूर। संतांस न पुसती पामर। व्यर्थ गिरिकंदर सेविती। ८९ अभ्यासिल्या चतुर्दश विद्या। परी नेणती त्या जगद्वंद्या। तरी विद्या तेचि अविद्या। ब्रह्मविद्या जया नाहीं। १९० हरिप्राप्तीविण

जगज्जीवन (भगवान) के निकट होने पर भी (लोग) बड़े (-बड़े) वन में क्यों रहते हैं (और उनकी प्राप्ति के लिए साधनाएँ करते हैं) ? वे (क्यों) निराहार रहते हैं, पंचाग्नि साधना करते हैं; कोई-कोई नाना यज्ञ (क्यों) करते हैं ? । ८५ कोई एक वायु-सेवन करते हैं; कोई एक नंगे रहते हैं, मौन धारण करते हैं, जटाधारी हो जाते हैं, कोई एक दिगम्बर (नग्न) रहकर विचरण करते हैं; फिर भी उन्हें श्रीहरि नहीं मिलते। ८६ कोई एक शम, दम तथा अष्टांग (योग-) साधना[1] करते हैं, नाना व्रतों का आचरण करते हैं, तीर्थाटन (तीर्थ-स्थलों की यात्रा) करते हैं। कोई एक वेदों के अध्ययन में, शास्त्रों में निपुण होते हैं; फिर भी उन्हें भगवत्-स्वरूप निधान (धन-भण्डार) नहीं प्राप्त हो जाता। ८७ कोई-कोई ब्रह्मचर्य (का पालन), गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और चौथे आश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम का आचरण करते हैं; परन्तु मेघश्याम (भगवान) उन्हें नहीं प्राप्त होते। वे व्यर्थ ही श्रम (थकावट) को प्राप्त हो जाते हैं। ८८ कोई-कोई सार-असार विवेक नहीं करते हुए (अपने आपको) उल्टे लटकाते हैं और धुआँ पीते हैं (धूम्रपान करते हैं)[2]। सन्तों से (भगवत्-प्राप्ति के मार्ग के बारे में) वे पामर नहीं पूछते और व्यर्थ ही पर्वत की कन्दरा (गुफा) का आश्रय कर लेते हैं (पर्वत की गुफा में रहते हैं)। ८९ उन्होंने चौदह विद्याओं[3] का अध्ययन तो किया है; फिर भी वे उन जगद्-वंद्य भगवान को नहीं जान पाते। अतः जिसे ब्रह्म-विद्या (प्राप्त) नहीं है,

---

१ अष्टांग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

२ धूम्रपान—योगियों द्वारा अपनाया जानेवाला तपस्या का एक प्रकार। इसमें साधक योगी अपने आपको आग (धुनी) पर उल्टा लटका लेता है और श्वास द्वारा धुआँ पी लेता है।

३ चौदह विद्याएँ—देखिए टिप्पणी १, पृ० ३४, अध्याय १-४

कोरडें ज्ञान। तयाचें नांव अज्ञान। भगवत्प्राप्तीविण दावी भजन। तें सोंग जाण नटाचें। ९१ कृष्णप्राप्तीविण कर्म। तो तयासी पडिला भ्रम। हरिप्राप्तीविण धर्म। तोच अधर्म जाणावा। ९२ हरिप्राप्तीविण कीर्तन। वाउगेंच काय करून। कोल्हाटी शस्त्र दावी झळकावून। परी रणपंडित नव्हे तो। ९३ जैसी मैंदाची शांति जाण। कीं बकाचें जैसें ध्यान। कीं पारध्याचें गायन। कीं मुखमंडण वेश्येचें। ९४ कीं बेगडीचे केले नग। कीं पतंगाचा क्षणिक रंग। तैसी कृपा न करितां श्रीरंग। सर्व साधनें व्यर्थचि। ९५ आंगणीं असोन जगज्जीवन। व्यर्थ गोपी गेल्या भुलोन। मृगनाभीं कस्तूरी असोन। तया ज्ञान नव्हे तें। ९६ नाकींचें मोतीं सुढाळ। गळां धाली एक वेल्हाळ। तें विसरूनि तत्काळ। घरीं केर शोधीतसे। ९७ तैसी यशोदा म्हणे सकळ सदनें। शोधिलीं म्यां

उसके लिए अन्य (कोई भी) विद्या अविद्या ही हो जाती है। ९० बिना हरि की प्राप्ति के (पाया हुआ आत्म-) ज्ञान रूखा हो जाता है —उस (ज्ञान) का नाम अज्ञान है। (यदि) कोई बिना भगवत्-प्राप्ति के भक्ति प्रदर्शित कर रहा हो, तो उसे अभिनेता या नट द्वारा धारण किया हुआ स्वाँग समझिए। १९१ (यदि) बिना कृष्ण की प्राप्ति के कर्म (किया जा रहा) हो, तो वह उस (कर्ता) को हुआ भ्रम है। बिना हरि की प्राप्ति के धर्म (आचरित) हो, तो उसी को अधर्म समझें। ९२ बिना हरि की प्राप्ति के व्यर्थ ही (हरि-) कीर्तन करने से क्या होगा ? नट (कलाबाज़) हथियार को सान चढ़ाते हुए चमकाकर दिखाये, तो भी वह कोई रण (-विद्या)-पण्डित, अर्थात् कुशल योद्धा तो नहीं है। ९३ समझिए कि जैसी पाखण्डी की शान्ति (व्यर्थ) होती है, अथवा बगुले का (धारण किया) ध्यान (व्यर्थ) होता है, अथवा बहेलिया का गायन (व्यर्थ) होता है, अथवा वेश्या के मुख की शोभा (अर्थहीन) होती है, अथवा पत्नी के आभूषण बनाये हुए हों, (तो वे व्यर्थ होते हैं) अथवा पतंग (बक्कम)[1] से बनाया रंग क्षणिक होता है, वैसे ही श्रीरंग भगवान द्वारा कृपा न करने पर (साधक द्वारा की हुई) समस्त साधनाएँ व्यर्थ ही होती हैं। ९४-९५ आँगन में जगज्जीवन कृष्ण के होने पर भी गोपियाँ व्यर्थ ही मोहित हो गयीं। मृग की नाभि में कस्तूरी के होने पर भी उस (मृग) को उसका ज्ञान नहीं होता। ९६ किसी स्त्री की नाक में पहना हुआ मोती तेजस्वी है, अथवा किसी सुन्दरी ने (तेजस्वी मोती) गले में पहन लिया परन्तु यह तत्काल भूलकर (उसे खोया समझते हुए) वह घर में कूड़े-करकट में ढूँढ़ रही है। ९७

---

१ पतंग या पत्तांग, जिसे 'बक्कम' भी कहते हैं, एक वृक्ष विशेष है; इससे गुलाल-सा रंग बनाते हैं; परन्तु यह रंग पक्का नहीं होता; वह क्षणिक होता है। धूप में वह फीका हो जाते हुए नष्ट हो जाता है।

हरिकारणें। स्थूल लिंग कारण महाकारणें। शोधोनियां पाहिलीं। ९८ अवस्थाभोग गुणखाणी। चारी अभिमान चारी वाणी। पिंडब्रह्मांडींचीं तत्त्वें शोधूनी। हरीलागीं पाहिलीं म्यां। ९९ वेदशास्त्रें पुराणें। नाना ग्रंथ नाना साधनें। उपरमाडिया हरीकारणें। षट्चक्रांच्या शोधिल्या। २००

उसी प्रकार, यशोदा बोली, मैंने हरि के लिए समस्त घर ढूँढ़ लिए; स्थूल, लिंग, कारण, महाकारण[1] में खोजकर देखा। ९८ मैंने हरि के लिए अवस्थाओं[2], भोगों[3], गुणों[4], खानों[5], चारों अभिमानों[6], चारों वाणियों[7], पिण्ड और ब्रह्माण्डों के तत्वों में खोजकर देखा। ९९ वेद, शास्त्र, पुराण, नाना (प्रकार के) ग्रन्थ, नाना साधनाएँ, छहों चक्र[8] रूपी अटारियाँ हरि (की प्राप्ति) के लिए ढूँढ़ लीं। २०० [कवि यह सूचित करना चाहता है कि भगवान तो हमारे पास ही होते हैं, परन्तु यह हम अज्ञान-वश नहीं जानते। उसे कहीं अन्यत्र स्थित समझकर उनकी प्राप्ति के लिए इधर-उधर घूमते रहते हैं, अनेक प्रकार की साधनाएँ करते रहते हैं; वेद, शास्त्र, पुराण आदि का पारायण करते हैं; फिर भी हमें भगवान की प्राप्ति नहीं होती, जैसे कृष्ण तो आँगन में ही थे, फिर भी यशोदा उन्हें देख नहीं सकी। कृष्ण भी उसी प्रकार, अणु-अणु में अदृश्य रूप से समाये हुए हैं।]

---

१ स्थूल, लिंग, कारण, महाकारण—साधना के क्षेत्र में देह के ये चार भेद माने गये हैं। वस्तु मात्र की पंचभूतात्मक (जड़) देह को 'स्थूल' देह कहते हैं। मन बुद्धि, दस इन्द्रियों और पाँच प्राणों से (कुल सत्रह तत्त्वों से) बनी देह सूक्ष्म देह या लिंग देह कहाती हैं। यह वासनात्मक होती है। अज्ञान तथा अविद्या का अधिष्ठान जो देह है, उसे कारण देह कहते हैं। महाकारण देह पूर्ण विशुद्ध, ज्ञानमय, सत्त्वगुण से युक्त होती है।

२ अवस्थाएँ (चार)—जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न और तुरीया।

३ भोग (चार)—स्थूल, प्रविक्त, आनन्द भोग और आनन्दावभास भोग।

४ गुण (चार)—सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण (और शुद्ध सत्त्वगुण)।

५ खानें (चार)—जारज, स्वेदज, अण्डज और उद्‌भिज।

६ अभिमान (तीन)—सात्त्विक, राजस और तामस। अथवा मन, बुद्धि, अहंकार और बुद्धि नामक अन्तःकरण की चार प्रवृत्तियाँ।

७ चार (वाणियाँ)—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी।

८ छः चक्र—योगशास्त्र के अनुसार शरीर में नीचे लिखे अनुसार छः चक्र स्थित माने गये हैं—

मूलाधार चक्र या पृथ्वी चक्र (गुद-द्वार और वृषण के बीच),
स्वाधिष्ठान चक्र या आपचक्र (जननेन्द्रिय के ऊपर परन्तु नाभि के नीचे)
मणिपुर चक्र या अग्निचक्र (नाभि में)
अनाहत चक्र या वायुचक्र (हृदय-स्थान में)
विशुद्धिचक्र या आकाशचक्र (कण्ठ में)
आज्ञाचक्र या मनश्चक्र (भौंहों के बीच)

यशोदा म्हणे करूं काय। कैसी मज हरिप्राप्ती होय। कोणाचे गे धरूं पाय। कृष्णप्राप्तीकारणें। २०१ नंद आला आंगणांत। तों यशोदा करीतसे आकांत। भोंवत्या गौळिणी रडत। कृष्णनाथ पाहतसे। २ मग म्हणे जगज्जीवन। माया तत्काल सोडील प्राण। नीलबंदभूमीवरून। दुडदुडां हरि धांविन्नला। ३ तो नंदें देखिला अकस्मात। धांवोनि सप्रेम हृदयीं धरीत। यशोदा गौळिणी समस्त। जवळी धांवती तेधवां। ४ मायेसी फुटला प्रेमपान्हा। आडवें घेतलें राजीवनयना। म्हणे बापा जगज्जीवना। कोठें गेला होतासी। ५ कृष्ण म्हणे वो जननी। मी येथेंच होतों आंगणीं। यशोदेचें निजमनीं। ब्रह्मानंद उचंबळला। ६ घरांत घेऊन गेली कृष्णा। पहुडविला हृदयपाळणां। शुक म्हणे कुरुभूषणा। हरिलीला अद्‌भुत। ७ जनमेजयासी म्हणे वैशंपायन। अगाध गौळियांचें पूर्वपुण्य। अवतरला इंदिराजीवन। पावन केले समस्तां। ८ श्रीकृष्णकथा रत्नखाणी। उघडली पूर्वपुण्येंकरूनी। येथींचे जोहारी संतज्ञानी।

यशोदा बोली, '(अब) मैं क्या करूँ ? मुझे (पुनः) हरि कैसे प्राप्त होगा ? री, हरि की प्राप्ति के लिए मैं किसके पाँव लगूँ (किसकी शरण में जाऊँ) ?'। २०१ (इतने में) आँगन में नन्द आ गये। (तब) यशोदा दारुण रुदन कर रही थी; चारों ओर गोपियाँ रो रही थीं। कृष्णनाथ यह देख रहे थे। २ फिर जगज्जीवन कृष्ण ने कहा (सोचा)— 'माँ (अब) तत्काल प्राण त्याग देगी'। (इस विचार से) कृष्ण नीलम-जटित भूमि पर से उछलते-फुदकते दौड़े। ३ तब नन्द ने अकस्मात उन्हें देखा और दौड़कर उन्होंने उन्हें प्रेम-पूर्वक हृदय से लगा लिया। (यह देखकर) उस समय यशोदा और समस्त गोपियाँ उनके पास दौड़ीं (दौड़ते हुए गयीं)। ४ माता (यशोदा) के स्तनों में से दूध चूने लगा। उसने राजीव-नयन कृष्ण को (स्तन-पान कराने के हेतु) गोद में (लिटा) लिया और वह बोली, 'अरे, तात, जगज्जीवन, तू कहाँ गया था ?'। ५ तो कृष्ण बोले— 'अरी माँ, मैं यहीं आँगन में था'। (यह सुनते ही) यशोदा के अपने मन में ब्रह्मानन्द उमड़ उठा। ६ (तदनन्तर) वह कृष्ण को घर के अन्दर ले गयी और उसने उन्हें हृदयरूपी पालने में पौढ़ा दिया। २०६½

शुकजी बोले, हे कुरु-कुल-भूषण (राजा परीक्षित), हरि की लीला (इस प्रकार) अद्‌भुत है। २०७

वैशम्पायनजी जनमेजय से बोले— 'उन गोपों का पूर्व (-जन्म में किया) पुण्य अथाह है। (इसलिए उनके यहाँ) इन्दिरा-जीवन भगवान विष्णु अवतरित हो गये और उन्होंने सबको पावन कर दिया। ८ श्रीकृष्ण की कथा (मानो) रत्नों की खान है, जो पूर्व-पुण्य के बल पर खुल गयी है। उसे यहाँ के जौहरी (-स्वरूप) सन्त तथा ज्ञानी अपने नयनों से देख

निजनयनीं पाहती ते । ९ नाना दृष्टांत साहित्यरचना । हीं रत्नें अमोलिक जाणा । सभाग्य पाहोनि नयनां । निजहृदयीं संग्रहिती । २१० जे अभाविक अभाग्य अत्यंत । त्यांस नावडे हरिविजय ग्रंथ । ग्रंथरूपें यथार्थ । भीमरथी केवळ हे । ११ हरिविजय ग्रंथ पूर्ण । चंद्रभागा मध्यें निजजीवन । तो हा पंचमाध्याय जाण । येथें स्नान भक्त करिती । १२ या तीर्थी करितां स्नान । प्रत्यक्ष होय पांडुरंगदर्शन । उभा कटीं कर ठेवून । स्वामी माझा तिष्ठतसे । १३ भीमातीरीं दिगंबरा । श्रीब्रह्मानंद विश्वंभरा । जगद्वंद्या श्रीधरवरा । निर्विकारा अभंगा । १४ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंश भागवत । चतुर श्रोते परिसोत संत । पंचमाध्याय गोड हा । २१५

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

रहे हैं । ९ नाना दृष्टान्तों से युक्त यह साहित्य-रचना है— ये (दृष्टान्त रूपी) रत्न अमूल्य समझिए । भाग्यवान लोग उन्हें अपने नयनों से देखकर अपने हृदय में संग्रहीत कर लेते हैं । २१० जो श्रद्धा भाव-हीन हैं, वे अत्यन्त अभागे हैं । उन्हें श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ नहीं भाएगा । इस ग्रन्थ के रूप में यह वस्तुतः भीमा नदी (ही यहाँ प्रवाहित हो रही) है । २११ श्रीहरि-विजय नामक यह पूर्ण ग्रन्थ चन्द्रभागा (भीमा नदी) है । उसके अन्दर चिन्मय-स्वरूप जीवन अर्थात् जल है । समझिए कि वह यह पाँचवाँ अध्याय है । यहाँ भक्त स्नान करते हैं । १२ इस तीर्थ (-जल) में स्नान करने पर प्रत्यक्ष भगवान पाण्डुरंग (विट्ठल-कृष्ण) के दर्शन हो जाते हैं । मेरे वे स्वामी कटि पर हाथ धरे खड़े प्रतिष्ठित हैं । १३ हे भीमा-तट पर (प्रतिष्ठित) दिगम्बर, पिता और गुरु ब्रह्मानन्द के रूप में प्रस्तुत आनन्द-स्वरूप ब्रह्म, हे विश्वम्भर, हे जगद्-वन्द्य, हे श्रीधर के वर-दाता, हे निर्विकार, हे अभंग (अच्छेद्य भगवान, आपकी जय हो)। १४

।। इति ।। श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश (नामक ग्रन्थ) और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । चतुर श्रोता सन्त उसके इस मधुर पाँचवें अध्याय का श्रवण करें । २१५

।। श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

अध्याय—६

कृष्ण की बाल-लीलाएँ

श्रीगणेशाय नमः । जय जय निजजनमानसमराळा । अनंतवेषा त्रैलोक्यपाळा । भक्तजनांसी अगाध लीला । गोकुळामाजीं दाविसी । १

श्रीगणेशाय नमः । हे अपने भक्तजनों के मनरूपी मानसरोवर के हंस, हे अनन्त-वेश (अर्थात् असंख्य रूप जिनके हैं, ऐसे भगवान), हे (स्वर्ग,

जय जय पूतनाप्राणशोषका। तृणावर्तशकटांतका। जांभई देतां रमानायका। विश्वरूपा दाविलें। २ जय कृष्णा निगमागमसारा। अनंतरूपा नंदकुमारा। जय पयोब्धिहृदयविहारा। दिगंबरा बाळवेषा। ३ घननीळा नीळबंध-भूमीसी। जवळी असोनि न दिससी। जरी तूंच कृपावंत होसी। तरीच येसी प्रत्यया। ४ असो पंचमाध्यायाचे अंतीं। नीळबंधभूमीवरी श्रीपती। खेळोनि लीला विलासरीतीं। मायेप्रती दाविली। ५ एके दिवशीं प्रातः काळीं। कृष्ण घेऊनि बैसला आळी। मातेस म्हणे वनमाळी। सूर्य आणीं खेळावया। ६ बरा वर्तुळ दिसतो तारणी। कंदुक करूनि दे मज जननी। म्हणवोनि लोळणी धरणीं। धराधरशयन घालीतसे। ७ यशोदा म्हणे माझे आई। सूर्य कैसा देऊं गे कान्हाई। म्हणवोनि कडेवरी लवलाहीं। यशोदेनें घेतला। ८ माता म्हणे सखया। आणिक मागें खेळावया। तरी चंद्रबिंब

मृत्यु और पाताल नामक) तीनों लोकों के पालनकर्ता, (आपकी) जय हो, जय हो। (आपने) गोकुल में भक्तजनों को अथाह लीला दिखा दी। १ हे पूतना राक्षसी के प्राणों का (स्तन-पान करने के बहाने) शोषण करने वाले, हे तृणावर्त और शकट (नामक असुरों) का अन्त कर देनेवाले, (आपकी) जय हो, जय हो। हे रमा-नायक (लक्ष्मी-पति भगवान विष्णु के अवतार), आपने जमुहाई लेते-लेते (माता यशोदा को अपना) विश्व-रूप दिखा दिया। २ हे कृष्ण, हे निगमागम (वेदों) के सार (-भूत-तत्त्व), हे अनन्त-रूप (-धारी), हे नन्द-कुमार, (आपकी) जय हो। हे (क्षीर-) सागर के हृदय में (अर्थात अन्दर) विहार करनेवाले, हे दिगम्बर, हे बाल-रूप (में अवतरित कृष्ण), जय हो। ३ हे घन-नील, नीलम-जटित भूमि पर निकट रहने पर भी आप (माता यशोदा तथा अन्य लोगों को) नहीं दिखायी दिये। (वस्तुतः) यदि आप ही (किसी के प्रति) कृपावान हो जाते हैं, तो ही आप (उसे) अनुभव हो आते हैं—अर्थात आपके अस्तित्व का (उसकी) नयनादि ज्ञानेन्द्रियों को अनुभव हो आता है। ४ अस्तु। पाँचवें अध्याय के अन्त में (यह कहा गया है कि) नीलम-जटित भूमि पर श्रीपति कृष्ण ने खेलते-खेलते मनोरंजक ढंग से (अपनी) माता को लीला दिखा दी। ५ (तदनन्तर) एक दिन प्रातःकाल में कृष्ण हठ करके बैठे (अर्थात कृष्ण ने हठ किया)। (उस समय) वनमाली माता से बोले, 'खेलने के लिए सूर्य लाओ। ६ (वह) सूर्य अच्छा गोल दिखायी दे रहा है; री माँ, मुझे (उसकी) गेंद बनाकर दे दो।' (ऐसा) कहते हुए वे शेष-शायी (भगवान के अवतार कृष्ण) भूमि पर लोटने-पोटने लगे। ७ (यह देखकर) यशोदा बोली, 'अरी मेरी मैया, रे कन्हाई, (तुझे मैं) सूर्य कैसे दूँ?' (ऐसा) कहते हुए यशोदा ने उन्हें झट से गोद में उठा लिया। ८ माता (यशोदा फिर) बोली,

लवलाह्या। काढूनि देईं रांजणींचें। ९ तों माता म्हणे कृष्णातें। तें कैसें मी देऊं तूतें। तरी डेरियामाजी घुमतें। तेंच काढूनि देईं कां। १० नलगे रवि दंड डेरा। काढूनि दे आंतील घुमारा। माता म्हणे रे सुकुमारा। काढितां न ये सर्वथा। ११ तरी पर्वत उचलोनि आणवीं। देव देव्हारींचे बोलवीं। समीराच्या दाखवीं। झुळुका मज नयनीं वो। १२ दे नयनांतील बाहुली। तूं जाईं ठेवूनि सांउली। आरशांतील मुख ये वेळीं। काढूनि देईं जननीये। १३ काढूनि दे मुक्तांचा ढाळ। वेगळी करीं रत्नांची कीळ। आकाश जें घटांतील। काढूनियां मज दावीं। १४ पुढती लोळण घाली घननीळ। माता म्हणे आला रे बागुल। महाभ्यासुर विक्राळ। पांच तोंडें तयासी। १५ माथां जटांचे भार। तृतीयनयनीं वैश्वानर। शिरीं झुळझुळ वाहे नीर। भयंकर महाजोगी। १६ चंद्रकळा तयाचें शिरीं। नीळकंठ खट्वांग करीं। भस्म चर्चिलें शरीरीं। गजचर्म पांघुरला। १७ नेसलासे व्याघ्रांबर। गळां मनुष्यरुंडांचे हार। सर्वांगीं वेष्टिले फणिवर।

'अरे सखा, (कुछ) और (दूसरा) माँग ले खेलने के लिए'। (तो वे बोले) —'घड़े के अन्दर का चन्द्र-बिम्ब झट से निकालकर दे दो।'। ९ तब माता ने कृष्ण से कहा, 'मैं तुझे वह कैसे दे दूँ ?' (इस पर वे बोले) —'तो (जो) मटके में गूँज रहा है, वही निकालकर दे दो। १० (मुझे) मथानी, (उसका) दण्ड, मटका आवश्यक नहीं है— (मुझे तो) अन्दर का नाद (ध्वनि) निकालकर दे दो।' (इस पर) माता ने कहा, 'अरे सुकुमार (बच्चे), वह तो बिलकुल नहीं निकाला जा सकता'। ११ (कृष्ण बोले) —'(तब) तो पर्वत को उठवाकर लिवा लाओ, देवघरे के देवों को बुलाओ; अरी, मुझे मेरी आँखों से वायु के झोंके दिखला दो (देखने दो)। १२ आँख की पुतली (निकालकर) दे दो। तुम अपनी परछाईं को रखकर जाओ। री माँ, दर्पण (शीशे) में से (प्रतिबिम्बित) मुँह इस समय निकालकर दे दो। १३ मोतियों का तेज निकालकर दे दो; रत्नों की कान्ति अलग कर दो (करके दो)। घट के भीतर जो आकाश (प्रतिबिम्बित) है, वह निकालकर मुझे दिखा दो।' १४ ऐसा कहते हुए कृष्ण (यशोदा के) सामने लोट-पोट हो रहे थे। तो माता ने कहा, 'अरे (देखो), डरावा (हौआ) आ गया। वह महा भयावह, विकराल है। उसके पाँच मुँह हैं। १५ उसके सिर पर जटाओं के भार (सम्भार, बोझ) हैं; उसके तीसरे नयन में आग है; सिर पर से झर-झर पानी बह रहा है— वह डरावना महाजोगी है। १६ उसके सिर पर चन्द्र-कला है; उसका कण्ठ नीला है; उसके हाथ में खट्वांग (नामक एक विशिष्ट प्रकार का आयुध) है। उसके शरीर में भस्म लगाया हुआ है और वह गज-चर्म (हाथी का चमड़ा, गजछाला) ओढ़े हुए है। १७ वह बघ-छाला

दश भुजा मिरवती । १८ त्यास देखतांचि सळिजे । कां उठोनि तत्काळ पळिजे । कृष्णा तूं उगाचि निजें । जोगी बाहेर उभा असे । १९ जोगी तो काळाचाही काळ । क्रोधी जैसा वडवानळ । मुष्टींत हें ब्रह्मांड सकळ । धरूनियां रगडी पैं । २० हरि म्हणे वो जननी । मी रडतों त्याचलागोनी । ऐसा तो जोगी नयनीं । मज आतांचि दाखवीं । २१ जो क्षीराब्धिवासी शेषशायी । तो गडबडां लोळे ते समयीं । माय हरीस धरी हृदयीं । समजावीत सप्रेम । २२ परी न राहे सर्वथा । म्हणे मज जोगी दावीं आतां । मग म्हणे यशोदा माता । कैसें यास करावें । २३ मग तळघरीं अंधारीं । त्यामाजी गुंफा ओवरी । श्रीकृष्णासी झडकरी । नेलें तेथें मायेनें । २४ माता म्हणे जोगी आहे येथें । हरि म्हणे त्यापासीं नेईं मातें । यशोदा म्हणे तेथें । भयभीत होसी तूं । २५ मग म्हणे कमलोद्भवपिता । मी न भीं माते सर्वथा । परी मज जोगी आतां । कैसा आहे दाखवीं । २६ मातेनें हरीस आंत नेलें । तों ब्रह्मांड अवघें उजळलें । कैंचा अंधार

अर्थात् व्याघ्र-चर्मरूपी वस्त्र पहने हुए है । उसके गले में मनुष्यों के मुण्डों (कटे मस्तकों) के हार हैं । उसने अपने समस्त अंगों में बड़े-बड़े साँप लपेट लिये हैं । उसकी दस भुजाएँ शोभायमान हैं । १८ उसे देखते ही भयभीत हो जाएँ अथवा उठकर तत्काल भाग जाएँ । अरे कृष्ण, तू तो चुपचाप सो जा । वह जोगी बाहर खड़ा है । १९ वह जोगी तो काल का भी काल है; वह वड़वानल जैसा क्रोधी है । वह मुट्ठी में इस समस्त ब्रह्माण्ड को पकड़कर, दबाकर (चूरचूर कर) सकता है '। २० (यह सुनकर) हरि बोले, ' अरी माता, मैं तो उसके लिए ही रो रहा हूँ । (हठ करते हुए रो रहा हूँ) । मुझे ऐसा वह जोगी अभी मेरी आँखों से देखने दो (दिखा दो) '। २१ जो क्षीरसागर के निवासी हैं, जो शेष-शायी (शेषनाग पर शयन करनेवाले) हैं, वे (भगवान विष्णु के अवतार) उस समय लोट-पोट रहे थे । माता (यशोदा) ने उन हरि को हृदय से लगा लिया और वह उन्हें प्रेम से समझाने लगी । २२ परन्तु वे तो बिलकुल (चुप) नहीं हो रहे थे । वे बोले, ' मुझे वह जोगी अब दिखा दो । ' तब यशोदा माता बोली, ' (अब) इसे किस प्रकार (चुप) कर लें ? । २३ फिर तल-घरे के अन्दर अँधेरे में गुफा जैसा ओसारा था । माता (यशोदा) श्रीकृष्ण को वहाँ झट से ले गयी । २४ फिर माता बोली, ' वह जोगी यहाँ है । ' तो हरि ने कहा, ' मुझे उसके पास ले चलो । ' (इस पर) यशोदा ने कहा, ' तू (वहाँ जाकर) भयभीत हो जाएगा '। २५ तब (कमलोद्भव अर्थात) ब्रह्मा के पिता (भगवान) विष्णु के अवतार कृष्ण बोले, ' अरी माँ, मैं तो बिलकुल नहीं डरता । फिर भी, मुझे अब दिखा दो— वह जोगी कैसा है '। २६ (तदनन्तर)

प्रकाशलें। कृष्णरूप चहूंकडे। २७ गृहस्तंभ उथाळीं भिंती। पाहतां मायेसी न दिसती। जगन्निवासें निश्चितीं। चहूंकडे व्यापिलें। २८ पृथ्वी आप अंबर। अग्नि समीर समुद्र। नाना जीवजातिविकार। कृष्णरूप दिसताती। २९ आपआपणासी यशोदा विसरे। सर्वही व्यापिलें यादवेंद्रें। तळघराबाहेर त्वरें। माय आली तेधवां। ३० मायेवरी माया घातली। अद्भुत महिमा ते विसरली। मग म्हणे रे वनमाळी। नसती आळी घेऊं नको। ३१ पुढें दिधलें खेळवणें। कृष्ण म्हणे न घें चालवणें। मज तो जोगी दाखवणें। पंचवदन विरूपाक्ष। ३२ तों बळिभद्र पातला। श्रीरंगास म्हणे ते वेळां। चाल बाहेर गोपाळा। खेळ खेळों विचित्र। ३३ ऐकतांचि ऐसें वचन। गदगदां हांसे जगज्जीवन। कडेखालीं उतरोन। हात धरी बळिरामाचा। ३४ दोघे दुडदुडां धांवती। राजबिदीस उभे राहती। धाकटे गोपाळ मिळती। रामकृष्णांभोंवते। ३५ लपंडाई चेंडू चक्रें विचित्र।

माता हरि को अन्दर ले गयी, तब समस्त ब्रह्माण्ड उज्ज्वल हो उठा। अँधेरा कैसा ? कृष्ण का रूप चारों ओर प्रकाशमान हो रहा था (कृष्ण के रूप से चारों ओर प्रकाश फैल गया था)। २७ घर के खम्भे, (उनके) तलाधार, भित्तियाँ (दीवारें) देखते रहने पर भी माता यशोदा को नहीं दिखायी दे रहे थे। जगन्निवास भगवान (कृष्ण) ने निश्चय ही चारों ओर (जगत को) व्याप्त कर लिया था। २८ पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, समुद्र, नाना प्रकार के जीव उनके वर्ग और विकार (रूप) कृष्ण-रूप दिखायी दे रहे थे। २९ यशोदा स्वयं अपने आपको भूल गयी। (इस प्रकार) यादवेन्द्र (कृष्ण) ने सभी को व्याप्त कर लिया था। तब माता (यशोदा) तलघरे में से झट से बाहर आ गयी। ३० (फिर) कृष्ण ने अपनी माता पर माया बिछा दी (माता को माया-मोहित कर लिया), तो वह उस अद्भुत महिमा (प्रदर्शित करनेवाली लीला) को भूल गयी और अनन्तर वह बोली, 'अरे वनमाली, मनमाना हठ न कर'। ३१ (फिर) उसने उसे एक खिलौना दिया, तो कृष्ण बोले, 'मैं नहीं लूँगा— मुझे चला लेना, मुझे वह पंच-वदन (पाँच-मुखोंवाला) विरूपाक्ष (भयावह आँखोंवाला) जोगी दिखाना'। ३२ तब बलराम (वहाँ) आ पहुँचे। वे उस समय श्रीरंग (कृष्ण) से बोले, 'अरे गोपाल, चल बाहर, हम विचित्र (नया सुन्दर) खेल खेलें'। ३३ ऐसा वचन सुनते ही जगज्जीवन कृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे और गोद में से नीचे उतरकर उन्होंने बलराम का हाथ थाम लिया। ३४ वे दोनों उछलते-फुदकते दौड़ते हुए चल दिये। (फिर) वे दोनों राज-पथ पर खड़े रह गये (ठहर गये)। (यह देखकर) छोटे-(छोटे) गोपाल, बलराम और कृष्ण के चारों ओर इकट्ठा हो गये। ३५ (तत्पश्चात्) जो कमल-नेत्र हैं,

खेळ खेळे पंकजनेत्र। जो पद्माक्षीवल्लभ उदार। जलजनाभ श्रीहरी। ३६
जो अनंतब्रह्मांडनायक। जो निजमोक्षाचा परिपाळक। जो अनंतवेषधारक।
जगव्यापक जगद्गुरु। ३७ जो भक्तवत्सल भयहारक। जो भवहृदय
भवभयनाशक। जो भगवंत निजभाग्यदायक। अभंग अक्षय पद ज्याचें। ३८
सवें गोपाळांची मांदी। खेळत जात ते राजबिदीं। शचीनायक भर्ग वा विधी।
लीला न कळे तयांतें। ३९ खेळ खेळतां श्रीहरी। रिघे एके गोपीचें मंदिरीं।
दधि दूध क्षणाभीतरीं। चोरोनियां भक्षिलें। ४० घृत नवनीत साय।
गोपाळांस देत लवलाहें। तेथूनि नकळत जाय। आणिकोचे गृहाप्रती। ४१
घरोघरींचें संचलें लोणी। हरी परी नेणेचि कोणी। अद्भुत तयाची करणी।
वेदशास्त्रांसी अगम्य। ४२ तें नंदयशोदेचें तप पूर्ण। कीं कमलोद्भवाचें
देवतार्चन। कीं तें नीलग्रीवाचें ध्यान। कृष्णरूप प्रकटलें। ४३ तें इंदिरेचें

जो पद्माक्षी (लक्ष्मी-) वल्लभ तथा उदार-चरित हैं, जो पद्मनाभ[1] श्रीहरि (नारायण) हैं, जो अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक (स्वामी) हैं, जो अपने भक्तजनों के मोक्ष के संरक्षक हैं। जो अनन्त वेशों (रूपों) के धारी हैं, जो जगद्-व्यापक तथा जगद्गुरु हैं, जो भक्त-वत्सल तथा (भक्तों के लिए) भयहारी हैं, जो शिवजी के लिए हृदय-स्वरूप हैं और संसार के भयों के नाशक हैं, जो भाग्यवान तथा अपने भक्तों के लिए भाग्यदायी (भाग्यविधाता) हैं, जिनका पद अभंग तथा अक्षय है, ऐसे वे कृष्ण लुका-छिपी, गेंद, चक्र जैसे विचित्र खेल खेलने लगे। ३६-३८ उनके साथ में गोपालों का समुदाय (दल) था। वे राजपथ पर खेलते जा रहे थे। उनकी लीला उन शची-पति इन्द्र, शिवजी अथवा विधाता ब्रह्मा की समझ में नहीं आ सकती। ३९ खेल खेलते-खेलते श्रीहरि एक गोपी के घर में पठ गये और उन्होंने क्षण में दही-दूध चुराकर खा लिया। ४० उन्होंने झट से घी, मक्खन, मलाई-गोपालों को दिया और वे वहाँ से किसी की समझ में न आते हुए दूसरी (गोपी) के घर चल दिये। ४१ उन्होंने घर-घर संचय किया हुआ मक्खन अपहृत किया, अर्थात् चुरा लिया, परन्तु कोई भी इसे नहीं जान पाया। उनकी करनी (ऐसी) अद्भुत है, वह वेदों और शास्त्रों को (तक) अगम्य है। ४२ (मानो) नन्द और यशोदा का (पूर्वकाल में किया हुआ) सम्पूर्ण तप, अथवा कमलोद्भव विधाता द्वारा किया हुआ देवों का पूजन, अथवा नीलकण्ठ[2] शिवजी द्वारा किया जाने

१ पद्म (कमल)-नाभ—पुराणों की मान्यता के अनुसार भगवान विष्णु की नाभि में से सृष्टि के आदिकाल में एक कमल उत्पन्न हुआ और उसमें से ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। इसलिए भगवान विष्णु या नारायण को पद्म (कमल)-नाभ कहते हैं। इस दृष्टि से भगवान विष्णु ब्रह्मा के पिता हैं।

२ नीलकण्ठ—जब देवों और दानवों ने अमृत के लिए समुद्र का मन्थन किया,

निजजीवन। तें वैकुंठपीठींचें निधान। कीं गौळियांचें पूर्वपुण्य। फळ आलें एकदांचि। ४४ कीं तें निगमागमांचें सार। कीं तें भक्तांचें निजमंदिर। कीं तें संतांचें प्रियकर। निजधन ठेवणें। ४५ कीं तें योगियांचें विश्राम-धाम। कीं निजजनमंगलपूर्णकाम। तो ब्रह्मानंद मेघश्याम। चोरी करी गोकुळीं। ४६ एके गोपीच्या मंदिरांत। गडियांसमवेत जगन्नाथ। रिघतां बोले मात। गोपाळांसी तेधवां। ४७ म्हणे सखे हो एक ऐका। पाउलें वाजूं देऊं नका। सांचोळ ऐकोनि गोपिका। जाग्या होतील निर्धारें। ४८ गडी म्हणती पूतनारी। वाळे नेपुरें वाजती गजरीं। चरणींचीं आंवरीं मुरारी। ऐकती सुंदरी मंदिरींच्या। ४९ आम्हांसी म्हणसी न वाजवा पाऊल। तव पदींच्या वांक्या करिती कोल्हाळ। हें ऐकोनि घननीळ।

वाला ध्यान कृष्ण के रूप में प्रकट हो गया था। ४३ वे लक्ष्मी के अपने जीवन-(स्वरूप पति) हैं; अथवा वे वैकुण्ठपीठ (स्थान) के धन-भण्डार हैं। अथवा उन गोपों का पूर्व (काल में किया हुआ) पुण्य एक बार जैसे-वैसे फल को प्राप्त हो गया है। ४४ अथवा वे निगमागम (वेदों) के सार (-तत्त्व) हैं, अथवा वे भक्तों के अपने (आश्रय-) घर (स्थान) हैं; अथवा वे सन्तों को प्रिय कर देनेवाले अपने धन की पूँजी (धरोहर) हैं। ४५ अथवा वे योगियों के विश्राम-स्थान हैं; अथवा वे अपने भक्तजनों का मंगल तथा उनकी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। ऐसे वे आनन्द-स्वरूप ब्रह्म (= ब्रह्मानन्द) मेघ-श्याम (कृष्ण) गोकुल में चोरी कर रहे थे। ४६ तब किसी एक गोपी के घर में (अपने) साथियों सहित प्रवेश करते हुए जगन्नाथ (कृष्ण) गोपालों से बोले। ४७ वे बोले, 'हे मित्रो, एक (बात) सुनो। पाँव बजने मत दो, आहट सुनते ही गोपियाँ निश्चय ही जागृत हो जाएँगी'। ४८ तो मित्र बोले, 'अरे पूतनारि (पूतना के शत्रु), पैंजने, नूपुर गर्जन के साथ बज रहे हैं। अपने पाँवों के (नूपुर आदि को), हे मुरारि[1], रोक लो। घरों में वे सुन्दरियाँ (नारियाँ) सुन रही हैं। ४९ हमसे कहते हो— पाँव मत बजने दो; (परन्तु) तुम्हारे

तब उसमें से हलाहल नामक महादारुण विष निकला। उसकी दाहकता से जब सबको आँच लगने लगी, सृष्टि झुलसने लगी। यह देखकर प्रजापति तथा देवों ने शिवजी की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर जगत की रक्षा के हेतु शिवजी ने उस विष को खा लिया। उसकी दाहकता से शिवजी का कण्ठ नीला पड़ गया। तब से वे नीलकण्ठ (नीलग्रीव) कहलाने लगे।

१ मुरारि—कश्यप और दनु के दानव पुत्रों में से मुर नामक एक पुत्र ने शिवजी को तपस्या करके प्रसन्न किया, तो उन्होंने उसे वर दिया— जिसके हृदय-स्थल पर तुम हाथ रखोगे, वह तत्काल मर जाएगा। श्वेतद्वीप में इससे कृष्ण का युद्ध हुआ। उसमें कृष्ण ने उसे उसका अपना हाथ छाती पर रखने को बाध्य किया और उसका वध किया। तब से कृष्ण को तथा कृष्ण रूपधारी भगवान विष्णु को मुरारि कहते हैं।

कर्णीं घाली आंगोळिया। ५० कर्णीं बोटें घालितां गोपाळें। बैसली त्रैलोक्याचीं टाळें। कृष्ण झांकी जेव्हां डोळे। तरी त्रिभुवन आंधळें होय पैं। ५१ एकाचि सूत्रमेळें। नाचवी ब्रह्मांडींचे पुतळे। जो अक्षय अभंग न चळे। काळ वेळ नाहीं जया। ५२ जैसीं अनेक जलचरें एक समुद्र। अनेक पक्षी परी एक अंबर। अनेक रस परी एक नीर। व्यापक श्रीवर तैसा हा। ५३ नाना अलंकार एक सुवर्ण। नाना घट एक मृत्तिका जाण। नाना पट परी एक तंतु पूर्ण। तैसा श्रीकृष्ण व्यापक। ५४ नाना दीप एक अग्नी। नाना किरण परी एक वासरमणी। नाना तरंग एक पाणी। शारंगपाणी तेवीं दिसे। ५५ ऐसा श्रीकृष्ण चाळक। जगद्वंद्य जगव्यापक। तेणें गोपीचें घृत लोणी सकळिक। भक्षिलें तीस न कळतां। ५६ सवें घेऊनि गोपाळां। आणिक गृहीं प्रवेशला। कोणासही न कळे लीला। श्रीकृष्णाची

पाँवों में बाँकें गर्जन कर रही हैं।' यह सुनते ही घननील (कृष्ण) ने कानों में अँगुलियाँ डाल दीं। ५० गोपाल द्वारा कानों में अँगुलियाँ डालते ही त्रिभुवन (के लोगों) के कानों में ताले पड़ गये। जब कृष्ण (अपनी) आँखों को बन्द कर लेते हैं, तब त्रिभुवन अन्धा हो जाता है। ५१ जो अक्षय हैं, अभंग हैं, जो चलायमान (वा विचलित) नहीं होते, जिनके लिए काल, तथा समय (के बन्धन) नहीं हैं, ऐसे वे (भगवान) एक ही सूत्र के मेल से ब्रह्माण्ड के पुतलों को नचाया करते हैं। ५२ जिस प्रकार जलचर (पानी में रहनेवाले प्राणी) अनेक होते हैं, (परन्तु) समुद्र एक ही होता है, (जिस प्रकार) पक्षी अनेक होते हैं, परन्तु आकाश एक ही होता है, रस अनेक होते हैं, परन्तु पानी एक ही होता है, उसी प्रकार (चराचर पदार्थ अनेक होते हैं, फिर भी उनको) व्याप्त करनेवाले श्रीवर (लक्ष्मी-पति भगवान एक मात्र होते) हैं। ५३ आभूषण अनेक होते हैं, (फिर भी) सोना एक (ही) होता है; घट (पात्र, भण्डे) अनेक होते हैं; (फिर भी) समझिए, मिट्टी एक (ही) होती है; वस्त्र अनेक होते हैं, परन्तु तन्तु (धागा) पूर्णतः एक होता है; उसी प्रकार (चराचर पदार्थ अनेक होते हैं, फिर भी) श्रीकृष्ण (उन सबमें) व्यापक हैं। ५४ दीपक अनेक होते हैं (परन्तु उनमें) अग्नि एक (ही) होती है; किरणें अनेक होती हैं, फिर भी सूर्य एक होता है; लहरें अनेक होती हैं, (परन्तु) पानी एक होता है; उसी प्रकार (चराचर वस्तुओं के लिए आधारभूत अकेले) शारंगपाणि (अर्थात् शाङ्र्ग नामक धनुष को धारण करनेवाले भगवान विष्णु— उनके अवतार श्रीकृष्ण) दिखायी देते हैं। ५५ ऐसे हैं श्रीकृष्ण (समस्त चराचर के) चालक (चलानेवाले); वे जगद्वन्द्य हैं, जगद्व्यापक हैं। उन्होंने उस गोपी का समस्त घी, मक्खन उसे विदित न होते हुए खा डाला। ५६ (तत्पश्चात्) गोपालों को साथ में लेकर (तदनन्तर) वे दूसरे घर में

अगम्य । ५७ एके दिवशीं माध्यान्हकाळीं । एके गोपीचें घरीं वनमाळी । रिघाला तंव ते वेल्हाळी । उदका गेली यमुनेतें । ५८ उदक घेऊनि आली सुंदरी । प्रवेशली जों निजमंदिरीं । तों एकलाचि पूतनारी । नवनीत भक्षीतसे । ५९ म्हणे कोण रे तूं येथें । चोरूनि भक्षिसी नवनीतातें । तों बोलिलें वैकुंठनाथें । चोरटी निश्चित तूंच पैं । ६० माझें मी भक्षीत नवनीत । तूं कोण पुसावया येथ । गोपी गदगदां हांसत । घर माझें कीं चोरटिया । ६१ कृष्ण म्हणे माझें म्हणतीस घर । परी बरवा करीं विचार । आपुलें नव्हे शरीर । मग घरदार कोणाचें । ६२ ऐसें बोले चक्रपाणी । गोपी विचार करी मनीं । कृष्ण बोलिला सत्य वाणी । नाशवंत सर्वही । ६३ जें जें दिसे तें तें नाशवंत । माझें म्हणावया मी कोण येथ । अविनाश एक भगवंत । अज अव्यय अढळ जो । ६४ नाशवंत अविद्यामय पिंड । क्षणिक सकळ ब्रह्मांड । अवघें मायामय वितंड । स्वप्नवत क्षणिक हें । ६५ शुक्तिकेचें रुपें काढिलें । वंध्यासुतें पात्र घडिलें ।

प्रविष्ट हो गये । श्रीकृष्ण की अगम्य लीला किसी की भी समझ में नहीं आयी । ५७ एक दिन मध्याह्न काल में (दुपहर के समय) वनमाली किसी एक गोपी के घर में (जब) प्रविष्ट हो गये, तब वह सुन्दरी (स्त्री) पानी भरने के लिए यमुना (तट पर) गयी हुयी थी । ५८ वह सुन्दरी पानी लेकर आ गयी और जब अपने घर में प्रविष्ट हो गयी, तो (उसने देखा कि) पूतनारि कृष्ण अकेले ही नवनीत (मक्खन) खा रहे थे । ५९ तो वह बोली, '(तू) कौन है रे, (जो) यहाँ नवनीत चुराकर खा रहा है ?' तब वैकुण्ठनाथ (विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण) बोले, 'निश्चय ही तू ही चोरनी है । ६० मैं अपना (ही) नवनीत खा रहा हूँ; यहाँ तू कौन पूछने के लिए (आयी) हो (पूछनेवाली हो) ?' (यह सुनकर) वह गोपी खिलखिलाकर हँसने लगी और बोली, 'अरे चोट्टे, घर तो मेरा है'। ६१ (इस पर) कृष्ण बोले, 'तू कहती है कि घर मेरा है, फिर भी ठीक से विचार तो कर । यह शरीर (तक) अपना नहीं है, फिर घर-बार किसका है'। ६२ (जब) चक्रपाणि श्रीकृष्ण ने ऐसा कहा, तो वह गोपी मन में विचार करने लगी । (उसकी समझ में आया कि) कृष्ण ने सत्य बात कही है । सभी नाशवान तो है । ६३ जो-जो दिखायी दे रहा है, वह (सब) नाशवान है । 'मेरा' कहने के लिए (कहनेवाली) मैं यहाँ कौन हूँ ? (वस्तुतः) एकमात्र भगवान (ऐसे) हैं जो अविनाशी हैं, अजन्मा, अव्यय (अक्षय), अटल (अविचल) हैं । ६४ (यहाँ का प्रत्येक) पिण्ड (पदार्थ मात्र) नाशवान है, अविद्यामय है; सकल ब्रह्माण्ड क्षणिक है— यह समस्त (ब्रह्माण्ड) मायामय है, मिथ्या है, स्वप्नवत (स्वप्न की भाँति) क्षणिक है । ६५ (अहो मानो,) सीपी में से रूपा निकाल

मृगजळींचे मासे भरिले। निशीमाजीं जाऊनि। ६६ अंवसेचे अंधारें काळें। दिवा दोप्रहरां वाळों घातलें। सिकता कांतोनि सूत केलें। पाय बांधिलें रज्जुसर्पाचे। ६७ जितुकें दिसतें तितुकी कल्पना। अवघी मायिक दृश्यरचना। अविनाश वैकुंठराणा। नित्य नूतन अक्षयी। ६८ ऐसा गोपी करितां विचार। वृत्ति झाली तदाकार। इकडे गोरस समग्र। भक्षूनि सिद्ध पळावया। ६९ सावध होऊनि गोपी बोले। माझें गृह नव्हे कळलें। तरी हें कोणाचें गृह वहिलें। सांग मज गोपाळा। ७० श्रीहरि म्हणे माझें सदन। गोपी बोले कासयावरून। सांग कांहीं घराची खूण। आपुलें जरी म्हणतोसी। ७१ हरि म्हणे ऐक सुंदरे। आकाशें व्यापिलीं जितुकीं घरें। तितुकीं माझीं समग्रें। चराचर सर्वंही। ७२ हांसोनि बोले नितंबिनी। बरवी

लिया; किसी बाँझ के पुत्र ने (उस रूपे का) पात्र गढ़ लिया; (किसी ने) रात में जाकर (उस पात्र में) मृगजल (मृग-मरीचिका) की मछलियाँ (पकड़कर) भरकर रख दीं। ६६ (किसी ने) अमावस का काला (-काला) अँधेरा दिन (-दहाड़े) में दोपहर सूखने के लिए डाल दिया। (किसी ने) बालू को कातकर सूत बना लिया; तो (किसी ने उससे) रस्सी-स्वरूप साँप के पाँवों को बाँध लिया। ६७ (यह समस्त असम्भव है; क्योंकि सीपी में सच्ची चाँदी नहीं होती; बाँझ के पुत्र नहीं होता, यदि हो तो वह स्त्री बाँझ नहीं कहाएगी; मृगजल में मछलियाँ कैसे आएँगी ? अमावस का अँधेरा निकाला कैसे जाएगा ? बालू से सूत नहीं बनाया जा सकता; साँप के पाँव नहीं होते। मतलब यह कि यह सब कल्पनामात्र है, पूर्णतः मिथ्या है।) जितना दिखायी देता है, उतना कल्पना (द्वारा निर्मित अर्थात आभास) है। यह समस्त दृश्य (दिखायी देनेवाली) रचना (सृष्टि) मायिक अर्थात् मायाजन्य है। (केवल) वैकुण्ठराज (भगवान विष्णु) अविनाशी हैं, नित्य नूतन हैं, अक्षय हैं। ६८ गोपी द्वारा ऐसा विचार करते ही उसकी (मनो-) वृत्ति तदाकार (अर्थात् भगवान विष्णु अथवा ब्रह्म के साथ तद्रूप, तल्लीन) हो गयी, तो इधर (श्रीकृष्ण) समस्त गोरस (दूध आदि) खाकर भाग जाने को तैयार हो गये। ६९ (तब) सावधान होकर गोपी बोली, 'हे गोपाल, यह समझ में आ गया कि यह घर मेरा नहीं है, फिर भी मुझे झट से बता दे कि यह घर किसका है'। ७० (इस पर) श्रीहरि ने कहा, 'यह घर मेरा है'। तो गोपी बोली, 'कैसे ? यदि तू (इसे) अपना (घर) कह रहा है, तो इस घर के कुछ (परिचय-) चिह्न तो बता दे'। ७१ (तब) हरि ने कहा, 'अरी सुन्दरी, सुन लो। आकाश ने जितने घरों को व्याप्त किया है, उतने सब मेरे हैं, सभी चराचर मेरे हैं'। ७२ (यह सुनकर) वह स्त्री (गोपी) हँसकर बोली, 'ढोंग करना (बहानेबाज़ी) अच्छा जानता है।

जाणतोसी संपादणी। घृतघट पुढां घेऊनी। हात कां माजीं घातला। ७३ मग बोले भक्तसखा। माजीं बहुत पडल्या पिपीलिका। त्या वेंचूनियां देखा। टाकीतसें जाण पां। ७४ गोपी म्हणे शेजेसीं। बाळें निजलीं सावकासीं। त्यांसी चिमटे कां घेतोसी। हृषीकेशी सांग पां। ७५ उद्यां प्रातःकाळीं उठोनियां। म्हणतों वत्सें नेऊं चरावया। कोणत्या वनासी पुसावया। जागें करीं मी तयांतें। ७६ ऐसें बोलोन लवलाह्या। कृष्ण पळाला उठोनियां। गोपी म्हणे रे लाघविया। ठकवूनियां गेलासी। ७७ गाऱ्हाणें सांगावया तेचि क्षणीं। येत्या झाल्या नितंबिनी। परम लालसा कृष्णदर्शनीं। यशोदेसी बोलती। ७८ मग हांसोनि बोलिल्या युवती। खोडी करितो तुझा श्रीपती। काय सांगों तुजप्रती। लिहितां क्षिती पुरेना। ७९ गाऱ्हाणें सांगतां सुंदरी। त्यांचे डाव मनीं धरी। चित्तीं विचारी मुरारी। करीन बोहरी गोरसाची। ८० एक सांगे कामिनी। हरि प्रवेशला आमुचें सदनीं। तों शिकीं बांधिलीं उंच स्थानीं। मग चक्रपाणी काय करी। ८१ पाटावरी पाट रचूनी। त्यावरी तिवई दृढ ठेवूनी। त्यावरी गडी उभा करोनी। त्याच्या खांद्या कृष्ण बैसे। ८२ तरी शिंकें नपवेचि करीं। मग

(फिर) घी का घड़ा सामने लेकर उसके अन्दर हाथ क्यों डाला था ?'। ७३ तब भक्तों के सखा (कृष्ण) बोले, 'अन्दर बहुत चींटियाँ पड़ी थीं। देखो, उन्हें बीनकर मैं (बाहर) फेंक रहा था, समझ लो'। ७४ (तदनन्तर) गोपी ने कहा, 'बिस्तर पर बच्चे सोये थे, तू हौले-हौले चिकोटी क्यों काट रहा था ? रे हृषीकेश, बता दे'। ७५ (कृष्ण बोले)— 'कल सबेरे उठकर बछड़ों को चराने के लिए जाना चाहते हैं। मैं यह पूछने के लिए उन्हें जगा रहा था कि किस वन जाना है'। ७६ ऐसा कहकर कृष्ण उठकर झट से भाग गये। तो गोपी बोली, 'अरे चतुर (धूर्त), (मुझे) तू तो ठगकर चला गया'। ७७

उसी क्षण शिकायत करने के लिए स्त्रियाँ आ गयीं। उन्हें कृष्ण के दर्शन करने की परम लालसा थी। वे यशोदा से बोलीं। ७८ फिर वे युवतियाँ हँसकर बोलीं, 'तुम्हारा कृष्ण छेड़छाड़ करता है। हम तुमसे क्या कहें ? (उसे) लिखने के लिए पृथ्वी (तक) पर्याप्त नहीं है'। ७९ (जब) वे सलोनी स्त्रियाँ शिकायत कर रही थीं, तब मुरारि ने अपने मन में उनके प्रति बैर धारण किया और मन में सोचा— मैं गोरस नष्ट कर डालूँगा। ८० किसी एक स्त्री ने कहा— 'हरि हमारे घर में प्रविष्ट हो गया, तो (उसने देखा कि) छींके ऊँचे स्थान पर बाँधे हुए हैं। फिर कृष्ण ने क्या किया। ८१ पीढ़े पर पीढ़े रखकर और उन पर एक तिपाई दृढ़तापूर्वक रखते हुए, उस पर एक साथी को खड़ा करके कृष्ण उसके कंधे पर (स्वयं) बैठ गये। ८२ फिर भी वह छींका उनके हाथ नहीं आ रहा

रविदंड उभा करी। छिद्र पाडूनि घागरी। धारा लावी अखंड। ८३ औट मातृका निरसूनि विशेष। संत सेविती स्वानंदरस। तैसाच वैकुंठ-विलास। प्रेमें गोरस सेवीतसे। ८४ कां सत्रावीचें स्वानंदनीर। सेविती जैसे योगेश्वर। त्याचपरी यादवेंद्र। गोरस सुरस सेवीतसे। ८५ गडियांस म्हणे अवधारा। माझ्या कोंपरांच्या दुग्धधारा। अवघे तुम्ही प्राशन करा। द्वैतविचारा टाकोनि। ८६ ज्यावरी बैसला भगवंत। तो कृष्णचरणासी चिमटे घेत। म्हणे अवघें तूंचि खासी निश्चित। आम्हांस देईं सांवळिया। ८७ मग भरोनि गोरस अंजुळी। सखयांस पाजी वनमाळी। वरी मुख करोनि ते वेळीं। विलोकिती हरिवदन। ८८ चकोर पाहती जैसा चंद्र। कीं चक्रवाकें लक्षिती दिनकर। कीं भूचरीमुद्रा योगेश्वर। उर्ध्वदृष्टीं

था। तो फिर उन्होंने मथानी का डण्डा उभारकर खड़ा किया (धर दिया) और गगरियों में छेद बनाकर उनमें से अविरत धाराएँ बहा दीं'। ८३

साढ़े तीन मातृकाओं का विशिष्ट प्रकार से निराकरण करके सन्त ब्रह्मानन्द रूपी रस का सेवन करते हैं, उसी प्रकार (वैकुण्ठ में विलास करनेवाले विष्णु के अवतार) कृष्ण गोरस का प्रेमपूर्वक सेवन कर रहे थे (पी रहे थे)। ८४ अथवा श्रेष्ठ योगी ज्ञानस्वरूपा सत्रहवीं कला को प्राप्त होकर आत्मानन्द रूपी जल का सेवन करते हैं, उसी प्रकार यादवेन्द्र कृष्ण स्वादिष्ट (मधुर) गोरस का सेवन कर रहे थे। ८५ उन्होंने अपने साथियों से कहा, 'सुनो, तुम सब द्वैत-विचार (एक-दूसरे से भिन्न होने का भाव) छोड़कर मेरी कुहनी से (कुहनी होकर बहनेवाली) दूध की धाराएँ प्राशन कर लो'। ८६ जिसपर भगवान (स्वयं) बैठे हुए थे, वह कृष्ण के चरणों में चिकोटियाँ काटने लगा और बोला, 'निश्चय ही तू सब खा रहा है, अरे साँवले, हमें (भी) दे देना'। ८७ फिर अंजलि में गोरस भर (-भर) कर वनमाली (अपने) मित्रों को पिलाने लगे। उस समय वे (अपने-अपने) मुँह को ऊपर उठाये कृष्ण का मुँह जोहने लगे। ८८ जिस प्रकार चकोर[1] चन्द्र को (चन्द्र की ओर) देखते हैं, अथवा चक्रवाक[2] (चकवे) सूर्य को (सूर्य की ओर) देखते हैं, अथवा

१ चकोर-चन्द्रमा—देखिये पृ० १५१, अध्याय ५–१४५

२ चक्रवाक-सूर्य—चक्रवाक, जिसे चकवा भी कहते हैं, जाड़े में नदी या जलाशय के किनारे दिखाई देता है और वह वहाँ वैशाख तक रहता है। इसे अपने जोड़े से बहुत प्रेम होता है। एक मान्यता है कि, यह रात के समय अपने जोड़े से अलग हो जाता है, पानी में इन दोनों के बीच कमल का पत्ता आ जाता है। इस वियोग को सहन करना उसके लिए असम्भव-सा हो जाता है और वे दोनों एक-दूसरे को आर्त-स्वर में पुकारते रहते हैं। कविजनों ने इनके रात्रि-काल के ऐसे वियोग को लेकर अनेक उक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। सूर्य मानो उनके इस दुःख को दूर करने के लिए ही उदित होता है।

पाहती । ८९ गोपाळांचे नेत्र तेचि षट्पद । सेविती रविमुखकमलमकरंद । कीं स्वरूप देखोनि स्तब्ध । वेदश्रुती ज्यापरी । ९० ऐसें अवलोकितां कृष्णवदन । जैसा चातकां वर्षे घन । तैशा दुग्धधारा पूर्ण । गडियांलागीं वर्षतसे । ९१ गडी बोलती हर्षेंकरून । कृष्णा घट दिसतो कीं लहान । सर्वांची दुग्धें तृप्ति होऊन । धार चाले अखंड । ९२ असो आतां तेचि क्षणीं । जागी जाहली गौळिणी । गडियांसी म्हणे चक्रपाणी । पळा वेगें येथोनि आतां । ९३ अवघे पळाले गोपाळ । एकला सांपडला वैकुंठपाळ । गौळिणीनें द्वार तत्काळ । जाऊनियां धरियेलें । ९४ गौळण म्हणे रे चित्तचोरा । गडी पळविले सत्वरा । परी तूं सांपडलासी सुंदरा । आतां कैसा जासील । ९५ काय वरकडांसी कारण । तूं मुख्य सांपडलासी जगज्जीवन । जैसें जिंकिलिया निज मन । करणें सहज आकळती । ९६ हातीं लागल्या मुख्य धुर । सहजचि सांपडला परिवार । कीं घरांत आलिया दिनकर । किरणें कोठें पळती पां । ९७ झालिया स्वरूपप्राप्ती । शांति दया क्षमा

(साधक) भूचरी नामक विशिष्ट मुद्रा धारण करके योगेश्वर भगवान (की ओर) ऊर्ध्व-दृष्टि से (आँखें ऊपर की ओर उठाये) देखते हैं; (उसी प्रकार वे मित्र कृष्ण के मुख की ओर देख रहे थे) । ८९ गोपालों के नेत्र मानो भौंरे हैं— वे (नेत्ररूपी भ्रमर) कृष्ण के मुख-कमल के मधु का सेवन कर रहे थे; अथवा जिस प्रकार भगवत्-स्वरूप को देखकर वेद-श्रुतियाँ स्तब्ध हो जाती हैं, उसी प्रकार कृष्ण के मुँह को देखकर वे चकित हो गये थे । ९० इस प्रकार (उनके द्वारा) कृष्ण के वदन को देखते रहने पर, जिस प्रकार मेघ चातकों के लिए बरसने लगता है, उसी प्रकार कृष्ण (अपने) साथियों के लिए पूरी (भरी-पूरी, बड़ी) दूध की धाराएँ बरसाने लगे । ९१ (तब) वे साथी हर्षपूर्वक बोले, 'अरे कृष्ण, यह मटका तो बहुत छोटा दिखायी देता है'। फिर भी उस दूध से सबकी तृप्ति होने पर भी कर वह धारा अविरत चल रही थी । ९२ अस्तु । अब उसी क्षण वह गोपी जग गयी, तो कृष्ण साथियों से बोले, 'अब यहाँ से वेगपूर्वक भाग जाओ'। ९३ (यह सुनकर) सब गोपाल भाग गये, (परन्तु) अकेले वैकुण्ठपाल (विष्णु-कृष्ण) मिल गये (पकड़े गये)। गोपी ने तत्काल जाकर दरवाजा रोक दिया । ९४ (फिर) वह गोपी बोली, 'अरे चितचोर, साथियों को झट से भगा दिया, फिर भी रे सलोने, तू अब कैसे जाएगा । ९५ (अब) दूसरों की क्या आवश्यकता? रे कृष्ण, तू मुख्य तो मिल गया'। जैसे अपने मन को जीत लेने पर इन्द्रियाँ आसानी से वश में आ जाती हैं (वैसे ही मुख्य को पकड़ लेने पर अन्य साथी आसानी से पकड़ में आ जाते हैं) । ९६ मुख्य नेता हाथ लगने पर परिवार (संगी-साथी-सहायकों का दल) आसानी से मिल जाता है । अथवा घर में सूर्य के आने पर किरणें कहाँ भाग जाएँगी । ९७

उपरती। सहजीं सहज सांपडती। सायास न करितां सत्वर। ९८ मुख्य तूं सांपडलासी मज। आतां सकळांसी काय काज। हाता आलिया स्वरूप निज। नाना साधनें कासया। ९९ हृदयीं बिंबला नारायण। मग क्षुद्रदैवतांचें काय कारण। सुधारससमुद्रीं होतां निमग्न। थिल्लरीं मन कां धांवें। १०० जो झाला वेदांतज्ञानी। त्यास काय कारण क्षुद्रसाधनीं। साधलिया अमृत-संजीवनी। मग औषधी कां व्यर्थचि। १ हातीं सांपडतां हिरा। मग कां वेंचाव्या अरण्यगारा। कल्पतरु आलिया घरा। मग बाभुळा कां भजावें। २ तैसा कृष्णा तूं सांपडलासी। तुज नेईन यशोदेपासीं। शिक्षा लावीन निश्चयेंसीं। हृषीकेशी तुज आतां। ३ ऐसें बोलतां गौळिणी। गदगदां हांसे मोक्षदानी। दुग्धगुळणी मुखीं धरोनी। कामिनीपासीं पातला। ४ गदगदां हांसे अबला। तुज जावों नेदीं गोपाळा। कृष्णें दुग्धगुळणी घातली डोळां। क्षणमात्र नलगतां। ५ येरी जंव नेत्र चोळी। तों पळाला वेगें वनमाळी। ऐसी गोपी ते वेळीं। गाऱ्हाणें सांगे मायेतें। ६ तों एक बोले गजगामिनी। परवां कृष्ण आला आमुचे सदनीं।

(भगवत्-) स्वरूप की प्राप्ति हो जाने पर शान्ति, दया, क्षमा, उपरति (वैराग्य) बिना यत्न किये झट से (अपने आप) आसानी से मिल जाती हैं। ९८ (गोपी बोली—) 'तू मुख्य तो मुझे मिल गया है, अब (अन्य) सबसे (मुझे) क्या काम ?' स्वरूप अर्थात् भगवत्-स्वरूप अपने हाथ आने पर नाना साधनाएँ किसलिए (करें) ?। ९९ (एक बार) हृदय में (भगवान) नारायण जमकर बैठ जाएँ, तो फिर छोटे-छोटे देवों (की उपासना) की क्या आवश्यकता ? अमृत रस के सागर में निमग्न हो जाने पर गड्ढे की ओर मन क्यों दौड़े ?। १०० जो वेदान्त का ज्ञानी हो गया, उसे क्षुद्र साधनाओं की क्या आवश्यकता ? अमृत-संजीवनी को सिद्ध कर लेने पर फिर (अन्य) औषधि (का) व्यर्थ ही क्यों (प्रयोग) करें। १०१ हीरा हाथ में आने पर फिर वन में स्फटिक क्यों बीन लें ? कल्पवृक्ष घर आने पर फिर बबूल के पास क्यों (रह) जाएँ। २ वैसे ही (उसे जान पड़ा और वह बोली), 'रे कृष्ण, तू मिल गया है; मैं तुझे यशोदा के पास ले जाऊँगी और रे कृष्ण, मैं अब निश्चय ही दण्ड दिलाऊँगी'। ३ इस प्रकार उस गोपी द्वारा कहने पर मोक्ष-दाता कृष्ण खिलखिलाकर हँस दिये और वे मुँह में दूध का कुल्ला लेकर उस स्त्री के पास आ गये। ४ वह स्त्री खिलखिलाकर हँस दी और बोली, 'रे गोपाल, तुझे मैं (इस प्रकार) जाने नहीं दूँगी'। (तब) कृष्ण ने क्षणमात्र न लगते उसकी आँखों में दूध का कुल्ला कर दिया। ५ वह जब आँखों को मलने लगी, तब वनमाली कृष्ण वेगपूर्वक भाग गये।' उस समय ऐसी उस गोपी ने (इस प्रकार) माता (यशोदा) से शिकायत की। ६ तब एक गजगामिनी (हाथी की-सी

मी करीत होतें मंथनी। हरि आंगणांत उभा असे। ७ मग मी म्हणे हृषीकेशी। चोरा काय पाळती पहातोसी। येरू म्हणे वत्सें पाहावयासी। सहज आलों मी येथें। ८ तान्ह्या वत्सांचे कळप ते क्षणीं। बांधिले होते गोष्ठांगणीं। त्यांत जावोनि चक्रपाणी। वासरें करें कुरवाळी। ९ कोणत्या गाईचें वासरूं कोण। म्हणोनि पुसे मजलागून। तों मी करीत होतें मंथन। पुढें पाहूनि यशोदे। ११० तों श्रीकृष्णें काय केलें। कळप वत्सांचे सोडिले। द्वाराबाहेर लावूनि दिधले। क्षणमात्र न लागतां। ११ पुच्छें वाहोनि हुंकारें। आळोआळीं पळती वासरें। ऐसें करूनि सर्वेश्वरें। मज येऊनि सांगतसे। १२ म्हणे तुझीं वत्सें सुटलीं। काननाप्रति पळोन गेलीं। ऐसें ऐकतां म्यां ते वेळीं। मंथन तैसेंचि टाकिलें। १३ ग्रामाबाहेर वासुरें गेलीं। तीं मज न वळती ते वेळीं। तों घरामध्यें वनमाळी। दधि नवनीत भक्षीत। १४ दूधही सकळ प्याला। डेरा मंथनाचा फोडिला। गोरस वाहत गेला। ओसरीखालता यशोदे। १५ केला दुधाणियाचा चूर। गोरस न उरे अणुमात्र। ऐसें करोनि पंकजनेत्र। पळोनि गेला क्षणमात्रें। १६ घृत नवनीत दधि दुग्ध। खाऊनि केलें शुद्धबुद्ध। ऐसें करोनि मुकुंद।

चाल से चलनेवाली) स्त्री बोली, 'परसों कृष्ण हमारे घर आ गया था। (तब) मैं मन्थन कर रही थी। इधर कृष्ण आँगन में खड़ा था। ७ तब मैं बोली, 'अरे कृष्ण, अरे चोर, किसकी ताक में है'? (यह सुनकर) वह बोला, 'मैं यहाँ बछड़ों को देखने के लिए योंही आ गया हूँ'। ८ उस क्षण (समय) दुधमुँहे बछड़ों के समूह गोठ में बाँधे हुए थे। कृष्ण उसके अन्दर जाकर बछड़ों को सहलाने लगा। ९ वह मुझसे यह पूछने लगा— 'किस गाय का कौन-सा बछड़ा है'? यशोदा, मैं तब सामने देखते हुए मन्थन कर रही थी। ११० तब श्रीकृष्ण ने क्या किया? बछड़ों के झुंड को खोल दिया और उन्हें क्षणमात्र न लगते द्वार के बाहर कर दिया (भगा दिया)। १११ पूँछ उठाये हुए वे बछड़े हुँकारते हुए गली-गली में दौड़ने लगे। ऐसा (स्वयं) करके सर्वेश्वर कृष्ण आकर मुझसे कहने लगा। १२ वह बोला, 'तुम्हारे बछड़े खुल गये और वन की ओर दौड़ते जा रहे हैं'। ऐसा सुनते ही उस समय मैंने मन्थन वैसे ही छोड़ दिया (बन्द किया)। १३ बछड़े गाँव के बाहर गये थे; उस समय वे मुझसे लौटाये नहीं जा रहे थे। तब (इधर) कृष्ण घर में (जाकर) दही और मक्खन खाने लगा। १४ उसने समस्त दूध भी पी डाला और मन्थन का मटका तोड़ डाला। (फलतः) री यशोदा, गोरस ओसारे से नीचे बहता गया। १५ उसने दुध-हँडियों को चूर-चूर कर डाला। गोरस अणुमात्र शेष न रहा। ऐसा करके कमल-नयन कृष्ण क्षणमात्र में भाग गया। १६ घी, मक्खन, दही (और) दूध खा (-पी) कर समाप्त कर डाला। ऐसा

पळोनि आला तुजजवळी। १७ वासुरें घेऊनि तिसरे प्रहरा। मी आलें वो निजमंदिरा। तों खापरांचा चुरा। ओसरीवर झालासे। १८ ऐसें पीडिलें येणें माये। आतां मी बांधीन याचे पाये। कदा न सोडीं जननीये। बोलों काय बहुत आतां। १९ बाहेर कळों नेदीं कोणा। हृदयमंदिरीं वैकुंठराणा। दृढ बांधीन याचिया चरणा। कोणाकारणें कळो नेदीं। १२० मायेस कळों नेदीं मात। लोकांस बोलों नेदीं निश्चित। काया वाचा मनें सत्य। माये यातें न सोडीं। २१ हा घडोघडीं दावूनि वदन। सवेंच पळतो नलगतां क्षण। ऐकोनि गोपीचें वचन। खदखदां हांसे श्रीरंग। २२ मग बोले प्रेमळ सखा। मी न सांपडें ब्रह्मादिकां। चतुरे तुज कैंचा आवांका। कोंडावया मजलागीं। २३ कृष्णवचन ऐकोनियां। गदगदां हांसतसे माया। तों आणिक गाऱ्हाणें सांगावया। दुजी गोपी सरसावली। २४ तंव ते म्हणे यशोदे सुंदरी। कृष्ण प्रवेशला एके मंदिरीं। तों ते गवळण गेली बाहेरी। सून घरीं एकलीच। २५ तीस म्हणे वो नवनीत। कोठें ठेविलें सांग सत्य। तंव ते जाहली भयभीत। कृष्ण प्रवेशे अंतरीं। २६ घृत

करके कृष्ण भागकर तुम्हारे पास आ गया। १७ अरी, बछड़ों को लेकर (जब) मैं तीसरे पहर अपने घर आ गयी, तब (दिखायी दिया कि) ओसारे पर खप्परों का चकनाचूर हो गया है। १८ अरी माँ, इसने इस प्रकार (हमें) सताया है। अब मैं इसके पाँव बाँध दूँगी। अरी माँ, मैं (इसे) कदापि नहीं छोड़ूँगी। अब बहुत क्या बोलूँ। १९ (मानो, उसने सोचा) बाहर किसी को विदित नहीं होने दूँगी कि हृदय-रूपी मन्दिर में वैकुण्ठ के राजा (विराजमान) हैं (अर्थात घर के अन्दर कृष्ण को बाँधकर रखा है)। इसके पाँवों को दृढ़ता से बाँध दूँगी। किसी को भी किसी कारण से विदित नहीं होने दूँगी। १२० यह बात माता को (भी) ज्ञात होने नहीं दूँगी; निश्चय ही लोगों को मैं (इस सम्बन्ध में) बोलने नहीं दूँगी। अरी माँ, मैं काया, वाणी और मन से सचमुच इसे न छोड़ूँगी। १२१ यह घड़ी-घड़ी मुँह दिखाकर साथ ही (तत्क्षण) क्षण न लगते भाग जाता है। उस गोपी की यह उक्ति सुनकर कृष्ण खिल-खिलाकर हँसने लगे। २२ तब वे प्रेममय मित्र बोले, 'मैं ब्रह्मा आदि को (भी) नहीं मिलता; तो अरी चतुरे, मुझे अन्दर बाँधकर रखने के लिए तुममें कैसी (कितनी) शक्ति है?'। २३ कृष्ण की यह बात सुनकर माता खिल-खिलाकर हँसने लगी, तब दूसरी एक गोपी और शिकायत करने के लिए आगे बढ़ी। २४ तब वह बोली, 'अरी सुन्दरी यशोदा, कृष्ण ने एक (गोपी के) घर में प्रवेश किया, तब वह गोपी (घर के) बाहर गयी हुई थी और घर में उसकी बहू अकेली ही थी। २५ वह उससे बोला, 'अरी, सच (-सच) बताओ, मक्खन कहाँ रखा है?' तब वह

नवनीत भक्षिलें। थोडेंसें निजकरीं घेतलें। तें सुनेच्या मुखीं गिडबिडिलें। आपण पळाला ते क्षणीं। २७ सासू आली बाहेरूनी। तों सून मुख पुसी देखे नयनीं। म्हणे गे चोरटे लोणी। नित्य तूंचि भक्षिसी। २८ आम्ही म्हणों भक्षितो कृष्ण। परी आज कळलें तुझें विंदान। दोघींत झोटधरणी होत दारुण। बाहेर कृष्ण पाहतसे। २९ सून म्हणे मामीसें ऐका। लोणी कृष्णें लाविलें मुखा। तो परम नष्ट देखा। करोनि करणी पळाला। १३० गौळण पाहे बाहेरी। तों उभा असे श्रीहरी। तंव ते म्हणे मुरारी। बरी चोरी करितोसी। ३१ सुनेच्या मुखीं लावूनि नवनीत। पळालासी हरि त्वरित। येरू म्हणे वो तिनें निश्चित। माझ्या मुखीं लाविलें। ३२ हे खात होती चोरूनि लोणी। मी खेळावया आलों आंगणीं। माझ्या मुखीं लावूनि लोणी। हेच पळाली घरांत। ३३ मजवरी आळ घालिती वृथा। बोलतां हांसें आलें जगन्नाथा। येरी म्हणे हे गोष्ठी यथार्था। भक्षिलें इनेंच साच पैं। ३४ पुढती कोपली सुनेवरी। कां गे ऐसी करितेस चोरी। आळ घालिसी बाळावरी। कुडी खरी तूंचि पैं। ३५ ऐसी लावूनि कळी। पळोनि आला

भयभीत हो गयी। (यह देखकर) कृष्ण अन्दर पैठ गया। २६ उसने घी और मक्खन खा डाला और थोड़ा-सा अपने हाथ में ले लिया। (फिर) कृष्ण ने वह बहू के मुँह में मल दिया और वह स्वयं उसी क्षण भाग गया। २७ (जब) सास बाहर से (घर) आ गयी, उसने अपनी आँखों से देखा कि बहू (अपना) मुँह पोंछ रही है, तो वह बोली, अरी चोट्टी, तू ही नित्य मक्खन खाती है। २८ (और इधर) हम कहती हैं— कृष्ण खाता है। परन्तु आज तेरी करतूत (चतुराई) ज्ञात हुई। (तदनन्तर) उन दोनों में दारुण झोंटा-झोंटी (आरम्भ) हो गयी। कृष्ण यह बाहर से देख रहा था। २९ (फिर) बहू अपनी सास से बोली, 'सुनिए, कृष्ण ने (यह) मक्खन मेरे मुँह में मल दिया है। देखिए, वह परम मरमिटा (दुष्ट) ऐसी करनी करके भाग गया'। १३० (फिर) उस गोपी ने बाहर देखा, तो वहाँ श्रीहरि खड़ा था। तब वह बोली, 'अरे मुरारि, तू भली चोरी करता है। १३१ रे हरि, (मेरी) बहू के मुँह में मक्खन मलकर तू झट से भाग गया।' तब वह बोला, 'अरी, उसने निश्चय ही मेरे मुँह में (मक्खन) लगा दिया। ३२ यह मक्खन चुराकर खा रही थी, तो मैं खेलने के लिए आँगन में आ गया। (फिर) मेरे मुँह में मक्खन लगाकर यही घर के अन्दर भाग गयी। ३३ मुझ पर व्यर्थ ही दोषारोप लगा रही है'। यह बोलते हुए जगन्नाथ कृष्ण को हँसी आ गयी। तो वह बोली, 'यह बात यथार्थ है, इसी ने सचमुच खा लिया है'। ३४ अनन्तर वह बहू पर क्रुद्ध हो गयी (और बोली—) 'क्यों री, ऐसी चोरी करती है (और) बच्चे पर दोषारोप लगाती है।

वनमाळी। तों आणिक एक गौळण उठिली। गाऱ्हाणें सांगावया। ३६ म्हणे ऐक यशोदे सुंदरी। परवां बिदीस खेळतां मुरारी। एक गोपी देखोनि ते अवसरीं। काय हरि पुसतसे। ३७ म्हणे तुझ्या वक्षःस्थळीं। हिंगुरडें कां वाढलीं। कीं आमुचे चेंडू चोरूनि वेल्हाळी। चोळीमाजीं लपविले। ३८ आमुचा चेंडू दे झडकरी। म्हणोनि रळी करी हरी। तिनें झिडकारितां मुरारी। पळोनियां गेला हो। ३९ एकीचें घरीं गोरस खाऊनी। शिकीं आणि रितीं दुधाणीं। नेऊनि बांधी दुसरें सदनीं। न कळतांचि अकस्मात। ४० तंव ते गोपी प्रातःकाळीं। शेजारणीच्या गृहा आली। म्हणे आमुचीं शिकीं गुप्त जाहलीं। दुधाणियांसमवेत। ४१ जों वरतें पाहे सुंदरी। तों आपुलीं शिकीं तिचें घरीं। मग म्हणे गे चतुर नारी। माझीं शिकीं येथें कां। ४२ तुमचा बरा गे शेजार। आम्हांसी फळला साचार। आम्ही कृष्णावरी चोरी समग्र। मूर्ख व्यर्थचि घालितों। ४३ परब्रह्म केवळ गे श्रीहरी। त्यावरी कोण घालील चोरी। तो ब्रह्मानंद निर्विकारी। चराचरीं व्यापक। ४४ आम्ही म्हणों कृष्ण बाळ। परी तो परब्रह्म निर्मळ। त्यावरी कोण घालील आळ। निर्मळा मळ न लागे। ४५ शेजारी झाले

तू ही सचमुच झूठी है'। ३५ इस प्रकार (परस्पर) झगड़ा लगाकर कृष्ण भाग आया। तब और एक गोपी शिकायत करने के लिए उठ गयी। ३६ वह बोली, सुनो, सुन्दरी यशोदा, परसों कृष्ण रास्ते में खेल रहा था। उस समय एक गोपी को देखकर यह कृष्ण (उससे) क्या पूछने लगा ? । ३७ वह बोला (उसने पूछा) —'तुम्हारे वक्षःस्थल (छाती) पर फोड़े क्यों (कैसे) आ गये हैं ? अथवा री सुन्दरी, हमारी गेंदें चुराकर (तुमने अपनी) चोली के अन्दर छिपा ली हैं। ३८ हमारी गेंद झट से दे दो' कहते हुए कृष्ण ने हँसी-दिल्लगी की। उसके द्वारा दुत्कारने पर कृष्ण भाग गया। ३९ एक गोपी के घर गोरस खाकर सींके और रीती दुध-हाँडियाँ ले जाकर दूसरे घर में, किसी की समझ में नहीं आते हुए, उसने सहसा बाँध दी थीं। १४० तब वह गोपी प्रातःकाल पड़ोसिन के घर आयी और बोली, हमारे सींके दुध-हाँडियों सहित गायब हो गये हैं। १४१ जब उस स्त्री ने ऊपर देखा, तो (उसे दिखायी दिया कि) अपने सींके उसके घर में हैं। फिर वह बोली, 'अरी चतुर नारी, मेरे सींके यहाँ क्यों (कैसे आये) ? । ४२ अरी तुम्हारा पड़ोस हमारे लिए सचमुच भला फल गया। हम मूर्ख समग्र चोरी व्यर्थ ही कृष्ण पर लगा लेते हैं। ४३ अरी, श्रीहरि तो केवल परब्रह्म है। उस पर कौन चोरी (का आरोप) लगाएगा। वह तो आनन्द-स्वरूप ब्रह्म है, निर्विकार है, चराचर को व्याप्त किये हुए है। ४४ हम कहते हैं— कृष्ण बालक है; परन्तु वह तो निर्मल परब्रह्म है। उसपर कौन झूठा आरोप

चोर। मग काय राखील राखणार। कुंपणें शेत खादलें समग्र। तरी मग कोणें राखावें। ४६ माझीं शिकीं आणि दुधाणीं। कैशीं प्रवेशलीं तुझ्या सदनीं। दोघींसीं मांडली झोटधरणी। हरीची करणी ऐसी हे। ४७ एके गौळिणीची सून। परसांत आंग धुतां नग्न। तों एकाएकीं मनमोहन। गृहामाजी पातला। ४८ म्हणे आमुचा चेंडू अकस्मात। उडोनि आला तुमचें परसांत। म्हणोनि गेला धांवत। आंग धूत कामिनी ते। ४९ तीस हरि म्हणे ते समयीं। ऊठ वेगें चेंडू देईं। आमुचे कंदुक धरूनि हृदयीं। बैसलीस गे चोरटे। १५० तीस हातीं धरूनि उठवीत। तों सासू आली परसांत। ते म्हणे तूं नष्ट बहुत। तुज शिक्षा लावीन मी। ५१ धरावया धांवली म्हातारी। तों वेगें पळाला पूतनारी। तो वैकुंठपीठविहारी। निर्विकार जगदात्मा। ५२ एक गोपी म्हणे हरीसी। जरी तूं आमुच्या गृहा येसी। मी तुज बांधीन रे खांबासी। हृषीकेशी जाण पां। ५३ तिचा डाव धरिला मनीं। रात्रीं तिच्या गृहांत जाऊनी। तिच्या वस्त्रांत नेऊनी। वृश्चिक सोडिले गोपाळें। ५४ नग्न गौळण करी कोल्हाळ। वस्त्रें टाकिलीं

लगाएगा ? निर्मल में मैल नहीं लग पाएगा। ४५ पड़ोसी (यदि) चोर हो जाएँ, तो रखवाला क्या रक्षा करेगा। (यदि) बाड़ ने समग्र खेत खा लिया, तो फिर उसकी रखवाली (रक्षा) कौन करे। ४६ मेरे सींके और दुध-हाँडियाँ तेरे घर में कैसे प्रविष्ट हो गये ' ? (फिर) उन दोनों में झोंटा-झोंटी आरम्भ हो गयी। हरि की यह करनी ऐसी है। ४७ (एक दिन किसी) एक गोपी की बहू अहाते में नग्न (होकर) स्नान कर रही थी, तो अचानक मनमोहन कृष्ण घर के अन्दर आ पहुँचा। ४८ वह बोला, ' हमारी गेंद अचानक उछलकर तुम्हारे अहाते में आ गयी है। ' (ऐसा) कहते हुए वह दौड़ते(-दौड़ते वहाँ) गया, जहाँ वह स्त्री नहा रही थी। ४९ उस समय, उससे कृष्ण ने कहा, ' झट से उठ जाओ (और हमारी) गेंद दे दो। अरी चोट्टी, हमारी गेंदों को हृदय (-स्थल) पर (छाती पर) धरकर बैठी हुई हो '। १५० उसके हाथ को थाम कर वह उसे उठाने लगा, तब (उतने में) उसकी सास अहाते में आ गयी। (यह देखते ही) वह बोली, ' तू बहुत दुष्ट है, मैं तुझे दण्ड दूँगी '। १५१ (जब) वह बुढ़िया उसे पकड़ने के लिए दौड़ी, तो वह पूतनारि (कृष्ण) भाग गया। वह तो वैकुण्ठ-पीठ-विहारी, निर्विकार जगदात्मा है। १५२

किसी एक गोपी ने कृष्ण से कहा, ' अरे, यदि तू हमारे घर आएगा, तो मैं तुझे खम्भे से बाँध दूँगी। हृषीकेशी, यह समझ लो '। ५३ गोपाल ने उसके प्रति मन में बैर धारण किया। (फिर) उसने रात को उसके घर के अन्दर बिच्छू लिये हुए जाकर उसके वस्त्र में छोड़ दिये। ५४

तत्काळ। सर्वेचि जवळी येऊनि घननीळ। पुसतसे तिजलागीं। ५५ म्हणे काय गे वर्तमान। हरि झालें रे वृश्चिकदंशन। कृष्ण म्हणे आतां मी उतरीन। क्षणमात्र न लागतां। ५६ तूं नग्न बिदीस येईं। विंचू उतरीन लवलाहीं। येरी म्हणे परता होईं। चक्रचाळका गौळिया। ५७ हरि म्हणे मज खांबासी। बांधीन गौळिणी तूं म्हणसी। तुज प्रचीत निश्चयेंसीं। देवें दाविली जाण पां। ५८ ते म्हणे जगज्जीवना। सर्वांगा चढल्या वेदना। प्राण जाती मनमोहना। उतरीं वेगें वृश्चिक। ५९ मग कृष्ण येऊनि जवळी। कृपादृष्टीं तीस न्याहाळी। वेदना राहिल्या सकळी। क्षणमात्र न लागतां। १६० जो अहंकारविंचू उतरिता। काळव्याळभय दूर करिता। जो ब्रह्मादिकांचा नियंता। मायेपरता सर्वसाक्षी ६१। जो भवसागर-जलतारक। जो सकळसृष्टिसंहारक। जो विश्वजनकजनक। नामरूपातीत जो। ६२ असो यशोदा ऐके सादर। गाऱ्हाणियांचे चपेटे थोर। गौळिणी सांगती समग्र। नाना चरित्रें हरीचीं। ६३ एक म्हणे येणें सर्प नेला।

(तब) वह गोपी नंगी (होकर) चीखने-चिल्लाने लगी; उसने वस्त्र तो तत्काल उतार दिये। साथ ही (तत्क्षण) पास में आकर घननील कृष्ण ने उससे पूछा। ५५ वह बोला, 'अरी, क्या समाचार (बात) है ?' (वह बोली—) 'अरे हरि, बिच्छू ने काट लिया है'। (इसपर) कृष्ण बोला, 'मैं अब क्षण न लगते उतार दूँगा। ५६ तुम रास्ते में नंगी आ जाओ, तो मैं बिच्छू को झट से उतार दूँगा'। (तब) वह बोली, '(माया-) चक्र-चालक ग्वाले, दूर चला जा'। ५७ (इसपर) कृष्ण बोला, 'री ग्वालिन, तुमने कहा था— मैं तुझे खम्भे से बाँध दूँगी। समझ लो कि भगवान ने तुम्हें निश्चय ही अनुभव करा दिया'। ५८ (फिर) वह बोली, 'अरे जगज्जीवन, सारे बदन में वेदनाएँ फैल रही हैं; अरे मनमोहन, (मेरे) प्राण जा रहे हैं, झट से बिच्छू को उतार दे'। ५९ तब निकट आकर कृष्ण ने उसे कृपा (-भरी) दृष्टि से निहार लिया, तो क्षण मात्र न लगते समस्त वेदनाएँ नष्ट हो गयीं। १६० (कवि कहते हैं—) जो अहंकार रूपी बिच्छू को उतारते हैं, काल रूपी साँप के भय को दूर करते हैं, जो ब्रह्मा आदि का नियंत्रण करते हैं, जो माया के परे और सर्व-साक्षी हैं, जो (भक्तजनों को) संसार रूपी सागर के जल में से तार देते हैं, जो समस्त सृष्टि के (संचालक और) संहारक हैं, जो विश्व के जनक (ब्रह्मा) के जनक हैं, जो नाम और रूप के परे हैं, वे ही हैं ये परब्रह्म कृष्ण। १६१-६२ अस्तु। यशोदा आदर-पूर्वक ऐसी शिकायतों का प्रचण्ड रेला (रेले जैसी आनेवाली शिकायतें) सुना करतीं। गोपियाँ (आ-आकर) हरि की नाना लीलाएँ समग्र कहा करती थीं। ६३ (किसी) एक (गोपी) ने कहा— 'वह साँप ले गया (और)

एका दंपत्यांत सोडिला। तीं बाहेर येऊनि सकळां। लोकांलागीं सांगती। ६४ धांवा धांवा म्हणती ते क्षणीं। सर्प निघाला अंथरुणीं। एक म्हणती मघां चक्रपाणी। सर्प घेऊनि जात होता। ६५ ही त्याचीच वो करणी। कैंचा सर्प येईल सदनीं। त्या म्हणती गोकुळा टाकूनी। कृष्णभेणें जाऊं पैं। ६६ जित सर्प काखे घेऊन। बिदोबिदीं पळे तुझा नंदन। विंचू मुष्टींमाजी धरून। भेडसावी बाळांतें। ६७ एक गौळण देखोनि गरोदर। तिजजवळी येऊनि यादवेंद्र। म्हणे कां गे तुझें उदर। येवढें वाढलें सांग पां। ६८ ते म्हणे गर्भिणी मी हृषीकेशी। कृष्ण म्हणे कैसी जाहलीसी। येरी म्हणे भलतेंच पुससी। चावट होसी बहुत तूं। ६९ हरि म्हणे नवल देवाची करणी। जाहलीस वो गर्भिणी। येरी झिडकावी ते क्षणीं। परता होईं गोवळ्या। १७० तूं आतां दिसतोसी लहान। पुढें बहुत शिकसी शहाणपण। तुझे मातेस सांगोन। शिक्षा करवीन तुज आतां। ७१ एक गौळण पुरुषार्थें। राखी आपुल्या गोरसातें। म्हणे मी बिंदुमात्र कृष्णातें। लागों नेदीं घरीं माझ्या। ७२ गोरस सांचवूनि कावडी भरली। बरी कसूनि दृढ बांधिली। उद्यां मथुरेसी नेऊनि सकाळीं।

उसने वह एक दम्पती (जोड़े) के बीच छोड़ दिया। (फिर) वे (पति-पत्नी) बाहर आकर सब लोगों से कहने लगे। ६४ उस क्षण वे बोले, 'दौड़ो, दौड़ो। बिस्तर में साँप निकला है।' तो कुछ एक ने कहा, 'अभी-अभी कृष्ण साँप लेकर जा रहा था। ६५ यह उसी की करनी है। (नहीं तो) घर में साँप कैसे आएगा ?' (फिर) वे बोलीं— 'कृष्ण के भय के कारण गोकुल छोड़कर चले जाएँ। ६६ तुम्हारा पुत्र बगल में साँप लेकर रास्ते-रास्ते में दौड़ता रहता है। मुट्ठी में बिच्छू पकड़ कर बच्चों को डराता है'। ६७ किसी एक गर्भवती गोपी को देखकर यादवेन्द्र कृष्ण उसके पास आते हुए बोला— 'बताओ, तुम्हारा पेट इतना क्यों बढ़ गया है'। ६८ (इसपर) वह बोली, 'अरे हृषीकेशी, मैं गर्भवती (जो) हूँ।' (तब) कृष्ण बोला, '(गर्भवती) कैसे हो गयी ?' तो वह बोली, 'चाहे जो (क्या) पूछ रहा है। तू बहुत वाहियात (अशिष्ट) हो रहा है'। ६९ (फिर) कृष्ण बोला, 'भगवान की करनी अद्भुत है, (जो) तुम गर्भवती हो गयी हो।' उस क्षण वह दुत्कारते हुए बोली— 'अरे ग्वाले, चला जा। १७० तू अब नन्हा दिखायी देता है, (फिर भी) आगे (चलकर) बहुत समझदारी सीखेगा। मैं तेरी माँ से कहकर अब तुझे दण्ड दिला दूँगी'। १७१ (कोई) एक गोपी अपने दूध को पुरुषार्थ-पूर्वक (सम्हालकर) रखती थी। वह कहती, मैं अपने घर (गोरस की एक) बूँद भी कृष्ण को मिलने नहीं दूँगी। ७२ गोरस इकट्ठा करके उसने काँवर भर दी, उसे भली-भाँति

विकूनि येईन क्षणमात्रें। ७३ कृष्णमुखीं गोरस जाण। पडों नेदीं मी वाघीण। कृष्णासी शिक्षा लावीन। जरी येईल गृहा माझ्या। ७४ ऐसी अभिमानें ती गौळिणी। निजे उशा कावडी घेऊनी। तों रजनीमाजीं चक्रपाणी। करी करणी विपरीत। ७५ जो सकळ देहींचा साक्षी एक। जो सकळ चित्तपरीक्षक। जो सच्चिदानंद निष्कलंक। दावी कौतुक भक्तांसी। ७६ रजनीमाजीं कृष्णनाथ। प्रवेशला तिच्या गृहांत। तीस निद्रा लागली अद्‌भुत। हरि सोडी कावडीतें। ७७ गोरस सर्वही भक्षूनी। रितीं केलीं दुधाणीं। त्यांमाजी सर्प विंचू भरूनी। पुढती बांधिलीं तैसींच। ७८ पाली सरड बेडूक। अवघीं मडकीं भरलीं देख। खूणगांठ तैसीच निष्टंक। जगदुद्धारें बांधिली। ७९ घरा गेला वनमाळी। गौळण उठली प्रातःकाळीं। कावडी खांदां घेतली। मथुरेसी गेली तेधवां। १८० गांवचे लोक आले ते क्षणीं। गोरस पुसती गौळिणी। येरी म्हणे दहीं दूध लोणी। चारी जिन्नसा आहेती। ८१ एक म्हणती गोरस कैसा आहे। येरी म्हणे द्रव्य आणा लवलाहें। कावडी सोडूनियां पाहे। मडकीं जंव उघडोनि। ८२ तों सर्प विंचू ते वेळे। भरभरां आंतून निघाले। लोकांवरी

कसकर दृढ़ता-पूर्वक बाँध लिया (और सोचा कि) कल सवेरे मथुरा में ले जाकर क्षण मात्र में (इसे) बेचकर आऊँगी। ७३ समझो, मैं बाघिन गोरस को कृष्ण के मँह में पड़ने नहीं दूँगी। यदि मेरे घर आएगा, तो मैं कृष्ण को दण्ड दूँगी। ७४ ऐसे अभिमान से वह गोपी काँवर सिरहाने लेकर (रखकर) सो गयी। तब रात में चक्रपाणि कृष्ण ने विपरीत करनी की। ७५ (कवि कहता है—) जो सकल देहधारियों के एक (मात्र) साक्षी हैं, जो एक (मात्र सबके) चित्त (के भावों) के पारखी हैं, जो निष्कलंक सच्चिदानन्द हैं, उन (भगवान कृष्ण) ने अपने भक्तों को (मनोरंजनात्मक) लीला (इस प्रकार) दिखा दी। ७६ रात को कृष्णनाथ उसके घर के अन्दर प्रविष्ट हो गये। उसे तो अद्‌भुत (रूप से) नींद लगी थी। (फिर) कृष्ण ने काँवर छुड़ा दी। ७७ उन्होंने समस्त गोरस खाकर दुध-हाँड़ियाँ रिक्त कर दीं। (तदनन्तर) उनके अन्दर साँप और बिच्छू भरकर उसके आगे वैसे ही बाँध दीं। ७८ छिपकलियों, गिरगिटों, मेंढकों से समस्त मटकों को भरे हुए देखकर जगदुद्धारक कृष्ण ने उसी प्रकार दृढ़ गाँठ बाँध दी। ७९ तदनन्तर वनमाली घर (चले) गये। (इधर) वह गोपी सवेरे उठ गयी, उसने कंधे पर काँवर रख ली और तब वह मथुरा गयी। १८० गाँव के लोग उस क्षण आ गये और उन्होंने उस गोपी से गोरस के बारे में पूछा। (तब) वह बोली, 'दही, दूध, मक्खन (और घी)- चारों पदार्थ हैं'। १८१ (कुछ) एक पूछते, 'गोरस कैसा है ?' तो वह कहती, 'झट से पैसे ले

धांवले। डंखावया तेधवां। ८३ सरड पाली चहूंकडे धांवती। लोक बिदोबिदीं पळती। एक म्हणती कुडी पापमती। गौळण आहे दुष्ट हे। ८४ आमच्या गांवावरी विघ्न। विंचू सर्प कावडी भरोन। इणें सोडिले आणून। कौटाळीण मोठी हे। ८५ महाचांडाळीण गौळिणी। ईस ताडण करावें धरूनी। तंव ती कावडी टाकूनी। पळे उठोनी सत्वर। ८६ लोक धांवती क्रोधेंकरोनी। कावडी टाकिली फोडोनी। सर्प विंचू धरोनी। लोक मारिती ठायीं ठायीं। ८७ एक म्हणती गौळिणीस धरा वेगें। येरी पळे गोकुळमार्गें। ते निस्तेज होवोनि सर्वांगें। वाटे पडे अडखळोनि। ८८ धांपा दाटे वाटे रडे। उलथोनि चिखलामाजी पडे। लोक मारिती धोंडे खडे। एक शेण हाणिती। ८९ यमुना उतरोनि गोपी गेली। गोकुळामाजी प्रवेशली। तीस पुन्हां मथुरा वर्ज्य जाहली। लोक टपती मारावया। १९० कृष्णास जरी देती गोरस। तरी शतगुणें वाढे विशेष। ते गृहीं दशा न ये आसमास। गोरस हरीस अर्पितां। ९१ हरिमुखीं बिंदुमात्र पडे। शतगुण

आओ'। काँवर खोलकर जब (उन्होंने) मटकी को खोलकर देखा, तो उस समय साँप और बिच्छू अन्दर से झट निकल आये और तब काटने के लिए लोगों की ओर दौड़े। ८२-८३ गिरगिट, छिपकलियाँ चारों ओर दौड़ने लगे, तो लोग रास्ते-रास्ते में भागने लगे। (यह देखकर) कोई एक बोले—'यह कपटी पापमती दुष्ट गोपी है। ८४ हमारे गाँव पर यह विघ्न ले आयी है— इसने काँवर भरकर बिच्छू, साँप लाते हुए छोड़ दिये हैं। यह बड़ी दुष्टकर्मा है। ८५ यह बड़ी चण्डालिनी (दुष्ट, पापी) गोपी है। इसे पकड़कर पीट लें'। तब काँवर फेंककर वह झट से उठकर भागने लगी। ८६ लोग (उसके पीछे) क्रोध से दौड़ने लगे। लोगों ने उसकी काँवर (तब तक) तोड़ डाली और वे स्थान-स्थान पर साँपों और बिच्छुओं को (पकड़-) पकड़कर मारने लगे। ८७ कोई-एक बोले, 'इस ग्वालिन को झट से पकड़ लो', तो वह गोकुल की राह भाग गयी। वह सारे शरीर से निस्तेज होकर रास्ते में लड़खड़ाकर गिर गयी। ८८ वह हाँफ रही थी, रास्ते में रो रही थी; उलटकर कीचड़ में गिर पड़ती थी। लोग उसे पत्थर-कंकड़ मारते थे, तो कोई-एक गोबर उछालते-फेंकते थे। ८९ वह गोपी यमुना पार कर गयी और उसने गोकुल में प्रवेश किया। उसे फिर मथुरा (जाना) वर्ज्य (मना) हो गया; (क्योंकि) लोग उसे मारने की ताक में रहते थे। १९० यदि वह कृष्ण को गोरस दे देती, तो वह सौ गुना विशेष रूप से बढ़ जाता। कृष्ण को (किसी घर में) गोरस समर्पित हो जाने पर, उस घर के पास दुरवस्था नहीं आती थी। १९१ यदि कृष्ण के मुँह में बूँद मात्र पड़ जाती, तो वह तत्काल सौ गुना बढ़ जाती।

तत्काळ वाढे। जरी कृष्ण न ये घराकडे। तरी गौळिणी कष्टी होती। ९२ कृष्ण आजि आला नाहीं घरा। म्हणोनि चिंताक्रांत गोपदारा। बिंदुमात्र अर्पितां श्रीवरा। गोरस वाढे असंभाव्य। ९३ वटबीज मोहरीयेवढें। परी पर्वताकार वृक्ष वाढे। तैसा हरिमुखीं गोरस पडे। दशा चढे गृहासी त्या। ९४ गाऱ्हाणें सांगती गौळिणी। त्या उण्याच कौतुकेंकरोनी। परी मनामाजी चक्रपाणी। नित्य यावा गृहातें। ९५ भलत्या कार्यमिषेंकरोनी। यशोदेच्या गृहा कामिनी। क्षणक्षणां येती फिरोनी। कृष्ण नयनीं पाहावया। ९६ पूर्णब्रह्म वैकुंठनायक। त्यासी ते गौळण जाहली विन्मुख। गोरस न देऊनियां दुःख। मथुरेमाजी पावली। ९७ प्रपंच ना परमार्थ। गौळण श्रमली व्यर्थ। जैसा निर्भागी उदिमा जात। त्यास नागवीत तस्कर पैं। ९८ भगवंतीं पडलें अंतर। वर्ज्य जाहलें मथुरापुर। खुंटला प्रपंच-व्यवहार। द्रव्य अणुमात्र लाभेना। ९९ तेंच कृष्णमुखीं अर्पित। तरी सहस्रगुणें वाढत। कृपा न करितां भगवंत। विघ्नें बहुत येती हो। २००

(वस्तुतः) यदि कृष्ण घर की ओर न आते, तो गोपियाँ दुखी हो जातीं। ९२ कृष्ण आज (हमारे) घर नहीं आये, इस (विचार) से गोप-नारियाँ (गोपियाँ) चिन्तातुर हो जाती थीं। श्रीवर कृष्ण को बूँद मात्र समर्पित कर देने पर गोरस अपरिमित (रूप से) बढ़ जाता था। ९३ वट-बीज (बरगद का बीज) सरसों के समान होता है; परन्तु (उससे) पर्वत के-से आकार का वृक्ष बढ़ता है। उसी प्रकार (किसी घर में) कृष्ण के मुख में गोरस पड़ जाता, तो उस घर में अच्छी स्थिति वृद्धि को प्राप्त हो जाती थी। ९४ गोपियाँ शिकायत करती तो थीं, परन्तु वे यों ही हँसी में किया करती थीं। फिर भी, उन्हें मन में लगता था कि चक्रपाणि कृष्ण नित्य (उनके) घर आ जाएँ। ९५ किसी मनचाहे काम के बहाने वे नारियाँ कृष्ण को अपनी आँखों से देखने के लिए क्षण-क्षण यशोदा के घर (पुनः) लौट आ जाती थीं। ९६ कृष्ण तो पूर्णब्रह्म हैं, वैकुण्ठ के स्वामी हैं; उनसे वह गोपी विमुख हो गयी और उन्हें गोरस न देने पर मथुरा में दुःख को प्राप्त हो गयी। ९७ (इसमें उसके लिए) न संसार का सुख (प्राप्त) हुआ, न परमार्थ (सिद्ध हुआ)। वह गोपी व्यर्थ ही श्रम को प्राप्त हो गयी, जिस प्रकार कोई अभागा व्यापार-तिजारत के लिए गया हो, परन्तु (मार्ग में) उसे चोरों ने लूट लिया हो। ९८ भगवान से वह दूर रह गयी; (इसलिए) उसे मथुरापुर वर्ज्य हो गया; सांसारिक (लाभ का) व्यवहार समाप्त हो गया और अणु मात्र (तक) धन प्राप्त नहीं हुआ। ९९ वही कृष्ण के मुख में समर्पित हो जाता, तो सहस्र गुना वह बढ़ जाता। अहो, यदि भगवान कृपा न करें, तो बहुत विघ्न आ जाते हैं। २०० यदि भगवान (किसी से)

भगवंत झालिया पाठमोरा। नसतींच विघ्नें येती घरा। महारत्नें होती गारा। कोणी न पुसे तयांतें। १ आपुलें द्रव्य लोकांवरी। तें बुडोनि जाय न लाभे करीं। ज्यांचें घ्यावें ते द्वारीं। बैसती आण घालूनियां। २ वैरियां करीं सांपडे वर्म। अवदशा येऊनि बुडे धर्म। विशेष वाढले क्रोधकाम। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ३ आपुले जे का शत्रु पूर्ण। ज्यांसी आपण पीडिले दारुण। अडल्या धरणें त्यांचे चरण। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ४ लाभाकारणें निघे उदिमास। तो हानीच होय दिवसेंदिवस। पूज्यस्थानीं अपमान विशेष। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ५ सुहृद आप्त द्वेष करिती। नसते व्यवहार येऊनि पडती। सदा तळमळ वाटे चित्तीं। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ६ आपुलें राज्य संपत्ति धन। शत्रु भोगूं पाहे आपण। देह पीडे व्याधीविण। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ७ विद्या बहुत जवळी असे। परी कोणीच तयासी न पुसे। बोलो जातां मति भ्रंशे। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ८ ठेविला ठेवा न सांपडे। नसतीच व्याधि अंगा जडे। सदा भय वाटे चहूंकडे। तरी देवक्षोभ जाणिजे। ९ असो गौळण सर्वस्वें

विमुख हो जाएँ, तो (उसके) घर अनचाहे विघ्न आ जाते हैं, (उसके लिए) बड़े-बड़े रत्न स्फटिक हो जाते हैं; उसे कोई नहीं पूछता। २०१ हमारा अपना धन किसी पर (ऋण के रूप में) हो, तो वह डूब जाता है, वह हाथ नहीं लगता। (परन्तु) जिससे (कुछ उधार) लें, वे द्वार पर (प्रण-पूर्वक) धरना देते हुए बैठते हैं। २ वैरियों के हाथ बड़ा (गुप्त) दोष आ जाता है; बुरी स्थिति आकर धर्म डूब जाता है। यदि क्रोध, काम (जैसे विकार) बढ़ जाएँ, तो उसे भगवान का क्षोभ (कोप) समझिए। ३ जो अपने पूरे (पक्के) शत्रु हैं और जिन्हें हमने (कभी) दारुण रूप से पीड़ित किया था, यदि कठिन समय में उनके चरण पकड़ने पड़ें, तो इसे भगवान का क्रोध समझिए। ४ कोई लाभ के हेतु से व्यापार के लिए निकला हो, परन्तु उसे दिन प्रतिदिन हानि ही हो जाती हो, यदि पूज्य स्थान पर (किसी का) विशेष (रूप से) अपमान हो रहा हो, तो इसे भगवान का क्रोध समझिए। ५ (यदि) मित्र, सगे-सम्बन्धी द्वेष करने लगे हों, अनचाहे व्यवहार आ पड़े हों, मन में नित्य बेचैनी लगी रहती हो, तो उसे भगवान का क्रोध समझिए। ६ हमारे राज्य, सम्पत्ति, धन का भोग स्वयं शत्रु करना चाहता हो, बिना व्याधि के देह पीड़ित होने लगी हो, तो उसे भगवान का क्रोध समझिए। ७ (हमारे) पास विद्या तो बहुत हो, परन्तु उसे कोई भी नहीं पूछता हो, बोलने लगते ही मति भ्रष्ट हो जाती हो, तो उसे भगवान का क्रोध समझिए। ८ रखी हुई धरोहर नहीं मिलती हो, अनचाही व्याधि शरीर में लग गयी हो, चारों ओर से सदा भय लगता हो, तो उसे भगवान का क्रोध समझिए। ९ अस्तु।

ठाकली। भगवंतीं ते अंतरली। प्रपंचपरमार्थी मुकली। ते पडली भवसागरीं। २१० पुरुष अथवा नारी। कृपा न करितां श्रीहरी। व्यर्थ कष्टती संसारीं। नाना दुःखें भोगिती। ११ असो मग तेच गौळणी। यशोदेच्या गृहा येऊनी। लागली कृष्णाचे चरणीं। म्हणे हरि दया करीं कां। १२ तुजसी अंतर पडतां। मुकलें इहपरत्र स्वार्था। कृपा करीं कृष्ण-नाथा। निरसीं चिंता सर्वही। १३ कृष्ण म्हणे राहें स्वस्थ। भगवंतीं ठेवीं चित्त। तेणें प्रपंच आणि परमार्थ। ब्रह्मरूप भासे हो। १४ ऐसा निजभक्तमानसविहारी। नाना लीला दावी मुरारी। तो ब्रह्मानंद निर्विकारी। दावी चरित्र दासांतें। १५ पाहतां हरिविजय ग्रंथ। ग्रंथरूपें श्रीभगवंत। हृदयीं राहे अखंडित। नाठवत दुजें कांहीं। १६ पाहीन म्हणतां हा ग्रंथ। पापें होती भयभीत। आधींच पळती समस्त। पुढती न येत फिरोनी। १७ जन्मोजन्मींचीं पापें बहुतें। लिहिलीं होतीं चित्रगुप्तें।

वह गोपी सर्वस्व में ठगी गयी; क्योंकि वह भगवान से दूर पड़ गयी (दूर चली गयी)। वह संसार और परमार्थ (दोनों) में लुट गयी और संसार रूपी सागर में गिर पड़ी (डूब गयी)। २१० श्रीहरि द्वारा कृपा न करने पर पुरुष अथवा स्त्री संसार (घर-गिरस्ती) में व्यर्थ ही कष्ट को प्राप्त हो जाते हैं और नाना दुःखों का भोग करते हैं। ११ अस्तु। अनन्तर वही गोपी यशोदा के घर आकर कृष्ण के चरणों में लग गयी और बोली, 'हे हरि, दया करो। १२ तुझसे अन्तर पड़ने पर मैं इहलोक और परलोक के अपने हित में लुट गयी। हे नाथ कृष्ण, कृपा करो और (मेरी) सभी चिन्ता का निराकरण कर दो'। १३ (इसपर) कृष्ण बोले, 'शान्त रहो, भगवान में चित्त लगाये रखो, उससे संसार (घर-गिरस्ती) और परमार्थ (दोनों) ब्रह्म-रूप प्रतीत हो जाएँगे'। १४ इस प्रकार अपने भक्तों के मन (-रूपी मानसरोवर) में विहार करनेवाले मुरारि भगवान कृष्ण नाना (प्रकार की) लीलाएँ प्रदर्शित कर रहे थे। वे आनन्दस्वरूप निर्विकारी ब्रह्म अपने दासों (भक्तों) को चरित्र (लीलाएँ) दिखाते थे। २१५

श्रीहरि-विजय नामक इस ग्रन्थ को देखने पर इस ग्रन्थ के रूप में श्रीभगवान (कृष्ण) हृदय में अखण्डित (अविरत) रहते हैं और दूसरा कुछ स्मरण में नहीं आता। २१६ यह कहते ही— "मैं इस ग्रन्थ को देखूँगा" (इस ग्रन्थ को देखने की बात कहते ही, देखने की इच्छा करते ही) पाप भयभीत हो जाते हैं; वे सब पहले ही भाग जाते हैं और आगे चलकर फिर (लौट) नहीं आते। १७ चित्रगुप्त[1] ने जन्म-जन्म के बहुत

---

१ चित्रगुप्त—स्कन्द पुराण के अनुसार पूर्वकाल में कायस्थ-वंशोत्पन्न मित्र नामक एक गृहस्थ के दो सन्तानें हुईं— चित्र (नामक पुत्र) और चित्रा (नामक पुत्री)।

तो तटस्थ राहे तेथें। लेखणी न चलेचि पां। १८ हें म्हणतां हरिचरित्र। परम सुखावे विष्णुपुत्र। तो पूजा घेऊनि सत्वर। सामोरा येत तयातें। १९ अवलोकितां हरिविजय। सर्वकाळ पावे जय। कळिकाळाचें नाहीं भय। रक्षी स्वयें हरि त्यातें। २२० या ग्रंथरूपें गोदावरी। वाहे निरंतर भक्तांवरी। सत्यवतीसुत ब्रह्मगिरी। येथूनि इचा उगम। २१ वैराग्य आणि भक्ती। या दोन्ही थडचा शोभती। ज्ञानरूपें गोदा निश्चतीं। वाहे अक्षय निर्मळ। २२ वरकड नदियांमाजी जीवन। या ग्रंथगोदेमाजीं जगज्जीवन। प्रेमपूर येती भरोन। नाहीं वोसाण दूषणाचें। २३ वरकड नद्यांचें डहुळ पाणी। येथें निर्मळ सदा चक्रपाणी। भक्तराज बैसले श्रवणीं। अनुष्ठानीं सादर। २४ ते गंगेमाजी बुडतां मरिजे। हे गंगेमाजी बुडतां तरिजे। वृत्ति जळसावजें। माजीं निमग्न तळपती। २५ श्रीकृष्ण

पाप लिखे थे; (परन्तु) वे भी वहाँ (अब पापों का ब्योरा लिखते-लिखते) चकित हो गये; उनकी लेखनी नहीं चल रही है। १८ इस हरि-चरित्र का पठन करने पर भगवान विष्णु के पुत्र ब्रह्माजी परम सुख को प्राप्त हो जाते हैं और वे पूजा (की सामग्री हाथ में) लेकर झट से उसके सामने (अगवानी के लिए) आ जाते हैं। १९ इस श्रीहरि-विजय नामक ग्रन्थ का अवलोकन करने पर (व्यक्ति) समस्त काल जय को प्राप्त हो जाता है। उसे कलि-काल से भी भय नहीं होता, (क्योंकि) स्वयं श्रीहरि उसकी रक्षा करते रहते हैं। २२० इस ग्रन्थ के रूप में गोदावरी (नदी) भक्तों के लिए अविरल बहती रहती है। सत्यवती-सुत श्री व्यास ऋषि मानो वह ब्रह्मगिरि (नामक पर्वत) हैं— यहाँ से उसका उद्गम हुआ है। २२१ वैराग्य और भक्ति (-रूपी) दोनों तट शोभायमान हो रहे हैं। उनके बीच में से निश्चय ही गोदावरी नदी निर्मल अक्षय रूप से बह रही है। २२ अन्य नदियों में पानी बहता है; परन्तु इस ग्रन्थ रूपी गोदावरी में जगज्जीवन (का अस्तित्व) है। उसमें प्रेम रूपी बाढ़ उमड़कर आती है; उसमें दोष रूपी कूड़ा-कचरा नहीं है। २३ अन्य नदियों का पानी मैला है; यहाँ चक्रपाणि रूपी जल सदा निर्मल होता है; बड़े-बड़े भक्त अनुष्ठान में आदर-पूर्वक श्रवण करने के लिए बैठे हुए हैं। २४ (लोग) उस गंगा में डूबते ही मर जाते हैं, (परन्तु) इस गंगा में डूबने पर उबर जाते हैं। वृत्ति रूपी जलचर उसके अन्दर निमग्न होकर चमकते हैं। २५ श्रीकृष्ण जगत् के आनन्द-स्वरूप कन्द हैं; वे ही (मेरे गुरु) स्वामी ब्रह्मानन्द

उन दोनों ने प्रभास क्षेत्र में सूर्य की आराधना की। फलतः चित्र ज्ञानी हो गया। इससे प्रसन्न होकर यमराज ने उसे अपने कार्यालय में लेखापाल के पद पर नियुक्त किया। वहीं बैठकर अपनी दिव्य-दृष्टि से वह जीवों के पाप-पुण्य को देखकर उनका सही-सही विवरण लिख देता है।

जगदानंदकंद। तोचि स्वामी ब्रह्मानंद। त्याचे चरणलक्षणमृगमद। श्रीधरमिलिंद सेवीत। २२६ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। चतुर परिसोत प्रेमळ भक्त। षष्ठाध्याय गोड हा। २२७

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

(के रूप में आविर्भूत) हैं। उनके चरण-लक्षण रूपी कस्तूरी का (ग्रन्थ-कर्ता) श्रीधर रूपी यह भ्रमर सेवन कर रहा है। २२६

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है; चतुर प्रेममय भक्त उसके इस मधुर छठे अध्याय का श्रवण करें। २२७

अध्याय—७

बालकृष्ण-लीला

श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीकृष्णनाथाय नमः॥ जय जय सच्चिदानंद सगुण। अतसीकुसुमभास तूं पूर्ण। वाटे त्याच रंगेंकरून। नीलोत्पलें रोविलीं। १ नभासी चढला तोचि रंग। त्याचे प्रभें रंगले मेघ। इंद्रनीळ हरिरंग। त्याच प्रकाशें जाहलें। २ तेथींचें सौंदर्य अद्भुत। गरुडपाचूंस तेज चढत। मर्गजासी बीक दिसत। तनु सांवळी देखोनियां। ३ लावण्यामृत-

श्रीगणेशाय नमः। श्रीकृष्णनाथाय नमः। हे सगुण रूपधारी सच्चिदानन्द (भगवान कृष्ण), (आपकी) जय हो, जय हो। आप पूर्ण रूप से अलसी के फूल (की-सी कान्ति को धारण किये हुए) जैसे आभासित हो रहे हैं। लगता है, उसी रंग से (युक्त करके) नील-कमल रोप दिये हैं। १ वही रंग आकाश पर चढ़ा हुआ है; उसकी प्रभा से (ही) मेघ रँग गये हैं। इन्द्रनील (नामक रत्न) श्रीहरि (कृष्ण) के रंग वाला है, (जान पड़ता है) वह उसी प्रकाश, अर्थात कान्ति से (वैसा) हो गया है। २ वहाँ का, अर्थात कृष्ण के शरीर का सौन्दर्य अद्भुत है। उससे (ही) पन्ना नामक रत्न को तेज प्राप्त हो गया है। कृष्ण की साँवली देह को देखने से ही (उसके प्रभाव से) मरकत रत्न को कान्ति (प्राप्त हुई) दिखाई देती है। ३ कृष्ण लावण्य (सलोनापन) रूपी अमृत के अद्भुत सागर हैं; अथवा (जान पड़ता है) वे (स्वयं) कोटि (-कोटि) कामदेवों के पिता हैं, जिनसे पुष्प-धनु[1] कामदेव जन्म को

[1] कामदेव— कामदेव का जन्म ब्रह्मा के हृदय से हुआ। उसे प्रेम, सौन्दर्य का अधिष्ठाता देवता मानते हैं। उसका अस्त्र है धनुष। यह धनुष फूलों का बना

सागराद्भुत। कीं कोटिमकरध्वजाचा तात। तो पुष्पधन्वा उदरीं जन्मत। अंकीं खेळत जयाच्या।४ श्यामलांगी अतिनिर्मळ। वरी डोले वैजयंती-माळ। पुष्करीं शक्रचाप सुढाळ। सुरंग जैसें मिरवे पैं।५ कीं मेघीं स्थिरावली क्षणप्रभा। तैसी वैजयंतीची शोभा। सहस्रमुखाचिया जिभा। शिणल्या गुण वर्णितां।६ इंद्रनीळाचा मेरु प्रभाघन। वेष्टिला शातकुंभतगटेकरून। तैसा झळकत वसन। हरिजघनीं सर्वदा।७ कीं सकळ चपळा गाळून। रंगविले हे पीतवसन। वाटे द्वादश भानु येऊन। कटीं मेखळेवरी जडियेले।८ पांघरावयाचा क्षीरोदक। कीं शुभ्र यशा चढलें

प्राप्त हो गया और जिनकी गोद में वह खेल रहा है।४ (कृष्ण के) अति निर्मल श्याम शरीर पर वैजयन्ती माला[1] झूल रही है; जैसे नील-कमल में अच्छी कान्ति से तथा सुन्दर रंगों से युक्त इन्द्रधनुष ही शोभायमान हो रहा है।५ अथवा (यदि) मेघ के अन्दर बिजली स्थिरता को प्राप्त हो गयी हो, (तो वह जैसे शोभायमान हो गयी हो) वैसी ही शोभा वैजयन्ती माला की (दिखायी देती) है। उन (भगवान कृष्ण) के गुणों का वर्णन करते हुए सहस्रमुख शेष की जिह्वाएँ थक गयीं।६ मानो, घनी प्रभा से युक्त इन्द्रनील नामक रत्न से निर्मित मेरु पर्वत विशुद्ध सोने की बनी जरी के वस्त्र से वेष्टित हो; वैसा ही (कान्तिमान) वस्त्र (पीताम्बर) श्रीहरि की कटि में सदा जगमगा रहा है।७ अथवा समस्त बिजलियों को शुद्ध करके (उनके रस में) यह पीताम्बर रँग दिया गया हो। जान पड़ता है, बारहों सूर्य[2] आकर उनकी कटि में (बाँधी हुई) मेखला (करधनी) में जड़े हुए (जोड़े हुए) हैं।८ क्षीरोदक अर्थात रेशम का पटोला (ओढ़ लेने के लिए) उत्तरीय (उपरना, दुपट्टा) है;

हुआ माना जाता है, इसलिए कामदेव को पुष्पधनु, पुष्पधन्वा कहते हैं। उसके बाण भी विशिष्ट फूल या फूलों से निर्मित हैं, अतः उसे पुष्प-शर कहते हैं। उसकी पत्नी है रति, जो सुन्दरता की प्रतीक समझी जाती है। कामदेव को मदन भी कहते हैं। तपस्या में बाधा उत्पन्न करने के अपराध में शिवजी ने उसे अपनी तीसरी आँख की अग्नि में जला डाला, परन्तु शोक-विह्वल रति के प्रति दयालु होकर उन्होंने उसे पुनर्जीवित किया, परन्तु अंगहीन बनाकर रखा। इसलिए कामदेव अनंग भी कहाता है।

१ वैजयन्ती माला— समुद्र-मन्थन के समय वैजयन्ती नामक माला समुद्र में से उपलब्ध हुई। उसे भगवान विष्णु ने स्वीकार कर अपने गले में पहन लिया। उस माला में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक पंच महातत्त्वों के प्रतीक स्वरूप पाँच रत्न —नीलम, मोती, मानिक, पुष्पराज और हीरा— गूँथे हुए हैं।

२ बारह सूर्य— मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषा, हिरण्य-गर्भ, मरीचि, आदित्य, सविता, अर्क, और भास्कर। अथवा धाता, मित्र, अर्यमा, शुक्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। (अन्य नाम-सूचियाँ भी उपलब्ध हैं।)

बीक। कीं शुभ्र श्वेत मृडानीनायक। कर्पूरेंकरूनि उटिला। ९ कीं शुद्ध-रजततगटा घडिलें। कीं पारदें कैलास डवरिले। कीं जान्हवीतीरीं वोपिलें। दिनकरनाथें स्वहस्तें। १० अंगीं उटी दिसे सुढाळ। कीं इंदुबिंब उकललें निर्मळ। कीं मुक्ताफळांचा गाळून ढाळ। इंद्रनीळ चर्चिला। ११ त्रिभुवन-सौंदर्य एकवटलें। तें हरिमुखीं येवोनि ओतिलें। आनंदाचें स्वरूप उजळलें। रूपा आलें हरिमुखीं। १२ हरिअंगींचा अखिल सुवास। भेदूनि गेला महदाकाश। कीं ब्रह्मानंद भरोनि निःशेष। सगुण सुरस ओतिलें। १३ आनंद-सरोवरींचीं कमळदळें। तैसे आकर्णनेत्र विकासले। ते कृपादृष्टीनें निवाले। प्रेमळ जन सर्वही। १४ अहो तें स्वानंदरूप सगुण। कीं कमलेचें सौभाग्य पूर्ण। कीं सद्भक्तांचें निजधन। ठेवणें हें आकारलें। १५ तो वैकुंठींचा वेल्हाळ सुंदर। कीं भक्तमंदिरांगणमंदार। पद्मोद्भवाचा तात उदार। गोकुळामाजीं अवतरला। १६ मत्स्य कच्छ रूपें धरीं श्रीपती। परी तेथें न

अथवा (मानो मूर्तिमती) शुभ्र कीर्ति पर कान्ति चढ़ी हुई है; अथवा शुभ्र-श्वेत वर्णीय (पार्वती-पति) शिवजी कपूर से विलेपित हों। ९ अथवा वह (उत्तरीय) शुद्ध चाँदी की जरी से बनाया हुआ हो, अथवा पारे से कैलास पर्वत विलेपित किया हो; अथवा सूर्य ने अपने हाथों उन्हें गंगा-तट पर कान्ति-युक्त कर दिया हो। १० शरीर पर अंगराग कान्तिमान दिखायी दे रहा है; अथवा चन्द्र-बिम्ब (नितान्त) निर्मल (रूप से) प्रकाशित हो रहा है; अथवा मोतियों के तेज को शुद्ध करके उससे इन्द्रनील रत्न का लेपन किया हो। ११ त्रिभुवन का सौन्दर्य एकत्रित हो गया हो और वह आते हुए कृष्ण के मुख के (रूप) में (साँचे में) ढाल दिया गया हो; अथवा आनन्द का अपना रूप उज्ज्वलता को प्राप्त हो गया हो और वह कृष्ण के मुख-रूप में (सगुण-साकार) रूप को प्राप्त हो गया हो। १२ कृष्ण की देह की समस्त सुगन्ध महदाकाश को भेदकर (ऊपर) गयी है। अथवा ब्रह्मानन्द सम्पूर्ण भरकर उसे सगुण-सुरस रूप में ढाल दिया हो। १३ आनन्द (रूपी जल के) सरोवर के जैसे कमल-दल हों, वैसे उनके आकर्ण-नेत्र (कानों तक फैले हुए, विशाल नेत्र) विकसित हो गये हैं। उनकी कृपा-युक्त दृष्टि से सभी प्रेममय (भक्त) जन (समस्त तापों— आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापों से मुक्त होकर) शान्ति को प्राप्त हो गये हैं। १४ अहो, (कृष्ण तो) सगुण रूप (-धारी) आत्मानन्द-स्वरूप हैं, अथवा वे कमला (लक्ष्मी) के पूर्ण सौभाग्य स्वरूप हैं, अथवा सद्भक्तों का अपने धन की धरोहर कृष्ण के रूप में आकार को प्राप्त हो गयी है। १५ (ऐसे) वे वैकुण्ठ के सुन्दर प्रिय स्वामी मानो भक्तों के मन्दिर (घर) के आँगन में उत्पन्न कल्पवृक्ष हैं। अथवा पद्मोद्भव ब्रह्मा के वे उदार (-चरित) पिता गोकुल में (कृष्ण के रूप में)

बैसे लोकांची भक्ती। म्हणोनि गोकुळीं आला व्यक्ती। मानववेष धरूनियां। १७ जे कां विषयपर जन। न ऐकती हरीचे गुण। त्यांस शृंगाररस दावून। वेधी मन आपणाकडे। १८ भक्तांसी विघ्नें येती प्रबळ। तीं निजांगीं सोशी तमाळनीळ। मर्दूनियां दुर्जन खळ। भक्त प्रेमळ रक्षीतसे। १९ सबळ काष्ठें भ्रमर कोरी। पिष्ट करी क्षणाभीतरीं। परी कमळास निर्धारीं। धक्का न लावी सर्वथा। २० कमळआंकोचें कोंडे भ्रमर। परी तें न फोडीच अणुमात्र। तैसे दासांचे अन्याय समग्र। सोसूनि रक्षी तयांतें। २१ तिळमात्र पाषाण। जळीं न तरे देखती जन। तेथेंचि सबळ काष्ठ तरे पूर्ण। कदा जीवन न बुडवी। २२ जीवनीं हाचि अभिमान। कीं आपण वाढविलें काष्ठ पूर्ण। तें न बुडवीं मी कदा जाण। कालत्रयीं सहसाही। २३ त्या काष्ठाच्या नौका होती। आणिक जड जीवां तारिती। तैसे भगवद्भक्त उद्धरिती। बहुतांसही समागमें। २४ असो

अवतरित हो गये हैं। १६ (पूर्व काल में) श्रीपति (लक्ष्मीपति भगवान विष्णु) ने मत्स्य, कूर्म रूप धारण किये थे; परन्तु (जान पड़ता है,) वहाँ अर्थात उन पर लोगों की भक्ति बैठ नहीं पायी (मत्स्य, कूर्म स्वरूप भगवान भक्ति के आधार नहीं बन सके); इसलिए वे अलौकिक पुरुष मानव वेश धारण करके गोकुल में आ गये हैं। १७ जो विषयी (भोग-विलास के विषयों में आसक्त) लोग होते हैं, वे भगवान हरि के गुणों का श्रवण नहीं करते (गुणों की ओर ध्यान नहीं देते); उन्हें शृंगार रस दिखाते हुए वे (कृष्ण) उनके मन को अपनी ओर खींच लेते हैं। १८ भक्तों पर बड़े भारी विघ्न आते हैं; तमालनील भगवान उन्हें अपने शरीर पर सहन करते हैं (झेलते हैं)। (फिर) दुर्जनों और खलों का संहार करके वे अपने प्रेममय भक्तों की रक्षा करते हैं। १९ भौंरा कठिन काठ को कुरेद लेता है और क्षण के अन्दर उसे चूर-चूर कर डालता है; परन्तु वह निश्चय ही कमल को बिलकुल आघात नहीं पहुँचाता। २० कमल के मूँद जाने पर भौंरा (उसके अन्दर) बन्द हो जाता है; परन्तु वह उसे अणु मात्र तक नहीं काटता; उसी प्रकार (भगवान) अपने दासों (भक्तों) के समस्त अन्याय को सहन करके उनकी रक्षा करते हैं। २१ लोग यह देखते हैं कि तिल मात्र-सा पत्थर पानी पर नहीं तैर पाता; परन्तु वहीं बड़ा भारी काठ पूर्णतः तैर सकता है; उसे पानी कभी नहीं डुबो लेता। २२ पानी का यही अहंकार होता है— मैंने उसे पूर्ण रूप से बढ़ा दिया है (पाल-पोसकर विकसित कर दिया है), समझ लीजिए कि मैं उसे साधारणतः तीनों कालों में कभी नहीं डुबो देता। २३ उस काठ से नौकाएँ बनती हैं और वे जड़ जीवों को तैरा देती हैं; उसी प्रकार भगवान के भक्त अपनी संगति से भी अनेक को उबार लेते हैं। २४ अस्तु।

जलकाष्ठन्यायें निश्चित। शरणागतां तारी भगवंत। नाना चरित्रें अद्भुत। दावी भक्तां तारावया। २५ असो षष्ठाध्यायीं कथा। गौळणीनें ठकविलें कृष्णनाथा। गोरस मथुरे विकूं जातां। अति अनर्थ पावली। २६ गोरस न देऊनि वनमाळी। गौळणचि परम ठकली। सच्चिदानंदमूर्ति सांवळी। महिमा न कळे तियेतें। २७ नवल एक गोकुळीं वर्तलें। एका गौळियानें स्त्रियेसीं सांगितलें। म्हणे दधि दूध जें सांचलें। अनसूट धरीं येथूनि। २८ भगवंताचा नवस पुरवीन। करीन ब्राह्मणसंतर्पण। तरी घृत ठेवीं सांचवून। अवश्य म्हणे नितंबिनी। २९ घृत सांचलें बहुत। स्त्रीनें अर्ध चोरिलें त्यांत। शेजारिणीच्या घरीं त्वरित। घट भरूनि ठेविला। ३० स्त्रियांचें कर्तृत्व न कळे भ्रतारां। महाअनृता अविचारा। सकळ असत्याचा थारा। भय न धरिती पापाचें। ३१ अनृत साहस माया मूर्खत्व। अतिलोभ अशौच निर्दयत्व। हे स्वभावगुण सत्य। स्त्रियांच्या ठायीं असती हो। ३२ गौळियानें महोत्सव केला। नवस श्रीहरीचा फेडिला। परी घृतघट जो

निश्चय ही (उपर्युक्त) जल-काष्ठ न्याय के अनुसार भगवान शरण में आये हुओं को उबार लेते हैं और भक्तों को उबारने के हेतु नाना (प्रकार के) अद्भुत चरित्र (-लीलाएँ) प्रदर्शित करते हैं। २५

अस्तु। छठे अध्याय में यह कथा (कही गयी) है— एक गोपी ने कृष्णनाथ को ठग लिया; (फलस्वरूप) गोरस बेचने के लिए मथुरा जाते हुए वह अति संकट को प्राप्त हो गयी। २६ वनमाली कृष्ण को गोरस न देने पर वह गोपी ही बहुत ठगी गयी। सच्चिदानन्द की साँवली मूर्ति की, अर्थात भगवान कृष्ण की महिमा उसकी समझ में नहीं आयी। २७

(तदनन्तर एक दिन) गोकुल में एक आश्चर्य घटित हो गया। किसी एक गोप ने (अपनी) स्त्री से कहा। वह बोला— जो दही-दूध इकट्ठा हो गया है, अब से उसे खर्च न करके रख लो। २८ मैं भगवान की मनौती पूर्ण करूँगा— ब्राह्मण-सन्तर्पण करूँगा (ब्राह्मणों को दान आदि से तृप्त कर लूँगा)। इसलिए घी इकट्ठा करके रख लो, (इस पर) वह स्त्री बोली, 'अवश्य'। २९ (अनन्तर) घी बहुत इकट्ठा हो गया; (परन्तु) उस स्त्री ने उसमें से आधा चुरा लिया और घड़ा भरकर झट से पड़ोसिन के घर रख दिया। ३० स्त्रियों की करनी पति की समझ में नहीं आती। वे बड़ी झूठी, अविवेकी होती हैं। वे (मानो) समस्त असत्यों का आश्रय (-स्थान) होती हैं। वे पाप से भय नहीं धारण करतीं। ३१ स्त्रियों में असत्य, (दुः)साहस, छल-कपट, मूर्खता, अतिलोभ, अशौच (अपवित्रता), निर्दयता —ये स्वभाव-धर्म (दोष) सचमुच होते हैं। ३२ (इधर यथाकाल) उस गोप ने महोत्सव सम्पन्न किया; श्रीहरि के प्रति मनौती पूर्ण की; परन्तु जो घी का घड़ा (उसकी

ठेविला। तो कळला श्रीरंगातें। ३३ बाहेर गेली घरची सुंदरी। कृष्ण प्रवेशला तिचें मंदिरीं। घृतघट काढोनि झडकरी। नेला दूरी ते वेळीं। ३४ मेळविळीं गौळियांचीं बाळें। घृत तें सकळांसी वांटिलें। कृष्णें आपण भक्षिलें। पूर्ण केलें नवसासी। ३५ वसुधारा घृतावदान। येथें तृप्ति न पावे नारायण। तो गौळियांचें घृत चोरून। भक्षून तृप्त जाहला। ३६ कमलासन मीनकेतनारी। सदा ध्याती तो कैटभारी। तो बळेंच गौळियांचें घरीं। चोरूनि घृत भक्षीत। ३७ असो घरा गेला वैकुंठराणा। यशोदा म्हणे जगज्जीवना। खोडी करूनि मनमोहना। कोठूनि आलासी सांग पां। ३८ कडे घेतला कृष्णनाथ। माता हर्षें मुख चुंबीत। तों अंगास माखलें घृत। माता पुसत हरीसीं। ३९ घृत लागलेंसे अंगा। कोठें गेला होतासी श्रीरंगा।

स्त्री द्वारा चुराकर रखा हुआ था) भगवान श्रीरंग को विदित हो (ही) गया। ३३ (एक समय जब) घर की वह स्त्री बाहर गयी, तो उस समय कृष्ण उसके घर में प्रविष्ट हो गये और घी का घड़ा निकालकर झट से दूर ले गये। ३४ कृष्ण ने (वहाँ) ग्वालों के बच्चों को इकट्ठा किया और वह घी सबको बाँट दिया; उन्होंने स्वयं (भी) खाया और (इस प्रकार उस गोप की) मनौती को पूर्ण किया। ३५ महोत्सव की पूर्ति के समय पूर्णाहुति समर्पित (करते हुए छोड़ी जानेवाली) घी की अखण्ड धाराएँ थीं, घी की आहुतियाँ थीं, (फिर भी जो) भगवान नारायण वहाँ तृप्ति को प्राप्त नहीं हुए, वे गोपों का घी चुराकर खाते हुए तृप्त हो गये। ३६ (कमलासन अर्थात) ब्रह्मा और (कामदेव के शत्रु) शिवजी उन कैटभारि[1] भगवान (विष्णु के अवतार कृष्ण) का सदा ध्यान करते हैं। वे (भगवान) बलात गोपों के घर घी चुराकर खाया करते थे। ३७ अस्तु। (तदनन्तर) वैकुण्ठराज (विष्णु के अवतार कृष्ण) घर गये तो उन जगज्जीवन कृष्ण से यशोदा बोली, ' रे मनमोहन, बता दे, छेड़छाड़ करके कहाँ से आया है '। ३८ (फिर) उस माता ने कृष्णनाथ को गोद में उठा लिया और हर्षपूर्वक उसके मुँह को चूम लिया। (तो दिखायी दिया कि) उसके अंग में घी लगा हुआ है। (फिर) माता (यशोदा) ने कृष्ण से

१ कैटभारि— पुराणों की एक मान्यता के अनुसार, मधु और कैटभ नामक दो असुर ब्रह्मा के पसीने से उत्पन्न हो गये। उन्होंने तपस्या करके उसके फलस्वरूप अजेयता प्राप्त की। फिर वे जगत को पीड़ा पहुँचाते रहे, तो भगवान विष्णु ने उनका वध किया। एक अन्य मान्यता है कि वे दोनों असुर भगवान विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न हो गये थे। वे ब्राह्मणों को मार डालते थे। पाँच सहस्र वर्ष लगातार युद्ध करते रहने पर भी भगवान विष्णु उन्हें मार डालने में असफल रहे। तदनन्तर उनको मोहित करके विष्णु ने उनसे मृत्यु का वरदान मँगवा लिया। फलस्वरूप उन्हें गोद में लेकर भगवान ने उनका वध किया। इससे भगवान विष्णु तथा उनके अवतार मधुसूदन, कैटभारि कहाते हैं।

आतां गाऱ्हाणीं अतिवेगा। गौळिणी सांगों येतील। ४० येरीकडे गौळण ते पाही। सेजीच्या गृहा येत लवलाहीं। म्हणे माझा घृतघट देईं। आणूनियां सत्वर। ४१ घरांत गौळण पाहत। तों आपलीं शिकीं तैसींच समस्त। तो घृतघट नाहीं तेथ। नवल वाटलें तियेतें। ४२ म्हणे बाई शिकीं आणि घागरी। न दिसती कोठें मंदिरीं। आळ घालावी कृष्णावरी। तरी मागही कोठें दिसेना। ४३ ते म्हणे तुझा गोरस उरला। माझाचि घृतघट कां गेला। नष्टे तुवांचि अभिलाषिला। कलह माजला अद्भुत। ४४ ते गौळण वाहे आण। म्यां घृतघट ठेविला असेल चोरून। तरी हे हस्त जाऊं देत झडोन। कां तुवां आणोनि ठेविला। ४५ मनीं गौळण विचारीत। कलह माजवावा बहुत। कळेल भ्रतारासीं मात। तोही अनर्थ दुसरा। ४६ मग ते म्हणे मृगनयनी। गलबला न करीं वो साजणी। माझ्या भ्रताराच्या श्रवणीं। गोष्ठी जाईल सर्वथा। ४७ बरें गेलें तरी जाऊं दे घृत। कृष्णार्पण झालें निश्चित। ऐसें बोलोनि त्वरित। गौळण गेली गृहातें। ४८ गोकुळीं एक दंपत्यें। राखिती बहुत गोरसातें। राजीवनेत्रें तेथें। कौतुक

पूछा। ३९ 'रे श्रीरंग, तेरे अंग में घी लगा हुआ है, कहाँ गया था? अब गोपियाँ अति वेग-पूर्वक शिकायतें करने आ जाएँगी'। ४० (तदनन्तर) उस गोपी ने उसकी ओर देखा। वह पड़ोसिन के घर झट से आ गयी और बोली, 'मेरा घी का घड़ा झट से लाकर दे दो'। ४१ उस गोपी ने घर में देखा, तो (उसे दिखायी दिया कि) उसके अपने समस्त छींके वैसे (के वैसे) ही हैं, (परन्तु) वह घी का घड़ा वहाँ नहीं है। (इससे) उसे अचरज हो गया। ४२ (फिर) वह बोली, 'देवीजी, छींके और गगरियाँ घर में कहीं नहीं दिखायी दे रहे हैं। कृष्ण पर दोषारोप लगा दें, तो उस (के यहाँ आ जाने) का कोई चिह्न ही कहीं नहीं दिखायी देता (कोई खोज या टोह नहीं मिल रही है)'। ४३ (फिर) वह बोली, 'तुम्हारा गोरस तो शेष रह गया, मेरा ही घी का घड़ा कहाँ गया? री दुष्टे, तुम्हीं ने उसे चाहा था'। (फलतः उन दोनों में) अद्भुत झगड़ा आरम्भ हो गया। ४४ उस गोपी ने सौगन्ध लेकर कहा— 'यदि मैंने घी का घड़ा चुराकर रख लिया हो, तो मेरे ये हाथ झड़ जाएँ। तूने लाकर (मेरे यहाँ) क्यों रखा'। ४५ (तब) उस गोपी ने मन में सोचा— यदि बहुत झगड़ा मचा दें, तो यह बात पति को विदित हो जाएगी— वह भी दूसरा संकट है। ४६ फिर वह मृग-नयनी स्त्री बोली, 'अरी सखी, शोर न करो। (नहीं तो) यह बात सब प्रकार से मेरे पति के कानों तक जाएगी। ४७ अच्छा, गया, घी को जाने दो— निश्चय ही वह कृष्ण को समर्पित हो गया'। ऐसा बोलकर वह गोपी झट से घर गयी। ४८

गोकुल में एक दम्पती (स्त्री-पुरुष अपने यहाँ) बहुत गोरस रखा

केलें अद्भुत । ४९ दोघें निजलीं मध्यरातीं । तेथें प्रकटोनि रमापती । एक मुंगूस निश्चितीं । दोघांमध्यें सोडिलें । ५० गृहींचा सर्व गोरस । स्वहस्तें काढी जगन्निवास । तृप्त झाला सर्वेश । शेषशायी परमात्मा । ५१ मुंगूस दोघांमध्यें उकरी । तंव तीं होतीं निजसुरीं । एकाएकीं घाबरीं । हांक फोडीत उठलीं । ५२ न सांवरत वसन । बाहेर आलीं भिऊन । म्हणती भूत उरावरी येऊन । बैसलें होतें दोघांच्या । ५३ धांवा धांवा म्हणती कोणी । लोक मिळाले चहूंकडोनी । दीपिका लाविल्या तत्क्षणीं । पुसती दोघांसी तेधवां । ५४ तंव तीं म्हणती भूत आलें । आम्हां दोधांमध्यें बैसलें । आम्हीं तत्काळ ओळखिलें । सदनाबाहेरी मग आलों । ५५ पंचाक्षरी घेऊनि विभूती । द्वाराबाहेरचि फुंकिती । परी सदनीं कोणी न प्रवेशती । भय वाटे मनीं तयां । ५६ तों घरांत हिंडे नकुळ । लोक म्हणती भूत सबळ । मग धीट गौळी जे तत्काळ । निःशंक आंत प्रवेशती । ५७ तंव तें मुंगूस देखिलें । तत्काळ बाहेर आणिलें । लोक गदगदां हांसिले । नवल जाहलें तेधवां । ५८ एक म्हणती मुंगूस सकाळीं । कांखेस घेऊनि वनमाळी ।

करते थे । (उनके) यहाँ राजीव-नेत्र कृष्ण ने एक अद्भुत लीला (प्रदर्शित) की । ४९ (जब) दोनों आधी रात में सो गये थे, तो वहाँ कृष्ण ने प्रकट होते हुए दोनों के बीच निश्चय ही एक नेवला छोड़ दिया । ५० (इधर) जगन्निवास कृष्ण ने उस घर का समस्त गोरस अपने हाथ से निकाल लिया । (उसे खा-पीकर वे) सर्वेश शेषशायी परमात्मा तृप्त हो गये । ५१ उन दोनों के बीच वह नेवला (जब) कुरेदने लगा, तब वे उनींदा थे । वे यकायक घबरा उठे और चीखते-चिल्लाते उठ गये । ५२ वे अपने (-अपने) वस्त्रों को सँवार नहीं पा रहे थे; भयभीत होकर बाहर आ गये और बोले, ' (हम) दोनों की छातियों पर भूत आकर बैठ गया था ' । ५३ वे बोले, ' कोई दौड़ो, दौड़ो । ' चारों ओर से आकर लोग इकट्ठा हो गये; उन्होंने तत्क्षण दीपिकाएँ जला दीं और तब उन दोनों से पूछा (पूछताछ की) । ५४ तब वे बोले, ' एक भूत आ गया और (हम) दोनों के बीच बैठ गया । हमने उसे तत्काल पहचान लिया और फिर हम घर के बाहर आ गये ' । ५५ (तदनन्तर) ओझाओं ने भभूत (भस्म) लेकर दरवाजे के बाहर ही फूँक दी । फिर भी कोई उस घर में प्रवेश नहीं करने जा रहा था । उनको मन में भय अनुभव हो रहा था । ५६ तब घर में वह नेवला घूम रहा था, तो लोगों ने माना कि वह भूत (सचमुच) बलवान है । फिर जो गोप (कुछ अधिक) ढीठ थे वे तत्काल बिना किसी शंका अनुभव किये अन्दर पैठ गये । ५७ तब उन्होंने उस नेवले को देखा (और) वे उसे तत्काल बाहर ले आये । (यह देखकर) लोग ठहाका मारकर हँसने लगे । उस समय ऐसा आश्चर्य हो

हिंडत होता आळोआळीं। त्यानेंच आणूनि सोडिलें। ५९ एक म्हणती मोठा नष्ट। करणी करतो अचाट। गोकुळींचीं मुलें चाट। तेणें समस्त केलीं पैं। ६० जन गेले सदना सत्वर। तों उदय पावला सहस्रकर। मग ते गौळण चतुर। नंदमंदिरीं गेली हो। ६१ मग म्हणे सुंदरी यशोदे। थोर पीडिलें मुकुंदें। मुंगूस सोडिलें गृहामध्यें। नवल गोविंदें केलें हो। ६२ गदगदां हांसे नंदराणी। हरिवदन पाहे नयनीं। तों एक बोले गौळणी। तुज चक्रपाणी लावीन शिक्षा। ६३ हरि तूं माझ्या घरा येसी। मी तुज बांधीन खांबासी। मग बोले हृषीकेशी। बांध कैसी पाहूं आतां। ६४ गृहासी गेली गौळिणी। रात्रीं दृढ कपाटें देऊनी। भ्रतारासहित नितंबिनी। निद्रार्णवीं निमग्न। ६५ पतीपुढें निजली कामिनी। तों पातला पंकजपाणी। पतीची दाढी तिची वेणी। धरूनि ते क्षणीं गांठी देत। ६६ कृष्णें गांठी दिधली हटें। जे ब्रह्मादिकां न सुटे। जे न जळे हव्यवाटें। तीक्ष्ण शस्त्रें न कापेचि। ६७ ऐसें करूनि जगन्मोहन। घरींचा गोरस सर्व भक्षून। नेला तेथूनि न लागतां क्षण। अतर्क्य विंदान हरीचें। ६८ तों सरली अवघी

गया। ५८ कोई एक बोले, 'सवेरे वनमाली एक नेवले को बगल में लिये हुए गली-गली में घूम रहा था। उसी ने (यहाँ उसे) लाकर छोड़ दिया (होगा)'। ५९ कोई एक बोले, 'बड़ा दुष्ट है— अद्भुत करनी करता है। उसने गोकुल के समस्त बच्चों को असभ्य बना दिया है'। ६० झट से लोग (अपने-अपने) घर चले गये। तब सूर्य उदित हो गया। अनन्तर वह चतुर गोपी नन्द के घर चली गयी। ६१ फिर वह बोली, 'अरी सुन्दरी यशोदा, मुकुन्द ने (हमें) बहुत पीड़ित कर दिया (सता दिया)। एक नेवला घर में छोड़ दिया। अरी गोविन्द (कृष्ण) ने चमत्कार कर दिया'। ६२ (यह सुनते ही) नन्द-रानी यशोदा खिल-खिलाकर हँस दी और अपनी आँखों से कृष्ण के मुख को निहारने लगी। तब कोई एक गोपी बोली, 'अरे कृष्ण, मैं तुझे दण्ड दूँगी। ६३ कृष्ण, (यदि) तू मेरे घर आएगा, तो मैं तुझे खम्भे से बाँध दूँगी।' तब कृष्ण बोले, 'अब देखता हूँ, कैसे बाँधोगी'। ६४

वह गोपी (अपने) घर गयी। रात को किवाड़ दृढ़ता से बन्द करके वह स्त्री अपने पति-सहित निद्रा-रूपी सागर में डूब गयी। ६५ (अपने) पति के पास वह स्त्री सोयी हुई थी, तब कृष्ण (वहाँ) आ पहुँचे (और) उन्होंने पति की दाढ़ी और उस (स्त्री) की वेणी पकड़कर उसी क्षण गाँठ लगा दी। ६६ कृष्ण ने ऐसी गाँठ लगा दी, जो ब्रह्मा आदि द्वारा (भी) सुलझायी नहीं जा पाती, जो अग्नि द्वारा जलायी नहीं जा सकती और न पैने हथियार से काटी जाएगी। ६७ ऐसा करके जगन्मोहन कृष्ण उस घर के समस्त गोरस को खाकर क्षण न लगते वहाँ से चले गये।

रजनी। धार काढूं उठे कामिनी। तों ओढतसे तिची वेणी। मृगनयनी हांसतसे। ६९ पतीस म्हणे सुंदरा। कांहीं तरी लाज धरा। मी काढूं जातें धारा। वेणी सत्वर सोडिजे। ७० अजूनि काय भोगव्यसन। उदय करूं पाहतो सहस्त्रकिरण। अद्यापि न धायेचि मन। वेणी सोडोनि द्यावी जी। ७१ तंव तयाची दाढी ओढत। जागा जाहला पति त्वरित। स्त्रियेसीं म्हणे तुझें चित्त। अजूनि इच्छीत कामातें। ७२ सोडीं वेगीं माझी दाढी। जाय वेगीं धारा काढीं। बहु माजलीसी धांगडी। ओढाओढी करितेसी। ७३ सोडीं दाढी गे तरुणी। उदयाद्रीवरी आला तरणी। पुढें अरुणोदय होवोनी। प्रकाश आरक्त पडियेला। ७४ कीं पूर्वदिशेनें मुख धुतलें। निढळीं कुंकुम रेखिलें। तेंचि आरक्तवर्ण नभ जाहलें। अरुणोदय वाटतसे। ७५ सूर्याआधीं उगवे अरुण। ज्ञानाआधीं जैसें भजन। कीं भजनाआधीं नमन। श्रेष्ठ जैसें सर्वांसी। ७६ कीं तपाआधीं शुचित्व। कीं बोधाआधीं सत्त्व। कीं सत्त्वाआधीं अद्भुत। पुण्य जैसें प्रकटलें। ७७ साक्षात्काराआधीं निजध्यास। कीं मननाआधीं श्रवण विशेष। कीं श्रवणा-

कृष्ण की करनी (इस प्रकार) अतर्क्य होती है। ६८ फिर (यथासमय) रात पूरी बीत गयी, तो वह स्त्री दूध दुहने के लिए उठने लगी। (तब उसे जान पड़ा कि उसका पति) उसकी वेणी खींच रहा है। (यह देखकर) वह मृगनयनी हँसने लगी। ६९ वह सुन्दरी पति से बोली, 'कुछ लाज तो कर लो। मैं दूध दुहने जा रही हूँ; झट से वेणी छोड़ देना। ७० अब भी भोग सम्बन्धी (यह) व्यसन कैसे ? सूर्य उदय को प्राप्त होने जा रहा है। अभी तक (आप का) मन नहीं अघा रहा है। अजी, बेनी छोड़ दीजिए'। ७१ तब उसके पति की दाढ़ी खिंच रही थी। (अतः) झट से वह जग गया और वह स्त्री से बोला, 'तेरा मन अब भी काम(-क्रीड़ा) चाह रहा है (क्या)। ७२ झट से मेरी दाढ़ी छोड़ दे (और) वेगपूर्वक जा, दूध दुह ले। तू धींगड़ी बहुत उन्मत्त हो गयी है, खींचातानी कर रही है। ७३ री जुवती, दाढ़ी छोड़ दे; सूर्य उदयाचल पर आ गया, फिर अरुणोदय होकर आरक्त प्रकाश फैल गया है। ७४ अथवा पूर्व दिशा ने मुँह धोया, भाल पर कुंकुम (-तिलक) अंकित किया; मानो उसी से आकाश आरक्त-वर्ण (लाल-लाल) हो गया और वही अरुणोदय जान पड़ता है। ७५ सूर्य से पहले अरुण उगता है, जैसे ज्ञान से पहले भक्ति उत्पन्न हो जाती है, अथवा भक्ति से पहले सबको नमन श्रेष्ठ प्रतीत होता है। अथवा तपस्या से पहले शुचित्व, अथवा बोध से पहले सत्व (गुण), अथवा सत्त्व (गुण) से पहले अद्भुत पुण्य जैसे प्रकट हो गया हो, अथवा साक्षात्कार से पहले ब्रह्म का ध्यान, अथवा मनन से पहले विशेष रूप से श्रवण, अथवा श्रवण से पहले सुन्दर (भक्ति-) रस से

आधीं सुरस। आवडी पुढें विराजत। ७८ कीं वैराग्याआधीं विरक्ति। कीं आनंदाआधीं उपरति। कीं महासुखासी शांति। पुढें आधीं ठसावे। ७९ तैसा जाहला अरुणोदय। सोडीं मूर्खे दूरी राहें। दोघें उठोनि लवलाहें। बोलताती सक्रोध। ८० पति म्हणे चांडाळिणी। गांठ कां दिधली दाढीवेणीं। येरी आण वाहे ते क्षणीं। माझी करणी नव्हे हे। ८१ म्यां गांठ दिधली असेल। तरी हे नेत्र जातील। पति म्हणे जिव्हा झडेल। जरी म्यां गांठ असेल दिधली। ८२ नाना प्रकारें होती कष्टी। परी न सुटेचि कदा गांठी। सोडितां भागल्या चिमटी। अति हिंपुटी दोघेंही। ८३ तो मायालाघवी जगजेठी। त्याची कोणा न सुटे गांठी। जरी आलिया परमेष्ठी। तरी न सुटे त्याचेनि। ८४ भ्रतार म्हणे आणीं शस्त्र। वेणी कापूं तुझी सत्वर। येरी म्हणे दाढीच अणुमात्र। कातरूनि काढावी। ८५ सौभाग्यदायक हे वेणी। कातरूं पाहतां ये क्षणीं। पति म्हणे कोणीं करणी। केली ऐसी न कळे पां। ८६ उदय पावला चंडकिरण। कोण करील गोदोहन। पति म्हणे शस्त्रेंकरून। दाढी माझी छेदीं तूं। ८७ तंव ते शस्त्रें न कापे सर्वथा।

युक्त रुचि आगे शोभायमान होती है, अथवा वैराग्य से पहले विरक्ति, अथवा आनन्द से पहले उपरति, अथवा महासुख (ब्रह्म-सुख) से पहले शान्ति स्थिरता को प्राप्त हो जाए, उसी प्रकार (सूर्योदय से पूर्व) अरुणोदय हो गया। री मूर्ख, छोड़ दे, दूर रह जा (हट जा)।' वे दोनों झट से उठकर क्रोध-सहित (इस प्रकार) बोलने लगे। ७९-८० पति बोला, 'री चण्डालिनी, दाढ़ी और बेनी में गाँठ क्यों लगा दी?' (इसपर) उस (स्त्री) ने सौगन्ध ली— यह मेरी करनी नहीं है। ८१ यदि मैंने गाँठ लगा दी हो, तो मेरे ये नेत्र (फूट) जाएँगे।' (इसपर) पति बोला, 'यदि मैंने गाँठ लगा दी हो, तो मेरी जीभ झड़ जाएगी'। ८२ वे (दोनों) नाना प्रकार से कष्ट को प्राप्त हो गये। फिर भी वह गाँठ कदापि नहीं सुलझ रही थी। छुड़ाते-छुड़ाते उनकी चुटकियाँ थक गयीं; (इसलिए) वे दोनों भी बहुत खिन्न हो गये। ८३ वे भगवान जगत्-श्रेष्ठ माया द्वारा लीला करनेवाले हैं। उनकी (लगायी हुई) गाँठ किसी से भी नहीं छूटती; यद्यपि ब्रह्मा आ जाएँ, तो भी उनसे (तक) वह नहीं छूट पाती। ८४ (तदनन्तर) पति बोला, 'हथियार ला, तेरी बेनी झट से काट दूँ।' (इसपर) वह बोली, 'दाढ़ी ही अणु भर निकाल दें। ८५ यह बेनी तो सौभाग्यदायिनी होती है। इस क्षण उसे आप (कैसे) कतरना चाहते हैं।' तो पति बोला, 'समझ में नहीं आ रहा है कि किसने ऐसी करनी की है। ८६ सूर्य उदय को प्राप्त हो गया, (अब) गो-दोहन कौन करेगा?' (फिर) पति बोला, 'तू हथियार से मेरी दाढ़ी छेद डाल'। ८७ तब वह हथियार से बिलकुल नहीं कट रही थी;

न तुटे न सुटे पाहतां। न जळे कदा अग्नि लावितां। विचित्र गति जाहली। ८८ पति म्हणे ते वेळे। तुज जरी मरण आलें। तरी म्यांही मरावें वो वहिलें। पूर्वकर्म कैसें हें। ८९ दीर्घ स्वरें दोघें रडती। मग बिदीस येऊनि उभीं ठाकती। आल्यागेल्यास येती। काकुळती तेधवां। ९० व्याही जांवई पिशुन। भोंवते मिळाले बहुत जन। जे ते पाहती गांठी सोडून। परी ते जाण न सुटेचि। ९१ कोणी कातरूनि पाहती। परी ते न कापे कष्टी होती। तो समाचार नंदाप्रती। एक सांगती कौतुकें। ९२ नंद चावडिये बैसला। घेऊनि गौळियांचा मेळा। इंद्र जैसा मिरवला। देवतभेंत श्रेष्ठ पैं। ९३ अंकीं बैसविला जगन्मोहन। जो अमलदलराजीव-नयन। तो ब्रह्मानंद सगुण। गोकुळीं खेळे निजलीला। ९४ जो सर्वांतर्यामीं वसे। जो सर्वांचीं मनें जाणतसे। जें जें प्राणी राहटतसे। हृषीकेशी जाणत। ९५ जग नग हा कनक जाण। जग पट हा तंतु पूर्ण। जग तरंग हा सागर खूण। अभेदपण मोडेना। ९६ असो नंदें ते वेळीं। दोघें

(यत्न करके) देखने पर (भी) वह न टूट रही थी, न सुलझ रही थी। आग लगाने पर भी वह कभी भी न जल रही थी। (अतः) उन दोनों की स्थिति विचित्र हो गयी। ८८ उस समय पति बोला, 'अरी तुझे यद्यपि मौत आ जाए, तो भी मैं झट से मर जाऊँ। कैसा यह पूर्व (-कृत-) कर्म है'। ८९ वे दोनों ऊँचे स्वर से रोने लगे; फिर गली में आकर खड़े रह गये (और) उस समय आने-जानेवाले से वे गिड़गिड़ाते रहे। ९० समधी, दामाद, निन्दक —बहुत लोग चारों ओर इकट्ठा हो गये। वे गाँठ सुलझाने लगते (सुलझाने का यत्न कर देखते), फिर भी समझ लीजिए, वह खुल ही नहीं रही थी। ९१ कोई-कोई कतरकर देखते, परन्तु वह (गाँठ) कट नहीं रही थी। (अतः) वे दुःखी हो गये। किसी एक ने वह समाचार मज़े में नन्द से कह दिया। ९२ (उस समय) नन्द गोपों का समुदाय लिये हुए चौकी में बैठे हुए थे। वे वैसे ही शोभायमान थे, जैसे श्रेष्ठ देवों की सभा में इन्द्र शोभायमान होते हैं। ९३ उन्होंने गोद में जगन्मोहन कृष्ण को बैठा लिया था। जो (कृष्ण) स्वच्छ (निर्मल) दलों से युक्त कमल सदृश आँखों वाले हैं, वे (स्वयं वस्तुतः) सगुण रूप (धारण किये हुए) आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं। वे गोकुल में अपनी लीला प्रदर्शित करते हुए खेल रहे थे (लीला किया करते थे)। ९४ जो सबके अन्तःकरण में बसे हुए हैं, जो सबके मन को जानते हैं, वे हृषीकेशी कृष्ण प्राणी जो-जो कर्म करता है, उसे जानते हैं। ९५ समझिए कि जगत आभूषण है, तो ये (ब्रह्म-स्वरूप कृष्ण) सोना हैं; जगत वस्त्र है, तो ये पूर्ण रूप से तन्तु हैं; जगत तरंग है, तो ये सागर हैं; उनकी अभिन्नता नहीं टूटती है। ९६ अस्तु। नन्द उस समय उन दोनों को चौकी में ले आये (लिवा लाये)।

चावडिये आणिलीं। पुढें स्त्री मागें गौळी। देखोनि सकळ हांसती। ६७ नंदें पुसिलें वर्तमान। कोणीं गांठी दिधली येऊन। तंव तीं दोघें करिती रुदन। गहिंवरून करुण स्वरें। ६८ म्हणती न कळे ईश्वरकरणी। गदगदां हांसे चक्रपाणी। म्हणे काल माझी शेंडी धरूनी। बांधीन म्हणत होतीस कीं। ६६ तुज प्रचीत दाखविली भगवंतें। व्यर्थ बांधीन म्हणसी आम्हांतें। तंव तीं म्हणती हरीतें। आमुची गति काय आतां। १०० दीनवदनें भाकिती करुणा। कृपा आली जगज्जीवना। जो परब्रह्म वैकुंठराणा। वेदपुराणां अगम्य जो। १०१ मग पाहतांचि कृपादृष्टीं। तत्काळ सुटली मायागांठी। आनंद न माये सकळ सृष्टीं। जगजेठी लाघवी हा। २ असो तीं दोघें जाहलीं सद्गदित। श्रीहरीचें वदन अवलोकीत। अहंकृति समस्त। बुडोनि गेली तेधवां। ३ काम क्रोध जाहले लज्जित। मद मत्सर उठोनि पळत। दंभ मोह अनर्थ। जाहले गलित तेधवां। ४ नमस्कारूनि यादवेंद्रा। दोघें गेलीं निजमंदिरा। सुख न माये अंतरा। दोघांचेही तेधवां। ५ आणिक एके दिवशीं श्रीरंगें। नवल केलें भक्तभवभंगें। एके गोपीचें घरीं

आगे स्त्री को (और) पीछे उस गोप को देखकर सब हँस रहे थे। ९७ (फिर) नन्द ने यह बात पूछ ली कि किसने आकर गाँठ लगा दी। तब वे दोनों गदगद होते हुए करुण स्वर में रुदन करने लगे। ९८ वे बोले, 'भगवान की करनी समझ में नहीं आ रही है'। (यह सुनकर) चक्रपाणि कृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे और बोले, '(तू) कल कह रही थी— मेरी चोटी पकड़कर बाँध दूँगी। ९९ भगवान ने तुझे अनुभव करा दिया। व्यर्थ ही कह रही थी— हमें बाँध दूँगी।' तब वह कृष्ण से बोली, 'अब हमारी क्या स्थिति होगी'। १०० (जब) वे दीन-मुख से करुणा-याचना करने लगे, तो उन जगज्जीवन कृष्ण को (उनपर) दया आ गयी, जो परब्रह्म हैं, वैकुण्ठराज हैं, जो वेदों और पुराणों को अगम्य हैं। १०१ अनन्तर कृपायुक्त दृष्टि से (भगवान द्वारा) देखते ही वह मायामयी गाँठ तत्काल खुल गयी। तो सकल सृष्टि में (उनका) आनन्द नहीं समा रहा था। ये जगत-श्रेष्ठ भगवान कृष्ण (इस प्रकार) चतुर हैं। २

अस्तु। वे दोनों (पति-पत्नी) अति गदगद हो गये। (फिर) वे श्रीकृष्ण के मुख को (जब) निहारने लगे, तो (उनका) उस समय समस्त अहंकार डूब गया अर्थात नष्ट हो गया। ३ उस समय (उनके) काम, क्रोध (जैसे विकार) लज्जित हो गये; मद, मत्सर उठकर भाग गये; दम्भ, मोह जैसे अनर्थ (उत्पन्न करनेवाले विकार) गलकर नष्ट हो गये। ४ (तत्पश्चात्) यादवेन्द्र कृष्ण को नमस्कार करके वे अपने घर चले गये। उस समय उन दोनों के भी अन्तःकरण में सुख समा नहीं रहा था। ५ दूसरे एक दिन भक्तों के सांसारिक भावों-पाशों को भग्न कर

सवेगें। प्रवेशला गोविंद। ६ तंव ते बोले मृगनयनी। कां आलासी येथें चक्रपाणी। काय पाहसी पाळती घेऊनी। जातोसी तें कळेना। ७ चित्त-चोरा सकळचाळका। जगन्मोहना महानाटका। संचितगोरसभक्षका। जगद्रक्षका जगदीशा। ८ गोपी म्हणे कृष्णा बैस। तों करें नेत्र चोळी हृषीकेश। हळूंच बोले जगन्निवास। गौळणीस तेधवां। ९ माझे दुखती वो नयन। मग बोले गोपी वचन। कांहीं औषधेंकरून। व्यथा दूर करावी। ११० मग बोले घननीळ। जे पुत्राची माता असेल। तिचें दुग्ध तत्काळ। डोळियांमाजी घालिजे। १११ तंव ते कुरंगनयनी बोले वचन। माझे स्तनींचें दुग्ध जा घेऊन। मग बोले राजीवनयन। हास्य-वदन करूनि। १२ म्हणे तें दुग्ध कामा न ये जाण। तूं मागसी तेंचि देईन। परी मी आपुल्या करयुगेंकरून। पिळीन स्तन तुझे वो। १३ ऐसें ऐकतांचि वचन। गोपी हांसली गदगदोन। म्हणे ऊठ चावटा येथून। नसतेंच वचन बोलसी। १४ पुढें पुढें वाढतां। बहू शाहणा होशील अच्युता। तुझे मातेपासीं तत्त्वतां। चाल अनंता सत्वर। १५ म्हणोनि धरावया धांविन्नली। उठोनि पळे वनमाळी। गोपी दारवंटा उभी ठाकली। तंव

देनेवाले श्रीरंग कृष्ण ने एक चमत्कार कर दिया। एक दिन गोविन्द (कृष्ण) किसी एक गोपी के घर वेगपूर्वक प्रविष्ट हो गये। ६ तब वह मृगनयनी गोपी बोली, 'अरे (चक्रपाणि) कृष्ण, यहाँ क्यों आ गया है ? क्या देखता है और घात लगाकर चला जाता है, वह (कुछ) समझ में नहीं आता'। ७ (गोपी बोली–) अरे चितचोर, सकल-चालक (सबको चलानेवाले), अरे जगन्मोहन, अरे महानाटक करनेवाले, संचित किये हुए गोरस को खा डालनेवाले, रे जगत के रक्षक, जगदीश। ८ गोपी बोली, 'अरे कृष्ण, बैठ जा'। तब उस समय जगन्निवास हृषीकेश अपने हाथ से आँखों को मलने लगे और उस गोपी से बोले। ९ 'अरी, मेरी आँखें दुख रही हैं।' तब गोपी ने यह बात कही, 'कुछ (किसी) औषधी से इस व्यथा को दूर कर दें'। ११० तब घननील कृष्ण बोले, 'जो कोई पुत्र की माता हो, उसका दूध तत्काल आँखों में डाल देना'। १११ तब उस मृगनयनी ने यह बात कही, 'तो मेरे स्तन का दूध ले जा।' फिर राजीवनयन कृष्ण हास्य-युक्त मुख से अर्थात हँसते हुए बोले। १२ वे बोले, 'समझ लो, वह दूध काम नहीं आएगा। तुम जो माँग लोगी, वही मैं दूँगा, परन्तु अरी, मैं अपने दोनों हाथों से तेरे स्तनों को निचोड़ लूँगा'। १३ ऐसी बात सुनते ही वह गोपी ठहाका मारकर हँस पड़ी और बोली, 'उठ (जा) यहाँ से, अशिष्ट। बेतुकी बात बोल रहा है। १४ अरे अच्युत, आगे बढ़ते-बढ़ते तू बहुत समझदार हो जाएगा। अरे अनन्त, सचमुच झट से अपनी माता के पास चला जा'। १५ (ऐसा) कहते हुए वह पकड़ने के लिए दौड़ी, तो वनमाली

तो गेला सत्वर । १६ येऊनि मायेजवळी । गाऱ्हाणें सांगे वेल्हाळी । यशोदा हांसे वनमाळी । कडियेवरी बैसलासे । १७ कृष्णाकडे माता पाहे । मुख चुंबीत लवलाहें । म्हणे हरि करूं काय । खोडी तुझ्या अनिवार । १८ असो कृष्ण एके दिवसीं । बाहेर गेला खेळावयासी । मुलें मिळालीं सरसीं । क्रीडताती हरीसवें । १९ सखयांसीं म्हणे हरी । तुमची माता जातांचि बाहेरी । सांगा मज लौकरी । तेचि मंदिरीं रिघों वेगें । १२० ज्या घरीं प्राप्त नोहे गोरस । ताडन करी त्यांच्या मुलांस । कां रे न सांगा आम्हांस । पाळती तुमच्या गृहींची । १२१ वासरांच्या पुच्छीं बांधी अर्भकें । आळोआळीं पिटी कौतुकें । आक्रोशें रडती बाळकें । माता धांवती सोडावया । २२ बाळें सोडोनि गौळिणी । मायेसीं सांगती गाऱ्हाणीं । म्हणती जावें गोकुळ टाकोनी । तुझ्या पुत्राचेनि त्रासें । २३ घरीं राखीत बैसल्या जरी नारी । तरी वासरें सोडितो बाहेरी । वत्सांपाठीं जातां झडकरी । मागें हरि गोरस खातो । २४ ताक सांडी मडकीं फोडूनी । खापरें पसरितो आंगणीं । असार

कृष्ण उठकर भाग गये । वह गोपी (जब) देहली पर खड़ी रही, तब (तक) वे झट से (भाग) गये । १६ माता (यशोदा) के पास आकर उस सुन्दरी ने शिकायत की; (उसे सुनकर) यशोदा हँसने लगी; (क्योंकि) कृष्ण तो उसकी गोद में बैठे हुए थे । १७ माता ने कृष्ण की ओर देखा; झट से उसके मुँह को चूम लिया और कहा, ‘ अरे हरि, क्या करूँ ? तेरी शरारतें तो अदम्य हैं ’ । १८ अस्तु । कृष्ण एक दिन खेलने के लिए बाहर गये, तो पास ही बहुत बच्चे मिल गये और वे कृष्ण के साथ खेलने लगे । १९ (तब) कृष्ण ने (अपने) सखाओं से कहा, तुम्हारी माताओं के बाहर जाते ही मुझे झट से बता दो; तो हम उसी घर में वेगपूर्वक पैठ जाएँगे । १२० जिस घर में गोरस नहीं प्राप्त होता था, उन (घरों) के लड़कों को वे पीट लेते (और पूछते—) ‘ क्यों रे, हमें अपने घर की टोह क्यों नहीं बताते ? ’। १२१ वे उन शिशुओं को बछड़ों की पूँछ से बाँध देते और गली-गली में मज़े में (उन बछड़ों को) पीटकर दौड़ाते । तो वे बालक चीखते-चिल्लाते हुए रोते रहते, (तब यह जानकर) उनकी माताएँ उन्हें छुड़ाने के लिए दौड़तीं । २२ बच्चों को छोड़कर वे गोपियाँ कृष्ण की माता से शिकायतें करती थीं । वे बोलीं— ‘ (लगता है—) तुम्हारे बेटे के उपद्रव के कारण गोकुल छोड़कर चले जाएँ । २३ यदि वे नारियाँ रखवाली करती हुई घर में बैठी रहतीं, तो भी (कृष्ण) बछड़ों को बाहर खोल देता है; (और इधर) बछड़ों के लिए झट से चली जाने पर पीछे (घर में पैठकर) कृष्ण गोरस खा डालता है । २४ वह मटकों को तोड़कर छाछ बहा देता है; आँगन में खप्पर बिखरवा देता है; (मक्खन, घी जैसा) सत्त खाकर (छाछ जैसा) निःसार बहा देता है । कृष्ण की करनी

सांडी सार भक्षूनी। विचित्र करणी हरीची। २५ सारूनि कर्मजाळ समस्त। स्वरूपप्राप्तीसी पावती संत। कीं शब्द टाकूनि अर्थ। सार जैसें घेइजे। २६ शुक्ति सांडोनि घेइजे मुक्त। कीं प्रपंचत्यागें परमार्थ। क्रोधत्यागें जैसें समस्त। शांतिसुख हाता ये। २७ भूस टाकूनि घेइजे कण। कीं धूळ टाकूनि घेइजे रत्न। कीं विषयत्यागें संपूर्ण। स्वानंदसुख सेविजे। २८ ऐसें कृष्णें केलें सत्य। सार सेविलें नवनीत। ताक असार समस्त। लवंडोनि फोडी भाजनें। २९ कोणीएक गजगामिनी। चालिली सूर्यकन्येच्या जीवनीं। घट भरूनि निजसदनीं। मृगनयना जातसे। १३० तों ते वाटे आला गोविंद। सवें शोभला बाळांचा वृंद। कृष्णाकडे पाहूनि छंद। लेंकरें बहुत करिताती। १३१ कृष्णें तेव्हां काय केलें। गोपीचें वस्त्र वेगें असुडिलें। तत्काळ धरेवरी पडिलें। उघडें जाहलें सर्वांग। ३२ कर गुंतले घागरीं। वस्त्र घेऊनि पळाला हरी। चोहटां ते नग्न नारी।

(ऐसी) विचित्र है'। २५ (कवि कहते हैं—) कृष्ण उसी प्रकार करते थे, जिस प्रकार सन्त समस्त कर्म-जाल को दूर हटाकर (भगवत्-) स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। अथवा (ध्वनिमय) शब्द को छोड़कर जैसे सारभूत अर्थ को ग्रहण करें; अथवा सीपी को छोड़कर (जैसे) मोती को (ग्रहण कर) लें; अथवा जैसे सांसारिक प्रपंच त्याग करने पर परमार्थ, समस्त क्रोध को त्याग देने पर शान्ति और सुख हाथ आता है; भूसा छोड़कर (अन्न) कण लें; अथवा धूल छोड़कर रत्न ग्रहण करें; अथवा विषय (-सुख) का सम्पूर्ण त्याग करके आत्मानन्द-(पूर्ण) सुख का सेवन (अनुभव) करें; सचमुच कृष्ण ने ऐसा किया; सार तत्त्वरूप नवनीत खा लिया और समस्त असार तत्त्वस्वरूप छाछ को बहा देते हुए पात्रों को धकेलकर तोड़ डाला। २६-२९

कोई एक गजगामिनी (हाथी की-सी चाल से चलनेवाली स्त्री) चली गयी और सूर्य-कन्या[1] यमुना के जल से घड़ा भरकर वह मृगनयनी अपने घर जा रही थी। १३० तब उस बाट से कृष्ण आ गये; साथ में बच्चों का समुदाय शोभायमान था। वे बच्चे कृष्ण की ओर देखकर बहुत शरारतें कर रहे थे। १३१ तब कृष्ण ने क्या किया ? उन्होंने उस गोपी के वस्त्र को खींच लिया, तो वह तत्काल धरती पर गिर गया, (फल-स्वरूप) उसकी समस्त देह अनावृत हो गयी। ३२ उसके हाथ तो गगरी में उलझे हुए थे। (इधर) कृष्ण उस वस्त्र को लेकर भाग गये; तो (उधर) चौराहे पर उस नंगी स्त्री को समस्त लोग देखते रहे। ३३ वह

१ सूर्य-कन्या यमुना— पौराणिक मान्यता के अनुसार यमी अथवा यमुना बारह सूर्यों (आदित्यों) में से विवस्वान की पुत्री तथा मृत्यु के अधिष्ठाता देवता यम की भगिनी है।

सकळ लोक पाहती । ३३ काकुळती येत गोपिका । कृष्णा माझें वस्त्र देईं कां । हरीनें वृक्षावरी एका । वस्त्र तिचें टाकिलें । ३४ आपण पळाला सत्वरा । नग्न गोपी जात मंदिरा । तिचे पाठीं अर्भकें एकसरा । हांसतचि धांवती । ३५ गोपी प्रवेशली मंदिरीं । दुजें वस्त्र नेसे सुंदरी । गान्हाणें सांगावया झडकरी । घरा आली यशोदेच्या । ३६ म्हणे कोठें तुझा हृषीकेशी । माझें वस्त्र फेडिलें वाटेसी । माता म्हणे कृष्णासीं । काय खोडीसी करूं तुझ्या । ३७ एक सांगे तरुणी । मी भरीत होतें यमुनेचें पाणी । मागें येऊनि चक्रपाणी । नेत्र माझे झांकिले । ३८ मी भयभीत होऊनी । मागे पाहे परतोनी । अदृश्य जाहला तेच क्षणीं । नवल करणी हरीची । ३९ एक म्हणे मी उदक आणितां । मागूनि आला अवचिता । थै थै म्हणोनि त्वरितां । नितंब करें थापटीत । १४० जैसे पर्जन्यकाळीं गंगेचे पूर । लोटावरी लोट येती अनिवार । तेवीं गान्हाणियांचे चपेटे थोर । एकावरी एक पडताती । १४१ पाहूनियां श्रीरंगा । गोपी चित्तीं सानुरागा । मृषा कोप वाउगा । बाह्यदृष्टीं दाविती । ४२ अंतरीं सप्रेम वरी कोपती ।

गोपी गिड़गिड़ाने लगी (और बोली—) ‘ अरे कृष्ण, मेरा वस्त्र तो देना ’ । (परन्तु) कृष्ण ने उसका वस्त्र एक वृक्ष पर फेंक दिया । ३४ वे स्वयं झट से भाग गये । (जब) वह नंगी गोपी घर जा रही थी, तो उसके पीछे (-पीछे) बच्चे एक साथ हँसते हुए दौड़ रहे थे । ३५ वह गोपी घर में प्रविष्ट हो गयी और उस सुन्दरी ने दूसरा वस्त्र पहन लिया । (तदनन्तर) वह शिकायत करने के लिए झट से यशोदा के घर आ गयी । ३६ वह बोली, ‘ कहाँ है तुम्हारा कृष्ण ? उसने मेरा वस्त्र रास्ते में उतार लिया । ’ (यह सुनकर) माता (यशोदा) कृष्ण से बोली, ‘ मैं तेरी छेड़छाड़ के बारे में क्या करूँ ? ’ । ३७ (तदनन्तर एक दिन) किसी एक युवती ने (यशोदा से) कहा, ‘ मैं यमुना का पानी भर रही थी, तो कृष्ण ने पीछे से आकर मेरी आँखें बन्द कर दीं । ३८ जब मैं भयभीत होकर पीछे मुड़कर देखने लगी, तो उसी क्षण वह अदृश्य हो गया । इस कृष्ण की करनी अद्भुत है ’ । ३९ किसी एक (गोपी ने यशोदा से) कहा, ‘ मेरे द्वारा पानी लाते समय (कृष्ण) पीछे से अचानक आ गया और थय्-थय् कहते हुए झट से वह मेरे नितम्ब पर थपकाने लगा ’ । १४०

जिस प्रकार वर्षाकाल में गंगा में बाढ़ आती है, तो (पानी के) अनिवार्य रेले पर रेले आते हैं, उसी प्रकार शिकायतों के बड़े-बड़े प्रहार एक पर एक होते रहते थे । १४१ (वस्तुतः) श्रीरंग कृष्ण को देखकर गोपियाँ मन में अनुराग से युक्त (ही) हो जाती थीं और व्यर्थ ही झूठा कोप बाह्य दृष्टि से दिखाती थीं । ४२ अन्तःकरण में वे प्रेम-सहित होती थीं, (परन्तु) ऊपर से कुपित होती थीं । कटहल अन्दर से मीठा होता है, (परन्तु)

फणस आंत गोड वरी कांटे दिसती। जेवीं नारिकेल वरी कठिण भासती। परी अंतरीं जीवन तयांच्या। ४३ कीं ज्ञानी वर्तती संसारां। परी सर्वदा निःसंग अंतरीं। तैशा गोपी क्रोधायमान वरी। परी हृदयीं सप्रेम। ४४ ऐशा त्या सकळ नारी। दृष्टीं लक्षूनि पूतनारी। गाऱ्हाणें देती सुंदरी। ऐकतां दूरी शोक होय। ४५ हाता न ये ज्या घरचा गोरस। तरी ताडन करी त्यांचिया मुलांस। त्यांच्या गळां काठमोरे हृषीकेश। घालोनियां हिंडवी। ४६ निद्रिस्तास तुडवी चरणीं। बाळकें उठवितो रडवूनी। म्हणे अग्नि लावीन ये सदनीं। तृप्त नव्हें मी येथें। ४७ जेथें न लाभे गोरस पूर्ण। म्हणे हें घर मसणवटीसमान। जेथें मी तृप्त नव्हें मधुसूदन। तेंचि स्थान अपवित्र। ४८ मी तृप्त न होतां जगन्निवास। तें घर नांदतचि ओस। तेथें अवदशा ये बहुवस। आसमास कष्ट होती। ४९ ऐसिया खोडी बहुत। जननीस गोपी सांगत। कृष्णमुखाकडे पाहूनि हांसत। यशोदादेवी तेधवां। १५० तें वैकुंठींचें निधान। मातेकडे पाहे राजीवनयन। म्हणे या

ऊपर काँटे दिखायी देते हैं। अथवा जिस प्रकार नारियल ऊपर कठिन दिखायी देते हैं, परन्तु उनके अन्दर (मधुर) पानी होता है; अथवा (ब्रह्म-) ज्ञानी संसार में व्यवहार तो करते हैं, फिर भी अन्तःकरण में नित्य (सांसारिक बातों से) निःसंग अर्थात अलिप्त रहते हैं, उसी प्रकार गोपियाँ ऊपर से (कृष्ण के प्रति) क्रोधायमान (दिखायी देती) थीं, परन्तु (अपने) हृदय में प्रेमयुक्त थीं। ४३-४४ ऐसी वे समस्त सुन्दर नारियाँ दृष्टि से पूतनारि (कृष्ण) को लक्ष्य करके (देखते हुए) शिकायतें करती थीं। उसे सुनकर (सुननेवाले का) शोक दूर हो जाता था। ४५ जिस घर का दूध हाथ न आता था, तो उस घर के बच्चों को पीटते थे। कृष्ण उनके गले में (टूटे) मटकों का मुँहगड़ डालकर घुमाते थे। ४६ सोये हुओं को वे पाँवों से कुचलते थे, बालकों को रुलाते हुए जगाते थे। कहते— इस घर में मैं आग लगा दूँगा, मैं यहाँ तृप्त नहीं हो रहा हूँ। ४७ वे कहते, ' जहाँ पूरा-पूरा गोरस नहीं मिलता, ऐसा यह घर श्मशान के समान है। मैं मधुसूदन[1] जहाँ तृप्त नहीं हो जाता, वही स्थान अपवित्र होता है। ४८ मुझ जगन्निवास के तृप्त न होने पर वह घर सुख-शान्ति से बसे रहने पर भी उजाड़ होता है। वहाँ बहुत बुरी स्थिति आ जाएगी और नित्य दुख उत्पन्न हो जाएँगे। ४९ गोपियाँ ऐसी बहुत शरारतें माता (यशोदा) से कह देतीं; तो यशोदा देवी तब कृष्ण के मुख की ओर देखकर हँसती रहतीं। १५० वैकुण्ठ के निधान राजीवनयन कृष्ण माता की ओर देखते और कहते, ' समझो कि ये गोपियाँ सम्पूर्ण

---

१ मधुसूदन : देखिए टिप्पणी १; पृ० १६२ अध्याय ७–३७

गौळिणी संपूर्ण । असत्य जाण बोलती । १५१ मजवरी घालिती व्यर्थ आळ । मी सर्वातीत निर्मळ । जैसें आकाश केवळ । घटमठांशीं वेगळें । ५२ मी ब्रह्मानंद निर्मळ । मज म्हणती हा धाकुटा बाळ । यांच्या खोडी सकळ । तुज माते सांगेन मी । ५३ ह्या मज नेती गृहांत । कुचेष्टा शिकविती बहुत । मज हृदयीं धरूनि समस्त । कुस्करिती निजबळें । ५४ माते माझे चावोनि अधर । चुंबन देती वारंवार । मज कष्टविती थोर । सकळ धमकटी मिळोनि । ५५ बहुतजणी मिळोन । घरांत होताती आपुल्या नग्न । मज मध्यें बैसवून । नाचताती सभोंवत्या । ५६ म्हणती कृष्णा असतासी थोर । तरी होता बरवा विचार । तुजजवळी हा समाचार । सांगेन म्हणतां दाबिती । ५७ ऐसें बोले पूतनाप्राणहरण । गोपी लटक्याचि क्रोधें पूर्ण । म्हणती यशोदे तुझा नंदन । तुजचि गोड वाटतसे । ५८ अवघ्या मिळोनि गौळिणी । गोफाटली नंदराणी । म्हणती काय कौतुक नयनीं । निजपुत्राचें पाहसी । ५९ अगे हा परम नष्ट अनाचारी । नसतीच आळी घेतो आम्हांवरी । पुढें बहुतांचि घरें निर्धारीं । हा बुडवील यशोदे । १६०

झूठ बोल रही हैं । मुझपर व्यर्थ ही दोषारोप लगा रही हैं; मैं (वैसे ही) सबसे परे, निर्मल हूँ; जैसे आकाश शुद्ध (निर्लिप्त) तथा घटों-मटकों (में प्रतिबिम्बित होने पर भी उन) से भिन्न होता है । १५१-५२ मैं तो निर्मल आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हूँ; (फिर भी) मुझसे कहती हैं— यह नन्हा बालक है । अरी माँ इनकी समस्त शरारतें मैं तुम्हें बताता हूँ । ५३ ये मुझे घर के अन्दर ले जाती हैं, (वहाँ) बहुत बुरी बातें सिखाती हैं, वे सब मुझे हृदय से लगाकर अपनी पूरी शक्ति से मसल लेती हैं । ५४ माँ, मेरे अधरों को काटते हुए वे बार-बार चुम्बन कराती हैं । ये सब धींगड़ियाँ मिलकर मुझे कष्ट को बहुत प्राप्त कराती हैं । ५५ वे बहुत-सी मिलकर अपने घर में नंगी हो जाती हैं और मुझे बीच में बैठाकर चारों ओर नाचती हैं । ५६ वे कहती हैं, 'कृष्ण, यदि तू बड़ा होता, तो अच्छी बात हो जाती । यह कहने पर कि मैं तुमसे यह बात कहूँगा, वे (मुझे) डाँटती-डराती हैं' । ५७ पूतना के प्राणों का हरण करनेवाले कृष्ण ऐसा बोले, तो गोपियाँ पूर्णतः बनावटी क्रोध से बोलीं, 'यशोदा, तुम्हारा बेटा तुम्हीं को मीठा अर्थात प्रिय लगता है' । ५८ (तदनन्तर) समस्त गोपियों ने मिलकर नन्द-रानी यशोदा को घेर लिया और कहा, "आँखों से अपने पुत्र की क्या लीला देख रही हो । ५९ अरी, यह तो परम दुष्ट दुराचारी है, हम पर मनमाना दोषारोप लगा रहा है । निश्चय ही आगे चलकर, री यशोदा, यह बहुतों के घर डुबो देगा (मिट्टी में मिला देगा) । १६० हँसते-हँसते मज़े में यह ब्रह्माण्ड को बगल में छिपाएगा, सातों समुद्रों[1] को

1 सात समुद्र— क्षार, इक्षुरस, सुरा, घृत, क्षीर, दधि और शुद्धोदक

हंसतां हंसतां कौतुकें। ब्रह्मांड लपवी कांखें। सप्त समुद्र क्षण एकें। नखाग्रांत जिरवील। १६१ याच्या एक एक गोष्टी सांगतां। तरी धरणी न पुरे लिहितां। काल आमुच्या मंदिरांत तत्त्वतां। अकस्मात पातला। ६२ आम्ही बोलिलों कौतुकरीतीं। तुज नवरी कैसी पाहिजे श्रीपती। येणें प्रतिउत्तर कोणे रीतीं। दिधलें तें ऐक पां। ६३ अनंतब्रह्मांडांच्या गती। जिच्या इच्छामात्रें होती जाती। जे परब्रह्मींची मूळस्फूर्ती। तेचि निश्चितीं नोवरी माझी। ६४ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। इंद्र चंद्र वरुण दिनकर। हीं बाहुलीं नाचवी समग्र। एकसूत्रेंकरूनियां। ६५ जगडंबर हा दावी नेटें। सवेंचि झांकूनि म्हणे कोठें। ते माझी नोवरी भेटे। तरीच करणें विवाह। ६६ ते पतिव्रताशिरोमणी। नांवरूपा आणिलें मजलागुनी। माझी योगनिद्रा मोडोनी। जागविलें मज तिनें। ६७ मज न कळतां जागें केलें। अवघें मोडोनि मजमाजी मिळविलें। माझ्या सत्तेनें खेळ खेळे। परी मी नेणें तियेतें। ६८ ऐशा लबाड गोष्टी फार। रचितो गे तुझा कुमार। तों एक कुरंगनेत्री सुकुमार। गाऱ्हाणें सांगे ऐका हो। ६९ काल माझ्या मंदिरा

क्षणमात्र में नख के अग्र में लुप्त करेगा। १६१ इसकी एक-एक बात कहते, लिखते धरती पर्याप्त नहीं है। कल हमारे घर वह सचमुच सहसा आ धमका। ६२ हम तो हँसी के तौर पर बोलीं, 'अरे श्रीपति, तुझे कैसी दुलहन चाहिए ? तो इसने प्रत्युत्तर किस ढंग से दिया, वह सुन लो'। ६३ (वह बोला—) जिसकी इच्छा मात्र से अनन्त ब्रह्माण्डों की गतियाँ हो जाती हैं, जो परब्रह्म की मूल प्रेरणा अर्थात आदिमाया है, निश्चय ही वही मेरी दुलहन होगी। ६४ वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर (शिवजी), इन्द्र, चन्द्र, वरुण, सूर्य —इन समस्त गुड्डियों (कठपुतलियों) को वह एक सूत्र से नचाती है। ६५ जो इस जगत के आडम्बर (दिखावे) को झट से दिखा देती है और साथ ही (झट से) उसे आच्छादित करके (अर्थात जो इस जगत का निर्माण करती है और साथ ही उसका नाश करके) पूछती है— यह कहाँ था, ऐसी मेरी वधू मुझसे मिले, तो ही (मुझे) विवाह करना है। ६६ वह पतिव्रता नारियों में शिरोमणि अर्थात सर्वोपरि है; उसने मुझ (जैसे अनाम, अरूप) को नाम और रूप को प्राप्त करा दिया। उसने मेरी योग-निद्रा को दूर करके मुझे जगा दिया। ६७ मुझे विदित न होते हुए उसने मुझे जगा दिया, सबको तोड़कर (मिटाकर) मुझमें मिला दिया। वह मेरी सत्ता से (ही ऐसा) खेल खेलती है (सृष्टि का निर्माण, परिपालन और विलय रूपी खेल खेलती है); फिर भी मैं उसे नहीं जानता। ६८ अरी, तुम्हारा बेटा, ऐसी बहुत-सी झूठी बातें रचता है।" तब एक सुकुमार मृगनयनी (गोपी) शिकायत करने लगी— सुन लो। ६९ कल मेरे घर आकर वह छींकों को निरखकर देखने लगा

येऊनी। शिकीं पाहे अवलोकूनी। तंव तीं न दिसतीं नयनीं। म्हणे लपवोनि ठेवियेलीं। १७० मजभेणें लपवितां लोणी। परी मी काढीन धुंडोनी। म्यां समुद्रांत शोधूनी। शंखासुर काढिला। १७१ असुर वेद घेऊनि गेला जेव्हां। विधि माझा धांवा करी तेव्हां। धांवें धांवें कमलाधवा। हे केशवा दीनबंधो। ७२ ब्रह्मा माझें पोटींचें बाळ। मज बहुत त्याची कळकळ। मी मत्स्यरूप होऊनि तत्काळ। वेदशोधना निघालों। ७३ तों असंभाव्य समुद्रजळ। सवा लक्ष गांवें रुंद विशाळ। तितुकाच खोल सबळ। पृथ्वीभोंवता असंभाव्य। ७४ मी जाहलों मत्स्यरूप विशाळ। असंभाव्य समुद्रजळ। पुच्छघायें जळ सकळ। आकाशपंथें उडविलें। ७५ जैसें विहरियाचें पाणी। एकाच हस्तचपेटेंकरूनी। बाहेर पडे येऊनी। तैसा सागर उडविला। ७६ सवा लक्ष गांवें समुद्र। आकाशीं उडविला समग्र। मग पायीं धरूनि शंखासुर। ओढूनियां काढिला। ७७ असुरासी बाहेर काढिलें। मग समुद्रजळ खालीं पाडिलें। शंखासुरासी वधिलें। करीं धरिलें कलेवर। ७८ ते काळीं ब्रह्मादिक इंद्र। स्तुतिस्तोत्रें करिती अपार।

(खोजने लगा), तब वे उसकी आँखों को नहीं दिखायी दिये, तो वह बोला, तुमने (उन्हें) छिपाकर रखा है। १७० मेरे डर से तुम मक्खन छिपाकर रखती हो; फिर भी मैं उसे ढूँढकर निकाल लूँगा। मैंने समुद्र में खोजकर शंखासुर को निकाल दिया था। १७१ जब वह असुर वेदों को (चुराकर) ले गया, तब विधाता (ब्रह्मा) ने मेरी दुहाई देते हुए कहा, 'हे कमलापति, हे केशव, हे दीन-बन्धु, दौड़ो, दौड़ो'। ७२ ब्रह्मा तो मेरा अपना पुत्र है; मुझे उसकी बहुत चिन्ता है। (अतः) मैं मत्स्य रूप होकर (धारण करके) तत्काल वेदों की खोज के लिए चल दिया। ७३ तब (वहाँ) समुद्र में जल अपार था; वह सवा लाख योजन चौड़ा विशाल (फैला) था, वह उतना ही गहरा पृथ्वी के चारों ओर अपार (फैला हुआ) था। ७४ मैं विशाल मत्स्य रूप बन गया; समुद्र का जल तो अपार था, (फिर भी) मैंने (अपनी) पूँछ के आघात से उस समस्त जल को आकाश मार्ग पर उछाल दिया। ७५ जिस प्रकार, झरने का पानी हाथ के एक ही चपेट से बाहर आकर गिरता है, उसी प्रकार मैंने सागर (का जल) उछाल डाला। ७६ मैंने समग्र सवा लाख योजन (विशाल) समुद्र (का जल) आकाश में उछाल डाला; फिर पाँव पकड़कर मैंने शंखासुर को खींच लिया। ७७ उस असुर को बाहर निकाला और तदनन्तर उस समुद्र-जल को नीचे गिरा दिया। (फिर) शंखासुर का वध किया और हाथ में उसका कलेवर पकड़ लिया। ७८ उस समय इन्द्र, ब्रह्मा आदि ने मेरी अपार स्तुति की। (इस प्रकार) मैंने सम्पूर्ण वेदों को (लौटा) देते हुए देवों के सम्मान की रक्षा की। ७९ इसलिए री

वेद देऊनि समग्र। म्यां मान रक्षिला देवांचा। ७९ याकारणें ऐक चतुरे कामिनी। जेणें प्रळयजळीं वेद शोधूनी। काढिले त्यापुढें लोणी। लपवाल कोठें अबला हो। १८० ऐक यशोदे सुंदरी। लटक्याचि कथा उत्पन्न करी। मी घुसळितां मंदिरीं। हरि येऊनि बोलिला। १८१ म्हणे घुसळितां गोपी समस्ता। परी न ये माझिया चित्ता। म्यां कूर्मअवतारीं तत्त्वतां। क्षीरसागर मथिला हो। ८२ एकादश सहस्र योजनें सबळ। रवी केली मंदराचळ। जो अवक्र उंच सरळ। सुवर्णमय प्रभा त्याची। ८३ वासुकीची त्यास बिरडी। मग समुद्र मथिला कडोविकडीं। सुर आणि असुर प्रौढीं। दोहींकडे सम धरिती। ८४ मग चालिला भेदीत पाताळतळ। मी कूर्म जाहलों घननीळ। चतुर्दश रत्नें निर्मळ। नवनीत तेंचि काढिलें। ८५ तुम्ही दूध पाजितां बाळकांस। तैसाचि मी सुरांस पाजीं सुधारस। मोहिनी-स्वरूप विशेष। मीच नटलों तेधवां। ८६ म्यां मोहिनीस्वरूप धरिलें जाण। म्हणोनि मोडूनि दाखवी नयन। तें कूर्मचरित्र संपूर्ण। आपुलें आंगीं दावितो। ८७ आणिक नवल एक साजणी। मी कुंभ भरितां तमारिकन्या-जीवनीं। तों हळूंच माझा कर धरूनी। काय बोलिला गोपाळ। ८८ तुम्ही

चतुर कामिनी, सुनो, जिसने प्रलय के जल में से वेदों को खोज निकाला, उसके सामने (उससे) री अबलाओ, मक्खन कहाँ छिपाओगी। १८० री सुन्दरी यशोदा, सुनो। वह (इस प्रकार की) झूठमूठ की कथाओं की रचना करता है। मेरे द्वारा मन्थन करते रहते घर में आकर कृष्ण बोला। १८१ वह बोला, 'तुम सब गोपियाँ मन्थन करती हो; परन्तु वह मन नहीं भाता।' अहो, मैंने कूर्मावतार (-काल) में सचमुच क्षीरसागर का मन्थन किया था। ८२ जो मन्दर पर्वत ग्यारह सहस्र योजन सबल अर्थात विशाल तथा अवक्र सीधा ऊँचा है, उसे मैंने मथानी बना लिया। उसकी कान्ति स्वर्णमय (सुनहरी) है। ८३ उसके लिए वासुकी (नामक नाग) को डोरी (-स्वरूप) बना लिया। अनन्तर सामर्थ्यशील सुरों और असुरों ने असीम ज़ोर से समुद्र को मथ लिया। उन्होंने दोनों ओर (से डोरी को) समान रूप से पकड़ लिया था। ८४ तब वह (पर्वत) पाताल-तल को भेदता चला, तो मैं मेघ के समान नीले वर्ण से युक्त कूर्म (कछुआ) बन गया और चौदह निर्मल रत्नों के रूप में— अर्थात वही नवनीत (मक्खन) निकाल लिया। ८५ तुम बच्चों को दूध पिलाया करती हो; उसी प्रकार मैंने देवों को अमृत पिला दिया। उस समय मैंने ही विशिष्ट मोहिनी स्वरूप धारण किया था। ८६ समझ लो कि मैंने मोहिनी रूप धारण किया। ऐसा कहते हुए उसने (मोहिनी के समान) आँखों को मटकाकर दिखा दिया। (फिर) उसने अपने शरीर से सम्पूर्ण कूर्म-चरित प्रदर्शित कर दिखाया। ८७ अरी सजनी, और एक आश्चर्य है। मेरे द्वारा

गे घागरी उचलितां। बहुत गोपी कष्टी होतां। म्यां दाढेवरी तत्त्वतां। पृथ्वी उचलोनि धरियेली। ८६ तो मी वराहवेषधारी। हिरण्याक्ष मारिला क्षणाभीतरीं। अद्यापि दाढेवरी धरित्री। म्यां धरिलीसे निजबळें। १६० म्यां दाढेवरी धरिली अवनी। कुंभ न उचले तुमचेनी। मी ब्रह्मांड नखाग्रीं धरूनी। नाचवीन म्हणतसे। १६१ ऐकें यशोदे शुभकल्याणी। आम्ही फळें कांकड्या चिरितां सदनीं। म्हणे हिरण्यकश्यपा चिरूनी। आंतडीं ऐशीं काढिलीं म्यां। ६२ तो मी नृसिंहवेषधारक। असुरकुळकाननपावक। माझ्या क्रोधापुढें ब्रह्मादिक। उभे न ठाकती सर्वथा। ६३ क्रोधें विदारिला असुर। रक्षिला प्रल्हाद किंकर। तो नरसिंहअवतार समग्र। लीला अपार दाविली। ६४ ऐकें यशोदे सुताचें विंदाण। नसतेंच करितो निर्माण। एके दिवशीं मी पतीचे चरण। धूत होतें निजगृहीं। ६५ हळूंच बैसला येऊन। म्हणे बळीनें धुतले माझे चरण। मज त्रिपादभूमी दान। प्रल्हाद-पौत्रें दिधली पैं। ६६ दोन पाद जाहलें त्रिभुवन। मग बळीनें केलें

(सूर्य-कन्या) यमुना के जल से कुम्भ भरते ही तब मेरे हाथ को हौले से पकड़कर गोपाल ने क्या कहा ? । ८८ अरी तुम गगरियों को उठा लेती हो; री गोपियो, तुम (उससे) बहुत थक जाती हो। (परन्तु) मैंने सचमुच (अपनी) दाढ़ पर पृथ्वी को उठाकर धारण किया था। ८९ तब उस वराह-वेश (रूप)-धारी मैंने क्षण के अन्दर हिरण्याक्ष (नामक दैत्य) को मार डाला। मैंने अपने बल से अपनी दाढ़ पर पृथ्वी को धारण किया है। १९० मैंने तो दाढ़ पर पृथ्वी को धारण किया (और इधर) तुमसे कुम्भ भी नहीं उठ रहा है (उठाया जा रहा है)। वह कहता है— मैं नख के अग्र पर ब्रह्माण्ड रखकर नचा लूँगा (नचा सकता हूँ)। १९१ अरी शुभ कल्याणी यशोदा, सुन लो, घर में हमारे द्वारा फलों-ककड़ियों को चीरते रहने पर वह बोला— मैंने हिरण्यकशिपु (नामक दैत्य) को चीरकर ऐसे ही अँतड़ियाँ (बाहर) निकाली थीं। ९२ मैं वही नृसिंह-वेशधारी हूँ, असुरों के कुल रूप वन को जला डालनेवाला पावक (अग्नि) हूँ। मेरे क्रोध के सम्मुख ब्रह्मा आदि बिलकुल खड़े नहीं रह पाते। ९३ मैंने क्रोध से उस असुर को विदीर्ण कर डाला (और) अपने सेवक प्रह्लाद की रक्षा की। (फिर) उसने नरसिंह अवतार की समग्र अपार लीला प्रदर्शित की। ९४ हे यशोदा, अपने पुत्र की करनी सुन लो। वह निरर्थक बात बना लेता है। एक दिन मैं अपने घर पति के चरणों को धो रही थी। ९५ वह धीरे से आकर बैठ गया (और) बोला— बलि ने मेरे चरण धोये थे —प्रह्लाद के उस पौत्र ने मुझे तीन पाँव भूमि दान में दी। ९६ दो पाँव (रखने पर) त्रिभुवन व्याप्त हो गया। तब बलि ने आत्मसमर्पण कर दिया। उस (बलि) ने (जब) मेरे रूप को देखा, तो उस असम्भव

आत्मनिवेदन। बळी माझें रूप विलोकी पूर्ण। तों असंभाव्य लक्षवेना। ९७ सप्तपाताळांखालीं चरण। प्रपद तें रसातळ पूर्ण। गुल्फद्वय तें महातळ जाण। पोटरिया तें सुतळ। ९८ अतळ आणि वितळ। त्या जानु जंघा निर्मळ। कटिप्रदेश तें भूमंडळ। मृत्युलोक वसे वरी। ९९ सप्त समुद्र पोटांत। जठराग्नि वडवानळ धडधडीत। नाभिस्थान नभ निश्चित। ज्योतिर्लोक वक्षःस्थळ। २०० महर्लोक तो कंठ जाण। मस्तक तें विधिभुवन। दोहों हस्तरूपें शचीरमण। माझ्या अंगीं वसतसे। २०१ नेत्र ते सूर्यनारायण। चंद्रमा ते माझें मन। दिशा ते माझे श्रवण। विष्णु अंतःकरण जाण पां। २ विरिंची बुद्धि साचार। शंकर माझा अहंकार। यम माझ्या दाढा समग्र। वरुण जिव्हा जाणिजे। ३ ऐसें माझें स्वरूप अद्‌भुत। देखोनि बळी माझा भक्त। तेणें शरीर निश्चित। मज केलें अर्पण। ४ मग मी स्थापिला रसातळीं। अद्यापि उभा आहें जवळीं। त्याचें द्वार राखें मी वनमाळी। तोच गोकुळीं अवतरलों। ५ जान्हवी माझें चरणजळ। मस्तकीं वाहे तो

(असीम-अनन्त) रूप को उससे (पूर्ण रूप से) देखा नहीं जा रहा था। ९७ (मेरे) पाँव सातों पातालों के नीचे (पहुँचे हुए) थे; तलुवे तो उस सम्पूर्ण रसातल को व्याप्त किये हुए थे। समझ लो, दोनों गुल्फ (एड़ी पर की गाँठ) उस महातल को व्याप्त कर गये थे; पिण्डलियाँ सुतल (नामक पाताल) को व्याप्त किये हुए थीं। ९८ अतल और वितल (नामक पाताल) मेरे निर्मल जानु (घुटने) और जंघाओं को व्याप्त कर रहे थे। मेरा कटि-प्रदेश भूमण्डल (व्याप्त किये हुए) था। उसपर मृत्युलोक बसा हुआ है। ९९ मेरे पेट में सातों समुद्र (व्याप्त) थे। जठराग्नि के रूप में वाड़वाग्नि धधक रही थी। निश्चय ही नाभिस्थान आकाश (को व्याप्त कर रहा) था और ज्योतिर्लोक (मेरे) वक्षःस्थल (में समाया हुआ) था। २०० उस महर्लोक को मेरा कण्ठ समझ लो। (मेरा) मस्तक वह विधि-भुवन (अर्थात ब्रह्मलोक, सत्यलोक हो गया) था। मेरे दोनों हाथों के रूप में शचीरमण इन्द्र मेरे अंग में बस गया था। २०१ मेरे नेत्र सूर्यनारायण (व्याप्त किये हुए) थे; मेरा मन चन्द्रमा (को व्याप्त कर चुका) था। वे दिशाएँ मेरे कर्ण थे। विष्णु को मेरा अन्तःकरण (में समाया हुआ) समझ लो। २ सचमुच ब्रह्मा मेरी बुद्धि (में व्याप्त) था। शिवजी मेरा अहंकार (द्वारा व्याप्त) थे। यम को मेरी समस्त दाढ़ें तथा वरुण को जिह्वा समझ लो। ३ ऐसे मेरे उस अद्‌भुत स्वरूप को देखकर मेरे भक्त वलि ने निश्चय ही अपना शरीर मुझे समर्पित कर डाला। ४ अनन्तर मैंने उसे रसातल (नामक पाताल) में स्थापित कर दिया। मैं अब भी उसके निकट हूँ। मैं वनमाली उसके द्वार की (द्वारपाल के रूप में) रक्षा कर रहा हूँ—मैं वही (विष्णु) गोकुल में अवतरित हो गया

जाश्वनीळ। ऐशा गोष्टी घननीळ। सांगे आम्हांतें जननीये। ६ जें पोर मोडी पितृआज्ञेतें। त्यासी ताडन करी स्वहस्तें। मीं मारीं आपुले मातेतें। पितृआज्ञेंकरूनियां। ७ एकवीस वेळां निःक्षत्री। म्यां परशुधरें केली धरित्री। तोचि गोकुळाभीतरीं। अवतरलों मी म्हणतसे। ८ रामावतारीं मी पितृभक्त। वना जाईं चरणीं चालत। खर दूषण त्रिशिरा समस्त। वधिले अद्भुत विरोधें। ९ माझी सीता नेली रावणें। सवेंच म्यां केलें धांवणें। वाली वधूनि सुग्रीवाकारणें। किष्किंधा ते समर्पिली। २१० माझा प्राणसखा हनुमंत। सीताशुद्धि करूनि येत। मी दळभारें रघुनाथ। समुद्रतीरा पातलों। २११ पाषाणीं पालाणिला समुद्र। सुवेळेसी गेलों मी राघवेंद्र। देवांतक नरांतक महोदर। अतिकाय प्रहस्त वधियेले। १२ कुंभकर्ण इंद्रजित सर्व। शेवटीं मारिला दशग्रीव। सोडविले बंदीचे देव। निजप्रतापें-करूनियां। १३ तोचि मी आतां गोकुळीं येथें। कंस वधीन निजहस्तें। मी क्षीर सागरीं असतां तेथें। शरण देव मज आले। १४ ब्रह्मा शंकर प्रजा ऋषी। गाऱ्हाणीं सांगती मजपासीं। मग मी मारावया

हूँ। ५ गंगा तो मेरा चरण-जल (-स्वरूप) है; उसे शिवजी मस्तक पर धारण किये हुए हैं। अरी माँ, घननील (कृष्ण) हमें ऐसी बातें बताता है। ६ जो बच्चा पिता की आज्ञा को तोड़ता है, उसे वह अपने हाथों से पीटता है। (वह बोला—) पिता की आज्ञा से मैंने अपनी माता को मार डाला था। ७ परशुधारी मैंने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-हीन कर दिया था। वह कहता है —वही मैं गोकुल में अवतरित हो गया हूँ। ८ रामावतार (-काल) में मैं पितृ-भक्त था— मैं पैदल अरण्य को गया था। (वहाँ) अद्भुत विरोध (सामना) करते हुए मैंने खर, दूषण, त्रिशिरा (आदि) सब (राक्षसों) का वध किया। ९ मेरी सीता को (अपहृत करके) रावण ले गया, तो साथ ही मैं दौड़ते हुए गया। सुग्रीव के लिए बाली का वध करके उसे किष्किन्धा समर्पित की। २१० (जब) मेरा प्राणसखा हनुमान सीता की खोज करके (लौट) आया, तो मैं रघुनाथ सेना-सहित समुद्र-तट पर पहुँच गया। २११ समुद्र को पाषाणों से बाँध लिया और मैं राघवेन्द्र सुवेल गया। (वहाँ लंका में मैंने) देवान्तक, नरान्तक, महोदर, अतिकाय (और) प्रहस्त का वध किया। १२ कुम्भकर्ण, इन्द्रजित —सबको तथा अन्त में मैंने दशग्रीव (रावण) को मार डाला। मैंने अपने प्रताप से बन्दीगृह से देवों को छुड़ा लिया। १३ वही मैं अब यहाँ गोकुल में (अवतरित होकर) अपने हाथों से कंस का वध करूँगा। मेरे क्षीरसागर में रहते, देव वहाँ मेरी शरण में आये थे। १४ ब्रह्मा, शिव, प्रजा (-जनों), ऋषियों ने मुझसे अपने दुःख कहे; तो तब कंस को मार डालने के हेतु नन्द के घर अवतरित हुआ हूँ। १५ मैं मुष्टिक,

कंसासी। नंदगृहीं अवतरलों। १५ मुष्टिक चाणूर अघासुर। दैत्य अवघे मारीन दुर्धर। मी बायका सोळा सहस्र। पुढें करीन म्हणतो कीं। १६ होईन मी भक्तांचा सारथी। उच्छिष्ट काढीन स्वहस्तीं। दुष्ट मारूनि निश्चितीं। भूभार सर्व हरीन। १७ ब्रह्मयाचा बाप म्हणतो बाई। म्हणवी क्षीराब्धीचा जांवई। परमात्मा शेषशायी। म्हणवी पाहीं यशोदे। १८ ज्याचें घरीं न लाभे चोरी। त्याचिया अर्भकांसी करीं धरी। म्हणे तुमचे शिरींचे निर्धारीं। केश लुंचीन अवघे पैं। १९ पोरें केश लुंचिती। चिमटी मुलांच्या मागुती। म्हणे मी बौद्ध निश्चितीं। कलियुगीं गति दावीन हो। २२० पोरें न सांगती पाळती। त्यांसी जांची नाना गती। एके मुलावरी बैसे श्रीपती। ताट हातीं घेऊनियां। २२१ मुलांस म्हणे म्लेंच्छ तुम्ही। मरोन पडा रे रणभूमीं। कलंकी अवतार पुढें मी। ऐसाचि होईन जाण पां। २२ करीं घेऊनियां कुंत। म्लेंच्छ संहारीन सत्य। मी वैकुंठींचा नाथ। यादवकुळीं अवतरलों। २३ ऐसे माझे अवतार किती। भोगींद्रासही नेणवती। मेघधारा मोजवती। परी अंत नाहीं अवतारां। २४

चाणूर, अघासुर —सब दुर्धर दैत्यों को मार डालूँगा। मैं कहता हूँ (चाहता हूँ)— आगे चलकर (अनन्तर) मैं सोलह सहस्र स्त्रियों से विवाह करूँगा। १६ मैं (अपने) भक्तों का सारथी हो जाऊँगा; अपने हाथों से उनकी जूठी थालियाँ उठा लूँगा (चौका-बरतन करूँगा); निश्चय ही दुष्टों को मार डालकर समस्त भू-भार को हर लूँगा (दूर करूँगा)। १७ अरी, वह (कृष्ण अपने को) ब्रह्मा का पिता कहता है; क्षीरसागर का दामाद कह लेता है। री यशोदा, देख लो, वह (अपने को) शेषशायी परमात्मा कह लेता है। १८ जिसके घर में चोरी (की गुंजाइश) नहीं हो पाती, उसके नवजात शिशुओं को हाथों से पकड़ लेता है और कहता है— तुम्हारे मस्तक के समस्त बाल उखाड़ लूँगा। १९ लड़के बाल उखाड़ते हैं। (और) चिकोटी बनाकर बच्चों के पीछे पड़ते हैं। वह कहता है— निश्चय ही कलियुग में मैं बुद्ध होकर (लोगों को सद्) गति दिखा दूँगा (लोगों का मार्गदर्शन करूँगा)। २२० जो बच्चे खोज (पता) नहीं बताते, उन्हें नाना प्रकार से वह सताता है। हाथ में डंठलों का गुच्छा लेकर वह किसी एक बच्चे (की पीठ) पर बैठता है। २२१ वह बच्चों से कहता है— तुम म्लेच्छ हो, रणभूमि में मरकर गिर पड़ो। अरे समझ लो, मैं आगे ऐसा ही कलंकी (नामक) अवतार (ग्रहण कर) लूँगा। २२ हाथ में भाला लेकर मैं सत्य ही म्लेच्छों का संहार कर डालूँगा। मैं वैकुण्ठ का स्वामी यादव-कुल में अवतरित हुआ हूँ। २३ मेरे ऐसे कितने अवतार हैं ? वे भोगीन्द्र शेष द्वारा (तक) गिने नहीं जा सकते। मेघ-धाराएँ (वर्षा-धाराएँ) गिनायी जा सकती हैं, परन्तु (गिनती करते रहने पर भी) मेरे अवतारों का अन्त नहीं आ पाएगा। २४ मैं आद्य, निष्कलंक,

मी आद्य निष्कलंक अचळ। अरूप निर्विकार निर्मळ। मी ब्रह्मानंदस्वरूप अढळ। नाहीं चळ मजलागीं। २५ मी अच्युत अनंत। मी नामरूपातीत। मी गुणागुणरहित। करूनि सत्य अकर्ता मी। २६ मी सर्वांचें निजमूळ। परी नोळखती लोक बरळ। जीवदशा पावोनि सकळ। अविद्येनें वेष्टिले। २७ अहंकारमद्य पिऊनी। भ्रमती मायाघोरविपिनीं। आपुली शुद्धि विसरोनी। आडफांटा भरले हो। २८ काम क्रोध मद मत्सर। हे अनामिक दुराचार। यांचे संगतीं जीव समग्र। भ्रष्टोनि मज विसरती। २९ मी सर्वांजवळी असें। परी कोणासही पाहतां न दिसें। मृगनाभीं कस्तूरी वसे। परी न गवसे तयातें। २३० एक दर्पणांचें निकेतन। त्यांत सोडिलें जैसें श्वान। प्रतिबिंबें असंख्यात देखोन। भुंकोन प्राण देत जैसें। २३१ कां स्फटिकाचे पर्वतीं। प्रतिबिंब द्विरद देखती। झाडां व्यर्थ हाणितीं दांतीं। परी न येती मरणावरी। ३२ कां चणियाच्या आशें वानर। गोवूनि बैसे दोनी कर। कां नळिकेच्या योगें पामर। शुक बद्ध जाहले। ३३ कीं आंधळें हातरूं माजलें। कीं सिंहानें प्रतिबिंब देखिलें। कूपामाजीं व्यर्थ मेलें। जीवा झालें

अचल हूँ; अरूप, निर्विकार, निर्मल हूँ। मैं अचल ब्रह्मानन्द-स्वरूप हूँ; मेरे लिए च्युति (परिवर्तन की स्थिति) नहीं है। २५ मैं अच्युत (जो कभी भी भ्रष्ट, परिवर्तित नहीं हो गया है), अनन्त हूँ; मैं नाम और रूप के परे हूँ। मैं गुण-अवगुण-रहित हूँ। (कुछ) करते रहने पर भी मैं सचमुच अकर्ता (अकर्मण्य) हूँ। २६ मैं सबका अपना (आद्य) मूल (बीज) हूँ, परन्तु (माया के प्रभाव से) भ्रम में पड़े हुए लोग (मुझे) नहीं पहचानते। वे सब जीव दशा को प्राप्त होकर अविद्या द्वारा घिरे हुए हैं। २७ वे अहंकार-रूपी मद्य पीकर मायारूपी घोर वन में भ्रमण करते रहते हैं और अपनी सुध-बुध खोने से (अपने सच्चे स्वरूप को भूलने के कारण) बाधाओं से घिरे हैं। २८ काम, क्रोध, मद, मत्सर (मानो) दुराचारी अन्त्यज हैं। इनकी संगति में समग्र जीव भ्रष्ट होकर मुझे भूल जाते हैं। २९ मैं सबके समीप होता हूँ, परन्तु किसी को भी, देखते रहने पर नहीं दिखायी देता हूँ। मृग की नाभि में कस्तूरी होती है, फिर भी उसे वह नहीं मिलती। २३० कोई एक दर्पण का घर, अर्थात (शीशमहल) हो (और) उसमें जैसे किसी कुत्ते को छोड़ दिया जाए, तो वह (अपने ही) असंख्यात प्रतिबिम्बों को देखकर जैसे भूँक(-भूँक) कर प्राण छोड़ देता हो; अथवा स्फटिक के पहाड़ में हाथी अपने प्रतिबिम्बों को देखते हैं, तो (उन्हें दूसरे हाथी समझकर) पेड़ों पर व्यर्थ ही दाँतों से आघात करते हैं, परन्तु वे मृत्यु को नहीं प्राप्त होते; अथवा बन्दर चने की आशा में दोनों हाथों को खो देता है; अथवा नलिका के योग से (कारण से) तुच्छ तोते (पिंजड़े में) बद्ध हो जाते हैं। २३१-३३ अथवा हाथी का अंधा बच्चा मत्त हो गया हो; अथवा सिंह ने प्रतिबिम्ब

तैसेंचि। ३४ कां उडुगणप्रतिभांस देखोन। हंस पावे व्यर्थ मरण। तैसें अविद्यायोगें भुलोन। जन्ममरण भोगिती। ३५ स्फटिक सर्वदा निर्मळ असे। परी काजळावरी काळा दिसे। कां केशावरी भासे। चिरफळिया जाहल्या। ३६ असो आतां यशोदे माय। गोष्टी याच्या सांगों काय। ऐकतां चित्ता उपरम होय। प्रेम सये नावरे मज। ३७ एक म्हणे नाटकी मोठा। पुत्र तुझा बहुत गोटा। मिथ्या गोष्टी गे अचाटा। घेऊनियां ऊठतो। ३८ जितुक्या सांगितल्या गोष्टी। तितुक्या मिथ्याचि चावटी। नसती क्रियाकर्मरहाटी। आपुलें आंगीं लावितो। ३९ पूर्वी जे अवतार झाले। ते आपुलेचि आंगीं लावितो बळें। जें जें हा जननीये बोले। तितुकें मिथ्या मृगजळ। २४० रांजणींचें पाणी देखतां। भय वाटे तुझ्या सुता। तो प्रळयसमुद्रीं तत्त्वतां। मत्स्य कैसा झाला गे। २४१ थापटोनी निजवितां जगजेठी। म्हणे हळूचि थापटीं माझी पाठी। तो म्हणतो मंदराचळ उठाउठीं। पृष्ठीवरी धरिला म्यां। ४२ चेंडू न उचले लवकरी यातें।

देखा हो (और उसे दूसरा प्रतिद्वन्द्वी सिंह समझकर उसपर लपक पड़ते हुए) वह व्यर्थ ही कुएँ में मर गया हो। जीव के बारे में वैसा ही हो गया है। ३४ अथवा तारों के प्रतिबिम्बों को देखकर (उन्हें मोती समझकर उन्हें चुगने के हेतु गहरे पानी में गोता लगाते हुए) हंस व्यर्थ ही मौत को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार अविद्या के कारण मोहित होकर जीव जन्म-मरण का भोग करते रहते हैं। ३५ स्फटिक तो नित्य निर्मल होता है, परन्तु काजल पर (रखने से) वह काला दिखायी देता है; अथवा बालों पर (रखने से) जान पड़ता है कि उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। ३६ अस्तु। हे यशोदा माता, अब इसकी क्या (-क्या) बातें कहूँ। सुनने पर चित्त को वैराग्य अनुभव होने लगता है। री सखी, मुझसे प्रेम रोका नहीं जाता। ३७ किसी एक ने कहा— 'यह बड़ा नाटकिया (बहुरूपिया) है, तेरा यह पुत्र बड़ा नाटकिया है। अरी, यह मिथ्या तथा अद्भुत बातें करना आरम्भ करता है। ३८ जितनी बातें कहीं, वे सब मिथ्या (अर्थहीन) प्रलाप ही हैं। वह अद्भुत (असम्भव) क्रिया-कर्म-परम्परा अपनी (की हुई) बताता है। ३९ पूर्वकाल में जो(-जो) अवतार हो गये, उन्हें वह बलात (झूठमूठ) अपने ही (धारण किये हुए) बताता है। अरी मैया, यह जो-जो बोलता है, उतना (सब) मिथ्या मृगजल है। २४० अरी, मटके में पानी देखकर तुम्हारे (जिस) पुत्र को भय लगता है, वह वस्तुतः प्रलय-समुद्र में मत्स्य कैसे हो गया (होगा)! । २४१ थपकियाँ लगाते हुए सुलाते रहने पर (जो) जगत्श्रेष्ठ (श्रीकृष्ण) कहता है— मेरी पीठ पर हौले (-हौले) ही थपथपाओ, वह बताता है— मैंने झट से मन्दर पर्वत को पीठ पर धारण कर दिया था। ४२ इससे गेंद को भी झट से

म्हणे म्यां दाढेवरी धरिलें धरेतें। पृथ्वी रक्षिली म्यां अनंतें। वराहवेषें म्हणतसे। ४३ आंगडियाचा कसा सोडितां। म्हणे नखें दुखतीं माझीं आतां। आणि म्हणतो असुर तत्त्वतां। विदारिला निजहस्तें। ४४ शिकें यासी न पवे वहिलें। तो म्हणतो ब्रह्मांड नखें भेदिलें। जान्हवीजळ काढिलें। त्रिविक्रम होऊनियां। ४५ मारूं जातां शिपटी। भेणें पळतो जगजेठी। तो म्हणतो तीन सप्तकें सृष्टी। निःक्षत्री म्यां केली हो। ४६ इक्षु न मोडे यास जाण। म्हणतो मोडिलें भवसायकासन। जो पळतो बागुलाच्या भेणें। सांगे रावण मारिला म्यां। ४७ मागील गोष्टी मिथ्या सर्व। आतां मारीन म्हणतो कंसराव। दावितो अवताराचा भाव। निजांगींच आपुल्या। ४८ उडत उडत होय मासा। म्हणे हा मत्स्यावतार ऐसा। अर्भक पायीं धरूनि ऐसा। शंखासुर हाचि पैं। ४९ चक्रवत फिरे घननीळ। म्हणे ऐसा भ्रमविला मंदराचल। खडे घेऊनि तत्काळ। म्हणे रत्नें काढिलीं। २५० दांतांवरी काडी धरूनी। वस्त्रघडी त्यावरी ठेवूनी। म्हणे

नहीं उठाया जाता; (फिर भी) वह कहता है— मैंने पृथ्वी को (अपनी) दाढ़ पर धारण किया था। वह कहता है— मैंने अनन्त ने वराह-वेश से (वराह रूप धारण करके) पृथ्वी की रक्षा की थी। ४३ अंगरखे के बन्द को छुड़ाते (-छुड़ाते) यह कहता है, 'अब मेरे नख दुखने लगे हैं' और (वही अब) कहता है— 'मैंने अपने हाथ से (हिरण्यकशिपु नामक) असुर को विदीर्ण कर डाला था'। ४४ इसे पहले छींका (तक) प्राप्त नहीं हो जाता (हाथ आता); (फिर भी) वह कहता है, मैंने (अपने) नख से ब्रह्माण्ड को भेद डाला और त्रिविक्रम होकर गंगाजल निकाला। ४५ छड़ (से) मारने लगने पर यह जगत्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भय से भाग जाता है; (फिर भी) वह कहता है, मैंने सृष्टि को इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर डाला। ४६ समझ लो, इससे ईख नहीं टूट जाता (तोड़ा जाता); (फिर भी) यह कहता है— मैंने शिवजी के धनुष को तोड़ डाला। जो हौए से भय-पूर्वक भाग जाता है, वह कहता है— मैंने रावण को मार डाला। ४७ पिछली (ये) समस्त बातें झूठी हैं; (फिर भी) कहता है— अब कंसराज को मार डालूँगा। वह अपने ही शरीर में अवतार का भाव प्रदर्शित करता है। ४८ वह उड़ते-उड़ते (मानो) मत्स्य बन जाता है और कहता है— ऐसा है यह मत्स्यावतार। किसी शिशु को पाँवों से पकड़कर कहता है —यही ऐसा शंखासुर है। ४९ घननील कृष्ण चक्रवत् (चक्र की भाँति) घूमता है और कहता है— मैंने मन्दर पर्वत को इस प्रकार घुमा दिया; फिर तत्काल कंकड़ लेकर कहता है— मैंने (ऐसे) रत्न निकाल लिये। २५० दाँतों पर तिनका रखकर और उसपर तह किया हुआ वस्त्र रखकर वह कहता है— मैंने पृथ्वी को (ऐसे) धारण किया। (फिर) वह शूकर

म्यां असे धरिली अवनी। दावी रांगोनी सूकर ऐसा। २५१ बाहुल्याचें पोट फोडी। म्हणे हिरण्यकश्यपाचीं काढितों आंतडीं। पोरें पळती तांतडीं। भिती देखोनि तयातें। ५२ गुडघे टेंकूनि होय वामन। म्हणे म्यां त्रिपद घेतलें भूमिदान। एका पोरावरी उभा राहोन। म्हणे बळी पाताळीं घालितों। ५३ करीं घेऊनि कंदुक। म्हणे हेंचि माझें फरश देख। निःक्षत्री करीन धरणी सकळिक। म्हणोनि हिंडे सैराचि। ५४ चुईचें धनुष्य करूनी। हरि ठाण मांडी मेदिनीं। आकर्ण ओढी ओढूनी। मारीन म्हणे राक्षसां। ५५ घडिभर घेतो मुरली। ऐकतां आमुची वृत्ति मुराली। अहंकृति समूळ हरली। गातो वनमाळी सुंदर। ५६ ऐकें यशोदे जननी। अवघो लटकीच याची करणी। आम्हांवरी इटाळी घेऊनी। नसतीच उठतो गे। ५७ याची गोष्ट न मानींच खरी। परम चक्रचाळक मुरारी। याच्या भेणें निर्धारी। जावें टाकूनि गोकुळ। ५८ यशोदा म्हणे अनंता। सोसूं किती खोडी आतां। क्षणभरी पाय तत्त्वतां। घरीं तुझा न राहे। ५९ परघरीं मी न करीं चोरी। म्हणवोनि आण वाहें मुरारी। तुज मी बांधीन हृदयमंदिरीं। ना सोडींच

(वराह) जैसा घुटनों के बल चलकर दिखाता है। २५१ वह गुड्डे का पेट फोड़ता (चीरता) है और कहता है— मैं (अब) हिरण्यकशिपु की अँतड़ियाँ निकाल ले रहा हूँ। तो बच्चे झट से भाग जाते हैं। वे उसे देखकर डर जाते हैं। ५२ वह घुटने टेककर वामन हो जाता है और कहता है— मैं तीन पद भूमि दान में ली। (फिर) किसी एक बच्चे पर खड़ा होकर कहता है— मैं (अब) बलि को पाताल में धकेल देता हूँ। ५३ हाथ में गेंद लेकर वह कहता है— देखो, यही मेरा परशु है। 'मैं समस्त धरती को क्षत्रियहीन कर दूँगा' कहते हुए चारों ओर घूमने लगता है। ५४ तीली का धनुष बनाकर (यह) कृष्ण भूमि पर जमकर बैठ जाता है; (फिर धनुष की डोरी) कानों तक खींचते हुए कहता है— मैं राक्षसों को मार डालूँगा। ५५ घड़ी भर वह मुरली लेता है (और बजाने लगता है)। उसे सुनते ही हमारी (सांसारिक) वृत्ति दब गयी; हमारा अहंकार मूल-सहित नष्ट हो गया। (सचमुच) वनमाली (कृष्ण) सुन्दर गाता है। ५६ री यशोदा माता, सुन लो— इसकी समस्त करनी मिथ्या (केवल दिखावटी) है। हम पर झूठा आरोप लगा लेता है। ५७ इसकी बात को सच्ची मानो ही मत। यह मुरारि (कृष्ण) परम (माया-) चक्रचालक है। इसके डर से निश्चय ही गोकुल छोड़कर चले जाएँ। ५८ (यह सुनकर) यशोदा बोली, 'अरे अनन्त, अब (तेरा) कितना उपद्रव सहन करूँ ? तेरे पाँव सचमुच क्षण भर (के लिए भी) घर में नहीं (धरे) रहते'। ५९ रे मुरारि, 'दूसरे के घर मैं चोरी नहीं करता' कहकर सौगन्ध ले ले।

सर्वथा । २६० पहा हरिविजयग्रंथ । हाचि त्र्यंबकराज उमाकांत । भावसिंहस्थीं यात्रा येत । त्यासी जगन्नाथ नुपेक्षी । २६१ कीं ब्रह्मगिरी हाचि ग्रंथ । जो पारायणप्रदक्षिणा करीत । त्याचे बंध समस्त । जन्मोजन्मींचे तुटती । ६२ ब्रह्मानंदकृपामेघ सुरवाडे । हें हरिविजयक्षेत्र वाढे । श्रीधर म्हणे निवाडे । अर्थ सज्जनीं पाहिजे । ६३ इति श्रीहरिविजयग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । चतुर श्रोते परिसोत । सप्तमाध्याय गोड हा । २६४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

मैं तुझे हृदय-मन्दिर में (घर के अन्दर) बाँध (कर रख) दूँगी, बिलकुल नहीं छोड़ूँगी । २६०

देखिए, यही (श्री) हरि-विजय नामक ग्रन्थ (मानो) त्र्यम्बकराज उमाकान्त (शिवजी) है । भक्तिभाव-रूपी सिंहस्थ का मेला (निकट) आ गया है । श्रीजगन्नाथ उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे । २६१ अथवा यही ग्रन्थ ब्रह्मगिरि है । इसके पारायण स्वरूप में इसकी जो परिक्रमा करता है, उसके जन्म-जन्म के समस्त बन्धन टूट जाते हैं । ६२ गुरु ब्रह्मानन्द की कृपा सानुकूल मेघ हैं । उनके बरसने से (अर्थात गुरु ब्रह्मानन्द की कृपा से) यह 'श्रीहरि-विजय' (ग्रन्थरूपी) क्षेत्र विकसित हो रहा है । श्रीधर (कवि) कहते हैं— (सन्त-) सज्जनों को इसके अर्थ का निर्णय करना चाहिए । ६३

। इति । श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (श्री) हरिवंश (नामक पुराण) और (श्रीमद्-) भागवत (पुराण) से सम्मत है । चतुर श्रोता उसके इस मधुर सातवें अध्याय का श्रवण करें । २६४

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—८

बालकृष्ण-लीला

श्रीगणेशाय नमः । श्रीविठ्ठलाय नमः । ज्याचें करितां स्मरण । तुटे जन्मसंसारबंधन । प्रकाशे पूर्ण आत्मज्ञान । जाय निरसोन देहबुद्धि । १ ज्याची ऐकतां लीलाकथा । निरसे समूळ मोहममता । निर्दोष पद ये हाता ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीविट्ठलाय नमः । जिनका स्मरण करने से जन्म सम्बन्धी सांसारिक बन्धन टूट जाते हैं (और साधक के) हृदय में पूर्ण आत्मज्ञान प्रकाश को प्राप्त हो जाता है अर्थात प्रकट हो जाता है, देह सम्बन्धी आसक्ति नष्ट हो जाती है, जिनकी लीलाओं की कथा को सुनने

श्रवण करितां वर्णितां हो। २ जो विश्वबीज विश्वालय। जो क्षीराब्धि-तनयेचा परम प्रिय। जो निर्विकार अज अव्यय। जो सच्चिदानंदघनतनु। ३ श्रोता आणि वक्ता। साहित्यकथा कविता। श्रवणअर्थबोधकर्ता। जगन्नाथा तूंचि सर्व। ४ भीमातीरवासा पंढरीनाथा। पुढें बोलें हरिविजयग्रंथा। तुझी अद्‌भुत लीला समर्था। तूंचि बोलें रसाळ। ५ मी केवळ मतिमंद आळसी। मजहातीं हा ग्रंथ करविसी। जरी सकळ साहित्य पुरविसी। तरीच रसीं ग्रंथ चढे। ६ मागें सप्तमाध्यायाचे अंतीं। गाऱ्हाणें गौळिणी सांगती। दशावतारांची लीलारीती। दाविली गति अद्‌भुत। ७ आपुली लीला वर्णिली भगवंतें। परी ते मिथ्या वाटे गोपिकांतें। तीं दशावतार-चरित्रें अद्‌भुतें। गोपींनीं सांगितलीं यशोदे। ८ म्हणती यशोदे सुंदरी।

से मोह और ममता मूल-सहित नष्ट हो जाती है, (जिनकी लीलाओं की कथा का) श्रवण तथा वर्णन करने से विशुद्ध (मुक्ति) पद हाथ आता है, जो विश्व के बीज हैं, विश्व के (लिए आश्रय देनेवाले) घर हैं, जो क्षीर-सागर की कन्या लक्ष्मी[1] के परम प्रिय (पति) हैं, जो निर्विकार, अजन्मा तथा अव्यय (अक्षय ब्रह्म) हैं, जो सत, चित और आनन्द के घन-स्वरूप (नीलवर्ण से युक्त) शरीर धारण करनेवाले हैं, वे भगवान विष्णु ही आप पण्ढरीनाथ विट्ठल हैं। १-३ हे जगन्नाथ, श्रोता और वक्ता, साहित्य-कथा-कविता के रचयिता, उसका श्रवण और अर्थ का बोध कर देनेवाले —सब (कुछ) आप ही हैं। ४ हे भीमा नदी के तट पर निवास करनेवाले पण्ढरीनाथ श्रीविट्ठल, श्रीहरि-विजय (नामक इस) ग्रन्थ को आगे कहिए— मेरे द्वारा उसकी रचना कराइए। हे समर्थ (भगवान), आपकी लीला अद्‌भुत है; आप ही रसात्मक (अर्थात रसमयी मधुर श्रीहरि-) कथा कहिए। ५ मैं पूर्णतः मन्द-मति और आलसी हूँ; (फिर भी) आप मेरे हाथों यह ग्रन्थ प्रस्तुत करा रहे हैं। यदि आप समग्र सामग्री को सम्भरित करें, तो ही यह ग्रन्थ (काव्य-) रस में (आगे) बढ़ जाएगा (अधिकाधिक रसमय बन जाएगा)। ६ इससे पहले सातवें अध्याय के अन्त में (यह कहा जा चुका है कि) गोपियों ने (कृष्ण के बारे में यशोदा से) शिकायतें कीं (कृष्ण के दोषों-अपराधों का वर्णन कर कहा और कहा कि) उन्होंने (कृष्ण ने) दसों अवतारों की अद्‌भुत लीलाओं की रीति और स्थिति-गति प्रदर्शित की। ७ (इस प्रकार) भगवान (कृष्ण अर्थात विष्णु) ने अपनी लीला का वर्णन किया; फिर भी गोपियों को वह मिथ्या (झूठी) जान पड़ी। उन गोपियों ने यशोदा से (कृष्ण द्वारा बनाये हुए) दस अवतारों

[1] क्षीरसागर-कन्या— जब देव और दानव क्षीरसागर को मथ रहे थे, तो उसमें से लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ। अतः लक्ष्मी को क्षीरसागर की कन्या कहते हैं। भगवान विष्णु ने लक्ष्मी को पत्नी रूप में स्वीकार किया।

बहु खोडी करितो मुरारी। याचीं गाऱ्हाणीं वर्णितां वक्त्रीं। शेषही भागे जाण पां। ९ गोपी म्हणती यशोदे सती। तूं व्रत घेईं संकष्टचतुर्थी। गणेश गुण देईल याप्रती। निश्चयेंसीं जननीये। १० गणेश देईल उत्तम गुण। मानीं आमुचें वचन प्रमाण। यशोदा म्हणे अवश्य करीन। संकष्टचतुर्थीव्रत आतां। ११ गजवदनासी म्हणे यशोदा। गुण देईं माझिया मुकुंदा। संकष्टचतुर्थी सर्वदा। न सोडीं मी जाण पां। १२ वचन ऐकोनि कृष्णनाथें। सत्य करावया गणेशातें। खोडी नाहीं केली अनंतें। एकमासपर्यंत। १३ यशोदा म्हणे आली प्रचीती। धन्य धन्य देव गणपती। तों सवेंचि आली चतुर्थी। संकटहर्त्री सर्वांचें। १४ इंदिराबंधूचा उदय होय। तंववरी यशोदा उपवासी राहे। पूजासामग्री लवलाहें। करी माय सिद्ध तेव्हां। १५

के वे अद्‌भुत चरित कह दिये। ८ (फिर) वे बोलीं, 'अरी सुन्दरी यशोदा, यह मुरारि (कृष्ण) बहुत छेड़छाड़ करता है; समझ लो, अपने (सहस्र) मुखों से इसके दोषों-अपराधों का वर्णन करते-करते शेष (नाग) भी थक जाता है'। ९ गोपियों ने (और भी) कहा, 'अरी सती यशोदा, तुम संकष्ट चतुर्थी का व्रत रख लो। अरी माँ, तो गणेशजी निश्चय ही इसे (अभीष्ट रूप से प्रभावित करते हुए) गुण (फल) प्रदान करेंगे। १० गणेशजी (उस व्रत के फलस्वरूप) इसे उत्तम गुण प्रदान करेंगे। हमारी इस बात को प्रमाण (सत्य) समझो।' (इसपर) यशोदा ने कहा, 'मैं अब संकष्ट चतुर्थी का व्रत अवश्य रखूँगी'। ११ (तदनन्तर) यशोदा ने गणेशजी से कहा, 'मेरे इस (पुत्र) मुकुन्द को अभीष्ट फल प्रदान करो (दोष-रहित बना दो), तो समझो कि मैं संकष्ट चतुर्थी (का व्रत) बिलकुल नहीं छोड़ूँगी'। १२ अनन्त कृष्णनाथ ने इस बात को सुनने पर, गणेशजी को सत्य सिद्ध करने के हेतु, एक मास तक कोई छेड़छाड़ नहीं की। १३ तो यशोदा ने कहा (मान लिया— अब अनुभव हो आया— विश्वास हो गया)! देव गणेशजी धन्य हैं, धन्य हैं। तब साथ ही (शीघ्र ही) सबके संकटों का हरण करनेवाली (संकष्ट) चतुर्थी आ गयी। १४ लक्ष्मी के बन्धु चन्द्रमा[1] का उदय हो गया; तब तक यशोदा निराहार रह गयी थी। (फिर) तब माता (यशोदा) ने झट से पूजा की सामग्री सजा ली। १५ उसने शर्करा-मिश्रित (शक्कर मिलाये हुए) बड़े-बड़े इक्कीस मीठे लड्डू, विशिष्ट (प्रकार के) 'सिद्ध' लड्डू[2] और अनेक मोदक बना

१ लक्ष्मी-बन्धु चन्द्रमा— देवों-दानवों ने जब अमृत की प्राप्ति के लिए क्षीरसागर का मन्थन किया, तब उसमें से लक्ष्मी और चन्द्रमा भी निकल आ गये। इस दृष्टि से चन्द्रमा लक्ष्मी का बन्धु माना जाता है।

२ सिद्ध लड्डू— संकष्ट चतुर्थी के व्रत के समापन में गणेशजी को भोग चढ़ाने के लिए गेहूँ के विशिष्ट प्रकार के मोटे आटे से बनाये हुए लड्डू।

थोर थोर लाडू एकवीस। शर्करामिश्रित केले सुरस। सिद्धलाडू विशेष। आणि बहुवस मोदक ते। १६ ऐसा नैवेद्याचा भरून हारा। माता नेऊन ठेवी देव्हारां। तों उदय जाहला निशाकरा। पडिला अंबरीं प्रकाश। १७ मातेसी म्हणे हृषीकेशी। लाडू मज कधीं देसी। माता म्हणे गजवदनासी। नैवेद्य दावून देईन। १८ आणिक धूप दीप सामग्री। माता आणूं गेली बाहेरी। देव्हारियाजवळी श्रीहरी। एकलाचि उभा होता। १९ एकांत देखोनि ते वेळां। श्रीकृष्णें हारा उचलिला। नैवेद्य सर्वही स्वाहा केला। क्षणमात्र न लगतां। २० मौनेंच करूनि सर्व ग्रास। उगाच बैसला जगदीश। श्रीवैकुंठपुरविलास। लीला भक्तांस दावीत। २१ धूप दीप घेऊनि त्वरित। माता आली सदनांत। तों रिताचि देखिला हारा तेथ। देव्हारियावरी पडियेला। २२ विस्मय मायेसी वाटला। म्हणे रे कृष्णा घननीळा। नैवेद्य अवघा काय झाला। हारा पडिला रिता कां। २३ श्रीकृष्ण म्हणे वो माते। सत्य मानीं वचनातें। एक सहस्र उंदीर येथें। आले होते आतां हो। २४ त्यांत एक थोरला मूषक। त्यावरी बैसला विनायक। सोंडेनें लाडू सकळिक। एकाएकीं आकर्षिले। २५ सर्वांगीं चर्चिला शेंदूर। सोंड हालवी भयंकर।

लिये। १६ नैवेद्य (भोग) का ऐसा टोकरा भरकर उस (माता यशोदा) ने गर्भगृह (देवघरे) में रख दिया; तब चाँद उदय को प्राप्त हो गया, तो आकाश में प्रकाश फैल गया। १७ उस समय हृषीकेशी अर्थात कृष्ण माता से बोले, 'मुझे लड्डू कब दोगी ?' तो माता ने कहा, 'गणेशजी को भोग चढ़ाकर दे दूँगी'। १८ और वह धूप, दीप तथा अन्य सामग्री लाने के लिए बाहर गयी। श्रीहरि गर्भगृह के पास अकेले ही खड़े थे। १९ उस समय एकान्त देखकर श्रीकृष्ण ने टोकरा उठा लिया और क्षण न लगते सभी नैवेद्य को (निगलकर) खा डाला। २० चुपचाप ही सब खाकर जगदीश चुप ही बैठ गये। श्रीवैकुण्ठपुर-विलासी भगवान (इस प्रकार अपने) भक्तों को लीला दिखा रहे थे। २१ धूप, दीप लेकर माता यशोदा (जब) झट से घर में (गर्भगृह में) आ गयी, तो उसने वहाँ उस टोकरे को रिक्त (हुआ) देखा। वह देवघरे पर पड़ा हुआ था। २२ (यह देखकर) माता को अचरज अनुभव हुआ। वह बोली, 'अरे घननील कृष्ण, समस्त नैवेद्य (का) क्या हुआ ? यह टोकरा रीता क्यों पड़ा हुआ है'। २३ (इसपर) श्रीकृष्ण बोले, 'अरी माँ, मेरी बात को सच समझो, अरी, अभी यहाँ एक सहस्र चूहे आ गये थे। २४ उनमें एक बड़ा चूहा था। उसपर विनायक (श्रीगणेश) बैठे हुए थे। उन्होंने (अपनी) सूँड़ से यकायक समस्त लड्डू खींच लिए। २५ उनके समस्त बदन में सिन्दूर विलेपित था; वे (अपनी) सूँड़ को भयावह रूप से हिला रहे थे। उनका पेट डरावना था। उन्हें देखकर मैं वहुत भयभीत हो

उदर त्याचें भ्यासुर। देखोनि थोर भ्यालों मी। २६ बोबडी वळली वदनीं। न बोलवे माझेनि जननी। क्षुधा लागली मजलागूनी। लाडू देईं सत्वर। २७ जननी बोले क्रोधायमान। उघडूनि दावीं तुझें वदन। जगन्निवास करी रुदन। दीन वदन करूनियां। २८ लाडू होते बहुत। कैसे जातील माझिया मुखांत। विचार करूनि निश्चित। मग मज शिक्षा करीं वो। २९ गणेश गेला लाडू घेऊन। मजवरी आलें विहरण। माता म्हणे वदन उघडून। दावीं मज मुकुंदा। ३० हरि म्हणे मारूं नको माते। उघडूनि दावितों वदनातें। मातेपुढें वैकुंठनाथें। मुख पसरूनि दाविलें। ३१ तों ब्रह्मांड देखिलें संपूर्ण। वैकुंठ कैलास आदिकरून। असंख्य दिसती गजवदन। जननी पाहोन तटस्थ। ३२ कृष्णमुखांतून गजवदन। मातेसी म्हणे ऐक वचन। हा देवाधिदेव सनातन। तुझें उदरीं अवतरला। ३३ आम्ही समस्तही देव। या श्रीकृष्णाचे अवयव। पूर्णब्रह्मानंद केशव। भजें यासी जननीये। ३४ यशोदा जाहली समाधिस्थ। अहंकृति विराली समस्त। आप आपणा विसरत। लीला अद्भुत देखोनि। ३५ नेत्र उघडोनि सर्वेचि

गया। २६ मेरी बोलती बन्द हो गयी। अरी माँ, मुझसे बोला नहीं गया। (अब) मुझे भूख लगी है, झट से लड्डू दे दो'। २७ तो क्रोधायमान होकर जननी (यशोदा) बोली, 'अपना मुँह खोलकर दिखा दे।' (इसपर) मुँह को दीन बनाते हुए जगन्निवास कृष्ण रोने लगे। २८ (वे बोले—) 'लड्डू तो बहुत थे। वे मेरे मुँह में कैसे जाएँगे ? अरी, निश्चित (पूरा-पूरा) विचार करके फिर मुझे दण्ड दे दो। २९ (उधर) गणेशजी लड्डू लेकर चले गये (और इधर) मुझपर (झूठा) दोषारोप आ गया।' (फिर) माँ बोली, 'अरे मुकुन्द, मुँह खोलकर मुझे दिखा दे'। ३० (इसपर) कृष्ण ने कहा, 'माँ, मुझे मत मारो, मैं मुँह खोलकर दिखा देता हूँ।' (और) वैकुण्ठनाथ (कृष्ण) ने माँ के सामने मुँह खोलकर दिखा दिया। ३१ तो (यशोदा ने) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा। (उसमें) असंख्य वैकुण्ठ, कैलास आदि (स्थान तथा), गणेशजी दिखायी दे रहे थे। (यह) देखकर माता चकित हो गयी। ३२ (फिर) कृष्ण के मुँह में से गजाननजी माँ से बोले, '(मेरी) बात सुन लो। ये तो सनातन देवाधिदेव (देवों के देव) तुम्हारे उदर से अवतरित हो गये हैं। ३३ हम सभी देव इन श्रीकृष्ण के अंग (मात्र) हैं; (अकेले ये) केशव (अर्थात श्रीकृष्ण) पूर्ण आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं। हे माता, इनकी भक्ति करो'। ३४ (यह सुनकर) यशोदा समाधिस्थ हो गयी (अर्थात ब्रह्म-ध्यान में पूर्णतः लीन हो गयी)। उसका समस्त देहाभिमान नष्ट हो गया। उस अद्भुत लीला को देखकर वह अपने आपको भूल गयी। ३५ साथ ही (तत्क्षण) उसने आँखें खोलकर देखा, तो (दिखायी दिया कि) सामने कृष्ण खड़े हैं,

पाहे। तो कृष्ण पुढें उभा आहे। म्हणे लाडू देईं जननीये। क्षुधा बहुत लागली। ३६ माता सद्‍गदित होवोन। कृष्ण कडिये घेतला उचलोन। हरि सांगाते घेऊन। करी भोजन यशोदा। ३७ एकदां बळिभद्र चक्रपाणी। खेळत असतां आंगणीं। कृष्णें मृत्तिका घेऊनी। आपुल्या वदनीं घातली। ३८ बळिराम म्हणे हृषीकेशी। आतां सांगतों मातेपाशीं। म्हणोनि संकर्षण वेगेंसीं। मंदिरांत प्रवेशला। ३९ मग म्हणे जननीसी। मृत्तिका भक्षितो हृषीकेशी। मग ते शिपटी घेऊनि वेगेंसीं। हरीपासी पातली। ४० कृष्णास बोले दटावून। म्हणे मुख दावीं उघडून। तों भयभीत जगज्जीवन। दीन वदन करी तेव्हां। ४१ जननी मारील म्हणोन। वर हस्त करी जगज्जीवन। माते बळिराम येऊन। लटकेंच सांगे तुजपासीं। ४२ याचे मनींचा भाव पूर्ण। कीं मज तुवां करावें ताडन। पाहें जननी माझें वदन। कैसी मृत्तिका भक्षिली। ४३ मुख हरीनें पसरिलें। तों ब्रह्मांड सकळ देखिलें। हा पूर्णब्रह्म ऐसें ओळखिलें। यशोदेनें निजमनीं। ४४ असो एके दिनीं कमलोद्भव-पिता। स्फटिकभूमींत खेळतां। लीला दाविली ते आतां। सादर ऐका भाविक हो। ४५ स्फटिकभूमींत प्रतिबिंब। घननीळें देखिलें स्वयंभ।

(और) कह रहे हैं— माँ, लड्डू दे दो, बड़ी भूख लगी है। ३६ तो बहुत गदगद होकर माता यशोदा ने कृष्ण को उठाकर गोद में लिया और उन्हें साथ में लेकर भोजन किया। ३७ एक बार बलभद्र और चक्रपाणि श्रीकृष्ण आँगन में खेल रहे थे, तो श्रीकृष्ण ने मिट्टी लेकर अपने मुँह में डाल दी। ३८ (यह देखकर) बलराम बोले, ‘ अरे कृष्ण, अब मैं माँ को बताता हूँ। ’ ऐसा कहते हुए संकर्षण अर्थात बलराम वेगपूर्वक घर में प्रविष्ट हो गये। ३९ फिर वे माँ से बोले, ‘ कृष्ण मिट्टी खा रहा है। ’ तब वह छड़ लेकर झट से कृष्ण के पास आ पहुँची। ४० वह डाँटते हुए कृष्ण से बोलने लगी। उसने कहा— ‘ मुँह खोलकर दिखा दे। ’ तो तब जगज्जीवन कृष्ण ने भयभीत होकर अपना मुँह आकुल-व्याकुल बना लिया। ४१ (अब) माता मारेगी, इस (डर) से (अपने को बचाने के हेतु) जगज्जीवन कृष्ण ने हाथ ऊपर उठा लिये (और कहा—) ‘ माँ, बलराम तुम्हारे पास आकर झूठमूठ ही कह देता है। ४२ इसके मन में यह पक्का हेतु है कि तुम मुझे पीट लो। अरी माँ, देखो मेरा मुख, मैंने मिट्टी कैसे खायी (होगी) ’। ४३ (फिर) कृष्ण ने मुँह खोला, तो उसने (उसके अन्दर) समस्त ब्रह्माण्ड देखा। (फलस्वरूप) यशोदा अपने मन में पहचान (समझ) गयी कि ये पूर्णब्रह्म हैं। ४४

अस्तु। एक दिन ब्रह्मा के पिता भगवान विष्णु के अवतार ने स्फटिक-भूमि में खेलते हुए (जो) लीला प्रदर्शित की, उसे हे श्रद्धालु जनो (भक्तो), अब सुनिए। ४५ घननील कृष्ण ने उस स्फटिक-भूमि में अपना

मातेसी म्हणे निजभक्तवल्लभ। मज काढूनि देईं तें। ४६ तों हांसोनि बोले माता। ते न ये हरि काढितां। ऐसे ऐकतांचि जगत्पिता। लोळणी तेव्हां घालीत। ४७ गडबडां लोळे धरणीं। म्हणे प्रतिबिंब दे काढूनी। नाना प्रकारें सभजावी जननी। परी रडतां न राहे। ४८ दिधलीं बहुत खेळणीं। परी तीं न घे चक्रपाणी। घातला पाळणां नेऊनी। परी कदापि न राहे। ४९ माता म्हणे श्रीहरी। नीज घेईं तूं क्षणभरी। प्रतिउत्तर दे पूतनारी। निजस्वरूपीं मीच असे। ५० माया म्हणे किती रडतोसी। गोष्टी गोड सांगे मजसी। हरि म्हणे बोलावयासी। दुसरेपण दिसेना। ५१ ऐसे रडतां करी बोल। परी समजेना तमाळनीळ। तैसाचि सोडून भक्तवत्सल। माय गेली स्वकार्या। ५२ तों कार्यप्रसंगें त्या अवसरीं। राधा येत यशोदेच्या मंदिरीं। तों पालखामाजी जगदुद्धारी। रडतां देखिला तियेनें। ५३ म्हणे कां रडसी रे चावटा। गोष्टी सांगसी कीं अचाटा। ऐसें बोलोनि देववरिष्ठा। कडेवरी घेतलें। ५४ तों राहिला उगाच रडतां। माय म्हणे ऐक राधे

स्वाभाविक रूप से अंकित प्रतिबिम्ब देखा, तो वे अपने भक्तों के प्रिय कृष्ण माता से बोले, 'निकालकर यह मुझे दे दो'। ४६ तब माता हँसकर बोली, 'अरे हरि, यह नहीं निकाला जा सकता।' तब ऐसा सुनते ही जगत्पिता कृष्ण भगवान लोटने-पोटने लगे। ४७ वे भूमि पर बड़ी तेजी से लोट-पोट रहे थे और बोले, 'यह प्रतिबिम्ब निकालकर दे दो।' माता उन्हें नाना प्रकार से समझा रही थी, फिर भी वे रोते नहीं रुक रहे थे। ४८ उसने बहुत खिलौने दिये, फिर भी चक्रपाणि उन्हें नहीं ग्रहण कर रहे थे। तो उसने उन्हें ले जाकर पालने में लिटा दिया, परन्तु वह बिलकुल चुप नहीं रह रहा था। ४९ (तब) माता बोली, 'श्रीहरि, तू क्षण भर नींद ले'? तो पूतना के शत्रु कृष्ण ने प्रत्युत्तर दिया, 'मैं निज-स्वरूप ही में हूँ— अर्थात स्वतःसिद्ध हूँ'। ५० माता बोली, 'तू कितना रो रहा है? मुझे मीठी(-मीठी) बातें बता दे।' (इसपर) कृष्ण बोले, '(जिससे मैं बोल सकूँ ऐसा) कोई दूसरा मुझे नहीं दिखायी दे रहा है'। ५१ रोते-रोते वे तमालनील कृष्ण ऐसी बातें कह रहे थे; फिर भी वे समझाये-बुझाये जाने पर भी समझ नहीं रहे थे— अर्थात रोना बन्द नहीं कर रहे थे। (अतः) भक्त-वत्सल कृष्ण को वैसे ही (रोते) छोड़कर माता अपने काम करने के लिए चली गयी। ५२ तब किसी काम के निमित्त उस समय राधा यशोदा के घर आ गयी। उसने जगदुद्धारक कृष्ण को पालने में रोते देखा। ५३ वह बोली, 'अरे नटखट, रो क्यों रहा है? अद्भुत बातें तो कहता है।' इस प्रकार बोलते हुए उसने देवश्रेष्ठ कृष्ण को गोद में लिया। ५४ तब वे रोते-रोते चुप हो गये। (यह देखकर) माता यशोदा बोली, 'राधा, अब सुन लो। कृष्णनाथ

आतां। नेईं घरासी कृष्णनाथा। येथें रडतां न राहे। ५५ राधा म्हणे भुवनसुंदरा। चाल आतां माझ्या मंदिरा। कडिये घेवोनि विश्वोद्धारा। राधा त्वरें चालिली। ५६ डोल्हारियावरी नेऊनी। बैसविला कैवल्यदानी। तों भ्रतार नव्हता सदनीं। असे गौळवाड्यां सदा तो। ५७ तों राधेची सासू म्हातारी। तीही नसे कदा घरीं। सदा राहे घोषमंदिरीं। दधिमंथना-कारणें। ५८ असो घरीं एकांतीं राधा। हालवी डोल्हारां वेदवंद्या। तिचिया स्वरूपाची मर्यादा। कोणासही न वर्णवे। ५९ जैसा कां इंदु संपूर्ण। तैसें राधेचें सुहास्यवदन। नासिक सरळ शोभायमान। आकर्ण-नयन सुरेख ते। ६० कर्णीं जडित ताटंकें। अत्यंत तळपती सुरेखें। नक्षत्रपुंजांसारिखे। मुक्ताघोंस डोलती। ६१ जैसे कां हिरे तळपती। वदनीं तैशा द्विजपंक्ती। सकळ अलंकारांची दीप्ती। सदनामाजीं न समाये। ६२ असो ऐसी राधिका सुंदरा। डोल्हारां हालवी जगदुद्धारा। मग म्हणे यादवेंद्रा। तूं धाकुटा बहुत अससी। ६३ जरी असतासी निमासुर। तरी होता बरवा विचार। मग म्हणे व्रजराजकिशोर। थोर

को घर ले जाओ। यहाँ वह रोते चुप नहीं रह रहा है'। ५५ (यह सुनकर) राधा बोली, 'अरे भुवन-सुन्दर, अब मेरे घर चल।' (फिर) राधा विश्व के उद्धारक कृष्ण को गोद में लेकर झट से चल दी। ५६ राधा ने उन कैवल्य-दाता कृष्ण को ले जाकर झूले में बैठा लिया। तब उसका पति घर में नहीं था— वह नित्य ग्वालों की बस्ती में रहता था। ५७ राधा की सास बूढ़ी थी। तब वह भी कभी घर में नहीं रहती थी। वह दही मथने के निमित्त सदा गो-शाला में रहती थी। ५८ अस्तु। राधा घर पर एकान्त में झूले में वेद-वन्द्य श्रीकृष्ण को झुला रही थी। उस की सुन्दरता की सीमा का किसी भी द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता था। ५९ जैसे (पौर्णिमा का) चन्द्र सम्पूर्ण (गोलाकार) होता है, वैसे ही राधा का सुहास्य से युक्त मुख था। उसकी नासिका सीधी तथा शोभायमान थी; उसके (कानों तक फैले हुए अर्थात) विशाल नेत्र सुन्दर थे। ६० कानों में रत्न-जटित सुन्दर ताटंक जगमगा रहे थे; (उनमें) मोतियों के गुच्छे तारों के समूहों जैसे (चमकते हुए) झूम रहे थे। ६१ हीरे जैसे जगमगाते हैं, उसी प्रकार उसके मुख में दाँतों की (दोनों) पंक्तियाँ (जगमगाती) थीं। (उसके द्वारा पहने हुए) समस्त आभूषणों की दीप्ति (कान्ति) घर के अन्दर नहीं समा रही थी। ६२ अस्तु। ऐसी वह सुन्दरी राधा जगत के उद्धारक को पालने में (लिटाकर) झुला रही थी। फिर वह बोली, 'अरे यादवेन्द्र, तू तो बहुत नन्हा है। ६३ यदि तू तरुण होता, तो अच्छी बात हो जाती।' तब ब्रजराजकिशोर कृष्ण बोले, 'मैं अब बड़ा हो जाऊँगा'। ६४ (यह सुनकर) राधा

होईन आतां मी। ६४ गदगदां हांसे राधा। कैसा थोर होसी गोविंदा। ऐसें बोलतां ते मुग्धा। स्वरूप थोर धरियेलें। ६५ जो अनंतब्रह्मांडकर्ता। जो आदिमायेचा निजभर्ता। त्यासी थोर व्हावया अशक्यता। सहसाही नसेचि। ६६ निमासुर मुख सुंदर। जाहला वैकुंठींचा सुकुमार। राधा म्हणे हा ईश्वर। गोकुळामाजी अवतरला। ६७ सुखशेजे नित्य राधा। भोगीतसे परमानंदा। त्यजोनिया द्वैतभेदा। कृष्णरूपीं मीनली। ६८ तों तेच समयीं भ्रतार अनया। आला घृतकावडी घेऊनियां। वाड्यांत प्रवेशला लवलाह्यां। तों कपाट दिधलेंसे। ६९ अनया म्हणे राधेसी। द्वार उघडी वेगेंसी। कोणासीं बोलतेसी। गुजगोष्टी घरांत। ७० ऐकोनि भ्रताराचिया शब्दा। भयभीत जाहली राधा। मग म्हणे श्रीगोविंदा। लहान होईं सत्वर। ७१ माझी लाज राखीं आतां। पूर्ववत होईं मागुता। तंव तो मायाचक्रचाळिता। पांच वर्षांचा जाहला। ७२ ऐसें देखोनि ते अवसरीं। राधेचा हर्ष न माये अंबरीं। दहीभात आणूनि झडकरी। कृष्णापुढें ठेविला। ७३ भ्रतारासी म्हणे सुंदर। कृष्ण जेविताहे समोर। तुम्ही क्षण एक धरा धीर। द्वार आतां उघडितें। ७४ सवेंचि द्वार

खिलखिलाकर हँसने लगी। 'अरे गोविन्द, तू बड़ा कैसे होगा ?' —उस मुग्धा द्वारा ऐसा बोलते ही कृष्ण ने बड़ा रूप धारण किया। ६५ जो (वस्तुतः) अनन्त ब्रह्माण्डों के निर्माता हैं, जो आदिमाया के अपने पति हैं, उनके लिए बड़ा होने में कोई असम्भावना कदापि हो ही नहीं सकती। ६६ वैकुण्ठ के सुकुमार (स्वामी) तरुण तथा सुन्दर मुख से युक्त हो गये, तो (उन्हें इस रूप में देखकर) राधा बोली, 'ये ईश्वर (ही) गोकुल के अन्दर अवतरित हो गये हैं'। ६७ (तदनन्तर) राधा सुख-शय्या में परम आनन्द का नित्य भोग किया करने लगी। वह द्वैत भेदभाव का त्याग करके कृष्ण के रूप में लीन हो गयी। ६८ तब उसी समय अनय नामक उसका पति घी की काँवर लेकर आ गया। (जब) वह घर में प्रविष्ट हो गया, तो द्वार बन्द किया हुआ था। ६९ (फिर)अनय राधा से बोला, 'झट से दरवाज़ा खोलो। घर के अन्दर किससे प्रेम से गुह्य बातें कर रही हो'। ७० पति का शब्द (आवाज) सुनते ही राधा भयभीत हो गयी। फिर वह बोली, 'अरे श्रीगोविन्द, झट से छोटा हो जा। ७१ अब मेरी लाज रखना; फिर पूर्ववत (पहले जैसा) हो जा।' तब माया के चक्र को चलानेवाले श्रीकृष्ण पाँच वर्ष के (बालक) हो गये। ७२ ऐसा देखकर उस समय राधा का हर्ष गगन में नहीं समा रहा था। उसने झट से दही-भात लाकर कृष्ण के सामने रख दिया। ७३ (अनन्तर) वह सुन्दरी पति से बोली, 'सामने कृष्ण जीम रहा है। तुम एक क्षण धीरज धारण कर लो, अब द्वार खोलती हूँ'। ७४ साथ ही (तत्काल) उसने द्वार खोल

उघडिलें। तों देखिलें रूप सांवळें। अनयानें कृष्णास पुढें घेतलें। मुख चुंबिलें प्रीतीनें। ७५ अनया म्हणे राधेसी पाहीं। तुज न गमेचि निजगृहीं। कृष्णासी नित्य आणीत जाईं। खेळावया निजमंदिरा। ७६ याचें पाहतां श्रीमुख। अनंतजन्मींचें हरे दुःख। तुज काळ क्रमावया आणिक। कृष्णाविण असेना। ७७ राधा वंदी भ्रताराचे चरण। तुमची आज्ञा मज प्रमाण। मायेनें घरासी नेतां जगज्जीवन। करी रुदन आक्रोशें। ७८ ऐसें बहुत दिवस जाहलियावरी। गुजगुज उठली गोकुळाभीतरीं। कृष्ण राधेच्या घरीं। थोर होतो म्हणोनियां। ७९ एक म्हणती गोष्टी नोहे। लहानाचा थोर कैसा होय। एक म्हणती नवल काय। कृष्ण नाटकी बहु असे। ८० कोणी म्हणती सगुण। एक म्हणती निर्गुण। एक म्हणती गुणागुण। याचे ठायीं नाहींत। ८१ वेदांती यास ब्रह्म म्हणती। मीमांसक याचिलागीं कर्में करिती। सर्वकर्ता हाचि म्हणती। नैयायिक ययातें। ८२ सांख्यशास्त्र गर्जत। प्रकृतिपुरुष सांगत। तोचि हा कृष्णनाथ। गोकुळांत अवतरला। ८३ भाष्यकार शब्द साधून। याचिया नामाचा अर्थ करून।

दिया, तो अनय ने साँवले रूपधारी कृष्ण को देखा, उसे अपने पास ले लिया और प्रेम से उसके मुख को चूम लिया। ७५ (तदनन्तर) अनय ने राधा से कहा— 'देखो, तुम्हें अपने घर में अच्छा नहीं लगता। (इसलिए) कृष्ण को खेलने के लिए नित्य लाया करो। ७६ इसके श्रीमुख को देखने पर अनन्त जन्मों का दुख नष्ट हो जाएगा। (फिर) समय बिताने के लिए तुम्हें भी कृष्ण के अतिरिक्त और कोई नहीं है'। ७७ (यह सुनकर) राधा ने पति के चरणों का वन्दन किया (और कहा—) 'तुम्हारी आज्ञा मेरे लिए प्रमाण है।' (इधर) माता द्वारा घर ले लिए जाने पर जगज्जीवन कृष्ण चीख-चीखकर रुदन करते थे। ७८ बहुत दिन इस प्रकार हो जाने पर गोकुल के अन्दर यह किंवदन्ती फैल गयी कि राधा के घर कृष्ण बड़ा हो जाता है। ७९ कोई-एक कहतीं, 'ऐसी बात नहीं है। वह छोटे से बड़ा कैसे हो सकता है?' तो कोई-कोई कहतीं— 'इसमें क्या आश्चर्य है? कृष्ण तो बहुत नाटकिया है'। ८० कोई इसे सगुण (ब्रह्म) कहते हैं, तो कोई एक इसे निर्गुण (ब्रह्म) कहते हैं। कोई एक कहते हैं कि इसमें गुण और अगुण (गुणों का अस्तित्व और अभाव) नहीं है। ८१ वेदान्ती[1] इसे ब्रह्म कहते हैं, मीमांसक[2] इसी (की प्राप्ति) के लिए कर्म करते हैं; तो नैयायिक[3] इसके बारे में कहते हैं कि यही सबका कर्ता है। ८२ सांख्य शास्त्र[4] गरजते हुए (अपना मत) बताता है और इसे प्रकृति-पुरुष (मानते हुए इसके सम्बन्ध में अपना विचार) कहता है। वही (पुरुष) गोकुल में

१ से ६— दर्शन शास्त्र वह विज्ञान या शास्त्र है, जिसके अन्तर्गत प्राणियों को होनेवाले ज्ञान या बोध, समस्त तत्त्वों तथा पदार्थों के मूल, आत्मा, परमात्मा, जीव-जगत,

तेंचि शास्त्र व्याकरण। हरिगुण वर्णीतसे। ८४ योगसाधन पतंजली। साधून पाहती वनमाळी। ऋग्वेदीं कर्में स्थापिलीं। याचिलागीं पावावया। ८५ यजुर्वेदीं दिव्य ज्ञान। औपासन सांगे अथर्वण। सामवेदी करीत गायन। याचिलागीं पावती। ८६ शैव म्हणती सदाशिव। वैष्णव हा म्हणती रमाधव। सौर म्हणती स्वयमेव। सूर्यनारायण जयातें। ८७ गाणपत्य म्हणती गजवदन। तोचि हा राधामनमोहन। शाक्त भजती

इस कृष्णनाथ के रूप में अवतरित है। ८३ (वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थों के गूढ़ार्थ की व्याख्या करनेवाले) भाष्यकार शब्द की व्युत्पत्ति आदि को सिद्ध करते हुए इसके नाम का अर्थ बताते हैं —वही व्याकरण शास्त्र[९] इस हरि के गुणों का वर्णन (शब्दार्थ बताकर) करता है। ८४ पतंजलि[६] (तथा उनके द्वारा प्रतिपादित) योग की साधना करते हुए (उनके मार्ग का अनुसरण करनेवाले योगमार्गीय) इस वनमाली (स्वरूप कृष्ण अर्थात ब्रह्म) को (अपने हृदय के अन्दर) देखते हैं। ऋग्वेद[१] का अनुसरण करनेवालों ने इसी को प्राप्त हो जाने के हेतु (अनेक यज्ञादि) कर्मों की प्रतिस्थापना की। ८५ यजुर्वेदियों[२] ने दिव्य ज्ञान (-तत्त्व) प्रतिपादित किया, तो (अथर्वण नामक द्रष्टा ऋषि ने अर्थात अथर्ववेद[३] ने उपासना मार्ग बता दिया। सामवेदी[४] (इसकी महिमा का) गान करते हुए इसी को प्राप्त हो जाते हैं। ८६ शैव[५] इसे सदाशिव कहते हैं। वैष्णव[६] कहते हैं कि यह रमापति अर्थात विष्णु है; तो सौर[७] (सूर्योपासक) उसे साक्षात स्वयमेव सूर्यनारायण कहते हैं। ८७ गणपति[८] के उपासक अर्थात गाणपत्य उसे

विश्व आदि दृश्यमान तथा अदृश्यमान तत्त्वों से सम्बन्ध रखनेवाले नियमों, विधानों, सिद्धान्तों का गम्भीर अध्ययन, निरूपण तथा विवेचन होता है। तर्क और युक्ति के आधार पर व्यापक दृष्टि से सब बातों के लिए मौलिक नियम बनानेवाले समस्त शास्त्रों का समावेश दर्शन में होता है। भारतीय परम्परागत दर्शन के दो मुख्य भेद हैं— वैदिक या आस्तिक और वैदिकेतर या नास्तिक। सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्व मीमांसा) और वेदान्त (उत्तर मीमांसा) नामक छः दर्शन वैदिक कहाते हैं। वे वेदों के प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं। प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रस्तुत ऐसी अनेक विचारधाराएँ हैं, जो लोक में शास्त्र नाम से विख्यात हैं। ये शास्त्र चौदह हैं। इनके अतिरिक्त व्याकरण आदि की गणना भी शास्त्रों में की जाती है। यहाँ कृष्ण के संदर्भ में उनके दृष्टिकोण का उल्लेख किया गया है।

१ से ४— यहाँ चारों वेदों का उल्लेख है।

५ से ९— वेदोत्तर काल में साधना के क्षेत्र में शैव, वैष्णव आदि अनेक सम्प्रदायों का गठन हुआ। सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि इनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय वेदान्त द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म को स्वीकार करते हुए अपने-अपने दृष्टिकोण से उसकी व्याख्या और नामकरण करता है। यहाँ शैव-वैष्णवादि अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है, जो ब्रह्म को अलग-अलग नामों से प्रतिपादित करते हैं।

शक्तीलागून। तोचि हा जाण प्रकृतिरूपें। ८८ एक म्हणती यासी काळा। कोणी म्हणती आहे सांवळा। परी तो सकळवर्णविगळा। जो राधेनें डोल्हारां बैसविला। ८९ शचीनें तप केलें बहुत। सप्त जन्मपर्यंत। भोगावया भगवंत। तेचि राधा सत्य गोकुळीं। ९० पद्मपुराणीं असे ही कथा। श्रोतीं शब्द न ठेविजे या ग्रंथा। मूळावेगळी सर्वथा। कथा तत्त्वतां वाढेना। ९१ जयदेव पद्मावतीरमण। बोलिला राधाकृष्णआख्यान। जो पंडितांमाजी चूडामणिरत्न। व्यासअवतार कलियुगीं। ९२ बिल्वमंगलादि

गजवदन (गजानन, गणेश) कहते हैं। वही यह राधा के मन को मोहित करनेवाला कृष्ण है। शाक्त[१] (जिस) शक्ति की भक्ति करते हैं, इसे वही उसी प्रकृति रूप में (आविर्भूत) समझिए। ८८ कोई एक इसे काला कहते हैं, तो कोई एक कहते हैं कि यह साँवला (श्याम) है। फिर भी जिसे राधा ने झूले में बैठाया था, वह (कृष्ण काला आदि) समस्त वर्णों से भिन्न अर्थात परे है। ८९ (कहते हैं—) इन्द्र-पत्नी शची ने सात जन्मों तक बहुत तप किया। वही (शची) भगवान के साथ भोग (-विलास) करने के हेतु गोकुल में सचमुच राधा (के रूप में उत्पन्न) हो गयी है। ९० यह कथा पद्म पुराण में (उपलब्ध) है। (अत:) श्रोताओं को इस ग्रन्थ को दोष न देना चाहिए। बिना मूल (आधार) के (कोई भी) कथा सचमुच विकसित नहीं हो पाती। ९१ पंडितों (विद्वानों) में जो चूड़ामणि रत्न (के समान माने जाते) हैं, जो कलियुग में व्यास के अवतार (समझे जाते) हैं, उन पद्मावती-रमण जयदेव[१] ने राधाकृष्ण आख्यान कहा है। ९२ बिल्वमंगल[२] आदि श्रेष्ठ कवियों ने राधाकृष्ण के चरित्र का कथन किया है।

---

१ पद्मावती-रमण जयदेव— कवि जयदेव बारहवीं शताब्दी में उत्कल के राजा एकजात कामदेव के (अथवा कुछ विद्वानों के मत के अनुसार बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के) दरबार में राजकवि थे। उन्होंने संस्कृत के विश्वविख्यात काव्य 'गीतगोविन्द' की रचना की। उसमें राधा और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। दिव्य आदेश पाकर एक ब्राह्मण ने अपनी पद्मावती नामक कन्या उन्हें प्रदान की। वह महापतिव्रता थी। कहते हैं कि अपने पति की मृत्यु का समाचार प्राप्त होते ही उसने प्राणत्याग किया। वस्तुतः यह समाचार मिथ्या था— उसके पति-प्रेम की परख करने के लिए कहा गया था। तदन्तर जयदेव ने गीतगोविन्द से एक पद गाया और वह पुनः जीवित हो गयी।

२ बिल्वमंगल— महाराष्ट्र में कृष्णा-वेण्णा नदी के तट पर स्थित एक गाँव के निवासी ये कृष्णभक्त कवि अपनी युवावस्था में अत्यधिक भोगासक्त थे। चिन्तामणि नामक एक वेश्या पर लुब्ध होकर इन्होंने अपनी धन-दौलत लुटा दी। अपने पिता के श्राद्ध के विषय में इन्होंने जब उपेक्षाभाव दिखाया, तो चिन्तामणि ने इन्हें फटकारा। तब ये उत्तर की ओर चले गये और कृष्ण की भक्ति में लवलीन रहने लगे। कहते हैं, आगे चलकर ये अन्धे हो गये। इस अन्धे कवि को स्वयं कृष्ण ने हाथ पकड़कर वृन्दावन पहुँचा दिया। इनका लिखा 'कृष्णकर्णामृत' नामक संस्कृत काव्य कृष्णभक्तों द्वारा बहुत समादृत रहा

कवींद्र। कथिती राधाकृष्णचरित्र। तेंच वर्णीत श्रीधर। नसे विचार दुसरा। ९३ असो गुजगुज उठली गोकुळीं। राधागृहीं थोर होतो वनमाळी। ते यशोदेनें कर्णकमळीं। ऐकियेली जनवार्ता। ९४ गौळिणी सांगती यशोदेसी। कृष्ण न धाडीं राधेच्या गृहासी। माता म्हणे हृषीकेशी। राधागृहासी न जावें। ९५ तथापि तूं जासी रडोन। तरी मी तुज शिक्षा करीन। मग बोले जगज्जीवन। न जाईं आतां सर्वथा। ९६ राधेची सासू म्हातारी। तीस एक सांगती सुंदरी। तुझ्या सुनेस तूं आवरीं। घरास हरि न आणिजे। ९७ सासू म्हणे राधे परियेसीं। कृष्ण जरी घरासी आणिसी। तरी मी शिक्षा निश्चयेंसीं। तुज करीन निर्धारें। ९८ ऐसी लोकीं पाडिली तुटी। नव्हे राधेसी कृष्णभेटी। स्फुंदस्फुंदूनि रडे गोरटी। म्हणे जगजेठी अंतरला। ९९ नावडे अन्न उदकपान। नावडे मार्जन आणि भूषण। नावडे अंजन चंदन शयन। मोहिलें मन हरीनें। १०० नावडे कदा दिव्यांबर। काढूनि टाकिले अलंकार। नावडती सुमनहार।

श्रीधर (कवि) उसी का वर्णन कर रहा है— इसमें कोई दूसरा (आधारहीन) विचार (भाव) नहीं है। ९३ अस्तु। गोकुल में यह किंवदन्ती (अफ़वाह) फैल गयी कि राधा के घर वनमाली बड़े (युवा पुरुष) हो जाते हैं। यशोदा ने यह जनवार्ता (लोगों में फैली हुई खबर) अपने कर्णकमलों से सुनी। ९४ गोपियों ने यशोदा से कहा— ‘ कृष्ण को राधा के घर न भेजो ’; (अतः) माता यशोदा ने कृष्ण से कहा— ‘ राधा के घर न जाना। ९५ फिर भी तू रो-रोकर (हठ करके) जाएगा, तो मैं तुझे दण्ड दूँगी। ’ तब जगज्जीवन कृष्ण बोले— ‘ अब मैं बिलकुल नहीं जाऊँगा ’। ९६ राधा की सास बूढ़ी थी। उससे कई स्त्रियों ने कहा, ‘ तुम अपनी बहू को (यह बताते हुए) रोक लेना कि वह हरि को घर न लाए ’। ९७ (इसपर) सास ने कहा, ‘ राधा, सुन लो— यदि तुम कृष्ण को घर लाओगी, तो मैं तुम्हें निश्चय ही निर्धारपूर्वक दण्ड दूँगी ’। ९८ इस प्रकार लोगों ने (राधा और कृष्ण के बीच) व्यवधान (फूट, अन्तर, दुराव) उत्पन्न कर दिया। (फलस्वरूप) राधा की कृष्ण से भेंट नहीं हो पा रही थी। (इसलिए) वह गोरी सुबक-सुबककर रोया करती और कहती— ‘ (मुझसे) जगद्श्रेष्ठ (कृष्ण) दुराव को प्राप्त हो गये (दूर हो गये हैं) ’। ९९ उसे अन्न (खाना), जल पीना अच्छा नहीं लगता था; स्नान (करना) और आभूषण पहनना भाता नहीं था। उसे अंजन (लगाना), चन्दन (का तिलक या लेपन लगाना) और शयन अच्छा नहीं लगता था। (क्योंकि) हरि ने उसके मन का हरण किया था। १०० उसे दिव्य वस्त्र कभी भी

है। (कुछ लोगों की मान्यता है कि सूरदास और बिल्वमंगल एक ही हैं, जो अब गलत सिद्ध हो गयी है।)

केवळ विखार भासती। १०१ चंद्रकिरण शीतळ थोर। ते वाटती परम तीव्र। हृदयीं आठवे श्रीधर। चिंता थोर वाटतसे। २ एके दिवशीं कुरंगनयना। ज्ञालिली कृतांतभगिनीजीवना। ज्ञाले हंसगती शुभानना। नंदसदनावरूनि ज्ञातसे। ३ तों ते वेळीं प्रातःकाळ। धारा काढूं निघे घननीळ। हातीं भरणा घेऊनि गोपाळ। धारा काढी त्वरेनें। ४ भरणा भरूनि घरांत। यशोदा डेरियांत ओतीत। मागुती येई त्वरित। दुसरा भरणा न्यावया। ५ ज्या गाईस स्पर्शे गोविंद। तीस अमर्याद फुटे दुग्ध। भरणा भरतांचि मुकुंद। तो ब्रह्मानंद काय करी। ६ आपुलिया मुखीं धारा। कृष्ण ओढीत भरभरां। तो माता म्हणे श्रीधरा। ऐसें काय करितोसी। ७ कृष्ण म्हणे भरला भरणा। अडखेल गाईचा पान्हा। म्हणोनिया माझिया निजवदना। माजी धार काढितों। ८ यशोदा गेली घरांत। पुढें भरणा घेऊनि कृष्णनाथ। द्वाराकडे जंव पाहत। तंव तेथें राधा उभी असे। ९ देखूनि राधेचें वदन। तन्मय ज्ञाला मधुसूदन। विसरूनि गोदोहन। वृषभाखालीं बैसला। ११० राधेकडे करूनि वदन। इकडे ओढी वृषभाचा

अच्छे नहीं लगते थे। उसने आभूषणों को उतार डाला था। उसे पुष्पहार अच्छे नहीं लगते थे। वे उसे साँप (जैसे) आभासित होते थे। १०१ (वस्तुतः) चन्द्र की किरणें शीतल होती हैं; (फिर भी) वे उसे परम प्रखर जान पड़ती थीं। वह हृदय में श्रीधर (श्रीकृष्ण) का स्मरण करती रहती थी। उसे बड़ी चिन्ता अनुभव हो रही थी। २ एक दिन वह मृगनयनी यमुना-जल लाने के लिए चली जा रही थी। वह शुभानना हंसगति से चल रही थी। वह नन्द के घर होकर जा रही थी। ३ तब उस समय प्रातःकाल (हुआ) था। (उस समय) घननील (कृष्ण गायों को) दुहने के लिए गये हुए थे। हाथ में हाँडी लेकर गोपाल कृष्ण शीघ्र गति से दोहन कर रहे थे। ४ हाँडी भरकर यशोदा उसे घर में (ले जाकर) बड़े घड़े में उँड़ेल देती और फिर झट से दूसरी हाँडी ले जाने के लिए (लौट) आती। ५ गोविन्द जिस गाय को छू लेते उसके अपार दूध फूट आता। (तब) ब्रह्मानन्द मुकुन्द (कृष्ण) हाँडी के भर जाने पर क्या करने लगे? ६ अपने ही मुख में कृष्ण (दूध की) धाराएँ झरझर उतार लेने लगे। तो (यह देखकर) माता बोली, 'अरे श्रीधर, (यह) ऐसा क्या कर रहा है'। ७ तो कृष्ण बोले, 'हाँडी तो भर गयी है, (फिर) गाय का दूध अटक जाएगा, इसलिए मैं अपने स्वयं के मुँह में दुह रहा हूँ'। ८ (इधर) यशोदा घर के अन्दर गयी, तो फिर कृष्णनाथ ने जब हाँडी लेकर द्वार की ओर देखा, तो (उन्हें दिखायी दिया कि) राधा वहाँ खड़ी थी। ९ राधा के मुख को देखते ही मधुसूदन कृष्ण तन्मय हो गये। वे गो-दोहन भूलकर बैल के पास बैठ

वृषण । भुलला राधेस देखोन । नाहीं स्मरण कदापि । १११ राधावदन-शशांक । देखोन भुलला व्रजपालक । दोन्ही नेत्रचकोर सुरेख । स्नेहेंकरूनि पाहती । १२ यशोदा आली आंगणी । तो वृषभ दुहिताहे चक्रपाणी । माता म्हणे ते क्षणीं । काय करितोसी गोपाळा । १३ राधेकडे लावूनि नेत्र । मातेसी देत प्रत्युत्तर । म्हणतो काढितों गायीची धार । भरणा समग्र भरला हो । १४ माता म्हणे बरवें पाहे । दुहितोसी वृषभ कीं गाय । खालीं पाहे निजभक्तप्रिय । तो वृषभ दृष्टीं देखिला । १५ मातेसी म्हणे कमला-नायक । देवाचा नवस चुकलीस बहुतेक । चौथानांचें थान एक । इतुक्यामाजी जाहलें । १६ माता म्हणे श्रीहरी । तुझें मन नाहीं थारीं । तंव द्वारीं देखिली कुरंगनेत्री । राधा सुंदरी तेधवां । १७ माता म्हणे घट घेऊनि शिरीं । कां गे येथें उभी द्वारीं । येरी चालली झडकरी । यमुनानीर आणावया । १८ गेली घेऊनि यमुनाजीवन । तों खेळावया आला जगज्जीवन । राधेच्या द्वारीं येऊन । मुलें मेळवून उभा असे । १९ तों राधिका ओसरीवरी । मंथनासी आरंभ करी । तों नेत्रीं देखिला श्रीहरी ।

गये । ११० (फिर) राधा की ओर मुँह करके इधर कृष्ण बैल के वृषण को खींचने लगे । वे राधा को देखकर मोहित हो गये थे । (अतः) उन्हें विल्कुल (इस बात का) स्मरण (ध्यान) नहीं रहा (कि वे क्या कर रहे हैं) । १११ राधा के मुखचन्द्र को देखते ही व्रजपालक कृष्ण मोहित हो गये । उनके दोनों सुन्दर नयन रूपी चकोर स्नेह के साथ (राधा के मुखचन्द्र को) देख रहे थे । १२ (इधर) यशोदा (जब) आँगन में आ गयी, तो (देखती क्या है ? —) तब चक्रपाणि कृष्ण बैल को दुह रहे थे । उस क्षण माता ने कहा (पूछा)— 'अरे गोपाल, यह क्या कर रहा है ?' । १३ (इसपर) राधा की ओर आँखें लगाये हुए उन्होंने माता को यह प्रत्युत्तर दिया । वे बोले, 'गाय को दुह रहा हूँ । अरी, हाँडी सब भर गयी है ।' । १४ माता बोली, 'भला, देख तो कि तू बैल को दुह रहा है या गाय को' । जब अपने भक्तों के प्रिय कृष्ण ने नीचे देखा, तो उन्हें बैल दिखायी दिया । १५ कमलानायक श्रीकृष्ण ने माता से कहा, 'सम्भवतः भगवान की मनौती में तुम चूक गयी हो । इसलिए इतने में (गाय के) चार स्तनों का एक स्तन बन गया है ।' । १६ तो माता बोली, 'अरे श्रीहरि, तेरा मन ठिकाने नहीं है' । त्योंही उसने तब द्वार में मृगनयनी सुन्दरी राधा को (खड़ी) देखा । १७ (उसे देखकर) माता यशोदा ने कहा (पूछा)— 'अरी, सिर पर घड़ा लेकर इधर द्वार पर तू खड़ी क्यों है ?' (यह सुनकर) वह यमुना-जल लाने के लिए झट से चल दी । १८ वह यमुना-जल ले गयी; तब जगज्जीवन कृष्ण खेलने के लिए आ गये । वे राधा के द्वार पर आकर बच्चों को इकट्ठा करके खड़े थे । १९ तब

जलदवर्ण साजिरा। १२० तिकडे वेधले राधेचे नयन। विसरली गोरससंथन। रित्या डेऱ्यांत रवी घालून। घुसळी पूर्ण निजछंदें। १२१ श्रीहरीनें मोहिलें मन। नाठवे देहगेहअभिमान। वृत्ति गेली मुरोन। ब्रह्मानंदसागरीं। २२ समरस झाली आत्मप्रकाशीं। नाठवेचि दिवसनिशी। लवण मिळतां जळासीं। परी तैसीच जाहली। २३ नलगे पातया पातें। वृत्ती आकर्षिल्या रमानाथें। हृदयीं दाटोनि आनंद भरतें। आपणातें विसरली। २४ तों खडखडां वाजे डेरा। सासू धांवूनि आली द्वारा। सक्रोध बोले ते अवसरां। राधेलागीं वृद्धा ते। २५ कां गे मंथतेसी रिक्त पात्र। काय गे गेले तुझे नेत्र। काय न ऐकती तुझे श्रोत्र। रिता डेरा खडबडितां। २६ राधा म्हणे ऐका मामिसें। डेरा धड कीं फुटका असे। रिता घुसळोनि पाहतसें। तगेल कीं न तगेल म्हणूनियां। २७ सासू म्हणे मन नाहीं स्थिर। तों द्वारीं उभा श्यामसुंदर। वृद्धा म्हणे तुझें चित्त व्यग्र। खंजनाक्षी जाहलें। २८ वृद्धा म्हणे कृष्णासी। कां रे तूं येथें उभा असती। येरू म्हणे आम्ही खेळतों बिदीसी।

राधा ने ओसारे में मन्थन आरम्भ किया, तो उसने अपनी आँखों से मेघवर्ण सलोने श्रीहरि को (खड़े) देखा। १२० (तब) राधा के नयन उस ओर खिंच गये। वह गोरस-मन्थन भूल गयी (और) रीते घड़े में मथानी डालकर पूरे मनमाने घुमाने लगी। १२१ श्रीहरि ने उसके मन को मोह लिया था। उसे देह और गेह सम्बन्धी भान नहीं रहा था। उसकी मनोवृत्ति ब्रह्मानन्द-सागर में विलीन हो गयी। २२ वह आत्म (-ज्ञान के) प्रकाश में एकरस हो गयी। उसे दिन-रात का स्मरण नहीं रहता था। नमक पानी में मिल जाते ही एकरस हो जाता है। उस (राधा) की स्थिति वैसी ही हो गयी— अर्थात् वह कृष्ण के साथ एकात्म हो गयी। २३ उसकी पलक, पलक को नहीं लग रही थी (वह अपलक देख रही थी)। रमानाथ कृष्ण ने उसकी (मनो-)वृत्तियों को आकृष्ट कर लिया था। हृदय में आनन्द का ज्वार उमड़ आने से वह अपने आप को भूल गयी। २४ तब घड़ा खड़खड़ाहट के साथ बज रहा था, तो सास दौड़कर द्वार पर आ गयी। उस समय वह बुढ़िया राधा से क्रोध के साथ बोली। २५ 'अरी, रीते पात्र को क्यों मथ रही है ? अरी, तेरी आँखें (फूट) गयी हैं क्या ? रीते मटके के खड़खड़ाते रहते क्या तेरे कान नहीं सुन पा रहे हैं ?'। २६ (यह सुनकर) राधा बोली, 'सुनिए माँजी, मैं रीते घड़े में मथकर यह देख रही हूँ कि वह घड़ा अखण्ड है या फूटा हुआ है, वह ठीक रहेगा अथवा नहीं'। २७ (इसपर) सास बोली, 'तेरा मन स्थिर नहीं है'। तब द्वार पर श्यामसुन्दर खड़े थे। (उन्हें देखते ही) बुढ़िया बोली, 'अरी खंजनाक्षी राधा, तेरा चित्त व्यग्र हो गया है'। २८ (फिर) बुढ़िया कृष्ण से बोली, 'अरे, तू यहाँ क्यों खड़ा है ?'

तूं कां दवडिसी थेरडे । २९ वांकडे तोंड करून । वृद्धेसी वेडावी जगज्जीवन । वृद्धा धांवे क्रोधेंकरून । पळे मनमोहन तेथूनि । १३० घरीं नंदासवें जेविला । तों दोन प्रहर दिवस जाहला । पुढें घेऊनि सांवळा । यशोदा निजे मंचकावरी । १३१ म्हणे कृष्णा खोडी न करीं । जाऊं नको कदा बाहेरी । पुढें घेऊनि पूतनारी । निद्रा करी सावकाश । ३२ तों इकडे राधिका सुंदरा । उदका आली यमुनातीरा । मनीं म्हणे यादवेंद्रा । कधीं आतां भेटसी । ३३ वस्त्र लावूनियां नेत्रां । स्फुंदत उभी राधा सुंदरा । म्हणे गुणसमुद्रा जगदुद्धारा । प्राण देईन मी आतां । ३४ जगन्नायका जगज्जीवना । यमुनाजीवनीं देईन प्राणा । माझ्या वेधका मनमोहना । तुझ्या चरणां अंतरलें । ३५ ऐसें राधेचें अंतर । जाणोनियां करुणाकर । हळूच उठोनियां सर्वेश्वर । यमुनातीरा पातला । ३६ तों जाहली खरी दुपारी । दुजें कोणी नसे यमुनातीरीं । सवेग येऊनि मुरारी । धरिली निरी राधेची । ३७ राधा म्हणे चक्रपाणी । संसारा माझ्या पाडिलें पाणी । माझें नांवरूप बुडविलें जनीं । विपरीत करणी तुझी कृष्णा । ३८ तूं दिसतोसी

वे बोले, ' हम यहाँ गली में खेल रहे हैं । अरी बुड्ढी, हमें तू क्यों भगा रही है । ' । २९ (तदनन्तर) मुँह बाकर जगज्जीवन कृष्ण बुढ़िया को मुँह बनाने लगे । तब वह बुढ़िया क्रोध से दौड़ने लगी, तो मनमोहन कृष्ण वहाँ से भाग गये । १३० उसने घर में नन्द के साथ भोजन किया, तब (तक) दोपहर दिन हो गया । (तदनन्तर) यशोदा पलंग पर साँवले (कृष्ण) को पास में लेकर सो गयी (लेट गयी) । १३१ वह बोली, ' अरे कृष्ण, तू (किसी से) छेड़छाड़ न करना । कभी भी बाहर मत जा । ' (फिर) वह पूतनारि कृष्ण को पास में लिये हुए यथासमय सो गयी । ३२ तब इधर राधिका सुन्दरी यमुना तट पर पानी (भरने) के लिए आ गयी । वह मन ही मन बोली, ' अरे यादवेन्द्र, अब कब मिलोगे ?' । ३३ आँखों को वस्त्र (साड़ी, साड़ी का आँचल) लगाकर सुन्दरी राधा सुबकते-सुबकते खड़ी रह गयी । वह बोली, ' हे गुणसमुद्र, हे जगदुद्धारक, मैं अब प्राण त्याग दूँगी । ३४ हे जगन्नायक, हे जगज्जीवन, मैं (अब) यमुना-जल में प्राण त्याग दूँगी । हे मेरे मन का हरण करनेवाले, हे मनमोहन, मैं तुम्हारे चरणों से अन्तर को प्राप्त हो गयी हूँ । ' । ३५ राधा के ऐसे मन को (मनोदशा को) जानकर सर्वेश्वर करुणाकर श्रीकृष्ण हौले से उठकर यमुना तट आ पहुँचे । ३६ तब सममुच दुपहरी हो गयी थी । यमुना तट पर दूसरा कोई नहीं था । तो मुरारि कृष्ण ने वेगपूर्वक आकर राधा की (साड़ी की) चुनन पकड़ ली । ३७ (यह देखकर) राधा बोली, ' हे चक्रपाणि, मेरी घर-गिरस्ती पर तुमने पानी फेर दिया है, मेरे नाम-रूप को जन-समाज में डुबो दिया है (मुझे बदनाम कर दिया है) । हे कृष्ण,

किशोर । तुझी करणी गगनाहूनि थोर । विपरीत तुझें चरित्र । ब्रह्मादिकां कळेना । ३९ जागी ज़ाहली नंदराणी । तों पुढें न दिसे कैवल्यदानी । म्हणे कोठें गेला उठोनी । कळी घेऊनि येईल आतां । १४० श्रीकृष्णाच्चा माग काढीत । माता चालिली शोधीत । जैसी वेदश्रुति निर्वाणपंथ । सूक्ष्म काढीत शोधूनि । १४१ यमुनातीरा आली यशोदा । तों उभीं कृष्ण आणि राधा । राधा म्हणे सच्चिदानंदा । आली माया तुझी पैं । ४२ आतां तुज़ आणि मज़ येथें । ताडन करील स्वहस्तें । तों यशोदा म्हणे हरीतें । कैसें तूतें वाटतें पैं । ४३ तों हरि स्फुंदस्फुदोनि रडत । माते मी बिदीस होतों खेळत । इनें माझा कंदुक सत्य । उचलोनियां आणिला । ४४ मी रडत लागलों पाठीसीं । माते कंदुक आहे इज़पाशीं । तो देववीं म्हणे हृषीकेशी । लोळणी तेथें घातली । ४५ राधेसी म्हणे यशोदा । कां ओरडविसी गोविंदा । नसतेच़ अपवाद सदा । बाळावरी घालितां गे । ४६ राधा म्हणे ते वेळीं । मामिसें अकल्पित घेतो किटाळी । चेंडू नाहीं मज़ज़वळी । नसतीच़ आळी

तुम्हारी करनी विपरीत है । ३८ तुम किशोर दिखायी देते हो; (फिर भी) तुम्हारी करनी गगन से बड़ी है । तुम्हारा चरित (लीला) विपरीत है । वह ब्रह्मा आदि की भी समझ में नहीं आ पाता । '। ३९ (जब इधर) नन्द की रानी (यशोदा) जग गयी, तो उसे पास में कैवल्य-दाता कृष्ण नहीं दिखायी दिये । वह बोली, ' यह उठकर कहाँ गया ? अब यह शिकायत लेकर (लौट) आएगा । '। १४० फिर (वहाँ से निकलकर) माता यशोदा श्रीकृष्ण की टोह लगाती हुई, उसे (वैसे ही) खोजती हुई चली जा रही थी, जैसे वेद-श्रुतियाँ सायुज्य मुक्ति के सूक्ष्म मार्ग को खोज निकालती हैं । १४१ यशोदा यमुना के तीर आ गयी, तो (उसे दिखायी दिया कि) कृष्ण और राधा (वहाँ) खड़े थे । (उसे देखकर) राधा बोली, ' हे सच्चिदानन्द, तुम्हारी माँ आ गयी है (आ रही है) । ४२ अब वह यहाँ अपने हाथों से तुम्हें और मुझे पीटेगी । ' तब यशोदा कृष्ण से बोली, ' तुझे कैसे लग रहा है ? '। ४३ तो कृष्ण सुबक-सुबककर रोने लगे । (वे बोले—) ' मैं रास्ते में खेल रहा था । सचमुच यह मेरी गेंद को उठाकर लायी है । ४४ मैं रोते-रोते उसका पीछा करने लगा । अरी माँ, गेंद इसके पास है । ' फिर हृषीकेशी कृष्ण बोले, ' मुझे वह दिलवा दो । ' (यह कहते हुए) वे वहाँ लोटने-पोटने लगे । ४५ (फिर) यशोदा राधा से बोली, ' तुम (लोग मेरे) गोविन्द को क्यों चीखने-पुकारने लगवा (रुला) रही हो । तुम नित्य व्यर्थ ही (अनचाहे) दोषारोप (मेरे) बच्चे पर (क्यों) लगाती हो । '। ४६ उस समय राधा बोली, ' माँजी, यह (मुझपर) अकल्पित (असम्भाव्य) दोषारोप लगा रहा है । मेरे पास गेंद नहीं है । (फिर भी) यह झूठा आरोप लगा रहा

घेतो हा। ४७ कृष्ण म्हणे मातेसी। झाडा घेईं तूं इजपाशीं। चेंडू निघेल निश्चयेंसीं। जननीये आतांचि। ४८ राधिका गदगदां हांसे। वस्त्र चहूंकडे झाडीतसे। सच्चिदानंदें परमपुरुषें। थोर केलें लाघव। ४९ घेतला नसतां एकाएक। अवचितां पडला कंदुक। गदगदां हांसे वैकुंठनायक। अकळ देख लीला त्याची। १५० राधा अधोमुख पाहात। म्हणे याची करणी अद्भुत। अष्टभावें सद्गदित। राधा जाहली तेधवां। १५१ माया म्हणे तुम्ही गौळिणी। महानष्टा व्यभिचारिणी। माझा ब्रह्मचारी चक्रपाणी। बोलिजे जनीं विपरीत। ५२ पांच वर्षांचें तान्हें बाळ। त्यावरी घेतां नसतीच आळ। टाकूनि जावें गोकुळ। या लोकांभेणें पैं। ५३ सद्गदित माया जाहली। अष्टभावें पूर्ण दाटली। कडेवरी घेऊनि वनमाळी। माया चालिली मंदिरा। ५४ कडे घेतला ब्रह्मांडनायक। करीं झेलीतसे कंदूक। वारंवार माया देख। मुख चुंबीत हरीचें। ५५ राधेनें घटीं भरूनि जीवना। घरासी गेली पद्मनयना। पूर्णब्रह्म वैकुंठराणा। मनीं कळलें राधेसी। ५६

है।'। ४७ (यह सुनकर) कृष्ण माँ से बोला, 'तू (इसकी जामा-) तलाशी ले लो। अरी माँ, गेंद अभी निश्चय ही (इसके पास) निकलेगी (मिलेगी)।'। ४८ (यह सुनकर) राधा खिल-खिलाकर हँस उठी। उसने चारों ओर से वस्त्र झटक डाला। (उस समय) सच्चिदानन्द परम पुरुष (भगवान कृष्ण) ने चालाकी की। ४९ उसके द्वारा न लिये जाने पर भी गेंद अचानक गिर पड़ी, तो वैकुण्ठ-नायक कृष्ण खिल-खिलाकर (ठहाका मारकर) हँसने लगे। देखिए, उनकी लीला अगम्य होती है। १५० राधा अधोमुख होकर (सिर झुकाये हुए) देख रही थी। वह बोली, 'इसकी करतूत अद्भुत है'। तब राधा आठों भावों[1] से युक्त होकर अति गद्गद हो उठी। १५१ माता (यशोदा) बोली, 'तुम गोपियाँ अति नष्ट (-भ्रष्ट) हो, व्यभिचारिणी हो। मेरा कृष्ण ब्रह्मचारी है; (फिर भी) तुम लोगों में विपरीत बोलती हो। ५२ पाँच वर्षों का यह दुधमुँहा बच्चा है। इसपर तुम झूठे दोषारोप लगाती हो। लोगों के इस (बदनामी के) भय से इस गोकुल को छोड़कर चले जाएँ। ५३ माता गद्गद हो उठी। वह आठों भावों से अति गद्गद हो उठी (उसका गला रुँध गया)। (तत्पश्चात्) वनमाली को गोद में लेकर माता अपने घर (की ओर) चल दी। ५४ उसने ब्रह्माण्ड-नायक को गोद में लिया था। (वहीं विराजमान होकर) वे गेंद (को उछाल-उछालकर) झेल रहे थे। माता बार-बार यह देख रही थी और कृष्ण के मुख को चूम रही थी। ५५ कमलनयना राधा ने घट में पानी भर लिया (और) वह घर गयी। राधा को मन में यह विदित हुआ कि कृष्ण वैकुण्ठराज पूर्णब्रह्म है। ५६ उसने लोगों में

---

1 अष्ट भाव— स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर भंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

लोकांत फुटों नेदी शब्द। नित्य भोगीत परमानंद। सांडूनियां विषयभेद। निजबोधा पावली। ५७ राधा केवळ निजभक्ती। तीस वश झाला जगत्पती। अनंत जन्मींचें तप निश्चितीं। एकदांचि फळा आलें। ५८ हे इंद्राची इंद्राणी। इनें विष्णु अभिलाषिला मनीं। सप्त जन्म तप घोर करूनी। चक्रपाणी पावली हे। ५९ इकडे माया म्हणे मुरारी। जाऊं नको तूं बाहेरी। चोरीचाही आळ तुजवरी। घेती सुंदरी गोकुळींच्या। १६० गौळिणींस म्हणे यशोदा। चोरी करितो म्हणतां गोविंदा। तरी सणगावरी मुकुंदा। धरूनि एकदां आणा गे। १६१ कृष्णासी धरावया गौळिणी। जपत असतां दिनरजनीं। तों एकीलागीं चक्रपाणी। गोरस भक्षितां सांपडला। ६२ एकलाचि निघाला घरांत। दधिभाजन वरूनि फोडीत। मुखेंकरूनि दधि भक्षीत। वैकुंठनाथ निजलीलें। ६३ दधिचर्चित वदन। दिसे परम शोभायमान। तों अकस्मात गौळण येऊन। करीं धरिलें हरीसी। ६४ चाल रे तुझ्या मातेपासीं। म्हणोनि ओढूनि आणिला बिदीसीं। सांगे समस्त गौळिणींसीं। या गे हृषीकेशी सांपडला। ६५ जे जे गौळण येई घरांतून।

समाचार विदित नहीं हो जाने दिया। वह नित्य परमानन्द का भोग करती जाती थी। विषय-विकार के भेद को छोड़कर वह आत्मज्ञान को प्राप्त हो गयी। ५७ राधा तो (भगवान की) केवल अपनी भक्ति (-स्वरूपा) है। जगत्पति (कृष्ण) उसके वश में आ गये। (इस प्रकार) अनन्त (पूर्व-) जन्मों का तप निश्चय ही एक साथ फल को प्राप्त हो गया। ५८ यह (राधा) वस्तुतः इन्द्र की इन्द्राणी है। इसने मन में भगवान विष्णु के प्रति अभिलाषा अनुभव की। (फिर) सात जन्मों तक घोर तपस्या करके यह चक्रपाणि कृष्ण (के संग) को प्राप्त हो गयी। ५९ इधर माता बोली, 'रे मुरारि, तू बाहर न जाओ। गोकुल की ये सुन्दरियाँ (नारियाँ) तुझपर चोरी का दोषारोप भी लगाएँगी।'। १६० (फिर) यशोदा गोपियों से बोली, 'तुम कहती हो, (यह) गोविन्द चोरी करता है। अतः मुकुन्द को एक बार रँगे हाथ पकड़कर ले आओ।'। १६१ (तदनन्तर) गोपियों द्वारा दिन-रात कृष्ण को (रँगे हाथ) पकड़ने की ताक में रहने पर तब एक (गोपी को) चक्रपाणि गोरस भक्षण करते मिल गये। ६२ वे अकेले घर में निकले (पाये गये)। दही के पात्रों को ऊपर से फोड़कर, वैकुण्ठनाथ अपनी लीला प्रदर्शित करते हुए मुख से दही को सेवन कर रहे थे। ६३ दही से विलेपित (सना हुआ) उनका मुँह परम शोभायमान दिखायी दे रहा था। त्योंही सहसा गोपी ने (अन्दर वहाँ) आकर श्रीकृष्ण को हाथ से पकड़ लिया। ६४ 'अपनी माँ के पास चल', कहते हुए वह उन्हें रास्ते पर ले आयी (और) समस्त गोपियों से उसने कहा— 'आओ, अहो, कृष्ण मिल गया।'। ६५

तिचे हातीं एक एक कृष्ण। लक्षानुलक्ष स्वरूपें पूर्ण। एकासारिखीं चहूंकडे। ६६ पंचवर्षी सांवळ्या मूर्ती। एकसारिखीं खापरें हातीं। दधि मुखीं माखलें निश्चितीं। ओढूनि नेती मायेपाशीं। ६७ यशोदेपाशीं आल्या सांगावया। तों तिचे कडेवरी असे कान्हया। तटस्थ होवोनियां माया। चहूंकडे विलोकी। ६८ जिकडे पाहे तिकडे कृष्ण। असंख्यात स्वरूपें परिपूर्ण। बोलावयासी वचन। ठाव कोठें असेना। ६९ मागें पुढें यशोदा पहात। तों अवघा व्यापिला जगन्नाथ। तो ब्रह्मानंद सदोदित। नाहीं अंत स्वरूपासी। १७० माथा पाहे घरांत बाहेरी। पाळणां आणि ओसरीवरी। अवघा कृष्णचि निर्धारीं। मायादेवी पाहतसे। १७१ देवापासीं एक बैसलासे। डोल्हारीं एक खदखदां हांसे। एक तो पाळण्यांत रडतसे। स्तन देईं म्हणोनियां। ७२ एक कृष्ण घरांत जेवीतसे। एक आंगणीं रांगे हर्षें। एक स्तनपान करीतसे। मायेपुढें निजोनि। ७३ एक आंगणीं गडबडां लोळत। एक देहावरी धुळी घालीत। एक पदरीं धरूनि ओढीत। मातेलागीं ते वेळीं। ७४ यशोदा समाधिस्थ स्वानंदें। ब्रह्मांड

(आश्चर्य है—) जो-जो गोपी घर में से आती, उसके हाथ में एक-एक कृष्ण थे। (वहाँ) चारों ओर पूर्णतः एक के समान एक लाखों उनके रूप (इकट्ठा) हो गये। ६६ वे सब पंचवर्षीय मूर्तियाँ थीं। (उनमें से प्रत्येक के) हाथ में एक-से खप्पर थे। दही मुख में निश्चय ही विलेपित था। (ऐसी मूर्तियों को वे) गोपियाँ माता यशोदा के पास खींचकर ले जा रही थीं। ६७ वे कहने के लिए यशोदा के समीप आ गयीं, तो (उनको दिखायी दिया कि) उसकी गोद में कन्हैया था। (फलतः) चकित होकर माता चारों ओर देखने लगी। ६८ जहाँ देखती, वहाँ कृष्ण (ही कृष्ण दीख रहे) थे, (वहाँ) अनगिनत कृष्ण के परिपूर्ण रूप थे। (फिर) कोई बात बोलने के लिए कहीं गुंजाइश ही नहीं थी। ६९ यशोदा ने पीछे और आगे देखा, तो (दिखायी दिया कि) जगन्नाथ समस्त व्याप्त किये हुए हैं। नित्य ब्रह्मानन्द-आनन्दस्वरूप उन ब्रह्म के अपने रूप का (कहीं) अन्त नहीं (दिखायी दे रहा) था। १७० माता यशोदा ने घर में, बाहर, पालने में और ओसारे में देखा। (समस्त स्थानों पर) निश्चय ही माता यशोदादेवी एकमात्र कृष्ण को ही देख रही थी। १७१ (उसने देखा—) (देवघरे में) देव (-प्रतिमा) के पास एक बैठे हुए हैं; एक झूले पर खिलखिलाते हुए हँस रहे हैं। एक तो पालने में 'स्तन-पान करा दे' कहते हुए रो रहे हैं। ७२ एक कृष्ण घर के अन्दर भोजन कर रहे हैं तो एक आँगन में हर्ष के साथ घुटनों के बल चल रहे हैं। एक माता के पास लेटकर स्तन-पान कर रहे हैं। ७३ एक आँगन में लोट-पोट रहे हैं। एक शरीर पर धूलि डाल रहे हैं। उस समय एक

भरिलेंसें गोविंदें। विश्व कोंदलें ब्रह्मानंदें। न दिसे दुजें सर्वदा।७५ माया जों खालीं घाली दृष्टी। तंव कृष्णरूप दिसे सृष्टी। अवघाचि विश्वंभर जगजेठी। दुजेंविण एकला।७६ सकळ गौळिणी तन्मय झाल्या। ठाव नाहीं गाऱ्हाणीं द्यावया। गेलिया देहभाव विसरोनिया। ना दिसे माया-ओडंबर।७७ अवघा भरला हरि एक। वेदांचेही मावळले तर्क। शास्त्रें भांबावलीं देख। सहस्रमुख लाजला।७८ कवणासी सांगावें गाऱ्हाणें। सर्वही व्यापिलें नारायणें। राहिलें सर्वांचें बोलणें। दृष्टीचें पाहणें विरालें।७९ एकीकडे एक गोपी पहाती। तंव त्या अवघ्याचि कृष्णमूर्ती। नाहीं स्त्रीपुरुषव्यक्ती। त्रिजगतीं हरिरूप।१८० न दिसती लोक गोकुळ। अवघा एक घननीळ। पूर्णब्रह्मानंद निर्मळ। अचल अढळ अव्यय।१८१ योगी करिती अष्टांगसाधन। त्यांसीही नव्हे ऐसें दर्शन। साधिती पंचाग्नि-

दामन पकड़कर माता को खींच रहे हैं।७४ (यह देखते-देखते) यशोदा आत्मानन्द से समाधिस्थ हो गयी— आत्मानन्द में डूब गयी। (उसने देखा—) ब्रह्माण्ड गोविन्द से भरा हुआ है। विश्व ब्रह्मानन्द अर्थात आनन्दस्वरूप ब्रह्म से व्याप्त है, उसे कोई दूसरा बिल्कुल नहीं दिखायी दे रहा था।७५ माता ने जब दृष्टि (आँखों) को झुका लिया, तो उसे सृष्टि कृष्ण-रूप दिखायी दी। (सर्वत्र) एकमात्र विश्वम्भर जगद्श्रेष्ठ थे— बिना किसी दूसरे के (अर्थात) अकेले (कृष्ण) थे।७६ (यह देखकर) समस्त गोपियाँ तन्मय हो गयीं। शिकायत करने के लिए कोई स्थान ही न रहा था। वे देहभाव को (सुध-बुध को) भूल गयीं, उन्हें माया का आड़म्बर (दिखावटी फैलाव) नहीं दिखायी दे रहा था।७७ (सब स्थानों में) केवल एकमात्र हरि भरे हुए अर्थात व्याप्त हैं। वेदों के तर्क कुण्ठित हो गये। देखिए, शास्त्र भ्रम में पड़ गये। सहस्रमुख शेष लज्जित हो गया।७८ शिकायत किससे कह दें? नारायण (कृष्ण) ने सभी को व्याप्त कर लिया है। (फलतः) सबका बोलना धरा रहा (और) आँखों द्वारा देखना ठप हो गया।७९ वे गोपियाँ एक दूसरी की ओर देखने लगीं, तो (दिखायी दिया कि) वे सभी कृष्णमूर्तियाँ हो गयी हैं। स्त्री-पुरुष का व्यक्ति-भेद नहीं रहा। त्रिभुवन कृष्णरूप बन गया।१८० गोकुल में लोग नहीं दिखायी दे रहे थे। केवल एक घननील पूर्ण आनन्दस्वरूप ब्रह्म, निर्मल, अचल, अक्षय, अव्यय ब्रह्म (दिखायी दे रहा) था।१८१ योगी (ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए) अष्टांग योगसाधना[1] करते हैं, उन्हें भी ऐसा दिखायी नहीं देता। (कुछ योगी)

[1] अष्टांग योगसाधना— लययोग, तारकयोग, अमनस्कयोग, सांख्ययोग, लम्बिका-योग, कुण्डलीयोग और हठयोग। अथवा— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि नामक योगसाधना के आठ अंग।

साधन। त्यांसही खूण न कळेचि। ८२ तीर्थें करितां परम श्रमले। जे शास्त्रश्रवणीं बहु भागले। त्यांस या सुखाचे सोहळे। कदाकाळीं न लाभती। ८३ धन्य भाग्य गौळियांचें त्रिशुद्धि। लाविली केवळ पूर्णसमाधि। निरसल्या सकळ आधि व्याधि। ब्रह्मानंदीं निमग्न। ८४ निरसला सकळ भेद। ओतिला सकळ गोविंद। गौळियांचें पुण्य अगाध। न समाये ब्रह्मांडीं। ८५ ऐसे जाणोनि कृपानिधी। म्हणे अवघ्यांसी लागली समाधी। आतां हे विरतील ब्रह्मानंदीं। अव्यय रूप अभेद। ८६ मग ऐशा प्रेमळ निश्चितीं। मज पुन्हां कैंच्या मिळती। मी वेधलों यांचे भक्तीं। कायशा मुक्ती यांपुढें। ८७ यांचा देहभाव गेला विरून। हरीनें योगमाया घालून। आपली रचना संपूर्ण। झांकिली हो तेधवां। ८८ तो एकलाच मायेपाशीं। उभा असे हृषीकेशी। मौनेंचि गौळिणी गेल्या गृहासी। बोलावयासी ठाव नाहीं। ८९ सर्वही व्यापिलें यादवेंद्रें। बोलावया नाहीं दुसरें। सच्चिदानंद सर्वेश्वरें। थोर दाविलें लाघव। १९० हरिविजयग्रंथ थोर। हेचि कृष्णावेणी

पंचाग्नि साधना[1] करते हैं, (फिर भी) उन्हें भी (ब्रह्म का) लक्षण समझ में नहीं आता। ८२ जो तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करते हुए परम थकावट को प्राप्त हो जाते हैं, जो शास्त्रों का श्रवण करते-करते बहुत थक गये हैं, उन्हें ऐसे इस सुखप्रद आनन्दोत्सव किसी भी समय (देखने के लिए) प्राप्त नहीं होते। ८३ गोपों के भाग्य सचमुच धन्य हैं। उन्होंने तो केवल पूर्ण समाधि लगा दी। उनकी समस्त आधियाँ-व्याधियाँ लय को प्राप्त हो गयीं। वे ब्रह्मानन्द में निमग्न हो गये। ८४ (उनके लिए) समस्त भेद-भाव समाप्त हो गया (और) समस्त गोविन्द ढाले हुए थे। (इस प्रकार) गोपों का पुण्य अथाह था; वह ब्रह्माण्ड में नहीं समा रहा था। १८५

ऐसा जानकर कृपानिधि कृष्ण ने कहा (सोचा)— सबको समाधि लगी है। अब ये अव्यय रूप, अभेद रूप हो जाने से ब्रह्मानन्द में विलीन हो जाएँगे। १८६ फिर मुझे ऐसी प्रेममय (गोपियाँ) फिर से कैसे मिलेंगी ? मैं इनकी भक्ति से मोहित हो गया हूँ। इनके सामने कैसी मुक्तियाँ ? (इनके लिए मुक्तियों की क्या महिमा होगी ?)। ८७ इनका देहभाव नष्ट हो गया। (फिर) कृष्ण ने अपनी योगमाया फैलाकर अपनी सम्पूर्ण रचना उस समय छिपा दी। ८८ तो (दिखायी दिया कि) हृषीकेशी अकेले ही अपनी माता के समीप खड़े हैं। (तदनन्तर) गोपियाँ चुपचाप (अपने-अपने) घर गयीं। उन्हें (कुछ) कहने के लिए कोई स्थान (गुंजाइश) नहीं था। ८९ यादवेन्द्र कृष्ण ने सभी को व्याप्त कर लिया

---

[1] पंचाग्नि साधना— इसके अनुसार चारों दिशाओं में चार अग्निकुण्ड प्रज्वलित करके योगी सूर्य की ओर एकटक देखते हुए तपस्या करता है। ऐसी तपस्या को पंचाग्नि साधना कहते हैं। यह साधना ग्रीष्मकालीन प्रखर धूप में की जाती है।

वाहे साचार। भक्तिकन्यागतीं सादर। भाविक नर धांवती। १९१ येथींच्या अर्थीं बुडी देऊन। जे सदा करिती अघमर्षण। ते मायेस मागें लोटून। पावती पूर्ण ब्रह्मानंद। ९२ ब्रह्मानंदें विनवी श्रीधर। पुढें रसाळ कथा असे परिकर। संतश्रोतीं व्हावें सादर। कृपा करूनि मजवरी। ९३ इति श्रीहरिविजयग्रंथ। संमत हरिवंश भागवत। चतुर श्रोते परिसोत। अष्टमाध्याय गोड हा। १९४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

था; (अतः) दूसरा बोलने के लिए न रहा। (इस प्रकार) सच्चिदानन्द सर्वेश्वर कृष्ण ने बड़ा चमत्कार प्रदर्शित कर दिया। १९०

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ महान है। वही (मानो) सचमुच कृष्णा-वेण्णा के रूप में प्रवहमान है। भक्ति रूपी कन्यागत योग के अवसर पर भक्तिशील लोग (उसमें स्नान करने के हेतु) दौड़ते जाते हैं। १९१ यहाँ के अर्थ में डुबकी लगाकर, जो (अपने) पापों का नाश करते हैं, वे माया (के प्रभाव) को पीछे धकेलकर पूर्ण ब्रह्मानन्द को अर्थात आनन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। ९२ (कवि) श्रीधर ब्रह्मानन्दपूर्वक विनती कर रहा है— आगे सुन्दर विशाल रसात्मक कथा है। (उसका श्रवण करने के लिए) मुझ पर कृपा करते हुए सन्त श्रोता तत्पर हो जाएँ। १९३ इति। श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश तथा श्रीमद्भागवत (पुराण) से सम्मत है। चतुर श्रोता इसके इस मधुर आठवें अध्याय का श्रवण करें। १९४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—९

[बालकृष्ण द्वारा यमलार्जुन को उखाड़ देना और कुबेर-पुत्रों का उद्धार करना]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय यादवकुलावतंसा ॥ लीलावेषधारका जगन्निवासा। गोकुलपालका बालवेषा। हृषीकेशा जगद्गुरो। १ लोक वर्णिती विविध शास्त्रें। मनरंजनकारक विचित्रें। परी भवच्छेदक पवित्रें। कदाकाळीं न होती। २ हरिगुणलीला न वर्णितां। व्यर्थ काय ते अलवण

श्रीगणेशाय नमः। हे यादवकुल-शिरोभूषण (मुकुट), हे लीला वेष (लीलावतार) धारी, हे जगन्निवास, हे गोकुल के पालक, हे (श्रीकृष्ण-स्वरूप) बालरूपधारी, हे हृषीकेशी, हे जगद्गुरु, जय हो, जय हो। १ लोक विविध शास्त्रों का वर्णन (विवेचन) करते हैं। ये (शास्त्र) मनोरंजनकारी तथा विचित्र हैं। फिर भी ये पवित्र शास्त्र किसी भी समय

कविता। जैसा वाळूचा घाणा गाळितां। तेल न पडे कांहींच। ३ नळी फुंकिली सोनारें। इकडून तिकडे जाय वारें। तैसीं तीं व्यर्थ शास्त्रें। हरिलीला न वर्णितां। ४ न वर्णितां हरिचरित्र। व्यर्थ वटवट कायसे ग्रंथ। जैसीं अर्कफळें क्षुधार्थ। रुचि उडे भक्षितां। ५ धन्य धन्य तेचि जन। जे श्रीहरिध्यानपरायण। जे श्रीहरिलीला करिती श्रवण। धन्य तेचि संसारीं। ६ पाखंडी जे कुतर्कवादी। त्यांस ही सांगों नये कधीं। जैसें नवज्वरिता दुग्ध बाधी। मरण आणी तत्काळ। ७ असो अष्टमाध्यायीं भगवंतें। विश्वरूप दाविलें कृपावंतें। असंख्य रूपें मातेतें। रमानाथें दाविलीं। ८ यावरी काय झालें वर्तमान। तें सादरें ऐका भक्तजन। जेणें कलिकिल्मिषें दारुण। भस्म होती ऐकतां। ९ एके दिवशीं प्रातःकाळीं।

संसार (के बन्धनों) के छेदक (काटनेवाले) नहीं होते। २ श्रीहरि के गुणों का वर्णन न करते हुए लिखी कविता क्या अलोनी-अरोचक तथा व्यर्थ नहीं होती ? (अर्थात जिस काव्य में हरिगुणों का वर्णन न हो, वह लवणहीन भोजन की भाँति फीका अतएव व्यर्थ होता है।) जैसे बालू का घान (कोल्हू में डालकर) पेरने से तेल कुछ भी नहीं (बिल्कुल नहीं) निकलता, उसी प्रकार बिना हरिगुण-वर्णन किये रचे हुए काव्य से सच्चा रस प्राप्त नहीं होता। ३ जिस प्रकार सुनार नली (फूँकनी) में फूँक लगाए, तो हवा इधर से उधर निकल जाती है, उसी प्रकार हरि-लीला का वर्णन न करने पर वे शास्त्र वैसे ही व्यर्थ हो जाते हैं। ४ हरि-चरित्र का वर्णन न करने पर वे ग्रन्थ व्यर्थ बकवास जैसे होते हैं। जिस प्रकार भूख (मिटाने) के हेतु आक के फल खाने पर रुचि (स्वाद) नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार श्रीहरिलीला-हीन काव्य पढ़ने पर भले पाठक की, सुनने पर श्रोता की सदभिरुचि नष्ट हो जाती है। ५ वे ही लोग धन्य हैं, धन्य हैं, जो श्रीहरि के ध्यान में लीन हुए होते हैं। जो घर-गिरस्ती में श्रीहरि-लीला का श्रवण करते हैं, वे ही धन्य हैं। ६ जो पाखंडी और कुतर्कवादी हों, उनसे यह (श्रीहरि-कथा) कभी न कहें। जिस प्रकार नवज्वर से पीड़ित व्यक्ति पर दूध बुरा प्रभाव डालता है और तत्काल उसे मृत्यु को प्राप्त कराता है, उसी प्रकार ऐसे लोगों को यह श्रीहरि-कथा सुनाना मानो मृत्यु का अनुभव कराने जैसा होता है। ७

अस्तु। आठवें अध्याय में (यह कहा गया कि) कृपावान भगवान ने (अपने) विश्वरूप का दर्शन कराया, रमानाथ (विष्णु के अवतार कृष्ण) ने अपनी माता को असंख्य रूप दिखा दिये। ८ हे भक्तजनो, इसके पश्चात् जो कुछ घटना हो गयी, उसे आदरपूर्वक सुनिए, जिसे सुनने पर कलियुग में घटित दारुण पाप (जलकर) भस्म हो जाएँगे। ९ एक दिन सवेरे यशोदा सुन्दरी उठकर बिछौने पर जो सोये हुए थे, उन वनमाली के

उठोनि यशोदा वेल्हाळी। शेजेसी निजला वनमाळी। मुख न्याहाळी तयाचें। १० मुखावरूनि वस्त्र काढिलें। सायेनें हरिमुख न्याहाळिलें। पातीं ढाळूं विसरले डोळे। रूप सांवळे देखोनि। ११ सुकुमार घनश्याम मूर्ती। कर्णीं कुंडलें झळकती। ते पाहतां यशोदा सती। चित्तवृत्ति तन्मय। १२ श्रीकृष्णाच्या मुखावरूनी। निंबलोण करी जननी। म्हणे धन्य मीच त्रिभुवनीं। निजभाग्य परिपूर्ण। १३ याउपरी यशोदा सुंदरी। मंथन आरंभी निजमंदिरीं। जिचे उदरीं जन्मला हरी। स्वरूप तिचें कोण वर्णी। १४ मणिमय स्तंभ विराजित। पुढें मंथनडेरा घुमत। अवक्र रवी असे फिरत। मांजिरीं तळपत कनकवर्णी। १५ छंदें घुसळी यशोदा सती। कनककंकणें रुणझुणती। पुढें रत्नजडित दोरे झळकती। तेजें तळपती रत्नकिळा। १६ माथां मोतियांची जाळी। त्यांत चंद्रसूर्यांची प्रभा आगळी। दिव्य कुंकुम निढळीं। विशाळनेत्री यशोदा। १७ वदन वेल्हाळ गौरवर्णी। मुक्तघोंस डोलती श्रवणीं। नासिकीं मोतीं सुपाणी। उणें आणी नक्षत्रां। १८

मुख को निहारने लगी १० उसने उनके मुख पर से (उढ़ावन-स्वरूप) वस्त्र को हटा लिया और आत्मीयतापूर्वक श्रीहरि के मुख को निहारा। उस श्यामरूप को देखते ही उसके नयन पलकों को झपकाना भूल गये (अर्थात वह अपलक देखने लगी)। ११ वे सुकुमार घनश्याम मूर्तिस्वरूप थे। उनके कानों में कुण्डल चमक रहे थे। उन्हें देखते ही सती यशोदा की चित्तवृत्ति तन्मय हो गयी। १२ (फिर) माता (यशोदा) ने श्रीकृष्ण के मुख पर से राईनोन उतार लिया। वह बोली, त्रिभुवन में मैं ही धन्य हूँ। मेरे भाग्य परिपूर्ण हैं। १३ इसके पश्चात् सुन्दरी यशोदा ने अपने घर में मन्थन आरम्भ किया। जिसके उदर से श्रीहरि ने जन्म ग्रहण किया, उसके स्वरूप का वर्णन कौन कर सकता है। १४ (उस घर में) मणिमय स्तम्भ विराजमान था। सामने मन्थन का घड़ा गूँज रहा था। सीधी मथानी घूम रही थी। सोने के वर्ण वाली (स्वर्णिम रंग की) मन्थन-डोरी जगमगा रही थी। १५ सती यशोदा अपनी ही धुन में मथ रही थी। उसके स्वर्ण-कंकण रुनझुना रहे थे। सामने रत्न-जटित डोर जगमगा रहे थे। रत्न की (बनी) कीलें तेज से जगमगा रही थीं। १६ उसके माथे पर मोतियों की जाली थी। उन (मोतियों) में चन्द्र और सूर्य की अनोखी प्रभा (दिखायी दे रही) थी। भाल पर दिव्य कुंकुम (का तिलक) था। (ऐसी वह) यशोदा विशाल-नेत्रा थी। १७ उसका वदन सुन्दर, गौरवर्णीय (गोरा) था। मोतियों के गुच्छे कानों से झूमते थे। नाक में अच्छे पानी से युक्त (कान्तिमान) मोती था। वे तारों को तेज में न्यूनत्व को प्राप्त कराते थे। १८ कमलापति (विष्णु के अवतार कृष्ण) की जो (यशोदा) माता थी, उसके भाल पर चन्द्रकला नामक

जे जननी होय कमलावरा। तिच्या निढळीं झळके बिजवरा। हिरे खाणीं जैसे अवधारा। वदनीं द्विज झळकती। १९ चपळा झळके अंबरीं। तैसें दिव्य वस्त्र नेसली सुंदरी। रत्नजडित कंचुकी करीं। मंथितां सांवरी यशोदा। २० कृष्णमाय ते ज्ञानकळा। जिच्चे पोटीं हरि अवतरला। तिनें मंथना आरंभ केला। विचार मांडिला सारासार। २१ पिंडब्रह्मांड अवघें असार। हरिस्वरूप खरें निर्विकार। मिथ्या मायाओडंबर। नव्हे स्थिर कदापि। २२ जैसी गारुडियाची विद्या। क्षणिक अवघी अविद्या। शरण रिघावें जगद्वंद्या। तरी ब्रह्मविद्या ठसावे। २३ असो ऐसें माया मंथित। सार वरी आलें नवनीत। सोहंभावें डेरा घुमत। विपरीतार्थ सांडोनि। २४ ऐसें मंथित असतां जननी। जागा जाहला कैवल्यदानी। यशोदेजवळी येऊनी। रविदंड धरियेला। २५ आधीं मज देईं स्तनपान। म्हणोनि खोळंबविलें मंथन। यशोदा तेथेंचि पुढे घेऊन। पाजी स्तन यादवेंद्रा। २६ आला प्रेमाचा पान्हा। पाजितां अवलोकी कृष्णवदना।

आभूषण चमक रहा था। सुनिए, उसके वदन में खान के हीरों जैसे दाँत जगमगा रहे थे। १९ जैसे आकाश में बिजली चमकती है, उस सुन्दरी ने वैसा चमकदार दिव्य वस्त्र पहना था। उसकी कंचुकी रत्न-जटित थी। यशोदा मन्थन करते हुए उस (वस्त्र) को सँवार रही थी। २० जिसके उदर से श्रीहरि अवतरित हो गये, वह कृष्ण की माता (मानो) ज्ञान-कला थी। उसने मन्थन आरम्भ किया। उसने (मानो) सार-असार का विचार प्रस्तुत किया। २१ समस्त पिण्ड ब्रह्माण्ड असार (सारहीन, निरर्थक) है, जबकि श्रीहरि का स्वरूप सचमुच निर्विकार है। यह पिण्ड-ब्रह्माण्ड मिथ्या है, माया का आड़म्बर है; वह कदापि स्थिर (अक्षय, शाश्वत) नहीं हो सकता। २२ जिस प्रकार जादूगर की विद्या (वस्तुतः) क्षणिक तथा पूरी-पूरी अविद्या होती है, उसी प्रकार यह पिण्ड-ब्रह्माण्ड क्षणिक और अविद्यामय होता है। (इसलिए) जगद्वन्द्य भगवान की शरण में जाएँ, तो ही ब्रह्मविद्या (ब्रह्म-ज्ञान) ठीक से जम जाएगी। २३ अस्तु। इस प्रकार माता मन्थन कर रही थी। तब नवनीत के रूप में सार तत्त्व ऊपर आ गया। 'सोऽहम् (मैं वह ब्रह्म हूँ)'—भाव से मटका विपरीत अर्थ का त्याग करके गूँज रहा था। २४ जननी इस प्रकार जब मथ रही थी, तब कैवल्यदाता कृष्ण जग गये और माता के पास आकर उन्होंने मथानी का डण्डा पकड़ लिया। २५ 'मुझे पहले स्तन-पान कराओ' कहते हुए उन्होंने मन्थन को रोक लिया; तो यशोदा वहीं पास में लेकर यादवेन्द्र को स्तन-पान कराने लगी। २६ उसके प्रेम से स्तनों में दूध उमड़ आया (अथवा उसका प्रेम उमड़ आया)। उन्हें पिलाते-पिलाते हुए वह उनका मुख निहारने लगी। धन्य है, धन्य है, वह नन्द की अंगना

धन्य धन्य ते नंदांगना। राजीवनयनाकडे पाहे। २७ मनीं विचारी भगवंत। म्हणे मातेचें मजवरी आहे चित्त। किंवा प्रपंचीं असे गुंतत। हेंचि सत्य पाहूं आतां। २८ त्रिभुवनचालक जगन्मोहन। मायातीत शुद्ध चैतन्य। तेणें जातवेद चेतवून। दुग्ध उतोन दवडिलें। २९ अग्निसंगें दुग्ध करपतां। जननीस तो वास येतां। लोटोनि दिल्हें कृष्णनाथा। गेली माता त्वरेनें। ३० कृष्ण परब्रह्म रूपडें। माया टाकोनि गेली दुग्धाकडे। परमार्थ टाकूनि प्रपंचाकडे। प्रीति जैसी जनांची। ३१ टाकूनि सुवर्ण सुंदर। जन जतन करिती खापर। सुरतरु सांडोनि पामर। कंटकवृक्ष आलिंगिती। ३२ परमामृत टाकूनि पूर्ण। बळेंचि जाऊनि पिती धुवण। तैसाचि टाकूनि नारायण। माया गेली घरांत। ३३ तों दुग्ध गेलें उतोन। यशोदा जाहली क्रोधायमान। तों बाहेर क्षीराब्धिजारमण। कौतुक करी तें ऐका। ३४ कीं प्रेमपान्हा न पाजूनी। मज टाकूनि गेली जननी। म्हणोनि कृष्णें पाषाण घेऊनी। मंथनडेरा फोडिला। ३५ दहीं वाहूनियां गेलें। पुढें जगन्नाथें काय केलें। चिमणे बाळक मेळविले। आपणाभोंवते तेधवां। ३६ काष्ठाचें उंच उखळ।

यशोदा, जो राजीव-नयन बालकृष्ण की ओर (इस प्रकार) देख रही थी। २७ तो भगवान ने मन में विचार किया। उन्होंने कहा— मैं अब सचमुच यह देखूँगा कि माता का चित्त मुझमें (लगा हुआ) है या घर-गिरस्ती (दुनियादारी) में उलझा रहा है। २८ (ऐसा सोचकर) त्रिभुवन के चालक जगन्मोहन मायातीत शुद्ध चैतन्य (स्वरूप कृष्ण) ने (माया से) आग को (अधिक) सुलगाकर दूध को उफना डाला। २९ आग में दूध के जल जाने से उसकी गन्ध माता को आते ही उसने कृष्णनाथ को (अपनी गोद में से) धकेल दिया और वह (माता) झट से चली गयी। ३० परब्रह्म के (साक्षात्) सुन्दर रूप कृष्ण को छोड़कर माता दूध की ओर चली गयी, जैसे लोगों का प्रेम परमार्थ का त्याग करके घर-गिरस्ती की ओर (लग) जाता है। ३१ लोग सुन्दर सुवर्ण त्यागकर खप्पर को सुरक्षित रख लेते हैं। पामर (जन) कल्पवृक्ष छोड़कर किसी काँटेदार पेड़ को गले लगाते हैं (प्रेम से उसका रक्षण करते हैं)। ३२ परम श्रेष्ठ अमृत पूर्णतः छोड़कर वे बलात् जाकर धोवन पीते हैं, उसी प्रकार (भगवान्) नारायण (कृष्ण) को छोड़कर माता घर के अन्दर चली गयी। ३३ तब दूध उफन (कर फैल) गया था। (यह देखकर) यशोदा क्रुद्ध हो गयी। फिर (क्षीरसागर-कन्या-) लक्ष्मी-पति ने बाहर (जो) लीला (प्रदर्शित) की, उसे सुन लीजिए। ३४ अथवा प्रेम से दूध न पिलाकर माँ मुझे छोड़कर चली गयी है —इसलिए कृष्ण ने पत्थर लेकर मन्थन का मटका फोड़ डाला। ३५ (फलतः) दही बह गया (फैल गया)। फिर जगन्नाथ (कृष्ण) ने क्या किया ? (सुनिए)। तब उन्होंने नन्हे-नन्हे

पालथें घाली तमाळनीळ। यशोदेनें नवनीत निर्मळ। संचित ठेविलें होतें पैं। ३७ शिकीं घालोनि हात। कवळ नवनीताचे काढीत। भोंवते अर्भकांस देत। आपण सेवीत लवलाहें। ३८ गडियांसी म्हणे लवकर भक्षा। माय येतां करील शिक्षा। ऐसें बोलतां कमळपत्राक्षा। काय अपूर्व वर्तलें। ३९ मंथनडेरा फोडिला घननीळें। नवनीतही सकळ सारिलें। दुग्ध घरांत उतोन गेलें। कार्य नासलें चहूंकडे। ४० यशोदा न सोडिती भगवंता। तरी हा नाश कासया होता। श्रीकृष्णासी अंतर पडतां। मग अनर्था उणें काय। ४१ भगवंतीं मिठी घालितां सप्रेम। प्रपंचचि होय परब्रह्म। तो भक्तांचा पुरवी काम। आत्माराम सर्वेश। ४२ असो दुग्ध उतलें म्हणोनी। परम क्रोधायमान जननी। म्हणे कृष्णें बाहेर काय करणी। केली असेल कळेना। ४३ म्हणोनि वेताटी हातीं घेऊनी। बाहेर आली नंदराणी। तों दहीं वाहोनि गेलें आंगणीं। आणि नवनीतही सारिलें। ४४ देखतांचि जननी। उडी टाकोनि चक्रपाणी। पळाला बाळें घेऊनी। नंदपत्नी पाठीं

बालकों को अपने चारों ओर (अपने पास) इकट्ठा किया। ३६ (वहाँ) काठ का ऊँचा ऊखल था। तमालनील कृष्ण ने उसे औंधा (उलटा) कर दिया। (उधर ऊपर छींके में) यशोदा ने शुद्ध मक्खन इकट्ठा कर रखा था। ३७ उस छींके में हाथ डालकर उन्होंने मक्खन के गोले निकाल लिये और चारों ओर इकट्ठा हुए बच्चों को दे दिये और झट से स्वयं खा लिये। ३८ वे साथियों से बोले, 'झट से खा डालो। आकर माँ दण्ड देगी।' कमलदलाक्ष बालकृष्ण के ऐसा बोलते ही क्या अद्भुत घटित हुआ ? । ३९ घननील कृष्ण ने मन्थन-घड़ा फोड़ डाला, समस्त मक्खन भी (खाकर) समाप्त कर डाला। (उधर) घर के अन्दर दूध उफनकर फैल गया। (इस प्रकार) चारों ओर (माँ का) काम बिगड़ गया। ४० यदि यशोदा भगवान को न छोड़ देती, तो यह विनाश किसलिए (क्यों) हो जाता। श्रीकृष्ण से अन्तर को प्राप्त हो जाने पर फिर विपत्ति (के आने) में क्या न्यून रहेगा। ४१ प्रेम के साथ भगवान को गले लगाने पर घर-गिरस्ती ही परब्रह्म हो जाती है। फिर वह (परब्रह्म) आत्माराम सर्वेश भक्तों की कामनाओं को पूर्ण कर देता है। ४२ अस्तु। दूध उफन गया, इसलिए (इधर) जननी परम क्रोधायमान हो गयी। वह बोली, 'समझ में नहीं आ रहा है कि कृष्ण ने बाहर क्या करतूत की होगी।'। ४३ इसलिए हाथ में बेंत लेकर नन्द-रानी बाहर आ गयी, तो (उसे दिखायी दिया कि) आँगन में दही बह (कर फैल) गया है और मक्खन भी समाप्त किया गया है। ४४ माता को देखते ही चक्रपाणि कृष्ण छलाँग लगाकर बच्चों को लिये हुए भाग गये। तो नन्द-रानी (उनका) पीछा करने लगी। ४५ हाथ में बेंत लिये हुए सती यशोदा गली में दौड़

लागे । ४५ वेताटी घेऊनि हातीं । बिदीं धांवे यशोदा सती । तंव तो चपळ श्रीपती । कोणासही न सांपडे । ४६ शोधितां न सांपडे वेदशास्त्रां । ठायीं न पडे द्विसहस्रनेत्रा । वर्णितां न पवे चतुर्वक्त्रा । पंचमुखा दुर्लभ । ४७ निराहारी फलाहारी । नग्न मौनी जटाधारी । बहु शोधिती गिरिकंदरीं । परि श्रीहरि न सांपडे । ४८ नाना तीर्थें हिंडतां । बहु विद्या अभ्यास करितां । पंचाग्निसाधन साधितां । परी तो कदा न लाभेचि । ४९ हरि नातुडे बळवंता । न चढे धनवंताच्या हाता । चतुःषष्टि कला दावितां । ठायीं तत्त्वतां पडेना । ५० एक सद्भावाविण । हातीं न लाभे जगज्जीवन । प्रेमाविण मनमोहन । कोणासही न सांपडे । ५१ प्रेमाविण कायसें ज्ञान । प्रेमाविण व्यर्थ ध्यान । प्रेमाविण जें गायन । व्यर्थ जैसें गोरियाचें । ५२ प्रेमाविण व्यर्थ पूजा । कदा नावडे अधोक्षजा । प्रेमाविण अभ्यास सहजा । व्यर्थ सर्व विद्येचा । ५३ एक नसतां प्रेमकळा । त्याविण अवघ्या त्या विकळा । शरण न रिघतां तमाळनीळा । सकळ साधनें व्यर्थचि । ५४

रही थी । तब श्रीपति तो चपल थे, वे किसी को भी नहीं मिलते । ४६ खोजते रहने पर वेद-शास्त्रों को (भी) वे नहीं मिलते । दो सहस्र आँखों वाले भगवान शेष को (भी दिखायी देकर उनका) पता नहीं चलता । चार मुखों वाले ब्रह्मा द्वारा वर्णन नहीं किया जा पाता । पाँच मुखों वाले शिवजी के लिए (भी) वे दुर्लभ हैं । ४७ निराहार रहनेवाले, (केवल) फलों का आहार ग्रहण करके रहनेवाले, नग्न, मौन धारण करनेवाले, जटाधारी तपस्वी पर्वत की कन्दराओं में बहुत खोजते रहते हैं; फिर भी श्रीहरि उन्हें नहीं मिलते । ४८ नाना तीर्थस्थलों में भ्रमण करते रहने पर, विद्याओं का बहुत अध्ययन करते रहने पर, पंचाग्नि साधना करते रहने पर भी वे (उन साधकों को) कभी भी नहीं मिलते । ४९ श्रीहरि बलवान को नहीं मिलते, वे धनवान के हाथ नहीं आते; चौसठ कलाएँ (आत्मसात् करके उनको) प्रदर्शित करने पर भी सचमुच उनका पता नहीं चलता । ५० बिना एक मात्र सद्भाव (भक्ति) के जगज्जीवन परब्रह्म हाथ नहीं लगते । बिना प्रेम (भक्तिभाव) के मनमोहन (परब्रह्मस्वरूप) कृष्ण किसी को भी नहीं मिल सकते । ५१ (भगवत्-) प्रेम के बिना कैसा ज्ञान ? प्रेम के बिना ध्यान व्यर्थ होता है । बिना प्रेम के जो (भगवत्-लीला-) गायन किया जाए, वह वैसा ही व्यर्थ होता है, जैसे बहेलिया का होता है । ५२ बिना प्रेम के पूजा व्यर्थ होती है । वह भगवान अधोक्षज कृष्ण को कभी भी अच्छी नहीं लगती । बिना प्रेम के विद्या का समस्त अध्ययन स्वाभाविक रूप से ही व्यर्थ होता है । ५३ एक प्रेम (स्वरूपा कला) के न होने पर, उसके बिना समस्त कलाएँ विकला अर्थात फीकी होती हैं । तमालनील भगवान कृष्ण की शरण में न जाने पर समस्त साधनाएँ व्यर्थ ही

स्त्री सर्वलक्षणीं सुंदर पूर्ण। परी पतिसेवेसी नाहीं मन। तिचें चातुर्य शहाणपण। व्यर्थचि काय जाळावें। ५५ गळसरीविण अलंकार। भूतदयेविण आचार। कीं रविशशीविण अंबर। तमें जैसें व्यापिलें। ५६ कीं गुरुकृपेविण ज्ञान। कीं आवडीविण भजन। कीं गृहस्वामिणीविण सदन। व्यर्थ जैसें भणभणित। ५७ कीं रायाविण परिवार। कीं नासिकेविण जैसें वक्त्र। तैसा प्रेमाविण स्मरारिमित्र। कदाकाळीं न सांपडे। ५८ असो धांवता यशोदा सती। कदा नाटोपे श्रीपती। म्हणे हरि आतां गृहाप्रती। कैसा येसील तें पाहूं। ५९ माता धांवतां श्रमली। स्वेदबिंदु दिसती भाळीं। तें देखोनि वनमाळी। कृपा दाटली हृदयांत। ६० इणें बहुत जन्म तप केलें। जन्मोजन्मीं प्रेमें बांधिलें। म्यां सगुण रूप धरिलें। भक्ति देखोनि इयेची। ६१ श्रीकृष्ण सुहास्यवदन। मातेकडे पाहे कृपेंकरून। तों यशोदेनें धांवोन। हस्त धरिला हरीचा। ६२ हस्तीं धरूनि वेताटी।

होती हैं। ५४ कोई स्त्री समस्त (सु-) लक्षणों से युक्त हो, पूर्णतः सुन्दर हो, परन्तु पति की सेवा में उसका मन नहीं हो, तो उसकी चतुराई तथा समझदारी व्यर्थ ही लेकर क्या जला दें। ५५ जिस प्रकार मंगलसूत्र के बिना (अन्य) आभूषण (स्त्री के लिए व्यर्थ) होते हैं, बिना भूतदया के आचार-व्यवहार (व्यर्थ) होते हैं, अथवा बिना सूर्य और चन्द्र के आकाश अन्धकार द्वारा जिस प्रकार व्याप्त किया जाता है, अथवा बिना गुरु-कृपा के ज्ञान (व्यर्थ) होता है, अथवा बिना रुचि (चाव या प्रेम) के भजन (व्यर्थ) होता है, अथवा बिना गृह-स्वामिनी (घरनी) के जिस प्रकार घर व्यर्थ तथा सूना-सूना जान पड़ता है, अथवा बिना राजा अर्थात गृह-स्वामी के परिवार (व्यर्थ) होता है, अथवा बिना नाक के मुख (अशोभनीय) होता है, उसी प्रकार बिना प्रेम के (समस्त साधनाएँ व्यर्थ होती हैं, और) कामदेव के शत्रु शिवजी के मित्र भगवान विष्णु अर्थात् कृष्ण किसी भी समय (ऐसे साधकों को) नहीं मिलते। (५६-५८) अस्तु। सती यशोदा के (पीछा करते हुए) दौड़ते रहने पर भी श्रीपति कृष्ण कभी भी रोके नहीं जा रहे थे (पकड़ में नहीं आ रहे थे)। वह बोली, ' रे हरि, देखती हूँ, तू अब घर की ओर कैसे आता है।'। ५९ माता दौड़ते-दौड़ते थक गयी। उसके भाल पर पसीने की बूँदें दिखायी दे रही थीं। वनमाली द्वारा यह देखने पर उनके हृदय में (माता के प्रति) दया उमड़ उठी। ६० (उन्होंने सोचा—) इसने बहुत जन्म तपस्या की, जन्म-जन्म में (मुझे) प्रेम (बन्धन) में आबद्ध किया; इसकी भक्ति को देखकर मैंने यह सगुण रूप धारण किया है। ६१ सुहास्य से युक्त मुख वाले श्रीकृष्ण ने माता की ओर कृपा के साथ देखा। त्योंही यशोदा ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया। ६२ उसने हाथ में बेंत लेकर अपनी दृष्टि को परम क्रोधयुक्त

केली परम क्रोधदृष्टी। तें देखोनि जगजेठी। कांपतसे थरथरां। ६३ करूनियां दीन वदन। जगज्जीवन करी रुदन। नेत्रींच्या जीवनेंकरून। जात वाहून काजळ। ६४ वेत उगारितां जननी। वरी पाणी करी चक्रपाणी। श्रीमुख करूनि दीनवाणी। स्फुंदस्फुंदोनी रडतसे। ६५ वेत उगारीत जननी। परी न हाणवे तियेनी। तो ब्रह्मानंद कैवल्यदानी। जो श्रुतीचेनि न वर्णवे। ६६ मग करीं धरूनि चक्रपाणी। निज मंदिरा गेली जननी। म्हणे यासी उखळीं बांधोनी। शिक्षा लावीन मी आतां। ६७ तों बहुत गौळिणी आल्या तेथें। म्हणती दृढ बांधा या चोरातें। दावें आणोनि स्वहस्तें। नंदराणी बांधीतसे। ६८ झाली गौळिणींची दाटी। मंदमंद रडे जगजेठी। दावें वेष्टिलें कटीं। उखळासमवेत मायेनें। ६९ काकुळती येतो हरी। म्हणे आजिच्यानें मी न करीं चोरी। म्हणोन वैकुंठपीठविहारी। दीनवदन बोलतसे। ७० जो अनंत पुराण पुरुषोत्तम। जो अनादि निर्गुण अनाम। जो मायातीत अगम्य। त्यासी कोण बांधील। ७१ तो दावें न पुरे बांधाया। दुसरें जोडी त्यास माया। तेंही न पुरे म्हणोनियां। तिसरें

कर दिया। वह देखकर जगत्श्रेष्ठ थरथर काँप उठे। ६३ फिर जगज्जीवन ने मुख को दीन बनाते हुए रुदन आरम्भ किया। उनके नेत्रों के (अश्रु-) जल से काजल बह जाने लगा। ६४ माता द्वारा बेंत को ऊपर उठाये जाने पर चक्रपाणि कृष्ण ने हाथ ऊपर उठा लिया। वे अपने श्रीमुख को दैन्य से युक्त करके सुबक-सुबककर रोने लगे। ६५ जननी ने बेंत को तो (ऊपर उठाकर) सम्हाल लिया, फिर भी उससे उन्हें मारा नहीं जा रहा था। वे तो आनन्दस्वरूप ब्रह्म थे, कैवल्यदाता थे, जिनका वर्णन श्रुतियों द्वारा भी नहीं किया जा पाता। ६६ फिर चक्रपाणि कृष्ण का हाथ पकड़कर जननी यशोदा अपने घर चली गयी। वह बोली (उसने सोचा)—'मैं अब इसे ऊखल से बाँधकर दण्ड दूँगी।'। ६७ तब बहुत गोपियाँ वहाँ आ गयीं। वे बोलीं—'इस चोर को दृढ़तापूर्वक बाँध लो।' (फिर) पगहा लाकर नन्द-रानी अपने हाथों से उन्हें बाँधने लगी। ६८ (वहाँ) गोपियों की भीड़ हो गयी। जगत्श्रेष्ठ कृष्ण हलके-हलके (स्वर में) रो रहे थे। (फिर भी) माता ने ऊखल के साथ उस पगहे को (उनकी) कमर में लपेट लिया। ६९ (इसपर) श्रीहरि गिड़गिड़ाने लगे। वे बोले—'आज से मैं चोरी नहीं करूँगा।' ऐसा कहते हुए वैकुण्ठपीठविहारी कृष्ण दीन-वदन होकर बोल रहे थे। ७० (वस्तुतः) जो (कृष्ण) अनन्त हैं, पुराणपुरुषोत्तम हैं, जो अनादि, निर्गुण और अनाम हैं, जो मायातीत और अगम्य हैं, उन्हें कौन बाँध पाएगा। ७१ फिर वह पगहा बाँधने के लिए पर्याप्त नहीं हुआ। (इसलिए) माता ने उसमें दूसरा जोड़ लिया। वह भी पर्याप्त नहीं हो गया, इसलिए तीसरा लाकर उसमें लगा

आणोनि लाविलें । ७२ दोन बोटें उणें येतें । म्हणोनि लाविलें दावें चौथें । नाकळेचि चौघांतें । सहा त्यातें न पुरती । ७३ बारा सोळा अठरा । न पुरतीच जगदुद्धारा । पंचविसांच्या विचारा । न ये खरा गोविंद । ७४ गोपिका दावें आणूनि देती । हांवे पेटली यशोदा सती । नव लक्ष दावीं न पुरती । अगाध कीर्ति हरीची । ७५ पावावया स्वरूपप्राप्ती । असंख्य वेदश्रुती गर्जती । तैशा गौळिणी हरीस बांधिती । बहुत करिती गलबला । ७६ मातेकडे पाहे गोविंद । नेत्र चोळी रडे मंद । भोंवता गौळिणींचा वृंद । दाटोदाटीं झोंबतो । ७७ बांधिती नवलक्ष गोकंठपाश । तरी नाकळेचि परमपुरुष । हा पूर्णब्रह्म सर्वेश । हें मायेस न स्मरे । ७८ माता न करीच विचारा । बांधीन म्हणे विश्वोद्धारा । कृपा आली यादवेंद्रा । बांधों द्यावें म्हणे आतां । ७९ तों दावें पुरलें अकस्मात । दृढ ग्रंथि माया

लिया । ७२ वह (भी) दो उँगलियाँ कम आता था, इसलिए चौथा पगहा लगा लिया । (फिर भी) वे (कृष्ण) चारों की पकड़ में भी नहीं आ रहे थे । छः (पगहे) उनके लिए पर्याप्त नहीं हो गये । जगत् के उद्धारक के लिए बारह, सोलह, अठारह पर्याप्त नहीं हो रहे थे । सचमुच गोविन्द पचीसों के विचारों में— समझ में नहीं आते[1] । ७३-७४ गोपियाँ पगहे (ला-) लाकर देती रहीं, सती यशोदा भी ज़िद पकड़ गयी थी । नौ लाख पगहे पर्याप्त नहीं हो गये । (इस प्रकार) श्रीहरि की कीर्ति अथाह है । ७५ (ब्रह्म-) स्वरूप की प्राप्ति को प्राप्त हो जाने के लिए असंख्य वेद-श्रुतियाँ गरजती रहती हैं, उसी प्रकार गोपियाँ हरि को बाँध (लेने का यत्न कर) रही थीं और बहुत कोलाहल कर रही थीं । ७६ गोविन्द ने माता की ओर देखा । वे आँखों को मल रहे थे, हलके-हलके रो रहे थे (और उनके) चारों ओर गोपियों का समुदाय घिसपिचकर खींचातानी कर रहा था । ७७ उन्होंने नौ लाख गोकण्ठपाश अर्थात् पगहे बाँध लिये, फिर भी परमपुरुष कृष्ण बाँधे नहीं जा रहे थे । माता को यह स्मरण नहीं आ रहा था कि ये (कृष्ण वस्तुतः) पूर्णब्रह्म सर्वेश हैं । ७८ माता (बिल्कुल) विचार ही नहीं कर रही थी । वह कह रही थी (चाह रही थी)— मैं (विश्व के उद्धारक) कृष्ण को बाँध लूँगी । (उसकी दयनीय स्थिति देखकर) यादवेन्द्र कृष्ण को उस पर दया आयी और उन्होंने कहा (सोचा)— अब बाँध दिया जाए । ७९ त्योंही अचानक पगहा पर्याप्त हो गया, तो माता ने दृढ़ (पक्की) गाँठ लगा दी । चारों ओर (खड़ी होकर) गोपियाँ

[1] यहाँ कवि ने व्यंजना से यह कहा है कि भगवान कृष्ण अथवा ब्रह्म को जानने के लिए चारों वेदों, समस्त कलाओं, अठारह पुराणों ने यत्न किया, मूल प्रकृति आदि पचीस तत्त्वों के आधार से उसे समझ लेने का प्रयास किया गया, फिर भी वह ब्रह्म पकड़ में नहीं आ सका ।

देत। गौळिणी भोंवत्या हांसत। कैसें आतां निजचोरा। ८० बहुत लोकांस तुवां पीडिलें। त्याचें उटें आज निघालें। मातेनें तुज बांधिलें। आतां कैसा जासील। ८१ गौळिणींस म्हणे नंदांगना। तुम्ही जा आपुल्या सदना। आंगणीं टाकूनि मनमोहना। माया गेली गृहांत। ८२ कोणी न दिसे आंगणीं। पुराणपुरुष कैवल्यदानी। उखळ ओढीत मेदिनीं। हळूहळू नेतसे। ८३ चंडवृक्ष नंदांगणीं। यमलार्जुननामें दोन्ही। ते नारदें पूर्वीं शापोनी। वृक्षजन्मा घातले। ८४ हे पूर्वीं कुबेरपुत्र। नांवें मणिग्रीव नलकूबर। परम उन्मत्त अविचार। सारासार कळेना। ८५ नग्न होऊनि स्त्रियांसमसेत। जलक्रीडा दोघे करीत। तों नारदमुनि अकस्मात। त्याचि पंथें पातला। ८६ दृष्टीं देखिला ब्रह्मसुत। परी ते विषयांध उन्मत्त। परम अविचारी शंकारहित। नारदें ते देखिले। ८७ आधींच तारुण्यमदें मातले। त्याहीवरी मद्यपान केलें। विशेष शब्दज्ञान शिकले। बोलों न

हँस रही थीं (और कह रही थीं—) ‘ स्वरूपचोर, अब कैसा लगता है ? (अपने स्वरूप को छिपाये रखनेवाले, परस्पर भेद-भाव नष्ट कर देनेवाले, अब कैसे लगता है ?) । ८० तुमने बहुत लोगों को पीड़ित किया है। उसका भुगतान आज हो गया। माता ने तुम्हें बाँध लिया है, अब कैसे जाओगे। ’। ८१ (तदनन्तर) नन्द की स्त्री यशोदा ने गोपियों से कहा— ‘ तुम अपने (-अपने) घर जाओ। ’ (फिर) मनमोहन कृष्ण को (वैसे ही) आँगन में छोड़कर माता घर के अन्दर गयी। ८२ (अब) आँगन में कोई नहीं दिखायी दे रहा था। तो पुराणपुरुष कैवल्यदाता भूमि पर से ऊखल खींचकर ले जाने लगे। ८३ नन्द के आँगन में अर्जुन नामक दो प्रचण्ड वृक्ष थे[1]। पूर्वकाल में उन दोनों को नारद ने अभिशाप देकर वृक्षयोनि में डाल दिया। ८४ ये पूर्वकाल में कुबेर के पुत्र थे। उनके नाम मणिग्रीव और नलकूबर थे। वे परम उन्मत्त हो गये थे। उन्हें सार-असार (भला-बुरा) समझ में नहीं आता था। ८५ (एक समय) वे दोनों नग्न होकर स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। तब (वहाँ) नारद मुनि सहसा उसी मार्ग से आ पहुँचे। ८६ उन्होंने आँखों से ब्रह्मा के उन पुत्रों को देख लिया। फिर भी वे विषयान्ध तथा उन्मत्त हो गये थे, परम अविवेकी और भय-रहित हो गये थे। नारद ने उन्हें (इस स्थिति में) देखा। ८७ पहले ही वे युवावस्था रूपी मद से मत्त हो गये थे; तिस पर उन्होंने मद्यपान किया था, (फिर) वे विशेष रूप से शब्दज्ञान को सीख चुके थे। (अतः) किसी को (अपने सामने विरोध में) वे बोलने

१ यमलार्जुन…नलकूबर— श्रीमद्भागवत पुराण (स्कन्द १०, अध्याय १०) के अनुसार नारद मुनि ने मणिग्रीव और नलकूबर नामक कुबेर के पुत्रों को अभिशाप दिया था— वे दोनों जुड़वाँ अर्जुन (यमलार्जुन) वृक्षों के रूप में उत्पन्न हो गये थे।

देती कोणातें। ८८ त्याहीवरी भाग्यमद। स्त्रीसंगें झाले विषयांध। तेचि चांडाळ भाग्यमंद। जे अपमानिती साधूंतें। ८९ आम्ही जाणते सर्वज्ञ। म्हणोनि संतांसी ठेविती दूषण। ऐसियांसी संतीं दंडून। शुद्ध मार्गीं लावावें। ९० जो पिशाच जाहला निश्चितीं। त्यासी पंचाक्षरी दृढ बांधिती। तैसे दुष्ट दंडून संतीं। भजनस्थितीं लावावे। ९१ असो नारदें कोपोनी। ते दुष्ट शापिले तेच क्षणीं। म्हणे दोघे वृक्ष होवोनी। जडमूढदशा पावाल। ९२ ऐसें ऐकतांचि वचन। दोघीं धरिले नारदाचे चरण। म्हणती स्वामी शापमोचन। देऊनि वरदान करावें। ९३ मग नारद बोले ते वेळीं। तुम्ही वृक्ष व्हाल गोकुळीं। रांगत येईल वनमाळी। उद्धरील उभयांतें। ९४ त्यांच्या करावया उद्धार। उखळ ओढीत यादवेंद्र दोन्ही वृक्षांतून सर्वेश्वर। रमावर चालिला। ९५ वृक्षसंधीं अडकलें उखळ। एकांत देखोनि वैकुंठपाळ। दोन्ही वृक्ष सबळ। बळें उन्मळोनि पाडिले। ९६ तो दोन्ही वृक्षांमधूनी। दोन पुरुष निघाले तेच क्षणीं। उभे ठाकले कर जोडोनी। हरिस्तवनीं प्रवर्तले। ९७ वैकुंठपालका परमपुरुषा।

नहीं देते थे। ८८ तिसपर भाग्य का मद (नशा चढ़ा हुआ) था। (फिर) स्त्रियों की संगति में विषयान्ध हो गये थे। जो साधुओं को अपमानित करते हैं, वे ही चण्डाल मन्द भाग्य वाले अर्थात अभागे होते हैं। ८९ 'हम ज्ञाता (या समझदार) हैं, सर्वज्ञ हैं।' ऐसा कहकर (मानकर) वे सन्तों को दोष देते हैं। सन्त ऐसों को दण्ड देकर शुद्ध मार्ग पर चला दें। ९० जो निश्चय ही पिशाच हो गया है, उसे ओझा दृढ़ बाँध लेते हैं। उसी प्रकार सन्त दुष्टों को दण्डित करके उन्हें भक्ति की स्थिति (मार्ग) में लगा दें। ९१ अस्तु। नारद ने क्रुद्ध होकर उसी क्षण उन दुष्टों को अभिशाप दिया। वे बोले— '(तुम) दोनों वृक्ष होकर जड़-मूढ़ अवस्था को प्राप्त हो जाओगे।'। ९२ ऐसी बात सुनते ही उन दोनों ने नारद के पाँव पकड़े और वे बोले, 'हे स्वामी, (हमें) शापमोचन बताते हुए (इस शाप को) वरदान-स्वरूप करें।'। ९३ फिर उस समय नारद बोले, 'तुम गोकुल में वृक्ष हो जाओगे। वनमाली कृष्ण घुटनों के बल चलकर आएँगे और तुम दोनों का उद्धार करेंगे।'। ९४ उन दोनों का उद्धार करने के हेतु यादवेन्द्र स्वरूप सर्वेश्वर रमापति (विष्णु के अवतार कृष्ण) दोनों वृक्षों के बीच में से जाने लगे। ९५ उन वृक्षों के सन्धि-स्थान में ऊखल फँस गया, तो वैकुण्ठपाल कृष्ण ने एकान्त देखकर उन दोनों प्रबल वृक्षों को बलपूर्वक उखाड़कर गिरा डाला। ९६ तब दोनों वृक्षों में से उसी क्षण दो पुरुष प्रकट हो गये। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और श्रीहरि का स्तवन करने में प्रवृत्त हो गये। ९७ (वे बोले—) हे वैकुण्ठपालक, हे परमपुरुष, हे क्षीरसागर-हृदय-विलास (क्षीरसागर

क्षीरसागरहृदयविलासा। सच्चिदानंदा सर्वेशा। जगदानंदा मूळकंदा। ९८ जय जय गोपालवेषधारका। अनंतब्रह्मांडप्रतिपालका। जय जय हरि वेदरक्षका। मत्स्यरूपा केशवा। ९९ नारायणा आदिकूर्मा। वराहरूपा पुरुषोत्तमा। नरहरिरूपा परब्रह्मा। वामनवेषा त्रिविक्रमा। १०० निःक्षत्रिय केली धरणी। पंचवटीवासिया चापपाणी। तोचि तूं गोकुळीं अवतरोनी। लीला दाविसी भक्तांतें। १०१ ऐसें दोघे स्तवन करोनी। ऊर्ध्वपंथें गेले तेच्च क्षणीं। पावले आपुल्या स्वस्थानीं। हरि चरणप्रसादें। २ असो बाहेरून आला नंद। तंव दोन्ही वृक्ष सुबद्ध। उन्मळोनि पडिले गोविंद। वृक्षसंधींत सांपडला। ३ ते देखोनि नंद गजबजिला। धांवा धांवा म्हणे सकळां। वृक्षाखालीं कृष्ण सांपडला। सोडूनि उचलिला नंदानें। ४ वार्ता ऐकोनि श्रवणीं। हृदय पिटी धबधबां जननी। धांवती सकळ गोपाळ गौळणी। नंदांगणीं दाटी जाहली। ५ नंदाजवळी होता हरी। मायेनें घेतला कडेवरी। सदगदित यशोदा नारी। अश्रु नेत्रीं वाहती। ६ स्फुंदस्फुंदोनि यशोदा

के अन्दर विलास करनेवाले), हे सच्चिदानन्द, हे सर्वेश, हे जगत् के लिए आनन्द देनेवाले मूल कन्दस्वरूप, (आपकी जय हो, जय हो)। ९८ हे गोपाल वेषधारी, हे अनन्त ब्रह्माण्डों के प्रतिपालक, (आपकी) जय हो, जय हो। हे हरि, मत्स्य रूप धारण करके वेदों की रक्षा करनेवाले हे केशव, (आपकी) जय हो, जय हो। ९९ हे कूर्म के रूप में अवतरित आदि नारायण, हे वराह-रूप धारण करनेवाले पुरुषोत्तम, हे नरसिंह-रूपधारी परब्रह्म, हे वामन वेषधारी त्रिविक्रम, (आपकी जय हो, जय हो)। १०० आपने (भार्गव कुलोत्पन्न परशुधारी राम के रूप में अवतरित होकर) धरती को क्षत्रियहीन बना दिया। आप पंचवटी-निवासी चापपाणि (हाथ में धनुष धारण करनेवाले) दाशरथी राम थे। वही आप गोकुल में अवतरित होकर अपने भक्तों को लीलाएँ दिखा रहे हैं। १०१ इस प्रकार स्तुति करके वे दोनों उसी क्षण ऊर्ध्व मार्ग से चले गये और श्रीहरि के चरणों के कृपाप्रसाद से अपने स्थान को प्राप्त हो गये। १०२

अस्तु। नन्द बाहर से (घर लौट) आया, तो (उसे दिखायी दिया कि) दोनों मज़बूत (दृढ़मूल) वृक्ष उखड़कर गिर पड़े हैं और गोविन्द उन वृक्षों की सन्धि में फँसे हुए हैं। १०३ वह देखकर नन्द घबड़ा उठा और सबसे बोला— 'दौड़ो, दौड़ो। कृष्ण वृक्षों के नीचे फँस गया है।' फिर उसने उन्हें छुड़ाकर उठा लिया। ४ यह समाचार कानों से सुनते ही माता धवधब छाती पीटने लगी। समस्त गोप और गोपियाँ दौड़े और नन्द के आँगन में भीड़ मच गयी। ५ नन्द के पास कृष्ण थे; उन्हें माता ने लेकर गोद में बैठा लिया। वह स्त्री— यशोदा— बहुत गद्गद हो उठी

रडत। हे जळोत गे माझे हात। म्यां बांधिला कृष्णनाथ। मोठा अनर्थ चूकला। ७ नंद म्हणे नसतां चंड प्रभंजन। कां वृक्ष पडिले उन्मळोन। आश्चर्य करिती सकळ जन। अनर्थ गहन चूकला। ८ तेथें मुलें धाकुटीं होतीं। तीं सांगती नंदाप्रती। कृष्णेंच वृक्ष निश्चितीं। बळेंचि मोडून पाडिले। ९ त्यांतून दोन पुरुष निघाले। श्रीकृष्णासी काय बोलिले। तें आम्हांलागीं न कळे। मग गेले ऊर्ध्वपंथें। ११० हांसती सकळ ते अवसरी। मुलांची गोष्ट न वाटे खरी। यशोदा म्हणे मुरारी। थोर दैवें वांझला। १११ नंदें केला सोहळा थोर। मेळवूनियां धरामर। आनंद ज्ञाहला अपार। गोकुळामाजी घरोघरीं। १२ निंबलोण तेच क्षणीं। कृष्णावरूनि उतरी जननी। हृदयीं दृढ धरोनी। चुंबन देत प्रीतीनें। १३ एके दिवशीं मेघश्याम। देव्हारां खेळे पुरुषोत्तम। नंदाचे सकळ शालिग्राम। वदनीं घालोनि गिळियेले। १४ नंद आला स्नान करून। करूं बैसला देवतार्चन। तों शालिग्राम न दिसती पूर्ण। मग यशोदेसी बोलतसे। १५ देव्हारीं शालिग्राम नसती। येरी म्हणे तेथें खेळत होता श्रीपती। आपण पुसावें

थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। ६ यशोदा सुबक-सुबककर रोने लगी। (वह बोली—) 'अरी, मेरे ये हाथ जल जाएँ। मैंने कृष्णनाथ को बाँध दिया था। बड़ी विपत्ति चूक गयी।'। ७ नन्द बोला, 'प्रचण्ड प्रभंजन (आँधी की-सी हवा) के न होने पर भी वृक्ष क्यों उखड़कर गिर पड़े। समस्त लोग आश्चर्य अनुभव कर रहे थे (और कह रहे थे—) 'बड़ी भारी विपत्ति टल गयी।'। ८ वहाँ नन्हे-नन्हे बच्चे थे। उन्होंने नन्द से कहा— 'निश्चय ही कृष्ण ने बलात् वृक्षों को तोड़कर गिरा दिया। ९ उनमें से दो पुरुष प्रकट हो गये। हमारी समझ में नहीं आया कि वे श्रीकृष्ण से क्या बोले। फिर वे ऊर्ध्व मार्ग से चले गये।'। ११० उस समय वे सब हँसने लगे। बच्चों की (कही) यह बात उन्हें सच्ची नहीं जान पड़ी। यशोदा बोली, 'मुरारि कृष्ण बड़े भाग्य से बच गया।'। १११ (तदनन्तर) नन्द ने भूदेवों (ब्राह्मणों) को इकट्ठा करके बड़ा आनन्दोत्सव मना लिया। (इससे) गोकुल के घर-घर में अपार आनन्द हो गया। १२ माता ने उसी क्षण कृष्ण पर से राईनोन उतार लिया और उन्हें दृढ़ता के साथ हृदय से लगाकर प्रेमपूर्वक उसका चुम्बन किया। ११३

एक दिन मेघश्याम पुरुषोत्तम कृष्ण देवघरे में खेल रहे थे, तो उन्होंने नन्द के समस्त शालिग्राम मुँह में डालकर निगल डाले। ११४ (इधर) नन्द स्नान करके आ गया और देवों (देव-प्रतिमाओं) का पूजन करने बैठा, तो उन्हें समस्त शालिग्राम नहीं दिखायी दिये। तब वे यशोदा से बोले। १५ 'देवघरे में शालिग्राम नहीं हैं।' तो वह बोली, 'श्रीपति

तयाप्रती। शालिग्राम देईल तो। १६ नंद म्हणे राजीवनेत्रा। शालिग्राम देईं चारुगात्रा। कडेवरी घेतले इंदिरावरा। चुंबन देऊनि पुसतसे। १७ मग तो नीलोत्पलदलवर्ण। मायातीत शुद्धचैतन्य। परम उदार सुहास्य-वदन। नंदाप्रती बोलत। १८ शालिग्राम मी नेणें तत्त्वतां। मजवरी वृथा आळ घालितां। मी सर्वातीत अकर्ता। करणें न करणें मज नाहीं। १९ नंद म्हणे न देखतां देवतार्चन। मी कदापिही न घें अन्न। देखोनि नंदाचें निर्वाण। पसरी वदन जगद्गुरु। १२० तो असंख्य शालिग्राममूर्ति। असंख्य सूर्य असंख्य शक्ति। असंख्य गणेश उमापति। अगाध कीर्ति हरीची। १२१ अनंतब्रह्मांडरचना ते क्षणीं। नंदे आनंदें देखतां नयनीं। गेला देहभाव विसरोनी। शब्द न फुटे बोलतां। २२ विसरला कार्यकारण। विसरला स्नान देवतार्चन। नाठवे भोजन शयन। मन निमग्न हरिरूपीं। २३ सवेंच घातलें मायाआवरण। दिधलें नंदाचें देवतार्चन। मनांत नंद भावी पूर्ण। यासी मूल कोण म्हणेल। २४ देवतार्चनविधि सारून नंद। कडिये

कृष्ण वहाँ खेल रहा था। आप ही उससे पूछिए— वह शालिग्राम दे देगा।'। १६ (तदनन्तर) नन्द बोला, 'अरे राजीवनयन, चारुगात्र (सुन्दर अंगों वाले), शालिग्राम दे दे।' उसने इन्दिरावर (विष्णु के अवतार कृष्ण) को गोद में उठा लिया और उसका चुम्बन करके पूछा। १७ तब वे नील कमलदल-सदृश वर्ण वाले मायातीत शुद्धचैतन्य, परम उदार कृष्ण मुस्कराते हुए नन्द से बोले। १८ 'मैं सचमुच शालिग्रामों को नहीं जानता। मुझ पर व्यर्थ ही दोषारोप लगा रहे हैं। मैं सर्वातीत (सबसे परे), अकर्ता (अकर्मण्य) हूँ; मेरे लिए करना, न करना (कुछ भी) नहीं है।'। १९ (इसपर) नन्द बोला, 'देवताओं का पूजन किए बिना मैं कभी भी अन्न ग्रहण नहीं करूँगा।' नन्द का यह चरम (कोटि का दृढ़) निश्चय देखकर जगद्गुरु कृष्ण ने मुँह खोला। १२० तब उसमें असंख्य शालिग्राम-मूर्तियाँ, असंख्य सूर्य, असंख्य देवियाँ, असंख्य गणेश, शिवजी (दिखायी दे रहे) थे। कृष्ण की कीर्ति (इस प्रकार) अथाह है। १२१ उस क्षण असंख्य ब्रह्माण्डों की हुई रचना अपनी आँखों से आनन्द के साथ देखकर नन्द देहभाव-सुधबुध भूल गया। बोलने पर शब्द नहीं निकल रहे थे (वह अवाक् हो गया)। २२ वह (प्रस्तुत) कार्य और हेतु भूल गया, स्नान और देवतार्चन भूल गया। उसे भोजन और शयन स्मरण नहीं आ रहा था। उसका मन (इस प्रकार) हरि के रूप में निमग्न हो गया। २३ साथ ही कृष्ण ने (फिर से) माया का आवरण डाला और नन्द को देवतार्चन करवा दिया। तो नन्द मन में पूर्णतः यह सोचने लगा कि इस (कृष्ण) को बच्चा कौन कहेगा। २४ (तत्पश्चात्) नन्द ने देवतार्चन विधि समाप्त करके सच्चिदानन्द-स्वरूप कृष्ण को गोद में उठा लिया।

घेतला सच्चिदानंद। जो भोजना बैसतां आनंद। गगनामाजी न समाये। २५ करिती नाना यागयजन। तेथें कदा न घे अवदान। त्याच्या मुखीं नंद आपण। ग्रास घाली स्वहस्तें। २६ असो एके दिवशीं प्रातःकाळीं। माया मंथन आरंभी ते वेळीं। जवळ येऊनि वनमाळी। मातेलागीं बोलत। २७ मातेसी म्हणे वैकुंठनायक। मी घुसळीन क्षण एक। मग नंद म्हणे पहा कौतुक। बिरडें हातीं घेईं कां। २८ हातीं दिधला रविदोर। घुसळण आरंभी श्रीधर। मातेसी म्हणे श्रमलीस थोर। विश्रांति घेईं क्षणभरी। २९ कौतुक पाहती तात माता। घुसळीतसे सरसिजोद्भवपिता। तेणें आनंद झाला बहुतां। कित्येकां चिंता प्रवर्तली। १३० देव सुखावले देखोन।

फिर उसके भोजन के लिए बैठने पर उसका आनन्द गगन में नहीं समा रहा था। २५ (लोग) अनेक यज्ञ-याग करते हैं, (परन्तु) वे वहाँ कभी भी आहुति ग्रहण नहीं करते। उन (कृष्ण) के मुख में नन्द स्वयं अपने हाथों से कौर डालते थे। १२६

अस्तु। एक दिन प्रातःकाल में माता ने मन्थन आरम्भ किया। उस समय वनमाली कृष्ण पास आकर माता से बोले। १२७ वैकुण्ठनायक (भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण) ने माता से कहा— एक क्षण मैं मथ लूँगा। तब नन्द बोला— 'देखो तो यह कौतुक। यह हाथ में डोरी क्यों न ले।'। २८ (इसपर माता ने) श्रीधर (कृष्ण) के हाथों मथानी की डोरी दी, तो उन्होंने मन्थन आरम्भ किया। वे माता से बोले— 'तुम बहुत थक गयी हो। क्षण भर विश्राम कर लो।'। २९ पिता और माता यह लीला देख रहे थे। कमलोद्भव (ब्रह्मा) के पिता (साक्षात् विष्णु के अवतार) कृष्ण मन्थन कर रहे थे। उससे बहुतों को आनन्द हो गया, तो कितनों के लिए चिन्ता उत्पन्न हो गयी। १३० यह देखकर देव तो इस विचार से सुख को प्राप्त हो गये कि अब हम सुधारस (अमृत) का पान कर सकेंगे। इन्द्र ने कहा —(अब) सम्पूर्ण चौदह रत्न[1] हाथ आएँगे। १३१

---

1 यहाँ समुद्र-मन्थन का प्रसंग सूचित किया जा रहा है। देवों-दानवों ने क्षीर-सागर का मन्थन करने के लिए मेरु पर्वत को मथानी के रूप में, वासुकि नाग को डोरी के रूप में प्रयुक्त किया था। जब मथानी अन्दर धँस जाने लगी तो कूर्मस्वरूप भगवान ने उसे अपनी पीठ पर टिका लिया था। मन्थन के समय निकले हुए हलाहल विष को शिवजी ने ग्रहण कर लिया था। समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी को विष्णु भगवान ने पत्नी-रूप में अपना लिया— अब लक्ष्मी को लगा कि इस समय कोई अन्य स्त्री इस मन्थन से उत्पन्न होगी।

चौदह रत्न— समुद्र में से निम्नलिखित चौदह रत्न निकल आये :—

लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, पारिजात पुष्पवृक्ष, सुरा (मदिरा), धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, रम्भा अप्सरा, उच्चैःश्रवा नामक सप्तमुखी घोड़ा, कालकूट अर्थात् हलाहल विष, पांचजन्य शंख, शार्ङ्ग धनुष और अमृत।

आतां करूं सुधारसपान। इंद्र म्हणे रत्नें संपूर्ण। हातां येतील चतुर्दश। १३१ वासुकी जाहला दीनवदन। कूर्म पाठी देत सरसावून। शिव म्हणे हालाहल पूर्ण। पुढती कोठें सांठवूं। ३२ लक्ष्मी म्हणे दुजी निघेल कमळा। मजहून सुंदर वेल्हाळा। तीच प्रिय होईल गोपाळा। मोठा मांडिला अनर्थ। ३३ नंद म्हणे यशोदेसी। पुरे मंथन भागला हृषीकेशी। नंद उचलोनि हृदयासी। भगवंतासी धरी तेव्हां। ३४ ऐका नवल वर्तलें एके दिनीं। मिळती बारा सोळा गौळिणी। म्हणती पुरुषार्थ करूनी। गोरस रक्षूं सर्वदा। ३५ दृढ गृह एक पाहूनी। गोरस ठेविती सांठवूनी। दृढ कुलपें घालूनी। राखिती गौळिणी सर्वदा। ३६ आपण ओसरिये राहती। कुलपें कदा न काढिती। तों राजबिदीं ये जगत्पती। खेळे गडियांसमवेत। ३७ वडजे वांकुडे गोवळ। तयांसी म्हणे तमाळनीळ। एके घरीं गौळिणी सकळ। गोरस रक्षिती मज भेणें। ३८ बहुत ठकविती आम्हांतें। चला अवघे जाऊं तेथें। गडी म्हणती कोण्या पंथें। जावें सांग गोविंदा। ३९ हरि म्हणे एक ऐका। अवघे तुम्ही नेत्र झांका। ऐसे बोलतां वैकुंठनायका। नेत्र झांकिले

वासुकि नाग दीनवदन हो गया। कूर्म ने पीठ बढ़ाकर सम्हाली। शिव ने कहा (सोचा)— (अब) मैं फिर से पूरा हलाहल कहाँ संचित कर रखूँ। ३२ लक्ष्मी (इस विचार से चिन्तातुर होकर) बोली— (अब) दूसरी कमला (लक्ष्मी) निकल आएगी। वह मुझसे सुन्दर सलोनी होगी— वही गोपाल को प्यारी लग जाएगी। इस (कृष्ण) ने तो बड़ा संकट आरम्भ किया है। ३३ (तदनन्तर) नन्द यशोदा से बोला, (अब) मन्थन पर्याप्त हो गया। कृष्ण थक गया है। फिर तब नन्द ने भगवान को उठाकर हृदय से लगा दिया। १३४

सुनिए, एक दिन एक आश्चर्य घटित हुआ। बारह-सोलह अर्थात् अनेकानेक गोपियाँ इकट्ठा हो गयीं और उन्होंने कहा (तय किया)— हम पुरुषार्थ करते हुए (पुरुषार्थपूर्वक) नित्य गोरस की रक्षा करेंगी। १३५ एक मज़बूत घर देखकर उन्होंने गोरस इकट्ठा करके (उसके अन्दर) रख लिया। वे गोपियाँ दृढ़ ताले लगाकर नित्यप्रति उसकी रखवाली करने लगीं। ३६ वे स्वयं ओसारे में रहा करती थीं, ताले कभी भी नहीं निकाल लेती थीं। तब जगत्पति कृष्ण राजमार्ग पर आ गये और साथियों के साथ खेलने लगे। ३७ उन कुरूप, टेढ़े-मेढ़े शरीरधारी गोपों से तमालनील कृष्ण ने कहा, 'एक घर में गोपियाँ मेरे भय से समस्त गोरस की रखवाली कर रही हैं। ३८ ये हमें बहुत ठग रही हैं; चलो, (हम) सब वहाँ चल दें।' (यह सुनकर) साथियों ने कहा, 'रे गोविन्द, कहो तो किस मार्ग से जाएँ।' ३९ तो कृष्ण ने कहा, 'मेरी एक बात सुन लो। तुम सब अपनी-अपनी आँखों को बन्द करो।' वैकुण्ठनायक कृष्ण के

समस्तीं । १४० आपुली योगमाया स्मरोनि हरी । क्षण न लागतां ते अवसरीं । सौंगडे नेले सदनांतरीं । न कळे बाहेरी कोणातें । १४१ दधि घृत नवनीत । भक्षिले गडियांसमवेत । खांबासी पुसिले हात । भाजनें समस्त फोडिलीं । ४२ इतुकें घरांत वर्तलें । परी बाहेर गौळिणींस न कळे । जैसें जीवासी नेणवे वहिलें । स्वरूप आपुलें सर्वथा । ४३ कृष्ण म्हणे गडे हो ऐका । आतां फोडा अवघेचि हांका । ऐसें बोलतां यदुनायका । कोल्हाळ केला समस्तीं । ४४ गौळिणी चमकल्या बाहेरी । म्हणती कोण्या द्वारें गेला भीतरीं । सबळ कुलपें तैसींच द्वारीं । बरा अंतरीं सांपडला । ४५ एक बोलती गोपिका । कुलपें कदा काढूं नका । एक यशोदेप्रती देखा । सांगो गेल्या तेधवां । ४६ वेताटी घेऊनि करीं । सक्रोध बोलती सुंदरी । आतां पोरें येतां बाहेरी । शिक्षा बरी लावूं तयां । ४७ एक म्हणती पोरें सोडावीं । एक बोलती स्तंभीं बांधावीं । मुख्य चोर जो मायालाघवी । त्यास सर्वथा सोडूं नये । ४८ माया करूनियां पुढें । आपण मागें मागें दडे । जैसा वारिजकोशांत पहुडे । भ्रमर जेवीं कळेना । ४९ ऐसें गोपी सक्रोध

ऐसा कह देने पर उन सबने (अपनी-अपनी) आँखें बन्द कीं । १४० (तदनन्तर) कृष्ण अपनी योगमाया का स्मरण करके (उसके बल से) उस समय क्षण न लगते (अपने) मित्रों को (दूसरे) घर के अन्दर ले गये । यह बाहर किसी को विदित नहीं हुआ । १४१ अपने साथियों के साथ उन्होंने दही, घी, मक्खन खा डाला, खम्भे से हाथ पोंछे और समस्त पात्रों को तोड़ डाला । ४२ घर के अन्दर इतना घटित हुआ, फिर भी बाहर गोपियों को यह विदित नहीं हुआ, जैसे जीव को अपना स्वरूप पहले बिल्कुल विदित नहीं हो जाता । ४३ (तदनन्तर) कृष्ण बोले, ' हे साथियो, सुनो । अब तुम सभी चीखो-चिल्लाओ । ' यदुनायक कृष्ण द्वारा ऐसा बोलते ही उन सबने कोलाहल मचा लिया । ४४ (उसे सुनते ही) बाहर गोपियाँ चौंक पड़ीं और बोलीं, ' किस द्वार से यह अन्दर गया ? द्वार पर तो मज़बूत ताले वैसे ही (लगे हुए) हैं । (अब) अच्छा अन्दर फँस गया । ' ४५ (उनमें से) एक गोपी बोली, ' ताले कदापि मत निकालो । कोई एक यशोदा के पास (जाकर) देख ले । ' तब (कुछ गोपियाँ) कहने के लिए चली गयीं । ४६ हाथों में बेंत लेकर वे सुन्दरियाँ (स्त्रियाँ) क्रोध से बोल रही थीं— ' अब बच्चों के बाहर आते ही उन्हें अच्छा दण्ड देंगी ' । ४७ कोई-कोई बोलीं, ' बच्चों को छोड़ दें । ' कुछ एक बोलीं, ' (उन्हें) खम्भे से बाँध दें (और) माया की चातुरी दिखाने वाला जो मुख्य चोर है, उसे कदापि नहीं छोड़ दें । ' । ४८ वह माया (का प्रभाव) आगे दिखाकर स्वयं पीछे-पीछे छिपा रहता है, जैसे कमल के कोश में भ्रमर पौढ़ जाता है और किसी की समझ में नहीं आ जाता । ४९

बोलत। पोरें आंत रडती समस्त। एक चळचळां कांपत। बोलती स्फुंदत हरीसी। १५० एकदां काढीं येथूनी। दुसऱ्यानें हे न करूं करणी। म्हणोनि लागती हरिचरणीं। चक्रपाणी हांसत। १५१ गडी म्हणती हांसतोसी गोविंदा। उखळीं तुज जें बांधील यशोदा। सकळ गौळिणी तुज परमानंदा। शिक्षा आतां करितील। ५२ आम्हां ताडितील गौळिणी। घरीं मारिती पिताजननी। भुवनसुंदरा गदापाणी। काढीं येथूनि आम्हांसी। ५३ हरि म्हणे एक ऐका। पुढती आतां नेत्र झांका। कदा डोळे उघडूं नका। नेतों सकळिकां बाहेरी। ५४ सकळीं नेत्र झांकिले। गवाक्षद्वारें बाहेर काढिले। पेंध्यानें किंचित डोळे उघडिले। माया हरीची पहावया। ५५ डोळे उघडितां त्वरित। पेंधा अडकला साहण्यांत। अंतरिक्षीं पाय लोंबत। म्हणे धांव आतां गोविंदा। ५६ कुलपें काढूनि त्वरित। गोपी आल्या

गोपियाँ इस प्रकार क्रोध से बोल रही थीं; (उधर) अन्दर सब बच्चे रो रहे थे। कुछ एक थरथर काँप रहे थे और सुबक-सुबककर कृष्ण से कह रहे थे। १५० 'एक बार यहाँ से निकाल दे; दूसरी बार (ऐसी) यह करनी नहीं करेंगे।' ऐसा कहते हुए वे कृष्ण के पाँव लग रहे थे। तो चक्रपाणि (कृष्ण) हँस रहे थे। १५१ (फिर) वे साथी बोले, 'रे गोविन्द, तू हँस रहा है। (परन्तु) यशोदा तुझे ऊखल से बाँध देगी। रे परमानन्द, ये सब गोपियाँ, अब तुझे दण्ड देंगी। ५२ गोपियाँ हमें पीटेंगी; घर में पिता और माता पीटेंगे। रे भुवन-सुन्दर, रे गदापाणि (कृष्ण), हमें (यहाँ से बाहर) निकाल दे।'। ५३ (तब) कृष्ण बोले, '(फिर मेरी) एक (बात) सुनो। फिर अब आँखें बन्द कर लो, उन्हें कभी भी न खोलो, तो सबको बाहर ले जाता हूँ।'। ५४ (यह सुनते ही) सबने आँखें बन्द कर लीं, तो कृष्ण ने (उनको) झरोखे में से बाहर निकाल लिया। (इधर) मनसुखे[1] ने कृष्ण की माया देखने के हेतु आँखें ज़रा खोलीं। ५५ आँखें खोलते ही मनसुखा झरोखे में फँस गया। तो उसके पैर अन्तरिक्ष में लटक रहे थे। वह बोला, 'गोविन्द, अब दौड़ो।'। ५६ (जब) ताले निकालकर गोपियाँ घर के अन्दर झट से आ

१ मनसुखा = पेंद्या (मराठी)— महाराष्ट्र में प्रचलित कृष्ण की बाललीला में कृष्ण के प्रियसखा के रूप में 'पेंद्या' का नित्य समावेश किया हुआ होता है। 'पेंदा', 'पेंद्या' शब्द का अर्थ है— शिथिल, ढीलाढाला। अपने नाम के अनुसार यह कृष्ण-सखा 'पेंद्या' कुछ बातों में ढीला-ढाला होता है। वह ज़रा मोटा होता है, पेटू होता है। अपने व्यवहार, बातचीत आदि से वह लोगों को हँसाता रहता है —यह कुछ विदूषक-सा जान पड़ता है। ऊपरी तौर से वह कुछ विक्षिप्त-सा होता है; अन्य लड़के, यहाँ तक कृष्ण भी उसका मज़ाक उड़ाते हैं। फिर भी उसे कृष्ण से सच्चा प्रेम है। बालकृष्ण-लीला में यह हास्यरस का वर्धक होता है। उत्तर में प्रचलित कृष्ण-लीला के 'मनसुखे' के समकक्ष महाराष्ट्र में 'पेंद्या' माना जाता है।

मंदिरांत। तों पेंधा देखिला लोंबत। गोपी सडकोत पाय त्याचे। ५७ म्हणे धांव धांव मधुसूदना। बहुत मारिती गजगामिना। मी अन्यायी मनमोहना। जगज्जीवना सोडवीं। ५८ हरि म्हणे पेंधियासी ते वेळे। त्वां नेत्र बहुतेक उघडिले। येरू म्हणे थोडेसें पाहिलें। तरी झालें ऐसें हें। ५९ हात देऊनि पंकजपाणी। पेंधा नेला तेच क्षणीं। तों यशोदेसी घेऊनि गौळिणी। निजमंदिरीं प्रवेशल्या। १६० तो बोले यशोदा जननी। कोठें दावा गे चक्रपाणी। मग बोलती नितंबिनी। करूनि करणी गेला हो। १६१ माग दिसतसे घरांत। गौळिणी यशोदेसी दावीत। येरी म्हणे कृष्णनाथ। कोंडिला कोठें तुम्हीं हो। ६२ चहूंकडे पाहती डोळसा। आला गेला न कळे कैसा। ज्याची लीला न कळे महेशा। सहस्त्राक्षा विरंचीतें। ६३ यशोदा म्हणे ते अवसरीं। प्रातःकाळापासून निजमंदिरीं। खेळत होता मुरारी। तुमच्या घरीं कैसा आला। ६४ कुलपें द्वारीं तैसींच सबळ। तरी कोण्या द्वारें आला तमाळनीळ। नसताच घेतां हरीवरी आळ। जावें गोकुळ टाकोनि। ६५ एक बोले गजगामिनी। गवाक्षद्वारें येतो चक्रपाणी। यशोदा

गयीं, तो उन्होंने मनसुखे को लटकते देखा। (तब) गोपियाँ उसके पाँवों का ताड़न करने लगीं। ५७ वह बोला, 'अरे मधुसूदन, दौड़ो, दौड़ो। ये गजगामिनी स्त्रियाँ मुझे बहुत पीट रही हैं। रे मनमोहन, मैं अन्यायकारी हूँ। रे जगज्जीवन, मुझे छुड़ा दो।'। ५८ उस समय कृष्ण मनसुखे से बोले, 'कदाचित् तूने आँखें खोली हों।' तो वह बोला, '(हाँ,) थोड़ा-सा देखा, इसलिए यह ऐसा हो गया।'। ५९ (फिर) कमल-से हाथों वाले कृष्ण हाथ बढ़ाकर उसी क्षण मनसुखे को (निकालकर) ले गये। त्योंही गोपियाँ यशोदा को लेकर अपने घर में पैठ गयीं। १६० तब माता यशोदा बोली, 'अरी, दिखा तो दो (कहाँ है चक्रपाणि) कृष्ण।' तो वे स्त्रियाँ बोलीं, 'अहो, वह माया (जादू-टोना) करके चला गया।'। १६१ घर में उसकी टोह कहीं नहीं दिखायी दे रही थी। गोपियों ने (समस्त घर) यशोदा को दिखा दिया, तो उसने कहा, 'अहो, तुमने कृष्णनाथ को कहाँ बन्द करके रखा है ?'। ६२ (फिर) वे सुन्दर आँखों वाली (गोपियाँ) चारों ओर देखने लगीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे कैसे आये और(कैसे) गये, (वस्तुतः) जिनकी लीला महेश शिवजी, सहस्राक्ष इन्द्र और विधाता (तक) की समझ में नहीं आती। ६३ उस समय यशोदा बोली, 'प्रातःकाल से (मुरारि) कृष्ण अपने घर में खेल रहा था। वह (फिर) तुम्हारे घर में कैसे आ गया (होगा)। ६४ द्वारों में सबल ताले वैसे ही लगे हुए हैं, तो फिर तमालनील कृष्ण किस द्वार से आ गया। कृष्ण पर झूठ-मूठ ही दोषारोप लगा रही हो। (लगता है,) गोकुल छोड़कर चले जाएँ।' ६५ तो एक गजगामिनी गोपी बोली, 'कृष्ण गवाक्ष (खिड़की) में

हांसे ऐकोनी। गोष्टी घडे कैसी हे। ६६ इतुकीं मुलें घेऊनि सरसीं। कैसा आला गेला हृषीकेशी। येरी म्हणे ब्रह्मादिकांसी। चरित्र न कळे कृष्णाचें। ६७ तटस्थ ज़ाहलिया व्रजसुंदरी। माया म्हणे मज दावा गे श्रीहरी। असो तुमचें खादलें किती तरी। सांगा तितुकें देईन। ६८ मग सकळ भाजनें दावीत। तों तोंडावरी भरलें नवनीत। रांज़णी माथणी समस्त। घृतेंकरोनि भरियेल्या। ६९ जें जें पात्र पाहती उघडून। त्यांत भरिले गोरस पूर्ण। आंगणीं आड दुग्धेंकरून। उचंबळोन आला असे। १७० कृष्णमुखीं गोरसबिंदु अर्पितां। कोटिगुणें वाढे तत्त्वतां। जैसें वटबीज सूक्ष्म पेरितां। सहस्रगुणें वाढत। १७१ कीं सत्पात्रीं देतां दान। कोटिगुणें वाढे संपूर्ण। तैसें बिंदुमात्र कृष्णें सेवून। सिंधुसमान तो देत। ७२ कृष्णमुखीं जें अर्पिलें। अनंतमखफळ हातां आलें। गौळिणी म्हणती प्रकटलें। भाग्य आमुचें अगाध। ७३ यशोदा म्हणे नष्टा समस्त। गौळिणी तुम्ही परम असत्य। नाना परींचे आळ बहुत। बाळावरी घेतां गे। ७४ घरा गेलिया यशोदा। खेळतां देखिले आनंदकंदा। माया हृदयीं धरूनि

से आ जाता है।' यह सुनकर यशोदा हँसने लगी (और बोली—)'यह बात कैसे हो सकती है?'। ६६ इतने बच्चों को साथ में लेकर कृष्ण कैसे आया (और) गया? तो उसने कहा, 'कृष्ण का चरित ब्रह्मा आदि की भी समझ में नहीं आ सकता।'। ६७ (यह सुनकर) वे व्रजांगनाएँ स्तब्ध हो गयीं। तो माता ने कहा, 'अरी, कृष्ण (कहाँ है,) मुझे दिखा दो। अस्तु। तुम्हारा (मक्खन आदि) कितना खाया? बता तो दो। तो मैं उतना दूँगी।'। ६८ तब उन्होंने सब पात्र दिखा दिये। (लेकिन दिखायी दिया कि) उनमें तो आकण्ठ (लबालब) मक्खन भरा हुआ है। समस्त घड़े, मथनियाँ घी से भरे हुए हैं। ६९ जो-जो पात्र खोलकर देखतीं, उनमें गोरस पूरा-पूरा भरा हुआ था। (यहाँ तक) आँगन का कुआँ (भी) दूध से उमड़ता रहा है। १७० जिस प्रकार सूक्ष्म वटबीज (बरगद का बीज) बोने पर वह हज़ार गुना बढ़ जाता है, उसी प्रकार गोरस की बूँद श्रीकृष्ण के मुँह में अर्पित करने पर वह (घर में) सचमुच करोड़ गुना बढ़ जाता है। १७१ अथवा सत्पात्र(सुयोग्य) व्यक्ति को दान देने पर वह सम्पूर्ण करोड़ गुना बढ़ जाता है, उसी प्रकार कृष्ण बूँद मात्र का सेवन करके समुद्र-समान (लौटा) देते हैं। ७२ जो कृष्ण के मुख में अर्पित हुआ था, उससे अनन्त यज्ञों का फल (स्वरूप गोरस) हाथ आया है। (उसे देखकर) गोपियाँ बोलीं— 'हमारा अथाह भाग्य प्रकट हो आया है।'। ७३ (तदनन्तर) यशोदा बोली— 'अरी, तुम समस्त गोपियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो, मेरे बालक पर नाना प्रकार के परम असत्य दोषारोप लगा रही हो।'। ७४ (फिर) घर जाने पर माता यशोदा ने आनन्दकन्द कृष्ण को खेलते देखा। तो उसने

गोविंदा। मुख चुंबीत प्रीतीनें। ७५ आणि एके दिवशीं वनमाळी। एके गृहीं प्रवेशे माध्यान्हकाळीं। दधि भक्षितां ते वेळीं। घरा आली गौळिणी ते। ७६ तिणें दृढ मनगटीं धरूनी। ओढूनि आणिला जेथें जननी। दहीं माखलेंसे वदनीं। भाजनपात्र हातीं तें। ७७ यशोदे बहुत दिवस जपतां। आजि सांपडला अवचिता। माया म्हणे कृष्णनाथा। काय केलें तुवां हें। ७८ कृष्ण म्हणे ऐक माते। मी यथार्थ सांगतों तूतें। ही जितुकीं वचनें बोलते। तितुकीं व्यर्थ असत्य। ७९ माया म्हणे वदनीं पाहीं। माखलेंसे तुझ्या दहीं। खाऊनि म्हणसी नाहीं। राजसा तूं कैसा रे। १८० हरि म्हणे ऐक सावचित्त। मी राजबिदीसी होतों खेळत। तों गोवळे आले बहुत। इच्या गृहांत प्रवेशले। १८१ पोरें म्हणती ते अवसरीं। हरि येतोस काय करूं चोरी। बळेंचि मज धरूनि करीं। घेऊनि गेले जननीये। ८२ त्यांहीं गोरस भक्षिला समस्त। मी उगाचि दूर होतों पाहत। चोरावें इच्चें नवनीत। हेंही मज कळेना। ८३ ही येतांचि मंदिरांत। गोवळे पळाले समस्त। इणें मज धरिलें त्वरित। अन्याय

गोविन्द कृष्ण को हृदय से लगाकर प्रीतिपूर्वक उसके मुख को चूम लिया। १७५

और एक दिन वनमाली कृष्ण दोपहर के समय एक घर में पैठ गये। (फिर) उनके द्वारा उस समय दही खाने लगने पर वह ग्वालिन घर आ गयी। १७६ उन्हें कलाई से दृढ़तापूर्वक पकड़कर वह (उन्हें) खींचकर वहाँ ले आयी, जहाँ माता (यशोदा) थी। उनके मुख में दही लगा हुआ-सा था और हाथ में वह मिट्टी का पात्र (भी) था। ७७ (वह बोली—) 'यशोदा, इतने दिन ताक में रहने पर आज अचानक यह मिल गया।' तो माता कृष्णनाथ से बोली, 'यह तुमने क्या किया ?'। ७८ (इसपर) कृष्ण बोले, 'सुनो माँ, मैं तुम्हें सच-सच (जैसा है वैसा) बताता हूँ। यह जितनी बातें बोलती (कहती) है, उतनी (सब बातें) व्यर्थ हैं, असत्य हैं।'। ७९ तो माता बोली, "देखो, तुम्हारे मुँह में दही लगा हुआ (दिखायी दे रहा) है। रे राजस, तुम खाने पर भी कैसे 'नहीं' कह रहे हो।"। १८० हरि बोले, 'ध्यान देकर सुनो। मैं राजमार्ग में खेल रहा था। तब बहुत से ग्वाले (गोप-बालक) आ गये और इसके घर में पैठ गये। १८१ उस समय उन बच्चों ने कहा— हरि, आता है क्या ? हम चोरी कर लें। री माँ, फिर मुझे हाथ से बलात् ही पकड़कर ले गये। ८२ उन्होंने समस्त गोरस खा डाला। मैं यों ही दूर (खड़ा रहकर) देख रहा था। मेरी समझ में यह भी नहीं आ रहा था कि इसका मक्खन चुरा लें। ८३ घर में इसके आ जाते ही, सब ग्वाले भाग गये। (फिर) कोई भी अन्याय नहीं करने पर भी इसने मुझे झट से पकड़

कांहीं न करितां । ८४ माझ्या मुखीं दहीं इणें चर्चिलें । दटावूनि मडकें हातीं दिधलें । तुजजवळी ओढूनि आणिलें । बळेंचि मज जननीये । ८५ जे दहीं हरोनि गेले गोवळे । त्यांसी न धरवे इचेनि वहिले । ज्यांहीं चोरिले त्यांसी सोडिलें । विरहण आलें मजवरी । ८६ मातेच्या पदरें मुख पुसिलें । भाजनपात्र भिरकाविलें । कंठीं मिठी ते वेळे । दृढ गोपाळें घातली । ८७ गदगदां हांसोनि गोपिका । आपुल्या गृहा गेल्या देखा । मनीं म्हणती हरिलीला ब्रह्मादिकां । न कळे सहसा निर्धारें । ८८ मातेसी म्हणे गोविंद । मज जेवूं घालीं भातदुग्ध । मातेचे कंठीं वेदवंद्य । मिठी घालीत पुढती पैं । ८९ माया म्हणे श्यामसुंदरा । आतां निकेतनपति येती मंदिरा । त्यांसांगातें जेवीं सुकुमारा । तों गोदोहन करितें मी । १९० ऐसी ऐकतांचि गोष्टी । उठे हांसत जगजेठी । त्याचा महिमा वर्षकोटी । वर्णितांही सरेना । १९१ एके दिवशीं कमलासनपिता । प्रातःकाळ जाहला असतां । मातेसी म्हणे तत्त्वतां । दूध प्यावयासी दे मज । ९२ माता म्हणे आजि मित्रवार । दुग्ध अनसूट असे समग्र ।

लिया । ८४ इसने मेरे मुँह में दही मल लिया, डाँटकर (मेरे) हाथ में मटका दिया और री माँ, मुझे बलात् खींचकर तुम्हारे पास यह ले आयी है । ८५ जो ग्वाले दही चुराकर गये, उन्हें पहले इससे पकड़ा नहीं जा रहा था । जिन्होंने चुरा लिया, उन्हें छोड़ दिया और मुझ पर यह दोषारोप आ गया । ’। ८६ (इतना कहकर) गोपाल (कृष्ण) ने उस समय माँ के आँचल से मुँह पोंछ लिया; वह घट उछालकर फेंक डाला और उसके गले में दृढ़ता से बाँहें डालीं । ८७ देखिए, खिलखिलाकर हँसते हुए गोपियाँ अपने-अपने घर गयीं । उन्होंने मन ही मन यह कहा— निश्चय ही साधारणतः हरि की लीला ब्रह्मा आदि (तक) की समझ में नहीं आ सकती । ८८ (एक समय) कृष्ण ने माता से कहा— ‘ मुझे दूध-भात खिला दो ’ और फिर उन वेदवन्द्य (कृष्ण) ने माता के गले में बाँहें डालीं । ८९ तो माता बोली, ‘ रे श्यामसुन्दर, अब गृहस्वामी (नन्द) घर आ जाएँगे । रे सुकोमल, उनके साथ तू भोजन कर, तब तक मैं गो-दोहन कर लूँगी । ’। १९० ऐसी बात सुनते ही जगद्श्रेष्ठ हँसते हुए उठ गये । एक करोड़ वर्ष वर्णन करते रहने पर भी उनकी महिमा समाप्त नहीं होगी । १९१ एक दिन (ब्रह्मा के पिता भगवान विष्णु के अवतार) कृष्ण सवेरा हो जाने पर माँ से निश्चयपूर्वक बोले, ‘ मुझे पीने को दूध दो । ’। ९२ तो माता बोली, ‘ आज रविवार है । (अतः) आज समस्त दूध खर्च नहीं करना है । खण्डेराव देव[1] उग्र होते हैं । ’ (यह सुनकर रमापति विष्णु

---

१ खण्डेराव या खण्डोबा— महाराष्ट्र और कर्नाटक के अधिकांश लोगों का कुल-देवता है । विशेषतः महाराष्ट्र के जन सामान्य में यह सर्वाधिक प्रिय देवता हैं । इन

खंडेराव दैवत तीव्र। पुसे रमावर कोठें आहे। ९३ माता म्हणे देव्हारां। पाहें जाय सुकुमारा। डोळसा मदनताता सुंदरा। सर्वेश्वरा गोविंदा। ९४ देव्हारां येऊनि गोपाळ। पाहे देवाधिदेव निर्मळ। तंव ते टांक देवांचे सकळ। दोरियेनें गोंविले। ९५ मातेसी म्हणे क्षीराब्धिजाकांत। येवढें देवांचें सांगसी सत्त्व। तरी ह्या दोरीनें निश्चित। कां आकळूनि रक्षिले। ९६ काय तुझा देव करील। म्हणोनियां वैकुंठपाळ। बळेंचि दुग्ध सकळ। तमालनीळ पीतसे। ९७ त्याउपरी ते रात्र क्रमिली। प्रातःकाळीं उठोनि वनमाळी। मातेसी म्हणे ते वेळीं। कडेवरी घेईं मज। ९८ माझी वांकडी झाली मान। दोन्ही दुखताती नयन। माता

के अवतार) कृष्ण ने पूछा, 'वह (देव) कहाँ है ?'। ९३ तो माता बोली, 'देवघरे में है। अरे सुकोमल, सुन्दर आँखों वाले, कामदेव-से सुन्दर सर्वेश्वर गोविन्द, जाकर देख ले।'। ९४ देवघरे के पास आकर (गर्भगृह में आकर) देवाधिदेव निर्मल गोपाल कृष्ण ने देखा और तब (धातु के पत्ते के टुकड़ों पर अंकित) समस्त देव-प्रतिमाओं को एक धागे में पिरो दिया। ९५ फिर लक्ष्मीपति विष्णु अर्थात् कृष्ण माता से बोले, 'तुम देवों की इतनी महत्ता बताती हो, तो (बता दो—) इस डोरी से खींचकर (मैंने इन्हें) कैसे बाँध लिया।' ९६ तुम्हारा देवता क्या कर सकता है ?' ऐसा कहते हुए वैकुण्ठपति तमालनील कृष्ण ने समस्त दूध बलात् पी डाला। ९७ उसके पश्चात् वह रात बिता दी। सवेरे उठकर वनमाली कृष्ण उस समय माता से बोले— 'मुझे (उठाकर) गोद में ले लो। ९८ मेरी ग्रीवा (गरदन) टेढ़ी हो गयी है। मेरी दोनों आँखें (भी) दुख रही हैं।' (यह सुनकर) माता बोली, 'रे हरि, तुझ पर मल्लारि[1] पूर्णतः क्षुब्ध हो गये

दो राज्यों में जेजुरी (जि-पुणे) आदि बारह प्रमुख स्थान इस देवता के मन्दिरों के लिए विख्यात हैं। हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमानों में भी खण्डोबा की भक्ति का प्रचलन है। प्रचलित लोक-मान्यता के अनुसार खण्डोबा शिवजी का अवतार है— हाँ, कुछ लोग उसे स्कन्ध या कार्तिकेय का भी अवतार मानते हैं। यह देवता उग्र है। उसका वाहन है घोड़ा और अस्त्र है चौड़े फाल वाला खड्ग। खड्ग (खड्ग-खांड) के धारी होने के कारण उसको खण्डेराव या खण्डोबा कहते हैं।

खण्डेराव के मल्लारि, मल्लारिमार्तण्ड, म्हाळसाकान्त, मैलार, मैराळ आदि अन्य नाम भी प्रचलित हैं।

१ मल्लारि— मल्लारि खण्डोबा को कहा जाता है। कहते हैं, कृतयुग में मणिचूल नामक पर्वत पर सप्तर्षि तपस्या कर रहे थे। उस समय मणि और मल्ल नामक दैत्यों ने उस पर्वत पर आक्रमण किया और उन ऋषियों के तपोवन को ध्वस्त किया। इससे व्यथित होकर वे सहायता के लिए इन्द्र के पास गये। लेकिन इन्द्र ने यह कहकर "वे दैत्य ब्रह्माजी के वरदान से अजेय बने हुए हैं" अपनी असमर्थता प्रकट की। तो ऋषि भगवान विष्णु के पास गये। विष्णु ने भी उनकी ओर जब ध्यान नहीं दिया,

म्हणे मल्लारी पूर्ण। हरि तुजवरी क्षोभला। १९ खंडेराव दैवत दुरळ। प्रचीत दाविली तत्काळ। मातेचे नेत्रीं वाहे जळ। म्हणे आतां काय करूं मी। २०० कडेवरी घेतला कृष्ण। मायेचे खांदां टाकिली मान। जैसा भ्रमर बैसे संकोचून। कमलकोषीं प्रीतीनें। २०१ देव्हारा येऊनि माया। म्हणे मार्तंडा खंडेराया। हरिवरी कृपा करीं लवलाह्या। म्हणोनि लावी आंगारा। २ तों अकस्मात म्हाळसापती। देदीप्यमान दिव्यमूर्ती। तडिदंबरप्रभा फांकती। कैलासपति साक्षात। ३ खंडा झळके दक्षिण करीं।

हैं।'। ९९ खण्डेराव तो परम उग्र देव हैं। उन्होंने (इस प्रकार कृष्ण को) तत्काल अनुभव करा दिया। (यह देखकर) माता की आँखों से (अश्रु-) जल बहने लगा। वह बोली, 'मैं अब क्या करूँ?'। २०० माता ने कृष्ण को (उठाकर) गोद में लिया, तो उन्होंने उसके कंधे पर अपनी गरदन टिका दी (और उस प्रकार बैठ गये), जैसे भौंरा कमलकोश में सिकुड़े हुए प्रेम से बैठ जाता है। २०१ फिर गर्भगृह में आकर माता बोली, 'हे मार्तण्ड खण्डेरावजी, हरि पर झट से कृपा करो'—ऐसा कहते हुए उसने (कृष्ण के मस्तक पर) भभूत लगा दी। २ त्योंही यकायक म्हालसापति[1] खण्डेराव देदीप्यमान दिव्य मूर्ति के रूप में प्रकट हो गये। उनके विद्युत्-से वस्त्र से तेज फैल रहा था। वे साक्षात् कैलासपति (शिवजी) थे। ३ उनके दाहिने हाथ में (चौड़े फाल वाला) खड्ग चमक रहा था। उस पर हलदी का चूर्ण[2] उछलकर फैल रहा था। (इस प्रकार) अश्व वाहन पर आरूढ़ उमापति त्रिपुरारि शिवजी प्रकट हो

तब वे शिवजी के पास गये। शिवजी ने उनकी बात सुनकर क्रोध से उन दैत्यों के संहार की प्रतिज्ञा की। फिर मार्तण्ड भैरव का रूप ग्रहण कर वे मणिचूल पर्वत पर उतर गये। उनके साथ सात करोड़ गणों सहित कार्तिकेय भी थे। जब शिवजी ने मणि दैत्य को पाँव-तले दबोच लिया, तो उसने शिवजी की स्तुति की और उन्हें प्रसन्न कर लिया। मणि ने शिवजी से यह वर माँग लिया— 'हे देव, मेरा सिर नित्य आपके पाँवतले रहे और मेरा अश्वारूढ़ रूप आपके समीप नित्य रह जाए।' शिवजी ने 'तथास्तु' कहा। तदनन्तर मल्ल दैत्य ने मृत्यु के पहले शिवजी से यह वर माँग लिया— 'हे देव, मेरा नाम आपके नाम से पहले रह जाए' (अर्थात लोग आपको 'मल्लारि' कहें)। शिवजी ने इसे भी स्वीकार किया, तो मल्ल मृत्यु को प्राप्त हुआ।

१ म्हाळसाकान्त— खण्डोबा को म्हाळसाकान्त कहते हैं, क्योंकि उनकी स्त्री का नाम म्हाळसा है। म्हाळसा को मोहिनी का अवतार मानते हैं, वह तिम्म नामक वैश्य की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई और पौष पौर्णिमा के मुहूर्त पर तिम्म ने खण्डोबा से उसका विवाह करा दिया।

२ 'भण्डारा' = हलदी का चूर्ण— खण्डोबा के पूजन में हलदी के चूर्ण का विशिष्ट महत्त्व है। उसे 'भण्डारा' कहते हैं। खण्डोबा के मेले में यह चूर्ण उछाला जाता है और 'वाघ्या' नामक खण्डोबा के सेवक, लोगों के मस्तक पर 'भण्डारा' का तिलक लगाकर दक्षिणा माँगते हैं।

हरिद्राचूर्ण उधळे वरी। तुरंगवहन त्रिपुरारी। उमानाथ प्रकटला।४ दिव्य तेजें भरलें गगन। जो मणिमल्लप्राणहरण। तो साक्षात शिव हयवाहन। यशोदेसी बोलत।५ तुझें पूर्वपुण्य अद्भुत। उदरा आला त्रैलोक्यनाथ। त्याच्या अंगीं दैवतें समस्त। देव आम्ही यशोदे।६ ब्रह्मानंद हा साक्षात। यासी भज धरीं भावार्थ। यासी पूजितां देव समस्त। तृप्त होती निर्धारें।७ ऐसें बोलोनि तये वेळां। खंडेराव गुप्त जाहला। मातेसी हृदयीं कळला। हरिप्रताप अद्भुत।८ एके दिवशीं अधोक्षज। म्हणे आधीं जेवूं घालीं मज। जो मायातीत विश्वबीज। आदिपुरुष परात्पर।९ त्यासी माया म्हणे कान्हया। आधीं देवपूजा करोनियां। मग मी तुज रे बा तान्हया। जेवूं घालीन निर्धारें।२१० हरि म्हणे मातेप्रती। देव तरी आहेत किती। माता म्हणे भगवती। परम दैवत दारुण।२११ खंडेराव महाखडतर। भैरव दैवत महातीव्र। गणेश पावतो सत्वर। नाम घेतां आरंभीं।१२

गये।४ उनके दिव्य तेज से आकाश भर गया। प्रत्यक्ष शिवजी, जो मणि और मल्ल[1] के प्राणों का हरण करनेवाले हैं और जिनका वाहन घोड़ा है अर्थात् जो अश्वारोही हैं, यशोदा से बोले।५ 'तुम्हारा पूर्व जन्म में किया हुआ पुण्य अद्भुत है। (अतः) त्रिलोकनाथ (भगवान विष्णु) तुम्हारे उदर में से आविर्भूत हो गये हैं (तुमसे जनमे हैं)। हे यशोदा, हम (देव) उनके अंग में (समाये हुए हैं) समस्त देव।६ ये प्रत्यक्ष ब्रह्मानन्द अर्थात् आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं। इनकी भक्ति करो। इसका यह भावार्थ ग्रहण करो कि इनका पूजन करने पर समस्त देव निश्चय ही तुष्ट हो जाते हैं।'।७ ऐसा बोलकर उस समय खण्डेराव अन्तर्धान हो गये। (और तब) माता (यशोदा) के हृदय को श्रीहरि का प्रताप विदित हो गया (समझ में आ गया)।८ एक दिन (वस्तुतः) जो माया के परे हैं, विश्व के बीज हैं, जो परात्पर आदिपुरुष हैं, वे अधोक्षज कृष्ण बोले, 'मुझे पहले खिला दो।'।९ तो माता उनसे बोली, 'कन्हैया, पहले देवों का पूजन करके फिर मैं तुझे, रे दुधमुँहे, निश्चय ही खिला दूँगी।'।२१० तो कृष्ण माता से बोले, 'देव हैं भी कितने?' (इसपर) माता बोली, '(एक तो) भगवती (देवी) परम दारुण (उग्र) देव रूप है।'।२११ खण्डेराव महाउग्र हैं। भैरव देव[2] महा प्रखर हैं। गणेशजी (कार्य के)

१ मणि और मल्ल— देखिए टिप्पणी पृ० २६३-२६४।

२ भैरव— शैव देवताओं में से एक हैं। कुछ लोग उन्हें शिवस्वरूप मानते हैं। शैव आगमों में कुल ६४ भैरव माने गये हैं। तांत्रिकों के अनुसार भैरव शक्तिपीठों के संरक्षक देव हैं। महाराष्ट्र के ग्रामदेवताओं में भैरव को महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके हाथों में डमरू और त्रिशूल होते हैं; कमर में सर्प लपेटे हुए होते हैं। इनका वाहन है कुत्ता।

ऐसें बोलतां माता ते। गदगदां हांसोनि जगन्नाथें। म्हणे भज देवाधिदेवातें। ते म्हणे आम्हांतें कैसा दिसे। १३ तत्काळ चतुर्भुज घनश्याम। शंख चक्र गदा पद्म। पीतांबरधारी पुरुषोत्तम। यशोदेनें देखिला। १४ यशोदा नमस्कारी तत्काळ। सवेंचि घालोनि मायाजाळ। जैसा पूर्वीं होता बाळ। दीनदयाळ तैसा झाला। १५ एके दिनीं जगत्पती। बोलावी देव्हाऱ्याच्या मूर्ती। म्हणे सांगा तुम्ही मातेप्रती। कीं कृष्णास आधीं वाढिजे। १६ माया आली देव्हारियाजवळी। तों धातुमूर्ती बोलती ते वेळीं। म्हणती सच्चिदानंद वनमाळी। भजें यासी सद्भावें। १७ कृष्णासी आधीं जेवूं घालीं। तरी तुझी पूजा आम्हांसी पावली। ऐसें ऐकतां माया ते वेळीं। तटस्थ जाहली सप्रेम। १८ असो एके दिनीं श्रीहरी। खेळत असतां ओसरीवरी। माया म्हणे मुरारी। दुग्धपान करीं कां। १९ हरि म्हणे मी दुग्धपान न करीं। माता म्हणे बळिराम गेला बाहेरी। तोंवरी तूं पूतनारी। दूध झडकरीं पिईं कां। २२० बळिराम बाहेरून आलिया। तुज वांटा मागेल तान्हया। हरि म्हणे दुग्ध प्यालिया। काय होतें मज

आरम्भ में नाम लेते ही झट से कृपा करते हैं।' १२ माता द्वारा ऐसा कहने पर जगन्नाथ श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसते हुए बोले— 'तुम देवाधिदेव— समस्त देवों में जो प्रमुख हैं, उनका भजन करो।' तो वह बोली— 'वह हमें कैसे दिखायी देगा?'। १३ तत्काल यशोदा ने शंख-चक्र-गदा-कमलपुष्प से युक्त चतुर्हस्तधारी पीताम्बर पहने हुए घनश्याम पुरुषोत्तम (भगवान विष्णु— कृष्ण) को (अपने सामने) देखा। १४ यशोदा ने उन्हें तत्काल नमस्कार किया, तो साथ में ही अर्थात् तत्क्षण वे दीनदयालु भगवान मायाजाल बिछाते हुए जैसे पहले बाल (स्वरूप) थे, वैसे हो गये। २१५

एक दिन जगत्पति कृष्ण ने देवघरे की देव-प्रतिमाओं को बुला लिया और कहा— 'तुम माता से कह दो कि कृष्ण के लिए खाना पहले परोसो।'। २१६ जब माता देवघरे के पास आ गयी, तो उस समय (देवों की) धातु की (बनी हुई) मूर्तियाँ बोलने लगीं। वे बोलीं— 'ये वनमाली (कृष्ण) सच्चिदानन्द (ब्रह्म) हैं। उनकी सद्भावपूर्वक भक्ति करो। १७ कृष्ण को पहले भोजन कराती जाओ, तो ही (तुम्हारे द्वारा किया हुआ हमारा) पूजन हमें प्राप्त होगा।' उस समय ऐसा सुनते ही माता प्रेमसहित चकित हो गयी। १८ अस्तु। एक दिन श्रीहरि के ओसारे में खेलते रहने पर माता बोली, 'अरे मुरारि (कृष्ण), दूध पी लो न।'। १९ तो हरि बोले, 'मैं दुग्धपान नहीं करूँगा।' (फिर) माता बोली, 'बलराम बाहर गया है। रे पूतनारि, तब तक तुम क्यों न झट से दूध पी लो। २२० अरे दुधमुँहे, बाहर से आने पर बलराम तुमसे हिस्सा

सांग । २२१ बा रे शिखा वाढते साचार । काळें आंग होतें गौर । ऐकोनि हांसे यादवेंद्र । म्हणे पाहूं प्रचीत ययाची । २२ दुग्धाची वाटी मुखीं लाविली । शेंडी धरूनि पाहे वनमाळी । म्हणे कां शिखा नाहीं वाढली । तनू काळी दिसतसे । २३ माता म्हणे जगन्नायका । आजचि कैसी वाढेल शिखा । हांसे येतसे वैकुंठनायका । बोल मातेचे ऐकोनि । २४ एके दिवशीं राम आणि कृष्ण । आंगणीं खेळती दोघेजण । हरीसी म्हणे संकर्षण । तुज हें कळलें नाहीं कीं । २५ कोंडा देऊनियां जाणा । तुज पोसणें घेतलें कृष्णा । याची प्रचीत जगज्जीवना । पाहे तुज सांगतों । २६ मायबापें गोरीं तुझीं गोपाळा । त्यांचे पोटींचा तूं तरी काळा । कोंडा देऊनि घेतलें तुला । तैसेंच मजला कळलें पैं । २७ ऐसे बोलतां बळिभद्र । स्फुंदस्फुंदोनि रडे यादवेंद्र । माता येऊनि सत्वर । हृदयीं धरी गोपाळा । २८ पल्लवें पुसी राजीवनयन । म्हणे तुज बोलिलें कोण । स्फुंदस्फुंदोनि सांगे जगज्जीवन । मज पोसणा म्हणे दादा । २९ माता म्हणे माझ्या उदरीं । तूं जन्मलासी मुरारी । बळिराम

माँग लेगा । ' तो हरि बोले, ' मुझे बताओ, दूध पीने से क्या होता है ? ' । २२१ (इसपर माता बोली—) ' अरे, चोटी सचमुच बढ़ जाती है; काला शरीर गोरा हो जाता है । ' यह सुनकर यादवेन्द्र कृष्ण हँसते हुए बोले, ' इसका अनुभव कर देख लें । ' । २२ (फिर) वनमाली ने दूध की कटोरी मुँह में लगा दी और चोटी पकड़कर वे देखने लगे । (तदनन्तर) वे बोले— ' चोटी क्यों नहीं बढ़ गयी ? शरीर (भी) काला (ही) दीख रहा है । ' । २३ तो माता जगन्नायक कृष्ण से बोली, ' चोटी आज ही कैसे बढ़ेगी । ' माता के ये वचन सुनकर वैकुण्ठनायक (कृष्ण) को हँसी आ गयी । २२४

एक दिन (बल-) राम और कृष्ण दोनों जने आँगन में खेल रहे थे । (तब) संकर्षण[1] (बलराम) कृष्ण से बोले, ' तुझे विदित नहीं हुआ क्या ? । २२५ अरे कृष्ण, जान ले कि तुझे भूसा देकर पोष्य (लड़के) के रूप में लिया है । अरे कृष्ण, देख, मैं इसका प्रमाण सहित तुझे विश्वास दिलाता हूँ । २६ रे गोपाल, तेरे माँ-बाप गोरे हैं; तू उनसे उत्पन्न है, फिर भी काला है । तुझे भूसा देकर लिया गया है । मुझे ऐसा ही विदित हुआ है । ' । २७ बलराम द्वारा ऐसा कहने पर यादवेन्द्र कृष्ण बिलख-बिलखकर रोने लगे, तो झट से आकर माता ने गोपाल कृष्ण को हृदय से लगा लिया । २८ उनके नयनकमलों को आँचल से पोंछ लिया और कहा (पूछा)— ' तुझसे किसने (क्या) कहा ? ' तो सुबकते-सुबकते हुए जगज्जीवन कृष्ण बोले, ' मुझे दद्दा (अर्थात बलराम) पोष्य (लड़का)

---

१ संकर्षण—शेषनाग को कहते हैं । बलराम शेष के अवतार हैं, अतः उनको भी संकर्षण कहा जाता है ।

चाळवितो निर्धारीं। तुजलागीं गोपाळा। २३० मातेनें कडेवरी घेतला। मुख चुंबीत वेळोवेळां। निंबलोण उतरी वेल्हाळा। कृष्णावरूनि झडकरी। २३१ एके दिवसीं उषःकाळीं। उठोनियां वनमाळी। एके गोपीचे घरीं ते वेळीं। कौतुक केलें अद्भुत। ३२ ब्राह्मीं मुहूर्तीं उठोनि जाणा। गोपी गेलिया माघस्नाना। मागें सकळ गाई राना। लावूनियां दीधल्या। ३३ बैल आणूनियां सकळ। तिच्या वाडियांत बांधी घननीळ। गोपी गृहा आली तत्काळ। धारा काढूं धांवतसे। ३४ भरणा घेऊनि बैसे खालती। तों वृषण हातास लागती। सर्व गाईंच्या कांसा धरीत हातीं। एकचि गति चहूंकडे। ३५ विस्मित जाहली बाला। तों तमांतक उगवला। तों वृषभांनीं वाडा भरला। एकही गाय दिसेना। ३६ कळली कृष्णाची करणी। गाऱ्हाणीं सांगों येती गौळणी। माया वेताटी घेऊनी। शिक्षा करावया धांवत। ३७ वेगें पळाला गोविंद। तों त्याच वाटेनें आला नंद। तों यशोदा म्हणे मुकुंद। धरा धरा वेगेंसीं। ३८ तों नंदें धरिला ते समयीं। दृढ आलिंगिला निजहृदयीं। चुंबन देऊनि लवलाहीं। यशोदेसी बोलत। ३९

कहता है।'। २९ (यह सुनकर) माता बोली, 'अरे मुरारि, तू मेरे उदर से जना है। गोपाल, बलराम निश्चय ही तुझे छेड़ रहा है।'। २३० (तदनन्तर) माता ने उसे (उठाकर) गोद में ले लिया। समय-समय पर (बार-बार) उसके मुँह को वह चूम रही थी। फिर उस सुन्दरी ने झट से कृष्ण पर से राईनोन उतार लिया। २३१ एक दिन ऊषाकाल में वनमाली कृष्ण ने उठकर किसी एक गोपी के घर (जाकर) उस समय अद्भुत लीला की (प्रदर्शित की)। ३२ समझ लीजिए, ब्राह्ममुहूर्त पर उठकर वह गोपी माघ-स्नान के लिए गयी हुई थी, तो इधर उसके पीछे (अनुपस्थिति में) उन्होंने समस्त गायों को वन की ओर हाँक दिया। ३३ फिर उन घननील (कृष्ण) ने सब बैल लाकर उसके गोठ में बाँध (कर रख) दिये। वह गोपी तत्काल घर आयी और दोहन के लिए दौड़ती हुई गयी। ३४ वह पात्र लेकर नीचे बैठ गयी, तो उसके हाथ वृषण लग गये। उसने सब गायों के थन हाथ में लेकर देखे, (फिर भी) चारों ओर एक ही स्थिति थी। ३५ वह स्त्री विस्मित हो गयी, तो तमारि सूर्य उदित हो गया। तब (उसे दिखायी दिया कि) गोठ बैलों से भरा हुआ है। (वहाँ) उसे एक भी गाय नहीं दिखायी दी। ३६ (जब) कृष्ण की यह करनी विदित हुई, तो गोपियाँ शिकायत करने के लिए आ गयीं। (उनकी बातें सुनकर) माता (यशोदा) बेंत लेकर दण्ड देने के लिए दौड़ी। ३७ (यह देखकर) कृष्ण वेगपूर्वक भाग गये, तो उसी बाट से नन्द आ रहे थे। तब यशोदा बोली, 'मुकुन्द (कृष्ण) को वेगपूर्वक (दौड़कर) पकड़ो, पकड़ो।'। ३८ तब नन्द ने उस समय उन्हें पकड़ लिया और अपने हृदय से दृढ़ता से लगा लिया।

नंद म्हणे कां हो धांवसी। माया म्हणे सोडूं नका यासी। याणें पीडिलें गौळिणींसी। याच्ये खोडीसी अंत नाहीं। २४० नंदापाशीं सांगे सांवळा। ह्या धमकटी गौळिणी सकळा। मातेपाशीं वेळोवेळां। लटकींच देती गाऱ्हाणीं। २४१ घेती नसतेच मजवरी आळ। मातेसी खरें वाटे सकळ। हांसे यशोदा वेल्हाळ। नंदमुख विलोकूनि। ४२ घरास आणिलें जगन्नाथा। नंद म्हणे मजपरता। भाग्याचा नाहीं तत्त्वतां। त्रिभुवनीं शोधितां हो। ४३ एकदां बळिरामासीं हरि खेळे। गोपाळ दोहींकडे वांटले। तों कृष्णाकडे ते वेळे। डाव लागला खेळतां। ४४ ऐसें देखोनि चक्रपाणी। बळिरामाचीं दोघें मुलें धरूनी। त्यांच्या शिखा परस्परें बांधोनी। वृक्षावरी घालीत। ४५ मुलें ठेवूनि वृक्षावरती। आपण लपला श्रीपती। बाळें सोडविलीं निश्चितीं। बळिरामें येऊनियां। ४६ यशोदेजवळी गाऱ्हाणीं। सांगों येती गजगामिनी। म्हणती मुलांच्या शिखा बांधोनी। वृक्षडहाळीवर ठेवितो। ४७ माता म्हणे पूतनारी। किती सोसाव्या खोडी तरी। ऐक शास्त्र तरी पुढें मुरारी। यावरी हरि बोलतसे। ४८ हरि म्हणे मातेसी। शास्त्र जें मज

झट से उनका चुम्बन करके वे यशोदा से बोले। ३९ नन्द बोले, 'अरी, क्यों दौड़ रही हो?' तो माता बोली, 'इसे मत छोड़ना। इसने गोपियों को सताया है। इसकी बुरी लत का कोई अन्त नहीं है।'। २४० (यह सुनकर) श्याम नन्द से बोले, 'ये समस्त धींगरी गोपियाँ माँ से समय-समय पर (मेरे बारे में) शिकायतें किया करती हैं। २४१ वे मुझपर झूठे दोषारोप लगाती हैं (और) वह सब माता को सच्चा लगता है।' तो नन्द के मुँह को देखकर यशोदा सुन्दरी हँसने लगी। ४२ (तदनन्तर) नन्द जगन्नाथ कृष्ण को घर ले आये। वे नन्द बोले, 'त्रिभुवन में खोजने पर भी सचमुच मुझसे कोई अधिक भाग्य वाला नहीं होगा।'। ४३ एक बार बलराम के साथ कृष्ण खेल रहे थे। (फिर) गोपाल (ग्वाले) दोनों ओर बाँट दिये (गये, अर्थात उनके दो दल बनाये गये)। तब उस समय खेलते-खेलते कृष्ण पर दाँव लग गया। ४४ ऐसा देखकर चक्रपाणि कृष्ण ने बलराम के (पक्ष के) दो लड़कों को पकड़कर उनकी चोटियाँ एक-दूसरी से बाँधकर उन्हें पेड़ पर (लटकाते हुए) रख दिया। ४५ उन लड़कों को पेड़ पर (लटकाये) रखकर (स्वयं) श्रीपति कृष्ण छिप गये। (तदनन्तर) बलराम ने आकर उन बच्चों को अवश्य ही छुड़ा दिया। ४६ (इधर) गजगामिनी गोपियाँ शिकायतें करने के लिए यशोदा के पास आ गयीं और बोलीं, '(तुम्हारे लाड़ले ने) बच्चों की चोटियाँ बाँधकर उन्हें पेड़ की टहनी पर (लटकाकर) रख दिया।'। ४७ (यह सुनकर) माता बोली, 'अरे पूतनारि कृष्ण, तेरी कितनी शरारतें सहन की जाएँ? फिर भी मुरारि, एक शास्त्र सुन ले।' इसपर कृष्ण बोले। ४८ माँ से कृष्ण

पढविसी। तें कोणाचें शास्त्र निश्चयेंसीं। सांग मजसी जननीये। ४९ माता म्हणे देवाचें शास्त्र। मग बोले राजीवनेत्र। तें शास्त्र पढतां साचार। काय देतो देव पैं। २५० माता म्हणे देतो मुक्तीतें। हरि म्हणे ते तुजचि होऊं दे माते। मी न सोडीं चोरीतें। नवनीताच्या कदापि। २५१ यशोदा म्हणे कृष्णनाथा। आण वाहें तूं तत्त्वतां। जे मी चोरी न करीं सर्वथा। शपथ आतां बोलें पैं। ५२ गोरसावांचोनि न करीं चोरी। माते आण तुझी निर्धारीं। ऐसें बोलतां कैटभारी। माता हांसे गदगदां। ५३ एके दिवशीं यशोदा। जेवूं घाली परमानंदा। दहींभात पुढें मुकुंदा। कालवोनि दीधला। ५४ लोणचें आणीं माते झडकरी। येरी म्हणे आहे सोंवळ्या-भीतरी। लोळणी घालीत मुरारी। म्हणे न जेवीं सर्वथा। ५५ मग सोंवळें विटाळोनी। आलें निंबें घाली जननी। गौळी भुलले अहंममतेकरूनी। नेणती करणी हरीची। ५६ गोकुळींची एक म्हातारी। सुनेसी राखी दिवसरात्रीं। म्हणे कृष्णाचा वारा निर्धारीं। पडों नेदीं सर्वदा। ५७ यास येऊं देशील जरी मंदिरा। तरी मुकलीस आपुल्या संसारा। नांवरूपा

बोले, 'री माँ, यह मुझे निश्चित रूप से बताओ, जो शास्त्र तुम मुझे पढ़ाओगी, वह किसका शास्त्र है?'। ४९ माँ बोली, 'यह भगवान का शास्त्र है।'। तब कमलनयन कृष्ण बोले, 'उस शास्त्र को पढ़ने पर भगवान सचमुच क्या देते हैं?'। २५० माता बोली, 'वे मुक्ति देते हैं।' कृष्ण बोले, 'री माँ, वह तुम्हें ही (प्राप्त) होने दो। मैं मक्खन की चोरी (करना) कदापि नहीं छोड़ूँगा।'। २५१ (इसपर) यशोदा बोली, 'रे कृष्णनाथ, तू सचमुच सौगन्ध ले ले। अब बोल, कि मैं चोरी बिल्कुल नहीं करूँगा— (मुझे) शपथ है।'। ५२ 'माँ, निश्चय ही तुम्हारी शपथ है, मैं गोरस के अतिरिक्त (और किसी वस्तु की) चोरी नहीं करूँगा।' कैटभारि कृष्ण के ऐसा बोलते ही माता खिलखिलाकर हँसने लगी। २५३

एक दिन यशोदा परमानन्द कृष्ण को भोजन करा रही थी। उसने सामने दही-भात मिलाकर कृष्ण को दे दिया। २५४ (तो कृष्ण बोले—) 'माँ, झट से अचार लाओ।' तो वह बोली, '(अचार) पवित्र स्थान पर (रखा हुआ) है।' (यह सुनकर) लोटते-पोटते हुए मुरारि बोले, 'मैं बिल्कुल खाना नहीं खाऊँगा।'। ५५ अनन्तर उस पवित्र स्थान को छूते हुए निकालकर माता ने अदरक और नीबू (का अचार थाली में) डाल दिया। (वस्तुतः) गोप अहंकारभाव से विमोहित हो गये थे। (अतः) वे कृष्ण की करनी को नहीं जान पा रहे थे। ५६ गोकुल की एक बुढ़िया अपनी बहू की दिन-रात रखवाली करती थी। वह कहती— 'कृष्ण की हवा (तक) निश्चय ही (अपने ऊपर) बिल्कुल न लगने दो। ५७ यदि इसे घर आने दोगी, तो अपनी घर-गिरस्ती से वंचित हो जाओगी। यदि तुम

न उरे थारा। झणीं यदुवीरा ऐक्य होसी। ५८ तों ते दिवशीं मंदिरीं। एकलीच होती सुंदरी। वृद्धा गेली बाहेरी। तों मागें हरि पातला। ५९ त्या गोपीस हरि भोगीत। तों वृद्धा पातली घरांत। दोघांजणां हातीं धरीत। बिदीस नेत ओढूनि। २६० वृद्धा सांगे अवघ्याजणां। हीं दोघें धरिलीं पहा नयना। लोक म्हणती सून पुत्र दोघांजणां। कोठें नेतीस म्हाताऱ्ये। २६१ वृद्धा म्हणे हा घननीळ। तुम्ही नेणां काय लोक सकळ। नंदगृहास तत्काळ। दोघां घेऊनि पातली। ६२ तों तेथें खेळे हृषीकेशी। विस्मय वाटे वृद्धेसी। नंद म्हणे पुत्रसुनेसी। कां आणिलें चावडिये। ६३ वृद्धा म्हणे या दोघांसी धरिलें। नंद म्हणे तुझें काय गेलें। अवघ्यांनीं वृद्धेसी गोफाटिलें। निर्भर्त्सिलें सकळिकीं। ६४ यशोदा म्हणे बाळावरी आळ। ऐसेचि घेती जन सकळ। पूर्णब्रह्मानंद निर्मळ। कृष्ण माझा निर्धारीं। ६५ मग आपुल्या घरा गेली वृद्धा। सोडूनि दिधलें परमानंदा। ज्याचिया गुणाची मर्यादा। शिव स्वयंभू नेणेचि। ६६ एकदां कडे घेऊनि

यदुवीर कृष्ण से झट से अर्थात अविवेक से एकत्व (मिलन) को प्राप्त हो जाओ, तो तुम्हारे नाम और रूप का कोई ठिकाना नहीं रह पाएगा।' ५८ तब उस दिन वह सुन्दरी घर में अकेली ही थी। वह वृद्धा बाहर गयी हुई थी। तब उसके पीछे (अनन्तर) हरि वहाँ आ पहुँचे। ५९ हरि उस गोपी का उपभोग करने लगे, त्योंही वह बुढ़िया घर के अन्दर आ पहुँची। उसने उन दोनों को हाथों से पकड़ लिया और वह उन्हें मार्ग में खींचकर ले जाने लगी। २६० उस वृद्धा ने सब लोगों से कहा— 'देखो, अपनी आँखों से, मैंने इन दोनों को पकड़ लिया है।' तो लोगों ने कहा (पूछा)— 'अरी बुढ़िया, (अपने) बहू और पुत्र दोनों जनों को कहाँ लिये जा रही हो?'। २६१ तो बुढ़िया ने कहा, 'तुम सब लोग इस घननील कृष्ण को नहीं पहचानते हो क्या?' फिर वह उन्हें लेकर तत्काल नन्द के घर पहुँच गयी। ६२ तो तब (दिखायी दिया कि) हृषीकेशी कृष्ण वहाँ खेल रहे थे। वृद्धा को अचरज हुआ। (फिर) नन्द बोले, '(तुम) पुत्र और बहूको चौकी पर क्यों लायी हो?'। ६३ तो बुढ़िया बोली, 'इन दोनों को मैंने पकड़ लिया है।' नन्द बोले, 'तुम्हारा क्या (बिगड़) गया (तुम्हारी क्या हानि हुई)?' (फिर) सबने उस बुढ़िया को उलझन में डाल दिया— सबने उसकी भर्त्सना की। ६४ (तदनन्तर) यशोदा बोली — 'ऐसे ही सब लोग मेरे बालक पर दोषारोप लगाते हैं। मेरा कृष्ण निश्चय ही आनन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म, निर्मल है।'। ६५ फिर वह बुढ़िया अपने घर गयी। उसने उन परमानन्द कृष्ण को छोड़ दिया, जिनके गुण (-गरिमा) की सीमा शिवजी और ब्रह्मा (तक) नहीं जान पाते। २६६

एक समय कृष्ण को गोद में लेकर गोपियाँ रविकन्या यमुना नदी के

हृषीकेशी। गोपी आल्या रविकन्यातीरासी। जैसा विद्युल्लताभार आकाशीं। तैसा दिसे समुदाय। ६७ तों तेथें नाव खुंटली। घरास गेले तारक सकळी। गोपिकांनीं नाव सोडिली। आंत बैसल्या सर्वही। ६८ एक नौकादंड करीं घेती। सव्यअपसव्य आवलिती। तों धारेमाजी निश्चितीं। नाव गेली तेधवां। ६९ जुनी नाव अत्यंत पाहीं। छिद्रें पडलीं ठायीं ठायीं। माजी उदक आलें लवलाहीं। धरवत अतिवेगासीं। २७० उदक देखतां युवती। परम भयभीत होती। म्हणती काय करावें श्रीपती। नौका बुडेल कीं आतां। २७१ हरि म्हणे कंचुक्या काढूनी। बोळे घालोनि कोंडा पाणी। ऐसें ऐकोनि गजगामिनी। नावेचीं छिद्रें कोंडिती। ७२ बोळे निघोनियां गेले। अधिकच पाणी आंत भरलें। गोपी म्हणती ये वेळे। काय सांग करावें। ७३ हरि म्हणे वस्त्रें काढून बुजा। तैसेंचि करिती आरजा। म्हणती काय करावें अधोक्षजा। संकट थोर मांडलें। ७४ तों तेथें सूर्य मावळला। असंभाव्य पर्जन्य वळला। तमें नभोमंडप भरला। मोठा सुटला प्रभंजन। ७५ भयानक लाटा उसळती। जळचरांचे पाळे

तट पर आ गयीं। जैसे विद्युल्लताओं का समुदाय आकाश में दिखायी देता है, वैसे ही वह (गोपी-) समुदाय दिखायी दे रहा था। २६७ तब वहाँ एक नौका रुकी (बँधी) हुई थी। सब नाविक (अपने-अपने) घर गये हुए थे। (यह देखकर) गोपियों ने नौका छुड़ा ली और वे सभी अन्दर बैठ गयीं। ६८ कुछ एक ने नौका के डाँड हाथों में ग्रहण किये और वे दायें-बायें खेने लगीं। तब निश्चय ही उस समय वह (नौका) धारा में चली गयी। ६९ देखिए, वह नौका तो अत्यधिक पुरानी थी। उसमें स्थान-स्थान पर छेद हो गये थे। (इसलिए उसके) अन्दर जल्दी ही पानी आ गया और (इधर) वह बड़े वेग को प्राप्त होती जा रही थी। २७० उस पानी को देखने पर वे युवतियाँ परम भयभीत हो गयीं और बोलीं, 'अरे कृष्ण, (अब) क्या करें? अब नौका डूब जाएगी'। २७१ तो कृष्ण ने कहा, 'कंचुकियाँ उतारकर डाट लगाते हुए पानी को रोक दो।' ऐसा सुनकर उन गजगामिनी नारियों ने नौका के छेद बन्द कर दिये। ७२ (परन्तु) वे डाट निकल गये और (नौका के) अन्दर पानी अधिक ही भर गया। तो गोपियाँ बोलीं, 'कहो, इस समय क्या करें?'। ७३ कृष्ण ने कहा, 'वस्त्र उतारकर बन्द कर दो।' तो युवतियों ने वैसा ही किया और वे बोलीं, 'रे कृष्ण, क्या करें? बड़ा संकट आ गया है।'। ७४ तब (तक) वहाँ सूर्य का अस्त हो गया। जो कभी सम्भव प्रतीत नहीं हो सकती, ऐसी (अनहोने रूप से) वर्षा होने लगी। अन्धकार से आकाश-मण्डप भर गया। प्रचण्ड हवा चलने लगी। ७५ भयावह लहरें उछलने लगीं। जलचरों के झुण्ड (के झुण्ड) दौड़ने लगे— वे भयकारी

धांवती। भ्यासुर मुखें पसरिती। प्रळयगति ओढवली। ७६ गोपी म्हणती वैकुंठनाथा। विश्वव्यापका रमाकांता। पुराणपुरुषा अव्यक्ता। धांवें आतां ये वेळीं। ७७ आमुचे प्राण गेले तरी काय। परी हरि बुडेल कीं आतां सये। प्रळय करील कीं याची माय। प्राण देईल ऐकतां। ७८ पाहोनियां कृष्णमुखा। सद्गद रडती गोपिका। धांवें यावें इंदिरानायका। कृष्ण आमुचा वांचवीं। ७९ जानूइतुकें नीर गोपिकांस जाहलें। श्रीकृष्णास नाभीपर्यंत आलें। हरीस कडियेवरी घेतलें। कंठ दाटले गोपिकांचे। २८० हृदयपर्यंत जाहलें जीवन। स्कंधीं घेतला जगज्जीवन। आकंठ उदक जाहलें पूर्ण। म्हणती मरण आलें कीं। २८१ देहांत आला जवळी। गोपिकांनीं मूर्ति सांवळी। हृदयीं तैसीच रेखिली। वृत्ति मुराली हरिरूपीं। ८२ गोपी म्हणती सांवळे कान्हाई। जगन्मोहने कृष्णाबाई। ऐसें जन्मोजन्मीं देईं। दर्शन तुझें राजसे। ८३ आम्ही अनंत घेऊं जन्मां। परी तूं आम्हांसी खेळें मेघश्यामा। भक्तकामकल्पद्रुमा। ऐसाचि भेटें पुढती तूं। ८४ आपणां

मुँह बाये हुए थे। (इस प्रकार) प्रलय की स्थिति आ गयी। ७६ तो गोपियाँ बोलीं, 'हे वैकुण्ठनाथ, हे रमाकान्त, हे पुराणपुरुष, हे अव्यक्त (ब्रह्मस्वरूप भगवान), अब इस समय दौड़ो। ७७ हमारे प्राण गये तो क्या (हो जाए ? —कुछ भी नहीं।) फिर भी हे सखी, अब कृष्ण डूब जाएगा। इसे सुनकर इसकी माता (रो-रोकर) प्रलय मचा देगी और प्राण त्याग देगी'। ७८ (फिर) वे गोपियाँ कृष्ण के मुँह को देखकर अति गद्गद होते हुए रो रही थीं। (वे बोलीं—) 'हे इन्दिरापति, दौड़ो, आ जाओ और हमारे कृष्ण को बचा दो।'। ७९ (तब तक) गोपियों के घुटनों तक पानी हो गया, कृष्ण की नाभि तक (ऊपर) आ गया, तो (उनमें से एक ने) कृष्ण को (उठाकर) गोद में ले लिया। उन गोपियों के गले रुँध गये। २८० (जब) छाती तक पानी हो गया, तो जगज्जीवन कृष्ण को कन्धे पर (बैठा) लिया। (फिर) कण्ठ तक पानी पूरा भर गया, तो वे बोलीं (उन्होंने माना, अब), मौत आ गयी। २८१ (जब जान पड़ा कि) देहान्त निकट आ गया है, तो उन गोपियों ने (कृष्ण की) वैसी ही साँवली मूरत (अपने-अपने) हृदय में अंकित कर ली। उनकी (मनो-) वृत्ति कृष्ण के रूप में विलीन (होकर उनके साथ एकात्म) हो गयी। ८२ (फिर) गोपियाँ बोलीं, 'रे साँवले कन्हैया, रे जगन्मोहन कृष्ण, रे राजस, जन्म-जन्म अपने ऐसे ही दर्शन (करा) दो। ८३ रे मेघश्याम, हम अनन्त जन्म ग्रहण करेंगी, फिर भी तुम हमारे साथ खेलो। हे भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष (स्वरूप कृष्ण), तुम (हमसे) आगे ऐसे ही मिलते रहो।'। ८४ मौत निकट आ गयी है, फिर भी

आलें निकट मरण। परी गोपिका न सोडिती स्मरण। निर्वाणींचे भक्त जाण। राजीवनयन तुष्टला। ८५ पर्जन्य अकस्मात उघडला। अभ्र वितळलें सूर्य प्रकटला। जळचरांचा मेळा दूर गेला। समीर राहिला स्थिर पैं। ८६ अकस्मात नाव कडेसी। लागली देखोनि गोपिकांसी। आनंद जाहला न माय आकाशीं। निजगृहासी पातल्या। ८७ यशोदेसी सांगती कृष्णचरित्र। आजि हरीनें केलें विचित्र। ऐकतां पापारण्य सर्वत्र। भस्म करी जाळूनि। ८८ नाव तीरास लागली जेव्हां। गोपींचीं वस्त्रें तैसींच तेव्हां। तो जगद्गुरु त्याचिया मावा। ब्रह्मादिकां न कळती। ८९ जो अनंतब्रह्मांडनायक। लीलावतारी जगद्व्यापक। वस्त्रें निर्मावया काय अशक्य। दीनबंधु सर्वात्मा। २९० हरिविजयग्रंथ हाचि समुद्र। साहित्य-मुक्तें अति पवित्र। त्यांचे शोधक सज्जन नर। बुड्या देती स्वानंदें। २९१ बुडी दिधल्याविण हातां। मुक्तें न येती सर्वथा। अविंध होतीं जीं तत्त्वतां। गुरुकृपें विंधिलीं तीं। ९२ तीं ओविलीं सद्गुणगुणीं। समसमान चहूंकडूनी।

गोपियाँ (कृष्ण का) स्मरण (करना) नहीं छोड़ रही थीं। (फलस्वरूप) समझिए कि राजीवनयन भगवान (कृष्ण) अपने परम भक्तों पर प्रसन्न हो गये। ८५ तो यकायक वर्षा रुक गयी, बादल खुल गये। सूर्य प्रकट हो गया। जलचरों का झुण्ड दूर चला गया। हवा (भी) स्थिर हो गयी। ८६ यकायक नौका को तट को लगे देखकर गोपियों को आनन्द हुआ। वह गगन में नहीं समा रहा था। (तदनन्तर) वे अपने-अपने घर गयीं। ८७ (तत्पश्चात) उन्होंने यशोदा को कृष्णचरित (लीला) बता दिया। (वे बोलीं—) 'आज कृष्ण ने विचित्र बात की (चमत्कार कर दिया)।' उसे सुनते ही सर्वत्र पाप रूपी अरण्य को जलाकर वे भस्म कर डालते हैं। ८८ जब नौका किनारे लग गयी, तब उनके वस्त्र (जैसे के) वैसे ही थे। वे (कृष्ण) जगद्गुरु हैं। उनकी मायिक लीलाएँ ब्रह्मा आदि (तक) की समझ में नहीं आ पातीं। ८९ जो अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक हैं, जो लीलावतार धारण करनेवाले तथा जगद्व्यापक हैं, क्या वे वस्त्रों के निर्माण के लिए अपर्याप्त हैं ? (उनके लिए वस्त्रों का निर्माण करना क्या असम्भव है)। वे तो दीनबन्धु हैं, सर्वात्मा हैं। २९०

श्रीहरि-विजय नामक ग्रन्थ ही (मानो) समुद्र है। उसके अन्दर अतिपवित्र साहित्य (के गुण रूपी) मोती हैं। उनके अन्वेषक सज्जन नर आत्मानन्द के साथ (उस समुद्र के अन्दर) गोते लगाते हैं। २९१ बिना गोते लगाये, मोती बिल्कुल हाथ नहीं आ सकते। (ऐसे) जो मोती मूलतः छेद-रहित होते हैं, उन्हें गुरु की कृपा से बींध दिया गया है। ९२ उन्हें सद्गुण रूपी धागे में पिरो दिया है। वे चारों ओर से सम-समान हैं।

ते मुक्तामाळ सतेजपर्णी। संतांचे कंठीं डोलत। ९३ ब्रह्मानंदा परात्परा। गोकुळपाळका दिगंबरा। वेदवंद्या श्रीधरवरा। निर्विकारा अभंगा। ९४ इति श्रीहरिविजयग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। चतुर श्रोते परिसोत। नवमाध्याय गोड हा। २९५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

ऐसे उन मोतियों की मालाएँ अच्छे तेज के साथ सन्तों के गले में झूल रही हैं। ९३ हे (गुरु) ब्रह्मानन्द अर्थात आनन्दस्वरूप ब्रह्म, हे परात्पर (ब्रह्म), हे गोकुल-पालक, हे दिगम्बर, हे वेदवन्द्य, हे श्रीधर-वर, हे निर्विकार, हे अभंग। इति। श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। चतुर श्रोता उसके इस मधुर नवम अध्याय का श्रवण करें। २९४-२९५

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१०

[बालकृष्ण की वन-लीला और ब्रह्मा का गर्वहरण]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय सिंहाद्रिवासा। त्रिगुणातीता परमपुरुषा। अत्रिनंदना परमहंसा। लीलावेषा दिगंबरा। १ जय जय सर्गस्थित्यंत-कारणा। दत्तात्रेया मुनिमानसरंजना। अमलदलराजीवनयना। जगद्भूषणा जगद्गुरो। २ कैवल्यज्ञानदायका अवधूता। अवयवरहिता

श्रीगणेशाय नमः। हे सिंह पर्वत पर निवास करनेवाले, हे (सत्त्व-रज-तम नामक) तीनों गुणों से परे, हे परम पुरुष, हे अत्रि ऋषि के नन्दन[1], हे परमहंस, हे लीलावेशधारी, हे दिगम्बर, जय हो, जय हो। १ हे सर्ग (निर्माण), स्थिति (पालन-रक्षण) और विनाश नामक तीनों अवस्था के कारण (कर्ता), हे दत्तात्रेय, हे मुनियों के मानस का रंजन करनेवाले,

१ सिंह पर्वत पर……अत्रि-नन्दन : अत्रिनन्दन अर्थात दत्तात्रेय। दत्तात्रेय अत्रि ऋषि और अनसूया के पुत्र माने जाते हैं। महाराष्ट्र में प्रचलित मान्यता के अनुसार दत्तात्रेय त्रिमुख हैं। सती अनसूया के सतीत्व की परीक्षा करने के लिए आये हुए भगवान विष्णु, शिव और ब्रह्मा को शिशु-रूप बनाकर अनसूया ने अनावृत होकर उनको भोजन कराया। उसके पश्चात ये तीनों देव अनसूया के पुत्रों के रूप में रहने लगे। अत्रि-अनसूया का आश्रम सिंह अर्थात सह्य पर्वत की एक पूर्वगामी शाखा में स्थित माहूर अथवा मातापुर (जिला नांदेड, मराठवाड़ा, महाराष्ट्र) में है। महाराष्ट्र में भगवान दत्तात्रेय के हजारों उपासक हैं। दत्तात्रेय निवृत्तिमार्गीय हैं, वे परमहंस अवधूत कहाते हैं। यहाँ कवि श्रीधर उनको आराध्य समझकर उनकी वन्दना करते हैं।

मायातीता। भक्तजनपालका अव्यक्ता। अपरिमिता निरंजना। ३ सकळ योगियांत शिरोमणी। सच्चिदानंद मोक्षदानी। तो दिगंबर कटीं कर ठेवुनी। पंढरीये उभा असे। ४ जें वेदांचें निजसार। जें सकळ शास्त्राचें जिव्हार। तो हा भीमातीरीं दिगंबर। अति उदार सर्वात्मा। ५ स्तंभें न उचले गगन। न करवे अवनीचें वज़न। समुद्राचें किती जीवन। नव्हे प्रमाण सर्वथा। ६ तैसे तुझे अपार गुण। शिव विरिंचि नेणती महिमान। तेथें मी एकजिव्हेंकरून। काय गुण वर्णूं तुझे। ७ हरिविजयग्रंथसार। अवधूतांचें निजमंदिर। तेथें दूषणश्वान अपवित्र। प्रवेशेल कोठोनियां। ८ असो नवमाध्यायीं कथन। गोपी नावेंत बैसोन। नौका बुडतां जगज्जीवन।

हे अमल (निर्मल) दलों वाले कमल-से नेत्रों वाले, हे जगद्भूषण, हे जगद्-गुरु, जय हो, जय हो। २ हे कैवल्य ज्ञान के दाता, हे अवधूत, हे अवयव-रहित अर्थात निरंग-निराकार, हे माया के परे रहनेवाले, हे भक्तजनों के पालक, हे अव्यक्त, हे अपरिमित, हे निरंजन (दोष रूपी अंजन-रहित), (जय हो, जय हो)। ३ समस्त योगियों में जो शिरोमणि-स्वरूप हैं, जो सच्चिदानन्द तथा मोक्षदाता हैं, वे दिगम्बर भगवान (कृष्ण) कटि पर हाथ टिकाये हुए पण्ढरपुर (नामक पावन नगरी) में खड़े हैं[1]। ४ जो वेदों के अपने सारस्वरूप हैं, जो समस्त शास्त्रों के रहस्यस्वरूप हैं, वे अति उदारधर्मा सर्वात्मा (प्रत्यक्ष ब्रह्म) ही ये भीमा नदी के तट पर स्थित दिगम्बर भगवान हैं। ५ स्तम्भ के बल आकाश उठाया नहीं जाता, पृथ्वी का वजन नहीं किया जा पाता; यह बिल्कुल प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि समुद्र में कितना पानी है। ६ उसी प्रकार, (हे भगवान,) आपके गुण अपार हैं। शिवजी और ब्रह्मा (तक) आपकी महिमा नहीं जानते। तो वहाँ (इस स्थिति में) मैं एक (मात्र) जिह्वा से आपके गुणों का क्या वर्णन करूँ ?। ७ श्रीहरि-विजय नामक इस ग्रन्थ का सार-स्वरूप (मानो) अवधूतों का अर्थात परमहंस योगियों का अपना स्वयं का निवासस्थान है। वहाँ दोष रूपी अपवित्र कुत्ता कहाँ से प्रविष्ट हो पाएगा। ८ अस्तु। नवम अध्याय में यह कथन (किया) है कि गोपियों के नौका में बैठने पर जगज्जीवन कृष्ण ने उस नौका के डूबते जाते हुए उन गोपियों की पूर्णतः रक्षा की। ९ जिन्हें पाँचों[2] और छहों[3] से न्यारा

---

१ योगियों में शिरोमणि···कटि पर : भगवान कृष्ण योगियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। भगवद्गीता (अ० १८-७८) में भी उन्हें 'योगेश्वर' कहा गया है। पण्ढरपुर के श्रीविट्ठल या विठोबा वस्तुतः कृष्ण ही हैं। वहाँ के मुख्य विट्ठल-मन्दिर में जो मूर्ति है, वह इस मुद्रा की है— भगवान विट्ठल कृष्ण कटि पर हाथ टिकाये हुए खड़े हैं।

२ पाँच महाभूत— पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

३ छः—गर्भावस्था, जन्म, विकास, युवावस्था, वृद्धत्व और मृत्यु नामक छः विकार।

रक्षी पूर्ण गोपींतें । ९ जो पांचां साहांवेगळा जाणा । न ये पंचास्याच्या ध्याना । तो वैकुंठपीठींचा राणा । पांचां वर्षांचा जाहला । १० गोपी म्हणती यशोदे सती । वत्सें चाराया धाडीं श्रीपती । सवें देऊनि धाकुटे सांगाती । वनाप्रती धाडीं कां । ११ गांवांत असतां मुरारी । घरोघरीं करितो चोरी । सवें देऊनि सिद्ध शिदोरी । पाठवावा वनातें । १२ असो प्रातःकाळीं उठोनियां । माता म्हणे ऊठ प्राणसखया । जाईं वत्सें चारावया । काननाप्रती गोविंदा । १३ सवें घेऊनि धाकुट्या गोवळां । सकळ वत्सें करूनि गोळा । राजबिदीवरूनि सांवळा । वना चालिला जगदात्मा । १४ वाद्यें वाजताती गंभीर । घुमऱ्या मोहऱ्या पांवे सुस्वर । टाळमृदंगांचे झणत्कार । करिती गजर स्वानंदें । १५ तेथें मृगांकमरीच्याकारें । ढाळिताती दोहींकडे चामरें । हरीवरी पल्लवछत्रें । चिमणे गोपाळ धरिताती । १६ चिमणा श्रीकृष्ण सांवळा । चिमणा पीतांबर कांसे कसिला । चिमणी बरी कटीं मेखळा । विद्युत्प्राय झळकतसे । १७ चिमण्या वांकी नेपुरें रुणझुणती । मजा पाहात वेदश्रुती । न वर्णवे निर्गुणाची कीर्ती । म्हणोनि सगुणीं जडल्या त्या । १८ चिमणीच हातीं मुरली । तेथें चित्तवृत्ति समूळ मुराली ।

(परे) समझिए, जो पंचमुख शिवजी के ध्यान (की पकड़ तक) में नहीं आ पाते, वे वैकुण्ठपीठ के राजा (भगवान विष्णु के अवतार) कृष्ण पाँच बरस के हो गये । १० तो गोपियाँ बोलीं, ' अरी सती यशोदा, तुम कृष्ण को बछड़ों को चराने के लिए भेज दो । साथ में छोटे साथियों को देकर वन की ओर भेज दो । ११ यह कृष्ण ग्राम में रहने पर घर-घर चोरी करता है । (इसलिए) साथ में तैयार करके पाथेय देकर वन की ओर भेजो । ' १२ अस्तु । (उनके परामर्श के अनुसार) सवेरे उठकर माता बोली, ' रे प्राणसखा, उठो । रे गोविन्द, बछड़ों को चराने के लिए वन जाओ । ' । १३ (अतः) साँवले जगदात्मा कृष्ण साथ में छोटे-छोटे ग्वाल-बालों को लेकर समस्त बछड़ों को इकट्ठा करके राजमार्ग से वन की ओर चल दिये । १४ (तब) गम्भीर स्वर में बाजे बज रहे थे । गुनगुने (गुनगुन-सी ध्वनि वाले वाद्य), तूमड़ियाँ, बाँसुरियाँ (जैसे वाद्य) अच्छे अर्थात मधुर स्वर में तथा मँजीरे-मृदंग झंकार करते हुए आनन्द के साथ गरज रहे थे । १५ वहाँ (उस समय) चन्द्र और सूर्य के (-से) आकार वाले चामर दोनों ओर हिला रहे थे । नन्हे-नन्हे गोपालों ने कृष्ण पर पत्तों के छत्र धरे थे । १६ नन्हे कृष्ण साँवले थे । उन्होंने नन्हा-सा पीताम्बर कटि में कस (कर पहन) लिया था । कमर में नन्ही-सी भली मेखला बिज़ली-सी चमक रही थी । १७ (उनके द्वारा पहने हुए) नन्ही-सी बाँकें और नूपुर रुनझुना रहे थे । (मानो, उस समय) वेद और श्रुतियाँ यह आनन्द (दायक दृश्य) देख रहे थे । (उनसे) निर्गुण की

मिथ्या माया सकळ हरली। चिमणी सांवळी मूर्ति पाहतां। १९ चिमणीच घोंगडी शोभली। दशियांप्रती मोत्यें ओंविलीं। चिमणाच वेत करकमळीं। कमलनयनें धरिलासे। २० चिमणे गळां मोत्यांचे हार। चिमण्या क्षुद्रघंटांचा गजर। गळां वनमाळांचे भार। शोभे किशोर नंदाचा। २१ मूर्ति सांवळी गोमटी। अंगीं शोभे केशराची उटी। टिळक रेखिला ललाटीं। रत्नें मुकुटीं झळकती। २२ कर्णीं कुंडलें मकराकार। नेत्र आकर्ण अतिसुकुमार। मंदस्मितवदन सुंदर। रमावर शोभतसे। २३ भोंवते सखे गाती निर्भर। मृदंग वाजती सुस्वर। मध्यें पांवा वाजवी श्रीधर। महिमा अपार न वर्णवे। २४ गोपिका आणि यशोदा सती। हरीस बोळवीत जाताती। माता म्हणे श्रीपती। झडकरीं येईं माघारा। २५ गोपांसमवेत जगन्निवास। आला तमारिसुतेचे तीरास। नाना खेळ लीलाविलास। पुराणपुरुष दावीतसे। २६ यावरी काननीं जगदुद्धार। दिवस आला दोन

कीर्ति का वर्णन नहीं किया जा पाता; इसलिए वे सगुण (ब्रह्म) में जुड़ गये हैं। १८ (कृष्ण के) हाथ में नन्ही-सी बाँसुरी थी। वहाँ (उसमें) चित्तवृत्ति मूलसहित लय को प्राप्त (होकर एकात्म) हो गयी थी। उस नन्ही श्याममूर्ति को, देखते ही समस्त मिथ्या माया नष्ट हो गयी। १९ नन्हा कम्बल शोभायमान हो रहा था। दसियों में मोती पिरोये हुए थे। कमलनयन कृष्ण ने नन्हा ही बेंत हाथ में ग्रहण किया था। २० गले में मोतियों के छोटे-छोटे हार थे। छोटे-छोटे घुँघरुओं का गर्जन हो रहा था। गले में वन (पुष्पों की) मालाओं का समूह थे। (इनसे युक्त) नन्द के किशोर (कृष्ण) शोभायमान थे। २१ उनकी मूर्ति साँवली-सलोनी थी। शरीर में (लगा हुआ) केसर का अंगराग शोभायमान था। ललाट पर तिलक अंकित था। मुकुट में रत्न जगमगा रहे थे। २२ कानों में मत्स्याकार कुण्डल थे। नेत्र आकर्ण (कानों तक फैले हुए अर्थात विशाल) तथा अति सुकोमल थे। मन्द मुस्कान से युक्त वदन सुन्दर था। (इस प्रकार) रमापति (विष्णु के अवतार कृष्ण) शोभायमान थे। २३ उनके चारों ओर उनके मित्र बड़े लगाव से गा रहे थे। मृदंग सुरीले बज रहे थे। (उन सबके) बीच में कृष्ण मुरली बजा रहे थे। उनकी अपार महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। २४ गोपियाँ और सती यशोदा कृष्ण को पहुंचाने अर्थात बिदा करने जा रही थीं। तो माता बोली, 'कृष्ण, तू जल्दी लौट आ जा।'। २५

(तदनन्तर) जगन्निवास कृष्ण गोपों सहित सूर्य-कन्या यमुना नदी के तट पर आ गये। (वहाँ) वे पुराणपुरुष (कृष्ण) नाना (प्रकार के) खेलों के रूप में लीला-विलास प्रदर्शित करने लगे। २६ अनन्तर (जब) दो पहर दिन हो गया, तब जगदुद्धारक कृष्ण ने समस्त सम्बल इकट्ठा

प्रहर। शिदोऱ्या मेळवूनि समग्र। काला थोर मांडिला। २७ कमलपत्राकार गोपाळ। मध्यें मिलिंद तमालनीळ। कीं निधानाभोंवते साधक सकळ। साधावया बैसती। २८ कीं फणिवरीं वेष्टिला चंदन। कीं विबुधीं वेष्टिला सहस्त्रनयन। कीं वराभोंवते संपूर्ण। वऱ्हाडी जैसे बैसले। २९ कीं अनर्घ्य रत्नाजवळी। मिळाली परीक्षकमंडळी। कीं कनकाद्रीभोंवते सकळी। कुलाचल बैसले। ३० कीं मानससरोवर निर्मळ। त्याभोंवते बैसती मराळ। कीं वेष्टूनियां जाश्वनीळ। तपस्वी बैसती प्रीतीनें। ३१ कीं श्रीकृष्ण सूर्यनारायण। गोप ते किरण प्रकाशघन। कीं हरिचंद्रास वेढून। उडुगण गोप बैसले। ३२ आपुल्या शिदोऱ्या संपूर्ण। हरीपुढें ठेविती आणून। एकीं मांडेच आणिले जाण। अंतर्बाह्य गोड जे। ३३ एकीं आणिली गुळवरी। एकाचा दहींभात भाकरी। एकाची ते शिळीच शिदोरी। सोडोनियां बैसले। ३४ कोंड्याची भाकरी एक सोडीत। एकाचा ताकभात झिरपत। एकाची शिदोरी विटली समस्त। चवी न

करके बड़ा मिश्रण करना आरम्भ किया। २७ (समस्त) गोपाल कमल-पत्राकार (अर्थात कमल-पुष्प के दलों-पंखुड़ियों के-से आकार में बैठ गये) थे और (उनके) बीच में तमालनील (कृष्ण मानो) भ्रमर (जैसे) थे। अथवा (जान पड़ता था,) गुप्त धन के चारों ओर उसे सिद्ध (प्राप्त) कर लेने के हेतु समस्त साधक बैठ गये हों। २८ अथवा बड़े-बड़े नागों ने (घेरकर) चन्दन वृक्ष को लपेट लिया हो, अथवा देवों ने सहस्त्रनयन इन्द्र को घेर लिया हो, अथवा दूल्हे के चारों ओर सब बारातिये बैठे हों। २९ अथवा किसी अमूल्य रत्न के पास (उसका मूल्यांकन करने के हेतु) परीक्षकों का समुदाय इकट्ठा हो गया हो, अथवा स्वर्णमेरु पर्वत के चारों ओर कुलपर्वत[1] बैठ गये हों। ३० अथवा निर्मल मानसरोवर के चारों ओर राजहंस बैठ गये हों, अथवा शिवजी को घेरकर तपस्वी प्रेम के साथ बैठ गये हों। ३१ अथवा श्रीकृष्ण (मानो) सूर्यनारायण हैं, तो वे गोप प्रकाशघन किरणें हैं। अथवा कृष्ण रूपी चन्द्र को घेरकर गोप रूपी तारे बैठ गये हों। ३२ उन्होंने कृष्ण के सामने (अपना-अपना) सम्बल लाकर रख दिया। समझिए, कोई एक माँड़े ही लाया था, जो भीतर-बाहर मीठे थे। ३३ कोई एक गुड़ की बड़ी (टिकिया) लाया था। किसी एक के पास दही-भात और रोटी थी; तो किसी एक का सम्बल बासी था। (इस प्रकार) वे सब खोलकर बैठ गये। ३४ किसी एक ने भूसे की रोटी (की पोटली) खोल दी; किसी एक का छाछ मिलाया हुआ भात झर रहा था।

---

१ कुलपर्वत : पौराणिक मान्यता के अनुसार उन सात मुख्य पर्वतों को कुलपर्वत, कुलाचल आदि कहते हैं, जो जम्बुद्वीप के अन्दर इस भूभाग के सात मुख्य खण्डों में स्थित हैं। ये सात कुलपर्वत हैं— महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य, पारियात्र।

लागे जेवितां । ३५ सकळांसी म्हणे हरि तेव्हां । आपुलें वाढिलें उगेंच जेवा । दुसऱ्याचा नका करूं हेवा । मनोभावापासुनी । ३६ आपुलें पूर्वकर्म नीट नाहीं । दुसऱ्याचा हेवा करूनि काई । जें पेरिलें तें लवलाहीं । बाहेर उगवोनि ठसावें । ३७ असो काला करितां मुरारी । त्यांतून पेंधा उठे झडकरी । आणिक वृक्षच्छायेसी निर्धारीं । जाऊनियां बैसला । ३८ वेगळेंच थोंब तयानें केलें । गोप आपणा कडे फोडिले । एक एक अवघेच गेले । टाकून एकले हरीसी । ३९ गोपाळ म्हणती हृषीकेशी । काय सुख तुझे संगतीसी । नसतें जीवित्व आम्हांस देसी । फेरे चौऱ्यायशीं भोगावया । ४० तूं आधीं एकला निर्गुण । तुज पुसत होतें तरी कोण । मग आम्हीं तुज सगुण । करूनि आणिलें आकारा । ४१ आम्हीं तुज नांवरूपा आणिलें । महत्त्व चहूंकडे वाखाणिलें । तुज थोरपण आम्हीं दिधलें । तुवां वेगळें केलें आम्हां । ४२ तूं परब्रह्म मायेपरता । आणि जीवदशा आमुचे माथां । तूं अक्षय अचल अनंता । नाना पंथां पिटिसी आम्हां । ४३ तूं जाहलासी निर्विकार । आम्हांसी लाविले नाना विकार । तूं ब्रह्मानंद परात्पर । निरय घोर आम्हांसी कां । ४४ तूं देवाधिदेव आत्माराम ।

किसी एक का पूरा कलेवा बिगड़ गया था, इसलिए जीमने में स्वाद नहीं आ रहा था । ३५ तब सबसे कृष्ण ने कहा, ' अपना-अपना परोसा (हुआ खाना) चुपचाप ही खा लो । (सच्चे) मनोभाव से किसी दूसरे से डाह न करो । ३६ (यदि) अपना पूर्व (जन्म) कृत कर्म ठीक न हो, तो दूसरे से डाह करने से क्या होता है । जो बोया हो, वह झट से उगकर जम जाता है । '। ३७ अस्तु । कृष्ण द्वारा मिश्रण करने पर उन (लोगों) में से मनसुखा झट से उठ गया और जाकर एक पेड़ की छाया में बैठ गया । ३८ उसने अनोखा ढोंग रचा और (कुछ) गोपों को बहकाते हुए अपने पक्ष में (मिला) लिया । एक-एक करके सब कृष्ण को अकेले छोड़कर चले गये । ३९ उन गोपालों ने कहा, ' कृष्ण, तेरी संगति में क्या सुख है ? अनचाहा झूठा (मिथ्या) जीवन चौरासी लाख फेरे भोगने के लिए हमें देते हो । ४० तुम पहले अकेले, निर्गुण हो । तुम्हें कौन पूछ रहा था ? फिर हमने तुम्हें सगुण बनाकर आकार को प्राप्त करा दिया । ४१ हमने तुम्हें नाम-रूप को प्राप्त कराया, तुम्हारी महत्ता का चारों ओर प्रशंसायुक्त बखान किया । हमने तुम्हें बड़प्पन दिला दिया, परन्तु तुमने हमको अलग कर डाला । ४२ तुम माया के परे परब्रह्म हो और हमारे सिर जीवदशा आ गयी है । तुम अक्षय, अचल, अनन्त हो (और) हमें नाना मार्गों पर (योनियों में) दौड़ाते रहते हो । ४३ तुम निर्विकार हो गये हो; (पर) तुमने हमारे लिए नाना विकार उत्पन्न कर दिये । तुम ब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप) परात्पर (ब्रह्म) हो । (परन्तु) हमारे लिए

तूं चराचरबीजफलद्रुम। आमुच्या पाठीं क्रोध काम। दुर्जन परम लाविले। ४५ तूं अज अजित अचल। आम्हां केलें सदा चंचल। तूं ज्ञानरूप अति निर्मळ। अज्ञान सबळ आम्हांसी कां। ४६ तूं महाराज नित्यमुक्त। आम्हां केलें विषयासक्त। तूं मायेहूनि अतीत। अविद्यावेष्टितत्व आम्हांसी कां। ४७ महामुनी सोंवळे मुरारी। ते तुज चिंतिती अंतरीं। आम्हांसी न शिवती क्षणभरी। ऐसी परी तुवां केली। ४८ तूं मदनमनोहर पुतळा। आम्ही वांकडे विरूप अवकळा। तुझे बोल गोड लागती सकळां। आमुच्या बोला हांसती। ४९ ऐसें बोलोनि गोवळे। अवघे पेंध्याकडे गेले। मग तेणें घननीळें। काय केलें ऐका तें। ५० आपण येऊनि गोपांजवळी। उभा ठाकला वनमाळी। तंव ते मिळोनि सकळी। बळें दवडिती हरीतें। ५१ म्हणती तूं नलगेसी आम्हांतें। म्हणोनि माघारें लोटिती हातें। हरि काकुळती ये तयांतें। मी तुम्हांतें न विसंबें। ५२ तुम्ही बोलाल जें वचन। त्यासारिखा मी वर्तेन। सांगाल तेंचि मी करीन। तुम्हांविण न गमे

घोर नरक क्यों (दिया) है। ४४ तुम देवाधिदेव आत्माराम हो। तुम चर और अचर (सजीव और निर्जीव) वस्तु मात्र के मूल बीजस्वरूप फल से युक्त वृक्ष हो। (परन्तु तुमने) हमारे पीछे परम दुर्जन क्रोध-काम (जैसे विकार) लगा दिये हैं। ४५ तुम अजन्मा, अजित, अचल हो, (परन्तु) हमें सदा चंचल बना दिया है। तुम अति निर्मल ज्ञानरूप हो; तो हमारे लिए बलशाली (बहुत बड़ा) अज्ञान है। ४६ तुम नित्य मुक्त महान राजा हो। (परन्तु) हमें विषयासक्त बना दिया है। तुम माया से परे हो, (फिर तुमने) हमारे लिए अविद्या का आवरण क्यों (उत्पन्न कर रखा) है। ४७ हे मुरारि, जो महामुनि शुद्ध हैं, वे तुम्हारा अन्तःकरण में चिन्तन (ध्यान) किया करते हैं। (परन्तु) वे क्षण भर के लिए भी हमें नहीं छूते हैं— तुमने हमारी ऐसी स्थिति कर दी है। ४८ तुम मदन-से मनोहारी पुतले हो। हम टेढ़े-मेढ़े (बेडौल) कुरूप, तेजोहीन हैं। तुम्हारे शब्द सबको मीठे लगते हैं, (पर) हमारे बोल को (लोग) हँसते हैं।'। ४९ ऐसा बोलकर समस्त ग्वालबाल मनसुखे के पास (उसके पक्ष में मिल) गये। तब उन घननील कृष्ण ने क्या किया ? सुनिए। ५० वनमाली कृष्ण स्वयं उन गोपों के पास आकर खड़े हो गये। तब उन सबने मिलकर कृष्ण को बलात् भगा दिया। ५१ वे बोले, 'तुम हमें नहीं चाहिए।' ऐसा कहते हुए वे हाथों से कृष्ण को पीछे धकेलने लगे। तो कृष्ण उनके प्रति गिड़गिड़ाने लगे (और बोले—) 'मैं तुम्हें नहीं भूलूँगा। ५२ तुम जो बात कहोगे, उसके अनुसार मैं बरताव करूँगा, जो कहोगे, वही मैं करूँगा; बगैर तुम्हारे मुझे अच्छा नहीं लगता। ५३ मैंने सचमुच तुम्हारे लिए मत्स्य, कूर्म आदि अवतार ग्रहण किये थे। मैंने

मज़। ५३ मत्स्यकूर्मादि अवतार। तुम्हांलागीं घेतले साचार। सूकर-नरसिंहरूपें सुंदर। तुम्हांलागीं धरिलीं म्यां। ५४ पाळावया तुम्हांलागुनी। म्यां निःक्षत्री केली अवनी। पौलस्त्यकुळ निर्दाळुनी। रक्षिलें म्यां तुम्हांतें। ५५ ऐसा मी निजभक्तसाहाय्यकारी। मज कां दवडितां ये अवसरीं। ऐसें बोलतां हरीचे नेत्रीं। अश्रु वाहती भडभडां। ५६ ऐसें ते क्षणीं देखोनी। पेंधा धांवोनि लागे चरणीं। आपुल्या नेत्रोदकेंकरूनी। हरिपदीं केला अभिषेक। ५७ गडी स्फुंदत बोलती तेव्हां। वैकुंठपाळा गा माधवा। आम्ही तुज़ दवडूनि केशवा। ठकलों होतों सर्वस्वें। ५८ असो हरीस मध्यें बैसवूनी। काला मांडिला ते क्षणीं। आपुल्या हातें चक्रपाणी। कवळ देत निजभक्तां। ५९ गडी म्हणती जगन्मोहना। आधीं ग्रास घे तूं जनार्दना। हरि म्हणे तुम्हांविना। ग्रास न घें मी सर्वथा। ६० मग म्हणती गोपाळ। तुज़विण ग्रास न घेऊं सकळ। रुसोनि चालिला घननीळ। जो वेल्हाळ वैकुंठींचा। ६१ गोपाळ धांवोनि लागती पायां। बैसे बैसे रे भक्तसखया। तुझेंच ऐकूं म्हणोनियां। कान्हयालागीं बैसविलें। ६२ आधीं भक्तीं घेतला ग्रास। तैं शेष सेवी जगन्निवास। जो परात्पर पुराणपुरुष।

शूकर और नृसिंह जैसे सुन्दर रूप तुम्हारे लिए धारण किये थे। ५४ तुम्हारा पालन (रक्षण) करने के लिए (परशुराम के रूप में) मैंने पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर डाला था। मैंने पौलस्त्य (रावण) कुल का निर्दलन करके तुम्हारी रक्षा की। ५५ मैं इस प्रकार अपने भक्तों का सहायक हूँ। (तो फिर) इस समय मुझे क्यों भगा रहे हो ?' ऐसा बोलते हुए कृष्ण की आँखों में से झरझर आँसू बह रहे थे। ५६ उस क्षण ऐसा देखकर दौड़ते हुए मनसुखा उनके पाँव लग गया और उसने अपने नयन-जल से कृष्ण के चरणों पर अभिषेक कर लिया। ५७ तब उनके साथी सुबकते हुए बोले, 'हे वैकुण्ठपाल, हे माधव, हे केशव, तुम्हें भगाकर हम सरबस से ठगाये गये थे।'। ५८ अस्तु। (तदनन्तर) उस क्षण कृष्ण को बीच में बैठाकर उन्होंने मिश्रण करना आरम्भ किया। चक्रपाणि कृष्ण अपने हाथ से अपने भक्तों को कवल (कौर, ग्रास खाने के लिए) देने लगे। ५९ तो साथी जगन्मोहन कृष्ण से बोले, 'रे जनार्दन कृष्ण, पहले तुम कौर (खा) लो।' (इसपर) कृष्ण ने कहा, 'मैं बिना तुम्हारे (खाये) कौर बिल्कुल नहीं ग्रहण कर लूँगा।'। ६० फिर गोपाल बोले, 'हम सब बिना तुम्हारे (लिये) ग्रास नहीं (स्वीकार कर) लेंगे।' (यह सुनकर) जो वैकुण्ठ के सलोने हैं वे घननील कृष्ण रूठकर चले जाने लगे। ६१ तो दौड़कर गोपाल उनके पाँव लगे (और बोले—) 'अरे भक्तों के सखा, बैठ जा। हम तेरी ही सुनेंगे (मानेंगे)', कहते हुए उन्होंने कन्हैया को बैठा लिया। ६२ पहले भक्तों ने कौर ग्रहण किया और (तत्पश्चात) जो

लीला अगाध दावीतसे । ६३ ऐसा नित्यकाळ यमुनातीरीं । काला करीत पूतनारी । आपुल्या हातें शिदोरी । वांटी हरि सकळांतें । ६४ गडी म्हणती ते समयीं । आमुचा ग्रास तूं घेईं । तुझा ग्रास लवलाहीं । आम्ही घेऊं गोविंदा । ६५ मीपण आणि तूंपण । या दोहींचा ग्रास करून । मग रुचि कैंची संपूर्ण । अनुभवेंकरून पहावें । ६६ गोपाल करिती करपात्रें । त्यांत कवळ ठेविले राजीवनेत्रें । आलें लोणचीं चित्रविचित्रें । अंगुलिका-संधीं धरिताती । ६७ मजा पाहात ते परमहंस । भोंवते बैसले सदा उदास । जैसें मानस वेष्टितो राजहंस । मुक्त सेवूं बैसले । ६८ मध्यें बैसला भुवन-सुंदर । भोंवते गोपाळ दिगंबर । मानापमान समग्र । दोन्ही नेणती सर्वथा । ६९ जैसी श्वानाची विष्ठा । तैसी त्यांस वाटे प्रतिष्ठा । तरीच पावले वरिष्ठा । श्रीवैकुंठा हरीतें । ७० असो हरिमुखीं कवळ । सकळ घालिती गोपाळ । उरलें तें शेष गोवळ । स्वयें घेती प्रीतीनें । ७१ तों सकल निर्जर ते वेळीं । विमानीं पाहती अंतराळीं । तो ब्रह्मानंद वनमाळी ।

परात्पर पुराण-पुरुष हैं, उन जगन्निवास कृष्ण ने शेष भाग का सेवन किया। (इस प्रकार) उन्होंने अथाह लीला प्रदर्शित की । ६३ इस प्रकार पूतनारि कृष्ण नित्य काल यमुना तट पर खाना मिला लिया करते थे और वे सबको अपने हाथों कलेवा बाँट दिया करते थे । ६४ साथी उस समय कहते, 'अरे गोविन्द, (पहले) हमारा कौर ले लो, (फिर) हम तुम्हारा झट से ले लेंगे । ६५ यह अनुभव से देखा (जाना) जाए कि 'मैं-पना' और 'तू-पना'—दोनों को ग्रास करके अर्थात 'मैं-मेरा' और 'तू-तेरा' के भेदभाव को पूर्ण नष्ट करने के पश्चात स्वाद कैसा परिपूर्ण होता है । ६६ गोपाल अंजलि बना लेते थे; राजीवनयन कृष्ण उनमें कौर रखते थे। चित्र-विचित्र अदरक, अचार अँगुलियों के जोड़ में रखते थे । ६७ (मानो) वे परमहंस उस आनन्द को देखा करते थे । (सुखभोग के प्रति) उदास (विरक्त) होकर वे चारों ओर बैठा करते थे । जैसे राजहंस मानसरोवर को (चारों ओर से) घेर लेते हैं, उसी प्रकार वे मुक्त (जीव) इसका सेवन करने के लिए बैठते थे । ६८ (समस्त) भुवनों में सुन्दर कृष्ण बीच में बैठे हुए थे और चारों ओर दिगम्बर (नंगे) गोपाल थे । वे समस्त मान-अपमान को बिल्कुल नहीं जानते थे । ६९ (किसी को) कुत्ते की विष्ठा जैसी (घिनौनी) जान पड़ती हो, वैसी उन्हें प्रतिष्ठा (घिनौनी एवं त्याज्य) लगती थी । इसीलिए तो वे श्रीवैकुण्ठाधिपति वरिष्ठ हरि को प्राप्त हो गये । ७० अस्तु । समस्त गोपाल (अपने-अपने हाथ से) कृष्ण के मुँह में कौर डालते थे (और अनन्तर) जो शेष रहता उसे वे गोपाल स्वयं प्रेम से (खा) लेते थे । ७१ तब उस समय समस्त देव विमानों में बैठकर आकाश में से यह देखते थे कि ब्रह्मानन्द वनमाली कृष्ण किस प्रकार

काला कैसा करीतसे। ७२ ब्रह्मा म्हणे ब्रह्मपद जाळावें। गोकुळीं निरंतर बसावें। इंद्र म्हणे रमाधवें। कां येथें गोविलें आम्हांसी। ७३ बोलती शशी सूर्य दोघेजण। आम्हां कृष्णें लाविलें भ्रमण। आपण गोकुळीं अवतरोन। भक्तजन मुक्त केले। ७४ तेथींचा प्रसादकवळ। जरी आम्हांसी प्राप्त केवळ। तरी मुक्त होऊं तत्काळ। मायाचक्रापासूनि। ७५ मग देव म्हणती एक करावें। मत्स्य होऊनि अवघां जावें। मित्रकन्याहृदयीं रहावें। प्रेमें तळपावें सादर। ७६ गडियांसमवेत श्रीधर। हस्तप्रक्षालना येईल जगदुद्धार। तें शेष सेवूनि उद्धार। सर्वही करूं आपुला। ७७ सुरवर ऐसें बोलोन। कालिंदीजीवनीं जाहले मीन। तें एक जाणे जगज्जीवन। अंतरखूण तयांची। ७८ तों गडी म्हणती जगज्जीवना। चला जाऊं यमुना-जीवना। मग तो वैकुंठपीठींचा राणा। काय बोले तयांतें। ७९ हरि म्हणे तृषा लागली जरी। तरी तक्र प्यावें निर्धारीं। अथवा दुग्धचि प्यावें वरी। परी नव जावें यमुनेतें। ८० हरि म्हणे गडियांतें। हात पुसावे घोंगडियांतें। ऐसें म्हणतां कान्हया तें। तेंचि सर्वांनीं मानलें। ८१ गडी

(खाद्य वस्तुओं को) इकट्ठा मिला देते थे। ७२ (उसे देखकर) ब्रह्माजी बोले, '(जान पड़ता है, इस) ब्रह्मा-पद को जला डालें और निरन्तर गोकुल में बैठ जाएँ (रह जाएँ)।' इन्द्र बोले, 'रमापति ने हमें यहाँ क्यों उलझा दिया (और इस वनक्रीड़ा-भोजन आदि से वंचित कर रखा)।'। ७३ चन्द्र और सूर्य दोनों जने बोले, 'हमें कृष्ण ने भ्रमण करते रहने में लगा दिया और स्वयं गोकुल में अवतरित होकर भक्तजनों को मुक्त कर दिया। ७४ वहाँ के प्रसाद का एक कौर यदि हमें मात्र प्राप्त हो जाए, तो हम माया के चक्र से तत्काल मुक्त हो जाएँगे।'। ७५ तब देव बोले, 'हम एक (बात, काम) कर लें— सब मछलियाँ होकर (चले) जाएँ और यमुना के (पानी के) अन्दर रहें और आदरपूर्वक प्रेम से चमकते रहें। ७६ जगदुद्धारक श्रीधर (कृष्ण अपने) साथियों के साथ हाथ धोने के लिए (वहाँ) आ जाएँगे, तो (हाथ धोते समय जो अन्नकण) शेष (रहने से पानी में गिर जाएँगे, उन्हें) खाकर हम सभी (अपना-अपना) उद्धार कर लें।'। ७७ वे श्रेष्ठ देव ऐसा बोलकर कालिंदी (यमुना) नदी में मछलियाँ हो (कर रह) गये। अकेले जगज्जीवन कृष्ण उनके इस (गुप्त) संकेत को जानते थे। ७८ तब साथियों ने जगज्जीवन कृष्ण से कहा, 'चलो, यमुना का पानी (पीने) के लिए चले जाएँ।' फिर वैकुण्ठ के वे राजा कृष्ण उनसे क्या बोले ? (सुनिए)। ७९ कृष्ण बोले, 'यद्यपि प्यास लगी हो, तो भी निश्चय ही छाछ पी लें, अथवा उस पर (इस स्थिति में) दूध ही पियें। परन्तु यमुना के पास न जाएँ।'। ८० कृष्ण (अपने) साथियों से बोले, 'कम्बलों से हाथ पोंछ डालें।' कन्हैया

म्हणती जगज्जीवना। कां आर्वाजिली बा यमुना। कोण्या विचारें मधुसूदना। कोप धरिला तिजवरी। ८२ मग म्हणे हृषीकेशी। बा रे तेथें आली आहे विवशी। ते धरूनि नेईल सकळांसी। मी जावया भितों तेथें। ८३ तंव पेंधा बोले वचन। तरी मी यमुनेसी जाईन। जीवन अगत्य सेवीन। आपुल्या करेंकरोनियां। ८४ हरि म्हणे रे पेंधिया। नसताचि घेऊं नको थाया। तंव तो म्हणे प्राणसखया। मी सर्वथा न राहें। ८५ हरि म्हणे पेंधियासी। तुज ग्रासील रे विवशी। तरी गेळ्यानें कडेसी। पाणी काढूनि सेविजे। ८६ मग पेंधा ते अवसरीं। वेगें आला यमुनातीरीं। न्याहाळूनि पाहे यमुनानीरीं। विवशी कोठें म्हणोनियां। ८७ तों यमुनाजीवनाचा खळाळ। कानीं पेंधा ऐके तुंबळ। गेळ्या खालता ठेविला तत्काळ। जाळें माजीं आंवळिलें। ८८ पेंधा म्हणे यमुनेसी। तूं बायको होऊनि आम्हांसीं। हमामा आजि घालिसी। कैसी तगसी पाहीन आतां। ८९ जरी मी कृष्णदास असेन सत्य। तरीच तुज करीन शांत।

द्वारा ऐसा कहने पर उन सबने उसी को मान लिया। ८१ (फिर) वे साथी जगज्जीवन कृष्ण से बोले, 'अरे, यमुना को (यमुना के प्रति जाने का विचार) क्यों त्याग दिया। अरे मधुसूदन, किस विचार (कारण) से उस पर क्रोध धारण किया है।'। ८२ तब हृषीकेशी बोले, 'अरे, वहाँ पिशाचिनी आ गयी है। वह पकड़कर सबको ले जाएगी। (इसलिए) वहाँ जाने से मैं डरता हूँ।'। ८३ तब मनसुखा यह बात बोला, 'फिर भी मैं यमुना जाऊँगा, अपने हाथों से पानी अवश्य पिऊँगा।'। ८४ (इसपर) हरि बोले, अरे मनसुखे, 'व्यर्थ ही हठ मत करो।' तब वह बोला, 'अरे प्राणसखा, मैं बिल्कुल (यहाँ) न रहूँगा।'। ८५ कृष्ण ने मनसुखे से कहा, 'वह डाइन तुम्हें खा डालेगी, इसलिए तट पर से ही तूँबे से पानी निकालकर पी लेना।'। ८६ तब उस समय मनसुखा वेगपूर्वक यमुना के तीर पर आ गया और यमुना के पानी के अन्दर ध्यान से देखने लगा कि डाइन कहाँ है। ८७ तब मनसुखे ने यमुना के पानी की कलकल ध्वनि कानों से सुनी, तो उसने तत्काल तूँबा नीचे रख दिया और (कमर में) रस्सी का पाश कस(कर बाँध) लिया। ८८ (फिर) मनसुखा यमुना से बोला, 'तुम स्त्री होकर भी आज हमसे हुमरी[1] खेलती हो? अब (मैं) देखूँगा कि तुम कैसे बचोगी। ८९ यदि मैं सचमुच कृष्ण का दास होऊँ,

[1] हुमरी— यह एक प्रकार का खेल है, जिसे मराठी में 'हमामा' कहा जाता है। यह आम तौर पर चरवाहों द्वारा खेला जाता है। खिलाड़ियों का एक दल मुँह से 'हम्-हम्-हूँ-हूँ' जैसी ध्वनि बराबर निकालते जाते हैं, और दूसरा दल उसी प्रकार की ध्वनि निकालता रहता है। जो थक जाए और चुप रह जाए, उसकी हार मानी जाती है। 'हमामा' केवल ध्वनिसूचक शब्द है, जिसके लिए 'हुमरी' जैसा समानार्थक शब्द यहाँ प्रयुक्त किया गया है।

म्हणोनि हमामा त्वरित। मांडियेला यमुनेसीं। ९० मग खळाळासीं पेंधा। हमामा घालितां न राहे कदा। तें कदंबातळीं गोविंदा। आनंदकंदा समजलें। ९१ कृष्ण म्हणे गडियांसी। पेंधा गेला यमुनेसी। तेथें आधींच होती विवशी। गति कैसी ज्ञाहली। ९२ समाचारासी गडी धाडिले। तेही पेंधियासीं साह्य ज्ञाहले। म्हणती आम्हांसी इणें लाविलें। कृष्णभक्तांसी खळखळ। ९३ आणिक समाचारासी गडी धाडिले। तेही तेथेंचि गुंतले। आणिक मागून पाठविले। तेही ज्ञाहले साह्य पैं। ९४ आले अवघे नव लक्ष गडी। बळकाविली यमुनाथडी। हमामा घालिती कडोकडीं। मेटाखुंटीं येऊनियां। ९५ पेंधियासी पाठिराखे। मिळाले नव लक्ष सखे। घाई हमाम्याची देखें। एकसरें मांडिली। ९६ ज्ञैसी मांडे रणघुमाळी। तैसी हमाम्याची घाई गाज्ञली। सर्वांच्या मुखांस खरसी आली। परी न सांडिती आवांका। ९७ प्राण ज्ञाहले कासावीस। परी कदा न येती हारीस। ज्ञे सकळ सुरांचे अंश। गोपवेषें अवतरले। ९८ हे रामावतारीं वानर होऊन।

तो ही मैं तुम्हें शान्त (चुप) कर दूँगा।' (ऐसा) कहते हुए उसने झट से यमुना के प्रति हुमरी करना आरम्भ किया। ९० तब मनसुखे द्वारा हुमरी करने पर भी वह कलरव कदापि चुप नहीं हो रहा था। आनन्द के कन्दस्वरूप कृष्ण को कदम्ब वृक्ष के तले यह विदित हो गया। ९१ (अतः) कृष्ण साथियों से बोले, 'मनसुखा (अकेला) यमुना (-तट) गया है। वहाँ पहले (से) ही डाइन थी। (न जाने अब मनसुखे की) क्या स्थिति हो गयी हो।'। ९२ उन्होंने समाचार प्राप्त करने के लिए (पूछताछ, खोज के लिए) साथियों को भेज दिया। (पर) वे भी मनसुखे के (उस खेल में) सहायक हो गये। वे बोले, 'हमें इसने इस (खेल) में उलझा दिया है। कृष्ण के भक्तों के साथ यह झगड़ा (क्यों) है।'। ९३ (तत्पश्चात कृष्ण ने) और साथी भेज दिये। वे भी वहीं उलझे रहे। फिर और भेज दिये, वे भी उनके सहायक हो गये। ९४ समस्त नौ लाख साथी (वहाँ) आ गये; उन्होंने यमुना तट कब्जे में कर लिया और वे सब ज़िद पकड़कर झपट्टे के साथ हुमरी करने लगे। ९५ मनसुखे को नौ लाख मित्र (सहायक समर्थक) मिल गये। देखिए, उन सबने एक साथ हुमरी का गर्जन शुरू किया। ९६ जिस प्रकार घमासान लड़ाई हो जाती है, उसी प्रकार हुमरी की धूम मची हुई थी। सबके मुँह में झाग आ गया, फिर भी वे (अपने) जोश को नहीं छोड़ रहे थे (जोश से बाज़ नहीं आ रहे थे)। ९७ उनके प्राण आकुल-व्याकुल हो उठे; फिर भी वे, जो (वस्तुतः) देवों के अंश ही गोपवेशों में अवतरित थे, कभी भी (कदापि हार मानकर) पीछे नहीं हट रहे थे। ९८ ये (गोपबाल) वे देवों के अंश हैं, जिन्होंने रामावतार काल में वानर होकर लंका में युद्ध किया और

केलें लंकेसी रणकंदन। जिहीं दशकंधर त्रासवून। रामचंद्र तोषविला। ९९ तेचि हे गोकुळीं गोपाळ। पुन्हां अवतरले सकळ। जरी राहील यमुनेचें जळ। तरी उगे राहतील हे। १०० कदंबातळीं नंदनंदन। एकला उरला जगज्जीवन। मुरली हातीं घेऊन। वेगें आला यमुनातीरा। १०१ कौतुक पाहे श्रीहरी। गडी नाहींत देहावरी। मग म्हणे मुरारी। कां रे व्यर्थ शीणतां। २ आतां कां करितां श्रमा। खळाळासीं घालितां हमामा। तेथें नाहीं स्त्रीपुरुषप्रतिमा। कैसें तुम्हां न कळेचि। ३ ऐसें बोले शेषयायी। परी प्रत्युत्तर ते समयीं। कदा न देती कोणी कांहीं। थोर घाई हमाम्याची। ४ कृष्ण म्हणे जरी न राहे यमुना। तरी तेथें समर्पिती प्राणा। ऐसें जाणोनि वैकुंठराणा। काय करिता जाहला। ५ जो निजजनप्राणरक्षक मुरारी। जो त्रिभुवनमोहन पूतनारी। तत्काळ मुरली वाजविली अधरीं। नादें भरी गगनातें। ६ मुरली वाजवितां मुरलीधर। सकळांची वृत्ती मुरली समग्र। मुराले सकळांचे अहंकार। मुरहरें थोर वेधिलें। ७ मनोहर ध्वनि उमटती।

जिन्होंने रावण को सताकर प्रभु रामचन्द्र को तुष्ट कर दिया था। ९९ वे (देवों के अंश) ही गोकुल में गोपालों के रूप में फिर से समस्त अवतरित थे। यदि यमुना का जल (शान्त) होकर रह जाए, तो ही ये चुप हो जाएँगे। १०० (इधर) कदम्ब वृक्ष के तले जगज्जीवन नन्दनन्दन कृष्ण अकेले रह गये; तो हाथ में मुरली लिये हुए वे वेगपूर्वक यमुना के तीर आ गये। १०१ श्रीहरि ने यह कौतुक लीला देखी— (उनके) साथी होश में नहीं हैं— अर्थात उनको देहसम्बन्धी सुधबुध नहीं रही है। तब मुरारि कृष्ण बोले, 'क्यों व्यर्थ थकावट को प्राप्त हो रहे हो। २ अब (व्यर्थ) परिश्रम क्यों कर रहे हो। तुम (व्यर्थ ही नदी की) कलकल ध्वनि के विरोध में हुमरी खेल रहे हो। यहाँ तो स्त्री या पुरुष की कोई प्रतिमा (मूर्ति, प्रत्यक्ष स्त्री या पुरुष) नहीं है। यह तुम्हारी समझ में कैसे नहीं आ रहा है?'। ३ (शेषशायी भगवान विष्णु के अवतार) कृष्ण ऐसा बोले, फिर भी उस समय (उनमें से) कोई भी कोई प्रत्युत्तर नहीं दे रहा था। हुमरी की (इतनी) बड़ी धूम थी। ४ कृष्ण ने कहा (मान लिया) कि यदि यमुना चुप नहीं हो जाए, तो ये (गोपाल) यहाँ प्राण समर्पित कर देंगे। वैकुण्ठराज कृष्ण ने ऐसा समझकर क्या किया। ५ जो अपने भक्तजनों के प्राणों के रक्षक मुरारि भगवान हैं, जो त्रिभुवन को मोह लेनेवाले पूतनारि कृष्ण हैं, वे तत्काल अधरों से मुरली बजाने लगे। उन्होंने उसकी ध्वनि से गगन को भर (व्याप्त कर) दिया। ६ मुरलीधर कृष्ण द्वारा मुरली बजाने लगते ही सबकी वृत्तियाँ पूर्णतः (उस ध्वनि में) लीन हो गयीं। सबके अहंभाव नष्ट हो गये— (इस प्रकार) मुरारि ने उन सबको आकर्षित कर डाला। ७ (मुरली से) मनोहारी ध्वनियाँ उत्पन्न हो रही थीं, जैसे

जैशा वेदश्रुती गर्जती। नकुल भोगी विचरती। एके ठायीं तेधवां। ८ व्याघ्र आणि गाई। निर्वैर चरती एके ठायीं। गजकेसरींस वैर नाहीं। थोर नवलाई हरीची। ९ प्राणी स्थिर राहिले चराचर। शांत ज़ाहलें यमुनेचें नीर। मुरलींत म्हणे मुरहर। गडे हो स्थिर रहा आतां। ११० यमुना भिऊनि पळाली। सावध होऊनि पहा सकळी। तें पेंधियानें ऐकिलें ते वेळीं। शांत ज़ाहली यमुना ते। १११ मांडी थापटोनि सहजी। पेंधा आपणातें नांवाजी। मग म्हणे भला मी पेंधाजी। बळिया आढ्य जन्मलों। १२ पेंधा म्हणे पहा चक्रपाणी। यमुना पळविली येच़ क्षणीं। मग बोले त्रिभुवनज्ञानी। तुमची करणी अगाध। १३ तुम्ही बळकट गोपाळ। तुम्हांसी देखतां विटे काळ। ऐसें बोले वैकुंठपाळ। गडी हांसती गदगदां। १४ गडियांसमवेत वनमाळी। वेगें परतला सायंकाळीं। देव मत्स्य ज़ाहले यमुनाजळीं। तेही गेले स्वस्थाना। १५ गोधनें घेऊनि सांज़वेळे। परतलें परब्रह्म सांवळें। सवें वेष्टित गोवळे। नाना वाद्यें

वेदश्रुतियाँ ही गरज रही हों। तब (उनके प्रभाव से) नेवले और सर्प एक ही स्थान पर (निर्भय होकर) विचरण करने लगे। ८ बाघ और गायें वैरहीन होकर एक ही स्थान पर चरने लगे। हाथियों और सिंहों में (एक-दूसरे के प्रति) वैर नहीं रह गया। कृष्ण की यह बड़ी अद्‌भुतता (अद्‌भुत करनी, लीला) है। ९ प्राणी, चराचर स्थिर होकर रह गये। यमुना का नीर शान्त (स्थिर) हो गया। मुरली (की ध्वनियों के) द्वारा मुरहर कृष्ण कह रहे थे— साथियो, अब स्थिर (शान्त, चुप) हो जाओ। ११० यमुना (तुमसे) डरकर भाग गयी। (तुम) सब सावधान होकर देख तो लो। मनसुखे ने यह सुना (माना कि) उस समय वह यमुना नदी शान्त हो गयी है। १११ तब स्वाभाविक रूप से ताल ठोंककर मनसुखा अपने आप की प्रशंसा करने लगा। वह तब बोला, 'मैं भला (अच्छा खासा) बलाढ्य मनसुखाजी जनमा हूँ।'। १२ मनसुखा बोला, 'अरे कृष्ण, देखो, इसी क्षण मैंने यमुना को (पराजित करके) भगा दिया है।' तब त्रिभुवन ज्ञानी कृष्ण बोले, 'तुम्हारी करनी अथाह है। १३ तुम बलवान गोपाल हो। तुमको देखते ही काल (तक व्याकुल होकर) निस्तेज हो जाता है।' वैकुण्ठपाल कृष्ण द्वारा ऐसा बोलने पर साथी (गोपाल) खिलखिलाकर हँसने लगे। १४ शाम को वनमाली कृष्ण साथियों सहित वेगपूर्वक (घर) लौटे (और उधर) देव (जो) यमुना जल में मछलियाँ बन (कर रह) गये थे, वे अपने-अपने स्थान चले गये। १५ शाम के समय परब्रह्मस्वरूप श्याम कृष्ण गो रूपी धन को लिये हुए लौट आये। साथ ही गोपालों ने उन्हें घेर रखा था। वे (सब) नाना (प्रकार के) वाद्य बजा रहे थे। १६ श्रीरंग कृष्ण मुरली

वाजवती। १६ कल्याण गौडी श्रीराग। मुरलींत आळवी श्रीरंग। वसंत पावक पद्म सुरंग। नीलांबर राग वाजवीत। १७ कनकदंड श्वेतचामरें। गोप ढाळिती वरी आदरें। झळकताती पल्लवछत्रें। एक तुंगारपत्रें वाजविती। १८ आरत्या घेऊनि गोपिका। सामोऱ्या येती वैकुंठनायका। निंबलोण उतरिती देखा। हरीवरूनि प्रीतीनें। १९ निजमंदिरांत येतां जगजेठी। टाकोनियां घोंगडी काठी। धांवोनि यशोदेच्या कंठीं। घातली मिठी श्रीहरीनें। १२० बळिरामें रोहिणीच्या गळां। मिठी घातली ते वेळां। एक गौर एक सांवळा। दाविती लीला भक्तांतें। १२१ ते साक्षात शेष नारायण। यशोदेनें पूजिले दोघेजण। दोघांसी करवूनि मार्जन। माया आपण टिळक रेखी। २२ रत्नजडित पदकमाळा। घातल्या दोघांचियां गळां। चिमणा पीतांबर पिंवळा। कांसे कसिला मायेनें। २३ षड्रस अन्न वाढूनी। आणिती जाहली रोहिणी। माया आपुल्या हातेंकरूनी। ग्रास घाली दोघांतें। २४ नाना ऋतु करितां करितां। जो न घे अवदानें सर्वथा। तो यशोदेच्या हाता। पाहूनि मुख पसरीत। २५ झाडोनियां मंचक। वरी

पर कल्याण, गौड़, श्री (जैसे) राग अलाप रहे थे। वे वसन्त, पावक, पद्म, सुरंग, नीलाम्बर राग बजा रहे थे। १७ उनपर गोप (-बाल) स्वर्ण-दण्डों से युक्त सफ़ेद चामर आदर के साथ झुला रहे थे। पत्तों के बनाये हुए छाते चमकाते जा रहे थे (शोभायमान किये जा रहे थे)। कोई एक (गोप) 'तुंगार' नामक वृक्ष विशेष के पत्ते (की सीटी बनाकर) बजा रहे थे। १८ गोपिकाएँ आरतियाँ (दीप) लेकर वैकुण्ठनायक कृष्ण के (स्वागत के लिए) सम्मुख आ गयीं। देखिए, उन्होंने प्रेम से कृष्ण पर से राईनोन उतार लिया (जिससे वे बुरी नजर से बच जाएँ)। १९ जगत्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने अपने घर में आते ही कम्बल और लकुटिया फेंककर दौड़ते हुए यशोदा के गले में बाहें डालीं। १२० (इधर) बलराम ने उस समय रोहिणी के गले में बाहें डालीं। (इस प्रकार) एक गोरे (बलराम) और दूसरे साँवले (कृष्ण) भक्तों को लीलाएँ दिखा रहे थे। १२१ वे प्रत्यक्ष शेष और नारायण थे। यशोदा ने उन दोनों जनों का पूजन किया। उन दोनों को स्नान कराकर माता ने स्वयं (उनके भाल पर) तिलक अंकित किया। २२ माता ने दोनों ही के गले में रत्नजटित पदिकों की मालाएँ पहना दीं (और पीले रंग का) रेशमी वस्त्र (पीताम्बर) उनकी कमर में कसकर पहना दिया। २३ (उसी समय) रोहिणी छहों रसों से[1] युक्त भोज्य पदार्थ परोसकर ले आयी, तो माता यशोदा ने अपने हाथों से उन दोनों को कौर खिला दिये। २४ नाना यज्ञ करते-करते रहने पर भी जो आहुतियाँ बिल्कुल ग्रहण नहीं करते, वे (भगवान) यशोदा

---

1 छः रस— मधुर, अम्ल (खट्टा), तीखा, कड़ुआ, क्षार, कषाय (तीता)।

पाटोळा क्षीरोदक। शेष नारायण देख। दोघे तेथें पहुडती। २६ क्षीरसागरींचीं निधानें। शेजे निजविलीं मायेनें। अनंत जन्में तपाचरणें। केली होतीं याचलागीं। २७ असो उठोनि प्रातःकाळीं। माया जागें करी वनमाळी। कोमल हस्तें ते वेळीं। थापटीत यशोदा। २८ ऊठ वेगें गोविंदा। जगन्मोहना आनंदकंदा। पुराणपुरुषा ब्रह्मानंदा। गडी पाहती वाट तुझी। २९ जागा जाहला त्रिभुवनपती। माता हृदयीं धरी प्रीतीं। तों बळिभद्र महामती। उठता झाला ते क्षणीं। १३० मुख प्रक्षालूनि ते क्षणीं। दोघां जेववी नंदराणी। हरी पांवा करीं घेऊनी। आळवीत गोपाळां। १३१ प्राणसखे हो चला त्वरित। वेगें जाऊं काननांत। वत्सें गोळा करूं समस्त। गोप धांवती तेधवां। ३२ गौळिणींसहित यशोदा। बोळवीत जाय सच्चिदानंदा। ज्याचें स्वरूप शेषवेदां। ठायीं न पडे सर्वथा। ३३ वाद्यें वाजविती गोवळे। मध्यें पूर्णब्रह्म मिरवलें। पाहतां गोपींचे डोळे। पातीं ढाळूं विसरले। ३४ पुढें जाती वत्सांचे भार। ते वत्सरूपें सकल ऋषीश्वर।

के हाथ को (उठे हुए) देखकर मुँह खोलते थे। २५ मंचक (पलंग) को झाड़-पोंछकर (साफ़ करके) माता ने उसपर क्षीरसागर के जल-सा उज्ज्वल पटोला बिछा दिया। देखिए, शेष और नारायण (के अवतार बलराम और कृष्ण) दोनों वहाँ (उस मंचक पर) लेट गये। २६ माता यशोदा ने क्षीरसागर के इन धनों को[1] शय्या पर सुला दिया। इसी (सुखानुभव) के लिए उसने अनन्त जन्मों तक तपस्या की थी (जो इस जन्म में सफलता को प्राप्त हो गयी)। २७ अस्तु। सवेरे उठकर माता यशोदा ने वनमाली कृष्ण को जगा दिया; उसने उस समय कोमल हाथ से उन्हें थपथपाया। २८ (वह बोली—) 'रे गोविन्द (कृष्ण), झट से उठ। रे जगन्मोहन, आनन्दकन्द, रे पुराणपुरुष, रे आनन्दस्वरूप ब्रह्म, साथी तेरी बाट जोह रहे हैं।'। २९ त्रिभुवनपति कृष्ण जग गये, तो माता ने प्रेम के साथ उन्हें हृदय से लगा लिया। तब महामति बलभद्र (बलराम) उस क्षण जगकर उठ गया। १३० नन्द-रानी यशोदा ने उनके मुँह को उस क्षण धुलवाकर उन दोनों को भोजन करा दिया। (फिर) कृष्ण मुरली हाथ में लेकर गोपालों को बुलाने लगे। १३१ अहो प्राणसखा, झट से चल दो। समस्त बछड़ों को इकट्ठा करेंगे और वेगपूर्वक वन में जाएँगे। ३२ गोपियों सहित यशोदा उन सच्चिदानन्द कृष्ण को बिदा कर रही थी, जिनके स्वरूप का पता शेष और वेदों (तक) को बिल्कुल नहीं चलता। ३३ गोपबाल बाजे बजाने लगे; उनके बीच पूर्णब्रह्म (स्वरूप कृष्ण) ठाठ से चलने लगे। उन्हें देखकर गोपियों की आँखें पलक झपकना भूल गयीं। ३४ बछड़ों के

---

1 कृष्ण भगवान विष्णु के और बलराम शेष के अवतार हैं। विष्णु और शेष का निवास क्षीरसमुद्र में है; अतः उन्हें क्षीरसागर के धन कहा है।

पाळूनियां सर्वेश्वर। उद्धरीत तयांतें। ३५ तंत वितंत घन सुस्वर। वाद्यें वाजविती परम मधुर। मध्यें नाचत श्रीधर। जें त्रिभुवनसुंदर रूपडें। ३६ देवांचे अवतार गोप। वत्सें तितुके ऋषीश्वररूप। सवें घेऊनि यादवकुलदीप। वनांतरीं हिंडतसे। ३७ धन्य गोपाळांचें तप थोर। वश केला जगदुद्धार। जो योगिमानसहृदयविहार। न कळे पार वर्णितां। ३८ मध्यें श्रीकृष्ण पांवा वाजवी। जो आदिपुरुष मायालाघवी। नाना अवतारभाव दावी। नृत्य करितां स्वानंदें। ३९ टाळ मृदंग मोहरिया। पांवे शृंगें घुमरिया। रुद्रवीणे पिनाकिया। वाजविती सुस्वरें। १४० घमंडी टाळांची घाई। करटाळिया फडकती पाहीं। गाती नाना गती लवलाहीं। नाकें वाजविती वीणा एक। १४१ नाना श्वापदें बाहती वनीं। त्यांसीच देती प्रतिध्वनी। एक

झुण्ड आगे (-आगे) जा रहे थे। (वस्तुतः) उन वत्सों के रूप में समस्त ऋषिवर थे। सर्वेश्वर कृष्ण उनका (इस रूप में) पालन करते हुए उनको उबार रहे थे। ३५ वे तन्त, वितन्त और घन (नामक विभिन्न प्रकार के)[1] सुरीले वाद्य परम मधुर बजाते जा रहे थे। जो त्रिभुवन में (सर्वाधिक) सुन्दर रूप (धारी ब्रह्म) हैं, वे श्रीधर कृष्ण (उनके) बीच नाच रहे थे। ३६ वे गोप देवों के अवतार थे, तो जितने बछड़े थे, वे उतने (सब) श्रेष्ठ ऋषिस्वरूप थे। यादवकुल-दीप कृष्ण उन्हें साथ में लिये हुए वन के अन्दर घूमते थे। ३७ उन गोपालों का (किया हुआ) बड़ा तप धन्य है; उन्होंने (उसके फलस्वरूप) उन जगदुद्धारक (कृष्ण) को (अपने) वश में कर लिया। जो योगियों के मानस रूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले हैं, उनका वर्णन करने पर भी (उनकी महिमा का) पार (अन्त) समझ में नहीं आता। ३८ कृष्ण बीच में मुरली बजा रहे थे। जो (वस्तुतः) आदिपुरुष हैं, मायावी (मायाजाल रचने में चतुर) हैं, वे अपने स्वयं के आनन्द के साथ नृत्य करते हुए नाना अवतारों के भाव (कार्य आदि) प्रदर्शित करने लगे। ३९ (उनके साथी गोपबाल) झाँझ, मृदंग, मँहरी (नामक वाद्य-विशेष), मुरलियाँ, सींग, घुमरी (नामक वाद्य-विशेष), रुद्रवीणा, पिना की (एक प्रकार का तंतुवाद्य) सुस्वर बजा रहे थे। १४० द्रुतगति से (ज़ोर-ज़ोर से) बजायी जानेवाली झाँझों का गर्जन हो रहा था। देखिए, हाथों से बजायी जानेवाली तालियाँ कड़कड़ा रही थीं। वे (गोप) झट-झट से नाना गलियों से गा रहे थे। कुछ एक नाक से वीणा बजा रहे थे (वीणा की-सी ध्वनि निकाल रहे थे)। १४१ वन में नाना (प्रकार के)

---

१ वाद्यों के ये चार भेद माने गये हैं— **तन्त**— तन्तु या तार लगाकर बनाये हुए वाद्य अर्थात् तन्तु वाद्य; **वितन्त**— झाँझ आदि वाद्य जो दो-दो भागों से एक-दूसरे पर आघात करके बजाये जाते हैं; **घन**— नगाड़ा, डफ आदि वाद्य, जो चमड़े से मढ़कर बनाये जाते हैं और **सुस्वर**—शहनाई, मुरली आदि।

पाटोळा क्षीरोदक। शेष नारायण देख। दोघे तेथें पहुडती। २६ क्षीरसागरींचीं निधानें। शेजे निजविलीं मायेनें। अनंत जन्में तपाचरणें। केली होतीं याचलागीं। २७ असो उठोनि प्रातःकाळीं। माया जागें करी वनमाळी। कोमल हस्तें ते वेळीं। थापटीत यशोदा। २८ ऊठ वेगें गोविंदा। जगन्मोहना आनंदकंदा। पुराणपुरुषा ब्रह्मानंदा। गडी पाहती वाट तुझी। २९ जागा जाहला त्रिभुवनपती। माता हृदयीं धरी प्रीतीं। तों बळिभद्र महामती। उठता झाला ते क्षणीं। १३० मुख प्रक्षालूनि ते क्षणीं। दोघां जेववी नंदराणी। हरी पांवा करीं घेऊनी। आळवीत गोपाळां। १३१ प्राणसखे हो चला त्वरित। वेगें जाऊं काननांत। वत्सें गोळा करूं समस्त। गोप धांवती तेधवां। ३२ गौळिणींसहित यशोदा। बोळवीत जाय सच्चिदानंदा। ज्याचें स्वरूप शेषवेदां। ठायीं न पडे सर्वथा। ३३ वाद्यें वाजविती गोवळे। मध्यें पूर्णब्रह्म मिरवलें। पाहतां गोपींचे डोळे। पातीं ढाळूं विसरले। ३४ पुढें जाती वत्सांचे भार। ते वत्सरूपें सकल ऋषीश्वर।

के हाथ को (उठे हुए) देखकर मुँह खोलते थे। २५ मंचक (पलंग) को झाड़-पोंछकर (साफ़ करके) माता ने उसपर क्षीरसागर के जल-सा उज्ज्वल पटोला बिछा दिया। देखिए, शेष और नारायण (के अवतार बलराम और कृष्ण) दोनों वहाँ (उस मंचक पर) लेट गये। २६ माता यशोदा ने क्षीरसागर के इन धनों को[1] शय्या पर सुला दिया। इसी (सुखानुभव) के लिए उसने अनन्त जन्मों तक तपस्या की थी (जो इस जन्म में सफलता को प्राप्त हो गयी)। २७ अस्तु। सवेरे उठकर माता यशोदा ने वनमाली कृष्ण को जगा दिया; उसने उस समय कोमल हाथ से उन्हें थपथपाया। २८ (वह बोली—) 'रे गोविन्द (कृष्ण), झट से उठ। रे जगन्मोहन, आनन्दकन्द, रे पुराणपुरुष, रे आनन्दस्वरूप ब्रह्म, साथी तेरी बाट जोह रहे हैं।'। २९ त्रिभुवनपति कृष्ण जग गये, तो माता ने प्रेम के साथ उन्हें हृदय से लगा लिया। तब महामति बलभद्र (बलराम) उस क्षण जगकर उठ गया। १३० नन्द-रानी यशोदा ने उनके मुँह को उस क्षण धुलवाकर उन दोनों को भोजन करा दिया। (फिर) कृष्ण मुरली हाथ में लेकर गोपालों को बुलाने लगे। १३१ अहो प्राणसखा, झट से चल दो। समस्त बछड़ों को इकट्ठा करेंगे और वेगपूर्वक वन में जाएँगे। ३२ गोपियों सहित यशोदा उन सच्चिदानन्द कृष्ण को बिदा कर रही थी, जिनके स्वरूप का पता शेष और वेदों (तक) को बिल्कुल नहीं चलता। ३३ गोपबाल बाजे बजाने लगे; उनके बीच पूर्णब्रह्म (स्वरूप कृष्ण) ठाठ से चलने लगे। उन्हें देखकर गोपियों की आँखें पलक झपकना भूल गयीं। ३४ बछड़ों के

१ कृष्ण भगवान विष्णु के और बलराम शेष के अवतार हैं। विष्णु और शेष का निवास क्षीरसमुद्र में है; अतः उन्हें क्षीरसागर के धन कहा है।

पाळूनियां सर्वेश्वर। उद्धरीत तयांतें। ३५ तंत वितंत घन सुस्वर। वाद्यें वाजविती परम मधुर। मध्यें नाचत श्रीधर। जें त्रिभुवनसुंदर रूपडें। ३६ देवांचे अवतार गोप। वत्सें तितुके ऋषीश्वररूप। सवें घेऊनि यादवकुलदीप। वनांतरीं हिंडतसे। ३७ धन्य गोपाळांचें तप थोर। वश केला जगदुद्धार। जो योगिमानसहृदयविहार। न कळे पार वर्णितां। ३८ मध्यें श्रीकृष्ण पांवा वाजवी। जो आदिपुरुष मायालाघवी। नाना अवतारभाव दावी। नृत्य करितां स्वानंदें। ३९ टाळ मृदंग मोहरिया। पांवे शृंगें घुमरिया। रुद्रवीणे पिनाकिया। वाजविती सुस्वरें। १४० घमंडी टाळांची घाई। करटाळिया फडकती पाहीं। गाती नाना गती लवलाहीं। नाकें वाजविती वीणा एक। १४१ नाना श्वापदें बाहती वनीं। त्यांसीच देती प्रतिध्वनी। एक

झुण्ड आगे (-आगे) जा रहे थे। (वस्तुतः) उन वत्सों के रूप में समस्त ऋषिवर थे। सर्वेश्वर कृष्ण उनका (इस रूप में) पालन करते हुए उनको उबार रहे थे। ३५ वे तन्त, वितन्त और घन (नामक विभिन्न प्रकार के)[1] सुरीले वाद्य परम मधुर बजाते जा रहे थे। जो त्रिभुवन में (सर्वाधिक) सुन्दर रूप (धारी ब्रह्म) हैं, वे श्रीधर कृष्ण (उनके) बीच नाच रहे थे। ३६ वे गोप देवों के अवतार थे, तो जितने बछड़े थे, वे उतने (सब) श्रेष्ठ ऋषिस्वरूप थे। यादवकुल-दीप कृष्ण उन्हें साथ में लिये हुए वन के अन्दर घूमते थे। ३७ उन गोपालों का (किया हुआ) बड़ा तप धन्य है ; उन्होंने (उसके फलस्वरूप) उन जगदुद्धारक (कृष्ण) को (अपने) वश में कर लिया। जो योगियों के मानस रूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले हैं, उनका वर्णन करने पर भी (उनकी महिमा का) पार (अन्त) समझ में नहीं आता। ३८ कृष्ण बीच में मुरली बजा रहे थे। जो (वस्तुतः) आदिपुरुष हैं, मायावी (मायाजाल रचने में चतुर) हैं, वे अपने स्वयं के आनन्द के साथ नृत्य करते हुए नाना अवतारों के भाव (कार्य आदि) प्रदर्शित करने लगे। ३९ (उनके साथी गोपबाल) झाँझ, मृदंग, मँहरी (नामक वाद्य-विशेष), मुरलियाँ, सींग, घुमरी (नामक वाद्य-विशेष), रुद्रवीणा, पिना की (एक प्रकार का तंतुवाद्य) सुस्वर बजा रहे थे। १४० द्रुतगति से (ज़ोर-ज़ोर से) बजायी जानेवाली झाँझों का गर्जन हो रहा था। देखिए, हाथों से बजायी जानेवाली तालियाँ कड़कड़ा रही थीं। वे (गोप) झट-झट से नाना गलियों से गा रहे थे। कुछ एक नाक से वीणा बजा रहे थे (वीणा की-सी ध्वनि निकाल रहे थे)। १४१ वन में नाना (प्रकार के)

---

१ वाद्यों के ये चार भेद माने गये हैं— **तन्त**— तन्तु या तार लगाकर बनाये हुए वाद्य अर्थात तन्तु वाद्य; **वितन्त**— झाँझ आदि वाद्य जो दो-दो भागों से एक-दूसरे पर आघात करके बजाये जाते हैं; **घन**— नगाड़ा, डफ आदि वाद्य, जो चमड़े से मढ़कर बनाये जाते हैं और **सुस्वर**—शहनाई, मुरली आदि।

वृक्षावरी वानर होऊनीं । बळें शाखा हालविती । ४२ एक देती बळें भुभुःकार । तेणे नादावलें अंबर । एक म्हणती लंकानगर । आम्हींच पूर्वी जाळिलें । ४३ नाना परींचे टिळे रेखिले । वृक्षडाहाळे शिरीं खोंविले । एक वृक्षावरी गाती चांगले । लीला अपार हरीची । ४४ एक गायनाचा छंद पाहोन । तैसीच तुकाविती मान । एक टिरीचा मृदंग करून । वांकुल्या दावीत वाजवीत । ४५ खालती लक्षूनियां एक । वरूनि फळें हाणिती देख । मयूरपिच्छें शिरीं कित्येक । अति सतेज झळकती । ४६ एक बैसोनि वृक्षावरी । मयूराऐसाचि ध्वनि करी । एक मंडूक होऊनि निर्धारीं । अवनीवरी उडताती । ४७ एक मांजराऐसा गुर्गुरी । एक कच्छ होऊनि रांगती पृथ्वीवरी । एक वृषभ होऊनि धरणीवरी । धांवताती तुडवावया । ४८ एक दृढ आसन घालिती । चरणांगुष्ठ करीं धरिती । दोघे उचलोनि त्यास नेती । मग बैसती दुजे स्थानीं । ४९ गुंजमाळा गळां आरक्त । वनमाळा डोलती पादपर्यंत । तुळसीमाळा सुवासित । परिमळत वन तेणें । १५०

श्वापद (जानवर) बोल रहे थे। वे गोप उनको वैसी ही ध्वनियाँ उत्पन्न करके (प्रतिध्वनियों-सी ध्वनियों में) उत्तर दे रहे थे। कुछ एक वृक्ष पर (चढ़कर) वानर बनकर (वानरों के रूप में) बलपूर्वक शाखाओं को हिला रहे थे। ४२ कुछ एक बलपूर्वक भुभुकार कर रहे थे। उससे आकाश गूंज रहा था। कुछ एक कह रहे थे— हमीं ने ही पूर्वकाल में लंकानगर को जला डाला था। ४३ उन्होंने नाना प्रकार के तिलक अंकित किये थे। वृक्षों की टहनियाँ सिरों पर खोंस ली थीं। कुछ एक वृक्षों पर अच्छी तरह गा रहे थे। हरि की लीला (इस प्रकार) अपार है। ४४ कोई-कोई गायन का छन्द (तर्ज) देखकर उसके अनुकूल वैसी ही गरदन झुका-हिला रहे थे। कुछ एक कूल्हों को मृदंग बनाकर (समझकर) मुँह बिचकाते हुए बजा रहे थे। ४५ देखिए, नीचे देखकर कोई एक ऊपर से फल फेंकते थे। कुछ एक के मस्तकों पर अनेकानेक मयूर-पंख अति तेज के साथ जगमगा रहे थे। ४६ कोई एक वृक्ष पर बैठकर मोर की-सी ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे, तो कोई एक मेंढ़क बनकर निश्चयपूर्वक भूमि पर उछल रहे थे। ४७ कुछ एक बिल्लियों जैसे मिमिया रहे थे; कुछ एक कछुआ बनकर पृथ्वी पर रेंग रहे थे; तो कुछ एक वृषभ (बैल) बनकर उन्हें कुचल डालने के लिए भूमि पर दौड़ रहे थे। ४८ कोई एक दृढ़तापूर्वक आसन लगाये बैठे थे; उन्होंने पाँवों के अँगूठों को हाथों में पकड़ लिया था। उसे उठाकर दो जने ले गये, फिर वे दूसरे स्थान पर बैठ गये। ४९ गलों में लाल गुंजाओं की मालाएँ (पहनी हुई) थीं। उनके पाँवों तक वनमालाएँ झूल रही थीं। (कुछ एक के) गले में सुगन्धयुक्त तुलसी की मालाएँ थीं। उनसे वन महक रहा

एक खेळती चेंडूफळी। एक वावडी उडविती निराळीं। एक लंपडाई ते वेळीं। नेत्र झांकून खेळती। १५१ भोंवरा विटीदांडू चक्रें। एक हमामा घालिती गजरें। हुतुतु हुमली एकसरें। गोप घालिती आवडीं। ५२ एक बळें झोंबी घेऊनी। एक एकासी पाडिती मेदिनीं। एक सुरवाती टाकूनी। म्हणती शोधूनि काढा रे। ५३ हे रामवतारीं बहु श्रमले। युद्ध करितां लंकेसी भागले। म्हणोनि गोकुळीं ये वेळे। ब्रह्मानंदें क्रीडती। ५४ पूर्वीं हे निराहार होते। म्हणोनि जेविती हरीसांगातें। आपुल्या हातें रमानाथें। ग्रास त्यांस घातले। ५५ असो वनीं खेळे जगदात्मा। वृक्ष भेदीत गेले व्योमा। त्या छायेसी शिवब्रह्मा। क्रीडा करूं इच्छिती। ५६ अशोकवृक्ष उतोतिया। रायआंवळे आंबे खिरणिया। निंब वट पिंपळ वाढोनियां। सुंदर डाहाळिया डोलती। ५७ डाळिंबी सुपारी सायन मांदार। चंदन मोहवृक्ष अंजीर। चंपक जाई परिकर। बकुल मोगरे शोभती। ५८ शेवंती जपावृक्ष परिकर। तुळसी करवीर कोविदार। कनकवेली नागवेली सुंदर। पोंवळवेली आरक्त। ५९ कल्पवृक्ष आणि कंचन। गरुडवृक्ष आणि अर्जुन। वाळियाचीं

था। १५० कुछ एक गेंद-बल्ली खेल रहे थे। कुछ एक आकाश में पतंग उड़ा रहे थे। कुछ एक उस समय आँखें वन्द करके आँखमिचौनी खेल रहे थे। १५१ कुछ एक भौंरे, गुल्ली-डण्डा, चक्र खेल रहे थे; कुछ एक गरजते हुए हुमरी खेल रहे थे। (कुछ) गोप चाव से एक साथ कबड्डी (और) हुँबरी (हुमरी जैसा एक खेल) खेल रहे थे। ५२ कुछ एक बलात् कुश्ती लड़ते हुए एक दूसरे को भूमि पर गिरा रहे थे। कुछ एक (पानी में) गोते लगाते हुए कहते— 'अरे, हमें ढूँढ़ निकालो'। ५३ रामावतार काल में ये बहुत थक गये थे। लंका में युद्ध करते हुए वे थक गये थे। इसलिए वे गोकुल में इस समय ब्रह्मानन्दपूर्वक खेल रहे थे। ५४ पूर्वकाल में ये निराहार (रहे) थे, इसलिए (इस समय) श्रीहरि के साथ भोजन करते थे। रमानाथ भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण ने अपने हाथ से खाने के लिए (उनके मुख में) कौर डाल दिये। १५५

अस्तु। वन में जगदात्मा कृष्ण खेल रहे थे। उस वन के वृक्ष आकाश को भेदते हुए (ऊपर) गये थे। (उनकी) उस छाया में शिवजी और ब्रह्माजी खेलना चाहते थे। १५६ (उस वन में) अशोक वृक्ष, छुहारे के पेड़, राज-आमला, आम, खिरनी, नीम, बरगद, पीपल विकसित हुए थे उनकी शाखाएँ-टहनियाँ डोलती-झूमती थीं। ५७ दाड़िम (अनार), सुपाड़ी, सागौन, मन्दार, चन्दन, महुआ, अंजीर, चम्पक, सुन्दर जूही, बकुल (मौलश्री), मोगरा शोभायमान थे। ५८ सेवती, सुन्दर जपावृक्ष, तुलसी, करवीर, कोवीदार, कनकलता, सुन्दर नागबेली, लाल मूँगा-वल्लरी अत्यन्त शोभायमान थीं। ५९ कल्पवृक्ष और कंचन , गरुड़वृक्ष और अर्जुनवृक्ष थे,

बेटें सुवासें पूर्ण । कर्पूरकर्दळी डोलती । १६० द्राक्षामंडप विराजती । शतपत्रें कल्हारें विकसती । वृक्षांवरी चढती मालती । बदरी डोलती फलभारें । १६१ शाल तमाल पारिजातक । शिरस आणि रायचंपक । फणस निंबोणी मातुलिंग सुरेख । कळंब महावृक्ष सुंदर । ६२ नारिंगी बिल्व देवपाडळी । देवदारवृक्ष नभमंडळीं । अगरु कृष्णागरु सुवासमेळीं । नभःस्थळीं परिमळती । ६३ जायफळवृक्ष सुंदर । लवंगी नाना लता परिकर । येत सुगंध मलयसमीर । रुंजती भ्रमर कमलांवरी । ६४ कपित्थ ताड सुंदर वाढले । सूर्यवृक्ष टवटवले । औदुंबर सदा फळले । इक्षुदंड रसभरित । ६५ मयूर चातकें बदकें । कस्तूरीमृग जवादिबिडलकें । राजहंस नकुळ चक्रवाकें । अतिकौतुकें विचरती । ६६ कोकिळा आळविती पंचमस्वर । विपिन तें सुवासित मनोहर । ऐसिया वनांत श्रीधर । वत्सभार चारीतसे । ६७ दिवस आला दोन प्रहर । वृक्षच्छायेसी समग्र । वत्सें गोळा करूनि जगदुद्धार । कळंबातळीं बैसला । ६८ काला मांडिला घननीळें । गोप भोंवते वेष्टूनि बैसले । सकळ सुरवर पातले । विमानीं बैसोनि पाहावया । ६९ वत्सें जीं होतीं गोळा केलीं ।

खस के गुच्छे सुगन्ध से पूरे भरे हुए थे । कर्पूर-कदलियाँ डोलती थीं । १६० द्राक्षा (अंगूर)-मण्डप विराजमान थे । शतपत्र और कल्हार (श्वेत कमल) विकसित हो गये थे । वृक्षों पर मालती लताएँ चढ़ी हुई थीं । फल-भार से युक्त बेर के वृक्ष डोलते थे । १६१ शाल, तमाल, पारिजातक, सिरस और राजचम्पक, पनस (कटहल), नीम, सुडौल मातुलिंग, कदम्ब महावृक्ष सुन्दर थे । ६२ नारंगी (मुसम्मी), बिल्ववृक्ष, देवपाटल, देवदारुवृक्ष नभ-मण्डल में उभरे थे । अगरु, चन्दन, कृष्णागरु सुगन्ध के भार से नभःस्थल में महक रहे थे । ६३ सुन्दर जायफल वृक्ष थे; लौंग की अनेक सुन्दर लताएँ थीं । मलय पर्वत की वायु के साथ सुगन्ध आ रही थी । कमलों पर भ्रमर (मँड़राते हुए) गुनगुना रहे थे । ६४ कपित्थ, ताल अच्छी तरह विकसित थे । सूर्यवृक्ष पनपकर तरोताज़े हो गये थे । औदुम्बर (गूलर) नित्य फले हुए रहते थे । इक्षुदण्ड (ईख) रस से परिपूर्ण थे । ६५ मयूर, चातक, बत्तख, कस्तूरीमृग, जवादि-बिड़ाल, राजहंस, नकुल (नेवले), चक्रवाक (चकवे) अति नाज़-नखरे के साथ विचरण करते थे । ६६ कोयलें पंचम स्वर में अलापती थीं । वह वन सुगन्धियुक्त तथा मनोहारी था । ऐसे वन में श्रीधर (कृष्ण) वत्सों के झुण्डों को चराया करते थे । ६७ दो पहर दिन हो गया (दुपहर हो गयी) । तो समस्त वत्सों को वृक्षों की छाया में इकट्ठा करके जगदुद्धारक (कृष्ण) कदम्ब वृक्ष के तले बैठ गये । ६८ (वहाँ) घननील कृष्ण ने खाद्य वस्तुओं (कलेवा-सम्बल) को मिलाना आरम्भ किया । (उनके) चारों ओर (समस्त) गोप (-बालक उन्हें) घेरकर बैठ गये ।

तीं चरत चरत दूर गेलीं । कमळासन देखोनि ते वेळीं । मनामाजी आवेशला । १७० म्हणे श्रीकृष्ण पूर्ण अवतार । किंवा अंशरूप आहे साचार । हा पुरता पाहूं विचार । मांडिलें चरित्र कमलोद्भवें । १७१ येऊनियां वृंदावनीं । परमेष्ठी अवलोकी नयनीं । म्हणे वत्सें न्यावीं चोरूनी । करील करणी कैसी पाहूं । ७२ हा पयःसागरनिवास । जरी असेल पुराणपुरुष । तरी प्रताप दावील विशेष । अति अद्भुत मजलागीं । ७३ जरी हा असेल माझा जनिता । तरी प्रत्यया येईल मज आतां । ऐसें कल्पूनि विधाता । वत्सें नेलीं क्षणमात्रें । ७४ आपली माया वरी घातली । सत्यलोकीं नेऊनि लपविलीं । तों इकडे सच्चिदानंद वनमाळी । काला वांटीत बैसला । ७५ नाना प्रकारचीं लोणचीं । ज्यांची देवही नेणती रुची । चवी पहावया दध्योदनाची । लाळ विरिंचि घोंटीतसे । ७६ गोप मुखीं घालिती ग्रास । वरतें दाविती देवांस । तें शेष प्राप्त नव्हे कोणास । बहु तपें तपतां हो । ७७ धन्य धन्य गोकुळींचे गोप । अनंत जन्में केलें तप । तें एकदांचि फळलें अमूप ।

तो विमानों में बैठकर यह देखने के लिए समस्त सुरवर (देव आकाश में) आ गये । ६९ (कृष्ण आदि ने) जो बछड़े इकट्ठा किये थे, वे चरते-चरते दूर गये । उस समय यह देखकर कमलासन ब्रह्मा मन में आवेश को प्राप्त हो गये । १७० उन्होंने कहा (सोचा), यह पूर्णतः विचार कर (परखकर) निर्णय कर लें कि श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं अथवा सचमुच अंशावतार हैं । (अतः) कमलोद्भव ब्रह्मा ने एक लीला आरम्भ की । १७१ वृन्दावन में आकर परमेष्ठी ब्रह्मा ने (अपनी) आँखों से (उन सबको) देखा और कहा (सोचकर निर्णय किया)— (इन) वत्सों को चुराकर ले जाएँ; (और) देखें, वे कैसी करनी करते हैं । ७२ यदि ये क्षीरसागर-निवासी (भगवान विष्णु) हों, यदि ये पुराणपुरुष हों, तो मुझे अति अद्भुत विशेष प्रताप दिखाएँगे । ७३ यदि ये मेरे पिता हों, तो अब यह बात मुझे अनुभव हो जाएगी । ऐसी कल्पना करते हुए विधाता क्षण मात्र में वत्सों को ले गये । ७४ उन्होंने अपनी माया उनपर डाल दी और ले जाकर उन्हें सत्यलोक में छिपा रखा । तब इधर वनमाली सच्चिदानन्द (स्वरूप कृष्ण) मिश्रित भोजन (भोज्य सामग्री) बाँट रहे थे । ७५ (उसमें) नाना प्रकार के अचार थे, जिनका स्वाद देव भी नहीं जानते थे । उस दही-भात का स्वाद (चखकर) देखने के लिए विधाता की लार टपकने लगी । ७६ वे गोप (-बालक अपने-अपने) मुँह में कौर डालते थे और ऊपर (आकाश में उपस्थित) देवों को दिखा देते थे । बहुत तप करने पर भी उस (अन्न का) शेष अंश (जूठन तक) किसी को प्राप्त नहीं हो सकता । ७७ गोकुल के वे गोप (-बालक) धन्य हैं, धन्य हैं । उन्होंने अनन्त जन्मों तक (जो) तपस्या की थी, वह (एक बार) अन्त में

चित्स्वरूप वश्य केलें। ७८ कीं पूर्वीं बहुत मख केले। कीं अनंत तीर्थीं नाहले। कीं वातांबुपर्ण सेवूनि तप केलें। शीत उष्ण सोसूनियां। ७९ कीं त्रिवेणीसंगमीं पाहीं। शरीर घातलें करवतीं त्यांहीं। त्या पुण्यें क्षीराब्धीचा जांवई। वश केला गोपाळीं। १८० असो ब्रह्मा तेथें येऊनि गुप्त। हरिलीला विलोकीत। म्हणे येणें पूतना तृणावर्त। शकटासुर मारिला। १८१ इतुकेनि हा पुरुषार्थी। आम्ही न मानूं श्रीपती। ऐसें परमेष्ठी मनीं चिंती। तों गडी बोलती हरीतें। ८२ वत्सें बहु दूरी गेलीं। घेऊनि येईं वनमाळी। आतां वळावयाची पाळी। तुझीच असे ये वेळीं। ८३ ऐसें ऐकतां वचन। उठिला इंदिरामनमोहन। जो मायातीत निरंजन। चैतन्यघन जगद्गुरु। ८४ वेणु खोंविलासे पोटीं। कक्षेसी धरी शृंग आणि काठी। दध्योदन वाम करपुटीं। ग्रास जगजेठी घालीतसे। ८५ वत्सें पहात दूरी। गेला वैकुंठपुरविहारी। इकडे गोपाळ कवळ घेऊनि करीं। वाट पाहती कृष्णाची। ८६ हातींचा ग्रास राहिला हातीं। मुखींचा कदा न गिळिती। तटस्थ हरीची वाट

(इस प्रकार) अमाप फल को प्राप्त हो गयी। (उसके बल से) उन्होंने चित्स्वरूप ब्रह्म (कृष्ण) को (अपने) वश में कर लिया। ७८ अथवा पूर्वकाल में उन्होंने बहुत यज्ञ किये हों, अथवा अनगिनत तीर्थस्थलों में स्नान किया हो, अथवा वायु-जल-पर्णों को सेवन करके, शीत, गर्मी सहन करते हुए तप किया हो। ७९ अथवा देखिए (समझ लीजिए कि), गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम अर्थात त्रिवेणी संगम में उन्होंने (अपने-अपने) शरीर आरे पर डाल दिये हों (आरे से कटवाकर संगम में डाल दिये हों), उस पुण्य से क्षीरसमुद्र के दामाद भगवान विष्णु अर्थात कृष्ण को उन गोपालों ने वश में किया है। १८०

अस्तु। वहाँ आकर ब्रह्मा गुप्त रूप से श्रीकृष्ण की लीला का अवलोकन कर रहे थे। वे बोले— इसने पूतना, तृणावर्त, शकटासुर को मार डाला। १८१ इतने से इस पुरुषार्थी को हम श्रीपति भगवान विष्णु नहीं मानेंगे। परमेष्ठी ब्रह्मा मन ही मन ऐसा सोच (ही) रहे थे, तो मित्र कृष्ण से बोले। ८२ 'बछड़े बहुत दूर गये हैं। रे कृष्ण, उन्हें ले आ। अब इस समय उन्हें ले आने की पारी तेरी ही है।'। ८३ ऐसी बात सुनते ही वे, जो (वस्तुतः) इन्दिरा-मन-मोहन विष्णु हैं, माया से परे, निरंजन हैं, चैतन्य के घन हैं, जगद्गुरु हैं, उठ गये। ८४ उन्होंने वेणु (मुरली) पेट (के पास अर्थात कटि) में खोंस ली। जगद्श्रेष्ठ कृष्ण ने काँख में सींग (बाजा) तथा लकुटिया पकड़ ली; बायीं हथेली में दध्योदन (दही-भात) रख लिया और मुँह में कौर डाल दिया। ८५ वे वैकुण्ठपुर-विहारी बछड़ों को देखते अर्थात खोजते हुए दूर चले गये। इधर गोपाल (अपने-अपने) हाथ में कौर लेकर कृष्ण की बाट जोहने लगे। ८६ उनके हाथ का कौर

पाहती। म्हणती श्रीपती कां न ये। ८७ तों ब्रह्मदेवें केलें विंदान। वासरें नेलीं चोरून। इकडे वनीं यादवकुलभूषण। वत्सें शोधीत हिंडतसे। ८८ वत्सें न दिसती ते वेळां। म्हणोनि पूर्वस्थळासी हरि आला। तों न दिसे गोपमेळा। घेऊनि गेला विधाता। ८९ कळलें विरंचीचें विंदाण। मग मनीं हांसे नारायण। म्हणे कमलोद्भवाचा अभिमान। दूर करावा तत्त्वतां। १९० मग काय करी रमाजीवन। सर्व स्वरूपें जाहला आपण। ज्या ज्या वत्साचा जैसा वर्ण। मनमोहन तैसा होय। १९१ चितारें भिगारें खैरें। मोरें सेवरें आणि कैरें। तांबडें काळें पांढरें। अवघीं वासरें आपण जाहला। ९२ ढवळें सांवळें चितळें। पोवळें पारवें डफळें। तैसींच रूपें घननीळें। असंख्यात धरियेलीं। ९३ वडजे वांकडे गोपाळ। एक धाकुटे एक विशाळ। एक रोडके एक ढिसाळ। होय सकळ आपण। ९४ मोडके कुब्जे काणे बहिर। गोरे सांवळे सुंदर। तितुकीं स्वरूपें श्रीधर। आपण नटला एकदांचि। ९५ त्यांची घोंगडी पायतण पांवे। तितुकीं स्वरूपें धरिलीं

हाथ में ही रह गया; मुँह में डाला हुआ वे नहीं निगल रहे थे। वे स्तब्ध होकर कृष्ण की बाट जोह रहे थे। उन्होंने कहा (सोचा)— (अभी तक) कृष्ण क्यों नहीं आया ?। ८७ तब (तक) ब्रह्मा ने एक (अद्भुत) करनी की (थी)। वे बछड़ों को चुराकर ले गये (थे)। इधर वन में यादवकुल-भूषण कृष्ण बछड़ों को खोजते हुए घूम रहे थे। ८८ उस समय बछड़े दिखायी नहीं दे रहे थे। (अतः खोजते-खोजते) कृष्ण (अपने) पूर्व स्थान पर (लौटकर) आ गये (जहाँ से वे चले गये थे)। तब उन्हें गोपों का समुदाय नहीं दिखायी दिया। (वस्तुतः) ब्रह्मा उन्हें ले गये थे। ८९ भगवान नारायण की समझ में (जब) विधाता की करनी आ गयी, तब वे मन ही मन हँस दिये और बोले, अब ब्रह्मा के अभिमान को सचमुच दूर कर लें। १९० फिर रमाजीवन विष्णुस्वरूप कृष्ण ने क्या किया ? वे स्वयं समस्त (गोपों-वत्सों के) रूप बन गये। जिस-जिस बछड़े का जैसा वर्ण था, वे मनमोहन कृष्ण वैसा (वत्स-रूप) ही बन गये। १९१ चितकबरे, अबरखी, भूरे, लाल चित्तियों से युक्त काले, सेमलिये और कबरे, लाल, काले, सफ़ेद रंग के समस्त वत्स-रूप वे स्वयं बन गये। ९२ घननील कृष्ण ने (जैसे बछड़े थे, वैसे ही) सफ़ेद, साँवले, चितकबरे, मूँगिये, भूरे, चमड़िये रंग वाले वत्सों के असंख्यात रूप धारण किये। ९३ (कुछ) गोपाल कुरूप, टेढ़े-मेढ़े अर्थात बेडौल थे; कुछ एक छोटे (कद के) थे, तो कुछ एक विशाल (बड़े कद वाले) थे। कुछ एक इकहरे (दुबले-पतले) थे, तो कुछ ढीले-ढाले-मोटे थे। कृष्ण स्वयं वे समस्त गोपाल (स्वरूप) हो गये। ९४ (कुछ एक) पंगु थे, कूबड़ वाले थे, काने थे, बहरे थे; कुछ गोरे थे, साँवले सुन्दर थे। उतने ही रूप कृष्ण एक ही साथ स्वयं धारण

कमलाधवें। कटिसूत्र वनमाला शृंग सर्वें। मयूरपिच्छें जाहला। ९६ वेत्र घुमरिया शिदोरी जाळें। लघु दीर्घ सूक्ष्म विशाळें। अनंतब्रह्मांडगोपाळें। रूपें सकळ धरियेलीं। ९७ सायंकाळीं हृषीकेशी। परतोनि आला गोकुळासी। ज्याची ज्याची सवें जैसी। तैसाचि होय जगदात्मा। ९८ कोणासी न दिसे विपरीत। कृष्णमाया परमाद्भुत। एक संवत्सर निश्चित। याच प्रकारें लोटला। ९९ ब्रह्मा मनीं वाहे अभिमान। म्हणे आतां गोकुळ पाहूं जाऊन। काय करीत असे कृष्ण। गोपवत्सांविण तो। २०० ब्रह्मा गुप्तरूपें पाहे। तों पूर्ववत बैसला आहे। शिदोरी वांटीत लवलाहें। गोपाळांसी निजकरें। २०१ पांचां वर्षांची मूर्ती। आकर्ण नेत्र विराजती। कंठीं मुक्तमाळा डोलती। पदकें झळकती अतितेजें। २ चिमणाच कांसे पीतांबर पिवळा। दशांगुलीं मुद्रिका वेल्हाळा। चिमणी झळके कटीं मेखळा। नेपुरें खळखळां वाजती। ३ असो गोपाळ जेविती स्वानंदें। गदगदां हांसती ब्रह्मानंदें। त्यांच्या मुखीं ग्रास गोविंदें। आपुल्या हस्तें घालिजे। ४ तों गडी म्हणती

कर गये। ९५ उनके (जितने) कम्बल थे, पदत्राण (जूते) थे, बाँसुरियाँ थीं, कमलापति ने उतने रूप धारण किये। वे (स्वयं) समस्त कटिसूत्र (करधनियाँ), वनमालाएँ, सींग, मोरपंख बन गये। ९६ (उन गोपों के कुछ एक) बेंत, घुग्घू, सम्बल, जाले छोटे थे, (कुछ एक)बड़े थे, सूक्ष्म, विशाल थे। अनन्त ब्रह्माण्डों के प्राणिमात्र की इन्द्रियों का पालन-नियमन करनेवाले गोपाल कृष्ण ने वे समस्त रूप धारण किये। ९७ शाम को हृषीकेशी कृष्ण गोकुल के प्रति लौट गये। जगदात्मा कृष्ण जिस किसी की जैसी आदत थी, स्वयं वैसे ही (धारण किये हुए) हो गये थे। ९८ किसी को कोई विपरीत बात नहीं दिखायी दी। (वस्तुतः) कृष्ण की माया (इस प्रकार) परम अद्भुत है। निश्चय ही एक वर्ष इस प्रकार (इस स्थिति में) बीत गया। ९९ ब्रह्मा ने मन में अभिमान धारण किया था। उन्होंने कहा (सोचा)— अब जाकर गोकुल देखें कि बिना गोपों और वत्सों के कृष्ण क्या कर रहे हैं। २०० ब्रह्मा गुप्त रूप से देखते रहे। (उन्हें) तब (दिखायी दिया कि) वे (कृष्ण) पहले की भाँति बैठे हुए हैं और अपने हाथों से गोपालों को झट-झट कलेवा बाँट रहे हैं। २०१ उनकी (वह) मूर्ति पाँच वर्षों की है। उनकी कानों तक फैली हुई अर्थात विशाल आँखें शोभायमान हैं। गले में मोतियों की मालाएँ झूल रही हैं। पदिक अति तेज से जगमगा रहे हैं। २ कटि में छोटा-सा पीत वस्त्र (पीताम्बर) है। दसों अँगुलियों में सुन्दर अँगूठियाँ हैं। कमर में नन्ही-सी करधनी चमक रही है (और पाँवों में पहने) नूपुर खन-खन बज रहे हैं। ३ अस्तु। (ब्रह्मा को दिखायी दिया कि) गोपाल आत्मानन्द-पूर्वक भोजन कर रहे हैं; ब्रह्मानन्द-पूर्वक खिलखिलाते हुए हँस रहे हैं (और) कृष्ण

नारायणा। वत्सें दूर गेलीं कानना। तुझीच पाळी मनमोहना। लौकर घेऊनि येइंजे। ५ ब्रह्मा गुप्त रूपें पाहे अवलोकुनी। म्हणे अगाध श्रीहरीची करणी। अभिमान होता माझे मनीं। सृष्टिकर्ता मीच असें। ६ महा अद्भुत वर्तलें। दों ठायीं वत्सें आणि गोवळे। सत्यलोकीं आपण नेले। ते तों संचले तैसेची। ७ हा होय माझा जनिता। आदिमायेचा निजभर्ता। जो अनंतब्रह्मांडकर्ता। करून अकर्ता तोचि हा। ८ तों इकडे कैवल्यदानी। वत्सें शोधीत हिंडे वनीं। दध्योदन करीं घेऊनी। ग्रास वदनीं घालीतसे। ६ शिरीं मयूरपिच्छें साजिरीं। घोंगडी शोभे खांद्यावरी। वनीं हिंडे पूतनारी। अति तांतडी व्हूंकडे। २१० काखेसी शिंग आणि वेत्र। जो मायालाघवी राजीवनेत्र। तो हांसतसे श्रीधर। ग्रास घेत हिंडतसे। २११ ऐसें देखोनि विधाता। म्हणे हा क्षीराब्धिशायी माझा पिता। ज्याचा महिमा वर्णितां। वेदशास्त्रां अतर्क्य। १२ याच्या नाभिकमळीं जन्मलों। दिव्य सहस्र वर्षें मी श्रमलों। कमलनालामाजी उतरलों। जाचावलों बहुत मी। १३ मग अत्यंत

उनके मुँह में अपने हाथ से कौर डाल रहे हैं। ४ तब साथी बोले, 'रे कृष्ण, बछड़े वन में दूर गये हैं। रे मनमोहन, अब तेरी ही पारी है, झट से (उन्हें लौटा) ले आना।'। ५ ब्रह्मा गुप्त रूप से ध्यान से देख रहे थे। वे बोले—श्रीहरि की करनी अद्भुत है। मेरे मन में यह अभिमान था कि मैं ही सृष्टि का कर्ता (निर्माता) हूँ। ६ महान आश्चर्य घट गया है। दो(-दो) स्थानों पर (वे ही) बछड़े और गोपाल हैं। मैं (जिन्हें) स्वयं सत्यलोक में ले गया, वे तो वैसे ही (यहाँ) इकट्ठा हुए (दिखायी दे रहे) हैं। ७ ये मेरे पिता हैं, आदिमाया के अपने पति हैं। जो अनन्त ब्रह्माण्डों के निर्माता हैं, वे ही उनका निर्माण करके ये उन ब्रह्माण्डों के अकर्ता अर्थात संहारक (बने हुए) हैं। ८ तब इधर कैवल्यदाता कृष्ण बछड़ों को खोजते हुए वन में घूम रहे थे। हाथ में दध्योदन (दही-भात) लेकर अपने मुँह में (एक-एक) कौर डालते जा रहे थे। ९ उनके मस्तक पर सुन्दर मोर-पंख हैं। कंधे पर कम्बल शोभायमान है। पूतनारि कृष्ण वन में चारों ओर बहुत जल्दी-जल्दी घूम रहे हैं। २१० काँख में सींग (बाजा) और बेंत है। जो माया-कौशल से युक्त कमल-नयन श्रीधर (कृष्ण) हैं, वे हँस रहे हैं और कौर डालते-डालते घूम रहे हैं। २११ ऐसा देखकर विधाता बोले, 'ये क्षीरसागरशायी (क्षीरसागर में शयन करनेवाले भगवान नारायण) मेरे पिता हैं, जिनकी महिमा, वर्णन करते रहने पर भी वेद-शास्त्र के लिए अतर्क्य (जान पड़ती) है। १२ इनकी नाभि में उत्पन्न कमल में मैं जन्म को प्राप्त हुआ हूँ। मैं दिव्य (देवों के) सहस्र वर्ष श्रम को प्राप्त हुआ। मैं (फिर) कमल के नाल के अन्दर उतर गया और बहुत कष्ट को प्राप्त हो गया। १३ अनन्तर अत्यन्त भयभीत होकर मैं आते

निर्बुज्ञोनी। कमलावरी बैसलों येऊनी। मग या जगद्गुरूनें तेच्च क्षणीं। दिव्यज्ञान उपदेशिलें। १४ म्यां हरिस्वरूप नेणोनियां। गेलों वत्स गोप घेऊनियां। आतां शरण रिघावें याच्या पायां। प्रेमभावें अनन्य। १५ निरंजनीं सांपडला श्रीधर। समोर येऊनि चतुर्वक्त्र। साष्टांग घातला नमस्कार। प्रेमें अंतर सद्गदित। १६ जैसा कनकदंड पृथ्वीवरी। हरिचरणीं शिरें ठेविलीं चारी। नेत्रोदकें अभिषेक करी। अष्टभाव उमटले। १७ मागुती करी प्रदक्षिणा। वारंवार घाली लोटांगणा। सवेंचि उठोनि विलोकी ध्याना। तों दहींभातें वदन माखलेंसे। १८ मग जोडोनि दोन्ही कर। स्तविता जाहला चतुर्वक्त्र। म्हणे जय जय जगदुद्धार। निर्विकार निर्गुण तूं। १९ नमो महामाया आदिकारणा। अज अजिता विश्वभूषणा। पुराणपुरुषा जगन्मोहना। गुणागुणातीत तूं। २२० जय जय

हुए कमल पर बैठ गया। तब इन जगद्गुरु ने उसी क्षण मुझे दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया। १४ मैं श्रीहरि के स्वरूप को न जानते हुए बछड़ों और गोपों को लेकर (चला) गया। अब अनन्य प्रेमभाव से इनके चरणों की शरण में जाएँ। १५ (उन्हें) कृष्ण वन के अन्दर मिल गये, तो सामने आकर चतुरानन ब्रह्मा ने उन्हें साष्टांग नमस्कार किया। उनका अन्तःकरण प्रेम से बहुत गद्गद (हो उठा) था। १६ जैसे पृथ्वी पर सुवर्णदण्ड (पड़ा हुआ) हो, वैसे (लेटकर) उन्होंने श्रीहरि के चरणों में अपने चारों सिर (टिकाये) रखे। वे नेत्रोदक (आँसुओं) से उनका अभिषेक कर रहे थे। (उनकी देह में) आठों भाव[1] प्रकट हो गये। १७ अनन्तर (उठकर) उन्होंने परिक्रमा की। वे (फिर) बार-बार दण्डवत प्रणाम करते रहे और साथ ही उठकर (श्रीहरि की) मूर्ति को देखते जा रहे थे। (उन्होंने देखा कि) उनका मुख दही-भात से लिप्त (सना) हुआ है। १८ फिर दोनों हाथ जोड़कर चतुर्मुख ब्रह्मा ने उनकी स्तुति की। वे बोले— हे जगत् के उद्धारक, जय हो, जय हो। आप निर्विकार हैं, निर्गुण हैं। १९ हे महामाया के आद्य निर्माता, आपको नमस्कार है। हे अजन्मा, हे अजित, हे विश्वभूषण, हे पुराणपुरुष, हे जगन्मोहन, आप गुणों और अगुणों के अतीत हैं। २२० हे नागेन्द्र शेष की देह पर शयन करनेवाले (शेषशायी), हे कमलदल-नयन, हे विश्व का पालन करनेवाले,

---

१ अष्टभाव— आलम्बन, उद्दीपन आदि कारणों से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले कार्य को साहित्यशास्त्र में अनुभाव कहते हैं। अनुभावों के कायिक, मानसिक, वाचिक, सात्त्विक आदि भेद माने जाते हैं। यहाँ भक्तिरस का परिपोष हुआ है और ब्रह्मा की देह में ये भाव प्रकट हुए हैं। ये (कायिक अनु-) भाव हैं— (अ) स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रुपात और प्रलय। अथवा (आ) कम्प, रोमांच, स्फुरण, प्रेमाश्रु, स्वेद, हास्य, लास्य, गायन।

नागेंद्रदेहशयना । कमलपत्राक्षा विश्वपालना । परात्परा शुद्धनिरंजना । भवमोचना भवहृदया।२२१ जय जय कृष्णा करुणार्णवा। हे केशवा देवाधिदेवा। हे नारायणा अपारवैभवा। हे माधवा गोविंदा।२२ हे विष्णो मधुप्राणहरणा। हे त्रिविक्रमा बलिबंधना। हे श्रीधरा हृत्पद्मशयना। पद्मनाभा परेशा।२३ हे दामोदरा संकर्षणा। हे वासुदेवा विश्वरक्षणा। हे प्रद्युम्नजनका मनमोहना। हे अनिरुद्धा अधोक्षजा।२४ हे पुरुषोत्तमा नरहरे। हे अच्युत जनार्दन मुरारे। हे उपेंद्र मधुकैटभारे। हे पूतनारे श्रीकृष्णा।२५ हे कृष्णा सजलजलदवर्णा। हे कृष्णा अमलनवपंकजलोचना। हे कृष्णा इंदिरामन-रंजना। हे भक्तरक्षका यादवेंद्रा।२६ हे कृष्णा ब्रह्मानंदमूर्ति। हे कृष्णा अनंतकल्याण अनंतकीर्ति। हे कृष्णा जगद्भूषण जगत्पति। अतर्क्य गति वेदशास्त्रां।२७ हे कृष्णा परममंगलधामा। हे कृष्णा मृडमानसविश्रामा। हे कृष्णा जलजनाभा अनामा। सकलकामातीत तूं।२८ अपराध आचरे बालक। परी क्षमा करी निजजनक। भुवनसुंदर लक्ष्मीनायक। सुखदायक सकळांतें।२९ सर्व अपराध तूं क्षमा करीं। पीतवसना असुरारी। माझिये

हे परात्पर, हे शुद्ध निरंजन, हे भवमोचन (संसार के लिए मुक्ति-दाता), हे भव (श्रीशिवजी) के हृदय (में स्थित), आपकी जय हो।२२१ हे कृष्ण, हे करुणासागर, हे केशव, हे देवाधिदेव, हे अपार वैभव से युक्त नारायण, हे माधव, हे गोविन्द, जय हो, जय हो।२२ हे विष्णु, हे मधु दैत्य के प्राणों का हरण करनेवाले, हे बलिराज को बन्धन में डालनेवाले त्रिविक्रम[1], हे श्रीधर, हे हृदय रूपी कमल में शयन करनेवाले (स्थित), हे पद्मनाभ, हे परेश, (जय हो, जय हो)।२३ हे दामोदर, हे संकर्षण, हे वासुदेव, हे विश्व के रक्षक, हे प्रद्युम्न के पिता, हे मनमोहन, हे अनिरुद्ध, हे अधोक्षज, (जय हो, जय हो)।२४ हे पुरुषोत्तम, हे नरहरि (नरसिंह रूपधारी), हे अच्युत, हे जनार्दन, हे मुरारि, हे उपेन्द्र, हे मधु और कैटभ के शत्रु, हे पूतनारि श्रीकृष्ण, (जय हो, जय हो)।२५ हे सजल मेघ के-से वर्ण वाले (घनश्याम कृष्ण), हे निर्मल नवपंकजनयन कृष्ण, हे इन्दिरा के मन का रंजन करनेवाले (विष्णुस्वरूप) कृष्ण, हे भक्तों के रक्षक, हे यादवेन्द्र, हे मूर्तिमान ब्रह्मानन्द अर्थात आनन्दस्वरूप ब्रह्म की साक्षात मूर्ति कृष्ण, हे अनन्त कल्याण के कर्ता तथा अनन्त कीर्ति-स्वरूप कृष्ण, हे जगद्भूषण, हे जगत्पति कृष्ण, आपकी गति वेदों और शास्त्रों (तक) के लिए अगम्य है।२२६-२२७ हे परम मंगलों के धामस्वरूप कृष्ण, हे शिवजी के मन के लिए विश्रामस्वरूप कृष्ण, हे पद्मनाथ, अनाम कृष्ण, आप समस्त काम (इच्छाओं) के परे हैं।२८ बालक कोई अपराध करता है, फिर भी उसका पिता क्षमा करता है।

---

१ त्रिविक्रम— देखिए टिप्पणी ५, पृ० ६२ (अध्याय २)।

मस्तकीं श्रीहरी। वरदस्त ठेवीं तुझा पैं। २३० पुढती घाली लोटांगण। सप्रेम धरिले कृष्णचरण। याउपरी नंदनंदन। व्रजभूषण काय बोले। २३१ ऊठ ऊठ चतुरानना। सांडोनि देहबुद्धिअभिमाना। आपुल्या स्वस्वरूप-स्मरणा-। माजी विलसे सर्वदा। ३२ ऐसें बोलतां जगज्जीवन। सत्वर उठला कमलासन। कृष्णें दृढ हृदयीं आलिंगून। करी समाधान तयाचें। ३३ मनमोहन पूतनारी। कृष्ण हस्त ठेवी त्याचे शिरीं। विरिंचि तृप्त झाला अंतरीं। सुखसमुद्रीं निमग्न। ३४ वत्सें गोप हरि झाला होता। सादर विलोकी जों विधाता। तंव त्या कृष्णमूर्ति तत्त्वतां। पाहतां जाहला तन्मय। ३५ लक्षानुलक्ष कृष्णमूर्ती। शंखचक्रादि आयुधें हातीं। श्रीवत्सादि चिन्हें झळकती। श्रीनिकेतनासमवेत। ३६ शृंग वेत्र पांवे पायतण। सर्व स्वरूपें नटला नारायण। असंख्य मूर्ती घनश्यामवर्ण। दुसरेपण दिसेना। ३७ असंख्य नाभिकमलें विराजमान। तेथें असंख्य विरिंचि शिव सहस्रनयन। चंद्र सूर्य कुबेर वरुण। सृष्टि संपूर्ण चालविती। ३८ कमलाप्रति भिन्न भिन्न

हे भुवनसुन्दर, हे लक्ष्मीनायक, आप सबके लिए सुख देनेवाले हैं। (मेरे अपराध को क्षमा करें)। २९ (मेरे) समस्त अपराधों को आप क्षमा करें, हे पीताम्बरधारी, हे असुरों के शत्रु, हे श्रीहरि, मेरे मस्तक पर अपना वरद-हस्त रखिए। २३० (ऐसा कहते हुए ब्रह्मा ने) उनके सामने दण्डवत प्रणाम किया और उन्होंने प्रेमपूर्वक कृष्ण के चरणों को पकड़ लिया। इसके पश्चात व्रजभूषण नन्द-नन्दन कृष्ण क्या बोले ? (सुनिए)। २३१ 'हे चतुरानन, उठ जाओ, उठ जाओ। देह, बुद्धि तथा अभिमान को त्याग कर अपने स्वरूप के स्मरण में नित्य रममाण रह जाओ।'। ३२ जगज्जीवन कृष्ण द्वारा ऐसा कहने पर कमलासन ब्रह्मा झट से उठ गये। तो हृदय से दृढ़तापूर्वक लगाते हुए उनको सन्तुष्ट कर दिया। ३३ पूतनारि मनमोहन कृष्ण ने ब्रह्मा के मस्तक पर हाथ रखा, तो वे अन्तःकरण में तृप्त तथा सुखसागर में निमग्न हो गये। ३४ (इधर) कृष्ण वत्स तथा गोप (-स्वरूप) बन गये थे। जब विधाता ने आदर के साथ देखा, तब उस कृष्ण की मूर्ति को देखते ही सचमुच वे तन्मय हो गये। ३५ (उन्हें दिखायी दिया —) लाख-लाख कृष्ण के रूप हैं। (उनमें से प्रत्येक के) हाथों में शंख, चक्र आदि आयुध हैं। (उनकी) देह में श्रीवत्स आदि चिह्न[1] श्रीनिकेतन सहित चमक रहे हैं। ३६ (स्वयं) नारायण ने सींग, (बेंत) लकुटियाँ, मुरलियाँ, जूते समस्त स्वरूप धारण किये थे। (वहाँ) घनश्याम वर्ण वाली असंख्य मूर्तियाँ थीं। कोई अन्यत्व (दूसरा रूप) नहीं दिखायी दे रहा था। ३७ वहाँ असंख्य नाभिकमल विराजमान हैं। वहाँ असंख्य विधाता, शिवजी, सहस्रनयन इन्द्र हैं; चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण हैं।

---

१ श्रीवत्स चिह्न— देखिए टिप्पणी १, पृ० ५८ (अध्याय २)।

ब्रह्मांड। चित्रविचित्र परम प्रचंड। वैकुंठ कैलासादि उदंड। पदें दिसती कमलाप्रति।३६ समाधिस्थ झाला विधाता। अहंकृति गेली पाहतां पाहतां। वाचा राहिली बोलतां। वृत्ती समस्त निमाल्या।२४० मुख्य मूर्ति त्यांत कोण। न दिसे कांहीं दुजेपण। वृंदावनींचे द्रुम पाषाण। श्वापदें कृष्णरूप दिसतीं पैं।२४१ भू आप तेज वात नभ। दिसती कृष्णरूप स्वयंभ। सरिता सिंधु चराचर सुप्रभ। श्रीवल्लभरूप दिसताती।४२ हरली सकल अहंकृति। अनंत ब्रह्मांडें अनंत कीर्ति। अनंत वेद अनंत शास्त्ररीति। कीर्ति गाती अनंत।४३ अनंत पुराण अनंत कला। अनंत अवतार अनंत लीला। अनंत स्वरूपें आपण नटला। दावी तो सोहळा विधातया।४४ बहुत आकृती नाना याती। स्त्री पुरुष नपुंसक व्यक्ती। अवघा ओतला वैकुंठपती। नाहीं स्थिति दूसरी।४५ विराट हिरण्यगर्भ महत्तत्त्व जाण। न दिसे स्थूल लिंग कारण। न चले तर्काचें विदाण। अवघा

वे समस्त सृष्टि को चला रहे हैं।३८ (उनमें से) प्रत्येक कमल के साथ भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्ड (निर्मित) हैं। चित्र-विचित्र अनगिनत वैकुण्ठ, कैलास आदि हैं। प्रत्येक कमल में (भगवान नारायण के, विष्णु के) चरण दिखायी दे रहे हैं।३९ (यह देखते-देखते) विधाता समाधिस्थ हो गये। देखते-देखते अहंकृति-भाव नष्ट हो गया। बोलते-बोलते वाणी रुक गयी (और) समस्त वृत्तियाँ लय को प्राप्त हो गयीं।२४० (यह जान लेना असम्भव हो गया था कि) उनमें से मुख्य कृष्ण-रूप कौन-सा है। (कहीं) कोई दूसरा रूप— द्वैतभाव —नहीं दिख रहा है। वृन्दावन के वृक्ष, पाषाण, श्वापद कृष्ण-रूप दिखायी दे रहे हैं।२४१ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश (पंच महातत्त्व) स्वयम्भू कृष्णरूप दिखायी दे रहे हैं। नदियाँ, पर्वत, चराचर (सृष्ट पदार्थ) अच्छी कान्ति से युक्त श्रीवल्लभ भगवानस्वरूप दिखायी दे रहे हैं।४२ उनकी समस्त अहंकृति-भावना नष्ट हो गयी। (उन्हें दिखायी दिया कि) अनन्त ब्रह्माण्ड, अनन्त वेद, अनन्त शास्त्र और रीतियाँ (चिन्तन प्रणालियाँ) उन (भगवान कृष्ण) की अनन्त कीर्ति का गान कर रहे हैं।४३ वे स्वयं अनन्त पुराण, अनन्त कलाएँ, अनन्त अवतार और (उनकी) अनन्त लीलाएँ, अनन्त स्वरूप धारण किये हुए हैं और वे यह (समस्त) आनन्दमय दृश्य विधाता को दिखा रहे हैं।४४ वैकुण्ठपति भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण बहुत आकृतियों, नाना जातियों, स्त्री-पुरुष-नपुंसक व्यक्तियों के साँचों में स्वयं) ढले हुए हैं— उनके अतिरिक्त कोई दूसरी स्थिति (अवस्था) नहीं है।४५ समझिए, वे (स्वयं) विराट् हिरण्यगर्भ महत्तत्त्व हैं; (वहाँ स्वतन्त्र रूप में) स्थूल, लिंग, कारण (शरीर-रूप) नहीं दिखायी दे रहे थे। (वहाँ इस सम्बन्ध में) तर्क की कोई गति (चतुराई) नहीं चल पाती। (सर्वत्र) एक मात्र जगज्जीवन कृष्ण (ही) साँचों में (उन रूपों में) ढले हुए हैं।४६ जागृति,

जगज्जीवन ओतला । ४६ जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुर्या । अवस्था गेल्या हरोनियां । सृष्टिस्थितिप्रलयसर्वसाक्षिणीया । न उरे माया समूळीं । ४७ विश्व तैजस प्राज्ञ प्रत्यगात्मा । ब्रह्मा विष्णु रुद्र परमात्मा । अवघा एक जगदात्मा । नामानामातीत जो । ४८ अकार उकार मकार । चवथा अर्धमात्रा ओंकार । रजतमसत्त्वविकार । सर्व यादवेंद्र ओतला । ४९ वैखरी मध्यमा पश्यंती परा । वाचा खुंटल्या नयनीं धारा । पाहतां ब्रह्मानंदा उदारा । ब्रह्मा जाहला समाधिस्थ । २५० अवस्था जिरवूनि पोटीं । नेत्र उघडोनि पाहे परमेष्ठी । तों श्वापदें सर्व सृष्टीं । निर्वैर तेथें खेळती । २५१ गाई व्याघ्र निर्वैर देख । खेळे नकुळ दंदशूक । वारण मृगेंद्र होती एक । हरिप्रतापेंकरूनि । ५२ पुढती ब्रह्मा घाली लोटांगण । म्हणे धन्य धन्य आजि जाहलों पूर्ण । काय करूं ब्रह्मपद घेऊन । सदा राहों वृंदावनीं । ५३ पदाभिमानें आम्ही नाडलों । निजस्वरूपा विसरलों । कामक्रोधचोरीं नागवलों । अंतरलों हरिपायां । ५४ नाहीं आमुची आत्मशुद्धी । दृढ धरिली

स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया (नामक चारों) अवस्थाएँ लय को प्राप्त हो गयी हैं । सृष्टि (निर्माण), स्थिति (पालन), प्रलय (विनाश) समस्त स्थितियों की साक्षिणी माया मूल सहित (बिल्कुल) शेष नहीं रह गयी । ४७ विश्व, तैजस्, प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, परमात्मा —ये समस्त एक जगदात्मा-स्वरूप (हो गये) हैं, जो (स्वयं) नाम के परे हैं । ४८ यादवेन्द्र कृष्ण (स्वयं) 'अ' कार, 'उ' कार, 'म' कार और अनुस्वार-स्वरूप चौथी अर्द्ध मात्रा से निर्मित ॐ-कार तथा रज-तम-सत्त्व रूप (तीनों गुण—) विकारों के रूप में ढले हुए हैं । ४९ (वहाँ) वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा नामक चारों वाणियाँ कुण्ठित हो गयीं । आनन्दस्वरूप उन ब्रह्म (ब्रह्मानन्द)— कृष्ण को देखते ही ब्रह्मा की आँखों से अश्रु-धाराएँ उत्पन्न हो गयीं और वे (ब्रह्मा मानो) समाधिस्थ हो गये । २५० (तदनन्तर इन) अवस्थाओं को अपने उदर में विलीन करके (जब) परमेष्ठी ब्रह्मा ने आँखें खोलकर देखा, तो (उन्हें दिखायी दिया कि) सृष्टि में समस्त श्वापद (प्राणी, जानवर) वैरहीन (होकर) खेल रहे हैं । २५१ देखिए, गायें और बाघ (एक-दूसरे के प्रति) निर्वैर हो गये हैं । नेवले और साँप खेल रहे हैं (निर्भयतापूर्वक विचरण कर रहे हैं) । श्रीहरि के प्रताप से (प्रभाव से) हाथी और मृगेन्द्र सिंह एक हो गये । ५२ तो ब्रह्मा ने उनके सामने दण्डवत नमस्कार किया और— 'मैं आज पूर्णतः धन्य हो गया हूँ, धन्य हो गया हूँ । मैं (अब) ब्रह्मा का यह पद लेकर क्या करूँ ? हम सदा वृन्दावन में (ही) रह जाएँ । ५३ (अपने) पद के अभिमान से हम लुट गये हैं, अपने मूल स्वरूप को भूल गये हैं, काम, क्रोध (जैसे विकारस्वरूप) चोरों द्वारा लूट लिये गये हैं और श्रीहरि के चरणों

देहबुद्धी। वेष्टित सदा आधिव्याधी। आत्मशुद्धि कैंची मग। ५५ सांडूनि सकल अभिमान। होऊनि वृंदावनीं तृणपाषाण। तेथें लागती कृष्णचरण। तेणें उद्धरोन जाऊं आम्ही। ५६ विधि जाहला निरभिमान। मग बोले जगत्पालन। म्हणे निजपदीं राहें सावधान। दुरभिमान टाकूनियां। ५७ ब्रह्मा करी प्रदक्षिणा। पुढती मिठी घाली चरणा। आज्ञा मागोनि रमाजीवना। निजस्थाना विधि गेला। ५८ गोपवत्सें जीं चोरूनि नेलीं। तीं अवघीं सोडूनि दिधलीं। कृष्णें आपुली रचना झांकिली। आपणामाजी सत्वर। ५९ वत्सें गोप ब्रह्मयानें नेले। मागुती फिरोन आणिले। परी हें चरित्र कोणास न कळे। हरीवांचोनि सर्वथा। २६० विधीनें पूर्वीं गोपाळ नेले होते। तैसेचि मागुती बैसविले तेथें। कृष्ण घेऊनि वत्सांतें। सत्वर आला त्यांजवळी। २६१ एक संवत्सरपर्यंत। नेले होते गोप समस्त। परी हरिमाया अद्‌भुत। न कळे चरित्र तयांसी। ६२ गडी म्हणती श्रीहरी। लौकर येईं तूं पूतनारी। आम्ही ग्रास घेऊनि निज करीं। वाट तुझी पाहतों। ६३ गदगदां हरि हांसला। त्यांमाजी येऊनि बैसला। तों वासरमणि

से अन्तर को प्राप्त हो गये हैं। ५४ हमारी अपनी स्थिति की (सच्ची) पहचान नहीं हुई है और देहबुद्धि को दृढ़तापूर्वक धारण किया है, आधियों-व्याधियों से सदा घिरे हुए हैं, तो फिर कैसी आत्मशुद्धि। ५५ समस्त अभिमान का त्याग करके इस वृन्दावन में तृण-पाषाण हो जाने पर उनसे वहाँ कृष्ण के पाँव लग जाएँगे (छू जाएँगे); उससे हम उद्धार को प्राप्त हो जाएँगे।'। ५६ (ऐसा सोचते-सोचते) विधाता अभिमान से रहित (मुक्त) हो गये। तब जगत्पालक (कृष्ण) बोले। उन्होंने कहा—'दुरभिमान को छोड़कर अपने पद पर सावधान होकर रहिए।'। ५७ (तदनन्तर) ब्रह्मा ने (उनकी) परिक्रमा की और फिर उनके चरणों से लिपट गये। (तदनन्तर) रमाजीवन भगवान (कृष्णस्वरूप) विष्णु से आज्ञा लेकर विधाता अपने स्थान (सत्यलोक) चले गये। ५८ जिन गोपों और बछड़ों को वे चुराकर ले गये थे, उन सबको उन्होंने छोड़ दिया। तो कृष्ण ने अपनी रचना (निर्मित सृष्टि) को झट से अपने भीतर (विलीन करते हुए) छिपा दिया। ५९ ब्रह्मा वत्सों और गोपों को ले गये और फिर से अनन्तर वे ले आये। फिर भी हरि के सिवा, यह लीला किसी को (भी) विदित नहीं हो गयी। २६० विधाता पहले (जिस स्थिति में बैठे हुए) गोपालों को ले गये थे, उन्हें वैसे ही वहाँ फिर से बैठा दिया। तो कृष्ण वत्सों को लेकर झट से उनके पास आ गये। २६१ समस्त गोपों को एक साल तक वे ले गये थे, परन्तु श्रीहरि की माया (ऐसी) अद्‌भुत है (कि) यह लीला उनको विदित नहीं हुई। ६२ वे साथी बोले—'अरे कृष्ण, रे पूतनारि कृष्ण, तू झट से आ जा। हम हाथों में कौर लेकर तेरी बाट जोह रहे हैं।'। ६३

अस्ता गेला। सत्वर परतला गोकुळा। ६४ वत्सें आणि गोवळे। जाती परम उल्लाळें। बळिरामासी कांहीं न कळे। हरीनें केलें चरित्र जें। ६५ कृष्णमुखाकडे पाहे बळिराम। तों ईषद्धास्य मेघश्याम। गुज कळोनि सप्रेम। बळिभद्र तेव्हां जाहला। ६६ गोवर्धनीं ज्या गाई चरती। त्या ओरसा येऊनि वत्सें चाटिती। गौळी गोकुळींचे धांवती। हृदयीं धरिती बाळकांतें। ६७ तें कौतुक पाहोन। हांसती शेषनारायण। शचीरमणा न कळे ही खूण। इतर कोठून जाणती। ६८ थोर दाविलें कौतुक। विरिंचि पोटींचें बालक। त्यासी कृपेनें वैकुंठपालक। रमानायक बोलिला। ६९ दिधलें अद्भुत दर्शन। हरिला सकळ अभिमान। गोकुळींचे सर्व जन। ब्रह्मानंदें डोलती। २७० आरत्या घेऊनि गोपिका। सामोऱ्या येती त्रिभुवननायका। निजमंदिरा आला भक्तसखा। यशोदा माता आलिंगी। २७१ केलें जेव्हां वत्सहरण। तेव्हां पांच वर्षांचा श्रीकृष्ण। पुढिले अध्यायीं कालियामर्दन। सावधान

(यह देखकर) श्रीहरि खिलखिलाकर हँसने लगे और आकर उनके बीच में बैठ गये। तब (तक) सूर्य अस्त को प्राप्त हो गया (और फिर) वे झट से गोकुल लौट गये। ६४ वत्स और गोप परम आनन्द से चल दिये। श्रीहरि ने जो लीला (प्रदर्शित) की, वह बलराम (तक) की समझ में कुछ भी नहीं आयी। ६५ (जब) बलराम ने श्रीकृष्ण के मुख की ओर देखा, तो वे मेघश्याम (कृष्ण) किंचित हँस पड़े। तब वह गूढ़ बात समझ में आते ही बलभद्र प्रेम से युक्त हो गया (उनके प्रति उसका प्रेम वृद्धिगत हुआ)। ६६ जो गायें गोवर्धन पर्वत पर चरने गयी थीं, वे वात्सल्य स्नेह से युक्त होते हुए आकर अपने-अपने वत्स को चाटने लगीं। गोकुल के ग्वालों ने दौड़कर अपने-अपने बालकों को हृदय से लगा लिया। ६७ उस अद्भुत लीला को देखकर शेष (बलराम) और नारायण (कृष्ण) हँसने लगे। यह संकेत इन्द्र की समझ में नहीं आया, तो उसे इतर (जन) कैसे जान पाएँगे। ६८ इस प्रकार (श्रीहरि ने) बड़ी अद्भुत लीला प्रदर्शित की। विधाता तो उनके अपने बालक थे। वैकुण्ठ के पालक रमानायक भगवान विष्णु (के अवतार कृष्ण) उनसे बोले। ६९ उन्हें अद्भुत दर्शन करा दिये और उनके समस्त अभिमान को दूर कर डाला। गोकुल के समस्त लोग ब्रह्मानन्द के साथ डोलते (झूमते) रहे। २७० गोपिकाएँ (हाथों में) आरतियाँ लिये हुए त्रिभुवन-नायक कृष्ण की अगवानी के लिए आगे आ गयीं। (जब) भक्तों के सखा (कृष्ण) अपने घर आ गये, तब माता यशोदा ने उनका आलिंगन किया। २७१

जब (ब्रह्मा ने) वत्सों का अपहरण किया, तब श्रीकृष्ण पाँच वर्ष के थे। अगले अध्याय में (श्रोता) कालिय-मर्दन (की कथा) का श्रवण अवधानपूर्वक करें। २७२ (जो) यादवेन्द्र कृष्ण गोकुल में अवतरित हो

परिसावें । ७२ गोकुळीं अवतरला यादवेंद्र । तोचि पंढरीं ठेऊनि कटीं कर । भीमातीरीं दिगंबर । ब्रह्मानंद उभा असे । ७३ हरिविजय ग्रंथ वरिष्ठ । हेंचि षड्रस अन्नें भरिलें ताट । ज्यांसी भक्तिक्षुधा उत्कट । तेचि जेविती प्रीतीनें । ७४ जे निंदक रोगिष्ठ सहजीं । कुटिलता कुपित्त उदरामाजी । परम दुरात्मे भक्तकाजीं । देह कदा रुळेना । ७५ ऐसे अभक्त क्षयरोगी जाण । त्यांस न जिरे हें अन्न । असो क्षुधार्थी जे भक्तजन । त्यांहींच भोजन करावें । ७६ जो आनंदसंप्रदायभूषण । तो ब्रह्मानंद यतिराज पूर्ण । श्रीधर तयासी अनन्य शरण । जैसें लवण सागरीं । ७७ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । श्रोते चतुर परिसोत । दशमाध्याय गोड हा । २७८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

गये, वे ही भीमा नदी के तट पर पण्ढरपुर में (आविर्भूत होकर) कटि पर हाथ रखे हुए दिगम्बर ब्रह्मानन्द (के रूप में) खड़े हैं । २७३

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ वरिष्ठ है । यही छहों रसों से युक्त अन्न से भरी हुई थाली है । जिनकी भक्ति रूपी भूख उत्कट हो, वे ही (वहाँ) प्रेम के साथ भोजन करते हैं । २७४ जो स्वभावतः निन्दक हैं, रोगी हैं, जिनके उदर में कुटिलता रूपी बुरा पित्त (भरा हुआ) है, वे परम दुरात्मा हैं । उनकी देह भक्तों के लिए कभी भी काम नहीं आती । ७५ ऐसे अभक्तों को क्षय रोगी समझिए । उनको यह अन्न हज़म नहीं हो पाता । अस्तु । जो भक्तजन क्षुधार्थी (भूख से व्याकुल) हैं, वे ही (यहाँ) भोजन करें । ७६ जो आनन्द सम्प्रदाय के आभूषण हैं, वे (मेरे पिता एवं गुरु) ब्रह्मानन्द पूर्णस्वरूप यतिराज हैं । जिस प्रकार लवण (नमक) सागर में (लवलीन हुआ) होता है, उसी प्रकार यह श्रीधर अनन्य रूप से उनकी शरण में गया हुआ है । २७७

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । चतुर श्रोता उसके इस मधुर दशम अध्याय का श्रवण करें । २७८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—११

[बालकृष्ण द्वारा कालिय नाग का दमन]

श्रीगणेशाय नमः ।। जय जय इंदिरावरा श्रीरंगा । निजजनहृत्पद्मनील-भृंगा । अज अजिता अव्यंगा । सकलरंगातीत तूं । १ नीलग्रीवभूषणारि-रोहणा । पयोब्धिहृदयरत्नमनमोहना । सरसिजोद्भवजनका नीलवर्णा । सप्तावरणांवेगळा तूं । २ अनंतकोटिकामसुंदरा । सकलरंगचालका परम उदारा । अमला पराभारती अगोचरा । निर्विकारा निर्द्वंद्वा । ३ भवनाग-विदारक पंचानना । विद्वज्जनमनमंदुसरत्ना । नाकळसी पंचास्याच्या ध्याना । सकलकल्याणनिकेतना तूं । ४ दुर्जनदानवकुलनिकृंतना । अरिवर्गप्रतापभंजना । गहनमायाविपिनदहना । तमनाशना ज्ञानसूर्या । ५ अगम्य तूं दशशतनयना । न वर्णवसी दशशतवदना । दशशतहस्ताचिया किरणां । नाढळसी तूं

श्रीगणेशाय नमः । हे इन्दिरापति, हे श्रीरंग, हे अपने भक्तजनों के हृदय रूपी कमलों में स्थित नील भ्रमर, हे अजन्मा, हे अजित, हे अव्यंग (दोषरहित), आपकी जय हो, जय हो । आप समस्त रंगों (वर्णों तथा विकार-गुण-अगुणों रूपी रंगों) के परे हैं । १ हे नीलकण्ठ शिवजी के (कण्ठ के) आभूषणस्वरूप सर्प (जाति) के शत्रु गरुड़ पर आरोहण करनेवाले (भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण), हे (क्षीर-) सागर के हृदय से उत्पन्न रत्नस्वरूपा लक्ष्मी के मन को मोहित करनेवाले, हे कमलोद्भव ब्रह्मा के जनक, हे नीलवर्ण (से युक्त शरीरधारी), आप सातों आवरणों के परे हैं । २ हे अनन्त कोटि कामदेवों-से सुन्दर, हे समस्त रंगों (प्रवृत्तियों) के चलानेवाले, हे परम उदार (धर्मात्मा), हे अमल (निर्मल), हे परा (पश्यन्ती, वैखरी आदि) वाणियों के लिए (तक) अगोचर (इन वाणियों द्वारा भी जाने-जतलाये जाने में असम्भव), हे निर्विकार, हे निर्द्वन्द्व, हे संसार रूपी हाथी को विदीर्ण करनेवाले सिंह, हे विद्वज्जनों के मन रूपी मंजूषा में स्थित रत्न, आप पंचानन शिवजी (तक) के ध्यान की पकड़ में नहीं आते । आप सकल (जनों के लिए) कल्याण के (मूर्तिमान) निकेतन (गृह) हैं । ३-४ हे दुर्जन दानवों के कुल के संहारक, हे शत्रुवर्ग के प्रताप को भग्न करनेवाले, हे माया के गहन वन को जला देनेवाले, हे (अज्ञान, अविद्यास्वरूप) अन्धकार को नष्ट कर देनेवाले ज्ञानस्वरूप सूर्य, आप सहस्रनयन इन्द्र (तक) के लिए अगम्य हैं; सहस्रवदन शेषनाग द्वारा (तक) आप वर्णित नहीं किये जा पाते । खोज करते रहने पर भी सहस्र करों अर्थात हाथों वाले सूर्य के किरण रूपी हाथों

१ सप्त आवरण— ब्रह्माण्ड के सात आवरण हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्त्व ।

शोधितां । ६ निकटभीमातटविहारा । आदिपुरुषा श्रीदिगंबरा । ब्रह्मानंदा श्रीधरवरा । पुढें चरित्र चालवीं । ७ दशमाध्यायाच्या अंतीं कथा । हरीसी स्तवोनि नारदपिता । गोपवत्सें देऊनि मागुता । निजस्थानासी पावला । ८ यावरी प्रातःकाळीं एके दिवशीं । गोगोप घेऊनि वैकुंठविलासी । आला तमारिकन्यातीरासी । लावण्यराशि जगदात्मा । ९ उष्णकाळ वसंतमास । मध्यान्हासी आला चंडांश । त्याच्या करप्रतापें सकलांस । तृषा विशेष वाढली । १० धांवती गाईंचे कळप । कृतांतभगिनीतीरासमीप । ज्या ऱ्हदीं कालिया दुष्ट सर्प । महादुर्मति वसे तेथें । ११ जगद्वंद्यास टाकूनि मागें । गोगोप पुढें धांवती वेगें । हरि समीप नसतां कर्मभोगें । प्राप्त झालें दुःख पें । १२ सेवितांचि यमुनाजीवन । गोगोप झाले गतप्राण । यमानुजातीरीं मृत्युशयन । सकळीं केलें एकदां । १३ दुरावतां धराधरतनुशयन । अकल्पित विघ्नें पडती दारुण । यालागीं कमलपत्राक्षाचे चरण । न विसंबावे सर्वदा । १४

को भी मिल नहीं पाते । ५-६ हे भीमा नदी के निकट तट पर विहार करनेवाले आदिपुरुष, श्रीदिगम्बर, आनन्दस्वरूप ब्रह्म तथा पिता एवं गुरु ब्रह्मानन्द, श्रीधर के लिए वर-दाता, (अब श्रीकृष्ण के) चरित्र (के कथन) को आगे चला दीजिए— अर्थात (मुझसे) कथा-कथन आगे करवाइए । ७

दसवें अध्याय के अन्त (तक) में (यह कथा कही गयी है कि) नारद मुनि के पिता ब्रह्मा श्रीहरि की स्तुति करके (अपहृत) गोप और बछड़े फिर से देकर अपने स्थान (सत्यलोक) पहुँच गये । ८ इसके पश्चात एक दिन सवेरे लावण्य-राशि जगदात्मा वैकुण्ठविलासी (विष्णुस्वरूप) कृष्ण गायों और गोपों को लेकर सूर्यकन्या[१] यमुना नदी के तट पर आ गये । ९ वह उष्णकाल अर्थात गर्मियों का काल— ग्रीष्मऋतु का काल —था, चैत्र मास था । सूर्य मध्याह्न पर आ गया था (दुपहर हो गयी थी) । उसकी किरणों के प्रताप से— प्रभाव से सबकी प्यास विशेष रूप से बढ़ गयी । १० (प्यासी) गायों के झुण्ड कृतान्त (यम) की भगिनी यमुना[१] के तीर के समीप वहाँ दौड़ते जा रहे थे, जहाँ एक दह में महादुर्मति कालिय नामक दुष्ट सर्प रहता था ११ जगद्वंद्य कृष्ण को पीछे छोड़कर गायें और गोप वेगपूर्वक आगे (-आगे) दौड़ते (जा रहे) थे । पास में श्रीहरि के न होने से (पूर्वकृत) कर्म के भोग (फल-) स्वरूप उनको दुःख प्राप्त हो गया । १२ यमुना का पानी पीते ही गायें और गोप गतप्राण हो गये और यमानुजा यमुना के तीर पर उन सबने एक साथ मृत्यु रूपी निद्रा अपना ली । १३ धरणीधर शेष की देह पर शयन करनेवाले अर्थात शेषशायी भगवान से दूर

---

१ तमारि (सूर्य-) कन्या तथा कृतान्त (यम-) भगिनी यमुनाः पुराणों के अनुसार सूर्य से यम नामक पुत्र और यमुना नदी का जन्म हुआ । अतः यमुना को सूर्यकन्या, यमानुजा, यमभगिनी आदि नामों से जाना जाता है ।

हातीं वंशवाद्य घेऊन। तेथें पावला पद्माक्षीरमण। तंव ते अनाथ प्रेतें होवोन। गोगोपाल पडियेले। १५ ऐसें देखोनि कृपार्णवें। निजवल्लभें कमलाधवें। करुणाकरें विलोकितां आघवे। निद्रिस्तापरी ऊठती। १६ अनंतब्रह्मांडींचे प्राणी। जीववी जो कृपावलोकनीं। तेणें गोप धेनु तेच्च क्षणीं। कृपाकटाक्षें उठविलीं हो। १७ मग उठोनि ते वेळां। तटस्थ विलोकिती तमालनीला। म्हणती याचे हातीं जीवनकला। सकल जीवांच्या असती हो। १८ आम्ही प्राशितां विषजीवन। समस्त पडिलों कुणपें होऊन। येणें कृपेचें करूनि निकेतन। आमुचे प्राण रक्षिले। १९ असो मनीं विचारी जगदात्मा। कालिंदीऱ्हदीं हा दुष्टात्मा। यास दवडावें न करावी क्षमा। तरीच्च सर्वां सुख होय। २० परम दुष्ट हा अहि साचार। सळसळां पुढें यमुनेचें नीर। जिकडे उदकावरूनि जाय समीर। तिकडे संहार चराचर जीवां। २१ अंतरिक्षें द्विज जातां उडोन। मृत्यु पावती च्चडफडोन।

हो जाने पर अकल्पित दारुण विघ्न आ पड़ते हैं। इसलिए कमलदलनयन भगवान के चरणों को नित्यप्रति अर्थात कभी भी न भूल जाएँ। १४ हाथ में वंश-वाद्य (बाँस से बनायी हुई बंसी, मुरली) लेकर पद्माक्षी (लक्ष्मी-)रमण भगवान वहाँ आ पहुँचे, तो (उन्होंने देखा कि) तब (तक) गायें और गोपाल अनाथ रूप से (रक्षक न होने से) शव होकर पड़े हुए हैं। १५ ऐसा देखकर कृपासागर, अपने भक्तजनों के वल्लभ, कमलापति करुणाकर भगवान विष्णु (स्वरूप कृष्ण) ने (उनकी ओर) देखा, तो उनके देखते ही वे सब सोये हुओं की भाँति (जगकर) उठ गये (मानो वे मृत नहीं थे, सोये हुए ही हों)। १६ जो कृपा (पूर्ण दृष्टि) से देखकर अनन्त ब्रह्माण्डों के प्राणियों को जीवित रखते हैं, उन्होंने उसी क्षण कृपायुक्त कटाक्ष (दृष्टि) से (देखकर) गोपों और गायों को (पुनर्जीवित करते हुए) उठा लिया। १७ तब उस समय उठकर वे स्तब्ध होते हुए तमालनील कृष्ण की ओर देखने लगे और बोले— अहो, समस्त जीवों की जीवन कलाएँ इसके हाथों में (ही) हैं। १८ विषयुक्त पानी पीने पर हम समस्त शव होकर गिर गये। (परन्तु) इसने कृपा का निकेतन बनते हुए अर्थात कृपा के साक्षात निकेतन में हमें आश्रय देकर इस (कृष्ण) ने हमारे प्राणों की रक्षा की। १९

अस्तु। जगदात्मा कृष्ण ने मन में विचार किया कि यह दुष्टात्मा (कालिय नाग) यमुना के दह में (रहता) है। इसे भगा दिया जाए— इसे क्षमा न करें, तो ही सबको सुख (का लाभ) होगा। २० यह सर्प सचमुच परम दुष्ट है। यमुना का पानी झरझर आगे (बहता जाता) है। हवा उसके पानी पर होकर जिधर जाती है, उधर चराचर (का), जीवों का संहार हो जाता है। २१ आकाश में उड़ते हुए जाने पर पक्षी तड़प-

कालियानयनींच्या पेटतां अग्न । वनें जळोनि भस्म होतीं । २२ तेथींचा जिकडे जाय प्रभंजन । तिकडे वृक्ष जाती जळोन । मग तें कोण प्राशील जीवन । स्पर्शही जाण न करवे । २३ त्याच डोहीं येऊन । कालिया वसावया काय कारण । पूर्वीं सर्व उरग मिळोन । माधववहना शरण गेले । २४ म्हणती तूं आमुचा संहार करिसी । तरी अभय देईं एक आम्हांसी । तवं सुपर्ण म्हणे प्रतिवर्षीं । पूजा नेमेंसीं पैं देणें । २५ सर्वीं मान्य केलें वचनासी । भाद्रपद शुद्ध पंचमीचे दिवसीं । आदरें पूजावें विनायकासी । तरीच सर्पांसी निर्भय । २६ एक रथभरी अन्न । त्यावरी एक उरग ठेवून । देती खगपतीस नेऊन । नेमेंकरून प्रतिवर्षीं । २७ तों हा कालिया मदें करून । न पूजी अरुणानुजालागून । तें विहंगोत्तमें ऐकोन । म्हणे जिवें मारीन कालिया । २८ अंडजप्रभुभेणें लपावया । ठाव कोठें न मिळे कालिया । तों यमुनाडोहीं त्या पक्षिवर्या । शाप होता पूर्वींचा । २९ यमुनाजीवनींचे मत्स्य काढोनी ।

तड़पकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । इस कालिय की आँखों की (विष-स्वरूप) अग्नि सुलगती रहने से वन जलकर भस्म हो रहे हैं । २२ वहाँ की हवा जहाँ जाती है, वहाँ वृक्ष जल जाते हैं । फिर (उसका) वह पानी कौन पीएगा ? समझिए कि उसे स्पर्श तक नहीं किया जा पाता । २३ उसी दह में आकर कालिय के बस जाने का क्या कारण है ? (सुनिए—) पूर्वकाल में समस्त सर्प इकट्ठा होकर भगवान माधव अर्थात विष्णु के वाहन गरुड़ की शरण में गये । २४ वे बोले, 'तुम हमारा संहार करते रहते हो । फिर भी हमें एक (विषय में) अभय (दान) दो ।' तब गरुड़ बोला, 'मुझे प्रतिवर्ष नियमपूर्वक (नित्य) पूजा (की सामग्री समर्पित) कर दो (मेरी पूजा करो) ।' । २५ उन सब (सर्पों) ने उस बात को स्वीकार किया (और यह तय हुआ) कि भाद्रपद की शुक्ला पंचमी के दिन आदरपूर्वक गरुड़ का पूजन करें, तो ही सर्पों को निर्भयता प्राप्त होगी । २६ (तबसे) एक रथ भर अन्न लेकर उसपर एक सर्प रखते हुए वे प्रतिवर्ष नियमपूर्वक ले जाकर खगपति गरुड़ को (समर्पित) किया करते थे । २७ तब (अनन्तर) यह कालिय मद अर्थात घमण्ड से अरुणानुज गरुड़[1] का पूजन नहीं करता । विहंगोत्तम गरुड़ ने वह सुनकर (जानकर) कहा (निर्णय किया)— मैं इस कालिय को जान से मार डालूँगा । २८ (यह जानकर) उस पक्षिराज के भय से छिपने के लिए कालिय को कहीं ठौर नहीं मिल रहा था । तब उस पक्षिवर को यमुना

---

१ अरुणानुज गरुड़: पुराणों के अनुसार विनता के अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र थे । अरुण सूर्य का सारथी नियुक्त हुआ । गरुड़ को, अरुण के छोटे भाई होने के कारण, अरुणानुज कहते हैं । गरुड़ भगवान विष्णु का वाहन है, पक्षियों का राजा है और सर्पों का शत्रु है ।

उरगरिपु भक्षीं अनुदिनीं। तों तेथें सौभरी नामें महामुनी। भानुजातीरीं तप करी। ३० मत्स्य अवघे मिळोन। सौभरीस गेले शरण। म्हणती तूं साधु येथें असोन। आम्हांलागून गरुड मारी। ३१ मग मत्स्यकैवारें वदे सौभर। येथींच्या जीवना स्पर्शतां खगेंद्र। तत्काळ मृत्यु पावेल साचार। ऐकोनि मत्स्य सर्व तोषले। ३२ तें विष्णुवहनें जाणोन। पुनः त्यजिलें तें स्थान। त्या ऱ्हदी कालिया म्हणून। राहिला येऊन द्विजेंद्रभयें। ३३ असो ऐसा दुष्ट अही। नेत्र उघडोनि जिकडे पाही। वृक्ष वनें जळती सर्वही। पाषाणही उलती हो। ३४ एक कदंबवृक्ष राहिला। वरकड वृक्षांचा संहार जाहला। तरी त्यावरो पूर्वी खगपति बैसला। सुधारसघट नेतां हो। ३५ घट ठेविला होता पलमात्र। तेणें अमर झाला तरुवर। त्यालागीं कालियाविष दुर्धर। न जाळी त्या कदंबा। ३६ सिंहावलोकनें तत्त्वतां। श्रोते हो परिसा मागील कथा। यमुनातीरीं जगत्पित्याचा पिता। उठवीं प्रेतें

के दह के विषय में पूर्वकाल से (प्राप्त) एक अभिशाप था। २९ (पूर्वकाल में) सर्परिपु गरुड़ यमुना-जल में से मछलियाँ निकालकर प्रतिदिन खाया करता था। तब वहाँ यमुना के तीर पर सौभरी नामक एक महामुनि तप कर रहे थे। ३० समस्त मत्स्य इकट्ठा होकर सौभरी की शरण में गये और बोले, 'आप साधु पुरुष के यहाँ होने पर भी हमें गरुड़ मार डालता है।'। ३१ तब उन मत्स्यों के पक्षपात से सौभरी बोले, 'खगेन्द्र गरुड़ यहाँ के पानी को स्पर्श करते ही सचमुच मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा।' यह सुनकर मत्स्य सन्तुष्ट हो गये। ३२ विष्णुवाहन गरुड़ ने वह जानते ही वह स्थान छोड़ दिया। (तदनन्तर) खगेन्द्र (गरुड़) के भय से कालिय आकर उस दह में रहने लगा। ३३ अस्तु। ऐसा वह दुष्ट सर्प आँखें खोलकर जिस ओर देखता, (उस ओर के) सभी वृक्ष, वन जल जाते, पाषाण तक (विष की दाहकता से तप्त होकर) फट जाते। ३४ एक (मात्र) कदम्ब वृक्ष (शेष जीवित) रह गया था, (जब कि) अन्य वृक्षों का (इस प्रकार कालिय नाग के विष की दाहकता से) संहार हो चुका था। (यह) इसलिए कि अमृत का घट लेकर जाते (समय) पूर्वकाल में उसपर खगपति गरुड़ बैठ गया था[1]। ३५ उसने तो वह घट एक पल (भर) मात्र रखा था; (फिर भी) उससे वह तरुवर अमर हो गया। इसलिए उस कदम्ब को कालिय का दुर्धर विष नहीं जला पा रहा था। ३६

(अब) सिंहावलोकन (न्याय) से, हे श्रोताओ, पूर्व कथा तत्त्वस्वरूप (सार रूप में) सुन लीजिए। यमुना के तीर पर जगत्पिता के पिता

१ कदम्ब पर अमृत-घट— देखिए टिप्पणी १, पृष्ठ १४६ (अध्याय ५)। उस वक्त गरुड़ ने वह अमृत-घट क्षण भर के लिए उस कदम्ब पर रख लिया था।

सकलही। ३७ मनांत इच्छी स्कंदतातमित्र। हा काढावा येथूनि अमित्र। म्हणोनि कदंबावरी श्रीधर। चढे साचार तेधवां। ३८ उदयाचलावरी सहस्रकर। तैसा दिसे क्षीराब्धिजावर। कीं ऐरावतारूढ सहस्रनेत्र। त्रिभुवनेश्वर तैसा दिसे। ३९ तो वैकुंठींचा सुकुमार। श्यामसुंदर नन्दकुमार। कदंबावरी श्रीधर। दीनोद्धार शोभतसे। ४० कालियामर्दन आरंभिलें जेव्हां। सहा वर्षांची मूर्ति तेव्हां। ऊर्ध्ववदनें कमलाधवा। गोप सर्व विलोकिती। ४१ परम सुवास पीतवसन। दृढ कशिलें स्वकरेंकरून। सुरंग पदर खोवून। मुक्तमाळा सांवरिल्या। ४२ कटिसूत्र सरसाविलें। कर्णीं रुळती दिव्य कुंडलें। आकर्णपर्यंत नेत्रोत्पलें। मुख विकासिलें सुहास्य। ४३ सुनीळ रसें ओतिले अखंड। तैसे आजानुबाहु दंड। ते बळें वाजवूनि प्रचंड। हांक फोडिली तेधवां। ४४ तों वैकुंठींचा वेल्हाळ। सुकुमारतनु तमालनीळ। उडी घातली तत्काळ। गोप सकळ पाहती। ४५ उडीसरसें जीवन त्या वेळे।

भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने सभी (गोपों के) शवों को (पुनर्जीवित करते हुए) उठा लिया। ३७ स्कन्द-पिता शिवजी के मित्र भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण चाहते थे कि इस शत्रु को यहाँ से निकाल दें। इसलिए कृष्ण उस समय सचमुच उस कदम्ब पर चढ़ गये। ३८ जिस प्रकार उदयाचल पर सूर्य (शोभायमान दिखायी देता) हो, उसी प्रकार लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप कृष्ण (कदम्ब पर दिखायी दे रहे) थे। अथवा जैसे ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्र (शोभायमान होते) हों, वैसे (कदम्बारूढ़) त्रिभुवनेश्वर कृष्ण दिखायी दे रहे थे। ३९ वैकुण्ठ के वे सुकुमार श्यामसुन्दर (स्वामीस्वरूप) नन्दकुमार, दीनों के उद्धारक श्रीवर (लक्ष्मीपति) अर्थात कृष्ण शोभायमान थे। ४० जब उन्होंने कालिय-मर्दन आरम्भ किया, तब वे छः वर्षीय मूर्ति थे। (उस समय) समस्त गोप (-बालक) ऊपर मुँह करके कृष्ण को देखने लगे। ४१ उन्होंने अपने हाथों से परम सुगन्ध से युक्त पीताम्बर को दृढ़ता से कस लिया; उसका सुन्दर रंग से युक्त छोर (पल्लव) खोंसकर उन्होंने (गले में पहनी हुई) मोतियों की मालाओं को ठीक किया। ४२ उन्होंने कटिसूत्र (करधनी) को सँवार लिया। उनके कानों में दिव्य कुण्डल शोभायमान हो रहे थे। उनके नेत्रकमल कानों तक फैले हुए थे और सुहास्य से मुख विकसित (प्रफुल्लित) हो गया था। ४३ (मानो जो) सुन्दर नील (रत्न) के रस से अखण्ड ढले हुए हों, ऐसे उनके बाहु-दण्ड आजानु (घुटनों तक पहुँचनेवाले) थे। उन्हें बलपूर्वक ठोंककर उन्होंने उस समय प्रचण्ड गर्जन किया। ४४ तब वैकुण्ठ के वे सुन्दर सुकुमार-शरीरी, तमालनील (स्वामी) तत्काल कूद गये। (उस समय) समस्त गोप यह देख रहे थे। ४५ कूदने के साथ ही उस समय (यमुना का) पानी सौ धनुष ऊँचा उछल गया। उस समय विषयुक्त पानी की लहरें

शत धनुष्य उंच गेलें। कल्लोळ तीरास आदळले। विवनीराचे तेधवां। ४६
परम अद्भुत केलें गोपाळें। अदितिसुत सकळ धांवले। विमानारूढ पाहों
लागले। अद्भुत कर्तव्य हरीचें। ४७ मृडानीसहित मदनदहन। शचीसहित
सहस्रनयन। सावित्रीसहित कमलासन। कौतुक पाहों धांविन्नले। ४८
मित्रकन्याजीवनीं जगज्जीवन। भुजदंड आफळी क्रोधायमान। परम दारुण
घोष ऐकोन। धांवे दुर्जन अही तो। ४९ महाकपटी सर्प काळा। शत फणा
ताठरा विशाळा। धुधुःकारासरशा ज्वाळा। महाकराळा उठती पैं। ५०
नेत्रीं देखिला जगन्मोहन। मायाचक्रचालक शुद्धचैतन्य। जें मीनकेतनारीचें
दैवतार्चन। सनकादिक ध्याती जया। ५१ सनकादिकांच्या हृदयसंपुटीं।
जे का पहुडे मूर्ति गोमटी। पद्मोद्भव आणि धूर्जटी। वाहती मुकुटीं आज्ञा
ज्याची। ५२ असो ऐसिया मुरमर्दना। राजीवनेत्रा सुपर्णवहना। कालिया
देखोनि व्रजभूषणा। धांवोनि डंखी वर्मस्थळीं। ५३ दंश करूनि स्थळीं

तटों से टकरा गयीं। ४६ गोपाल कृष्ण ने यह परम चमत्कार कर दिया; तो समस्त अदिति-पुत्र[1] अर्थात देव दौड़े और विमानों में आरूढ़ होकर श्रीहरि के इस अद्भुत काम को देखने लगे। ४७ पार्वती-सहित मदन-दहन शिवजी, शची-सहित सहस्रनयन इन्द्र, सावित्री-सहित कमलासन ब्रह्मा इस लीला को देखने के लिए दौड़े। ४८ जगज्जीवन कृष्ण क्रोधायमान होकर सूर्यकन्या यमुना के जल में (अपने) बाहुदण्ड पटकने लगे। (उससे उत्पन्न) परम दारुण घोष को सुनते ही वह दुर्जन सर्प दौड़ा। ४९ वह सर्प महाकपटी था, काला था; उसके सहस्र फन तने हुए कठिन तथा विशाल थे। उसके घुघुकार (फुफकार) के साथ महा कराल ज्वालाएँ उठ (उत्पन्न हो) रही थीं। ५० उसने (अपनी) आँखों से जगन्मोहन (कृष्ण) को देखा, जो मायास्वरूप चक्र के चलानेवाले हैं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं, जो मीनकेतन कामदेव के शत्रु शिवजी के पूजनस्थान देवता हैं और जिनका सनक आदि ध्यान धारण किया करते हैं; सनक आदि के हृदय रूपी सम्पुट में जिनकी सलोनी मूर्ति पौढ़ी हुई रहती है, जिनकी आज्ञा को कमलोद्भव ब्रह्मा और शिवजी मुकुटों पर धारण करते हैं अर्थात शिरोधार्य मानते हैं। ५१-५२ अस्तु। ऐसे उन मुर-मर्दन, राजीवनयन सुपर्ण (गरुड़) वाहन, व्रजभूमि के आभूषण (कृष्ण) को देखते ही कालिय ने दौड़कर उनके मर्मस्थल में दंश किया। ५३ (फिर) स्थान-स्थान पर दंश करके उसने

[1] अदिति-पुत्र— ऋग्वेद तथा पुराणों में अदिति के विषय में विभिन्न प्रकार की जानकारी मिलती है। ऋग्वेद में कहीं उसे मित्रावरुण, अर्यमा की माता कहा है। अदिति, अप और पृथ्वी से देवों की सृष्टि हुई। उसे आदित्य (सूर्य)-माता भी कहा है। एक मान्यता के अनुसार विष्णु, अष्ट वसु आदि देव उसके पुत्र हैं। सामान्य रूप से यहाँ ' अदिति-पुत्र ' का अर्थ ' देव ' स्वीकार किया गया है।

स्थळीं। वेढे घालूनि मूर्ति आंवळी। सच्चिदानंदतनू सांवळी। आच्छादिली काळसर्पें। ५४ जो विद्वज्जनमानसमराळ। अनंतकल्याणदायक घननीळ। जो पुराणपुरुष भक्तवत्सल। सर्पें सकळ आंवळिला। ५५ राहूनें ग्रासिला वासरमणी। केतु रमाबंधूस झांकी गगनीं। कीं ईश्वरास माया वेष्टूनी। आपुली करणी दावीत। ५६ कीं पूर्वी दशरथात्मजांसी। पाकशासन-शत्रुबांधी नागपाशीं। तैसें कालियानें जगद्वंद्यासी। वेढे घालूनि आंवळिलें। ५७ भुजंगें वेष्टिला परमपुरुष। न हाले न बोले हृषीकेश। लीलावतारी जगन्निवास। लीला भक्तांस दावीतसे। ५८ ऐसा देखतां

उस मूर्ति (कृष्ण) को लपेटकर कस लिया। उस कालसर्प ने सच्चिदानन्द की श्याम देह को (लपेटकर) आच्छादित कर डाला। ५४ जो विद्वज्जनों के मानस (रूपी मानसरोवर) के (निवासी) हंस हैं, जो घननील, अनन्त कल्याण के दाता (कर्ता) हैं, जो भक्त-वत्सल पुराणपुरुष हैं, उन (कृष्ण) को (कालिय) सर्प ने पूर्णतः कस (कर लपेट) लिया। ५५ (मानो) राहु ने सूर्य को निगल डाला हो; केतु ने लक्ष्मी के बन्धु चन्द्रमा को आकाश में छिपा डाला हो; अथवा माया ईश्वर को लपेटकर (लिप्त करके) अपनी करनी (कृतित्त्व) का प्रदर्शन कर रही हो। ५६ अथवा जिस प्रकार पूर्वकाल में दशरथात्मज राम को[1] स्वर्ग के शासक इन्द्र के शत्रु इन्द्रजित ने नागपाश में आबद्ध कर डाला था, उसी प्रकार कालिय ने जगद्वन्द्य कृष्ण को लपेटते हुए कसकर बाँध डाला। ५७ उस (कालिय नामक) भुजंग ने परमपुरुष कृष्ण को लपेट लिया। (फिर भी) वे हृषीकेश न हिल रहे थे, न बोल रहे थे। (इस प्रकार) लीलावतारधारी जगन्निवास (भगवान कृष्ण अपने) भक्तों को लीला दिखा रहे थे। ५८

१ वाल्मीकि रामायण (युद्धकाण्ड अ० ४४ से ५०) के अनुसार इन्द्रजित ने अदृश्य होकर नागपाशास्त्र को अभिमन्त्रित करके बाणों से राम-लक्ष्मण को रणभूमि में आबद्ध कर डाला। इससे समस्त वानर-सेना शोकाकुल हो गयी। उसी समय गरुड़ का आगमन हुआ। उसे देखते ही बाण-स्वरूप नाग राम-लक्ष्मण को छोड़कर भाग गये। फिर गरुड़ ने उनको स्पर्श किया, तो उन दोनों की देहों में हुए क्षत नष्ट हुए। रामचरितमानस (लंकाकाण्ड—७२ से ७४) में इस घटना को कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम द्वारा कुम्भकर्ण का वध हो जाने पर मेघनाद (इन्द्रजित) रावण को आश्वस्त करके रणभूमि में आ गया। उसने मायामय रथ पर आरूढ़ होकर आकाश में से राम की सेना पर अस्त्र-शस्त्रों की बौछार की और अंगद, हनुमान आदि को व्याकुल कर डाला। फिर सर्प-बाणों से राम को नागपाश में आबद्ध कर दिया। तो जाम्बवान ने क्रोधपूर्वक मेघनाद को पकड़ लिया और पृथ्वी पर पटककर फिर लंका की ओर फेंक दिया। इधर देवर्षि नारद ने गरुड़ को भेज दिया, तो उसने समस्त माया-सर्पों को पकड़कर खा डाला; तब राम नागपाश से मुक्त हो गये। 'मानस' में कहा है— रण की शोभा के लिए प्रभु ने अपने आप को नागपाश में बँधा लिया। उसमें केवल राम के ही नागपाशाबद्ध होने का उल्लेख है।

श्रीपती। गोप गाई तीरीं पाहती। महाआक्रोशें हांक देती। हृदय पिटिती धबधबां। ५९ गगनीं पाहती निर्जर। देवललना देखती समग्र। त्यांच्या नेत्रीं वाहे नीर। शोक अपार जाचो तयां। ६० तटस्थ पाहती नयनीं। भुजंगें वेष्टिला चक्रपाणी। त्या दुःखेंकरूनि धरणी। उलों पाहे तेधवां। ६१ हा यमुनेसी जाहला वृत्तांत। गोकुळीं काय वर्तली मात। दुश्चिन्हें परम अद्भुत। जाणवती लोकांतें। ६२ चपला पडती कडकडोन। अद्भुत सुटला प्रभंजन। उडुगण पावती पतन। लोक शोकें विव्हळ। ६३ कांपों लागली धरित्री। उगेच अश्रु येती जननेत्रीं। कलाहीन नरनारी। भय अंतरीं वाटतसे। ६४ कमलापतीची जननी। परम विव्हळ शोकेंकरूनी। तिडकूं लागले स्तन दोन्ही। अश्रु नयनीं वाहती। ६५ मिळाले गौळी गोपी समस्त। नंदही धांवे भयभीत। यशोदा बाहेर आली धांवत। रोहिणी येत लवलाहें। ६६ घरींच होता संकर्षण। बाहेर आली धांवोन। यशोदा म्हणे जगज्जीवन। कोण्या वनांत गेला रे। ६७ सांडूनियां घरदार। वनांत

श्रीपति कृष्ण को इस प्रकार (आबद्ध) देखकर गोप और गायें (नदी के) तट पर से देख रहे थे। वे महान आक्रोशपूर्वक (चीखने-) पुकारने लगे। वे गोप धब-धब छाती पीटने लगे। ५९ देव आकाश में (से) देख रहे थे। समस्त देव-ललनाएँ देख रही थीं। उनकी आँखों से (अश्रु-)जल बह रहा था। उन्हें अपार शोक पीड़ित कर रहा था। ६० (सब) तट पर स्थित होकर अपनी-अपनी आँखों से देख रहे थे कि उस भुजंग ने चक्रपाणि कृष्ण को (चारों ओर से) लपेट लिया है। उस दुःख से (मानो) तब धरती फटने जा रही थी। ६१ (इधर) यमुना (तट) पर यह घटना घट गयी, तो (उधर) गोकुल में क्या बात हो गयी। (वहाँ) लोगों को परम अद्भुत अपशकुन समझ में आने लगे (दिखायी देने लगे)। ६२ बिजलियाँ कड़कड़ाते हुए गिर गयीं; अद्भुत प्रभञ्जन चलने लगा। उडुगण (नक्षत्र, तारे) गिरने लगे। (इन अशुभ शकुनों से भयभीत होकर) लोग शोक से व्याकुल हो उठे। ६३ पृथ्वी काँपने लगी। लोगों की आँखों में यों ही आँसू आने लगे। पुरुष और स्त्रियाँ कान्तिहीन (निस्तेज) हो उठे। उन्हें अन्तःकरण में भय अनुभव हो रहा था। ६४ कमलापति विष्णु-स्वरूप कृष्ण की जननी (यशोदा) शोक से परम व्याकुल हो उठी। उसके दोनों स्तन (दूध से अधिक भर जाने से) दुखने लगे। उसके नयनों से आँसू बह रहे थे। ६५ (तब) समस्त गोप और गोपियाँ इकट्ठा हो गये। नन्द भी भयभीत होकर दौड़े। यशोदा दौड़ती हुई बाहर आ गयी। रोहिणी (भी) झट से (बाहर) आ गयी। ६६ संकर्षण अर्थात बलराम घर में ही था। वह (भी) दौड़ते हुए बाहर आ गया, तो यशोदा ने कहा (पूछा)— 'अरे जगज्जीवन कृष्ण किस वन में गया है?'। ६७

जाती लोक समग्र ।। बाळें संगतीं जाती सत्वर। श्यामसुंदर पहावया। ६८ वृद्धें सांडूनि देहगेहआशा। पाहों इच्छिती परमपुरुषा। म्हणती काय जाहलें हृषीकेशा। कोण्या वनीं पाहावें। ६९ तों ध्वजवज्ररेखाचिन्ह। हरिपदमुद्रा देखती जन। भोंवतीं गोपदें सघन। पुढें गोचरण उमटले। ७० जिकडे उमटले गाईंचे खूर। त्याच पंथें गेला मुरहर। जैसे वेदश्रुतींचे भार। स्वरूप निर्धार दाविती। ७१ असो नंद यशोदा सकळ जन। आले यमुनातीरा धांवोन। तंव तेथें गोप शोकेंकरून। मूर्च्छा येऊन पडताती। ७२ तों भुजंगें वेष्टिला वनमाळी। सर्वीं देखिला तेचि वेळीं। एकचि हांक तेव्हां जाहली। तो शोक वर्णिला नव जाय। ७३ यशोदा म्हणे गा कान्हया। आतां तुज कोठें पाहें तान्हया। बा रे धांव कां लवलाह्या। विसांविया गोपाळा। ७४ स्तनीं दाटलासे पान्हा। कोणास पाजूं राजीवनयना। माझिया पाडसा मनमोहना। निज वदना दावीं रें। ७५ धांव धांव गे माझे कान्हाई। सांवळे सुकुमारे सखेबाई। उदार डोळसे कृष्णाबाई। कोणे ठायीं पाहूं तूं तें। ७६ दधि दुग्ध तूं सर्व खासी साई। राजसा मी तुज न

घर-बार छोड़कर समस्त लोग वन के अन्दर चले गये। बच्चे (भी) झट से (उनके) साथ श्यामसुन्दर कृष्ण को देखने के लिए (खोजने के लिए) चल दिये। ६८ बूढ़ों ने (भी) शरीर और घर(-बार) की आशा का त्याग करके परमपुरुष कृष्ण को देखना चाहा। वे बोले, 'हृषीकेश कृष्ण को क्या हुआ ? उसे किस वन में देखें (खोज लें) ?' ६९ तो (मार्ग में) ध्वज, वज्र (जैसे शुभ लक्षणों) की रेखाओं के चिह्नों (निशानों) से युक्त श्रीहरि-पदों के निशान लोगों ने देखे। उनके चारों ओर घने-घने रूप में गोपद(-चिह्न) थे— आगे गौओं के चरण अंकित थे। ७० जिस ओर गायों के खूर अंकित हो गये थे, उसी (ओर के) मार्ग से मुरारि कृष्ण गये (होंगे), जैसे वेद-श्रुतियों के समुच्चय ब्रह्मस्वरूप के निर्धारण को दिखा देते हैं (निश्चित रूप से ब्रह्मस्वरूप की ओर संकेत करते हैं)। ७१ अस्तु। नन्द, यशोदा, समस्त लोग दौड़ते हुए यमुना तट पर आ गये। (उन्होंने देखा कि) तब वहाँ गोप शोक के कारण मूर्च्छा आने से पड़े हुए हैं। ७२ त्योंही सबने उसी समय देखा कि वनमाली भुजंग द्वारा वेष्टित हैं। तब एक अद्‌भुत कोलाहल मच गया। उस शोक का वर्णन नहीं किया जा सकता। ७३ यशोदा बोली, 'अरे कन्हैया, अब मैं तुझ दुधमुँहे को कहाँ देखूँ ? (मेरे लिए) विश्रामस्वरूप गोपाल, अरे क्यों न झट से दौड़ (कर आ जा) ?। ७४ रे राजीव-नयन, स्तनों में दूध उमड़ आया है, मैं वह किसे पिला दूँ ? मेरे वत्स, मनमोहन, अरे अपना मुँह तो दिखा दे। ७५ रे मेरी कन्हैया मैया, दौड़-दौड़ (कर आ जा)। मेरी साँवली सुकुमारी, सखा बच्चे, उदार, सुन्दर आँखों वाली कृष्णाबाई, मैं तुझे किस स्थान पर देखूँ ?। ७६ तू

बोलें कांहीं। पाडसा एकदां भेट देईं। धांवोनियां मज आतां। ७७ तुज म्यां बांधिलें उखळासी। म्हणून सखया रुसलासी। आग लागो माझिया हातांसी। श्रीकृष्णासी बांधिलें म्यां। ७८ काय काय आठवूं बा रे तव गुण। उर्वी न पुरे करितां लेखन। सकळ गोपी शोकेंकरून। मस्तकें अवनीं आपटिती। ७९ एक वक्षःस्थळें पिटिती। एक दीर्घ स्वरें हांक देती। नंदाचे नेत्रीं अश्रु वाहती। पडे क्षितीं मूर्च्छित। ८० हंबरडा फोडोनि बोभाती गाई। अश्रु वाहती नेत्रीं पाहीं। यशोदा म्हणे आतां सर्वही। प्राण देऊं येथेंचि। ८१ सकळ स्त्रियांसमवेत कृष्णमाया। कालिली डोहामाजी प्रवेशावया। तंव बळिराम आडवा येऊनियां। म्हणे ऐका गोष्टी एक। ८२ त्रिभुवननायक हा वनमाळी। त्यास भय नाहीं कदाकाळीं। कृतांतही कांपे चळचळीं। कृष्णप्रताप देखतां। ८३ बळिभद्राचें वचन ऐकोनी। सकळां सौख्य वाटे मनीं। त्याच्या वचनीं विश्वास धरूनी। तटस्थ नयनीं पाहती। ८४ असो इकडे कालिंदीजीवनीं। कालियें हरि बांधिला आंवळोनी। यावरी श्रीकृष्ण प्रतापतरणी। काय करिता जाहला। ८५ दृढ वेढे घातले भुजंगें। शरीर

दही, दूध, मलाई सब खाया करता है। मैं तुझे (अब ऐसा करने पर) कुछ न कहूँगी। रे बछड़े, अब दौड़कर मुझे एक बार मिल लेना। ७७ रे सखा, मैंने तुझे ऊखल से बाँध लिया था। इसलिए तू रूठ गया है। मेरे हाथों में आग लग जाए— मैंने श्रीकृष्ण को (इन हाथों से) बाँध लिया था। ७८ अरे, मैं तेरे किस-किस गुण को याद करूँ ? उनको लिख लेते, पृथ्वी पर्याप्त नहीं हो सकती।' समस्त गोपियाँ शोक के कारण धरती पर सिर पटक रही थीं। ७९ कोई-कोई छाती पीट रही थीं; कुछ एक उच्च स्वर से पुकार रही थीं। नन्द की आँखों से आँसू बह रहे थे। (फिर) वे भूमि पर मूर्च्छित (होकर) गिर गये। ८० गायें डकार लेती हुई रँभा रही थीं। देखिए, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तो यशोदा बोली, 'अब सभी यहीं प्राण त्याग दे दें।'। ८१ (ऐसा बोलकर) कृष्ण की माता यशोदा समस्त स्त्रियों-सहित दह में पैठने के लिए चल दी। तो बलराम (बीच में) आड़े आते हुए बोला, 'एक बात सुन लो। ८२ यह वनमाली (कृष्ण स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल का) त्रिभुवन का नायक (स्वामी) है। उसे किसी भी समय कोई भय नहीं है। कृष्ण के प्रताप को देखते ही कृतान्त (यमराज) भी थर-थर काँप उठता है।'। ८३ बलभद्र के इस वचन को सुनकर सबको मन में सुख अनुभव हुआ। उसके उस वचन पर विश्वास करते हुए वे स्तब्ध नेत्रों से देखने लगे। ८४ अस्तु। इधर यमुना नदी के जल में कालिय ने कृष्ण को कसकर आबद्ध कर लिया था। इसपर प्रताप-सूर्य श्रीकृष्ण ने क्या किया ? । ८५ उस भुजंग ने दृढ़ लपेट लिया था। तो रमापति कृष्ण ने शरीर को फुला

फुगविलें रसारंगें। कालियादेह तडतडी वेगें। वेढे काढिले तेधवां। ८६ जरी क्षणभरी न काढिता वेढे। तरी ठायीं ठायीं होते तुकडे। महाविखारें त्या प्रचंडें। भयें वेढे काढिले। ८७ हरीस सांडूनि ते वेळां। भुजंग जाहला हो वेगळा। भडभडां गरळज्वाळा। मुखावाटे सोडीतसे। ८८ मडकें भाजलें जैसें तप्त। जैसे नेत्र दुष्टाचे आरक्त। नासिकाद्वारें उष्ण श्वास सोडीत। प्रळयाग्नीच्या शिखा जैशा। ८९ जिव्हा सुळसुळीत दुधडा। शतफणा कराळ प्रचंडा। पर्वतशृंगें जेवीं दाढा। दंत तीक्ष्ण तयाचे। ९० परम भ्यासुर अधरप्रांत। ते जिव्हेनें क्षणक्षणां चाटीत। करकरां क्रोधें दांत खात। हरीस लक्षोनि सक्रोध। ९१ क्रोधें थरथरां अंग कांपत। नेत्र गरगरां भोंवंडीत। पुढें दंश करावया जपत। मग रमानाथ काय करी। ९२ सहा वर्षांची मूर्ति होय। पुरुषार्थ ब्रह्मांडीं न समाय। झेंपा घालोनि लवलाहें। धरिला भुजंगम पुढती तो। ९३ आधीं गरगरां भोंवंडूनी। बळें आफळी यमुनाजीवनीं। निर्भय निःशंक चक्रपाणी। वेदपुराणीं वंद्य जो। ९४ जो उरगांचा काळ पूर्ण। त्यावरी बैसोनि करी गमन। तो हा पुराण पूतनाप्राण-

---

लिया, (फलतः) कालिय की देह झट से दुखने लगी, तो उस समय उसने लपेटों को (पाशों को) हटा लिया। ८६ यदि एक (और) क्षण के लिए वह पाश न छुड़ा लेता, तो उसके स्थान-स्थान पर (टूटकर) टुकड़े(-टुकड़े) हो जाते। उस प्रचण्ड विषैले साँप ने भय के कारण (अपने शरीर की) लपेटें हटा लीं। ८७ श्रीहरि को छोड़कर उस समय वह भुजंग अलग (दूर) हो गया। (फिर भी) वह मुख में से (ज़ोर-ज़ोर से) भड़भड़ गरल-ज्वालाएँ निकाल रहा था। ८८ जैसे (मिट्टी का) कोई घड़ा गर्म (लाल-लाल) पकाया हो, वैसे उस दुष्ट के नेत्र लाल थे। वह अपनी नाक द्वारा प्रलयाग्नि की ज्वालाओं जैसी गर्म साँसें छोड़ रहा था। ८९ उसकी दोहरी जिह्वाएँ बहुत चिकनी थीं। उसके सौ(-सौ) फन कराल और प्रचण्ड थे। दाढ़ें पर्वत-शिखर जैसी थीं। उसके दाँत तीक्ष्ण (नुकीले) थे। ९० उसके ओष्ठ-प्रदेश परम भयावह थे। वह उन्हें जिह्वा से क्षण-क्षण चाट रहा था। क्रोध के साथ श्रीहरि को लक्ष्य करके (देखते हुए) वह क्रोध से करकराहट के साथ दाँतों को चबा रहा था। ९१ उसकी देह क्रोध से थरथर काँप रही थी। वह नेत्रों को गोलाकार घुमा रहा था और आगे (लपककर) दंश करने की ताक में था। तो फिर कृष्ण ने क्या किया ? । ९२ वे तो षड्वर्षीय (नन्ही-सी) मूर्ति थे। (फिर भी) उनका पुरुषार्थ ब्रह्माण्ड में नहीं समा रहा था। उन्होंने छलाँगें लगाते हुए (लपककर) झट से आगे (बढ़कर) उस भुजंगम को पकड़ लिया। ९३ वे पहले उसे चक्राकार घुमाते हुए बलपूर्वक यमुना-जल में पटकने लगे। वे चक्रपाणि कृष्ण, जो वेदों और पुराणों के लिए वन्द्य हैं, निर्भय तथा निःशंक थे। ९४ सर्पों के लिए जो पूर्णतः काल(-स्वरूप)

हरण। जन्ममरण त्या नाहीं। ९५ क्षणक्षणां आफळूनि सर्प। हरिला समूळ बलप्रताप। गळाला दुर्जनाचा दर्प। जाहलें श्रमित अंग पैं। ९६ सर्वेचि शिरीं पाय देऊनि भगवंतें। पुच्छ धरिलें वामहस्तें। तांडवनृत्य श्रीजगन्नाथें। आरंभिलें तेधवां। ९७ निजपदघातेंकरूनी। शतफणा लववी मोक्षदानी। सप्त ताल सांवरूनी। नृत्य करी भगवंत। ९८ जो क्षीराब्धिशायी वैकुंठविहारी। तो चपळ नृत्य करी कालियाफणांवरी। फणा लववी यमुनानीरीं। श्वास उदरीं न समाय। ९९ चुकवूनि पळों पाहे भुजंग। परी न सोडी भक्तभवभंग। जो कां फणांवरी व्यंग। टांच हाणोनि तुडवीतसे। १०० जो सर्वांतरात्मा भगवान। जो कां पूर्णब्रह्म सनातन। तो कालियाशिरीं नृत्य करून। पाहतां भक्त सुखी होती। १०१ नृत्य करी भगवंत। गोकुळींचे जन तटस्थ पाहात। विमानीं सुरवर विस्मित। न हालत नेत्रपातीं। २ आनंदें टाळ विणे वाजविती। मृदंग वाद्यें झणत्कारिती। एक करटाळिया

है, उस गरुड़ पर बैठकर, जो गमन करते हैं, वे ही ये पूतना के प्राणहारी पुराणपुरुष (भगवान कृष्ण) हैं। उनके लिए जन्म तथा मरण नहीं है। ९५ उस सर्प को क्षण-क्षण पटकते हुए उन्होंने उसके बल तथा प्रताप का मूलसहित हरण किया। तो उस दुर्जन का उग्र घमण्ड नष्ट हो गया। उसकी देह निश्चेष्ट (जड़वत्) हो गयी। ९६ साथ ही भगवान ने उसके सिर पर पाँव रखते हुए (अपने) बायें हाथ से उसकी पूँछ को पकड़ लिया। तब श्रीजगन्नाथ कृष्ण ने (वहाँ) ताण्डव नृत्य आरम्भ किया। ९७ वे मोक्ष-दाता अपने पदों के आघातों से उस (सर्प) के सौ फनों को झुका रहे थे। वे भगवान (उनपर) सात ताल[1] देते हुए (सप्त तालों में) नृत्य करने लगे। ९८ जो (वस्तुतः) क्षीरसागरशायी हैं, जो वैकुण्ठ-विहारी हैं, वे कालिय के फनों पर चपलता के साथ नृत्य करने लगे। वे यमुना-नीर पर उसके फनों को झुका रहे थे। उससे उसकी साँस पेट में नहीं समा रही थीं। ९९ वह भुजंग चकमा देकर भागना चाहता था (भाग जाने की ताक में था)। फिर भी जो विकलांग हुए फनों पर एड़ लगाते हुए कुचल रहे थे, वे भक्तों के सांसारिक पाशों को भग्न करनेवाले कृष्ण, उसे नहीं छोड़ रहे थे। १०० जो (वस्तुतः) सबके अन्तरात्मा भगवान हैं, जो सनातन पूर्णब्रह्म हैं, उन (कृष्ण) को कालिय के सिर पर नृत्य करते देखकर (उनके) भक्तजन सुख को प्राप्त हो रहे थे। १०१ भगवान नृत्य कर रहे थे, तो गोकुल के लोग स्तब्ध होकर देख रहे थे। विमानों में (विराजमान) देव चकित हो गये थे, उनकी आँखों की पलकें नहीं हिल रही थीं (वे एकटक, अपलक, देख रहे थे)। २ वे आनन्द के साथ झाँझ,

---

१ सप्त ताल— संगीत-शास्त्र के अनुसार सप्त ताल ये हैं— ध्रुवताल, मध्य, रूपक (दादरा), झंपा (झपताल), त्रिपुट, अठताल, एकताल (केरवा)।

पिटिती। नृत्यगति पाहोनियां। ३ मदनमनोहर वेधक मूर्ती। कल्याणदायक अगाध कीर्ती। पहावया अष्ट नायिका धांवती। विस्मित होती किन्नर। ४ नृत्य करितां भगवंत। वांकी नेपुरें रुणझुणत। सुरंग पीतांबर रुळत। कटिमेखळा झळके वरी। ५ हस्तसंकेत दावी वनमाळी। मुद्रिका झळकती दशांगुळीं। दिव्य पदक वक्षःस्थळीं। मुक्तामाळा डोलती। ६ मंदस्मित सुहास्य-वदन। आकर्ण विराजती राजीवनयन। कर्णीं कुंडलें देदीप्यमान। निढळीं केशर झळकतसे। ७ रत्नजडित मुकुट माथां। ऐसी मूर्ति नृत्य करितां। नाना गतीं नाचतां नाचतां। चक्राकार दिसतसे। ८ मग दिव्य सुमनांचे संभार। वर्षताती सकळ निर्जर। देखोनि मूर्तिमनोहर। देवांगना वेधल्या। ९ म्हणती तनुमनधनेंसीं अभिमान। सांडावा यावरूनि ओंवाळून। अनन्त जन्मींचें तपाचरण। तरीच जगज्जीवन प्राप्त होय। ११० असो नृत्य करितां त्रिभुवनपती। टाळ मृदंग देव वाजविती। कालियाचे प्राण निघों

वीणाएँ बजाने लगे; मृदंग (जैसे) वाद्य झनझनाने लगे। कुछ एक (कृष्ण की) नृत्यगति देखते हुए हाथों से तालियाँ बजाने लगे। ३ वे मदन-मनोहारी (चित्त को) आकृष्ट करनेवाली मूर्ति थे। उनकी कीर्ति कल्याण-दायिनी तथा अथाह थी। उन्हें देखने के लिए आठों नायिकाएँ[1] दौड़ीं। किन्नर (भी) विस्मित हो गये। ४ भगवान द्वारा नृत्य करते समय (उनके द्वारा पहने हुए) बाँकें तथा नूपुर रुनझुना रहे थे। सुन्दर रंग से युक्त पीताम्बर झूल रहा था। उसपर कटिमेखला (करधनी) चमक रही थी। ५ (नृत्य करते समय) वनमाली हाथों से संकेत कर रहे थे, तो उनकी दसों अँगुलियों में (पहनी हुई) अँगूठियाँ जगमगा रही थीं। वक्षःस्थल पर दिव्य पदीक और मोतियों की मालाएँ झूल रही थीं। ६ उनका मुख मन्द सुन्दर हास्य से युक्त था। उनके कमल-से नेत्र आकर्ण शोभायमान थे। कानों में देदीप्यमान कुण्डल थे और भाल-प्रदेश पर केसर (का तिलक) शोभा से चमक रहा था। ७ उनके मस्तक पर रत्नजटित मुकुट (शोभायमान) था। नृत्य करते हुए उनकी ऐसी मूर्ति नाना गतियों से नाचते-नाचते चक्राकार आभासित हो रही थी। ८ फिर समस्त देवों ने दिव्य पुष्पों के ढेर (के ढेर) बरसा दिये। (कृष्ण की उस) मनोहारिणी मूर्ति को देखकर देवांगनाएँ (उनके प्रति) आकृष्ट हो गयीं (उनपर मोहित हो गयीं)। ९ वे बोलीं, 'तन-मन-धन का अभिमान इन पर निछावर कर डालें। यदि अनन्त जन्मों का तपाचरण हो, तो ही जगज्जीवन को प्राप्त हो सकते हैं'। ११० अस्तु। त्रिभुवनपति (कृष्ण) के नृत्य करते, देव झाँझ और मृदंग बजा रहे थे। (इधर) कालिय के

१ अष्ट नायिकाएँ (देवलोक की नृत्यांगनाएँ)— घृताची, तिलोत्तमा, उर्वशी, रम्भा, मेनका, सुकेशी, मंजुघोषा और पूर्वचिति।

पाहती। सकल शक्ति आकर्षिल्या। १११ मुखीं शोणित वाहत। उरग पडिला मूर्च्छित। विराली अहंकृति समस्त। गर्वरहित झाला कालिया। १२ श्वासोच्छ्वास सोडावया। जंव शिर जाय उचलावया। हरी तें टांचें रगडूनियां। पुन्हां हालवेनासें करी। १३ भुजंग आठवी श्रीजगन्निवासा। धांव धांव बापा पुराणपुरुषा। जगत्पालका रमाविलासा। सोडवीं दासासी येथूनियां। १४ मी करितों ज्याचिया स्मरणा। तो शिरीं नाचतो समजेना। त्रिभुवनाचा भार सोसेना। प्राण सोडूं पहातसे। १५ अनंत ब्रह्मांडें ज्याचें पोटीं। तो मस्तकीं नाचे जगजेठी। असो कालिया होऊनि कष्टी। मूर्च्छागत पडियेला। १६ मग त्या भुजंगाच्या नितंबिनी। करीं रत्नदीप आरत्या घेऊनी। शरण येती तेचि क्षणीं। भक्तवल्लभा हरीतें। १७ देव करिती स्तुतीतें। शिवविरिंचि आदि गाती ज्यातें। हें कळलें नागकन्यांतें। कीं जगदात्मा हाचि पैं। १८ कालिया झाला श्रमें मूर्च्छित। जवळी असतां नेणे भगवंत। सुर विमानीं स्तुति करीत। तेंही श्रवणीं पडेना। १९ शरण आल्या आपुल्या स्त्रिया। हेंही न समजेचि कालिया। केवळ मूढदशा पावोनियां।

प्राण निकला चाहते थे। उसकी समस्त शक्तियाँ खींची गयी थीं। १११ मुँह से रक्त बह रहा था, तो वह सर्प मूर्च्छित हो गया। उसकी अहंदेह बुद्धि नष्ट हो गयी। (इस प्रकार) वह कालिय नाग अभिमान-शून्य हो गया। १२ जब वह साँस-उसाँस लेने के लिए सिर उठाने लग जाता, तो श्रीहरि उसे एड़ी से कुचलते हुए पुनः न हिलाने योग्य बना देते थे। १३ तो भुजंग ने श्रीजगन्निवास भगवान का स्मरण किया (और बोला—) 'हे तात, हे पुराणपुरुष, दौड़ो, दौड़ो। हे जगत्पालक, हे रमाविलास, यहाँ से (मुझ) दास को छुड़ा लो। १४ मैं जिसका स्मरण कर रहा हूँ, समझ में नहीं आ रहा है कि (क्या) वह (ही) मेरे सिर पर नाच रहा है। (मुझसे) त्रिभुवन का भार नहीं सहा जा रहा है।' वह प्राण छोड़ने जा रहा था। १५ जिनके उदर में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, वे जगत्श्रेष्ठ (भगवान उस सर्प के) मस्तक पर नाच रहे थे। अस्तु। कालिय बहुत कष्ट को प्राप्त होते हुए अचेत (होकर) गिर पड़ा। १६ अनन्तर उस भुजंग की स्त्रियाँ हाथों में रत्नदीपों की आरतियाँ लिये हुए उसी क्षण भक्त-वल्लभ श्रीहरि की शरण में आ गयीं। १७ देव जिनकी स्तुति करते हैं, शिवजी, विधाता आदि जिनका (महिमा-)गान करते हैं, वे जगदात्मा ये ही हैं —यह उन नागकन्याओं की समझ में आ गया। १८ कालिय (सिर) चकराने से मूर्च्छित हो गया था। पास में होते हुए भी उसने भगवान को नहीं जाना(-पहचाना) था। देव विमानों में (विराजमान होकर उनकी) स्तुति कर रहे थे, वह भी उसके कानों तक नहीं आ रही थी (उसे सुनायी नहीं दे रही थी)। १९ कालिय की समझ में यह भी नहीं आ रहा था

जगत्पतीस नेणेचि । १२० जैसें जवळी दिव्य रत्न असोनी । अंधासी कदा न दिसे नयनीं । कीं पिशाचास न समजे मनीं । आपण कोण आहों तें । १२१ कीं जो सुषुप्तिडोहीं बुडाला । त्यास सहस्राक्ष प्रसन्न होऊं जरी आला । परी न कळे जैसें त्याला । तैसें झालें कालियातें । २२ असो देखोनि शारंगपाणी । शरण येती भुजंगकामिनी । गेल्या देह गेह विसरोनी । पतिभयें अति विव्हळ । २३ न सांवरती कबरीभार । गळोनि पडती अलंकार । ढळले वक्षःस्थळींचे पदर । विव्हळ शरीर जाहलें । २४ एकीचीं लेंकुरें करिती स्तनपाना । ते युवती दावी जगन्मोहना । कीं लेंकुरें देखोनि व्रजभूषणा । कृपा येईल म्हणोनि । २५ एक पसरोनि अंचळा । चुडेदान मागती तमालनीळा । अश्रु वाहती एकीच्या डोळां । करुणा गोपाळा दाविती । २६ एकी उभ्या ठाकती बद्धांजळी । एकी दृढ लागती चरणकमळीं । एकी काकुळती येती वनमाळी । दे म्हणती पतिदान । २७ श्रीकृष्णपदकमळावरी । उरगतनया

कि उसकी अपनी स्त्रियाँ (भगवान की) शरण में आ गयी हैं। केवल मूढ़दशा को प्राप्त हो जाने से वह जगत्पति (कृष्ण) को नहीं पहचान पाया था। १२० जिस प्रकार दिव्य रत्न पास में होने पर भी किसी भी समय अन्धे की आँखों को दिखायी नहीं देता; अथवा पिशाच को जिस प्रकार मन में यह समझ में नहीं आता कि वह स्वयं कौन है; अथवा जो सुषुप्ति रूपी दह में डूब गया हो, उसपर यद्यपि इन्द्र प्रसन्न होने जा रहा हो, तो भी उसे विदित नहीं हो जाता, उसी प्रकार कालिय के सम्बन्ध में हो गया (अर्थात श्रीकृष्ण भगवान पास में होने पर भी वह उन्हें पहचान नहीं पाया)। १२१-१२२ अस्तु। (शाङ्र्गपाणि भगवान विष्णुस्वरूप) कृष्ण को देखकर उस भुजंग की स्त्रियाँ (उनकी) शरण में आ गयीं। वे अपने शरीर और घर(-बार) को भूल गयीं। वे पति-सम्बन्धी भय (आशंका) से अति विह्वल हो उठीं। २३ वे (अपने) केश-सम्भार को सम्हाल नहीं पा रही थीं। उनके आभूषण गिर गये थे। वक्षःस्थल से दामन हट गये थे। उनकी देह व्याकुल हो उठी थी। २४ (उनमें से) किसी एक के बच्चे स्तनपान कर रहे थे। उस युवती ने जगमोहन कृष्ण को वह दिखा दिया ताकि उन शिशुओं को देखकर व्रजभूषण (कृष्ण) को दया आए। २५ कुछ एक आँचल पसारकर तमालनील कृष्ण से चूड़ीदान अर्थात सौभाग्य (सुहाग)-दान माँगने लगीं। किसी एक की आँखों से आँसू बह रहे थे। (इस प्रकार) वे गोपाल कृष्ण को (अपनी) करुणा (करने योग्य) स्थिति (दयनीय दशा) दिखा रही थीं। २६ कुछ एक बद्धांजलि होकर (हाथ जोड़े) खड़ी थीं। कुछ एक उनके चरण-कमलों में दृढ़ता से लग गयीं (लिपट गयीं)। कुछ एक व्याकुलता से गिड़गिड़ाने लगीं और बोलीं, 'हे वनमाली, (हमें) पति-दान दो (हमारे पति के प्राण दान में दो)।'। २७ वे

झाल्या भ्रमरी। तेथींचा मकरंद अंतरीं। सांठविती प्रीतीनें। २८ एक करिती स्तवना। ब्रह्मानंदा जगज्जीवना। दीनवत्सला पीतवसना। शकट-मर्दना श्रीहरे। २९ हे सिंधुजापति जगन्निवासा। हे योगिमानसराजहंसा। हे घोरअविद्यावनहुताशा। परमपुरुषा विलासिया। १३० हे गोपीमानसचकोर-चंद्रा। हे सच्चिदानंदा आनंदभद्रा। हे समरधीरा प्रतापरुद्रा। मन्मथजनका जगद्गुरो। १३१ बाळक करी बहुत अन्याय। परी क्षमा करी निज माय। महादुर्जन हा अहि निर्दय। तव पदरजें उद्धरला। ३२ जे दुसऱ्याचा करूं इच्छिती घात। त्यांस शासनकर्ता तूं जगन्नाथ। परी येणें पूर्वी तप बहुत। किती केलें न कळे तें। ३३ बहुत केलें पुरश्चरण। कीं साधिलें पंचाग्निसाधन। कीं केलें सद्गुरुभजन। साधुसेवा प्रीतीनें। ३४ कीं ब्रह्मचर्य आचरला। कीं वानप्रस्थधर्मी राहिला। कीं चतुर्थाश्रम अवलंबिला। तरी पावला पद तुझें। ३५ तुझ्या आंगींची चित्कळा। तेचि चरणीं राहिली कमला।

सर्प-कन्याएँ श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में (मानो) भ्रमरियाँ हो गयीं और वहाँ का मकरंद (मधु-रस) प्रीतिपूर्वक अन्तःकरण में इकट्ठा कर रही थीं। २८ कुछ एक (यों) स्तवन करने लगीं— 'हे आनन्दस्वरूप ब्रह्म (ब्रह्मानन्द), हे जगज्जीवन, हे दीन-वत्सल, हे पीताम्बरधारी, हे शकटासुर-मर्दन, हे श्रीहरि, हे लक्ष्मीपति, हे जगन्निवास, हे योगियों के मानस (रूपी मानसरोवर के) राजहंस, हे घोर अविद्या रूपी वन के (नाश करनेवाले) दावानल, हे परमपुरुष, हे (त्रिभुवन में) विलास करनेवाले, हे गोपियों के मानस रूपी चकोरों के लिए चन्द्रस्वरूप, हे सच्चिदानन्द, हे आनन्द-भद्र, हे समरधीर, हे प्रतापरुद्र, हे मन्मथ (कामदेव = प्रद्युम्न) के पिता, हे जगद्गुरु, बालक बहुत अन्याय (पूर्ण काम) करता है, फिर भी उसकी अपनी माता उसे क्षमा करती है। यह महादुर्जन निर्दय सर्प तुम्हारे पद-रज से उद्धार को प्राप्त हो गया है। १२९-१३२ हे जगन्नाथ, जो दूसरे का नाश करना चाहते हैं, उनको तुम दण्ड देनेवाले हो। परन्तु समझ में नहीं आ रहा है कि इसने पूर्वकाल में कितना बड़ा तप किया होगा। ३३ अथवा इसने बहुत पुरश्चरण अर्थात मन्त्र का जाप किया होगा, अथवा पंचाग्नि साधना[1] की होगी, अथवा सद्गुरु की भक्ति व साधुओं की सेवा प्रीतिपूर्वक की होगी, अथवा इसने ब्रह्मचर्य (धर्म) का पालन (निर्वाह) किया होगा, अथवा वानप्रस्थधर्म में (लीन) रहा होगा, अथवा चतुर्थाश्रम अर्थात संन्यासाश्रम का अवलम्बन किया होगा; इसलिए ही तुम्हारे पदों को प्राप्त हो गया है। तुम्हारे शरीर की (जो) ब्रह्मतत्त्वांश है, वही लक्ष्मी तुम्हारे चरणों में रह गयी है। हमें कालिय उसके समान भाग्य से

१ पंचाग्नि-साधना— देखिए टिप्पणी १, पृ० १४४

तिजपरीस भाग्यें आगळा। कालिया आम्हां वाटतो। ३६ एवढा अन्याय करूनि क्षमा। वज्रचुडेदान देईं आम्हां। हा तों परम मूढ दुष्टात्मा। तुझा महिमा नेणेचि। ३७ हे अनंतब्रह्मांडपाळका। देवशिखामणि गजरक्षका। येवढा अन्याय कमलानायका। घालीं पोटांत आतांचि। ३८ भृगूनें तुज मारिली लात। परी तूं जगदात्मा पूर्ण शांत। तैसे अन्याय याचे समस्त। क्षमा करीं गोविंदा। ३९ ऐशा उरगकन्या विनविती। अहिशिरीं नाचे जगत्पती। तों कालियाचे प्राण निघों पाहती। नेत्रीं तंद्री लागली हो। १४० देखोनियां अंतसमया। करुणा भाकिती भोगितनया। करुणालया यादवराया। प्राण जाती कीं याचे। १४१ हरीपुढें पदर पसरिती। करिती नाना काकुळती। दीनवदनें मुख विलोकिती। दीनबंधूचें तेधवां। ४२ अहा श्रीकृष्णा आत्मयारामा। प्रेतदशा आली भुजंगोत्तमा। आमुची निराशा सर्वोत्तमा। झाली आतां येथूनियां। ४३ आम्ही भणंगें अनाथ दीन देख। पतिप्राणाची मागतों भीक। तूं उदार जगत्पालक। कां कृपणता धरियेली। ४४ स्वामी त्वां

अनोखा जान पड़ता है। १३४-१३६ इतना अन्याय करने पर भी तुम उसे क्षमा करके हमें वज्रचूड़ादान अर्थात अक्षय सुहाग दान में दो। यह तो परम मूढ़ दुष्टात्मा है; (इसलिए) तुम्हारी महिमा नहीं जान रहा है। ३७ हे अनन्त ब्रह्माण्डों के पालक, हे देवशिखामणि (देवश्रेष्ठ), हे गज-रक्षक[1], हे कमलापति, इतने अपराध को अभी क्षमा करो। ३८ भृगु ऋषि ने तुम पर लात जमायी थी[2]; फिर भी तुम जगदात्मा पूर्ण शान्त रह गये थे। उसी प्रकार, हे गोविन्द, इसके समस्त अपराधों को क्षमा करो। ३९ इस प्रकार वे नागकन्याएँ विनती कर रही थीं। (उस समय) जगत्पति कृष्ण उस सर्प के सिर पर नाच रहे थे। तब कालिय के प्राण निकल जाना ही चाह रहे थे। उसकी आँखों को तंद्रा लगी हुई थी। १४० (उसके) अन्त (मृत्यु) समय को (निकट आये) देखकर भोगि-तनुजाएँ उसकी करुणा के लिए गिड़गिड़ाने लगीं। (वे बोलीं—) 'हे करुणालय यादवराज, इसके प्राण ही निकले जा रहे हैं।'। १४१ उन्होंने श्रीहरि के सामने आँचल पसारे। वे नाना (प्रकार से) गिड़गिड़ाहट कर रही थीं। उस समय वे दीन मुखों से दीनबन्धु (श्रीकृष्ण) के मुख को निहार रही थीं। ४२ 'हे श्रीकृष्ण, हे आत्माराम, इस श्रेष्ठ भुजंग को प्रेतदशा (प्राप्त हो) आयी है। हे सर्वोत्तम, अब यहाँ से (इस सम्बन्ध में) हमें निराशा हो गयी है। ४३ देखो, हम दरिद्र अनाथ दीन हैं। हम पति के प्राणों की तुमसे भिक्षा माँग रही हैं। तुम उदार हो, जगत्पालक हो। (फिर) तुमने (ऐसी)

---

१ गज-रक्षक— देखिए टिप्पणी १, पृ० ६२

२ भृगु ऋषि— देखिए टिप्पणी १, पृ० ५८

ध्रुवास अढळपद दिधलें। शक्रारिजनकानुजा त्वांचि स्थापिलें। आतां कृपण चित्त कां केलें। ब्रीद आपुलें सांभाळीं। ४५ ऐसी ऐकूनि करुणा। कृपा उपजली व्रजभूषणा। पुरें करूनि कालियामर्दना। भक्तवचना पाळिले। ४६ सर्प मूर्च्छागत जाहला। तैसाचि पायें परत लोटिला। जयजयकार करीत ते वेळां। नागकन्या ओंवाळिती। ४७ तंव कालिया अत्यंत क्षीण। हळूच उघडोनि पाहे नयन। तों देव विमानीं करिती स्तवन। तें श्रवणीं ऐके भुजंग। ४८ वैकुंठनाथ हा परमात्मा। तेव्हां कळलें भुजंगमा। स्तवावया वैकुंठधामा। तत्काळ जाहला नररूप। ४९ जैसें व्यथाभूत बाळक जाण। वदे मंजुळ मंजुळ वचन। तैसे भुजंग हरिपद धरून। करी स्तवन तेधवां। १५०

कृपणता क्यों धारण की है ? । ४४ हे स्वामी, तुमने ध्रुव[1] को अविचल पद प्रदान किया; रावण के अनुज विभीषण को (लंका के राजपद पर) तुमने ही स्थापित (प्रतिष्ठित) कर दिया। अब तुमने अपने चित्त को कृपण क्यों कर लिया ? अपने विरुद का (प्रतिज्ञा का) निर्वाह करो।'। ४५ ऐसी करुणाभरी विनती सुनते ही व्रजभूषण कृष्ण में कृपा उत्पन्न हो गयी, तो उन्होंने कालिय-मर्दन को पूर्ण (समाप्त) करके भक्तों के वचन का पालन किया। ४६ वह सर्प मूर्च्छित हो गया था, उन्होंने उसे वैसे ही पाँव से पुनः धकेल दिया। उस समय नागकन्याओं ने उनका जय-जयकार करते हुए उनकी आरती उतारी। ४७ तब कालिय अत्यन्त क्षीण हुआ था। उसने हौले से आँखें खोलकर देखा। तब देव विमानों में स्तवन कर रहे थे। उस भुजंग ने उसे अपने कानों से सुना। ४८ तब उस भुजंगम को विदित हुआ कि ये (बालकृष्ण) वैकुण्ठनाथ, परमात्मा हैं। तो वह तत्काल उन वैकुण्ठधामवासी की स्तुति करने के हेतु नर-रूप हो गया (उसने नर-रूप धारण किया)। ४९ समझिए कि जिस प्रकार कोई व्यथा को प्राप्त बालक मधुर-मधुर वचन बोलता है, उसी प्रकार तब वह भुजंग श्रीहरि के चरण पकड़कर (उनकी) स्तुति करने लगा। १५० 'हे यादवकुल-तिलक,

---

१ ध्रुव को अविचल पद— स्वायम्भुव मनु का पौत्र तथा उत्तानपाद नामक राजा का सुनीति नामक रानी से उत्पन्न पुत्र ध्रुव बचपन में एक दिन खेलते-खेलते अपने पिता की गोद में बैठने लगा, तो अपनी दूसरी पत्नी सुरुचि के डर से राजा ने उसे गोद में बैठने नहीं दिया। जब बालक ध्रुव रोते-रोते अपनी माता के पास पहुँचा और उससे समस्त समाचार कहा, तो उसने कहा— ऐसा अधिकार पुण्य के बल से ही प्राप्त होता है। यह सुनकर बालक ध्रुव ने प्रतिज्ञा की— मैं पुण्यानुष्ठान से ऐसा अविचल पद प्राप्त करूँगा, जो मेरे पिता तक को प्राप्त नहीं हुआ है। तदनन्तर वह घर से निकल गया और मरीचि ऋषि की आज्ञा के अनुसार भगवान विष्णु की आराधना करने लगा। अनेक प्रलोभनों और विघ्न-बाधाओं से बचकर उसने तपस्या की। फलतः भगवान विष्णु ने ध्रुव को दर्शन दिये। उनके शंख के स्पर्श से ध्रुव में ज्ञान का उदय हो गया और उनकी कृपा से वह अविचल पद का अधिकारी हो गया।

जय जय यादवकुलतिलका। नंदकुमारा व्रजपालका। त्रैलोक्यनाथा चित्तचालका। शरणागता रक्षीं तूं। १५१ प्राण्याचे जे जे जैसे संस्कार। चराचर जीव नाना विकार। ते ते न सुटती निर्धार। जातिस्वभावेंकरूनियां। ५२ तुवां सकळ जाती निर्मोनी। आम्हांस घातलें सर्पयोनीं। महातामस पापखाणी। सदा मनीं द्वेष वाढे। ५३ वेष्टिलें बहुत कामक्रोधें। नागविलें मत्सरदंभमदें। यालागीं तुझीं चरणारविंदें। भ्रमेंकरूनि नोळखों जी। ५४ अहा लागली प्रपंचाची गोडी। पायीं ठोकिली अज्ञानबेडी। फेरे फिरतां जाहलों वेडीं। न भजों आवडीं कदा तूतें। ५५ हरि म्हणे कालियाला। बहुत न बोलें वेळ जाहला। तूं परिवारेंसीं येचि वेळां। जाय सत्वर सागराप्रति। ५६ जरी उरगरिपुभेणें पाहीं। तूं लपालासी यमुनाडोहीं। तुज आतां तो न करी कांहीं। सुखी राहें येथूनियां। ५७ माझ्या पदमुद्रा तुझे शिरीं। यालागीं खगेंद्र तुज न मारी। मम वरें त्या सागरीं। सुखें राहें कालिया। ५८ तुज म्यां केलें शासन। ही लीला गाती जे अनुदिन। त्यांस तुम्हीं न डंखावें

(आपकी) जय हो, जय हो। हे नन्दकुमार, हे व्रजपालक, हे त्रैलोक्यनाथ, हे चित्तचालक, आप (मुझ) शरणागत की रक्षा कीजिए। १५१ किसी प्राणी के जो-जैसे संस्कार होते हैं, जो चराचर तथा जीव हैं और उनके नाना विकार होते हैं, वे निश्चय ही जाति स्वभाव के कारण नहीं छूटते (नष्ट नहीं होते)। ५२ आपने समस्त जातियों का निर्माण करते हुए हमें सर्पयोनि में उत्पन्न कर डाला; वह महातामस तथा पापखनि है। (उसमें उत्पन्न मुझ जैसे सर्प के) मन में सदा द्वेष बढ़ता जाता है। ५३ मुझे काम, क्रोध (जैसे विकारों) ने घेर लिया था; मत्सर, दम्भ, मद (जैसे विकारों) ने लूट लिया। इसलिए अहो, भ्रम के कारण मैंने आपके चरणकमलों को नहीं पहचाना था। ५४ अहो, मुझे प्रपंच (छलकपट-भरी घरगिरस्थी जैसी बात) में रुचि उत्पन्न हो गयी; मेरे पाँवों में अज्ञान की बेड़ियाँ डाली गयी थीं; (जन्म-जन्मान्तर) के चक्कर काटते हुए हम मूढ़ हो गये थे। (इसलिए) हमने कभी रुचिपूर्वक आपकी भक्ति नहीं की।'। ५५ (यह सुनकर) श्रीहरि कालिय से बोले, 'बहुत मत बोलो। समय (विलम्ब) हो गया है। तुम इसी समय परिवार-सहित झट से समुद्र की ओर चले जाओ। ५६ देखो, यद्यपि तुम सर्पशत्रु गरुड़ के भय से यमुना के इस दह में छिप गये थे, फिर भी वह अब तुम्हारी कोई हानि नहीं करेगा। अब से (आगे) सुखी रहो। ५७ तुम्हारे सिर पर मेरी पद-मुद्राएँ (अंकित) हैं। इसलिए खगेन्द्र (गरुड़) तुम्हें नहीं मार डालेगा। हे कालिय, मेरे वर(-दान) से उस समुद्र में तुम सुख के साथ रह जाओ। ५८ मैंने तुम्हें दण्ड दिया। जो प्रतिदिन इस लीला का गान करेंगे, उन्हें तुम पूर्णतः (बिलकुल) न दंश करें, उन्हें देखते ही भाग

पूर्ण। पळावें उठोन देखतां। ५९ हे कालियामर्दनकथा सत्य। त्रिकाल जो पढे पुण्यवंत। त्याचे दृष्टीनेंचि त्वरित। महाविष उतरेल। १६० कालियामर्दनपुस्तक। जो गृहीं संग्रही भाविक। तें गृह सोडूनि तात्कालिक। सर्प जाती तेथोनियां। १६१ जेणें ऐकिलें कालियामर्दन। त्यास काळ करूं न केश-बंधन। मग कैंचें सर्पदंशाचें विघ्न। त्यासी बाधक होईल। ६२ जो सर्प आज्ञा न मानी प्रमाण। त्याचें मस्तक होईल चूर्ण। असो कालिया आज्ञा वंदून। करी पूजन हरीचें। ६३ अर्पूनि षोडशोपचार पूजा। प्रदक्षिणा करी गरुडध्वजा। म्हणे लक्ष्मीविलासा महाराजा। कृपा बहुत असों दे। ६४ ऐसें बोलोनि सहपरिवारें। विखार सागरा गेला त्वरें। यमुना अमृतमय नीरें। वाहों लागली ते क्षणीं। ६५ जैसा परीस झगटतां पूर्ण। लोह होय तत्काळ सुवर्ण। कीं मित्रकुलभूषणपद-रजेंकरून। विरिंचितनया उद्धरली। ६६ त्याचपरी हो श्रीदीननाथें। शुद्ध केलें यमुनाऱ्हदातें। मुरली वाजविली स्वहस्तें। ऐलतीरा आला जगद्गुरू। ६७ म्हणती आला आला वनमाळी। पूर्ण ब्रह्मानंद जाहला ते वेळीं। दुंदुभी

जाएँ'। ५९ सचमुच यह कालिय-मर्दन-कथा जो पुण्यवान (व्यक्ति) त्रिकाल पढ़ेगा, उसकी दृष्टि से ही महाविष झट से उतर जाएगा। १६० जो श्रद्धा-भावयुक्त व्यक्ति कालिय-मर्दन (कथा) की पुस्तक घर में संग्रहीत करेगा, सर्प उस घर को छोड़कर तत्काल वहाँ से चले जाएँगे। १६१ जिसने कालिय-मर्दन (का आख्यान) सुना हो, उसे काल (-देवता) आबद्ध नहीं कर पाएगा। तो फिर सर्प-दंश का विघ्न उसके लिए किस प्रकार बाधक हो जाएगा। ६२ जो सर्प (मेरी इस) आज्ञा को प्रमाण न माने, उसका मस्तक चूर-चूर हो जाएगा।' अस्तु। (यह सुनकर) कालिय ने (भगवान की) आज्ञा को शिरसा-वन्द्य समझकर श्रीहरि का पूजन किया। ६३ उसने षोडशोपचार पूजा करके, गरुड़ध्वज भगवान की परिक्रमा की और कहा, 'हे लक्ष्मीविलास महाराज, (मुझपर आपकी) बहुत कृपा रहने दें'। ६४ ऐसा बोलकर वह सर्प परिवार-सहित झट से सागर की ओर चला गया। उस क्षण (से) यमुना अमृतमय पानी के साथ बहने लगी। ६५ जिस प्रकार पारस के पूर्णतः घिसते ही लोह तत्काल सोना बन जाता है, अथवा सूर्य-कुल-भूषण दाशरथी राम के चरण-रजःकणों से ब्रह्मा की कन्या (गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या)[1] उद्धार को प्राप्त हो गयी, उसी प्रकार दीनों के नाथ श्रीकृष्ण ने यमुना-हृद (दह) को (अपने चरण-स्पर्श से) शुद्ध (पावन) किया। (तदनन्तर) जगद्गुरु (श्रीकृष्ण) ने अपने हाथों से मुरली बजायी और वे इस पार (तीर) आ गये। ६६-६७ तो (लोग) बोले, 'आया, वनमाली आ गया।' उस

---

१ ब्रह्मात्मजा अहल्या— देखिए टिप्पणी १, पृ० १३८

गर्जती निराळीं। सुमनें भूतळीं वर्षती।६८ समीप देखोनि अनंता। सद्गदित जाहली माता। धांवोनि भेटली जगन्नाथा। दृष्टांत आतां काय देऊं।६९ चतुर्दश वर्षें वनीं क्रमून। अयोध्येसी आला रघुनंदन। कौसल्या माता धांवोन। तैसाचि कृष्ण आलिंगिला।१७० पाहोनियां कृष्णवदना। स्तनीं दर्दरोनि फुटला पान्हा। आडवें घेवोनि जगन्मोहना। प्रेमें माया न सोडी।१७१ नेत्रीं सुटल्या अश्रुधारा। तेणें अभिषेक जाहला श्यामसुंदरा। म्हणे माझिया सांवळ्या श्रीधरा। कैसा वांचोनि आलासी।७२ जैसें कृपणाचें ठेवणें चुकलें। तें बहु श्रमतां सांपडलें। कीं जहाज बुडतां कडे लागलें। तैसें जाहलें मायेसी।७३ कीं चोरीं मारितां अरण्यांत। एकाएकीं धांवणें धांवत। त्याच्या सुखासी नसे अंत। तैसें जाहलें मायेसी।७४ कीं प्राण जातां एकाएकीं। सुधारस घातला मुखीं। तो प्राणी जैसा होय सुखी। तैसें मायेसी जाहलें।७५ कीं वणव्यामाजी जळतां। घन वर्षे कां अवचिता।

समय (सबको) पूर्ण ब्रह्मानन्द हो गया। आकाश में (देवों की) दुन्दुभियाँ गरजने लगीं और देवों ने भूतल पर पुष्पवर्षा कर दी।६८ अनन्त (कृष्ण) को समीप देखकर माता (यशोदा) बहुत गद्‌गद हो उठी। वह दौड़कर जगन्नाथ से मिली। (कवि कहता है—) मैं इसके लिए अब क्या दृष्टान्त (उदाहरण) दूँ ?।६९ वन में चौदह वर्ष व्यतीत करके (जब) रघुनन्दन (राम) अयोध्या (लौट) आये, तो जिस प्रकार माता कौसल्या दौड़कर उनसे मिली और उनको उसने गले लगा लिया, उसी प्रकार यशोदा ने श्रीकृष्ण का आलिंगन किया।१७० कृष्ण के मुख को देखकर उसके स्तनों में उमड़-उमड़कर दूध भर गया। तो माता यशोदा उन जगन्मोहन को (दूध पिलाने के लिए गोद में एक बार) लिटाकर प्रेमपूर्वक उन्हें (फिर) दूर नहीं हटा रही थी (दूर जाने नहीं दे रही थी)।१७१ उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं। उनसे श्यामसुन्दर का अभिषेक हो गया। वह बोली, 'मेरे साँवले श्रीधर, तू बचकर कैसे आ गया है ?'।७२ जिस प्रकार किसी कंजूस की धरोहर खो गयी हो और (उसे खोजते-खोजते) बहुत कष्ट को प्राप्त हो जाने पर वह मिल गयी हो, अथवा डूबते-डूबते कोई जहाज (बचकर जिस प्रकार) तट से लग गया हो, उसी प्रकार माता यशोदा को हुआ जान पड़ा।७३ अथवा (किसी को) चोरों द्वारा वन में मारते (-लूटते हुए), यकायक उसकी पुकार सुनकर कोई (सहायता के लिए) दौड़ते हुए आ गया हो, तो उसके सुख की कोई सीमा नहीं रहती, माता यशोदा को वैसे ही अनुभव हो गया।७४ अथवा किसी के यकायक प्राणों के निकल जाते (समय किसी ने उसके) मुँह में अमृत डाल दिया हो, तो वह प्राणी जैसे सुख को प्राप्त हो जाएगा, वैसे ही माता यशोदा को अनुभव हो गया।७५ अथवा

तैसें देखतां श्रीकृष्णनाथा। जाहली माता सुखी ते। ७६ मातेच्या चरणांवरी। नमन करी मधुकैटभारी। तों नंद येऊनि झडकरी। हृदयीं धरी श्रीरंगा। ७७ नंद हृदयीं ऐसें भावित। कीं त्रिभुवनीं मीच भाग्यवंत। नंद आनंदें नाचत। सुख गगनांत न समाये। ७८ की शक्तीनें भेदिला सुमित्रासुत। औषधि घेऊनि आला हनुमंत। अनुज उठतां आनंदें रघुनाथ। नंद आनंदे त्यापरी। ७९ कीं साधूनि मंत्र संजीवनी। गुरुसुत आला परतोनी। जेवीं सहस्राक्ष भेटे धांवोनी। नंदाचें मनीं तेवीं वाटे। १८० असो हरीनें नमिलें नंदातें। तों बळिराम धांवे भेटावयातें। हांसों आलें संकर्षणातें। हरिमुखातें

किसी के दावानल में जलते रहते, अकस्मात मेघ बरसते लगे, (तो वह जैसे सुख को प्राप्त होगा) उसी प्रकार श्रीकृष्णनाथ को देखते ही माता यशोदा सुख से युक्त हो गयी। ७६ (तत्पश्चात) मधु-कैटभारि कृष्ण ने माता के चरणों का नमन किया; तब नन्द ने झट से आकर श्रीरंग को हृदय से लगा लिया। ७७ नन्द ने हृदय में ऐसा मान लिया— त्रिभुवन में मैं ही (सच्चा) भाग्यवान हूँ। (इसलिए) नन्द आनन्द से नाचने लगे। उनका सुख गगन में नहीं समा रहा था। ७८ अथवा (पूर्वकाल में लंका के युद्ध में) सुमित्रासुत लक्ष्मण (रावण की चलायी हुई) शक्ति से छिन्न-भिन्न हो गये, तो हनुमान औषधी (से युक्त पर्वत) लाये, (तदनन्तर) अपने अनुज को (पुनर्जीवित हो) उठते देखकर रघुनाथ राम आनन्दित हो उठे, उसी प्रकार नन्द (कृष्ण को कालिय की लपेट से मुक्त हुए देखकर) आनन्दित हो गये। ७९ अथवा संजीवनी मन्त्र को सिद्ध करके गुरु बृहस्पति के पुत्र कच लौट आये[1], तो जिस प्रकार इन्द्र दौड़ते हुए उससे मिल गये, उसी प्रकार नन्द को मन में (आनन्द अनुभव) हो गया। १८० अस्तु।

---

१ बृहस्पति-पुत्र कच········देवों और दैत्यों के संग्राम में मृत दैत्यों को दैत्य-गुरु शुक्राचार्य संजीवनी मन्त्र से पुनः जीवित कर दिया करते थे। अतः दैत्यों का बल कभी कम नहीं हो रहा था। तब देवों ने अपने गुरु बृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास उनके शिष्य के रूप में संजीवनी विद्या प्राप्त करने के हेतु भेज दिया। दैत्यों ने जब इस चाल को जान लिया, तो वे कच को अनेक प्रकार से मार डालने का यत्न करने लगे। एक बार उन्होंने उसे मारकर उसके शरीर के टुकड़ों को सियारों को खिला दिया। दूसरी बार उसे मारकर समुद्र में फेंक डाला। तीसरी बार उन्होंने उसे जलाकर उसके शरीर-भस्म को मदिरा में मिलाकर शुक्राचार्य को वह मदिरा पिला दी। इधर शुक्राचार्य की कन्या देवयानी कच को प्यार करने लगी थी। वह हठपूर्वक कच को अपने पिता द्वारा पुनर्जीवित करवाती थी। अन्तिम बार जब शुक्राचार्य ने कच को जीवित करने के हेतु संजीवनी मन्त्र पढ़ा, तो भस्मरूप में उन्हीं के पेट में स्थित कच को वह अनायास प्राप्त हो गया। वह उनके पेट को चीरकर अन्दर से बाहर आ गया। फिर उसने उसी मन्त्र की सामर्थ्य से गुरु शुक्राचार्य को जीवित किया और देवलोक की ओर प्रयाण किया। अब नई स्थिति में देवयानी को अपनी सहोदरा भगिनी मानकर उसने उसे पत्नी-रूप में स्वीकार नहीं किया।

पाहोनियां । १८१ तरी कां संकर्षण हांसिन्नला । काय तो अर्थ सुचविला । कीं त्यां शोक नाहीं केला । प्रताप अद्‌भुत जाणोनि । ८२ कृतांतासही शासनकर्ता । मग शोक कां करावा वृथा । आदि अंत मध्य पहातां । तुजपरता कोण असे । ८३ देखोनियां त्रिभुवननायका । प्रेमें सद्‌गदित झाल्या गोपिका । आंगीं तटतटिल्या कंचुका । हर्ष पोटीं न समाये । ८४ वंडकडीं रत्नजडित । मणगटापाशीं तीं दाटत । गोपी येऊनि चरणीं लागत । ब्रह्मानंदें करूनियां । ८५ सकळ गौळियां लहानथोरां । भेटला परात्परसोयरा । जो दुर्लभ सकळ सुरवरां । सुलभ झाला तो गोकुळीं । ८६ तंव अस्तमाना गेला गभस्ती । तेथेंचि लोकीं केली वस्ती । सकळ निद्रार्णवीं निमग्न होती । चिंता चित्तीं नसेचि पैं । ८७ अस्ताचळा जातां वासरमणी । द्विज बैसती स्थळीं येऊनी । मिलिंद वारिजकोशीं प्रवेशूनी । आमोदातें सेविती । ८८ तरुण जे जे विषयपर । त्यांचें हृदयीं संचरे पंचशर । रात्र झाली दोन प्रहर ।

कृष्ण ने नन्द को नमस्कार किया, तब बलराम उससे मिलने के लिए दौड़ा। तो कृष्ण के मुख को देखकर संकर्षण (बलराम) को हँसी आ गयी। १८१ फिर भी बलराम क्यों हँस पड़ा ? उसने क्या वह अर्थ सूचित किया ? (वह अर्थ यह है कि) कृष्ण के उस अद्‌भुत प्रताप को जानकर ही मैंने शोक नहीं किया। ८२ यह कृष्ण तो कृतान्त यम (तक) को भी दण्ड देनेवाले हैं; फिर व्यर्थ ही शोक क्यों करें ? (हे कृष्ण,) आदि, मध्य और अन्त देखने पर तुमसे अधिक बड़ा कौन है ? । ८३ उन त्रिभुवन-नायक कृष्ण को देखकर गोपिकाएँ प्रेम से बहुत गद्‌गद हो उठीं। देह में कंचुकियाँ तन गयीं (मानो अब फट जाएँगी)। वे फूले नहीं समा रही थीं। ८४ बाहुओं में पहने हुए रत्न-जटित कड़े कलाई के समीप अवरुद्ध हो गये। (फिर) आकर वे गोपियाँ ब्रह्मानन्दपूर्वक कृष्ण के पाँव लग गयीं। ८५ वे परात्पर आत्मीय जन श्रीकृष्ण समस्त छोटे-बड़े गोपों से मिले। जो समस्त देवों (तक) के लिए (भी) दुर्लभ हैं, वे गोकुल में (जनसाधारण के लिए) सुलभ हो गये। ८६ तब (तक) सूर्य अस्त को प्राप्त हो गया। (अतः) उन लोगों ने वहीं निवास किया। वे सब निद्रा-सागर में निमग्न हो गये। उनके चित्त में कोई चिन्ता नहीं थी। ८७ सूर्य के अस्ताचल पर जाने पर, पक्षी उस स्थान पर आकर बैठ गये; भ्रमर कमल-कोशों में पैठकर सुगन्ध का सेवन करते रहे। ८८ जो-जो तरुण विषय पर अर्थात भोग-विषय के प्रति आसक्त थे, उनके हृदय में पंचबाण कामदेव[1] ने संचरण

---

१ पंचबाण कामदेव— कामदेव को 'पंचशर', 'पंचबाण' इसलिए कहते हैं कि वह निम्नलिखित पाँच फूलों का प्रयोग बाणों के रूप में करके हृदय को विद्ध करता है:— अरविन्द (लाल कमल), अशोक, आम्रमंजरी, मोगरा और नीलकमल। उसका धनुष भी फूलों का बना होता है, अतः उसे 'पुष्पधनु', 'पुष्पधन्वा' कहते हैं।

श्वापदें दुर्धर बाहती । ८९ परम दाटली घोर रजनी । द्विजांच्या उठती नाना ध्वनी । रिसें वाघुळा मिठी घालूनी । वृक्षडाहाळिये लोंबती । १९० वनदेवता गंधर्व यक्षिणी । गोंधळ घालिती महावनीं । आसरा जाज्वल्यरूप दाऊनी । तेच क्षणीं गुप्त होती । १९१ नाना वल्लींचे भंबाळ । दिसतीं अवचितेंचि कल्लोळ । प्रेतगण मिळाले सकळ । भ्यासुर केवळ दिसतीं पैं । ९२ विकार करिती भूतें प्रेतें । छळिती अमंगळा अपवित्रातें । दिवाभीतांचे घुंघाट तेथें । पिंगळे थोर किलबिलती । ९३ भालुवा भुंकती क्षणक्षणीं । टिटवे शब्द करिती गगनीं । करुणास्वरेंकरूनी । चक्रवाकें बाहती । ९४ चंद्रकुमुदिनी विकासती । भ्रमर तेथें पाहों येती । उरग बाहेर निघती । सैर हिंडती चहूंकडे । ९५ निधानें चरावया निघती । क्षणक्षणां प्रभा दाविती । सभाग्यास बोलाविती । येऊं म्हणती गृहा तुझ्या । ९६ तंव तो वसंत ऋतु उष्णकाळ । वनें वाळूनि गेलीं सकळ । पूर्वीच कालियाचा मुखानळ । जाळीत होता वनातें । ९७ तों अद्भुत वात सुटला । अग्नि गौळियांवरी परतला । सभोंवतीं वेढा पडिला । आंत झांकळिला पर्वत । ९८ आकाश कवळिलें

किया । रात दो पहर हो गयी । श्वापद दुर्धर रूप से बोल रहे थे । ८९ रात परम घोर बन गयी । पक्षियों की नाना (प्रकार की) ध्वनियाँ उठ रही थीं । रीछ और चमगादड़ कसकर पकड़ते हुए वृक्षों की टहनियों से लटक रहे थे । १९० उस महावन में वनदेवियाँ, गन्धर्व, यक्षिणियाँ ऊधम मचा रही थीं । जलदेवियाँ अपने तेजस्वी रूप को दिखाते हुए उसी क्षण गुप्त हो जाती थीं । १९१ नाना प्रकार की लताओं के प्रचण्ड समुदाय थे । यकायक आग की लपटें दिखायी देती थीं । समस्त प्रेतगण इकट्ठा हो गये । वे केवल भयावह दिखायी दे रहे थे । ९२ भूत, प्रेत अपने रूप बदल लेते थे । वे अमंगल-अपवित्रों को सताते थे । वहाँ उल्लुओं का घुघुकार (सुनायी दे रहा) था । बड़े-बड़े पिंगल (एक प्रकार के उल्लू) ज़ोर से चहचहा रहे थे । ९३ भालू क्षण-क्षण भेंकते थे । टिटहरे आकाश में (उड़ते हुए) बोलते थे । चकवे करुण स्वर में बोल रहे थे । ९४ चन्द्र-विकासी कुमुदिनियाँ विकास को प्राप्त हो गयीं, तो भ्रमर वहाँ (उनके पास) देखने के लिए आ गये । साँप बाहर निकले और चारों ओर मनमाने विचरण करते थे । ९५ गुप्त धनकोश विचरण करने निकले थे । वे क्षण-क्षण अपनी कान्ति दिखलाते थे और (मानो किसी) भागवान को बुलाते और कहते— 'हम तेरे घर आ रहे हैं (आना चाहते हैं) । '। १९६

तब वसन्त ऋतु थी, गर्मियों का समय था । समस्त वन सूख गये थे । पहले ही कालिय के मुख से निकलनेवाली आग उस वन को जला रही थी । १९७ तब (इतने में) अद्भुत (रूप से) हवा बहने लगी । (फलतः) वह आग गोपों की ओर लौट आयी । चारों ओर से उसका घेरा पड़

ज्वाळें। तडतडां फुटती वेळूनळे। पळती पक्षियांचे पाळे। आहाळोनि माजीं पडताती। ९९ एकाएकीं निदसुरे गौळी। आरडत उठती ते वेळीं। तों आकाश झांकिलें अग्निकल्लोळीं। ठाव नाहीं पळावया। २०० जाग्या झाल्या गौळिणी। हडबडोनि उठे नंदराणी। म्हणे कोठें लपवूं चक्रपाणी। देईं मेदिनी ठाव आतां। २०१ गौळी गौळिणी करिती चिंता। आमुचे प्राण जावोत आतां। परी कैसें करावें कृष्णनाथा। वांचेल कैसा नेणवे। २ गौळी करिती थोर धांवा। धांवें वैकुंठपते कमलाधवा। विश्वव्यापका केशवा। कृष्ण आमुचा वांचवीं। ३ दीन वदनें हांक फोडिती। ज्वाळा आल्या आल्या म्हणती। एकावरी एक पडती। दुर्धर गति ही ओढवली। ४ मायेनें हरि धरिला हृदयीं। म्हणे कृष्णा वांचवा रे या समयीं। पळावया ठाव नाहीं। धांव लवलाहीं भगवंता। ५ देखोनि तयांची करुणा। कृपा उपजली कमलनयना। सांगे अवघ्या व्रजजनां। झांका नयनां समस्तही। ६ हरिवदनीं विश्वास धरूनी। नेत्र झांकिले समस्त जनीं। ब्रह्मांडनायक

गया। अन्दर पर्वत छिप-सा जाकर धुँधला दिखायी देने लगा। ९८ ज्वालाओं ने आकाश को लपेट लिया। बाँस के दण्ड तड़तड़ फटने लगे। पक्षियों के झुण्ड भागने लगे और (उस आग में) झुलसकर बीच में (आग के अन्दर) गिरने लगे। ९९ उस समय यकायक उनींदे गोप चिल्लाते हुए उठ गये (जग गये)। तो (उन्हें दिखायी दिया कि) आकाश आग की लपटों में छिप गया है। उन्हें भाग जाने के लिए (कहीं) ठौर नहीं (दिखायी दे रहा) था। २०० (इधर) गोपियाँ (भी) जग गयीं। नन्दरानी यशोदा भी हड़बड़ाती हुई उठ गयी। वह बोली (सोचने लगी)— 'कृष्ण को कहाँ छिपा दूँ? हे पृथ्वी, अब (उसे छिपाने के लिए) ठौर प्रदान करो।'। २०१ गोप और गोपियाँ चिन्ता करने लगे— 'हमारे प्राण अब (भले ही) चले जाएँ; फिर भी इस कृष्णनाथ के बारे में किस प्रकार (क्या) करें (किस प्रकार छिपा दें)? न जाने वह कैसे बचेगा।'। २ गोप बड़ी गिड़गिड़ाहट के साथ विनती करने लगे— 'हे वैकुण्ठपति, हे कमलापति, दौड़ो। हे विश्वव्यापक केशव, हमारे कृष्ण को बचा लेना।'। ३ वे दीन वदन से चीख-पुकार रहे थे। कह रहे थे— 'ज्वालाएँ आ गयीं, आ गयीं।' वे (दौड़ते-दौड़ते) एक-दूसरे पर गिर रहे थे। (इस प्रकार) यह दुर्धर गति आ गयी। ४ माता यशोदा ने कृष्ण को हृदय से लगा लिया और कहा— 'अहो, इस समय, कृष्ण को बचा लो। भाग जाने के लिए (कहीं) ठौर नहीं है। हे भगवान, झट से दौड़ो।'। ५ उनकी करुणास्पद स्थिति देखने पर कमलनयन कृष्ण में दया उत्पन्न हो गयी। वे समस्त व्रजजनों से बोले—'तुम सभी (अपनी-अपनी) आँखें बन्द कर लो'। ६ श्रीहरि के वचन पर विश्वास धारण करके समस्त लोगों ने आँखें

त्याची करणी। शिवविरिंचींसी कळेना। ७ असंभाव्य पसरिलें वदन। जो विराट्स्वरूपी भगवान। द्वादश गांवें महाअग्न। न लगतां क्षण गिळियेला। ८ मागुती झाला सहा वर्षांचा। साही शास्त्रां न कळे अंत ज्याचा। हरि सकळांस वदे वाचा। नेत्र उघडा सर्वही। ९ सकळीं उघडिले नयन। अणुमात्र कोठें न दिसे अग्न। गौळी भेटती हरीस येऊन। म्हणती महिमा न कळे तुझा। २१० तों सवेंचि झाली प्रभात। जान्हवीवरून येत वात। दानवगुरु उदय पावत। अरुण प्रकाशे पाहीं पां। २११ कीं पूर्व दिशेनें मुख धुतलें। आरक्त कुंकुम निढळीं रेखिलें। उडुगणतेज हरपलें। ज्ञानें निरसलें अज्ञान जेवीं। १२ पक्षी उडोनि चालिले। भ्रमर कमळांतूनि मुक्त झाले। तस्कर ठायीं ठायीं लपाले। हिंडों लागले श्रेष्ठ पैं। १३ निजगृहास येऊनि जार। मांडिला दांभिक आचार। जे श्मशानीं जप करणार। कुटिल नर पळताती। १४ कुक्कुट काग बाहती। चिमण्या ठायीं ठायीं गुजगुजती।

मूँद लीं। कृष्ण (जो) ब्रह्माण्ड-नायक हैं, उनकी करनी शिवजी और ब्रह्माजी (तक) की समझ में नहीं आ पाती। ७ (इधर) कृष्ण ने असम्भवनीय रूप में (अपना) मुँह फैला दिया। जो (कृष्ण वस्तुतः) विराट्स्वरूपी भगवान हैं, उन्होंने बारह योजन फैली हुई महा अग्नि को क्षण न लगते निगल डाला। ८ वे फिर छः वर्ष के हो गये। जिसका अन्त (पार) छहों शास्त्रों[1] (तक) की समझ में नहीं आता, वे श्रीहरि अपनी वाणी से सबसे बोले— ‘(अब) तुम सभी आँखें खोलो।’। ९ (यह सुनते ही) सबने आँखें खोलीं, तो उन्हें अणुमात्र तक अग्नि कहीं नहीं दिखायी दी। (तदनन्तर) गोप आकर श्रीहरि से मिले और बोले— ‘तेरी महिमा समझ में नहीं आ सकती।’। २१० तब साथ में ही (उतने में) भोर हो गयी। हवा गंगा (अर्थात यमुना नदी) होकर आ रही थी। दानवगुरु अर्थात शुक्र तारा उदय को प्राप्त हो गया। देखिए, अरुण (भी) प्रकाश को प्राप्त हो गया (अरुणोदय हो गया)। २११ अथवा (जान पड़ता है) पूर्व दिशा ने (अपना) मुख धो लिया और भाल पर लाल-सा कुंकुम अंकित किया। तारों के समूह का तेज नष्ट हो गया, जैसे ज्ञान ने अज्ञान का निराकरण (संहार) कर डाला हो। १२ पक्षी उड़ते हुए चल दिये। भ्रमर कमलों (के अन्दर) से मुक्त हो गये। चोर स्थान-स्थान पर छिप गये (और) श्रेष्ठ (सज्जन) लोग (निर्भयतापूर्वक) घूमने लगे। १३ जार पुरुषों ने अपने घर आकर दाम्भिक आचरण का आरम्भ किया। जो श्मशान में जप करनेवाले होते हैं, (प्रातःकाल होते ही) वे नर (वहाँ से) भाग गये। १४ कुक्कुट (मुर्गे) और कौए बोलने लगे। चिड़ियाँ (गौरैयाएँ) स्थान-स्थान पर चहकने लगीं। अग्निहोत्रियों

1 छः शास्त्र— देखिए टिप्पणी २, पृ० ८० (अध्याय ३)

अग्निहोत्री स्नान करिती। होम द्यावयाकारणें। १५ कापडी तीर्थपंथें जाती। भक्त प्रातःस्मरणें गर्जती। वैष्णव विष्णूतें चिंतिती। शैव ध्याती शिवातें। १६ हातीं घेऊनि अर्घ्यजल। सौर पाहती सूर्यमंडल। गाणपत्य परम सुशील। गणपतीतें चिंतिती। १७ शाक्त चिंतिती शक्तीतें। गुरुभक्त आठविती गुरुचरणांतें। विद्यार्थी नाना परींचे एकचित्तें। विद्याभ्यास करिताती। १८ गृहींगृहींच्या ललना उठती। अंग प्रक्षालूनि कुंकुमें रेखिती। सडासंमार्जनें करूनि निश्चितीं। मग घालिती रंगमाळा। १९ करूनियां गोदोहन। वेगीं आरंभिती घुसळण। असो उदय पावला सहस्रकिरण। गौळी तेथूनि निघाले। २२० घेऊनियां तमालनीळा। समस्त चालिले मग गोकुळा। वाद्यांचा गजर ते वेळां। अति जाहला सघन पैं। २२१ मोहरी पांवे मृदंग। डफडीं सनया उपांग। मिरवत जातसे श्रीरंग। नंदयशोदेसहित पैं। २२ कृष्णावरी पालवछत्रें। गौळी धरिती अत्यादरें। चंद्रप्रभेऐसीं चामरें। एक वरी धरिताती। २३ सहा वर्षांची मूर्ती। केली अद्भुत त्रिभुवनीं कीर्ती।

ने होम में आहुतियाँ समर्पित करने के लिए स्नान किया। १५ तीर्थक्षेत्रों के यात्रिक तीर्थस्थल के मार्ग से चल दिये। भक्त प्रातःस्मरण (करते समय गाये जानेवाले गीतों) द्वारा गरज उठे। वैष्णव भगवान विष्णु का चिन्तन (मन ही मन स्मरण) करने लगे। शैव शिवजी का ध्यान करने लगे। १६ हाथों में अर्घ्य-जल लेकर सौर (सूर्य-भक्त) सूर्य-मण्डल की ओर देखने लगे। परम सुशील गाणपत्य श्रीगणेश का चिन्तन करने लगे। १७ शाक्त शक्तिदेवी का चिन्तन कर रहे थे। गुरु-भक्त गुरु के चरणों का स्मरण कर रहे थे। नाना प्रकार के (नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करनेवाले) विद्यार्थी एकाग्र चित्त से विद्याध्ययन कर रहे थे। १८ घर-घर की ललनाएँ जाग उठीं और उन्होंने अंगप्रक्षालन (स्नान) करके कुंकुम (तिलक) अंकित किया। उन्होंने निश्चय ही पानी का छिड़काव करके फिर रंगोलियाँ अंकित कीं। १९ गायों को दुहकर उन्होंने वेगपूर्वक मन्थन आरम्भ किया। अस्तु। सूर्य उदय को प्राप्त हो गया, तो गोप वहाँ से निकले (चल दिये)। २२० तमालनील (कृष्ण) को (साथ में) लेकर फिर वे गोकुल की ओर चल दिये। उस समय वाद्यों का अति घना (तुमुल) गर्जन हो रहा था। २२१ (उस समय) मोहरियाँ (एक वाद्य-विशेष), बाँसुरियाँ, मृदंग, डफ, शहनाइयाँ तथा उसी प्रकार के अन्य गौण बाजे बज रहे थे। (उस गर्जन के साथ) श्रीरंग कृष्ण ठाटबाट से (शोभायात्रा के साथ) नन्द-यशोदा-सहित जा रहे थे। २२ गोपों ने कृष्ण पर वृक्षों के पत्तों के छाते अति आदरपूर्वक धर रखे थे। कुछ एक ने चन्द्र-प्रभा जैसे चामर उनके ऊपर धर दिये थे। २३ (कृष्ण तो) छः वर्षीय मूर्ति थे। (फिर भी) उन्होंने त्रिभुवन में अद्भुत कीर्ति

कर्णीं कुंडलें ढाळ देती। नयन विकासती आकर्ण। २४ कपाळीं त्रिपुंड्र रेखिला। सर्वांगीं चंदन चर्चिला। चिमणीच़ मुरली सांवळा। चिमण्या स्वरें वाजवीत। २५ पुढें चिमणे गोप मिळोनी। हुंबरी घालिती छंदेंकरूनी। एक सामोऱ्या येती गौळणी। आरत्या घेऊनी हरीतें। २६ यशोदा करी निंबलोण। हरी घेतला कडे उच़लोन। गृहीं प्रवेशले शेषनारायण। धन्य भाग्य नंदाचें। २७ हरीचे अवतार सर्व उत्तम। परी ये अवतारींचें जें कर्म। अत्यद्‌भुत लीला परम। जे न वर्णवे शेषातें। २८ दिवसदिवसाप्रती। अद्‌भुत लीला अद्‌भुत कीर्ती। शिणल्या व्यासादिकांच्या मती। तेथें मी पामर काय वर्णूं। २९ ऐसा थोर पवाडा दाविला। केवळ काळ कालिया मर्दिला। द्वादश गांवें अग्नि गिळिला। वांच़वूनियां सकळांसी। २३० कलियुगीं भवनदीपूर। अत्यंत दाटला दुर्धर। हरिविजय ग्रंथ थोर। नौका तेथें तरावया। २३१ भाविक हो धांवा लौकरी। सत्वर बैसा या नौकेवरी। प्रेमाच़ा ध्वज निर्धारीं। अति सतेज फडकत। ३२ ही नाव परतीरा न्यावया

(प्राप्त) की। उनके कानों में कुण्डल कान्ति के साथ शोभा दे रहे थे। उनके नयन आकर्ण विकसित थे। २४ भाल पर त्रिपुंड्र रेखांकित किया हुआ था। समस्त अंग में चन्दन लगाया हुआ था। साँवले (कृष्ण) नन्ही-सी मुरली धीमे मन्द स्वर में बजा रहे थे। २५ (उनके) आगे नन्हे(-नन्हे) गोप मिलकर मनमाने ढंग से (शौक से) हुँमरी ध्वनि कर रहे थे (गुनगुना रहे थे)। कुछ एक गोपियाँ श्रीहरि के लिए हाथों में आरतियाँ लेकर अगुवानी के हेतु आगे आ गयीं। २६ यशोदा ने राईनोन उतार लिया और श्रीहरि को उठाकर गोद में (बैठा) लिया। (तदनन्तर) शेष (के अवतार बलराम) और नारायण (के अवतार कृष्ण) घर के अन्दर प्रविष्ट हो गये। नन्द का भाग्य धन्य है, धन्य है। २२७

श्रीहरि के समस्त अवतार (वैसे तो) उत्तम (ही) हैं; फिर भी (उनके) इस (कृष्ण) अवतार का जो कार्य है, जो परम अति अद्‌भुत लीला (प्रदर्शित हुई) है, उसका वर्णन शेष भगवान द्वारा (तक) नहीं किया जा सकता। २२८ दिन ब दिन उनकी अद्‌भुत लीला प्रदर्शित हो रही थी, अद्‌भुत कीर्ति फैल रही थी। व्यास आदि की मति (जब) थक गयी, तो मैं पामर उस (लीला और कीर्ति) का वर्णन क्या कर सकता हूँ। २९ उन्होंने ऐसा प्रताप दिखा दिया— केवल काल(-स्वरूप) कालिय नाग का मर्दन कर डाला, सबको बचाते हुए उन्होंने बारह योजन (फैली हुई) अग्नि को निगल डाला। २३० इस कलियुग में संसार रूपी नदी में अत्यन्त दुर्धर बाढ़ आ गयी है। वहाँ (उसमें) से तैरकर (पार) जाने के लिए श्रीहरि-विजय नामक यह बड़ा ग्रन्थ (मानो) नौका है। २३१ हे श्रद्धालु भक्तो, शीघ्र दौड़ो, झट से इस नौका में बैठ जाओ। (भगवत्-)प्रेम का

त्वरित। नावडी येथें सद्गुरुनाथ। तो ब्रह्मानंद स्वामी समर्थ। भीमातीर-विहारी जो। ३३ ब्रह्मानंदस्वामीचे चरण। हेंचि कमळ सुवासिक पूर्ण। तेथें श्रीधर भ्रमर रिघोन। मकरंद पूर्ण सेवीत। ३४ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। प्रेमळ परिसोत पंडित। एकादशाध्याय गोड हा। २३५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

ध्वज निश्चय ही अति तेज के साथ फहर रहा है। ३२ यहाँ इस नौका को शीघ्रता से दूसरे तीर (उस पार) ले जाने के लिए वे सद्गुरुनाथ नाविक हैं। जो भीमा नदी के तट पर विहार करनेवाले हैं, वे (मेरे पिता तथा गुरु) आनन्दस्वरूप ब्रह्मरूप ब्रह्मानन्द स्वामी समर्थ हैं। ३३ स्वामी ब्रह्मानन्द के ये ही चरण (मानो) पूर्ण सुगन्धयुक्त कमल हैं। वहाँ (यह कवि) श्रीधर रूपी भ्रमर प्रविष्ट होकर (उसके अन्दर) मकरन्द का पूर्ण सेवन कर रहा है। २३४

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेमयुक्त पण्डित (विद्वज्जन) उसके इस मधुर ग्यारहवें अध्याय का श्रवण करें। २३५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१२

[गोवर्धन-उद्धरण और इन्द्र-गर्व-हरण]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय यादवकुळदीपका। त्रिभुवनजनहृदय-प्रकाशका। अंतःकरणचतुष्टयचाळका। दारुकायंत्रन्यायेंसीं। १ आम्ही जग आणि तूं जगदीश्वर। नाहीं द्वैतभेदविकार। तूंचि नटलासी चराचर।

श्रीगणेशाय नमः। हे यादवकुल के दीपक, अर्थात यदुकुल को सुख-शान्ति-यश रूपी प्रकाश से युक्त कर देनेवाले कृष्णस्वरूप दीपक, हे (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल नामक) तीनों भुवनों के लोगों के हृदय को (आनन्दस्वरूप) प्रकाश से युक्त बना देनेवाले, हे दारुका-यन्त्र-न्याय के अनुसार, अर्थात कठपुतलों को नचानेवाले की भाँति चार प्रकार के अन्तःकरणों[1] को संचालित कर देनेवाले, (आपकी) जय हो, जय हो। १ हम जगत (के निवासी) हैं और आप (उस) जगत के ईश्वर हैं। (फिर भी) जगत और आपमें द्वैत-भेद विकार नहीं है। सोना और उससे निर्मित

[1] अन्तःकरण चतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार।

कनककटकन्यायेंसीं। २ मित्र आणि रश्मी देख। स्फुलिंग आणि दाहक। तैसा तूं सर्वांत श्रेष्ठ एक। लोहखड्गन्यायेंसीं। ३ धातु आणि पात्र। तंतु आणि वस्त्र। कीं तरंग आणि नीर। तैसा श्रीधर व्यापक तूं। ४ मधुसंहारका यादवेंद्रा। मुरहरा श्रीकुचदुर्गविहारा। कालियामर्दना गुणसमुद्रा। ब्रह्मानंदा यतिराया। ५ तुझें चरित्र तूंचि बोले। याबरी गोकुळीं काय वर्तलें। तें कृष्ण परब्रह्म सांवळें। अवतरलें प्रत्यक्ष भक्तकाजा। ६ एकादश अध्यायाचें कथन। केलें दुर्धर कालियामर्दन। द्वादश गांवें महा अग्न। हरि प्राशून अक्षयी। ७ प्रातःकाळीं एके दिनीं। हरिसमीप येऊनि नंदराणी। कोमल हस्तेंकरूनी। थापटोनि उठवीत। ८ उठीं उठीं माझे आई। सांवळे

कड़े के स्वरूप के अनुसार, अर्थात जैसे सुवर्ण और उससे निर्मित कड़ा जैसा आभूषण यद्यपि भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं, तथापि उस आभूषण का मूलाधार सोना ही है, उसी प्रकार आप और जगत भिन्न-भिन्न दिखायी तो देते हैं, फिर भी जगत आपसे बना हुआ है, अतः आप और वह दोनों भिन्न नहीं हैं; दोनों में द्वैतभाव नहीं है, दोनों में अभिन्नत्व है; क्योंकि वस्तुतः आप ही चराचर (जगत-रूप) बने हुए हैं। २ देखिए, सूर्य और उसकी किरणें, चिनगारियाँ और अग्नि (दिखने में भिन्न-भिन्न होने पर भी वस्तुतः) एक, अभिन्न हैं; उसी प्रकार लोह-खड्ग-न्याय से, अर्थात लोहा और उससे निर्मित खड्ग अलग-अलग दिखायी देने पर भी वस्तुतः अभिन्न हैं, उसी प्रकार (जगत के) समस्त पदार्थों में आप एक मात्र श्रेष्ठ (ईश्वर व्याप्त) हैं। ३ धातु और पात्र का, तन्तु और वस्त्र का, अथवा तरंग और नीर का जो सम्बन्ध है, अर्थात जिस प्रकार इनमें से एक दूसरे में व्याप्त है, एक व्यापक है और दूसरा व्याप्य है, उसी प्रकार, हे भगवान श्रीधर, आप (इस जगत को) व्याप्त किये हुए हैं। ४ हे मधु दैत्य का संहार करनेवाले, हे यादवेन्द्र, हे मुर दैत्य को मार डालनेवाले, हे श्री (लक्ष्मी) के कुचस्वरूप दुर्ग पर विहार करनेवाले, हे कालिय का मर्दन करनेवाले, हे गुणों के समुद्र, हे आनन्दस्वरूप ब्रह्म, हे यतिराज (यतिश्रेष्ठ गुरु ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान), (अब) आप अपने चरित को (आगे) कह दीजिए (मेरे द्वारा कहलवाइए)। इसके पश्चात गोकुल में क्या हो गया? वे श्याम वर्ण वाले परब्रह्म कृष्ण भक्तों के (कार्य के) लिए प्रत्यक्ष अवतरित हो गये। ५-६ ग्यारहवें अध्याय में यह कहा है कि (कृष्ण ने) दुर्धर कालिय का मर्दन किया; (तदनन्तर) बारह योजन फैली हुई महान आग को प्राशन करने पर भी वे श्रीहरि अक्षय सिद्ध हो गये। ७ एक दिन सबेरे, नन्दरानी यशोदा (सोये हुए) कृष्ण के समीप आकर (अपने) कोमल हाथों से थपकाते हुए उन्हें जगाकर उठाने लगी। ८ (वह बोली—) 'मेरी मैया, उठ, उठ जा। री साँवली कृष्णा मैया, राजसी, अरे

राजसे कृष्णाबाई । राजीवनेत्रा वदन धुईं । वना जाईं राजसा । ९ उदया आला चंडकिरण । ताटीं वाढिलें दध्योदन । वना जाईं जेवून । गाई घेऊन कान्हया । १० मायालाघवी ते समयीं । उठूनियां देई जांभई । मातेनें धरिला हृदयीं । वदन चुंबी प्रीतीनें । ११ इंद्रादिकां दृष्टी न पडती चरण । त्याचें यशोदा धूतसे वदन । कपाळीं रेखिला चंदन । उटी दिधली सर्वांगीं । १२ ऐसा पूजिला यादवेंद्र । तैसाचि रोहिणीनें अर्चिला बळिभद्र । पदकें माळा परिकर । दोघां कंठीं शोभती । १३ प्रत्यक्ष ते शेषनारायण । बाहेर आले जेवून । मुरली वाजवितां कृष्ण । गाई गोप मिळाले । १४ तंव गौळी मिळाले असंख्यात । नंद त्यांसीं विचार करीत । म्हणती पूजावा शचीनाथ । मेघ समस्त त्याहातीं । १५ करावा जी महायज्ञ । तें ऐकूनि जगन्मोहन । नंदास पुसे नारायण । हास्यवदन करूनियां । १६ कासयाचा करितां विचार । पूजासामग्री मेळविली अपार । नंद म्हणे सहस्रनेत्र । प्रतिवर्षीं पूजितसों । १७ तो मेघवृष्टि करी धरणीं । तेणें वांचती सर्व प्राणी । तृण जीवन गाईंलागुनी ।

कमल-नयन, मुँह धो ले और रे राजस, वन की ओर जा । ९ सूर्य उदय को प्राप्त हुआ है । थाली में दही-भात परोसा है; खाकर, हे कन्हैया, गायों को लेकर वन की ओर जा'। १० उस समय उन माया करने में कुशल (कृष्ण) ने उठकर जम्हाई ली, तो माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और उनके मुँह को प्रीतिपूर्वक चूम लिया । ११ जिनके चरण इन्द्र आदि (तक) को दिखायी नहीं देते, उनके वदन को यशोदा ने धो लिया । (तदनन्तर) उसने उनके मस्तक पर चन्दन (का तिलक) अंकित किया (और) समस्त बदन में अंगराग लगा लिया । १२ (यशोदा ने) इस प्रकार यादवेन्द्र कृष्ण का (मानो) पूजन किया; उसी प्रकार रोहिणी ने बलभद्र का पूजन किया । उन दोनों के कण्ठ में सुन्दर पदिक तथा मालाएँ शोभायमान थीं । १३ वे प्रत्यक्ष शेष और नारायण (के अवतार) थे। वे भोजन करके बाहर आ गये । (तदनन्तर उनके द्वारा) मुरली बजाने लगते ही चारों ओर से गायें और गोप (आकर) इकट्ठा हो गये । १४ तब असंख्यात गोप इकट्ठा हो गये, तो नन्द ने उनसे विचार-विमर्श किया । वे बोले, 'शचीपति इन्द्र का पूजन कर लें । उनके हाथ (अधीन) समस्त मेघ होते हैं । १५ अहो, महायज्ञ (सम्पन्न) कर लें ।' यह सुनकर जगन्मोहन नारायण ने मुस्कराते हुए पूछा । १६ 'आप किस सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं— अपार पूजा-सामग्री (भी) इकट्ठा की है ।' (इसपर) नन्द बोले, 'प्रति वर्ष हम सहस्रनयन इन्द्र का पूजन करते हैं । १७ वे धरती पर मेघों से वर्षा करते हैं । उससे समस्त प्राणी (भूख-प्यास से) बच जाते हैं । पृथ्वी पर गायों के लिए घास और पानी यथेष्ट (जितना चाहिए उतना उत्पन्न) हो जाता है । १८ उससे ही अठारह (प्रकार के)

यथेष्ट अवनीं होतसे । १८ अष्टादश धान्यें षड्रस । तेणेंचि होती बहुवस । इंद्राहूनि विशेष । श्रेष्ठ नसे दूसरा । १९ पुराणपुरुष गोकुळीं अवतरला । तंव पाकशासनें गर्व केला । अहंपणेंचि व्यापिला । दंभअहंकारेंकरूनियां । २० पांचवे वर्षीं वत्सहरण । करी कमलोद्भव येऊन । केलें त्याचें गर्वच्छेदन । रूपें अपार दावूनियां । २१ सहावे वर्षीं कालियामर्दन । सातव्यांत गोवर्धनोद्धारण । सहस्राक्षाचें गर्वहरण । याच मिषें मांडिलें । २२ असो नंदास म्हणे व्रजभूषण । काय आहे इंद्राधीन । आपुलाल्या कर्मेंकरून । प्राणी वर्तती संसारीं । २३ ज्यांचें पूर्वकर्म उत्तम नाहीं । त्यांस आखंडल करील कायी । विपरीत नव्हे कदाही । ब्रह्मादिकां कर्म तें । २४ उत्तम कर्मे उत्तम फळ प्राप्त । तें शक्रासी नव्हे विपरीत । आपुलें सत्कर्म पूर्वकृत । देव सत्य तोची पैं । २५ आपुलें जें दुष्कर्म । त्याचेंचि नांव काळ यम । सुखदुःखफळें परम । कर्माकर्म

धान्य[1] और छहों रस (अथवा छहों रसों से युक्त अठारह प्रकार के धान्य) बहुत (पैदा) होते हैं। इन्द्र से अधिक (विशेष रूप से) श्रेष्ठ कोई दूसरा (देव) नहीं है'। १९ (इधर) पुराणपुरुष भगवान गोकुल में अवतार को प्राप्त हो गये थे; तब पाक-शासक इन्द्र ने अभिमान धारण किया। अहंभाव, दम्भ, अहंकार ने उसे व्याप्त कर डाला। २० (यह कहा जा चुका है कि भगवान कृष्ण की) पाँचवें वर्ष की अवस्था में कमलोद्भव ब्रह्मा ने आकर वत्सों का अपहरण किया, तो उन्होंने (कृष्ण ने) असंख्यात रूप प्रदर्शित करके उनका गर्व-हरण कर डाला। २१ छठे वर्ष में उन्होंने कालिय का मर्दन किया था। (अब) सातवें वर्ष में इसी बहाने उन्होंने गोवर्धन पर्वत का उद्धरण और (उसके द्वारा) इन्द्र का गर्व-हरण आरम्भ किया। २२ अस्तु। व्रजभूषण कृष्ण नन्द से बोले, 'इन्द्र के अधीन क्या है? प्राणी अपने-अपने (पूर्व) कर्म के अनुसार संसार में बर्ताव करते हैं। २३ जिनके पूर्व (कृत) कर्म उत्तम नहीं हों, उनके लिए इन्द्र क्या कर पाएँगे? ब्रह्मा आदि के लिए भी वह कर्म कभी भी विपरीत नहीं होता। २४ (यदि) कर्म उत्तम हों, तो उत्तम फल प्राप्त होते हैं। वह इन्द्र के लिए भी विपरीत (प्रतिकूल) नहीं हो सकता। अपना पूर्वकृत (कर्म) सत्कर्म होने पर वही सचमुच (अपने लिए) देव (-स्वरूप) सिद्ध हो जाता है। २५ हमारा अपना (किया हुआ) जो दुष्कर्म (बुरा कार्य) होता है, उसी का नाम काल (अथवा) यम (मृत्यु या विनाश का देवता) है। कर्म और अकर्म (सुकर्म और कुकर्मकर्ता को) परम सुख और दुःख रूपी फल भोगवाते हैं। २६ हमने जो बीजारोपण किया हो, वह पनपते हुए अंकुर के

---

[1] अठारह प्रकार के धान्य—गेहूँ, शालि (वासमती जैसा बढ़िया चावल), तूअर, जौ, यावनाल (ज्वार), वातनलंक (मटर), चेना, चना, अलसी, मसूर, मूँग, तिल, चौलाई, उरद, कुलित्थ (कुलथी), कोदों, साँवाँ, लाख (तूअर की जाति का एक अनाज)।

भोगवी। २६ आपण जें केलें बीजारोपण। तोचि अंकुर येत तरतरोन। तैसें आपुलाल्या कर्मेंकरून। जन्ममरण प्राणियां। २७ आपुल्याचि पूर्वकर्मेंकरूनी। इंद्र आरूढला राज्यासनीं। कर्म ब्रह्मादिकां लागोनी। न सुटेचि निर्धारें। २८ तरी एक ऐका सत्य वचन। पूजा गाई आणि ब्राह्मण। हेचि सामग्री नेऊन। अर्चा गोवर्धन प्रीतीनें। २९ आमुच्या गाई तेथें चरती। तरी तो पर्वत पूजावा निश्चितीं। बुद्धीचा चालक श्रीपती। मानलें चित्तीं सर्वांच्या। ३० कुटुंबांसहित गौळी निघाले। लक्षानुलक्ष गाडे भरिले। नंदराणी तये वेळे। निघे सकळ स्त्रियांसह। ३१ वत्सांसमवेत गोभार। त्याचि पंथें जाती समग्र। नंद निघाला सत्वर। करीत गजर वाद्यांचा। ३२ पुढें जाती गोभार। मागें गोपाळांसमवेत श्रीधर। त्यामागें शकट समग्र। वरी बैसल्या गौळिणी। ३३ कीं त्या उतरल्या देवांगना। किंवा आल्या नागकन्या। तैशा त्या खंजरीटनयना। मिरवत जाती उल्हासें। ३४ दधि घृत नवनीत। अन्नांचे गाडे भरले समस्त। तों मूर्तिमंत गोवर्धन दिसत। कृष्ण दावीत सर्वांसी। ३५ सकळांनीं गोवर्धन पूजिला। अन्नांचा पर्वत पुढें

रूप में आ जाता है। उसी प्रकार अपने-अपने कर्म के अनुसार प्राणियों को जन्म और मृत्यु प्राप्त हो जाता है। २७ अपने ही पूर्वकर्म से इन्द्र राज्यासन पर आरूढ़ हो गया है। कर्म निश्चय ही ब्रह्मा आदि से भी नहीं छूटता। २८ अतः मेरी एक सच्ची बात सुनिए (मान लीजिए)— 'गायों और ब्राह्मणों का पूजन कीजिए। यही सामग्री ले जाकर प्रीतिपूर्वक गोवर्धन का अर्चन कीजिए। २९ हमारी गायें वहाँ चरती हैं। इसलिए निश्चय ही उस पर्वत का पूजन करें।' श्रीपति (कृष्ण) तो बुद्धि के चलानेवाले हैं—(अतः) सबके चित्तने उनका कहना मान लिया। ३० गोप परिवारों सहित चल दिये। उन्होंने (सामग्री से) लाख-लाख गाड़ियाँ भर दीं। उस समय नन्दरानी यशोदा समस्त स्त्रियों सहित (घर से निकलकर) चल दी। ३१ बछड़ों सहित गायों के झुण्ड —सब उसी मार्ग से जाने लगे। नन्द (भी) वाद्यों का गर्जन करते हुए झट से निकल पड़े (चल दिये)। ३२ गायों के झुण्ड आगे (आगे) जा रहे थे; (उनके) पीछे गोपालों सहित श्रीधर कृष्ण थे। उनके पीछे समस्त गाड़ियाँ थीं। उनमें गोपियाँ बैठ गयी थीं। ३३ अथवा (जान पड़ता था कि) वे देवांगनाएँ (ही धरती पर) उतर आयी हों, अथवा नागकन्याएँ आ गयी हों। वैसी (सुन्दर) वे खंजन-नयना नारियाँ उल्लास के साथ ठाटबाट से चल रही थीं। ३४ दही, घी, मक्खन और अन्न से समस्त गाड़ियाँ भरी हुई थीं। त्योंही मूर्तिमान (प्रत्यक्ष) गोवर्धन पर्वत दिखायी दिया, तो कृष्ण ने सबको वह दिखा दिया। ३५ (तत्पश्चात) सबने गोवर्धन का पूजन किया। अन्न का पर्वत (-सा ढेर)

केला। आपुल्या हातें ते वेळां। गोवर्धन जेवीतसे। ३६ विशाळ पुरुष बैसला। गौळियां विस्मय वाटला। कोणास न कळे हरिलीला। आपणचि नटला स्वरूप तें। ३७ सर्वांसी म्हणे मनमोहन। पहा कैसा जेवी गोवर्धन। तुम्ही उगेंचि अन्नें जाळून। व्यर्थ यज्ञ करीतसां। ३८ याउपरी गाईंची पूजा करिती। सकळ जन भोजनें सारिती। सुगंध चंदन चर्चिती। गौळी एकमेकांतें। ३९ किंचित उरला दिनमणी। मग बोले चक्रपाणी। आतां गोवर्धनासी प्रदक्षिणा करूनी। मग गोकुळा चलावें। ४० सिद्ध झाले सकळ जन। शकटावरी आरोहण करून। गोपाळ गाई आदिकरून। करिती प्रदक्षिणा समग्र। ४१ कृष्णास मध्यें वेष्टून। गोप करिताती कीर्तन। तो उत्साह देखोन। मनीं क्षोभला सहस्राक्ष। ४२ प्रळयमेघांच्या तोडिल्या शृंखळा। तयांसी आज्ञा देत ते वेळां। म्हणे वर्षोनियां चंडशिळा। सर्वही मारा व्रजवासी। ४३ गौळी माजले समस्त। मज न लेखिती उन्मत्त। करावा समस्तांचा घात। कृष्णासमवेत आतांचि। ४४ तामसगुणें इंद्र वेष्टिला। हरीचा प्रताप नेणवेचि त्याला। असंभाव्य मेघ वोळला। एकाएकीं

आगे रख दिया, तो उस समय गोवर्धन पर्वत अपने हाथों से (वह अन्न) खाने लगा। ३६ (सामने) विशाल (विराट) पुरुष (पर्वत के रूप में) बैठा हुआ है —(यह देखकर) गोपों को अचरज (अनुभव) हुआ। हरि की यह लीला किसी की समझ में नहीं आयी —वे ही स्वयं उस पर्वत-रूप को धारण किये हुए थे। ३७ (फिर) मनमोहन कृष्ण सबसे बोले— देखिए, गोवर्धन कैसे जीम रहा है। आप यों ही अन्न जलाकर व्यर्थ यज्ञ कर देते हैं। ३८ इसके पश्चात उन्होंने गायों का पूजन किया। (फिर) समस्त लोगों ने भोजन समाप्त कर लिया। गोपों ने एक-दूसरे को सुगन्धित चन्दन लगा लिया। ३९ सूर्य अस्त होने से किंचित शेष रहा था (थोड़ा-सा दिन शेष था)। तब चक्रपाणि कृष्ण बोले, अब गोवर्धन की परिक्रमा करके फिर गोकुल चले जाएँ। ४० (तब) सब लोग तैयार हो गये। गाड़ियों पर आरोहण करके सब गोपाल गायों आदि के साथ परिक्रमा करने लगे। ४१ कृष्ण को बीच में घेरे हुए गोप (भगवान के नाम का) कीर्तन करने लगे। उस (उत्साह पूर्वकसम्पन्न) उत्सव को देखकर सहस्राक्ष इन्द्र मन में क्षुब्ध हो उठा। ४२ उसने प्रलयमेघों की शृंखलाएँ काट डालीं और उन्हें आज्ञा देते हुए उस समय वह बोला— 'प्रचण्ड ओलों के रूप में शिलाएँ बरसाते हुए सभी व्रजवासियों को मार डालो। ४३ ये समस्त गोप उन्मत्त हो गये हैं। वे उन्मत्त (होकर) मुझे कुछ नहीं गिनते हैं। (इसलिए) कृष्णसहित समस्त का नाश अभी कर डालो।'। ४४ इन्द्र तामस गुण से घिर गया था; (अतः) श्रीहरि का प्रताप उसे ज्ञात नहीं हो रहा था। यकायक चारों ओर असम्भाव्य रूप से मेघ बरसने लगा। ४५ हाथी

व़हूंकडे । ४५ हस्तिशुंडेऐशा धारा । नभींहूनि सुटल्या सैरावैरा । त्यांत वर्षों लागल्या चंडधारा । पडती अनिवारा सौदामिनी । ४६ व़हूंकडोनि पूर व़ालिले तुंबळ । बुडालें न दिसे कोठें गोकुळ । जैसें समुद्रांत पडलें ढेंकुळ । मग तें कोठें पहावें । ४७ थरथरां कांपती सर्व जन । गारा मस्तकावरी पडती येऊन । गौळिणी बाळांसी पोटीं घरून । आक्रंदती तेधवां । ४८ कडकडोनि वर्षती चपला । महाप्रळय गौळियां ओढवला । मग दीन वदनें ते वेळां । धांवा मांडिला सकळांनीं । ४९ आक्रोशें एक फोडिती हांका । हे दीनबंधो वैकुंठपालका । हे अनाथनाथा जगदुद्धारका । ब्रीदें आपुलीं सांभाळीं । ५० इंद्रें मांडिला प्रळय फार । तूं जरी न धांवसी श्रीकरधर । तुझे कृपेचें निकेतन थोर । करूनि आम्हां रक्षीं कां । ५१ कोठें ठाव नाहीं लपावया । धांव धांव भक्तकैवारिया । गाईंच्या कांसे रिघोनियां । वत्सें लपती पोटांतळीं । ५२ नंद यशोदा गौळिणी सवेग । वरी टाकूनि आपुलें अंग । तळीं आच्छादिती श्रीरंग । रक्षिती भवभंग जगद्गुरु । ५३ अनंत ब्रह्मांडांचें पांघरुण । जो मायाचक्रचाळक निरंजन । त्यास निजांगाखालीं घालून । गौळीजन

की सूँड़ जैसी धाराएँ आकाश से चारों ओर चल दीं। उन्हीं में से प्रचण्ड ओलों की बौछार होने लगी। दुर्धर बिजलियाँ गिरने लगीं। ४६ चारों ओर से प्रचण्ड रेले बहने लगे; गोकुल डूब गया, वह (वैसे ही) कहीं नहीं दिखायी दे रहा था, जैसे समुद्र में मिट्टी का कोई ढेला पड़ गया हो, तो फिर उसे कहाँ देखें ? (वह तो पानी में डूबकर विलीन हो गया) । ४७ सब लोग थर-थर काँप रहे थे। आ-आकर ओले उनके सिर पर गिर रहे थे। उस समय गोपियाँ बच्चों को पेट (छाती) से लगाकर आक्रन्दन कर रही थीं। ४८ कड़कड़ाती हुई बिजलियाँ (मानो) बरस रही थीं। (इस प्रकार) उन गोपों पर महाप्रलय आ गया। तब उस समय सबने दीन वदन से स्तुति आरम्भ की। ४९ कई एक चीख-चीखकर पुकारने लगे— हे दीनबन्धु, हे वैकुण्ठपालक, हे अनाथों के नाथ, हे जगत के उद्धारक, अपने प्रणों का निर्वाह करो। ५० इन्द्र ने बड़ा प्रलय मचा लिया है, हे श्रीकर-धर (लक्ष्मीवर), यदि तुम नहीं दौड़े आओगे तो इस प्रलय में हम नष्ट हो जाएँगे। अपनी कृपा का हमारे लिए बड़ा आश्रयस्थान बनाते हुए हमारी रक्षा करो। ५१ (हमें) छिप जाने के लिए कहीं भी ठौर नहीं है। हे भक्तों के सहायक (-समर्थक), दौड़ो, दौड़ो। (उधर) गायों के आश्रय को प्राप्त होकर बछड़े उनके पेट-तले छिप गये थे। ५२ नन्द, यशोदा और गोपियों ने वेगपूर्वक ऊपर से (मानो) अपने तन बिछाकर उनके तले कृष्ण को छिपा रखा। इस प्रकार वे जगद्गुरु भगवान कृष्ण की रक्षा कर रहे थे। ५३ जो (स्वयं) अनन्त ब्रह्माण्डों के लिए उढ़ावन हैं, जो (स्वयं) माया के चक्र को चलानेवाले

झांकिती । ५४ यशोदा करी रुदना । कैसें वांचवूं जगज्जीवना । मग तो वैकुंठींचा राणा । काय करिता जाहला । ५५ जो इंद्राचा इंद्र तत्त्वतां । जो हरविधींसी निर्माणकर्ता । जो प्रळयकाळीं शास्ता । तो गौळियां ना भीं म्हणतसे । ५६ निजभक्तकैवारें ते वेळां । धांवोनि गोवर्धन उचलिला । गौळियांसी म्हणे सांवळा । तळीं या रे सर्वही । ५७ गोवर्धनाखालीं समग्र । आले नरनारी गोभार । पर्वत रुंदावला थोर । जीव समग्र झांकिले । ५८ अद्भुत हरीची करणी । जीवनावरी धरिली धरणी । शेषकूर्मादिकांलागोनी । चक्रपाणी आधार । ५९ उभविला ब्रह्मांडाचा डेरा । स्तंभ न देचि अंबरा । उडुगण मित्र रोहिणीवरा । वायुचक्रीं चालवी । ६० भू आप अनल अनिल निराळ । यांसीं परस्परें वैर केवळ । ते मित्रत्वें वर्तती सकळ । श्रीघननीळप्रतापें । ६१ सप्तावरण हें ब्रह्मांड । माजीं सांठवले सकळ पिंड । ऐसा ब्रह्मांडभरी उदंड । रची प्रचंड माया याची । ६२ द्वादश गांवें अग्नि

तथा निरंजन (निर्विकार) हैं, उन्हें गोपजनों ने अपने शरीरों के नीचे रखकर आच्छादित कर रखा था । ५४ यशोदा रो रही थी । (वह बोली—) जगज्जीवन को कैसे बचाऊँ ? तब वैकुण्ठ के उन राजा ने क्या किया ? ५५ जो वस्तुतः इन्द्र के इन्द्र हैं, जो शिवजी और विधाता के निर्माता हैं, जो प्रलयकाल में शास्ता होते हैं, वे गोपों से बोले— डरना नहीं । ५६ उस समय उन्होंने अपने भक्तों की सहायता के लिए दौड़कर गोवर्धन को उठा लिया । (फिर) वे साँवले (कृष्ण) गोपों से बोले— सभी (इसके) तले आ जाओ । ५७ (त्योंही) समस्त नर-नारियाँ, गायों के झुण्ड गोवर्धन के नीचे आ गये । वह पर्वत बहुत (बड़ी) चौड़ाई को (विशाल आकार को) प्राप्त हो गया और उसने समस्त जीवों को (अपने नीचे) छिपा दिया । ५८ श्रीहरि की करनी अद्भुत है । उन्होंने पानी पर धरती को धरा रखा है; वे चक्रपाणि भगवान शेष, कूर्म आदि के लिए भी आधार (-भूत) हैं । ५९ उन्होंने ब्रह्माण्ड के डेरे को उठाये रखा है; उन्होंने आकाश के लिए खम्भे नहीं (पैदा कर) दिये हैं (बिना खम्भों के आकाश को फैलाये रखा है) । वे उडुगण (तारों के समूह), सूर्य, रोहिणी-पति चन्द्र को, वायुचक्र को चला रहे हैं । ६० भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश —इनमें एक-दूसरे के प्रति केवल वैर है, (फिर भी) वे समस्त घननील भगवान के प्रताप से, मित्रता से (एक-दूसरे से) व्यवहार करते हैं । ६१ यह ब्रह्माण्ड सात आवरणों[1] से युक्त है । उसके अन्दर उन्होंने समस्त पिण्ड (शरीर) इकट्ठा कर रखे हैं । उनकी माया ऐसे प्रचण्ड ब्रह्माण्ड भर अपार (पिण्ड) निर्मित करती है । ६२ उन्होंने बारह योजन (फैली हुई) आग को निगल डाला; महा विषैले सर्प का मर्दन किया, पूतना को

१ ब्रह्माण्ड के सात आवरण : देखिए अध्याय १, पृष्ठ ३०८, टिप्पणी १

गिळिला। महाविखार कालिया मर्दिला। पूतना शोषिली अवलीला। तेणें उचलिला गोवर्धन। ६३ गोवर्धनाखालीं सकळ लोक। निवांत राहिले पावले सुख। मग तो निजजनप्राणरक्षक। वचन काय बोलिता। ६४ म्हणे भार बहुत मज झाला। अवघे मिळोनि पर्वत। तंव धांविन्नला गौळियांचा मेळा। स्थळीं स्थळीं उचलिती। ६५ एक मस्तकें उचलोनि देती। एक डांगा मुसळें उभारिती। मध्यें सप्त वर्षांची मूर्ति। अगाध कीर्ति जयाची। ६६ गौळी बळें बहु उचलिती। स्वेदपूर सर्वांगें जाती। कष्टें श्वासोच्छ्वास टाकिती। हरीस बोलती तेधवां। ६७ आम्हीं उचलिलें चंड पर्वता। तुवां करांगुळी लाविली वृथा। आम्ही कासावीस समस्त होतां। तूं हांसतोसी गदगदां। ६८ तुझी घाई जाणूं आम्ही वनमाळी। लटकीचि लाविली त्वां करांगुळी। चोरी करूनि आळी। आम्हांवरी घालिसी। ६९ शिदोऱ्या आमुच्या चोरूनि खासी। पर्वत उचलावया कां भितोसी। नवनीताचे गोळे तूंचि गिळिसी। आतां कां होसी माघारा। ७० वत्सें वळावया धाडिसी आम्हां। मागें शिदोऱ्या भक्षिसी पुरुषोत्तमा। व्यर्थ

लीलया (बिल्कुल आसानी से) शोषण करते हुए मार डाला; उन्होंने गोवर्धन को उठा लिया। ६३ समस्त लोग गोवर्धन के नीचे शान्ति के साथ ठहर गये और सुख को प्राप्त हो गये। तब अपने भक्तजनों के प्राणों की रक्षा करनेवाले वे (भगवान कृष्ण) क्या बात बोले ?। ६४ वे बोले, 'मेरे लिए बहुत बोझ हो रहा है —(इसलिए) सब मिलकर इस पर्वत को उठाओ (उठाये रखो)।' सब गोपों के झुण्ड (झुण्ड के झुण्ड गोप) दौड़े और उन्होंने स्थान-स्थान पर (आधार देकर) उस पर्वत को उठा दिया। ६५ कुछ एक (अपने-अपने) मस्तक के बल (उस पर्वत को) उठा रहे थे; कुछ एक ने लकुटियाँ और मूसल (आधार के रूप में भूमि पर) खड़े किये। उनके बीच वह सात वर्षों की मूर्ति थी, जिसकी कीर्ति अथाह है। ६६ वे गोप (अपने) बल से (पर्वत को) बहुत उठाये हुए थे। उनके समस्त अंग-अंग में पसीने के (मानो) रेले ही बह रहे थे। वे कष्ट (पीड़ा) के कारण साँस-उसाँस भर रहे थे (हाँफ रहे थे)। वे तब कृष्ण से बोले। ६७ 'हमने इस प्रचण्ड पर्वत को उठा लिया है; पर तूने तो व्यर्थ ही करांगुली लगाये रखी है। हम सबके कुलबुलाते रहते तू तो खिल-खिलाकर हँस रहा है। ६८ रे वनमाली, तेरी जल्दी (जल्दबाज़ी, उतावलापन) हम जानते हैं। तूने अपनी करांगुली झूठ-मूठ लगाये रखी है। चोरी करके तू हम पर दोषारोप लगाता है। ६९ तू हमारे सम्बल चुराकर खाता है, तो (फिर) पर्वत को उठा लेने से क्यों डर रहा है। मक्खन के गोले तू ही निगलता है। अब क्यों पीछे हट रहा है ?। ७० बछड़ों की रखवाली करने के लिए हमें भेज देता है; (और इधर हमारे पीठ-) पीछे, रे पुरुषोत्तम, सम्बल खा डालता है। रे मेघश्याम, तूने व्यर्थ ही करांगुली (पर्वत में) क्यों लगायी

करांगुळी मेघश्यामा। कासया त्वां लाविली। ७१ मग बोले वनमाळी। मी काढूं काय अंगुळी। महिमा नेणोनि गौळी। काढीं काढीं म्हणती आतां। ७२ दाखवावया चमत्कार। अंगुळी ढिलाविली अणुमात्र। तंव तो पर्वत समग्र। एकाएकीं करकरिला। ७३ दडपतांचि गोवर्धन। हांक फोडिती गौळीजन। हरि उचलीं वेगेंकरून। आम्ही दीन तुझे पैं। ७४ पर्वत उचलीं रे दयाळा। भक्तवरदायका तमालनीळा। ब्रह्मानंदा अतिनिर्मळा। उचलीं ये वेळां पर्वत। ७५ अद्भुत न कळे तुझी करणी। लिहितां न पुरे मेदिनी। वेदशास्त्रीं पुराणीं। नव जाय कीर्ति वर्णितां। ७६ आम्ही म्हणों नंदाचा किशोर। परी करणी ब्रह्मांडाहूनि थोर। तूं जगदात्मा निर्विकार। प्रत्यया आलासी आम्हांतें। ७७ द्वादश गांवें गिळिला अग्न। मूर्ख आम्ही नेणों महिमान। इंद्रादि देव समस्त गण। आज्ञाधारक तुझे पैं। ७८ ऐसें वदती गौळीजन। ऐकोनि संतोषे पद्माक्षीरमण। सव्य करांगुलीकरून। गोवर्धन उचलिला। ७९ उचलोनि दिधली अंगुळी। कृष्ण म्हणे तुम्हीं रहावें सकळीं। अवघेचि बैसोनि भूतळीं। ऊर्ध्ववदनें विलोकावें। ८० सहस्रशीर्षाचिये शक्ती। सर्षपप्राय

है'। ७१ (यह सुनकर) वनमाली कृष्ण बोले, 'तो क्या मैं अँगुली को हटा लूँ!' (इसपर) उनकी महिमा को न जानते हुए गोप अब कहने लगे—'हटा ले, हटा ले'। ७२ (तत्पश्चात) चमत्कार दिखाने के हेतु कृष्ण ने केवल अणु भर अँगुली ढीली कर दी, तब वह समस्त पर्वत यकायक करकराने लगा। ७३ गोवर्धन के दबने लगते ही गोपजन चीखने-चिल्लाने लगे। (वे बोले—) 'हे हरि, इसे वेगपूर्वक (झट से) उठा ले। हम तेरे दीन (संगी-साथी) हैं। ७४ हे दयालु, पर्वत को उठा ले। हे भक्तों के लिए वरदाता, हे तमालनील, हे ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म), हे अति निर्मल, इस समय इस पर्वत को उठा ले। ७५ तेरी अद्भुत करनी समझ में नहीं आती। उसे (बखान करते हुए) लिखते रहने पर (उसके लिए) पृथ्वी पर्याप्त नहीं होगी। वर्णन करते रहने पर भी वेद-शास्त्रों और पुराणों द्वारा तेरी कीर्ति का वर्णन नहीं किया जा पाता। ७६ हम (तुझे) नन्द का किशोर कहते हैं; फिर भी तेरी करनी ब्रह्माण्ड से बड़ी है। हमें तू निर्विकार जगदात्मा (के रूप में) अनुभव को प्राप्त हो गया है। ७७ तूने बारह योजन (फैली हुई) अग्नि निगल डाली। हम मूर्ख हैं, हम तेरी महिमा नहीं जानते। इन्द्र आदि समस्त देवगण तेरे आज्ञाकारी हैं'। ७८ गोपजनों ने इस प्रकार कहा, तो उसे सुनकर पद्माक्षीरमण (लक्ष्मीपति विष्णु के अवतार) कृष्ण सन्तुष्ट हो गये और दाहिने हाथ की अँगुली से गोवर्धन को उठा लिया। ७९ कृष्ण ने अँगुली उठाये रखी (पर्वत के नीचे टिकाये रखी) और बोले, 'तुम सब भूतल पर बैठ जाओ और (बैठे-बैठे) मुँह ऊपर उठाये देख लो'। ८० सहस्रशीर्ष शेषनाग की

वाटे क्षिती। क्षितिधरशयनें तेंचि रीतीं। क्षितिधर धरियेला। ८१ कीं पूर्वी निरालोद्भवनंदन। करतळीं धरूनि आणी द्रोण। व्रजभूषणें तेंचि रीतीं जाण। नगोत्तम धरिलासे। ८२ कीं अंडजप्रभु सुधारसघट नेतां। क्लेश न मानीच तत्त्वतां। कीं लीलाकमळ हातीं धरितां। खेद चित्ता न वाटे। ८३ जो सप्त धातूंविरहित। जो सप्तवर्षी जगन्नाथ। तो सप्त दिन सप्त रात्र-पर्यंत। उभा तिष्ठत भक्तकाजा। ८४ मूर्ति पाहतां दिसे लहान। पुरुषार्थें भरलें त्रिभुवन। चिमणाच दिसे चंडकिरण। परी प्रभा पूर्ण चराचरीं। ८५ घटीं जन्मला अगस्ती। पाहतां धाकुटी दिसे आकृती। आचमन करूनि

शक्ति के लिए पृथ्वी (उठाने में) सरसों-सी जान पड़ती है। उसी प्रकार क्षितिधर-शयन (शेषशायी भगवान) ने उस क्षितिधर अर्थात पर्वत को (बिल्कुल आसानी से सरसों के दाने-सदृश) उठाये धर दिया। ८१ अथवा पूर्वकाल में निरालोद्भवनन्दन अर्थात पवनकुमार हनुमान (शक्ति से आहत लक्ष्मण का इलाज कराने के लिए संजीवनी बूटी सहित) द्रोणपर्वत को करतल (हथेली) पर रखकर लाये थे[1]; समझिए कि वैसे ही व्रजभूषण कृष्ण ने पर्वतोत्तम गोवर्धन को उठा लिया था। ८२ अथवा पक्षिराज गरुड़ ने अमृत-घट ले जाते हुए सचमुच कोई क्लेश (कष्ट) नहीं माना था[2]। अथवा लीला-कमल हाथ में रखने में मन को कोई खेद नहीं अनुभव होता (उसी प्रकार कृष्ण ने बिना किसी कष्ट को अनुभव करते हुए उस पर्वत को करांगुली पर उठाये रखा)। ८३ जो सातों धातुओं[3] से रहित हैं, जो सप्तवर्षीय (अवस्था वाले भगवान कृष्णस्वरूप) जगन्नाथ थे, वे भक्तों के (कार्य के) हेतु सात दिन और सात रात तक खड़े रहे। ८४ (उनकी) वह मूर्ति देखने पर नन्ही दीख रही थी, फिर भी उनके पुरुषार्थ से त्रिभुवन भर गया। सूर्य की किरण छोटी ही दिखायी देती है, फिर भी उसकी प्रभा चराचर में पूर्ण (व्याप्त) हो जाती है। ८५ अगस्त्य ऋषि घट[4] में जन्म को प्राप्त हो गये, देखने पर उनकी आकृति (डीलडौल) छोटी दिखायी देती थी, फिर भी उन्होंने आचमन करते हुए समुद्र को हृदय

१ रावण द्वारा चलायी हुई शक्ति से आहत लक्ष्मण के इलाज के लिए सुषेण वैद्य को संजीवनी जड़ी की आवश्यकता थी। उसे द्रोणपर्वत से सूर्योदय के पहले लाना था। रामायण (युद्धकाण्ड) के उपरोक्त प्रसंग की ओर यहाँ संकेत है।

२ गरुड़ द्वारा अमृत-घट ले जाना— देखिए टिप्पणी १, पृ॰ १४६, अध्याय ५

३ सप्त धातु (शरीर के अन्तर्गत)—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र। अथवा वसा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और स्नायु।

४ अगस्त्य···कहते हैं, इन्द्र-शाप से मित्रावरुण देवों के घट में संचित वीर्य से इनकी उत्पत्ति हुई। अतः अगस्त्य को 'घटयोनि', 'कुम्भज' आदि भी कहा जाता है। समुद्र में रहनेवाले कालकेय दैत्यों ने समस्त पृथ्वी को उत्पीड़ित किया, तो छोटे से घट में जनमे इस ऋषि ने समुद्र का जल पी डाला और तत्पश्चात देवों ने उन दैत्यों का वध किया।

अपांपती। हृदयामाजी सांठविला।८६ वामनरूप चिमणें भासलें। परी दोन पाद ब्रह्मांड केलें। तेवीं नंदात्मजें आजी केलें। गोवर्धन उचलोनि।८७ असो अद्भुत प्रताप देखोनी। अश्रु वाहती गौळियांचे नयनीं। उर्ध्व वदनें करूनी। कृष्णवदन विलोकिती।८८ अद्भुत प्रताप देखोन। यशोदा आली धांवोन। कंठीं मिठी घालोन। कृष्णवदन पाहतसे।८९ बा रे तुजवरून ओंवाळूनियां। सांडीन आतां माझी काया। मी तुझी म्हणवितें माया। लाज वाटे सर्वेशा।९० तूं माझी जनकजननी। मी उद्धरलें तुझे गुणीं। अश्रु वाहती नंदाचे नयनीं। म्हणे त्रिभुवनीं धन्य मी।९१ यशोदा आणि रोहिणी। निंबलोण उतरिती हरीवरूनी। सकळ गोपिका लागती चरणीं। धन्य करणी दाविली।९२ आपुल्या कुरळ केशेंकरून। झाडिती श्रीहरीचे चरण। एकीं चरणीं भाळ ठेवून। आंसुवें पाय धुतले।९३ असो सात दिवस अखंडगती। जलद शिलावृष्टि करिती। मनीं भावित निर्जरपती। गौळी निश्चितीं सर्व मेले।९४ अमरेंद्र म्हणे मेघांतें। पुरे करा रे आतां

में (अर्थात उदर में) समाये रखा।८६ (भगवान विष्णु) का वामन-रूप[1] नन्हा जान पड़ा, फिर भी उसने ब्रह्माण्ड को दो पाँव भर कर दिया। उसी प्रकार नन्दात्मज कृष्ण ने आज गोवर्धन पर्वत को उठाकर (काम) बना दिया।८७ अस्तु। (कृष्ण के) इस अद्भुत प्रताप को देखने पर ग्वालों की आँखों से आँसू बहने लगे। वे (अपने-अपने) मुँह को ऊपर उठाकर कृष्ण के मुँह को देख रहे थे।८८ उनके इस अद्भुत प्रताप को देखकर यशोदा दौड़ती हुई आ गयी और गले में बाँहें डालकर कृष्ण के मुख को देखने लगी।८९ (वह बोली—) 'अरे, अब मैं तुझ पर निछावर करते हुए अपनी काया को त्यज दूँगी। मैं तेरी माता कहलाती हूँ— हे सर्वेश, मुझे (इसमें) लज्जा अनुभव हो रही है।९० तू मेरे (लिए) जनक और जननी है। मैं तेरे गुणों से उद्धार को प्राप्त हो रही हूँ।' नन्द के नयनों से आँसू बह रहे थे। वे बोले— 'मैं त्रिभुवन में धन्य हूँ'।९१ यशोदा और रोहिणी ने हरि पर राईनोन उतार लिया। समस्त गोपियाँ (श्रीकृष्ण के) पाँव लगीं (और बोलीं—) 'तूने श्रेष्ठ पावन कृति (करके) दिखा दी'।९२ उन्होंने अपने घँघराले बालों से श्रीहरि के पाँव झाड़ लिये (साफ़ किये)। कुछ एक ने उनके चरणों पर मस्तक रखते हुए आँसुओं से उन (पाँवों) को धो लिया।९३ अस्तु। बादल सात दिन अखण्डित गति से शिलाओं की (ओलों की) वर्षा कर रहे थे। देवों के राजा इन्द्र ने मन ही मन माना कि समस्त ग्वाले निश्चय ही मर गये (होंगे)।९४ तो देवेन्द्र मेघों से बोला— 'अरे अब वर्षा को समाप्त करो।' तो वहाँ बादल तत्काल खुल गये। नभोमण्डल साफ़ (मेघ-रहित, उज्ज्वल)

१ वामन-रूप—देखिए टिप्पणी ५, पृ० ६२, अध्याय २।

वृष्टीतें। तत्काळ उघडलें तेथें। शुद्ध जाहलें नभोमंडल। ९५ कीं गुरुकृपें प्रकटतां ज्ञान। तेव्हांचि अज्ञान जाय निरसोन। तैसाचि उगवला सहस्र-किरण। गौळीजन सुखावती। ९६ सकळांसी म्हणे कैटभारी। निघा आतां वेगें बाहेरी। क्षण न लागतां ते अवसरीं। व्रजजन सर्व निघाले। ९७ खालीं ठेवूनि गोवर्धन। सकळांसी भेटे जगज्जीवन। गौळी सद्गद प्रेमेंकरून। म्हणती ब्रह्म हेंचि खरें। ९८ श्रीकृष्णाची स्तुति करीत। गोकुळा आले जन समस्त। तंव गोकुळ तैसेंचि संचलें स्वस्थ। नाहीं विपरीत कोठेंही। ९९ विमानीं पाहे पुरंदर। तों गोकुळ गजबजिलें समग्र। गाई गोपाळ सर्वत्र। अति आनंदें क्रीडती। १०० आपण जे अपाय केले। ते सर्वही व्यर्थ गेले। जैसे उदकातें घुसळिलें। तक्र ना नवनीत कांहींच। १०१ मनीं विचारी वज्रधर। म्हणे श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्मावतार। पडलें मजपासून अंतर। जगद्गुरु क्षोभविला। २ असंख्य ब्रह्मांडें असंख्य शक्र। क्षणें निर्मील मायाचक्र। तो क्षोभला जगदुद्धार। कैसा विचार करूं आतां। ३ ज्या श्रीहरीचें म्यां करावें पूजन। त्यावरी उचलोनि घातले पाषाण। बुडालों अभिमान धरोन।

हो गया। ९५ अथवा (जिस प्रकार) गुरु की कृपा से (साधक में) ज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर सभी अज्ञान नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सूर्य का उदय हो गया, तो गोपजन सुख को प्राप्त हो गये। ९६ कैटभारि कृष्ण सबसे बोले, 'अब झट से बाहर निकल जाओ।' तो उस समय क्षण न लगते समस्त व्रजवासी जन (बाहर) निकल गये। ९७ (तदनन्तर) जगज्जीवन कृष्ण गोवर्धन को नीचे रखकर सबसे मिल गये। तो गोप गद्गद होते हुए प्रेमपूर्वक बोले— 'यही सच्चा ब्रह्म है'। ९८ श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए समस्त जन गोकुल (लौट) आये, तो (दिखायी दिया कि) तत्र गोकुल वैसे ही शान्त-तृप्त इकट्ठा रहा है, अर्थात सुरक्षित है; कहीं कोई विपरीत नहीं हो गया है। ९९ (जब) इन्द्र ने विमान में से देखा तो (उसे दिखायी दिया कि) समस्त गोकुल में (भीड़-भाड़ से युक्त होने से) धूम मच रही है। गायें और गोपाल सर्वत्र अति आनन्द के साथ खेल रहे हैं। १०० (उसने सोचा—) मैंने जो हानियाँ पहुँचायी थीं, (हानि करने के यत्न किये थे), वे सभी व्यर्थ हो गयी हैं, जैसे पानी में मन्थन करने पर न कुछ छाछ मिलता है, न मक्खन। १०१ (तदनन्तर) वज्र के धारी इन्द्र ने सोचा। वह बोला— श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म के अवतार हैं। (परन्तु) मुझसे उनसे दुराव उत्पन्न हो गया। मैंने उन जगद्गुरु को क्षुब्ध कर दिया। २ (जो) क्षण में असंख्य ब्रह्माण्डों का, असंख्य इन्द्रों का मायाचक्र से निर्माण कर सकते हैं, वे जगत के उद्धारक क्षुब्ध हो गये। अब मैं क्या विचार (आयोजन) करूँ। ३ जिन श्रीहरि का मुझे पूजन करना चाहिए, उनपर मैंने उठाकर पाषाण डाल दिये। मैं अभिमान धारण

आतां शरण जाईन त्यातें । ४ दिव्य सुमनें पूजिजे गोपाळा । त्यावरी सोडिल्या प्रलयचपळा । तनुमनधनेंसीं या वेळा । शरण घननीळा जाईन । ५ अहंकारें बहु माजलों । चित्स्वरूपासी अंतरलों । विपरीत ज्ञानें उन्मत्त झालों । विसरलों जगदात्मया । ६ दिसती नाना विकार भेद । तेणें अंतरला ब्रह्मानंद । हृदयीं ठसावेना बोध । न लागे वेध हरिपायीं । ७ वित्तआशा न सोडी चित्त । योषितांसंगें सदा उन्मत्त । हा खेद कांहीं न वाटे मनांत । तरी अनंत अंतरला । ८ जैसें कां पिशाच श्वान । तैसें चित्त गेलें भ्रमोन । न धरी क्षमा दया मौन । द्वेषेंकरून वेष्टिलें । ९ धरितां योग्यता अभिमान । सत्संग नावडे मनांतून । चित्त उठे कुतर्क घेऊन । तरी हरिचरण अंतरले । ११० चित्त न बैसे सदा भक्तीं । कैंची तितिक्षा उपरति विरक्ती । ऐशा अनुतापें अमरपती । सद्गद चित्तीं जाहला । १११ ब्रह्मा ऋषि भृगु देवगण । नारद तुंबर मरुद्गण । संगें घेऊनि शचीरमण । ज्ञालिला शरण

करके डूब गया हूँ— अब मैं उनकी शरण में जाऊँगा । ४ जिन गोपाल का पूजन दिव्य पुष्पों से करना चाहिए, उनपर मैंने प्रलयकाल की (-सी) बिजलियाँ गिरा दीं । (अत:) इस समय मैं तन-मन-धन के साथ उन घननील (कृष्ण) की शरण में जाऊँगा । ५ मैं अहंकार से बहुत उन्मत्त हुआ, (इसलिए) चिद्ब्रह्मस्वरूप भगवान कृष्ण से दुराव को प्राप्त हो गया । विपरीत ज्ञान अर्थात अज्ञान से मैं उन्मत्त हो गया, (फलत:) जगदात्मा (कृष्ण) को भूल गया । ६ मुझे अनेक विकार तथा भेदभाव दिखायी देते रहे, उससे मुझसे ब्रह्मानन्द अर्थात आनन्दस्वरूप ब्रह्म कृष्ण दूर हो गये । मेरे हृदय में ज्ञान जम नहीं पा रहा था; श्रीहरि के चरणों में मेरा ध्यान नहीं लग रहा था । ७ (यदि) मन वित्त अर्थात धन की आशा न छोड़ता हो, मनुष्य स्त्रियों की संगति में नित्य उन्मत्त बना रहता हो; और इस विषय में मन में कोई खेद अनुभव नहीं हो रहा हो, तो (समझिए कि उस व्यक्ति के लिए) अनन्त भगवान अन्तर को प्राप्त हो गये हैं । ८ जैसे कोई पिशाच अथवा कुत्ता हो (उसका चित्त जैसे भ्रम को प्राप्त जाता है), उसी प्रकार किसी व्यक्ति का चित्त भ्रम में पड़ गया हो, वह क्षमाभाव, दया और मौन नहीं धारण करता है; वह द्वेष से घिरा हुआ है । अपनी योग्यता के विषय में अभिमान धारण करने से उसे मन में सत्संग अच्छा नहीं लगता । उसका चित्त कुतर्क को लिये हुए भर जाता है, तो (निश्चय ही उसके लिए) श्रीहरि के चरण अन्तर को प्राप्त हो गये हैं । १०९-११० चित्त भक्ति में नित्य नहीं स्थिर बैठ पाता हो, तो कैसी क्षमा, (कैसी विषयों के प्रति) अनासक्ति, (कैसी) विरक्ति ? —इस प्रकार के अनुताप से अमरपति इन्द्र चित्त के अन्दर बहुत गद्गद हो उठा । १११ (तत्पश्चात) ब्रह्मा, भृगु (आदि) ऋषि, देवगण, नारद,

श्रीकृष्णा। १२ अष्टवसु अष्टनायिका। किन्नर गंधर्व गाती देखा। वाजत वाद्यांचा धडाका। चतुर्विध प्रकारें। १३ जाहली विमानांची दाटी। व्रजासमीप उतरे भूतळवटीं। तों गाई चारीत जगजेठी। गोपांसमवेत आनंदें। १४ देखोनियां पुराणपुरुषा। कनकदंड पडे जैसा। साष्टांग पृथ्वीवरी तैसा। इंद्रें घातला नमस्कार। १५ इंद्र आला कृष्णासी शरण। पाहावया धांवती गोकुळीं जन। म्हणती हें पूर्णब्रह्म सनातन। नेणों आम्ही कांहींच। १६ रत्नजडित मुकुट इंद्राचा पाहीं। रुळत श्रीकृष्णाचे पायीं। मग हरि बोले ते समयीं। उठीं त्रिदशेश्वरा। १७ व्यर्थ पेटलासी अभिमाना। कासया तूं शचीरमणा। तुज हे आठवण दिधली जाणा। सावध येथूनि वर्तावें। १८ स्वरूपीं होऊनि सावधान। करावें सृष्टिकार्य संपूर्ण। क्रोध

तुम्बरु[1], मरुद्गण[2] साथ में लेकर शचिरमण इन्द्र श्रीकृष्ण की शरण में जाने के लिए चले गये। १२ (देखिए उनके साथ) अष्ट वसु[3] थे, अष्ट नायिकाएँ[4] थीं; किन्नर और गन्धर्व गा रहे थे। चारों प्रकार से (चारों प्रकार के) वाद्यों के बजते रहने से बड़ा गर्जन हो रहा था। १३ (आकाश में देवों के) विमानों की भीड़ हो गयी। वे (सब) व्रज (भूमि) के समीप भूतल पर उतर गये, तो (दिखायी दिया कि) गोपों सहित जगत-श्रेष्ठ कृष्ण आनन्दपूर्वक गायों को चरा रहे हैं। १४ उन पुराणपुरुष कृष्ण को देखकर जैसे स्वर्णदण्ड पड़ा हुआ हो, वैसे पृथ्वी पर पड़कर इन्द्र ने उन्हें साष्टांग नमस्कार किया। १५ (इस प्रकार) इन्द्र कृष्ण की शरण में आ गया है। —यह देखने के लिए लोग गोकुल में दौड़ते हुए आये। उन्होंने कहा (सोचा)— ये (कृष्ण) तो सनातन पूर्णब्रह्म हैं; हम (इस सम्बन्ध में) कुछ भी नहीं जान पाये। १६ उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण के चरणों पर इन्द्र का रत्न-जटित मुकुट शोभायमान है। अनन्तर कृष्ण उस समय बोले— 'हे त्रिदशेश्वर (देवेश्वर), उठ जाओ। १७ हे शचिरमण, तुम व्यर्थ ही अभिमान को क्यों प्राप्त हो गये? समझ लो, मैंने तुम्हें यह भान करा दिया है। अब से सावधानी से बर्ताव करो। १८ (ब्रह्म-) स्वरूप में ध्यान लगाते हुए सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य (सम्पन्न)

---

१ तुम्बरु—एक गन्धर्व, जो कश्यप और प्राधा का पुत्र था। ब्रह्मलोक आदि में यह नारद के साथ गायन करते हुए भगवान का गुणगान किया करता था।

२ मरुद्गण—ऋग्वेद के अनुसार एक सुविख्यात देव-समुदाय। पुराणों के अनुसार, वे कश्यप और दिति के पुत्र हैं और संख्या में ४९ हैं। उनमें से ७-७ का एक-एक गण माना गया है।

३ अष्ट वसु—एक देव-समूह। ये देव हैं— आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास।

४ अष्टनायिकाएँ (देवलोक की)—ये देवलोक की नृत्यांगनाएँ हैं, अप्सराएँ हैं— घृताची, तिलोत्तमा, उर्वशी, रम्भा, मेनका, सुकेशी, मंजुघोषा और पूर्वचिती।

दुष्टांवरी चढवोन। साधुजन पाळावे। १९ संतांचा न करावा मानभंग। हरि भजनीं झिजवावें अंग। सांडोनि सकळ कुमार्ग। सन्मार्गेंचि वर्तावें। १२० ऋषींचे आशीर्वाद घ्यावे। वर्म कोणाचें न बोलावें। विश्व हें अवघें पाहावें। आत्मरूपीं केवळ। १२१ सत्संग धरावा आधीं। न ऐकावी दुर्जनांची बुद्धी। कामक्रोधादिक वादी। दमवावे निजपराक्रमें। २२ मी जाहलों सज्ञान। हा न धरावा अभिमान। विनोदेंही परछळण। न करावें कधींही। २३ शमदमादि साधनें। दृढ करावीं साधकानें। जन जाती जे आडवाटेनें। सुमार्ग त्यांस दाविजे। २४ क्षणिक जाणोनि संसार। सांडावा विषयांवरील आदर। असावें गुरुवचनीं सादर। चित्त सदा ठेवूनि। २५ ऐसें बोलतांचि श्रीधर। उभा राहोनियां अमरेंद्र। स्तवन करीत अपार। सकलदेवां-समवेत। २६ हे अनंतकोटिब्रह्मांडपालका। हे विश्वकारणा विश्वरक्षका। हे देवाधिदेवा जगन्नायका। मायातीता अगम्या। २७ तूं क्षीरसागरविलासी। अवतरलासी यादववंशीं। ब्रह्मानंद अविनाशी। कर्माकर्मासी वेगळा तूं। २८

करो। दुष्टों पर क्रोध करते हुए साधुजनों का पालन (रक्षण) करो। १९ सन्तों के सम्मान को न तोड़ दो (सन्तों का अवमान न करो)। श्रीहरि की भक्ति में देह लगा दो। समस्त कुमार्गों का त्याग करके सन्मार्ग ही से आचरण करो। १२० ऋषियों के आशीर्वाद (प्राप्त कर) लें। किसी के दोष को न बतायें। इस समस्त विश्व को केवल आत्म-रूप में (स्थित) देख लें। १२१ पहले सत्संग करें; दुर्जनों की मति सलाह न सुनें (मानें)। अपने पराक्रम से काम-क्रोध आदि विपक्षियों (शत्रुओं) का दमन करें। २२ यह अभिमान धारण न करें कि मैं सज्ञान अर्थात ज्ञानी हो गया हूँ। हँसी-ठठोली तक में परपीड़न न करें। २३ साधक शम, दम आदि साधना दृढ़ता के साथ करे। जो लोग कुमार्ग से जा रहे हों, उन्हें सन्मार्ग दिखा दें। २४ इस घर-गिरस्ती (संसार) को क्षणिक समझकर भोग-विषयों सम्बन्धी आदर (आसक्ति) त्याग दें। सदा गुरु के वचन के प्रति आदर सहित चित्त लगाकर रह जाएँ'। १२५ श्रीधर (श्रीकृष्ण) द्वारा ऐसा बोलते ही समस्त देवों सहित खड़े रहकर अमरेन्द्र ने (इस प्रकार) अपार स्तुति की। १२६

हे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के पालक, हे विश्व के कारण (निर्माता), हे विश्व के रक्षक, हे देवाधिदेव, हे जगन्नायक, हे मायातीत, हे अगम्य। १२७ तुम क्षीरसागर-विलासी हो, (फिर भी) यादव वंश में अवतरित हो गये हो। तुम आनन्दस्वरूप ब्रह्म हो, अविनाशी हो। तुम कर्म-अकर्म से परे हो। २८ जिनके सदन में तुम अवतार को प्राप्त हो गये हो, वे (पिता) नन्द और जननी यशोदा धन्य हैं। हे चक्रपाणि, तुमने हमारे लिए यह अवतार धारण किया है। १२९

अवतरलासी ज्याचें सदनीं। धन्य तो नंद आणि यशोदा जननी। आम्हांलागीं चक्रपाणी। अवतार तुवां धरियेला। २९ चहूं मुखीं स्तवी ब्रह्मदेव। पंचमुखीं वर्णी सदाशिव। बृहस्पति नारदादि ऋषी सर्व। अपार स्तोत्रें करिताती। १३० शक्रें कामधेनु आणविली ते वेळे। कांसेखालीं कृष्णासी बैसविलें। पूर्णब्रह्म घनसांवळें। सप्तवर्षी मूर्ति पैं। १३१ कामधेनूच्या दुग्धधारा। श्रीहरिवरी सुटल्या सैरा। गोविंदनामाचा घोष अंबरा। गाजविला सुरवरीं। ३२ गोविंद गोविंद हें नाम। सकळ नामांमाजी उत्तम। देव बहुत संभ्रम। या नामाचा करिताती। ३३ कल्पपर्यंत प्रयागवासी। मख अयुत मेरुसम सुवर्णराशी। पुण्य आचरतां गोविंदनामासीं। तरी तुलना नाहीं सर्वथा। ३४ ऋषी वेदघोषें गर्जती। किन्नर गंधर्व आनंदें गाती। अष्टनायिका नृत्य करिती। प्रेमें डुल्लती भक्तजन। ३५ दुग्धाभिषेकें ते वेळे। पाहतां सकळांचें नेत्र निवाले। धन्य धन्य तेचि जाहले। हरिमुख पाहिलें जयांनीं। ३६ उदार सुहास्य मुख चांगलें। वरी दुग्धाभिषेकें कैसें शोभलें। जैसें इंद्रनीळावरी घातलें। काश्मीराचें कवच पैं। ३७ किंवा

(तदनन्तर) ब्रह्मा ने (अपने) चार मुखों से स्तुति की। सदाशिव ने पाँच मुखों से (उनकी महिमा का) बखान किया। (देवों के गुरु) बृहस्पति, नारद आदि समस्त ऋषियों ने अपार स्तोत्र गाये (स्तुतिमय गीत गाये)। १३० उस समय इन्द्र कामधेनु को लिवा लाया (और) उसके स्तनों के नीचे कृष्ण को बैठा दिया। (उस समय वहाँ) परब्रह्म घनश्याम सप्तवर्षीय मूर्ति (के रूप में शोभायमान) थे। १३१ कामधेनु के दूध की धाराएँ श्रीहरि पर चारों ओर से निःसृत होने लगीं, तो आकाश में देवों ने गोविन्द नाम का घोष (नारा) गरजते हुए कर दिया। ३२ 'गोविन्द' —यह गोविन्द नाम समस्त नामों में उत्तम है। देव इस नाम का बहुत आदर करते हैं। ३३ किसी प्रयाग (जैसे तीर्थस्थल) में एक कल्प तक निवास करते हुए अयुत (दस सहस्र) यज्ञ करके, मेरुपर्वत के समान सुवर्ण की राशि का दान करके पुण्य कर्म का आचरण करने पर भी उसकी तुलना गोविन्द नाम (का जाप करने पर प्राप्त पुण्य) से बिल्कुल नहीं हो सकती। ३४ (उस समय) ऋषि वेदमन्त्रों का घोष गर्जनपूर्वक करने लगे। किन्नर और गन्धर्व आनन्दपूर्वक गाने लगे। आठों नायिकाएँ नृत्य करने लगीं। भक्तजन (भगवत्-) प्रेमपूर्वक डोलने लगे। ३५ उस समय उस दुग्धाभिषेक को देखकर सबकी आँखें (तृप्ति से) ठण्डी हो गयीं। जिन्होंने (उस समय) श्रीहरि के मुख को देखा, वे ही धन्य हो गये। ३६ (एक तो पहले से श्रीहरि का) मुख उदार सुहास्य से युक्त सलोना है; तिसपर दुग्धाभिषेक से वह कैसे शोभा को प्राप्त हो गया ?—जैसे इन्द्रनील पर रेशम का कवच डाल दिया हो;

मित्रतनयेवरी। लोटे जैसी जन्हुकुमारी। दुग्धाभिषेकें ते अवसरीं। पूतनारी तैसा दिसे। ३८ मंदाकिनीचें उदक त्वरित। घेऊनि आला ऐरावत। शुद्धोदकें स्नान निश्चित। इंद्र घालीत निजकरें। ३९ जे पूर्ण परब्रह्म निर्मळ। त्याचे अंगीं कैंचा मळ। परी भक्तीनें भुलला गोपाळ। साकारला म्हणोनियां। १४० दिव्य अलंकार दिव्य वस्त्रें। हरीस वाहिलीं तेव्हां शक्रें। अर्चूनियां षोडशोपचारें। रमावर तोषविला। १४१ ऐसा करोनियां सोहळा। प्रदक्षिणा करीत घननीळा। इंद्र आज्ञा मागोनि ते वेळां। जाता जाहला निजपदा। ४२ हें गोवर्धनोद्धारण ऐकतां। हरे सकळ संकट दुःखवार्ता। ब्रह्मानंदपद ये हाता। श्रवण करितां भावार्थें। ४३ असो गोकुळीं झाला आनंद। उत्साह करिती परमानंद। विलोकितां गोविंदवदनारविंद। तृप्ति नव्हे कोणातें। ४४ असो एके दिवशीं मुरारी। गाई चारीत यमुनातीरीं। तों वर्तली एक नवलपरी। ते चतुरीं परिसिजे। ४५ मयासुराचा एक पुत्र। त्याचें नांव व्योमासुर। तो दुरात्मा निर्दय क्रूर। कंसासुर धाडी तया। ४६

अथवा सूर्यकन्या यमुना पर जह्नुकुमारी गंगा फैल गयी हो, पूतनारि कृष्ण उस समय दुग्धाभिषेक से वैसे ही (शोभायमान) दिखायी दे रहे थे। १३७-१३८ (तत्पश्चात) ऐरावत झट से गंगा का जल ले आया, तो इन्द्र ने अपने हाथों से निश्चय ही उस शुद्ध उदक से (श्रीहरि को) स्नान करा दिया। ३९ जो (स्वयं) निर्मल पूर्णपरब्रह्म हैं, उनके अंग में कैसा मैल ? फिर भी गोपाल कृष्ण भक्ति से मोहित हो गये, इसलिए (मनुष्य के) आधार को प्राप्त हो गये (मनुष्य का अवतार ग्रहण कर गये)। १४० तब इन्द्र ने दिव्य आभूषण, दिव्य वस्त्र श्रीहरि को समर्पित किये। (फिर) सोलह उपचारों से अर्चन करके उसने रमापति विष्णु के अवतार कृष्ण को तुष्ट कर दिया। १४१ इस प्रकार का आनन्दोत्सव सम्पन्न करके इन्द्र ने घननील कृष्ण की परिक्रमा की, (फिर) उस समय आज्ञा लेकर इन्द्र अपने स्थान के प्रति चला गया। ४२ गोवर्धन-उद्धारण (के इस आख्यान) को सुनने पर समस्त संकट और दुःखवार्ता (दुःखदायी घटनाओं) का हरण हो जाता है; उसके भावार्थ का श्रवण करने पर आनन्दस्वरूप ब्रह्म का पद, अर्थात सायुज्य मुक्ति हाथ आती है। १४३

अस्तु। गोकुल में (सबको) आनन्द हो गया (गोकुल में आनन्द छा गया)। (लोगों ने) परमानन्दपूर्वक उत्सव मना लिया। (उस समय) गोविन्द के मुख रूपी कमल को निहारते हुए किसी को भी तृप्ति नहीं अनुभव हो रही थी। १४४ अस्तु, एक दिन मुरारि कृष्ण यमुना के तीर पर गायों को चरा रहे थे, तो एक अद्‌भुत बात घटित हुई। चतुर श्रोता उसे सुन लें। ४५ मय (नामक) असुर के एक पुत्र था। उसका नाम था व्योमासुर। वह दुरात्मा, निर्दय, क्रूर था। कंसासुर ने उसे

व्योमासुरासी म्हणे ते अवसरीं। थोर जाहला आमुचा वैरी। गाई चारावया यमुनातीरीं। नित्यकाळ येतसे। ४७ तरी तुवां सत्वर जाऊनी। वधावा तो प्रयत्न करोनी। तेणें वचन शिरीं वंदोनी। वृंदावना पातला। ४८ तेणें गोपाळरूप धरोनी। मिळाला कृष्णदासांत येऊनी। जैसा दांभिक आचार दावूनी। मैंद माना मोडीत। ४९ कीं कडुवृंदावन जैसें। वरीवरी शोभिवंत दिसे। कीं बिडालक शांत बैसे। मूषकालागीं जपतचि। १५० असुर हरीस म्हणे ते समयीं। गोप वांटूनि दो ठायीं। वाघमेंढी लवलाहीं। खेळूं म्हणे कृष्णातें। १५१ आपण वाघ जाहला ते वेळे। गोपाळांसी घेऊनि पळे। पर्वतीं घोर विवर कोरिलें। त्यांत गोपाळ कोंडी पैं। ५२ परम कपटी दुराचार। गोप एक एक नेले समग्र। गाईवत्सांचेही भार। कोंडी विवरीं दुरात्मा। ५३ गाई गोवळे नेले समस्त। एकलाचि राहिला रमानाथ। तटस्थ चहूंकडे विलोकीत। म्हणे विपरीत केलें येणें पैं। ५४ भक्तांकारणें चक्रपाणी। चहूंकडे हिंडे रानोरानीं। महापर्वतदरी ते क्षणीं। मोक्षदानी

भेज दिया। ४६ वह (कंस) उस समय व्योमासुर से बोला, 'हमारा वैरी बड़ा हो गया है। वह नित्यकाल गायों को चराने के लिए यमुना के तीर पर आ जाता है। ४७ इसलिए तुम झट से जाकर प्रयत्न करके उसका वध करो।' (कंस के इस) वचन को शिरसावंद्य मानकर वह (व्योमासुर) वृन्दावन आ पहुँचा। ४८ गोपालरूप धारण करके वह कृष्ण के दासों अर्थात उन गोप बालकों में मिल गया, जैसे कोई पाखण्डी दाम्भिक आचरण करके दिखाते हुए सिर को हिलाता रहता है; अथवा कड़ुआ वृन्दावन (फल) ऊपर-ऊपर शोभायमान दिखायी देता है, अथवा जैसे बिल्ली चूहे की ताक में लगे हुए चुप बैठती है (वैसे ही वह असुर ऊपर से सुन्दर सलोना और शान्त दिखायी दे रहा था)। १४९-१५० उस समय वह असुर श्रीहरि से बोला— 'गोपों को दो स्थानों (दलों) में विभक्त करके बाघ-भेड़ नामक खेल झट से खेलें'—इस प्रकार वह कृष्ण से बोला। १५१ (तदनन्तर) वह स्वयं बाघ हो गया और गोपालों को लेकर भाग गया। उसने पर्वत में एक घोर विवर (गुफा) बना लिया और उसमें उसने गोपालों को बन्द करके रख दिया। ५२ वह परमकपटी और दुराचारी था। एक-एक करके वह समस्त गोपालों को ले गया। उस दुरात्मा ने गायों और बछड़ों के झुण्डों को भी उस विवर में बन्द कर डाला। ५३ (जब) समस्त गायों और गोपबालों को वह ले गया, तो श्रीकृष्ण अकेले ही (शेष) रह गये। वे चकित होकर चारों ओर देखने लगे और बोले, इसने विपरीत (काम) कर डाला। ५४ (तदनन्तर) भक्तों के लिए चक्रपाणि कृष्ण वन-वन चारों ओर घूमने लगे। तो उस क्षण उन्होंने पर्वत में एक महान घाटी देखी। ५५ फिर उस समय

पाहतसे । ५५ मग मुरलीस्वरें वनमाळी । गाई पाचारीत तये वेळीं । गंगे जान्हवी भीमरथी सकळी । या गे वेगीं धांवोनियां । ५६ धांव गे तुंगभद्रे वैतरणी । वेणी पिनाकी पयोष्णी । नर्मदे सरस्वती यमुने कृष्णे वेणी । गोदे मंदाकिनी या वेगें । ५७ रेवा तापी भोगावती । प्रवरे चंद्रभागे पूर्णावती । कावेरी प्रतीची सावित्री सती । या गे वेगें सत्वर । ५८ सुवर्णमुखी ताम्रपर्णी । ऋतुमाले शिशुमाले पयोष्णी । तुंगभद्रे सुवर्णोदके यक्षिणी । धांवा आतां सत्वर । ५९ तंव त्या पर्वताचे अंतरीं । गाई आक्रंदती एकसरीं । धांवें धांवें कां मुरारी । सोडवीं झटकरी येथूनियां । १६० मुरलीस्वरें गोपाळां । आळवीतसे सांवळा । या रे या रे म्हणे सकळां । मांडूं काला आतांचि । १६१ वडज्या सुदाम्या वांकुड्या । दोंदिल्या सुंदऱ्या रोकड्या । वाल्या कोल्या बोबड्या । वेड्या बागड्या संवगडे तुम्ही । ६२ खुज्या मोठ्या

वनमाली मुरली की ध्वनि से (मुरली बजाते हुए उसके स्वर संकेत से) गायों को बुलाने लगे । (उन मुरली-ध्वनियों से वे कह रहे थे —)[1] री गंगा, री जाह्नवी, री भीमरथी, तुम सब दौड़कर झट आ जाओ । ५६ दौड़ो, दौड़ो, री तुंगभद्रा, री वैतरणी, री वेणी, पिनाकी, पयोष्णी, री नर्मदा, सरस्वती, यमुना, कृष्णा, वेण्णा, री गोदा, मन्दाकिनी, वेगपूर्वक आ जाओ । ५७ री रेवा, तापी (ताप्ती), भोगावती, प्रवरा, चन्द्रभागा, पूर्णावती, री कावेरी, प्रतीचि, सावित्री, सती, अरी वेगपूर्वक झट से आ जाओ । ५८ री सुवर्णमुखी, ताम्रपर्णी, ऋतुमाला, शिशुमाला, पयोष्णी, तुंगभद्रा, सुवर्णोदका, यक्षिणी, अब शीघ्रतापूर्वक दौड़ो । ५९ तब उस पर्वत के अन्दर गायों ने एक साथ आक्रन्दन किया — 'हे मुरारि, दौड़ो, दौड़ो, यहाँ से झट से छुड़ा लो'। १६० (तदनन्तर) वे साँवले (कृष्ण) मुरली के स्वरों द्वारा गोपालों को पुकार-पुकारकर बुलाने लगे । वे बोले, 'अहो आ जाओ, सब आ जाओ, अभी (कलेवा का) मिश्रण आरम्भ कर लें । १६१ रे वडज्या[2], सुदामा, बांकुड्या (बाँके), रे दोंदिल्या, रे सुन्दर, रोकड़ा, रे वाल्या, कोल्या, बोबड्या, वेड्या, बागड्या, तुम (समस्त) सखा (आ जाओ), खुज्या (ठिंगना), मोठ्या, रोड़क्या, कान्हा, चपल-चपला, वेधकारणा, प्रेमल, चतुर, सगुण, ज्ञानी, अहो (तुम) प्राणसखा, वेगपूर्वक आ

---

१ कहना न होगा, गायों का नामकरण अनेक स्थलों पर नदियों के नामों से किया जाता है ।

२ ये लड़कों के नाम हैं । कभी लड़कों का नामकरण देवों के नामों से किया जाता है, तो कभी उनके वर्ण, क़द-क़ामत आदि के विचार से किया जाता है । ऐसे नामों से उनकी देह आदि की, गुणदोष की ओर कभी सत्य रूप से, तो कभी मज़े में संकेत किया जाता है । यहाँ जैसे, १ वांकुड्या—टेढ़े-मेढ़े शरीर वाला, दोंदिल्या—तोंद वाला, रोकड्या—कृश, बोबड्या—तुतलाकर बोलनेवाला इत्यादि । ये यहाँ व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं, अतः उनका मूल रूप में ही प्रयोग किया है ।

रोडक्या कान्ह्या । चपळचपळा वेधकारण्या । प्रेमळ चतुरा सगुण ज्ञान्या । प्राणसखे या वेगीं । ६३ तंव पर्वताअंतरीं गोपाळ । आक्रंदती करिती कोल्हाळ । श्रीकृष्ण नाम तें वेल्हाळ । घेवोनि बाहती एकदांचि । ६४ धांव आनंदकंदा गोविंदा । हे कमळपत्राक्षा उदारा मुकुंदा । सगुणनिर्गुणब्रह्मानंदा । स्वानंदबोधा अद्वया । ६५ कोंडिलों संसारपर्वतीं । पडिलों जन्ममरणविषयावर्तीं । सांपडलों अहंकारदैत्याचे हातीं । म्हणवूनि बाहतों कृष्णा तूतें । ६६ मग तो भक्तकैवारी श्रीधर । मुखावाटे काढूनि चक्र । पर्वत फोडिला सत्वर । गोगोपवत्सें सोडविलीं । ६७ तंव प्रळयहांक देऊनी । व्योमासुर धांवे तत्क्षणीं । अतिविशाळ मुख पसरोनी । ग्रासीन म्हणे हरीतें । ६८ परमपुरुषें भक्तवत्सलें । चक्रें कंठनाळ छेदिलें । व्योमपंथें उडविलें । व्योमासुराचें शिर पैं । ६९ ऐसा करोनि पुरुषार्थ । गाईगोपाळांसमवेत । पूर्वस्थळा आले समस्त । काला करिती ते क्षणीं । १७० कळला कंसासी समाचार । व्योमासुर पावला परत्र । धगधगलें कंसाचें अंतर । म्हणे विचार कैसा करूं । १७१ तंव अकरा

जाओ । १६२-१६३ तब पर्वत के अन्दर (गुफा में) गोपाल आक्रन्दन करने लगे । वे कोलाहल मचाने लगे । वे एक साथ ही 'श्रीकृष्ण'—सुन्दर नाम लेकर पुकारने-बुलाने लगे । ६४ दौड़ो, हे आनन्दकन्द, हे गोविन्द, हे कमलपत्राक्ष, हे उदार, मुकुन्द, हे सगुण-निर्गुण (निगुण होने पर भी सगुण रूप धारण करनेवाले), हे ब्रह्मानन्द, हे स्वानन्दबोध, हे अद्वय (दौड़ो); हम संसार रूपी पर्वत में बन्द किये हुए हैं । हम जन्म और मृत्यु तथा विषय-भोग के भँवर में फँस पड़े हैं । हम अहंकार रूपी दैत्य के हाथों फँस गये हैं । इसलिए, हे कृष्ण, हम तुम्हें पुकारकर बुला रहे हैं । १६५-१६६ तब भक्तों के पक्षपाती उन श्रीधर ने मुख में से चक्र निकालकर उस पर्वत को झट से फोड़ डाला (और) गायों और गोपों को तथा बछड़ों को छुड़ा दिया । ६७ त्योंही प्रलयकारी रूप से चीखते-चिल्लाते हुए तत्क्षण व्योमासुर दौड़ा । (अपने) मुख को अति विशाल फैलाकर वह बोला— 'मैं हरि को निगल डालूँगा' । ६८ (यह देखते ही) भक्त-वत्सल उन परमपुरुष (कृष्ण) ने चक्र से उसके कण्ठनाल को (गले को) छेद डाला और व्योमासुर के सिर को आकाशमार्ग पर (ऊपर आकाश में) उछाल डाला । ६९ ऐसा पुरुषार्थ (पराक्रम) करके वे सब गायों, गोपालों सहित पूर्वस्थल पर आ गये और उन्होंने उस क्षण (खाद्य वस्तुओं का) मिलावा किया । १७०

कंस को यह समाचार विदित हुआ कि व्योमासुर परलोक को प्राप्त हो गया, तो उस (कंस) का अन्तःकरण (क्रोधाग्नि से) भभक उठा । वह बोला— 'अब मैं कैसा (क्या) विचार (आयोजन) करूँ ?' । १७१ तब (वहाँ पर) ग्यारह सहस्र अविवेकी, उन्मत्त दैत्य खड़े थे । तब कंस

सहस्त्र दैत्य। उभे होते अविचारी उन्मत्त। त्यांस कंस तेव्हां सांगत। जा रे धांवत वृंदावना। ७२ एक गोरा एक सांवळा। दोघां धरूनि आणा ये वेळां। ऐसें ऐकतां दैत्यमेळा। वेगें चालिला वनातें। ७३ पिशाचवत धांवती ते वेळां। गोपाळांभोंवता वेढा घातला। पुसती बळिराम सांवळा। कोठें आहेत सांगा रे। ७४ ऐसें देखोनि ते अवसरीं। भयभीत गोप अंतरीं। म्हणती कृष्णा लपें त्वरीं। घोंगडी तुजवरी घालितों। ७५ तुजला हे धरोनि नेती। आम्हीं कैसें जावें गोकुळाप्रती। हरि म्हणे रे कांहीं चित्तीं। भिऊं नका सर्वथा। ७६ मग श्रीकृष्ण म्हणे तयांतें। कोण्या पुरुषें धाडिलें तुम्हांतें। ते म्हणती कंसें उभयांतें। धरूं तुम्हांसी पाठविलें। ७७ ऐसें ऐकोनि ते वेळे। गदगदां हांसिन्नले गोपाळें। म्हणे कंसें मूर्खत्व केलें। इतुके पाठविले कासया। ७८ आम्हां दोघांसी दोघे जण। नेतील कडेवर घेऊन। व्यर्थ आलेती इतुके धांवोन। जा परतोन सर्वही। ७९ दोघे जणें येथें रहावें। आम्ही जेवूनि येतों तयांसवें। ऐसें बोलतां केशवें। तें मानलें तयांसी। १८० म्हणती कंस मूर्ख साचार। कां व्यर्थ पाठविले अकरा सहस्त्र। मग दोघांसी

ने उनसे कहा, 'अरे दौड़ते हुए जाओ वृन्दावन। ७२ (वहाँ) एक गोरा और एक साँवला (लड़का) है। उन दोनों को पकड़कर इस समय (यहाँ) ले आओ।' ऐसा सुनते ही उन दैत्यों का समुदाय वेगपूर्वक वन के प्रति चला गया। ७३ वे उस समय पिशाचों की भाँति दौड़े (और वन में जाकर) उन्होंने गोपालों को चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने (उन गोपालों से) पूछा— 'अरे बता दो, बलराम और श्याम कहाँ हैं?'। ७४ उस समय ऐसा देखते ही गोप (-बालक) अन्तःकरण में भयभीत हो उठे। वे बोले, 'अरे कृष्ण, झट से छिप जा; हम तुझपर कम्बल डालते (बिछाते) हैं। ७५ ये तुझे पकड़कर ले जाते हैं (ले जाना चाहते हैं), (फिर) हम गोकुल के प्रति कैसे जाएँ? (तब) हरि बोले, 'अरे मन में ज़रा भी बिल्कुल डरो मत'। ७६ तदनन्तर कृष्ण उनसे बोले, 'किस पुरुष ने तुम्हें भेजा है?', तो वे बोले, 'कंस ने तुम दोनों को पकड़ने के लिए (हमें) भेजा है'। ७७ उस समय ऐसा सुनकर गोपाल (कृष्ण) खिलखिलाकर हँस पड़े (और) बोले, 'कंस ने (तुम्हें भेजने में) मूर्खता बरती है। इतनों को किसलिए भेज दिया? ७८ दो जने हम दोनों को गोद में उठा लेकर जा सकेंगे। व्यर्थ ही दौड़ते हुए तुम इतने लोग आ गये हो। सभी लौटकर चले जाओ। ७९ यहाँ दो जने रह जाएँ। हम खाना खाकर उनके साथ आ जाते हैं।' केशव (कृष्ण) द्वारा ऐसा कह देने पर उन्होंने उसे मान लिया। १८० वे बोले, 'कंस सचमुच मूर्ख (जान पड़ता) है। उसने (हम) ग्यारह सहस्रों को व्यर्थ ही क्यों भेजा?' फिर दो को (वहाँ) रखकर (अन्य)

ठेवूनि समग्र। मथुरापंथें परतले। १८१ ऐसा क्षण एक जाहलियावरी। विचार करिती बळिराम मुरारी। म्हणती या दोघांसी ये अवसरीं। पूजा बरवी समर्पावी। ८२ जन्मपर्यंत न विसरती। ऐसी पूजा करावी निगुती। तंव ते दोघे हरीस म्हणती। त्वरितगती चला आतां। ८३ जरी तुम्ही न याल ये क्षणीं। तरी नेऊं दोघांस उचलोनी। ऐसें ऐकतांचि कर्णीं। शेषावतार क्षोभला। ८४ बळिभद्रें आपुल्या हातेंकरून। दोघांस केलें बहुत ताडण। भोंवते गोवळे मिळोन। डांगांखालीं मारिती। ८५ दोघे काकुळती करिती बहुवस। आम्ही न येऊं म्हणती सोडा आम्हांस। बहुत झालों कासावीस। सोडा हृषीकेश म्हणे तयां। ८६ श्रीकृष्ण म्हणे दोघांसी। जाऊनि सांगा कंसापाशीं। जीवदान दिल्हें आम्हांसी। बळिराम आणि श्रीकृष्णें। ८७ दोघे मथुरापंथें पळती। असंख्य गोपाळ पाठीं लागती। वाटे अडखळोनि पडती। मग राम वारीत गोपाळां। ८८ दोघांचें अंग झालें चूर। जवळी केलें मथुरापुर। पुढें जात होते अकरा सहस्र। मागें परतोनि पाहाती। ८९ तंव कुंथतचि दोघे येती।

समस्त (दैत्य) मथुरा के मार्ग से लौट गये। १८१ इस प्रकार (से) एक क्षण (व्यतीत) हो जाने पर बलराम और कृष्ण ने (कुछ) विचार किया और कहा (सोचकर तय किया), 'इस अवसर पर इन दोनों को भली (विशेष) पूजा (की सामग्री) समर्पित करें। ८२ जिसे वे जन्म (के अन्त) तक न भूल सकें, ऐसी इनकी चतुराई से पूजा करें। तब वे दोनों हरि से बोले— 'अब शीघ्र गति से चलो। ८३ यदि तुम इस क्षण न आओगे, तो हम (तुम) दोनों को उठाकर ले जाएँगे।' कानों से ऐसा सुनते ही शेष के अवतार बलराम क्षुब्ध हो उठे। ८४ (तदनन्तर) बलभद्र ने अपने हाथों उन दोनों का बहुत ताड़न किया। (फिर) चारों ओर गोपाल इकट्ठा होकर उन्हें लकड़ी से पीटने लगे। ८५ (तब) वे दोनों बहुत गिड़गिड़ाने लगे और बोले, 'हम (फिर से यहाँ) न आएँगे, हमें (अब की) छोड़ दो। हम बहुत व्याकुल हो गये हैं।' तो कृष्ण ने कहा, 'उन्हें छोड़ दो'। ८६ (फिर) श्रीकृष्ण ने उन दोनों से कहा, "कंस के पास जाकर कह दो— 'बलराम और श्रीकृष्ण ने हमें जीवदान दे दिया'"। ८७ (तब) वे दोनों मथुरा के मार्ग से भागने लगे, तो असंख्य गोपाल उनका पीछा करने लगे। वे (दोनों) मार्ग में अटक-उलझकर गिर गये, तो (बल-) राम ने गोपालों को रोक लिया। ८८ उन दोनों का अंग चूर-चूर हो गया; (इस स्थिति में) वे मथुरापुर के समीप पहुँच गये। आगे (आगे) ग्यारह सहस्र (दैत्य) जा रहे थे। उन्होंने पीछे लौटकर (अर्थात मुड़कर) देखा। ८९ (तो देखा,) तब वे दोनों काँखते-कूँखते हुए आ रहे हैं, तो उन सबने उनसे पूछा— 'अरे रीते हाथ

समस्त पुसती तयांप्रती । कां रे आलेत रिक्त हस्तीं । राम श्रीपती कोठें दोघे । १९० तंव ते बोलती दोघेजण । आम्हांसी तिहीं घातलें भोजन । जन्मवरी हें अन्न । नाहीं जाणा जेविलों । १९१ तडस भरोनि येती तिडका । मोदक बहु चारिले देखा । जेवितां आमुचा आवांका । गलित झाला तेधवां । ९२ आम्ही बहुत आलों काकुळती । पुरे म्हणूं तरी न सोडिती । अवघेचि आग्रह करिती । घ्या घ्या म्हणोनि एकदां । ९३ बळिभद्रेंचि स्वहस्तें । बहुत वाढिलें आम्हांतें । पुरे पुरे म्हणतां नंदसुतें । तरी कदा सोडीचना । ९४ सांवला उगाचि पाहत होता । तो जरी वाढावया उठता । मग आमुचा अंत न उरता । तेणें पुरे म्हणतां राहविलें । ९५ त्यांहीं आम्हांस ऐसें जेवूं घालावें । मग त्यांस कैसें धरावें । ऐसें ऐकतांचि आघवे । अकरा सहस्र बोलती । ९६ परम नीच दैत्यजाती । अन्नाकारणें लाळ घोंटिती । म्हणती सांगा रे त्वरितगती । भोजन देती आम्हां काय । ९७ अन्न त्यांजवळी आहे कीं नाहीं । सांगा आम्ही जातों लवलाहीं । तंव ते दोघे तये समयीं । बोलती काय ऐका तें । ९८ म्हणती अन्न कदा न सरे । तुम्हांसी पुरोनि तुमच्या पितरांस उरे ।

क्यों आ गये ? बलराम और श्रीपति (कृष्ण) दोनों जने कहाँ हैं ? ' । १९० तब उन दोनों जनों ने कहा, " उन्होंने हमें भोजन कराया । समझ लो, यह अन्न जन्म में (कभी) नहीं खाया था । १९१ (अधिक खाने से) पेट फूलकर दर्द कर रहा है । देखो, उन्होंने बहुत मोदक खिला दिये । उस समय खाते-खाते हमारी सामर्थ्य नष्ट हो गयी । ९२ हम बहुत आकुलता-व्याकुलता को प्राप्त हो गये । हम ' बस, पर्याप्त हुआ ' कहते, फिर भी वे नहीं छोड़ रहे थे । वे सभी ' लो ', ' लो ' कहते हुए एक साथ हठपूर्वक आग्रह किया करते थे । ९३ बलभद्र ने अपने हाथों से हमारे लिए बहुत परोसा; नन्दसुत (कृष्ण) द्वारा ' बस, पर्याप्त हो गया ', ' पर्याप्त हो गया ' कहने पर भी वह हमें कदापि नहीं छोड़ रहा था । ९४ साँवला (श्याम) तो चुपचाप देख रहा था । यदि वह परोसने के लिए उठता, तो फिर हमारा अन्त तक शेष न रह जाता —हमारा अन्त ही हो जाता । उसने ' बस, पूरा हो गया ' कहते हुए उसे ठहरा दिया (रोक लिया) । ९५ उन्होंने हमें इस प्रकार खिला दिया । फिर हम उन्हें कैसे पकड़ें ? " ऐसा सुनते ही वे समस्त ग्यारह सहस्र (दैत्य) बोले । ९६ दैत्य जाति परम नीच (जान पड़ती) है । ये (दैत्य) अन्न के लिए लार टपकाते हैं । वे बोले, ' अरे झट से बता दो, क्या वे हमें खाना देंगे । ९७ उनके पास अन्न है अथवा नहीं ? बता दो; (यदि है) तो हम झट से जाते हैं । ' वह सुनिये, तब वे उस समय क्या बोले । ९८ वे बोले, '(उनके पास का) अन्न कदापि समाप्त नहीं होता । तुम्हारे लिए पर्याप्त होकर तुम्हारे पितरों के लिए शेष रहेगा । तुम्हारे देवों का (भी) पेट

तुमच्या देवांचें पोट भरे। जा माघारे आतांचि। ६६ आतां यावें तुमचे सांगातीं। तरी आणीक आग्रह करिती। जुनी ओळख काढिती। मग न सोडिती आम्हांतें। २०० एक भोजनें झालें अजीर्ण। दुसरें त्यावरी होय प्राणोत्क्रमण। ऐसें ऐकतां अवघेजण। आले सत्वर हरीजवळी। २०१ देखिला दैत्यभार सकळ। भयभीत जाहले गोपाळ। म्हणती कृष्णें अनर्थ प्रबळ। येथें आतां मांडिला। २ हरि म्हणे सखे हो ऐका। काळत्रयीं भिऊं नका। पाठीसी मी असतां शंका। धरूं नका मनांत। ३ ऐसें बोलोनि जगन्नाथें। मग विलोकिलें ऊर्ध्वपंथें। तंव अकस्मात गंधर्व तेथें। एकादश सहस्र उतरले। ४ त्यांत मुख्य गंधर्व चित्रसेन। तेणें वंदिला जगद्भूषण। पुढें ठाकला कर जोडून। म्हणे आज्ञा द्यावी मज आतां। ५ श्रीकृष्ण म्हणे सकळां। या दैत्यांसी भोजन घाला। तंव गंधर्व धांवले ते वेळां। प्रळय मांडिला दैत्यांसी। ६ गंधर्व तोडिती नाककान। हस्तपाय टाकिती मोडून। कितीकांच्या ग्रीवा पिळून। गतप्राण ते केले। ७ ज्यांचे कां उरले प्राण। तिहीं समर्पून नासिका कर्ण। मथुरेमाजी आले पळून। शंख करिती एकदां। ८ वाहती रक्ताचे पूर। हडबडिलें मथुरानगर। लोक घाबरले समग्र। चावळती

भर जाएगा। अभी लौट जाओ'। ९९ अब यदि हम तुम्हारे साथ लौट आएँ, तो वे और आग्रह करेंगे। पुराना परिचय जतलाएँगे। फिर वे हमें नहीं छोड़ेंगे। २०० एक भोजन से (ही) अपाचन हो गया है। यदि उसपर दूसरा हो जाए, तो प्राण ही निकल जाएँगे।' ऐसा सुनते ही वे समस्त जने झट से कृष्ण के पास आ गये। २०१ गोपालों ने समस्त दैत्य समुदाय (जब) देखा, तो वे भयभीत हो उठे। वे बोले, 'कृष्ण ने यहाँ अब बड़ा उत्पात आरम्भ कर दिया है'। २ तो कृष्ण बोले, 'हे सखाओ, सुन लो। त्रिकाल (तक में) मत डरो। (तुम्हारे) पीछे अर्थात (मदद के लिए) साथ में मेरे होते हुए मन में कोई सन्देह (आशंका) न धारण करो'। ३ ऐसा बोलकर जगन्नाथ ने फिर ऊर्ध्वमार्ग की ओर देखा, तब अकस्मात वहाँ ग्यारह सहस्र गन्धर्व उतर गये। ४ उनमें मुख्य गन्धर्व था चित्रसेन। उसने जगद्भूषण कृष्ण की वन्दना की और वह उनके सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा हो गया। वह बोला, 'मुझे अब आज्ञा दीजिए'। ५ तो श्रीकृष्ण सबसे बोले, 'इन दैत्यों को भोजन करा दो' तब उस समय वे (समस्त) गन्धर्व दौड़े और उन्होंने दैत्यों के लिए प्रलय (-सा) आरम्भ किया। ६ उन गन्धर्वों ने (उन दैत्यों में से कुछ के) नाक-कान काट डाले; (कुछ के) हाथ-पाँव तोड़ डाले; कितनों की गर्दन मरोड़ते हुए उनको गतप्राण कर डाला (मार डाला)। ७ जिनके प्राण शेष बच गये, वे भी नाक-कान समर्पित करके मथुरा के पास भागते हुए आ गये। वे एक साथ चीख रहे थे। ८ रक्त के रेले बह रहे थे।

तेव्हां भलतेंचि। ९ म्हणती आणा रे वेगें घोडे। त्यांवरी सत्वर जुंपा गाडे। मांजरें आणि माकडें। रथीं जुंपा सत्वर। २१० उचला उखळें झडकरी। चुली बांधा घोड्यांवरी। कोथळ्या आणि आड विहिरी। घेऊनि शिरीं चला रे। २११ नेसा वेगीं दृढ मुसळें। डोईस गुंडाळा रे पाळें। चाटू आणिक चौपाळें। पांघरूनियां पळा वेगीं। १२ म्हैशी बांधा वांसरांवरी। गाई बांधा कुतऱ्यांशिरीं। नेसतीं वसनें झडकरी। सांडोनियां पळा रे। १३ स्त्रियांस म्हणता तेच क्षणीं। वोंटीस घ्या हो केरसुणी। पळा सत्वर येथूनी। नासिक कर्ण सांभाळा। १४ असो लोक जाहले भयभीत। गंधर्व परतले समस्त। श्रीकृष्णासी वंदोनि त्वरित। आज्ञा मागती जावया। १५ म्हणती जय जय पुराणपुरुषोत्तमा। अज अजित मेघश्यामा। सच्चिदानंदा पूर्णब्रह्मा। न कळे सीमा वेदांसी। १६ तूंचि सूत्रधारी सत्य होसी। आम्हां बाहुलियां नाचविसी। इंद्र विधि सकळ हृषीकेशी। शरण चरणांसी पैं आले। १७ ऐसें स्तवोनि पूतनाप्राणहरणा। गंधर्व गेले निजस्थाना। असो इकडे घायाळ कंससदना। बरळतचि पळताती। १८ म्हणती कंसराज्य बुडालें। तुमचें

(यह देखकर) मथुरा नगर असमंजस में पड़ गया। समस्त लोग भयभीत हो गये। वे बेतुकी बातें बोलने लगे। ९ वे बोले, 'अरे, वेगपूर्वक घोड़े ले आओ। उनको गाड़ियाँ जोत दो। बिल्लियों और लंगूरों को रथों में झट से जोत लो। २१० झट से ऊखल उठा लो; घोड़ों पर चूल्हे बाँध लो। (मिट्टी के) घड़े और कुइयाँ-कुएँ सिर पर लेकर चलो। २११ वेगपूर्वक मूसल दृढ़ता से पहन लो। सिर पर जड़ें लपेट लो। काठ के चम्मच और चारपाइयाँ ओढ़कर वेग के साथ भाग जाओ। १२ बछड़ों पर भैंसों को बाँध लो; गायों को कुत्तों के सिर पर बाँध लो। अरे, पहने हुए वस्त्र झट से उतारकर भाग जाओ'। १३ उसी क्षण वे स्त्रियों से कह रहे थे— 'कोंख में झाड़ू ले लो। अरी, झट से यहाँ से भागो। नाक-कान सम्हाल लो'। १४ अस्तु। लोग (इस प्रकार) भयभीत हो गये, तो समस्त गन्धर्व लौट आये। श्रीकृष्ण की वन्दना करके झट से उन्होंने जाने की अनुज्ञा माँगी। १५ वे बोले, 'हे पुराणपुरुषोत्तम, जय हो, जय हो। हे अज, हे अजित, हे मेघश्याम, हे सच्चिदानन्द, हे पूर्णब्रह्म, (आपकी) सीमा वेदों (तक) की समझ में नहीं आती। १६ आप ही सचमुच (सबके) सूत्रधार होते हैं (और) हम कठपुतलों को नचा रहे हैं। हे हृषीकेशी, इन्द्र, विधाता सब आपके चरणों की शरण में आ गये हैं'। १७ पूतना के प्राणों को हरण करनेवाले कृष्ण का इस प्रकार स्तवन करके गन्धर्व अपने स्थान के प्रति चले गये। अस्तु। इधर घायल (हुए दैत्य) कंस के घर बकते-बड़बड़ाते हुए आ गये। १८ वे बोले, 'कंस का राज्य डूब गया। तुम्हारी मौत निकट आ गयी है।' (यह सुनते ही) कंस का चित्त घबड़ा

मरण जवळ आलें। चित्त कंसाचें घाबरलें। धगधगलें हृदयांत। १९ कंसास सांगती घायाळ। ते दोघे प्रतापसूर्य केवळ। नखाग्रीं हा ब्रह्मांडगोळ। चालविती क्षणमात्रें। २२० एक सांवळा एक गौर। दोन्ही परब्रह्म निर्विकार। ते मनुष्यवेषें निर्धार। शेषविष्णु अवतरले। २२१ कंस टाकी श्वासोच्छ्वास। आतां काय करणें तयांस। असो गोकुळीं नंदास। श्रुत जाहलें तेधवां। २२ कीं अकरा सहस्र वीर येऊनी। गेले रामकृष्णांस घेऊनी। नंद गौळी यशोदा रोहिणी। धांवती वनीं आक्रंदत। २३ यशोदा पिटी वक्षःस्थळ। नंद वाटेसी पडे विकळ। तंव अकस्मात तमालनीळ। गाई घेऊनि परतला। २४ पुढें गाईंचे येती भार। मागें हलधर आणि श्रीधर। भोंवते गोप करिती गजर। नाना वाद्यांचे तेधवां। २५ तें देखोनियां यशोदा नंद। हृदयीं उचंबळला आनंद। ते समयीं जो जाहला ब्रह्मानंद। तो कवण वर्णूं शके पैं। २६ मंदिरा आला इंदिरावर। नंदें समारंभ केला थोर। मेळवूनियां धरामर। दानें अपार दिधलीं। २७ उत्तम हरिविजय ग्रंथ। हाचि जाणिजे शेषाद्रिपर्वत। श्रीव्यंकटेश श्रीभूसहित। परब्रह्म वसे तेथें। २८

उठा। उसके हृदय में धड़कन होने लगी। १९ वे घायल लोग कंस से बोले, 'वे दोनों केवल प्रताप के सूर्य हैं। यह ब्रह्माण्ड गोल वे नखाग्र से क्षण मात्र में चला रहे हैं। २२० एक साँवला है, तो एक गोरा है। वे दोनों ही निर्विकार परब्रह्म हैं। निश्चय ही शेष और विष्णु उन मनुष्यों के रूप में अवतरित हैं'। २२१ कंस आह भर रहा था। अब उनके बारे में क्या किया जाए? अस्तु। गोकुल में नन्द को तब (तक) यह सुनायी दिया (सुनकर विदित हुआ) कि ग्यारह सहस्र वीर आकर बलराम और कृष्ण को ले गये हैं। (यह जानते ही) नन्द, गोप, यशोदा और रोहिणी आक्रन्दन करते हुए वन की ओर दौड़े (आये)। २२-२३ यशोदा छाती पीटने लगी। नन्द विकल होकर रास्ते में गिर पड़ा, तब सहसा तमालनील (कृष्ण) गायों को लिये हुए लौटे। २४ आगे (-आगे) गायों के झुण्ड आ रहे थे। (उनके) पीछे (पीछे) हलधर (बलराम) और श्रीधर (कृष्ण) थे। (उनके) चारों ओर तब गोप अनेक वाद्यों का गर्जन कर रहे थे। २५ उन्हें देखते ही यशोदा और नन्द के हृदय में आनन्द उमड़ उठा। उस समय उन्हें जो ब्रह्मानन्द (अनुभव) हुआ, उसका वर्णन कौन कर सकेगा। २६ इन्दिरावर अर्थात विष्णु के अवतार कृष्ण अपने घर आ गये, तो नन्द ने बड़ा समारोह सम्पन्न किया। उसने भूदेवों अर्थात ब्राह्मणों को इकट्ठा करके अपार दान दिये। २२७

श्रीहरि-विजय (नामक यह) ग्रन्थ उत्तम है। इसी को शेषाद्रि समझिए। वहाँ परब्रह्म-स्वरूप श्रीव्यंकटेश श्री-भू-सहित (श्रीविष्णु लक्ष्मी-सहित) निवास करते हैं। २२८ (इस ग्रन्थ के) श्रवण सम्बन्धी विशेष

श्रवणीं आवडी विशेष। भावार्थ हाचि आश्विन मास। सुप्रेम हे विजया दशमीस। भक्त येती धांवोनियां। २९ विजयादशमी विजयदिवस। हरिविजय पाहतां सावकाश। शेषाद्रिवासी तो रमाविलास। निजदासांतें रक्षीतसे। २३० ब्रह्मानंदकृपा पूर्ण। तेंचि निर्मळ निकेतन। जेथें नलगे द्वैत वात उष्ण। श्रीधर अभंग सेवीतसे। २३१ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। संत श्रोते परिसोत। द्वादशाध्याय गोड हा। २३२

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

रुचि ही सचमुच आश्विन मास है। (उसके अन्दर) अच्छे शुद्ध प्रेम रूपी विजयादशमी के दिन भक्त (वहाँ) दौड़ते हुए आ जाते हैं। २९ विजयादशमी विजय (सूचित करनेवाला) दिवस होता है। श्रीहरि-विजय ग्रन्थ को फ़ुरसत के साथ देखने पर शेषाद्रिवासी रमाविलास (भगवान विष्णु) अपने दासों (भक्तों) की रक्षा करते हैं। २३०

आनन्दस्वरूप ब्रह्म जैसे गुरु ब्रह्मानन्द की पूर्ण कृपा ही निर्मल भवन है, जहाँ द्वैतभाव रूपी उष्ण हवा नहीं लगती (वहाँ अद्वैतभावमय शीतलता रहती है)। वहाँ श्रीधर कवि अनवरत उनकी सेवा करता है। २३१

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। सन्त श्रोता उसके इस मधुर बारहवें अध्याय का श्रवण करें। २३२

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१३

[देवान्तक, जलासुर आदि का वध]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जो परमात्मा शेषशायी। जो क्षीरसिंधूचा जांवई। तो राखितो गोकुळीं गाई। गौळियांच्या सर्वदा। १ ज्यासी नाम रूप गुण

श्रीगणेशाय नमः। जो शेषशायी परमात्मा हैं, जो क्षीरसागर के दामाद[1] हैं, वे (ही भगवान विष्णु कृष्णावतार ग्रहण करके) गोकुल में ग्वालों की गायों की नित्य रखवाली करते हैं। १ जिनके न (कोई)

[1] क्षीरसागर के दामाद— अमृत की प्राप्ति के लिए जब देव और दानव क्षीरसागर को मथ रहे थे, तब उसमें से लक्ष्मी प्रकट हुई, जिसे भगवान विष्णु ने पत्नी-रूप में स्वीकार किया। क्षीरसागर में उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी क्षीरसागर की कन्या कहाती है। इस दृष्टि से उसके पति भगवान विष्णु क्षीरसागर के दामाद माने जाते हैं।

नाहीं। निर्विकार व्यापक सर्वांठायीं। तो नंदराणीस म्हण आई। मज घेईं कडेवरी। २ जो नाना साधनीं न साधे। त्यासी यशोदा दाव्यानें बांधे। ज्याच्या कृपेनें ब्रह्मांड बोधे। तो गौळियांचे छंदें नाचतसे। ३ व्यास-वाल्मीकादि कवी। वर्णिती ज्याची सदा पदवी। तो गौळियांसांगातें जेवी। थोरपण टाकूनियां। ४ तोचि हा पंढरींत भीमातीरी। ब्रह्मानंद लीलावतारी।

नाम है, न (कोई विशिष्ट) रूप है, न (ही कोई अपना विशिष्ट) गुण (-धर्म) है, जो निर्विकार हैं, सब स्थानों को व्याप्त करनेवाले हैं, वे (निर्गुण निर्विकार निराकार ब्रह्म सगुण रूप धारण करके) नन्द की स्त्री से कहते हैं, ' अरी माँ, मुझे गोद में ले लो '। २ जो नाना (प्रकार की) साधनाओं को सम्पन्न करते रहने पर भी (बड़े-बड़े योगियों को भी) प्राप्त नहीं हो जाते, उन्हें (एक साधारण स्त्री) यशोदा पगहे से बाँधती है; जिनकी कृपा से ब्रह्माण्ड का (ज्ञानार्थी साधक को) ज्ञान होता है, वे ग्वालों की इच्छा के अनुसार नाच रहे हैं (ग्वालों की इच्छा के अनुसार कोई भी काम कर रहे हैं)। ३ व्यास, वाल्मीकि आदि कवि जिनकी महिमामयी कीर्ति का सदा वर्णन करते हैं, वे अपनी बड़ाई (महानता का विचार) छोड़कर (भूलकर) ग्वालों के साथ जीमते हैं। ४ पण्ढरपुर (नामक इस पावन नगर) में भीमानदी के तट पर वे ही आनन्दस्वरूप ब्रह्म श्रीविट्ठल भगवान के रूप में लीलावतार ग्रहण करके समपद[1] मुद्रा में एक ईंट[2] पर (खड़े) रहकर भक्तों की बाट जोह रहे हैं। ५

१ समपद मुद्रा— समस्त शरीर सौष्ठव के साथ सीधा रखकर दोनों पाँव एक ताल अन्तर पर एक रेखा में रखते हुए खड़े रहने की मुद्रा।

२ एक ईंट पर खड़े भगवान— पण्ढरपुर के सुविख्यात विट्ठल मन्दिर में भगवान की प्रतिमा ईंट पर खड़ी प्रतिष्ठित है। भक्तजनों की मान्यता है कि पुण्डलिक नामक एक ब्राह्मणपुत्र ने पत्नी-प्रेम से कर्तव्यभ्रष्ट होकर अपने माता-पिता की इतनी उपेक्षा की कि उन्हें घर छोड़कर काशी जाकर रहना पड़ा। कुछ दिन पश्चात पुण्डलिक भी उनको खोजते हुए घर से चल दिया। मार्ग में कुक्कुट ऋषि के आश्रम में उसने देखा कि गंगा-यमुना-सरस्वती आकर ऋषि को प्रतिदिन स्नान कराती हैं। पुण्डलिक को विदित हुआ कि यह कुक्कुट ऋषि की मातृ-पितृभक्ति का फल है। उसे अपने आचरण पर पछतावा हुआ। फिर उस ऋषि के उपदेश से प्रभावित होकर वह माता-पिता को काशी से लौटाकर अपने घर ले गया और उनकी सेवा में रत रहने लगा। उसकी पितृभक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु उसके यहाँ आ गये, जब वह अपने पिता की चरण-सेवा कर रहा था। चरण-सेवा में बाधा न आए, इसलिए स्वयं न उठकर ही उसने एक ईंट श्रीविष्णु के पास फेंक दी और उसपर खड़े रहने को कहा। ईंट पर खड़े रहकर उन्होंने पुण्डलिक से वर माँगने को कहा। तो वह बोला— आप इसी मुद्रा में नित्य यहाँ खड़े रहें, ' पुण्डलिक-वरद ' नाम धारण करें और यह स्थान ' पुण्डलिकपुर ' कहलाए। भगवान विष्णु ने ' तथास्तु ' कहा। विष्णु ही वस्तुत: ' विट्ठल ' हैं, और पुण्डलिकपुर पण्ढरपुर है।

समपद जोडोनियां विटेवरी। वाट पाहात भक्तांची। ५ बारावा अध्याय संपतां। काय वर्तली तेथें कथा। अकरा सहस्र कंसदूतां। त्रासवूनि गेले गंधर्व। ६ याउपरी एके दिनीं। यमानुजातीरीं कैवल्यदानी। अनंत गोपाळ मिळोनी। खेळ मांडिला तेधवां। ७ ठायीं ठायीं वृंद गोपाळांचे। खेळ खेळती नाना परींचे। नाना कष्ट साधनांचे। तपें तीव्र आचरती। ८ हरीसी सांडूनि एकीकडे। ठायीं ठायीं मांडिलीं बंडें। नाना मतें साधनकाबाडें। नेणोनि हरीसी शोधिती। ९ एकीं वादप्रतिपाद केला। हमामा घालितां जन्म गेला। एकीं हुतुतू खेळ मांडिला। अहंकृति जाणोनियां। १० एकांनीं भेदाची हुमली। घालितां तीं बहु श्रमलीं। अहंममतेची चेंडूफळी। एक भ्रमणचक्रें खेळती। ११ काळविवंचना करिती पाहीं। हेचि एक खेळती लपंडाई। एकीं वायुधारणाबळें पाहीं। केली

बारहवें अध्याय के समाप्त होने तक वहाँ क्या कथा (वर्णित) हुई—उस अध्याय के अन्त में किस कथा का वर्णन किया गया ? (वहाँ यह कहा गया कि) गन्धर्व (कृष्ण के आदेश के अनुसार) कंस के ग्यारह सहस्र दूतों को कष्ट को प्राप्त कराकर चले गये। ६ इसके पश्चात तब एक दिन यमुना के तीर पर कैवल्य पद के दाता श्रीकृष्ण और असंख्य गोपालों ने मिलकर खेल (खेलना) आरम्भ किया। ७ गोपालों के दल स्थान-स्थान पर नाना प्रकार के खेल खेलने लगे। वे नाना प्रकार के साधनाओं के कष्ट उठाने लगे; उग्र तपों का आचरण करने लगे। ८ श्रीहरि को एक ओर छोड़कर उन्होंने स्थान-स्थान पर (पाखण्डात्मक मतों के अनुसार आचरण करते हुए) विद्रोह आरम्भ किया। वे श्रीहरि (के सच्चे रूप) को न जानते हुए नाना प्रकार के मतों (पन्थों) के अनुसार साधनाएँ और परिश्रम करके (श्रीहरि) की खोज करने लगे। ९ कुछ एक ने वाद-प्रतिवाद किया। (वाद के रूप में) हुमरी-स्वरूप खेल खेलते-खेलते उनका जन्म बीत गया। कुछ एक ने अहंकृति अर्थात अपनी करनी को ही सब कुछ समझकर कबड्डी नामक खेल आरम्भ किया। १० कुछ एक हुमरी खेलते-खेलते (चरवाहों का एक खेल जिसमें मुँह से खिलाड़ी बराबर विशिष्ट ध्वनि उत्पन्न करते रहते हैं) बहुत थक गये। कुछ एक अहंममता रूपी गेंद-बल्ला खेल रहे थे, अर्थात अहंकार और ममत्व में उलझकर एक दूसरे का सामना करके विजय प्राप्त करने का यत्न कर रहे थे। कुछ एक भ्रमण-चक्र खेल रहे थे— अर्थात चक्र की भाँति वृत्ताकार अपने ही चारों ओर घूम रहे थे (इहलोक को भ्रम में पड़कर सत्य समझकर व्यवहार करके भँवर की भाँति घूम रहे थे)। ११ देखिए, कुछ एक यह विचार कर रहे थे कि काल अर्थात मृत्यु को कैसे टाल दें (जब कि वह उनका पीछा कर रही है) —कुछ एक यही लुकाछिपी खेल रहे थे।

वावडी शरीराची । १२ तीर्थभ्रमणाचा भोंवरा । घेवोनि खेळती एकसरां । एक जन्ममृत्यु येरझारा । विटीदांडू खेळती । १३ सिद्धींचे साधनें सुरवाडती । कडेकपाटें एक शोधिती । परी हरिरूपीं न मिळती । अहंममते भुलोनियां । १४ ऐसे बहुत गुंतले खेळीं । दुरूनि पाहे वनमाळी । तों त्यांच्या गाई सकळी । रानोमाळ चौताळती । १५ दश इंद्रियें मनोवृत्ती । खडाणा गाई न वळती । गोपांसी म्हणे जगत्पती । गाई आधीं सांभाळा रे । १६ गाई वळूनि स्थिर करा । मग खेळ तुमचा अवघा बरा । ऐसें बोळतां जगदुद्धारा । गोप धांवती वळावया । १७ करणांचिया नाना वृत्ती । दुरील गाई नाटोपती । विषयतृण देखती । तों तों धांवती पुढें पुढें । १८ आडमार्गें गाई धांवती । नाना कडेकपाटीं रिघती । तृष्णेच्या खळग्यामाजी पडती । कदा न सरती माघारां । १९ वासनेच्या जाळ्या थोर । त्यांत तोंडें घालिती वारंवार ।

देखिए, कुछ एक ने वायुधारणा अर्थात श्वासनिरोधनात्मक प्राणायाम-स्वरूप योगसाधना के रूप में अपनी (-अपनी) देह को पतंग बना लिया । १२ कोई एक तीर्थस्थल-भ्रमण रूपी लट्टू एक साथ खेल रहे थे, तो कुछ एक जन्म और मृत्यु के रूप में आवागमन रूपी गुल्ली-डण्डा खेल रहे थे । १३ सिद्धियों की प्राप्ति के लिए साधना करने से कुछ एक सुख को प्राप्त हो रहे थे । कुछ एक गिरि-कन्दराओं में (श्रीहरि को) खोज रहे थे, परन्तु अहंकार तथा ममत्व अर्थात देह सम्बन्धी अहंकार एवं ममत्व से मोहित होकर श्रीहरि-रूप में (ब्रह्म में) नहीं मिल पा रहे थे । १४ इस प्रकार वे बहुत प्रकार के खेलों में उलझे हुए थे । वनमाली श्रीकृष्ण यह दूर से देख रहे थे; तब उनकी समस्त गायें क्षुब्ध होकर वन-वन बुरी तरह घूमने लगीं । १५ दसों इन्द्रियाँ तथा मनोवृत्तियों रूपी अड़ियल-लतही गायें सम्हल नहीं रही थीं । (यह देखकर) जगत्पति उनसे बोले— 'पहले (अपनी-अपनी) गायों की देखभाल करो । १६ गायों की देखभाल करते हुए (गायों का ध्यान रखते हुए) उन्हें स्थिर कर लो— अनन्तर तुम्हारा समस्त खेल अच्छा हो जाएगा । (यहाँ पर यह सूचित है कि इन्द्रियाँ और मनोवृत्तियाँ अड़ियल गायें हैं, वे चंचल हैं । जब तक अपनी मनोवृत्तियाँ अविचल नहीं हो पातीं, मन चंचल बना रहता है, तब तक समस्त साधनाएँ व्यर्थ होती रहती हैं) ।' जगदुद्धारक कृष्ण द्वारा ऐसा बोलते ही गोप (गायों की) देखरेख करने के लिए दौड़े । १७ इन्द्रियों की नाना प्रवृत्तियों रूपी दूरस्थ गायें वश में नहीं आतीं । वे भोग विषयस्वरूप घास को (जैसे-जैसे) देखती हैं, वैसे-वैसे आगे-आगे दौड़ती हैं । १८ (मुख्य और उचित मार्ग को छोड़कर) कष्टप्रद अनुचित मार्ग पर (कुमार्ग पर) गायें दौड़ती हैं; वे गिरि-कन्दराओं में पैठ जाती हैं; प्यास के गड्ढे में गिर जाती हैं और फिर कभी भी पीछे नहीं लौटती हैं । १९ वासना

तेथें कामक्रोधादि किरडें अपार। कडकडोनि डंखिती। २० द्वेष गर्व मद मत्सर। हेचि सावजें भयंकर। विकल्पगुल्में अतिघोर। निर्गम नोहेचि तेथोनि। २१ निंदेचे ओरबडती कांटे। नाना कुतर्क आडफांटे। त्रिविध तापाचे चपेटे। भयंकर वणवा हा। २२ ऐशा गाई विषयतृण चरती। परी सर्वथा नव्हे तृप्ती। मग स्वर्गसुखाच्या पर्वतीं। ऊर्ध्वगती चढियेल्या। २३ सुकृताचें तृण सरे। मग फिरतां न ये माघारें। लोटूनि देती एकसरें। दुःखभारें आरडती। २४ जैसें भाडियाचें घोडें देख। कीं वेश्येची मैत्री क्षण एक। कीं उशीं घेतला दंदशूक। बहु शीतळ म्हणोनियां। २५ कीं विषाचें शीतळपण। कीं ओडंबरीचें भूषण। कीं गंधर्वनगरींचें सैन्य। तैसें जाण स्वर्गसुख। २६ असो गाई गेल्या सकळ। बहिर्मुख अवघे गोपाळ। मग धांवती रानोमाळ। गोगवेषणाकारणें। २७ गाई नाटोपती सर्वथा।

के झुरमुट बड़े-बड़े होते हैं। (वे गायें उनमें बार-बार मुँह डालती हैं) वहाँ (उन वासना रूपी झुरमुटों में) काम-क्रोध आदि विकार रूपी असंख्य सँपेले होते हैं। वे दाँतों को पीसते हुए कसकर काटते हैं। २० द्वेष, घमण्ड, मद, मत्सर ही भयावह श्वापद हैं। (उन वनों में) विकल्प रूपी अतिघोर गुल्म (झाड़ियों के झुरमुट) होते हैं। (उनमें एक बार पैठ जाने पर) वहाँ से बाहर निकल आना होता ही नहीं। २१ निन्दा रूपी काँटे खरोंचते हैं; नाना (प्रकार के) कुतर्कों के विघ्न (वहाँ उपस्थित) होते हैं। (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक नामक) तीनों प्रकार के ताप के आघात (ही मानो) डरावना दावानल है। २२ इस प्रकार की गायें भोग्य विषय रूपी घास खाती रहती हैं; परन्तु उनकी बिल्कुल तृप्ति नहीं हो पाती। फिर (वे मानती हैं कि) स्वर्ग के-से सुख के पर्वत पर वे ऊर्ध्वगति से चढ़ गयी हैं। २३ (वहाँ जाने पर) सुकृत अर्थात पुण्य की घास समाप्त हो जाती है, फिर (वहाँ से) पीछे मुड़ना नहीं आता। (वहाँ से) एक साथ उन्हें धकेल देते हैं, तब वे दुःख के बोझ से (दबकर) चीखती-चिल्लाती रहती हैं। २४ देखिए, वह स्वर्ग-सुख ठीक वैसा ही है, जैसे भाड़े का घोड़ा होता है (वह तो उस मालिक का होता है, हमारा अपना नहीं हो सकता), अथवा वेश्या की एक क्षण की मित्रता जैसा होता है, अथवा बहुत शीतल मानकर साँप को सिरहाने (तकिये-सदृश) लिया हो। २५ अथवा स्वर्ग-सुख को वैसा ही समझिए, जैसे विष की शीतलता होती है, अथवा जादूगर द्वारा निर्मित आभूषण (क्षणिक, मिथ्या) होता है, अथवा गन्धर्व नगरी की सेना होती है। २६ अस्तु। समस्त गायें (दूर) चली गयीं। (इधर) सब गोपाल प्रवृत्तिमार्गी थे। तब वे गायों को खोजने के लिए वन-वन बेतहाशा दौड़ने लगे। २७ गायें तो बिलकुल वश में नहीं आ रही थीं। (इधर)

शिणले गोपाळ धांवतां। इंद्रियें निग्रह करूं जातां। तों तीं अधिक खवळती। २८ नेत्र भलतेंचि विलोकिती। म्हणोनि झांकिले अहोरात्रीं। तों कर्ण नसतेंचि ऐकती। कैसीं आकळती इंद्रियें। २९ जिव्हां आठवी रस। घ्राण मागे सुवास। त्वचा मागे स्पर्श। थोर उत्कर्ष इंद्रियांचा। ३० मन इंद्रियांचा धनी। एकादश स्वर्ग यापासूनी। त्या मनासी ठायीं वळोनी। हरीविण कोणा नाणवे। ३१ मन हें व्याघ्र भयंकर। दश इंद्रियें त्याचीं पिलीं साचार। जिकडे उडी घेई मनोव्याघ्र। पिलीं समग्र तिकडेचि। ३२ या मनोव्याघ्रें थोर थोर। गिळिले पुन्हां दुजे गिळणार। भगांकित केला पुरंदर। कलंकी चंद्र जाहला। ३३ असो बहुतांचीं नांवें घेतां। निंदा

गोपाल दौड़ते-दौड़ते थक गये। इन्द्रियों का निग्रह करने जाने पर वे तो अधिक ही क्षुब्ध हो जाती हैं। २८ आँखें अनचाहा (अनुचित-अहितकारी) देखने लगती हैं, इसलिए दिन-रात उन्हें (यदि) बन्द कर दिया, तब तो कान सुनने लगते हैं। (इस प्रकार होने पर) इन्द्रियाँ क़ाबू में कैसे आ सकती हैं। २९ जीभ रसों को याद करती है; नाक सुगन्ध माँगती है, त्वचा स्पर्श माँगती है (चाहती है)। इस प्रकार इन्द्रियों (की प्रवृत्तियों का, उनकी सुखलोलुपता का) परम उत्कर्ष हो जाता है। ३० मन तो इन्द्रियों का स्वामी होता है। उससे ग्यारह स्वर्ग मिलते हैं। उस मन को (कुमार्ग, इन्द्रियों की अधीनता से) लौटाकर (उसके अपने उचित) ठिकाने पर बिना श्रीहरि के कोई नहीं ला सकता। ३१ यह मन (मानो) कोई भयानक बाघ है; दसों इन्द्रियाँ उसके सचमुच बच्चे (शावक) हैं। जिस ओर मन रूपी बाघ छलाँग लगाता है, समस्त शावक उसी ओर जाते हैं। ३२ इस मन रूपी बाघ ने (पूर्वकाल में) बड़ों-बड़ों को निगल डाला है; फिर वह दूसरों को निगल डालेगा। उसने पुरन्दर इन्द्र[1] को भगों से[2] अंकित कर दिया, तो चन्द्र[3] कलंकित हो गया। ३३ अस्तु। बहुतों के नाम लेने पर सचमुच (मेरे मुख से दूसरों की) निन्दा हुआ चाह रही है (उसे मैं टालना चाहता हूँ)।

१ पुरन्दर इन्द्र— इन्द्र ने अत्यधिक बलशाली पुर नामक दैत्य का संहार किया, इसलिए उसे 'पुरंदर' उपाधि प्राप्त हो गयी।

२ इन्द्र का भगों से युक्त हो जाना— अहल्या की प्राप्ति न होने पर भी इन्द्र गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या के प्रति आसक्त बना रहा। एक दिन गौतम के स्नान के लिए चले जाने पर इन्द्र ने उनका रूप धारण किया और आश्रम में आकर अहल्या से समागम किया। गौतम को लौटने पर इस बात का पता चला, तो उन्होंने इन्द्र को अभिशाप दिया कि उसका शरीर शत-शत (एक सहस्र) भगों से युक्त हो जाए। तो उसका शरीर सहस्र भगों से युक्त हो गया। शाप-विमोचन के रूप में गौतम ने उन भगों को नेत्रों में परिवर्तित कर दिया। (इसलिए इन्द्र सहस्रनयन, सहस्राक्ष कहाता है।)

३ चन्द्र ने गुरु-पत्नी तारा का अपहरण किया और उसे अपने पास अपनी स्त्री के समान रखा। इस पापकर्म के कारण चन्द्र कलंकित हुआ।

घडों पाहे तत्त्वतां। गोपाळ शिणले बहु धांवतां। गाई सर्वथा नाटोपती। ३४ ऐसे गोपाळ बहु श्रमले। म्हणती काय करावें ये वेळे। धरा जगद्वंद्याचीं पाउलें। तरी आकळे गोवृंद। ३५ मग सकळ गोपाळ त्या अवसरा। शरण आले इंदिरावरा। म्हणती तुजवांचून मुरहरा। गाई कदा नाकळती। ३६ तुजवेगळीं बंडें। केलीं आम्हीं उदंडें। बहुत साधनें प्रचंडें। करोनियां शीणलों। ३७ हरि तुझी कृपा न होतां। अवघीं साधनें गेलीं वृथा। आतां उठें तूं अच्युता। वळीं गाई आमुच्या। ३८ ऐसे गडी सहज बोलती। कृपारस दाटला हरीच्या चित्तीं। वंशवाद्य घेऊनि हातीं। कमलापति ऊठला। ३९ मुरलीधरें ते अवसरीं। मुरली लाविली अधरीं। मुरलीनादें मुरारी। मन मोहवी गाईंचें। ४० ऐकतां मुरलीचा स्वर। गाई टवकारल्या समग्र। धांवत आल्या सत्वर। सर्व विषय टाकूनियां। ४१ हरीभोंवत्या हंबरती। एकी प्रीतीनें चरण चाटिती। पुच्छें वर करूनि

(इधर) गोपाल दौड़ते-दौड़ते बहुत थक गये, (फिर भी) गायें क़ाबू में बिल्कुल नहीं आ रही थीं। ३४ इस प्रकार गोपाल बहुत थकावट को प्राप्त हो गये। उन्होंने कहा (सोचा)— इस समय क्या करें। (अब तो) जगद्वन्द्य कृष्ण के पाँव पकड़ लें, तो ही गायों का झुण्ड वश में आ जाएगा[1]। ३५ अनन्तर उस समय समस्त गोपाल इन्दिरावर भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण की शरण में आ गये और बोले— ' हे मुरहर (मुर दैत्य का संहार करनेवाले), बिना तुम्हारे गायें कभी भी वश में नहीं आ पाएँगी। ३६ तुम्हें छोड़कर (तुम्हारी उपेक्षा करके) हमने बड़े-बड़े पाखण्डमय विद्रोह किये; बहुत प्रचण्ड साधनाएँ करके हम थकावट को प्राप्त हो गये। ३७ हे हरि, तुम्हारी कृपा न होने से (हमारी) समस्त साधनाएँ व्यर्थ हो गयीं। अब, हे अच्युत, तुम उठो और हमारी गायों को सम्हाल लो (लौटा लाओ) '। ३८ इस प्रकार वे साथी-संगी स्वाभाविक रूप से बोले, तो श्रीहरि के चित्त में कृपा रूपी रस उमड़ उठा। (तदनन्तर) वंशवाद्य अर्थात बाँसुरी हाथ में लेकर कमलापति विष्णुस्वरूप कृष्ण उठ गये। ३९ मुरलीधर कृष्ण ने उस समय मुरली ओंठों से लगा ली। फिर मुरारि कृष्ण मुरली के स्वर से गायों के मन को मोहित करने लगे। ४० मुरली के स्वर को सुनते ही समस्त गायों के कान खड़े हो गये और वे समस्त विषयों (स्वरूप घास, जल) को छोड़कर झट से दौड़ती हुई आ गयीं। ४१ श्रीहरि के चारों ओर (खड़ी होकर) वे रँभाने लगीं। कुछ एक प्रेम से उनके पाँवों को चाटने लगीं, तो कुछ एक पूँछ

१ गो = १ गाय, २ इन्द्रिय। यहाँ गायों के झुण्ड को वश में करने के लिए कृष्ण की शरण में जाने की बात कही है। अप्रत्यक्ष रूप में यहाँ पर सूचित है कि कृष्ण की शरण में जाने पर मनुष्य का मन इन्द्रियों का दास बना नहीं रहेगा।

नाचती। गोप पाहती विस्मित। ४२ गोप म्हणती घननीळा। धन्य तुझी अगाध लीला। क्षणमात्रें गाई सकळा। तुवां वळविल्या मुरलीस्वरें। ४३ कृष्णपायीं घालिती मिठी। प्रेमें सद्‌गद होती पोटीं। म्हणती धन्य भाग्य आमुचें सृष्टीं। गडी जगजेठी जोडला। ४४ कळंबातळीं घननीळ। पांवा वाजवी रसाळ। सभोंवते मिळोनि गोपाळ। गदारोळ करिताती। ४५ पेंधा म्हणे ऐका गोष्टी। पूर्वीं खेळे बहुत जाहले सृष्टीं। आम्ही जाहलों तेचि पुढती। खेळे देखा सर्वही। ४६ गडी म्हणती पेंधिया। ते कोण सांगें लवलाह्या। पेंधा म्हणे चित्त देऊनियां। सावध ऐका सकळही। ४७ पूर्वीं नीलग्रीवसुत षडानन। संसार मिथ्यारूप जाणोन। कपाटीं बैसला जाऊन। स्वस्वरूप चिंतित। ४८ विधिपुत्र नारद जाणा। तो कळी लावावया बहु

ऊपर उठाये नाचने लगीं। गोप विस्मित होकर यह देख रहे थे। ४२ तत्पश्चात गोप बोले—‘ हे घननील कृष्ण, तुम्हारी अथाह लीला धन्य है। मुरली के स्वर से समस्त गायों को तुम लौटा ले आये ’। ४३ उन्होंने कृष्ण के पाँवों को (अपने हाथों से) लपेट लिया। वे प्रेम से मन में बहुत गद्‌गद हो उठे और बोले, ‘ संसार में हमारे भाग्य धन्य हैं (जब कि) जगद्-श्रेष्ठ कृष्ण को हमने साथी के रूप में प्राप्त किया ’। ४४ घननील कृष्ण कदम्ब वृक्ष के तले मुरली रसमय (मधुर स्वर में) बजा रहे थे। तो गोपाल चारों ओर इकट्ठा होकर गरजने लगे। ४५ (तब) मनसुखा बोला, ‘ (मेरी) बात सुन लो। पूर्वकाल में इस जगत में बहुत खिलाड़ी हो गये। देखो, वे ही (पूर्वकाल के खिलाड़ी) आगे चलकर (इस समय) हम सभी (के रूप में यहाँ उपस्थित) हो गये हैं ’। ४६ (यह सुनकर) साथियों ने कहा, ‘ अरे मनसुखे, झट से बता दो (पूर्वकाल के) वे (खिलाड़ी) कौन थे ? ’ तो मनसुखा बोला, ‘ तुम सभी मन लगाकर अवधानपूर्वक सुन लो। ४७ पूर्वकाल में नीलग्रीव शिवजी के षडानन[1] (अर्थात स्कन्द) नामक (छः मुखधारी) पुत्र संसार को मिथ्यास्वरूप समझकर एक गुहा में जाकर आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए बैठ गये। ४८ समझ लो, ब्रह्मा के पुत्र नारदजी[2] हैं। वे कलह लगाने में बहुत चतुर हैं। वे (दूसरों

---

१ षडानन— शिवजी का पार्वती से उत्पन्न पुत्र और देवों का सेनापति। पौराणिक मान्यता के अनुसार यह तारकासुर का वध करने के लिए ही अवतीर्ण हुआ। इसने सात दिनों की आयु में उस असुर का वध किया। **इस**के छः मुख थे, इसलिए उसे षडानन, षण्मुख कहते हैं। यह स्कन्द, कार्तिकेय आदि नामों से भी जाना जाता है। यह देवस्त्रियों को बुरी नजर से देखने लगा, तो पार्वती ने उसे सन्मार्ग पर लाने के हेतु प्रत्येक स्त्री में अपना रूप दिखाना आरम्भ किया। उससे पश्चात्ताप-दग्ध होकर वह स्त्रियों के प्रति तथा समस्त भोग-विलासों के प्रति अत्यधिक विरक्त हो गया।

२ नारद— ये ब्रह्मा के मानसपुत्र, धर्मज्ञ तथा संगीत के आचार्य माने जाते हैं। ये भगवान विष्णु के (अर्थात कृष्ण तथा राम के भी) सर्वश्रेष्ठ भक्त माने जाते हैं। ये

शाहणा । परस्परें लावूनि भांडणा । आपण कौतुक पाहातसे । ४९ व्यासपुत्र शुक आगळा । तेणें काम सगळाचि गिळिला । रंभेचा गर्व हरिला । निजप्रतापेंकरूनियां । ५० अंबरीष ध्रुव रुक्मांगद । शिबी हरिश्चंद्र प्रसिद्ध ।

में) परस्पर कलह उत्पन्न करके दूर से मज़ा देखते रहते हैं। ४९ व्यासजी के पुत्र शुकजी[1] तो अनोखे हैं। उन्होंने समस्त काम को निगल डाला था। उन्होंने अपने (मनोनिग्रह के) प्रताप (के बल) से रम्भा के गर्व का हरण किया। ५० (फिर) अम्बरीष[2], ध्रुव[3], रुक्मांगद[4] थे; शिबि[5], हरिश्चन्द्र[6]

कलह लगाने में अत्यन्त कुशल थे। दक्ष के पुत्रों को उपदेश देकर उन्हें सांसारिक बातों से विरक्त कर दिया; स्वयंवर सभा में राम द्वारा धनुर्भंग हो जाने पर इन्होंने यह समाचार परशुराम से कहा और उन्हें उकसाया। इनके द्वारा दो व्यक्तियों में कलह उत्पन्न करने के बारे में पुराणों में अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं।

१ शुक— देखिए टिप्पणी २, पृ० ४२, अध्याय १।

२ अम्बरीष— ये अयोध्या के सूर्यवंशोत्पन्न विष्णुभक्त राजा थे। एक बार कार्तिक की एकादशी के अवसर पर इन्होंने व्रत के पारण में लगे हुए रहने के कारण इनके द्वारा दुर्वासा ऋषि की उपेक्षा हुई, तो उन्होंने क्रोध से इनके पीछे कृत्या छोड़ी। परन्तु भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इनकी रक्षा की। भक्ति के फलस्वरूप इनको मोक्ष-लाभ हुआ।

३ ध्रुव— यह राजा उत्तानपाद का रानी सुनीति से उत्पन्न पुत्र था। बचपन में विमाता सुरुचि के वश में होने के कारण राजा ने उसे अपनी गोद से उतार दिया। उससे अचल पद पाने की दृष्टि से यह यत्नशील हुआ। बाल्यावस्था में ही नारद के उपदेश से उसने ' ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ' मन्त्र का जाप करते हुए कठिन तपस्या की। उससे प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उसे राज्य आदि देना चाहा, लेकिन उसने उसे स्वीकार नहीं किया। तो उसकी एकनिष्ठ भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान ने उसे आकाश में (उत्तर दिशा में) ध्रुवपद (अविचल पद) दिया।

४ रुक्मांगद— इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राजा रुक्मांगद भगवान विष्णु के परम भक्त थे। उन्हें एकादशी व्रत के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी। ब्रह्मा ने उसकी व्रत सम्बन्धी निष्ठा की परीक्षा करने के हेतु मोहिनी नामक अप्सरा को नियुक्त करके उसके द्वारा उसे विचलित करने का यत्न किया। परन्तु वह असफल हो गयी। तदनन्तर उस अप्सरा ने रुक्मांगद को पुत्र धर्मांगद का खड्ग से वध करने को कहा; वह उसका सिर काटने ही जा रहा था, त्योंही भगवान विष्णु प्रकट हो गये और उसपर प्रसन्न होकर उसे अनेकानेक वर प्रदान किये।

५ शिबि— उशीनर राजा का पुत्र शिबि (औशिनरी) उदारता और दातृत्व के लिए परम विख्यात था। एक बार उसके सत्य की परीक्षा करने के लिए इन्द्र बाज़ का रूप धारण करके कपोत रूपधारी अग्नि का पीछा करने लगा। कपोत अपनी रक्षा के लिए राजा शिबि की शरण में आ गया, तो बाज़ (श्येन) ने अपने शिकार की माँग की, जिसे राजा ने अस्वीकार किया। तब बाज़ बोला, ' यदि तुम इस कपोत के वज़न के बराबर वज़न वाला मांस अपने शरीर से काटकर दोगे, तो मैं इसे छोड़ दूँगा। ' राजा ने इसे स्वीकार करके अपने शरीर से मांसखण्ड काट-काटकर तराज़ू के पलड़े में

खेळ्यांमाजी मुकुटमणी प्रल्हाद। ज्याची लीला अगाध पैं। ५१ खेळ्यांमाजी बळिया बळी। द्वारपाळ ज्याचा वनमाळी। बिभीषण तो राक्षसमेळीं। कुलोद्धारक निवडला। ५२ हनुमंत वायुनंदन। खेळ्यांमाजी पंचानन। तो श्रीरामासी आवडे जैसा प्राण। गिरि द्रोण जेणें आणिला। ५३ ऐसे खेळे बहुत आहेत। परी म्यां सांगितले किंचित। ऐसें गोप जों संवादत। तों

विख्यात खिलाड़ी (हो गये) हैं। इन खिलाड़ियों में मुकुटमणि हैं प्रह्लादजी[1] जिनकी लीला अथाह है। ५१ इन खिलाड़ियों में बलशाली थे (दैत्यराज) बलि[2], वनमाली कृष्णस्वरूप विष्णु जिनके द्वारपाल (बने हुए) हैं। राक्षस-समुदाय (समाज) के अन्दर वे विभीषण[3] (राक्षस) कुल के उद्धारक (के रूप में भगवान राम द्वारा) चुने गये। ५२ वायुनन्दन हनुमान तो इन खिलाड़ियों में सिंह (परम प्रतापी माने जाते) हैं। वे श्रीराम को प्राण जैसे प्रिय लगते थे, जो (लक्ष्मण को सचेत करवाने के लिए) द्रोण पर्वत (उठाकर) ले आये। ५३ ऐसे खिलाड़ी तो बहुत हैं, परन्तु मैंने (उनमें से) कुछ थोड़े-से बता दिये हैं।' गोपाल इस प्रकार

डालना शुरू किया; लेकिन वे कपोत के वज़न के बराबर नहीं हो रहे थे। फिर राजा स्वयं पलड़े में बैठ गया। यह उदारता देखकर इन्द्र और अग्नि प्रसन्न हो गये और उन्होंने राजा शिबि को वर प्रदान किये।

६ हरिश्चन्द्र— इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राजा हरिश्चन्द्र अपने वचन-पालन के लिए विख्यात थे। वसिष्ठ की प्रेरणा से उन्होंने राजसूय यज्ञ के अवसर पर विश्वामित्र की उपेक्षा की। अत: क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन्हें अनेक प्रकार से सताना आरम्भ किया। ब्रह्मपुराण के अनुसार विश्वामित्र की दक्षिणा की पूर्ति के लिए उन्हें स्वयं को बेचना पड़ा। पत्नी तारामती एवं पुत्र रोहित को उन्हें एक ब्राह्मण के हाथ बेचना पड़ा और स्वयं एक श्मशानाधिकारी चण्डाल के हाथ बिक गये। आगे चलकर विश्वामित्र ने अपनी माया से रोहित को सर्पदंश से मृत्यु का शिकार बना दिया। पुत्र की मृत्यु से शोकविह्वल होकर तारामती के साथ ये अग्नि में प्रवेश करने जा रहे थे कि वसिष्ठ और देवों ने उस संकट से उन्हें बचा लिया तथा राज्य आदि लौटा दिया।

१ प्रह्लाद— यह दैत्यराज हिरण्यकशिपु तथा कयाधू का पुत्र था। यह बचपन से भगवान विष्णु का भक्त था। यह हिरण्यकशिपु को पसन्द नहीं था। बार-बार समझाने पर भी जब प्रह्लाद हरिभक्ति से विमुख नहीं हुआ, तो हिरण्यकशिपु ने उसे क्रोध से मरवा डालने का यत्न किया। उसने प्रथम प्रह्लाद को विष पिलाया, दूसरी बार पर्वत पर से फिंकवा दिया, फिर हाथी के पाँवों-तले कुचलवाने का यत्न किया, सर्प द्वारा डसवाया, फिर भी प्रह्लाद पर इसका कोई असर नहीं हुआ। अन्त में भगवान विष्णु ने नरसिंह-रूप में खम्भे में से प्रकट होकर हिरण्यकशिपु का वध किया और प्रह्लाद की रक्षा की।

२ बलि— देखिए टिप्पणी ५ (त्रिविक्रम वामन), पृ० ६२, अध्याय २।

३ विभीषण— रावण का भक्त बन्धु, जो रावण का पक्ष छोड़कर राम की शरण में आ गया। रावण के वध के पश्चात राम ने उसका राज्य विभीषण को दिया।

सायंकाळ ओसरला। ५४ अस्तासी गेला वासरमणी। गोकुळा परतला चक्रपाणी। आपुल्या गाईलागोनी। गोप बाहती तेधवां। ५५ ये गे चक्रधरे मीनरूपें। शंखासुर मारिला प्रतापें। पान्हाइलीस ऐक्यरूपें। विधीलागीं डोळसे। ५६ एक गाई निबरपृष्ठी। भक्त पाळी कृपादृष्टीं। एक म्हणे माझे गाईनें सकळ सृष्टी। दंतांवरी धरियेली। ५७ एक म्हणे माझी गाई सिंहवदन। परी भक्तांसी सदा सुप्रसन्न। एक म्हणे माझी खुजी वामन। थोर तरी गगनीं न समाये। ५८ एक म्हणे गोपाळ। माझ्या गाईनें रक्षिलें द्विजकुळ। क्षत्रियतृण एकवीस वेळ। खाऊनि खुरटी पैं केली। ५९ चौदा वर्षे गेली वना। खोंचोनि मारिलें रावणा। राज्यीं स्थापूनि बिभीषणा। अयोध्येसी परतली। ६० ऐशा गाई पाचारूनि त्वरा। अवघे आले निजमंदिरा। नित्यकाळ यमुनातीरा। हरि ये गाई रक्षणार्थ। ६१ गोकुळीं असतां जगज्जीवन। दावी अद्भुत लीला करून। द्वादश गांवें

जब बातें कर रहे थे, तब (तक) शाम बीत गयी। ५४ सूर्य अस्त को प्राप्त हो गया। तो चक्रपाणि कृष्ण गोकुल लौट गये। तब गोपाल अपनी-अपनी गायों को पुकारकर बुलाने लगे। ५५ किसी एक ने कहा— 'आ री चक्रधरा, तुमने मत्स्य के रूप में (अवतरित होकर) शंखासुर[1] नामक दैत्य को अपने प्रताप से मार डाला। री सुन्दर आँखों वाली, ब्रह्मा के लिए तू एकता स्वरूप से पेन्हा उठी थी'। ५६ (कोई बोला— मेरी यह) गाय अति कठोर पीठ वाली थी। वह कृपादृष्टि से भक्तों का पालन (रक्षण) करती है। किसी एक ने कहा— मेरी गाय ने समस्त सृष्टि को अपने दाँत पर उठा लिया था। ५७ कोई एक बोला, 'मेरी गाय सिंहमुखी है, फिर भी वह भक्तों के प्रति सदा सुप्रसन्न (रहती) है'। कोई एक बोला, 'मेरी (गाय) ठिंगनी वामन (नाटी) है, फिर भी वह (इतनी) बड़ी है कि गगन में नहीं समा पाती'। ५८ किसी एक ने कहा— अरे गोपाल, मेरी गाय ने ब्राह्मणों के कुल की रक्षा की है। उसने क्षत्रिय (कुल) रूपी घास इक्कीस बार खा डालकर (सृष्टि को) ठिंगना कर दिया। ५९ (किसी एक ने कहा—) मेरी गाय चौदह साल (के लिए) वन में गयी थी। उसने (बाणों से) भोंककर रावण को मार डाला। (तदनन्तर) विभीषण को (लंका के) राज्य पर प्रतिष्ठित करके वह अयोध्या में लौट आयी। ६० इस प्रकार की गायों को बुलाते हुए वे सब शीघ्रता से अपने-अपने घर आ गये। (इस प्रकार) श्रीहरि गायों की रखवाली करने के लिए (चराने के लिए) यमुना के तीर पर नित्यकाल आया करते थे। ६१ गोकुल में रहते हुए जगजीवन कृष्ण अद्भुत लीलाएँ करके दिखाते थे। (यह कहा जा चुका है कि) उन्होंने (एक बार

१ यहाँ गायों को भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों के रूप में देखा गया है।

गिळिला अग्न। गोवर्धन उचलिला। ६२ विश्वरूप मुखीं दाविलें। पूर्णब्रह्म हें अवतरलें। हें गोकुळींच्या जनां नाकळे। दृढ व्यापिलें मायेनें। ६३ एकदां आली शक्तिचतुर्दशी। जन घरोघरीं पूजिती देवीसी। विसरले हरिस्मरणासी। सर्व शक्तींची सत्ता जो। ६४ जन कैसे जाहले मूढ। शेंदुरें भरला देखती दगड। तेथेंचि भजती दृढ। नेणोनियां हरीतें। ६५ जो त्रैलोक्यप्रकाशक वासरमणी। त्यासी नमस्कार न करी कोणी। क्षुद्र दैवतें देखोनी। नमस्कारिती साष्टांगें। ६६ जाखाई जोखाई मायाराणी। मारको मेसको यक्षिणी। आग्या झोटिंग जखिणी। त्यांसी भजोनी जन बुडाले। ६७ कर्णपिशाच भगलिनी। उच्छिष्टचांडाळी रानसटवी जखणी। वेताळ मुंज्या काळरजनी। भजिजे जनीं अतिप्रीतीं। ६८ असो गोकुळींचे जन। सांडूनियां विष्णुभजन। घरोघरीं क्षुद्र देवांचें पूजन। देखोनि हरि क्षोभला। ६९ कोपतांचि कृष्णनाथ। गोकुळींचे जन जाहले भ्रांत। नरनारी प्राणी समस्त। नग्न फिरती चोहटां। ७० यशोदा आणिक नंद।

किस प्रकार) बारह योजन (फैली हुई) आग को निगल डाला; (और एक बार किस प्रकार) गोवर्धन पर्वत को उठा लिया। ६२ उन्होंने (अपने) मुख के अन्दर विश्वरूप (किस प्रकार) दिखा दिया। इस (कृष्ण के रूप) में पूर्णब्रह्म अवतरित है—यह गोकुल के लोगों की समझ में नहीं आ रहा था; (क्योंकि) उनको माया ने दृढ़ता से व्याप्त किया था। ६३ एक बार शक्ति चतुर्दशी आयी, तो लोगों ने घर-घर देवी का पूजन किया; (परन्तु) जो समस्त शक्तियों की (साक्षात्) सत्ता हैं, उन श्रीहरि का स्मरण (करना) वे भूल गये। ६४ ये लोग कैसे मूढ़ हुए हैं। (जब) सिंदूर लगाये हुए पत्थर को देखते हैं, तो वहीं (उसे ईश्वर समझकर) श्रीहरि को न जानते हुए उसकी दृढ़तापूर्वक भक्ति करने लगते हैं। ६५ जो (स्वयं) तीनों लोकों को प्रकाशमय करनेवाले सूर्य (ही) हैं, उन्हें कोई नमस्कार नहीं करता; (परन्तु) क्षुद्र देव देखकर उन्हें साष्टांग नमस्कार करते हैं। ६६ जाखाई, जोखाई, मायारानी, मारको, मेसको, यक्षिणी, आया, झोटिंग, जाखिनी[1] की भक्ति करके (वस्तुतः) लोग डूब गये हैं (नष्ट हो गये हैं)। ६७ कर्णपिशाच, भगलिनी, उच्छिष्ट-चण्डाली, रानसटवी, जाखिनी, वेताल, मौंज्या, कालरजनी की लोग अति प्रेम से भक्ति करते हैं। ६८ अस्तु। गोकुल के लोग भगवान विष्णु की भक्ति को छोड़कर घर-घर क्षुद्र देवताओं का पूजन कर रहे हैं, यह देखकर श्रीहरि क्षुब्ध हो उठे। ६९ कृष्णनाथ के कुपित हो जाते ही गोकुल के लोग भ्रम में पड़ गये। नर-नारी, समस्त प्राणी चौराहों पर नंगे घूमने लगे। ७०

1 जाखाई आदि ग्रामदेवियाँ हैं। अशुभ परिहार के लिए इन देवी-देवताओं का पूजन किया जाता है। यहाँ महाराष्ट्र में प्रचलित नामों का (व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का) उल्लेख किया गया है।

दोघें असती सावध। वरकड लोक विषयांध। नग्न होवोनि धांवती। ७१ सासू जांवई विहिणी। कोणी न लाजती कोणालागूनी। तें नंदें दृष्टीं देखोनी। आश्चर्य करी तेधवां। ७२ नंद म्हणे कृष्णनाथा। यासी काय करावें आतां। हरि म्हणे विष्णूस न भजतां। गति तत्त्वतां ही जाहली। ७३ करितां विष्णूचें स्मरण। अवघे होती सावधान। नंद करी विष्णुचिंतन। नारायणा पाव आतां। ७४ सर्व लोकीं घेतां हरिनाम। तत्काळ दूरी जाहला भ्रम। नामापुढें क्रोधकाम। वितळोनि जाती क्षणमात्रें। ७५ असो नामाची अगाध करणी। वेदव्यास बोलिला बहु पुराणीं। हरिस्मरण करितां गोकुळजनीं। स्वस्थ होइजे तेधवां। ७६ यावरी मथुरेंत वृत्तांत। वर्तला तो ऐका समस्त। कंस बहुत चिंताक्रांत। म्हणे काय करूं आतां। ७७ ऐसा कोणी नाहीं बळी। वैरी जाऊनि मारी गोकुळीं। तों देवांतक आणि पितृद्रोही ते वेळीं। पैज बोलती कंसासी। ७८ म्हणती आम्ही व्याघ्र होऊनि वनांत। अहोरात्र बैसों जपत। वना येतां राम कृष्णनाथ। अकस्मात भक्षूं दोघांसी। ७९ ऐकतांचि ऐसें वचन। कंसें

(केवल) यशोदा और नन्द सावधान (होश में) थे। अन्य लोग विषयान्ध होते हुए नंगे होकर दौड़ रहे थे। ७१ सास, दामाद, समधिन —कोई किसी से लज्जित नहीं हो रहा था। तब नन्द यह अपनी आँखों से देखकर अचरज अनुभव करने लगे। ७२ (फिर) नन्द कृष्णनाथ से बोले, ‘ इसे अब क्या करें (इसका अब क्या उपाय करें)? ’ तो श्रीहरि बोले, ‘ भगवान विष्णु की भक्ति न करने से सचमुच ही (इनकी) यह स्थिति हो गयी है। ७३ विष्णु का स्मरण करने से सबके होश ठिकाने आ जाएँगे। ’ (यह सुनकर) नन्द विष्णु का चिन्तन (ध्यान, स्मरण) करने लगे। (वे बोले—) ‘ हे नारायण, अब दया करो ’। ७४ सब लोगों द्वारा श्रीहरि का नाम लेने पर उनका भ्रम तत्काल दूर हो गया। (श्रीहरि के) नाम के सम्मुख क्रोध, काम (आदि विकार) क्षणमात्र में पिघल जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं)। ७५ अस्तु। नाम की अथाह करनी के बारे में वेदव्यास ने पुराणों में बहुत कहा है। गोकुल के लोग श्रीहरि का (नाम) स्मरण करने पर तब (भ्रम से मुक्त होकर) प्रकृतिस्थ हो गये (होश में आ गये)। ७६

इसके पश्चात मथुरा में जो बात घटित हुई, उसे आप सब सुनिए। कंस बहुत चिन्ताक्रान्त होकर बोला (सोचने लगा)— अब मैं क्या करूँ। ७७ कोई ऐसा बलवान नहीं (दिखायी दे रहा) है, जो गोकुल में जाकर मेरे वैरी को मार डाले। तब उस समय देवान्तक और पितृद्रोही (नामक असुरों) ने कंस से शर्त बदी। ७८ वे बोले, ‘ हम बाघ बनकर वन में दिन-रात ताक में बैठेंगे। बलराम और कृष्णनाथ दोनों जनों को वन में आते ही यकायक खा डालेंगे ’। ७९ ऐसी बात को सुनते ही कंस

गौरविले दोघेजण। वस्त्रें भूषणें देऊन। तत्काळचि बोळविले। ८०
आयुष्य दोघांचें सरलें। काळें बोलावूं पाठविलें। व्याघ्र होवोनि बैसले।
जपत वृंदावनीं पैं। ८१ तों ते दिवशीं राम आणि कृष्ण। वना आले नाहींच
दोघे जण। वरकड गोप दुरून। व्याघ्र दोघे पाहती। ८२ व्याघ्र
विचारिती मानसीं। आतां आम्हीं जरी भक्षावें गोपांसी। तरी उदयीक
रामकृष्णांसी। जन वनासी येऊं न देती। ८३ यालागीं उगेचि राहिले।
गोपांनीं व्याघ्र दुरूनि देखिले। गाई पिटिल्या ते वेळे। पळत आले
गोकुळा। ८४ सांगती नंदादि गौळियांसी। महाव्याघ्र आले वनासी।
गौळी भ्याले अति मानसीं। म्हणती मुलांसी न धाडावें। ८५ नंद सांगे
यशोदे रोहिणी। वना धाडूं नका चक्रपाणी। दोघे व्याघ्र जपती वनीं।
गोप पळोनि आले आतां। ८६ या वाड्याबाहेर देखा। दोघांसी जाऊं
देऊं नका। अवघा धंदा तुम्ही टाका। परी जतन करा हरीसी। ८७
आसनीं भोजनीं शयनीं। विसंबूं नका चक्रपाणी। जागृतीं सुषुप्तीं स्वप्नीं।
हरीलागूनि विसरूं नका। ८८ गौळिणी रोहिणी यशोदा। सदा रक्षिती
रामगोविंदा। कृष्ण मातेस म्हणे एकदां। बाहेर जाऊं दे खेळावया। ८९

ने उन दोनों को गौरवान्वित किया (और) वस्त्र, आभूषण देकर उन्हें तत्काल बिदा किया। ८० (मानो) उन दोनों की आयु समाप्त हो गयी थी, (इसलिए) काल ने उनको बुलावा भेजा। (तब) वे बाघ बनकर वृन्दावन में ताक में रहे। ८१ तब उस दिन बलराम और कृष्ण दोनों जने उस वन के प्रति आये ही नहीं। अन्य गोपों ने दूर से दो बाघ देखे। ८२ (तब) उन बाघों ने मन में यह विचार किया— यदि अब हम इन गोपों को खा डालें, तो लोग कल बलराम और कृष्ण को वन आने नहीं देंगे। ८३ इसलिए वे चुप रह गये। (इधर) गोपों ने दूर से बाघ देखे, तो उस समय उन्होंने गायों को (पीटकर) भगा दिया (और) वे स्वयं दौड़ते हुए गोकुल आ गये। ८४ उन्होंने नन्द आदि ग्वालों से कहा, 'वन में बड़े बाघ आ गये हैं'। (यह सुनकर) वे ग्वाले मन में अति भयभीत हो गये और बोले, 'बच्चों को (वन की ओर) न भेजें'। ८५ नन्द ने यशोदा और रोहिणी से कहा, 'कृष्ण को वन में न भेजो। वन में दो बाघ ताक में (बैठे) हैं। (उन्हें देखकर) गोप अब भागकर आ गये हैं। ८६ देखो, उन दोनों को इस भवन के बाहर जाने न दो। समस्त काम तुम छोड़ दो, फिर भी कृष्ण की रक्षा करो। ८७ आसन पर (बैठते), भोजन करते, शयन करते कृष्ण को न भूलो; जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न में हरि को न भूलो'। ८८ (फलस्वरूप) गोपियाँ, रोहिणी और यशोदा बलराम और कृष्ण की नित्य रखवाली करती रहीं। (फिर भी) एक बार कृष्ण माता से बोले— 'हमें बाहर खेलने के लिए जाने दो'। ८९ (ऐसा कहते हुए) माया लीला

मायेच्या गळां घातली मिठी। धरी यशोदेची हनुवटी। मायालाघवी जगजेठी। कौतुकें बोले तेधवां। ९० माते राजबिदीस क्षणभरी। दोघे खेळोनि येतों झडकरी। माया म्हणे बहुत दूरी। जाऊं नका सर्वथा। ९१ दोन प्रहर जाहला दिन। बिदीस आले दोघे जण। साक्षात् शेष नारायण। गीर्वाणभाषा बोलती। ९२ म्हणती आतांचि जाऊं वना। वधावें त्या दोघां जणां। चुकवोनि जनांच्या नयनां। वृंदावना पातले। ९३ शेष आणि अनंत। एकामागें एक धांवत। व्याघ्रांनीं दुरूनि देखिले येत। महाधीट चपळ पैं। ९४ दिधली भयानक आरोळी। व्याघ्रवेषें दैत्य महाबळी। वेगीं आले रामकृष्णांजवळी। विक्राळ मुख पसरोनियां। ९५ अष्टवर्षी बळिराम। सप्तवर्षी मेघश्याम। दाविला अद्भुत पराक्रम। भक्तकामकल्पद्रुमें। ९६ दोन गदा मुखांतून काढूनी। दोघीं घेतल्या तेचि क्षणीं। निजांगें बळें भवंडूनी। मस्तकीं ओपिल्या व्याघ्रांच्या। ९७ तेणें मस्तकें जाहलीं चूर्ण। दोघांचे गेले तेणें प्राण। कृष्णें बळिरामें चर्मे काढून। चालिले घेऊन गोकुळा। ९८ इकडे गोकुळीं यशोदा माता। बिदोबिदीं

दिखाने में चतुर जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण माता यशोदा के गले लिपट गये और तब उसकी ठुड्डी पकड़कर लाड़-प्यार में बोले। ९० 'री माँ, राजमार्ग पर हम दोनों क्षण भर खेलकर झट से (लौट) आते हैं।' (यह सुनकर) माता बोली—'बहुत दूर बिल्कुल न जाओ'। ९१ दो पहर दिन व्यतीत हो गया था, तो वे दोनों मार्ग पर आ गये। वे साक्षात् शेष और नारायण (के अवतार) गीर्वाण भाषा (संस्कृत, देववाणी में) बोल रहे थे। ९२ वे बोले, 'अभी वन की ओर चले जाएँ (और) उन दोनों का वध करें।' (ऐसा सोचकर) लोगों की नज़र बचाकर वे वृन्दावन आ पहुँचे। ९३ शेष (के अवतार बलराम) और अनन्त (अर्थात विष्णु के अवतार कृष्ण) एक के पीछे एक दौड़ रहे थे; उन बाघों ने उन महान ढीठ और चपल लड़कों को आते देखा। ९४ (त्यों ही) उन्होंने भयावह दहाड़ लगायी। वे (वस्तुतः) व्याघ्र-वेश में महाबलवान दैत्य थे। वे विकराल मुँह फैलाकर वेगपूर्वक बलराम और कृष्ण के समीप आ गये। ९५ बलराम आठ बरस के थे, तो मेघश्याम कृष्ण सात बरस के। भक्तों की कामनाओं को पूर्ण कर देनेवाले उन कल्पवृक्षों ने अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया। ९६ उन दोनों ने उसी क्षण दो गदाओं को मुँह में से निकाल कर (हाथों में) ले लिया और अपने शरीर के बल से बलपूर्वक घुमाकर उन बाघों के मस्तक पर पटक दिया। ९७ उससे उनके मस्तक चूर-चूर हो गये; इससे उन दोनों के प्राण निकल गये। (तदनन्तर) कृष्ण और बलराम उन (बाघों) के चमड़े (खाल) निकालकर उन्हें लिये हुए गोकुल की ओर चल दिये। ९८ इधर गोकुल में यशोदा माता रास्ते-रास्ते में

पाहे कृष्णनाथा । एक म्हणती वनासी देखिले जातां । एकामागें एक पैं । ९९ घाबरली तेव्हां माया । नंद गौळी आले धांवोनियां । चालिले वनासी पहावया । रामकृष्णांसी तेधवां । १०० एकीं करीं घेतल्या डांगा । एकीं भिंदिमाळा घेतल्या वेगां । माया म्हणे बळिराम श्रीरंगा । कोण्या वनीं पाहूं तुम्हां । १०१ धांवती गौळियांचे भार । दोघे देखिले येतां समोर । नंद पुढें धांवे सत्वर । पुसे दोघांसी तेधवां । २ कोठें गेलां होतां दोघे जण । व्याघ्रचर्मे आणिलीं कोठून । ते म्हणती दोघे व्याघ्र मरून । पडिले होते आपणचि । ३ मग चर्मे आम्हीं काढिलीं वेगीं । ताता तुम्हांस आसनालागीं । नंद म्हणे याचि दोघीं । व्याघ्र मारिले असतील । ४ घरास आणिले दोघे जण । नंद म्हणे यशोदेलागून । या दोघांसी रक्षण । शक्राचेनि न करवे । ५ हे दोघे जाहले अनिवार । यांसी दुजा कोण रक्षिणार । असो एके दिवशीं मुरहर । कालिंदीतीरीं क्रीडत । ६ तों कंसाचे रंगकार । वस्त्रें रंगविती चित्रविचित्र । गडियांसमवेत राजीवनेत्र । तयांपासीं पातला । ७ तों बळिभद्र पुसे तयांतें । कोणाचीं वस्त्रें रंगवितां येथें । ते म्हणती तुम्हां गौळियांतें । काय कारण पुसावया । ८ तुम्ही गुराखे इतुके

कृष्णनाथ को देख (खोज) रही थी। (पूछने पर) कुछ एक ने कहा, ‘(हमने) उन्हें एक के पीछे एक वन की ओर जाते देखा’। ९९ तब (यह सुनते ही) माता घबड़ा उठी। नन्द और (अन्य) ग्वाले दौड़ते हुए आ गये। (फिर) वे बलराम और कृष्ण को खोजने के लिए वन के प्रति चले गये। १०० कुछ एक ने हाथ में लकड़ियाँ लीं, तो कुछ एक ने झट से भिंडिमालाएँ लीं। माता बोली, ‘हे बलराम, हे श्रीरंग, मैं (अब) तुम्हें किस वन में देखूँ (खोजूँ) ?’। १०१ ग्वालों के दल दौड़ रहे थे, तो उन्होंने सामने (से) उन दोनों को आते देखा। तब नन्द आगे झट से दौड़े और उन दोनों से उन्होंने पूछा। २ ‘तुम दोनों जने कहाँ गये थे ? ये बाघों के चमड़े कहाँ से ले आये ?’ वे बोले, ‘दोनों बाघ अपने आप मरकर पड़े हुए थे। ३ हे तात, तब हमने झट से उनके चमड़े तुम्हारे आसन के लिए निकाल लिये।’ तो नन्द ने कहा (माना), ‘इन्हीं दोनों ने उन बाघों को मार डाला होगा’। ४ (फिर) नन्द उन दोनों को घर ले आये और यशोदा से बोले, ‘इन्द्र द्वारा (भी) इन दोनों की रक्षा (रखवाली) नहीं की जा पाएगी। ५ ये दोनों दुर्धर्ष हो गये हैं; इनकी दूसरा कौन रक्षा कर पाएगा ?’ अस्तु। एक दिन मुरहर कृष्ण यमुना नदी के तीर पर खेल रहे थे। ६ तब कंस के रँगरेज़ (वहाँ) वस्त्र चित्र-विचित्र रूप में रँग रहे थे। राजीवनेत्र कृष्ण (अपने) साथियों सहित उनके पास पहुँच गये। ७ तब बलराम ने उनसे पूछा, ‘यहाँ किसके वस्त्र रँग रहे हो ?’ (इसपर) वे बोले, ‘तुम ग्वालों को यह

जण। तुम्हां एकला मी करीन ताडण। कंसासी कळतां वर्तमान। गोकुळ तुमचें नुरेचि। ९ ऐकोनि कोपला बळिभद्र। ताडिले अवघे रंगकार। मग ते पळती समग्र। मथुरापुरीं पावले। ११० सांगती कंसासी वर्तमान। वस्त्रें तुमचीं नेलीं हिरोन। दचकलें कंसाचें मन। न बोलवे वचन तयासी। १११ इकडे यमुनातीरीं वनमाळी। वस्त्रें सकळांसी वांटिलीं। गोवळे शृंगारिले सकळी। सायंकाळीं परतले। १२ कृष्णें आणि बळिभद्रें। घेतलीं नाहीं कदा वस्त्रें। गोवळे हरीचीं चरित्रें। गर्जत जाती आनंदें। १३ भ्याले गोकुळींचे लोक। आलें म्हणती कंसाचें कटक। भय वाहती सकळिक। गौळी निघाले बाहेरी। १४ नंदें ओळखिले गोवळे। वस्त्रें चित्रविचित्र पांघुरले। तों रामकृष्ण पुढें आले। नंदें पुसिलें तयांसी। १५ राजीवनेत्रा वनमाळी। कोणाचीं वस्त्रें हिरोनि आणिलीं। आणाल येथें एकादी कळी। नांदणें गोकुळीं नव्हे मग। १६ कृष्ण म्हणे यमुनेथडीं। खेळत होते आमुचे गडी। आम्हांस देखोनि तांतडी। भयें पळाले रंगकार। १७ वस्त्रें टाकूनि पळाले समस्त। मग तीं आम्हीं आणिलीं त्वरित। टाकूनि यावें अरण्यांत।

पूछने का क्या कारण है ? (तुम यह अनधिकार क्यों पूछ रहे हो ?)। ८ तुम चरवाहे इतने जने हो। मैं अकेला तुम्हें पीट सकता हूँ। कंस को यह समाचार विदित होने पर तुम्हारा गोकुल नहीं बचेगा'। ९ यह सुनते ही बलराम कुपित हो उठे; उसने (फिर) सब रँगरेजों को पीट लिया। तब वे सब भाग गये और मथुरापुरी के अन्दर जा पहुँचे। ११० उन्होंने यह समाचार कंस से कहा— 'तुम्हारे वस्त्र अपहृत करके ले गये हैं', तो कंस का मन भौचक हो गया। उसके द्वारा कोई बात नहीं बोली जा रही थी। १११ इधर वनमाली कृष्ण ने यमुना तीर पर वे वस्त्र सबको बाँट दिये। (तब) समस्त गोप (बालक) सज गये और शाम को (गोकुल में) लौट गये। १२ कृष्ण और बलराम ने (अपने लिए) वस्त्र बिल्कुल नहीं (रख) लिये। (इधर) गोपबालक श्रीहरि की चरितलीलाओं का आनन्द-पूर्वक गरज-गरजकर वर्णन करते हुए चले गये। १३ (यह देखकर) गोकुल के लोग भयभीत हो उठे। वे बोले (उन्हें जान पड़ा—), कंस की सेना आ गयी। (अत:) वे गोप सब डर अनुभव करने लगे और (घर के) बाहर निकल पड़े। १४ (परन्तु) नन्द ने उन गोपालों को पहचान लिया— उन्होंने चित्र-विचित्र वस्त्र पहन लिये थे। तब बलराम और कृष्ण सामने आ गये, तो नन्द ने उनसे पूछा। १५ 'अरे राजीवनेत्र वनमाली, किसके वस्त्र छीनकर लाये हो ? यहाँ कोई विघ्न ले आओगे, फिर सुखशान्ति-पूर्वक गोकुल में रहा नहीं जाएगा'। १६ कृष्ण बोले, 'यमुना तट पर हमारे साथी-संगी खेल रहे थे। हमें देखकर रँगरेज़ झट से भय से भाग गये। १७ वे सब वस्त्र त्यजकर भाग गये; तब हम शीघ्रतापूर्वक उन्हें ले आये। हम इन्हें अरण्य में छोड़ आते, तो वह भी तुम्हें अच्छा न लगता'। ११८

तरी तेंही तुम्हांस न मानेचि। १८ असो आणिक एके दिवशीं। शेषावतार आणि हृषीकेशी। कंसाचिया पुष्पवाटिकेसी। लवलाहेंसीं पातले। १९ तों तेथें कंसदूत। पुष्पहारे भरूनि बहुत। लवलाहें घेऊनि जात। कंसराया-कारणें। १२० तों बळिराम आणि नारायण। आडवे धांवले दोघे जण। दूतांसी केलें ताडण। सुमनें नेतां कोणासी। १२१ ते म्हणती आम्ही कंसदूत। प्रत्यहीं फुलें नेतों समस्त। तुम्ही कोण वर्जावया येथ। मग बोलत शेष पैं। २२ जाऊनि सांगा कंसातें। बळिरामें पुष्पें नेलीं समस्तें। ऐसें बोलोनि गोकुळपंथें। पुष्पभार परतविले। २३ वेगें आले मंदिरा। माता म्हणे भुवनसुंदरा। कोणाचीं पुष्पें सुकुमारा। हिरोनियां आणिलीं। २४ कृष्ण म्हणे ऐक जननी। नाग पूजावे आजिचे दिनीं। यालागीं तुज आणोनी। पुष्पें दिधलीं जाण पां। २५ आजि उरग पूजावे पंचमीसी। तेणें भोगींद्र संतोषे मानसीं। हांसत मग हृषीकेशी। संकर्षणा विलोकी। २६ असो कंसा जाणविती दूत। पुष्पें हिरोनि नेलीं समस्त। कंस भयभीत मनांत। म्हणे वैरी बहुत वाढले। २७ वायुसंगें अग्नि वाढे। कीं पळोपळीं सूर्य चढे। तैसे वैरियांचे पवाडे। अधिकाधिक चढताती। २८ तों उठिला

अस्तु। और एक दिन शेषावतार (बलराम) और हृषीकेशी कृष्ण कंस की पुष्प-वाटिका में शीघ्रता से गये। ११९ तब वहाँ कंस के दूत फूलों की बहुत-सी डालियाँ भरकर कंस के लिए जल्दी-जल्दी ले जा रहे थे। १२० तब बलराम और नारायण (कृष्ण) दोनों जने उनके सम्मुख दौड़े आये। उन्होंने उन दूतों को पीट लिया (और पूछा—) 'फूल किसके लिए ले जा रहे हो?'। १२१ वे बोले, 'हम कंस के दूत (सेवक) हैं। हम प्रतिदिन सब फूल ले जाते हैं। तुम (हमें) यहाँ रोकनेवाले कौन हो?' तब शेष (के अवतार बलराम) बोले। २२ 'जाकर यह कंस से कह दो कि बलराम समस्त फूल ले गया है।' ऐसा कहते हुए गोकुल के मार्ग से फूलों की डालियाँ लौटवा दीं। २३ वे वेगपूर्वक घर आ गये, तो माता बोली, 'अरे भुवनसुन्दर, रे सुकुमार, किसके फूल छीनकर लाये हो?'। २४ तो कृष्ण बोले, 'सुनो माँ, आज के दिन नागों का पूजन करें। इसलिए समझ लो कि फूल लाकर तुम्हें दे रहा हूँ। २५ आज पंचमी के दिन साँपों का पूजन करें। उससे भोगीन्द्र (भोगावती नगरी के नागों के राजा शेष) मन में सन्तुष्ट हो जाते हैं।' फिर हृषीकेशी कृष्ण हँसते-हँसते संकर्षण बलराम की ओर देखने लगे। २६ अस्तु। (उधर) दूतों ने कंस को विदित करा दिया कि (बलराम) समस्त फूल छीनकर ले गया। तो कंस मन में भयभीत हो गया और बोला— 'बैरी बहुत बढ़ गये हैं। २७ वायु के साथ आग बढ़ती जाती है; अथवा सूर्य पल-पल (ऊपर) चढ़ता जाता है; उसी प्रकार इन बैरियों के प्रताप अधिकाधिक बढ़ते जा रहे हैं'। २८

जळासुर। उभा राहिला कंसासमोर। म्हणे तुझ्या शत्रूंचा संहार। मी करीन निश्चयेंसीं। २९ यमुनाऱ्हदामाजी जाऊनी। मी सावध बैसेन लपोनी। जळक्रीडेसी अनुदिनीं। नित्य येतो शत्रु तुझा। १३० तयासी तेथें धरून। सगळाचि मी गिळीन कृष्ण। कंसास वाटलें समाधान। म्हणे यशवंत होईं तूं। १३१ वस्त्रें भूषणें गौरविला। जळासुर उभा ठाकला। मृत्यूनें बोलावूं पाठविला। ओहटला आयुष्यपूर। ३२ मित्रकन्यातीरीं सत्वर। येऊनि लपला जळासुर। केव्हां येईल नंदकिशोर। म्हणोनियां जपतसे। ३३ कीं पूर्वीं काळनेमी बैसला जपत। केव्हां येईल म्हणे समीरसुत। तैसा जळासुर वाट पाहात। श्रीकृष्णाची सर्वदा। ३४ आणिक वाटे नव जाय कोणाचे। आगमन इच्छी श्रीकृष्णाचें। धन्य भाग्य तयाचें। ध्यान हरीचें लागलें। ३५ द्वेषवैरें भजनस्थिती। जे जगद्वंद्यास मनीं ध्याती। त्यांसी नुपेक्षी जगत्पती। वेध चित्तीं जयांच्या। ३६ एकें केलें परिसाचें पूजन। लोह लावितांचि करी सुवर्ण। एकें परिस दगडावरी

तब जलासुर (नामक एक असुर) उठा। वह कंस के सामने खड़ा हो गया और बोला, 'तुम्हारे शत्रु का मैं निश्चय ही संहार कर डालूँगा। २९ मैं यमुना नदी के दह के अन्दर जाकर सावधानी से छिपकर बैठूँगा। तुम्हारा शत्रु प्रतिदिन नित्य जलक्रीड़ा करने के लिए आता है। १३० उस कृष्ण को वहाँ पकड़कर मैं पूरा (पूरा) निगल डालूँगा।' (यह सुनकर) कंस को सन्तोष अनुभव हुआ। वह बोला, 'तुम सफल हो जाओ'। १३१ (फिर) उसने वस्त्रों और आभूषणों से उसे गौरवान्वित किया। (अनन्तर) जलासुर खड़ा हो गया। (तब मानो) मृत्यु ने उसे बुलावा भेजा हो; उसकी आयु रूपी रेला (घटकर) सूख गया हो। ३२ (अनन्तर) जलासुर झट से यमुना तट पर आकर छिप गया। वह इस ताक में रहा था कि कब नन्दकिशोर कृष्ण आ जाएगा। ३३ अथवा पूर्वकाल में (जिस प्रकार) कालनेमी ताक में बैठ गया और सोचता (देखता) रहा कि पवनकुमार हनुमान कब आ जाएगा, उसी प्रकार, जलासुर नित्य (प्रतिक्षण) श्रीकृष्ण की बाट जोह रहा था। ३४ और वह किसी अन्य के मार्ग में दखल नहीं दे रहा था। (केवल) वह कृष्ण के आगमन की इच्छा कर रहा था। धन्य हैं, धन्य हैं भाग्य उसके —उसे श्रीहरि का ध्यान लगा हुआ था। ३५ द्वेष और वैर-भाव से (भी) जो भक्ति की स्थिति में जगद्वंद्य का मन में ध्यान करते हैं, जिनके चित्त में (नित्य भगवान के प्रति) लगाव होता है, जगत्पति उनकी उपेक्षा नहीं करते। ३६ किसी एक ने पारस का पूजन किया। (आदर के साथ अपनाकर रख लिया हो, तो) उसे लोहा लगाते ही वह पारस उसका सोना बना देता है; तो किसी (दूसरे) एक ने पारस को पत्थर पर पीस दिया

कुटून। मग लोहासी लावियला। ३७ तत्काळचि केलें सुवर्ण। दोघां परी समसमान। तैसाचि हा कालियामर्दन। द्वेषियां भक्तां सारिखाचि। ३८ असो एके दिवशीं घेऊनि गोपाळ। जळक्रीडेसी आला घननीळ। मग ते वेळीं गोप सकळ। कालिंदीडोहीं प्रवेशती। ३९ उडी टाकी रमानाथ। खेळतां जळीं झाला गुप्त। जळासुरासी शोधीत। कोठें बैसला म्हणोनियां। १४० पूर्वीं सागरीं शंखासुर। वधोनि केला वेदोद्धार। तैसाचि शोधी यादवेंद्र। यमुनाडोहीं अरीतें। १४१ देखोनियां श्यामसुंदर। वेगें मिठी घाली जळासुर। मल्लयुद्ध मांडिलें अनिवार। न कळे बाहेर कोणातें। ४२ श्रीहरीच्या बळापुढें। मशक काय तें बापुडें। ग्रीवेसी धरूनि निवाडें। पिळिला तेव्हां असुर तो। ४३ धुवोनि पिळिजे जेवीं वस्त्र। तैसा रागें मुरडिला असुर। भडभडां वाहे रक्तपूर। यमुनानीर ताम्र झालें। ४४ जळासुराचे प्राण। गेले तेव्हां नलगतां क्षण। इकडे गोपाळ जळक्रीडा करून। अवघे बाहेर निघाले। ४५ गोपाळ चहूंकडे पाहती।

और तदनन्तर वह (पारस) लोहे को लगा लिया, तो तत्काल ही उसने (उस लोहे को) सोना बना दिया —परन्तु पारस (पूजन करनेवाले और कूटनेवाले) दोनों के प्रति सम-समान होता है। उसी प्रकार ये कालिय-मर्दन कृष्ण द्वेष करनेवालों और भक्तों के लिए सम-समान रहते हैं। १३७-१३८ अस्तु। एक दिन घननील कृष्ण गोपालों को लेकर जलक्रीड़ा के लिए (यमुना तट पर) आ गये। फिर उस समय समस्त गोप यमुना के दह में प्रविष्ट हो गये। ३९ (इधर) रमानाथ विष्णु अर्थात कृष्ण (पानी में) कूद गये; वे खेलते-खेलते पानी में गुप्त (अदृश्य) हो गये। यह कहकर (सोचकर) कि जलासुर कहाँ बैठा है, वे उसे खोजने लगे। १४० पूर्वकाल में (भगवान विष्णु-नारायण ने) सागर के अन्दर शंखासुर का वध करके वेदों का उद्धार किया (उस वक़्त उन्होंने जिस प्रकार उस असुर को खोज लिया), उसी प्रकार यादवेन्द्र कृष्ण शत्रु को यमुना के दह के अन्दर खोजने लगे। १४१ श्यामसुन्दर को देखकर जलासुर ने वेगपूर्वक उसे (बाँहों में) लपेट लिया। तो उन दोनों ने दुर्धर्ष मल्लयुद्ध आरम्भ किया। (फिर भी) यह बाहर किसी को विदित नहीं हो रहा था। ४२ (परन्तु) श्रीहरि के बल के सामने (बल की तुलना में) वह बेचारा मच्छर (सदृश असुर) क्या है। तब उन्होंने उस असुर की गर्दन को पकड़कर उसे मरोड़ डाला। ४३ जिस प्रकार वस्त्र को धोकर मरोड़ते हैं, उसी प्रकार क्रोध से उन्होंने उस असुर को मरोड़ डाला। तो रक्त का रेला झर-झर बहने लगा। (उससे) यमुना का नीर लाल हो गया। ४४ तब क्षण न लगते, जलासुर के प्राण निकल गये। इधर समस्त गोपाल जलक्रीड़ा करके बाहर निकल गये। ४५

कोठें न दिसे सांवळी मूर्ती । घाबरले परम चित्तीं । परी यदुपति दिसेना । ४६ हांक फोडिती तेधवां । वैकुंठपति कमलाधवा । काय झालासी केशवा । जिवाच्या जीवा श्रीहरि । ४७ हरि यमुनाडोहीं बुडाला । एकचि हाहाकार झाला । पुढतीं गोपाळ ते वेळां । डोहामाजी प्रवेशले । ४८ घेती डोहामाजी धांडोळा । एक बडविती वक्षःस्थळा । नेत्रीं वाहे अश्रुधारा सकळा । दुःखकल्लोळ लोटती । ४९ इकडे काय केलें हृषीकेशें । जळासुराचें प्रेत नागपाशें । बांधोनियां परमपुरुषें । ओढोनि बाहेरी काढिलें । १५० गोपांनीं देखिला गोविंद । जो जगद्वंद्य मूळकंद । जाहला गोपाळांसी ब्रह्मानंद । मग धांवती भेटावया । १५१ जें जळासुराचें प्रेत । बाहेर काढिलें अद्भुत । अवघ्यांसी श्रीकृष्ण म्हणत । ओढा समस्त निजबळें । ५२ गोपांसी म्हणती रामयदुवीर । आम्हीं वधिला जळासुर । गोकुळीं हा समाचार । सर्वथाही न सांगावा । ५३ हें प्रेत आणा गोकुळीं ओढोन । आम्ही पुढें जातों दोघे जण । कांखेसी घोंगड्या घेऊन । रामकृष्ण चालिले । ५४ भोगींद्र आणि क्षीराब्धिजापती । धांवत आले मंदिराप्रती ।

गोपाल चारों ओर देखने लगे । उन्हें (कृष्ण की) साँवली मूर्ति कहीं नहीं दिखायी दे रही थी, तो वे मन में परम घबड़ा उठे; फिर भी यदुपति कृष्ण नहीं दिखायी दे रहे थे । ४६ तब वे चिल्लाते हुए पुकारने लगे, 'हे वैकुण्ठपति, हे कमलापति, हे केशव, हे जीव के जीव श्रीपति, तुम्हें क्या हो गया ?' । ४७ (यह समझकर कि) हरि यमुना-दह में डूब गये, (वहाँ) अभूतपूर्व हाहाकार मच गया । अनन्तर उस समय (कुछ) गोपाल दह में पैठ गये । ४८ वे दह के अन्दर खोज करने लगे । कुछ एक (दुःखातिरेक से) छाती पीट रहे थे । सबकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी । दुःख की लहरें उमड़ रही थीं । ४९ इधर हृषीकेशी ने क्या किया? उन परमपुरुष ने जलासुर का शव नागपाश से बाँधकर खींचते हुए बाहर निकाल लिया । १५० (जब) उन गोपों ने, गोपालों ने उन गोविन्द कृष्ण को देखा, जो जगद्वन्द्य (ब्रह्माण्ड के) मूल कन्द हैं, तो उन्हें ब्रह्मानन्द हो गया । फिर वे उनसे मिलने के लिए दौड़े । १५१ जब जलासुर के उस अद्भुत प्रेत को बाहर निकाला, तो श्रीकृष्ण उन सबसे बोले, 'इसे अपने बल से तुम सब खींच लो' । ५२ फिर बलराम और यदुवीर कृष्ण उन गोपों से बोले, 'हमने जलासुर का वध किया; यह समाचार गोकुल में बिल्कुल न कहो । ५३ इस प्रेत को खींचकर गोकुल में ले आओ । हम दोनों जने आगे जाते हैं ।' (यह कहकर) बलराम और कृष्ण बगल में कम्बल दबा लेकर चल दिये । ५४ (भोगीन्द्र शेष के अवतार) बलराम और (क्षीर-समुद्र-कन्या लक्ष्मी के पति विष्णु के अवतार) कृष्ण दौड़ते हुए घर आ

यशोदेपुढें दोघे दडतीं। जाहले चित्तीं भयभीत। ५५ यशोदा म्हणे गाई टाकून। पुढें कां आलेती दोघे जण। यावरी राम मनमोहन। काय वचन बोलती। ५६ माते आज आमुच्या गड्यांनीं। बागुल काढिला यमुनेतूनी। आम्ही दोघांहीं देखिला नयनीं। मग भिवोनी पळालों। ५७ महाभ्यासुर देखिलें प्रेत। आम्हांसी धीर न धरवेचि तेथ। मग गाई टाकूनि त्वरित। आलों धांवत तुजपासीं। ५८ उरगेंद्र आणि यादवेंद्र। दासांसी दाविती लीलाचरित्र। मातेसी म्हणती सत्वर। लपवीं आम्हां कोठेंतरी। ५९ मातेनें ते वेळीं दोघे जण। हृदयीं धरिले शेषनारायण। म्हणती लेंकरें आलीं भिऊन। सांडीं ओंवाळून सांडणें। १६० ज्याची इंद्र आज्ञा वंदी मुकुटीं। ज्यासी हृदयीं ध्याती पद्मजधूर्जटी। त्यावरोनि यशोदा उतरी दृष्टी। निंबलोण प्रीतीनें। १६१ इकडे जळासुराचें प्रेत। गोवळे ओढून आणीत। एक त्याच्या मुखांत धूळ टाकीत। एक मारिती पाषाण। ६२ एक डांगा उचलोनि घालिती। एक त्याचें शिरीं मुतती। एक तोंडास काळें माखिती। कोल्हाळ करिती भोंवते। ६३ नंदादि गोकुळींचे

गये। (फिर) वे यशोदा के सामने दुबक (कर बैठ) गये। चित्त में वे भयभीत हो गये थे। ५५ तो यशोदा ने कहा (पूछा)— 'तुम दोनों जने आगे (पहले) क्यों आये?' इसपर बलराम और मनमोहन कृष्ण ने क्या बात कही? (सुनिए)। ५६ 'री माँ, आज हमारे मित्रों ने यमुना में से हौआ निकाल लिया। (जब) हम दोनों ने उसे आँखों से देखा, तो हम डरकर भाग गये। ५७ (जब) हमने महाभयावह शव देखा, तो हमसे वहाँ धीरज धारण ही नहीं किया जा पाया। तब गायों को छोड़कर झट से हम दौड़ते हुए तुम्हारे पास आ गये'। ५८ उरगेन्द्र (शेष अर्थात बलराम) और यादवेन्द्र कृष्ण (इस प्रकार अपने) दासों (भक्तों) को लीला-चरित्र दिखा रहे थे। वे माता से बोले, 'हमें कहीं भी झट से छिपा लो'। ५९ (यह सुनकर) माता ने उन दोनों को, शेष-नारायण (के अवतारों) को हृदय से लगा लिया। उसने कहा (सोचा)— 'बच्चे भयभीत होकर आये हैं, तो (अब) उतारा उतार दें'। १६० जिनकी आज्ञा को इन्द्र मुकुट से अर्थात सिर से वन्दनपूर्वक स्वीकार करते हैं (आज्ञा शिरसावन्द्य समझते हैं), जिनका ध्यान पद्मज ब्रह्मा और धूर्जटी शिवजी हृदय में करते रहते हैं, उनपर बुरी दृष्टि से बचाने के लिए यशोदा ने प्रेम-पूर्वक राईनोन उतार लिया। १६१ इधर गोपबालक जलासुर का शव खींचकर ला रहे थे। कुछ एक उसके मुँह में धूल डाल रहे थे, तो कुछ एक उसपर पत्थर मार (फेंक) रहे थे। ६२ कुछ एक लकड़ियाँ उठाकर उसपर डालते अर्थात उसे पीट रहे थे; कुछ एक ने उसके सिर पर पेशाब किया, तो कुछ एक ने उसके मुँह में कालिख पोत दी। वे उसके चारों ओर कोलाहल कर रहे थे। ६३ नन्द आदि गोकुल के लोग दौड़कर

जन। आले नगराबाहेर धांवोन। तों विशाळ प्रेत देखोन। भयभीत सर्वही। ६४ गोप सांगती ते वेळां। आम्हीं समस्तीं हा मारिला। तुम्हांसी दावावया आणिला। हरि पळाला भिवोनि। ६५ आम्ही गोपाळ मोठे धीट। म्हणोनि ओढीत आणिला नेटें। नंदास आश्चर्य वाटे। म्हणे अद्‌भुत वर्तलें कीं। ६६ कंसासी समाचार कळला। जळासुर प्राणासी मुकला। हृदयीं परम दचकला। म्हणे मृत्यु आला जवळी पैं। ६७ दूत गोकुळा पाठविले। गोपांनीं जळमनुष्य मारिलें। तें घेवोनि या वहिलें। शकटावरी घालोनियां। ६८ दूत धांवोनि आले गोकुळा। नंदास म्हणती उठा चला। जळमनुष्य ये वेळां। आणूं पाठविलें कंसानें। ६९ गाड्यावरी प्रेत नेलें घालोनी। कंसें देखिलें तें नयनीं। परम तळमळी मनीं। म्हणे ईश्वरकरणी अद्‌भुत। १७० ज्याच्या भयें पळती सुर। महापराक्रमी जळासुर। गुराख्यांनीं तो महावीर। क्षणमात्रें मारिला। १७१ पावकासी पतंगें धरिलें। अळीनें गरुडासी उचलिलें। जंबुकांनीं फोडिलें। केसरीचें उदर जैसें। ७२ अजांनीं मारिला व्याघ्र। दर्दुरें रगडिला उरगेंद्र। विपरीत

नगर के बाहर आ गये, तो वे सभी विशाल प्रेत को देखकर भयभीत हो उठे। ६४ उस समय गोप (बालक) उनसे बोले, 'हम सबने इसे मार डाला और तुम्हें दिखाने के लिए हम इसे ले आये हैं। कृष्ण तो डरकर भाग गया है। ६५ हम गोपाल बड़े ढीठ हैं; इसलिए इसे यत्नपूर्वक खींच लाये'। (यह देखकर) नन्द को अचरज अनुभव हुआ। वे बोले— (अहो), आश्चर्य घटित हो गया (चमत्कार हो गया)। ६६ (जब) कंस को यह समाचार विदित हुआ कि जलासुर प्राणों को खो चुका है, तो वह हृदय में परम चौंक उठा। उसने कहा (माना)— (मेरी) मौत निकट आ गयी है। ६७ (तदनन्तर) उसने अपने दूत (यह कहकर) गोकुल में भेज दिये— 'गोपों ने (जिस) जलमनुष्य को मार डाला है, उसे गाड़ी में डालकर पहले झट से ले आओ'। ६८ तो दूत दौड़ते हुए गोकुल आ गये और नन्द से बोले, 'उठो, चलो, कंस ने जलमनुष्य को ले जाने के लिए (हमें) इस समय भेजा है'। ६९ (तदनन्तर) गाड़ी में शव रखकर वे ले गये। (जब) कंस ने उसे अपनी आँखों से देखा, तो वह मन में तड़पने लगा और बोला (उन्होंने माना)— 'ईश्वर की करनी अद्‌भुत (होती) है। १७० जिसके भय से देव भाग जाते हैं, ऐसे उस महावीर महापराक्रमी जलासुर को इन गोपालों (चरवाहों) ने क्षण मात्र में मार डाला। १७१ (मानो) अग्नि को पतिंगे ने पकड़ लिया, इल्ली ने गरुड़ को उठा लिया, जैसे सियारों ने सिंह का पेट फाड़ डाला। ७२ बकरों ने बाघ को मार डाला, मेंढक ने साँप को रौंद डाला। काल की मुहर (कैसी) विपरीत है! (हाय!) यह महा असुर चला गया (मर

काळाची मोहर। महाअसुर गेला हा। ७३ जळासुराचें प्रेत पुरिलें। नंद गौळी गोकुळा आले। आनंदें उत्साह करूं लागले। पूर्ण अवतरलें परब्रह्म। ७४ उतरावया पृथ्वीचा भार। असुरपृतना अनिवार। त्यांचा करावया संहार। यादवेंद्र अवतरला। ७५ असो मथुरेमाजी कंस। चिंतानळ जाळी तयास। अरिप्रताप विशेष। अनिवार वाढला। ७६ तों पुढें असुरासुर। विक्राळवदन भयंकर। महादुरात्मा जोडोनि कर। कंसापुढें बोलतसे। ७७ म्हणे क्षण न लागतां ये अवसरीं। वधूनि येईन तुझा वैरी। राय तूं सर्वथा चिंता न करीं। जितचि वैरी आणीन। ७८ अथवा तेथेंचि मारीन। कीं सगळेचि दोघां गिळीन। मग मथुरेसी तुझें कल्याण। नांदें अढळ सर्वदा। ७९ कंस म्हणे तुझे बोल। लागती अमृताहूनि रसाळ। परी वैरी अनिवार सबळ। नाटोपती कवणातें। १८० जे जे जाती प्रतिज्ञा करूनी। ते नाहीं देखिले पुन्हां नयनीं। यालागीं तुझ्या वचनीं। विश्वास माझा न बैसे। १८१ मग तो म्हणे कंसातें। माझा मृत्यु वायुसुताहातें। त्यावांचोनि आणिकांतें। नाटोपेंचि जाण पां। ८२ रामअवतार

गया)'। ७३ (जब) जलासुर के प्रेत को गाड़ दिया, तो नन्द और (अन्य) गोप गोकुल आ गये। वे आनन्द के साथ उत्सव मनाने लगे। (उनके यहाँ) परब्रह्म अवतरित था। ७४ पृथ्वी पर से (पापियों, दुर्जनों का) बोझ उतारने के लिए, दुर्निवार असुर-सेना का संहार करने के लिए यादवेन्द्र (कृष्ण-रूप में परब्रह्म) अवतरित हो गया है। १७५

अस्तु। मथुरा में कंस को चिन्ता रूपी आग जला रही थी। उसके शत्रु (कृष्ण) का प्रताप विशेष दुनिवार्य रूप से बढ़ गया था। १७६ तब (वहाँ) अनन्तर असुरासुर नामक एक असुर था। उसका मुख विकराल तथा भयानक था। वह महादुरात्मा (असुर) कंस के सामने हाथ जोड़कर बोला। ७७ वह बोला, 'इस समय क्षण न लगते, मैं तुम्हारे वैरी का वध करके लौटूँगा। हे राजा, तुम बिल्कुल चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे शत्रु को जीवित ही (पकड़कर) ले आऊँगा। ७८ अथवा वहाँ ही मार डालूँगा। अथवा उन दोनों को सम्पूर्ण ही निगल डालूँगा। अनन्तर मथुरा के अन्दर तुम्हारा कल्याण नित्य अविचल बना रहेगा'। ७९ (यह सुनकर) कंस बोला, 'तुम्हारे ये वचन अमृत से भी मधुर लगते हैं। परन्तु (मेरे) वैरी दुर्धर्ष तथा बलवान हैं। वे किसी के द्वारा वश में नहीं किये जा रहे हैं। १८० जो-जो प्रतिज्ञा करके जाते हैं, उन्हें मैंने फिर से (अपनी) आँखों से नहीं देखा है। इसलिए तुम्हारी बातों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है'। १८१ फिर वह कंस से बोला, 'मेरी मौत वायु-सुत (हनुमान) के हाथों (बतायी जाती) है। समझ लो कि सिवा उसके मैं किसी दूसरे द्वारा वश में किया ही नहीं जाऊँगा। ८२ रामावतार

संपला। तेव्हांचि हनुमंत गुप्त जाहला। कोणे कपाटीं जाऊनि बैसला। नाहीं देखिला पुढती पैं। ८३ तो असे स्वर्गीं कीं पाताळीं। तो कासया येईल ये स्थळीं। आज्ञा द्यावी ये वेळीं। मज गोकुळीं जावया। ८४ कंस संतोषला देखा। म्हणे तूं माझा प्राणसखा। भयकाळींचा पाठिराखा। तुजपरता न देखों। ८५ दिधलीं वस्त्रें अलंकार। विजयी होऊनि ये सत्वर। तैसाचि वायुवेगें असुर। मित्रजातीरीं पातला। ८६ तों तेथें मिळाले गोपाळ। मध्यें बैसला वैकुंठ पाळ। ज्याचें स्वरूप अगाध अचळ। वेदशास्त्रांसी न वर्णवे। ८७ तो असुरासुर दुरूनी। गोप येतां देखती नयनीं। छत्तीस गांवें भूमीपासूनी। शरीर गगनीं उंच दिसे। ८८ भाळीं र्चचिला शेंदूर। विक्राळ वदन भयंकर। जिव्हा लळलळीत भ्यासुर। दाढा बाहेर दिसताती। ८९ गोपाळ जाहले भयभीत। नन्दात्मजासी म्हणती समस्त। हरि पहा हा दैत्य अद्‌भुत। मुख पसरोनि येतसे। १९० एक रिघती हरीचे पाठीं। कैवारिया जगजेठी। भयत्राता तुजविण सृष्टीं। कोणी नाहीं दूसरा। १९१ हरि म्हणे सकळांसी। कांहीं भिऊं नका मानसीं। मग तो

समाप्त हुआ है। तभी हनुमान गुप्त (लुप्त, नष्ट) हो गया। फिर अनन्तर किसी ने नहीं देखा है कि वह किसी (गिरि-) कन्दरा में जाकर बैठा है। ८३ वह स्वर्ग में हो अथवा पाताल में, वह इस स्थान पर किसलिए आएगा ? (अत:) मुझे गोकुल में जाने की इस समय आज्ञा दो'। ८४ (यह सुनकर) देखिए, कंस सन्तुष्ट हो गया और बोला, 'तुम मेरे प्राणसखा हो, तुम्हारे अतिरिक्त मैं अपना कोई दूसरा भय-काल का सहायक नहीं देख रहा हूँ'। ८५ उसने (ऐसा कहते हुए) उसे वस्त्र और आभूषण प्रदान किये (और कहा—) 'विजेता होकर झट से आ जाओ।' वैसे ही वह असुर वायुवेग से यमुना के तीर पर गया। ८६ तब वहाँ गोपाल इकट्ठा हुए थे। (उनके) बीच में (वैकुण्ठपाल भगवान विष्णुस्वरूप) वे कृष्ण बैठे हुए थे, जिनके अथाह, अविचल स्वरूप का वर्णन वेद-शास्त्रों द्वारा (भी) नहीं हो पाता। ८७ तो गोपालों ने दूर से असुरासुर को आते हुए अपनी आँखों से देखा। उसका शरीर भूमि पर से छत्तीस योजन गगन में ऊँचा दिखायी दे रहा था। ८८ उसके माथे पर सिंदूर पोता हुआ था। उसका मुख विकराल भयावह था। जिह्वा लपलपाती हुई तथा भयावह थी। उसकी डाढ़ें बाहर दिखायी दे रही थीं। ८९ (उसे देखते ही) गोपाल भयभीत हो उठे। वे सब नन्दात्मज कृष्ण से बोले, 'अरे हरि, देखो यह अद्‌भुत दैत्य मुँह बाये हुए आ रहा है'। १९० कोई एक श्रीहरि के पीठ-पीछे (छिपने के लिए) गये (और बोले—) 'हे (हमारे) सहायक, हे जगद्श्रेष्ठ, इस सृष्टि में बिना तुम्हारे दूसरा कोई भय से त्राता (रक्षक) नहीं है'। १९१ तो श्रीहरि ने सबसे कहा, 'मन में ज़रा भी न डरो'।

वैकुंठपुरविलासी। काय करिता जाहला। ९२ मनीं विचारी जगन्नाथ। यासी तों हनुमंताहातें मृत्य। तो जरी सखा पावे येथ। तरीचि दैत्य आवरे। ९३ मग नेत्र झांकोनि भगवान। करी वायुसुताचें चिंतन। म्हणे प्राणसखया वेगेंकरून। धांवें आतां ये वेळे। ९४ तूं भक्तांमाजी चूडामणी। सद्गुणरत्नांची खाणी। रात्रीमाजी द्रोणाचल आणूनी। सवेंचि नेऊनि ठेविला। ९५ अशोकवनारि सीताशोकहरणा। राक्षसांतका संकटनाशना। शक्रारिजनकदर्पहरणा। अंजनीहृदयरत्ना हनुमंता। ९६ सेतुबंधनीं हनुमंत। बैसलासे समाधिस्थ। तों कानीं शब्द अकस्मात। आपुले स्वामीचा ऐकिला। ९७ हृदय सद्गदित जाहलें। म्हणे श्रीरामें मज कां आठविलें। म्हणोनि तैसेंचि उड्डाण केलें। क्षणमात्र न लागतां। ९८ इकडे गाई गोपाळ लपवून। श्रीकृष्ण जाहला रघुनंदन। बळिराम जाहला लक्ष्मण। करीं चाप बाण शोभती। ९९ तों गगनपंथें हनुमंत आला। सप्रेम नमस्कार घातला। श्रीरामचरणीं मस्तक ठेविला। तो आनंद वर्णिला नव

फिर उन वैकुण्ठपुरनिवासी विष्णुस्वरूप कृष्ण ने क्या किया ?। ९२ उन जगन्नाथ कृष्ण ने मन में यह विचार किया— इसकी मौत तो हनुमान के हाथों से (होनेवाली) है। (अतः) यदि (मेरा) वह सखा यहाँ प्राप्त हो जाएगा (आ जाएगा), तो ही यह दैत्य वश में आ सकता है। ९३ अनन्तर भगवान कृष्ण ने आँखों को मूँदकर वायुसुत हनुमान का चिन्तन (ध्यान) किया। वे बोले, 'हे प्राणसखा, अब इस समय वेगपूर्वक दौड़ते हुए आ जाओ। ९४ तुम भक्तों में चूड़ामणि (सदृश अर्थात सर्वश्रेष्ठ) हो, सद्गुणों रूपी रत्नों की खान हो। तुमने रात के अन्दर द्रोणाचल लाकर, साथ ही उसे ले जाकर (उसके) अपने स्थान पर रख दिया था। ९५ हे अशोक वन के शत्रु, हे सीता के शोक का हरण करनेवाले, हे राक्षसों का अन्त (नाश) करनेवाले, हे संकटनाशन, हे (इन्द्र के शत्रु इन्द्रजित के पिता) रावण के घमण्ड को छुड़ानेवाले, हे अञ्जनी-हृदय-रत्न हनुमान ! (दौड़ते हुए आ जाओ)'। ९६ (उस समय) हनुमान सेतुबन्ध पर समाधि लगाये हुए बैठा था। तब सहसा अपने स्वामी की यह ध्वनि कानों से सुनी। ९७ तो उसका हृदय अति गद्गद हो उठा। वह बोला (उसने सोचा)— 'श्रीराम ने मेरा स्मरण क्यों किया ?' ऐसा कहकर (सोचकर) क्षणमात्र न लगते उसने वैसे ही उड़ान भरी। ९८ इधर गायों और गोपालों को छिपाकर श्रीकृष्ण (स्वयं) रघुनन्दन राम हो गये, बलराम लक्ष्मण हो गये। उनके हाथों में धनुष-बाण शोभायमान थे। ९९ तब आकाशमार्ग से हनुमान आ गया। उसने साष्टांग नमस्कार किया और श्रीराम के चरणों में मस्तक झुका रखा। उस आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। २०० (फिर) रघुनाथ राम ने उठाकर

जाय। २०० उचलोनियां रघुनाथें। हृदयीं धरिलें हनुमंतातें। म्हणे सखया तुजपरतें। प्रिय मज असेना। २०१ हनुमंत म्हणे रघुपती। कांहीं आज्ञा करा मजप्रती। म्हणोनि बद्धांजलि मारुती। सीतापतीपुढें उभा असे। २ श्रीराम म्हणे ते अवसरीं। पैल असुर येतो आम्हांवरी। त्याचा मृत्यु असे तुझे करीं। तरी संहारीं तूं तयातें। ३ ऐकतांचि ऐसें वचन। बलार्णव परम वायुनंदन। वारण देखोनि धांवे पंचानन। तैसा उडोनि चालिला। ४ कीं द्विजेंद्र धांवे उरगावरी। कीं सपक्ष नग देखोनि वृत्रारी। तैसा हनुमंत ते अवसरीं। असुरासुरें देखिला। ५ म्हणे हा माझा काळमृत्यु। कोठोनि आला अकस्मातु। आतां पुरला माझा अंतु। न वांचें मी यापुढें। ६ कृतांतकिकाळीसम थोर। ऐसी हांक फोडी असुरासुर। ऐसें देखोनि वायुकुमर। परमावेशें धांविन्नला। ७ काळ उभाचि कांपे चळचळी। हनुमंतें ऐसी दिधली आरोळी। हस्तींचा शूळ ते वेळीं। भिरकाविला असुरें हो। ८ हनुमंतें शूळ देखिला। वरचेवरी मग झेलिला। वायुसुतें भोवंडूनि ते वेळां। सवेंचि घातला त्यावरी। ९ हृदयावरी

हनुमान को हृदय से लगा लिया और कहा, 'हे सखा, मेरे लिए तुमसे (अधिक) प्रिय कोई नहीं है'। २०१ (इसपर) हनुमान बोला, 'हे रघुपति, मुझे कोई आज्ञा दीजिए।' ऐसा कहते हुए हनुमान हाथ जोड़कर सीतापति राम के सम्मुख खड़ा था। २ उस समय श्रीराम बोले, 'उस ओर से एक असुर हमारी ओर (चढ़ता हुआ) आ रहा है। उसकी मौत तुम्हारे हाथ है। इसलिए तुम उसका संहार कर डालो'। ३ ऐसी बात सुनते ही परमबलसागर वायुनन्दन हनुमान वैसे ही उड़कर चला, जैसे हाथी को देखकर सिंह (उसकी ओर) दौड़ता है। ४ अथवा खगेन्द्र गरुड़ साँप की ओर दौड़ता है, अथवा जैसे पंखों से युक्त पर्वतों को देखकर वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र (उनका निवारण करने के लिए) दौड़े, वैसे ही (उड़ते हुए आनेवाले) हनुमान को उस समय असुरासुर ने देखा। ५ वह बोला, 'मेरी यह काल-रूप मृत्यु सहसा कहाँ से आ गयी? अब मेरा अन्त पूरा हो गया; मैं इसके सामने (इसके मुक़ाबले में) नहीं बच पाऊँगा'। ६ तो असुरासुर ने कृतान्त यम की चीख-सा प्रचण्ड गर्जन किया। ऐसा देखकर वायुकुमार हनुमान परम आवेश के साथ दौड़ा। ७ हनुमान इस प्रकार गरज उठा कि काल (तक) खड़े-खड़े ही थरथर काँपने लग गया हो। तो उस समय उस असुर ने हाथ में स्थित शूल (उसकी ओर) उछालकर फेंक दिया। ८ (जब) वायुसुत हनुमान ने उस शूल को (आते) देखा, तो फिर उसे ऊपर-ही-ऊपर झेल लिया और साथ ही उसी समय (उसी को) घुमाते हुए उस (असुर) पर फेंक दिया। ९ वह हृदय पर टकरा गया, तो वह असुर मूर्च्छा को प्राप्त हो गया, (परन्तु) साथ

आदळला। मूर्च्छागत असुर जाहला। सवेंचि सरसावून धांविन्नला। उचलिला पर्वत। २१० बळें भोवंडूनि ते वेळां। सीताशोकहरणावरी टाकिला। येतां राघवप्रियें देखिला। मग फोडिला मुष्टिघातें। २११ सवेंचि वायु सुतें धांवोनी। असुरासुर धरिला चरणीं। गरगरां भोवंडोनि गगनीं। मग धरणीवरी आपटिला। १२ जैसें भंगे मृत्तिकापात्र। तैसें चूर्ण झालें शरीर। परतोनि आला वायुकुमर। मित्रकुळभूषणाजवळी पैं। १३ घातला साष्टांग नमस्कार। उभा ठाकला जोडोनि कर। प्रेमें सद्गद जाहलें अंतर। नेत्रीं नीर वाहतसे। १४ आदिपुरुषा आत्मारामा। मृडानीवरहृदयमंगलधामा। अहल्योद्धारका मेघश्यामा। पूर्णब्रह्मा अव्यक्ता। १५ ताटिकांतका ऋतुरक्षका। कमलिनीमित्रकुलदीपका। भार्गवचापभंजना सुखदायका। भार्गवजिता रघुपते। १६ पुढतीं स्वामीचें आगमन। व्हावया येथें काय कारण। मंदस्मित रघुनंदन। काय वचन बोलिला। १७ बा रे हा कृष्णावतार। तुजलागीं झालों रघुवीर। लक्ष्मण हा शेष साचार। तोचि बळिभद्र जाहलासे। १८ रामलक्ष्मणांचे चरण।

ही वह आगे लपकते हुए दौड़ा और उसने एक पर्वत उठा लिया। २१० उस समय, उसने (उसे) बलपूर्वक घुमाते हुए सीता-शोक-हरण हनुमान पर फेंक दिया; परन्तु (जब) उस राम-प्यारे ने उसे आते देखा, तब मुट्ठी के आघात से उसे फोड़ डाला। २११ साथ ही वायुसुत ने दौड़कर असुरासुर को पाँवों से पकड़ा और आकाश में वृत्ताकार घुमाते हुए फिर उसे धरती पर पटक डाला। १२ जिस प्रकार मिट्टी का बर्तन (पटक देने पर) टूट जाता है, उसी प्रकार (उस असुर का) शरीर चूर-चूर हो गया। (तत्पश्चात्) वायुकुमार सूर्यकुलभूषण श्रीराम के समीप आ गया। १३ उसने उन्हें साष्टांग नमस्कार किया और वह (उनके सम्मुख) हाथ जोड़कर खड़ा रह गया। उसका अन्तःकरण प्रेम से बहुत गद्गद हो उठा। उसकी आँखों से (अश्रु-) जल बह रहा था। १४ (वह बोला—) 'हे आदि-पुरुष, हे आत्माराम, जिनका मंगल निवास स्थान उमापति शिवजी का हृदय है (ऐसे हे प्रभु), हे अहल्या के उद्धारकर्ता, हे मेघश्याम, हे पूर्णब्रह्म, हे अव्यक्त (ब्रह्म), हे ताड़का का संहार करनेवाले, हे (विश्वामित्र के) यज्ञ के रक्षक, हे सूर्यकुल-दीपक, हे भार्गव परशुराम के धनुष को भग्न करनेवाले, हे सुखदायक, हे परशुराम को जीतनेवाले रघुपति। २१५-२१६ यहाँ (इस पृथ्वी पर) स्वामी का आगमन होने का क्या कारण है ?' तो मन्द स्मित करनेवाले रघुनन्दन क्या बात बोले ? (सुनिए)। १७ 'अरे यह कृष्णावतार है। (फिर भी) मैं तुम्हारे लिए रघुवीर राम हो गया हूँ; यह लक्ष्मण सचमुच शेष का अवतार है— बलभद्र वही (लक्ष्मण) बन गया है'। १८ (यह सुनकर) राम और लक्ष्मण के चरणों का वन्दन

वंदूनि भेटला वायुनंदन। म्हणे धन्य मी पुन्हां दर्शन। जाहलें मज स्वामीचें। १९ हनुमंत पुढतीं करी नमन। म्हणे एक इच्छी माझें मन। गोपाळरूप संपूर्ण। मी पाहीन कैसें तें। २२० ऐकोनि हांसे अयोध्याधीश। म्हणे आतां पाहें गोपाळवेष। ऐसें बोलोनि परमपुरुष। श्रीकृष्णरूप दाविलें। २२१ काखेसी घोंगडी हातीं काठी। पांवा वाजवी जगजेठी। गुंजमाळा रुळती कंठीं। भोंवतीं दाटी गोपाळांची। २२ लक्ष्मण जाहला बळिभद्र। भोंवते चरती गोभार। हमामा हुमली नाना प्रकार। खेळ खेळती गोवळे। २३ कृष्णापुढें नाचती गोवळे। झोंबिया घेती एक बळें। ऐसें हनुमंतें देखोनि ते वेळे। गदगदोनि हांसिन्नला। २४ म्हणे वैकुंठपालका सर्वेशा। अगाध लीला तुझी परमपुरुषा। नाना अवतारलीला परेशा। भक्तांलागीं दाविसी। २५ नमस्कारोनि जगज्जीवना। समीरात्मज गेला निजस्थाना। गोपाळ म्हणती नंदनंदना। अकळ कळेना लीला तुझी। २६ एकाएकीं हनुमंत। गगनपंथें आला अकस्मात। करूनि असुराचा घात। प्रताप अद्भुत दाविला। २७ दिनमणि पावला अस्त। गोकुळांत परतला

करके वायुनन्दन उनसे मिला और बोला, 'मैं धन्य हूँ। मुझे (अपने) स्वामी के फिर से दर्शन हो गये'। १९ हनुमान ने फिर उनका नमन किया और कहा, 'मेरा मन एक बात की अभिलाषा कर रहा है—(आपको) मैं सम्पूर्ण गोपाल-रूप में कैसे देख पाऊँ ?'। २२० (यह) सुनकर अयोध्याधीश रामचन्द्र हँस पड़े और बोले, 'अब गोपालवेश देख लो।' ऐसा बोलकर परमपुरुष राम ने उसे श्रीकृष्ण-रूप दिखा दिया। २२१ (उसने देखा—) उन (कृष्ण) की काँख में कमरिया है और हाथ में लकुटिया। वे जगद्श्रेष्ठ बाँसुरी बजा रहे हैं। उनके कण्ठ में गुञ्ज-मालाएँ शोभायमान हैं। उनके चारों ओर गोपालों का जमघट (लगा हुआ) है। २२ (अभी-अभी देखे हुए) लक्ष्मण (फिर से) बलराम हो गये हैं। चारों ओर गायों के झुण्ड चर रहे हैं। हुमरी-हमरी (जैसे) —नाना प्रकार के खेल वे गोप-बालक खेल रहे हैं। २३ (कुछ) गोप-बालक कृष्ण के सामने नाच रहे हैं। कोई-कोई बलात् (एक-दूसरे से) कुश्ती लड़ रहे हैं। उस समय (दृश्य) देखकर हनुमान खिलखिलाकर हँसने लगा। २४ वह बोला, 'हे वैकुण्ठ-पालक, हे सर्वेश, हे परमपुरुष, आपकी लीला अथाह है। हे परेश, आप भक्तों के लिए नाना अवतार (धारण करते हुए) लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं'। २५ (तत्पश्चात्) जगज्जीवन श्रीराम को नमस्कार करके पवनात्मज हनुमान अपने स्थान के प्रति चला गया। तो गोपाल बोले, 'हे नन्द-नन्दन, तुम्हारी अगम्य लीला समझ में नहीं आती। २६ यकायक हनुमान गगन-पन्थ से आ गया। असुर का नाश करके उसने अद्भुत प्रताप प्रदर्शित किया'। २२७

रमानाथ। गोप नंदासी सांगती मात। वनीं हनुमंत आला होता। २८ संहारूनि असुरासुरा। परतोनि गेला दक्षिणसागरा। ऐसें ऐकतां त्या अवसरा। आश्चर्य वाटलें गौळियां। २९ हरिविजय ग्रंथ सतेज। हाचि केवळ दिव्य रसराज। भवरोगिया सेवितां आरोग्य सहज। तेजःपुंज स्वयें होये। २३० शुकवैद्यें आत्महस्तेंकरून। उतरिलें हें दिव्य रसायन। परीक्षितीतें सेविलें सप्त दिन। आरोग्य जाण तो झाला। २३१ हें सेवितां रसायन। ब्रह्मांडभरी होइजे पावन। परद्रव्यपरनिंदाग्रहण। हें वावडें न सेविजे। ३२ ऐसा रसराज हरिविजय। सेवितां सर्व काळ पावे जय। भवरोगिया आणिक उपाय। नाहीं नाहीं दूसरा। ३३ जन्ममरणमोचक वैद्यराज। तो ब्रह्मानंदस्वामी सहज। श्रीधर तयाचे चरणरज। सेवितां आरोग्य सर्वदा। ३४ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। संतजन पंडित परिसोत। त्रयोदशाध्याय गोड हा। २३५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

(तब तक) सूर्य अस्त को प्राप्त हो गया, तो रमानाथ अर्थात कृष्ण गोकुल में लौट आये। गोपों ने नन्द से यह बात कही, ' वन में हनुमान आ गया था। २२८ असुरासुर का संहार करके वह दक्षिण सागर के प्रति लौट गया।' उस समय ऐसा सुनते ही उन ग्वालों को अचरज अनुभव हुआ। २२९

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ तेजस्वी है। यही केवल दिव्य रसराज है। सांसारिक रोगों से पीड़ित रोगी द्वारा इसका सेवन करने पर वह (आसानी से) नीरोग (रोगमुक्त) हो जाता है ,और वह स्वयं तेजःपुञ्ज हो जाता है। २३० शुक मुनि रूपी वैद्य ने अपने हाथों से इस दिव्य रसायन का निर्माण किया है; राजा परीक्षित ने सात दिन इसका सेवन किया; समझिए, उससे वह रोगमुक्त हो गया। २३१ इस रसायन का सेवन करने पर ब्रह्माण्ड भर पावन हो जाता है। परद्रव्य-ग्रहण और परनिन्दा जैसे कुपथ्य का सेवन न करें। ३२ ऐसे रसराज (स्वरूप) श्रीहरि-विजय का (श्रवण, पठन आदि के रूप में) सेवन करने पर सर्व काल जय प्राप्त होती है। सांसारिक रोगों से युक्त व्यक्ति के लिए और कोई अन्य उपाय नहीं है, नही है। ३३ गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी स्वाभाविक रूप से जन्म-मरण (के चक्र) से मुक्ति देनेवाले वैद्यराज हैं। उनके चरण-रजों का सेवन करने पर (मनुष्य) रोगमुक्ति को नित्यप्रति प्राप्त रहता है। २३४

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। सन्तजन तथा पण्डित (विद्वान्) उसके इस मधुर तेरहवें अध्याय का श्रवण करें। २३५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१४

[कृष्ण द्वारा अघ, धेनुक आदि असुरों का वध तथा नारद द्वारा कंस को कृष्ण-सम्बन्धी रहस्य बताना]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय वृंदावनविलासिनी । आदिमाये तूं कुलस्वामिनी । सनकादिकांच्या हृदयभुवनीं । तूं भवानी राहसी । १ काम क्रोध अनिवार । हेचि शुंभ निशुंभ दुष्ट असुर । अहंकार हा महिषासुर । करीं संहार तयांचा । २ ब्रह्मा विष्णु आणि रुद्र । शेष वाचस्पति पुरंदर । पुराणें शास्त्रें वेद समग्र । तुझे गोंधळी नाचती । ३ व्यास वाल्मीक वामदेव

श्रीगणेशाय नमः । हे वृन्दावन में निवास करनेवाली (श्रीकृष्ण-स्वरूप देवी), हे (श्रीकृष्ण परब्रह्मस्वरूप) आदिमाया, तुम (मेरी) कुल-स्वामिनी हो । हे भवानी, तुम सनकादि[1] (मुनिवरों) के हृदय रूपी भवन में रहती हो । १ काम, क्रोध (नामक विकार) ही शुम्भ और निशुम्भ[2] नामक दुर्निवार दुष्ट असुर हैं । अहंकार (मानो) महिषासुर[3] है । तुम उनका संहार कर डालो । २ तुम्हारे सामने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (रूप शिवजी), शेष, वाचस्पति (देवगुरु बृहस्पति), पुरन्दर इन्द्र, समस्त पुराण, शास्त्र, वेदस्वरूप गोंधळी (तुम्हारे सामने गोंधळ सम्पन्न करते हुए)

१ सनकादि मुनिवर— ब्रह्मा के सनक, सनन्दन, सनन्द और सनातन नामक चार प्रमुख मानसपुत्र थे । इनको साक्षात् विष्णु के अवतार माना जाता है । ये चारों तत्त्ववेत्ता थे; धर्मशास्त्रज्ञ, वीतराग थे । ये ब्रह्मा से कुमारस्वरूप में ही उत्पन्न हुए, इसलिए इनको ‘ कुमार ’ भी कहा जाता है । ये भगवान के परम भक्त थे ।

२ शुम्भ और निशुम्भ— पातालनिवासी राक्षसों में ये दो प्रमुख थे । इन्होंने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके उससे किसी भी पुरुष के द्वारा अवध्य होने का वरदान प्राप्त किया था । इससे वे अत्यधिक उन्मत्त तथा क्रूर, अत्याचारी हो गये । वे पाताल में गुरु भृगु की मंत्रणा के अनुसार राज्य करने लगे— शुम्भ राजा था और निशुम्भ उसका मंत्री । कालिका देवी ने इनका इनके साथियों-सहित संहार कर डाला ।

३ महिषासुर— रम्भासुर नामक एक सन्तानहीन असुर ने शिवजी को आराधना से प्रसन्न करके उनसे वरदान में चाहा कि वे (शिवजी) उसके पुत्र-रूप में उत्पन्न हो जाएँ । आगे चलकर रम्भासुर के चित्रवर्ण की सुन्दर महिषी से पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसमें शिव का अंश था । उसका नाम महिषासुर था । महिषासुर देवी का परम भक्त था । उसने ब्रह्मा से मनुष्य द्वारा अवध्य होने का वर प्राप्त किया । उसके बल से वह तीनों लोकों को कष्ट पहुँचाने लगा । उसने तपस्यारता पार्वती का वरण करने की इच्छा की । अन्त में उसने अष्टादशभुजाधारिणी देवी का रूप धारण करके महिषासुर को मार डाला ।

शुक। प्रल्हाद नारद बली भीष्मादिक। हेचि दिवटे प्रकाशक। जनांसी मार्ग दाखविती। ४ तूं कैवल्यपदकनकलतिका। आनंदसरोवरमराळिका।

नाचते हैं[१]। ३ व्यास[२], वाल्मीक, वामदेव, शुक, प्रह्लाद, नारद, बलि, भीष्म आदि प्रकाश उत्पन्न करनेवाले दीपधारी (मशालची) लोगों को (उनका अज्ञान रूपी अन्धकार हटाते हुए) सन्मार्ग दिखाते हैं। ४ तुम

१ गोंधळ, गोंधळी—' गोंधळ ' महाराष्ट्र में प्रचलित एक कुलाचार या कुलधर्म विशेष है। इसमें अम्बा, भवानी, रेणुका जैसी किसी देवी का पूजन किया जाता है। कुछ कुलों में तथा कुछ मंदिरों में उत्सव विशेषों के अवसर पर प्रतिवर्ष ' गोंधळ ' सम्पन्न कराने का रिवाज है, तो कुछ कुलों में विवाह आदि मंगलकार्य के पश्चात नैमित्तिक रूप से या मनौती की पूर्ति की दृष्टि से ' गोंधळ ' प्रस्तुत होता है। प्रायः ' गोंधळ ' प्रस्तुत करनेवालों में चार मुख्य व्यक्ति होते हैं, जिनमें से मुख्य ' नाईक ' (अर्थात नायक) कहाता है। यह प्रधानतः गीत-गायन और कथा-कथन करता है। एक सहायक व्यक्ति बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य के साथ एकाध प्रश्न पूछता रहता है और इस प्रकार कथा-वर्णन में गति-वृद्धि करता है। कथन के लिए किसी लोककथा को चुना जाता है। दो अन्य व्यक्तियों में से एक ' सम्बळ ' नामक बाजा और दूसरा इकतारा नुमा ' तुणतुणे ' नामक वाद्य बजाता रहता है। ' गोंधळ ' में पूजाविधि परम्परा से निर्धारित है। इसके लिए तेलपात्र और मशालें आवश्यक होती हैं। ' गोंधळ ' प्रस्तुत करनेवाले ' गोंधळी ' कहाते हैं। कभी-कभी कुछ अन्य पात्र भूतों का-सा वेश परिधान करके ' गोंधळ ' में शामिल हो जाते हैं, उन्हें ' भूतावली ' कहते हैं। महाराष्ट्र में ' गोंधळी ' नामक एक विशिष्ट जनजाति है, जिसके सदस्य प्रायः ' गोंधळ ' प्रस्तुत कराने के लिए नियुक्त किये जाते हैं।

२ व्यास— देखिए टिप्पणी १, पृ० ४६, अध्याय १।

वाल्मीकि — कहते हैं, रामायण के कर्ता आदिकवि वाल्मीकि पहले ब्राह्मण-कुलोत्पन्न होने पर भी दस्यु बन गये थे। कुछ लोगों के अनुसार, वे रत्नाकर नामक बटमार थे। एक बार सप्तर्षियों को उन्होंने मार डालना चाहा, तो उन्होंने कहा कि वे देख लें कि उनके पाप में घर का कोई भागी है या नहीं। जब उन्हें मालूम हो गया कि उनके पाप कोई बाँट लेना नहीं चाहता, तो उन्हें पछतावा हुआ। ऋषियों के अथवा नारद के उपदेश से वे राम-नाम का उलटा जाप (मरा,मरा) करने लगे। वे जाप करने में इतने मग्न हो गये कि उनकी देह में दीमक लग गयी, तो भी उन्हें इसका भान नहीं रहा। फिर नारद ने उन्हें उस दीमक अर्थात ' वल्मीक ' से बाहर निकाला। वल्मीक से निकलने के कारण उन्हें ' वाल्मीकि ' कहा जाने लगा। ये ही वाल्मीकि आगे चलकर विख्यात रामभक्त, कवि तथा रामायण के रचयिता हो गये।

वामदेव — वामदेव गोतम एक आचार्य तथा वैदिक सूक्तद्रष्टा थे, जिन्हें गर्भावस्था में ही आत्मानुभूति प्राप्त हुई थी। ऋग्वेद प्रायः समस्त चौथे मण्डल के ये प्रणेता कहे जाते हैं। इनके जन्म के विषय में अनेकानेक विचित्र कथाएँ कही जाती हैं। पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार करनेवालों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इस विषय में उनके विचार जन्मत्रयी नाम से विख्यात हैं। (पृष्ठ ३६६ पर)

ब्रह्मानंदपददायका। निजभक्तांसी सुख देसी तूं। ५ मनमोहने गोकुळवासिनी। दुष्टदैत्यसंहारिणी। सांवळे मुरलीधरे जगन्मोहिनी। नंदसदनीं खेळसी तूं। ६ संगें घेऊनि गोपाळ। निरंजनीं घालिसी गोंधळ। दैत्य हे बस्त सबळ। बळी घेसी तयांसी। ७ तेचि तूं अंबे भीमातीरीं। समपद समकर समनेत्रीं। वाट पाहसी अहोरात्रीं। निजभक्तांची पंढरीये। ८ तेरावा अध्याय संपतां तेथें। रामरूप धरिलें कृष्णनाथें। असुरासुर प्रभंजनसुतें। येवोनियां संहारिला। ९ कंस अत्यंत भयेंकरूनी। जें जें पाहों जाय नयनीं। पंचभूतें चराचर प्राणी। कृष्णरूप दिसती तया। १० हडपी देती विडिये करूनी।

कैवल्य पद अर्थात मोक्षस्वरूपा स्वर्णलता हो; आनन्द रूपी सरोवर में रहने वाली मरालिका (हंसी) हो; ब्रह्मानन्द पर अर्थात आनन्दस्वरूप ब्रह्म पद देनेवाली हो; तुम अपने भक्तों को सुख देती हो। ५ हे मनमोहना, हे गोकुल-वासिनी, हे साँवली मुरलीधरा (कृष्णस्वरूप देवी), हे जगन्मोहनी, तुम नन्द के सदन में खेलती हो। ६ साथ में गोपालों को लेकर तुम वन में ऊधम मचाती हो। वलशाली दैत्य (मानो) बकरे हैं। तुम उनको बलि के रूप में स्वीकार करती हो (मार डालती हो)। ७ वही (कृष्णस्वरूप) देवी, हे अम्बा, तुम भीमा के तीर पर पण्ढरपुर में समपद-समझकर मुद्रा में खड़ी रहकर समभाव से युक्त नेत्रों से दिन-रात अपने भक्तों की बाट जोह रही हो। ८

तेरहवें अध्याय के समाप्त होते (-होते) वहाँ अर्थात उसके अन्तिम भाग में (यह कहा गया है कि) कृष्णनाथ ने श्रीराम-रूप धारण किया और पवनकुमार हनुमान ने (गोकुल के निकट) आकर असुरासुर का संहार कर डाला। ९ अत्यन्त भय के कारण कंस अपनी आँखों से जो-जो देखने जाता (देखता), वे (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक) पंचमहाभूत चराचर प्राणी उसे कृष्ण-रूप दिखायी देने लगे। १० पान लगानेवालों ने

(पृष्ठ ३६५ से) शुक— देखिए टिप्पणी २, पृ० ४२, अध्याय १।
प्रह्लाद— ,, ,, २, पृ० ४२, अध्याय १।
नारद— ,, ,, २, पृ० ४२, अध्याय १।
बलि— ,, ,, ५ (त्रिविक्रम वामन), पृ० ६२, अध्याय २।

भीष्म— कुरुवंशोत्पन्न राजा शान्तनु के गंगा से उत्पन्न इस पुत्र ने अपने पिता के सुख के लिए आजन्म अविवाहित रहने और राजपद स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा की थी और अन्त तक उन्होंने इसका निर्वाह किया। ये मानो कुरुवंश के संरक्षक देवता थे। ये सुविख्यात राजनीतिज्ञ, युद्धशास्त्रविशारद, दार्शनिक, अर्थशास्त्रज्ञ माने जाते हैं। भारतीय युद्ध में इन्होंने कौरवों के पक्ष का समर्थन किया। उस युद्ध में प्रथम दस दिन तक ये कौरवों के सेनापति रहे। अन्त में ये अर्जुन के बाणों से आहत हो गये और आत्मबल से उत्तरायण आने तक ये शरशय्या पर पड़े रहे।

कंस पाहे विडा उकलोनी। त्यामाजी दिसे चक्रपाणी। हांक फोडोनि विडा टाकी। ११ म्हणे तांबूलांत मेळवून कृष्ण। मज दिधला तुवां आणून। घेऊं पाहतोसी माझा प्राण। शत्रु पूर्ण ज्ञाहलासी। १२ असो इकडे गोकुळीं। वनासी चालिला वनमाळी। भोंवतीं गोपाळांची मंडळीं। नाना वाद्यें वाजविती। १३ लागतां मुखवायूचें बळ। पांवे वाजती अति रसाळ। घुमरी मोहरी मृदंग टाळ। गाती गोपाळ स्वानंदें। १४ पूर्वीं तप आचरला बहुवस। धन्य धन्य तोचि वंश। स्वअधरीं रमाविलास। धरूनि वाजवी सर्वदा। १५ कमळेहूनि तप मोठें। वेणु आचरला बहुत वाटे। तरीच अधरीं धरिला वैकुंठपीठें। सदा तयातें न विसंबे। १६ हरीच्या गळ्याची वनमाळा। आपादलंबिनी मकरंद आगळा। सदासर्वदा पडली गळां। द्वेष उपजला कमळेसी। १७ म्हणे मी चरणींच राहिलें। इनें आपाद हरीस आवरीलें। हें न चुकेचि कदाकाळें। भक्तिबळें बळावली। १८ हरि धरी नाना अवतार। हे गळ्याची नव्हे दूर। इचा किती करावा मत्सर। ज्ञाहली प्रियकर

बीड़े लगाकर दिये तो कंस ने उसे (बीड़ा) खोलकर देखा। उसे (कंस को) उसमें (उसके अन्दर) चक्रपाणि कृष्ण दिखायी दिये। तो उसने चीख-चिल्लाकर वह बीड़ा फेंक दिया। ११ वह बोला, 'ताम्बूल में कृष्ण को मिलाकर तूने बीड़ा लाकर मुझे दिया। तू मेरे प्राण लेना चाहता है, तू मेरा पूर्णतः शत्रु हो गया'। १२ अस्तु। इधर गोकुल में (से) वनमाली कृष्ण वन के प्रति चल दिये। उनके चारों ओर गोपालों का जमघट था। वे अनेकानेक वाद्य बजा रहे थे। १३ मुखवायु (फूँक) का ज़ोर लगते ही बाँसुरियाँ अति मधुर बजने लगीं। घुमरियाँ, मुँहरियाँ (नामक चरवाहों के बाजे), झाँझ बजने लगे। गोपाल आत्मानन्दपूर्वक गा रहे थे। १४ पूर्वकाल में उस वंश (बाँस) ने बहुत बड़ी तपस्या की होगी—वही बाँस धन्य है, धन्य है, जिसे अपने अधरों पर धरकर रमाविलास विष्णुस्वरूप कृष्ण नित्य बजाया करते थे। १५ जान पड़ता है— उस बाँस ने कमला (लक्ष्मी) से अधिक बड़ी तपस्या की होगी; तभी तो वैकुण्ठपीठ भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने अधरों पर धरा है। वे उसे नित्य (कभी भी) नहीं भूलते। १६ श्रीहरि की गले की वनमाला (तो देखिए, वह—) पाँवों तक पहुँचनेवाली (झूलती रहनेवाली) लम्बी है। उसकी सुगन्ध अनोखी है। वह नित्यप्रति उनके गले लगी हुई है। (यह देखकर) लक्ष्मी को उससे द्वेष होने लगा। १७ वह बोली— 'मैं (तो इनके) चरणों में ही रही; (परन्तु) इस (वनमाला) ने श्रीहरि को आपाद (गले से पाँवों तक, पूर्णतः) वश में कर लिया है। (अब) यह किसी भी काल में नहीं हट सकती। (जान पड़ता है) वह भक्ति के बल (इतने बल) को प्राप्त हो गयी है। १८ श्रीहरि अनेक अवतार ग्रहण करते हैं; (फिर भी) यह गले की माला

कृष्णातें । १९ पडिली हे न सुटे गळां । मग तिसीं स्नेह वाढवी कमळा । गुणगंभीर सांवळा । दोघी सेविती प्रीतीनें । २० धन्य तो हातींचा वेत्र । घेवोनि हिंडे राजीवनेत्र । धन्य ते शिखी साचार । पिच्छें श्रीधर शिरीं वाहे । २१ असो ऐका मथुरेचें वर्तमान । कंस चिताक्रांत रात्रंदिन । तों अघासुर बोले वचन । म्हणे मी गिळीन शत्रु तुझा । २२ कंसें गौरविला दुराचार । काननाप्रति येत अघासुर । होऊनि विशाळ अजगर । असंभाव्य पसरला । २३ शतयोजनें लंबायमान । पर्वताकार दिसे दुरून । द्वादश गांवें मुख पसरोन । पडिला असे उरग तो । २४ जसीं नगशृंगें तीक्ष्ण बहुत । तैसे ओळीनें भयासुर दंत । गोगोप आंत प्रवेशत । पर्वतदरी म्हणोनियां । २५ मागें दुरावला श्रीधर । पुढें गेली गाईंची मोहर । नव लक्ष गोपाळ समग्र । मुखामाजी संचरले । २६ दूरी राहिला गोपाळ । पुढें विघ्न ओढवलें सबळ । भक्तवत्सल घननीळ । जाणोनि आंत प्रवेशला । २७ पूर्वीं काळिया मर्दिला थोर । त्याहूनि विशाळ

(उनसे) दूर नहीं होती । इससे कितना डाह करें ? —यह तो कृष्ण को (मुझसे भी) अधिक प्रिय हो गयी है । १९ यह तो (इस प्रकार) गले लगी हुई है, वह (गले से) नहीं हट जाएगी । ' तब (ऐसा मानकर) लक्ष्मी ने उससे स्नेह (भाव-सम्बन्ध) बढ़ाया है । (तबसे) वे दोनों गुण-गम्भीर साँवले (भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण) की प्रेमपूर्वक सेवा कर रही हैं । २० उनके हाथ की बेंत की वह लकुटिया धन्य है । हाथ में लेकर राजीवनेत्र कृष्ण घूमते रहते हैं । सचमुच वे मोर धन्य हैं, (जिनके) पंख श्रीधर अपने मस्तक पर (खोंसकर) वहन करते हैं । २१

अस्तु । मथुरा सम्बन्धी समाचार सुनिए । जब कंस रात-दिन चिन्ताक्रान्त रहा करता था, तब अघासुर ने यह बात कही । वह (कंस से) बोला— ' मैं तुम्हारे शत्रु को निगल डालूँगा ' । २२ (यह सुनकर) कंस ने उस दुराचारी को गौरवान्वित किया । (तदनन्तर) अघासुर वन में आया और विशाल अजगर बनकर असम्भाव्य रूप में फैलकर पड़ा रहा । २३ वह सौ योजन लम्बायमान था । वह दूर से पर्वताकार दिखायी दे रहा था । वह साँप (इस प्रकार फैलकर) मुँह को बारह योजन बाकर पड़ा था । २४ जिस प्रकार पर्वत के शिखर बहुत नुकीले होते हैं, वैसे उसके भयावह (नुकीले) दाँत पंक्ति में दिखायी दे रहे थे । उसे पर्वत की कन्दरा समझकर गायें और गोप अन्दर प्रविष्ट हो गये । २५ (इधर) कृष्ण पीछे दूर रह गये —(उधर) गायों का आगेवाला झुण्ड आगे गया । समस्त नौ लाख गोपाल (उस अजगर के) मुँह में चलते गये । २६ (उधर) गोपाल कृष्ण तो (पीछे) दूर रह गये (और इधर) आगे बड़ा विघ्न आ गया । यह जानकर भक्तवत्सल घननील कृष्ण (भी इसे जानकर) अन्दर पैठ गये । २७ पूर्वकाल में उन्होंने प्रचण्ड कालिय नाग का मर्दन किया

हा अज़गर। गोगोपाळांसहित मुरहर। मुखीं त्याच्या प्रवेशला। २८ प्रवेशले ज़ाणोनि समग्र। ज़ाभाडें मिळवी अघासुर। आक्रंदती गाईंचे भार। प्रळय थोर मांडला। २९ गडी म्हणती नारायणा। आतां रक्षीं आमुच्या प्राणां। तुवां पूर्वीं उचलूनि गोवर्धना। भक्तजनां रक्षिलें। ३० द्वादश गांवें दावाग्न। तुवां गिळिला न लगतां क्षण। येथेंही तूंचि रक्षिसी पूर्ण। भरंवसा आहे आम्हांतें। ३१ सिंह सखा ज़ाहला पुरता। मग भय काय काननीं हिंडतां। घरीं येवोनि बैसला सविता। कायसी चिंता दीपाची। ३२ ऐसें बोलतां गोपाळ। भक्तवत्सल तो तमालनीळ। कृपेनें द्रवला दयाळ। ज़ाहला विशाळ ते समयीं। ३३ द्वादश योजनें त्याचें मुख। त्याहून उंच ज़ाहला रमानायक। उभाचि अज़गर देख। चिरिला तेव्हां गोविंदें। ३४ ज़ैसा शुष्क वेणु कुठारें। एकाचि घायीं उभा चिरे। कीं पट फाडितां निकरें। वेळ कांहीं न लगेचि। ३५ तैसा उभाचि फाडिला अघासुर। सोडविले गोगोपांचे भार। गगनांतूनि पुष्पवृष्टि सुरवर। वारंवार करिताती। ३६ अस्तास जातां चंडांश। गोकुळा परतला परमपुरुष। नंदादि गौळियां यशोदेस। समाचार

था। उससे यह अजगर (अधिक) विशाल (जान पड़ता) था। मुरहर कृष्ण गायों और गोपालों-सहित उसके मुख में प्रविष्ट हो गये। २८ सब (अन्दर) पैठ चुके हैं, यह जानकर अघासुर ने जबड़े मिला लिये। (तब) गायों के झुण्ड आक्रन्दन करने लगे। उन्होंने बड़ा प्रलय (काल का-सा कोलाहल) मचा दिया। २९ तो साथी बोले, 'हे नारायण, अब हमारे प्राणों की रक्षा करो। पूर्वकाल में तुमने गोवर्धन को उठाकर भक्तजनों की रक्षा की थी। ३० तुमने बारह योजन (फैले हुए) दावानल को क्षण न लगते निगल डाला था। हमें पूरा भरोसा है कि यहाँ (इस संकट में) भी तुम ही (हमारी) रक्षा करोगे। ३१ (जब) सिंह किसी का पूरा-पूरा सखा बन गया हो, तब उसे वन में घूमते रहने में क्या डर होगा? (यदि) सूर्य आकर घर में बैठा हुआ हो, तो दीये की कैसी चिन्ता?' ३२ गोपालों द्वारा ऐसा बोलते ही वे भक्तवत्सल, दयालु तमालनील कृष्ण कृपा से पसीज गये और उस समय वे (एकदम) विशाल (प्रचण्ड आकार वाले) हो गये। ३३ उस अजगर का मुख बारह योजन था, तो रमानायक विष्णुस्वरूप कृष्ण उससे भी ऊँचे हो गये और देखिए तब उन गोविन्द कृष्ण ने उस अजगर को खड़ा ही चीर डाला। ३४ जिस प्रकार सूखा बाँस कुल्हाड़ी से एक ही घाव में सीधा चीर दिया जाता है, अथवा यत्नपूर्वक वस्त्र को फाड़ने पर उसे फट जाने में कुछ भी (अधिक) समय नहीं लगता, उसी प्रकार (श्रीकृष्ण ने) अघासुर को सीधा चीर डाला और गायों और गोपों के समुदायों को मुक्त कर दिया। (उस समय) देवों ने आकाश से बार-बार पुष्पवर्षा की। ३५-३६ सूर्य के अस्त हो जाने पर परमपुरुष कृष्ण गोकुल लौटे, तो यह समाचार नन्द आदि ग्वालों और यशोदा को विदित हो

कळला हा । ३७ आश्चर्य वाटे सकळांतें । म्हणती मनुष्य कोण म्हणे यातें । समाचार कळला कंसातें । अघासुर निमाला । ३८ मग पाठविला धेनुकासुर । महाक्रोधी दुराचार । ताडवनांत असुर । वृषभ होऊनि बैसला । ३९ तें जाणोनि गोविंद । तिकडे चालविला गोवृंद । ताडवनांत मुकुंद । नानाविध खेळ खेळे । ४० ताड लागले दाट बहुत । माजीं धेनुकासुर गर्जत । गोप जाहले भयभीत । हरिमुख तेव्हां विलोकिती । ४१ दैत्याचा उत्कर्ष अद्‌भुत । शृंगें उंच जेवीं महापर्वत । हांकें निराळ गाजत । मग कृष्णनाथ काय करी । ४२ प्रतापदिनकर घननीळें । धेनुकासुरास पाचारिलें । तंव तो शृंगें उभारोनि बळें । हरीवरी धांविन्नला । ४३ महिषासुर आरडत । शक्तीवरी जैसा धांवत । कीं हिरण्यकश्यप बळें बहुत । नरहरीवरी कोसळे । ४४ तैसा धेनुकासुर धांविन्नला । श्रीहरीअंगीं मिसळला । दोन्ही शृंगें ते वेळां । रमानाथें धरियेलीं । ४५ उलथोनि भूमिवरी पाडिला । सवेंचि सरसावूनि धांवला । मग श्रीकृष्णें चरणीं धरिला । भोवंडिला गरगरां । ४६

गया । ३७ तो उन सबको आश्चर्य अनुभव हुआ । वे बोले, 'उसे मनुष्य कौन कहेगा ?' (तब तक) कंस को यह समाचार ज्ञात हुआ कि अघासुर ठण्डा हो गया । ३८ अनन्तर उसने धेनुकासुर को (कृष्ण को मार डालने के लिए) भेज दिया । वह महायोद्धा दुराचारी असुर ताल वन में बैल बनकर बैठ गया । ३९ उसे जानने पर गोविन्द कृष्ण ने गायों के झुण्ड को उधर चला दिया । (तदनन्तर) उस ताल वन में कृष्ण नाना प्रकार के खेल खेलने लगे । ४० (उस वन में) तालवृक्ष बहुत घने लगे हुए थे। उसके अन्दर धेनुकासुर गरज उठा, तो गोप भयभीत हो गये । तब वे श्रीहरि के मुख की ओर देखने लगे । ४१ उस दैत्य का अद्‌भुत विकास हो गया था । उसके सींग महापर्वत जैसे ऊँचे थे । उसके गर्जन से आकाश गूँज उठा । फिर कृष्णनाथ ने क्या किया ! । ४२ प्रताप के सूर्य (-से) घननील कृष्ण ने धेनुकासुर को ललकारते हुए बुला लिया, तब वह सींग उभारकर बलपूर्वक श्रीहरि की ओर दौड़ा । ४३ जिस प्रकार (पूर्वकाल में) महिषासुर गरजते हुए शक्तिदेवी[1] की ओर दौड़ा था, अथवा हिरण्यकशिपु (जिस प्रकार) बहुत बलपूर्वक नरसिंह पर लपक गया था[2], उसी प्रकार धेनुकासुर दौड़ा और श्रीहरि के शरीर में मिल (-सा) गया । उस समय कृष्ण ने उसके दोनों सींग पकड़ लिये । ४४-४५ (फिर) उसे उलटाते हुए भूमि पर गिरा दिया; साथ ही वह (फिर से) लपकते हुए दौड़ा । तब श्रीकृष्ण ने उसके पाँव पकड़कर उसे वृत्ताकार घुमा दिया । ४६ उस बलवान को (फिर) उन्होंने बलपूर्वक (भूमि पर)

१ महिषासुर— देखिए टिप्पणी ३, पृ० ३६४, अध्याय १४ ।
२ हिरण्यकशिपु— देखिए टिप्पणी ४, पृष्ठ ६२, अध्याय २ ।

आफळिला सबळ बळें। गतप्राण जाहला ते वेळे। दिव्य सुमनें वर्षले। वृंदारक तेधवां। ४७ ऐसा अद्‌भुत करूनि पुरुषार्थ। गोपांसहित परतला वैकुंठनाथ। कंसासी कळला वृत्तांत। धेनुकासूर निमाला। ४८ मग परम प्रतापी केशी असुर। उभा राहिला कंससमोर। म्हणे गोकुळाचा संहार। क्षणमात्रें करीन मी। ४९ माझिया प्रतापापुढें। देव पळती होऊनि बापुडे। कृष्णबळिराम केव्हडे। मारावया अशक्य। ५० मी कोपतां वीर केशी। पळती दिनमणि आणि शशी। ऐकतां कंस मानसीं। परम संतोष पावला। ५१ वस्त्रें भूषणें दिधलीं तयासी। गोकुळा चालिला दैत्य केशी। अश्वरूप धरूनि वेगेंसीं। घोषप्रदेशीं पातला। ५२ तळवे वाजती तेव्हां सबळ। दणाणिलें उर्वीमंडळ। देवीं विमानें सकळ। पळविलीं हो तेधवां। ५३ पर्वताकार सबळ बळी। गोकुळाभोंवते कावे घाली। ऐसा कोणी नाहीं बळी। जो दृष्टीं न्याहळी तयांतें। ५४ गोकुळीं जाहला हलकल्लोळ। कपाटें लोक देती सकळ। म्हणती आतां नुरे गोकुळ। प्रळयकाळ पातला। ५५ सिंहनाद जेव्हां करी। थरथरे सकळ धरित्री। ऐसा कोण आहे क्षेत्री। जो जाऊनि-

---

पटक डाला, तो उस समय वह गतप्राण हो गया। तब देवों ने दिव्य फूल बरसा दिये। ४७ इस प्रकार का अद्‌भुत पराक्रम करके वैकुण्ठनाथ कृष्ण गोपों-सहित लौट गये। (उधर) कंस को यह समाचार विदित हुआ कि धेनुकासुर ठण्डा हो गया। ४८ तब केशी नामक एक परमप्रतापी असुर कंस के सामने खड़ा हो गया। वह बोला, 'मैं क्षणमात्र में गोकुल का संहार कर डालूँगा। ४९ मेरे प्रताप के सामने देव असहाय होकर भाग गये हैं। (फिर) कृष्ण और बलराम तो कितने (बड़े) हैं, जो मार डालने के लिए असम्भव हों। ५० मुझ (जैसे) वीर केशी के कुपित होने पर सूर्य और चन्द्र भाग जाते हैं।' यह सुनकर कंस मन में सन्तोष को प्राप्त हो गया। ५१ उसने उस (असुर) को (सम्मानपूर्वक) वस्त्र और आभूषण दिये, तो वह दैत्य— केशी गोकुल के प्रति चला गया। वह अश्वरूप धारण करके गोकुल के अन्दर ग्वालों की बस्ती में आ पहुँचा। ५२ जब उसके सबल (मज़बूत) तलुवे (खुर) बजने लगे; उसने पृथ्वी-मंडल दनदना दिया। अहो, तब देवों ने अपने समस्त विमान भगा दिये। ५३ वह मज़बूत बलवान (डील-डौल वाला) पर्वताकार असुर (अश्वरूप से) गोकुल के चारों ओर चक्कर लगाने लगा। (वहाँ) ऐसा कोई भी बलवान नहीं था, जो उसकी ओर अपनी दृष्टि से (आँखें उठाकर) देख सके। ५४ (उससे) गोकुल में कोलाहल मच गया। समस्त लोगों ने (अपने-अपने घर के) द्वार बन्द कर लिये। वे बोले (उन्होंने माना)— अब गोकुल नहीं बच पाएगा। प्रलयकाल आ पहुँचा है। ५५ जब वह सिंहनाद (का-सा नाद) करता, तो समस्त धरती काँप उठती। ऐसा कौन क्षत्रिय

धरी तयातें। ५६ एक हांक झाली गोकुळीं। ऐसें देखोनि वनमाळी। अभय दिधलें ते वेळीं। म्हणे चिंता करूं नका। ५७ ऐसें बोलोनि राजीवनयन। मातंगावरी धांवे पंचानन। कीं उरगांवरी विष्णुवहन। न सांवरत झेंपावें। ५८ कीं राक्षसांवरी निराळोद्भवसुत। धांवे जैसा अकस्मात। त्याच प्रकारें दीननाथ। केशियावरी धांविन्नला। ५९ केशीनें देखिला श्यामसुंदर। कोमलांग नवपंकजनेत्र। म्हणे हाचि मुख्य शत्रु साचार। दैत्यसंहार केला यानें। ६० कृष्णें धांवूनि ते वेळां। अकस्मात चरणीं धरियेला। भवंडूनि भिरकाविला। येरू सरसावला सवेंचि। ६१ विशाळ मुख पसरिलें। हरीस म्हणे गिळीन सगळें। चरणीं धरोनि ते वेळे। पुढती कृष्णें टाकिला। ६२ पर्वताकार सबळ घोडा। क्रोधें कडकडां खाय दाढा। अद्भुत हरीचा पवाडा। त्रिदश नेत्रीं विलोकिती। ६३ मागुती सरसावूनि धांविन्नला। हरीनें रगडून मुंगा पिळिला। सव्य हस्त ते वेळां। मुखीं घातला यदुवीरें। ६४ कुक्षीपर्यंत हात। घाली तेव्हां जगन्नाथ। जैसा लोहगोळा

था, जो जाकर उसे पकड़ पाता। ५६ गोकुल में अपूर्व हो-हल्ला मचा है, —ऐसा देखकर वनमाली कृष्ण ने (सबको) उस समय अभयदान दिया और कहा, 'कोई चिन्ता न करो'। ५७ ऐसा कहकर राजीवनयन दीनानाथ श्रीकृष्ण केशी पर उसी प्रकार चढ़ दौड़े, जिस प्रकार सिंह हाथी पर चढ़ दौड़ता है, अथवा विष्णुवाहन गरुड़ सर्पों की ओर (अपने आपको) न सँभलते हुए लपकता है, अथवा पवनकुमार अकस्मात राक्षसों पर चढ़ दौड़ा हो। ५८-५९ केशी ने कोमलांग, नव कमलनयन श्यामसुन्दर कृष्ण को देखा, तो वह बोला (उसने माना)— 'यही सचमुच (कंस का) प्रमुख शत्रु (जान पड़ता) है। इसने समस्त दैत्यों का संहार किया है'। ६० उस समय कृष्ण ने सहसा दौड़कर उसको पाँवों से पकड़ लिया और वृत्ताकार घुमाते हुए उछालकर फेंक दिया। (परन्तु गिर जाने पर) साथ ही वह (उठकर आगे) लपक गया। ६१ उसने मुख को विशाल फैला दिया और कहा— 'मैं कृष्ण को पूरा-पूरा निगल डालूँगा।' (फिर भी) उस समय कृष्ण ने उसके पाँव पकड़कर फिर से उसे फेंक दिया। ६२ वह (असुर तो) तो पर्वताकार बलशाली घोड़ा (बना हुआ) था। वह क्रोध से किटकिटाकर डाढ़ें (दाँत) चबा रहा था। (तब) देव (विमानों में बैठकर) श्रीहरि के अद्भुत प्रताप को देख रहे थे। ६३ (जब) वह पुनः लपकते हुए दौड़ा, तो यदुवीर श्रीहरि ने उसके (ऊपर के) होंठ और नाक के अग्रभाग को (पकड़कर) मरोड़ डाला। (साथ ही) उन्होंने उस समय अपना दाहिना हाथ उसके मुँह में घुसेड़ दिया। ६४ तब जगन्नाथ कृष्ण ने उसकी कोख तक हाथ डाल दिया। वह अन्दर से उसे वैसा ही

अतितप्त। तैसा ज़ाळीत अंतरीं। ६५ जिव्हा तयाची पिळोनी। बाहेर काढिली उपटोनी। दैत्यें नेत्र वटारूनी। त्यजिला प्राण तेथेंचि। ६६ मुखींहूनि अशुद्धाचा पूर। भडभडां वाहे अनिवार। विमानीं आनंदले सुरवर। सुमनें अपार वर्षती। ६७ कळला कंसासी समाचार। प्राणासी मुकला केशी वीर। मग धरणीवरी शरीर। कंसें घातलें तेधवां। ६८ जैसा पडलिया घटश्रोत्र। अत्यंत शोक करी दशवक्त्र। तैसा व्याकुळ कंसासुर। केशीदैत्याकारणें। ६९ याउपरी एके दिवशीं। गाई चारीत हृषीकेशी। कंसें पाठविलें प्रलंबासी। कपटवेषें दुरात्मया। ७० वृषभवेष धरूनी। गाईमाजो चरे वनीं। परम द्वेषें जळे मनीं। हरीकडे पाहोनियां। ७१ शृंगें उभारुनि ते वेळां। श्रीकृष्णावरी धांविन्नला। दैत्य कपटवेषी कळला। श्रीरंगासी तेधवां। ७२ धरूनि दोन्ही शृंगें भवंडोनि आपटिला श्रीरंगें। जैसें पक्व फळ चूर होय वेगें। उर्वीवरी आपटितां। ७३ तैसें चूर जाहलें शरीर। प्राणास मुकला असुर। कळला कंसास समाचार।

जला रहा था, जैसे अतितप्त लोह का गोला जलाता है। ६५ उन्होंने उसकी जीभ को मरोड़ते हुए उखाड़कर बाहर निकाल दिया, तो (फल-स्वरूप) उस दैत्य ने आँखें फैलाते हुए वहीं प्राण त्याग दिये। ६६ उसके मुख में से रक्त का दुर्निवार रेला झरझर बह रहा था। (यह देखकर) विमानों में (बैठे हुए) देव आनन्दित हो उठे और उन्होंने अनगिनत फूल बरसा दिये। ६७ (इधर) कंस को यह समाचार विदित हुआ कि वीर केशी प्राणों से मुक्त हुआ है (अर्थात मर गया है), तो फिर तब उसने शरीर धरती पर लुढ़का दिया। ६८ जिस प्रकार दशानन रावण ने कुम्भकर्ण के (युद्धभूमि में) गिर जाने पर अपार शोक किया, उसी प्रकार केशी दैत्य (की मृत्यु) के कारण कंसासुर व्याकुल हो गया (और शोक करने लगा)। ६९

इसके पश्चात एक दिन कृष्ण गायों को चरा रहे थे। तब कंस नें दुरात्मा प्रलम्ब (नामक असुर) को कपटवेश में (कपटवेश धारण करवाकर) भेज दिया। ७० वह (असुर) बैल का रूप धारण करके वन में गायों के बीच चरने लगा। वह श्रीहरि की ओर देखते हुए परम द्वेष से मन में जल रहा था। ७१ उस समय अपने सींग आगे बढ़ाते हुए वह श्रीरंग श्रीकृष्ण पर चढ़ दौड़ा। तो उस समय उनकी समझ में वह कपट वेशधारी बैल (का यथार्थ रूप) आ गया। ७२ फिर कृष्ण ने दोनों सींग पकड़कर उसे वृत्ताकार घुमाते हुए (भूमि पर) पटक डाला, तो जैसे पका हुआ फल भूमि पर पटकते ही झट से चूर-चूर हो जाता है, वैसे ही उस असुर का शरीर चूर-चूर हो गया और वह प्राणों को खो बैठा। (उधर)

प्रलंब परत्र पावला। ७४ याउपरी एके दिनीं। निरभ्र चांदणें यामिनी। बळिराम आणि चक्रपाणी। वसंतवनीं खेळती। ७५ गोपललनांसमवेत। काळियामर्दन वनीं खेळत। तों शंखचूडदैत्य तेथ। आला दुष्ट तेधवां। ७६ महानिर्दय यक्ष पापखाणी। गोवेष धरिला दोघांजणीं। गाईऐशी ध्वनी। दुरूनि वनीं करिती ते। ७७ ते कुबेराचे सेवक। महाकपटी दुष्ट देख। क्षणक्षणां फोडिती हांक। व्रजनायक ऐकतसे। ७८ बळिभद्रासी म्हणे मुरहर। गाई धरोनि नेतो व्याघ्र। तरीच बाहती वारंवार। करुणास्वरेंकरूनियां। ७९ ऐसें बोलोनि कमळानायकें। गोब्राह्मणप्रतिपाळकें। परमपुरुषें भक्ततारकें। ताडवृक्ष उपडिला। ८० पाठिराखा भूधरअवतार। तेणें उपडिला प्रचंड तरुवर। त्वरें धांवले महावीर। गोरक्षणाकारणें। ८१ तों ते दोघे कपटवेषी। पळते जाहले वेगेंसीं। राम आणि हृषीकेशी। मनोवेगेंसीं धांवले। ८२ तों ते गोवेष टाकिती। व्याघ्र होवोनि वेगें पळती। शेष हरि न सोडिती। पाठलाग तयांचा। ८३ मावकर दोघे जण। व्याघ्रवेषही

कंस को यह समाचार विदित हुआ कि प्रलम्ब परलोक को प्राप्त हुआ। ७३-७४

इसके पश्चात एक दिन रात अभ्ररहित थी और चाँदनी फैली हुई थी। (तब) बलराम और कृष्ण वसन्त वन में खेल रहे थे। ७५ कालिय का मर्दन करनेवाले कृष्ण गोपललनाओं (गोपियों)-सहित उस वन में खेल रहे थे। तो तब शंखचूड़ नामक दुष्ट दैत्य वहाँ आ गया। ७६ (उसके साथ) एक महानिर्दय, पापों की खान जैसा यक्ष था। उन दोनों जनों ने गायों का वेश धारण किया। वे दूर से वन के अन्दर गाय की-सी ध्वनि करने लगे (रम्भाने लगे)। ७७ वे कुबेर के सेवक थे। देखिए, वे महा कपटी, दुष्ट थे। वे क्षण-क्षण चीख-चिल्ला रहे थे। व्रजनायक कृष्ण ने यह सुना। ७८ तो मुरारि कृष्ण बलराम से बोले, '(जान पड़ता है,) बाघ गायों को पकड़कर ले जा रहा होगा, तभी तो वे (गायें) बार-बार करुण स्वर में पुकार (रम्भा) रही हैं'। ७९ ऐसा बोलकर गो-ब्राह्मण-परिपालक, भक्तों को तारनेवाले परमपुरुष कमलापति विष्णुस्वरूप कृष्ण ने एक तालवृक्ष उखाड़ लिया। ८० भूधर शेष के अवतार बलराम उनके समर्थक-सहायक थे। उन्होंने (भी) एक प्रचण्ड वृक्ष उखाड़ लिया। (फिर) वे दोनों महावीर गायों की रक्षा के लिए तेज़ गति से दौड़े। ८१ तो वे दोनों कपट वेशधारी (दैत्य) वेगपूर्वक भागने लगे; (यह देखकर) बलराम और कृष्ण (भी उसके पीछे) मनोवेग से दौड़े। ८२ तो उन्होंने गायों का वेश त्याग दिया और वे बाघ बनकर वेगपूर्वक दौड़ने लगे। (फिर भी) शेषावतार बलराम और श्रीहरि ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। ८३ (तदनन्तर) वे दोनों जने मायारूपधारी बाघ-वेश को भी

टाकून। महाभ्यासुर रूप धरोन। उभे परतोन ठाकले। ८४ नगमस्तकीं पडे वज्र। तैसे दोघे मावकर। तरुघातें केले चूर। क्षणमात्र न लागतां। ८५ दोघांचीं शिरें खुडूनी। घेऊनि चालिले ते क्षणीं। विजयी होऊनि रामचक्रपाणी। पूर्वस्थळा पावले। ८६ त्यावरी आली एकादशी। जे परम प्रियकर भक्तांसी। रुक्मांगद सत्त्वराशी। पूर्वी उद्धरला जिचेनी। ८७ हरिस्वरूप एकादशी। नंद व्रतस्थ ते दिवशीं। जागरण जाहलें सर्वांसी। सरली निशा सत्वर। ८८ मग दुसरे दिवशीं पाहीं। नंद उठिला अरुणोदयीं। यमुनातीरीं ते समयीं। स्नानालागीं पातला। ८९ तों जलपति मुख्य वरुण। त्याचे दूत रक्षिती अनुदिन। अकाळीं जळीं रिघती जे जन। त्यांसी धरून नेती ते। ९० आणि मनांत चिंती वरुण। श्रीकृष्ण हा आदिनारायण। कीं अंशरूपें जाहला सगुण। पाहों लीला तयाची। ९१ हरीचा पहावया अंत। तो रसाधिपति होता टपत। तों अरुणोदयीं नंद अकस्मात। यमुनास्नाना पातला। ९२ नंद करितां अघमर्षण। वरुणहेरीं नेला ओढून।

छोड़कर महा भयावह रूप धारण करके लौटते हुए खड़े हो गये। ८४ जैसे पर्वत के सिर (शिखर) पर वज्र गिर जाए (तो वह चूर-चूर हो जाता है) वैसे ही (कृष्ण-बलराम ने) पेड़ के प्रहार से क्षणमात्र न लगते उन दोनों मायावेशधारियों को चूर-चूर कर डाला। ८५ उस क्षण वे उनके सिर काटकर (और साथ में) लिये हुए चले गये। बलराम और कृष्ण विजेता होकर (अपने) पहले स्थल आ पहुँचे। ८६

उसके बाद वह एकादशी आ गयी, जो भक्तजनों को परमप्रियकर लगती है और जिससे पूर्वकाल में सत्त्वराशि रुक्मांगद[1] उद्धार को प्राप्त हो गया। ८७ एकादशी हरि-स्वरूप होती है। उस दिन नन्द व्रतस्थ (व्रत रखे हुए) थे। सबको रतजगा हो गया। (फिर) झट से रात समाप्त हो गयी। ८८ देखिए, फिर दूसरे दिन अरुणोदय के समय नन्द उठ गये और उस समय वे स्नान के लिए यमुना के तीर पर चले गये। ८९ वरुण जल का मुख्य स्वामी (माना जाता) है। तब उसके दूत प्रतिदिन (यमुना जल की) रखवाली करते थे। जो लोग असमय पानी में पैठते, उनको पकड़कर वे ले जाते थे। ९० और वरुण मन में यह विचार कर रहा था कि श्रीकृष्ण स्वयं आदिनारायण हैं अथवा आदिनारायण अंश-रूप में सगुण हो गये हैं ? (अब) उनकी लीला देख लें। ९१ श्रीहरि (को सताकर उनकी शक्ति) की परख करने की ताक में रसाधिपति वरुण रहा था। तब अरुणोदय के समय नन्द सहसा यमुना स्नान के लिए आ गये। ९२ नन्द द्वारा स्नान करने लगते ही वरुण के दूत उन्हें खींचकर

---

१ रुक्मांगद : देखिए टिप्पणी, पृ० ३७९, अध्याय १३।

गेले पाताळास घेऊन। वरुणापाशीं तेधवां। ९३ यावरी गोकुळीं काय झाली करणी। उदयाद्रीवरी आला वासरमणी। यशोदा वाट पाहे सदनीं। म्हणे गृहधनी न येती कां। ९४ तों हांक गांवांत झाली। नंद बुडाला यमुनाजळीं। चोहोंकडोन धांवले गौळी। यशोदा आली लवलाहें। ९५ यमुनातीरीं येऊनी। वक्षःस्थळ पिटी नंदराणी। मूर्च्छागत पडली धरणीं। शोकेंकरूनि विव्हळ। ९६ गौळी संचरले जळीं। एक पसरिती आंत जाळीं। एक बुडिया देती जळीं। शोध घेती नंदाचा। ९७ यशोदा शोकें देत हांका। म्हणे नंदजी व्रजपालका। प्राणप्रिया सुखदायका। कोठें आतां पाहों तुम्हां। ९८ काल अष्टप्रहर एकादशी। नंदजी तुम्ही निर्वाण उपवासी। आजि पारणें करावयासी। कोठें गेलां न कळे तें। ९९ ऐसी माया करितां शोक। जवळी आला वैकुंठपाळक। जो भक्तवत्सल शोकहारक। मातेप्रति बोलतसे। १०० शोक न करावा तत्त्वतां। येचि क्षणीं आणीन पिता। कृतांतासी शिक्षा लावीन आतां। करणी करितां विपरीत। १०१ ऐसें बोलोनि तांतडी। यमुनाजीवनीं घातली उडी। चतुर्दश लोकांचा कडोविकडी। झाडा घेतला श्रीरंगें। २ पूर्वी केलें गोवर्धनोद्धारण।

ले गये। वे उस समय उन्हें वरुण के समीप ले गये। ९३ इसके पश्चात गोकुल में क्या घटना हो गयी ? सूर्य उदयाचल पर आ गया; (तब तक) यशोदा घर में (अपने पति की) बाट जोह रही थी। वह बोली, '(अब तक) गृहस्वामी क्यों नहीं आये ?'। ९४ तब (तक) ग्राम में यह हो-हल्ला मच गया कि नन्द यमुना जल में डूब गये। तो चारों ओर से ग्वाले दौड़े। यशोदा (भी) झट से आ गयी। ९५ यमुना के तीर पर आकर नन्दरानी छाती पीटने लगी। वह शोक से विह्वल होते हुए धरती पर मूर्च्छित पड़ गयी। ९६ ग्वाले (यमुना के) जल में पैठ गये। कुछ एक ने अन्दर जाले फैला दिये। कुछ एक डुबकियाँ लगाने लगे। (इस प्रकार) वे नन्द की खोज करने लगे। ९७ यशोदा शोक से चीख-पुकार रही थी। वह बोली, 'हे नन्दजी, हे व्रजपालक, हे प्राणप्रिय, हे सुखदाता, अब हम तुम्हें कहाँ देख लें ?। ९८ कल आठों पहर एकादशी थी। हे नन्दजी, तुम पूरे निराहार उपवासी रहे। यह समझ में नहीं आ रहा है कि आज पारण करने के लिए तुम कहाँ गये हो'। ९९ माता द्वारा ऐसा शोक करते रहने पर वैकुण्ठ के पालक श्रीकृष्ण उसके पास आ गये। जो (श्रीकृष्ण) भक्त-वत्सल तथा (भक्तों के) शोक को दूर करनेवाले हैं, वे माता से बोले। १०० 'तुम सचमुच शोक न करना। इसी क्षण मैं पिताजी को ले आऊँगा। मैं अब कृतान्त को ऐसी विपरीत करनी करने के कारण दण्ड दे दूँगा'। १०१ ऐसा कहकर वे तत्काल यमुना के जल में कूद पड़े। (फिर) श्रीकृष्ण ने चौदहों लोकों में नाना प्रकार से यत्नपूर्वक

द्वादश गांवें गिळिला अग्न। तो पुरुषार्थ संपूर्ण। मायेनें मनीं आठविला। ३ कालिया महासर्प अघासुर। केशिया मारिला कृष्णें साचार। नंदासी आणील हा दृढ विचार। मनीं वाटे मायेतें। ४ सकळ गोकुळींचे जन येती। कालिंदीतीरीं तटस्थ बैसती। कृष्णमायेभोंवत्या मिळती। नितंबिनी गोकुळींच्या। ५ म्हणती यमुनेनें घेतली आहुती। लोक कृतांतभागिनी इजप्रती। जे म्हणती ते साच वदती। ऐसें बोलती व्रजजन। ६ असो इकडे वरुणलोकाप्रती। सत्वर गेला क्षीराब्धिजापती। दूत सांगती रसाधिपती। श्रीकृष्ण पूर्ण कोपला। ७ जो पूर्णब्रह्मानंद अखंड। काळाचा हा महाकाळ प्रचंड। यासी करील कोण दंड। सर्वात्मया हरीतें। ८ क्षणें जाळील ब्रह्मांड। श्रीकृष्ण प्रतापसूर्य प्रचंड। जो पूर्णब्रह्मानंद अखंड। करी दंड काळातें। ९ भयभीत जाहला वरुण। बाहेर आला धांवोन। घातलें श्रीकृष्णासी लोटांगण। म्हणे शरण अनन्य मी। ११० तूं पूर्णब्रह्म। दीननाथ। म्यां नेणोनि पाहिला अंत। तूं कृपाळु लक्ष्मीकांत। क्षमा करीं अन्याय हा। १११ पुराणपुरुषोत्तमा भुवनचालका। तूं अगोचर ब्रह्मादिकां।

तलाशी की। २ उन्होंने पहले (एक समय) गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था, बारह योजन (फैली हुई) आग को निगल डाला था। माता यशोदा ने उनके उस सम्पूर्ण पुरुषार्थ (प्रताप) को मन में स्मरण किया। ३ कृष्ण ने सचमुच कालिय महासर्प को, अघासुर और केशी को मार डाला। (इसका स्मरण करने पर) माता यशोदा के मन में यह विचार (निर्णय) दृढ़ जान पड़ा कि ये नन्द को लाएँगे। ४ गोकुल के समस्त जन आ गये और यमुना-तट पर स्तब्ध बैठ गये। गोकुल की स्त्रियाँ कृष्ण की माता के चारों ओर इकट्ठा हो गयीं। ५ वे बोलीं, ' यमुना ने (नन्द के रूप में) आहुति ग्रहण की। लोग इसे जो कृतान्त यम की भगिनी कहते हैं, वे सच्चा ही बोलते हैं।' व्रजवासी लोग इस प्रकार बोल रहे थे। ६ अस्तु। इधर क्षीरसागर-कन्या के पति विष्णुस्वरूप कृष्ण शीघ्रतापूर्वक वरुणलोक के प्रति गये, तो दूतों ने रसाधिपति वरुण से कहा— श्रीकृष्ण पूर्णतः क्रुद्ध हुए हैं। ७ जो (वस्तुतः) अखण्ड पूर्ण ब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप ब्रह्म) हैं, वे ये (श्रीकृष्ण) काल (तक) के प्रचण्ड महाकाल हैं। उन सर्वात्मा श्रीहरि को कौन दण्ड दे सकता है'। ८ (यह सुनकर) वरुण भयभीत हो उठा। वह दौड़ते हुए बाहर आ गया और उसने श्रीकृष्ण को दण्डवत नमस्कार किया। ९ वह (फिर) बोला, ' मैं आपकी शरण में अनन्य रूप से आ गया हूँ (मैं आपके चरणों में अनन्य भाव से समर्पित हूँ)। ११० आप पूर्णब्रह्म हैं, दीनों के नाथ हैं। मैंने यह न जानते हुए आपकी परीक्षा कर ली। हे लक्ष्मीकान्त, इस अन्याय (अपराध) को क्षमा करें। १११ हे पुराणपुरुषोत्तम, हे भुवनचालक, आप ब्रह्मा आदि के

येणें व्याजें गोकुलपालका। दर्शन मज दीधलें। १२ अर्पूनि सोळाही उपचार। आवडीं पूजिला श्रीकरधर। नमस्कार घाली वारंवार। मग यदुवीर बोलत। १३ अविद्यायोगें भुलोनी। गेलासी निजस्वरूप विसरोनी। आतां देहाभिमान टाकोनी। सदा स्मरणीं राहिजे। १४ आज्ञा वंदूनि ते वेळां। नंद हरीस आणूनि दिधला। वेगें श्रीरंग परतला। येता जाहला गोकुळा। १५ निशी संपतां उगवे चंडांश। तैसा यमुनाजळांतूनि परमपुरुष। नंदासमवेत आला हर्ष। परम जाहला व्रजातें। १६ परम वेगें धांवली माया। म्हणे हरि प्राणसखया। श्रीरंगा माझिया विसांविया। काय होऊं उतराई। १७ हरि हें शरीर ओंवाळूनी। कुरवंडी करीन तुजवरोनी। बहुतां संकटीं रक्षिलें चक्रपाणी। काय म्हणोनि आठवूं। १८ असो नंदासी भेटले गौळी। प्रेमें आलिंगिला वनमाळी। वाद्यें वाजूं लागलीं ते वेळीं। वेगें आले मंदिरा। १९ नंदें उत्साह केला थोर। भूसुरां दिधलीं वस्त्रें अलंकार। आनंदलें गोकुळ समग्र। रमावरप्रसादें। १२० सांगातें

लिए (तक) अगोचर (अज्ञेय) हैं। हे गोकुल के पालक (रक्षक), इस बहाने आपने मुझे दर्शन दिये'। १२ (तत्पश्चात्) उसने सोलहों उपचारों को समर्पित करते हुए प्रेमपूर्वक, श्री अर्थात लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण को बार-बार नमस्कार किया। तब यदुवीर श्रीकृष्ण बोले। १३ '(हे वरुण), तुम अविद्या (माया-जन्य अज्ञान) के योग (प्रभाव) से मोहित होते हुए अपने (आत्म-) स्वरूप को भूल गये हो। अब देह सम्बन्धी अभिमान का त्याग करके नित्य (मेरे) स्मरण में लगे रहो'। १४ उस समय इस आज्ञा को शिरोधार्य (वन्द्य) समझकर वरुण ने नन्द को श्रीरंग हरि के पास ला दिया, तो वे वेगपूर्वक गोकुल के प्रति आ गये। १५ जिस प्रकार रात के समाप्त होते ही सूर्य उदय को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार यमुना जल में से परमपुरुष श्रीकृष्ण नन्द-सहित निकल आये, तो व्रज (वासियों) को परमहर्ष हो गया। १६ (उन्हें देखते ही) माता यशोदा अत्यधिक वेग से दौड़ी और बोली, 'रे हरि, रे प्राण-सखा, रे श्रीरंग, रे मेरे विश्राम (के आधार), मैं क्या (कैसे) ऋणमुक्त हो सकूँगी ?। १७ रे हरि, मैं इस शरीर को निछावर के रूप में तुझ पर वार दूँगी। रे चक्रपाणि कृष्ण, तूने बहुत संकटों से (हमारी) रक्षा की है। मैं उसे क्या-क्या कहते हुए याद करूँ ?'। १८ अस्तु। ग्वाले नन्द से मिले; उन्होंने वनमाली श्रीकृष्ण का प्रेमपूर्वक आलिंगन किया। उस समय वाद्य बजने लगे। वे सब वेगपूर्वक अपने घर आ गये। १९ (तदनन्तर) नन्द ने बड़ा उत्सव (समारोह) सम्पन्न किया। (उस निमित्त) ब्राह्मणों को वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। (इस प्रकार) रमावर भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण की कृपास्वरूप प्रसाद से समस्त गोकुल

घेऊनि जगदानंदकंद। भोजनविधि सारी नंद। ते समयींचा ब्रह्मानंद। कवण वर्णू शके पैं। १२१ याउपरी एके दिवसीं। नंद निघे शक्तिवनासी। देवीची यात्रा ते दिवसीं। सर्व व्रजवासी निघाले। २२ यशोदेसहित गौळणी। दहीं दूध घृत लोणी। यांचे गाडे भरोनी। तेच क्षणीं निघाले। २३ षड्रस अन्नें सुंदर। त्याचेंही शकट भरले समग्र। यात्रा चालली अपार। वाद्यगजर होतसे। २४ मनोहर शक्तिवन। जेथें विश्राम पावे शक्राचें मन। वृक्ष भेदीत गेले गगन। न दिसे किरण सूर्याचें। २५ आम्र कदंब औदुंबर। केळी नारळी अंजिर। पोफळी डाळिंबी कृष्णागर। मलयागर चंदन। २६ चांफे मोगरे कंचन। जाई जुई रातांजन। बकुळ शतपत्रकमलें पूर्ण। विकासलीं साजिरीं। २७ असो ऐशा वनीं शक्ती। सकळ जन तेव्हां पूजिती। लोकीं ते दिवसीं केली वस्ती। तेचि स्थळीं प्रीतीनें। २८ रजनी दोन प्रहर

आनन्द को प्राप्त हो गया। १२० जगत के आनन्द के (बीजस्वरूप) कन्द श्रीकृष्ण को साथ में लेकर नन्द ने भोजन-विधि सम्पन्न की। उस समय के (उन सबको अनुभव होनेवाले) ब्रह्मानन्द का वर्णन कौन कर पाएगा ? । १२१

इसके पश्चात एक दिन नन्द शक्तिवन जाने के लिए निकले। उस दिन (शक्ति) देवी का मेला (लगनेवाला) था। अतः समस्त व्रजवासी (उसमें भाग लेने के लिए व्रजमण्डल से) निकल पड़े। १२२ गोपियाँ यशोदा-सहित दही, दूध, घी और मक्खन से गाड़ियाँ भरकर उसी क्षण (उन लोगों के साथ) चल दीं। २३ अच्छे षड्रस[1] अन्न (भोज्य पदार्थ तैयार किये गये) थे। समस्त गाड़ियाँ उनसे भी भर दीं। (इस प्रकार) अपार यात्रियों की भीड़ चली जा रही थी। (उस समय) वाद्यों का अपार गर्जन हो रहा था। २४ वह शक्तिवन मनोहारी था, जहाँ पर इन्द्र (तक) का मन विश्राम को प्राप्त हो जाता था। उस (वन) में वृक्ष गगन को भेदते हुए ऊपर (बढ़) गये थे। (उस कारण वहाँ) सूर्य की किरण (तक) नहीं दिखायी दे रही थी। २५ (उस वन में) आम्र (आम के पेड़), कदम्ब, औदुम्बर (गूलर), केला, नारियल, अंजीर, सुपारी (पूगी-फल), दाडिम (अनार), कृष्णागरु-मत्स्यागरु (जाति के) चन्दन (के पेड़) थे। २६ चम्पक, मोगरा, कांचन (सुनहरा कचनार), जाही, जूही, रक्तांजन (लाल रंग का पुष्प-विशेष), मौलसिरी, शतपत्र (जाति के) कमल (के फूल) सलोने पूर्णरूप से विकसित हो गये थे। २७ अस्तु। ऐसे वन में तब समस्त लोग शक्तिदेवी का पूजन किया करते थे। उन लोगों ने उस दिन उसी स्थल पर प्रेम से निवास किया। २८ रात दो पहर

[1] षड्रस— खट्टा (अम्ल), मीठा (मधुर), कड़ुआ (कटु), खारा (क्षार), तीखा (तिक्त), तीता (कसैला, कषाय)।

जाहली । निद्रार्णवीं अवघीं बुडालीं । तों महासर्प ते वेळीं । नंदाजवळी पातला । २९ कमलापति ते वेळां । यशोदेपुढें पहुडला । तंव तो अजगर धांविन्नला । गिळों लागला नंदातें । १३० नंद आक्रोशें हांका फोडीत । म्हणे धांवा धांवा रे समस्त । सर्पें गिळिलें कंठपर्यंत । कृष्णनाथ दावा मज । १३१ अट्टहासें नंद आरडत । कैवारिया हरि धांवें म्हणत । तों गौळी धांवले समस्त । जळत भितळे घेवोनियां । ३२ धबधबां घालिती उचलोन । परी न सोडीच सर्प दारुण । मग नंद बोले वचन । कृष्णवदन दावा मज । ३३ माझे जातातो प्राण । अंतकाळीं दावा मनमोहन । ऐसें जाणोनि रमाजीवन । न लागतां क्षण धांविन्नला । ३४ नंदें देखिला कैवल्यदानी । म्हणे सोडवीं या काळापासोनी । हरि पदघातें हाणी ते क्षणीं । परी न सोडीच सर्प तो । ३५ मग उभाचि सर्प चिरिला । पिता तत्काळ सोडविला । कृपाकटाक्षें अवलोकिला । शुद्ध जाहला सर्वांगें । ३६ ज्याचें नाम घेतां पतित । भवसर्पाचें विष उतरत । त्याच्या कृपावलोकनें तेथ ।

हो गयी । वे सब निद्रा-सागर में डूबे हुए थे । तब उस समय एक महासर्प नन्द के समीप आ पहुँचा । २९ उस समय कमलापति विष्णु-स्वरूप कृष्ण यशोदा के पास पौढ़े हुए थे, तब वह अजगर दौड़ा और नन्द को निगलने लगा । १३० (त्योंही) नन्द आक्रोशपूर्वक चीखने-पुकारने लगे । वे बोले, 'अहो, सब (लोगो), दौड़ो, दौड़ो । साँप ने (मुझे) गले तक निगल डाला है— मुझे कृष्ण दिखा दो' । १३१ क्रन्दन करते हुए नन्द चिल्ला रहे थे । वे बोल रहे थे, 'रे साथी रक्षक हरि, दौड़ो ।' तब समस्त गोप लुकाठे (जलती लकड़ियाँ) लेकर दौड़े (हुए आ गये) । ३२ वे (लुकाठे) उठा (उठा) कर धबधब पीटने लगे, फिर भी वह भयानक साँप (नन्द को) नहीं छोड़ रहा था । तब नन्द यह बात बोले, 'मुझे कृष्ण का मुँह दिखा दो । ३३ मेरे प्राण (निकल) जा रहे हैं । (मेरे) अन्त (मृत्यु) के समय (मुझे) मनमोहन (कृष्ण) दिखा दो ।' ऐसा जानते ही क्षण न लगते रमाजीवन विष्णुस्वरूप कृष्ण दौड़े । ३४ नन्द ने कैवल्य (मोक्ष) दाता कृष्ण को (जब) देखा, तो वे बोले, 'इस काल (-स्वरूप सर्प) से छुड़ा दो ।' (त्योंही) उस क्षण कृष्ण उस पर पाँवों से आघात करने (लातें जमाने) लगे, फिर भी वह सर्प (नन्द को) नहीं छोड़ रहा था । ३५ तब उन्होंने उस सर्प को खड़ा ही चीर डाला (और) अपने पिता को तत्काल छुड़ा लिया । (तदनन्तर जब) उन्होंने उनको कृपा से युक्त कटाक्ष (दृष्टि) से देखा, तो वह समस्त अंगों-सहित शुद्ध हो गया (सुध-बुध को प्राप्त हो गया) । ३६ जिनका नाम किसी पापी द्वारा लेने पर संसार-सर्प का विष उतर जाता है, उनके द्वारा कृपायुक्त अवलोकन

सर्पविष तें केवढें । ३७ असो सर्पदेहामधूनी । दिव्य पुरुष तेचि क्षणीं । निघाला श्रीरंगाचे चरणीं । अनन्यभावें लागला । ३८ उभा राहिला जोडोनि कर । म्हणे मी सुदर्शन नामें विद्याधर । मी गर्वें माजलों अपार । नाहीं आपपर ओळखिले । ३९ स्त्रियांशीं मी जलक्रीडा खेळत । परम विषयांध उन्मत्त । तों ऋषींचो मांदी अकस्मात । त्याचि पंथें पातली । १४० त्यांसी केला नाहीं नमस्कार । स्वमुखें निंदिले समग्र । मग ते कोपले ऋषीश्वर । शाप दिधला तेधवां । १४१ म्हणती दुष्टा तूं उन्मत्त । सर्प होवोनि पडें वनांत । मग मी झालों भयभीत । केला प्रणिपात सर्वांतें । ४२ उभा ठाकलों बद्धांजली । मज उश्शाप दीजे सकळीं । मग तिहीं कृपा केली । अमृतवचन बोलिले । ४३ तिहीं सांगितलें मजलागोनी । श्रीकृष्ण येईल शक्तिवनीं । त्याच्या चरणस्पर्शेंकरूनी । मुक्त होसील तत्काळ । ४४ तें आजिच्या दिनीं सत्य जाहलें । माझें पूर्वपुण्य फळासी आलें । म्हणोनि श्रीपतीचीं पाउलें । प्रेमें धरिलीं विद्याधरें । ४५ वंदोनि पूतनाप्राणहरणा । सुदर्शन गेला निजस्थाना । गौळी वाजविती वाद्यें नाना । निजसदना

करने पर वहाँ (उसके मुक़ाबले में) वह सर्प-विष कितना है ? । ३७ अस्तु । उस सर्प की देह में से उसी क्षण एक दिव्य पुरुष निकल उठा और वह अनन्य (भक्ति) भाव से श्रीरंग के पाँव लग गया । ३८ (तदनन्तर) हाथ जोड़कर वह खड़ा हो गया और बोला, 'मैं सुदर्शन नामक विद्याधर हूँ । मैं अभिमान के कारण अपार उन्मत्त हो गया था । (अतः) मैं अपना-पराया नहीं पहचान पा रहा था । ३९ मैं (एक समय) स्त्रियों-सहित जलक्रीड़ा कर रहा था; तब सहसा उस मार्ग से ऋषियों का समुदाय आ पहुँचा । १४० मैंने उनको नमस्कार नहीं किया; (इतना ही नहीं,) मैंने अपने मुख से उन सबकी निन्दा की ।' तब वे ऋषीश्वर कुपित हो उठे और उस समय उन्होंने अभिशाप दिया । १४१ वे बोले, 'अरे दुष्ट, तू उन्मत्त (हो गया) है । इस वन में तू सर्प होकर पड़ जाएगा ।' (यह सुनकर) मैं तब भयभीत हो उठा और सबको नमस्कार किया । ४२ मैं बद्धांजली अर्थात हाथ जोड़े खड़ा रह गया (और बोला), 'आप सब मुझे शापमोचन बता दीजिए ।' तब उन्होंने (मुझ पर) कृपा की । वे अमृत (-से मधुर) वचन बोले । ४३ उन्होंने मुझसे कहा, 'श्रीकृष्ण शक्तिवन में आएँगे, तो उनके चरण-स्पर्श से तू तत्काल मुक्त हो जाएगा' । ४४ (उनका) वह (वचन) आज के दिन सच (सिद्ध) हुआ । मेरा पूर्वकृत पुण्यफल को प्राप्त हुआ है । (ऐसा) कहते हुए उस विद्याधर ने श्रीपति कृष्ण के चरण प्रेमपूर्वक पकड़ लिये । ४५ पूतना के प्राणों का हरण करनेवाले श्रीकृष्ण का वन्दन करके सुदर्शन अपने स्थान (की ओर) चला गया, तो ग्वाले नाना (प्रकार के) बाजे बजाने लगे और अपने-अपने घर लौट

परतले। ४६ हरि आला निजसदनी। निंबलोण करी जननी। नंद धांविन्नला तेच क्षणीं। म्हणे लागेन चरणीं कृष्णाच्या। ४७ माया म्हणे तूं आमुचा देव। पडलीं संकटें हरिसी सर्व। तूं पूर्णब्रह्म स्वयमेव। आम्हांस आतां समजलें। ४८ ऐसें बोलतां माता ते। लोळणीं घातली कृपानाथें। गडबडां लोळत तेथें। रडे सर्वथा समजेना। ४९ मातापितयांसी म्हणे ऐका। मज सर्वथा देव म्हणों नका। म्हणोनि प्रेमळांचा सखा। स्फुंदस्फुंदोनि रडतसे। १५० माता म्हणे न म्हणों तुज देव। म्हणोनि आलिंगिला माधव। धन्य यशोदेचा भाव। असंभाव्य पुण्य तियेचें। १५१ हा क्षीरसागरविलासी। लीला दावी निजभक्तांसी। न दावी आपल्या थोरवीसी। अपार कर्तृत्व करोनियां। ५२ अद्भुत करून चरित्रांतें। खेळे गोवळ्यांसांगातें। श्रेष्ठपण ठेविलें परतें। मानवी वेषा धरूनियां। ५३ यावरी मथुरापुरींत जाण। काय जाहलें वर्तमान। अकस्मात ब्रह्मनंदन। कंससभेसी प्रकटला। ५४ कंसें नारदासी पूजिलें। सकल वर्तमान निवेदिलें। येरू म्हणे तुज नाहीं समजलें। वर्तमान पैं एक। ५५ दोघे पुत्र आणि रोहिणी। वसुदेवें गोकुळीं ठेविलीं चोरूनी।

गये। ४६ श्रीकृष्ण अपने घर आ गये, तो माता ने उनपर से राईनोन उतार लिया। उसी क्षण नन्द दौड़े और बोले, 'मैं कृष्ण के पाँव लग जाऊँगा'। ४७ (तत्पश्चात) माता बोली, 'तू हमारा (हमारे लिए) देवता है। तू आये हुए समस्त संकटों का हरण करता है। अब हमें विदित हो गया कि तू स्वयं ही परब्रह्म है'। ४८ उस माता द्वारा ऐसा बोलते ही कृपानाथ कृष्ण लोटने-पोटने लगे— वे वहाँ लोटते-पोटते रहे और रो रहे थे। (वे ऐसा क्यों कर रहे थे) यह किसी की बिलकुल समझ में नहीं आ रहा था। ४९ (फिर) वे माता-पिता से बोले, 'मुझे देवता बिलकुल न कहो।' ऐसा कहते हुए भक्तों के वे सखा सुबक-सुबककर रो रहे थे। १५० तो माता बोली, 'तुझे हम देवता नहीं कहेंगे।' ऐसा कहकर उसने माधव (कृष्ण) को गले लगा लिया। यशोदा का (भक्ति-) भाव धन्य है। उसका पुण्य असम्भाव्य (अनहोना) है। १५१ ये क्षीरसागर-निवासी (भगवान) अपने भक्तों को (इस प्रकार) लीला दिखाते हैं। अपार कृतित्व (प्रदर्शित) करने पर भी वे अपने बड़प्पन को नहीं दिखाते। ५२ अद्भुत चरित्र-लीला (प्रस्तुत) करते हुए वे गोपबालों के साथ खेलते हैं। उन्होंने मानवीय वेश (रूप) धारण करके अपने श्रेष्ठत्व को दूर रख दिया। ५३ जान लीजिए, इसके पश्चात मथुरापुरी में क्या घटना घटित हुई। (एक समय) सहसा ब्रह्म-नन्दन नारदजी कंस की सभा में प्रकट हो गये। ५४ (तब) कंस ने नारद का पूजन किया और समस्त समाचार कह दिया। (उसपर) वे (नारद) बोले, 'पर एक समाचार तुम्हें नहीं विदित हुआ। ५५ वसुदेव ने दो पुत्रों और रोहिणी

ते थोर जाहले नंदसदनीं । कृष्ण आणि बळिभद्र । ५६ तुझे दैत्य दुर्धर । त्रिदशांस जे अनिवार । त्यांचा केला संहार । कृष्णें आणि बळिरामें । ५७ ऐकतां हें वर्तमान । कंस क्रोधें फिरवी नयन । म्हणे वसुदेवदेवकीस मारीन । शस्त्र घेवोनि धांविन्नला । ५८ आला बंदिशाळेजवळी । मग नारद म्हणे ते वेळीं । हीं वृद्धें जरी तुवां वधिलीं । तरी अपकीर्ति लोकांत । ५९ शोधूनि मारीं रामकृष्णांसी । हीं दोघें कासया वधिसी । ऐसें बोलोनि कंसासी । नारदें त्यासी परतविलें । १६० जैसा मंदिरा लावूनि अग्न । आपणचि विझवी धांवून । कीं पुरीं दिधलें लोटून । तें आपणचि काढिलें । १६१ जेणें विष पाजिलें दुर्धर । तोचि करूं धांवे उतार । आपणचि पाठविले तस्कर । धांवणें काढिले आपणचि । ६२ तैसी नारदें लावूनि कळी । सवेंचि दोघें सोडविलीं । कंस सभेसी तत्काळीं । येऊनियां बैसला । ६३ कंस क्रोधें व्याप्त पूर्ण । म्हणे उग्रसेन आणा धरोन । चुलता देवक आणून । शृंखळा घाला दोघांतें । ६४ म्हणे यादव तितुके जीवें मारा । विष्णुभक्तां आधीं धरा । गाई ब्राह्मण संहारा । शोधूनियां

को चुराकर अर्थात छिपाकर गोकुल में रख दिया। वे कृष्ण और बलभद्र (बलराम नामक दोनों पुत्र) नन्द के घर बड़े हो गये हैं। ५६ जो तुम्हारे दुर्धर दैत्य देवों के लिए भी अनिवार्य थे, उनका कृष्ण और बलराम ने संहार कर डाला है'। ५७ यह समाचार सुनते ही कंस ने क्रोध से आँखें तरेर दीं। वह बोला, 'मैं वसुदेव-देवकी को (अभी) मार डालूँगा।' (फिर) वह शस्त्र लेकर दौड़ा। ५८ वह बन्दीशाला के पास आ गया। फिर उस समय नारदजी बोले, 'यदि तुम इन वृद्धों का वध करोगे, तो तुम्हारी लोक में अपकीर्ति हो जाएगी। ५९ (अतः) तुम बलराम और कृष्ण को खोजकर मार डालो। इन दोनों का किसलिए वध कर रहे हो?' नारदजी ने कंस से ऐसा कहते हुए उसे लौटा दिया। १६० जिस प्रकार कोई मन्दिर (घर) में आग लगाकर स्वयं ही दौड़कर उसे बुझा दे, अथवा जिस किसी को स्वयं बाढ़ में धकेल दिया हो उसे स्वयं ही निकाल लिया हो, अथवा जिसने (किसी को) दुर्धर विष पिला दिया हो, वही उसे उतार लेने के लिए दौड़ा हो, अथवा स्वयं ही किसी ने चोर भेज दिये हों और वही सहायता के लिए दौड़ा हो, उसी प्रकार नारदजी ने (स्वयं) चुगली करके विरोध भाव उत्पन्न कर दिया और साथ ही उन दोनों (वसुदेव-देवकी) को छुड़ा लिया। (तदनन्तर वहाँ से) कंस तत्काल सभा (-स्थान) में आकर बैठ गया। १६१-१६३ कंस क्रोध से पूर्ण व्याप्त हो गया था। वह बोला, 'उग्रसेन को पकड़कर लाओ। पितृव्य (चाचा) देवक को लाकर उन दोनों के बेड़ियाँ पहना दो'। ६४ वह (फिर) बोला, 'जितने यादव हैं, उतनों को जान से मार डालो। पहले विष्णु के भक्तों को

सत्वर। ६५ टाका अवघे यज्ञ मोडून। कोणास करूं न द्यावें अनुष्ठान। आणा अवघे ऋषी धरून। मी संहारीन निजहस्तें। ६६ माझे सखे जरासंधादिक। काळयवन माझा आवश्यक। शिशुपाळ वक्रदंत देख। बाणासुर भौमासुर। ६७ गर्जोनि कंस हांक फोडी। म्हणे यादवां करा देशधडी। कंसें शस्त्र घेवोनि तांतडीं। उर्वीवरी आपटिलें। ६८ यादव मथुरा सोडूनी। राहिले गिरिकंदरीं लपोनी। ऋषी पळती आश्रम टाकूनी। म्हणती अवनी ठाव देईं। ६९ वनोवनीं हिंडती कंसदूत। गोब्राह्मणांज्ञा करिती घात। असो नारदमुनि त्वरित। गोकुळासी पातला। १७० केलें श्रीकृष्णासी नमन। म्हणे लौकर टाकीं कंस वधून। गांजिले गाई आणि ब्राह्मण। करीं सोडवण विश्वेशा। १७१ दुर्धर दैत्य मारिला केशी। आतां सत्वर वधीं कंसासी। ऐसें बोलोनि नारदऋषी। उर्ध्वपंथें पैं गेला। ७२ असो वनीं खेळतां लक्ष्मीवर। कंसें पाठविला वत्सासुर। वत्सवेष धरूनि साचार। गाईंमध्यें चरतसे। ७३ गाई विलोकितां सर्वेश्वर। तों त्यांमाजी चरे वत्सासुर। पायीं धरोनि सत्वर।

पकड़ लो। झट से खोजकर गायों-ब्राह्मणों का संहार कर डालो। ६५ समस्त यज्ञ उद्ध्वस्त कर दो। किसी को कोई अनुष्ठान करने न दो। समस्त ऋषियों को पकड़कर लाओ, मैं उनका अपने हाथों से संहार करूँगा। ६६ जरासन्ध आदि तथा कालयवन अवश्य ही मेरे सखा हैं। देखो, शिशुपाल, वक्रदन्त, बाणासुर, भौमासुर (—मेरे सखा हैं)'। ६७ (फिर) गरजकर कंस चीख उठा और बोला, 'यादवों को भिक्षा माँगने के लिए दर-दर घूमने के लिए लगा दो (बहुत दुर्गत करा दो)।' (अनन्तर) कंस ने झट से शस्त्र लेकर पृथ्वी (भूमि) पर पटक दिया। ६८ (यह सुनकर) यादव मथुरा छोड़कर पर्वत की गुहाओं में छिपकर रह गये। ऋषि आश्रम त्यजकर भाग गये और बोले, 'हे पृथ्वी, (हमें छिपे रहने के लिए) ठौर दो'। ६९ कंस के दूत वन-वन घूमने लगे। वे गायों और ब्राह्मणों का संहार करने लगे। अस्तु। (उधर) नारद मुनि झट से गोकुल में आ गये। १७० उन्होंने कृष्ण का नमन किया और कहा, 'कंस का शीघ्र वध कर डालो। उसने गायों और ब्राह्मणों को सताया है। हे विश्वेश, उनको मुक्त करो। १७१ तुमने दुर्धर दैत्य केशी को मार डाला। अब झट से कंस का वध करो।' नारद ऋषि ऐसा बोलकर ऊर्ध्व-मार्ग (आकाश-मार्ग) से चले गये। १७२

अस्तु। (इधर) लक्ष्मीवर भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण के वन में खेलते रहते कंस ने वत्सासुर को भेज दिया। वह सचसुच वत्स अर्थात बछड़े का रूप धारण करके गायों के बीच चरता रहा। १७३ तो सर्वेश्वर कृष्ण द्वारा गायों को देखने पर (उन्हें दिखायी दिया कि) वत्सासुर उनके

आपटोनियां मारिला । ७४ तांदुळांमाजी हरळ । डोळस निवडी तत्काळ । कीं सुवर्णामाजी पितळ । निवडे जैसें वेगळें । ७५ कीं रत्नांमाजी गार । कीं पंडितांमाजी पामर । कीं विप्रांमाजी महार । आपोआप निवडे पैं । ७६ कीं साधूंमाजी निंदक कुटिळ । कीं चंदनामाजी बाभुळ । कीं कर्पूरामाजी ढेंकुळ । आपणचि निवडे पैं । ७७ तैसें चतुरें श्रीकरधरें । दैत्य निवडूनि मारिला स्वकरें । जैसा सुरपंक्तींत राहु त्वरें । निवडोनि वधी मोहिनी । ७८ असो एके दिवसीं घननीळ । गवळी मिळाले सकळ । त्यांसी म्हणे गोकुळ । ओस करा पैं आतां । ७९ कंस बहुत विघ्नें करी । दैत्य धाडितो गोकुळावरी । वृंदावनीं सहपरिवारीं । जाऊनियां रहावें । १८० मनांत इच्छी श्रीवर । वृंदावनीं दैत्य दुर्धर । येणें मिषें समग्र । वधोनियां टाकावे । १८१ यालागीं गौळियां सांगे श्रीपती । परी गौळी कदा न निघती ।

बीच चर रहा है । (तब) उन्होंने उसके पाँव पकड़कर झट से पटकते हुए उसे मार डाला । ७४ जिस प्रकार अच्छी आँखों वाला चावल में (स्थित) कंकड़ को तत्काल बीन लेता है, अथवा जिस प्रकार सोने में से पीतल चुनकर अलग कर देता है, अथवा रत्नों के अन्दर से स्फटिक, अथवा पण्डितों (विद्वानों-ज्ञानियों) के बीच क्षुद्र मूर्ख, अथवा ब्राह्मणों के बीच मातंग अपने-आप चुन लिया जाता है, अथवा साधुओं के बीच कुटिल निन्दक, अथवा चन्दन के बीच बबूल, अथवा कपूर के बीच (मिट्टी का) ढेला अपने आप चुन लिया जाता है, उसी प्रकार श्रीकरधर (लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले भगवान) विष्णु के अवतार चतुर कृष्ण ने (उन गायों के बीच में) अपने हाथों से उस दैत्य को वैसे ही चुनकर मार डाला, जैसे मोहिनी ने देवों की पंक्ति में राहु को[1] झट से चुनकर मार डाला । १७५-१७८

अस्तु । एक दिन घननील कृष्ण और समस्त ग्वाले मिल गये (इकट्ठा हो गये), तो वे (कृष्ण) उनसे बोले, 'अब गोकुल (को) छोड़कर निर्जन (जनरहित) कर दो । १७९ कंस बहुत विघ्न उत्पन्न करता है; वह गोकुल पर दैत्यों को भेज देता है। (अतः) सपरिवार (हम सब) जाकर वृन्दावन में रह जाएँ'। १८० श्रीवर-लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप कृष्ण मन में चाहते थे कि वृन्दावन में दुर्धर दैत्य हैं। इस बहाने उन सबका वध कर डालें। १८१ इसलिए श्रीपति विष्णुस्वरूप कृष्ण ने ग्वालों से यह कहा

---

१ राहु का मोहिनी द्वारा वध— देवों और दानवों द्वारा क्षीर-समुद्र का मन्थन करने पर उसमें से अमृत निकल आया । देव उसे पीने लगे, तब भगवान विष्णु ने मोहिनी नामक अप्सरा का रूप धारण करके दानवों को विमोहित किये रखा । फिर भी कश्यप-दिति या सिंहिका का पुत्र राहु कपट वेश से देवों की पंक्ति में आ बैठा । अमृत प्राप्त करके वह पीने लगा, तो विष्णुस्वरूपा मोहिनी ने उसे तत्काल पहचानकर उसका मस्तक काट डाला ।

न सुटे गृहाची गृहगती । मग यदुपति काय करी । ८२ बळिराम आणि जगज्जीवन । बोलती स्वर्गींचें गीर्वाण । भोंवते ऐकती गौळीजन । परी कोणा न कळे तें । ८३ संकर्षणासी म्हणे हरी । कौतुक दावावें क्षणभरी । धाक लाविल्याविण निर्धारीं । गोकुळ ओस न करिती । ८४ गोकुळाबाहेर गेले दोघे जण । संगें बहुत मुलें घेऊन । शेष आणि मधुसूदन । काय विंदान मांडिलें । ८५ आपुल्या शिरींचे केंस कुरळ । दोघे हातें तोडिती तत्काळ । काननांत विखुरले सकळ । करणी न कळे ब्रह्मादिकां । ८६ एकेक केंसापासूनि देख । शतांचीं शतें निघाले वृक । मुलांसहित यदुनायक । आला गोकुळांत पळोनी । ८७ म्हणती असंख्य आले वृक । गोकुळ ओस करा सकळिक । बिदोबिदीं पळती लोक । एक द्वारें झांकिती । ८८ कृष्ण बळिराम घरा आले । नंदासी म्हणती विघ्न ओढवलें । वृक मागुती कानना गेले । कृष्णइच्छेंकरूनियां । ८९ मग नंदादि गौळी मिळोनी । निघते जाहले तेचि क्षणीं । गोकुळ ओस टाकूनी । वृंदावनीं राहती सुखें । १९०

था । परन्तु ग्वाले (वहाँ से) कदापि नहीं निकल रहे थे । उनसे घर की स्थिति (की आसक्ति) नहीं छूट रही थी । फिर यदुपति कृष्ण ने क्या किया ? । ८२ बलराम और जगज्जीवन कृष्ण स्वर्ग की गीर्वाण अर्थात संस्कृत भाषा (में) बोल रहे थे । चारों ओर (खड़े होकर) गोपजन सुन रहे थे । फिर भी वह (बोलना) किसी की समझ में नहीं आ रहा था । ८३ श्रीहरि संकर्षण (बलराम) से बोले, ‘ (इन्हें) क्षण भर (के लिए) चमत्कार लीला दिखा दें । निश्चय ही इन्हें बिना भय दिखाये वे गोकुल को रिक्त न करेंगे ’ । ८४ (तदनन्तर) वे दोनों जने साथ में बहुत से बच्चों को लेकर गोकुल के बाहर गये । (वहाँ) शेष के अवतार बलराम और मधुसूदन विष्णु के अवतार कृष्ण ने क्या चमत्कार (करना) आरम्भ किया । ८५ उन दोनों ने अपने-अपने सिर के घुँघराले बाल हाथों से तत्काल तोड़ लिये और उन सबको वन में बिखेर दिया । यह करनी ब्रह्मा आदि की समझ में नहीं आ रही थी । ८६ देखिए, एक-एक बाल से सैंकड़ों-सैंकड़ों भेड़िये उत्पन्न हो गये । (तब) यदुनायक कृष्ण उन बच्चों-सहित दौड़कर गोकुल में आ गये । ८७ वे बोले, ‘ असंख्य भेड़िये आ गये हैं । (अत:) तुम सब गोकुल को रिक्त कर दो । ’ तो (यह सुनते ही) लोग पथ-पथ में भागने लगे । कुछ एक ने दरवाजे बन्द कर लिये । ८८ कृष्ण और बलराम घर आ गये और नन्द से बोले, ‘ (जान पड़ता है कि) कोई विघ्न आ पड़ा है । ’ (उधर) कृष्ण की इच्छा के अनुसार भेड़िये वन की ओर लौट गये । ८९ फिर नन्द आदि गोप इकट्ठा होकर उसी क्षण चल दिये । वे गोकुल को निर्जन-रिक्त छोड़कर वृन्दावन में सुख के साथ रहने लगे । १९० (वहाँ) अरण्य में घेरे बनाकर (अन्दर) वे

वाडे घालूनि अरण्यांत। परिवारेंसीं राहिले समस्त। यमुनातीरीं रामकृष्णनाथ। गोपांसमवेत खेळती। १९१ कंसें प्रलंब दैत्य पाठविला। तेणें गोपाळवेष धरिला। कृष्णदासांमाजी मिसळला। कापट्य कोणा न कळेचि। ९२ पूर्वी समीरात्मजा वधावयालागून। काळनेमि विप्रवेष धरून। बैसला त्या प्रकारेंकरून। प्रलंब झाला गोपाळ। ९३ रामकृष्ण जाहले भिडती। गडी समाम दों ठायीं वांटिती। तों डाव परतला निश्चितीं। प्रलंबावरी तेधवां। ९४ त्यावरी बैसला संकर्षण। चालिला अरण्यांत घेऊन। गोप-आणि जगज्जीवन। दूर राहिले ते वेळां। ९५ बळिभद्र पुसे तयासी। अरे तूं कोठें मज नेतोसी। तंव तो कांहींच वचनासी। न बोलेचि सर्वथा। ९६ नीट चालिला मथुरापंथें। तों वोळखिला रोहिणीसुतें।

सपरिवार ठहर गये। (उधर) बलराम और कृष्णनाथ गोपों-सहित यमुना के तीर पर खेलते थे। १९१ (एक दिन) कंस ने प्रलम्ब नामक दैत्य को भेज दिया। उसने गोपाल (चरवाहे गोप-बाल) का वेश धारण किया (और) वह कृष्ण के सेवकों (भक्तों, गोपालों) में हिल-मिलकर रह गया। उसका कपट किसी की समझ में नहीं आ सका। ९२ पूर्वकाल में पवनकुमार हनुमान का वध करने हेतु कालनेमि[1] (जिस प्रकार) विप्र-वेश धारण करके बैठा, उसी प्रकार प्रलम्ब (कपट रूप धारण करके) गोपाल (चरवाहा गोप-बाल) बन गया। ९३ (उस समय) बलराम और कृष्ण (प्रतिद्वन्द्वी) खिलाड़ी हो गये। उन्होंने साथी-संगियों को दो स्थलों (दलों) में सम-समान बाँट लिया। तब निश्चित रूप से प्रलम्ब पर दाँव आ गया। ९४ तो संकर्षण बलराम उस पर बैठ गया (सवार हो गया)। तो वह (प्रलम्ब) उन्हें लेकर अरण्य के अन्दर चल दिया। उस समय (अन्य) गोप (बालक) और जगज्जीवन कृष्ण दूर रह गये। ९५ तो बलभद्र ने उससे पूछा, 'अरे, तू मुझे कहाँ ले जा रहा है?' तब वह बिल्कुल कोई भी बात नहीं बोला। ९६ यह मथुरा के मार्ग पर ठीक से चला जा रहा था, तो रोहणी के पुत्र बलराम ने उसे पहचान लिया। (तब) बलभद्र ने

१ कालनेमि— रावण की शक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण को सचेत कर लेने के हेतु द्रोणाचल पर स्थित संजीवनी बूटी की आवश्यकता थी। उसे लाने के लिए सुषेण वैद्य के कहने के अनुसार हनुमान चल दिया; तो रावण ने उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न करने के लिए अपने मित्र कालनेमि नामक दैत्य को प्रेरित किया। कालनेमि पहले तो इसके लिए तैयार नहीं हुआ, लेकिन अन्त में रावण से आतंकित होकर उसने विप्र-रूप धारण किया और एक वन को निर्मित किया। वहाँ माया-जन्य सरोवर के समीप एक आश्रम में वह बैठ गया। हनुमान ने उससे पानी माँगा, तो उसे सरोवर के पास भेजकर कालनेमि ने मगरी द्वारा मरवा डालना चाहा। परन्तु हनुमान ने उस मगरी को मार डाला और अन्त में कालनेमि को भी पटक डाला।

मस्तक त्याचें मुष्टिघातें। बळिभद्रें त्वरेनें फोडिलें। ९७ तंव तो होऊनि विशाळ दैत्य। गतप्राण झाला पडिलें प्रेत। हरीपासीं बळिराम येत। झाला वृत्तांत सांगितला। ९८ कंसासी कळला वृत्तांत। प्रलंब दैत्य पावला मृत्य। मनामाजी भयपीत। परम होत तो दुरात्मा। ९९ दुःखें विव्हळ जाहला थोर। तंव तो बोलिला बकासुर। म्हणे मी मारीन साचार। राया शत्रु तुझे पैं। २०० ऐसें ऐकोनि बकासुर। पाठविला परम नष्ट अनिवार। तो बक होऊनि पर्वताकार। मित्रजातीरीं बैसला। २०१ बकें धरिलें बकध्यान। इच्छित कृष्णाचें आगमन। रात्रंदिवस चिंतन। हरीवांचोनि तया नाहीं। २ जलप्राशना आले गोपाळ। तों पर्वताकार बैसला सबळ। गोप भ्याले तत्काळ। गेले हरीस सांगावया। ३ कृष्णासी सांगती ते वेळीं। एक पक्षी आला महाबळी। आम्ही देखोनि तत्काळीं। भिवोनियां पळालों। ४ गडियांसहित सांवळा। बक पहावया धांविन्नला। तंव तो बैसलासे बगळा। वाटे न जाय कोणाच्या। ५ जैसा वैरियाचा आदर। वरिवरीच अवघा उपचार। तैसी क्षमा धरूनि असुर। उगाच

मुट्ठी के आघात से (घूँसे से) झट से उसका सिर फोड़ डाला। ९७ तब वह (गोपालवेशधारी) प्रचण्ड दैत्य (रूप में परिवर्तित होकर) गत-प्राण हो गया। उसका शव (वहाँ) पड़ा रहा। तब बलराम कृष्ण के पास आ गये और उन्होंने उनको घटित घटना का समाचार बता दिया। ९८ (उधर) कंस को यह समाचार विदित हुआ कि प्रलम्ब दैत्य मृत्यु को प्राप्त हुआ, तब वह दुरात्मा (कंस) मन में परम भयभीत हो उठा। ९९ वह दुःख से बहुत विह्वल हो गया। तब बकासुर (नामक एक दैत्य) बोला। वह बोला, 'हे राजा, मैं तुम्हारे शत्रुओं को सचमुच मार डालूँगा'। २०० ऐसा सुनकर कंस ने उस परम अनिवार्य दुष्ट बकासुर दैत्य को भेज दिया। वह दैत्य पर्वताकार बक (बगुला) बनकर यमुना के तीर पर बैठ गया। २०१ उस बगुले ने बकध्यान (बगुला-ध्यान) धारण किया। वहाँ कृष्ण का आगमन होना चाहता था। उसे रात-दिन विना हरि के किसी अन्य का चिन्तन नहीं हो रहा था। २ (उधर) गोपाल पानी पीने के लिए आ गये, तो (उन्होंने देखा) वह पर्वताकार प्रचण्ड बगुला बैठा हुआ था। गोप (बाल) घबड़ा उठे और कृष्ण से कहने के लिए तत्काल चल दिये। ३ उस समय उन्होंने कृष्ण से कहा, 'एक महाबलवान पक्षी आया है। उसे देखते ही हम तत्काल घबड़ाकर भाग गये। ४ (यह सुनकर) साँवले कृष्ण (अपने) साथियों-सहित उस बगुले को देखने के लिए दौड़े। तब बगुला बैठा हुआ था। वह किसी में दखल नहीं दे रहा था। ५ जिस प्रकार वैरी द्वारा (किसी का किया हुआ) आदर (वस्तुतः) ऊपरी तौर पर का पूरा उपचार (मात्र) होता है, उसी प्रकार वह असुर शान्ति धारण

तोरीं बैसला । ६ कृष्ण जवळी येतांचि दुष्टें । असंभाव्य पसरिलीं चंचुपुटें । उच्लोनि कृष्ण गिळिला नेटें । क्षणमात्र न लागतां । ७ बकें गिळिला घननीळ । भोंवते आकांत करिती गोपाळ । एक पिटिती वक्षःस्थळ । प्रळयकाळ ओढवला । ८ म्हणती विसांविया हृषीकेशी । काय सांगावें तुझे मातेसी । कां उपेक्षिलें आम्हांसी । परम वेधका गोविंदा । ९ बकासुरें गिळिला सांवळा । परीं अंतरीं जाळी ते वेळां । जैसा प्रळयाग्नीच्या ज्वाळा । पोळे गळा त्याच्च रीतीं । २१० जैसा लोहगोळा तप्त आरक्त । जिकडे पडे तिकडे जाळीत । तैसें बकासुरासी होत । उगळोनि टाकीत कृष्णातें । २११ बाहेर येतांचि मुरारी । आपुलें सामर्थ्य प्रकट करी । दोनी चंचुपुटें ते अवसरीं । धरी स्वकरीं कमलावर । १२ परम बळी यादवेंद्र । उभाच्च चिरिला बकासुर । त्रिविष्टप वर्षती सुमनभार । विजयी श्रीधर सर्वदा । १३ कंसासी समाचार कळला । सवेंचि अरिष्टासुर पाठविला । तो शक्तिरूपें धांवला । विशाळ मुख पसरूनि । १४ भयभीत गोपाळ होती । हरीस म्हणती आली महाशक्ती । गोप चळचळां कांपती ।

करके यों ही उस तीर पर बैठा हुआ था । ६ कृष्ण के उसके पास आते ही उस दुष्ट ने असम्भाव्य रूप से अपने चंचुपुट (चोंच के दोनों हिस्सों) को फैला दिया और कृष्ण को उठाकर क्षण न लगते झट से निगल डाला । ७ बगुले ने कृष्ण को निगल डाला है, (यह देखकर) गोपाल चारों ओर रोने लगे । कुछ एक छाती पीट रहे थे । (वहाँ मानो) प्रलयकाल (ही) आ गया (हो) । ८ वे बोले, 'हे (हमारे) विश्राम (-स्थान), हे हृषीकेशी, तेरी माँ से क्या कहें ? हे परम आकर्षक (लुभावने) गोविन्द, हमारी तूने उपेक्षा क्यों की ? '। ९ बकासुर ने साँवले कृष्ण को निगल तो डाला था; फिर भी उस समय वे उसे अन्दर जला रहे थे । जैसे प्रलयाग्नि की ज्वालाएँ जलती हों, उसी प्रकार (अन्दर की जलन से) उसका गला झुलस रहा था । २१० जिस प्रकार लाल-लाल गर्म लोह-गोल जहाँ गिर पड़ता है, वहाँ जला डालता है, उसी प्रकार बकासुर को (अन्दर) अनुभव हो रहा था । (अतः) उसने कृष्ण को उगल दिया । २११ बाहर आते ही मुरारि कमलापतिस्वरूप कृष्ण ने अपनी सामर्थ्य प्रकट की और (उस बगुले के) दोनों चंचुपुटों को उस समय हाथ से पकड़ लिया । १२ यादवेन्द्र कृष्ण परम बलवान थे । उन्होंने उस बकासुर को खड़ा ही चीर डाला । तो देवों ने पुष्प भार बरसा दिये । (इस प्रकार) श्रीधर विष्णु-स्वरूप कृष्ण नित्य विजयी रहे । १३ (जब) कंस को यह समाचार विदित हुआ, तो उसने साथ ही (तत्काल) अरिष्टासुर को भेज दिया । वह शक्ति-रूप धारण करके मुख को विशाल फैलाये हुए दौड़ा । १४ (उसे देखते ही) गोपाल भयभीत हो उठे । वे श्रीहरि से बोले, ' (देखो), महाशक्ति आ

मग यदुपति काय करी । १५ अवलोकितां ऊर्ध्वपंथें । महाशक्ति प्रकटली तेथें । ती योगमाया जगन्नाथें । आपुले अंगींची प्रकटविली । १६ जे ब्रह्मादिकां न ये ठाया । पूर्वी कंस गेला आपटावया । तंव ते गेली निसटोनियां । हे योगमाया हरीची । १७ त्या महामायेनें तेचि क्षणीं । कपटशक्ति गिळिली मुख पसरोनी । मागुती गुप्त झाली गगनीं । कृष्णइच्छें करूनियां । १८ गडी कौतुक पहाती । म्हणती अगाध माया तुझी श्रीपती । तूं पाठिराखा निश्चितीं । भय कल्पांतीं नाहीं आम्हां । १९ कागासुर म्हणे कंसातें । मज मृत्यु वीरभद्राचे हस्तें । तो कासया येईल येथें । मी कृष्णातें मारीन । २२० कागासुर निघाला वेगें । दुरूनियां देखिला श्रीरंगें । कोण त्याचा मृत्यु भक्तभवभंगें । अंतरीं तेव्हां अवलोकिला । २२१ करितां वीरभद्राचें स्मरण । अकस्मात प्रकटला येऊन । करूनि श्रीहरीसी नमन ।

गयी । ' वे गोप थर-थर काँपने लगे । तब यदुपति कृष्ण ने क्या किया ? । १५ (उनके द्वारा) ऊपर देखते ही वहाँ पर महाशक्ति प्रकट हो गयी । (वस्तुतः) जगन्नाथ कृष्ण ने अपनी देह की योगमाया (स्वरूपा महाशक्ति) ही प्रकट कर दी थी । १६ वह श्रीहरि की वह योगमाया थी, जिसका ब्रह्मा आदि (तक) को पता नहीं चलता और पूर्वकाल में जब जिसे कंस पटकने जा रहा था, तब वह (जो) छूटकर गयी थी । १७ उस महाशक्ति ने उसी क्षण मुँह फैलाकर उस कपट (वेशधारी) शक्ति को निगल डाला । वह कृष्ण की इच्छा के अनुसार फिर से गुप्त हो गयी । १८ साथी-संगी यह चमत्कार (लीला) देख रहे थे । वे बोले, ' हे श्रीपति, तेरी माया अथाह है । निश्चय ही तू (हमारा) रक्षक-सहायक है; (अतः) हमें कल्पान्त तक में कोई भय नहीं है ' । १९ (इधर) कागासुर कंस से बोला, ' मुझे वीरभद्र[1] के हाथों मृत्यु (आनेवाली) है । वह यहाँ किसलिए आएगा ? मैं कृष्ण को (निश्चय ही) मार डालूँगा । २२० कागासुर वेग से चल दिया, तो कृष्ण ने उसे दूर से देखा । भक्तों के सांसारिक पाशों को भग्न करनेवाले श्रीकृष्ण ने तब मन में यह देखा (समझ लिया) कि कौन उसकी मृत्यु (का कारण) है । २२१ (उनके द्वारा) वीरभद्र का स्मरण करते ही वह सहसा आकर प्रकट हो गया । वह

---

१ वीरभद्र— प्रजापति दक्ष के यज्ञ-स्थल पर शिवजी की उपेक्षा हुई देखकर दक्ष-पुत्री तथा शिव-पत्नी सती ने अपने-आपको जला लिया, तो क्रोध से शिवजी ने अपनी जटा को झटककर एक पार्षद का निर्माण किया —वही है यह वीरभद्र । उसने शिवगणों-सहित जाकर दक्ष-यज्ञ को उद्ध्वस्त करके देवगणों को पराजित एवं ऋषियों को आतंकित करके दक्ष का वध किया । तदनन्तर यह सृष्टि का संहार करने के लिए तैयार हुआ, तो शिवजी ने उसके क्रोध को शान्त करके उसे ग्रहमालिका में मंगल नामक सर्वश्रेष्ठ ग्रह हो जाने का वर प्रदान किया । कहते हैं, इसने तीन बार असुरों से देवों और ऋषियों की रक्षा की ।

दैत्यावरी धांविन्नला। २२ कागासुराचें शिरकमळ। वीरभद्रें छेदिलें तत्काळ। कृष्णासी स्तवोनि निराळ-। मार्गें गेला तेधवां। २३ खरासुर खररूप धरूनी। भुंकत हिंडे काननीं। कृष्णें तो पायीं धरोनी। आपटिला क्षणार्धें। २४ तोही झाला गतप्राण। तों खगासुर आला धांवोन। जैसा पतंग देखोनि अग्न। उडी घाली प्राणांतीं। २५ पसरोनियां विशाळ मुख। धांवे जगन्नाथासन्मुख। कृष्णें आपटोनि तो निःशंक। मृत्युपुरासी पाठविला। २६ विठ्यासुर त्यापाठीं। धांवत आला उठाउठीं। मायालाघवी जगजेठी। धांवे पुढें तेधवां। २७ उभा चिरिला विठ्यासुर। तोही पाहूं गेला मृत्युनगर। केला सर्व दैत्यांचा संहार। कंसासुर चडफडी। २८ स्वहस्तें पिटी वक्षःस्थळ। म्हणे राज्य बुडालें सकळ। भरंवशाचे वीर सबळ। गेले टाकूनि मजलागीं। २९ म्हणे माझे दृष्टी पडता वैरी। तरी मी त्यासी वधितों क्षणाभीतरी। मग बुद्धि एक अंतरीं। आठविली असुरेंद्रें। २३० घागरी आणि कोहळे। कंसें गोकुळा पाठविले। घटांमाजी कूष्मांड सगळे। घालोनियां पाठवावे। २३१ आणि सिकतेचे

श्रीहरि का नमन करके उस दैत्य की ओर दौड़ा (उसने उस दैत्य पर आक्रमण किया)। २२ वीरभद्र ने कागासुर का मस्तक-कमल तत्काल छेद डाला। तब वह कृष्ण की स्तुति करके आकाश-मार्ग से चला गया। २३ (तदनन्तर) खरासुर नामक असुर खर अर्थात गधे का रूप धारण करके वन में रेंकते हुए घूमता था। उसके पाँव पकड़कर कृष्ण ने आधे क्षण में उसे पटक डाला। २४ (इससे) वह भी गतप्राण हो गया, तो खगासुर (नामक असुर) वैसे ही दौड़ते हुए आ गया, जैसे अग्नि को देखकर पतंगा प्राणों का अन्त करने के लिए ही उसमें कूद पड़ता है। २५ वह (अपने) विशाल मुख को फैलाये हुए जगन्नाथ कृष्ण के सम्मुख दौड़ा, तो उन्होंने उसे पटककर निःसन्देह मृत्युपुरी भेज दिया। २६ उसके पीछे (-पीछे) विठ्यासुर तत्काल दौड़ता हुआ आ गया, तो सब माया करने में चतुर जगद्श्रेष्ठ कृष्ण आगे दौड़े। २७ उन्होंने विठ्यासुर को खड़ा चीर डाला। (इससे) वह भी मृत्युनगर देखने के लिए चला गया। (इस प्रकार) कृष्ण ने समस्त दैत्यों का संहार कर डाला, तो कंसासुर छटपटाने लगा। २८ वह अपने हाथों छाती पीटने लगा। वह बोला, ‘ समस्त राज्य डूब गया। (मेरे) भरोसे के (विश्वासपात्र) बलवान वीर मुझे छोड़कर चले गये ’। २९ (फिर) उसने कहा, ‘ यदि वैरी मुझे नजर आए, तो मैं क्षण के भीतर उसका वध करूँगा ’। तब असुरों के उस राजा को मन में एक युक्ति याद हो आयी। २३० (उसके अनुसार) कंस ने गगरियाँ और कुम्हड़े गोकुल में भेज दिये। (और कहलवाया—) ‘ इन घटों में समस्त कुम्हड़े डालकर भेज दें। २३१ और बालू के रस्से हाथों से बटकर उनके साथ उन्हें भी

वेंट वळूनि हातें। तेही पाठवा त्याचे सांगातें। हें जरी कोडें नुगवे तुम्हांतें। तरी रामकृष्णांतें धाडिजे। ३२ नाहीं तरी गोकुळ सकळ। निर्दाळीन मी कंस काळ। म्हणोनि दोघे दैत्य सबळ। पाठविले व्रजातें। ३३ दूत धांविन्नले त्वरित। नंदाजवळी आले अकस्मात। म्हणती तुम्हांवरी कोपलासे मथुरानाथ। कोडें समस्त उगवा हें। ३४ तुम्हांस न उगवे जरी ये वेळीं। तरी पाठवावे रामवनमाळी। नाहीं तरी मराल सकळी। कंसहस्तें-करुनियां। ३५ तुम्ही गोरस पिऊन जाहलेती मस्त। परी तुम्हांसी जवळी आला मृत्य। गौळी भ्याले समस्त। म्हणती अनर्थ ओढवला। ३६ गौळी वृंदावनीं राहिले होते। ते पुढती आले गोकुळातें। तों हें विघ्न अवचितें। पुढें वाढूनि ठेविलें। ३७ कंसदूत राहविले ते वेळीं। एकांतीं बैसले सकळ गौळी। एक म्हणती लपवा वनमाळी। कोठेंतरी नेऊनियां। ३८ एक म्हणती रामकृष्ण बरवे। परराज्यामाजी पळवावे। नंदादि गौळी आघवे। चिताग्नीनें आहाळले। ३९ वनास गेले होते रामवनमाळी। ते परतोनि आले सायंकाळीं। तों अधोवदन सकळ गौळी। चिंतार्णवीं बुडाले। २४० चिंता आणि चिता। दोन्ही समानचि पाहतां। असो ऐसें हरीनें देखतां।

भेज दें। यदि यह पहेली तुमसे न हल होती हो, तो बलराम और कृष्ण को भेज देना। ३२ नहीं तो मैं कंस— (तुम्हारा) काल (बनकर) समस्त गोकुल का निर्दलन करूँगा।' ऐसा कहकर उसने दो बलवान दैत्यों को व्रज में भेज दिया। ३३ वे दूत झट से दौड़े और सहसा नन्द के पास आ गये। वे बोले, 'मथुरा-नाथ तुम पर क्रुद्ध हो उठे हैं। यह पहेली तुम सब सुलझा दो। ३४ यदि तुमसे इस समय न सुलझती हो, तो राम और कृष्ण को भेज देना। नहीं तो कंस के हाथों तुम सब मर जाओगे। ३५ गोरस पी (-पी) कर तुम उन्मत्त हो गये हो। परन्तु मृत्यु तुम्हारे पास आ गयी है।' (यह सुनते ही) समस्त ग्वाले डर गये और बोले, 'यह तो संकट आ टपका'। ३६ जो ग्वाले वृन्दावन में रह गये थे, वे फिर से गोकुल आ गये। तो यह विघ्न अकस्मात उनके सामने परोसा (धरा हुआ) था। ३७ उस समय उन्होंने कंस के उन दूतों को ठहरा लिया। (फिर) समस्त ग्वाले एकान्त में (विचार-विमर्श करने के हेतु) बैठ गये। कुछ एक ने कहा, 'वनमाली कृष्ण को कहीं ले जाकर छिपा दो'। ३८ कुछ एक ने कहा, 'बलराम और कृष्ण को ठीक से दूसरे राज्य में भगा ले जाएँ।' नन्द आदि समस्त ग्वाले चिन्ता रूपी आग से झुलस गये। ३९ (उस समय) बलराम और कृष्ण वन में गये हुए थे। वे शाम को लौट आये। तब (उन्होंने देखा कि) समस्त गोप अधोमुख (सिर झुकाये हुए बैठे) हैं। वे चिन्ता-सागर में डूब गये हैं। २४० चिन्ता और चिता देखने पर समान ही (जान पड़ती) हैं। अस्तु।

नंदाप्रति बोलतसे । २४१ काय जाहला समाचार । कां चिंताग्रस्त समग्र । नंद म्हणे कंस दुराचार । अपाय चिंतितो तुम्हांसी । ४२ सांगितलें सकळ वर्तमान । गदगदां हांसे जगज्जीवन । म्हणे हें कोडें आतांचि उगवीन । उठा भोजन करा तुम्ही । ४३ मग बोले बळिभद्र । पडल्या आकाशा देऊं धीर । तेथें मशक काय कंसासुर । करूं संहार क्षणमात्रें । ४४ कौतुक केलें गोपाळें । ज़वळी घेतले घट कोहळे । क्षणमात्रें सूक्ष्म केले । घटीं घातले तेचि क्षणीं । ४५ मागुती आंत जाहले स्थूल । भूधरें वाळू आणिली तत्काळ । चपलत्वें वेंटी सबळ । वळोनियां टाकिल्या । ४६ वाळूचे दोरे जे वळिले । घटांभोंवते ते गुंडाळिले । नंदादि गौळी तटस्थ जाहले । नवल दाविलें अद्‌भुत । ४७ तो अघटित घटवी हरी । उदकावरी धरिली धरित्री । पंचभूतांसी मैत्री । परस्पर चालवी जो । ४८ असो कंसदूतांसीं नंद बोले । म्हणे कोडें तुमचें उगवलें । घेऊनि जा रे वहिलें । कंसालागीं दावावया । ४९ दूत म्हणती तुम्हांतें । बोलाविलें मथुरानाथें । तों कोप आला बळिभद्रातें । म्हणे दूतांतें मारीन मी । २५० दूत भयभीत जाहले ।

कृष्ण ने ऐसा देखकर नन्द से कहा (पूछा) । २४१ 'क्या बात हुई है ? तुम सब चिन्ताग्रस्त क्यों (दिखायी दे रहे) हो ?' (इसपर) नन्द बोले, 'दुराचारी कंस तुम्हारी हानि चाहता है'। ४२ (फिर) उन्होंने समस्त समाचार (भी) कह दिया । तो जगज्जीवन कृष्ण खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले, 'मैं इस पहेली को अभी हल करूँगा । उठो, तुम भोजन तो कर लो'। ४३ तब बलराम बोले, 'आकाश के गिरने पर भी हम ढाढ़स बँधा देंगे, तो वहाँ यह मच्छर (जैसा) कंसासुर क्या है ? हम क्षण मात्र में उसका संहार कर डालेंगे'। ४४ (तदनन्तर) गोपाल कृष्ण ने यह चमत्कार किया । उन्होंने वे घट और कुम्हड़े (अपने) पास लिये । (उन कुम्हड़ों को) क्षण मात्र में छोटे कर दिया और उसी क्षण उन्हें घटों में डाल दिया । ४५ अनन्तर अन्दर वे बड़े हो गये । भूधर शेष के अवतार बलराम तत्काल बालू ले आये और चपलतापूर्वक उन्होंने उसकी रस्सियाँ बना डालीं । ४६ उन्होंने बालू की जो रस्सियाँ बटीं, उन्हें घटों के चारों ओर लपेट लिया । (यह देखते हुए) नन्द आदि ग्वाले चकित हो गये । (इस प्रकार) कृष्ण ने अद्‌भुत चमत्कार दिखा दिया । ४७ जो पंच महाभूतों में परस्पर मित्रता स्थापित करके चलाते हैं और पानी पर धरती को धरकर रखे हुए हैं, वे हरि असम्भाव्य बातें घटित करते हैं । ४८ अस्तु । (तदनन्तर) नन्द कंस के दूत से बोले । उन्होंने कहा— 'तुम्हारी पहेली हल हो गयी । अरे झट से कंस को दिखाने के लिए यह ले जाओ'। ४९ (तब) दूत बोले, 'मथुरापति कंस ने तुम्हें बुलाया है ।' तो बलभद्र को क्रोध आ गया । वे बोले, 'इन दूतों को मैं मार डालूँगा'। २५० दूत भयभीत

नंदासी काकुळती आले। आम्हांसी सोडवीं ये वेळे। जातों बहिले मथुरेशी। २५१ कोडें घेवोनियां दूत। गेले मथुरेसी पळत। नंदें बळिभद्र केला शांत। म्हणे यांतें न मारावें। ५२ मोठें अरिष्ट टळलें। व्रजवासी सर्व आनंदले। कंसाजवळीं दूत आले। कोडें निवडिलें सांगती। ५३ कृष्णें कोहळे घातले घटीं। बळिभद्रें वळिल्या वेंटी। ऐकतां कंसाचे पोटीं। भय बहुत संचरलें। ५४ असो याउपरी एके दिवशीं। उष्णकाळीं हृषीकेशी। चंडांशु आला माध्यान्हासी। तृणें वाळलीं समस्त। ५५ गोवर्धनपर्वताचे शिरीं। गाई चारीत मुरारी। कंसें जाणोनि. ते अवसरीं। दूत धाडिले सवेग। ५६ चहूंकडे एकेचि वेळां। पेटविल्या अग्निज्वाळा। नव लक्ष गोपाळमेळा। सांपडला हरीसहित पैं। ५७ नाना द्विजांचिया जाती। आहाळोनि अग्नीमाजी पडती। गोपाळ चहूंकडोनि धांवती। मिळाले श्रीपतीभोंवतें। ५८ अनिवार देखोनि ज्वाळा। गाई धांवती हरीजवळा। गोप आक्रंदती ते वेळां। बहु वर्तला प्रलयकाल। ५९ गोप धांवोनि हरीवरी पडती। निजांगाखालीं कृष्ण झांकिती। गाई वरी आना टाकिती। आहाळेल यदुपति म्हणोनियां। २६० आमचे देह जावोत जळोनी। परी

हो गये। वे नन्द के सामने गिड़गिड़ाने लगे (और बोले)— 'इस समय हमें छुड़ा दो, हम झट से मथुरा जाएँगे'। २५१ (तत्पश्चात) वे दूत वह पहेली लेकर दौड़ते हुए मथुरा गये। (इधर) नन्द ने बलभद्र को शान्त किया और कहा, 'इन्हें न मारना'। ५२ (इस प्रकार जब) बड़ा संकट टल गया, तो समस्त व्रजवासी आनन्दित हो गये। (उधर) वे दूत कंस के पास आ गये और बोले, 'वह पहेली हल की। ५३ कृष्ण ने कुम्हड़े घटों के अन्दर डाल दिये, तो बलभद्र ने रस्सियाँ बट दीं।' यह सुनते ही कंस के हृदय में बड़ा भय उत्पन्न हो गया। २५४

अस्तु। इसके पश्चात ग्रीष्मकाल में एक दिन (कृष्ण ने क्या किया?) सूर्य मध्याह्न को प्राप्त हो गया (दुपहर हो गयी)। सब घास (गर्मियों के कारण) सूख गयी। २५५ मुरारि कृष्ण गोवर्धन पर्वत के शिखर पर गायें चरा रहे थे। कंस ने यह जानकर उस समय अपने दूतों को वेग-पूर्वक (उस ओर) भेज दिया। ५६ उन्होंने चारों ओर एक ही समय आग की ज्वालाएँ प्रज्वलित कर दीं। श्रीकृष्ण-सहित नौ लाख गोपालों का समुदाय (उसके अन्दर) फँस गया। ५७ नाना जातियों के पक्षी झुलसकर आग में गिरने लगे। तो गोपाल चारों ओर से दौड़ने-भागने लगे और वे कृष्ण के चारों ओर इकट्ठा हो गये। ५८ अनिवार्य ज्वालाओं को देखकर गायें (भी) श्रीकृष्ण के पास दौड़ीं। उस समय गोप (बाल) रोने-चिल्लाने लगे। बहुत बड़ा प्रलयकाल आ गया। ५९ वे गोप दौड़-कर चक्रपाणि कृष्ण पर गिर गये और उन्होंने उन्हें अपने शरीरों के नीचे

वांचो हा चक्रपाणी। जवळी जाळीत आला अग्नी। करुणार्णव पाहातसे। २६१ गोपाळ आक्रोशें रडती। आहा सांपडला कीं श्रीपती। मनमोहन वेधकमूर्ती। पुन्हां दृष्टीं पडेना। ६२ निर्वाणींचे जे कां भक्त। जाणोनियां इंदिराकांत। नाभीं नाभीं ऐसें म्हणत। नेत्र समस्त झांका रे। ६३ ऐकतांचि हरीचें वचन। समस्तीं झांकिले तेव्हां नयन। विशाळ मुख पसरून। गिळिला अग्नि ते वेळां। ६४ गोपाळ उघडिती नेत्र। तों जातवेद न दिसे अणुमात्र। ब्रह्मानंद झाला थोर। नाचती निर्भर सवंगडी। ६५ मोहरी पांवे घुमरी। मृदंग वाजती कुसरी। गोपाळ गाती नाना परी। हरिलीला अपार। ६६ वृंदारक सुमनांचा भार। हरीवरी वर्षती अपार। झाला एकचि जयजयकार। सुख थोर न वर्णवे। ६७ देव करिती मनीं असोशी। कधीं हरि वधील कंसासी। सुखी होतील समस्त ऋषी। चिंता सर्व टाकोनियां। ६८ असो गोकुळीं आला गोपाळ। हर्षभरित गोपी सकळ। आरत्या घेऊनि घननीळ। पाहों येती सामोऱ्या। ६९ श्रीकृष्ण केवळ वासरमणी। देखतां

छिपा दिया। यदुपति कृष्ण (आग में) झुलस जाएँगे, इसलिए (उन्हें बचाने के हेतु) गायों ने उनपर अपनी-अपनी गरदन रख दी। २६० (इस स्थिति में) आग (सबको) जलाते हुए पास आ गयी। करुणा-सागर कृष्ण ने यह देखा। २६१ गोपाल विलाप करते हुए रो रहे थे। 'हाय! कृष्ण (आग में) फँस गया। मनमोहन की यह आकर्षक मूर्ति फिर से नज़र नहीं आएगी'। ६२ उन गोपालों को अपने ऐसे भक्त, जो संकटकाल में (भी साथ) नहीं छोड़ रहे हैं, समझकर इन्दिरापति विष्णु के अवतार कृष्ण ने कहा, 'मत डरो, मत डरो। अरे तुम सब आँखें बन्द कर लो'। ६३ कृष्ण की ऐसी बात सुनते ही उन सबने तब आँखें मूँद लीं। (उधर) कृष्ण ने अपने मुख को विशाल (रूप में) फैलाकर उस समय उस आग को निगल डाला। ६४ (तदनन्तर) गोपालों ने आँखें खोलीं। तो अणुमात्र तक आग नहीं दिखायी दे रही थी। उन (सब) को बड़ा ब्रह्मानन्द हो गया। वे साथी-संगी निर्भयतापूर्वक नाचने लगे। ६५ मुहरियाँ, बाँसुरियाँ, घुमरियाँ, मृदंग बज रहे थे। वे गोपाल नाना प्रकार से नाच रहे थे। हरि की लीला (इस प्रकार) अपार है। ६६ देवों ने फूलों के अपार ढेर कृष्ण पर बरसा दिये। अद्भुत जय-जयकार हो गया। उस बड़े सुख का वर्णन (किसी के द्वारा) नहीं किया जा सकता। ६७ देव मन में उत्कण्ठापूर्वक सोच रहे थे कि कृष्ण कब कंस का वध करेगा। (उससे) समस्त ऋषि सब चिन्ताओं को छोड़कर सुखी हो जाएँगे। ६८ अस्तु। कृष्ण गोकुल (लौट) आये, तो समस्त गोपियाँ हर्षविभोर हो उठीं। वे आरतियाँ सजाकर घननील कृष्ण को देखने के लिए आगे आ गयीं। ६९ श्रीकृष्ण तो केवल सूर्य हैं, (जिन्हें) देखते ही गोपियों रूपी कमलिनियाँ विकसित हो गयीं। श्रीकृष्ण

गोपी विकासल्या कमळिणी । श्रीकृष्ण शशांक देखोनी । गोपी चकोरी जाहल्या । २७० कीं घननीळ मेघ केवळ । गोपी चातकी सकळ । कीं श्रीकृष्ण सुवास नीलोत्पल । गोपी भ्रमरी वेधल्या । २७१ हरिविजय ग्रंथ क्षेत्र । साहित्यरसें पिकलें अपार । नाना दृष्टांत नागर । कणसें हींचि सघन पैं । ७२ हें पीक समस्त लागे हातां । ऐसा उपाय काय आतां । तरी आवडीच्या ढोळियां समस्तां । सावध सर्वदा बैसावें । ७३ भक्तीचा पांगोरा वाजवूनी । कुतर्क पांखरें टाका उडवोनी । तरीच धान्य समूळींहूनी । हातां लागेल सर्वही । ७४ ब्रह्मानंद यतिराज । जो ज्ञानार्क तेजःपुंज । श्रीधर तयाचे चरणरज । सेवितां सहज संतुष्ट पैं । ७५ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । संतजन परिसोत पंडित । चतुर्दशाध्याय गोड हा । २७६

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

रूपी चन्द्र को देखकर गोपियाँ (मानो) चकोरियाँ हो गयीं (अर्थात जिस प्रकार चकोरी चन्द्र को देखकर प्रसन्न होती है, उस प्रकार गोपियाँ कृष्ण को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हो गयीं) । २७० अथवा घननील कृष्ण (मानो) केवल मेघ हैं, तो समस्त गोपियाँ चातकियाँ हैं अथवा श्रीकृष्ण (मानो) सुगन्धित नीलकमल हैं, तो गोपियों रूपी भ्रमरियाँ (उसके प्रति) आकर्षित हो गयीं । २७१

श्रीहरि-विजय (नामक यह) ग्रन्थ रूपी खेत साहित्य-रस से (युक्त) अपार फ़सल को प्राप्त हो गया है । नाना (प्रकार के) नागर (श्रेष्ठ) दृष्टान्त (मानो) सघन भुट्टे हैं । २७२ यह समस्त फ़सल हाथ लग जाए, इसका अब क्या उपाय है ? (सुनिए—) तो सब अपनी-अपनी प्रिय कोटर-स्वरूप गुफा में नित्य-प्रति सावधान बैठ जाएँ । ७३ भक्ति रूपी चाबुक की पट्टी फटकारते हुए कुतर्क रूपी चिड़ियों को उड़ा दें । तो ही वह सभी अनाज मूल-सहित हाथ आएगा । ७४ आनन्दस्वरूप ब्रह्म-से गुरु ब्रह्मानन्द यतिराज हैं, जो ज्ञान रूपी सूर्य हैं, तेज के (साक्षात्) पुञ्ज हैं । मैं श्रीधर उनकी चरणरज का सेवन करने पर आसानी से सन्तुष्ट हो जाता हूँ । २७५

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । सन्तजन तथा पण्डित (ज्ञानी) उसके इस चौदहवें मधुर अध्याय का श्रवण करें । २७६

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१५

[कृष्ण द्वारा देवकी से वायन स्वीकार करना और देवकी-वसुदेव की रक्षा करना; कृष्ण द्वारा गोपियों का चीर-हरण]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय वृंदावनाविलासिया । निर्विकल्पवृक्षा करुणालया । अहंकारविषधर कालिया । पायांतळीं रगडिला । १ परम दुर्धर दुर्वासना । हेचि जीवें शोषिली तुवां पूतना । आपारसंसारभ्रममोचना । व्रजभूषणा सुखाब्धे । २ अघ बक केशी शकटासुर । हेचि काम क्रोध मद मत्सर । मर्दिले दैत्य दुर्धर । श्रीमनोहर विजयी तूं । ३ नानाविकार-भेदभंजना । अक्षया अपरिमिता निरंजना । गोपीजनमानसरंजना । सनातना प्रतापिया । ४ कमलपत्राक्षा कमलनयना । निंदकदुर्जनवनभंजना । अभेदप्रेमळभक्तरक्षणा । हरि निर्गुणा निरुपाधिका । ५ मधुकैटभारि पुंडलीकवरदा । सत्यज्ञाना परमानंदा । प्रमाणरहिता अक्षयसुखदा । क्रीडसी मुकुंदा गोकुळीं । ६ चतुर्दशाध्यायाचे अंतीं । गोवर्धनीं असतां

श्रीगणेशाय नमः । हे वृन्दावन में लीलास्वरूप विलास करनेवाले (भगवान कृष्ण), आपकी जय हो, जय हो । हे निर्विकल्प अर्थात शाश्वत फल देनेवाले (कल्प-) वृक्ष, हे करुणा के निवासस्थान (कृष्ण), आपने अहंकार रूपी विष धारण करनेवाले अथवा अहंकार रूपी कालिय नामक विषैले नाग को अपने पाँवों तले कुचल डाला । १ एक ओर से दूसरी ओर तक, अर्थात सम्पूर्ण सांसारिक भ्रम से मुक्त करनेवाले, हे व्रजभूषण, हे सुख-सागर (कृष्ण), आपने परमदुर्धर वासना रूपी पूतना राक्षसी को प्राणों-सहित सोख डाला । २ अघ, बक, केशी, शकटासुर (नामक असुर) ही (मानो) काम, क्रोध, मद, मत्सर (जैसे विकार) हैं । आपने उन दुर्धर्ष दैत्यों का मर्दन किया । (इस प्रकार) आप विजेता श्रीमनोहर हैं (मनोहारी विजयश्री प्राप्त करनेवाले विजेता हैं ।) । ३ हे नाना (प्रकार के) विकारों के भेद को भग्न करनेवाले, हे अक्षय, हे अपरिमित, हे निरंजन, हे गोपीजनों के मन का रंजन करनेवाले, हे सनातन, हे प्रतापवान, हे कमल-दलों की-सी आँखों वाले, हे कमलनयन, हे निन्दकों और दुर्जनों-स्वरूप वन को उद्ध्वस्त करनेवाले, हे अभेद भाव-भक्ति करनेवाले अर्थात एकनिष्ठ अनन्य प्रेमयुक्त भक्तों के रक्षक, हे हरि, हे निर्गुण, हे उपाधि-रहित हे मधु-कैटभ के शत्रु, हे पुण्डलिक को वरदान देनेवाले, हे सत्य (-स्वरूप), हे ज्ञान (-स्वरूप), हे परमानन्द (-स्वरूप), हे प्रमाण-रहित (अपरिमित, असीम), हे अक्षय सुख देनेवाले (कृष्ण), हे मुकुन्द, (आप) गोकुल में क्रीड़ा (लीला) करते हैं । ४-६ चौदहवें अध्याय के अन्त में (यह कहा गया कि) गोवर्धन पर्वत के पास

श्रीपती। अग्नि लाविला कंसदूतीं। कृष्णें निश्चितीं गिळिला तो। ७ यावरी एकदां श्रावणमासीं। पितृतिथि अमावास्येसी। माता पूजिती पुत्रांसी। वाणें देती आदरें। ८ संकर्षणाची पूजा करोनी। ते दिनीं वाण देत रोहिणी। श्रीरंगासी नंदराणी। प्रीतीं अर्चूनि वाण देत। ९ तों मधुरेंत बंदिशाळे। वसुदेव देवकी ते वेळे। आठवूनि श्रीकृष्णरूप सांवळें। दुःख केलें अपार। १० माय बोले ते क्षणीं। मी वांझ सप्त पुत्र विऊनी। आठवा जाहला चक्रपाणी। तोही मज अंतरला। ११ कंसें परम चांडाळें। अवघीं मारिलीं माझीं बाळें। एकही नाहीं उरलें। आजी वाण द्यावया। १२ अहा डोळसा आठव्या हृषीकेशी। मज तुवां केलें परदेशी। आजी मी वाण देऊं कवणासी। बा वेगेंसीं धांवें कां। १३ अहा माझें पूर्वकर्म ओढवलें। घोर पाप कैसें फळासी आलें। अहा गाईवत्सासी विघडिलें। कीं मृगीचें तोडिले पाडस। १४

कृष्ण के रहने पर कंस के दूतों ने आग लगा दी। कृष्ण ने उसे निश्चय ही निगल (कर बुझा) डाला। ७ इसके पश्चात एक बार श्रावण मास में पितृ-तिथि अमावास्या के दिन (जब) माताएँ अपने पुत्रों का पूजन करती हैं और आदरपूर्वक वायन देती हैं, (तब) रोहिणी ने संकर्षण बलराम का पूजन करते हुए उस दिन वायन दिया। (उधर) नन्दरानी यशोदा ने (भी) प्रीतिपूर्वक श्रीरंग कृष्ण का पूजन करके वायन प्रदान किया। ८-९ तब मथुरा में बन्दीशाला में उस समय वसुदेव-देवकी श्रीकृष्ण के श्याम रूप का स्मरण करते हुए अपार दुःख अनुभव कर रहे थे। १० उस क्षण माता (देवकी) बोली, 'सात पुत्रों को जन्म देने पर भी मैं बाँझ (ठहरी) हूँ। चक्रपाणि (भगवान विष्णु के अवतार-स्वरूप कृष्ण) आठवाँ पुत्र (उत्पन्न) हुआ —वह भी मुझसे दूरत्व को प्राप्त हो गया (दूर गया)। ११ परमचण्डाल-स्वरूप (दुष्ट) कंस ने मेरे समस्त बच्चों को मार डाला। वायन देने के लिए आज (उन आठ पुत्रों में से) एक भी नहीं शेष रहा। १२ हे सुन्दर नेत्रों वाले आठवें पुत्र हृषीकेशी, तूने मुझे परदेमी अर्थात पराया बना दिया, तो मैं आज किसे वायन दूँ ? अरे, वेगपूर्वक क्यों न दौड़ो (दौड़ते हुए आ जाओ)। १३ हाय, मेरा पूर्वकृत कोई (बुरा) कर्म आ टपका हो ! मेरा किया कोई पाप कैसे (इस बुरे) फल को प्राप्त हो गया है। हाय, मैंने (क्या) गाय-बछड़ों को (एक-दूसरे से) दूर कर दिया था, अथवा किसी हिरनी के शावक को (उससे) छीन लिया था। १४ अथवा श्रीहरि-कीर्तन के रंग में बाधा उत्पन्न की थी, अथवा किसी ऋषि के मान को बिगाड़ दिया था (ऋषि का अवमान-अपमान किया था), अथवा मैं पूर्वकाल में (कभी) माता-पिता-सद्गुरु को व्यंग्य-वचन (ताना) कहा हो। १५ हे वैकुण्ठनाथ, शीघ्र दौड़ो; अब मेरे बच्चे को मुझसे मिला दो। इस

किंवा मोडिला हरिकीर्तनरंग। कीं ऋषींचा केला मानभंग। मातापिता-सद्गुरूंस व्यंग। शब्द बोलिलें मीं पूर्वीं। १५ धांव लौकरी वैकुंठनाथा। माझें बाळ भेटवीं मज आतां। हे बंदिशाळेची व्यथा। किती दिवस भोगविसी। १६ ऐसी देवकी धांवा करी। तों गोकुळीं खेळतां श्रीहरी। करुणाशब्द ते अवसरीं। हरिश्रवणीं पडियेला। १७ गडियांत खेळतां सांवळा। मायेचा धांवा ऐकिला। सद्गदित कंठ झाला। तैसाचि चालिला गुप्तरूपें। १८ अनंत ब्रह्मांडींचा समाचार। सर्व जाणे श्रीहृत्पद्मभ्रमर। तो न लागतां क्षणमात्र। बंदिशाळे पावला। १९ पद्मिनीमित्रकुलभूषण। चतुर्दश वर्षें सेवूनि विपिन। निजमायेसी भेटे येऊन। तेवीं मनमोहन पावला। २० तंव देवकी विस्तारूनि वाण। करीत श्रीकृष्णाचें चिंतन। म्हणे जेथें असेल बाळ सगुण। त्यासी वाण पावो हें। २१ तंव अकस्मात मातेचे पाठीशीं। उभा राहिला हृषीकेशी। जो पयः सागरहृदयविलासी। वेदशास्त्रांसी अगोचर। २२ मायेनें उचलून वाण। सहज बोले अतीत कोण। तों अकस्मात बोले जगन्मोहन। सर्वातीत मीच असें। २३ जीवशिवांसी

बन्दीशाला की व्यथा को (हमें) कितने दिन भुगवा रहे हो'। १६ इस प्रकार देवकी (सहायता करने की विनती करते हुए) दुहाई दे रही थी। तब श्रीहरि गोकुल में खेल रहे थे। उस समय वह करुणा-भरी ध्वनि उन श्रीहरि के कानों पर पड़ी (उन्हें सुनायी दी)। १७ साथियों में खेलते-खेलते साँवले कृष्ण ने माता की दुहाई (सहायतार्थ पुकार) सुनी, तो उनका गला रुँध गया (वे बहुत गद्गद हो उठे)। (फिर) वे गुप्त रूप से वैसे ही (तत्क्षण) चल पड़े। १८ श्री अर्थात लक्ष्मी के हृदय रूपी कमल में निवास करनेवाले भ्रमरस्वरूप विष्णु के अवतार कृष्ण अनन्त ब्रह्माण्ड का समस्त समाचार जानते हैं। वे क्षणमात्र न लगते बन्दीशाला पहुँच गये। १९ जिस प्रकार पद्मिनी-मित्रकुल अर्थात सूर्यवंश के लिए आभूषणस्वरूप प्रभु रामचन्द्र चौदह वर्ष वन में निवास करके (अयोध्या) आकर (अपनी) माता से मिले, उसी प्रकार मनमोहन कृष्ण (देवकी माता के समीप) आ पहुँचे। २० तब वह वायन बिछाये रखकर श्रीकृष्ण का चिन्तन कर रही थी। वह बोली, 'मेरा गुणवान बच्चा जहाँ (कहीं) हो, उसे (वहाँ) यह वायन प्राप्त हो जाए'। २१ (फिर) जो क्षीरसागर के हृदय में विलास करते हैं, जो वेदों और शास्त्रों (तक) को अगोचर (अज्ञेय) हैं, वे हृषीकेशी कृष्ण अकस्मात् तब (आकर) माता के पीछे खड़े रह गये। २२ वायन उठाकर माता स्वाभाविक ढंग से बोली, 'कौन अतिथि है ? (कोई अतिथि है ?)' तो सहसा जगन्मोहन कृष्ण बोले, 'सबके परे (सर्वश्रेष्ठ अतिथि) मैं ही हूँ। २३ जो जीवों और शिव के परे है, जो पिण्ड और ब्रह्माण्ड के परे है, वही मैं तुम्हारा पुत्र हो

जो अतीत। पिंडब्रह्मांडाविरहित। तोचि मी झालों तुझा सुत। वाण निश्चित मज देई। २४ देवकी जो परतोनि पाहे। तों सांवळी मूर्ति उभी आहे। विस्मयें परम तटस्थ होये। बोले काय देवकी। २५ कोणाचा रे तूं बाळा। दिसतोसी बरवा वेल्हाळा। माझाही कृष्ण सांवळा। तुजयेवढाच असेल। २६ हांसोनि बोले जगज्जीवन। माते तोचि मी तुझा नंदन। माझेंचि नाम जाण कृष्ण। बरवी खूण ओळखीं। २७ ऐकतांचि ऐशिया वचना। स्तनीं तात्काळ फुटला पान्हा। पोटासीं धरिलें कमलनयना। तें सुख कोणा न वर्णवे। २८ स्फुंदस्फुंदोनि रडे माया। आडवें घेतलें यादवराया। हरिमुखीं स्तन घालूनियां। पयःपान करवीत। २९ वसुदेव जवळी येऊन। म्हणे कोणासी करविसी स्तनपान। देवकी म्हणे जी माझाचि कृष्ण। पावला हो मजलागीं। ३० गोकुळीं करितो नाना चरित्रें। तीं ऐकत होतों आपण श्रोत्रें। तीं आजि राजीवनेत्रें। खरीं करूनि दाविलीं। ३१ मग वसुदेवें आलिंगिलें मुरहरा। नयनीं वाहती विमलांबुधारा। बा रे माझिया श्यामसुंदरा। कैसा येथें आलासी। ३२ हरि म्हणे अविद्यामय प्राणी। जे गेले देहबुद्धीनें वेष्टूनी। मी न दिसें तयांचे नयनीं। भक्त ज्ञानी

गया हूँ। मुझे अवश्य वायन दे दो'। २४ ज्योंही देवकी ने मुड़कर देखा, तो (उसे दिखायी दिया कि वहाँ एक) साँवली मूर्ति खड़ी है। वह विस्मय से परम स्तब्ध हो गयी। (फिर) देवकी क्या बोली। २५ 'रे बालक, तू किसका (है), कौन है ? अरे प्यारे सलोने, तू भला-चंगा दिखायी दे रहा है। मेरा साँवला कृष्ण भी तुझ जितना ही होगा'। २६ (यह सुनकर) जगज्जीवन कृष्ण हँसते हुए बोले, 'माँ, मैं वही तुम्हारा पुत्र हूँ। मेरा ही नाम कृष्ण समझो। कोई भला-अच्छा चिह्न (लक्षण) पहचान लो'। २७ ऐसी बात सुनते ही तत्काल उसके स्तन पन्हिया गये। तो उसने कमलनयन कृष्ण को छाती से लगा लिया। उस सुख का वर्णन किसी भी के द्वारा नहीं किया जा पाएगा। २८ माता (देवकी) सुबक-सुबककर रोने लगी। उसने यादवराज कृष्ण को (दूध पिलाने के हेतु) गोद में लिटा लिया और वह कृष्ण के मुँह में स्तन डालकर उसे दुग्धपान कराने लगी। २९ वसुदेव पास आकर बोले, 'किसे स्तन-पान करा रही हो ?' तो देवकी ने कहा, 'जी (अहो), मेरा ही कृष्ण मुझे मिल गया है। ३० वह गोकुल में नाना लीलाएँ किया कर रहा है—उन्हें हम कानों से सुन रहे थे। आज राजीवनेत्र कृष्ण ने उन्हें सत्य कर दिखा दिया है'। ३१ तब वसुदेव ने मुरारि कृष्ण को गले लगा लिया। उनकी आँखों से शुद्ध (प्रेम से उत्पन्न) अश्रुजल-धाराएँ बह रही थीं। (वे बोले—) 'अरे मेरे श्यामसुन्दर, यहाँ कैसे आ गया ?'। ३२ (इस पर) कृष्ण बोले, 'जो अविद्यामय (अविद्या-माया में फँसकर अज्ञान

ज्ञाणती। ३३ हरि म्हणे आतां शोक करूं नका। तुमची सत्वर होईल सुटका। ऐसें बोलोनि निजजनसखा। गोकुळा गेला सत्वर। ३४ कंससभेसी आला ब्रह्मपुत्र। म्हणे तुज कळला कीं समाचार। कृष्ण येऊनि गेला सत्वर। मातापितयांसी भेटोनि। ३५ ऐकोनियां कंस कोपला। दूत बोलाविले ते वेळां। वसुदेवदेवकी उभयतांला। धरोनि आणवी सभेसी। ३६ उभीं असती दीनवदन। कंस म्हणे टाका शिरें छेदून। त्यांचे पाठीं उग्रसेन। तोही वधून टाकावा। ३७ शस्त्रें घेऊनि लखलखित। भोंवते उभे ठाकले दूत। देवकी थरथरां कांपत। धांवा करीत हरीचा। ३८ चाल चाल बा वेगें हरी। कंस आम्हांसी जिवें मारी। तुजविण ये अवसरीं। कोण आम्हां रक्षी पां। ३९ आमुच्या ऐशा होती आपदा। काय पाहसी तूं मुकुंदा। भक्तकैवारिया गोविंदा। धांव धांव सत्वर। ४० ते करुणाशब्द ते वेळीं। कृष्णें ऐकिले गोकुळीं। खेळतांचि बाळांचिये मेळीं। तो वनमाळी काय करी। ४१ मुखांतूनि काढिलें सुदर्शन। मथुरेकडे अवलोकून। दिधलें

हुए) प्राणी (अहं-) देह बुद्धि से लिपटे हुए हैं, मैं उन्हें उनकी अपनी आँखों से नहीं दिखायी देता। (परन्तु) ज्ञानी भक्त (मुझे) जानते हैं'। ३३ (फिर) कृष्ण बोले, 'अब शोक न करो। शीघ्र ही तुम्हें छुटकारा मिल जाएगा (तुम मुक्त हो जाओगे)।' ऐसा बोलकर अपने (भक्त) जनों के सखा कृष्ण झट से गोकुल चले गये। ३४

(इधर) ब्रह्मा के पुत्र नारद कंस की (राज) सभा में आ गये (और) बोले, 'क्या तुम्हें यह समाचार विदित हुआ? कृष्ण आकर माता-पिता से मिलकर झट से चला गया'। ३५ यह सुनकर कंस कुपित हो उठा। उसने उस समय दूतों को बुला लिया (और कहा)— 'वसुदेव-देवकी दोनों को पकड़कर (यहाँ राज-) सभा में ले आओ'। ३६ वे (वहाँ लाये जाने पर) दीनवदन हो खड़े रहे। कंस बोला— 'इनके सिर काट डालो। उनके बाद उग्रसेन (की बारी है)! —उसका भी वध कर डालो'। ३७ (यह सुनते ही) जगमगाते हुए शस्त्र लेकर (उसके) सेवक (उनके) चारों ओर खड़े हो गये। तो देवकी थरथर काँपते हुए श्रीकृष्ण से गिड़गिड़ाहट के साथ रक्षा के लिए विनती करने लगी। ३८ 'हे हरि, वेगपूर्वक चले आओ, चले आओ। कंस हमें जान से मार रहा है। अरे, बिना तुम्हारे इस समय हमारी रक्षा कौन करेगा। ३९ हमारी ऐसी बुरी दशाएँ हो रही हैं। रे मुकुन्द, तुम क्या देख रहे हो? हे भक्तों के समर्थक-रक्षक गोविन्द, झट से दौड़ो, दौड़ो'। ४० उस समय कृष्ण ने गोकुल में वे करुण शब्द सुने। बालकों के समूह में खेलते हुए तब उन वनमाली कृष्ण ने क्या किया? । ४१ तब उन्होंने मुख में से सुदर्शन चक्र निकाल लिया (और) मथुरा की ओर देखकर उन्होंने झट से

तेव्हां भिरकावून। गुप्त पंथें सत्वर। ४२ चक्र येवोनियां त्वरित। दोघांभोवतें असे रक्षित। जो डोळियाचें पातें लवत। तों शतावर्तनें चक्र करी। ४३ भोंवतें दैत्यचक्र। त्याचा तत्क्षणीं केला संहार। झाला एकचि हाहाकार। राशी पडल्या शिरांच्या। ४४ विस्मित पाहे कंसासुर। म्हणे कोण करितो संहार। अमर्याद पडले चरणकर। तुटोनियां वीरांचे। ४५ भयभीत कंस मानसीं। म्हणे ईश्वर रक्षितो यांसी। कंस म्हणे वसुदेवासी। बंदिशाळे तुम्हीं जावें। ४६ तुम्हांसी मी कदा न मारीं निर्भय असावें अंतरीं। वसुदेव देवकी झडकरी। जाती जाहलीं बंदिशाळे। ४७ पाठीं असतां भगवंत। कृतांतही करूं न शके घात। अपाय तो उपाय होत। विघ्नें निरसती सर्वही। ४८ असो ऐसी करणी करून। निजस्थाना गेलें सुदर्शन। भक्तकैवारी नारायण। ब्रीद साच केलें हो। ४९ याउपरी एके दिनीं। हरि खेळतां वृंदावनीं। गोरस विकावया गौळणी। मथुरेप्रति चालल्या। ५० तयां मध्यभागीं राधा। जिच्या स्वरूपासी नाहीं मर्यादा। जे अत्यंत प्रिय

उछालकर गुप्त मार्ग से फेंक दिया। ४२ वह चक्र शीघ्रता से आकर उन दोनों की चारों ओर से रक्षा करने लगा। जब तक आँख की पलक झपक जाती है, तब तक वह चक्र सौ-सौ परिक्रमा करता था। ४३ चारों ओर दैत्यों का मण्डल (घेरा) था। उसने उनका तत्क्षण संहार कर डाला, तो अद्भुत हाहाकार मच गया। (दैत्यों के) सिरों के ढेर (के ढेर) लग गये। ४४ विस्मित होकर कंसासुर ने यह देखा। वह बोला, 'कौन यह संहार कर रहा है ? वीरों के अनगिनत चरण और हाथ टूटकर गिर पड़े हैं'। ४५ कंस मन में भयभीत हो उठा। वह बोला (उसने माना), 'भगवान इनकी रक्षा कर रहा है।' (फिर) कंस वसुदेव से बोला, 'तुम बन्दीशाला में जाओ। ४६ मैं तुम्हें कभी न मार डालूँगा। मन में भयरहित रह जाना।' (तब) वसुदेव और देवकी झट से बन्दीशाला में गये। ४७ भगवान द्वारा पीछे (पास) रहने पर कृतान्त तक (किसी का) नाश नहीं कर सकता। (उस स्थिति में) उपाय (हानिकारी कार्य), उपाय हो जाता है; सभी विघ्नों का निराकरण हो जाता है। ४८ अस्तु। ऐसा कार्य करके सुदर्शन अपने स्थान चला गया। भगवान नारायण भक्तों के रक्षक-सहायक हैं। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को सत्य कर दिया। ४९

इसके पश्चात एक दिन श्रीकृष्ण वृन्दावन में खेल रहे थे। तो गोपियाँ गोरस बेचने के लिए मथुरा की ओर जा रही थीं। ५० उनके मध्य भाग में (बीच में) राधा थी, जिसकी सुन्दरता की कोई सीमा नहीं थी। जो (राधा) कृष्ण को अत्यन्त प्रिय थी, वह उन आनन्दकन्द (कृष्ण) को न भूल जाती थी। ५१ राधा (उनके बीच रहते हुए भी) हाव-भाव

गोविंदा। ते आनंदकंदा न विसरे। ५१ हावभाव राधा दावीत। पैंजण पायीं झणत्कारत। खंजरीटनयना विलोकीत। चहूंकडे चपलत्वें। ५२ आकर्ण राधेचे नयन। सोगयाचें शोभे अंजन। वदनचंद्र शोभायमान। स्वरूपलावण्य न वर्णवे। ५३ भोंवता गौळणींचा मेळा। त्यांत तळपे राधा चपळा। दुरोनि देखोनि सांवळा। वडजाप्रति बोलतसे। ५४ या वृक्षावरी चढोनी। पाहें कोण जाताती गौळणी। वडजा तरूवरी ओळंघोनी। हरीप्रति बोलतसे। ५५ मथुरेप्रति जाती नितंबिनी। परी त्यांत एक सुंदर कामिनी। जैसा उडुगणांमाजी निशामणी। तैसीच दुरोनि दिसताहे। ५६ घडोघडी तुजकडे पाहे। तीस हरि तूं धरीं लवलाहें। दान तिजला मागें स्वयें। आतांचि देईं म्हणोनियां। ५७ गडियांसमवेत धांवे वनमाळी। पदरीं राधा दृढ धरिली। नेत्रसंकेतें ती ते वेळीं। खूण जाणवीत हरीतें। ५८ भलतें बोलूं नको आतां। हरि म्हणे आमुचें दान न देतां। कां गे शून्यमार्गें जातां। मज अनंता टाकूनि। ५९ राधा म्हणे मनमोहना। मजसीं लावूं नको तनाना। तूं पुढें पुढें शहाणा। बहुत होसील वाटतसे। ६० उगाचि मध्यें

दिखला रही थी। उसके पाँवों में पायल झनक-झनक बज रही थी। वह खञ्जन-नयना (राधा) चारों ओर चपलतापूर्वक देख रही थी। ५२ राधा के नेत्र आकर्ण (कानों तक फैले हुए अर्थात विशाल) थे, उनमें सुरमा का अञ्जन शोभायमान था। उसका मुखचन्द्र शोभायमान था। उसके रूप-लावण्य का वर्णन किया नहीं जा पाएगा। ५३ चारों ओर गोपियों का समुदाय था। उन (के बीच) में राधा बिजली की भाँति जगमगा रही थी। दूर से उसको देखकर श्याम (अपने मित्र) वडजा से बोले। ५४ 'इस वृक्ष पर चढ़कर देखो, कौन (-कौन) गोपियाँ जा रही हैं।' तो वडजा पेड़ पर चढ़कर कृष्ण से बोला। ५५ ये (सुन्दर नितम्ब वाली) नारियाँ मथुरा की ओर जा रही हैं। फिर भी उनमें एक सुन्दर कामिनी है। जिस प्रकार तारों के बीच चन्द्र (शोभायमान) दिखायी देता है, उसी प्रकार वह दूर से दिखायी दे रही है। ५६ वह घड़ी-घड़ी तेरी ओर देख रही है। रे हरि, तू उसे झट से पकड़ ले। कह दे, 'अभी मुझे स्वयं दान दे दो'। ५७ (यह सुनकर) वनमाली कृष्ण (अपने) साथियों-सहित दौड़े और उन्होंने राधा का दृढ़तापूर्वक आँचल पकड़ लिया। उस समय उसने आँखों के संकेत से कृष्ण को इशारा किया। ५८ (वह मानो बोली—) 'अब बेतुकी बात न बोलो।' तो हरि बोले, 'मुझ अनन्त को छोड़कर (टालकर) हमारा दान (= कर) न देते हुए तुम शून्य मार्ग से (निर्जन मार्ग से) क्यों जा रही हो'। ५९ (इसपर) राधा बोली 'हे मनमोहन, मुझसे मज़ाक़ न करो। लगता है, तुम आगे (चलकर) बहुत चतुर हो जाओगे'। ६० बीच में बिना किसी कारण के लूट रहे हो।

वाट पाडिसी। चाल वेगें रे चावडीसी। पुसों मग दिवाणासी। दान मागसी कैसें तें। ६१ हरि म्हणे तूं नितंबिनी। चावडीची आवडी धरिसी मनीं। मी दान घेतल्यावांचूनी। तुजलागीं सोडींना। ६२ राधा म्हणे आतां दान घेसी। हरि म्हणे नाचतचि देसी। नाहीं तरी चाल कुंजवनासी। आडमार्गासी सांडोनियां। ६३ राधा म्हणे जगज्जीवना। बहु बरळे तुझी रसना। परी तुज ठकवूनि मनमोहना। जाईन आतां येथूनियां। ६४ हरि म्हणे गळीं गुंतला मीन। तो जाईल मग कोठून। राधा म्हणे हें वर्तमान। कंसालागीं जरी कळे। ६५ मग तुज नांदावया गोकुळीं। ठाव नुरेचि वनमाळी। तूं बहुत करितोसी कळी। परी हें बरवें नव्हेचि। ६६ हरि म्हणे कंसालागून। क्षणमात्रें मीच मारीन। चाणूर मुष्टिक आपटीन। एक पळ न लागतां। ६७ इतुकें आम्हीं केलियावरी। तूं आमुची होय नोवरी। ऐसें बोलतां श्रीहरी। इतर सुंदरी हांसती। ६८ राधा म्हणे तुझा पुरुषार्थ। मज ठाउका आहे समस्त। तुज वायकांनीं निश्चित। धरोनि बांधिला उखळासी। ६९ तुवां कांखेसी घोंगडी घेऊनी। गाई चाराव्या वृंदावनीं। पांवा वाजवीं मधुरध्वनी। हमामा घालीं गोवळ्यांसीं। ७०

वेग से कोतवाली चलो। फिर हम दीवानजी से पूछें कि तुम कैसे दान माँग रहे हो'। ६१ तो कृष्ण बोले, 'तू नितम्बिनी (नारी) यह (कैसे) कोतवाली के प्रति रुचि मन में धारण कर रही है। बग़ैर दान लिये, मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा'। ६२ (तब) राधा बोली, '(क्या) अब दान ले रहे हो?' तो हरि बोले, 'नाचती हुई दे रही हो (क्या)? नहीं तो इस दूर के उपमार्ग को छोड़कर कुञ्जवन की ओर चल'। ६३ राधा बोली, 'हे जगज्जीवन, तुम्हारी जीभ बहुत बक रही है। फिर भी मैं तुम्हें ठगकर, हे मनमोहन, यहाँ से जाऊँगी'। ६४ हरि बोले, '(जब) मछली काँटे में फँस गयी हो, तो फिर वह कहाँ से (कैसे) जा पाएगी?' (यह सुनकर) राधा बोली, 'यदि यह समाचार कंस को विदित हो जाए, तो तब, हे वनमाली, तुम्हें गोकुल में सुखपूर्वक रहने के लिए स्थान शेष नहीं रहेगा। तुम बहुत झगड़ा (उत्पन्न) कर रहे हो। पर यह ठीक नहीं है'। ६५-६६ हरि बोले, 'मैं ही कंस को क्षणमात्र में मार डालूँगा। एक पल (तक) न लगते मैं चाणूर और मुष्टिक को पटक डालूँगा। ६७ हमारे द्वारा इतना कर लिये जाने पर तू हमारी दुलहन बन जाएगी।' श्रीहरि द्वारा ऐसा कहने पर अन्य सुन्दरियाँ (नारियाँ) हँसने लगीं। ६८ राधा बोली, 'मुझे तुम्हारा समस्त पुरुषार्थ विदित है। निश्चय ही (एक बार) स्त्रियों ने तुम्हें पकड़कर ऊखल से बाँध दिया था। ६९ तुम तो काँख में कमरिया लेकर वृन्दावन में गायों को चराते रहना। मधुर ध्वनि में बाँसुरी बजाना और गोप-बालों के साथ हुमरी खेल लेना। ७० तुमसे कंस को क्या

तुवां काय वधावा कंस। ऐकतां क्रोध आला पेंधियास। राधेसी म्हणे कृष्ण परमपुरुष। याचा महिमा नेणसी तूं। ७१ हे शेषनारायण दोघेजण। अवतरले देवकार्यालागून। हें पूर्णब्रह्म सनातन। तुज महिमान नेणवे। ७२ पूतना आणि शकट केशी। तृणावर्तअघबकांसी। कालिया मर्दिला यमुनेसी। तो तुवां नेत्रीं देखिला। ७३ द्वादश गांवें गिळिला अग्न। केलें गोवर्धनोद्धारण। चतुर्मुख सहस्रनयन। आले शरण श्रीरंगा। ७४ नंद बुडाला यमुनाजळीं। घेऊनि आला वनमाळी। सर्पमुखींहूनि शक्तिस्थळीं। पिता सोडविला श्रीकृष्णें। ७५ ऐसे अगाध हरीचे गुण। नेणे पंचास्य सहस्रवदन। त्या हरीस शब्ददूषण। मूर्खे गौळणी ठेविसी। ७६ तों राधेची सखी चंद्रकळा। हरीसी बोले ते वेळां। म्हणे क्षमा करीं गोपाळा। अन्याय आमुचे समस्त। ७७ चोरी करोनियां गोकुळीं। तुझें पोट न भरे वनमाळी। तरी मागोनि घेईं आम्हांजवळीं। गोरस तुज भक्षावया। ७८ परी आम्हां वाटेसी कां पीडिसी। नसतेंचि दान मागसी। सोड जाऊं दे राधेसी। म्हणोनि चरणासी लागली। ७९ राधा म्हणे चंद्रकळे। हा ऐसाच पीडितो भलते

मार डाला जाएगा।' यह सुनते ही मनसुखे को क्रोध आ गया। वह राधा से बोला, 'कृष्ण परमपुरुष है। इसकी महिमा तू नहीं जानती। ७१ ये दोनों जने शेष और नारायण (ही) देवों के काज के लिए अवतरित हैं। यह सनातन पूर्णब्रह्म है। तुम्हारे द्वारा इसकी महिमा जानी नहीं जा पाए गी। ७२ इसने पूतना और शकट असुर, केशी, तृणावर्त, अघ, बक को मार डाला है। कालिय को यमुना में कुचल डाला —वह तो तुमने अपनी आँखों से देखा है। ७३ उसने बारह योजन (फैली हुई) आग को निगल डाला, गोवर्धन पर्वत को उठा लिया। चतुर्मुख ब्रह्मा (और) सहस्रनयन इन्द्र उसकी शरण में आ गये। ७४ (जब) नन्द यमुना के जल में डूब गये, तो वनमाली कृष्ण उसे ले आया। शक्तिदेवी के स्थान पर श्रीकृष्ण ने साँप के मुँह में से अपने पिता को छुड़ा लिया। ७५ हरि के ऐसे अथाह गुण हैं। उन्हें पंचमुख शिवजी और सहस्रवदन शेष नहीं जान सकते। हे मूर्खा ग्वालिन, उस हरि को तू शब्दों में (इस प्रकार) दोष लगा रही है'। ७६ तब उस समय राधा की चन्द्रकला नामक सखी कृष्ण से बोली। उसने कहा, 'हे गोपाल, हमारे समस्त अन्याय (-पूर्ण व्यवहार, अपराध) क्षमा करो। ७७ हे वनमाली, गोकुल में चोरी करके तेरा पेट नहीं भर रहा है, तो हमसे तू खाने के लिए गोरस माँग ले। ७८ परन्तु तू हमें मार्ग में क्यों पीड़ा पहुँचा रहा है (तंग कर रहा है)। तू बेढंगा दान माँग रहा है। छोड़ दे, राधा को जाने दे।' ऐसा कहते हुए वह उनके पाँव लगी। ७९ राधा चन्द्रकला से बोली, 'यह ऐसा ही असमय (बेवक़्त) में तंग करता है। इसने मेरी घर-गिरस्ती पर

वेळे। येणें संसारासी घातलें। पाणी माझ्या सर्वस्वें। ८० हा राखितो माझ्या गाई। त्यालागीं मी न बोलेंचि कांहीं। येऱ्हवीं याचे कान ये समयीं। पिळूनि देतें हातींच। ८१ राधेसी म्हणे शेषशायी। म्यां तुझ्या बापाचें खादलें काई। आजिपासूनि तुझ्या गाई। न राखें मी सर्वथा। ८२ ऐसें बोलतां गोविंदा। सद्‌गदित जाहली राधा। म्हणे पुराणपुरुषा आनंदकंदा। तुज शरण मी असें। ८३ तूं परमात्मा जगदुद्धार। मायानियंता निर्विकार। तूं आमुचा करिसी उद्धार। अवतार धरोनियां। ८४ तूं आमुचा निजप्राण। आम्ही तुझ्या वचनाधीन। तुजविण एक क्षण। न गमे आम्हां कदापि। ८५ तूं जगन्मोहन वेधकमूर्ती। क्षण एक जरी न देखों यदुपती। तरी नेत्र उन्मळती। वियोगें तुझ्या दयाळा। ८६ तुझें न करितां नामस्मरण। इतर जें प्रपंचभाषण। व्यर्थ काय जिव्हा श्रमवून। तुझे गुण न वर्णितां। ८७ देखोनि राधेचा प्रेमा। कृपा आली पुरुषोत्तमा। म्हणे तुमचा भावगोरस आम्हां। नित्यकाळ समर्पणें। ८८ मान्य करोनि हरिवचन। गोपी गेल्या मथुरेलागून। आठविती श्रीरंगाचे गुण। प्रपंचकारण करितांही। ८९

सब प्रकार से पानी फेर दिया है। ८० यह मेरी गायों को सम्हालता (चराता) है। इसलिए मैं उससे कुछ भी नहीं कहती। नहीं तो इसके कान मरोड़कर इस समय मैं इसके हाथों पर ही धर देती'। ८१ तो शेषशायी अर्थात विष्णु के अवतार कृष्ण बोले, 'मैंने तेरे बाप का क्या खाया है (क्या बिगाड़ा है) ? मैं आज से तेरी गायों को बिल्कुल नहीं चराऊँगा'। ८२ गोविन्द द्वारा ऐसा बोलने पर राधा वहुत गद्‌गद हो उठी। (और) बोली— 'हे पुराणपुरुष, हे आनन्द-कन्द, मैं तेरी शरण में (आ गयी) हूँ। ८३ तू परमात्मा है, जगत का उद्धारक है। तू माया का नियमन करनेवाला, विकार-रहित है। तू अवतार धारण करके हमारा उद्धार करता है। ८४ तू हमारे अपने प्राण है। हम तेरी बात के अधीन हैं। विना तेरे हमें एक क्षण (तक) कदापि चैन नहीं आता। ८५ तू जगत को मोहित करनेवाली, लुभावनी (आकर्षक) मूर्ति है। हे यदुपति, यदि हम तुझे एक क्षण भर (तक) न देखें, तो हे दयालु, तेरे वियोग से हमारी आँखें उन्मीलित हो जाती हैं। ८६ तेरे नाम का स्मरण न करते हुए, तेरे गुणों का (महिमा-) वर्णन करते हुए, जिह्वा को व्यर्थ ही श्रम को प्राप्त कराकर अन्य (सांसारिक लाभ सम्बन्धी) भाषण करने से क्या (लाभ) होगा'। ८७ राधा का यह प्रेम देखकर पुरुषोत्तम कृष्ण को उसके प्रति कृपा अनुभव हुई। वे बोले, 'तुम अपने भाव-स्वरूप गोरस को हम पर नित्यकाल समर्पित करना'। ८८ हरि के इस वचन को स्वीकार करके गोपियाँ मथुरा गयीं। वे श्रीरंग कृष्ण के गुणों का स्मरण घर-गिरस्ती के काम करते रहने पर भी कर रही थीं। ८९

राधेसमवेत गौळणी। मथुरेमाजी गोरस विकूनी। आल्या गोकुळा परतोनी। गात वदनीं हरिलीला।९० याउपरी एकदां यमुनातीरीं। गाई चारितां मधुकैटभारी। तों गौळियांच्या कुमारी। पूजिती गौरी स्वानंदें।९१ कृष्णसंग इच्छूनि मनीं। पूजिती देवी कात्यायनी। जे सौभाग्यदायक मंगलखाणी। ज्ञानकळा हरीची जे।९२ ज्ञानकळेसी न भजतां। हरिप्राप्ति नव्हेचि तत्त्वतां। यालागीं सुंदरी समस्ता। आचरती व्रत आदरें।९३ तंव तो काळ हेमंतऋतु। मार्गशीर्ष मास विख्यातु। जो आपुलें स्वरूप जगन्नाथु। द्वादश मासांत म्हणवी पैं।९४ अलंकारांत मुकुट सुंदर। कीं नवग्रहांमाजीं दिनकर। तैसा मासांमाजीं मार्गशिर। हरिस्वरूप जाणिजे।९५ कीं भोगियांमाजीं भूधर। कीं अंडजांमाजीं खगेंद्र। तैसा मासांमाजीं मार्गशिर। हरिस्वरूप जाणिजे।९६ वृंदारकांमाजीं शचीवर। कीं धनाढ्यांमाजीं कुबेर। तैसा मासांमाजीं मार्गशिर। हरिस्वरूप जाणिजे।९७ कवींमाजीं सत्यवतीकुमर। कीं मानवांत श्रेष्ठ नृपवर। तैसा मासांमाजीं मार्गशिर। हरिस्वरूप जाणिजे।९८ या मासांत करितां दान। गो भू

राधा के साथ गोपियाँ मथुरा में गोरस बेचकर गोकुल लौट आयीं। वे मुख से कृष्ण की लीलाओं का गान कर रही थीं।९०

इसके पश्चात्, एक बार यमुना के तट पर मधु-कैटभ के शत्रु भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण द्वारा गायों को चराते रहते, ग्वालों की कुमारी-कन्याएँ गौरी का आत्मानन्दपूर्वक पूजन करने लगीं।९१ मन में कृष्ण के संग की कामना करके उन्होंने उस कात्यायनीदेवी का पूजन किया, जो सौभाग्यदायिनी तथा मंगल की खान है, जो (साक्षात्) कृष्ण की ज्ञान-कला है।९२ ज्ञान-कला की भक्ति न करने पर सचमुच भगवान श्रीहरि की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए समस्त स्त्रियाँ इस व्रत को आदरपूर्वक रखती थीं।९३ तब का वह काल हेमन्तऋतु (का) था। (उस ऋतु का) वह मार्गशीर्ष मास विख्यात है, जो अपने स्वरूप को द्वादश मासों में जगन्नाथ भगवान (के समान) कहाता है।९४ जिस प्रकार आभूषणों में मुकुट (सबसे) सुन्दर (कहाता) है, अथवा नव ग्रहों में सूर्य (सर्वश्रेष्ठ) है, उसी प्रकार (वर्ष के बारह) मासों में मार्गशीर्ष को हरिस्वरूप (श्रेष्ठ) समझिए।९५ अथवा जिस प्रकार सर्पों में भूभारधारी शेष (श्रेष्ठ) है, अथवा पक्षियों में खगेन्द्र गरुड़ (श्रेष्ठ) है, उसी प्रकार (श्रेष्ठ), मासों में मार्गशीर्ष को हरिस्वरूप समझिए।९६ जिस प्रकार देवों में शचीपति इन्द्र (सर्वोपरि) है, अथवा धनाढ्यों में कुबेर (सर्वश्रेष्ठ) है, उसी प्रकार मासों में मार्गशीर्ष को हरिस्वरूप (श्रेष्ठ) समझिए।९७ जिस प्रकार कवियों में सत्यवती-पुत्र व्यास (सर्वश्रेष्ठ) है, अथवा मनुष्यों में राजा सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार मासों में मार्गशीर्ष को हरिस्वरूप (श्रेष्ठ)

हिरण्य ब्राह्मणपूजन। हरिकीर्तन अन्नसंतर्पण। तेणें नारायण संतोषें। ९९ असो गोपी हविष्यान्न भक्षिती। गोमयलिप्त भूमीसी निजती। बहुत नेम चालविती। हरिसुख प्राप्त व्हावया। १०० अरुणोदयीं स्नान करूनी। सर्वेचि उगवतां वासरमणी। मग पूजिती कात्यायनी। सिकतामूर्ति करूनियां। १०१ मनीं धरूनि राजीवनेत्र। जपती देवीपुढें मंत्र। तों गोपांमाजीं स्मरारिमित्र। खेळत असे स्वानंदें। २ त्यांच्या व्रताचें फळ। पूर्ण करावया घननीळ। एकलाचि निघोनि व्रजपाळ। तयांपासीं पातला। ३ अवघ्या वस्त्रें ठेवूनि तीरीं। पोहती कृतांतभगिनीनीरीं। तों सकळांचीं वस्त्रें पूतनारी। घेऊनि तरूवरी चढियेला। ४ कदंबावरी हरि चढतां। एकीनें देखिला अवचितां। ते मग सांगे समस्तां। वस्त्रें नेलीं कीं आमुचीं हो। ५ मग लाजोनियां सकळी। आकंठ लपती यमुनाजळीं। म्हणती कमलपत्राक्षा वनमाळी। लाज घेतली सर्वांची। ६ एक गोपी कांपे थरथरां। म्हणे वस्त्रें

समझिए। ९८ इस महीने में गाय, भूमि, हिरण्य (सोना) दान करने से, ब्राह्मणों का पूजन करने से, श्रीहरि का कीर्तन करने से, अन्न-सन्तर्पण करने से भगवान नारायण सन्तुष्ट हो जाते हैं। ९९ अस्तु। (उन दिनों) गोपियाँ हविष्यान्न भक्षण किया करती थीं। गोबर से सम्मार्जित भूमि पर सो जाती थीं। इस प्रकार, श्रीहरि के संग के सुख को प्राप्त होने के हेतु उन्होंने बहुत व्रत-नेम-धरम जारी रखे। १०० फिर अरुणोदय के समय स्नान करके, साथ ही (उसी समय) सूरज के निकलते ही वे (गोपियाँ) बालू की प्रतिमा बनाकर कात्यायनी का पूजन किया करती थीं। १०१ मन में कमलनयन कृष्ण (का ध्यान) धारण करके वे देवी के सामने मन्त्र का जाप किया करती थीं। तब (उधर) कामदेव के शत्रु श्रीशिवजी के मित्र भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण गोपों के बीच आत्मानन्दपूर्वक खेला करते थे। २ उन गोपियों के व्रत के प्रतिफल को पूर्ण (रूप से सिद्ध) करने के लिए घननील कृष्ण (उन गोपों के बीच में से) अकेले चल देकर उनके पास आ गये। ३ (जब) वे समस्त (गोपियाँ) तट पर वस्त्र रखकर यमानुजा यमुना के जल में तैर रही थीं, तब पूतना के शत्रु कृष्ण उन सबके वस्त्र लेकर वृक्ष पर चढ़ गये। ४ कदम्ब पर कृष्ण के चढ़ते जाते, एक गोपी ने यकायक (संयोग से) उन्हें देखा। तब उसने सबसे कहा, 'अहो, हमारे वस्त्र ले गया'। ५ तब वे समस्त (गोपियाँ) लज्जित होकर यमुना के पानी में गले तक छिप गयीं और बोलीं, 'अरे कमलदलनयन, वनमाली, हम सबकी मर्यादा तूने बिगाड़ दी'। ६ कोई एक गोपी थरथर काँप रही थी। वह बोली, 'अरे भुवनसुन्दर, अच्छा खासा एकान्त देखकर, तूने सचमुच बदला ले लिया। ७ रे कृष्णनाथ, तू बहुत अच्छा (लड़का) है। अब तू हमारे वस्त्र दे दे। रे अनन्त, (हमें) बहुत ठण्ड लग रही

देईं भुवनसुंदरा। तुवां साधिला डाव खरा। एकांत बरा पाहोनि।७ बहुत भला तूं कृष्णनाथा। आमुचीं वस्त्रें देईं आतां। बहुत शीत वाजतें अनंता। दांतखिळ्या बैसल्या।८ ऐशा ऊर्ध्ववदनें गोपिका। विनविती सरसिजोद्भवजनका। हांसतसे निजभक्तसखा। तयांकडे पाहोनियां।९ हरि म्हणे हे सूर्यकन्या। परमपवित्र सर्वमान्या। तुम्ही नग्न होऊनि ललना। कैशा आंत संचरलां।११० तुम्हीं मंदिरा जावें याउपरी। वस्त्रें आणूनि देईन झडकरी। तुमच्या वडिलांसी निर्धारीं। गति तुमच्या सांगेन मी।१११ त्या एकीकडे एक पाहती। हाव भाव दावूनि हांसती। म्हणती येणें तों निश्चिती। निर्वाण मांडिलें साच पैं।१२ एक म्हणती आम्ही दीन। तूं उदार करीं वस्त्रदान। एक म्हणती देऊं प्राण। तुजवरी जाण श्रीरंगा।१३ पाषाण उचलोन गोपी एक। म्हणे याजवरी फोडीन मस्तक। कदंबावरी जगन्नायक। हांसे शब्द ऐकूनियां।१४ एक बोलती साकांक्षा। वस्त्रें देईं वारिजदलाक्षा। आत्मयारामा सर्वसाक्षा। कालियाशिक्षाकारका।१५ एक म्हणती येऊं बाहेरी। चढूं आतां कदंबावरी। तुज धरोनि पूतनारी। शिक्षा बरी लावूं पैं।१६ वस्त्रें जरी न देसी टाकून। तरी तुज नंदयशोदेची

है। हमारी घिग्घी बँध गयी है'।८ इस प्रकार गोपियाँ मुँह (सिर) ऊपर उठाये कमलोद्भव ब्रह्मा के पिता विष्णुस्वरूप कृष्ण से विनती करने लगीं। (तब) अपने भक्तों के सखा कृष्ण उनकी ओर देखकर हँसने लगे।९ कृष्ण बोले, 'यह सूर्यकन्या यमुना परम पवित्र है, सर्वमान्य (सबके द्वारा आदरणीय मानी जानेवाली) है। तुम नारियाँ नंगी होकर उसके अन्दर कैसे संचार कर रही हैं (तैर रही हैं)।११० इसके पश्चात तुम अपने-अपने घर चली जाओ। मैं झट से वस्त्र लाकर दे दूँगा (और) निश्चय ही तुम्हारे पिता से तुम्हारी गतिविधियाँ (चाल-चलन के बारे में) कह दूँगा'।१११ (तब) वे एक-दूसरी की ओर देखने लगीं और हाव-भाव दिखाते हुए हँसने लगीं। वे बोलीं— 'इसने तो निश्चय ही (हमारी) मौत (की बात) आरम्भ की है'।१२ कुछ एक बोलीं, 'हम दीन हैं, तो तू उदार है। (अतः हमें) वस्त्र-दान दे दे।' तो कुछ एक ने कहा, 'रे श्रीरंग, समझ ले, (नहीं तो) तुझ पर हम प्राण त्याग देंगी'।१३ एक गोपी पत्थर उठाकर बोली, 'मैं इसपर सिर (पटककर) फोड़ डालूँगी।' ये शब्द सुनकर कदम्ब (वृक्ष) पर (बैठे हुए) जगन्नायक कृष्ण हँसने लगे।१४ कुछ एक (वस्त्र पाने की) आकांक्षा के साथ बोलीं, 'हे कमलदलनयन, हे आत्माराम, हे सर्वसाक्षी, हे कालिय को दण्डित कर देनेवाले (कृष्ण), वस्त्र दे दे'।१५ कुछ एक ने कहा, 'हम (ऐसी ही) बाहर आ जाएँगी और कदम्ब पर चढ़ेंगी। रे पूतनारि, तुझे पकड़कर भला (बड़ा) दण्ड दें देंगी।१६

आण। एक म्हणती चोरें नागविलें पूर्ण। सांगों चला, चावडिये। १७ एक म्हणती हरि पाहीं। तुज बहुत देऊं दूध दहीं। आमुचीं वस्त्रें आतां देईं। भुवनसुंदरा श्रीहरी। १८ एक म्हणती सुंदरी। गोकुळांत करिसी चोरी। गाई चारितां वनांतरीं। येथेंही मुरारी नाडिसी। १९ तूं वत्सावांचोनि गाई। वनीं दुहितोसी सर्वही। तुझा हस्त लागतां पाहीं। पान्हा फुटे तयांतें। १२० तुझा हस्त लागतां नारायणा। वांझ्या गाईस फुटे पान्हा। विश्वव्यापका मुरमर्दना। जनार्दना वस्त्रें देईं। १२१ ऐशा नानापरी विनविती। मग काय बोले जगत्पती। बाहेर येवोनि शीघ्रगती। यमपितयासी नमावें। २२ यमुनेमाजी समस्त। जलक्रीडा तुम्हीं केल्या सत्य। त्याचेंचि प्रायश्चित हें त्वरित। तमांतका नमस्कारा। २३ लज्जा सांडोनियां निश्चित। सर्वीं करावे उर्ध्व हस्त। तरीच वस्त्रें त्वरित। हाता येतील तुमच्या पैं। २४ कदंबातळीं क्षणभरी। नाचा पाहीन डोळेभरी। मग हांसती व्रजसुंदरी। कैसी परी करावी। २५ एक म्हणे याची गोष्टी। न ऐकतां करील कष्टी। ऐशा हांसत ऊर्ध्वदृष्टी। गोपी पाहती हरीकडे। २६

यदि तू फेंककर (हमें हमारे) वस्त्र न देगा, तो तुझे नन्द-यशोदा की सौगन्ध है।' तो कुछ एक ने कहा, 'चलो कोतवाली (जाएँ), कह दें कि इस चोर ने (हमें) पूरा-पूरा ठग लिया है'। १७ कुछ एक बोलीं, 'देख रे हरि, हम तुझे बहुत दूध-दही दे देंगी। रे भुवन-सुन्दर, रे श्रीहरि, अब हमारे वस्त्र दे देना'। १८ कुछ एक सुन्दरियाँ (नारियाँ) बोलीं, 'तू गोकुल में चोरी करता है (और) यहाँ भी वन के अन्दर गायों को चराते-चराते रे मुरारि, तू हमें रोकता है। १९ तू बिना बछड़ों के सभी गायों को दुहता है। देख, तेरा हाथ लगते ही, वे पन्हिया जाती हैं। १२० रे नारायण, तेरा हाथ लगते ही वाँझ गायें भी पन्हिया जाती हैं। रे विश्व-व्यापक, रे मुर दैत्य का मर्दन करनेवाले, रे जनार्दन, (अब हमें) वस्त्र दे दे'। १२१ इस प्रकार वे उससे नाना प्रकार से विनती कर रही थीं। अनन्तर जगत्पति कृष्ण क्या बोले? (उन्होंने कहा—) 'शीघ्र गति से बाहर आकर तुम यम-पिता सूर्य को नमस्कार करना। २२ तुम सबने सचमुच यमुना में जलक्रीड़ाएँ की हैं। उसी का यह प्रायश्चित्त है। झट से तमान्तक सूर्य को नमस्कार करो। २३ लज्जा त्यजकर तुम सब निश्चय ही हाथ ऊपर उठाना; तो ही (ये) वस्त्र झट से तुम्हारे हाथ आ जाएँगे। २४ तुम कदम्ब के तले क्षण भर (के लिए) नाच लो। मैं आँखों भर देख लूँगा' (यह सुनकर) तब व्रजांगनाएँ हँसने लगीं। अब यह किस प्रकार करें। २५ किसी एक ने कहा, 'इसकी बात न मानने पर यह हमें तंग करेगा।' इस प्रकार हँसते-हँसते आँखों को ऊपर उठाये वे गोपियाँ कृष्ण की ओर देखने लगीं। २६ अनन्तर वृक्ष के तले आकर वे स्त्रियाँ बोलीं, 'रे मेघश्याम,

मग वृक्षातळीं येऊनि रामा। म्हणती वस्त्रें देईं मेघश्यामा। अनंगदहनमन-विश्रामा। पूर्णकामा सर्वेशा। २७ हरी म्हणे ऊर्ध्व हस्त करोनी। आधीं नमस्कारावा वासरमणी। मग एक हस्त ठेविती कामनिकेतनीं। नमस्कारिती एक हस्तें। २८ हरि म्हणे एका हस्तें। जे नमस्कारिती सद्गुरुदेवसंतांतें। त्यांचा हस्त छेदावा तेथें। शास्त्राज्ञा ऐसी असे ही। २९ एका हस्तें करितां नमस्कार। पुढें पहावें जन्मांतर। न चुके सहसा येरझार। हें निर्धार जाणिजे। १३० एक हस्त कामसदनीं। एका हस्तें नमितां दिनमणी। प्रपंचाकडे चित्त ठेवोनी। लटिका परमार्थ दाविला। १३१ कामावरी ठेविलें चित्त। तरी दुरी गेला भगवंत। यालागीं जोडोनि दोन्ही हस्त। श्रीआदित्य नमस्कारा। ३२ मग हांसती खंजरीटनयना। हस्तद्वय जोडोनियां जाणा। नमस्कारितां सूर्यनारायणा। तोषला राणा वैकुंठींचा। ३३ मग तयांचीं समस्त वस्त्रें। दिधलीं नवपंकजनेत्रें। भक्तपालकें स्कंदतातमित्रें। नवलीला दाविली। ३४ गोपी समस्त नेसल्या चीरा। म्हणती जलदवर्णा पीतचीरा।

हे (कामदेव को जलानेवाले) शिवजी के मन के विश्राम (-स्थान), हे पूर्णकाम, हे सर्वेश, वस्त्र दे दे'। २७ तो कृष्ण बोले, 'हाथ ऊपर उठाकर पहले सूर्य को नमस्कार करो।' तब उन्होंने (एक-) एक हाथ काम-मन्दिर (गुप्तांग) पर रख लिया और (एक-) एक हाथ से नमस्कार किया। २८ (यह देखकर) कृष्ण बोले, 'जो सद्गुरु, देवों और सन्तों को एक हाथ से नमस्कार करते हैं, उनका हाथ वहाँ (ही तत्काल) काट दें। ऐसी ही यह शास्त्रों की आज्ञा है। २९ एक हाथ से नमस्कार करने पर, आगे (चलकर) अन्य जन्म देख लें (देखना पड़ता है, मुक्ति नहीं मिलती, पुनर्जन्म लेना पड़ता है)। यह निश्चय समझिए कि (इस संसार में उनका) आवागमन नहीं टलता। १३० तुम एक हाथ काम-मन्दिर (गुह्यांग) पर धरकर एक हाथ से सूर्य को नमस्कार कर रही हो। (जान पड़ता है) तुमने घर-गिरस्ती में चित्त लगाये रखकर झूठमूठ का भगवत्प्रेम प्रदर्शित किया है। १३१ यदि काम में चित्त लगाये रखें, तो (समझिए कि) भगवान (निश्चय ही) दूर जाएँगे। इसलिए दोनों हाथ जोड़कर सूर्य को नमस्कार करो'। ३२ तब खंजन-नयना गोपियाँ हँसने लगीं। (तदनन्तर) समझ लीजिए कि उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर सूर्य को नमस्कार किया। उससे वैकुण्ठ के राजा विष्णुस्वरूप कृष्ण सन्तुष्ट हो गये। ३३ अनन्तर नवकमल (दल) सदृश आँखों वाले कृष्ण ने उनके समस्त वस्त्र दे दिये। (इस प्रकार) भक्तों के पालनकर्ता तथा (स्कन्द के पिता के मित्र) विष्णुस्वरूप कृष्ण ने नयी लीला प्रदर्शित की। ३४ तदनन्तर समस्त गोपियों ने (अपने-अपने) वस्त्र (फिर से) पहन लिये। वे बोलीं, 'हे मेघ (श्याम) वर्ण, पीताम्बर (-धारी), भुवन-सुन्दर (कृष्ण), हमारे काम-भाव को अपने संग (संयोग)

आमुचा काम भुवनसुंदरा। संगें तुझ्या शांत करीं। ३५ तुझा होतांचि समागम। हरि आम्ही होऊं निष्काम। मग काय बोले आत्माराम। सकळकामातीत जो। ३६ हरि म्हणे हो शरदृतु। चांदणी यामिनी शोभिवंतु। होतां वृंदावनीं मुरलीसंकेतु। यावें तुम्हीं समस्त तेथें। ३७ होईल तुमच्या व्रताचें फळ। मग कामना पुरती सकळ। ऐसें बोलतां वैकुंठपाळ। गोपी गेल्या घरासी। ३८ हरिविजय दक्षिणसागर। श्रीकृष्ण तेथें रामेश्वर। येथींचे यात्रे भाविक नर। अत्यादरें धांवती। ३९ करूनि आवडीच्या कावडी। या रामेश्वरीं येती भाविक कापडी। क्षणिक आयुष्य जाणोनि तांतडी। आडाआडी पावले। १४० प्रेम हेंचि जान्हवीनीर। प्रीतीं अभिषेकिला रामेश्वर। ते तरले संसारसागर। सत्य साचार जाणिजे। १४१ ब्रह्मानंदस्वामी यतीश्वर। त्याच्या पायींच्या पादुकाधर। आवडीं जाहलों म्हणे श्रीधर। तरलों साचार तेणेंचि। ४२ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। चतुर परिसोत भक्तसंत। पंचदशाध्याय गोड हा। १४३

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

से शान्त करो। ३५ तुम्हारे साथ समागम होते ही, हे हरि, हम निष्काम हो जाएँगी।' फिर जो समस्त काम (भावों) के अतीत हैं, वे आत्माराम (कृष्ण) क्या बोले। ३६ श्रीहरि बोले, 'अहो, शरत् ऋतु में चाँदनी रात शोभायमान हो जाने पर तुम सब वहाँ मेरी मुरली (ध्वनि) के संकेत पर आ जाना। ३७ वहाँ तुम्हारे व्रत का फल सिद्ध हो जाएगा, तब (तुम्हारी) सब कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी।' वैकुण्ठ-पाल विष्णुस्वरूप कृष्ण द्वारा ऐसा कहने पर गोपियाँ घर गयीं। १३८

'श्रीहरि-विजय' नामक यह ग्रन्थ (मानो) दक्षिण सागर है। श्रीकृष्ण वहाँ (मानो साक्षात्) रामेश्वर हैं। भक्तिशील नर वहाँ की यात्रा करने के लिए अत्यादरपूर्वक दौड़े जाते हैं। १३९ वे यात्री अपनी (-अपनी) रुचि अर्थात भगवत्प्रेम की काँवरें बनाकर उस रामेश्वर के प्रति आ जाते हैं। अपने जीवन को क्षणिक समझते हुए वे झट से यत्नपूर्वक पहुँच जाते हैं। १४० भगवत्प्रेम ही (मानो) गंगाजल है। प्रेम के साथ जिन्होंने उस रामेश्वर का अभिषेक किया हो, इसे सत्य समझिए कि वे सचमुच संसार रूपी सागर को तैरकर (पार कर) गये हैं। १४१ (मेरे पूज्य पिता और गुरु) स्वामी ब्रह्मानन्द यतीश्वर हैं। मैं श्रीधर कहता हूँ कि उनके चरणों की पादुकाओं का मैं धारी हूँ। उसी से मैं (इस संसार-सागर को) तैरकर पार जा रहा हूँ। १४२

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्-भागवत से सम्मत है। चतुर भक्त और सन्त श्रोता (उसके) इस मधुर पन्द्रहवें अध्याय का श्रवण करें। १४३

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१६

[ब्राह्मणों द्वारा यमुना-तट पर यज्ञ सम्पन्न करना]

श्रीगणेशाय नमः ।। या श्रीरंगाचें करितां स्मरण। यातुल्य तप दुजें आन। नसे शोधितां त्रिभुवन। परम पावन नाम देखा। १ आणिक अष्टादश पुराणें। बोलिलों सत्यवतीहृदयरत्नें। परी नामाहूनि विशेष साधनें। सर्वथाही नव्हेती। २ पापतल्लक्षणहस्ती। याची तोंवरी जाणिजे मस्ती। नामसिंहप्रतापकीर्ती। ऐकिली नाहीं जोंवरी। ३ ऐकतां नामसिंह-प्रतापा। पळ सुटे मत्तमातंगपापा। लपावया न मिळे खोपा। गतप्राण होती तेव्हांचि। ४ पाप जाळावया समस्त। हरिनामाग्नि धडाडत। क्षणें दुरितकाष्ठें जाळीत। प्रताप अद्भुत न वर्णवे। ५ नामाग्नीनें न जळे। ऐसें पाप कोणीं नाहीं केलें। वाल्मीकें बहुत पाप जोडिलें। परी नाहीं उरलें

श्रीगणेशाय नमः। इस श्रीरंग भगवान कृष्ण का स्मरण करते रहने पर उसके समान कोई दूसरा तप नहीं है। देखिए, उनके नाम के समान कोई अन्य परमपावन नाम खोजने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकता। १ सत्यवती के हृदय (-सागर में उत्पन्न)-रत्न महर्षि व्यास ने अठारह पुराण[1] कहे हैं। फिर भी (वहाँ भी सूचित हो रहा है कि) नाम-(स्मरण) की अपेक्षा (अधिक महत्त्वपूर्ण) विशिष्ट (अन्य) साधन बिलकुल नहीं हैं। २ पाप रूपी हाथी की धींगाधींगी तब तक (ही चलती है) समझिए, जब तक उसने नाम रूपी सिंह के प्रताप की कीर्ति नहीं सुनी हो। ३ नाम रूपी सिंह के प्रताप को सुनते ही पाप रूपी मत्त हाथी कायरता को प्राप्त होकर भाग जाता है। उसे छिप जाने के लिए (कहीं) गुफा-जैसा रिक्त स्थान नहीं मिलता। (इस प्रकार) वे (पाप रूपी हाथी) सभी (तत्काल) गतप्राण हो जाते हैं। ४ हरि-नाम रूपी आग (मानो) समस्त पापों को जला डालने के लिए धधकती रहती है। वह क्षण में पाप रूपी लकड़ियों को जला डालती है। (हरि-नाम के) उस प्रताप का वर्णन (किसी भी द्वारा) नहीं किया जा पाता। ५ नाम रूपी अग्नि में जो जल नहीं पाया, ऐसा पाप कोई नहीं कर सका है। वाल्मीकि[2] ने बहुत पाप इकट्ठा किये

१ अठारह पुराण : (मुख्य)— ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु किंवा शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड। इन मुख्य पुराणों के अतिरिक्त देवी, विष्णुधर्मोत्तर, वरुण आदि अठारह उपपुराण हैं।

२ वाल्मीकि ने— वाल्मीकि पहले दस्यु थे, जो राहगीरों की हत्या भी करके उन्हें लूटते थे। नरहत्या के पाप से वाल्मीकि राम-नाम के जाप से…वह भी उलटे नाम के जाप से मुक्त हो गये।

नामापुढें। ६ गणिका आणि अजामिळ। इहीं केले दोषकल्लोळ। परी नामाचें अद्‌भुत बळ। जाळी सकळ क्षणार्धें। ७ ऐसा ज्याच्या नामाचा महिमा। वर्णितां देव पावले उपरमा। तो गोकुळीं अवतरला जगदात्मा। रूपनामातीत जो। ८ असो पंचदशाध्यायीं कथा जाहली। नग्न गोपी कदंबातळीं। त्यांचीं वस्त्रें देऊनि वनमाळी। सुख सर्वांसी दीधलें। ९ श्रीकृष्ण पूर्णावतार। लीलावतारी निर्विकार। दाविला पराक्रम थोर। गोकुळामाजी सर्वांतें। १० पूतना तृणावर्त शकट मारिला। अघ बक केशिया संहारिला। द्वादश गांवें अग्नि गिळिला। अचल धरिला नखाग्रीं। ११

थे, फिर भी नाम के सम्मुख (उनमें से) कोई भी बच नहीं सका। ६ (जीवन्ती नामक[1]) एक वेश्या और अजामिल[2] ने (मानो) पाप की प्रचण्ड लहरें ही उत्पन्न की थीं, परन्तु नाम के अद्‌भुत बल ने उन सबको जला दिया (दबा डाला)। ७ जिनके नाम की ऐसी महिमा है, जिनकी नाम-महिमा का वर्णन करते हुए देव शान्ति को प्राप्त हो गये, वे जगदात्मा, जो (स्वयं) रूप और नाम से परे हैं, गोकुल में (कृष्ण-रूप में) अवतरित हैं। ८

अस्तु। पन्द्रहवें अध्याय में यह कथा (कथित) हो गयी है— कदम्ब वृक्ष के तले यमुना-जल में गोपियाँ नग्न (होकर जलविहार कर रही) थीं। वनमाली कृष्ण ने उन्हें उनके वस्त्र (लौटा) देकर सबको सुख को प्राप्त करा दिया। ९ श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं, लीलावतारी हैं, निर्विकारी (अक्षय-अनन्त, अव्यय) हैं। उन्होंने गोकुल में सबको महान पराक्रम (करके) दिखा दिया। १० उन्होंने पूतना को, तृणावर्त और शकट (नामक असुरों) को मार डाला। अघ, बक, केशी (नामक असुरों) का संहार कर डाला। बारह योजन (कैसी) आग को निगल डाला; गोवर्द्धन नामक पर्वत को नख के अग्र पर उठा दिया। ११ (तदनन्तर)

---

१ (जीवन्ती नामक) वेश्या--सत्ययुग में रघु नामक वैश्य की कन्या जीवन्ती विवाह के पश्चात अल्प काल में विधवा हो गयी। फिर वह व्यभिचार करने लगी। उसे ससुराल में स्थान न रहा, तो वह अपने पिता के घर लौटी। लेकिन वहाँ से भी उसे निराश होकर एक नगर में जाकर रहना पड़ा। वहीं वह वेश्या बन गयी। उसने एक सुग्गा पाला था, जिसे किसी साधु पुरुष के कहने से वह ‘राम’, ‘राम’ पढ़ाने लगी। राम-नाम के प्रभाव से उसके समस्त पाप धुल गये। अतः अन्त में वह परमधाम को प्राप्त हो गयी।

२ अजामिल—इस कान्यकुब्ज धर्मनिष्ठ ब्राह्मण ने दुर्भाग्य से वेश्या के चक्कर में फँसकर अपने परिवार का त्याग किया। तदनन्तर यह द्यूत, चोरी, लूट-खसोट में लगा रहा। उस वेश्या से उत्पन्न अपने दस पुत्रों में से नारायण नामक सबसे छोटे पुत्र से इसे अत्यधिक प्रेम था। मरणासन्न अवस्था में वह उसे नाम ले-लेकर पुकारता रहा। ‘नारायण’ नाम लेने से उसे जो पुण्य प्राप्त हुआ, उसके बल से भगवान विष्णु के दूतों ने उसे यमदूतों से मुक्त किया।

इंद्र देवां सहित उतरला। सर्वांदेखतां हरि पूजिला। वत्सहरणीं शरण आला। कमलोद्भव आपण। १२ ऐसाही प्रताप जाणोन। गोकुळींचे समस्त ब्राह्मण। निंदेसी प्रवर्तले अज्ञान। निर्गुणा गुण लाविती। १३ म्हणती या कर्मभ्रष्टें कैसें केलें। गोकुळ अवघें चौढाळिलें। सकळ सोंवळें ओंवळें। केलें गोवळें एकचि। १४ स्नानसंध्या यज्ञ आचार। बुडवूनि केला अनाचार। भ्रष्टविलें गोकुळ समग्र। जावें सत्वर येथूनियां। १५ उरों नेदी कोठें अनसुट। परद्वारी हा क्रियाभ्रष्ट। आम्ही ब्राह्मण कर्मनिष्ठ। थोर अरिष्ट आम्हांसी हें। १६ आम्ही ब्राह्मण उंचवर्ण। सोंवळे विशेष सर्वांहून। आमचे दीक्षेनें सर्वजण। पाहोनियां वर्तती। १७ कैसे भुलले ब्राह्मण। पूर्ण ब्रह्मानंद श्रीकृष्ण। नेणोनि धरिला अभिमान। ज्ञातृत्वाचा अपार। १८ हृदयीं नोळखतां इंदिरावर। आचार तितुका अनाचार। कर्म तोचि भ्रम थोर। पिशाच नर तोचि पैं। १९ प्रत्यया न येतां कमलोद्भव-

---

इन्द्र देवों-सहित (देवलोक से) गोकुल में उतर गया और (उसने) सबके देखते (सम्मुख) कृष्ण का पूजन किया। वत्स-हरण प्रसंग में कमलोद्भव ब्रह्मा स्वयं (कृष्ण की) शरण में आ गया। १२ इस प्रकार का (कृष्ण का) प्रताप जानकर (भी) गोकुल के समस्त अज्ञानी ब्राह्मण (कृष्ण की) निन्दा करने में प्रवृत्त हो गये। वे निर्गुण (ब्रह्मस्वरूप कृष्ण को) गुण-(दोष) लगाने लगे। १३ वे कहा करते, 'उस कर्मभ्रष्ट ने कैसे सब गोकुल को बहका दिया है ? उस ग्वाले ने समस्त पावन-अपावन को एक ही कर दिया। १४ उसने स्नान-सन्ध्या, यज्ञ आदि सम्बन्धी आचार डुबोकर (मिटाकर) दुराचार (आरम्भ) किया है। उसने समस्त गोकुल को (नीति-धर्म से) भ्रष्ट कर डाला है। (अतः) झट से यहाँ से (हम लोग) चले जाएँ। १५ वह कहीं भी कुछ अनछुआ (अर्थात् पवित्र को छूकर अपवित्र न बनाया हुआ) शेष नहीं रहने दे रहा है। यह पर-स्त्रीगामी है, क्रिया-कर्म (काण्ड से) भ्रष्ट है। हम ब्राह्मण तो कर्म (-काण्ड) निष्ठ हैं (कर्मठ हैं)। १६ हम सबसे अधिक विशेष (रूप में) पवित्र हैं। सब जने हमारे द्वारा दी हुई (शिक्षा-) दीक्षा को देखकर उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं'। १७

(कवि कहता है—) ये ब्राह्मण कैसे भूल गये (मोहित होकर मूढ़ हो गये) हैं। श्रीकृष्ण तो ब्रह्मानन्द आनन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म हैं। इसे नहीं जानते-पहचानते हुए उन्होंने अपने ज्ञानी होने का अपार अभिमान धारण किया था। १८ हृदय में इन्दिरापति विष्णुस्वरूप कृष्ण को न जानते हुए किया हुआ समस्त आचार धर्म— समस्त अनाचार (पापाचार) होता है। (वस्तुतः) कर्मकाण्ड ही प्रचण्ड भ्रम है। (ऐसे अनाचार-स्वरूप कर्मकाण्ड में) जो मनुष्य लगा रहता है, वही पिशाच होता है। १९

पिता। सर्व साधनें गेलीं वृथा। भक्ति तेचि अभक्ति तत्त्वतां। कैंची मुक्तता तयासी। २० तेणें केलें वेदपठण। करतलामलक शास्त्रपुराण। परी तें मद्यपियाचें भाषण। हरीसी शरण न रिघतां। २१ जाणे चतुःषष्टि कळा। परी त्या अवघ्याचि विकळा। हृदयीं नोळखतां तमालनीळा। विद्या विकळा

कमलोद्भव ब्रह्मा के पिता भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण को (हृदय में) अनुभव न करते हुए (साक्षात्कार न करते हुए) जो साधनाएँ की जाती हैं, वे सब व्यर्थ (सिद्ध) हो जाती हैं। उन (लोगों) की भक्ति वस्तुतः अभक्ति होती है। उनको कैसी मुक्ति मिल सकती है। २० उसने वेदों का पठन किया हो, उसे शास्त्र और पुराण अपनी हथेली पर रखे हुए आँवले की भाँति बिलकुल स्पष्ट हो गये हों, फिर भी श्रीहरि की शरण में न जाते हुए किये जाने के कारण वह (पठन-भाषण) मद्यपी के भाषण-जैसा (निरर्थक) हो जाता है। २१ कोई व्यक्ति चौंसठ कलाओं[1] को जानता हो, फिर भी वे सब (उसके सन्दर्भ में) कलाहीन हो जाती हैं। हृदय में

---

१ चौंसठ कलाएँ—गानविद्या, वाद्य-वादन, नृत्य, नाट्य, चित्रकारी, बेलबूटे बनाना, चावल और पुष्प आदि से पूजा के उपहार की रचना करना, पुष्पशय्या निर्माण, दाँत-वस्त्र-अंग आदि को रँगना, मणियों की फ़र्श बनाना, शय्या-रचना, जल को बाँध लेना, विचित्र सिद्धियाँ दिखाना, हार-मालाएँ आदि बनाना, कान-चोटी आदि के लिए फूलों के गहने बनाना, कपड़े और गहने बनाना, फूलों के आभूषणों से श्रृंगार करना, कानों के पत्तों की रचना करना, सुगन्ध वस्तुएँ— इत्र आदि बनाना, इन्द्रजाल-जादूगरी, चाहे जैसा वेश धारण करना, हाथ की फुर्ती के काम करना, खाने के लिए तरह-तरह की वस्तुएँ बनाना, तरह-तरह के पेय पदार्थ बनाना, सूई का काम, कठपुतलियाँ बनाना और नचाना, पहेलियाँ बनाना-बुझाना, प्रतिमा आदि बनाना, कूटनीति, ग्रन्थपठनचातुर्य, नाटक-आख्यायिका आदि की रचना करना, समस्यापूर्ति करना, पट्टी-बेंत-बाण आदि बनाना, गलीचे-दरियाँ आदि बनाना, बढ़ई की कारीगरी, गृह आदि का निर्माण, स्वर्ण-चाँदी-हीरे-पन्ने आदि रत्नों की परीक्षा, स्वर्ण-चाँदी आदि बनाना, मणियों के रंगों को पहचानना, खानों की पहचान, वृक्ष-चिकित्सा, भेड़ा-मुर्गा-बटेर-लावा आदि को लड़ाने की विधियाँ, तोता-मैना आदि की बोली बोलना, उच्चाटन-विधि, केशों की सफाई का कौशल, मुट्ठी की चीज़ या मन की बात बता देना, म्लेच्छ-काव्य समझ लेना, विभिन्न देशों की भाषाओं को जानना, शकुन-अपशकुन जानना और प्रश्नों के उत्तर में शुभाशुभ बतलाना, नाना प्रकार के मातृकायन्त्र बनाना, रत्नों को नाना प्रकार के आकारों में काटना, सांकेतिक भाषा बनाना, मन में कटक-रचना करना, नयी-नयी बातें निकालना, छल से काम निकालना, समस्त कोशों का ज्ञान, समस्त छन्दों का ज्ञान, वस्त्रों को छिपाने या बदलने की विद्या, द्यूतक्रीडा, दूर के मनुष्य या पदार्थ का आकर्षण करना, बालकों के खेल, मन्त्रविद्या, विजय प्राप्त कराने की विद्या, वेताल आदि का वशीकरण।

(श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय ४५ : टीका-फ़ुटनोट, गीताप्रेस, गोरखपुर)

६४ कलाओं के नामों की सूचियों की अन्य परम्पराएँ भी उपलब्ध हैं। इनमें **अधिकतर नाम समान हैं।**

चतुर्दश । २२ तेणें केलें तीर्थाटन । यमनियमादिक साधन । तेणें केलें जें कीर्तन । तें जाण गायन गोरियाचें । २३ जैसी मुग्धा बत्तीसलक्षणी । परम सुंदर चातुर्यखाणी । परी मन नाहीं पतिभजनीं । तरी सर्वही व्यर्थ गेलें । २४ खरपृष्ठीं चंदन देखा । परी नेणे तो सुवाससुखा । षड्रसां फिरविजे दर्वी पाका । रसस्वाद नेणेचि । २५ गणिका राम म्हणतांचि तरली । इंहीं शास्त्रपुराणें अभ्यासिलीं । तरी न तरती कदाकाळीं । न ये वनमाळी प्रत्यया । २६ कृपा न करितां क्षीराब्धिजावर । व्यर्थ काय चाटावा तत्त्वविचार । त्याचें ज्ञान तें व्यर्थ करकर । जैसे कीर अनुवादती । २७ विगतधवेचें नवयौवन । गर्भांधाचे विशाळ नयन । कीं कोल्हाटियाचें शूरत्व

तमालनील भगवान को न पहचानने पर सीखी हुई (समस्त) चौदह विद्याएँ[1] कलाहीन हो जाती हैं । २२ यद्यपि उसने तीर्थक्षेत्रों की यात्रा की हो, वह व्यर्थ हो जाती हो । उसने जो कीर्तन किया हो, वह समझिए कि बहेलिया का गायन-जैसा हो जाता है (जो मोहित करके हानि पहुँचाता है) । २३ जिस प्रकार बत्तीस[2] लक्षणों से युक्त कोई मुग्धा सुन्दरी हो, वह परम सुन्दर तथा चातुर्य की खान हो, फिर भी यदि उसका मन पति की भक्ति में न हो, तो उसका (गुण-सौन्दर्य) सभी व्यर्थ सिद्ध हो गया (समझिए) । २४ देखिए, गधे की पीठ पर चन्दन की रेखाएँ अंकित की गयी हों, फिर भी वह सुगन्ध के सुख को नहीं जानता । छहों रसों[3] से युक्त खाद्य में करछुली घुमाएँ-हिलाएँ, तो भी वह रस-स्वाद नहीं जानती । २५ गणिका 'राम' बोलते ही उद्धार को प्राप्त हो गयी । इन्होंने शास्त्रों और पुराणों का अध्ययन किया हो, तो भी वे किसी समय भी (भवसागर को) तैरकर नहीं जा सकते । क्योंकि उन्होंने (अन्तःकरण में) वनमाली कृष्ण का अनुभव (साक्षात्कार) नहीं किया है । २६ क्षीराब्धिजावर— कमलापति विष्णुस्वरूप कृष्ण के द्वारा कृपा न की जाने पर किसी ने तत्त्व (दार्शनिक अथवा भगवत्-सम्बन्धी) विचार किया हो, तो उसे क्या व्यर्थ ही चाट लें । जिस प्रकार तोते किसी की कही या सिखायी बात को रटते-दोहराते रहते हैं, उसी प्रकार उसका ज्ञान (युक्त भाषण) व्यर्थ ही किरकिराहट होता है । २७ विधवा का नवयौवन, गर्दभ के विशाल नयन, अथवा बाजीगरों का सम्पूर्ण शौर्य, अथवा धनलोभी का कहा

---

१ चौदह विद्याएँ : देखिए टिप्पणी ७, अध्याय ३, पृ० ८० ।

२ बत्तीस लक्षण : पंचसूक्ष्म—त्वचा, केश, उँगलियाँ, दाँत, बोटियाँ । पंचदीर्घ—हाथ, नयन, ठुड्डी, जानु, नाक । सप्तरक्त—पाँवों के तलुए, करतल, अधर, नयन, तालु, जिह्वा, नख । षडुन्नत—छाती, कुक्षि, केश, स्कन्ध, कर, मुख । त्रिपृथु—भाल, कमर, छाती । त्रिलघु—गला, जंघा, गुप्तांग । त्रिगम्भीर—स्वर, सत्त्व, नाभि ।

३ षड्रस—मधुर, कटु, कषाय, आम्ल, क्षार, तिक्त (तीखा) ।

पूर्ण। कीं तत्त्वज्ञान धनलुब्धाचें। २८ कीं जाराचा व्यर्थ आचार। अदात्याचें उंच मंदिर। कीं नपुंसकाचें लिंग थोर। तैसे ते नर व्यर्थ पैं। २९ ग्रामथिल्लरींचें निर्मळ नीर। कीं अंत्यजाचें रम्य मंदिर। कीं वेश्येचें मुख सुंदर। तैसे अपवित्र नर तेचि। ३० कीं यात्रेसी मैंद आले। कीं वाटपाडे निरंजनीं बैसले। कीं कंटकवृक्ष दाट लागले। आंत कोणा न रिघवे। ३१ कीं नटांमाजील कामिनी। कीं तममय कुहूची यामिनी। कीं अजाकंठींचे स्तन दोनी। तैसे प्राणी व्यर्थ ते। ३२ आतां असो हें बहुभाषण। मिळाले सकळ ब्राह्मण। गोकुळ टाकोनि दूर अरण्य। कृष्णभेणें सेविलें। ३३ कुटुंबांसहित विप्र। तिहीं वसविलें घोर कांतार। जवळी लक्षूनि यमुनातीर। मख थोर आरंभिला। ३४ तृणाचें मांडव ते वेळां। घालोनि केल्या पाकशाळा। यज्ञशाळा रचिल्या विशाळा। विप्रमेळा बैसावया। ३५ करूनि राजयाचें उपार्जन। द्रव्यें आणिलीं मेळवून। परी अंतरले हरिचरण।

दार्शनिक तत्त्वों का ज्ञान जिस प्रकार व्यर्थ होता है, अथवा जार पुरुष का धर्माचार व्यर्थ होता है, अथवा कंजूस का उच्च भवन निरर्थक होता है, अथवा नपुंसक का गुप्तांग बड़ा होने पर भी व्यर्थ होता है, उसी प्रकार वे (भक्तिहीन) नर व्यर्थ होते हैं। २८-२९ गाँव के गड्ढे का स्वच्छ पानी, अथवा अन्त्यज का रमणीय भवन, अथवा वेश्या का सुन्दर मुख जिस प्रकार निरर्थक होता है, उसी प्रकार वे (आचार-भक्तिहीन) अपवित्र नर व्यर्थ होते हैं। ३० अथवा मेले में भोंदू आ गये हों, अथवा वन में बटमार बैठे हों, तो उनके लिए यह सब व्यर्थ ही होता है। अथवा काँटेदार वृक्ष घने लगे हुए हों, फिर भी उनके अन्दर किसी से प्रविष्ट नहीं हुआ जाता। ३१ जिस प्रकार अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत कामिनी-रूप निरर्थक होते हैं, अथवा अमावास्या की अन्धकारमयी रात व्यर्थ होती है, अथवा बकरी के गले के दोनों स्तन व्यर्थ होते हैं, उसी प्रकार भक्तिहीन होने के (कारण विद्वान्, शूर, सुन्दर रूपधारी) वे प्राणी व्यर्थ होते हैं। ३२

अब यह भाषण बहुत हो गया। वे समस्त ब्राह्मण इकट्ठा हो गये। कृष्ण के भय से उन्होंने गोकुल को छोड़कर दूर अरण्य का आश्रय कर लिया। ३३ उन विप्रों ने अपने-अपने परिवार-सहित घोर वन में निवास कर लिया। यमुना-तट को निकट देखकर उन्होंने (एक दिन) बड़ा यज्ञ आरम्भ किया। ३४ उस समय घास (-फूस) के मण्डप छवाकर पाकशालाएँ बनवायीं; ब्राह्मणों के समुदाय को बैठाने के लिए विशाल यज्ञशालाओं का निर्माण किया। ३५ राज्य प्राप्त करके तथा धन इकट्ठा करके लाया गया हो, परन्तु श्रीहरि के चरणों से कोई अन्तर को प्राप्त हो गया हो, तो उस राज्य, धन आदि का क्या उपयोग ! पामर (लोग) इसको

पामरें पूर्ण नेणती। ३६ हरिस्वरूप कदा न कळे। यज्ञकुंडें फुंकिती बळें। व्यर्थ धुरें भरिले डोळे। काय केलें सार्थक। ३७ वऱ्हाडी जैसे वराविण। कीं नासिकावांचून सुंदरपण। तैसे हरिकृपेविण। यज्ञ व्यर्थ सर्वही। ३८ यज्ञभोक्ता श्रीकरधर। त्यासी नोळखती पामर। स्वर्गनिमित्त साचार। क्रतु थोर मांडिला। ३९ श्रीकृष्णाचा संचार नाहीं। ऐसें वन वसविलें त्यांहीं। असो यावरी क्षीराब्धीचा जांवई। काय करिता जाहला। ४० एके दिनीं प्रातःकाळीं। वनासी निघाला वनमाळी। गाई सोडोनि सकळी। परम वेगें निघाला। ४१ शिदोरी न घेतां श्रीरंग। तैसाचि चालिला सवेग। हरि गेला तो लक्षूनि मार्ग। गोपवृंद चालिले। ४२ हरीविण कोण न राहे मागें। यालागीं धांवती लागवेगें। शिदोऱ्या विसरले अवघे। परम वेगें धांवती। ४३ दूरी अंतरला जगन्मोहन। आड येईल मायाविघ्न। हें कृष्णदास जाणोन। वेगेंकरोन धांवती। ४४ पूर्वीं हरीसी टाकूनि पुढें गेलों।

बिलकुल नहीं जानते। ३६ उनकी समझ में श्रीहरि का स्वरूप कभी नहीं आ रहा हो, और (इधर) वे यज्ञ-कुण्ड बलपूर्वक फूँक (कर हवन आदि कर) रहे हों; तो व्यर्थ ही धुएँ से उनकी आँखें भर जाती हैं। (उन्हें भगवत्कृपा की प्राप्ति नहीं हो सकती। (फिर) उन्होंने कौन बात सार्थक (चरितार्थ) की। ३७ जिस प्रकार बिना दूल्हे के बाराती (व्यर्थ) हैं, अथवा बिना नाक के (किसी की) सुन्दरता (व्यर्थ) है, उसी प्रकार बिना श्रीहरि की कृपा के सभी यज्ञ (व्यर्थ) सिद्ध हो जाते हैं। ३८ भगवान विष्णु-(स्वरूप कृष्ण वस्तुतः) यज्ञभोक्ता हैं। वे क्षुद्र लोग उन्हें न जानते-पहचानते थे, फिर भी उन्होंने स्वर्ग (-प्राप्ति) के निमित्त सचमुच बड़ा यज्ञ आरम्भ किया। ३९ वे वन में ऐसे बस गये, जहाँ श्रीकृष्ण का संचरण न हो। अस्तु। इसके पश्चात् क्षीरसागर के दामाद भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने क्या किया। ४०

एक दिन प्रातःकाल वनमाली कृष्ण वन की ओर जाने के लिए निकले। समस्त गायों को मुक्त करके वे परम वेग से चल दिये। ४१ श्रीरंग कृष्ण (साथ में) कलेवा न लेकर वैसे ही वेगपूर्वक जा रहे थे। कृष्ण जिस मार्ग से जा रहे थे, उस मार्ग को लक्ष्य करके गोपों का समुदाय चल रहा था। ४२ वे शीघ्र गति से इसलिए दौड़ते जा रहे थे कि हरि के बिना (अर्थात् उससे कोई दूर) कोई पीछे न रह जाए। वे अपने-अपने सम्बल को भूल गये। वे परम वेग से दौड़ रहे थे। ४३ यदि जगन्मोहन कृष्ण से दूरत्व को प्राप्त हो जाएँ, तो मायाजन्य विघ्न आड़े आ जाएँगे —कृष्ण के वे भक्त इसे जानकर वेगपूर्वक दौड़ रहे थे। ४४ (उन्होंने स्वीकार किया, एक बार) पहले (पूर्वकाल में) कृष्ण को छोड़कर हम

कालियाविषा वरपडलों। अघासुराच्या मुखीं सांपडलों। श्रीकृष्ण दूरी राहतां। ४५ यालागीं कमलदलाक्षाचे पाय। अंतरतां बहु विघ्न आहे। म्हणोनि गोपाळ लवलाहें। हरीमागें धांवती। ४६ हरि पावला यमुनातीर। चहूंकडोनि मिळाले गोभार। गोपांसहित यादवेंद्र। वनीं क्रीडा करीतसे। ४७ विशाल तमाल चंदन। चूत कदंब बदरी कांचन। केळी नारळी रातांजन। गेले गगन भेदीत। ४८ अशोक पारिजातक चंपक। मोगरी जाई जुई कोविदारक। बकुल शतपत्रकमळें सुरेख। सकळ वृक्ष सदा फळती। ४९ धन्य धन्य ते तरुवर। करिती विश्वास उपकार। कीं ते तप करिती ऋषीश्वर। कृष्णप्राप्तीकारणें। ५० गोप गुंफोनि वनमाळा। घालिती जगद्वंद्याचे गळां। वृक्षच्छायेसी सांवळा। ठायीं ठायीं क्रीडतसे। ५१ वृक्षपल्लव सुकोमळ। तुरे खोंविती शिरीं सकळ। तों जाहला माध्यान्हकाळ। क्षुधेनें गोपाळ व्यापिले। ५२ ज्ञान ध्यान श्रवण मनन। क्षुधेपुढें पळती उठोन। क्षुधाराक्षसी दारुण। छळी पूर्ण सकळ जीवां। ५३ पेटतां क्षुधानळ

आगे गये, तो कालिय के विष (की लपेट) में आ गये (फँस गये); श्रीकृष्ण से दूर रहने पर अघासुर के मुँह में फँस गये थे। ४५ इसलिए कि कमलदल-नयन कृष्ण के चरणों से दूर रहने पर बहुत बड़ा विघ्न आ जाता है, वे गोपाल शीघ्रतापूर्वक श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे दौड़ते जा रहे थे। ४६ (उधर) कृष्ण यमुना के तीर पर पहुँच गये। तो चारों ओर से गायों के झुण्ड इकट्ठा हो गये। (फिर) यादवेन्द्र कृष्ण वन में गोपों-सहित क्रीडा करने लगे। ४७ (वहाँ वन में) विशाल तमाल वृक्ष, चन्दन, आम के पेड़, कदम्ब वृक्ष, बेर, कचनार, केले, नारियल के पेड़, रातांजन वृक्ष आकाश को भेदते थे। ४८ वहाँ अशोक, पारिजातक, चम्पक के पेड़ थे; मोगरा, जाही, जूही, कोविदार के पेड़ थे, बकुल (मौलसिरी) के पेड़ थे। सुन्दर शतपत्रदल-कमल थे। (वहाँ के) समस्त वृक्ष सदा फलते रहते थे। ४९ धन्य हैं, धन्य हैं वे तरुवर, जो विश्व का (अपने फल उसे देकर) उपकार करते हैं। अथवा वे (वृक्ष मानो) श्रेष्ठ ऋषि हैं, जो कृष्ण की प्राप्ति के लिए तपस्या करते रहते हैं। ५० वे गोप (बालक) वनमाला रूपी गोफ गूँथकर जगद्वन्द्य कृष्ण के गले में पहना देते थे। श्याम कृष्ण उन वृक्षों की छाया में स्थान-स्थान पर खेला करते थे। ५१ उन सबने वृक्षों के पल्लवों के तुर्रे मस्तक पर खोंस दिये थे। सब दुपहर का समय हो गया। भूख ने (मानो) गोपालों को व्याप्त कर लिया। ५२ ज्ञान, ध्यान, श्रवण, मनन (सब) भूख के सामने (के कारण) उठकर भाग जाते हैं। समस्त जीवों को दारुण भूख रूपी राक्षसी पूर्णतः तंग कर देती है। ५३ क्षुधा रूपी आग के बहुत सुलग

थोर। नावडती वस्त्रें अलंकार। गीत नृत्य विलास समग्र। क्षुधेपुढें पळती पैं। ५४ नाना विद्या युक्ती कळा। क्षुधेपुढें अवघ्या विकळा। असो गोपाळ ते वेळां। घनसांवळा विनविती। ५५ म्हणती जगत्पालका श्रीपती। क्षुधा लागली सकळांप्रती। आतां कैसी करावी गती। शिदोऱ्या सर्वही विसरलों। ५६ मग सखयांसी म्हणे यादवेंद्र। पैल यज्ञशाळा दिसती दूर। तेथें आमुच्या गांवींचे विप्र। ऋतु थोर करिताती। ५७ यज्ञमंडपद्वारीं निश्चित। जो कां उभा राहे अतीत। त्यास अन्न देवोनि मनोरथ। पुरवावा सर्वथा। ५८ अतिथि विन्मुख जातां। यज्ञफळ गेलें वृथा। म्हणोनि गोपांसी म्हणे जगत्पिता। तुम्हीं जाइंजे तेथवरी। ५९ ते नकरितां अनमान। तुम्हांसी देती उत्तम अन्न। म्हणावें बळिराम आणि श्रीकृष्ण। क्षुधाक्रांत जाहले। ६० शिदोऱ्या आलों विसरोन। द्यावें सकळांपुरतें अन्न। ऐसें ऐकतां हरीचें वचन। गोप तेथूनि धांवले। ६१ नाना रंगांचीं घोंगडीं। पांघरले जगद्वंद्याचे गडी। डांगा घेऊनि धांवती तांतडी। विप्रांजवळी पातले। ६२ तों चंडकिरणकन्यातीरीं ब्राह्मण। बैसले करीत अनुष्ठान। एक प्राणायाम करून। नासिक धरूनि बैसले। ६३ रेचक पूरक कुंभक।

जाने पर वस्त्र और आभूषण नहीं भाते। गीत, नृत्य, समग्र विलास भूख के सामने भाग जाते हैं। ५४ नाना विद्याएँ, युक्तियाँ, कलाएँ क्षुधा के सामने पूर्णतः निस्तेज कलाहीन हो जाती हैं। अस्तु। उस समय (क्षुधातुर) गोपालों ने घनश्याम कृष्ण से विनती की। ५५ वे बोले, 'हे जगत्पालक, हे श्रीपति, सबको (अब) भूख लगी है। हम सभी सम्बल भूल गये हैं, तो अब क्या उपाय करें'। ५६ तब यादवेन्द्र कृष्ण (अपने) सखाओं से बोले, 'उस पार दूरी पर यज्ञशालाएँ दिखायी दे रही हैं। वहाँ हमारे (अपने) गाँव के ब्राह्मण बड़ा यज्ञ सम्पन्न कर रहे हैं'। ५७ (यह संकेत है—) निश्चय ही यज्ञमण्डप के द्वार पर जो अतिथि खड़ा हो जाता है, उसे अन्न देकर उसके मनोरथ सब प्रकार से पूरे करें। ५८ अतिथि के विमुख होकर जाने पर यज्ञ का फल व्यर्थ हो जाता है। इसलिए जगत्पिता कृष्ण गोपों से बोले, 'तुम वहाँ तक जाओ'। ५९ आनाकानी न करते हुए वे तुम्हें उत्तम अन्न दे देंगे। उनसे कह दो— बलराम और कृष्ण क्षुधा से आतुर हो गये हैं। ६० हम सम्बल भूलकर आये हैं; (अतः) सबके लिए पर्याप्त अन्न देना —कृष्ण की ऐसी बात सुनकर गोप वहाँ से दौड़े (गये)। ६१ जगद्वन्द्य श्रीकृष्ण के वे साथी नाना रंगों की कमरियाँ ओढ़े हुए थे। वे लकुटियाँ लेकर शीघ्रतापूर्वक उन ब्राह्मणों के समीप पहुँच गये। ६२ तब (उधर) सूर्यसुता यमुना के तीर पर ब्राह्मण (यज्ञ का) अनुष्ठान करते बैठे हुए थे। कुछ एक प्राणायाम करते हुए नाक पकड़कर बैठे हुए थे। ६३ वे रेचक, पूरक,

सर्वेचि सोडिती त्राहाटक। नेणती वैकुंठनायक। वृथा कटकट करिताती। ६४ एक इंद्रातें उपासिती। परी इंद्रपद नाशवंत नेणती। इंद्राचा इंद्र गोकुळपती। त्यासी न भजती मंदभाग्य। ६५ एक उपासिती चंडांशा। आयुष्य मागती देहआशा। परी न भजती रमाविलासा। आशापाशांमाजी पडले। ६६ एक म्हणती हो बहुत धन। यालागीं करिती श्रीऔपासन। नाशवंत धन दारा यौवन। मूर्खपणें नेणती। ६७ सांडोनि सर्व भजनाचार। श्रीचाच करिती परमादर। श्रियेचा पति जो श्रीधर। त्यासी अभागी न भजती। ६८ एक उपासिती दृढ शक्ती। परी अनंतशक्ती ज्यापुढें राबती। तो महामायेचा निजपती। त्यासी न भजती पामर। ६९ एक धातुमूर्ति काढूनि। करिती श्रौततांत्रिकमिश्र पूजन। प्रत्यक्ष वृंदावनीं जगन्मोहन। त्यासी ब्राह्मण नोळखती। ७० जो सप्तधातु-विरहित। सच्चिदानंद अमूर्त मूर्त। त्यासी नेणोनियां भ्रांत। धातु पूजिती दांभिकत्वें। ७१ एका वैष्णवपणाचा अभिमान। एक म्हणती आम्ही शैव

कुम्भक के साथ ही त्राहाटक क्रिया कर रहे थे। (फिर भी) वे वैकुण्ठनायक भगवान को नहीं जानते थे— वे व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे थे। ६४ कुछ एक इन्द्र की उपासना कर रहे थे। फिर भी वे नहीं जानते थे कि इन्द्रपद नाशवान है। इन्द्र के इन्द्र गोकुलपति कृष्ण हैं। मन्दभाग्य (अभागे लोग) उनकी भक्ति नहीं करते। ६५ कुछ एक सूर्य की उपासना करते हैं। देह की आशा में हुए (दीर्घ) आयु की माँग करते हैं। फिर भी रमाविलास भगवान की भक्ति नहीं करते। वे (मानो) आशा रूपी पाश में पड़ (बँध) गये हैं। ६६ कुछ एक कहते हैं (चाहते हैं कि उनके पास)— बहुत धन (इकट्ठा) हो जाए। इसलिए वे लक्ष्मी की उपासना करते हैं। (परन्तु) वे मूर्खता के कारण नहीं जानते कि धन, स्त्री, यौवन नाशवान है। ६७ वे समस्त भक्ति तथा (सद्धर्मानुवर्ती) आचरण का त्याग करके लक्ष्मी का ही परम आदर करते हैं; उस श्री का, लक्ष्मी के श्रीधर अर्थात् भगवान विष्णु जो पति हैं, उनकी भक्ति वे अभागे नहीं करते। ६८ कुछ एक दृढ़ हेतु से शक्ति देवी की उपासना करते हैं, परन्तु जिनके सामने अनन्त शक्ति सेवा आदि के काम करती हैं, वे हैं महामाया के पति भगवान्। वे पामर उनका पूजन नहीं करते। ६९ कुछ एक धातु पर मूर्ति अंकित करके श्रौत-तांत्रिक मिश्र विधि से पूजन करते हैं। (ऐसे लोगों की भाँति आचरण करनेवाले) वे ब्राह्मण वृन्दावन में जो प्रत्यक्ष जगन्मोहन कृष्ण थे, उनको नहीं पहचान पाये। ७० जो (वस्तुतः) सातों धातुओं से रहित हैं, सच्चिदानन्द हैं, अमूर्त होने पर भी मूर्त हैं, उन्हें भ्रान्त होकर न पहचानते हुए, वे लोग धातु (की प्रतिमा) का दाम्भिकता से पूजन करते हैं। ७१ कुछ एक को अपने वैष्णवत्व अर्थात विष्णु के भक्त होने का

निर्वाण। एक म्हणती आम्ही सौर सुजाण। आमुचें भजन विशेष पैं। ७२ शाक्त म्हणती आम्ही श्रेष्ठ। गाणपत्य म्हणती वरिष्ठ। परी नेणती श्रीवैकुंठ। जो विशेष सर्वांसी। ७३ विष्णु ज्याचें अंतःकरण। अहंकार ज्याचा उमारमण। विरिंचि ज्याची बुद्धि पूर्ण। त्यासी न भजोन नाडले। ७४ नेत्र ज्याचे चंडकिरण। अत्रितनय ज्याचें मन। यम दाढा परम तीक्ष्ण। त्यासी न भजोन नाडले। ७५ पाणी ज्याचे शचीनाथ। मुख तें जातवेद निश्चित। असो दैवताचक्र समस्त। आश्रयें ज्याच्या वर्ततसे। ७६ त्यास न भजोनि विप्र। जे वेदांचा ताठा थोर। धरूनि बैसले समग्र। यमुनातीरीं सर्वही। ७७ तों आले कृष्णदास समस्त। धरामरांसी नमन करीत। सांगितला सर्व वृत्तांत। परम विनीत होवोनियां। ७८ बळिराम आणि जगज्जीवन। आम्ही समस्त थोर लहान। आलों शिदोऱ्या विसरोन। म्हणोनि अन्न मागतों। ७९ हरि बहुत क्षुधाक्रांत। कदंबातळीं वाट पहात। हा साक्षात् वैकुंठनाथ। माना वचनार्थ तयाचा। ८० ऐसें बोलतां गोवळे। वसुधामर सर्व कोपले। म्हणती येथेंही भ्रष्ट आले। छळावया आम्हांतें। ८१ एकाकडे एक पाहती।

अभिमान था। कुछ एक कहते हैं, हम परम कोटि के शैव हैं। कुछ एक कहते हैं, हम ज्ञानी सौर (सूर्य-भक्त) हैं; हमारी भक्ति विशिष्ट (महत्त्व की) है। ७२ शाक्त कहते हैं, हम (समस्त भक्तों में) श्रेष्ठ हैं। गाणपत्य अपने को वरिष्ठ कहते हैं। फिर भी वे वैकुण्ठ के भी विष्णु भगवान को नहीं जानते, जो (वस्तुतः) समस्त (देवों) में विशिष्ट हैं। ७३ स्वयं भगवान विष्णु जिसका अन्तःकरण स्थल हैं, उमापति शिवजी जिसका अहंकार है, ब्रह्मा जिसकी पूर्णस्वरूप बुद्धि है, उस परब्रह्म (कृष्ण) की भक्ति न करने के कारण वे लुट गये। ७४ सूर्य जिसके नेत्र है, अत्रि-कुमार चन्द्र जिसका मन है, यम जिसकी परम तीक्ष्ण डाढ़ें हैं, उस परब्रह्म (कृष्ण) की भक्ति न करने के कारण वे धोखा खाकर डूब गये। ७५ शचीपति इन्द्र जिसके हाथ हैं, निश्चय ही अग्नि जिसका मुख है,...अस्तु, समस्त देवमण्डल जिसके आश्रय (आधार) से अस्तित्व में है, उस (परब्रह्म कृष्ण) की भक्ति न करते हुए वे सभी विप्र, वेदों के विषय में बड़ा घमण्ड धारण करके यमुना-तट पर बैठे हुए थे। ७६-७७ तब कृष्ण के समस्त सेवक अर्थात सखा गोप (वहाँ) आ गये। उन्होंने भू-देवों (ब्राह्मणों) का नमन किया और परम विनीत होकर समस्त समाचार कह दिया। ७८ (वे बोले—) 'बलराम और जगज्जीवन कृष्ण— हम समस्त बड़े-छोटे सम्बल भूलकर आ गये हैं— अतः अन्न माँग रहे हैं। ७९ कृष्ण बहुत भूख से पीड़ित हो गया है। वह कदम्ब-तले (हमारी) राह देख रहा है। यह साक्षात् वैकुण्ठनाथ है। उसकी बात (का अर्थ) मान लीजिए'। ८० गोपालों द्वारा ऐसा कहने पर सब भू-देव क्रुद्ध हो उठे और बोले, 'ये (धर्म) भ्रष्ट हमें यहाँ भी सताने के लिए आ गये हैं'। ८१ वे एक-

नेत्रसंकेतें खुणाविती । यांसी अन्न न द्यावें निश्चितीं । प्राणांत जाहलिया । ८२ यांसीं करितां संभाषण । आम्ही करितों सचैल स्नान । आम्ही सोंवळे सुजाण । यांचें अवलोकन न करावें । ८३ भ्रष्टांमाजी श्रेष्ठ थोर । तोचि हा नंदाचा किशोर । कर्मरहित हीनाचार । अन्न अणुमात्र देऊं नये । ८४ अवघे नेत्र वटारिती । सक्रोध गोपांतें विलोकिती । अन्न न देऊं म्हणती । अहंमतें भुलोनियां । ८५ एक म्हणती झालें शूद्रदर्शन । म्हणोनि करिती पुन्हां स्नान । तें कृष्णभक्तीं देखोन । अंतःकरणीं जाणवले । ८६ नेत्रवक्त्रांचे विकार । त्यांवरूनि समजे अंतर । सुमनें देखतां आमोद सत्वर । वृद्ध चतुर जाणती । ८७ बोलावरूनि कळे चित्त । आचरणावरूनि पूर्वार्जित । क्रियेवरूनि वर्णाश्रम सत्य । परीक्षक जाणती । ८८ रहाणीवरून कळे परमार्थ । शब्दापशब्दीं कळे पंडित । प्रेमादरावरोनि भक्त । परीक्षक जाणती । ८९ दानावरूनि कळे उदार । रणीं समजे प्रतापशूर । लक्षणांवरून नृपवर । जाणती चतुर परीक्षक । ९० वास येतां कळे काष्ठ । स्वरावरोनि समजे

दूसरे की ओर देखने लगे । वे आँखों से संकेत कर रहे थे कि इन्हें प्राणों का अन्त होने पर भी निश्चय ही अन्न न देना । ८२ इनसे बातें करने पर हम सचैल स्नान करते हैं । हम मंगल-पवित्र ज्ञानी हैं । इनके दर्शन तक न करना । ८३ भ्रष्ट लोगों में जो बड़ा, श्रेष्ठ है, वही है यह नन्द का लड़का (कृष्ण) । वह कर्म-शून्य है, हीन आचार वाला है । उसे अणु मात्र तक अन्न न देना । ८४ वे सब बड़ी-बड़ी आँखें किये हुए थे । वे क्रोध से उन गोपों को देख रहे थे । वे अहंकार से मोहित होकर कहते थे— हम अन्न न देंगे । ८५ कुछ एक ने कहा (माना) कि शूद्रों का दर्शन हुआ है । इसलिए उन्होंने फिर से स्नान किया । कृष्ण के उन भक्तों— गोपालों ने वह देखा, तो अन्तःकरण में वे समझ गये । ८६ आँखों और मुख पर झलकनेवाले विकार से (व्यक्ति का) मन समझ में आता है । वृद्ध चतुर लोग सुगन्ध देखते ही झट से फूलों को पहचान जाते हैं । ८७ (व्यक्ति की) उक्ति से उसका चित्त समझ में आता है; उसके आचरण से उसके पूर्वकाल के उपार्जित पुण्य-पाप को जानते हैं । परीक्षक व्यक्ति की करनी से सचमुच उसके वर्ण आश्रम को जान जाते हैं । ८८ (व्यक्ति की) रहनी से परमार्थ समझ में आता है, शब्दों-अपशब्दों से पण्डित विदित हो जाता है । परीक्षक **प्रेम** और आदर से भक्त को जानते हैं । ८९ दान से उदार व्यक्ति समझ में आता है, रण में प्रतापवान और शूर विदित हो जाता है । चतुर परीक्षक लक्षणों से राजा को जान लेते हैं । ९० गन्ध के आने से लकड़ी (की जाति) समझ में आती है; ध्वनि से कण्ठ समझ में आता है । उसी प्रकार कृष्ण के उन दासों—

कंठ। तैसें द्विजांचें अंतर स्पष्ट। कृष्णदासां कळलें पैं। ९१ निराशा देखोनि ते वेळे। कृष्णउपासक परतले। जैसे साधुसंत घरासी आले। छळोनि दवडिले अभाग्यें। ९२ नेणतां परीस गोफणिला। सुधारस उकिरडां ओतिला। सुरतरु तोडोनि घातला। कूपकंटकवृक्षातें। ९३ घरासी कामधेनु आली। ते शुष्क काष्ठें वरी मारिली। चिंतामणि फोडोनि केली। पायरी जैसी अभाग्यें। ९४ पायीं ताडिलें ज्योतिर्लिंग। केला विष्णुपूजेचा भंग। तैसे ते पामर अभाग्य। विष्णुमहिमा नेणती। ९५ असो गोपाळ सकळ परतले। जगज्जीवनाजवळी आले। सर्व वृत्तांत श्रुत केले। हांसो आलें रमारंगा। ९६ म्हणे माझी माया दुर्धर। जाणतेचि मूढ केले विप्र। मागुती क्षीराब्धिविहार। सखयांप्रती बोलतसे। ९७ अविद्यावेष्टित ब्राह्मण। नोळखतीच मज लागून। तुम्ही विप्रस्त्रियांस जाऊन। मागा अन्न ममार्जे। ९८ ऐसा ऐकतांचि हरिवचनार्थ। आणिका वाटे गोप धांवत। जैसे कुमार्ग टाकोनि सद्भक्त। सुमार्गेंचि चालती। ९९ विप्रा न कळतां गोवळे।

सखाओं की उन ब्राह्मणों का अन्तःकरण समझ में आ गया। ९१ उस समय निराशा देखकर, अर्थात यह जानकर कि उन ब्राह्मणों से अन्न प्राप्त करने की इच्छा पूरी नहीं होगी, कृष्ण के वे उपासक लौट गये, जैसे साधु-सन्त घर आ गये थे, लेकिन किसी अभागे ने (उन्हें न पहचानते हुए) तंग करके भगा दिया हो। ९२ (मानो किसी ने) पारस को न पहचानते हुए (उसे साधारण पत्थर समझकर) गोफन में लगाकर फेंक डाला हो; अमृत घूरे पर उँड़ेल दिया हो, कल्पवृक्ष काटकर काँटेदार पेड़ों के लिए उससे बाड़ बनाया हो। ९३ कामधेनु घर आ गयी थी, लेकिन ऊपर से उसे सूखी लकड़ी से पीट दिया हो। मानो किसी अभागे ने चिन्तामणि को तोड़कर उससे सीढ़ी बना दी हो। ९४ किसी ने ज्योतिर्लिंग को पाँव से तोड़ डाला हो, विष्णु के पूजन (के साहित्य) को भग्न कर डाला हो। उसी प्रकार वे पामर अभागे (ब्राह्मण) भगवान विष्णु की महिमा नहीं जान पाये। ९५

अस्तु। समस्त गोपाल लौट गये और जगज्जीवन कृष्ण के पास आ गये। उन्होंने उन्हें समस्त समाचार कह सुनाये, तो रमारंग विष्णु-स्वरूप कृष्ण को हँसी आ गयी। ९६ वे बोले (उन्होंने माना)— मेरी माया दुर्धर है; उसने उन ज्ञानी ब्राह्मणों को मूढ़ बना दिया। अनन्तर क्षीरसमुद्रविहारी विष्णुस्वरूप कृष्ण (अपने) सखाओं से बोले। ९७ 'वे ब्राह्मण अविद्या द्वारा घेरे हुए हैं। वे मुझे जानते ही नहीं हैं। (अतः) तुम जाकर उन ब्राह्मणों की स्त्रियों से अन्न माँग लो'। ९८ कृष्ण की ऐसी बात सुनते ही वे गोप दूसरे मार्ग से दौड़े, जैसे कुमार्ग को छोड़कर सद्भक्त सन्मार्ग से ही चल देते हैं। ९९ उन विप्रों की समझ में न

पाकशाळेजवळी आले । तों तृणाचें कूड घातलें । माजी बैसल्या पतिव्रता । १०० पाकक्रिया सारोनि समस्त । धूम्रही सकळ झाला शांत । हृदयीं आठवला रमानाथ । वृंदावनविहारी जो । १०१ सांडोनि सकळ कर्मजाळ । संत स्वरूपीं होती निश्चळ । तैशा यज्ञपत्न्या सकळ । हृदयीं घननीळ चिंतिती । २ हरिकृपेचें अंजन । नेत्रीं ज्यांच्या शोभायमान । निढळीं सौभाग्य निजकल्याण। कुंकुम सुरंग शोभतसे । ३ श्रवणीं हरिगुणश्रवण । मुक्तघोष झळकती भूषण। वदनीं गाती हरिगुण । कंठीं कृष्णवर्ण गळसरी । ४ असो श्रवणीं वदनीं ध्यानीं । सदा लेइला चक्रपाणी । तों ते गोप कुडा आडोनी । बोलतां श्रवणीं ऐकती । ५ गोपांनीं करूनि नमस्कार । म्हणती सत्या हो ऐका सादर । जवळी आला यादवेंद्र । वृंदावनीं उभा असे । ६ क्षुधाक्रांत जगन्मोहन । मागावया पाठविलें अन्न । आम्हां ब्राह्मणीं दवडिलें छळून । आलों म्हणोन तुम्हांपासीं । ७ ऐकतां ऐसिया वचना । सद्गदित जाहल्या विप्रांगना । म्हणती हरि

आते हुए वे गोपाल पाकशाला के पास आ गये । तो (उन्होंने देखा कि वहाँ) घास का घेरा डाला हुआ था और उसके अन्दर वे पतिव्रताएँ (विप्र-स्त्रियाँ) बैठी हुई थीं । १०० समस्त पाकक्रिया समाप्त हो जाने के कारण धुआँ भी दूर हो गया था । उन्होंने तब वृन्दावनविहारी रमानाथ कृष्ण का हृदय में स्मरण किया । १०१ जिस प्रकार समस्त कर्मजाल छोड़कर सन्त आत्मस्वरूप में निश्चल हो जाते हैं, उसी प्रकार (रसोई से मुक्त होकर—) वे समस्त यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की स्त्रियाँ हृदय में घननील कृष्ण का चिन्तन करने लगीं । २ उनकी आँखों में श्रीहरि-कृपा का अंजन शोभायमान था; भालप्रदेश पर उनके अपने कल्याण का कर्ता सौभाग्य चिह्न के रूप में अच्छे रंग से युक्त कुंकुम (तिलक) शोभायमान था । ३ उनके कानों में श्रीहरि के गुणों के श्रवण रूपी मोतियों के गुच्छों-स्वरूप (कर्ण-) भूषण चमक रहे थे । वे मुख से श्रीहरि के गुणों का गान कर रही थीं । गले में कृष्णवर्ण का मंगलसूत्र (शोभायमान) था । ४ अस्तु । उन्होंने कानों में, मुख में, ध्यान में नित्य चक्रपाणि कृष्ण को ही धारण किया था (अर्थात वे कानों से कृष्ण नाम का श्रवण, मुख से कृष्ण नाम का उच्चारण और मन से कृष्ण का ध्यान किया करती थीं) । तब टट्टी के पीछे से गोपों ने उन्हें बोलते सुन लिया । ५ गोपों ने नमस्कार करके कहा, ' हे पतिव्रताओ, आदरपूर्वक (तत्परता से) सुन लीजिए । यादवेन्द्र कृष्ण निकट आ गये हैं । वे वृन्दावन में खड़े हैं । ६ जगन्मोहन कृष्ण भूख से पीड़ित हैं । उन्होंने (हमें) अन्न माँगने के लिए भेजा है । हमें ब्राह्मणों ने सताकर लौटा दिया, इसलिए हम तुम्हारे पास आये हैं ' । ७ इस प्रकार की बात सुनते ही वे ब्राह्मण-स्त्रियाँ बहुत गद्गद हो उठीं । वे बोलीं, ' हे त्रिभुवनभूषण हरि,

त्रिभुवनभूषणा। कृपा केली आम्हांवरी। ८ एकीप्रति एक बोलती। विप्र भुलले कीं अहंमती। पूर्णब्रह्म वैकुंठपती। त्यासी नेणती आश्चर्य हें। ९ भुलले हे वसुंधरामर। श्रीकृष्ण पूर्ण अवतार। त्यासी अन्न न देती साचार। मायेनें विप्र व्यापिले। ११० ज्याकारणें करिती यज्ञ। ज्यालागीं करिती अनुष्ठान। तो वृंदावनीं उभा नारायण। त्यासी न भजोनि भूलले। १११ अध्ययन पूजन तीर्थाटन। व्रतें नेम तपाचरण। करूनि पाविजे ज्याचे चरण। तो नारायण नोळखती। १२ जो क्षीरसागरविहार। जो वैकुंठपीठींचा सुकुमार। जो आत्माराम निर्विकार। तो हा श्रीधर अन्न मागे। १३ जो मृडानीपतीचें हृदयरत्न। ज्यासी शरण येती विधि शचीरमण। तो हा अघबककालियामर्दन। स्वमुखें अन्न मागतसे। १४ जें कां चहूं वेदांचें सार। जें षट्शास्त्रांचें जिव्हार। ज्याचे पुराणीं वर्णिती अवतार। तो श्रीकरधर अन्न मागे। १५ म्हणती आतां संसारा घालूं पाणी। परी अन्न देऊं चक्रपाणी। पूर्णब्रह्मानंद मोक्षदानी। त्याचे चरण दृढ धरूं। १६ पूर्वीं प्रल्हादें पित्राज्ञा

तुमने हम पर कृपा की'। ८ वे एक-दूसरी से कहने लगीं, 'ये ब्राह्मण अहंमति (अहंकार) से विमूढ़ हो गये हैं। वैकुण्ठपति विष्णु अर्थात कृष्ण (वस्तुतः) पूर्णब्रह्म हैं। यह आश्चर्य है कि ये उन्हें नहीं जानते (पहचान पाये)। ९ ये भू-देव (ब्राह्मण) विमूढ़ (होकर) भूल गये हैं कि श्रीकृष्ण पूर्ण अवतार हैं। ये उन्हें अन्न नहीं दे सके। सचमुच माया (जन्य अज्ञान) ने इन विप्रों को व्याप्त कर डाला है। ११० जिसके कारण (जिसके लिए) ये यज्ञ कर रहे हैं, जिसके लिए ये अनुष्ठान करते हैं, वह नारायण (प्रत्यक्ष) वृन्दावन में खड़ा है। उसकी भक्ति न करते हुए वे विमूढ़ हो गये हैं। १११ वे उस नारायण को नहीं पहचान पाये, जिसके चरणों को (लोग) अध्ययन, पूजन, तीर्थाटन, व्रत, नेम, तपाचरण करके प्राप्त हो जाते हैं। १२ जो क्षीरसागर में विहार करते हैं, जो वैकुण्ठपीठ के सुकुमार (निवासी) हैं, जो (स्वयं) निर्विकार आत्माराम हैं, वे ये श्रीधर (कृष्ण) अन्न माँग रहे हैं। १३ जो मृडानी (उमा) पति (शिवजी) के हृदय में स्थित रत्न हैं, जिसकी शरण में विधाता तथा शचीपति इन्द्र आ जाते हैं, वह यह अघ-बक-कालिय का मर्दन करनेवाला (भगवान विष्णुस्वरूप) कृष्ण अपने मुँह से अन्न माँग रहा है। १४ जो चारों वेदों का सारभूत तत्त्व है, जो छहों शास्त्रों का हृदय (-स्थान) है, जिसके अवतारों का पुराणों में वर्णन करते हैं, वह श्रीकरधर (लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाला विष्णुस्वरूप) कृष्ण (स्वयं) अन्न माँग रहा है। १५ वे बोलीं, 'अब घर-गिरस्ती पर पानी फेर देंगी, फिर भी पूर्ण आनन्द (स्वरूप) ब्रह्म, मोक्षदाता चक्रपाणि (विष्णु-स्वरूप) कृष्ण को अन्न देंगी और उसके पाँव दृढ़तापूर्वक पकड़ेंगी। १६ पूर्वकाल में पिता की आज्ञा न

मोडून। दृढ धरिले हरीचे चरण। बळीनें शुक्राज्ञा मोडून। केलें पूजन वामनाचें। १७ बिभीषण न मानूनि रावणा। शरण रिघाला रघुवीर-चरणा। भरतें मातेची मोडोनि आज्ञा। नंदिग्रामीं बैसला। १८ भक्तिकाजी अवरोधिती पाहीं। त्यांची आज्ञा मोडितां दोष नाहीं। म्हणोनि उठिल्या लवलाहीं। अन्न घेवोनि तेधवां। १९ षड्रस अन्नांचे भरोनि हारे। यज्ञपत्न्या निघती त्वरें। कूड मोडूनियां द्वारें। ठायीं ठायीं पाडिलीं। १२० एक पहावया वनमाळी। श्रवणद्वारें सत्वर चालली। एक कीर्तनपंथें ते वेळीं। निघती जाहली सत्वर। १२१ एक स्मरणाचिये वाटे। एक चरणसेवेचे नेटें। एक अर्चनाचेनि घाटें। निघत्या जाहल्या सुंदरा। २२ एक वंदनाचेनि द्वारें। एक दास्यपंथें जाती त्वरें। एक सख्यत्वाचे एकसरें। हरि पाहों चालिल्या। २३ एक करिती आत्मनिवेदन। एक मननजळीं जाहल्या मीन। एक निजध्यासीं निमग्न। होवोनियां चालिल्या। २४ एक निजसाक्षात्कारें।

मानकर प्रह्लाद ने श्रीहरि के चरण दृढ़ता से पकड़े थे, गुरु शुक्र की आज्ञा न मानते हुए बलि ने (विष्णु के अवतार) वामन का[1] पूजन किया था। १७ विभीषण रावण की उपेक्षा करके रघुवीर राम के चरणों की शरण में गया था। भरत माता की आज्ञा मानकर नन्दीग्राम में रह गया। १८ देखिए, जो भक्ति के काम में रोकते हैं, उनकी आज्ञा न मानने में कोई दोष (पाप) नहीं होता।' ऐसा कहकर (सोचकर) तब वे झट से अन्न लेकर उठ गयीं (जाने के लिए तैयार हो गयीं)। १९ छहों रसों से युक्त अन्न (खाद्य पदार्थों) से टोकरे भरकर यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की स्त्रियाँ झट से निकल पड़ीं। उन्होंने टाटों को तोड़कर स्थान-स्थान पर द्वार बना लिये। १२० कोई एक वनमाली को देखने के लिए श्रवण रूपी द्वार से चल दीं, तो कुछ एक उस समय कीर्तन मार्ग से झट से निकलीं[2]। १२१ कुछ एक नारियाँ स्मरण के पथ से, कुछ एक चरण-सेवा के दृढ़ निश्चय से, कुछ एक अर्चन के विकट मार्ग से निकलकर चल दीं। २२ कुछ एक वन्दना के मार्ग से, कुछ एक दास्य-पन्थ से झट से जाने लगीं। कुछ एक सख्य-मार्ग से श्रीहरि को देखने के लिए एक साथ चल दीं। २३ कुछ एक ने आत्मनिवेदन करना आरम्भ किया, कुछ एक मनन (ध्यान) रूपी जल में मछलियाँ हो गयीं। कुछ एक परमात्म-स्वरूप के ध्यान में निमग्न होकर चल रही थीं। २४

---

१ गुरु शुक्र की आज्ञा का बलि द्वारा अवमान : जब भगवान विष्णु ने वामन-रूप में अवतरित होकर दैत्यराज बलि से तीन पद भूमि दान में माँग ली, तो उसके गुरु शुक्राचार्य की समझ में उनकी यह चाल आ गयी। उसने बलि से कहा— यह माँग स्वीकार न करो। फिर भी बलि ने अपनी दानशीलता के निर्वाह के लिए उस मंत्रणा की उपेक्षा की और वामन द्वारा माँगा हुआ दान दे दिया।

२ श्रवण... यहाँ व्यंजना से नवविधा भक्ति सूचित है।

चालिल्या आत्मरूपी मोहरें। भक्तिअन्नाचे भरूनि हारे। जाती त्वरें कृष्णभेटी। २५ जैशा समुद्रासी भेटावया। भरूनि सरिता जाती लवलाह्यां। कृपासिंधु यदुवर्या। पुण्यगंगा मिळों जाती। २६ पिताबंधुपतींची आज्ञा। मोडूनि चालिल्या सकळ ललना। आवडी लागलीसे नयनां। कृष्णवदन पहावया। २७ श्रवण म्हणती करूं श्रवण। रसना कीर्तनीं गेली रंगोन। हरिपदपद्ममकरंदीं जाण। नासिक वेधे सर्वदा। २८ पाणी अर्चनाची वाट पाहती। चरण हरिपंथें शीघ्र जाती। या प्रकारें सकळ युवती। समीरगती चालिल्या। २९ ऐशा यज्ञपत्न्या गेल्या सकळी। तों एक क्षणभरी मागें राहिली। अन्न घेवोनि जों निघाली। तों कर्म आड ठाकलें। १३० तिचा पति अकस्मात। पावला पाकशाळेआंत। तयासी कळला वृत्तांत। गेल्या समस्त कृष्णभेटी। १३१ विप्र परम क्रोधायमान। करी आपुले स्त्रियेसी ताडण। परम भ्रष्ट गोवळा कृष्ण। त्यासी कां अन्न देतां गे। ३२ कोणे

कुछ आत्मसाक्षात्कार से (प्रेरित होकर) आत्मस्वरूप में मिल जाने के लिए आगे-आगे चल रही थीं। इस प्रकार भक्ति स्वरूप अन्न के टोकरे भरकर वे कृष्ण की भेंट के निमित्त झट से जा रही थीं। २५ जिस प्रकार समुद्र से मिलने के लिए (जल से) भर-भरकर सरिताएँ शीघ्रतापूर्वक जाती हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणियों-स्वरूप वे पुण्यगंगाएँ कृपासिन्धु यदुवर कृष्ण से मिलने के लिए चली गयीं। २६ वे समस्त ललनाएँ (अपने-अपने) पिता, बन्धु अथवा पति की आज्ञा न मानकर चल दीं। उनकी आँखों को कृष्ण का मुख देखने की लगन लगी थी। २७ (उनके) कान (मानो) कह रहे थे कि हम (कृष्ण के मुख से निकलनेवाले शब्द या कृष्ण का नाम) सुन लेंगे। उनकी जिह्वा मानो (उनका नाम-) कीर्तन करने में रँग गयी। समझिए कि उनकी नाक नित्यप्रति श्रीहरि के चरण-कमलों की (मधुरस की) सुगन्ध के प्रति आकृष्ट हो गयी थी। २८ उनके हाथ (श्रीकृष्ण के) पूजन (करने के सुअवसर) की प्रतीक्षा कर रहे थे; उनके पाँव श्रीहरि के मार्ग पर शीघ्रता से चल रहे थे। इस प्रकार वे समस्त युवतियाँ वायु-गति से जा रही थीं। २९ इस प्रकार समस्त यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की स्त्रियाँ चली जा (ही) रही थीं कि तब (उनमें से) एक क्षण भर पीछे रह गयी। ज्यों ही अन्न लेकर वह चल पड़ी, त्यों ही उसका कर्म (दुर्दैव) आड़ा आकर (उसके सम्मुख) खड़ा हो गया। १३० सहसा उसका पति पाकशाला के अन्दर आ गया। उसे यह समाचार विदित हो गया कि समस्त स्त्रियाँ कृष्ण से मिलने के उद्देश्य से चली गयी हैं। १३१ वह विप्र (यह जानकर) परम क्रोधायमान हो गया। उसने अपनी स्त्री को पीट लिया (और पूछा)— 'कृष्ण परम भ्रष्ट ग्वाला है; उसे तुम क्यों अन्न देने जा रही हो। ३२ किस शास्त्र में यह लिखा हैं कि स्त्रियाँ उन ग्वालों

शास्त्रीं आहे लिहिलें । कीं स्त्रियांहीं पूजावे गोवळे!। यज्ञब्राह्मण नाहीं पूजिले। विटाळिलें अन्न कैसें । ३३ वेद देव अग्नि ब्राह्मण । तुझ्या बापें साक्ष करून। माझ्या हस्तीं तुजलागून। दिधलें जाण शतमूर्खे । ३४ माझी सांडूनियां भक्ती । पूजों जासी गोवळ्याप्रती । म्हणोनि स्त्रियेसी शीघ्रगती । बांधिता जाहला ब्राह्मण । ३५ मग ती बोले ते अवसरीं । तूं या देहाचा पति कीं निर्धारीं । तरी तो देह ठेवीं आपुले घरीं । जतन करूनि साक्षेपें । ३६ समस्त गेल्या देखोन । सद्‌गदित आंसुवें भरिले नयन । अंतरीं रेखिलें कृष्ण-ध्यान । मुखीं स्मरण नामाचें । ३७ गोविंदा गोपाळा माधवा । वैकुंठ-विलासिया रमाधवा । ऐसें बोलोनियां तेधवां । प्राण सोडिला सतीनें । ३८ सकळ विप्रां जाहलें श्रुत । कीं स्त्रिया गेल्या समस्त । धांवले पाकशाळेआंत । जपानुष्ठान टाकोनि । ३९ एक बोले क्रोधेंकरूनी । स्त्रिया आलिया परतोनी । शिक्षा करूं तेचि क्षणीं । ऐसें दुसरेनी न करिती त्या । १४० एक म्हणती रहावें कासयास । जाऊनि आतां घेऊं संन्यास । एक म्हणती आम्ही वृद्ध बहुवस । म्हणोनि गेल्या टाकोनि । १४१ ज्यानें स्त्री बांधिली खांबाशीं । तो हर्षे सांगे समस्तांसी । म्यां बांधिलें आपुले दारेसी । अवरोधोनि

की पूजा करें । (पहले) तुमने यज्ञकर्ता ब्राह्मणों का पूजन नहीं किया, तो (यज्ञ के लिए पकाया हुआ) अन्न तुमने कैसे अपावन कर डाला । ३३ री शतमूर्खा, वेदों, देवों, अग्नि, ब्राह्मणों को साक्षी कराकर मेरे पिता ने, समझ ले, मेरे हाथों तुझे सौंप डाला । ३४ (फिर भी) मेरी भक्ति छोड़कर तू उस ग्वाले का पूजन करने जा रही है । ' ऐसा कहते हुए उस ब्राह्मण ने शीघ्र गति से अपनी पत्नी को बाँध दिया । ३५ फिर वह उस समय बोली, ' निश्चय ही तुम इस देह के पति हो, अतः अपने घर में उस देह को यत्नपूर्वक सुरक्षित रख लो ' । ३६ (अन्य) सब (स्त्रियों) को गयी हुई देखकर उसने बहुत गद्‌गद होकर आँसुओं से आँखें भर लीं । उसने अन्तःकरण में कृष्ण का ध्यान (रूप) रेखांकित किया और वह मुख से नाम का स्मरण (जाप) करने लगी । ३७ ' हे गोविन्द, हे गोपाल, हे माधव, हे वैकुण्ठविलासी, हे रमापति ! ' ऐसा बोलते हुए उस सती ने तब प्राण त्यज दिये । ३८ समस्त विप्रों को यह सुनकर विदित हुआ कि सब स्त्रियाँ (कृष्ण से मिलने के लिए) गयी हैं, तो वे जाप और अनुष्ठान छोड़कर पाकशाला के अन्दर दौड़े आये । ३९ (उनमें से) कुछ एक क्रोध से बोले, ' स्त्रियों के लौट आने पर उन्हें उसी क्षण दण्ड दे देंगे, इससे वे दूसरी बार ऐसा न कर पाएँगी ' । १४० कुछ एक बोले, ' (हम) किसलिए (यहाँ जीवित) रहें, अब जाकर संन्यास ग्रहण कर लेंगे । ' कुछ एक बोले, ' हम बहुत वृद्ध हो गये हैं, इसलिए वे स्वैरिणी स्त्रियाँ (हमें) छोड़कर गयी हैं ' । १४१ जिसने (अपनी) स्त्री को खम्भे से बाँधा था, वह आनन्द से सबसे कह रहा था,

ठेविली । ४२ तिजजवळी आला परतोन । सोडोनि करी समाधान । तुज मी अलंकार घडीन । उघडीं नयन एकदां । ४३ तों ते न बोले कांहीं वचन । श्वासोच्छ्वास पाहे ब्राह्मण । तों गेला निघोनि तिचा प्राण । शोक दारुण ब्राह्मण करी । ४४ सकळ म्हणती कासया रडसी । प्रेत तरी डोळां पाहसी । आम्हीं स्त्रिया अर्पिल्या गोवळ्यासी । कदा न येती माघाऱ्या । ४५ हरिलागीं जिणें प्राण सोडिला । लिंगदेह तिचा निघोनि गेला । वृंदावनीं वेगें पावला । भोंवों लागला हरीपाशीं । ४६ जे अंतकाळीं मति निश्चितीं । तैशीच होय पुढें गती । सतीची हरीरूप जाहली मती । रमापति जाणे सर्व । ४७ कृपाळू तो जगज्जीवन । तेथेंचि केला तिचा देह निर्माण । षड्रस अन्न निर्मून । पात्र भरूनि दीधलें । ४८ तिचा हेत राहिला होता । कीं अन्न द्यावें कृष्णनाथा । सर्वांपुढें तेच तत्त्वतां । हरीजवळी उभी ठाके । ४९ सकळ सत्या बोलती ते वेळीं । आम्हांपुढें कैसी हेचि आली । हे भ्रतारें होती राखिली । अवरोधोनि साक्षेपें । १५० सकळ सत्यांनीं ते वेळे । देखिलें परब्रह्म सांवळें ।

'मैंने अपनी स्त्री को बाँधा है, उसे रोककर रखा है'। ४२ (तदनन्तर) वह (वहाँ से) लौटकर उसके पास आ गया। फिर उसे मुक्त करते हुए उसने सन्तोष अनुभव किया। (वह बोला—) 'मैं तेरे लिए आभूषण गढ़वा लूँगा, एक बार आँखें खोल'। ४३ (फिर भी) तब वह कोई बात नहीं बोली। (अतः) उस ब्राह्मण ने उसके श्वासोच्छ्वास को देखा, तो (विदित हुआ कि) उसके प्राण निकल गये हैं। (अतः) वह ब्राह्मण दारुण शोक करने लगा। ४४ (यह देखकर अन्य) समस्त (ब्राह्मण) बोले, 'रो क्यों रहे हो ? तुम (कम-से-कम) आँखों से (अपनी स्त्री के) शव को तो देख सकते हो ! हमने तो अपनी स्त्रियाँ उस ग्वाले को समर्पित कर डालीं। वे कभी भी लौट नहीं आएँगी'। ४५ जिस स्त्री ने श्रीहरि के लिए प्राण त्याग दिये, उसकी लिंगदेह निकल गयी और वेगपूर्वक वृन्दावन पहुँच गयी। वह श्रीहरि के पास आकर चक्कर काटने गयी। ४६ अन्तकाल में (मनुष्य की) जैसी मति (इच्छा) होती है, निश्चय ही आगे चलकर उसकी स्थिति (गति) हो जाती है। उस पतिव्रता की मति श्रीहरि-रूप (के साथ एकात्म) हो गयी थी। रमापति भगवान विष्णु-स्वरूप कृष्ण यह सब जानते हैं। ४७ वे जगज्जीवन कृष्ण कृपालु हैं। उसी ने उसकी देह का निर्माण किया था। उसने छः रसों से युक्त अन्न का निर्माण करके पात्र भरकर उन्हें प्रदान किया। ४८ उसकी यह इच्छा (अधूरी) रह गयी थी कि वह कृष्णनाथ को अन्न दे दे। सबके आगे वही सचमुच श्रीहरि के समीप खड़ी रही (हुई दिखायी दे रही थी)। ४९ (उसे देखकर) उस समय वे समस्त पतिव्रता स्त्रियाँ बोलीं, 'यही हमसे पहले कैसे आ गयी ? इसे पति ने यत्नपूर्वक रोककर रखा था'। १५०

जें निर्विकार आकारलें। भक्तजन तारावया। १५१ समीप देखोनि यादवराया। अन्नपात्रें उतरोनियां। दृढ लागल्या हरीच्या पायां। विसरोनियां देहभावा। ५२ मनीं सकळ भाविती। डोळा देखिला यादवपती। जन्मसार्थक जाहलें म्हणती। आनंद चित्तीं न समाये। ५३ हरिचरणपंकजकेसरीं। द्विजपत्न्या जाहल्या भ्रमरी। कीं वेदोनारायण निर्धारीं। वेदश्रुतीं वेष्टिला। ५४ मग उठोनियां विप्रललना। अन्न अर्पिती राजीवनयना। तृप्त जाहला यादवराणा। रामगोपाळांसहित पैं। ५५ यज्ञनारायण जाहला तृप्त। मखाचें फळ त्यांस जाहलें प्राप्त। संतोषोनि कमलाकांत। काय बोले तेधवां। ५६ तयांसी म्हणे वैकुंठपती। माझ्या पदाप्रति याल अंतीं। पतींस तुमच्या जन्मपंक्ती। पुढें आहेत असंख्य। ५७ जा आतां आश्रमाप्रती। वाट पाहात असतील पती। यज्ञ पावों द्या समाप्ती। कांहीं खंती करूं नका। ५८ नग पाहतां जैसें सुवर्ण। तैसा त्रिजगद्रूप मी नारायण।

उस समय उन समस्त पतिव्रता नारियों ने उस श्याम (कृष्ण-रूप में) परब्रह्म को देखा, जो अविकारी होने पर भी भक्तजनों का उद्धार करने के हेतु आकार को प्राप्त हो गया है (कृष्ण-रूप में अवतरित है)। १५१ यादवराज कृष्ण को समीप (स्थित) देखते ही वे (सिर पर से) अन्न से भरे पात्रों को उतारकर देव-भाव को भुला देकर श्रीहरि के चरणों में दृढ़ता से लग गयीं। ५२ वे समस्त मन में यह मान रही थीं— हमने यादवपति कृष्ण को (अपनी) आँखों से देख लिया। वे बोलीं (उन्होंने माना)— जन्म सार्थक (चरितार्थ) हो गया। उनके चित्त में आनन्द नहीं समा रहा था। ५३ वे ब्राह्मणों की स्त्रियाँ श्रीहरि के चरण-कमलों के केसर में (मानो) भ्रमरियाँ हो गयीं। अथवा (श्रीकृष्णस्वरूप) वेदोनारायण निश्चय ही (विप्र-नारियों-स्वरूप) वेद-श्रुतियों द्वारा वेष्टित हो गया। ५४ अनन्तर उन विप्र-ललनाओं ने उठकर राजीवनयन कृष्ण को अन्न समर्पित किये, तो बलराम और गोपालों-सहित वे यादवराज कृष्ण तृप्त हो गये। ५५ (इस प्रकार कृष्णस्वरूप साक्षात्) यज्ञनारायण तृप्त हो गया, तो उन (स्त्रियों) को यज्ञ का फल प्राप्त हो गया। तब कमलाकान्त विष्णुस्वरूप कृष्ण क्या बोले। ५६ वैकुण्ठपति (कृष्ण) उनसे बोले, ' अन्त में तुम मेरे पदों के प्रति आ जाओगी (मेरे पदों को प्राप्त हो जाओगी, तुम मुक्त हो जाओगी)। (परन्तु) तुम्हारे (अपने-अपने) पति के आगे असंख्य जन्म-पंक्तियाँ (शेष) हैं (उनको मुक्त होने से पूर्व अनगिनत जन्म लेने पड़ेंगे)। ५७ अब तुम (अपने-अपने) आश्रम के प्रति चली जाओ। तुम्हारे पति प्रतीक्षा करते होंगे। यज्ञ समाप्ति को प्राप्त होने देना। तुम कोई भी चिन्ता न करो। ५८ जिस प्रकार (विविध) आभूषण देखने पर भी (जिससे वह बना है) वह सोना एक

मद्रूप चराचर पाहून। तुम्ही व्हा लीन मजमाजी। ५९ माझे ठायीं ठेवूनि चित्त। प्रपंचकार्य करा समस्त। जैसा कृपण जनीं वर्तत। ठेवणां चित्त ठेवूनि। १६० चित्त ठेवोनि तान्हयापासीं। माता जाय स्वकार्यासी। तैसें मज धरूनि मानसीं। प्रपंचासी चालवा। १६१ आत्मरूपीं विश्व पहावें। सत्कर्मी अंतर पडों न द्यावें। वेदाज्ञेनें वर्तावें। अहंकृति टाकोनियां। ६२ घागरीं आणि रांजणीं। बिंबला एक वासरमणी। तैसें पुरुष आणि कामिनी। मी चक्रपाणी व्यापलों। ६३ ऐसें बोलतां यदुपती। सकळ झाल्या सद्‌गद चित्तीं। विमलांबुधारा नेत्रीं स्रवती। काय बोलती तेधवां। ६४ आतां पति घेतील प्राण। आम्हीं न सोडूं तुमचे चरण। कृपा-सागर तूं जगन्मोहन। हरि दारुण पति हे। ६५ संसार दुःखरूप सकळी। खदिरांगाराची शेज रचिली। यावरी सुखनिद्रा वनमाळी। कैसी लागेल सांग पां। ६६ संसार विषवल्लीचें वन। कीं वृश्चिकांनीं भरलें सदन। काळसर्पं पसरिलें

मात्र है, उसी प्रकार (समझ लो कि) तीनों जगत देखने पर, जिससे वे बने हैं, वही मैं त्रिजगद्रूप नारायण हूँ। चराचर को मेरे रूप में ही देखकर तुम मुझमें लीन हो जाओ। ५९ जिस प्रकार कोई कृपण व्यक्ति अपनी धरोहर पर ध्यान रखकर लोगों में व्यवहार करता है, उसी प्रकार मुझमें चित्त लगाये रखकर तुम घर-गिरस्ती के समस्त काम करो। १६० जिस प्रकार माता अपने नन्हे दुधमुँहे बच्चे पर चित्त रखकर ही अपने अन्य काम (करने के) लिए जाती है, उसी प्रकार मुझे मन में धारण करके घर-गिरस्ती को चला लो। १६१ (लोग) अपने आपके रूप में (ही) विश्व देख लें, सत्कर्म में अन्तराल न होने दें (अखण्ड रूप से सत्कर्म करते रहें)। अहंभाव का त्याग करके वेदों की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करें। ६२ गागर और मटका —दोनों में एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित हो जाता है (प्रतिबिम्ब दो होते हैं, लेकिन सूर्य एक ही है), उसी प्रकार पुरुष और स्त्री (दोनों अलग-अलग दिखायी देते हैं, फिर भी) दोनों को मैंने व्याप्त किया है'। ६३ यदुपति कृष्ण के द्वारा ऐसा बोलने पर वे समस्त स्त्रियाँ बहुत गद्‌गद हो उठीं। उनकी आँखों से निर्मल अश्रुजलधाराएँ बहने लगीं। तब वे क्या बोलीं। ६४ (वे बोलीं—) 'अब पति प्राण ले लेंगे (हमें मार डालेंगे)। हम तुम्हारे चरणों को नहीं छोड़ेंगी। हे जगन्मोहन, तुम कृपा के सागर हो, (जब कि हमारे) ये पति, हे हरि, दारुण हैं। ६५ यह समस्त जगत, घर-गिरस्ती दुःख-रूप है। मानो खदिरांगार की सेज बिछायी हुई हो। हे वनमाली, बता तो दो कि इसपर सुख की नींद कैसे लग जाएगी। ६६ यह जगत अथवा यह घर-गिरस्ती विष-वल्लियों का वन है, अथवा वह बिच्छुओं से भरा हुआ घर है। अथवा (जान पड़ता है, यहाँ) काल सर्प

वदन। उडी कोणा घालवे। ६७ आम्हीं सकळांची आज्ञा मोडून। दृढ धरिले तुझे चरण। तूं माघारें देसी लोटून। हिरोनि मन आमुचें। ६८ सोडितांचि तुझे चरण। तात्काळ जाईल आमुचा प्राण। पति आमुचे परम दारुण। सदना जाऊं न देती। ६९ आपुल्या हातें जगजेठी। कृतांत-भगिनीहृदीं लोटीं। संसारतापें जाहलों कष्टी। करीं गोष्टी येवढी तूं। १७० हांसोनि बोले वैकुंठराणा। नवल पहा जावोनि सदना। पति वंदितील तुमच्या चरणां। तुमच्या गुणा वानिती। १७१ तुम्ही शरण आलिया माझ्या पदा। ते तुमच्या करितील आपदा। मग उणें येईल माझिया ब्रीदा। पहा एकदां जावोनि। ७२ हरिवचनीं विश्वास ठेवूनी। परतल्या सकळ द्विजकामिनी। हरीस प्रदक्षिणा करूनी। पुढती चरणीं लागती। ७३ जिणें कृष्णालागीं त्यजिला प्राण। ती हरिरूपीं गेली मिळोन। जैसें सागरीं ऐक्य जाहलें लवण। नाहीं परतोन आलें तें। ७४ गोविंदाची लीला गात। द्विजपत्न्या परतल्या समस्त। ब्रह्मानंदें त्या डुल्लत। दृश्य पदार्थ दिसेना। ७५ हरिनामाचा ऐकूनि गजर। अनुतापले सकळ विप्र। म्हणती कृष्ण

ने मुँह फैला दिया है। तो (उसके अन्दर) किसके द्वारा छलाँग लगायी जाए। ६७ हमने सबकी आज्ञा न मानकर तुम्हारे चरणों को दृढ़ पकड़ लिया है। (जान पड़ता है—) हमारे मन को छीनकर तुम हमें पीछे धकेल रहे हो। ६८ तुम्हारे चरणों को छोड़ते ही तत्काल हमारे प्राण निकल जाएँगे। हमारे पति परम दारुण (भयावह) हैं। वे (हमें) घर नहीं जाने देंगे। ६९ हे जगद्श्रेष्ठ, तुम अपने हाथों हमें इस यमानुजा यमुना नदी के दह में धकेल दो। हम घर-गिरस्ती के ताप से दु:खी हो गयी हैं। तुम इतनी बात हमारे लिए कर दो'। १७० (यह सुनकर) वैकुण्ठराज भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण बोले, 'आश्चर्य देखो घर जाकर। पति तुम्हारे चरणों का वन्दन करेंगे, तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करेंगे। १७१ मेरे चरणों की शरण में तुम्हारे आ जाने पर, यदि वे तुम्हारे लिए संकट उत्पन्न कर देंगे, तो फिर मेरे प्रण में त्रुटि आ जाएगी। एक बार (घर) जाकर तो देखो'। ७२ कृष्ण की बात पर विश्वास रखकर वे समस्त ब्राह्मण-स्त्रियाँ (अपने-अपने) घर के प्रति लौट गयीं। (जाने से पहले) कृष्ण की परिक्रमा करके वे फिर उनके पाँव लग गयीं। ७३ जिस प्रकार सागर में नमक एकता को प्राप्त हो जाए, तो वह लौटकर (फिर पहले जैसा) नहीं (होकर) आता, उसी प्रकार जिसने कृष्ण के लिए प्राणों को त्यज दिया था, वह (उन नारियों के साथ नहीं लौटी, क्योंकि वह) हरि के रूप में मिल (कर उनके साथ एकात्म हो) गयी। ७४ कृष्ण की लीला का गान करते हुए वे सब ब्राह्मण-स्त्रियाँ लौट गयीं। वे ब्रह्मानन्द से झूम रही थीं। उन्हें दृश्य पदार्थ (तक) नहीं दिखायी दे रहा था। ७५ श्रीहरि के नाम का गर्जन सुनकर समस्त विप्र अनुताप (ग्लानियुक्त पश्चात्ताप) को

पूर्णावतार। वेदश्रुती बोलती। ७६ मूढ आम्ही दुरभिमानी। नेणों अवतरला कैवल्यदानी। नुपजे अनुताप कदा मनीं। गेलों भुलोनि मायेनें। ७७ स्त्रियांनीं घेतलें कृष्णदर्शन। व्यर्थ काय आम्ही पढोन। षड्वैरीं नागवलों पूर्ण। जगज्जीवन नोळखों। ७८ लोकां सांगों करा भजन। आम्हीं मंदभाग्य भजनहीन। पूर्णब्रह्मानंद श्रीकृष्ण। त्या न भजोनि नाडलों। ७९ स्त्रियांसी म्हणती धन्य तुमचें जिणें। तुम्हांवरी कृपा केली नारायणें। व्यर्थ काय करूनि शास्त्रभाषणें। अभिमानें पूर्ण नागवलों। १८० भाविकालागी भगवंत। दर्शन देतो हें यथार्थ। अभाविका न दिसे सत्य। कोटि वर्षें शोधितां। १८१ गर्व देखोनि आमुचा। दुरावला सोइरा निजाचा। पाठिराखा अंतकाळींचा। जो दीनांचा सहाकारी। ८२ द्रव्यमदें जे सदा मत्त। त्यांसी नाटोपे भगवंत। विद्यामदें जे मुसमुशीत। रमानाथ त्यांस कैंचा। ८३ एका भावार्थावांचूनी। वश नव्हें शारंगपाणी। भोगींद्र महिमा जाणोनि। शय्या जाहला

प्राप्त हो गये। वे बोले, 'वेद-श्रुतियाँ कहती हैं— कृष्ण पूर्णावतार हैं। ७६ (परन्तु) हम मूढ़ और दुरभिमानी हैं। हम नहीं जानते थे कि कैवल्यदाता भगवान (कृष्ण के रूप में) अवतार ग्रहण किये हुए हैं। हम माया के प्रभाव से मोहित हो गये थे, अतः मन में कभी भी अनुताप (ग्लानियुक्त पछतावा) नहीं उत्पन्न हो रहा था। ७७ (उधर हमारी) स्त्रियों ने (भगवान) कृष्ण (रूप ब्रह्म) के दर्शन कर लिये। व्यर्थ है, हमारे पढ़ने से क्या! हम (काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर जैसे विकारों रूपी) छहों रिपुओं द्वारा पूर्णतः लूट लिये गये हैं। (इसलिए) जगज्जीवन कृष्ण को नहीं पहचान पाये। ७८ हम लोगों से तो कहा करते हैं— तुम भक्ति करो। (पर) हम मन्दभाग्य हैं, भक्तिहीन हैं। पूर्ण ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) श्रीकृष्ण की भक्ति न करने से संकट में फँस गये हैं'। ७९ (तदनन्तर) वे स्त्रियों से बोले— 'तुम्हारा जीना धन्य है। नारायण ने तुम पर कृपा की है। हमारे द्वारा शास्त्र-सम्बन्धी भाषण करने से क्या हुआ? वह सब व्यर्थ हो गया है। हम अभिमान के कारण पूर्णतः लुट गये हैं। १८० यह यथार्थ (सत्य) है कि भगवान भक्तों को दर्शन देते हैं। (परन्तु) अभक्तों-अश्रद्धों को करोड़ों वर्ष खोजने पर भी वे सचमुच ही दिखायी नहीं देते। १८१ हमारे अभिमान को देखकर हमारा वह सगा हितैषी दूरत्व को प्राप्त हो गया, जो अन्तकाल का सखा होता है, दीनों का सहायक होता है'। ८२ धन के मद से जो सदा मत्त बने रहते हैं, भगवान उनके वश में नहीं होते। जो विद्या के मद से सदा जोश में होते हैं, उनके लिए रमानाथ भगवान कैसे प्राप्त हो सकेंगे। ८३ एक भक्ति-भाव के अतिरिक्त शार्ङ्गपाणि भगवान किसी से वश में नहीं होते। भोगीन्द्र शेष उनकी महिमा जानने से ही स्वयं श्रीहरि के लिए शय्यास्वरूप बन

हरीचा । ८४ श्रीकृष्ण परब्रह्म सांवळें । त्यासी स्वमुखें आम्हीं निंदिलें । निर्मळा मळ लाविले । निर्गुणा ठेविले गुणदोष । ८५ कृपा न करितां श्रीरंग । व्यर्थ काय कोरडा याग । वश न होतां भक्तभवभंग । भवशोक न तुटेचि । ८६ जाहले सद्‌गदित ब्राह्मण । नयनीं वाहे अश्रुजीवन । म्हणती कैसें कर्म गहन । जवळी असोनि हरि नेणों । ८७ एक म्हणती उठाउठीं । चला घेऊं हरीची भेटी । घालूं हरीचरणीं दृढ मिठी । प्रेम पोटीं न समाये । ८८ तों कंसाचे दूत हिंडतीं । वनीं उपवनीं झाडा घेती । गो विप्र शोधूनी मारिती । एक हा सांगती समाचार । ८९ भय वाटे परम मना । यालागीं वना न जाती कृष्णदर्शना । एक म्हणती आम्ही नारायणा । तुझ्या चरणा अंतरलों । १९० एक उठोनि उभे ठाकती । म्हणती चला पाहों श्रीपती । एक म्हणती दैत्य हिंडती । वाटे चित्तीं भय फार । १९१ आडवे आलें मायाजाळ । दूरी अंतरला घननीळ । एक म्हणती धन्य वेल्हाळ । जिणें हरिलागीं प्राण दिधला । ९२ धन्य धन्य तेचि सती । चुकविली जिनें पुनरावृत्ती । देह

गया । ८४ 'श्रीकृष्ण श्याम परब्रह्म हैं हमने अपने मुख से उनकी निन्दा की । हमने निर्मल (ब्रह्म) को मैल लगा दी (दोष लगा दिया); निर्गुण ब्रह्म को गुण-दोष लगा दिये । ८५ श्रीरंग द्वारा कृपा न करने पर यज्ञ क्या शुष्क अतएव व्यर्थ नहीं हो जाता है । भक्त के भव अर्थात् सांसारिक पाशों को भग्न करनेवाले भगवान वश में न होने पर संसार के शोक (दुःख) नहीं टूटते (नष्ट होते) '। ८६ वे ब्राह्मण बहुत गद्‌गद हो उठे । उनके नेत्रों से अश्रुजल बह रहा था । फिर वे बोले, 'कर्म कैसा गहन (अतर्क्य-अज्ञेय) है कि (उसके फलस्वरूप) पास में होने पर भी हम श्रीहरि को नहीं जान पाये '। ८७ कुछ एक बोले, 'चलें, श्रीहरि से शीघ्रतापूर्वक मिल लें । श्रीहरि के चरणों में लिपट जाएँ ।' उनके पेट में अर्थात हृदय में प्रेम भाव नहीं समा रहा था । १८८

तब कंस के दूत घूम रहे थे; वे वन में, उपवन में तलाशी ले रहे थे । वे गायों और विप्रों को खोज-खोजकर मार डालते थे । कुछ एक ने यह समाचार (उन ब्राह्मणों से) कह दिया । १८९ तो उनके मन को परम भय अनुभव हुआ । इसलिए वे वन में कृष्ण के दर्शन के लिए नहीं गये । तो कुछ एक बोले, 'हे नारायण, हम तुम्हारे चरणों से अन्तर को प्राप्त हो गये हैं '। १९० कुछ एक उठकर खड़े हो गये और बोले, 'चलो, श्रीपति को देख लें ।' तो कुछ एक बोले, 'दैत्य घूम रहे हैं, (अतः) चित्त को बहुत डर लग रहा है '। १९१ (इस प्रकार) माया-जाल आड़े (बीच में बाधास्वरूप) आ गया । (अतः) घननील कृष्ण उनसे दूर हो गया । कुछ एक बोले, 'वह सलोनी प्यारी धन्य है, जिसने श्रीहरि के लिए प्राण त्याग दिये । ९२ वही सती धन्य है, धन्य है, जिसने

ठेवोनि श्रीपती । पाहावया धांविन्नली । ६३ धन्य धन्य तेचि नारी । प्राण देवोनि घेतला पूतनारी । मायानदीचे पैलतीरीं । तेचि निर्धारीं पावली । ६४ नाहीं केलें तिनें अनुष्ठान । नाहीं केलें पुरश्चरण । नाहीं आचरली तप दारुण । कैसी नारायणा पावली । ६५ नाहीं तरी आम्ही पढलों व्यर्थ । स्वमुखें निंदिला वैकुंठनाथ । वेडे जाहलों जाणत जाणत । श्रीअच्युत नेणोनि । ६६ हरिविजय ग्रंथ थोर । हाचि केवळ क्षीरसागर । आत्माराम यादवेंद्र । शेषशायी पहुडला । ६७ तों क्षीरसागरींचीं चौदा रत्नें । भक्तासी दिधलीं नारायणें । येथें दृष्टांत साहित्य भाषणें । दिव्य रत्नें झळकती । ६८ तेथें राज्य करी उपमन्य । येथींचे नृपवर भाविक धन्य । ते श्रीहरीसी परममान्य । सात्विक प्रेमळ भक्त जे । ६९ ब्रह्मानंदा यदुवीरा । त्रिभुवनवंद्या ज्ञानसमुद्रा । अक्षय अभंगा श्रीधरा । भक्तोद्धारा सर्वेशा । २०० इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । परिसोत सद्भक्त पंडित । षोडशाध्याय गोड हा । २०१

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

जन्म-मृत्यु की पुनरावृत्ति को टाल दिया, जो देह त्यागकर श्रीपति को देखने के लिए दौड़ गयी । ९३ वही नारी धन्य है, धन्य है, जिसने प्राण देकर पूतनारि कृष्ण को (अपना) लिया । वही निश्चय ही माया रूपी नदी के उस पार को प्राप्त हो गयी । ९४ उसने कोई अनुष्ठान नहीं किया, उसने कोई पुरश्चरण नहीं किया । उसने कठिन तपस्या भी नहीं की । वह कैसे भगवान नारायण को प्राप्त हो गयी । ९५ नहीं तो हम व्यर्थ ही (वेद आदि) पढ़ गये— हमने अपने मुख से वैकुण्ठनाथ भगवान की निन्दा की । भगवान श्री अच्युत को न जानकर हम जानते-बूझते (जान-बूझकर) मूढ़ हो गये '। १९६

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ महान है । यही केवल क्षीरसागर है— जिसके अन्दर यादवेन्द्र आत्माराम कृष्ण शेषशायी होकर पौढ़े हुए हैं । १९७ भगवान नारायण ने (अपने) भक्तों को क्षीरसागर के वे चौदह रत्न प्रदान किये; वे दिव्य रत्न यहाँ साहित्य-कथन (निर्माण) में अर्थात् इस कथा-कथन में दृष्टान्त-स्वरूप में जगमगा रहे हैं । ९८ वहाँ उपमन्यु राज्य कर रहा है । यहाँ के नृपवरस्वरूप भक्त धन्य हैं । जो सात्त्विक प्रेममय भक्त हों, वे श्रीहरि को परम मान्य (सम्मान करने योग्य) जान पड़ते हैं । ९९ हे आनन्दस्वरूप ब्रह्म, हे यदुवीर कृष्ण, हे त्रिभुवन के लिए वन्द्य, हे ज्ञान-समुद्र, हे अक्षय, अभंग, हे श्रीधर, हे भक्तों के उद्धारक, हे सर्वेश । २००

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्री हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । सद्भक्त और पण्डित (विद्वज्जन) इस सोलहवें मधुर अध्याय का श्रवण करें । २०१

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१७

[शरद् ऋतु की रात में रास-लीला]

श्रीगणेशाय नमः ।। जय जय गोवर्धनोद्धारणा । हे कंसारे पूतनाप्राण-हरणा । मधुकैटभारे मुरमर्दना । गोपीरंजना गोपते । १ तुझ्या ठायीं चित्त जडे । तरी संसारदुःख समूळ झडे । चिन्मयपद हाता चढे । न पडे सांकडें कदाही । २ आपुलिया कार्यालागीं प्राणी । सादर सदा दिनयामिनीं । तैसी प्रीति धरील हरिभजनीं । तरी बंधन मग कैंचें । ३ धनइच्छा अंतरीं धरूनी । भाग्यवंतांसी स्तविती जनीं । तैसी गोडी लागे हरिचरणीं । तरी बंधन मग कैंचें । ४ राज्यभांडार कां वृत्ती । जातां प्राणी सायास करिती । तैसे हरिप्राप्तीसी झगटती । तरी बंधन मग कैंचें । ५ वाढावया वंशसंतान । करिती लोक बहु अनुष्ठान । तैसें कृष्णपायीं जडे मन । तरी बंधन मग कैंचें । ६ खोळंबेल लग्नघडी । म्हणोनि संकटी घालिती उडी । तैसी

श्रीगणेशाय नमः । हे गोवर्धन पर्वत को उठानेवाले, हे कंस के शत्रु, हे पूतना के प्राणों का हरण करनेवाले, हे मधु और कैटभ के शत्रु तथा मुर दैत्य का मर्दन करनेवाले भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण, हे गोपियों का (मनो-)रंजन करनेवाले, हे गोपति, (आपकी) जय हो, जय हो । १ (यदि) आप में चित्त लग जाए, तो सांसारिक (घर-गिरस्ती के) दुःख मूल-सहित झरकर नष्ट हो जाते हैं, चिन्मय पद हाथ लग जाता है और कभी भी कोई संकट नहीं आ जाता । २ प्राणी अपने (लाभ के) कार्य के लिए दिन-रात सदा तत्पर रहता है । यदि वैसी ही प्रीति वह हरि-भक्ति में धारण करें, तो फिर उसके लिए कौन सांसारिक बन्धन (शेष) रह जाएगा । ३ धन (पाने) की इच्छा मन में धारण करके लोगों में (जन-समाज में) भाग्यवान का अर्थात धनवान का (लोग) स्तवन करते हैं; यदि वैसी ही रुचि श्रीहरि के चरणों में हो जाए, तो उसके लिए कौन-सा सांसारिक बन्धन (शेष) रह जाएगा । ४ राजभण्डार अथवा राजा या सरकार से मिलनेवाली वृत्ति के नष्ट हो जाने पर प्राणी (उसकी प्राप्ति के लिए अथवा उसे बनाये रखने के लिए) प्रयत्न करते हैं । उसी प्रकार, यदि वे श्रीहरि की प्राप्ति के लिए यत्न करते हों, तो फिर (उनके लिए) कौन-सा सांसारिक बन्धन (शेष) रह जाएगा । ५ सन्तान द्वारा वंश की वृद्धि होने के लिए लोग बहुत अनुष्ठान करते हैं; यदि उसी प्रकार उनका मन कृष्ण के चरणों में लग जाए, तो फिर (उनके लिए) कौन-सा बन्धन (शेष) रह जाएगा । ६ लग्न-घटिका (मुहूरत) रुक जाएगा, अर्थात टल जाएगा —इस (भय) से (लोग) संकट में कूद पड़ते हैं । उसी प्रकार

कृष्णभजनीं धरितां गोडी। तरी बंधन मग कैंचें। ७ एकुलत्या पुत्रासी होतां व्यथा। वैद्य शोधूं धांवती मातापिता। तैसा हरिपदीं कळवळा जडतां। तरी बंधन मन कैंचें। ८ जैसा का तृषाक्रांत प्राणी। उष्णकाळीं उदक धुंडी वनीं। तैसा आवडे चक्रपाणी। तरी बंधन मग कैंचें। ९ कीं अबला कन्या परदेशीं दूरी। परी तिचें मन सदा माहेरीं। तैसी व्रजभूषणीं आवडी धरी। तरी बंधन मग कैंचें। १० असो षोडशाध्यायीं कथा। ऋषिपत्यांनीं कृष्णनाथा। अन्न अर्पूनियां तत्त्वतां। आश्रमाप्रति पातल्या। ११ याउपरी एके दिनीं। वृंदावनीं शारंगपाणी। शरत्कालींची यामिनी। निशामणि निर्मळ दिसे। १२ अंबर नीलवर्ण सोज्ज्वळ। अणुमात्र न दिसे जलदपटल। शोभायमान वन निर्मळ। मलयानिल झळकतसे। १३ चूत कदंब लवंग वृक्ष थोर। जाई जुई चंपक औदुंबर। डाळिंबी पोफळी परिकर। केळी नारळी डोलती। १४ फणस अंजीर रातांजन। बकुळ मोगरे जांभळी कांचन।

कृष्ण की भक्ति में रुचि धारण करने पर फिर उसके लिए कौन-सा बन्धन (शेष) रह जाएगा। ७ इकलौते पुत्र को व्यथा हो जाने पर माता-पिता वैद्य की खोज करने के लिए दौड़ने लगते हैं; उसी प्रकार की रुचि हरि के चरणों में लगने पर फिर (उनके लिए) कौन-सा बन्धन (शेष) रह जाएगा। ८ जिस प्रकार प्यास से व्याकुल प्राणी गर्मियों के काल में वन के अन्दर पानी को खोजता रहता है, उसी प्रकार (मनुष्य को) भगवान चक्रपाणि विष्णुस्वरूप कृष्ण प्रिय लगते हों, तो फिर (उसके लिए) कौन-सा बन्धन (शेष) रह जाएगा। ९ अथवा कोई अबला कन्या दूर परदेस में (ससुराल में) रहती हो, तो (फिर) उसका मन सदा मैके की ओर लगा रहता है; उसी प्रकार कोई मनुष्य ब्रजभूषण कृष्ण में रुचि (प्रेम) धारण करे, तो फिर उसके लिए कौन-सा बन्धन (शेष) रह जाएगा। १० अस्तु। सोलहवें अध्याय में यह कथा (कही गयी) है— ऋषियों की स्त्रियाँ कृष्णनाथ को सचमुच अन्न समर्पित करके (अपने-अपने) आश्रम (के प्रति लौट) आयीं। ११

इसके पश्चात, एक दिन शाङ्‌र्गपाणि विष्णुस्वरूप कृष्ण वृन्दावन में (गये हुए) थे। वह शरद् ऋतु की रात थी। (आकाश में) चन्द्रमा स्वच्छ (उज्ज्वल) रूप में (दिखायी दे रहा) था। १२ आकाश उज्ज्वल नीलवर्ण (से युक्त) था। मेघपटल अणुमात्र भी नहीं दिखायी दे रहा था। वन निर्मल तथा शोभायमान था। मलयपर्वत की-सी शीतल हवा बह रही थी। १३ उस (वन) में आम, कदम्ब, लौंग के बड़े-बड़े वृक्ष थे। जाही, जूही, चम्पक, औदुम्बर (गूलर) थे; सुहाने दाड़िम (अनार), पूगीफल (सुपारी), केले, नारियल के पेड़ डोल रहे थे। १४ कटहल, अंजीर, रातांजन, बकुल (मौलसिरी), जामुन, कांचन

सदा वृक्ष भेदीत गेले गगन। आंत सूर्यकिरण न दिसे। १५ रावे साळ्या हंस मयूर। चातकें बदकें जवादीमांजर। कस्तूरीमृग सारसें सुंदर। चक्रवाकें खेळती। १६ ऐसेया वनीं चांदणें यामिनीं। पाहोनियां शारंगपाणी। पांवा वाजवी कैवल्यदानी। वृंदावनीं तेधवां। १७ श्रीकृष्ण परब्रह्म निर्मळ। सगुणरूप अतिवेल्हाळ। जो सजलजलदवर्ण तमाललीळ। परममंगलदायक जो। १८ सांवळें सुहास्यवदन। आकर्णविशाळ राजीवनयन। मुरली वाजवी छंदेंकरून। आनंदघन श्रीकृष्ण। १९ कोट्यनुकोटी मीनकेतन। ओंवाळिजे मुखचंद्रावरून। पूर्णकाम रमारमण। मोहिलें मन गोपिकांचें। २० ऐकोनि मुरलीचा ध्वनी। वेधल्या गोकुळींच्या नितंबिनी। देह गेह सकळ विसरोनी। निघती वनीं हरि पाहूं। २१ नाना शास्त्रांचें श्रवण। हें एक करिती गोदोहन। गोपी तें सकळ टाकून। निघती मनमोहन पहावया। २२ सारासारविचारणा। एकीनें आरंभिलें घुसळणा। तें सांडूनि जनार्दना। पहावया चालिली। २३ नाना इंद्रियांच्या वृत्ती। हींच बाळें घरीं टाकिती। हरिपद पहावया धांवती। प्रेम चित्तीं न सांवरे। २४

(जैसे) वृक्ष नित्य आकाश को भेदते हुए (ऊपर) गये (जान पड़ते) थे। (वह वन इतना घना था कि) अन्दर सूर्य की किरण तक (पैठती) नहीं दिखायी देती थी। १५ (वहाँ उस वन में) तोते, मैनाएँ, हंस, मोर, चातक, बत्तख, जवादिबिड़ाल, कस्तूरी मृग, सुन्दर सारस, चक्रवाक खेलते रहते थे। १६ तब वृन्दावन नामक उस वन में रात को चाँदनी देखकर कैवल्य पद के दाता कृष्ण ने मुरली बजाना आरम्भ किया। १७ जो श्रीकृष्ण (स्वयं) निर्मल, अति सुन्दर सगुणरूपधारी परब्रह्म हैं, जो जलयुक्त मेघ के वर्ण वाले, तमालनील वर्ण के हैं, परम मंगलदाता हैं, वे सुहास्य-वदन, आकर्ण-विशाल कमल-से नेत्र वाले, आनन्दघन श्रीकृष्ण अपनी ही धुन में मुरली बजाने लगे। १८-१९ उनके मुखचन्द्र पर कोटि-कोटि मकरध्वज कामदेवों को निछावर कर दें। ऐसे उन पूर्णकाम रमारमण विष्णुस्वरूप कृष्ण ने (मुरली की ध्वनि से) गोपियों के मन को मोहित कर डाला। २० मुरली की ध्वनि को सुनते ही गोकुल की स्त्रियाँ (उस ओर) आकृष्ट हो गयीं। वे देह और गेह को भूल गयीं और श्रीकृष्ण को देखने के हेतु वन की ओर जाने के लिए निकलीं। २१ कुछ एक गोपियाँ (उस समय) गो-दोहन-स्वरूप नाना (प्रकार के) शास्त्रों का श्रवण कर रही थीं। तो वे उस समस्त (काम) को त्यागकर मनमोहन कृष्ण को देखने के लिए चल दीं। २२ किसी एक ने मन्थन-स्वरूप सार-असार-विचार आरम्भ किया था। उसे छोड़कर वह जनार्दन कृष्ण को देखने के लिए चल दी। २३ वे (गोपियाँ) अपने बच्चों-स्वरूप विविध इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को घर में रखते हुए श्रीहरि के पदों को देखने के लिए चल दीं। उनके

नाना तीर्थपर्यटन। एक सांडिती हें नाहण। सांडिलें प्रपंचवसन। शरीर नग्न नाठवे।२५ नाना व्रतें तपें चोखणी। एक बैसली शिरीं लावुनी। ऐकतांचि मुरलीध्वनी। जात कामिनी तैसीच।२६ वायुधारण अष्टांग-साधन। हेंचि करीत होती भोजन। तें तैसेंचि सांडून। खंजनाक्षी चालिली।२७ प्रवृत्तीचे अलंकार। एक लेऊं विसरली सुंदर। लज्जेची बुंथी परिकर। सांडूनि सत्वर चालिली।२८ एक पडली कर्मजाळीं। स्वयंपाक करिती सोंवळी। मनीं आठवतां मूर्ति सांवळी। जाय वेल्हाळी सत्वर।२९ एक समाधिशेजे निजतां कामिनी। तों ऐकिला मुरलीचा ध्वनी। समाधीहूनि गोडी हरिचरणीं। जात कामिनी सांडोनियां।३० नाना साधनें दळणधंदा। सांडोनि चालिली एक मुग्धा। एक सांडोनियां वादप्रतिवादा। ब्रह्मानंदा पाहों जाय।३१ ऐशा गोपी चालिल्या समस्त। कृष्णचरणीं जाहल्या आसक्त। वृंदावनीं पांवा वाजवीत। ऐकोनि निश्चित धांवती।३२

चित्त में (कृष्ण-सम्बन्धी उनका) प्रेम समा नहीं रहा था। २४ कुछ एक ने स्नान-रूप विविध तीर्थस्थलों की यात्रा त्याग दी; तो कुछ एक ने वस्त्र-स्वरूप सांसारिक कामकाज अथवा प्रवृत्ति का त्याग किया; अपने-अपने नंगे शरीर का स्मरण उन्हें नहीं हो रहा था। २५ कोई एक कामिनी नाना (प्रकार के) व्रतों और तपों रूपी अंगराग (उबटन) सिर में लगाकर बैठी हुई थी। (परन्तु) मुरली की ध्वनि सुनते ही वह वैसी ही चल दी। २६ कोई एक भोजन-स्वरूप प्राणवायु-धारणा (प्राणायाम) से युक्त अष्टांग योगसाधना कर रही थी। (परन्तु मुरली की ध्वनि सुनते ही) वह खंजनाक्षी स्त्री वैसा ही छोड़कर चल दी। २७ कोई एक प्रवृत्ति-स्वरूप सुन्दर आभूषण पहनना भूल गयी। वह लज्जा रूपी सुन्दर घूँघट छोड़कर (हटा डालकर) झट से चली गयी। २८ कोई कर्मजाल में (फँस) पड़ी थी। वह पाक-साफ़ (के विचार से) रसोई बना रही थी। (परन्तु मुरली की ध्वनि सुनते ही) वह सुन्दरी मन में कृष्ण की मूर्ति का स्मरण होते ही झट से चल दी। २९ कुछ एक कामिनियाँ समाधि-स्वरूप शय्या पर सोयी हुई थीं, तो ही उन्होंने मुरली की ध्वनि सुन ली; उन्हें समाधि की अपेक्षा श्रीहरि के चरणों में अधिक रुचि थी। (इसलिए उस समाधि-स्वरूपा) निद्रा को दूर करके वे चली गयीं। ३० कोई एक मुग्धा गोपी पिसाई-स्वरूप नाना साधनाओं को छोड़कर चली गयी; तो कोई एक वाद-प्रतिवाद को छोड़कर (साक्षात्) आनन्दस्वरूप ब्रह्म को देखने के लिए चल दी। ३१ इस प्रकार (की) समस्त गोपियाँ चली गयीं। वे कृष्ण के चरणों में आसक्त हो गयी थीं। (कृष्ण द्वारा) वृन्दावन में बाँसुरी को बजाये जाते सुनते ही वे निश्चय (पूर्वक उस ओर) दौड़ने लगीं। ३२ (इस प्रकार) असंख्य गोपियों का

असंख्य गोपींची मंडळी। वेगें आली हरीजवळी। भोंवता वेष्टिला वनमाळी। गोपी सकळी मिळोनियां। ३३ हरि म्हणे तयांतें। सांडोनियां गृहधर्मातें। टाकोनियां निजपतीतें। किमर्थ येथें पातलां। ३४ आपुला पति तो ईश्वर। मानूनि भजावें निरंतर। ऐसें ऐकतां कानीं उत्तर। गोपी सद्गद ज़ाहल्या। ३५ अहा मंगळधामा श्रीकृष्णा। आम्ही सांडूनि संसारतृष्णा। शरण आलों तुझिया चरणा। तूं या वचना बोलसी। ३६ अद्वयदृष्टीनें पाहिलें ज़री। तूंचि अससी पतींचे अंतरीं। येथेंही तूंचि मुरारी। ऐकतां पूतनारि हांसतसे। ३७ त्यांचा अंतरभाव ज़ाणोनी। वश ज़ाहला मोक्षदानी। रासमंडळ रचोनी। चक्रपाणी खेळतसे। ३८ ज़ैसी कां ओंविली माळ। सुवर्णमणि आणि इंद्रनीळ। एक गोपी एक घननीळ। हस्त धरिती परस्परें। ३९ तप्तकांचनवर्ण गोपीबाळा। मध्यें इंद्रनीळ घनसांवळा। ह्या वेदश्रुती निर्मळा। हरिरूपीं जडल्या हो। ४० एक गोपी एक कृष्ण। परस्परें स्कंधीं हात ठेवून। नृत्य करिती तें पाहतां तल्लीन। अष्ट नायिका पैं होती। ४१ गाती सुरस सुस्वर। ऐकतां तटस्थ होती किन्नर। जगद्वंद्य

समुदाय वेगपूर्वक कृष्ण के पास आ गया। उन सब गोपियों ने मिलकर वनमाली कृष्ण को चारों ओर से घेर लिया। ३३ तो कृष्ण उनसे बोले, 'गृहधर्म (गृहिणी के कर्तव्यकर्मों) को छोड़कर, अपने-अपने पति को छोड़कर तुम यहाँ किसलिए आ गयी हो? । ३४ यह मानकर कि अपना पति (ही) ईश्वर है, उसकी निरन्तर भक्ति करें।' कानों से ऐसा उत्तर (वचन) सुनते ही गोपियाँ बहुत गद्गद हो उठीं। ३५ (वे बोलीं—) 'अहो मंगलों के धाम श्रीकृष्ण, हम संसार (घर-गिरस्ती) सम्बन्धी तृष्णा (आशा-आकांक्षाओं) को छोड़कर तुम्हारे चरणों की शरण में आ गयी हैं; (फिर भी) तुम यह बात कह रहे हो। ३६ अद्वय दृष्टि से यदि देखें, तो तुम्हीं (हमारे) पति के अन्तःकरण में रहते हो (और) यहाँ भी हे मुरारि, तुम्हीं हो।' ऐसा सुनते ही पूतनारि कृष्ण हँस पड़े। ३७ उनके अन्तर्भाव (मन की भक्ति-भावना) को जानकर वे मोक्ष-दाता (कृष्ण) उनके वश में हो गये। (फिर वे) चक्रपाणि कृष्ण मण्डल की रचना करके रास खेलने लगे। ३८ जिस प्रकार एक-एक सुवर्ण-मनका और एक इन्द्रनील रत्न डालकर माला पिरोयी हुई हो, उसी प्रकार एक-एक गोपी और एक-एक घननील कृष्ण ने एक-दूसरे के हाथ थाम लिये। ३९ (चारों ओर) तप्त सुवर्ण के वर्णवाली गोपबालाएँ थीं, उनके बीच में इन्द्रनील वर्ण के घनश्याम कृष्ण थे। (जान पड़ता था मानो) निर्मल वेदश्रुतियाँ श्रीहरि के रूप में जड़ी हुई हों। ४० एक-एक गोपी और एक-एक कृष्ण एक-दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर नृत्य करने लगे। उसे देखकर अष्ट नायिकाएँ (घृताची आदि इन्द्र की राजसभा की अप्सराएँ)

गात मधुर। प्राणी चराचर विस्मित। ४२ दिव्य मोतियांचे हार पूर्ण। गोपींच्या गळां दिसती सुवर्णवर्ण। तींच मोत्यें इंद्रनीळासमान। हरीच्या गळां शोभती। ४३ असंख्य रूपें धरूनि हरी। नाचत गोपिकांमाझारी। पाचूचीं पदकें हृदयावरी। झळकताती सर्वांच्या। ४४ षोडशकळी नक्षत्रनायक। दिसे अत्यंत आल्हादकारक। यमुनापुलिनभूमीवर देख। रास सुरेख मांडिला। ४५ शरत्काळ परमसुंदर। कुमुदिनींवर रुणझुणती भ्रमर। येत सुगंध मलय-समीर। सकळ तरुवर फुलले हो। ४६ जैसा विद्युल्लताभार गगनीं। तैशा तळपती दिव्य कामिनी। तेथींच्या दिव्य सुवासेंकरूनी। दाही दिशा दाटल्या। ४७ जें ते गोपीसी वाटत। कीं मजपाशीं असे भगवंत। परी त्याचे रूपांसी नाहीं अंत। विश्वंभर जगदात्मा। ४८ गौरवर्ण खंजरीटनयना। मध्यें घननीळ वैकुंठराणा जे। ते गोपीस वाटे जाणा। कीं मीच कृष्ण भोगितें। ४९

तल्लीन हो गयीं। ४१ वे (सब गोपियाँ और कृष्ण) सुरस से युक्त सुस्वर (सुरीले स्वर में) गा रहे थे। उसे सुनकर किन्नर चकित हो गये। जगद्वन्द्य कृष्ण (जब) मधुर गा रहे थे, तो प्राणी, चराचर विस्मित हो उठे। ४२ दिव्य मोतियों के सम्पूर्ण हार गोपियों के गले से स्वर्ण-वर्ण के दिखायी दे रहे थे (क्योंकि श्वेत उज्ज्वल मोती उनके स्वर्ण-वर्ण गले में पहने हुए थे)। परन्तु वे ही मोती श्रीहरि के गले में इन्द्रनील (मणियों) के समान शोभायमान थे। ४३ श्रीहरि असंख्य रूप धारण करके गोपियों के बीच नाच रहे थे। (उस समय) सबके हृदय (-स्थल) पर मरकत के पदिक जगमगा रहे थे। ४४ (आकाश में) नक्षत्रों का नायक सोलह कलाओं से युक्त अर्थात पूर्ण चन्द्रमा अत्यन्त आह्लाददायी दिखायी दे रहा था। (ऐसे समय कृष्ण ने) यमुना की पुलिन भूमि पर सुन्दर रास नृत्य आरम्भ किया। ४५ वह परम सुन्दर शरद ऋतु थी। कुमुदकमलों पर भ्रमर रुनझुना रहे थे। मलय की-सी सुन्दर सुगन्धित वायु आ रही थी। समस्त तरुवर खिले हुए थे। ४६ जिस प्रकार विद्युल्लताओं के समूह आकाश में चमकते हैं, उसी प्रकार वे दिव्य कामिनियाँ जगमगा रही थीं। वहाँ की दिव्य सुगन्ध से दसों दिशाएँ भर उठी थीं। ४७ जिस-तिस गोपी को लग रहा था कि भगवान कृष्ण मेरे पास हैं। परन्तु (वस्तुतः) उन (कृष्ण) के रूपों का कोई पार नहीं है; (वे असंख्यात रूप धारण कर सकते हैं, क्योंकि) वे (स्वयं) विश्वम्भर जगदात्मा हैं। ४८ वे (गोपियाँ) गौर वर्ण की तथा खंजन पक्षियों की-सी आँखों वाली थीं। उनके बीच वैकुण्ठ के राजा विष्णुस्वरूप घननील कृष्ण थे। समझिए कि जिस-तिस अर्थात हर एक गोपी को जान पड़ रहा था, मैं ही कृष्ण का उपभोग कर रही हूँ। ४९ कृष्ण सलोने, मेघवर्ण (श्याम) हैं। (कृष्ण के उन असंख्य रूपों के) बीच में वे सुन्दरियाँ बिजलियाँ (ही) थीं। अथवा वे (मानो)

कृष्ण जलदवर्ण साजिरा। माजी सौदामिनी त्या सुंदरा। कीं त्या सुवर्णलतिका परिकरा। सुकल्या कामानळेंचि। ५० त्यांचे पूर्ण काम पुरवीत। श्रीरंग नीरद वर्षत। कीं श्रीकृष्ण नक्षत्रनाथ। गोपी उडुगण शोभती। ५१ कीं श्रीकृष्ण वासरमणी। भोंवतीं किरणें नितंबिनी। प्रतिभास मित्रकन्याजीवनीं। तैशाचि तेथें तळपती। ५२ गोपींचीं कुंडलें आणि नयन। हेचि प्रतिबिंबीं तळपती मीन। गोपीकुच हेंचि तारक घेऊन। मीनकेतन पोहतसे। ५३ कीं त्या वनामाजी सुंदर। अनंग हाचि नृपवर। केशकुसुम वर्तुळाकार। हेंचि छत्र तयाचें। ५४ पाडळीपुष्पें परिकर। हाचि माजी बांधिला तूणीर। केतकीपुष्पांतील लघुपत्र। तोचि कुंत निज करीं। ५५ कीं केतकीपत्रें थोर थोर। हाचि कर्वत परम तीव्र। मस्तकीं घालोनियां भार। कर्वती विषयपरांसी। ५६ असो नाचतां रासमंडळीं। गोपीमुखां मुख लावी वनमाळी। तांबूल घाली मुखकमळीं। सुखी वेल्हाळी होती त्या। ५७ जे जे कामिनीचें जैसें मन। तैसाचि होय जगन्मोहन। तिची अंतरकळा देखोन। करूनि स्तवन सुखी करी। ५८ चंदनें चर्चित हस्त। गोपींच्या कुचयुगीं

सुन्दर स्वर्ण-लतिकाएँ थीं, जो कामाग्नि (की आँच लगने) से सूख गयी थीं। ५० श्रीरंग कृष्ण उनकी कामनाओं को पूर्ण कर रहे थे, वे (उन सूखी लताओं पर) मेह को बरसा रहे थे। अथवा श्रीकृष्ण नक्षत्रनाथ चन्द्रमा थे, तो वे गोपियाँ तारागण-जैसी शोभायमान थीं। ५१ अथवा श्रीकृष्ण (मानो) सूर्य थे, तो वे नितम्बिनियाँ (नारियाँ) उनके चारों ओर (स्थित) किरणें (जान पड़ रहीं) थीं। वे सूर्यकन्या यमुना के जल में प्रतिबिम्बित हो रही थीं— वे वैसे ही जगमगा रही थीं। ५२ गोपियों के कुण्डल और नयन ही प्रतिबिम्बों में (मानो) मत्स्य-जैसे चमक रहे थे। उन गोपियों के कुचों रूपी तारकों को लेकर मीनकेतन कामदेव (कृष्ण के रूप में) तैर रहे थे। ५३ अथवा उस सुन्दर वन के अन्दर कामदेव ही (मानो) राजा था (और) वर्तुलाकार केशस्वरूप फूल ही (मानो) उसका छत्र था। ५४ उसने सुन्दर पाटलपुष्प रूपी तूणीर अन्दर बाँध लिया था। केवड़े के फूलों के लघुपत्र (मानो) उसके हाथ में लिया हुआ खड्ग था। ५५ अथवा केवड़े के बड़े-बड़े पत्ते (पंखुड़ियाँ) ही (मानो) परम पैने आरे थे। वे (मानो) मस्तक पर भार-स्वरूप रखकर विषय रूपी परों को काट रहे थे। ५६ अस्तु। रासमण्डल में नाचते-नाचते वनमाली कृष्ण अपना मुख गोपियों के मुखों से लगाते थे और उनके मुख-कमलों में ताम्बूल (बीड़े) डालते थे। इससे वे सलोनी गोपियाँ सुखी-तुष्ट होती जा रही थीं। ५७ जिस-जिस कामिनी का जैसा-जैसा मन (भाव, इच्छा) हो, जगन्मोहन कृष्ण वैसे-वैसे ही हो जाते थे। उसकी अन्तरकला अर्थात आन्तरिक इच्छा देखकर उसकी स्तुति करते हुए वे

ठेवीत। क्षणक्षणां चुंबन देत। नाचत नाचत तयांतें। ५९ ऐशा नाचतां भागल्या कामिनी। हरिकंठीं मिठी घालोनी। मग सुरतयुद्धालागोनी। सुखशयनीं प्रवर्तल्या। ६० पूर्णकाम रमानाथ। सर्वांचे पुरवी मनोरथ। जे ते भावी मनांत। सुख समस्त मीच भोगीं। ६१ गोपीच्या वदनेंदूवरी। श्रमबिंदु देखतांचि हरी। पुसूनि आपुल्या पीतांबरीं। मन हरी तयांचें। ६२ गोपींचे कुच कुंकुमें चर्चित। हरिअंगीं त्या मुद्रा उमटत। कस्तूरीमळवट पुसत। मुख चुंबितां परस्परें। ६३ हृदयग्रंथी कंचुकीच्या। हस्तें तुटल्या जगद्गुरूच्या। निऱ्या फेडिल्या नारींच्या। तारिल्या साच कामिनी। ६४ सेवितां हरीचें अधरामृत। गोपींचा काम दुणावत। आंगींचा चंदन समस्त। ठायीं ठायीं पुसतसे। ६५ गोपींच्या नेत्रींचीं अंजनें। हरूनि नेलीं निरंजनें। कुचग्रहणें जगज्जीवन। अधररंग हरियेला। ६६ ऐशा क्रीडा करितां वनमाळी। घर्म पातलिया वेल्हाळी। मग रिघोनि यमुनाजळीं। विचित्र खेळ खेळती। ६७ तों एक बोलती कामिनी। चला मागुती क्रीडों वनीं। त्यांचें

उसे सुख-सम्पन्न बना रहे थे। ५८ वे अपने चन्दन-विलेपित हाथ गोपियों के कुचयुगल पर रख देते, नाचते-नाचते क्षण-क्षण उनका चुंबन कर लेते थे। ५९ इस प्रकार नाचते-नाचते वे कामिनियाँ थक गयीं, तो श्रीकृष्ण के गले में बाँहें डालकर फिर सुरत-युद्ध के लिए सुख-शय्या पर उद्यत हो गयीं। ६० रमानाथ विष्णुस्वरूप कृष्ण (स्वयं) पूर्णकाम हैं; वे उन सब (गोपियों) की इच्छाओं को पूर्ण कर रहे थे। (उनमें से) हर कोई गोपी मन में समझ रही थी— मैं ही समस्त सुख का उपभोग कर रही हूँ। ६१ उस-उस गोपी के मुखचन्द्रमा पर श्रमजल की बूँदों को देखकर वे अपने पीताम्बर से पोंछ दिया करते थे और (इस प्रकार) उसके मन का हरण किया करते थे (मन को मोहमुग्ध बना रहे थे)। ६२ गोपियों के कुच कुंकुम से विलेपित थे। (उनको हृदय से लगाने पर) कृष्ण के अंग (हृदय पर) उनके चिह्न अंकित हो जाते थे। एक-दूसरे के मुख का चुम्बन करने पर कस्तूरी का लेपन पुँछ जाता था। ६३ जगद्गुरु-स्वरूप कृष्ण के हाथों (गोपियों की) कंचुकियों की गाँठें हृदय-स्थल पर खुल गयीं। उन्होंने (अपने हाथों से उनकी) साड़ियों की चुन्नटें (चुननें, नीवियाँ) खोल दीं। इस प्रकार उन्होंने उन समस्त कामिनियों को तार लिया (उनका उद्धार किया)। ६४ (परन्तु) श्रीहरि के अधरामृत का सेवन करने पर गोपियों का काम-भाव दुगुना होता जाता था। उनके अंग-अंग में लगा हुआ चन्दन स्थान-स्थान पर पुँछ जाता था। ६५ निरंजन-निर्लेप ब्रह्म-स्वरूप कृष्ण ने गोपियों के नेत्रों में लगाये अंजन दूर कर दिये। जगज्जीवन कृष्ण ने उनके कुचों को पकड़कर (उनका चुम्बन करते हुए उनके) होंठों के रंग का हरण किया। ६६ वनमाली द्वारा इस प्रकार की

चक्रपाणी। पूर्णकाम म्हणोनियां। ६८ आनंदें गोपींशीं क्रीडतां। श्रम न वचन मानी चक्रपाणी। वाटेचि कृष्णनाथा। जो महाराज ऊर्ध्वरेता। ब्रह्मचारी निर्वाण। ६९ अष्टवर्षांची मूर्ति। वीर्यासी नाहीं अधोगति। लीलाकौतुक यदुपति। भक्तांलागीं दावीतसे। ७० जे कां विषयपर जन। न करिती लीला श्रवण। त्यांसी शृंगाररस दावून। वेधी मन आपणाकडे। ७१ षण्मासांची करूनि राती। उद्धरिल्या कामभोगें युवती। त्या कथा वाचितां जन उद्धरती। गोपी न तरती कैशा पां। ७२ ज्यास ज्या रसाची प्रीति। ते ते दावूनि उद्धरी श्रीपति। नवरसलीला नवविध भक्ति। दावी यदुपति तारावया। ७३ गोपींशीं क्रीडला यादवेंद्र। आपण तैसेंचि करूं पाहती जे नर। ते केवळ

क्रीड़ाएँ करते रहने पर वे सलोनी गोपियाँ पसीने को प्राप्त हो गयीं (उन्हें पसीना आने लगा)। तब वे यमुना-जल में पैठकर विचित्र-विचित्र खेल खेलने लगे। ६७ तब कुछ एक नारियाँ बोलीं, 'चलो, फिर से वन में क्रीड़ा करें।' तो उनकी बात को पूर्णकाम होने के नाते (अर्थात दूसरों की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले होने के नाते) चक्रपाणि कृष्ण ने मान लिया। ६८ आनन्द के साथ गोपियों से खेलते-खेलते उन कृष्णनाथ को कोई श्रम (थकावट) नहीं अनुभव होता था, जो स्वयं चरम स्तर के उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी महाराज हैं। ६९ वे स्वयं अष्टवर्षीय मूर्तिस्वरूप थे; (अतः) उनके वीर्य को कोई निम्न की ओर गति नहीं थी (उनका वीर्यपात नहीं हो रहा था)। इस प्रकार यदुपति कृष्ण अपने भक्तों को लीलाओं का कौतुक दिखा रहे थे। ७० जो लोग विषयी होते हैं, वे (ठीक से उनकी) लीलाओं का श्रवण नहीं करते। अतः उनको (इस रासलीला द्वारा) शृंगार रस दिखाकर वे उनके मन को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। ७१ छः महीनों की एक रात बनाकर उन्होंने उन युवतियों का कामभोग द्वारा उद्धार किया। उन कथाओं को पढ़कर लोग उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं; (फिर) वे गोपियाँ (स्वयं) कैसे (भवसागर को) तैरकर उद्धार को प्राप्त न हो जातीं। ७२ जिसे जिस रस के प्रति रुचि हो, उसके लिए वैसा-वैसा रस प्रदर्शित करके श्रीपति कृष्ण ने उसका उद्धार कर लिया। इस प्रकार यदुपति कृष्ण ने (अपने भक्तों का) उद्धार करने के हेतु नवरसों[1] से युक्त लीलाओं द्वारा नवविधा[2] भक्ति प्रदर्शित की। ७३ (जिस प्रकार) यादवेन्द्र कृष्ण ने गोपियों के साथ क्रीड़ा की, उसी प्रकार (की क्रीड़ा) जो नर स्वयं करना चाहते हों, वे तो केवल अज्ञान, पामर

१ नवरस : शृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक, करुण, हास्य, अद्भुत और भक्ति।

२ नवविधा भक्ति : श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन।

अज्ञान पामर। नरक घोर भोगिती। ७४ कृष्णें केलें विषपान। यांसी अणुमात्र न करवे सेवन। हरीनें उचलिला गोवर्धन। यांसी जड पाषाण उचलेना। ७५ कृष्णें महाअग्नि केला प्राशन। यांवरी पडतां स्फुलिंग येऊन। दुरी पळती भिऊन। हरिसमान होऊं म्हणती। ७६ हरि भोगूनि अनंत नारी। शेखीं ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी। त्याची करूं पाहती जे सरी। तेचि भवपूरीं बुडाले। ७७ स्त्रीसमागमनें इतर जन। होती ते तेजहीन कुलक्षण। ऊर्ध्वरेता जगन्मोहन। सतेज पूर्ण सर्वदा। ७८ कृष्णें केलें परद्वार। परशुरामें उडविलें मातेचें शिर। तैसेंचि करूं म्हणती जे नर। तेचि पामर अभाग्य। ७९ यालागीं हरिपदीं मन ठेवून। करा रासक्रीडा श्रवण। तेणें तोषोनि जगज्जीवन। निर्विषय करी निजभक्तां। ८० असो आतां भगवान। पुढती रासमंडळ रचोन। जे जे गोपीचें जैसें मन। तैसा आपणहोतसे। ८१ एकीस कडेवरी घेऊनी। दूरी नेत एकांत स्थानीं। एकी कृष्णअंकीं शिर ठेवूनी। श्रमोनि कामिनी निजतसे। ८२ एक रुसली हरीवरी। तीस

हैं। वे (इसके फलस्वरूप) घोर नरक का भोग करते हैं। ७४ कृष्ण ने तो विषपान कर लिया था; (परन्तु) इनके द्वारा अणुमात्र (विष) का भी सेवन नहीं किया जा पाएगा। श्रीहरि ने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था। (परन्तु) इनसे तो (साधारण) जड़ पाषाण (तक) उठाया नहीं जा पाएगा। ७५ कृष्ण ने महान् अग्नि प्राशन किया था (निगलकर बुझा डाला था); (परन्तु) इनपर अग्निकण के आकर पड़ जाते ही ये डरकर भाग जाते हैं— (फिर भी) वे कहते हैं, 'हम श्रीहरि के समान हो जाएँगे'। ७६ अनगिनत नारियों का उपभोग करने पर भी श्रीहरि अन्ततः ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं। उनकी बराबरी जो करना चाहते हों, वे ही संसार रूपी प्लावन में डूब जाते हैं। ७७ अन्य लोग स्त्री-समागम से तेजोहीन होते हैं, कुलक्षणों से युक्त होते हैं। परन्तु ऊर्ध्वरेता जगन्मोहन श्रीकृष्ण नित्य पूर्ण तेजोयुक्त रहते हैं। ७८ कृष्ण ने पर-स्त्री-गमन किया; परशुराम ने माता का सिर काट डाला —वैसा ही जो नर करना चाहते हों, वे ही अभागे पामर नर हैं। ७९ इसलिए श्रीहरि के चरणों में चित्त (लगाये) रखकर रासक्रीड़ा का श्रवण कीजिए। उससे जगज्जीवन कृष्ण तुष्ट होकर अपने भक्तों को विषय (भोगों की) वासना से रहित कर देते हैं। ८० अस्तु। अब भगवान कृष्ण रास-मण्डल की रचना करके स्वयं वैसे ही हो जाते थे, जैसे-जैसे गोपियों का मन अर्थात गोपियों की इच्छा होती थी। ८१ किसी एक को गोद में उठाकर वे उसे एकान्त स्थल पर ले गये, तो कोई (दूसरी) एक कामिनी कृष्ण की गोद में सिर रखे श्रम (थकावट) के कारण सो गयी। ८२ कोई एक मुरारि श्रीहरि से रूठ गयी, तो वे उसे समझाने-बुझाने (मनाने) लगे; तो वे किसी एक के मुख को

समजावीत मुरारी। एकीचें वदन कुरवाळित करीं। म्हणे तुज पळभरी न विसंबें। ८३ एकीच्या अंगावर टाकोनि अंग। प्रीतीनें निजतसे श्रीरंग। असंख्य रूपें धरूनि कोमलांग। मनोभाव पुरवीतसे। ८४ एकीच्या नयनीं अश्रु आले। ते हरीनें निजकरीं पुशिले। रमेहूनि भाग्य आगळें। गोपिकांचें वाटतसे। ८५ एकीस स्कंधीं घेऊनी। नेवोनि निजवी कीं शयनीं। एकीचे मुखीं तांबूल घालूनी। चक्रपाणी हरी मन। ८६ असो ऐसा क्रीडतां जगज्जीवन। गोपींनीं धरिला अभिमान। म्हणती कृष्ण जाहला आम्हां आधीन। बोलें आमुच्या वर्ततसे। ८७ जो ब्रह्मादिकां न पडे दृष्टी। आम्हीं तो वश केला जगजेठी। ज्यासी हृदयीं ध्यात धूर्जटी। तो घाली मिठी आमुच्या गळां। ८८ आम्ही सकळांमाजी थोर। आमुचें वचन ऐके श्रीधर। ऐसा अभिमान देखतां मुरहर। केलें विचित्र तेधवां। ८९ असंख्य रूपांसहित भगवान। गुप्त जाहला न लागतां क्षण। अभिमानच्छेदक मनमोहन। त्यासी दुजेपण सोसेना। ९० गुप्त होतांचि भगवंत। गोपी चमकल्या समस्त। शोक करिती अद्भुत। अहा कृष्णनाथ दिसेना। ९१ षोडशकलायुक्त अत्रिसुत।

सहेलते हुए कह रहे थे— 'मैं तुझे एक पल भर तक नहीं भुला पाता'। ८३ श्रीरंग कृष्ण किसी एक की देह पर अपनी देह रखकर प्रेमपूर्वक सो गये। इस प्रकार वे कोमल अंगों से युक्त भगवान कृष्ण असंख्य रूप धारण करके गोपियों की मनोकामनाओं को पूर्ण कर रहे थे। ८४ किसी एक की आँखों में आँसू आ गये, तो कृष्ण ने उन्हें अपने हाथों से पोंछ डाला। जान पड़ता है, उन गोपियों का भाग्य रमा (लक्ष्मी) के भाग्य से (भी) न्यारा है। ८५ किसी एक को अपने कन्धे पर उठाकर उन चक्रपाणि कृष्ण ने उसे शय्या पर सुला दिया, तो किसी एक के मुँह में ताम्बूल डालकर उन्होंने उसके मन को हर लिया (विमोहित कर लिया)। ८६ अस्तु। जगज्जीवन द्वारा इस प्रकार क्रीड़ा करते रहने पर गोपियों ने अभिमान धारण किया। वे बोलीं (उन्होंने माना)— 'कृष्ण (अब) हमारे अधीन हो गया है। हमारे कहे अनुसार वह आचार-व्यवहार करता है। ८७ हमने उस जगत्-श्रेष्ठ को अपने वश में कर लिया है, जो ब्रह्मा आदि को दिखायी नहीं देते, शिवजी जिसका ध्यान अपने हृदय में करते रहते हैं, वह हमारे गले में बाँहें डालता है। ८८ हम सबमें बड़ी हैं, (इसलिए तो) श्रीधर कृष्ण हमारी बात मानता है।' तब मुरहर कृष्ण ने (उनके) ऐसे अभिमान को देखकर एक चमत्कार कर लिया। ८९ भगवान कृष्ण क्षण न लगते उन असंख्य रूपों के साथ गुप्त हो गये। मनमोहन कृष्ण तो (अपने भक्तों के) अभिमान को काटकर नष्ट करने वाले हैं; उनसे द्वैतभाव सहन नहीं किया जा पाता। ९० भगवान कृष्ण के गुप्त हो जाने पर समस्त गोपियाँ भौचक हो गयीं। वे अद्भुत शोक

चांदणें पडिलें घवघवित। वनें उपवनें गोपी शोधीत। कृष्णप्राप्ती-कारणें। ९२ अघहारकें अतिउत्तमें। घेऊनियां कृष्णनामें। गोपी बाहती संभ्रमें। ज्या पूर्णकामें मोहिल्या। ९३ यादवकुळदीपका हरी। आम्हांसी सांडूनि वनांतरीं। गेलासी कोठें पूतनारी। व्रजनारी टाकोनियां। ९४ नाना वृक्ष लागले वनीं। त्यांलागीं पुसती गजगामिनी। तुम्हीं देखिला चक्रपाणी। सांगा आम्हांसी सत्वर। ९५ जाई जुई चंपक। वट जंबु पारिजातक। त्यांसी पुसती वैकुंठनायक। देखिला काय तुम्हीं सांगा। ९६ अश्वत्थ बिल्व मांदार। फसण चूत कदंब अंजीर। तयांसी पुसती श्रीधर। देखिला काय सांगा पां। ९७ केळी नारिकेली पोफळी। बकुळ रातांजनें रायआंवळी। त्यांसी पुसती वनमाळी। देखिला काय सांगा पां। ९८ अगर तगर कांचन। पाडळी देवदार अर्जुन। तयांसी पुसती जगन्मोहन। देखिला काय सांगा पां। ९९ खर्जुरी डाळिंबी महाळुंग। बदरी खिरणी मातुलिंग। तयांसी पुसती श्रीरंग। देखिला काय सांगा पां। १०० जपा शतपत्र मालती। मोगरे करवीर शेवंती। तयांसी पुसती जगत्पती। देखिला काय सांगा

करने लगीं— हाय कृष्णनाथ नहीं दीख रहा है। ९१ (आकाश में) सोलह कलाओं से युक्त अर्थात पूर्ण चन्द्रमा (शोभायमान) था। उज्ज्वल चाँदनी छायी हुई थी। (उस समय) श्रीकृष्ण की प्राप्ति के हेतु गोपियाँ वनों और उपवनों में खोज करने लगीं। ९२ जो पूर्णकाम श्रीकृष्ण द्वारा मोहित की गयी थीं, वे गोपियाँ संभ्रम में पड़कर कृष्ण के पापहारी, अति उत्तम नाम ले-लेकर उन्हें बुलाने लगीं। ९३ हे यादवकुल-दीपक हरि, हे पूतनारि, हम व्रजनारियों को वन के अन्दर छोड़कर तुम कहाँ गये हो। ९४ (आगे बढ़ते-बढ़ते) उन्हें वन में नाना प्रकार के वृक्ष मिल गये (दिखायी दिये)। तो वे गजगामिनी गोपियाँ उनसे पूछती थीं— 'हमें झट से बता दो, तुमने चक्रपाणि को देखा ?'। ९५ (वहाँ) जाही, जूही, चम्पक, वट, जामुन, पारिजातक थे। उनसे उन्होंने पूछा— 'बताओ, क्या तुमने वैकुण्ठनायक कृष्ण को देखा ?'। ९६ उन्होंने अश्वत्थ (पीपल), बिल्व (बेल), मान्दार, कटहल, आम्र, कदम्ब, अंजीर वृक्षों से पूछा, 'कहो, तुमने कृष्ण को (कहीं) देखा है ?'। ९७ उन्होंने केले, नारियल, सुपारी, बकुल, रातांजन, राजामला (के वृक्षों) से पूछा, 'क्या तुमने श्रीधर (कृष्ण) को देखा है ? बता देना'। ९८ उन्होंने अगरू, चन्दन, तगर (मैनफल), कचनार, पाटली, देवदारु, अर्जुन वृक्षों से पूछा, 'तुमने जगन्मोहन कृष्ण को (कहीं) देखा है ? बता देना'। ९९ उन्होंने खजूर, दाड़िम (अनार), बिजौरा, नीबू, बेर, खिरनी, मातुलिंग से पूछा, 'क्या तुमने श्रीरंग कृष्ण को (कहीं) देखा है, बता देना'। १०० जवावृक्ष, शतपत्र, मालती, मोगरा, कोविदार, सेंवती से उन्होंने पूछा, 'क्या तुमने जगत्पति (कृष्ण)

पां । १०१ तुलसीस पुसती सुंदरी । तुजवरी प्रीति करी मुरारी । सखे तुवां देखिला पूतनारी । तरी सांग आम्हांतें । २ भ्रमरा तूं कृष्णवर्ण । देखिला काय मनमोहन । तो जगद्वंद्य आम्हांसी सांडून । कोठें गेला नेणवे । ३ मयूरासी पुसती नारी । तुझीं पिच्छें खोविलीं शिरीं । कोकिळे तुवां कंसारी । देखिला काय सांग वो । ४ वनीं क्रीडती राजहंस । तयासी पुसती परम पुरुष । चातकें चक्रवाकें सारस । हृषीकेशासी पुसती पैं । ५ बक बदक काक रावया । कस्तूरीमृग नकुळ साळिया । देखिलें काय सांवळिया । विलासिया डोळसातें । ६ ऐशा गोपी बहु शीणती । दाही दिशा विलोकिती । अनंत नामीं आळविती । परी श्रीपती दिसेना । ७ तों पदमुद्रा देखिल्या नयनीं । कडेवरी घेऊनि गेला एक कामिनी । तिची आपुल्या हातें घातली वेणी । तींही चिन्हें दिसताती । ८ तिणें तोडिलें पुष्पांतें । टांचा उमटल्या नाहीं तेथें । उंच होवोनि ऊर्ध्वहस्तें । अरळ कळिका तोडिल्या । ९

को (कहीं) देखा है ? बता देना ' । १०१ उन सुन्दर स्त्रियों ने तुलसी से कहा, ' मुरारि कृष्ण तुझसे प्रेम करता है । हे सखी, तूने उस पूतनारि कृष्ण को (कहीं) देखा हो, तो हमें बता दो ' । २ (वे भौंरे से बोलीं—) ' अरे भ्रमर, तू कृष्ण के-से काले वर्ण का है । क्या तूने मनमोहन कृष्ण को देखा है ? (हमसे) जाना नहीं जा रहा है (न जाने) कि वह जगद्वन्द्य कृष्ण हमें छोड़कर कहाँ गया है ? ' । ३ उन नारियों ने मोर से पूछा, ' तेरे पंख कृष्ण सिर में खोंस लेता है । (बता दे, उसे तूने कहीं देखा है ।) ' फिर वे कोयल से बोलीं—) ' री कोयल; तूने कंस के शत्रु कृष्ण को (कहीं) देखा है ? बता देना ' । ४ वन में राजहंस खेल रहे थे । उनसे (उन गोपियों ने) परमपुरुष (कृष्ण) के बारे में पूछा । (तदनन्तर) उन्होंने चातकों, चक्रवाकों, सारसों से हृषीकेशी कृष्ण के विषय में पूछा । ५ उन्होंने (उसी प्रकार) बगुलों, बत्तखों, कौओं, तोतों से, कस्तूरी मृगों से, नेवलों और मैनाओं से पूछा, ' तुमने (हमारे साथ) विलास (विहार) करनेवाले, सुन्दर आँखों वाले साँवले (कृष्ण) को (कहीं) देखा है ? ' । ६ इस प्रकार (ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, पूछताछ करते-करते) गोपियाँ बहुत थक गयीं । वे दसों दिशाओं में कृष्ण को ढूँढ़ रही थीं, अनन्त नामों से पुकारते हुए मनुहार कर रही थीं । फिर भी उन्हें श्रीपति (कहीं भी) नहीं दिखायी दिये । ७ तब उन्होंने (एक स्थान पर) अपनी आँखों से पदचिह्न देखे । (उन्हें ध्यान से देखने पर जान पड़ा)— वे कृष्ण एक कामिनी को गोद में उठाकर ले गये हैं और उन्होंने अपने हाथों से उसकी बेनी गूँथ ली है । वे चिह्न भी उन्हें दिखायी दिये । ८ उस स्त्री ने फूल तोड़ लिये; (फिर भी) उसकी एड़ियाँ वहाँ अंकित नहीं (दिखायी दे रही) थीं । (जान पड़ता है) उसने उचक

त्यांची शेज रचोनी। वरी भोगिला चक्रपाणी। देखतां क्षोभल्या कामिनी। मत्सरें मनीं संतप्त। ११० तीस खांदीं घेवोनी। पुढें गेला मोक्षदानी। टांचा बळें रुतल्या धरणीं। चिन्हें तेव्हां ओळखिलीं। १११ तों तिणेंही गर्व केला। तीसही हरि टाकूनि गेला। तळमळीत बैसली बाला। म्हणती गोपी तियेतें। १२ एकांतीं भोगूनि हरी। शेखीं पडलीस वनांतरीं। ऐशा अभिमानें गोपनारी। हरिचरणा दुरावल्या। १३ अंतरीं असतां यादवेंद्र। व्यर्थ शोधिती गिरिकंदर। जवळी असे रत्न परिकर। जन्मांधासी नेणवे। १४ नाभीसी असोनि कस्तूरी। व्यर्थ मृग हिंडे वनांतरीं। किंवा दरिद्रियांचे द्वारीं। निधान असोनि न दिसे कीं। १५ कीं कोणी एक अबळा। दिव्य मुक्त असे तिच्या गळां। व्यर्थ लोकांच्या गळां वेल्हाळा। पडे मुक्त गेलें म्हणोनि। १६ दोन तीन पांचां ठायीं। कृष्ण न दिसे तेथें कांहीं।

कर, हाथ ऊपर उठाये हुए कोमल कलियाँ तोड़ीं। ९ उन (कलियों) की शय्या रचकर उसने उसपर चक्रपाणि कृष्ण का उपभोग किया। यह देखकर वे कामिनियाँ क्षुब्ध हो उठीं और मत्सर से मन में सन्तप्त हो गयीं। ११० उसे कन्धे पर उठाये हुए मोक्षदाता कृष्ण आगे गया। उसकी एड़ियाँ बलात् मिट्टी में अंकित हो गयीं; (इससे) उन्होंने उन (पद-) चिह्नों को पहचान लिया। १११ तब उसने भी अभिमान अनुभव किया। तो (फलस्वरूप) श्रीकृष्ण उसे भी छोड़कर चले गये। वह बाला तड़पती हुई बैठ गयी। गोपियाँ उससे बोलीं। १२ 'एकान्त में श्रीकृष्ण का उपभोग करके तू (अब) घमण्ड के कारण वन के अन्दर पड़ी हुई है।' इस प्रकार के अहंकार के कारण गोप-नारियाँ श्रीहरि के चरणों से दुराव को प्राप्त हो गयीं। १३ (वस्तुतः लोग) यादवेन्द्र कृष्ण अपने अन्तःकरण में होते हुए भी वे व्यर्थ ही गिरि-गुफाओं में उन्हें खोजते रहते हैं। सुन्दर रत्न पास में है, फिर भी जन्मान्ध व्यक्ति की समझ में यह बात नहीं आ जाती। १४ नाभि में कस्तूरी के रहने पर भी मृग व्यर्थ ही वन के अन्दर (उसे खोजते हुए) घूमता रहता है। अथवा (भाग्य के) दरिद्र व्यक्ति के द्वार पर धनकोश के रहने पर भी उसे वह दिखायी नहीं देता। १५ अथवा (मानो) कोई एक स्त्री है; उसके गले में दिव्य मोती (-हार) है। (परन्तु उसे खोया समझकर) वह सुन्दरी व्यर्थ ही लोगों के गले (यह मानकर) पड़ जाती है कि उसके वे मोती खो गये हैं। १६ दोनों (प्रकृति और पुरुष) में, (सत्त्व-रज-तम नामक) तीनों (गुणों) में, (पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश नामक) पाँचों (मूल तत्त्वों) में खोजने पर भी (साधकों को वहाँ उनमें) भगवान कृष्ण नहीं दिखायी देते। (वैसी ही स्थिति उन गोपियों की हो गयी)। (तदनन्तर) अभिमानपूर्वक (पाँच महाप्राणों और पाँच उपप्राणों में अर्थात) दसों में,

शेखीं दहा अकरा पाहों। शोधिल्याही न सांपडे। १७ शोधिलीं पांच सतरा पंचवीस। दृष्टीं न पडे रमाविलास। शोधूनि पाहिलीं छत्तीस। परमपुरुष न सांपडे। १८ श्रेष्ठ निवडिल्या चौघीजणी। म्हणती आम्ही शोधूं चक्रपाणी। तों त्या नेति नेति म्हणोनि। लाज़ोनि ज़ाहल्या तटस्थ। १९ आणिक एक सहाज़णी कैशा। धुंडूं म्हणती विश्वाधीशा। बहुत तार्किका डोळसा। लाज़ोनियां परतल्या। १२० अठराज़णी नवरसिका। धुंडूं म्हणती रमानायका। त्यांचाही सरला आवांका। लाज़ोनि उग्या राहिल्या। १२१ आणिक एक अठराज़णी। निराळ्या फुटल्या चौघीजणी। शोधिती बारा सोळा कामिनी। गदापाणी न सांपडे। २२ बारा सोळा चौदा नारी। चौसष्टी दाविती कळाकुसरी। त्यांहीवेगळा कंसारी। नाढळे संसारी लोकांतें। २३ एक म्हणती आम्ही धनवंता। वश्य करूं कृष्णनाथा। याचपरी अभिमानें तत्त्वतां। नाडल्या बहुत कामिनी। २४ एक बलवंत

ग्यारहों में खोजने पर भी वे ब्रह्मस्वरूप कृष्ण उन्हें नहीं मिलते। (गोपियों की) वैसी ही स्थिति हो गयी। १७ (साधकों की भाँति) उन्होंने पाँचों, सत्रहों, पचीसों तत्त्व ढूंढ़ लिये; परन्तु रमाविलास भगवान विष्णुस्वरूप (कहीं) दिखायी नहीं दिये; उन्होंने छत्तीसों में भी खोजकर देखा; फिर भी परमपुरुष कृष्ण उन्हें नहीं मिले। १८ (फिर) उन्होंने अपने में से चार श्रेष्ठ नारियों को चुना— वे चारों बोलीं, 'हम चक्रपाणि कृष्ण को खोज लेंगी।' परन्तु वे भी 'न इति', 'न इति', कहते हुए लज्जित होकर भौचक हो गयीं। १९ (तदनन्तर) छः नारियाँ बोलीं, 'हम विश्व के अधीश्वर भगवान कृष्ण को खोज लेंगी।' वे बहुत तर्क करनेवाली (सावधानी बरतनेवाली) थीं, फिर भी लज्जित होकर लौट आयीं। १२० (तत्पश्चात) नवरसिक (नवों रसों के स्थायी भावों से युक्त) अठारह नारियाँ बोलीं, 'हम रमानायक विष्णुस्वरूप कृष्ण को ढूंढ़ लेंगी।' परन्तु उनकी शक्ति भी समाप्ति को प्राप्त हो गयी, तो वे लज्जित होकर चुप रह गयीं। १२१ (इनके अतिरिक्त) और भी अठारह नारियाँ खोजने लगीं। उनसे चार स्त्रियाँ अलग हो गयीं (और खोजने लगीं); (इसी प्रकार) बारह, सोलह कामिनियाँ (अलग-अलग से) खोजने लगीं। (परन्तु) हाथ में गदा धारण करनेवाले भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण उन्हें नहीं मिले। २२ बारह, सोलह, चौदह नारियाँ, चौंसठ नारियाँ कला-कौशल प्रदर्शित करने लगीं। परन्तु कंस के शत्रु कृष्ण उनसे परे हैं। वे तो संसार में (घर-गिरस्ती में) लोगों को नहीं दिखायी देते। २३ कुछ एक बोलीं, 'हम धनवान हैं; (धन के बल पर) कृष्णनाथ को अपने अधीन कर लेंगी।' (फिर भी उन्हें कृष्ण नहीं मिले)। इसी प्रकार वस्तुतः अभिमान के कारण बहुत स्त्रियाँ कठिनाई को प्राप्त हो गयीं

म्हणविती। एक विद्यामदें मुसमुसती। हातींचा गेला श्रीपती। तो निश्चितीं नेणवे। २५ एक दाविती नाना कळा। कळा तितुक्या जाहल्या विकळा। नेणती ब्रह्मानंदा निर्मळा। कळा विकळा तितुक्याही। २६ नाना तपें घोर वनें। एक करिती वातांबुपर्णाशनें। एक दाविती पंचाग्निसाधनें। परी जगज्जीवन दुरावला। २७ विधिनिषेध कर्मजाळ घोर। एक चढती हाचि डोंगर। शोधिती नग्न मौनी जटाधर। परी श्रीधर दुरावला। २८ एक अष्टांगसाधनें दाविती। षट्चक्रांचे कडे वेंघती। पवनवेगें एक धुंडिती। परी यदुपति दुरावला। २९ जों जों करिती साधन। तों तों खवळे अभिमान। दुरावला नारायण। अबला खूण नेणती। १३० मग सर्व

(कठिनाइयों में फँस गयीं)। २४ कुछ एक (अपने-आप को) शक्ति-शालिनी कहाती हैं; कुछ एक विद्या के मद से (नशे में) चूर रही थीं। (फिर भी) पास ही रहनेवाले श्रीपति कृष्ण हाथ से निकल गये। वे निश्चयपूर्वक समझ में नहीं आ रहे हैं (कि वे कहाँ हैं)। २५ कुछ एक ने नाना कलाएँ प्रदर्शित कीं; लेकिन उनकी उतनी ही कलाएं विकल (व्याकुल, निस्तेज) हो गयीं। जितनी कलाएँ हैं, विकलाएँ (उपकलाएँ) हैं, उतनी ही समस्त आनन्द-स्वरूप निर्मल ब्रह्म-रूप कृष्ण को नहीं जान पातीं। २६ कुछ एक घोर वन में अनेक (प्रकार के) तप करते हैं; कुछ एक वायु, जल, पर्ण का आहार करते हैं। कुछ एक पंचाग्नि-साधना करते हैं। परन्तु जगज्जीवन कृष्ण उनसे दूरत्व को प्राप्त हो गये। २७ विधि-निषेध से युक्त कर्मों का जाल घोर है। कुछ एक उसी कर्मजाल-स्वरूप पहाड़ी पर चढ़ जाते हैं। कुछ एक नग्न साधक, मौन धारण करनेवाले, जटाधारी साधक (भगवान की) खोज करते रहते हैं; फिर भी उनसे श्रीधर भगवान कृष्ण दुराव को प्राप्त हो गये हैं। (वही स्थिति गोपियों की हो गयी)। २८ कुछ एक अष्टांग योगसाधना करके प्रदर्शित करते हैं और छः चक्रों रूपी कगारों को लाँघकर पार करते हैं। वे वायुवेग से (ब्रह्म को) ढूँढ़ते रहते हैं; फिर भी यदुपति कृष्ण उनसे दूरत्व को प्राप्त हो जाते हैं। २९ लोग ज्यों-ज्यों (अधिकाधिक) साधना करते जाते हैं, त्यों-त्यों उनका अभिमान (अधिकाधिक) क्षुब्ध हो उछलने लगता है। इस कारण उनसे भगवान नारायण दुराव को प्राप्त हो गये हैं। (यही स्थिति उन गोपियों की हो गयी।) वे अबलाएँ इस सही चिह्न (मार्ग) को नहीं जानती थीं[1]। १३०

१—११७ से १३०वें छन्दों में कवि ने बड़ी चतुराई से सूचित किया है कि (अ) कृष्ण परब्रह्म हैं। (आ) उस ब्रह्म के ज्ञान-प्राप्ति के हेतु साधक अनेक प्रकार की साधनाएँ करते रहते हैं; उदाहरण के लिए तरह-तरह के कर्मकाण्ड, पंचाग्नि-साधना, तरह-तरह के तपाचरण, प्राणायाम आदि योगमार्गीय-साधना इत्यादि। [दे० पृ० ४८४ पर]

गोपी होवोनि गोळा। आठवोनि श्रीकृष्णलीळा। दाविती नाना कौतुककळा। अंगें आपुल्या करोनियां। १३१ एकी होय उखळ। दुजी होय कृष्ण वेल्हाळ। तिजी यशोदा होवोनि तत्काळ। दावें बांधी कृष्णातें। ३२ दोघी यमलार्जुन होती वेगें। एक माजीं उखळ होऊनि एक रांगे। एक कृष्ण होवोनि निघे। घरोघरीं चोरीस। ३३ एक यशोदा होवोनि बैसली। एक गाऱ्हाणें दे तिजजवळी। आवरीं तुझा वनमाळी। करितो कळी बहुसाल। ३४ एकीनें वस्त्रांचा गुंडाळा करून। नखीं धरिला म्हणे गोवर्धन।

अनन्तर, समस्त गोपियाँ इकट्ठा होकर, श्रीकृष्ण की लीलाओं को स्मरण करके अपने-अपने शरीर से नाना कौतुक लीलाएँ प्रदर्शित करने लगीं। १३१ (उनमें से) कोई एक ऊखल बन गयी, तो कोई दूसरी सुन्दर सलोने कृष्ण (-स्वरूप) हो गयी। तीसरी ने तत्काल यशोदा होकर कृष्ण (रूपधारी गोपी) को पगहे से बाँध लिया। ३२ (तदनन्तर) दो (गोपियाँ) वेगपूर्वक यमलार्जुन (वृक्ष) बन गयीं; एक उन (वृक्षों) के बीच में से ऊखल बनकर घुटनों के बल चलने लगी। (उधर) कोई एक कृष्ण-रूप बनकर घर-घर चोरी करने के लिए चल दी। ३३ कोई एक यशोदा का रूप धारण करके बैठ गयी, तो कोई एक उससे शिकायत करने लगी (और बोली—) 'अपने वनमाली (कृष्ण) को रोक लो; वह बहुत शरारतें करता है'। ३४ किसी एक ने वस्त्र (को लपेटते हुए उस) की गेंडुरी बनाकर कहा— 'मैंने गोवर्धन पर्वत को नख पर उठा लिया

[पृ० ४८३ से] (इ) ये समस्त साधनाएँ बाह्याचार मात्र हैं। (ई) वस्तुत: भगवान या ब्रह्म साधक के पास, साधक के हृदय के भीतर है; फिर भी वह उसे नहीं जान पाता। (उ) अपने साधना-मार्ग पर, अपनी क्रिया-कर्म आदि पर उसे अभिमान अनुभव होने लगता है। (ऊ) इस अभिमान के कारण वह भगवान से दूर चला जाता है। (ए) भगवान या ब्रह्म की खोज करने का यत्न, ब्रह्म के ज्ञान को प्राप्त करने का यत्न साधकों ने अनेक प्रकार से किया; लेकिन किसी को यों ही सफलता नहीं मिली है। ब्रह्म प्रकृति-पुरुष, गुणत्रय, पंचमहाभूत मात्र नहीं है। ब्रह्म की खोज करनेवालों को अथवा उनके यत्न को प्रतीक-स्वरूप में कवि ने कुछ संख्या-संकेतों द्वारा सूचित किया है; जैसे— चार (वेद), चौदह (विद्याएँ), चौंसठ (कलाएँ), अठारह (मुख्य पुराण), अठारह (उपपुराण), छः (छः शास्त्र) इत्यादि।

कवि ने अन्यान्य साधकों का सामान्य रूप से उल्लेख करके उनकी साधना की व्यर्थता सूचित की है। गोपियाँ भी उसी प्रकार कृष्ण की खोज कर रही थीं। लेकिन उनके अभिमान ने उन्हें कृष्ण से दूर रखा है। फिर वे जब कृष्ण के साथ आत्मीयता, प्रेम से एकात्म हो जाती हैं, तब वे उनका साक्षात्कार करती हैं। इस प्रकार, निर्गुण निराकार ब्रह्म, जो वेदों के लिए अज्ञेय हैं, शास्त्रों के लिए अतर्क्य है, पुराण जिसका वर्णन करने में असमर्थ हैं, आडम्बरयुक्त बाह्याचार से जिसका साक्षात्कार नहीं हो सकता, वह भक्त के लिए सगुण रूप धारण करता है, भक्त भक्ति के बन्धन में उसे आबद्ध कर रखता है।

एक पूतना होऊन। करवी स्तनपान कृष्णातें। ३५ सर्वेंचि शोषी म्हणोन। भूमीवरी करी शयन। एक वृंदावनीं वेणु घेऊन। वाजवीत उभी राहे। ३६ पेंधा सुदामा वडजा ज्या रीतीं। ऐशा गोपी वेष दाविती। गडियाच्रे कानीं लागे श्रीपती। गडे हो गोष्टी एक ऐका। ३७ च्रोरीस जाऊं एके सदनीं। निज्रल्या अवघ्या गौळणी। तुम्ही सरांटे घेऊनी। पसरा पायथां तयांच्या। ३८ ज्रवळी असों द्या मृत्तिका। ज्ररी ज्राग्या ज्राहल्या गोपिका। सरांटे पायीं लागती देखा। तों तुम्ही मृत्तिका टाका नयनीं। ३९ त्या च्रोळिती जंव नयन। तंव तुम्ही पळा रे तेथून। रात्रीं च्रोरीस गेलों ज्ररी पूर्ण। तरी खडे घेऊन प्रवेशावें। १४० मौनेंचि द्यावे खडे टाकून। शिकीं खडखडती आपण। मग भाले काठिया टोंच्रून। छिद्र पाडून दूध पिऊं। १४१ ऐसे बाळपणींच्रे भाव। गोपी दाविती लीला सर्व। एक काला कैसा करी माधव। तोचि भाव दाविती। ४२ कमळाकार सवंगडे। मध्यें तमालनीळ रूपडें। सन्मुख कृष्ण दृष्टी पडे। चहूंकडे सकळांसी। ४३ हरि सन्मुख

है।' तो कोई पूतना-रूप बनकर कृष्ण को स्तन-पान कराने लगी। ३५ साथ ही तत्क्षण यह कहकर, '(कृष्ण ने मुझे) सोख लिया', भूमि पर लेट गयी। कोई एक (मानो) वृन्दावन में (हाथ में) वेणु लेकर (कृष्ण की भाँति) बजाती हुई खड़ी रह गयी। ३६ जिस प्रकार मनसुखा, सुदामा, वडजा (आदि गोपबालक) रहते थे, व्यवहार करते थे, उसी प्रकार वे गोपियाँ (उन गोपबालों के समान) वेश धारण करके दिखा रही थीं। श्रीपति कृष्ण (रूपधारी गोपी) ने अपने किसी साथी के कान लगकर कहा— 'हे सखा, एक बात सुनो। ३७ एक घर (में) चोरी करने चले जाएँ। समस्त गोपियाँ सो गयी हैं। गोखरू लेकर तुम उनके पाँयते के पास फैलाकर रखो। ३८ पास में मिट्टी रहने दो (रख लो)। यदि गोपियाँ जग जाएँ, तो देखो, गोखरू उनके पाँव में लग जाएँगे, त्योंही तुम उनकी आँखों में मिट्टी डाल देना। ३९ जब वे आँखें मलती रहेंगी, तब तुम वहाँ से भाग जाना। यदि हम सब रात में चोरी के लिए चले जाएँ, तो कंकड़ लेकर (घर के अन्दर) पैठ जाएँ। १४० मौन रूप से अर्थात बिना कुछ बोले, आवाज़ किये (चुपचाप) कंकड़ फेंक दें, तो सींके अपने-आप खड़खड़ाने लगेंगे। अनन्तर भाले और लकुटियाँ चुभोकर छिद्र बनाते हुए (उनमें से बहनेवाला) दूध पी लेंगे'। १४१ इस प्रकार वे गोपियाँ बचपन के भाव लीलाओं के रूप में समस्त प्रदर्शित कर रही थीं। कुछ एक वही भाव दिखा रही थीं कि माधव कृष्ण कलेवा करते समय मिश्रण कैसे करते थे। ४२ वे साथी-संगी कमल के पत्रों के आकार में बैठे— बीच में तमालनील सुन्दर रूपधारी कृष्ण थे— चारों ओर से सबको सामने कृष्ण दिखायी दे रहे थे। ४३ (वे) सब श्रीहरि को

देखती दृष्टीं। कोणासी न दिसे कृष्णाची पाठी। भक्तांसन्मुख जगजेठी। समसमान सर्वदा। ४४ ऐशा नाना लीला गोपिका। अंगेंकरूनि दाविती देखा। कालियामर्दनाचा भाव निका। नाचोनि दाविती तैशाचि। ४५ अघ बक केशी हरीनें मारिला। त्या त्या आचरोनि दाविती लीला। नंद सर्पमुखींहूनि सोडविला। तैशीच रीती दाविती। ४६ ऐशा बाळलीला स्मरोनि। मागुती हरीस धुंडिती वनीं। अहा आत्मयारामा शारंगपाणी। आम्हांसी वनीं टाकिलें कां। ४७ तूं नंदगृहीं जन्मलासी गोपाळा। म्हणोनि येथें राहिली कमळा। गोकुळीं सर्वांसी सुखसोहळा। तरी दुःख ये वेळे आम्हांसी कां। ४८ जगद्वंद्या ब्रह्मांडनायका। दावी तुझिया वदनशशांका। कां तूं शिणविसी गोपिका। सुखदायका श्रीरंगा। ४९ तुज हुडकितां ये वनीं। बहु श्रमलों चक्रपाणी। तुझ्या बटकी आम्ही होवोनी। मोलाविण राबतों। १५० आम्हांसी देऊनि भोगदान। गुप्त जाहलासी तूं मनमोहन। सकळांसी आडामध्यें घालून। दोर कापून गेलासी। १५१ कालियासी तुवां मर्दिलें। सकळ गोकुल सुखीं राखिलें। गोपिकांसी कां लोटूनि दिधलें।

अपनी आँखों से (अपने-अपने) सामने देख रहे थे, अपने सामने किसी को कृष्ण की पीठ नहीं दिखायी दे रही थी। (इसी प्रकार) अपने भक्तों के सामने जगत्-श्रेष्ठ श्रीभगवान नित्य सम-समान होते हैं। १४४

देखिए, उन गोपियों ने अपने-अपने शरीर से (कृष्ण की) नाना लीलाएँ प्रदर्शित कीं। कालिय-मर्दन का भाव उन्होंने ठीक उसी प्रकार नृत्य करके दिखा दिया। १४५ श्रीकृष्ण ने अघ, बक, केशी को मार डाला था। उन गोपियों ने उन्हीं-उन्हीं लीलाओं का आचरण (अभिनय) करके दिखा दिया। ४६ इस प्रकार की बाल-लीलाओं का स्मरण करके तदनन्तर वे श्रीकृष्ण को (फिर से) ढूँढ़ने लगीं। वे बोलीं, हे आत्माराम, हे शाङ्‌र्गपाणि, हमें वन में क्यों त्याग दिया। ४७ हे गोपाल, तू (गोकुल में) नन्द के घर जन्म को प्राप्त हुआ, इसलिए कमला (लक्ष्मी) यहाँ रह गयी है; गोकुल में सबके लिए सुखमय आनन्दोत्सव है। फिर भी हमें इस समय क्यों दुःख (प्राप्त) हो रहा है। ४८ हे जगद्वन्द्य ब्रह्माण्डनायक, तू अपना मुखचन्द्र (हमें) दिखा देना। हे सुखदाता श्रीरंग, तू गोपियों को क्यों कष्ट दे रहा है (थका रहा है)। ४९ हे चक्रपाणि, इस वन में तुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हम बहुत थकान को प्राप्त हुई हैं। तेरी दासियाँ होकर (यहाँ) बिना किसी मजदूरी के कष्ट कर रहीं हैं (खप रही हैं)। १५० हे मनमोहन, तू हमें उपभोग रूपी दान देकर गुप्त हो गया। (मानो) तू सबको कुएँ में डालकर, रस्सी काटकर चला गया था। १५१ तूने कालिय का मर्दन किया और समस्त गोकुल को सुख में रखा था। परन्तु इस समय हम गोपियों को संकट रूपी सागर में क्यों धकेल दिया ? । ५२

संकटार्णवीं ये वेळे। ५२ गोकुळ गिळीन म्हणे सगळें। अघासुरें हें मनीं धरिलें। त्यासी उभें चिरोनि आम्हांसी रक्षिलें। आतां कां केलें कठिण मन। ५३ इंद्र वर्षला शिळाधारीं। तेथें उचलोनि तुवां गोवर्धनगिरी। आतां कठिण चित्त मुरारी। आम्हांवरी कां केलें। ५४ लोकव्यवहारें निश्चित। तूं म्हणविसी नंदसुत। सकळांतरीं तूं साक्षीभूत। मायातीत अगम्य। ५५ तूं क्षीरसागरीं असतां नारायण। कमलोद्भव आणि पाकशासन। हे तुज आले पूर्वीं शरण। दैत्य माजले म्हणोनियां। ५६ यालागींच यदुवंशीं। जगदात्मया अवतरलासी। दुष्ट मारूनि भक्त पाळिसी। कां आम्हांसी उपेक्षिलें। ५७ प्रकट होईं तूं झडकरी। वरदहस्त तुझा कंसारी। ठेवूनियां आमुचे शिरीं। काम हरी अंतरींचा। ५८ क्षीराब्धीमाजी प्रकटली कमळा। तिचा हस्त तूं धरिसी गोपाळा। त्याच हस्तें घननीळा। आमुचा हस्त धरीं कां। ५९ हरि तूं हांसता बोलसी वचन। आमुचें होय तेणें गर्वच्छेदन। प्रभूनें अन्याय पाहोन। दंड करावा तैसाचि। १६० नख लागतां जें पडणार। त्यासी कासया पाहिजे कुठार। वातें कमळिणी कांपे थरथर। तीवरी

'समस्त गोकुल को मैं निगल डालूँगा।' —अघासुर ने यह (इरादा) मन में रखा था, तो तूने उसे खड़ा चीरकर हमारी रक्षा की थी। (फिर) अब तूने हमारे प्रति मन कठोर क्यों कर लिया। ५३ इन्द्र शिलास्वरूप धाराओं में (जब) बरसता रहा, तब वहाँ तूने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया (और हमारी रक्षा की); (पर) हे मुरारि, अब तूने हमारे प्रति मन कठोर क्यों कर लिया। ५४ निश्चय ही लोक-व्यवहार की दृष्टि से तू (अपने को) नन्द का पुत्र कहाता है। फिर भी तू सबके अन्दर साक्षीस्वरूप है, मायातीत है, अगम्य है। ५५ पूर्वकाल में दैत्य उन्मत्त हो गये थे। तो नारायण के रूप में तेरे क्षीर-सागर में रहते हुए, ब्रह्मा और स्वर्ग के राजा इन्द्र तेरी शरण में आये थे। ५६ हे कंसारि, जगदात्मा, इसी हेतु तूने यदुवंश में अवतार ग्रहण किया है— (इसलिए तो) तू दुष्टों को मार डालकर भक्तों का प्रतिपालन (रक्षण) कर रहा है। फिर तूने हमारी क्यों उपेक्षा की है। ५७ तू झट से प्रकट हो जा। हे कंसारि, अपना वरद-हस्त हमारे सिर पर रखते हुए हमारे अन्तःकरण के कामभाव का हरण कर। ५८ हे गोपाल, क्षीर-समुद्र में से लक्ष्मी प्रकट हो गयी; तूने उसका हाथ पकड़ लिया (उसका पाणिग्रहण किया)। हे घननील, उसी हाथ से हमारा हाथ तू (क्यों न) थाम ले। ५९ हे हरि, तू (जब) हँसते-हँसते कोई बात बोलता है, उससे हमारे अहंकार का हरण हो जाता है। प्रभु को अन्याय देखकर वैसा ही (उसके अनुरूप) दण्ड देना चाहिए। १६० नाखून के लगते ही (स्पर्शमात्र से) जो गिर जाता हो, उसे (काटने के लिए) कुल्हाड़ी क्यों चाहिए? वायु से

वज्र कासया। १६१ भणगें बैसलीं पात्रांवरी। ती समर्थें घातली जरी बाहेरी। तरी त्या भणगांचें मुरारी। काय झालें सांग पां। ६२ सुखाची हे परम रजनी। ऐसें आम्हीं भाविलें मनीं। परी कर्माची दुर्धर करणी। सांडिलें वनीं आम्हांतें। ६३ सुरभीची काढितां धार। तों शेराचें चिकें भरलें पात्र। तूं दुरावतां नवपंकजनेत्र। कर्म विचित्र ओढवलें। ६४ सुरतरूजवळी मागावया। याचक आला धांवोनियां। तों तेणें शुष्क काष्ठ घेवोनियां। मग तया मारिलें। ६५ गंगेसी ठाव नेदी समुद्र। तरी पुढें काय त्याचा विचार। जळचरांवरी कोपलें नीर। तरी गति पुढें कायसी। ६६ दुग्धमधुघृतकासारीं जाण। जळचरें सोडितां त्यागिती प्राण। त्यांसी गति नाहीं उदकाविण। आम्ही शरण तैशा तुज। ६७ माता बाळकासी पायें लोटी। परी तें चरणींच घाली मिठी। भुवनसुंदरा जगजेठी। आम्ही तैशा तुजलागीं। ६८ सुधारसाची आस धरितां। विष केवळ ये हाता। करुणासागरावरी तत्त्वतां। लहरी क्रूर कां आली। ६९ मातेनें तान्हया

कमलिनी थरथर काँपती है, फिर उसे (नष्ट करने के लिए) उस पर वज्र किसलिए (डालना) आवश्यक है। १६१ (भोजन के लिए) थालियों पर भिखमंगे बैठ गये हों और यदि उन्हें समर्थ स्वामी ने भगाकर बाहर कर दिया हो, तो फिर हे मुरारि, बता दे उन भिखमंगों की क्या चल सकती है ? । ६२ हमने यह माना कि सुख की यह परमश्रेष्ठ रजनी है। परन्तु भाग्य की दुर्धर करनी (कैसी) है, उसने हमें वन के अन्दर (एकाकी) छोड़ दिया। ६३ कामधेनु का दोहन करते-करते थूहर के दूध से (मानो) पात्र भर गया है। हे नवकमलनेत्र कृष्ण, (हमसे) तू दूरत्व को प्राप्त हो जाते ही विचित्र दुर्भाग्य आ गया है। ६४ (यह ठीक उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार) कोई याचक कल्पवृक्ष के समीप (कुछ) माँगने के लिए आ गया हो, तो फिर उसने सूखी लकड़ी लेकर उसे पीट लिया हो। ६५ समुद्र यदि गंगा को (अपने में) ठौर (आश्रय) न दे; तो आगे चलकर उसका क्या विचार हो सकता है। यदि जल जलचरों पर क्रुद्ध हो जाए, तो फिर उनकी कैसी स्थिति हो जाएगी। ६६ समझ लें कि उन जलचरों को दूध-मधु-घी के तालाब में छोड़ने पर वे प्राणों का त्याग कर देंगे। उन्हें बिना पानी के कोई अन्य गति (आधार) नहीं है। हम भी उसी प्रकार तेरी शरण में (स्थित) हैं। ६७ यदि माता बच्चे को पाँव (लात) से दूर धकेल दे, तो भी वह उसके चरणों में ही लिपट जाता है। हे भुवन-सुन्दर, हे जगत्श्रेष्ठ, हम भी उसी प्रकार तेरे लिए (चरणों की शरणार्थी) हैं। ६८ अमृत-रस की आशा धारण करने पर केवल विष ही (हमारे) हाथ आ गया है। सचमुच करुणा के सागर में क्रूर लहर क्यों आ गयी है ? । ६९ (यदि) माता ने दुधमुँहे (बच्चे)

विष दिधलें। पित्यानें पुत्रासी विकिलें। तारकें कांसेसी लावोनि ओसंडिलें। तरी शरण जावें कवणापासीं। १७० राजयानें सर्वस्व हरिलें। पाठिराख्यानें शिर छेदिलें। गुप्त होवोनि घननीळें। तैसें केलें आम्हांसी। १७१ ब्रह्मांडपति यादवकुळदीपका। दावीं तुझ्या वदनशशांका। आम्ही अन्यायी दासी तुझ्या गोपिका। व्रजनायका पाव वेगीं। ७२ परम सुकुमार तुझे चरण। वनीं खुपती कीं कठिण पाषाण। यालागीं आमुचे प्राण। कासावीस होताती। ७३ ज्या चरणीं सिंधुकुमारी। लुब्ध होवोनि झाली भ्रमरी। तो चरण आमुचे हृदयावरी। श्रीमुरारी ठेवीं कां। ७४ काम आमुच्या हृदयजीवनीं। हाचि कालिया मर्दी चक्रपाणी। निष्काम करूनि तुझे चरणीं। ठेवीं आम्हांसी निरंतर। ७५ वियोगानळें तापलों तत्त्वतां। तुझें अधरामृत पाजीं रमानाथा। मधुर वचनीं आम्हांसी आतां। बोलें त्वरित येवोनि। ७६ तुझा वियोग होतांचि जाण। तत्काळ जातो आमुचा प्राण। परी तुझें कथामृत आठवून। वांचलों जाण श्रीवरा। ७७ संसारतापें जे संतप्त। तुझ्या कथामृतें ते सर्व निवत। परी तुझी कथा आणि अमृत। समान कदा

को विष (खिला) दिया हो, (यदि) पिता ने पुत्र को बेच डाला हो, तारनेवाले ने (यदि) कमर में बाँधकर फिर दुत्कारकर दूर कर दिया हो, तो वह किसकी शरण में जाए। १७० (मानो) राजा ने सरबस का हरण कर लिया, सहायक-रक्षक ने ही सिर काट डाला। गुप्त होकर घननील कृष्ण ने वैसे ही हमारे साथ किया है। १७१ हे ब्रह्माण्ड के स्वामी यादवकुलदीपक कृष्ण, अपने मुखचन्द्र को दिखा दे। हम गोपियाँ तेरे साथ अन्याय करनेवाली, तेरी दासियाँ हैं। हे व्रजनायक, वेगपूर्वक हमसे मिल जा। ७२ तेरे चरण परम सुकुमार हैं। वन में कठिन पाषाण उनमें चुभते हैं। इसलिए हमारे प्राण कसमसा रहे हैं। ७३ हे श्रीमुरारि, जिन चरणों में सागर-कन्या लक्ष्मी लुब्ध होकर भ्रमरी-सी बनी हुई है, वे अपने चरण हमारे हृदय पर क्यों न रख दे। ७४ हमारे हृदय रूपी जल (-वाहिनी) में काम-भाव रूपी कालिय है; हे चक्रपाणि, तू उसी कालिय का मर्दन कर दे और हमें कामहीन बनाकर निरन्तर अपने चरणों में रख लेना। ७५ हम विरह रूपी आग में सचमुच तप्त हो गयी हैं। (अतः) हे रमानाथ-स्वरूप कृष्ण, तू हमें अपना अधरामृत पिला दे। अब झट से आकर हमारे साथ मीठे शब्द बोल। ७६ समझ लेना कि तेरा विरह होते ही तत्काल हमारे प्राण निकलकर चले जाते हैं; फिर भी, हे श्रीवर (लक्ष्मीपति, विष्णुस्वरूप) कृष्ण, समझ ले कि तेरी कथा रूपी अमृत पीकर हम बच गयी हैं। ७७ सांसारिक तापों से जो तप्त होते हैं, वे सब तेरी कथा के अमृत (का प्राशन करने) से शान्त हो जाते हैं। फिर भी तेरी कथा (रूपी अमृत) और (स्वर्गलोक का दिव्य)

न होती। ७८ स्वर्गींचे राहणार देख। ते म्हणती अमृत क्षणिक। तुझ्या कथामृतीं आस्था सकळिक। धरिती देव स्वर्गींचे। ७९ जिव्हेवरी घालितां अमृत। पळभरीच गोड लागत। परी श्रवणनयनांसी तृप्त। कदा न करी सर्वथा। १८० तैसी नव्हे तुझी कथा। वाचेसी गोड लागे गीत गातां। श्रवणीं आवडे श्रवण करितां। गोडी त्याहोनि विशेष। १८१ नयनीं पाहतां तुझे ग्रंथ। विशेष गोडी वाढत। दाही करणांसमवेत। अंतर तृप्त होतें पं। ८२ आपण तृप्त होऊनि अंतरीं। इतरांसही आपणाऐसें करी। ऐसी गोड कथा तुझी हरी। तारी जनां समस्तांही। ८३ जैसें लोहाचें कडियाळें। ताजवीं घालूनि रत्न जोखिलें। तुळाभार समसमान आलें। परी मोला आगळें रत्न कीं। ८४ तैसी कथा आणि अमृत। उगाचि द्यावा दृष्टांत। परी तुझी कथा अद्‌भुत। सुधारस तुच्छ तेथें। ८५ कांच आणि पाच निश्चित। अजा आणि ऐरावत। दीप आणि आदित्य। समान कैसे होती

अमृत कभी भी समान नहीं हो सकते। ७८ देखिए, स्वर्ग के रहनेवालों को। वे कहते हैं, अमृत (का प्रभाव तो) क्षणिक होता है। इसलिए स्वर्ग के समस्त देव तेरी कथा रूपी अमृत में श्रद्धा, प्रेम धारण करते हैं। ७९ अमृत जिह्वा पर डालने पर वह पल भर ही मीठा लगता है, परन्तु वह कानों और आँखों को कभी भी बिलकुल तृप्त नहीं करता। १८० तेरी कथा वैसी नहीं है। (उसके) गीत गाते हुए वह वाक् को अर्थात जिह्वा को मधुर लगती है; श्रवण करते हुए वह कानों को भाती है। (क्योंकि) तेरे कथामृत की मधुरता उस (अमृत) की मधुरता से अधिक विशिष्ट है। १८१ (कथा या लीला का वर्णन करनेवाले) तेरे ग्रन्थों को आँखों से देखने पर उसकी मधुरता अधिक बढ़ती है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँचों कर्मेन्द्रियों अर्थात दसों करणों-सहित उससे अन्तःकरण तृप्त हो जाता है। ८२ (तेरी कथा पढ़ने-सुनने-कहनेवाला) स्वयं अन्तःकरण में तृप्त होकर, दूसरों को भी अपने जैसा (तृप्त) कर देता है। हे हरि, तेरी कथा ऐसी मधुर है; वह सभी लोगों का उद्धार करती है। ८३ जिस प्रकार तराजू (के एक पलड़े) में लोहे का कड़ा डालकर उससे (दूसरे पलड़े में डालकर कोई) रत्न तौल लिया हो, (और) वह तौल-भार में उससे सम-समान हो गया हो, तो भी मूल्य में वह रत्न ही अनोखा (भिन्न) होता है (अर्थात लोहे का टुकड़ा, कड़ा भार में रत्न के समान हो तो भी, मूल्य की दृष्टि से रत्न ही बड़ा होता है)। ८४ उसी प्रकार (तेरी) कथा (रूपी अमृत) और अमृत (दोनों) को लेकर यों ही दृष्टान्त दें। फिर भी तेरी कथा अद्‌भुत है; वहाँ (उसकी तुलना में) अमृत-रस तुच्छ होता है। ८५ निश्चय ही काँच और पन्ना (रत्न), बकरी और ऐरावत, दीपक और सूर्य कैसे (सम-) समान हो सकते

पां । ८६ भक्त आणि निंदक । श्रोत्रिय आणि हिंसक । तैसें अमृत आणि कथा सुरेख । समान नव्हे सर्वथा । ८७ त्याच्च कथामृतेंकरूनी । आम्ही वांचलों गोपकामिनी । मनमोहन चक्रपाणी । भेटें येऊनि सत्वर । ८८ त्वरित येवोनि चक्रपाणी । चरण लावीं आमुचे स्तनीं । अधरीं वेणु वाजविसी धरूनी । तोचि आधार सदैव वाटतो । ८९ अखंड अधरामृत सेवी । अवघ्यांहूनि थोर त्याची पदवी । एकदां तुझे चरण दावीं । ज्यांसी महाकवि वर्णिती । १९० हरि तुझे चरण न पडतां दृष्टीं । युगासमान जाती त्रुटी । सुंदरा डोळसा जगजेठी । आम्ही हिंपुटी तुजलागीं । १९१ तुझें मुख पाहतां नयनीं । पापण्या लवती क्षणक्षणीं । त्या नावडती आम्हांलागूनी । विक्षेप ध्यानीं करिती ज्या । ९२ तुझें लक्षितां श्रीमुख । हरे सकळ संसारदुःख । तेथें पापण्या विक्षेपकारक । पापिणी निश्चिती त्या होती । ९३ पापण्या विघ्न परम ध्याना । मग आम्ही निंदितों चतुरानना । अहा रे विधातया शाहण्या । व्यर्थ पापण्या त्वां केल्या । ९४ टाकूनि पति सुत बंधु जनका । तुज पावलों कमलानायका । हरि तूं परम कपटी नाटक्या । जवळी असतां

हैं । ८६ जिस प्रकार भक्त और (देव आदि के) निन्दक, श्रोत्रीय (ब्राह्मण) और हिंसक सम-समान नहीं हैं, उसी प्रकार अमृत और तेरी सुन्दर कथा बिलकुल सम-समान नहीं हैं । ८७ उसी कथामृत से हम ग्वालिनें बच गयी हैं । हे मनमोहन, चक्रपाणि, झट से आकर मिल जा । ८८ हे चक्रपाणि, झट से आकर अपने पाँव हमारे स्तनों को लगा दे (अर्थात हमें तेरे पाँव हमारे हृदय-स्थल पर रख लेने दे) । तू ओंठों पर रखकर वेणु बजाता है, (हमें) वही आधार जान पड़ता है । ८९ वह (वेणु) तेरे अधरामृत का अनवरत सेवन करता है । (अतः) उसका बड़प्पन सबसे बड़ा है । महाकवि जिनका वर्णन करते हैं, वे अपने चरण एक बार हमें दिखा दे । १९० हे हरि, तेरे चरण दिखायी न देने पर पल युग-समान जाते (व्यतीत होते) जान पड़ते हैं । हे सुन्दर, सलोनी आँखोंवाले, जगद्श्रेष्ठ, तेरे लिए (तेरे दर्शन न होने से) हम दुःखी हो गयी हैं । १९१ तेरे मुख को नयनों से देखते हुए क्षण-क्षण (हमारी) पलकें झपकती रहती हैं । इस प्रकार तेरे ध्यान में जो विघ्न उपस्थित करती हैं, वे हमें अच्छी नहीं लगतीं । ९२ तेरे मुख को देखने पर समस्त सांसारिक दुःख दूर हो जाता है । वहाँ (इस स्थिति में) बाधा उत्पन्न करनेवाली ये पलकें निश्चय ही पापिनी हो जाती हैं । ९३ ध्यान में ये पलकें परम विघ्न-स्वरूप बन जाती हैं । तब हम चतुरानन ब्रह्मा की निन्दा करने लगती हैं, 'हाय रे बुद्धिमान विधाता, तूने व्यर्थ ही पलकें क्यों निर्मित कीं ? ' । ९४ हे कमला-पति, अपने पति, पुत्र, बन्धु, पिता को छोड़कर हम तुमसे मिलीं; फिर भी, हे हरि, तू परम कपटी,

न दिससी । ९५ अहा श्रीरंगा आत्मयारामा । निजभक्तकामकल्पद्रुमा । पुराणपुरुषा पूर्णब्रह्मा । भेटोनि कामना पुरवी तूं । ९६ हरि तुझें देखतां वक्षःस्थळ । मनीं काम होय उतावेळ । तूं कोमलांग घननीळ । भेटतां सकळ काम पुरे । ९७ आमुचे स्तन परम कठिण । अति कोमळ तुझे चरण । तुझें करितां चरणसंवाहन । आमुचे मन भीतसे । ९८ ऐसे पद तुझे कोमल श्रीहरी । हिंडसी कोणे वनांतरीं । म्हणोनि गोपिका सुस्वरीं । रडती हरीकारणें । ९९ गळाला सकळ अभिमान । अंतरीं दृढ ठसावलें ध्यान । ऐसें जाणोनि श्रीकृष्ण । एकाएकीं प्रगटला । २०० किरीट कुंडलें वनमाळा । आजानुबाहु कांसे पीतांबर कसिला । गोपींस वाटे प्राण आला । मग धांविन्नल्या न सांवरतां । २०१ एक लागती हरिचरणीं । एक गळां दृढ मिठी घालुनी । एक मुख लक्षिती नयनीं । एक कामेंकरूनि विव्हळ । २ मागुती रासमंडळ रचोनी । सकळांचा काम पुरवोनी । तों उगवला दिनमणी । गेल्या नितंबिनी गोकुळा । ३ षण्मासांची करूनि राती । भोगिल्या गोकुळींच्या

नाटक करनेवाला है । पास में होने पर (भी) तू नहीं दिखायी देता है । ९५ अहो श्रीरंग, हे आत्माराम, हे अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष, हे पुराणपुरुष, हे पूर्णब्रह्म, मिलकर हमारी कामना पूर्ण कर । ९६ हे हरि, तेरे वक्षःस्थल को देखने पर मन में कामभाव अधीर हो जाता है । तू कोमलांग, घननील है । तुझसे मिलने पर हमारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं । ९७ हमारे स्तन परम कठिन हैं, (जब कि) तेरे चरण अति कोमल हैं । उनपर तेरे चरणों को उठाये रखने में हमारा मन डर जाता है । ९८ हे श्रीहरि, तेरे पाँव ऐसे कोमल हैं । तू (उनके बल) किस वन के अन्दर (कहाँ) घूम रहा है ? इस प्रकार कहते-कहते गोपिकाएँ श्रीहरि के निमित्त सुस्वर रोने लगीं । ९९ उनका समस्त अभिमान दूर हो गया । उनके अन्तःकरण में ध्यान दृढ़तापूर्वक जम गया । ऐसा जानकर श्रीकृष्ण यकायक (वहाँ पर) प्रकट हो गये । २०० वे किरीट, कुण्डल और वनमाला धारण किये हुए थे । वे आजानुबाहु थे, अर्थात उनके हाथ घुटनों तक पहुँचते थे । कमर में पीताम्बर कसकर बाँधा हुआ था । (उन्हें देखते ही) गोपियों को जान पड़ा कि (प्रत्यक्ष) प्राण ही आ गये हों । तब वे बिना विलम्ब किये दौड़ीं । २०१ कुछ एक श्रीकृष्ण के चरण लग गयीं (पाँवों में लिपट गयीं), तो कुछ एक उनके गले में दृढ़ता से बाँहें डालकर (खड़ी) रह गयीं । कुछ एक अपनी आँखों से उनके मुख को निहारती रहीं, तो कुछ एक कामभाव से विह्वल हो उठीं । २ अनन्तर फिर से कृष्ण ने रासमण्डल की रचना करके उन सबकी कामना पूर्ण की । तो सूर्य उदय को प्राप्त हो गया; वे नारियाँ गोकुल (लौट) गयीं । ३ श्रीकृष्ण ऊर्ध्वरेता थे । (अतः यद्यपि) उन्होंने छः महीने की

युवती । परी वीर्यासी नाहीं अधोगती । ऊर्ध्वरेता श्रीकृष्ण । ४ ज्या ज्या गौळियांच्या सुंदरी । तितुक्याही होत्या निजमंदिरीं । कृष्णें भोगिल्या बहुरात्रीं । हेंच नवल पें जाणा । ५ तरी त्या वेदश्रुती सकळा । निर्गुणरूप वर्णितां शिणल्या । परी स्वरूपीं नाहीं ऐक्य जाहल्या । मग अवतरल्या गोकुळीं । ६ प्रवेश नोहे निर्गुणीं । म्हणोनि ये वेळे जडल्या सगुणीं । येऱ्हवीं गोकुळींच्या कामिनी । पतिशयनीं होत्या त्या । ७ इतुक्या गोपी भोगिल्या देखा । परी हरीवरी रुसली राधिका । तिचें समाधान करावया भक्तसखा । कुंजवनीं प्रवेशला । ८ तें श्रीजयदेव पद्मावतीरमण । तेणें केलें समूळ कथन । राधा हे शचीचा अवतार पूर्ण । अष्टमाध्यायीं सांगितलें । ९ तिचें सांगावें समूळ चरित्र । तरी विशेष वाढेल हा ग्रंथ । हें पद्मपुराणींचें संमत । कथिलें असे जयदेवें । २१० दशम आणि हरिवंश । पद्मपुराणींच्या कथा विशेष । हरिविजयीं लिहिल्या निर्दोष । शब्द न ठेविजे ग्रंथातें । २११

रात बनाकर गोकुल की (सब) युवतियों का उपभोग किया, तथापि उनका वीर्य अधोगति को नहीं प्राप्त हुआ । ४ (इधर चमत्कार यह कि) जिन-जिन ग्वालों की स्त्रियाँ (रास में सम्मिलित) थीं, उतनी ही वे सब अपने-अपने घर में थीं । कृष्ण ने उनका उपभोग बहुत रातों में किया । समझिए कि यही आश्चर्य है । ५ यह इसलिए जान पड़ता है कि वे समस्त वेदश्रुतियाँ थीं । वे (ब्रह्म के) निर्गुण रूप का वर्णन करते-करते थक गयीं, फिर भी वे ब्रह्मस्वरूप के साथ एकात्मता को प्राप्त नहीं हो पायीं । अनन्तर वे गोकुल में (ब्रह्म के सगुण रूप के साथ रहने के लिए) अवतरित हो गयीं । ६ निर्गुण में उनकी पैठ नहीं हो रही थी, इसलिए वे इस समय सगुण ब्रह्म में जुड़ गयी हैं । नहीं तो वे गोकुल की स्त्रियाँ अपने-अपने पति की शय्या पर (ही) थीं । ७ देखिए, श्रीकृष्ण ने इतनी गोपियों का उपभोग किया; फिर भी राधा उनसे रूठ गयी थी । इसलिए उसे तृप्त करने के लिए वे भक्तों के सखा (कृष्ण) कुंजवन में प्रविष्ट हो गये । ८ पद्मावती के पति श्रीजयदेव ने उस (घटना) का मूल से (अथ से, आरम्भ से लेकर) कथन किया है । आठवें अध्याय में यह कहा है कि राधा (स्वयं इन्द्रपत्नी) शची की पूर्णरूप अवतार थी । ९ यदि उसका मूल अर्थात आरम्भ से लेकर चरित कह दें, तो यह ग्रन्थ विशेष रूप से (बहुत) बढ़ जाएगा । यह तो पद्मपुराण से सम्मत है और जिसे कवि जयदेव ने (भी) कहा है । २१० मैंने श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध की, हरिवंश की और पद्मपुराण की विशिष्ट कथाएँ इस 'श्रीहरि-विजय' नामक ग्रन्थ में दोषरहित रूप में लिखी हैं । इसलिए इस ग्रन्थ को दोष न दीजिए । २११ कोई भी कथा मूलाधार से बिलकुल भिन्न

मूळावेगळी सर्वथा। प्रसिद्ध नव्हेचि कदा कथा। आणि या ग्रंथाचा मी कर्ता। ऐसें म्हणतां दोष लागे। १२ वरदायक रुक्मिणीकांत। तेणें लिहिला हरिविजय ग्रंथ। त्याचें तों जाणे समर्थ। मज कांहीं न कळे हें। १३ येऱ्हवीं मी दीन पामर। तेणें माझें नाम ठेविलें श्रीधर। मूर्खाहातीं हा ग्रंथ थोर। कां करविला तो जाणे। १४ गोकुळींचें बाळक्रीडाकथन। संपूर्ण जाहलें येथून। पुढे आतां अक्रूरागमन। बहु निरूपण रसाळ। १५ श्रीकृष्ण मथुरेसी जाईल। प्रेमाचा सागर उचंबळेल। ते कथा ऐकतां हृदय उलेल। प्रेमळ सद्भाविकांचें। १६ हरिविजय ग्रंथ श्रेष्ठ। हें केवळ वैकुंठपीठ। इंदिरानाथा त्रिभुवनवरिष्ठ। तोचि प्रकट येथें दिसे। १७ वैकुंठीं अवघे समसमान। चतुर्भुज घनश्यामवर्ण। येथें जे सद्भावें करिती श्रवण। हरिरूप पूर्ण ते होती। १८ यालागीं जें वैकुंठीं सुख पाहतां। तें सुख हरिविजयश्रवणें येत हाता। अनुमान न धरावा श्रोतां। केवळ कविता हे नोहे। १९ ब्रह्मानंदा श्रीधरवरा। श्रीमद्भीमातटविहारा। पुराणपुरुषा

होकर कदापि विख्यात नहीं होती। (कोई भी कथा विख्यात आधार से ग्रहण की जाती है। मैंने भी इस कथा का आधार सूचित किया है।) यह कहने में दोष लग जाता है कि मैं (ही) इस ग्रन्थ का कर्ता हूँ। (अर्थात कवि ग्रन्थ-रचना का श्रेय अपने-आप को देना नहीं चाहता)। १२ रुक्मिणी के पति श्रीकृष्ण वरदाता हैं। उन्होंने (ही) यह श्रीहरि-विजय ग्रन्थ लिखा है (मुझसे लिखवाया है)। अतः वे उनके अपने सम्बन्ध में जानने के लिए समर्थ हैं। मेरी समझ में यह कुछ नहीं आता। १३ अन्यथा, मैं तो दीन, पामर हूँ। (फिर भी) उन्होंने मेरा नाम 'श्रीधर' रखा। वे ही जानते हैं कि (मुझ-जैसे) मूर्ख के हाथों से यह महान ग्रन्थ क्यों निर्मित किया है। १४ अब (यहाँ) गोकुल की बाल-क्रीड़ाओं का कथन पूर्ण हुआ। अब आगे अक्रूर का आगमन (का प्रसंग) कहा जाएगा। उसका निरूपण बहुत रसात्मक है। १५ (कहा जाएगा कि)— श्रीकृष्ण मथुरा जाएँगे। तो प्रेम का सागर उमड़ उठेगा। उस कथा का श्रवण करते हुए प्रेममय सद्भक्तों का हृदय आनन्द से बहुत गद्गद हो उठेगा। २१६

'श्रीहरि-विजय' नामक यह श्रेष्ठ ग्रन्थ (मानो) केवल वैकुण्ठपीठ है। यहाँ इन्दिरापति, त्रिभुवनवरिष्ठ भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ही प्रकट हुए दिखायी देंगे। २१७ वैकुण्ठ में तो समस्त सम-समान होते हैं। वहाँ चतुर्भुजधारी घनश्यामवर्ण भगवान हैं। यहाँ जो सद्भक्ति-भाव से (उनकी कथा का) श्रवण करेंगे, वे पूर्णतः हरि-रूप हो जाएँगे। १८ इसलिए जो सुख वैकुण्ठ में देखते हैं, वही सुख श्रीहरि-विजय ग्रन्थ के श्रवण

निर्विकारा। रुक्मिणीवरा श्रीविठ्ठला। २२० इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। परिसोत सद्भक्त पंडित। सप्तदशाध्याय गोड हा। २२१

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

से हाथ आता है। श्रोता इस सम्बन्ध में संशय न धारण करें। यह केवल (साधारण) कविता (काव्य ग्रन्थ) नहीं है। २१९

।। इति ।। हे आनन्दस्वरूप ब्रह्म (गुरु ब्रह्मानन्द), हे श्रीधर के लिए वरदाता, हे श्रीमद्भीमा के तट पर विहार करनेवाले, हे पुराणपुरुष, हे निर्विकार, हे रुक्मिणीवर, हे श्रीविट्ठल ! श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। सद्भक्त तथा पण्डितजन उसके इस मधुर सत्रहवें अध्याय का श्रवण करें। २२०-२२१

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

अध्याय—१८

[अक्रूर का गोकुल में आगमन और कृष्ण-वलराम का उसके साथ मथुरा-गमन]

श्रीगणेशाय नमः ।। करितां श्रीहरिस्मरण। दारुण विघ्नें पळती उठोन। कोटिमुहूर्तांहून विशेष पूर्ण। कृष्णचिंतन जाणावें। १ उदंड मुहूर्त साधिले। परी कृष्णस्मरण नाहीं केलें। तरी तितुकेही कुमुहूर्त जाहले। विघ्नें सबळ धांवती। २ षष्ठी नवमी व्यतीपात। वैधृति कल्याणी कुयोग समस्त। इतुकियांसही मंगळ करीत। नाम हरीचें निर्धारें। ३ सर्वदा लाभ

श्रीगणेशाय नमः। (भक्त द्वारा) श्रीहरि का स्मरण करने पर (उसके जीवन-पथ पर आनेवाले) भयावह विघ्न उठकर भाग जाते हैं। कृष्ण के चिन्तन अर्थात स्मरण-मनन को करोड़ों सुमुहूर्तों (पर किये हुए पुण्य कर्मों) से पूर्णतः विशिष्ट (फलदाता) समझें। १ (किसी ने) बहुत मुहूर्त (पुण्य कर्मों को सम्पन्न करने की दृष्टि से खोजकर) सिद्ध किये; परन्तु (यदि) उसने कृष्ण का स्मरण न किया हो, तो वे उतने ही समस्त (सुमुहूर्त) कुमुहूर्त हो जाते हैं (और फलतः उसके मार्ग में) बड़े विघ्न दौड़कर आ जाते हैं। २ षष्ठी, नौमी, व्यतीपात, वैधृति और कल्याणी —ये समस्त कुयोग हैं। (परन्तु) निश्चय ही श्रीहरि का नाम (-स्मरण) उतने समस्त (कुयोगों) को मंगल (कारी) कर देता है। ३ लाभ और विजय (श्रीहरि के) नाम का स्मरण करनेवाले के नित्य पाँव

आणि जय। धरिती स्मरणकर्त्यांचे पाय। तो कधीं न पावे पराजय। जो हृदयीं ध्याय हरीतें। ४ जो नाम न विसंबे अहोरात्रीं। नित्य उत्साह ज्याचें मंदिरीं। वैकुंठपति तो श्रीहरी। त्यासी क्षणभरी न विसंबे। ५ तेंचि सुलग्न सुदिन। ताराशशिदैवबळ पूर्ण। जे इंदिरापतीचे चरण। प्रेमेंकरूनि आठवती। ६ राज्यभोग विपुल सर्वदा। पुत्र विद्या बळ धन संपदा। इतुकें इच्छी कामिक सदा। तरी तिहीं गोविंदा स्मरावें। ७ सहस्र यागांचें निजफळ। जरी इच्छिसी तूं नित्यकाळ। तरी चिंतीं घननीळ। तमालनीळ साजिरा। ८ केलें असेल अभक्ष्यभक्षण। दुष्टप्रतिग्रह सुरापान। तरी हरीनें केलें पूतनाशोषण। त्या श्रवणेंकरून दोष जाय। ९ ज्यांसी न कळतां घडला जार। तिहीं रासमंडळीं खेळला यादवेंद्र। तें श्रवण करितां चरित्र। पाप जाय झडोनि। १० ब्रह्महत्यादि दोष घडले पूर्ण। तिहीं करावें रासकथाश्रवण। श्रवणीं ऐकतां कालियामर्दन। सर्प जाण न बाधिती। ११ ऐकतां गोवर्धनोद्धारणकथा। निरसे सकळ संकटव्यथा।

लग जाते हैं। हृदय में जो हरि का ध्यान करता है, वह कभी भी पराजय को नहीं प्राप्त हो जाता है। ४ जो दिन-रात नाम का विस्मरण नहीं होने देता, जिसके घर में नित्य (श्रीहरि का) अनुष्ठानपूर्वक कोई आनन्दोत्सव होता रहता है, उसे वैकुण्ठपति श्रीहरि क्षण भर तक नहीं भुला देते। ५ (जिस समय) जो इन्दिरापति भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण के चरणों का प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं, उनके लिए वही (समय) सुलग्न (शुभ लग्न से युक्त), सुदिन (शुभ दिन) होता है। उसके लिए वह समय नक्षत्रों, चन्द्र और देवों के बल से पूर्णतः युक्त हो जाता है। ६ जो नित्य विपुल राज्य (सुख) भोग, पुत्र, विद्या, बल, धन-सम्पदा —इतनी काम्य बातों को नित्य (प्राप्त करना) चाहता है, तो वह गोविन्द का स्मरण किया करे। ७ यदि तुम सहस्र यज्ञों का फल नित्य काल (प्राप्त करना) चाहते हो, तो घननील, तमालनील सलोने कृष्ण का चिन्तन-स्मरण करो। ८ श्रीहरि ने पूतना राक्षसी का शोषण किया (स्तनपान करते हुए उसे मार डाला)। यदि (तुमने) अभक्ष्य-भक्षण किया हो, अनुचित दान अथवा दुष्ट व्यक्ति द्वारा दिया दान स्वीकार किया हो, तो उसका दोष (पाप) उस (कथा) के श्रवण से नष्ट हो जाता है। ९ यादवेन्द्र कृष्ण ने रास-मण्डल में रास-क्रीड़ा की थी। जिनसे अनजाने में जारकर्म (अगम्यगमन) घटित हुआ हो, तो श्रीकृष्ण की उस चरित्र-लीला का श्रवण करने से उनका वह पाप झड़ जाता है। १० जिनसे ब्रह्महत्यादि के पूर्ण अर्थात सबसे बड़े पाप हो गये हों, तो वे भी रास (लीला) कथा का श्रवण करें। समझिए कि कालिय-मर्दन (की कथा) कानों से सुनने पर सर्पों की बाधा नहीं होती। ११

अवघा हरिविजय ऐकतां। सर्व कामना पुरती हो। १२ हा हरिविजय ऐकतां पवित्र। त्याच्या वंशीं होय विजयी पुत्र। एक आवर्तनें संकटमात्र। निरसोन जाय सर्वथा। १३ ऐसा वर पंढरीनाथें। दिधला हरिविजयग्रंथातें। असत्य कदा नाहीं येथें। प्रचीत भावार्थें पहावी। १४ सत्राव्या अध्यायीं जाण। पूर्ण जाहलें रासक्रीडाकथन। आतां अक्रूरागमन। सावधान परिसावें। १५ ऐकोनि हरिप्रताप उदंड। कंस चिंताक्रांत अखंड। म्हणे कृष्णें मारिले दैत्य प्रचंड। देव समस्त भिती जयां। १६ पंचाननाचा प्रताप ऐकोन। भयभीत जेवीं वारण। कीं यशवंत विनितानंदन। दंदशूक ऐकोन तटस्थ। १७ तैसा भयें व्याप्त कंस। गोड कांहीं न वाटे जीवास। नाठवे रात्र किंवा दिवस। परमपुरुष दृष्टीपुढें। १८ देखिला नसतां चक्रपाणी। दुरोनि प्रताप ऐकतां श्रवणीं। तैसीच मूर्ति ध्यानीं मनीं। ठसावोनि बैसली। १९ मेळवूनि प्रधान चतुर। विचारीं बैसला कंस नृपवर। म्हणे आम्हांसी

गोवर्धन पर्वत के उद्धरण की कथा सुनने पर संकटों से उत्पन्न समस्त व्यथा का निराकरण हो जाता है। अहो, समस्त श्रीहरि-विजय का श्रवण करने पर समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। १२ इस पवित्र श्रीहरि-विजय का श्रवण करने पर उस (श्रवणकर्ता) के वंश में विजेता पुत्र उत्पन्न हो जाता है। उसके एक आवर्तन से समस्त संकट पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। १३ पण्ढरीनाथ (कृष्णस्वरूप) श्रीविट्ठल ने श्रीहरि-विजय ग्रन्थ को ऐसा वरदान दिया है। यहाँ (इसमें) कुछ भी असत्य नहीं है। भावार्थ से इसका अनुभव करके देखें। १४

समझिए कि सत्रहवें अध्याय में रासक्रीड़ा-कथन पूर्ण हो गया। अब अवधानपूर्वक अक्रूर के आगमन (सम्बन्धी कथा) को सुनिए। १५ श्रीहरि के बड़े प्रताप को सुनकर कंस अनवरत चिन्ताक्रान्त बना रहा। वह बोला, ' कृष्ण ने उन प्रचण्ड दैत्यों को मार डाला जिनसे समस्त देव डरते हैं '। १६ जिस प्रकार सिंह का प्रताप सुनकर हाथी भयभीत हो जाता है, अथवा यशस्वी विनतापुत्र गरुड़ (के नाम) को सुनते ही सर्प स्तब्ध-कुण्ठित हो जाते हैं, उसी प्रकार (कृष्ण के प्रताप को सुनते ही) कंस भय से व्याप्त हो गया। उसके जी को कोई बात मीठी (अच्छी) नहीं लगती थी। उसे रात या दिन का स्मरण नहीं रहता था। (नित्य) उसकी दृष्टि के सामने परमपुरुष (कृष्ण दिखायी दे रहे) थे। १७-१८ चक्रपाणि कृष्ण को न देखने पर भी, उनके प्रताप को दूर से ही कानों से सुनने पर, (कंस के) ध्यान में, मन में वैसी ही मूर्ति जमकर बैठ गयी थी। १९ (तत्पश्चात अपने) चतुर मन्त्रियों को इकट्ठा करके नृपवर कंस विचार-विमर्श करने के लिए बैठ गया। वह बोला, ' जिससे नन्द-किशोर कृष्ण हमारे द्वारा वश में किया जा पाए, ऐसा उपाय आयोजित

आटोपे नंदकिशोर। ऐसा प्रकार योजावा। २० प्रधान म्हणती धनुर्याग। आरंभावा आतां सवेग। बळिराम आणि श्रीरंग। आदरेंकरूनि आणावे। २१ नंदादि गौळियां समवेत। मान देऊनि आणावे येथ। नम्र वचनें बोलोनि बहुत। शेवटीं घात करावा। २२ दिवाभीताचे गृहीं अग्न। कागें लाविला नम्रता धरून। तैसे गौळियांसमवेत रामकृष्ण। येथें कोंडूनि वधावे। २३ विषवल्ली जों वाढों लागे। तों खुडूनि टाकावी वेगें। तरीच आपणां सुख भोगे। चिरकाळ असिजे नृपवरा। २४ अनर्थ थोर बहुत दूर आहे। म्हणोनि सुखें निद्रा करूं नये। सत्वर करावा उपाये। तरीच कुशळ आपुलें। २५ नयनीं हरळ खुपतां। सत्वर काढावा तत्त्वतां। कंटक पदीं भेदितां। आधीं काढिजे कोरूनि। २६ तैसे नाना उपाय करून। रामकृष्णां येथें आणून। विश्वासोनि घ्यावा प्राण। तरी कार्य साधेल। २७ दावूनियां अंगपतन। पाषाण फोडी लोहघन। कीं कंटक चरणीं लागोन। जैसें जिव्हार भेदिती। २८ मस्तक करोनि खालतें। पारधी वधी जैसा मृगातें। कीं सराटे जेवीं महागजातें। किंकाळूनि उभें करिती। २९

करो'। २० (इसपर) मन्त्री बोले, 'अब वेगपूर्वक (शीघ्र) धनुर्यज्ञ का आरम्भ कीजिए (और) बलराम और कृष्ण को आदरपूर्वक ले आइए। २१ नन्द आदि ग्वालों के साथ उनका सम्मान करके यहाँ ले आएँ; (फिर) बहुत विनम्र बातें करके अन्त में उनको मार डालें। २२ जिस प्रकार एक कौए ने नम्रता धारण करके उल्लू के घर में आग लगा दी, उसी प्रकार (नम्रतापूर्वक व्यवहार करते हुए, फिर भी अन्त में धोखा देकर) ग्वालों-सहित, बलराम तथा कृष्ण को यहाँ बन्द (चारों ओर से घेरकर) करके उनका वध करें। २३ जब विषवल्ली बढ़ने लगती है, त्योंही उसे झट से खोंटकर उखाड़ (तोड़) डालें। तभी, हे नृपवर, हमारे लिए सुख और भोग चिरकाल तक हो जाएँगे। २४ बड़ा संकट (अभी तक) दूर है, इसलिए (इस विचार से असावधान रहकर) सुखपूर्वक न सो जाएँ। झट से उपाय कर लें। तो ही अपनी कुशल होगी। २५ आँख में कंकड़ (कण) के खटकते रहते सचमुच उसे झट से निकाल डालना चाहिए। पाँव में काँटे के चुभते रहते ही, उसे पहले कुरेदकर निकाल डालना चाहिए। २६ वैसे ही नाना उपाय आयोजित करते हुए बलराम और कृष्ण को यहाँ लाकर उन्हें विश्वास में लेते हुए उनके प्राण लें। तो ही कार्य (हेतु) सिद्ध हो जाएगा। २७ लोहे का घन (अपने-आपको) नीचे गिरते दिखाकर पाषाण को तोड़ डालता है; अथवा काँटे जिस प्रकार चरणों में लगकर फिर मर्मस्थान को भेद डालते हैं; अथवा शिकारी जिस प्रकार सिर नीचे झुकाकर मृग का वध कर देता है, अथवा जैसे कमचियाँ महान् हाथी को चीखते-चिल्लाते हुए

कीं बचनाग मुखीं घालितां। जिव्हेसी गोड लागे खातां। मग सर्वेचि मृत्युव्यथा। प्राप्त करी तत्काळ। ३० वरी आमिष लावूनि क्षणमात्र। गळ भेदी जैसें जिव्हार। कां चणे टाकोनि वानर। विश्वासोनि धरिती पैं। ३१ कां वरिवरी बोले गोड मैंद। परी आपुल्या कार्यासी सावध। तैसे राम आणि गोविंद। विश्वासोनि वधावे। ३२ ऐकोनि प्रधानाच्या युक्ती। कंसासी हर्ष न समाये चित्तीं। म्हणे तुमचे बुद्धीपुढें बृहस्पती। उणा मज वाटतसे। ३३ तरी आतां पाठवावा कोण। नम्र बोलका विचक्षण। नाना युक्तींकरून। रामकृष्णां आणी जो। ३४ प्रधान म्हणती पाठवावा अक्रूर। स्थिरबुद्धि परमचतुर। त्याच्या बोलें ते क्षणमात्र। न लागतां येथें येती पैं। ३५ मग बोलावूनि अक्रूर। कंसें दिधलीं वस्त्रें अलंकार। म्हणे तुम्ही जाऊनि सत्वर। रामकृष्णां आणा येथें। ३६ धनुर्याग मांडिला येथें। सांगावें नंदादि गौळियांतें। महोत्साह पाहूनि मागुतें। गोकुळासी जाइंजे। ३७ आमुचा दिव्य रथ जाई घेऊनी। वरी बैसवीं रामचक्रपाणी। उदयीक सत्वर दोघांसी घेऊनी। यावें उत्साह पहावया। ३८ आज्ञा वंदूनि

खड़ा कर देती हैं; अथवा जिस प्रकार मुँह में डालकर खाने लगते ही बछनाग जीभ को मीठा लगता है, लेकिन फिर वह साथ ही तत्काल मृत्यु की व्यथा को प्राप्त करा देता है; अथवा जिस प्रकार ऊपर क्षणमात्र के लिए आमिष लगाकर काँटा (मछली के) मर्मस्थान को भेद डालता है; अथवा चने डालकर (लोग) वानर को विश्वास में लेकर पकड़ लेते हैं; अथवा ठग ऊपर ही ऊपर मधुर बोलता है, लेकिन अपने कार्य के सम्बन्ध में सावधान बना रहता है, उसी प्रकार बलराम और गोविन्द कृष्ण को विश्वास में लेकर उनका वध कर डालें'। २८-३२ मन्त्री द्वारा कथित ये युक्तियाँ सुनकर कंस के मन में हर्ष समा नहीं रहा था। वह बोला, 'मुझे तुम्हारी बुद्धि की तुलना में बृहस्पति छोटा लगता है। ३३ फिर अब किसे भेज दिया जाए, जो नम्र बातें करनेवाला हो, चतुर हो और नाना युक्तियों द्वारा बलराम और कृष्ण को यहाँ ले आ सके'। ३४ (इसपर) मन्त्री बोले, 'अक्रूर को भेज दीजिए। वह स्थिरमति है, परम चतुर है। उसकी बातों के कारण (बातों में आकर) वे क्षणमात्र न लगते यहाँ आ जाएँगे'। ३५ अनन्तर कंस ने अक्रूर को बुलाकर उसे वस्त्र और आभूषण प्रदान किये और कहा, "तुम (गोकुल में) जाकर झट से बलराम और कृष्ण को यहाँ ले आओ। ३६ नन्द आदि ग्वालों से कहो— 'यहाँ धनुर्याग आरम्भ किया है। यह महोत्सव देखकर फिर गोकुल लौट जाएँ'। ३७ हमारे दिव्य रथ को ले जाओ। उसमें बलराम और चक्रपाणि कृष्ण को बैठा दो। कल उन दोनों को उत्सव देखने के लिए झट से लेकर आ जाओ"। ३८ इस आज्ञा को

अक्रूरें। रथ घेऊनि निघाला त्वरें। म्हणे माझ्या सुकृततरुवरें। वाढी आजि घेतली। ३९ मनांत चिंता वाटे थोर। म्हणे कंस चांडाळ दुराचार। राम आणि यदुवीर। दोघे सुकुमार कैसे आणूं। ४० मागुती श्रीकृष्णचरित्र। अद्भुत आठवी मनांत। संहारिलें दारुण दैत्य। केशी अघ बकादिक पैं। ४१ श्रीकृष्णप्रतापापुढें देख। कंस काय बापुडें मशक। जगद्वंद्यासी आवश्यक। नेईन आतां निर्धारें। ४२ आणि चिंती एक अंतरीं। मद्विश्वास हरि धरो कीं न धरी। हा कंससेवक म्हणोनि मजवरी। कोपेल काय जगदात्मा। ४३ तो तरी सर्वात्मा सर्वसाक्षी। जो अनंत ब्राह्मांडचित्ता परीक्षी। भक्ताभक्तांचीं लक्षणें लक्षी। संकटीं रक्षी निजदासा। ४४ म्हणे आजि धन्य माझे नयन। देखतील वैकुंठींचें निधान। पूर्णब्रह्म सनातन। मी पाहीन डोळेभरी। ४५ जो दशशतमुखांगशयन। मी त्याचे पदीं भाल ठेवीन। जो नीलग्रीवाचें हृदयध्यान। चतुरानन बाळ ज्याचें। ४६ जो क्षीराब्धिवासी पूर्ण। ज्याचें वेदशास्त्रां न कळे वर्म। त्या हरीसी आजि क्षेम। देईन प्रेमें आवडीं। ४७

आदरपूर्वक स्वीकार करके अक्रूर रथ लेकर झट से चल दिया। उसने कहा (सोचा) — 'मेरे सुकृत अर्थात मेरे द्वारा किये हुए पुण्य रूपी वृक्ष ने आज वृद्धि (विकास) को प्राप्त किया है'। ३९ उसे मन में बहुत चिन्ता हो रही थी। उसने कहा (सोचा)— 'कंस चण्डाल (दुष्ट) है, दुराचारी है। मैं बलराम और यदुवीर —दोनों सुकुमारों को कैसे (क्यों) ले आऊँ?'। ४० अनन्तर उसने मन में श्रीकृष्ण की उन अद्भुत चरित्र-लीलाओं का स्मरण किया, जिस प्रकार उन्होंने केशी, अघ, बक आदि दुर्धर दैत्यों का संहार कर डाला था। ४१ (उसने सोचा—) देखिए, श्रीकृष्ण के प्रताप के सामने (मुक़ाबले में) कंस क्या असहाय मच्छर (जैसा नहीं) है? मैं अब निश्चय ही जगद्वन्द्य कृष्ण को अवश्य ले आऊँगा। ४२ और वह मन में एक बात सोचने लगा। श्रीहरि मेरा विश्वास करें अथवा न करें; पर वे जगदात्मा मुझपर क्या इस कारण से कोप करेंगे कि यह (मैं) कंस का सेवक है (हूँ)। ४३ वे तो सर्वात्मा, सर्वसाक्षी हैं, जो अनन्त ब्रह्माण्डों के चित्त की परख कर सकते हैं, भक्तों तथा अभक्तों के लक्षण देखते-पहचानते हैं और संकट में अपने दास अर्थात भक्त की रक्षा करते हैं। ४४ उसने कहा (सोचा)— आज मेरे नयन धन्य हैं, जो वैकुण्ठ के निधान को देख सकेंगे। मैं आँखें भरकर सनातन पूर्णब्रह्म को (आज) देख लूँगा। ४५ जो सहस्रमुखधारी शेष के अंग पर शयन करने वाले (शेषशायी भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण) हैं, जो नीलकण्ठ शिवजी के हृदय में ध्यान के विषय हैं, ब्रह्माजी जिनके पुत्र हैं, मैं उनके पाँवों पर मस्तक (झुकाये) रखूँगा। ४६ जो पूर्णरूप से क्षीराब्धि के निवासी हैं, जिनका रहस्य वेदों और शास्त्रों तक की समझ में नहीं आता, उन हरि का

जो निर्गुण निर्विकार। जो देशकालरहित अपार। तो गोकुळीं यादवेंद्र। डोळेभरी पाहीन मी। ४८ नाना शास्त्रपद्धती। आग्रहें जो जो अर्थ भाविती। तो हा एक जगत्पती। गोकुळामाजी अवतरला। ४९ वेदांती परब्रह्म जें स्थापिती। तोचि हा क्षीराब्धिजापती। मीमांसक कर्मे करिती। याचलागीं पावावया। ५० नैयायिक म्हणती ईश कर्ता। तोचि हा चतुरास्याचा पिता। जो आदिमायेचा निजभर्ता। कर्ता हर्ता पाळिता जो। ५१ कपिलमुनि सांख्यशास्त्रीं। प्रकृतिपुरुष विभाग करी। तोचि हा गोकुळीं पूतनारी। डोळे भरूनि पाहीन मी। ५२ व्याकरणकार शब्द साधिती। योगसाधन पातंजल करिती। शैव ज्यासी शिव म्हणती। तोचि यदुपति अवतरला। ५३ वैष्णव म्हणती चक्रपाणी। शक्ति गणेश वासरमणी। इच्छामात्रें हीं रूपें धरूनी। नंदभुवनीं अवतरला। ५४ दुरूनि अक्रूर गोकुळ देखत। साष्टांग घातलें दंडवत। म्हणे धन्य हे व्रजवासी समस्त। मुख

मैं आज प्रेमपूर्वक भक्ति के साथ आलिंगन करूँगा। ४७ जो निर्गुण, निर्विकार हैं, जो देश-काल के बन्धनों से रहित हैं, अपार (अनन्त) हैं, उन यादवेन्द्र कृष्ण को गोकुल में मैं आँखें भरकर देख लूँगा। ४८ नाना शास्त्र-प्रणालियाँ आग्रहपूर्वक जिनके (स्वरूप आदि के) जो-जो अर्थ लगाते हैं, वे ये एकमात्र जगत्पति कृष्ण के रूप में गोकुल के अन्दर अवतरित हैं। ४९ वेदान्ती[1] जिनकी परब्रह्म के रूप में स्थापना करते हैं, वे ही ये क्षीराब्धिजा लक्ष्मी के पति भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण हैं। मीमांसक इन्हीं को देखने के लिए कर्म किया करते हैं। ५० नैयायिक जिस ईश्वर को कर्ता कहते हैं, वही ये चतुरानन ब्रह्मा के पिता (भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण) हैं, जो आदिमाया के अपने पति हैं, जो (सृष्टि के) कर्ता (निर्माता), हर्ता (नाश करनेवाले) और पालनकर्ता हैं। ५१ कपिलमुनि ने सांख्यशास्त्र में प्रकृति और पुरुष के रूप में सृष्टि के मूलतत्त्व का विभाजन किया है। वही (आदितत्त्व पुरुष) गोकुल में यह पूतनारि (कृष्ण है, जिन्हें) मैं आँखें भरकर देख लूँगा। ५२ व्याकरणकार शब्द (के रूप और अर्थ) को सिद्ध करते हैं। पतंजलि और उनके अनुयायी जिसके लिए योगसाधना करते हैं, शैव जिसे (महा) शिव कहते हैं, वही यदुपति के रूप में (गोकुल में) अवतरित है। ५३ वैष्णव (जिसे) चक्रपाणि भगवान विष्णु कहते हैं, वे ही शक्ति, गणेश, सूर्य —ये रूप इच्छा मात्र से धारण करते हैं; वे ही नन्दभुवन में अर्थात गोकुल में अवतरित हैं। ५४ अक्रूर ने दूर से गोकुल को देखा, तो साष्टांग दण्डवत नमस्कार किया और कहा (सोचा)— ये समस्त व्रजवासी धन्य हैं, जो श्रीहरि के मुख को (नित्यप्रति) देख सकते

१ यहाँ सूचित है कि समस्त दर्शन तथा शास्त्र एक ही ब्रह्म की ओर संकेत करते हैं।

पाहती हरीचें। ५५ तों गोखुरांमाजी चांगलीं। हरीचीं पाउलें उमटलीं। अक्रूरें घेऊनि ते धूळी। लाविली भाळीं आपुल्या। ५६ जोडोनियां दोन्ही हस्त। चरणचाली अक्रूर चालत। कंठ जाहला सद्‌गदित। अश्रुपात वाहती। ५७ पदमुद्रा उमटल्या जेथें। मागुती प्रणिपात करी तेथें। तों वृक्ष देखिले निजभक्तें। काय त्यांतें बोलत। ५८ म्हणे धन्य धन्य तुम्ही वृक्ष। तुमच्या छायेसी बैसे कमलपत्राक्ष। जो भूतांतरात्मा कर्माध्यक्ष। सहस्राक्ष शरण जया। ५९ तों सायंकाळीं परतले गोभार। गोपाळांसहित यादवेंद्र। सर्वे ज्येष्ठ बंधु भोगींद्र। वाद्यगजर बहु होती। ६० गोरजधूळी दाटली बहुत। तेणें झांकिला अक्रूराचा रथ। नंदमंदिराजवळी अकस्मात। अक्रूर तेव्हां पातला। ६१ अक्रूर नंदें देखोन। धांवोनि दिधलें क्षेमालिंगन। तों पातले दोघेजण। शेष नारायण ते काळीं। ६२ देखिला त्रिभुवननायक डोळां। नीलज तवर्ण घनसांवळा। रुळती आपाद वनमाळा। गोरजें डवरला मुखचंद्र। ६३ उदार श्रीमुख आकर्ण नयन। कुंडलांसी शोभविती

हैं। ५५ तब (उसे दिखायी दिया कि) गायों के खुरों के (निशानों के) बीच-बीच श्रीहरि के पद (-चिह्न) अंकित हैं; तो अक्रूर ने वह धूल उठा लेकर अपने मस्तक पर लगा ली। ५६ अक्रूर दोनों हाथ जोड़कर पैदल चलने लगा। उसका कण्ठ बहुत गद्‌गद हो उठा। (उसकी आँखों से) अश्रुप्रवाह बह रहे थे। ५७ जहाँ (कृष्ण के) पदचिह्न अंकित थे, वहाँ उसने फिर से प्रणाम किया। तब कृष्ण के अपने उस भक्त ने वृक्षों को देखा। उसने उनसे क्या कहा? (सुनिए)। ५८ वह बोला, 'धन्य हो, धन्य हो तुम वृक्ष! तुम्हारी छाया में वे कमलदलाक्ष कृष्ण बैठे होंगे, जो भूतों (प्राणिमात्र) के अन्तरात्मा तथा कर्माध्यक्ष (समस्त कर्मों के कर्ता-नियन्ता) हैं, जिनकी शरण में सहस्राक्ष इन्द्र तक आ जाते हैं। ५९ तब शाम को गायों के झुण्ड लौट रहे थे। यादवेन्द्र कृष्ण गोपालों के साथ (आ रहे) थे। उनके साथ में ज्येष्ठ बन्धु, भोगीन्द्र शेष के अवतार बलराम थे। वाद्यों का बहुत गर्जन हो रहा था। ६० गायों के चलते-दौड़ते रहने के कारण उड़नेवाली धूल बहुत घनता को प्राप्त हो गयी थी। उसने अक्रूर के रथ को (मानो) छिपा दिया। तब सहसा अक्रूर नन्द के घर के पास आ पहुँचा। ६१ नन्द ने अक्रूर को देखते ही दौड़कर उसका क्षेमालिंगन कर लिया। तब उस समय वे दोनों जने शेष और नारायण (के अवतार बलराम और कृष्ण) आ पहुँचे। ६२ अक्रूर ने त्रिभुवननायक कृष्ण को अपनी आँखों से देखा। वे नीलमेघ वर्ण के, घनश्याम थे। (उनके गले में पहनी हुई) वनमालाएँ पाँवों तक झूलती थीं। उनका मुख-चन्द्र गोरज से सना हुआ था। ६३ उनका श्रीमुख उदार था। नेत्र आकर्ण (कानों तक फैले हुए, विशाल) थे। कान (मानो) कुण्डलों को

कर्ण । हरितनूच्या आश्रयें पूर्ण । अलंकार घवघविती । ६४ अक्रूर यादवां वडील बहुत । देखोनियां श्रीकृष्णनाथ । चरण वंदावया धांवत । तों अक्रूरें वंडवत घातलें । ६५ नेत्रीं चालिल्या विमलांबुधारा । ऐसें देखोनि परात्पर सोयरा । अक्रूराचे कर धरोनि त्वरा । उठवोनि क्षेम दीधलें । ६६ अक्रूराच्या गळां मिठी । दृढ घाली जगजेठी । रतिवरशत्रु आणि परमेष्ठी । त्यांसीही भेटी नव्हेचि । ६७ निजभक्त जाणती ते गोडी । तेथ समाधि कायसी बापुडी । तीर्थव्रतांचिया कोडी । वरूनियां ओवाळिजे । ६८ क्षणक्षणां तो अक्रूर । कृष्णमुख न्याहाळी सुंदर । धरी हरीचे चरण वारंवार । तृप्ति नव्हेचि सर्वथा । ६९ बळिरामासी नमून । अक्रूरें दिधलें आलिंगन । साक्षात् शेषनारायण । अवतारपुरुष भेटले । ७० अक्रूराचे दोन्ही हस्त । बळिराम आणि अच्युत । धरूनि प्रवेशले मंदिरांत । नंदासहित तेधवां । ७१ यशोदेसी नमस्कारूनि अक्रूर । आसनीं बैसला सादर । सांगे मथुरेचा समाचार । सविस्तर आद्यंत जो । ७२ नंदासी म्हणे अक्रूर । कंसें तुम्हांसी बोलाविलें सत्वर । बळिराम आणि यादवेंद्र । याग पहावया

शोभायमान करा रहे थे । श्रीहरि के शरीर के पूर्ण आश्रय से आभूषण शोभा दे रहे थे । ६४ अक्रूर यादवों से बहुत बड़ा था । अतः श्रीकृष्ण उसे देखते ही उसके चरणों को नमस्कार करने के लिए दौड़े । त्योंही अक्रूर ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया । ६५ उनकी आँखों से विशुद्ध (अश्रु) जलधाराएँ बह रही थीं । ऐसा देखकर परात्पर मित्र कृष्ण ने अक्रूर के हाथों को थामकर झट से उसे उठाते हुए उसका आलिंगन किया । ६६ जगद्श्रेष्ठ कृष्ण ने अक्रूर के गले में दृढ़ता से बाँहें डालीं । ऐसी भेंट को रतिवर कामदेव के शत्रु शिवजी तथा परमेष्ठी ब्रह्मा भी प्राप्त नहीं हुए हों । ६७ भगवान कृष्ण के अपने भक्त (ही) उसकी मधुरता (महिमा) को जानते हैं । वहाँ (उसकी तुलना में) बेचारी समाधि (की महत्ता) क्या है ? उसपर तीर्थ (क्षेत्रों की यात्रा) और कोड़ियों व्रतों को (बीसियों व्रतों को) निछावर कर दें । ६८ वह अक्रूर क्षण-क्षण कृष्ण के सुन्दर मुख को निहार रहा था । वह बार-बार कृष्ण के चरण पकड़ (लग) रहा था, तो भी उसे बिलकुल तृप्ति नहीं हो रही थी । ६९ (तदनन्तर) बलराम को नमस्कार करके उसका आलिंगन किया । उसे साक्षात् अवतार पुरुष शेष (के अवतार बलराम) और नारायण (के अवतार कृष्ण) मिल गये थे । ७० तब अक्रूर के दोनों हाथ थामकर बलराम और अच्युत कृष्ण ने नन्द-सहित घर में प्रवेश किया । ७१ (फिर) अक्रूर यशोदा को नमस्कार करके आसन पर बैठ गया और उसने जो भी आदि से लेकर अन्त तक मथुरा का समाचार था, वह सविस्तार कह दिया । ७२ अक्रूर नन्द से बोला, ‘ तुम्हें झट से कंस ने बुला लिया

चलावें । ७३ धनुर्याग पाहूनि मागुती । सर्वेचि यावें गोकुळाप्रती । उदयीक उगवतां गभस्ती । अतिसत्वर निघावें । ७४ तों नंदयशोदा बोलत । मथुरेसी नेतां कृष्णनाथ । तेच क्षणीं आमुचा प्राणांत । होईल जाण अक्रूरा । ७५ श्रीकृष्णाचा करावया घात । कंस अहोरात्र जपत । अक्रूरा तूं आमुचा परम आप्त । पाहें बरवें विचारूनि । ७६ अक्रूर हांसोनि बोलत । तुमचे दृष्टीं हें बाळ दिसत । परी कृतांतासही शिक्षा निश्चित । कृष्णनाथ लावील पैं । ७७ श्रीहरि बोले ते समयीं । अंतरीं भय धरूं नका कांहीं । चला मथुरेसी लवलाहीं । गौळी घेऊनि समागमें । ७८ न लागतां एक क्षण । कंस तत्काळ मारीन । मुष्टिकचाणूरांचें मरण । बहुत जवळी पातलें । ७९ कृष्णें पूर्वी पराक्रम केले । ते नंदयशोदेसी आठवले । थोर दैत्य संहारिले । अघ बक केशी प्रलंबादिक । ८० गोवर्धनपर्वत उचलिला । कालिया मर्दूनि अग्नि प्राशिला । आखंडल शरण आला । तोही देखिला सकळिकीं । ८१ हा सर्वदा असे निर्भय । त्यासी कळिकाळाचें नाहीं भय । बुद्धीचा प्रवर्तक यादवराय । गोष्टी ते मानली समस्तां । ८२ अक्रूर म्हणे

है । बलराम और यादवेन्द्र कृष्ण-सहित तुम यज्ञ देखने के लिए चलना । ७३ धनुर्याग देखकर फिर उनके सहित गोकुल लौट आना । कल सूर्य के निकलते ही अति शीघ्र (यहाँ से) चल दें ' । ७४ तब नन्द और यशोदा ने कहा, ' हे अक्रूर, समझ लो कि कृष्णनाथ को मथुरा ले जाते ही उसी क्षण हमारा प्राणान्त होगा (हमारे प्राण निकल जाएँगे) । ७५ कंस श्रीकृष्ण का वध करने की दिन-रात ताक में है । हे अक्रूर, तुम हमारे परम आप्त (मित्र) हो । भले, विचार करके तो देख लो ' । ७६ तब अक्रूर हँसकर बोला, ' तुम्हारी दृष्टि को यद्यपि यह बच्चा दिखायी दे रहा हो, तो भी यह कृष्णनाथ निश्चय ही कृतान्त यम (तक) को दण्ड दे सकता है' । ७७ उस समय श्रीहरि बोले, ' मन में कुछ भी भय धारण न करो । साथ में ग्वालों को लेकर झट से मथुरा की ओर चल दो । ७८ मैं एक क्षण (तक) न लगते कंस को मार डालूँगा; मुष्टिक और चाणूर की मृत्यु बहुत निकट आ पहुँची है ' । ७९ (यह सुनकर) कृष्ण ने पूर्वकाल में जो पराक्रम (प्रदर्शित) किये थे, वे नन्द-यशोदा को याद आये । (उन्हें यह याद आया कि किस प्रकार) उन्होंने अघ, बक, केशी, प्रलम्ब आदि बड़े-बड़े दैत्यों का संहार किया था । ८० उन्होंने (किस प्रकार) गोवर्धन पर्वत को उठा लिया, कालिय का मर्दन करके अग्नि को पीकर निगल डाला, इन्द्र (किस प्रकार) शरण में आ गया, यह भी सबने देखा है । ८१ ये नित्यप्रति निर्भय रहते हैं; उन्हें काल तक से भय नहीं है; ये यादवराज कृष्ण (सबकी) बुद्धि के प्रवर्तक हैं —यह बात सबने स्वीकार की है । ८२ (तदनन्तर) अक्रूर बोला, ' नन्द आदि समस्त ग्वाले (कल) सबेरे निकलें । '

प्रातःकाळीं। निघावे नंदादि सर्व गौळी। गोकुळांत मात प्रकटली। कीं वनमाळी जातो उद्यां। ८३ तों उगवला वासरमणी। स्नानसंध्यादि भोजन सारूनी। राम आणि चक्रपाणी। सिद्ध जाहले तेधवां। ८४ दिव्य रथ अक्रूरें सज्जिला। गौळियांचा मेळा निघाला। गोरसकावडी ते वेळां। भरोनि घेतल्या कंसभेटी। ८५ यशोदा आणि रोहिणीतें। नमस्कारिलें रामें रमानाथें। हात जोडूनि म्हणती माते। जाऊनि येतों पुढती। ८६ यशोदा म्हणे जगजेठी। आतां कैंची तुझी भेटी। स्नेहाचे उमाळे उठती पोटीं। स्तनीं पान्हा फूटला। ८७ तूं जातोसी मनमोहना। मी आतां न ठेवीं आपुल्या प्राणा। माझ्या विसांविया राजीवनयना। मनरंजना श्रीहरे। ८८ माझे सांवळे कान्हाई। जगन्मोहने कृष्णाबाई। तुझे गुण आठवूं किती काई। मिती नाहीं तयांतें। ८९ विश्वरूप दाविलें वदनीं। गोवर्धन उचलिला चक्रपाणी। द्वादश गांवें महाअग्नी। तुवां गिळूनि रक्षिलें। ९० नंदजी बुडाले यमुनाजळीं। तूं घेऊनि आलासी वनमाळी। सर्पें गिळिलें शक्तिस्थळीं। तेथें रक्षिलें पाडसा। ९१ ब्रह्मांडनायका मी तुझी जननी। म्हणतां लाज वाटते मनीं। माता पिता बंधु भगिनी। तूंचि माझी

यह बात गोकुल में प्रकट हो गयी (खुलकर फैल गयी) कि वनमाली कृष्ण कल जा रहे हैं। ८३ तब सूर्य उदित हुआ। स्नान-संध्यादि तथा भोजन समाप्त करके तब बलराम और चक्रपाणि तैयार हो गये। ८४ अक्रूर ने दिव्य रथ को सज्जित किया; ग्वालों का झुण्ड चल पड़ा। उन्होंने कंस को उपहार-स्वरूप देने के हेतु उस समय गोरस से भरकर काँवरें ले लीं। ८५ बलराम और रमानाथ विष्णु के अवतार कृष्ण ने यशोदा और रोहिणी को नमस्कार किया। वे हाथ जोड़कर बोले, 'माँ, हम जाकर फिर (लौट) आ जाते हैं'। ८६ तो यशोदा बोली, 'अरे जगद्श्रेष्ठ, अब तुझसे कैसे (क्या) भेंट होगी?' उसके पेट (= हृदय) से स्नेह के आँसू फूट पड़े; स्तन पन्हिया उठे। ८७ (वह बोली—) 'रे मनमोहन, तू जा रहा है; मैं अब अपने प्राणों को न रखूँगी (मर जाऊँगी)। रे मेरे विश्राम, राजीवनयन, रे (मेरे) मन को रिझानेवाले श्रीहरि, मेरी साँवली कन्हैया मैया, री जगत् को मोहित करनेवाली कृष्णस्वरूप देवी, तेरे कितने गुणों को स्मरण करूँ? उनकी तो कोई गिनती ही नहीं (हो सकती) है। ८८-८९ तूने (मुझे अपने) मुँह में विश्वरूप दिखा दिया। रे चक्रपाणि, तूने गोवर्धन को उठा लिया। बारह योजन (फैली हुई) प्रचण्ड आग को निगलकर (हमारी) रक्षा की। ९० (जब) नन्दजी यमुना के जल में डूब गये, (तब) रे वनमाली, तू उन्हें (ऊपर) ले आया। रे वत्स, (जब) साँप ने उन्हें शक्ति-स्थान पर निगल डाला, तो वहाँ तूने उनकी रक्षा की। ९१ रे ब्रह्माण्डनायक, मैं तेरी जननी हूँ, ऐसा कहते हुए मुझे मन में लज्जा अनुभव

श्रीरंगा। ९२ ऐसें बोलोनि यशोदा। हृदयीं धरिलें परमानंदा। म्हणे मनमोहना गोविंदा। परतोनि येईं लौकरी। ९३ मातेचिया चरणांवरी। मस्तक ठेवीत मुरारी। माया म्हणे पूतनारी। उपेक्षा केली माझी तुवां। ९४ तों गोपिका आल्या धांवत। दोन्हीं करीं हृदय पिटीत। एक पडती मूर्च्छागत। थोर प्राणांत ओढवला। ९५ धरणीवरी एक लोळती। एक दीर्घ स्वरें हांका देती। एक अवनीं कपाळ आपटिती। प्राणांतगती ओढवली। ९६ एक म्हणती गेला सांवळा। आतां अग्नि लावा गे गोकुळा। अगे गोकुळींचा प्राण चालिला। प्रेतकळा पातली। ९७ अहा अक्रूरा चांडाळा परियेसीं। अकस्मात कोठूनि आलासी। अहा गोकुळींचा प्राण नेतोसी। निर्दय होसी तूं साच। ९८ सकळ गोकुळींच्या हत्या। अक्रूरा पडती तुझ्या माथां। नेऊं नको कृष्णनाथा। इतुकें आतां आम्हांसी देइंजे। ९९ तुझें नाम ठेविलें अक्रूर। परी तूं हिंसक निर्दय थोर। बहुत जाहलासी कां क्रूर। परम निष्ठुर तूं होसी। १०० तों रामकृष्ण रथावरी। बैसोनि चालिले झडकरी। रथापुढें येवोनि व्रजनारी। आडव्या पडती

हो रही है। रे श्रीरंग, मेरी माता, मेरे पिता, बन्धु, भगिनी तू ही है'। ९२ इस प्रकार बोलते हुए यशोदा ने परमानन्द (-स्वरूप) कृष्ण को हृदय से लगा लिया और कहा, 'रे मनमोहन, रे गोविन्द, शीघ्र ही लौट आना'। ९३ (तत्पश्चात) मुरारि कृष्ण ने माता के चरणों पर मस्तक रखा। फिर माता बोली, 'रे पूतनारि, तूने मेरी उपेक्षा की है'। ९४ तब गोपियाँ दौड़ती हुई आ गयीं। वे दोनों हाथों से अपनी-अपनी छाती पीट रही थीं। कुछ एक अचेत होकर गिर पड़ीं। (मानो) प्राणों के लिए प्रचण्ड नाश (का समय) आ गया। ९५ कुछ एक धरती पर लुढ़कने लगीं; कुछ दीर्घ स्वर से पुकार रही थीं; कुछ एक भूमि पर सिर पटक रही थीं। (उनके लिए) प्राणों के निकल जाने की स्थिति (नौबत) आ गयी। ९६ कुछ एक बोलीं, 'साँवला चला गया, तो अब गोकुल में आग लगा दो। अरी, गोकुल के प्राण चले जा रहे हैं। (यहाँ तो) प्रेत की-सी निर्जीव स्थिति हो गयी है। ९७ हाय! अक्रूर, चण्डाल, सुन तो! तू अकस्मात कहाँ से आकर टपक गया? हाय! तू गोकुल के प्राण लिये जा रहा है। तू सचमुच निर्दय हो गया है। ९८ रे अक्रूर, समस्त गोकुल (के लोगों) की हत्याएँ तेरे सिर पर आ पड़ेंगी। तू कृष्णनाथ को मत ले जा। हमें इतना तो (भिक्षा के रूप में) दे देना। ९९ तेरा नाम तो अ-क्रूर (क्रूरताहीन, दयालु) रखा है; फिर भी तू बड़ा निर्दय हिंसक है। तू बहुत क्रूर क्यों हो गया है? तू परम निष्ठुर हो गया है'। १०० तब बलराम और कृष्ण रथ में बैठकर शीघ्रता से चल दिये, तो व्रज की नारियाँ आकर रथ के सामने धरती पर लेट गयीं। १०१ कुछ एक अक्रूर के

धरणीये । १०१ एक अक्रूरापुढें पदर पसरून । म्हणती आम्ही अनाथ भिकारी दीन । करीं आजी कृष्णदान । कीर्ति त्रिभुवनीं भरूं दे । २ अक्रूरादेखतां घेऊनि माती । गोपी आपुल्या मुखीं घालिती । म्हणती मनमोहना यदुपती । न भेटसी आतां तूं । ३ ऐसें देखोनि त्या अवसरा । अष्टभाव नावरती अक्रूरा । नयनीं चालिल्या अश्रुधारा । प्रेम देखोनि गोपिकांचें । ४ म्हणे धन्य धन्य यांचें प्रेम । यांहीं वश केला पुरुषोत्तम । जें निर्विकार परब्रह्म । नामरूपातीत जें । ५ गोपींच्या शोकास नाहीं पार । जैसा वनासी निघतां रघुवीर । पाठीं लागलें अयोध्यानगर । तैसेंचि येथें जाहलें । ६ जीवनाविण मत्स्य जैसे । गोकुळींचे लोक तळमळती तैसे । यशोदेसी मूर्च्छा येतसे । धांवतसे रथापाठीं । ७ माझिया बिसांविया जगज्जीवना । मुख पाहूं दे जगन्मोहना । आला मज प्रेमाचा पान्हा । पाजूं कोणा सांग पां । ८ माझे सांवळे कान्हाई । उभी गे राजसे कृष्णाबाई । तुजवेगळ्या दिशा दाही । ओस मज वाटती । ९ कृष्णा मज परी झाली कैशी ।

सामने दामन फैलाकर बोलीं, 'हम अनाथ हैं, भिखमंगी हैं, दीन हैं। हमें आज कृष्ण दान में दे दो। अपनी कीर्ति को त्रिभुवन में भर जाने दो'। २ (कुछ) गोपियों ने अक्रूर के देखते मिट्टी लेकर अपने-अपने मुँह में डाल दीं। वे बोलीं, 'रे मनमोहन यदुपति, तू अब (फिर) नहीं मिलेगा'। ३ इस प्रकार देखने पर उस समय अक्रूर द्वारा अष्ट भावों[1] को रोका नहीं जा रहा था। गोपियों का प्रेम देखकर उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं। ४ वह बोला (उसे लगा)— इनका प्रेम धन्य है, धन्य है। इन्होंने उस पुरुषोत्तम कृष्ण को वश में कर लिया, जो (वस्तुतः) निर्विकार परब्रह्म है, नाम और रूप के परे है। ५ गोपियों के शोक का कोई पारावार नहीं था। जिस प्रकार रघुवीर राम के वन के प्रति जाने के लिए निकलने पर अयोध्यानगर उनके पीछे (चलने) लगा, उसी प्रकार यहाँ (गोकुल में) हो गया। ६ जिस प्रकार बिना पानी के मत्स्य तड़पते हैं, उसी प्रकार गोकुल के लोग (कृष्ण के चले जाने लगते ही) तड़पने लगे। यशोदा को मूर्च्छा आने लगी। (फिर भी) वह रथ के पीछे दौड़ने लगी। ७ (वह बोली—) 'रे मेरे विश्राम (-दाता), रे जगज्जीवन, रे जगन्मोहन, (तेरा) मुख मुझे देखने दे। मैं प्रेम रूपी स्तन्य पन्हिया जा रही हूँ, बता दे, वह मैं किसे पिला दूँ। ८ मेरी साँवली कन्हैयामैया, अरी राजसी कृष्णामैया, खड़ी रह जा (रुक जा)। बिना तेरे, मुझे दसों दिशाएँ[2] सूनी-सूनी लग रही हैं। ९ रे कृष्ण, मेरी कैसी

---

१ अष्टभाव : स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रुपात और प्रलय।

२ दश दिशाएँ : पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊर्ध्व, और अधस्।

तान्हें बाळ टाकूनि परदेशीं। माता जाय सहगमनासी। गति तैसी मज झाली। ११० कीं कांटेवनांत आंधळे जातां। सांगाती टाकूनि जाती अवचितां। तैसें मज केलें कृष्णनाथा। पुन्हां मागुता न भेटसी। १११ ऐका पद्मपुराणींचें संमत। राधा तेथें आली धांवत। रथापुढें येऊनि त्वरित। ध्यान हरीचें विलोकिलें। १२ हरिस्वरूपीं लावूनि नेत्र। हृदयीं सांठविला यादवेंद्र। मग कृष्णचरणीं ठेविलें शिर। झालें थोर नवल पैं। १३ जैसें उदकीं मिळे लवण। तैसी राधा गेली अदृश्य होऊन। हरिरूपीं झाली लीन। दुसरेपण हरपलें। १४ थोर जाहला चमत्कार। राधा हरिरूप जाहली साचार। गोपी तटस्थ समग्र। वानिती भाग्य राधेचें। १५ नाना साधनें योगी साधिती। त्यांसीही ऐसी नव्हे गती। धन्य धन्य राधा पुण्यमूर्ती। हरिस्वरूप जाहली। १६ असो हरि म्हणे अक्रूरा। आतां रथ चालवीं सत्वरा। तरीच या गोपिका सुंदरा। मागें दूरी राहती। १७ रथ घडघडिला समीरगती। क्रमूनि मागें टाकिली जगती। तेव्हां मूर्च्छा येऊनि

स्थिति हो गयी है ? दुधमुँहे बच्चे को परदेश में छोड़कर उसकी माता सहगमन करने (सती होने) जाए, तो उस बालक की जैसी स्थिति होगी, वैसी ही स्थिति मेरी हो गयी है। ११० अथवा, रे कृष्णनाथ, (जान पड़ता है,) मेरे साथ वैसा ही किया जा रहा है, जिस प्रकार किसी अन्धे द्वारा कँटीले वन में से जाते समय, उसे अकस्मात उसके साथी छोड़कर गये हों। (लगता है) तू फिर से दुबारा नहीं मिल सकेगा '। १११

(अब) सुनिए पद्मपुराण-सम्मत बात। वहाँ राधा दौड़कर आ गयी। रथ के सामने झट से आकर उसने कृष्ण के रूप को निरख लिया। ११२ कृष्ण के स्वरूप की ओर आँखें लगाकर उसने उस यादवेन्द्र को हृदय में भर लिया। फिर कृष्ण के चरणों पर सिर रखा। (तत्काल वहाँ) बड़ा आश्चर्य घटित हो गया। १३ जिस प्रकार लवण (नमक) पानी में घुल-मिल जाता है, उसी प्रकार वह अदृश्य हो गयी और कृष्ण के रूप में लीन हो गयी; द्वैतभाव नष्ट हो गया। १४ बड़ा चमत्कार हो गया। राधा सचमुच हरि-रूप हो गयी। समस्त गोपियाँ स्तब्ध-चकित रह गयीं— वे राधा के भाग्य को सराहने लगीं। १५ योगी नाना साधनाएँ कर लेते हैं; उन्हें भी ऐसी गति प्राप्त नहीं होती। पुण्य की (साक्षात्) मूर्ति राधा धन्य है, धन्य है। वह हरि-स्वरूप बन गयी। ११६

अस्तु। कृष्ण ने अक्रूर से कहा, ' अब शीघ्रता से रथ चला दो, तो ही ये सलोनी गोपिकाएँ पीछे दूर रह जाएँगी '। ११७ रथ ने घरघराते हुए वायुगति से चलकर गोकुल रूपी जगत को पीछे छोड़ दिया। तब मूर्च्छा आने से गोपियाँ गिर पड़ीं और कृष्ण के पीछे पुकारती

गोपिका पडती। हांका देती कृष्णामागें। १८ कपाळ पिटूनि फोडिती हांका। अहा कमलावरा वैकुंठनायका। आपुले हातें गोपिका। वधूनि जाईं आतांचि। १९ आतां केव्हां देखों पुढती। एक हातें केश तोडिती। रथ क्रमीत जात क्षिती। दृष्टीं पाहती सुंदरा। १२० म्हणती प्राणसखया वनमाळी। तुझा वियोगानल परम जाळी। एक म्हणती रथाजवळी। धांवूनि जाऊं चला गे। १२१ अक्रूरासी घालूनि कृष्णाची आण। रथ आणावा वेगें परतोन। नेदी तरी बळेंचि हिरोन। आणूं मनमोहन आतांचि। २२ आम्ही आहों इतुक्या सुंदरी। अक्रूर एकला काय करी। तों रथ गेला बहुत दूरी। विकळ नारी पडियेल्या। २३ म्हणती वेधका परमपुरुषा। तुजविण ओस दाही दिशा। क्षीरसागरहृदयविलासा। जातोसी कैसा टाकूनि। २४ चारी ध्वज आणि कळस। रथ उतरतां सखल भूमीस। न दिसे कांहीं निराश। थोर गोपींस जाहलीसे। २५ अवघ्या गोपी आक्रांत करीत। गोकुळा परतल्या स्फुंदत। एक म्हणती अग्नि त्वरित। लावा आतां गोकुळा। २६ ऐशा शोक करीत सुंदरी। प्रवेशल्या यशोदेच्या मंदिरीं। तों यशोदा म्हणे ते अवसरीं। माझा श्रीहरी दावा गे। २७

रहीं। १८ सिर पीटकर ज़ोर-ज़ोर से पुकार रही थीं। ‘हाय! कमलावर! वैकुण्ठनायक! अभी अपने हाथों से गोपियों का वध करके (चले) जाना। १९ अब आगे कब तुझे देख सकेंगी?’ कुछ एक हाथों से अपने-अपने बाल तोड़ने-उखाड़ने लगीं। रथ के मार्ग काटते जाते हुए वे सलोनियाँ भूमि की ओर देखती रहीं। १२० वे बोलीं, ‘रे प्राणसखा वनमाली! तेरे वियोग की आग हमें बहुत जला रही है’। कुछ एक कह रही थीं, ‘अरी, दौड़ते-दौड़ते रथ के पास चली जाएँ। १२१ अक्रूर को कृष्ण की सौगन्ध दिलाकर रथ को वेगपूर्वक लौटाकर लाएं। यदि वह न दे, तो बलपूर्वक छीनकर अभी मनमोहन कृष्ण को ले आएँ। २२ हम इतनी स्त्रियाँ हैं, (फिर) अकेला अक्रूर क्या कर पाएगा।’ तब (तक) रथ बहुत दूर निकल गया था। (यह देखकर) वे नारियाँ विकल-व्याकुल होकर गिर पड़ीं। २३ वे बोलीं, ‘अरे मन को आकृष्ट करनेवाले परम-पुरुष, बिना तेरे (हमारे लिए) दसों दिशाएँ सूनी-सूनी हैं। रे क्षीरसागर के हृदय में विलास करनेवाले, (हमें) छोड़कर कैसे जा रहा है?’। २४ रथ के निचली भूमि पर उतर जाने से (उसके) चारों ध्वज और कलश बिलकुल दिखायी नहीं दे रहे थे। (इससे) गोपियों को बड़ी निराशा अनुभव हुई। २५ समस्त गोपियाँ दहाड़ मारकर रोने लगीं। वे सुबकते हुए गोकुल लौट गयीं। कुछ एक ने कहा— ‘अब झट से गोकुल में आग लगा दो’। २६ इस प्रकार शोक करते हुए वे स्त्रियाँ यशोदा के घर में प्रविष्ट हो गयीं। तब उस समय यशोदा बोली, ‘अरी, मेरे श्रीहरि को

यशोदा मंदिरांत हिंडे रडत। म्हणे आतां मज कैंचा गे कृष्णनाथ। तो वैकुंठनाथ समर्थ। टाकूनि यथार्थ मज गेला। २८ सकळ गोपी यशोदेचे कंठीं। घालिती तेव्हां दृढ मिठी। शोक केला तो न माये सृष्टीं। न वर्णवेचि कोणातें। २९ शुकें वर्णितां हे कथा। सद्गद कंठ ज्ञाहला तत्त्वतां। शुकासी ज्ञाहली जे अवस्था। ते वर्णितां मज न ये। १३० आणि सद्गद ज्ञाहला परीक्षिती। ढळढळां नयनीं अश्रु वाहती। म्हणे श्रीकृष्ण वेधकमूर्ती। त्याचीच कीर्ति सांगा पुढें। १३१ असो यशोदा सांगे गोष्टी। सख्यांनो घर लागतें गे पाठीं। आतां माझा जगजेठी। पुन्हां दृष्टीं पडेना। ३२ कृष्णाचीं जीं बाळलेणीं। टाकिलीं गोपींपुढें आणूनी। हरीचीं खेळावयाचीं खेळणीं। हृदयीं धरूनि माय रडे। ३३ वाघनखें पदकमाळा। पाहूनि शोक करिती वेल्हाळा। आपाद गळ्याच्या वनमाळा। सदनीं ठेविल्या ठायीं ठायीं। ३४ हरीची घोंगडी चांगली। दशियांप्रति मोत्यें ओंविलीं। चिमणीच हरीची मुरली। ऐकतां हरिली चित्तवृत्ति। ३५ हरीचा चिमणा पीतांबर। शिदोरीचें

दिखा दो'। २७ यशोदा (फिर) रोते-रोते घर में घूमने लगी। वह बोली, 'अरी, अब मुझे कृष्णनाथ कैसे मिलेगा? वह वैकुण्ठनाथ समर्थ है —वह सचमुच (मुझे) छोड़कर चला गया'। २८ तब (यह सुनकर) समस्त गोपियों ने यशोदा के गले में दृढ़तापूर्वक बाँहें डालीं। उन्होंने जो शोक किया, वह सृष्टि में नहीं समा रहा था। उसका वर्णन किसी भी के द्वारा नहीं किया जा पाएगा। १२९

शुकाचार्य ने इस कथा का कथन किया; (तब) उनका कण्ठ बहुत गद्गद हो उठा था। शुक की जो स्थिति हुई, उसका वर्णन करना मुझसे नहीं बनता। १३० और परीक्षित भी सद्गदित हो उठे; उनकी आँखों से झरझर आँसू बह रहे थे। वे बोले— 'श्रीकृष्ण तो आकर्षक मूर्ति-स्वरूप हैं। उन्हीं की कीर्ति आगे बता दीजिए'। १३१

अस्तु। यशोदा (गोपियों से) ये बातें कहने लगीं— 'सखियो, अरी, (जान पड़ता है) घर (मेरे) पीछे पड़ा है। अब मेरा जगद्श्रेष्ठ कृष्ण मुझे फिर से नजर नहीं आएगा। १३२ कृष्ण के बचपन के जो गहने थे, उन्हें उसने लाकर गोपियों के सामने डाल दिया। कृष्ण के खेलने के खिलौने हृदय से लगाकर माता यशोदा रोने लगी। ३३ बघनखे और पदिकमाला को देखकर वे सलोनी स्त्रियाँ शोक करने लगीं। उन्होंने पाँवों तक झूलनेवाली गले की वनमालाएँ (जो कृष्ण द्वारा पहनी जाती थीं) घर में स्थान-स्थान पर रख दीं। ३४ कृष्ण की कमरी (कम्बल) अच्छी थी। उसकी दशियों में मोती पिरोये हुए थे। हरि की नन्ही-सी ही मुरली थी, जिसे (पूर्वकाल में) सुनकर उनकी चित्तवृत्ति मोहित हो गयी थी। ३५ हरि का नन्हा-सा पीताम्बर था। कलेवे का जाला सुन्दर

जाळें सुंदर। शिरींचीं पिच्छें परिकर। करींचा वेत्र रत्नजडित। ३६
वनमाळांचे ठेविले जे भार। त्या सुवासें दाटलें मंदिर। माया म्हणे पूर्वकर्म घोर। आड आलें बळेंचि। ३७ पूतना शोषून अघ बक मारिला। कालिया मर्दून अग्नि प्राशिला। गोवर्धन नखाग्रीं धरिला। शक्रही आला शरण ज्यासी। ३८ गर्ग नारदादि मुनिजन। मज क्षणक्षणां सांगती येऊन। हें क्षीरसागरींचें निधान। तुझें पोटीं अवतरलें। ३९ ऐसें सांगती क्षणक्षणां। परी सत्य न वाटे माझिया मना। दशावतारींच्या दिव्य रचना। क्रीडतां दाविल्या हरीनें। १४० पूर्णब्रह्म सांवळें। म्यां पायांवरी घेऊनि न्हाणिलें। आपुल्या पदरें अंग पुशिलें। वैकुंठपतीचें नेणतां। १४१ पूर्ण अवतार श्रीकृष्णनाथ। उखळीं बांधिला न कळत। जळोनि जावोत गे माझे हात। जाहल्यें भ्रांत मायेनें। ४२ ब्रह्मादिकांची आराध्य मूर्ती। त्यासी मी पाठवीं वनाप्रती। गुरें राखविलीं निश्चितीं। अपराधां मिती नाहींच। ४३ ज्यासी वर्णितां भागलीं दर्शनें। त्यासी ये रे जा रे म्हणें। ठकलें ठकविलें जगज्जीवनें। महिमा नेणें अद्भुत। ४४ हरीविण गृह दिसतें गे थोर। जीवनेंविण जैसें

था। मस्तक पर खोंसे जानेवाले मोर-पंख सुहावने थे। हाथ की लकुटिया रत्न-जटित थी। ३६ वनमालाओं की राशियाँ रखी हुई थीं, उनकी सुगन्ध से घर भरा हुआ था। माता बोली, '(मेरा) पूर्वकृत घोर कर्म बलात् आड़े आ गया है। ३७ जिसने पूतना का शोषण करके अघ और बक को मार डाला; कालिय का मर्दन करके उसने अग्नि को पी (कर निगल) डाला; गोवर्धन को नाखून की नोक पर उठाकर रख लिया; इन्द्र भी जिसकी शरण में आ गया, उसके विषय में गर्ग, नारद आदि मुनिजन क्षण-क्षण आकर मुझसे कहते थे कि यह क्षीरसागर की निधि (स्वरूप भगवान विष्णु) तेरे पेट से अवतरित हैं। ३८-३९ वे क्षण-क्षण ऐसा कहा करते थे, फिर भी मेरे मन को वह सच्चा प्रतीत नहीं होता था। कृष्ण ने खेलते हुए दसों अवतारों का दिव्य आविर्भाव दिखाया था। १४० उस साँवले पूर्णब्रह्म (स्वरूप कृष्ण) को मैंने पाँवों पर (लिटाकर) नहलाया था। अपने दामन से अनजाने में मैंने वैकुण्ठपति का अंग पोंछ लिया था। १४१ श्रीकृष्णनाथ (परब्रह्म के) पूर्ण अवतार हैं —इसे न जानते हुए मैंने ऊखल से बाँध लिया था। अरी ! जल जाएँ मेरे हाथ ! मैं माया के कारण भ्रान्त हो गयी थी। ४२ जो ब्रह्मा आदि की आराध्य मूर्ति है, उसे मैं वन भेजा करती थी। मैंने निश्चय ही उससे गोरू चरवा लिये थे —मेरे अपराधों की कोई गिनती ही नहीं है। ४३ जिसका (स्वरूप) वर्णन करते-करते दर्शन-शास्त्र थक गये, उसे मैं 'आ जा रे', 'जा रे !' कहा करती थी। मैं ठगी गयी, जगज्जीवन (कृष्ण) ने (मुझे) ठग लिया— उसकी अद्भुत महिमा को नहीं जानती थी। ४४

कासार। कीं प्राणेंविण शरीर। दीपाविण मंदिर जेवीं। ४५ ऐसा खेद करीत गौळणी। प्रवेशल्या आपुल्या सदनीं। संसारकृत्य करितां चक्रपाणी। गीतीं गाती सर्वदा। ४६ दळितां कांडितां मंथन करितां। गाई दुहितां पालख हालवितां। रांधितां जेवितां उदक पितां। गीत गाती हरीचें। ४७ करितां सडासंमार्जन। रंगमाळा घालितां आणितां जीवन। हिंडतां करितां गमनागमन। गीत गाती हरीचें। ४८ जागृतीं सुषुप्तीं आणि स्वप्नीं। ध्यानीं मनीं आसनीं शयनीं। सर्वदा वेधल्या हरिचरणीं। वृत्ति निमोनि गेलिया। ४९ एकी गौळणी यमुनाजीवना। घेऊनि येत आपुल्या सदना। तों अंतरीं आठवला यादवराणा। वेदपुराणां वंद्य जो। १५० हरि रूपीं वृत्ति वेधली। गृहा जावें हें विसरली। कृष्णरूपीं वृत्ति मुराली। तेथेंचि जाहली समाधिस्थ। १५१ घरा आली ते नितंबिनी। परी मन गेलें कृष्णरूप होऊनी। जिकडे विलोकीत कामिनी। तिकडे चक्रपाणी दिसतसे। ५२ पंचप्राणांचेनि आधारें। यथान्याय शरीर वावरे। गोपी वेधली यादवेंद्रें।

अरी, बिना हरि के यह बड़ा घर उस प्रकार (शोभाहीन, सूना-सूना) दिखायी दे रहा है, जिस प्रकार बिना पानी के तालाब, अथवा बिना प्राणों के शरीर, अथवा बिना दीप के मन्दिर (शोभाहीन दिखायी देता है)। ४५ इस प्रकार खेद अनुभव करती हुए वे ग्वालिनें अपने-अपने घर में प्रविष्ट हो गयीं। (तदनन्तर) वे सांसारिक (घर-गिरस्ती सम्बन्धी) काम करते-करते चक्रपाणि कृष्ण का (गुण-) गान नित्यप्रति करती रहीं। ४६ वे पीसते, कूटते, मन्थन करते, गायों को दुहते, पालना झुलाते, रसोई बनाते, खाते, पानी पीते हुए श्रीहरि के (विषय में) गीत गाया करती थीं। ४७ लीपते-पोतते, रँगोलियाँ सजाते, पानी लाते, घूमते-घामते, (कहीं) आते-जाते वे श्रीहरि के (विषय में) गीत गाया करती थीं। ४८ जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न में, ध्यान में, आसन पर, शय्या पर (या सोते हुए) वे श्रीहरि के चरणों में पूर्णतः आकृष्ट हो गयी थीं और उनकी (संसार-सम्बन्धी) प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गयीं। ४९ कोई एक ग्वालिन यमुनाजल लेकर अपने घर आ रही थी, तो उसे अन्तःकरण में वे यादवराज याद आ गये, जो वेदों और पुराणों (तक) के लिए वन्द्य हैं। १५० उसकी (मनः) प्रवृत्ति कृष्ण के रूप की ओर आकृष्ट हो गयी; (फलतः) वह यह भूल गयी कि (उसे) घर जाना है। उसकी (मनः) प्रवृत्ति कृष्ण के रूप में लीन हो गयी (और) वह वहीं समाधिस्थ हो गयी। १५१ (फिर) वह स्त्री घर तो (लौट) आयी; फिर भी उसका मन कृष्णरूप (-मय) हो गया। वह कामिनी जिस ओर देखती, उस ओर उसे चक्रपाणि कृष्ण (ही) दिखायी देने लगे। ५२ पंच प्राणों के आधार से नियमानुसार शरीर चल-फिर रहा था; फिर उस गोपी (के मन) को यादवेन्द्र कृष्ण ने मोहित कर

कांहीं दुसरें दिसेना । ५३ चराचर वरदळभाव । विसरोनियां गेलें सर्व । पूर्णब्रह्मानंद माधव । अद्वय एक संचरला । ५४ उसणें मागावया गौळणी । प्रवेशलीसे जिचे सदनीं । तों अंतरीं आठवला मोक्षदानी । पुराणपुरुष श्रीकृष्ण । ५५ मन वेधलें हरिपायीं । म्हणे सखे उसना कृष्ण देईं । आतांचि आणूनि लवलाहीं । देईन तुझा निर्धारीं । ५६ तंव ते बोले अबला । सखे मथुरेस कृष्ण गेला । दोघीजणींचिया डोळां । पूर लोटती अश्रूंचे । ५७ लेंकुरें वासरें घर । अवघेंचि दिसे कृष्णाकार । तों एक म्हणे सुंदर । सये पुढें यदुवीर न ये कीं । ५८ प्राक्तनाची विचित्र गती । त्याहीवरी स्त्रीदेहाची बुंथी । कोठें जातां न ये निश्चितीं । पराधीन जिणें हें । ५९ पुन्हां न भेटे कमलानायक । सये क्षणिक नरदेह देख । अंतरीं आठवतें हरीचें मुख । निष्कलंक चंद्र जैसा । १६० सये हरीविण विलासभोग । तोचि केवळ भवरोग । हरिकृपेविण योगयाग । सर्व व्यंग दिसतसे । १६१ ऐसी ऐसी गोपिकांची भक्ती । गणितां न गणवे शेषाप्रती । असो इकडे त्रिभुवनपती । मथुरापंथें जातसे । ६२ मागें गौळियांचे भार । रथ वेगें

लिया था । उसे कुछ दूसरा दिखायी नहीं दे रहा था । ५३ चराचर (सृष्टि), आवागमन का भाव —सब कुछ उसे भूल गया । पूर्ण ब्रह्मानन्द माधव कृष्ण अद्वय भाव से (जीव और ईश्वर की एकात्मता होकर उसके लिए समस्त सृष्टि में) संचरित (व्याप्त) हो गये । ५४ (एक बार) जब कोई ग्वालिन उसके घर में उधार माँगने के लिए प्रविष्ट हो गयी, तब उसे अन्तःकरण में मोक्षदाता पुराणपुरुष कृष्ण याद आ रहे थे । ५५ उसका मन कृष्ण के चरणों में आकृष्ट रहा था । (अतः) वह बोली, 'सखी, (मुझे) कृष्ण उधार दे दो । मैं अभी तेरा कृष्ण झट से लाकर निश्चय ही (लौटा) दूँगी' । ५६ तब वह स्त्री बोली, 'री सखी, कृष्ण मथुरा गया है ।' तो दोनों की आँखों में अश्रुजल के रेले उमड़कर बहने लगे । ५७ उसे बच्चे, बछड़े, घर, सब कृष्णाकार दिखायी दे रहा था । तो एक सलोनी (गोपी) बोली, 'अरी सखी, आगे (अब) फिर यदुवीर कृष्ण नहीं आएगा । ५८ भाग्य की गति विचित्र होती है । तिस पर इस स्त्री-देह का बन्धन है । इससे निश्चय ही कहीं जाया नहीं जाता । यह जीवन पराधीन है । ५९ फिर से कमला-पति कृष्ण नहीं मिलेगा । री सखी, देख, यह मनुष्य-देह क्षणिक है । अन्तःकरण में श्रीकृष्ण का निष्कलंक चन्द्र-जैसा मुख याद आ रहा है' । १६० री सखी, बिना हरि के जो भोग-विलास (किया जाता) है, वही केवल भवरोग है । बिना हरि की कृपा के, योग-याग सब दोष मात्र दिखायी देता है । १६१ गोपियों की भक्ति ऐसी थी । शेष (तक) द्वारा उसकी गिनती अर्थात मापन करने का यत्न करने पर भी नहीं किया जा पाएगा । अस्तु । इधर

चालवी अक्रूर। तों तमारिकन्येचें तीर। पुढें देखिलें तेधवां। ६३ कृतांतभगिनीचें जीवन। उल्लंघूनि गेला जगज्जीवन। पैलतीरीं सर्व गौळीजन। करावया स्नान उतरले। ६४ रथ सोडूनि अक्रूर। स्नानासी चालिला सत्वर। रथीं शेष आणि यादवेंद्र। दोघे तैसेचि बैसले। ६५ परतोनि पाहे अक्रूर। तों दोन्ही मूर्ती दिसती सुंदर। एक घनश्याम एक गौर। शशिमित्र ज्यापरी। ६६ कीं विष्णु आणि शंकर। कीं बृहस्पति आणि वज्रधर। कीं राम आणि सौमित्र। तैसे दोघे दीसती। ६७ अक्रूर मनीं करी विचार। म्हणे दोघेही अत्यंत सुकुमार। धाकुटें वय दिसती किशोर। मी तों सत्वर यांसी नेतों। ६८ परम द्वेषी कंस सत्य। जपे दोघां करावया घात। तेथें जरी जाहलें विपरीत। तरी कैसें करावें। ६९ मज हें संकट मोठें पडिलें। शेवटीं काय होईल तें नकळे। ऐसा चिंताक्रांत ते वेळे। अक्रूर जळीं प्रवेशला। १७० सचित जाहला भक्तराणा। बुडी देऊनि करी अघमर्षणा। तों जीवनीं देखिलें जगज्जीवना। विश्वमोहना गोविंदा। १७१ चतुर्भुज चक्रपाणी। पहुडलासे शेषशयनीं। जो

त्रिभुवनपति कृष्ण मथुरा के मार्ग से जा रहे थे। ६२ उनके पीछे (पीछे) ग्वालों के झुण्ड (जा रहे) थे। अक्रूर (बड़े) वेग से रथ चला रहा था। तो तब आगे सूर्यकन्या यमुना नदी के तट को देखा। ६३ जगज्जीवन कृष्ण कृतान्त यम की भगिनी यमुना के जल को (रथ द्वारा) लाँघकर चले गये। उस पार (जाने पर) समस्त गोपजन स्नान करने के लिए ठहर गये। ६४ अक्रूर (भी) रथ को छोड़कर शीघ्रतापूर्वक स्नान के लिए चल दिया। (परन्तु) शेष के अवतार बलराम और यादवेन्द्र कृष्ण दोनों रथ में वैसे ही बैठे रहे। ६५ जब पीछे मुड़कर अक्रूर ने देखा, तो वे दोनों मूर्तियाँ बहुत सुन्दर दिखायी दे रही थीं— एक (मूर्ति) घनश्याम थी, तो दूसरी गौरवर्ण की थी। जिस प्रकार चन्द्र और सूर्य, अथवा विष्णु और शिवजी, अथवा बृहस्पति (देवगुरु) और वज्रधर इन्द्र, अथवा राम और सौमित्र लक्ष्मण दिखायी देते हों, उसी प्रकार वे (शोभायमान) दिखायी दे रहे थे। ६६-६७ अक्रूर ने मन में विचार किया और (मन-ही-मन) कहा, 'ये दोनों भी अत्यधिक सुकुमार हैं; उनकी अवस्था छोटी है, वे किशोर जान पड़ते हैं। (अतः) मैं तो इन्हें झट से ले जा सकता हूँ। ६८ कंस सचमुच परम द्वेष्टा है; इन दोनों का वध करने की ताक में है। (अतः) यदि वहाँ कोई (अनचाही) बुरी घटना हो जाए, तो किस प्रकार (क्या) करें। ६९ मुझपर यह बड़ा संकट गुज़रता आ रहा है। समझ में नहीं आता कि अन्त में क्या होगा।' इस प्रकार, उस समय चिन्ताक्रान्त होते हुए अक्रूर जल में प्रविष्ट हो गया। १७० वह भक्तराज (अक्रूर) चिन्तित हो गया। वह डुबकी लगाकर पापमोचन मन्त्र पढ़ने लगा। तब उसने पानी में जगज्जीवन,

मायाचक्रचालक मोक्षदानी । विश्वंभर परमात्मा । ७२ नाभिकमळीं परमेष्ठी । घडोत ब्रह्मांडांच्या कोटी । नाना अवतारांच्या घिरटी । स्वयें घेत परमात्मा । ७३ मत्स्यकूर्मादि अवतार । तेथींचीं चरित्रें दिसती फार । श्रीकृष्णरूपें कंसासुर । आकळूनियां मारिला । ७४ मुष्टिकचाणूरादि दैत्य । मल्ल मारिले परमाद्भुत । शिशुपाल आणि वक्रदंत । जरासंध पाडिला । ७५ भौमासुर बाणासुर । निवटिले कौरवांचे भार । मागुती होऊनि तदाकार । स्वरूपीं स्वरूप संचरलें । ७६ अक्रूर पाहे आत्मदृष्टीं । तों कृष्णरूप दिसे सर्व सृष्टी । हरिनखीं दिसती ब्रह्मांडकोटी । अंत न कळे पाहतां । ७७ अद्‌भुत प्रताप देखोन । अक्रूर करितां जाहला स्तवन । म्हणे हे कृष्ण हे मधुसूदन । हे जगज्जीवन सुखार्णवा । ७८ हे कृष्णा सर्वव्यापका । हे कृष्णा त्रिभुवननायका । हे कृष्णा निजसुखदायका । निरुपाधिका निरंजना । ७९ हे कृष्णा अनंतचरणा । हे कमलदलाक्षा अनंतवदना । हे विरूपाक्षहृदया अनंतनयना । भक्तपालना श्रीहरि । १८० अनंत शिरें

विश्वमोहन गोविन्द कृष्ण को देखा । १७१ (उसे दिखायी दिया कि) जो मायाचक्र के चलानेवाले हैं, मोक्षदाता हैं, जो विश्वम्भर परमात्मा हैं, वे चतुर्भुजधारी चक्रपाणि भगवान विष्णु शेष-शय्या पर पौढ़े हुए हैं । ७२ (उनकी) नाभि (में उत्पन्न) कमल में (विराजमान) परमेष्ठी ब्रह्मा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण कर रहे हैं, स्वयं परमात्मा (भगवान विष्णु) नाना अवतारों के रूप में चक्कर काटते रहे हैं । ७३ उन्होंने (जो) मत्स्य, कूर्म आदि अवतार धारण किये, उनके रूप में की हुई उनकी चरित्र-लीलाएँ बहुत दिखायी दे रही थीं । (उसे यह भी दिखायी दिया कि) श्रीकृष्ण के रूप से उन्होंने असुर कंस को खींचकर मार डाला; मुष्टिक, चाणूर आदि परम अद्‌भुत दैत्य मल्लों को मार डाला; शिशुपाल और वक्रदन्त, जरासन्ध को गिरा डाला । ७४-७५ उन्होंने भौमासुर, बाणासुर तथा कौरवों के दल-भार को मार डाला; फिर तदाकार अर्थात श्रीविष्णु के मूल स्वरूप में उनका वह अवतार-रूप संचरित हो गया (विलीन हो गया) । ७६ अक्रूर जब अपनी दृष्टि से देखने लगा, तब उसे समस्त सृष्टि कृष्ण-रूप दिखायी दी; श्रीहरि के नखों में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड दिखायी दे रहे थे । देखने पर उनका अन्त समझ में नहीं आ रहा था । ७७ यह अद्‌भुत प्रताप देखकर अक्रूर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगा । वह बोला, 'हे कृष्ण, हे मधुसूदन, हे जगज्जीवन, हे सुखसागर, हे सर्वव्यापी कृष्ण, हे त्रिभुवन-नायक कृष्ण, हे आत्मसुख प्राप्त करा देनेवाले कृष्ण, हे निरुपाधिक, हे निरंजन, हे अनन्त चरणों से युक्त कृष्ण, हे कमलदलाक्ष, हे अनन्त मुख (-धारी), हे शिवजी के हृदय (अर्थात शिवजी अपने हृदय में जिनका ध्यान करते हैं), हे अनन्तनयन (-धारी), हे भक्तों के पालनकर्ता श्रीहरि, तुम्हारे

अनंत उदरें। अनंत नामें अनंत चरित्रें। अनंत हस्त अनंत मुखांतरें। कर्ता भोक्ता तूंचि पैं। १८१ तुझें स्मरणीं जे सादर। तेचि पावले पैलपार। त्यांहीं जिंकिला संसार। जे तत्पर भजनीं तुझ्या। ८२ जे हरि तुझें नाम गाती। त्यांचे पाय धरावे पुढती। तेच पावले उत्तम गती। अभेदस्थिती जयांची। ८३ हरि तुझें दिव्य नाम। हेंचि साधन परम सुगम। तेचि शुचिष्मंत शुद्ध परम। सूर्य जैसा तेजस्वी। ८४ राम कृष्ण यादवपती। हीं नामें जे सदा घेती। जैसा अग्नि शुचिष्मंत अहोराती। तसेचि निश्चिती भक्त तुझे। ८५ तुझी अनन्य भक्ति करितां। जरी कर्मलोप जाहला अवचिता। त्यालागीं प्राप्त होय अनंता। सनकादिकांचें ठेवणें। ८६ जें भक्तांचें सत्कर्म राहत। तें न्यून पूर्ण करीत। ऐसा कृपाळु भगवंत। उणें पडों न देसी। ८७ जो तुज अनन्य शरण। त्याचे कोटी अपराध क्षमा करून। पुढती हिरोनियां मन। आपुले पदीं ठेविसी। ८८ जे सर्वकर्मबहिर्भूत। परी तुझे नामीं आवडी बहुत। ते तुज अत्यंत आवडत। जैसें अपत्य

अनन्त सिर हैं, अनन्त उदर हैं, अनन्त नाम हैं, अनन्त चरित्र (लीलाएँ) हैं, अनन्त हस्त हैं, अनन्त मुखान्तर हैं; तुम ही (समस्त कर्मों के) कर्ता हो, (समस्त भोगों के) भोक्ता हो। १७८-१८१ तुम्हारा स्मरण करने में जो तत्पर रहे, वे ही (इस भवसागर के) उस पार को प्राप्त हो गये हैं; उन्होंने ही इस संसार को जीत लिया है, जो तुम्हारे भजन में तत्पर रहते हैं। ८२ हे हरि, तुम्हारे नाम को जो गाते हैं, उनके पाँव आगे बढ़कर पकड़ लें। जिनकी स्थिति अभेद (द्वैतभाव से मुक्त) थी, वे ही उत्तम गति अर्थात मोक्ष को प्राप्त हो गये। ८३ हे हरि, तुम्हारा दिव्य नाम (-स्मरण) ही परम सुगम साधना है; ऐसी साधना करनेवाला परम शुद्ध और पवित्र होता है और वह सूर्य-जैसा तेजस्वी होता है। ८४ जो राम और यादवपति कृष्ण (के) नाम सदा जपते हैं, वे तुम्हारे भक्त निश्चय ही दिन-रात पवित्र होते हैं, जैसे अग्नि होती है। ८५ तुम्हारी अनन्य भक्ति करते हुए यदि किसी के हाथों (नित्य किये जानेवाले कर्तव्य-) कर्म का अकस्मात लोप हुआ (कर्म नहीं किया गया), तो भी उसे सनकादि की (पुण्यकर्म रूपी) धरोहर, हे अनन्त, प्राप्त हो जाती है। ८६ भक्तों के जो सत्कर्म (किये हुए) रहते हैं, वे उनकी कमी को पूर्ण कर देते हैं। तुम ऐसे कृपालु भगवान हो, किसी को (किसी वस्तु की) कमी होने नहीं देते। ८७ जो तुम्हारी शरण में अनन्य भाव से आ जाता है (समर्पित हो जाता है), उसके कोटि(-कोटि) अपराधों को क्षमा करते हुए उसके मन को फिर आकृष्ट करके तुम अपने पदों में (लगाये) रखते हो। ८८ जिस प्रकार (माता को अपनी) इकलौती सन्तान प्रिय लगती है, उसी प्रकार जो सर्व कर्मों से दूर रहते हैं (अर्थात नहीं करते), फिर भी तुम्हारे नाम में जिन्हें बहुत रस होता है, वे तुम्हें

एकुलतें । ८९ कर्म करितां विधिनिषेध बहुत । कर्म करितां व्याकुळ होत । परी तुझ्या एक्या नामें समस्त । होय कृतार्थ श्रीहरी । १९० तिष्ठतां उठतां बैसतां । निद्रा करितां जातां येतां । तुझें नाम जगन्नाथा । जपतां हरती सर्व दोष । १९१ विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र । स्त्रिया अंत्यज समग्र । तुझें नाम जपतां निरंतर । पावन होती सर्वही । ९२ ऐसा हरि तुझा महिमा । त्या तुज शरण मी पुरुषोत्तमा । पुराणपुरुषा निरुपमा । नामाअनामातीत तूं । ९३ अक्रूराचा संशय फेडिला । कृष्ण पूर्णब्रह्म समजला । मायापडळ ते वेळां । विरोनि गेलें समस्त । ९४ पूर्णब्रह्मानंदा जगजेठी । इच्छामात्रें घडी मोडी सृष्टी । तो कंसा वधील हे गोष्टी । अपूर्व कांहीं नव्हेचि । ९५ अक्रूर घाली नमस्कार । सद्गद जाहलें अंतर । तैसाचि निघाला बाहेर । तों रथीं तोचि बैसला । ९६ प्रत्यक्ष शेष आणि रमेश । घवघवीत दिसती अवतारपुरुष । भक्तांलागीं लीलाविलास । दावावया अवतरले । ९७ संध्यादि कर्म सारूनि सत्वर । रथाजवळी आला अक्रूर । तों गदगदां हांसे

बहुत प्यारे लगते हैं । ८९ कर्म करते रहते, अनेक विधि-निषेध रहते हैं; कर्म करते रहते (लोग) व्याकुल हो जाते हैं, परन्तु हे श्रीहरि, तुम्हारे अकेले नाम से वे सब कृतार्थ हो जाते हैं । १९० खड़े रहते, उठते, बैठते, सो जाते, जाते-आते, हे जगन्नाथ, तुम्हारे नाम का जाप करते रहने से समस्त दोष (पाप) नष्ट हो जाते हैं । १९१ सब विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र (चारों वर्णों के लोग), स्त्रियाँ, अन्त्यज (हरिजन) —सभी तुम्हारे नाम का निरन्तर जाप करते रहने पर पावन हो जाते हैं । ९२ हे हरि, तुम्हारे नाम की ऐसी महिमा है । हे पुरुषोत्तम, मैं ऐसे (माहात्म्य वाले) तुम्हारी शरण में आ गया हूँ । हे पुराणपुरुष, हे निरुपम, तुम नाम और अनाम के परे हो ' । १९३

अक्रूर के सन्देह को दूर किया (गया) और वह कृष्ण को पूर्णब्रह्म समझ चुका । फलतः (उसपर छाया हुआ) माया का आवरण उस समय नष्ट हो गया । १९४ (उसे विश्वास हो गया कि जो भगवान कृष्ण रूपी) पूर्ण ब्रह्मानन्द जगद्श्रेष्ठ (अपनी) इच्छा मात्र से सृष्टि का निर्माण करते हैं, संहार करते हैं, तो इसमें कोई भी अपूर्व (अद्भुत) बात नहीं है कि वे कंस का वध करेंगे । ९५ (फिर) अक्रूर ने उनको नमस्कार किया । उसका अन्तःकरण बहुत गद्गद हो उठा । वह वैसे ही बाहर निकल आया और फिर रथ में बैठ गया । ९६ (उसे) प्रत्यक्ष शेष और रमेश विष्णु दोनों अवतार पुरुष (बलराम और कृष्ण के रूप में) जगमगाते हुए दिखायी दे रहे थे । वे भक्तों को लीला-विलास दिखाने के लिए अवतरित हो गये थे । ९७ अक्रूर संध्या आदि (नित्य) कर्मों को पूर्ण करके झट से रथ के पास आ गया, तो कृष्ण खिल-खिलाकर हँसने लगे । वे बोले, ' अहो, देर

श्रीधर। म्हणे कां हो उशीर लागला। ९८ काय अपूर्व देखिलें जळीं। तें सांगावें आम्हांजवळी। ऐसें बोलतां वनमाळी। अक्रूर जाहला सद्गदित। ९९ धांवोनि धरिले कृष्णचरण। आसुवें क्षाळिले हरिपद पूर्ण। कृष्णें आलिंगिला उचलोन। निजकरें नयन पूसिले। २०० अक्रूर म्हणे पुराणपुरुषा। सच्चिदानंदा हरि सर्वेशा। तुझा महिमा वेदशेषा। न वर्णवेचि कदाही। २०१ तेथूनि रथ निघाला वेगेंशीं। सत्वर आले मथुराप्रदेशीं। उपवनीं राहिले ते दिवशीं। नंदगौळियांसमवेत। २ अक्रूर म्हणे यादवेंद्रा। रहावया चला माझिया मंदिरा। मी दासानुदास तुझा खरा। मज उद्धरीं श्रीरंगा। ३ म्यां अनंत जन्मीं तप केलें। तें एकदांचि फळासी आलें। जन्माचें सार्थक जाहलें। परब्रह्म सांवळें पाहिलें म्यां। ४ तरी स्वामी इंदिरावरा। चलावें माझिया मंदिरा। ऐसें ऐकतां परात्परसोयरा। काय बोले तेधवां। ५ कंसासी मारिल्याविण जाणा। मी न यें तुझिया सदना। राज्यीं स्थापीन उग्रसेना। बंदिशाळा फोडोनियां। ६ आजिचे रात्रीं ये स्थानीं। आम्ही राहतों उपवनीं। तरी तुम्हीं पुढें जाऊनी। कंसालागीं सांगिजे। ७ आज्ञा

क्यों लगी ? । ९८ तुमने पानी में क्या अद्भुत देखा ? वह हमसे तो कह दो।' वनमाली कृष्ण द्वारा ऐसा कहने पर अक्रूर बहुत गद्गद हो उठा। ९९ दौड़कर जाते हुए उसने कृष्ण के चरण पकड़ लिये (वह पाँव लगा)। उसने आँसुओं से श्रीहरि के सम्पूर्ण चरणों को धो लिया। तो कृष्ण ने उसे उठाकर गले लगा लिया और अपने हाथों से उसके आँसू पोंछ लिये। २०० (तदनन्तर) अक्रूर बोला, 'हे पुराणपुरुष, हे सच्चिदानन्द, हे हरि, हे सर्वेश, वेदों और शेष द्वारा भी तेरी महिमा का कभी भी वर्णन नहीं किया जा पाएगा'। २०१

(फिर) वहाँ से वेगपूर्वक रथ निकल गया। वे शीघ्र ही मथुरा-प्रदेश में आ गये। वे उस दिन नन्द और ग्वालों-सहित उपवन में ठहर गये। २०२ अक्रूर बोला, 'हे यादवेन्द्र, मेरे घर में ठहरने के लिए चलो। मैं तुम्हारा सच्चा दासानुदास हूँ। हे श्रीरंग, मेरा उद्धार कर लो। ३ मैंने अनन्त जन्मों में तप किया होगा; वह एकबारगी फल को प्राप्त हो गया। मेरा जन्म सार्थक हो गया— (जब कि) मैं साँवले परब्रह्म को देख पाया हूँ। ४ अतः, हे स्वामी, हे इन्दिरावर, मेरे घर चलना।' ऐसा सुनते ही परात्पर मित्र (स्वरूप कृष्ण) तब क्या बोले। ५ 'समझ लो कि बिना कंस को मार डाले, मैं तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। मैं बन्दी-शाला को तोड़कर उग्रसेन को राज्य (पद) पर प्रतिष्ठित कर दूँगा। ६ आज की रात इस उपवन में इस स्थान पर हम रहेंगे। अतः तुम आगे जाकर कंस से कह देना'। ७ उनकी आज्ञा को शिरसावन्द्य मानकर अक्रूर

वंदोनि अक्रूर। प्रवेशला तेव्हां मथुरापुर। जैसा प्रकाशे सहस्रकर। तैसी वार्ता गेली मथुरेंत। ८ श्रीकृष्ण आला उपवना। ऐकतां आनंद भक्तजनां। परम भय वाटलें दुर्जनां। चिंता बहुत प्रवर्तली। ९ मागें बोलावें अति न्यून। समोर देखतां पळती उठोन। हें ग्रामसिंहाचें लक्षण। तैसे दुर्जन मथुरेचे। २१० हरिविजय ग्रंथ कल्पद्रुम। जो निजभक्तांचे पुरवी काम। इच्छिलें फळ देत उत्तम। मनोरथ सर्वदा। २११ ऐसा हरिविजय ग्रंथ कल्पवृक्ष। येथें राहिला कमलपत्राक्ष। जो ब्रह्मानंद सर्वसाक्ष। भीमातटनिवासी जो। १२ ब्रह्मानंद कल्पद्रुम थोर। तेथें याचक अनन्य श्रीधर। मागे हेंचि निरंतर। सप्रेम भजन देईं तुझें। १३ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। प्रेमळ भक्त सदा परिसोत। अष्टादशाध्याय गोड हा। २१४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

तब मथुरापुर में प्रवेश कर गया। जिस प्रकार सूर्य प्रकाश को प्राप्त हो जाता है (उदित होने पर एकदम सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है), उसी प्रकार यह समाचार मथुरा में फैल गया। ८ श्रीकृष्ण उपवन में आ गये हैं, यह सुनकर भक्तजनों को आनन्द हुआ; (परन्तु) दुर्जनों को परम भय अनुभव हुआ। उन्हें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गयी। ९ पीछे बहुत ओछा बोलना, परन्तु सामने देखने पर उठकर भाग जाना —यह ग्रामसिंह अर्थात कुत्ते का लक्षण होता है। मथुरा के दुर्जन वैसे ही थे। (वे कृष्ण की निन्दा करते थे, लेकिन उन्हें देखने पर भाग जाएँगे।)। २१०

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ वह कल्पवृक्ष है, जो भगवान के अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करता है, जो नित्य उनके मनोरथों को लेकर इच्छित उत्तम फल प्रदान करता है। २११ ऐसा श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ कल्पवृक्ष है। वे कमलपत्राक्ष कृष्ण यहाँ (लीला-वर्णन के रूप में) निवास कर रहे हैं, जो ब्रह्मानन्दस्वरूप सर्वसाक्षी हैं, जो भीमा नदी के तट पर निवास करनेवाले हैं। १२ गुरु ब्रह्मानन्द महान् कल्पवृक्ष है —वहाँ यह श्रीधर (ग्रन्थकर्ता) अनन्य याचक है। वह अनवरत यही माँग रहा है— मुझे प्रेम-सहित अपनी भक्ति दे दो। २१३

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश और श्रीमद्-भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेममय भक्त उसके इस मधुर अठारहवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। २१४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—१९

श्रीकृष्ण का मथुरा में आगमन और कंस-वध

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय श्रीकृष्ण आत्मयारामा। उपाधिरहिता पूर्णब्रह्मा। मंगलरूपा मंगलधामा। पूर्णकामा सर्वेशा। १ अमंगल हे माझी काया। मंगल नाम तुझें यदुराया। तें नाम माझे हृदयीं लिहूनियां। तूं स्वामियां पवित्र करीं। २ जैसा कागद खरकटा जाण। त्यासी न शिवती सोवळे ब्राह्मण। त्यावरी तुझें नाम करितां लेखन। मग पूजून हृदयीं धरिती हो। ३ तैसें हें अमंगल शरीर। शुक्रशोणितमिश्रित अपवित्र। अस्थि मांस मळ मूत्र। येणेंकरूनि भरलेंसे। ४ अनंत जन्मींच्या पापें घोळिलें। कामक्रोधलोभें खरकटलें। श्लेष्मदुर्गंधीचें ओतिलें। कृमींचें भरलें सदन हें। ५ केवळ अस्थींची मोळी। शिरांनीं ठायीं ठायीं बांधिली। मांसरक्तें वरी लिंपिली। त्यावरी मढविली त्वचेनें। ६ जो रजस्वलेचा विटाळ। सर्वांमाजी अमंगळ। त्या विटाळाचें हें फळ। वाढलें केवळ मळमूत्रें। ७ ऐसें हें अमंगळ पाहीं। जरी तुझें नाम लिहिलें हृदयीं। मग

श्रीगणेशाय नमः। हे आत्माराम अर्थात आत्मस्वरूप में रममाण रहने वाले श्रीकृष्ण, हे विकारों तथा गुणविशेषों से रहित पूर्णब्रह्म, हे मंगल-रूप, हे मंगलों के धाम (निवास-स्थान), हे पूर्णकाम, हे सर्वेश, जय हो, जय हो। १ हे यदुराज, मेरी यह काया अमंगल है; (परन्तु) आपका नाम मंगल-(-कर्ता) है। हे स्वामी, अपने उस नाम को मेरे हृदय में लिखकर उसे पवित्र कीजिए। २ समझिए, जिस प्रकार काग़ज़ जूठन आदि से बना, अतएव अपवित्र होता है, (अतः) उसे पाक-साफ़ रहनेवाले ब्राह्मण नहीं छूते; (फिर भी) उस पर तुम्हारा नाम लिखने पर तब उसका पूजन करके वे उसे हृदय से लगाते हैं; उसी प्रकार यह शरीर अमंगल है; शुक्र (वीर्य) और रक्त से मिश्रित, अपवित्र होता है; हड्डियों, मांस, मल, मूत्र से भरा हुआ-सा होता है (फिर भी भक्तिपूर्वक आपका नाम स्मरण करने पर वह पवित्र हो जाता है)। ३-४ वह असंख्य जन्मों के पापों से सना हुआ है। काम, क्रोध, लोभ से लिपटा हुआ, अतएव गन्दा-अपवित्र होता है। वह श्लेष्मा (बलग़म) और दुर्गन्ध से ढला हुआ होता है। यह (मानो) कृमियों का भरा हुआ घर है। ५ यह (देह) केवल हड्डियों की गठरी है; वह स्थान-स्थान पर नसों से बँधी हुई है। ऊपर से मांस तथा रक्त से लीपी-पोती हुई है। तिसपर त्वचा से मढ़ी हुई है। ६ जो सबसे अधिक अमंगल होता है, रजस्वला के उस स्राव का यह फल है। वह केवल मल-मूत्र से विकसित हुआ होता है। ७ देखिए ऐसा यह अमंगल शरीर। फिर भी यदि आपका नाम हृदय में लिख लें, और

यायेवढें पवित्र नाहीं। तुझें भजनीं लावितां। ८ ज्यावरी मुद्रा करी राजेंद्र। तें पृथ्वीस वंद्य होय पवित्र। तैसा माझें हृदयीं तूं यादवेंद्र। राहोनि पावन करीं कां। ९ कागद अत्यंत मोलें हीन। परी मुद्रा उमटतां वंदिती जन। तैसा मी अत्यंत दीन। करीं पावन यदुवीरा। १० मुक्तमाळेसंगें तंतु। कंठीं घालिती भाग्यवंतु। कीं सुमनासंगें मोल चढतु। तैलास जैसें विशेष पैं। ११ राजा बैसे सिंहासनीं। तो नमस्कारिजे थोरलहानीं। माझी तनु चक्रपाणी। करीं पावन तैसीच। १२ ब्रह्मानंदा यदुकुलतिलका। तुच्छ तुझ्या पायींच्या पादुका। परी त्या वंद्य सकळिकां। चरणप्रसादें तूझिया। १३ असो अठरावा अध्याय संपतां। मथुरेसमीप कमलोद्भवपिता। उपवनीं राहिला तत्त्वतां। नंदगौळियांसमवेत। १४ यावरी अक्रूर चालिला तेथून। प्रवेशला हो राजभवन। कंसरायास करून नमन। सर्व वर्तमान सांगतसे। १५ म्हणे घेऊनि आलों जगज्जीवन। जो यादवकुळमुकुटरत्न। जो कां

आपकी भक्ति में लगायें, तो फिर इसके समान और कोई पवित्र नहीं है। ८ राजा जिस किसी पर (अपनी) मुद्रा अंकित करता है, वह पृथ्वी के लिए वन्द्य और पवित्र हो जाता है। उसी प्रकार, हे यादवेन्द्र श्रीकृष्ण, आप मेरे हृदय में निवास करके (मेरे इस अपवित्र शरीर को) पवित्र कीजिए। ९ काग़ज़ मूल्य में असीम रूप से घटिया होता है, परन्तु उस पर (राज-) मुद्रा के अंकित हो जाने पर लोग उसका वन्दन अर्थात आदर करते हैं। हे यदुवीर, मैं उसी प्रकार, अत्यन्त दीन हूँ, मुझे पावन कर दीजिए। १० भाग्यवान लोग मोतियों की माला के साथ तन्तु (धागे) को गले में पहनते हैं; अथवा जिस प्रकार फूल के साथ तेल मोल में बहुत बढ़ता है, उसी प्रकार मेरे हृदय में आपके रहने से यह शरीर मूल्यवान बन जाएगा। ११ राजा सिंहासन पर बैठ जाता है; बड़े-छोटे उसे नमस्कार करते हैं। हे चक्रपाणि भगवान कृष्ण, मेरे इस शरीर को (मेरे हृदय रूपी सिंहासन पर विराजमान होकर) उसी प्रकार पावन (तथा वन्दनीय) बना दीजिए। १२ हे ब्रह्मानन्द अर्थात आनन्दस्वरूप ब्रह्म, हे यदुकुल-तिलक, आपके चरणों की पादुकाएँ होती हैं तो तुच्छ, परन्तु आपके चरणों के प्रसाद से वे सबके लिए वन्द्य होती हैं। १३

अस्तु। अठारहवें अध्याय के समाप्त होने तक (यह कथा कही गयी है कि) ब्रह्मा के पिता विष्णुस्वरूप कृष्ण नन्द तथा (अन्य) ग्वालों-सहित मथुरा के समीप उपवन में वस्तुतः (स्वयं) ठहर गये। १४ इसके पश्चात अक्रूर वहाँ से चल दिये और वे राजभवन में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने कंसराज को नमस्कार करके समस्त समाचार कहा। १५ वे बोले, "मैं उन जगज्जीवन (कृष्ण) को ले आया हूँ, जो यादवकुल के

नरवीरपंचानन। विद्वज्जन वंदिती जया। १६ जो त्रिभुवनवंद्य सर्वांसी आर्य। जो अज अजित अद्‌भुतवीर्य। परमतेजस्वी प्रतापसूर्य। तो यदुवर्य आणिला। १७ तमारिकन्येच्या जेणें ऱ्हदजळीं। कालिया रगडिला पायांतळीं। जेणें क्षणमात्रें पूतना शोषिली। तो वनमाळी आणिला। १८ तृणावर्त केशी अघ बक। प्रलंब धेनुक वधिले सवेग। जो निजभक्तहृदयारविंदभृंग। तो श्रीरंग आणिला। १९ जो कमळनाभ कमळपत्राक्ष। पद्मोद्भव आणि विरूपाक्ष। ज्यासी ध्याती तो सर्वसाक्ष। परमपुरुष आणिला। २० आला ऐकोनि श्रीकृष्ण। दचकलें कंसाचें अंतःकरण। बुद्धि चित्त अहंकृति मन। कृष्णरूप जाहलें। २१ कंसासी लागलें हरिपिसें। पदार्थमात्र हरिरूप दिसे। आपुलें अंतरीं श्रीकृष्ण भासे। हांक आवेशें फोडिली। २२ कृष्णरूप आसन वसन। कृष्णरूप दिसे भूषण। भोंवते सेवक स्वजन। दिसती कृष्णरूप ते। २३ स्नान करावया कंस। पडदणी घेतां सर्वेश। उदकीं दिसे हृषीकेश। झालें मानस हरिरूप। २४

लिए (मानो) मुकुट-रत्न (जैसे) हैं, जो वीर नरों में पंचानन (सिंह-सदृश) हैं, जिनका विद्वज्जन वन्दन करते हैं। १६ जो त्रिभुवन के लिए वन्द्य हैं, जो सबके लिए बड़े अर्थात आदरणीय हैं, श्रेष्ठ हैं, जो अजन्मा, अजित हैं, जो अद्‌भुत वीर्यवान हैं, परम तेजस्वी हैं, प्रताप के सूर्य हैं, उन यदुवर कृष्ण को मैं ले आया हूँ। १७ जिन्होंने सूर्यकन्या यमुना के दह के जल में पैरों तले कालिय नाग को रौंद डाला, जिन्होंने क्षण-मात्र मे पूतना को सोख डाला, उन वनमाली कृष्ण को मैं ले आया हूँ। १८ जिन्होंने तृणावर्त, केशी, अघ, बक, प्रलम्ब, धेनुक (जैसे असुरों) का वेग-पूर्वक वध किया, जो अपने भक्तों के हृदय-कमल में निवास करनेवाले भ्रमर हैं, उन श्रीरंग को मैं लाया हूँ। १९ जो कमल-नाभ हैं (अर्थात जिनकी नाभि में कमल-पुष्प उत्पन्न हुआ— जिसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई), जिनकी आँखें कमलदलों-सी हैं, जिनका कमलोद्‌भव ब्रह्मा और विरूपाक्ष शिवजी ध्यान करते हैं, उन सर्वसाक्षी परमपुरुष कृष्ण को मैं लाया हूँ"। २० यह सुनकर कि श्रीकृष्ण आ गये हैं, कंस का अन्तःकरण भय से चौंक उठा। उसकी बुद्धि, चित्त, अहंकृति, मन कृष्ण-रूप हो गया। २१ कंस पर कृष्ण सम्बन्धी पागलपन सवार हो गया— उसे पदार्थ मात्र हरि-रूप दिखायी देने लगा। उसे अपने मन में श्रीकृष्ण आभासित होने लगे; तो वह आवेग के साथ चीख पड़ा। २२ उसे आसन, वस्त्र कृष्ण-रूप दिखायी दे रहा था; आभूषण कृष्ण-रूप दिखायी दे रहा था। चारों ओर सेवक और स्वजन (सगे सम्बन्धी) कृष्ण-रूप दीख रहे थे। २३ कंस स्नान करने गया, तो परदनी पहनने पर उसे सर्वेश कृष्ण ही (उसके रूप में) दिखायी दिये; उसे पानी में हृषीकेश कृष्ण दीख पड़े। उसका

जेवावया बैसला अन्न । तों अन्नांत दिसे मनमोहन । कंसें हांक फोडिली दारुण । मुष्टि वळोन बोलत । २५ बहुत भोगिसी पुरुषार्थ । सोसीं एवढा मुष्टिघात । आवेशें भोजनपात्र फोडीत । अन्न विखुरत चहूंकडे । २६ रागें कंस फिरवी नयन । म्हणे पाककर्त्यासी जीवें मारीन । अन्नामाजी मेळवूनि कृष्ण । माझा प्राण घेऊं पाहे । २७ प्राशनास आणिलें उदक । तों उदकीं दिसे कमलानायक । कंसें पात्र भिरकाविलें देख । हांक फोडून तेधवां । २८ हडपी देत विडिया करूनी । कंस पाहे विडा उकलूनी । म्हणे आंत मेळविला चक्रपाणी । तुमचें मनीं मरावें म्यां । २९ पुढें दाविलें दर्पण । आंत बिंबला नारायण । आरसा दिधला भिरकावून । सेवकजन हांसती । ३० भोंवते दैत्यांचें भार । म्हणे हे अवघे दावेदार । आणा वेगीं म्हणे शस्त्र । तों शस्त्र हरिरूप दिसे । ३१ शस्त्र भिरकाविलें धाकें । म्हणे कोठें माझे पाठिराखे । मुष्टिकचाणूरादिक सखे । कोठें गेले कळेना । ३२ अंतःपुरामाजी प्रवेशला । तों हरिरूप स्त्रियांचा मेळा । हांक फोडूनि बाहेर

मन हरि-रूप हो गया । २४ (जब) वह खाने के लिए बैठ गया, तो उसे खाने में मनमोहन कृष्ण दिखायी दिये । तब कंस भयावह रूप से चीख उठा । मुट्ठियाँ भींचकर वह बोला । २५ " तू पुरुषार्थ बहुत भोग रहा है (प्रदर्शित कर रहा है), तो यह इतना घूंसा सहन कर ले । " फिर उसने भोजन-पात्र जोश में आकर फोड़ डाली, तो खाना चारों ओर बिखर गया । २६ क्रोध से कंस ने आँखें घुमायीं और कहा (सोचा), ' मैं रसोइया को जान से मार डालूँगा; (क्योंकि) खाने में कृष्ण को मिलाकर वह मेरे प्राण लेना चाह रहा है ' । २७ पीने के लिए पानी लाया (गया), तो कंस को उसमें कमलापति विष्णुस्वरूप कृष्ण दिखायी दिये; देखिए तो, तब उसने चिल्लाते-चीखते हुए वह बर्तन फेंक दिया । २८ (जब) तमोली ने बीड़ा बनाकर दिया, तो कंस ने उसे खोलकर देखा और कहा (सोचा)— ' तुमने इसके अन्दर कृष्ण को मिला दिया है; तुम्हारे मन में है कि मैं मर जाऊँ ' । २९ अनन्तर दर्पण दिखाया (गया), तो (कंस को जान पड़ा कि) उसके अन्दर भगवान नारायण कृष्ण प्रतिबिम्बित (हो रहे) हैं । (अतः) उसने आईना फेंक दिया, तो (यह देखकर) सेवकजन हँसने लगे । ३० (कंस के) चारों ओर दैत्यों के दल थे । (उन्हें देखकर) उसने कहा (सोचा)— ' ये सभी विपक्षी (शत्रु) हैं । ' वह बोला, ' झट से हथियार लाओ । ' उसे (लाने पर) शस्त्र हरि-रूप दिखायी दिया । ३१ उसने आतंक से वह शस्त्र फेंक दिया और कहा, ' मेरे सहायक-समर्थक कहाँ हैं ? समझ में नहीं आ रहा है कि मेरे मुष्टिक, चाणूर आदि सखा कहाँ गये ? ' । ३२ (तदनन्तर) वह अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गया, तब उसे स्त्रियों का समुदाय हरि-रूप दिखायी दिया; तो चीख-चिल्लाकर

आला। भयें घाबरला पळतसे। ३३ भू-आप-अनळ-अनिळ-निराळ। अवघा व्यापिला घननीळ। पदार्थमात्र जे ते सकळ। दिसती गोपाळस्वरूप पैं। ३४ ऐसें परम द्वेषेंकरून। लागलें कंसासी कृष्णध्यान। असो इकडे उपवनीं जगज्जीवन। काय करिता जाहला। ३५ एक निद्रेंत क्रमिली रजनी। सवेंचि उगवला वासरमणी। नित्यनेम सारिला तेचि क्षणीं। नंदादिकीं तेधवां। ३६ कृष्णें दृढ बांधिली वीरगुंठी। पदकमुक्ताहार रुळती कंठीं। दिव्य रत्नें झळकती मुकुटीं। बाहुवटीं भूषणें। ३७ वीरकंकणें मणगटीं। दशांगुळीं मुद्रिकांची दाटी। बळिरामासहित जगजेठी। रथावरी आरूढला। ३८ मागें गौळियांचे भार। लागला वाद्यांचा गजर। मथुरेमाजी यादवेंद्र। निजबळें प्रवेशला। ३९ तों रजक वस्त्रें धुवोनी। राजगृहा जात घेऊनी। त्यास म्हणे मोक्षदानी। वस्त्रें देईं आम्हांतें। ४० तों त्याचा मृत्यु जवळी आला। तदनुसार तो बोलिला। म्हणे वस्त्रें कायसीं तुजला। गोरसचोरा गौळिया। ४१ तूं वनामध्यें गौळियांसीं। बळकटपणें झोंबी घेसी। तें तेथें न चले मथुरेसी। जिवें जासी माझ्या हातें। ४२ तुवां

वह बाहर आ गया (और) भय से घबड़ाकर भाग गया। ३३ (उसे जान पड़ा कि) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश —(समस्त पाँचों तत्त्वों) को घननील कृष्ण ने व्याप्त किया है। जो पदार्थ मात्र थे, वे सब उसे गोपाल कृष्णस्वरूप दिखायी दे रहे थे। ३४ इस प्रकार परम द्वेष के कारण कंस को कृष्ण का ध्यान लग गया। अस्तु। इधर उपवन में जगज्जीवन कृष्ण ने क्या किया? ३५ नींद में उसने एक रात बिता दी। साथ ही (त्योंही) सूर्य उदित हुआ। तब उसी क्षण नन्द आदि ने नित्य कर्म पूर्ण किये। ३६ कृष्ण ने दृढ़ता से वीरपुरुषोचित बाल सँवार लिये। गले में पदिक और मुक्ताहार झूलते हुए शोभायमान थे। मुकुट में दिव्य रत्न जगमगा रहे थे। बाहुओं में आभूषण थे। ३७ कलाइयों में वीरोचित कंकण थे; दसों अँगुलियों में अँगूठियों का समूह था। (इस स्थिति में) जगत के वे श्रेष्ठ स्वामी बलराम-सहित रथ पर आरूढ़ हो गये। ३८ (रथ चलने लगा।) पीछे (-पीछे) ग्वालों के समुदाय (चल रहे) थे। वाद्यों का गर्जन हो रहा था। (इस प्रकार) यादवेन्द्र कृष्ण अपने ही बल-बूते मथुरा के अन्दर प्रविष्ट हो गये। ३९ तब (उन्होंने देखा कि वस्त्र धोकर धोबी उन्हें लिये हुए राजगृह (की ओर) जा रहा था। मोक्षदाता (कृष्ण) उससे बोले, 'हमें वस्त्र दे दो'। ४० तब (मानो) उसकी मौत निकट आयी थी। उसके अनुसार (इस कारण) वह बोला। उसने कहा, 'रे गोरस-चोर ग्वाले, तुझे वस्त्र किसलिए (दूं)? ४१ तू वन के अन्दर बलपूर्वक ग्वालों के साथ लड़ता-झगड़ता है। वह वहीं (ठीक) था, वह (यहाँ) मथुरा में नहीं

अन्याय बहुत केले। म्हणोनि कंसरायें आणविलें। ऐसें ऐकतां गोपाळें। नवल केलें तेथेंचि। ४३ कव घालोनि निजबळें। रजकाचें शिर छेदिलें। जैसें अरविंद खुडिलें। नखाग्रेंचि अवलीळा। ४४ वस्त्रें घेऊनि समस्त। गौळियां वांटी कृष्णनाथ। तों वाटेंत शिंपी भेटत। तंतुवाय नाम तयाचें। ४५ तेणें वस्त्रें आणूनि ते वेळां। भावें पूजिला घनसांवळा। म्हणे ब्रह्मानंदा दीनदयाळा। कृपा करीं मजवरी। ४६ तों कुब्जा कंसदासी ते वेळां। दिव्य चंदन भरोनि कचोळां। वाटे जातां देखे घनसांवळा। केवळ पुतळा मदनाचा। ४७ तों कुब्जा विद्रूप दिसे बापुडी। कुरूप सर्वांगीं वांकुडी। परी हरिरूपीं तिनें गोडी। निजभावें धरिलीसे। ४८ हेचि रामावतारींची मंथरा। कैकयीची दासी द्वेषी रघुवीरा। रामें शापिली ते अवसरा। वक्र होईं सर्वांगीं। ४९ मग ती लागली रामचरणीं। म्हणे वर देईं चापपाणी। राम म्हणे पुढें कंससदनीं। दासी होसी कुरूप तूं। ५० मी कंसवधार्थ मथुरेसी येईन। तेव्हां तुज वाटेस उद्धरीन। असो तीस म्हणे जगज्जीवन।

चल पाएगा। तू मेरे हाथों जान से मारा जाएगा। ४२ तूने बहुत अन्याय (पूर्ण कार्य) किये हैं। इसलिए कंसराज तुझे (यहाँ) लिवा लाये हैं।' ऐसा सुनते ही गोपाल कृष्ण ने वहीं चमत्कार कर (दिखा) लिया। ४३ अपने बल से झपटते हुए उसने उस धोबी का सिर काट दिया, मानो नाख़ून के सिरे से कोई कमल तोड़ दिया हो। ४४ (तदनन्तर) कृष्णनाथ ने समस्त वस्त्र लेकर ग्वालों को बाँट दिये। तब रास्ते में उसे एक दर्जी मिला। उसका नाम तन्तुवाय था। ४५ उसने उस समय, वस्त्र लाकर भक्तिपूर्वक घनश्याम कृष्ण का पूजन किया। (फिर) वह बोला, 'हे ब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप ब्रह्म), हे दीनदयालु, मुझपर कृपा कीजिए। ४६ तब उस समय चन्दनलेपन-पात्र में चन्दन भरकर जाते हुए कुब्जा नामक कंस की दासी ने रास्ते में घनश्याम कृष्ण को देखा, जो केवल मदन के पुतले थे। ४७ तब कुब्जा बेचारी रूपहीन दिखायी देती थी। वह कुरूप थी, समस्त अंगों में टेढ़ी-मेढ़ी थी। परन्तु उसने अपने मनोभाव से श्रीहरि के प्रति रुचि (आत्मीयता-स्वरूप भक्ति) धारण की (अनुभव की)। ४८ यही (कुब्जा) रामावतार (काल) की मन्थरा थी। कैकेयी की वह दासी रघुवीर राम से नित्य द्वेष किया करती थी। राम ने उस समय उसे अभिशाप दिया था कि वह समस्त अंगों में टेढ़ी-मेढ़ी हो जाए। ४९ तब वह राम के चरणों में लग गयी और बोली, 'हे चापपाणि, मुझे वर दीजिए'। तो राम बोले, 'आगे चलकर तू कंस के सदन में कुरूप दासी (के रूप में उत्पन्न) हो जाएगी। ५० मैं कंस के वध के हेतु मथुरा आऊँगा, तब रास्ते में तेरा उद्धार करूँगा'। अस्तु। जगज्जीवन राम उससे बोले, 'हमें चन्दन दे दो'। ५१ तो

देईं चंदन आम्हांतें । ५१ तों ती कुब्जा भावार्थें । चंदन लावी आत्महस्तें । अवलोकितां हरिमुखातें । सद्‌गद चित्तीं जाहली । ५२ अंगीं चर्चूनियां चंदन । केलें हरीस साष्टांग नमन । कृष्णें तीस हातीं धरून । लाविला चरण शरीरा । ५३ जैसा परीस झगडतां लोहातें । तत्काळ सुवर्ण होय तेथें । तैसी पावली दिव्य शरीरातें । अपांगपातें हरीच्या । ५४ कीं उगवतां वासरमणी । अंधकार पळे मुळींहूनी । कीं कृष्णचंद्र उगवतां ते कुमुदिनी । विकासली निजतेजें । ५५ जैशा रंभा उर्वशी विलासिनी । तैसीच कुब्जा दिव्य पद्मिनी । हरिमुख न्याहाळीत नयनीं । मंजुळवचनीं बोलत । ५६ मीनकेतन-मोहना मेघश्यामा । हिमनगजामातमनविश्रामा । चाल आतां माझिया धामा । पूर्णकामा सर्वेशा । ५७ हरि म्हणे कंस वधून । मग मी पाहीन तुझें सदन । ऐसें बोलतां नंदनंदन । कुब्जा गेली निजसदना । ५८ तों फुलारी आला ते वेळां । तेणें हरिकंठी घातल्या माळा । आवडीं नमीत पदकमळा । मिलिंद जैसा प्रीतीनें । ५९ हरि पुसे लोकांसी वाटे । धनुर्याग दावा कोठें । तो

उस कुब्जा ने भक्तिभावपूर्वक अपने हाथ से उन्हें चन्दन लगा दिया । श्रीहरि के मुख को देखते ही वह मन में गद्‌गद हो उठी । ५२ बदन में चन्दन लगाकर उसने श्रीहरि को साष्टांग नमस्कार किया । उसको हाथ से थामकर उन्होंने अपना चरण उसके शरीर को लगा दिया । ५३ जिस प्रकार पारस के लोहे को छूते ही वह (लोहा) वहीं तत्काल सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के दृष्टिपात से वह दिव्य शरीर को प्राप्त हो गयी । ५४ अथवा (जिस प्रकार) सूर्य के उदित होते ही अन्धकार मूल-सहित, अर्थात पूर्णतः भाग जाता है (उसी प्रकार कृष्णस्वरूप सूर्य के सामने आ जाने पर कुब्जा का कुरूपता-स्वरूप अन्धकार नष्ट हो गया । अथवा कृष्ण-रूप चन्द्रमा के उगते ही (कुब्जा रूपी) कुमुदिनी अपने तेज से विकास को प्राप्त हो गयी । ५५ जिस प्रकार रम्भा, उर्वशी (जैसी अप्सराएँ, विलास करनेवाली) सुन्दर स्त्रियाँ हैं, उसी प्रकार (अब) कुब्जा पद्मिनी जाति की दिव्य (स्वरूप से युक्त) स्त्री बन गयी । श्रीकृष्ण के मुख को आँखों से निहारते हुए वह मधुर शब्दों में बोली । ५६ 'हे मकरध्वज कामदेव को मोहित करनेवाले, हे मेघश्याम, हे हिमालय के जामाता शिवजी के मन के लिए विश्रामस्वरूप, हे पूर्णकाम, हे सर्वेश, अब मेरे घर चलिए ।' ५७ (इसपर) कृष्ण बोले, 'कंस का वध करके मैं फिर तुम्हारा घर देख लूंगा (देखने के लिए तुम्हारे घर आऊँगा ।)' नन्द-नन्दन के ऐसा बोलने पर कुब्जा अपने घर चली गयी । ५८ तो उस समय माली आ गया । उसने श्रीहरि के गले में मालाएँ पहना दीं और उसने उनके पदकमलों का प्रेमपूर्वक नमन किया, जैसे प्रीतिपूर्वक भ्रमर कमल का सेवन करता है । ५९ (तत्पश्चात) कृष्ण ने रास्ते में

आधीं अवलोकूं मग नेटें। जाऊं कंस मर्दावया। ६० गांवांत प्रवेशला श्रीपती। गोपी मथुरेच्या श्रवणीं ऐकती। सद्गद होऊनि धांवती। यदुपति पाहावया। ६१ कित्येक जेवीत होत्या नारी। तैसाचि करींचा कवळ करीं। वेगें धांवतीं सुंदरी। पूतनारि पहावया। ६२ एक होती नग्न नहात। केशरकस्तूरीमिश्रित। ज्ञोखणी शिरीं घांशीत। तैसीच धांवे ती गजगमना। ६३ एक गोपी जंव कांडीत। ऊर्ध्व गेला मुसळासहित हस्त। कानीं ऐकतांची मात। धांवे त्वरित तैशीच। ६४ एक दळीत होती सुंदर। कानीं ऐके आला यदुवीर। सांडूनि नाद घरघर। जाय श्रीवर पहावया। ६५ भुलविल्या कृष्णवेधकें। पायीं घातलीं कर्णताटंकें। चरणींचीं भूषणें सुरेखें। कर्णीं एकी घालिती। ६६ अनवट जोडवीं पोल्हारें। कानीं बांधिलीं एकसरें। कंठीं बांधिलीं नेपुरें। वाळे पैंजण समस्त। ६७ शिसफूल चंद्र बिजवरा। गुडघां बांधिती सुंदरा। घोंसबाळ्या परिकरा। चरणांगुष्ठीं गोंविती। ६८

लोगों से पूछा— 'धनुर्यज्ञ कहाँ है? दिखा दो। उसका अवलोकन पहले करेंगे'। (उन्होंने सोचा—) अनन्तर कंस का साहसपूर्वक मर्दन करने जाएँगे। ६० श्रीपति विष्णुस्वरूप कृष्ण नगर में प्रविष्ट हुए हैं, गोपियों ने (जब) यह कानों से सुना, तो वे बहुत गद्गद होकर यदुपति कृष्ण को देखने के लिए दौड़ीं। ६१ कितनी ही अर्थात अनेकानेक नारियाँ भोजन कर रही थीं; उनके हाथ में लिया हुआ कौर हाथ में वैसा ही रह गया। वे सुन्दर नारियाँ पूतनारि कृष्ण को देखने के लिए वेगपूर्वक दौड़ीं। ६२ कोई एक नंगी नहा रही थी। वह केसर और कस्तूरी-मिश्रित सीकाकाई सिर में मल रही थी; (परन्तु) वह गजगामिनी वैसे ही दौड़ी। ६३ कोई एक गोपी जो कूट रही थी; उसका हाथ मूसल-सहित ऊपर की ओर उठ गया था। (परन्तु कृष्ण के आगमन का) समाचार कानों से सुनते ही वह वैसे ही झट से दौड़ी। ६४ कोई एक सुन्दरी चक्की चला रही थी। उसने (जब) कानों से सुना कि यदुवीर कृष्ण आ गये हैं, तो (चक्की की) गर्राहट को भुला देकर वह श्रीवर विष्णुस्वरूप कृष्ण को देखने के लिए चली गयी। ६५ (इस प्रकार) अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले कृष्ण ने (उन स्त्रियों को) मोहित कर लिया। (इसलिए वे क्या कर रही थीं, इसका ध्यान न रखते हुए) कुछ एक ने कानों में पहन लिये जानेवाले ताटंक पाँवों में पहन लिये; तो कुछ एक ने पाँवों के सुन्दर आभूषण कानों में पहन लिये। ६६ किसी एक ने अनवट, बिछुए, पाँवों वाले छल्ले, एक साथ ही कानों में बाँध लिये, तो (किसी एक ने) गले में नूपुर, पाँवों वाले कड़े, पायल सब गले में बाँध लिये। ६७ कुछ सुन्दरियों ने शीर्षफूल तथा बिन्दी वाला चन्द्रमा घुटनों पर बाँध दिया। सुन्दर मोतियों वाली बालियाँ पाँवों के अँगूठों में डाल दीं। ६८ कुछ एक

मोतीयांची दिव्य जाळी। नेसत एक वेल्हाळी। नाकींचें मोतीं चरणकमळीं। घोटियाजवळी बांधिती। ६९ एक काजळ मुखीं घालिती। कुंकुम डोळियांमाजी लेती। जावडें मुखासी माखिती। हरिद्रा लाविती पायांसी। ७० कर्पूरें सुपारी घोळिली। एकीनें कर्णामाजी घातली। वेणीस विडिया तत्काळीं। एकी खोंविती त्वरेनें। ७१ एक अर्धांगीं लेत कंचुकी। मुक्ताहार बांधी मस्तकीं। नेसतें वस्त्र हस्तकीं। धांवे एक घेऊनियां। ७२ बाळकें ठेवूनि शिक्यांवरी। कडिये घेतली घागरी। एक षट्चक्राचे माडीवरी। तेथूनि हरि लक्षती। ७३ एक भक्तीच्या चौबारा। उभ्या राहिल्या सुंदरा। एक साधनाच्या मंदिरा-। वरी चढे वेल्हाळी। ७४ एक ध्यानाचें गवाक्षद्वार। त्या वाटे लक्षिती यदुवीर। एक लयलक्षाचें जाळंधर। त्यांतूनि पाहे जगदात्मा। ७५ क्षणिक जाणूनि अडाघडी। वेगें लावी प्रेमाची शिडी। वरी चढतां तांतडीं। पाहे आवडीं हरीतें। ७६ ठायीं ठायीं गोपींचे भार। वर्षती सुमनांचे संभार। एक रत्नदीप घेऊनि सुंदर। ओंवाळिती पुराणपुरुषा। ७७ मदनमनोहर मेघश्याम। देखतां गोपींस थोर संभ्रम।

सुन्दरियों ने मोतियों की दिव्य जाली पहन ली, तो कुछ एक ने नाक के मोती चरण-कमलों में टखनों के पास बाँध दिये। ६९ कुछ एक ने मुँह में काजल आँज लिया, तो (कुछ एक ने) कुंकुम आँखों में लगा लिया; (कुछ एक ने) कुंकुम-रेखाएँ मुँह में अंकित कीं और (कुछ एक ने) हलदी पाँवों में लगा दी। ७० (किसी एक ने) सुपारी कपूर में घोल ली, तो किसी ने कान में डाल दी। कुछ एक ने तत्काल झट से बेनी में बीड़े खोंस लिये। ७१ किसी एक ने कंचुकी अर्धांग में पहन ली, तो किसी ने मोतियों का हार सिर पर बाँध लिया। कोई एक पहन लिया जा रहा वस्त्र हाथ में लेकर दौड़ने लगी। ७२ कुछ एक ने बच्चों को सींकों पर रखकर गगरी गोद में ले ली। कुछ एक ने षट्चक्र[1] की मंज़िल पर जाकर वहाँ से श्रीहरि को देखती रही। ७३ कुछ एक सुन्दरियाँ भक्ति के आँगन में खड़ी रह गयीं। कोई एक सुन्दरी साधना के मन्दिर के ऊपर चढ़ गयी। ७४ कुछ एक ध्यान के गवाक्ष द्वार के मार्ग द्वारा यदुवीर को देखने लगीं। कोई एक ध्यान में लवलीन होकर उसके झरोखे में से जगदात्मा को देखने लगी। ७५ जगत की रचना को क्षणिक समझकर किसी एक ने प्रेम की सीढ़ी लगायी और उसपर झट से चढ़कर कृष्ण को प्रेम से देखने लगी। ७६ स्थान-स्थान पर गोपियों के समुदाय फूलों के ढेर बरसाने लगीं। कुछ एक सुन्दर रत्नदीप लेकर उन पुराणपुरुष के आरती उतारने लगे। ७७ मदनमनोहर मेघश्याम कृष्ण को देखते ही गोपियों को बड़ा उल्लास अनुभव हुआ। कुछ एक ने

---

१ षट्चक्र—देखिए टिप्पणी ८, अध्याय ५, पृ० १५८।

एक म्हणती कोटिकाम। ओंवाळावे यावरूनि। ७८ एक म्हणती श्रीमुखावरून। सये जावें ओंवाळून। एक कामें विव्हळ पूर्ण। हरिवदन विलोकितां। ७९ असो धनुर्यागमंडपासमीप। आला चतुरास्याचा बाप। जो मायानियंता चित्स्वरूप। कर्ममोचक मोक्षदाता। ८० तों कंसें कुटिलें केलें बंड। लोहधनुष्य ठेविलें प्रचंड। जैसें पूर्वीं त्र्यंबककोदंड। सीतावल्लभें भंगिलें। ८१ तैसेंचि गजास्यतातमित्रें। आकर्ण ओढूनि, पंकजनेत्रें। लोहधनुष्य मोडूनि क्षणमात्रें। दोन शकलें केलीं पैं। ८२ तेथें होते दैत्य रक्षक। महाउन्मत्त मद्यप्राशक। परमदुर्मती पिशितभक्षक। सहस्त्र एक धांविन्नले। ८३ राजाज्ञा न घेतां गोवळें। बळेंचि लोहचाप मोडिलें। म्हणोनि अवघेचि लोटले। रामकृष्णांवरी पैं। ८४ ऐसे देखोनि रामवनमाळी। कोदंडखंडें हातीं घेतलीं। दोघे उठले प्रतापबळी। कोण आकळी तयांतें। ८५ जैसे अजाचे उभे असतां भार। निःशंक उठती दोघे व्याघ्र। कीं देखोनि वारणचक्र जैसे मृगेंद्र चपेटती। ८६ पूर्वीं निरालोद्भवसुत मित्रकुमर। देखोनि

कहा, 'इसपर से कोटि (-कोटि) कामदेव निछावर कर दें'। ७८ कुछ एक ने कहा, 'री सखी, श्रीहरि के मुख (श्री) पर वारे-न्यारे हो जाएँ'। कुछ एक कृष्ण के वदन को देखते ही काम से पूर्णत· विह्वल हो उठीं। ७९ अस्तु। जो माया को नियंत्रित करते हैं, जो चित्स्वरूप हैं, जो (जीव को) कर्म (-बन्धन) से मुक्त करते हैं, जो मोक्षदाता हैं, वे चतुरानन ब्रह्मा के पितास्वरूप भगवान विष्णु— कृष्ण धनुर्यज्ञ के मण्डप के समीप आ गये। ८० तब कुटिलमति कंस ने (छल-कपट से) धोखा दिया— उसने (यज्ञशाला में) लोहे का प्रचण्ड (वैसा ही) धनुष रख दिया था, जैसा पूर्वकाल में (सीता के स्वयंवर के समय) सीता-वल्लभ राम ने शिव-धनुष भग्न कर डाला था। ८१ उसी प्रकार गजवदन (गणेश) के पिता शिवजी के मित्र विष्णु के अवतार कमल-नयन कृष्ण ने कानों तक खींचकर उस लौह-धनुष को क्षण-मात्र में तोड़कर उसके दो टुकड़े कर डाले। ८२ वहाँ एक सहस्र महाउन्मत्त, मद्यपी, परमदुर्मति, मांस-भक्षक दैत्य रक्षक थे। वे (कृष्ण की ओर) दौड़े। ८३ (उन्होंने माना कि) राजा की आज्ञा प्राप्त न करते हुए इस ग्वाल-बाल ने बलात् लोह-धनुष तोड़ डाला है —इसलिए वे सभी बलराम और कृष्ण की तरफ़ लपके। ८४ ऐसा देखकर बलराम और वनमाली कृष्ण ने उस धनुष के टुकड़े हाथ में लिये और वे दोनों प्रताप से बलवान (बालक) उठ गये। उन्हें कौन रोक सकता था? ८५ मानो (दैत्य रूपी) बकरों के झुण्ड (सामने) खड़े होने पर वे दोनों (बालक रूपी) बाघ (उनपर) आक्रमण करने के लिए निःशंक (बे-हिचक) खड़े हो गये; अथवा हाथियों के झुण्ड को देखकर जैसे सिंह (उनपर आक्रमण करके) उन्हें दबोच देता हो,

पिशिताशनांचे भार। धांविन्नले जैसे प्रलयरुद्र। तैसेच दोघे उठावती। ८७ रणभैरव दोघेजण। दोन्ही धनुष्यखंडें घेऊन। पाडिले दैत्यसमूह झोडून। गतप्राण सर्व जाहले। ८८ समाचार कळला कंसातें। चाप मोडूनि झोडिलें दैत्यांतें। परतोनि गेले मागुते। उपवनीं रहावया। ८९ कुंडमंडप विध्वंसिला। रक्षकांचा संहार केला। रजक गौळियें मारिला। कळिकाळा न भिती ते। ९० उपवनीं क्रमोनि रजनी। सर्वेचि उदयाद्रीवरी येतां तरणी। नित्यनेम सारूनि ते क्षणीं। सिद्ध जाहले सर्वही। ९१ भोगींद्र आणि यादवेंद्र। रथीं बैसले जैसे शशिदिनकर। मागें गौळियांचा भार। कृष्णबळें सबळ दिसे। ९२ जैसा वृत्रासुरावरी पुरुहूत। युद्धा निघे त्रिदशांसमवेत। कीं

वैसे ही उन्होंने उन दैत्यों को मसल डाला। ८६ पूर्वकाल में (राम-रावण के युद्ध में) पवनकुमार हनुमान और सूर्यकुमार[1] सुग्रीव राक्षसों के दलों को देखकर जिस प्रकार प्रलयकाल के रुद्र-से दौड़े, उसी प्रकार (उन दैत्यों को देखकर) वे दोनों (उनका सामना करने के लिए) उठ गये (तैयार हो गये)। ८७ वे दोनों (मानो) रण-भैरव[2] थे। उन दोनों ने उस धनुष के टुकड़ों को लेकर दैत्य-दलों को पीटकर (नीचे) लुढ़का डाला। तो वे सब गतप्राण हो गये। ८८ यह समाचार कंस को विदित हुआ कि (उन लड़कों ने) धनुष को तोड़कर दैत्यों को पीट डाला है और वे लौटकर फिर उपवन में रहने के लिए गये हैं; उन्होंने यज्ञकुण्ड और मण्डप ध्वस्त कर डाला है; रखवालों का संहार कर डाला है; उन ग्वालों ने धोबी को मार डाला है; वे कलिकाल अर्थात यमराज (तक) से नहीं डरते हैं। ८९-९० (इधर) उपवन में रात बिताकर वे (बलराम और कृष्ण, अन्य गोपजन) सभी साथ ही सूर्य के उदयाचल पर आते ही तत्काल नित्य के कर्म पूर्ण करके तैयार हो गये। ९१ भोगीन्द्र शेष के अवतार बलराम और यादवेन्द्र कृष्ण रथ में चन्द्र-सूर्य जैसे बैठ गये। (रथ चलने लगा)। उनके पीछे ग्वालों का समुदाय था। वह कृष्ण के बल से बलवान दिखायी दे रहा था। ९२ जिस प्रकार इन्द्र देवों-सहित वृत्रासुर[3] की ओर युद्ध के लिए चला गया, अथवा सूर्यकुलभूषण राम

---

१ सूर्यपुत्र सुग्रीव : सुग्रीव को सूर्य का अंशावतार कहा जाता है। रावण-वध का कार्य सम्पन्न करने में सहायता करने के हेतु ब्रह्मा के आदेश से सूर्य ने इस पुत्र को जन्म दिया था। एक मान्यता के अनुसार वानर ऋक्षरजस सरोवर में स्नान करके ऊपर आते ही लावण्यवती नारी के रूप में परिवर्तित हुआ। उसे देखते ही सूर्य कामासक्त हुआ और उसका वीर्य उस स्त्री की ग्रीवा पर स्खलित हुआ। उससे वह गर्भवती हुई और उसने इस पुत्र को जन्म दिया।

२ भैरव : एक रुद्रगण। यह अत्यन्त उग्र प्रताप से युक्त माना जाता है।

३ वृत्रासुर— इन्द्र के प्रमुख शत्रुओं में से एक विख्यात असुर। उसने तपस्या करके ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त किया— लोह और काष्ठ के किसी भी गीले (पृ० ५३१ पर)

मित्रकुलभूषण बंधूसहित। निघे वैश्रवणबंधु वधावया। ९३ कीं तारकासुरावरी कुमार। अंधकासुरावरी अपर्णावर। तैसाचि यदुकुलप्रताप-दिनकर। कंस वधावया चालिला। ९४ प्रतापरुद्र दोघेजण। चालिले राजबिदीवरून। कंसासी सांगती चार जाऊन। येत कृष्ण तुझे भेटी। ९५ कंस म्हणे कुवलयद्विप पाठवावा। कृष्ण मार्गी येतांचि कोंडावा। सांदीमाजी रगडावा। महानागें पायांतळीं। ९६ ठायीं ठायीं दैत्यांचे थवे। बिदोबिदीं उभे करावे। आम्ही मुष्टिक चाणूरादिक आघवे। रंगमंडपीं बैसतों। ९७ कुवलय महाहस्ती थोर। कृष्णास पाठविला समोर। सांदींत कोंडिला यदुवीर। गौळीभारासमवेत। ९८ कुवलयावरी बैसला जो दैत्य। तेणें गज लोटिला अकस्मात। गौळी जाहले भयभीत। म्हणती हस्ती हा

बन्धु लक्ष्मण-सहित वैश्रवण कुबेर के बन्धु रावण का वध करने के लिए चल दिये; अथवा कुमार कार्तिकेय तारकासुर की ओर अथवा पार्वतीपति शिवजी अन्धकासुर[1] की ओर चल दिये, उसी प्रकार यदुकुल के प्रताप-स्वरूप सूर्य कृष्ण कंस का वध करने के लिए चल दिये। ९३-९४ प्रताप में रुद्र[2] जैसे वे दोनों जने राजमार्ग से जा रहे थे, तो गुप्तचरों ने जाकर कंस से कहा— 'कृष्ण आपसे मिलने के लिए आ रहा है'। ९५ (यह सुनकर) कंस बोला, 'कुवलय-द्वपि (नामक) हाथी को भेज दो और मार्ग में आते ही कृष्ण को घेर लो; उसे रास्ते में उस महान हाथी द्वारा पाँवों तले रौंदवा डालो। ९६ दैत्यों के झुण्ड रास्ते-रास्ते में स्थान-स्थान पर खड़े कर दो। हम मुष्टिक, चाणूर आदि सब रंगमण्डप में बैठ जाते हैं। ९७ (इस आदेश के अनुसार) उन्होंने कुवलय नामक प्रचण्ड हाथी को कृष्ण के सम्मुख भेज दिया और यदुवीर को ग्वालों के समुदाय-सहित रास्ते में घेर डाला। ९८ जो दैत्य कुवलय पर बैठा था, उसने सहसा हाथी को (आगे) हाँक लिया, तो वे ग्वाले भयभीत हो उठे (और) बोले, 'इस हाथी को रोका नहीं जा पाएगा'। ९९ (यह देखकर)

(पृ० ५३० से) वा सूखे अस्त्र से, दिन या रात में तुम्हारी मौत नहीं होगी। इस वरदान के बल पर उसने इन्द्र तक को परास्त किया। अन्त में दधीचि ऋषि की अस्थियों से निर्मित वज्र नामक शस्त्र से इन्द्र ने संध्या समय इसका वध किया।

१ अन्धकासुर : पार्वती के घर्मबिन्दुओं से उत्पन्न एक असुर। शिवजी ने यह हिरण्याक्ष को पुत्र-स्वरूप में प्रदान किया। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की मृत्यु के पश्चात यह राजा हो गया। उद्दण्ड और मदोन्मत्त होकर उसने एक दिन पार्वती को पापबुद्धि से हरण करना चाहा। इस बात को लेकर शिवजी ने उस पर आक्रमण किया।

२ रुद्र : वस्तुतः आदिकाल से प्रकृति की विनाशकारी शक्ति के प्रतीक के रूप में रुद्र देवता प्रतिष्ठित हुआ। आगे चलकर शिवजी के उग्र और रौद्र रूप के रूप में इसे स्वीकार किया गया।

नाटोपे । ६६ कृष्ण म्हणे गजाकर्षकातें । मूर्खा गज काढीं आणिका पंथें । तो म्हणे तुज गजपदाखालतें । घालोनियां रगडीन । १०० गुराखिया कपटबळें । वनीं महादैत्य मारिले । तैसें कुवलयाशीं न चले । जवळी आलें मरण तुवां । १०१ तुवां पूतना शोषूनि मारिली । तृणावर्त मारिला अंतराळीं । गोवळ्या तुजलागूनि ये स्थळीं । बळिरामासहित मारीन । २ कालिया आणि अघासुर । किरडूं मारूनि जाहलासी थोर । परी तुझा मृत्यु साचार । जवळी आजी पातला । ३ बकासुरपक्षी मारिला । केशिया तो अश्व वधिला । ऐसें ऐकतां सांवळा । क्षोभला जैसा प्रलयरुद्र । ४ म्हणे मशका तूं आणि हा गज । मत्कुणप्राय दिससी मज । आतांचि क्षण न लागतां तुज । मृत्युपुरीसी धाडीन । ५ अंडजप्रभुपुढें अळिका । तैसा दिससी तूं कीटका । कीं मृगेंद्रापुढें अजा देखा । प्रताप बोले आपुला । ६ जातवेदासी म्हणे पतंग । तुज ग्रासीन मी समग्र । कीं श्रोत्रियापुढें मांग । आचार वर्णी आपुला । ७ विष्ठाभक्षक काक आपण । राजहंसा दावी शहाणपण । कीं निर्नासिक सौंदर्य पूर्ण । रतिवरासी दावीत । ८ कीं महाउरगापुढें जाण ।

कृष्ण हाथीवान से बोले, 'रे मूर्ख, इस हाथी को दूसरे रास्ते से ले जा'। तो वह बोला, 'तुझे हाथी के पाँवों के तले डालकर रौंद डालूँगा । १०० रे चरवाहे, तूने कपट के बल पर (कपट से) वन में महान दैत्यों को (अवश्य) मार डाला है; (फिर भी) वैसी कुवलय के साथ नहीं चलेगी । मौत तेरे निकट आयी है । १०१ तूने सोखकर पूतना को मार डाला; अन्तरिक्ष में तृणावर्त को मार डाला । (फिर भी) रे ग्वाले, मैं इस स्थान पर तुझे बलराम-सहित मार डालूँगा । २ कालिय नाग और अघासुर (जैसे) सँपोलों को मारकर तू बड़ा बन गया है (अपने-आप को बड़ा बलवान समझने लगा है) । परन्तु आज सचमुच तेरी मौत निकट आ पहुँची है । ३ तूने बकासुर पक्षी को मार डाला; उस केशिय अश्व का वध किया'। ऐसी बात सुनकर श्याम कृष्ण प्रलयकालीन रुद्र जैसे क्षुब्ध हो उठे । ४ वे बोले, "रे मच्छड़, तू और यह (तेरा) हाथी मुझे खटमल-से दिखायी देते हैं (जान पड़ते हैं) । मैं अभी क्षण न लगते तुझे मृत्युपुरी के प्रति भेज दूंगा । ५ रे कीटक, पक्षिराज गरुड़ के सामने कोई इल्ली हो, तू मुझे वैसा ही दिखायी दे रहा है । अथवा देख ले, (जान पड़ता है) सिंह के सामने कोई बकरी अपने प्रताप को बता रही है । ६ कोई पतिंगा अग्नि से कह रहा है— 'मैं तुझे पूरा-पूरा निगल डालूँगा'; अथवा (जान पड़ता है) श्रोत्रिय जनों (वेदज्ञाता ब्राह्मणों) के सामने कोई मातंग अपने आचार का वर्णन कर रहा है । ७ अथवा स्वयं विष्ठा खानेवाला कोई कौआ राजहंस को सयानापन दिखा रहा है; अथवा कोई निर्नासिका (नककटी) नारी अपने

मूषक आला टंवकारून। कीं लवणपुतळा म्हणे संपूर्ण। सिंधु प्राशीन क्षणमात्रें। ९ शुष्कतृणाचा पुतळा। कक्षे घालीन म्हणे वडवानळा। त्याचे साहित्यासी कर्पूर आला। तेल घृत घेऊनियां। ११० रासभें दटाविला व्याघ्र। वृश्चिकें ताडिला खदिरांगार। तैसा अल्पायुषी तूं पामर। बहुत आगळें बोलसी। १११ ऐसें बोलोनि सांवळा। गज शुंडादंडीं धरिला। दुजा हात कंठीं घातला। पिळोनि पाडिला उताणा। १२ सवेंचि गज उठोनि ते वेळीं। शुंडादंडें हरीस आंवळी। चपळ उसळे वनमाळी। पुच्छीं धरिलें गजातें। १३ गरगरां भोंवंडूनि ते वेळे। कुवलयासी भिरकाविलें। वरील दैत्य आपटूनि चूर केले। मृद्घटशकलें ज्यापरी। १४ मागुती गज सरसावूनियां। लक्षूनि आला यादवराया। दहा वेळां भिरकावूनियां। कृष्णनाथें दीधला। १५ मग शेवटीं धरिला चरणीं। निजबळें आफळिला मेदिनीं। निःशेष गेला चूर होऊनी। गतप्राण धरणीं पडियेला। १६ ऐसा मारिला कुवलयहस्त। दोन्ही मोडूनि घेतले दंत। लंबायमान सरळ दिसत।

सम्पूर्ण सौन्दर्य को रति-पति कामदेव को दिखा रही है। ८ अथवा जान ले, महासर्प के सामने कोई चूहा अकड़ से तनकर आ गया है, अथवा नमक का बना पुतला कह रहा है— 'मैं क्षण-मात्र में सम्पूर्ण समुद्र को पी डालूँगा'। ९ सूखी घास का बना पुतला कह रहा है— 'मैं बड़वानल को बग़ल में (दबोच) डालूँगा' —उसकी सहायता के लिए (सामग्री में) तेल और घी लेकर कपूर आ गया है। ११० (जान पड़ता है) गधे ने बाघ को डाँटा हो; बिच्छू ने खदिरांगार (जलती हुई खैर की लकड़ी) का ताड़न किया हो। उसी प्रकार तू अल्पायुषी पामर बहुत अनोखी बात बोल रहा है"। १११ इस प्रकार बोलकर साँवले कृष्ण ने (एक हाथ से) उस हाथी की सूँड़ को पकड़ लिया, दूसरा हाथ उसके गले में डाला और उसे मरोड़कर पीठ के बल गिरा दिया। १२ फिर साथ ही उस हाथी ने उठकर कृष्ण को सूँड़ से लपेट लिया। (फिर भी इधर) वनमाली चपलतापूर्वक उछल गये और उन्होंने उस हाथी की पूँछ को पकड़ लिया। १३ उस समय उन्होंने कुवलय को गोल-गोल घुमाकर फेंक डाला और उसके ऊपर बैठे हुए दैत्यों को पटककर मिट्टी के घड़े के टुकड़ों-सदृश चूर-चूर कर डाला। १४ वह हाथी फिर से आगे बढ़कर यादवराज कृष्ण नाथ को लक्ष्य करके आ गया, तो उन्होंने उसे दस बार उछालकर फेंक डाला। १५ फिर अन्त में उन्होंने उसके पाँवों को पकड़ लिया, अपने (पूरे) बल से पृथ्वी पर पटक डाला, तो वह पूरा-पूरा चकनाचूर हो गया और धरती पर मृत होकर गिर पड़ा। १६ इस प्रकार कृष्ण ने कुवलय हाथी को मार डाला। (तदनतर) उसके दोनों दाँतों को तोड़कर ले लिया। लोहे की अगरी जैसे दिखायी

लोहार्गळा ज्यापरी। १७ बळिरामें आणि गोपाळें। दोन्ही दंत दोघीं घेतले। विमानीं देव बैसोनि आले। कौतुक पहाती अंतरिक्षीं। १८ हस्तिदंत दोघे घेऊन। पुढें चपेटती शेषनारायण। ठायीं ठायीं झोडून। दैत्यपाळें पाडिले। १९ परम ब्रीदायित मल्ल बळें। बळिरामें बहुत आफळिले। ठायीं ठायीं प्रेतपुंज पडिले। रक्तें वाहती बिदोबिदीं। १२० धडकत वाद्यांचा कल्लोळ। बिदोबिदीं पळती कंसाचे मल्ल। महाद्वारासी रामघननीळ। कंसाचिया पातले। १२१ तों द्वारपाळ घेऊनि येती शस्त्रें। समोर देखिले नवपंकजनेत्रें। हस्तिदंतघायें गात्रें। चूर्ण केलीं तयांचीं। २२ हरिप्रताप पाहतां तये वेळां। सकळ मल्लां पळ सूटला। रंगमंडपासी पातला। यादवराणा निजबळें। २३ कंस सभेसी बैसला आपण। तों अकस्मात देखिले दोघेजण। ते अद्‌भुत पंचानन। कंसवारण शोधूं आले। २४ कीं ते कल्पांतसूर्य दोघेजण। पाहती सभा अवलोकून। कंसादिक खद्योत पूर्ण। गेले झांकून तेधवां। २५ भोगींद्र सभा अवलोकी सकळिक।

देती है, वैसे वे लम्बायमान और सीधे दिखायी दे रहे थे। १७ बलराम और गोपाल दोनों ने वे दोनों दाँत ले लिये। (उधर) विमानों में बैठकर देव आ गये थे। वे आकाश से यह अद्‌भुत लीला देख रहे थे। १८ वे दोनों शेष और नारायण अर्थात बलराम और कृष्ण हाथी-दाँत लेकर (दैत्यों को) पीटने लगे। (इस प्रकार) उन्होंने स्थान-स्थान पर दैत्य-समूहों को पीटकर गिरा डाला। १९ बलराम ने अपने बल से परम बिरदैत मल्लों को पटक डाला। (फलस्वरूप) स्थान-स्थान पर प्रेतों के ढेर पड़ गये; पथ-पथ में रक्त-धाराएँ बहने लगीं। १२० वाद्यों का गर्जन धड़धड़ा रहा था। कंस के मल्ल रास्ते-रास्ते में भागते-दौड़ते थे। (इस प्रकार अन्त में) कंस के (राजगृह के) महाद्वार के पास बलराम और घनश्याम जा पहुँचे। १२१ तब नवकमल-सदृश नेत्रों वाले कृष्ण ने देखा कि शस्त्र लेकर द्वारपाल आ गये हैं, तो उन्होंने हस्तिदन्त के आघात से उनके (हाथ-पाँव आदि) गात्रों को चूर-चूर कर डाला। २२ उस समय श्रीहरि के प्रताप को देखकर समस्त मल्ल पलायन को प्राप्त हो गये। (फिर) यादवराज कृष्ण अपने बलबूते रंग-मण्डप के समीप जा पहुँचे। २३ कंस स्वयं (राज-) सभा में बैठा था, तो उसने सहसा उन दोनों जनों को (आये हुए) देखा। (मानो) वे (दोनों) अद्‌भुत सिंह कंस रूपी हाथी को खोजने के लिए आ गये हों। २४ अथवा वे दोनों जने कल्पान्त-काल के सूर्य (जान पड़ते) थे। उन्होंने सभा का अवलोकन किया (सभा की ओर देखने लगे)। तब कंस आदि समस्त जुगनू (के समान) पूर्णतः निस्तेज होकर (मानो) छिप गये। २५ शेषावतार बलराम ने समस्त सभा (जनों) का अवलोकन किया; तो उन्हें वे (लोग)

दिसती जेवीं बैसले मूषक। तों धांवले नगरलोक। कृष्णमुख पहावया। २६ आकर्ण नेत्र तनु सुकुमार। नीलजीमूतवर्ण सुंदर। गरुडपांचूचे गर्भ परिकर। काढूनि मूर्ति ओतिली। २७ जो पयोब्धिसुतेचा वर। भक्तकैवारी त्रैलोक्यसुंदर। नरवीर श्रेष्ठ श्रीवर। कंससभेंत विराजे। २८ ब्रह्मानंद मुरोनि अवलीळा। तो हा ओतिला कृष्णपुतळा। दिव्य पदकें मुक्तमाळा। डोलती गळां हरीच्या। २९ मुक्ताहार निर्मळ सुढाळ। हरिकंठीं दिसती जैसे इंद्रनीळ। सुहास्यवदन तमालनीळ। कुंडलें ढाळ देताती। १३० हरिमुख अवलोकिती डोळां। परी हरि कोणासी कैसा भासला। निजभक्तांसी वाटला। कीं कैवारी आमुचा हा। १३१ कंसासी वाटलें केवळ। हा आपणासी न्यावया आला काळ। मल्लांसी वाटला प्रळयकाळ। हा तों आम्हांसी न सोडी। ३२ गोपींसी कैसा दिसे मनमोहन। कीं कोटिकंदर्प मुखावरून। सांडावे हरीच्या ओवाळून। पाहतां मन न धाये। ३३ सजलजलदवर्ण तमालनीळ। नंदादि गौळियां वाटे हा बाळ। सवंगडे

चूहों जैसे बैठे दिखायी दिये। तब नगर के समस्त लोग कृष्ण के मुख को देखने के लिए दौड़े। २६ (उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण के) नेत्र आकर्ण (अर्थात कानों तक फैले हुए) विशाल हैं; शरीर बहुत कोमल है। उनका वर्ण नील मेघ के वर्ण जैसा सुन्दर (नीला) है। (जान पड़ता है कि) सुन्दर नील रत्न का गर्भ (गूदा) निकालकर उससे उनकी मूर्ति (देह) ढाल दी गयी हो। २७ जो (वस्तुतः) सागर-कन्या लक्ष्मी के पति भगवान विष्णु हैं, भक्तों के समर्थक-सहायक हैं, स्वर्ग-मृत्यु-पाताल जैसे तीनों लोकों में (सबसे अधिक) सुन्दर हैं, वे भगवान लक्ष्मीपति नरवीर श्रेष्ठ कृष्ण के रूप में कंस की राजसभा में विराजमान है। २८ जो ब्रह्मानन्द (स्वरूप रस) स्वाभाविक रूप में परिपक्व हो गया है, उसी से कृष्णरूप पुतला साँचे में ढाला हुआ है। उन श्रीहरि के गले में दिव्य पदिक और मुक्तामालाएँ झूल रही हैं। २९ सुडौल निर्मल मोतियों के हार श्रीहरि के गले में इन्द्रजीत रत्नों (के हारों) जैसे जान पड़ रहे थे। उनका मुख सुहास्य से युक्त था। वे तमालनील वर्ण वाले थे। कुण्डल (कानों में) शोभा दे रहे थे। १३० वे (लोग) आँखों से कृष्ण के मुख को देख रहे थे। फिर भी, (सुनिए) वे कृष्ण किसे कैसे जान पड़े। उनके अपने भक्तों को लगा कि वे उनके सहायक-रक्षक हैं। १३१ कंस को प्रतीत हुआ कि वे केवल उसे ले जाने के लिए ही आ गये हैं। मल्लों को वे प्रलयकाल जान पड़े —यह अब हमें नहीं छोड़ेगा। ३२ मनमोहन कृष्ण गोपियों को कैसा दिखायी दिये ? अथवा (उन्हें लगा कि) कोटि-कोटि कामदेवों को इन श्रीहरि के मुख पर निछावर कर दें। उन्हें देखते-देखते उनका मन नहीं अघा रहा था। ३३ नन्द

कृष्णाचे गोपाळ। त्यांसी वाटे प्राणसखा। ३४ संत जे केवळ ज्ञानार्क। त्यांसी वाटे वस्तु हे जगद्व्यापक। पूर्णब्रह्मानंद निष्कलंक। तोचि यदुकुळीं अवतरला। ३५ पृथ्वीचे जे नृप अभिमानी। त्यांसी शासनकर्ता वाटे चक्रपाणी। यादवांसी कुलभूषणमणी। जगद्वंद्य दिसतसे। ३६ ऐसा अग्रजासमवेत अच्युत। देखतां द्वेषी जाहले गर्वहत। जैसा सभेंत देखतां पंडित। मूर्ख समस्त दचकती। ३७ कां जंबुक मिळोनि बहुत। मागें पंचाननासी निंदीत। तों मृगेंद्र उभा ठाके अकस्मात। मग बोबडी वळत मुखीं त्यांच्या। ३८ तैसे कंस चाणूर मुष्टिक। भयभीत सभा सकळिक। म्हणती दाटूनि आणिला पावक। गृहा आपुल्या लावावया। ३९ मुष्टिक चाणूर धैर्य धरून। श्रीरंगासी बोलती वचन। तुम्ही बहु झोंबी घेतां म्हणोन। आम्हीं कर्णीं ऐकिलें। १४० तरी ये सभे बैसले सबळ मल्ल। जो वाटेल तुम्हांसी समतोल। त्यासीं भिडा सभा सकळ। पाहील कौतुक तुमचें। १४१ ऐकोनि हांसिजे जगन्नायकें। तुम्ही अवघीं दिसतां मशकें।

आदि ग्वालों को लगा कि वे सजलमेघ के वर्णवाले, तमालनील (वाले शरीर के) कृष्ण उनका अपना बालक हैं। जो कृष्ण के साथी-संगी गोपाल थे, उन्हें वे प्राणसखा जान पड़े। ३४ जो सन्त केवल ज्ञान के सूर्य थे, उन्हें लगा कि ये जगद्व्यापक वस्तु अर्थात ब्रह्म हैं; जो आनन्द-स्वरूप पूर्णब्रह्म हैं, निष्कलंक हैं, वे ही यदुकुल में अवतरित हैं। ३५ पृथ्वी के जो अहंकारी राजा थे, उनको चक्रपाणी कृष्ण दण्ड देनेवाले जान पड़े। यादवों को वे जगद्वंद्य कृष्ण अपने कुल के भूषणस्वरूप रत्न जैसे दिखायी दिये। ३६ अपने बड़े भाई बलराम-सहित ऐसे उन श्रीकृष्ण को देखकर उनके द्वेष्टा गर्व-हत हो गये (उनका अहंकार नष्ट हो गया)। जिस प्रकार सभा में विद्वान को देखते ही समस्त मूर्ख चौंक पड़ते हैं, (वैसे वे लोग भौचक हो उठे। ३७ अथवा बहुत-से सियार इकट्ठा होकर पीछे से सिंह की निन्दा कर रहे हों और तो ही (यदि) सहसा सिंह सामने (आकर) खड़ा रह जाए, तो तब उनकी बोलती बन्द हो जाती है, उसी प्रकार कंस, चाणूर, मुष्टिक (कृष्ण के पीछे तो उनकी निन्दा करते थे, परन्तु कृष्ण के सामने उपस्थित हो जाने पर वे) समस्त सभाजन भयभीत हो उठे। उन्होंने कहा (उनको जान पड़ा) कि हम तो बलात् इनके रूप में घर में लगाने के लिए अग्नि ले आये हैं। ३८-३९ (तदनन्तर) मुष्टिक और चाणूर धैर्य धारण करके श्रीरंग कृष्ण से यह बात बोले, 'हमने कानों से सुना है कि तुम कुश्ती बहुत लड़ते हो। १४० अतः, इस सभा में बलवान मल्ल बैठे हुए हैं; (उनमें से) जो तुम्हें तुल्यबल जान पड़े, उससे भिड़ जाओ। समस्त सभा तुम्हारी लीला देख लेगी'। १४१ यह सुनकर जगन्नायक कृष्ण हँस पड़े। 'तुम सब

ऐसें बोलोनि वैकुंठपालकें। चाणूर धरोनि ओढिला। ४२ चाणूर बोले ते वेळीं। मजसीं भिडे हातोफळीं। ऐसा मल्ल उर्वीमंडळीं। कोणी नाहीं देखिला। ४३ मल्लयुद्ध मांडिलें निष्टंक। भिडती चाणूर आणि कमलानायक। तों बळिरामें ओढिला मुष्टिक। महाक्रोधें तेघवां। ४४ भुजेसी भुजा आदळती। करचरणग्रीवा पिळिती। एक एका उलथोनि पाडिती। एकमेकांसी तेधवां। ४५ मुष्टिप्रहार प्रबळ वाजती। सप्तपाताळें दणाणती। वर्मठावो लक्षिती। प्राण घ्यावया परस्परें। ४६ मुष्टिकाचे हृदयीं ते वेळां। बळिरामें मुष्टिघात दिधला। सवेंचि उचलोनि अवलीला। बळें आपटिला धरणीये। ४७ जैसा पक्व फणस पडतां अवनीं। निःशेष जाय चूर होऊनी। तैसा मुष्टिक विदारोनी। गतप्राण तो केला। ४८ मुष्टिकाचा प्राण गेला। ऐसें देखोनि घनसांवळा। चाणूर धरणीवरी आपटिला। प्राणासी मुकला तेचि वेळे। ४९ उठोनि मल्ल अवघे पळती। नगरदुर्गावरूनि उड्या घेती। एक ब्रीदें सोडूनि पळती। शस्त्रें सांडती हातींचीं। १५० तों शल आणि दुजा तोशल। धांवले

मच्छड़ दिखायी देते हो (जान पड़ते हो)।' —ऐसा बोलकर वैकुण्ठपालक विष्णुस्वरूप कृष्ण ने चाणूर को पकड़कर खींच लिया। ४२ उस समय चाणूर बोला, 'मुझसे जो हाथों से भिड़ सके, ऐसा मल्ल मैंने भूमण्डल पर (अब तक) कोई भी नहीं देखा है'। ४३ तो (फिर) उन्होंने मल्लयुद्ध आरम्भ किया (कुश्ती लड़ना शुरू किया)। वे (मल्ल-विद्या में) निपुण (मल्ल) चाणूर और कमलानायक विष्णुस्वरूप कृष्ण (एक-दूसरे से) भिड़ गये, तो तब (इधर) बलराम ने मुष्टिक को बड़े क्रोध से खींच लिया। ४४ वे बाहुओं से बाहु टकरा रहे थे। वे हाथ-पाँव-गरदन मरोड़ रहे थे। वे तब एक-दूसरे को उलटकर गिरा रहे थे। ४५ मुट्ठियों के बलपूर्वक किये आघात (-प्रत्याघात) बज रहे थे। उससे सातों पाताल गूँज रहे थे। वे एक-दूसरे के प्राण लेने के हेतु मर्म स्थान को लक्ष्य कर रहे थे। ४६ उस समय बलराम ने मुष्टिक के हृदयस्थल पर घूँसा जमा दिया; साथ ही उन्होंने उसे आसानी से उठाकर धरती पर जोर से पटक डाला। ४७ जिस प्रकार पका कटहल भूमि पर गिर जाते ही पूरा-पूरा चूर-चूर हो जाता है, उसी प्रकार बलराम ने मुष्टिक को पटकते हुए विदीर्ण करके प्राणहीन कर डाला। ४८ मुष्टिक के प्राण निकल गये हैं —ऐसा देखकर घनश्याम कृष्ण ने चाणूर को धरती पर पटक डाला। (फलस्वरूप) वह उसी समय गतप्राण हो गया। ४९ (यह देखकर) समस्त मल्ल भाग गये। वे नगर दुर्ग पर से कूद पड़े। कुछ एक अपने विरुद को छोड़कर भाग गये। उन्होंने हाथ के हथियार नीचे डाल दिये। १५० तब (फिर) कंस के (एक) शल और दूसरा तोशल

कंसाचे सबळ मल्ल। ते कंसांतकें तात्काळ। आपटूनियां मारिले। १५१ आणिक आठजण ते वेळां। धांवले जीत धरूं म्हणती सांवळा। तें देखोनि बळिभद्र कोपला। आडवा आला आठजणां। ५२ मिळाले आठ वारण। धरूं म्हणती रामपंचानन। तितुक्यांसीं एक संकर्षण। करी भांडण चपळत्वें। ५३ जैसीं तुंबिनीचीं ओलीं फळें। भूमीस आपटितां होती शकलें। तैसे आठही आपटूनि मारिले। शेषावतारें तेधवां। ५४ कंसासी भय वाटे दारुण। म्हणे म्यां हे दोघे बोलावून। बळें जवळी आणिलें मरण। दोघे प्रलयाग्नि दीसती। ५५ दाटूनि दंदशूक खवळविले। निजले सिंह जागे केले। तैसे हे दोघे पाचारिले। आतां आटलें आयुष्यजळ। ५६ तों वाद्यांचें घनचक्र ते वेळीं। कर्कश वाजे रणधुमाळी। त्या छंदें रामवनमाळी। नाचताती तेधवां। ५७ ते दोघे रणपंडित। जैसे काळ आणि कृतांत। कीं मेरुमंदार निश्चित। सबळ तैसे दीसती। ५८ कीं समुद्र आणि अंबर। कीं विष्णु आणि पिनाकधर। कीं स्वामी आणि वीरभद्र।

नामक (दो) बलवान मल्ल दौड़े। कंसान्तक कृष्ण ने उन्हें तत्काल पटककर मार डाला। १५१ उस समय और आठ जने दौड़े। वे बोले, 'हम कृष्ण कोजीवित पकड़ लेंगे'। यह देखकर बलभद्र कुपित हो उठा और उन आठ जनों को रोकने के लिए आड़े आ गया। ५२ मानो (उनके रूप में) आठ हाथी इकट्ठा हो गये और उन्होंने कहा (चाहा) कि बलराम रूपी सिंह को पकड़ लें। उन सबके साथ एक (मात्र, अकेले) संकर्षण बलराम ने चपलतापूर्वक संघर्ष किया। ५३ जिस प्रकार कच्चे कद्दूफल भूमि पर पटक देते ही उनके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, उसी प्रकार उस समय शेषावतार बलराम ने पटककर (खण्ड-खण्ड करते हुए) उन आठों ही को मार डाला। ५४ (यह देखकर) कंस को दारुण भय अनुभव होने लगा। उसने कहा (उसने माना) कि मैं इन दोनों को बुलाकर बलात् अपनी मौत निकट लाया हूँ। ये दोनों तो प्रलयाग्नि दिखायी देते हैं। ५५ किसी ने जान-बूझकर साँपों को क्षुब्ध कर दिया हो, अथवा सोये हुए सिंहों को जगा दिया हो— मैंने उसी प्रकार इन दोनों को बुला लिया है। अब मेरी आयु रूपी जल सूख गया है। ५६ तो उस समय वाद्य-समूह युद्धकालीन कोलाहल के भाँति कर्कशता के साथ बज रहा था, उस समय उस धुन पर बलराम और वनमाली कृष्ण नाच रहे थे। ५७ वे दोनों युद्ध-कला के पण्डित थे। वे मानो कालपुरुष तथा कृतान्त यम थे। अथवा वे निश्चय ही बलशाली मेरु और मन्दार जैसे दिखायी दे रहे थे (जान पड़ रहे थे)। ५८ अथवा वे मानो समुद्र और आकाश हों, अथवा भगवान विष्णु और शिवजी हों, अथवा शिवजी के वरद पुत्र कार्तिक स्वामी और वीरभद्र हों। ५९ अथवा वे मानो अंगिरा-पुत्र

वरदपुत्र शिवाचे। ५९ किंवा अंगिरापुत्र आणि पुरुहूत। किंवा भार्गव आणि भार्गवजित। जरासंधाचा जामात। त्या प्रकारें लक्षी दोघां। १६० ऐसा कंस भयभीत अंतरीं। सेवकांसी झडकरी आज्ञा करी। अरे या दोघांसी बाहेरी। नेऊनि घाला आतांचि। १६१ वसुदेव देवकी जिवें मारा। गौळियां समवेत नंद संहारा। यादव तितुके आधीं धरा। वध करा उग्रसेनाचा। ६२ ऐसें ऐकतां जगज्जीवन। जैसा चंडभैरव येत उडोन। अकस्मात उचली वारण। तैसा श्रीकृष्ण धांविन्नला। ६३ उंचस्थळीं कंस बैसला। त्यावरी हरि जाऊनि कोसळला। हस्तचपेटें मुकुट पाडिला। भूतळवटीं कंसाचा। ६४ झोटी धरूनि ते क्षणीं। बळें आसडूनि पाडिला धरणीं। मुष्टिघात हृदयीं लक्षूनी। सबळबळें ओपिला। ६५ कंसें डोळे वटारून। तेथेंचि तात्काळ सोडिला प्राण। अशुद्धाचे लोट पूर्ण। मुखावाटे चालिले। ६६ पूर्ण उदार पूर्ण आनंदकंद। कंसासी दिधलें निजपद। भक्तां अभक्तां मुकुंद। एकचि गति देतसे। ६७ परिस पूजोनि लोह लाविलें। तें तत्काळ सुवर्ण जाहलें। एकें परिसासी मारिलें। लोहघन घेऊनियां। ६८ तोहि तत्काळ केला सुवर्ण। तैसा भक्तां अभक्तां

बृहस्पति और इन्द्र हों, अथवा भार्गव परशुराम और उन्हें जीतनेवाले राम हों —इस प्रकार जरासन्ध का जामाता कंस उन्हें देखने लगा (समझने लगा)। १६० कंस इस प्रकार मन में भयभीत हो उठा। उसने अपने सेवकों को झट से आदेश दिया— 'अरे, इन दोनों को अभी बाहर ले जाओ। १६१ वसुदेव और देवकी को प्राणों से मार डालो। ग्वालों-सहित नन्द का संहार कर डालो। जितने यादव हैं, उन सबको पहले पकड़ लो। उग्रसेन का वध करो'। ६२ ऐसा सुनते ही जगजीवन श्रीकृष्ण वैसे ही दौड़े, जैसे चण्डभैरव उड़कर आ जाता हो और सहसा हाथी को उठा लेता हो। ६३ कंस उच्च स्थल पर बैठा हुआ था। कृष्ण (उछलते हुए) जाकर गिर पड़े। उन्होंने हाथ के थप्पड़ से कंस के मुकुट को भूमितल पर गिरा डाला। ६४ उन्होंने उसकी चोटी पकड़कर उसी क्षण बलपूर्वक उसे खींचते हुए धरती पर गिरा डाला। (फिर) हृदयस्थल पर लक्ष्य करके अतिबल के साथ घूँसा जमा दिया। ६५ आँखें फाड़कर कंस ने तत्काल वहीं प्राण तज दिये। उसके मुख में से रक्त के भरे पूरे रेले बहने लगे। ६६ कृष्ण तो पूर्ण उदार हैं; आनन्द के पूर्ण कन्द हैं। उन्होंने कंस को अपना पद प्रदान किया— मुक्ति प्रदान की। मुक्तिदाता भगवान कृष्ण भक्तों और अभक्तों को एक ही (समान) गति प्रदान करते हैं। ६७ पारस का पूजन करके किसी ने उससे लोहा छुवा दिया, तो वह (लोहा) तत्काल सोना हो गया, तो दूसरे ने लौहघन लेकर पारस को ठोंक-पीट लिया। ६८ (परन्तु, पारस ने) उसी को

जगज्जीवन। कोण्या प्रकारें तरी ध्यान। हरीचें सदा लागावें। ६९ जैसी भृंगी कीटकी आणीत। ती ध्यानें तैसीच होत। तैसा कंस तरला निश्चित। हरिचिंतनेंकरूनियां। १७० कामें तारिल्या गोपी समस्ता। भयें तारिलें मागधजामाता। वृंदावनींच्या पाषाणलता। स्पर्शें उद्धरिल्या हरीनें। १७१ परम बाळहत्यारी पूतना। तीस तारिलें करूनि स्तनपाना। ऐसा हा वैकुंठींचा राणा। समसमान सर्वांसी। ७२ असो ऐसा मारिला कंस। अदितिकुमरां जाहला उल्हास। धडकले दुंदुभींचे घोष। नादें आकाश कोंदलें। ७३ दिव्य सुमनांचा वर्षाव। वारंवार करिती देव। मथुरेंतूनि दुष्ट सर्व। उठोनियां पळाले। ७४ जैसा हृदयीं ठसावतां बोध। सहपरिवारें पळती कामक्रोध। तैसा मथुरेसी येतां जगदंकुरकंद। दैत्य अवघेचि पळाले। ७५ सुटतां श्रीकृष्णप्रभंजन। दैत्यजलदजाळ गेलें विरोन। कीं हरि उगवतां चंडकिरण। द्वेषतम निरसलें। ७६ जैसे वेगळे निवडितां हरळ। उरले

भी तत्काल सोना बना दिया। उसी प्रकार जगज्जीवन कृष्ण भक्तों और अभक्तों को समान गति प्रदान करते हैं। इसलिए (किसी न) किसी प्रकार श्रीहरि का सदा ध्यान धारण किया जाए। ६९ जिस प्रकार भृंगी कीट को लाती है, फिर वह ध्यान से वैसी ही (भृंगी-सदृश) हो जाती है, उसी प्रकार कंस श्रीहरि के चिन्तन से निश्चय ही तैर गया (उद्धार को प्राप्त हो गया)। १७० समस्त गोपियों को काम-भाव के आधार पर (कृष्ण ने) तार लिया; मगधनरेश जरासन्ध के जामाता कंस को भयभाव से तार लिया। श्रीहरि ने स्पर्श से वृन्दावन के पाषाणों और लताओं को तार दिया। १७१ पूतना तो परम बालकों को मार डालनेवाली थी। (फिर भी) उसका स्तनपान करते हुए) उसके जीवन-रस को सोखकर) उन्होंने (उसे मार डाला और इस प्रकार (उसको तार दिया। ये वैकुण्ठराज भगवान विष्णु-स्वरूप कृष्ण इस प्रकार) भक्तों तथा अभक्तों) सबके लिए सम-समान होते हैं। ७२ अस्तु। इस प्रकार उन्होंने कंस को मार डाला, तो अदितिकुमारों अर्थात देवों को आनन्द हो गया। दुन्दुभियों के तार-स्वर बज उठे; उस नाद से आकाश व्याप्त हो गया। ७३ देव दिव्य सुमनों की बौछार बार-बार करने लगे। (इधर) समस्त दुष्ट जन उठकर मथुरा में से भाग गये। ७४ जिस प्रकार हृदय में (ब्रह्म या आत्म-) ज्ञान के जम जाते ही काम-क्रोध (जैसे विकार) सपरिवार भाग जाते हैं, उसी प्रकार जगत रूपी अंकुर के बीजस्वरूप कन्द श्रीकृष्ण के मथुरा आते ही सभी दैत्य भाग गये। ७५ श्रीकृष्ण रूपी प्रचण्ड वायु के चलने लगते ही दैत्य रूपी मेघजाल विलय को प्राप्त हो गया। अथवा श्रीहरि रूपी सूर्य के उदित होने पर द्वेष रूपी अन्धकार नष्ट हो गया। ७६ जिस प्रकार कंकड़ बीनकर अलग कर देने पर शुद्ध

शुद्ध तांदुळ। खोटें निवडतांचि सकळ। उरे केवळ खरें नाणें। ७७ तैसे मथुरेंतूनि गेले दुर्जन। उरले ते निजभक्त सज्जन। प्रजालोक मिळोन। हरीसी शरण आले तेव्हां। ७८ कंसाचें कलेवर ते वेळे। उग्रसेनाचें प्रधानें आणिलें। त्यांहीं अग्नींत घातलें। संपादिलें उत्तरकर्म। ७९ तत्काळ फोडिल्या बंदिशाळा। सोडूनि गौरविलें सकळां। उग्रसेनराजा आणिला। तोडिली शृंखळा तयाची। १८० मातृजनक उग्रसेन। त्यासी कृष्णें करूनि नमन। सिंहासनीं बैसवून। छत्र धरिलें सुमुहूर्तीं। १८१ झाला परम जयजयकार। नगर आनंदलें समग्र। यादवांचें उज्ज्वळ वक्त्र। केलें तेव्हां मुकुंदें। ८२ मग शेष आणि नारायण। सवें घेऊनि उग्रसेन। समस्त प्रजा ब्राह्मण। समागमें चालिले। ८३ घेतलीं वस्त्रें अलंकार। लागला वाद्यांचा गजर। जेथें वसुदेवदेवकी सुंदर। तेथें सत्वर पातले। ८४ शेष आणि यादवेंद्र। दोघीं साष्टांग घातला नमस्कार। वसुदेवदेवकींस गहिंवर। प्रेमपूर दाटला। ८५ देवकीचे दोन्ही चरण। दृढ धरिती शेष जगज्जीवन।

चावल शेष रह जाते हैं, (जिस प्रकार) समस्त खोटे सिक्कों को चुन लेने पर केवल असली सिक्के शेष रह जाते हैं, उसी प्रकार (कृष्ण द्वारा कंस का वध कर देने पर) मथुरा से दुर्जन चले गये और भगवान के वे अपने भक्त सज्जन शेष रहे। तब प्रजाजन इकठ्ठा होकर श्रीहरि की शरण में आ गये। ७७-७८ उस समय कंस का शव उग्रसेन का मंत्री ले आया, तो उन्होंने उसे अग्नि में डाल दिया (उसका दाह-संस्कार किया) और उत्तर-क्रिया पूर्ण की। ७९ तत्काल बन्दीशालाओं को खोल दिया और समस्त को मुक्त करके उनका गौरव किया। राजा उग्रसेन को लाया (गया) और उनकी बेड़ियाँ काट डालीं। १८० उग्रसेन (श्रीकृष्ण के) मातृजनक अर्थात नाना थे। श्रीकृष्ण ने उनका वन्दन करके सुमुहूर्त पर सिंहासन पर बैठाते हुए उनपर (राज-) छत्र धर दिया। १८१ (उस समय) परम जय-जयकार हो गया। समस्त नगर आनन्दित हुआ। तब (इस प्रकार) श्रीकृष्ण ने यादवों के मुख को उज्ज्वल कर दिया। ८२ अनन्तर शेषावतार बलराम और नारायणावतार श्रीकृष्ण साथ में उग्रसेन को लेकर चल दिये। समस्त प्रजाजन, ब्राह्मण उनके साथ जा रहे थे। ८३ उन्होंने वस्त्र और आभूषण (साथ में) लिये थे। वाद्यों का गर्जन हो रहा था। जहाँ वसुदेव और सुन्दरी अर्थात उनकी स्त्री देवकी थे, वहाँ से शीघ्र ही पहुँच गये। ८४ शेषावतार बलराम और यादवेन्द्र कृष्ण दोनों ने उन्हें साष्टांग नमस्कार किया, तो वसुदेव-देवकी गद्‌गद हो उठे। (उनके हृदय में) प्रेम (-जल) की बाढ़ उमड़ रही थी। ८५ शेष बलराम और जगज्जीवन कृष्ण दोनों ने देवकी के दोनों पाँव दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये। (फिर वह) माता कृष्ण को हृदय से

कृष्णासी हृदयीं धरून। स्फुंदस्फुंदोन रडे माया। ८६ वनाहूनि आलिया सीतानाथ। प्रेमें कौसल्या वोसंडत। तैसीच देवकी हृदयीं धरीत। वैकुंठपीठनिवासिया। ८७ प्रेमपान्हा फुटला देवकीसी। क्षणक्षणां विलोकी हरिमुखासी। मागुती धरी हृदयासी। उसकाबुकशीं स्फुंदत। ८८ माता म्हणे नीलोत्पलदलवर्णा। तुवां केलें नाहीं माझिया स्तनपाना। तुज न्हाणिलें नाहीं जगज्जीवना। करेंकरूनि आपुल्या। ८९ तुज पाळणां नाहीं निजविलें। नाहीं दुग्धपान करविलें। जावळ नाहीं सरसाविलें। व्यर्थ आलें जन्मासी मी। १९० असो आलिंगूनि घनश्यामा। माता भेटली बळिरामा। वर्णितां तेथींच्या संभ्रमा। शेष उपरमा पावेल हो। १९१ भोगींद्र आणि यादवेंद्र। करिती वसुदेवासी नमस्कार। त्यासी न सांवरे गहिंवर। प्रेमपूर दाटला। ९२ अवलोकितां दोघां पुत्रां। धणी न पुरे वसुदेवाच्या नेत्रां। हृदयीं आलिंगिलें घनश्यामगात्रा। जो पंचवक्त्रा अगम्य। ९३ वस्त्रें भूषणें अलंकार नाना। कृष्णें लेवविले दोघांजणां। आली वसुदेवाची दुजी अंगना। गोकुळाहूनि रोहिणी ते। ९४ उग्रसेन भेटे

लगाकर सुबक-सुबककर रोने लगी। ८६ जिस प्रकार (पूर्वकाल में) सीतापति श्रीराम के वन से लौटने पर कौसल्या प्रेम से उमड़ उठी थी, उसी प्रकार (प्रेम से उमड़ते हुए) देवकी ने वैकुण्ठपीठ-निवासी भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण को हृदय से लगा लिया। ८७ देवकी प्रेम से पन्हिया गयी। वह क्षण-क्षण कृष्ण के मुख का अवलोकन कर रही थी। फिर से उसे हृदय से लगाती थी और ढाड़ मारकर सुबक-सुबककर रोती थी। ८८ माता बोली, 'रे नीलकमल-दल के समान नीलवर्ण, तूने मेरा स्तन-पान नहीं किया था। रे जगज्जीवन, मैंने तुझे अपने हाथों से नहीं नहलाया। ८९ मैंने तुझे पालने में नहीं सुलाया। दुग्धपान नहीं कराया। तेरे बालों को नहीं सँवार दिया। मैं व्यर्थ ही जनम को प्राप्त हुई। १९० अस्तु। घनश्याम को गले लगाने के पश्चात माता बलराम से मिली। उसके सम्भ्रम का वर्णन करते हुए शेष उपरम (थकान) को प्राप्त होगा। १९१ (तदनन्तर) भोगीन्द्रावतार बलराम और यादवेन्द्र कृष्ण ने वसुदेव को नमस्कार किया। उनसे गद्गद होना रोका नहीं जा रहा था। उन्हें प्रेम (-जल) की बाढ़ उमड़ उठी। ९२ दोनों पुत्रों को देखते-देखते वसुदेव के नेत्रों की हविस पूरी नहीं हो रही थी। जो पंचमुख शिवजी के लिए भी अगम्य हैं, उन घनश्यामशरीरी कृष्ण का उन्होंने हृदय से लगाकर आलिंगन किया। ९३ (अनन्तर) कृष्ण ने उन दोनों जनों को वस्त्र और नाना (प्रकार के) आभूषण-अलंकार पहनवाये। (उधर) वसुदेव की दूसरी स्त्री रोहिणी गोकुल से आ गयी। ९४ उग्रसेन दामाद (वसुदेव) से मिले, दृढ़तापूर्वक

जामाता। हृदयीं धरिली दृढ दुहिता। नंदादिका गौळियां समस्तां। वसुदेवदेवकी भेटती। ९५ गजरें मिरविती समस्त। देव पुष्पवर्षाव करीत। तो सोहळा वर्णितां समस्त। बहुत ग्रंथ वाढेल। ९६ तों गर्गमुनि आला अकस्मात। सवें घेतले ऋषि बहुत। वसुदेवदेवकीसी म्हणत। व्रतबंध आतां करावा। ९७ शेष आणि नारायण। दोघांचें आरंभिलें मौंजीबंधन। परम हर्षें उग्रसेन। फोडी भांडार तेधवां। ९८ वस्त्रें द्रव्य अलंकार। द्विजांसी वांटी नृपवर। जो वेदशास्त्रां अगोचर। त्यासी ब्रह्मसूत्र घातलें ९९ यथासांग सोहळा। चारी दिवस पूर्ण जाहला। मग नंद निघाला गोकुळा। वसुदेवासी पुसोनियां। २०० हरीनें वंदिलें नंदातें। म्हणे आतां जावें गोकुळातें। इतुकें दिवस पाळिलें मातें। तें मी कदा विसरेना। २०१ आतां माझें स्मरण असों द्यावें। सुखें गोकुळीं नांदावें। नंद सद्‌गदित प्रेमभावें। काय बोले तेधवां। २ तुज टाकूनि घननीळा। कसा मी जाऊं गोकुळा। तुवां गोकुळीं वैकुंठपाळा। बहुत लीला दाविल्या कीं। ३ काय काय आठवूं गुण। कोणत्या उपकारा होऊं उत्तीर्ण। आतां मी

(अपनी) कन्या देवकी को हृदय से लगा लिया। (फिर) वसुदेव-देवकी नन्दादि समस्त ग्वालों से मिले। ९५ सब गर्जन करते हुए घूम-फिर रहे थे। देव पुष्पवर्षा कर रहे थे। उस आनन्दोत्सव का सम्पूर्ण वर्णन करते रहने पर यह ग्रन्थ बहुत बढ़ जाएगा। १९६

तब गर्गमुनि अकस्मात आ गये। उन्होंने साथ में अनेक ऋषि लिये थे (वे लाये थे)। वे वसुदेव-देवकी से बोले, 'अब (इन लड़कों का) व्रतबन्ध (जनेऊ-संस्कार) कीजिए'। १९७ उसके अनुसार शेषावतार बलराम और नारायणावतार कृष्ण का मौंजी-बन्धन (जनेऊ) संस्कार आरम्भ हुआ। तब उग्रसेन ने परम हर्ष के साथ भण्डार (दान देने के हेतु) खोल दिया। ९८ राजा उग्रसेन ने वस्त्र और दिव्य आभूषण ब्राह्मणों को (दान में) बाँट दिये। जो वेद-शास्त्रों के लिए भी अगम्य हैं, उन (ब्रह्मस्वरूप) कृष्ण को ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) पहना दिया (गया)। ९९ चार दिनों में वह समारोह यथासांग (अंगोपांग-सहित विधिवत्) पूर्ण हो गया। अनन्तर नन्द-वसुदेव की आज्ञा लेकर गोकुल की ओर जाने के लिए निकला। २०० कृष्ण ने नन्द का वन्दन किया और बोले, 'अब गोकुल जाइए। इतने दिन आपने मेरा पालन किया। उसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। २०१ अब मेरा स्मरण रहने देना। गोकुल में सुखपूर्वक रहना।' (यह सुनकर) नन्द प्रेम-भाव से बहुत गद्‌गद हो उठे। तब वह क्या बोले? (सुनिए)। २ 'रे घननील, तुझे छोड़कर मैं गोकुल कैसे जाऊँ? रे वैकुण्ठपाल, तूने गोकुल में बहुत लीलाएँ प्रदर्शित कीं। ३ तेरे कौन-कौन गुण याद करूँ? किस उपकार से ऋणमुक्त हो

गोकुळासी जाऊन। काय सांगूं लोकांतें। ४ तुज टाकून जातां श्रीपती। लोक मज काळमुख म्हणती। काय सांगावें यशोदेप्रती। ती प्राण देईल तुजविण। ५ तुजविण गोकुळ सर्व ओस। तुजविण घर भणभणीत उदास। म्यां देहगेहाची सांडिली आस। काय ग्रामास जाऊं आतां। ६ जैसा कीटककोसला जाय पोळून। तैसीं आम्ही होऊं दोघेंजण। हरि तुजकारणें प्राण। देऊं आम्ही जाण पां। ७ हरि नंदासी म्हणे ते समयीं। हा खेद न करावा तुम्हीं कांहीं। मी असें तुमच्या हृदयीं। वियोग नाहीं सर्वथा। ८ होऊनि नंदाचें समाधान। गौळियांसमवेत परतोन। गोकुळासी चालिले अवघे जन। वर्णिती गुण कृष्णाचे। ९ नंद पावला गोकुळा। गोपिकां गौळियां सकळां। सांगे मथुरेचा सोहळा। जो जो झाला वृत्तांत। २१० समाचार समस्त ऐकूनी। तटस्थ झाल्या नितंबिनी। म्हणती परमपुरुष कैवल्यदानी। त्याची करणी कोणासी न कळे। २११ माता यशोदा म्हणे सुकुमारा। मज टाकूनि गेलासी मथुरापुरा। तूं परात्पर आणि सोयरा। भक्तजनांचा पैं होसी। १२ हरिचरणीं ठेवूनि मन। वर्तती गोकुळींचे जन।

जाऊँ ? अब मैं गोकुल जाकर लोगों से क्या कहूँ ? ४ रे श्रीपति, तुझे छोड़कर जाने पर मुझे लोग कलमुँहा कहेंगे। यशोदा से क्या कह दें ? वह तेरे बिना प्राण त्यज देगी। ५ तेरे बिना समस्त गोकुल उजाड़ जान पड़ेगा। बिना तेरे घर बुरी तरह उदास लगेगा। मैंने तो देह और गेह (घर) की आशा ही छोड़ दी है। अब मैं गाँव कैसे जाऊँ ? ६ जिस प्रकार रेशम का कीड़ा झुलस जाता है, उसी प्रकार (तेरे विरह रूपी आग से) हम दोनों (दग्ध) हो जाएँगे। रे हरि, जान ले कि तेरे (विरह के) कारण हम प्राण दे देंगे'। ७ (इसपर) हरि ने उस समय नन्द से कहा, 'तुम कुछ भी ऐसा खेद न (अनुभव) करना। मैं तुम्हारे हृदय में (निवास करता) हूँ। (अतः तुम्हारा-हमारा) विरह बिलकुल नहीं हैं'। ८ (इससे) नन्द को सन्तोष हो जाने पर वे ग्वालों-सहित लौट गये। समस्त लोग गोकुल की ओर चल दिये। वे कृष्ण के गुणों का वर्णन कर रहे थे। ९ नन्द गोकुल पहुँच गये। उन्होंने मथुरा के समारोह सम्बन्धी और जो-जो घटना घटित हुई, उसके बारे में समस्त गोप-गोपियों को बता दिया। २१० समस्त समाचार को सुनकर नारियाँ चकित हुईं। वे बोलीं, 'कृष्ण तो कैवल्यदाता परमपुरुष हैं। उसकी करनी किसी की समझ में नहीं आती'। २११ माता यशोदा बोली, 'रे सुकुमार, मुझे छोड़कर तू मथुरा गया है। (वस्तुतः) तू परात्पर (सर्वातीत) है और भक्तजनों का सगा-सम्बन्धी है'। २१२

गोकुल के लोग कृष्ण के चरणों में मन लगाकर व्यवहार करते

असो मथुरेंत जगज्जीवन। पाहतां जन सुखरूप। १३ अक्रूरें आपुलया मंदिरा। नेऊनि पूजिलें विश्वोद्धारा। सकळ मथुरेच्या सुंदरा। यादवेंद्रा न विसंबती। १४ तयांचे मनोरथ परिपूर्ण। करीत वसुदेवनंदन। घरोघरीं हरीचें पूजन। करिती जन मथुरेचे। १५ कुब्जेनेंही अतिप्रीतीं। मंदिरीं नेला जगत्पती। तिची देखोनि प्रेमभक्ती। भाळला श्रीपति तियेतें। १६ भक्तांचे पूर्ण मनोरथ। कर्ता एक जगन्नाथ। ज्याची जैसी आवडी देखत। तैसाचि होत तयातें। १७ कोणी पूजिती धरूनि कामना। कोणी अर्चिती जनार्दना। कोणी शरण येती चरणा। निजज्ञान मागावया। १८ उद्धव आणि अक्रूर। हरीचे आवडते निरंतर। यांसी क्षणभरी श्रीधर। न विसंबेचि सर्वथा। १९ एका पंक्तीसी भोजन। एकाचि मंदिरीं शयन। एके ठायीं करिती क्रीडन। दोघांविण कांहीं न करीच। २२० संपलें ग्रंथाचें पूर्वार्ध। जें समुद्राहून अगाध। त्याहून विशेष उत्तरार्ध। बहुत गोड अवधारा। २२१ संस्कृतइक्षुदंडरस अपार। त्याची प्राकृत हे वळिली साखर।

हैं। अस्तु। मथुरा में जगज्जीवन कृष्ण को देखकर लोग सुख के साथ अर्थात सकुशल रहने लगे। १३ विश्व का उद्धार करनेवाले श्रीकृष्ण को अपने घर ले जाकर अक्रूर ने उसका पूजन किया। मथुरा की समस्त स्त्रियाँ यादवेन्द्र कृष्ण को न भूल पाती थीं। १४ वसुदेवनन्दन कृष्ण उनकी कामनाओं को परिपूर्ण करते थे। मथुरा के लोग घर-घर श्रीहरि का पूजन करते थे। १५ कुब्जा भी अति प्रेम-पूर्वक जगत्पति कृष्ण को अपने घर ले गयी। उसकी प्रेमभक्ति को देखकर श्रीपति कृष्ण उस पर मोहित हो गये। १६ भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले एक (मात्र) जगन्नाथ अर्थात कृष्ण हैं। वे जिसकी जैसी रुचि (चाह) देखते हैं, उसके साथ वैसे ही हो जाते हैं। १७ कोई-कोई (मन में) कोई कामना धारण करके उनका पूजन करते हैं। कोई-कोई जनार्दन कृष्ण का अर्चन करते हैं। कोई-कोई आत्मज्ञान की याचना करने के लिए उनके चरणों की शरण में आ जाते हैं। १८ उद्धव और अक्रूर दोनों कृष्ण के निरन्तर प्यारे थे। श्रीधर कृष्ण उन्हें क्षण भर तक बिलकुल नहीं भूलते थे। १९ वे एक पंगत में भोजन किया करते; एक ही घर में शयन किया करते; एक (ही) स्थान पर क्रीड़ा किया करते। उन दोनों के बिना वे कुछ करते ही नहीं थे। २२०

(यहाँ पर श्रीहरि-विजय नामक) इस ग्रन्थ का पूर्वार्ध समाप्त हुआ, जो समुद्र से (भी अधिक) अथाह है। उससे भी अधिक (अथाह) उसका उत्तरार्ध है। उस बहुत मधुर (भाग को अब) सुनिए। २२१ संस्कृत रूपी इक्षुदण्ड (ईख) का रस अपार है। उस रस से प्राकृत (भाषा के ग्रन्थस्वरूप) शक्कर बनायी है। वह सज्जनों को निरन्तर मधुर लगती है। (परन्तु) वह निन्दक रूपी रुग्णों को नहीं भाती। २२

सज्जनां गोड लागे निरंतर। निंदकरोगिष्ठां नावडेचि। २२ भागवत आणि हरिवंश। पद्मपुराणींचे इतिहास। मिळोनि ओतला सुरस। हरिविजय ग्रंथ हा। २३ हरिविजय ग्रंथ पूर्ण। हेंचि आंब्यांचें सदा फळलें वन। पाडा आलें प्रेमेंकरून। भक्तजन सेविती हो। २४ यासी शुकमुख लागलें। आवडीचे आढिये मुरालें। संतजन सेवितां धाले। आनंदले परिपूर्ण। २५ निंदक अभक्त जे वायस। मुखरोग आला त्यांचिया मुखास। जें परम दोषाविष्ट आसमास। सर्वदाही भक्षिती। २६ ऐसे जे अभागी अभक्त। त्यांसी नावडे हरिविजय ग्रंथ। तेथें अमृतफळें यथार्थ। नाना दृष्टांत जाणिजे। २७ श्रीब्रह्मानंदकृपाकल्लोळें। हीं हातां आलीं अमृतफळें। श्रीधर म्हणे बहुत रसाळें। संतसज्जनीं सेविजे। २८ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। परिसोत चतुर श्रोते पंडित। एकोणिसावा अध्याय गोड हा। २२९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

श्रीमद्भागवत पुराण और हरिवंश तथा पद्म पुराण के (अन्दर प्रस्तुत) इतिहास को मिलाकर यह श्रीहरि-विजय नामक सुरस (मधुर रस से युक्त) ग्रन्थ ढाला हुआ है। २२३

श्रीहरि-विजय नामक यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ही आम्र का वन सदा फल को प्राप्त हुआ है। वह पक्वता को प्राप्त हुआ है। भक्त जन प्रेम से उसका सेवन करते हैं। २२४ इस (फल) को शुक मुनि रूपी तोते का मुख लगा हुआ है (तोते ने उसे अपनी चोंच से चखकर देखा है)। वह (सदभि-) रुचि रूपी पाल में पक्वता को प्राप्त हुआ है। उसका सेवन करते हुए सन्तजन तृप्त हो गये हैं और वे परिपूर्ण रूप से आनन्दित हो गये हैं। २५ निन्दक और अभक्त रूपी जो कौए हैं, उनके मुख में मुखरोग हुआ है (अतः उनको यह मधुर रस से भरा-पूरा आम्रफल नहीं भाता)। वे तो नित्यप्रति, जो पास ही बहुत दोषयुक्त (अर्थात खराब, गन्दा) है, उसे ही खा लेते हैं। २६ जो इस प्रकार के अभागे अभक्त हैं, उन्हें श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ अच्छा नहीं लगेगा। वहाँ (इस ग्रन्थ में) जो नाना दृष्टान्त हैं, उन्हें यथार्थ रूप में अमृत-से मधुर रस से यथार्थ रूप में युक्त (आम्र) फल समझिए। २७ श्री ब्रह्मानन्द नामक गुरु रूपी आनन्दस्वरूप ब्रह्म की कृपा की लहर से, ये अमृत-फल हाथ आये हैं। कवि श्रीधर कहता है कि इन बहुत रसमय फलों का सन्त सज्जन सेवन करें। २२८

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। इसके इस उन्नीसवें मधुर अध्याय का चतुर श्रोता पण्डित जन श्रवण करें। २२९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२०

[सान्दीपनी ऋषि द्वारा कृष्ण को ज्ञानोपदेश देना]

श्रीगणेशाय नमः ।। जय जय कमललोचना कांचनांबरा। कमनीयरूपा कमलावरा। कर्ममोचका किल्मिषहरा। अरिसंहारा कमठरूपा। १ परमानंदा परमपुरुषा। परात्परा पयोब्धिवासा। पद्मजजनका परमहंसा। पंढरीशा परमात्मया। २ गोपविहारा गोवर्धनोद्धारणा। गोपीवल्लभा गोपपाळणा। गोकुळपालका गोरक्षणा। गोरसचोरा गोविंदा। ३ राधारंगा रासबिहारा। राघवा रजनीचरसंहारा। रावणांतका राजेंद्रा। राजीवाक्षा ऋणमोचका। ४ मकरकुंडला मणिमयहारा। मदनारिप्रिया मुरसंहारा। मंगलधामा मंदरोद्धारा। मणिकंधरा मनवेधका। ५ ब्रह्मानंदा यदुकुळभूषणा। पुढें बोलें ग्रंथरचना। मथुरेसी जाऊनि वैकुंठराणा। काय करिता जाहला। ६ एकोणिसावे अध्यायीं कथन। कंस मारूनि केलें बंदिमोचन। त्यावरी

श्रीगणेशाय नमः। हे कमलनयन, हे पीताम्बरधारी, हे सुन्दर स्वरूपवान कमलापति भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण, हे कर्मों से मुक्ति देनेवाले, हे पापहारी, हे शत्रु-संहारक, हे कूर्मावतार-धारक (भगवान विष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण), जय हो, जय हो। १ हे परमानन्द-स्वरूप, हे परमपुरुष, हे परात्पर (सर्वोपरि ब्रह्मस्वरूप), क्षीरसागर-निवासी, हे ब्रह्मा के पिता, हे परमहंस, हे पण्ढरपुर के ईश्वर परमात्मा, (जय हो, जय हो)। २ हे गोपों के साथ विहार करनेवाले, हे गोवर्धन गिरि को उठानेवाले, हे गोपी-वल्लभ, हे गोपों का पालन (रक्षण) करनेवाले, हे गोकुल के पालक, हे गायों के रक्षक, हे गोरस को चुरानेवाले गोविन्द कृष्ण, (जय हो, जय हो)। ३ हे राधारंग, हे रासविहारी कृष्ण, हे राक्षसों का संसार करनेवाले राघव राम, हे रावण का वध करनेवाले (अयोध्या के) राजेन्द्र, हे कमलनयन, हे ऋणमोचक, (जय हो, जय हो)। ४ हे मत्स्याकार कुण्डल धारण करनेवाले, हे रत्नमय हार धारण करनेवाले, हे कामदेव के शत्रु श्रीशिवजी के प्रिय और मुर दैत्य का संहार करनेवाले, हे मंगलों के निवास-स्थान, हे (कूर्म-अवतार धारण करके समुद्रमन्थन के अवसर पर) मन्दर पर्वत रूपी मथानी को (अपनी पीठ पर) उठानेवाले, हे मणिकन्धर, हे मनोवेधक (भगवान, जय हो, जय हो)। ५ हे ब्रह्मानन्द गुरुस्वरूप ब्रह्म, हे यदुकुलभूषण, (जय हो, जय हो)। अब इस ग्रन्थ की रचना आगे करते हुए बोलिए (मेरे द्वारा इस ग्रन्थ की रचना करवाइए)। वैकुण्ठराज विष्णु के अवतार कृष्ण ने मथुरा जाकर क्या किया ? ६ उन्नीसवें अध्याय में (यह कहा गया कि श्रीकृष्ण ने) कंस को मारकर वसुदेव और देवकी को बन्दीगृह से मुक्त किया; तत्पश्चात कृष्ण (और बलराम) का व्रतबन्धन संस्कार हुआ और

जाहलें मौंजीबंधन। मग नंद गेला गोकुळा। ७ यावरी सुदामनामा ब्राह्मण। संकर्षण आणि कृष्ण। गुरुगृहाप्रति तिघेजण। विद्याभ्यासा चालिले। ८ अवंतीनगरीमाजी जाण। महाऋषि नाम सांदीपन। जो शांत दांत ज्ञानी निपुण। चारी वेद मुखोद्गत। ९ जो सर्वज्ञ परिपूर्ण। ज्यासी नाहीं ज्ञानाभिमान। जो वेदाज्ञा मानी प्रमाण। त्यासी शरण आधीं जावें। १० परदारा आणि परधन। येथें पराङ्मुखचित्त पूर्ण। जो कदा नुच्चारी परदोषगुण। त्यासी शरण आधीं जावें। ११ जो सर्वज्ञ दयाळु उदास। जो सदाचारवृत्ति जैसा चंडांश। सर्वांभूतीं दया विशेष। त्यासी शरण आधीं जावें। १२ जो तरोनि दुसऱ्यासी तारिता होये। शिष्या जो ब्रह्मरूप पाहे। मानापमानीं चित्त सम राहे। त्यासी शरण आधीं जावें। १३ आपण ज्यासी विद्यादान केलें। ते शिष्य दुजिया शरण गेले। तरी चित्त क्रोधें न खवळे। त्यासी शरण आधीं जावें। १४ जन झुगारिती निंदेचे पाषाण। पुढें केलें क्षमाओडवण। मनांत नुपजे द्वेष पूर्ण। त्यासी शरण आधीं जावें। १५ पुत्राहूनि विशेष गाढें। शिष्यावरी प्रेम चढे। जो शिष्या न घाली सांकडें। त्यासी शरण

फिर नन्द गोकुल के प्रति चले गये। ७ इसके अनन्तर सुदामा नामक ब्राह्मण (-पुत्र), संकर्षण बलराम और कृष्ण —तीनों जने विद्याध्ययन के लिए गुरुगृह के प्रति चले गये। ८ समझिए कि अवन्ती नगरी में सान्दीपनी नामक एक महान ऋषि थे, जो शान्तियुक्त, इन्द्रियों का दमन किये हुए ज्ञानी (समस्त शास्त्रों में) निपुण थे और जिन्होंने चारों वेद मुखोद्गत अर्थात कण्ठस्थ किये थे। ९ जो सर्वज्ञाता हो, जो (समस्त विद्याओं में) परिपूर्ण हो, जिन्हें अपने ज्ञान पर घमण्ड न हो, जो वेदों की आज्ञा को प्रमाण मानता हो, उसकी शरण में पहले जाएँ। १० जो परस्त्री और परधन के प्रति पूर्णतः पराङ्मुख है, जो दूसरे के दोष-गुणों का कभी भी उच्चारण नहीं करता, पहले उसकी शरण में जाएँ। ११ जो सर्वज्ञ है, दयालु है, (भोगविलास आदि के प्रति) उदासीन है, जो सदाचार वृत्ति वाला और सूर्य-सदृश है, जिसमें समस्त प्राणियों के प्रति विशेष दया है, पहले उसकी शरण में जाएँ। १२ जो (स्वयं भवसागर को) तैरकर पार हुआ हो और दूसरों का उद्धार करता हो, शिष्य (तक) को जो ब्रह्मस्वरूप में देखता (मानता) हो, जिसका चित्त मान और अपमान में समान (एक-सा) रहता हो, पहले उसकी शरण में जाएँ। १३ जिन्हें उसने स्वयं विद्यादान किया हो, यदि वे शिष्य दूसरे (गुरु) की शरण में जाएँ, तो भी जिसका चित्त क्रोध से क्षुब्ध नहीं हो जाता हो, पहले उसकी शरण में जाएँ। १४ जिसपर लोग निन्दा रूपी पत्थर फेंकते हों, फिर भी जो क्षमारूपी ढाल आगे धरता हो, जिसके मन में द्वेष पूर्णतः (बिलकुल) नहीं उत्पन्न होता, पहले उसकी शरण में जाएँ। १५ जिसे पुत्र की अपेक्षा शिष्य से अधिक गहरा प्रेम हो, जो शिष्य के लिए कभी (धर्म-) संकट उत्पन्न नहीं

आधीं जावें । १६ वर्ते आपुल्या वर्णाश्रममेळीं । न चाले कदा वांकुडे पउलीं । सदा आत्मरूपीं वृत्ति रंगली । त्यासी शरण आधीं जावें । १७ पिंडब्रह्मांड नाशिवंत । आत्मरूप एक शाश्वत । हें जाणोनि सदा विरक्त । त्यासी शरण आधीं जावें । १८ शरीरप्रारब्धें भाग्य आलें । अथवा एकदांचि सर्व बुडालें । परी हर्षामर्षपंकें मन न मळे । त्यासी शरण आधीं जावें । १९ पिपीलिका आणि कमलासन । इंद्र आणि दारिद्री दीन । राजा रंक अवघे समान । त्यासी शरण आधीं जावें । २० वैकुंठापासोनि नागलोकपर्यंत । भूताकृति ज्या ज्या दिसत । त्या त्या हरिरूप भासत । त्यासी शरण आधीं जावें । २१ जैसा नाना घागरी आणि एक रांजण । त्यांत भासे एक चंड-किरण । तैसें ज्यासी न दिसत स्त्रीपुरुषभान । त्यास शरण आधीं जावें । २२ जो बोले जनीं हिंडे । परी ज्याची समाधि न मोडे । वादप्रतिवाद नावडे । त्यासी शरण आधीं जावें । २३ पृथ्वीचे राजे भाग्यवंत । नित्य ज्याच्या दर्शना येत । परी मी थोर हा नुपजे हेत । त्यासी शरण आधीं जावें । २४ भाग्यवंताचें करावें स्तवन । दीनदुर्बळांचें हेळण । हें ज्यापाशीं नाहीं लक्षण ।

करता, पहले उसकी शरण में जाएँ। १६ जो अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार व्यवहार करता है, जो कभी टेढ़े पाँव नहीं चलता, अर्थात जो बुरे मार्ग पर पाँव रखकर नहीं चलता, जिसकी मनोवृत्ति सदा आत्मस्वरूप में रँग गयी हो, पहले उसकी शरण में जाएँ। १७ पिण्ड ब्रह्माण्ड नाशवान है और एक आत्म-रूप (मात्र) शाश्वत है –यह जानकर जो नित्य (सांसारिक वस्तुओं से) विरक्त है, पहले उसकी शरण में जाएँ। १८ जिसे शरीर धारण करने पर दैवयोग से वैभव प्राप्त हो अथवा सब एक साथ डूब जाए (नष्ट हो जाए), फिर भी जिसका मन आनन्द अथवा क्रोध रूपी कीचड़ से मलिन नहीं होता हो, पहले उसकी शरण में जाएँ। १९ जिसके लिए चींटी और ब्रह्मा, इन्द्र और दरिद्र-दीन व्यक्ति, राजा और कंगाल समस्त समान होते हैं, पहले उसकी शरण में जाएँ। २० वैकुण्ठ से लेकर नाग-लोक तक में जो-जो प्राणी-रूप दिखायी देते हैं, वे (समस्त) जिसे हरि-रूप आभासित होते हैं, पहले उसकी शरण में जाएँ। २१ जिस प्रकार अनेक गगरियाँ हों और एक घड़ा हो, फिर सूर्य उनमें एक (मात्र) आभासित होता है (अर्थात गगरी में उसका प्रतिबिम्ब एक प्रकार का और घड़े में दूसरे प्रकार का नहीं होता), उसी प्रकार जिसे स्त्री और पुरुष (अलग-अलग) रूप वाले दिखायी नहीं देते, पहले उसकी शरण में जाएँ। २२ जो बोलता है, लोगों में घूमता रहता है, फिर भी जिसकी समाधि (की-सी स्थिति) भग्न नहीं हो जाती, जिसे वाद-विवाद अच्छा नहीं लगता, पहले उसकी शरण में जाएँ। २३ पृथ्वी के ऐश्वर्यशाली राजा जिसके दर्शन के लिए नित्य आते हैं, फिर भी जिस (के मन) में यह भाव उत्पन्न नहीं होता कि मैं बड़ा हूँ, पहले उसकी शरण में जाएँ। २४ ऐश्वर्यवान का स्तवन

त्यासी शरण आधीं जावें । २५ प्रपंच जाहला किंवा नाहीं । हें स्मरण नसे कांहीं । जो बुडाला ब्रह्मानंदडोहीं । त्यासी शरण आधीं जावें । २६ इतुक्या लक्षणीं अलंकृत । त्यावरी गुरुभजनीं नित्य हेत । प्रेमभरें सदा डुल्लत । त्यासी शरण आधीं जावें । २७ ज्यासी हरिकीर्तनीं आवडी । संतदर्शना घाली उडी । तीर्थक्षेत्रमहिमा न खंडी । त्यासी शरण आधीं जावें । २८ इतुक्या चिन्हीं मंडित पूर्ण । महाराज ऋषि सांदीपन । त्याच्या आश्रमापुढें शेषनारायण । लोटांगण घालिती । २९ सांदीपन करितां अनुष्ठान । तों कळलें आले रामकृष्ण । तात्काळ बाहेर आला धांवोन । सद्गद मन जाहलें । ३० जन्मादारभ्य अनुष्ठानाचें फळ । घरा आला वैकुंठपाळ । ऋषीच्या नेत्रीं वाहे प्रेमजळ । धांवोनि घननीळ पाय धरी । ३१ सांदीपनें कृष्णासी उचलून । हृदयीं धरिला मनमोहन । म्हणे बा रे तुझें दुर्लभ दर्शन । ब्रह्मादि देवां समस्तां । ३२ ऋषीनें बळिभद्रासी दिधलें क्षेम । सुदामा आलिंगिला सप्रेम । आसनीं बैसवोनि विप्रोत्तम । वार्ता क्षेम पुसतसे । ३३ हरीनें सांगितलें वर्तमान ।

करें और दीन-दुर्बलों की निन्दा करें —यह लक्षण जिसमें नहीं होता, पहले उसकी शरण में जाएँ । २५ घर-गिरस्ती हुई है अथवा नहीं, यह भी जिसे कुछ स्मरण नहीं रहता, जो ब्रह्मानन्दस्वरूप दह में डूबा (मग्न) हुआ है, पहले उसकी शरण में जाएँ । २६ जो इतने लक्षणों से विभूषित है, इसके अतिरिक्त जिसे गुरु-भक्ति में नित्य प्रेम होता है, जो (गुरु-सम्बन्धी) प्रेम से भरा-पूरा होकर सदा डोलता रहता है, पहले उसकी शरण में जाएँ । २७ जिसे हरि-कीर्तन में रुचि हो, जो सन्त के दर्शन के लिए कूदता-लपकता है, तीर्थक्षेत्र की महिमा का खण्डन नहीं करता, पहले उसकी शरण में जाएँ । २८ इन लक्षणों से ऋषि सान्दीपनी महाराज पूर्णतः विभूषित थे । उनके आश्रम के सामने शेष नारायण ने, अर्थात बलराम और कृष्ण ने साष्टांग नमस्कार किया । २९ अनुष्ठान करते हुए सान्दीपनी को यह विदित हुआ कि बलराम और कृष्ण आ गये हैं, तो तत्काल वे दौड़ते हुए बाहर आ गये । उनका मन बहुत गद्गद हो उठा । ३० (उन्होंने माना कि) जन्म से आरम्भ किये हुए अनुष्ठान के फलस्वरूप वैकुण्ठ-पालक भगवान (मेरे) घर आ गये हैं । ऋषि के नेत्रों से, उत्कट प्रेम के कारण उत्पन्न अश्रुजल बहने लगा । दौड़ते हुए आकर घननील कृष्ण ने (उनके) पाँव पकड़े । ३१ तो सान्दीपनी ने मनमोहन कृष्ण को उठाते हुए अपने हृदय से लगा लिया (और) वे बोले, ' अहो, ब्रह्मा आदि समस्त देवों (तक) के लिए तुम्हारे दर्शन दुर्लभ हैं ' । ३२ (तदनन्तर) ऋषि सान्दीपनी ने बलराम का आलिंगन किया; प्रेमसहित सुदामा का आलिंगन किया । उन्होंने उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को आसन पर बैठाकर कुशल-समाचार पूछा । ३३ कृष्ण ने समाचार कहा । वे बोले, 'हम तन-मन-धन से आप अनन्य (सर्वोपरि) स्वामी की शरण में आये हैं' । ऐसा

म्हण स्वामींसी आम्ही आलों शरण। तनमनधनेंसीं अनन्य। म्हणोनि चरण धरियेले। ३४ सांदीपन म्हणे कृष्णनाथा। तूं जगद्गुरु जगत्पिता। तुझें नाम वदनीं गातां। सकळ दुरित संहरे। ३५ तुवां हंसरूपेंकरून। उपदेशिला चतुरानन। सनकादिकांसही ज्ञान। उपदेशूनि उद्धरिलें। ३६ तूं मायानियंता हृषीकेशी। पूर्णब्रह्मानंद ज्ञानराशी। तो तूं मज शरण आलासी। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ३७ तूं सकळ देवांचा निर्मिता। अज अजित कर्ता हर्ता। त्या तुज देवकी माता वसुदेव पिता। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ३८ तूं निर्गुण निःसंग निर्विकारी। सदा तृप्त बाह्यांतरीं। तो तूं गोकुळीं करिसी चोरी। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ३९ तूं ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी। महातापसी वंदिती शिरीं। तो तूं रासमंडळीं भोगिशी नारी। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ४० तूं काळासी शासनकर्ता। मायेनें बागुल आला रे म्हणतां। भयभीत होसी अनंता। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ४१ तुज जे अनन्यशरण। त्यांचें संकट वारिसी तूं भगवान। तो तूं यज्ञपत्न्यांसीं मागसी अन्न। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ४२ तुवां त्रिविक्रमरूप धरिलें। पूर्वीं बलिदर्पहरण केलें। त्या

कहकर उन्होंने उनके चरण पकड़ लिये। ३४ सान्दीपनी बोले, "हे कृष्णनाथ, तुम जगद्गुरु हो, जगत्पिता हो। तुम्हारे नाम का मुख से गान (जाप) करने से समस्त पाप का संहार हो जाता है। ३५ तुमने हंस-रूप से ब्रह्मा को उपदेश दिया; सनक आदि को भी ज्ञान का उपदेश देते हुए उनका उद्धार किया। ३६ हे हृषीकेशी, तुम माया का नियमन करनेवाले हो, आनन्दस्वरूप पूर्ण ब्रह्म हो, ज्ञानराशि हो। ऐसे तुम मेरी शरण में आये हो —मुझे इसी का आश्चर्य हो रहा है। ३७ तुम समस्त देवों के निर्माता हो; तुम अजन्मा, अजित, कर्ता, हर्ता हो। देवकी तुम्हारी माता और वसुदेव तुम्हारे पिता हैं, इसी का मुझे आश्चर्य लग रहा है। ३८ तुम निर्गुण, संगहीन, निर्विकार हो; बाहर और अन्दर से सदा तृप्त हो। ऐसे तुम गोकुल में चोरी किया करते थे, इसी का मुझे आश्चर्य लग रहा है। ३९ तुम ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हो। महातापसी तुम्हारा सिर से वन्दन करते हैं; ऐसे तुम रासमण्डल (रचाकर उस) में नारियों का उपभोग करते थे। इसी का मुझे आश्चर्य लग रहा है। ४० तुम काल के लिए भी दण्ड देनेवाले हो। (फिर भी) हे अनन्त, माता द्वारा 'हौआ आ गया' कहने पर भयभीत हो जाते थे, इसी का मुझे आश्चर्य लग रहा है। ४१ हे भगवान, अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में जो आते हैं, तुम उनके संकटों का निवारण करते हो; ऐसे तुम ऋषियों की स्त्रियों से अन्न माँगते थे —इसी का मुझे आश्चर्य लग रहा है। ४२ तुमने त्रिविक्रम (वामन)[1] का रूप धारण किया और पूर्वकाल में दैत्यराज बलि

[1] त्रिविक्रम— देखिए टिप्पणी ५, पृ. ६२, अध्याय २।

तुज मायेनें पाळण्यांत निजविलें। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ४३ योगयाग जे साधित। त्यांसी दर्शन देसी तूं अनंत। तो तूं गोवळ्यांसवें खासी भात। हेंचि आश्चर्य वाटतें। ४४ मज द्यावयासी थोरपण। आश्रमा आले शेष नारायण। लोकसंग्रहाकारण। गुरुभजन वाढवावया। ४५ ऐका श्रोते हो सावधान। गुरुभक्तांचें कैसें लक्षण। परमात्मा आदिनारायण। तोही शरण गुरूसी रिघे। ४६ जे तनमनधनेंसीं शरण। गुरूवचन ज्यांसी प्रमाण। न पाहती गुरूचे दोषगुण। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ४७ गुरु सांगती तेंचि आचरती। गुरुसमान आपण न म्हणती। दिवसेंदिवस चढे भक्ती। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ४८ गुरु हा केवळ ईश्वर। मजलागीं धरिला अवतार। ऐसा मनीं निर्धार। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ४९ मी एक जाणता सर्वज्ञ। गुरुसन्निध न मिरवी योग्यपण। घडोघडी आठवी गुरुचरण। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५० सकळ देवांहूनि आगळें। गुरुस्वरूप जेणें निर्धारिलें। मन गुरुपदींच लंपट जाहलें। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५१ सारासारविचार।

के घमण्ड का हरण किया, ऐसे तुमको माता ने पालने में सुला दिया —इसी का मुझे आश्चर्य लग रहा है। ४३ जो योगाचार और यज्ञ-सम्बन्धी साधना करते हैं, हे अनन्त, तुम उनको दर्शन देते हो। वही तुम ग्वाल-बालों के साथ भात खाते थे। मुझे इसी का आश्चर्य लग रहा है। ४४ (मैं मानता हूँ—) शेषावतार बलराम और नारायणावतार श्रीकृष्ण मुझे बड़प्पन दिलाने के हेतु, तथा लोक-संग्रह करने के हेतु, गुरुभक्ति की वृद्धि करने के हेतु मेरे आश्रम आ गये हैं"। ४५ अहो श्रोताओ, सावधान होकर सुनिए कि गुरु-भक्तों के कैसे (कौन-कौन) लक्षण हैं। (जो स्वयं) परमात्मा आदिनारायण हैं, वे भी गुरु की शरण में आ गये थे। ४६ जो तन-मन-धन से गुरु की शरण में आ जाते हैं, जिनके लिए गुरु का वचन (ही) प्रमाण है, जो गुरु के दोष वा गुण नहीं देखते, वे ही सच्चे गुरुभक्त हैं। यही शिष्य का लक्षण है। ४७ जो गुरु बताते हैं, उसी का वे आचरण करते हैं; वे अपने को गुरु के समान नहीं कहते (मानते)। दिन-ब-दिन उनकी (गुरु-) भक्ति बढ़ती जाती है —यही शिष्य का लक्षण है। ४८ उस (शिष्य) के मन में ऐसा दृढ़ निश्चय (विचार) होता है कि गुरु केवल ईश्वर हैं; मेरे लिए उन्होंने अवतार धारण किया है। यही शिष्य का लक्षण है। ४९ (वह यह नहीं समझता कि—) मैं एक (मात्र) सर्वज्ञ, ज्ञाता हूँ। वह गुरु के समीप अपनी योग्यता, बड़ाई नहीं बघारता। वह घड़ी-घड़ी गुरु के चरणों का स्मरण करता है। यही शिष्य का लक्षण है। ५० जिसने समस्त देवों से भी गुरु-स्वरूप को अनोखा (श्रेष्ठ) निर्धारित किया है और जिसका मन गुरुपदों ही में लीन हुआ है, वही सच्चा शिष्य है —यही शिष्य का लक्षण है। ५१ गुरु के मुख से सार और असार सम्बन्धी विचार वह

गुरुमुखें ऐकिती निरंतर। आवडे अद्वैतशास्त्र कीं हरिचरित्र। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५२ गुरुवचननाकारणें सत्य। प्राण वेंचावया उदित। तेथें धनाची कायसी मात। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५३ जें जें दिसे चराचर। तें तें गुरुरूप पाहे निर्धार। गुरुवचनीं नुपजे तिरस्कार। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५४ गुरु सांगे जे हितगोष्टी। ते सदा धरी हृदयसंपुटीं। प्रवृत्ति-शास्त्रावरी नाहीं दृष्टी। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५५ गुरुनामस्मरणाचा ध्वज। अखंड उभारिला तेजःपुंज। गुरुसेवा करितां नुपजे लाज। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५६ अनुष्ठान गुरुमूर्तीचें ध्यान। पूजेचें मूळ ते गुरुचरण। गुरुनाममंत्र तें जपकारण। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५७ गुरुतीर्थ करी प्राशन। सदा गुरुगौरवगायन। हरि गुरुरूप देखे समान। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५८ माझें शरीर असो बहुकाळ। मज गुरुसेवा घडो निर्मळ। गुरुभेटीलागीं उतावेळ। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ५९ गुरुनिंदा ऐकतां जाण। बोटें घालूनि बुजी कान। पुन्हां न पाहे त्याचें वदन। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६०

अनवरत सुनता रहता है। उसे अद्वैत (वेदान्त) शास्त्र अथवा श्रीहरि-चरित्र (का श्रवण करना) भाता है। यही शिष्य का लक्षण है। ५२ वह गुरु के वचन (-पालन) के लिए सचमुच प्राण त्यज देने के लिए तैयार होता है। वहाँ (इस स्थिति में) धन की कैसी बात ? यही शिष्य का लक्षण है। ५३ उसे जो-जो सचेतन-अचेतन दिखायी देता है, वह उस-उस को निश्चय ही गुरु-रूप देखता है (मानता है)। गुरु के वचन के प्रति उस (के मन) में (कभी भी) तिरस्कार नहीं उत्पन्न होता। यही शिष्य का लक्षण है। ५४ गुरु उससे जो हित की बात बताता है, उसे वह नित्य हृदय-सम्पुट में धारण किये रहता है। प्रवृत्ति-सम्बन्धी शास्त्रों पर (घर-गिरस्ती, विषयोपभोग-सम्बन्धी शास्त्रों पर) उसकी (कभी) दृष्टि नहीं रहती। यही शिष्य का लक्षण है। ५५ गुरु का नामस्मरण रूपी तेजस्वी ध्वज (उसके द्वारा) अखण्डित उभारा हुआ होता है। गुरु की सेवा करते रहते उसे लज्जा नहीं उत्पन्न होती। यही शिष्य का लक्षण है। ५६ (उसके लिए) गुरु की मूर्ति का ध्यान (ही) अनुष्ठान होता है। पूजा का मूलाधार वे गुरुचरण (ही) होते हैं। गुरु के नाम का मंत्र (ही उसके लिए) जप का कारण (वस्तु) होता है। यही शिष्य का लक्षण है। ५७ वह गुरु के (चरण-) तीर्थ का प्राशन करता है। वह सदा गुरु के गौरव का गान करता है। वह श्रीहरि और गुरु के रूप को समान देखता (मानता) है। यही शिष्य का लक्षण है। ५८ (वह चाहता है कि) मेरा शरीर दीर्घकाल तक (बना) रहे; मुझसे गुरु की निर्मल सेवा घटित हो जाए। वह गुरु से मिलने के लिए अधीर होता रहता है। यही शिष्य का लक्षण है। ५९ समझिए कि गुरु की निन्दा सुनने में आते ही वह कानों में उँगलियाँ डालकर उन्हें बन्द कर लेता है।

जारणमारणअनुष्ठान। वादविवाद पैशून्य। कुटिलता निंदा नावडे मनांतून। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६१ अद्भुत प्रज्ञा जवळी असे। चातुर्यकला हृदयीं वसे। अंगीं सद्भाव विशेष दिसे। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६२ सर्वस्वेंसीं अतिउदार। गुरुकार्यासी सदा सादर। लौकिकावरी नाहीं भार। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६३ जे देशीं वसे गुरुनाथ। तिकडून जरी आला मारुत। त्यासी क्षेम द्यावया धांवत। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६४ सदा जपे सद्गुरुनाम। तेणें वितळे क्रोध काम। गेले लोभ मत्सर मोह भ्रम। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६५ नाना मतें कुमार्ग अनाचारी। तेथें न बैसे क्षणभरी। वेदाज्ञा वंदी जो शिरीं। हेंचि लक्षण शिष्याचें। ६६ गुरुशिष्याचें लक्षण। सांगितले बहु निवडून। हीं भूषणें लेइलीं संपूर्ण। त्याचें दर्शन दुर्लभ। ६७ हीं चिन्हें अंगीं नसती। नसतेंचि गुरुत्व भोगिती। सदा अंतरीं पापमती। त्यांची संगति न धरावी। ६८ अंगीं नसे किंचित ज्ञान। परसंगें दाविती डोलोन। सरड तुकावी जैसी मान। त्यांची संगति न धरावी। ६९ संतमूर्ति

वह उस (निन्दक) का फिर से मुख नहीं देखता। यही शिष्य का लक्षण है। ६० जारण-मारण कर्मों का अनुष्ठान, वाद-प्रतिवाद, चुगलखोरी, कुटिलता, निन्दा उसे मन से नहीं भाती। यही शिष्य का लक्षण है। ६१ उसके पास अद्भुत बुद्धि होती है। उसके हृदय में चातुर्यकला निवास करती है। उसमें सद्भाव विशेष रूप से दिखायी देता है। यही शिष्य का लक्षण है। ६२ अपने सरवस के विषय में वह अति उदार होता है। गुरु के लिए काम करने के सम्बन्ध में वह सदा तत्पर होता है। वह लौकिकता (कीर्ति) पर बल नहीं देता। यही शिष्य का लक्षण है। ६३ जिस देश में गुरु स्वामी निवास करते हैं, यदि उधर से हवा भी आ जाए, तो वह उसका आलिंगन करने के लिए दौड़ता है। यही शिष्य का लक्षण है। ६४ वह सदा सद्गुरु के नाम को जपता रहता है। उससे क्रोध, काम (जैसे विकार) विलय को प्राप्त हो जाते हैं। उससे लोभ, मत्सर, मोह और भ्रम (नष्ट हो) गये हुए होते हैं। यही शिष्य का लक्षण है। ६५ जहाँ नाना प्रकार के मत (माननेवाले लोग) होते हैं, कुमार्ग होते हैं, दुराचारी लोग होते हैं, वहाँ वह क्षण भर तक नहीं बैठता। वह वेदाज्ञा का सिर से वन्दन करता है। यही शिष्य का लक्षण है। ६६ (मैंने यहाँ तक) गुरु और शिष्य के लक्षण चुन-चुनकर बहुत कहे हैं। जो इन सम्पूर्ण लक्षण रूपी आभूषणों को धारण करता हो, उसके दर्शन दुर्लभ हैं। ६७ जिनमें ये लक्षण नहीं होते, और व्यर्थ ही जो गुरुत्व का भोग करते हैं (गुरु बने हुए हैं), जिनके अन्तःकरण में पाप बुद्धि होती है, उनकी संगति न करें। ६८ जिनके पास ज्ञान किंचित् तक नहीं होता, फिर भी जो दूसरे के साथ उस प्रकार डोलते हुए ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं, जैसे गिरगिट गरदन हिलाता है, उनकी संगति न करें। ६९ जो सन्त-प्रतिमा

सदा निंदी। नसतेंचि शास्त्र प्रतिपादी। कुमार्ग दावूनि भोळे भोंदी। त्यांची संगति न धरावी। ७० हरिहरचरित्रें पावन सर्वथा। म्हणे हें व्यर्थ काय गातां। मीच सर्वांत म्हणे ज्ञाणता। त्याची संगति न धरावी। ७१ नावडे हरिकीर्तन कधीं। तीर्थक्षेत्रमहिमा उच्छेदी। मज पूजा म्हणे सर्वांआधीं। त्याची संगति न धरावी। ७२ माझे शिष्य व्हा म्हणवोनि। भलत्यासी आणी ओढोनी। नसतेचि मंत्र सांगे कर्णीं। त्याची संगति न धरावी। ७३ मद्यपी जैसा बडबडत। वाचाळ बळें भाविका गोंवीत। आपुले अंगीं नाहीं प्रचीत। त्याची संगति न धरावी। ७४ शिष्यासी सांगे दटावून। माझें करावें बरवें पूजन। नाहींतरी तुम्हां शापीन। त्याची संगति न धरावी। ७५ म्हणे आम्ही ज्ञानी मुक्त। ज्ञाहलों सकळ कर्मातीत। वेदविरुद्ध तेंचि स्थापील। त्याची संगति न धरावी। ७६ नाहीं इंद्रियांसी कदा शांती। जवळ काम क्रोध दुमदुमती। तरलों म्हणोनि लोकां सांगती। त्यांची संगति न धरावी। ७७ प्रत्यया न येतां श्रीरंग। लटकेंचि दावी वरतें

की सदा निन्दा करता है, जो झूठमूठ के शास्त्र का प्रतिपादन करता है, जो कुमार्ग को दिखाकर भोले लोगों को मधुर शब्द बोलकर छल से ठगता है, उसकी संगति न करें। ७० श्रीहरि और शिवजी के चरित पूर्णतः पावन होते हैं; (फिर भी) वह कहता है कि उनका व्यर्थ ही क्यों गान करते हो ? वह कहता है कि मैं ही सबसे अधिक ज्ञाता हूँ। उसकी संगति न करें। ७१ उसे श्रीहरि का कीर्तन कभी (भी) अच्छा नहीं लगता; वह तीर्थक्षेत्र की महिमा का उच्छेदन करता है और कहता है कि सबसे पहले मेरा पूजन करो। उसकी संगति न करें। ७२ यह कहवाकर कि मेरे शिष्य हो जाओ, ऐरे-गैरे को वह खींचकर लाता है; उसके कान में झूठमूठ के मंत्र कहता है। उसकी संगति न करें। ७३ वह शराबी की भाँति बड़बड़ाता है, वह वाचाल होता है; बलात् श्रद्धालु जन को उलझाता है, परन्तु उसमें स्वयं की अनुभूति नहीं होती। उसकी संगति न करें। ७४ वह शिष्यों को डाँट-डपटकर कहता है कि मेरा भलीभाँति पूजन करो; नहीं तो मैं तुम्हें अभिशाप दूँगा। उसकी संगति न करें। ७५ वह कहता है कि हम ज्ञानी हैं, मुक्त हैं; हम समस्त कर्मों से परे हो गये हैं; (फिर भी) वह जो वेदों के विरोध में होता है, उसकी स्थापना (समर्थन) करता है। उसकी संगति न करें। ७६ उनकी इन्द्रियों के लिए कभी भी शान्ति नहीं होती; उनके पास काम, क्रोध (जैसे विकार) गरजते-गूँजते रहते हैं। लोगों से कहते हैं, हम तैरकर पार गये हैं (हमारा उद्धार हो चुका है) —उनकी संगति न करें। ७७ श्रीरंग भगवान का अनुभव, अर्थात साक्षात्कार न होने पर भी वह झूठमूठ का ऊपर से स्वाँग (रचकर) प्रदर्शित करता है। उसका सांसारिक (वासना

सोंग। त्याचा न तुटे भवरोग। त्याची संगति न धरावी। ७८ सर्पाच्या माथां मणि दिसत। परी घेऊं जातां बहुत अनर्थ। तैसा तो जाहला जरी विद्यावंत। त्याची संगति न धरावी। ७९ इतर संतांची निंदा करी। देखतां दुःख उपजे अंतरीं। चढला अहंकृतीच्या गडावरी। त्याची संगति न धरावी। ८० ज्ञानहीन गुरु त्यजिजे। ऐसें गुरुगीतेचें वचन गाजे। दया-हीन देश देखिजे। तोही त्यजिजे सर्वथा। ८१ स्नेहाविण बंधुवर्ग। दुर्मुखी स्त्रियेचा करिजे त्याग। तैसे जे दुष्ट दाविती कुमार्ग। त्यांचाही त्याग करावा। ८२ शिष्य आचरती अधर्म। करिती व्यभिचारिक कर्म। ज्यांसीं नावरती क्रोध काम। तेही शिष्य त्यजावे। ८३ गुरु सांगे हितोपदेश। तो ज्यांसी वाटे जैसें विष। गुरुहून म्हणती आम्ही विशेष। तेही शिष्य त्यजावे। ८४ गुरुदेखतां दाविती मर्यादा। मागें सदा जल्पती निंदा। स्वामीसीं प्रवर्तती जे वादा। तेही शिष्य त्यजावे। ८५ असो जैसा पुत्र भ्रष्टला। तो सर्वीं जैसा बहिष्कारिला। तैसा तो शिष्य आपुला। न म्हणावा कदाही। ८६

रूपी) रोग दूर नहीं हुआ है। उसकी संगति न करें। ७८ सर्प के मस्तक पर मणि होती है, परन्तु उसे पाने का यत्न करने पर बहुत बड़ा संकट आ जाता है; उसी प्रकार यद्यपि वह विद्यावान हो, तो भी (उसकी संगति संकट का कारण हो जाती है, अतः) उसकी संगति न करें। ७९ वह अन्य सन्तों की निन्दा करता है; उन्हें देखते ही उसके अन्तःकरण में दुःख उत्पन्न हो जाता है। वह मानो अहंकार के दुर्ग पर चढ़ा (हुआ होता) है। उसकी संगति न करें। ८० गुरुगीता की ऐसी उक्ति गूँजती रहती है कि ज्ञानहीन गुरु का त्याग करें; यदि दया-हीन देश (स्थान) दिखायी दे, तो उसका भी सब प्रकार से त्याग करें। ८१ स्नेहहीन बन्धुवर्ग और दुर्मुख स्त्री का त्याग करें। उसी प्रकार जो दुष्ट लोग बुरा मार्ग दिखाते हैं, उनका भी त्याग करें। ८२ जो शिष्य अधर्म का आचरण करते हैं, व्यभिचार-कर्म करते हैं, जिनके द्वारा क्रोध, काम को रोका नहीं जा पाता, उन शिष्यों का भी त्याग करें। ८३ गुरु यद्यपि हितोपदेश दे, वह जिनको विष-जैसा प्रतीत होता है, और जो कहते हैं कि हम गुरु से भी अधिक बड़े हैं, उन शिष्यों का भी त्याग करें। ८४ गुरु को देखने पर तो मर्यादा-भाव दिखाते हैं, (परन्तु) पीछे नित्य उनकी निन्दा करते हुए बकते रहते हैं, जो अपने स्वामी से विवाद करने के लिए उद्यत हो जाते हैं, उन शिष्यों का भी त्याग करें। ८५ अस्तु। जिस प्रकार पुत्र भ्रष्ट हो जाए, तो उसे सब बहिष्कृत कर देते हैं, उसी प्रकार (उपर्युक्त लक्षणों से युक्त उस शिष्य (का बहिष्कार करते हुए उस) को अपना शिष्य कभी भी न कहें। ८६

म्हणोनि सद्गुरु एक सांदीपन। शिष्य ते शेषनारायण। जरी परीस लोह मिळती पूर्ण। तरीच सुवर्ण होय तेथें। ८७ असो ज्याचे श्वासीं जन्मले वेद। त्यासी गुरूनें काय करावा बोध। परी लोकसंग्रहार्थ गोविंद। दावी विशद गुरुसेवा। ८८ चौसष्ट दिवसपर्यंत। गुरुगृहीं राहिला रमाकांत। चौसष्ट कला समस्त। अभ्यासिल्या श्रीरंगें। ८९ चौदा विद्या चौसष्ट कळा। सकळ अभ्यासीत मेघसांवळा। जैसा करतळींचा आंवळा। तैशा विद्या आकळीत। ९० परी सर्वांत आत्मज्ञान। त्याविण सकळ कळा शून्य। ते आत्मकळा सांदीपन। श्रीकृष्णासी उपदेशी। ९१ जो साधनचतुष्टयसंयुक्त। अनुतापी जो शिष्य विरक्त। तेथें ज्ञान सद्गुरुनाथ। सर्व ठेवी आपुलें। ९२ भंगल्या घटांत जीवन। कायसें व्यर्थचि घालून। जैसी सुंदरराजकन्या नेऊन। षंढाप्रति दिधली। ९३ म्हणोनि पूर्ण पात्र जगज्जीवन। तो त्रिभुवनाचें

इसलिए वह एक अर्थात सर्वोपरि सद्गुरु थे सान्दीपनी और शिष्य थे वे शेष-नारायण के अवतार बलराम तथा कृष्ण। यदि पारस और लोहा पूर्णतः मिल जाते हैं, तो ही वहाँ (उस लोहे का) सुवर्ण हो जाता है। ८७ अस्तु। जिसके श्वास से वेद उत्पन्न हो गये हैं, उसे गुरु क्या उपदेश दे ? फिर भी लोकसंग्रह के हेतु कृष्ण ने स्पष्ट रूप से गुरु-सेवा करके प्रदर्शित की। ८८ रमाकान्त विष्णुस्वरूप श्रीरंग कृष्ण गुरुगृह में चौंसठ दिन तक रहे। उन्होंने (इस अवधि में) समस्त चौंसठ कलाओं का अध्ययन किया। ८९ घनश्याम कृष्ण ने समस्त चौदह विद्याओं तथा चौंसठ कलाओं का अध्ययन किया। जिस प्रकार करतल पर स्थित आँवला (सुस्पष्ट) होता है, उसी प्रकार उन्होंने उन विद्याओं का आकलन किया। ९० फिर भी सब में आत्मज्ञान (श्रेष्ठ) है। इसके बिना समस्त कलाएँ (कलाओं का ज्ञान) शून्य (के बराबर) हैं। (अतः) सान्दीपनी ने उस आत्मकला अर्थात आत्मज्ञान का उपदेश श्रीकृष्ण को दिया। ९१ जो (शिष्य) चार (प्रकार की) साधनाओं[1] से युक्त है, जो शिष्य अनुताप को प्राप्त तथा (समस्त भोग-विलासों के प्रति) विरक्त है, वहाँ अर्थात उसके लिए सद्गुरु नाथ अपना समस्त ज्ञान रख देते हैं (उसे प्रदान करते हैं)। ९२ भग्न घट में पानी व्यर्थ ही डालने से क्या होता है ? (उसी प्रकार अनधिकारी शिष्य को गुरु द्वारा ज्ञान प्रदान करना व्यर्थ होता है।) जिस प्रकार सुन्दर राजकन्या लेकर नपुंसक को प्रदान की जाए, (तो यह जैसा व्यर्थ है) उसी प्रकार गुरु द्वारा अयोग्य शिष्य को ज्ञान देना व्यर्थ होगा। ९३ (यह जानकर कि) जगज्जीवन पूर्णतः योग्य हैं, वे तो त्रिभुवन के लिए आपूर्ति स्वरूप हैं, इसलिए सान्दीपनी

१ चार साधनाएँ : ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए चार प्रकार की प्रमुख साधनाएँ बतायी जाती हैं : वस्तु-विवेक, वैराग्य, शम आदि षड् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व।

सांठवण। त्यासी उपदेसी सांदीपन। निजज्ञान ऐका तें। ९४ तिघे समोर बैसवून। सांदीपन वर्षे कृपाघन। म्हणे सर्वद्रष्टा तूं श्रीकृष्ण। दुजेपण नाहीं तुज। ९५ तूं अज अव्यय निर्मळ। तुझिया स्वरूपा नाहीं चळ। जगडंबर पसारा सकळ। अविद्यामय लटकाचि। ९६ गुरूसी म्हणे श्रीकृष्ण। स्वरूपीं स्फुरण व्हावया काय कारण। वस्तु निर्विकार निर्गुण। तेथें त्रिगुण कां जाहले। ९७ ऐकोनि श्रीकृष्णाचे बोल। ऋषीस येती सुखाचे डोल। ऐका ते निरूपण रसाळ। जे अधिकारी ज्ञानाचे। ९८ ऋषि म्हणे हरि ऐक सावधान। तुझें तुजचि सांगतों ज्ञान। जेसें पयोब्धीचें क्षीर घेऊन। त्यासीच नैवेद्य दाविजे। ९९ तुवां पुसिलें स्फुरण कैसें। तरी स्वसुखीं असतां परमपुरुषें। अहं ब्रह्मास्मि ध्वनि विशेषें। उठती झाली स्वरूपीं। १०० जैसी सागरीं उठे लहरी। तैसी ध्वनि उठली चिदंबरीं। कीं पहुडला सुगसेजेवरी। तो जागा होय स्वइच्छें। १०१ मुळीं उठली जे ध्वनी। परमपुरुषापासूनी। प्रकृति म्हणती तिजलागूनी। आदिजननी ज्ञानकळा। २ जैसा दीप आणि

ने उनको आत्मज्ञान का उपदेश दिया। उसे सुनिए। ९४ उन तीनों को सामने बैठाकर सान्दीपनी अपनी कृपा रूपी घन को बरसाने लगे। वे बोले, 'हे श्रीकृष्ण, तुम सर्वद्रष्टा हो। तुममें कोई द्वैतभाव नहीं है। ९५ तुम अजन्मा हो, अव्यय हो, निर्मल हो। तुम्हारा रूप चलत्व को प्राप्त नहीं होता। यह समस्त जगत का आडम्बर— दिखायी देनेवाला विस्तार मिथ्या, अविद्यामय है'। ९६ (इसपर) श्रीकृष्ण गुरु से बोले, '(इस ब्रह्म-) स्वरूप में स्फुरण होने के लिए क्या कारण हुआ? यदि ब्रह्मस्वरूप वस्तु निर्विकार, निर्गुण है, तो वहाँ उसमें (सत्त्व, रज, तम जैसे) तीन गुण क्यों (उत्पन्न) हो गये'। ९७ श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर ऋषि सुख की लहरों को प्राप्त हो गये। आप (श्रोता), जो ज्ञान (प्राप्ति) के अधिकारी हैं, उसके रसमय निरूपण का श्रवण कीजिए। ९८ ऋषि बोले, "हे श्रीहरि, सावधानी से सुनो। मैं तुम्हारा ज्ञान तुम्हीं को बता रहा हूँ (तुम्हारी वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ), जिस प्रकार क्षीरसागर का क्षीर (दूध) लेकर उसी को भोगस्वरूप में चढ़ाया जाता है। ९९ तुमने पूछा कि (ब्रह्म में) यह स्फुरण कैसे हुआ? तो (सुनिए) स्वसुख में लीन रहते हुए परमपुरुष के अपने निजी रूप में विशेष रूप से 'अहं ब्रह्माऽस्मि' ध्वनि उत्पन्न हुई। १०० जिस प्रकार सागर में लहर उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार चैतन्य रूपी आकाश में ध्वनि उद्भूत हुई। अथवा वह ब्रह्म (जब) सुखशय्या पर पौढ़ा हुआ था, तो वह अपनी इच्छा से जाग्रत् हो गया। १०१ जो ध्वनि मूलतः परमपुरुष से उद्भूत हुई, उसको 'प्रकृति' कहते हैं। वही आदिजननी ज्ञानकला (कहाती) है। २ जिस प्रकार दीप और (उसकी) ज्योति, अथवा सुवर्ण और उसकी कान्ति,

ज्योती। कीं शातकुंभ आणि कांती। कीं रत्न आणि कळा निश्चितीं। अभेदस्थिति न मोडे। ३ कीं तरंग आणि नीर। कीं तंतु आणि वस्त्र। कीं धातु आणि पात्र। लोह आणि शस्त्र अभेद कीं। ४ गूळ आणि गोडी अभेद। कीं वाद्य आणि नाद। कीं ओंकार आणि ध्वनि विशद। एकरूपें वर्तती। ५ तैसी प्रकृति पुरुष निर्धारीं। अभेदरूप निर्विकारी। तिचे पोटीं इच्छाशक्ति सुंदरी। जाहली गुणक्षोभिणी ते। ६ इच्छादेवी कर्णकुमारी। पुरुषसत्तें जाहली गरोदरी। सृष्टि करावी अंतरीं। अहंकृति धरिली तिणें। ७ तीन्ही देव त्रिविध अहंकार। तिजपासोनि जाहले साचार। त्रिशक्तिस्वरूपें चतुर। तेचि जाहली तीं ठायीं। ८ सत्त्वगुणें ज्ञानशक्ति जाहली। रजोगुणें क्रियाशक्ति विरूढली। तमोगुणें द्रव्यशक्ति बोलिली। तीन्ही नटली स्वरूपें ते। ९ द्रव्यशक्ति आधारें तमोगुण। पंच विषय निर्मिले जाण। शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुण। पंचतन्मात्रा याच पैं। ११० क्रियाशक्तीच्या सहवासें-

---

अथवा रत्न और उसकी कला में निश्चय ही जो अभेद स्थिति होती है, अर्थात वे एक-दूसरे से कभी अलगाये नहीं जा सकते, वह कभी नहीं खण्डित होती; अथवा जिस प्रकार लहर और पानी, अथवा तन्तु और वस्त्र, अथवा धातु और पात्र, अथवा लौह और अस्त्र में अभेद होता है; जिस प्रकार गुड़ और मधुरता में अभेद है; अथवा जिस प्रकार वाद्य और ध्वनि, अथवा ॐ-कार और स्पष्ट ध्वनि एक रूप में ही रहते हैं, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष निश्चय ही अभेद-रूप होते हैं, (वे एक ही होते हैं) निर्विकार होते हैं। उसके उदर से सुन्दरी इच्छाशक्ति उत्पन्न हो गयी। वह गुणक्षोभिणी है— उससे सत्त्व-रज-तम गुणों का आभास उत्पन्न होता है। १०३-१०६ इच्छाशक्ति कर्ण-कुमारी (भवानी) थी। वह पुरुष के अस्तित्व से (संयोग से) गर्भधारण को प्राप्त हो गयी। उसने मन में अहंवृत्ति धारण की कि वह सृष्टि का निर्माण करें। ७ उससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) जैसे तीन देव और तीन प्रकार के अहंकार[1] सचमुच उत्पन्न हो गये। उसके अपने स्थान में वही चतुर (प्रकृति) तीन शक्तियों[2] के रूप में स्थित हो गयी। ८ वह सत्त्वगुण से ज्ञानशक्ति हो गयी; रजोगुण से क्रियाशक्ति स्वरूप विराजमान हो गयी। तमोगुण से द्रव्यशक्ति कही गयी। इस प्रकार अपने तीनों रूपों में वह शोभायमान हो गयी। ९ समझिए कि द्रव्यशक्ति के आधार से तमोगुण द्वारा (कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नाक —इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के क्रमशः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक पाँच विषयों का निर्माण हुआ। यही पंचतन्मात्राएँ हैं। ११० क्रियाशक्ति की संगति से रजोगुण ने तीन पंचकों को जन्म दिया। प्रथम

---

१ तीन प्रकार के अहंकार : सात्त्विक, राजस और तामस।

२ तीन शक्तियाँ : ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति।

करून। रजोगुण ठ्याला पंचकें तीन। ज्ञानेंद्रियपंचक पहिलें पूर्ण। कर्मेंद्रियपंचक दूसरें। १११ प्राणपंचक तीसरें। आतां सत्त्वें ज्ञानशक्तिआधारें। अंतःकरणपंचक एकसरें। ज्ञानमय ओतिलें। १२ ऐसीं पंच पंचकें विशेषें। तीं मिळालीं परस्परानुप्रवेशें। मग कर्दम करून परमपुरुषें। दोन विभाग पैं केले। १३ उत्तम भाग तो हिरण्यगर्भ केवळ। असार भाग विराट् ढिसाळ। पंचभूतात्मक निखिल। पिंडब्रह्मांड रचियेलें। १४ जैसी पाऱ्याची कोटी फुटली। तेथें कोटयवधि रवाळ जाहली। कीं अग्नि स्फुलिंगकल्लोळीं। बहुत जैसा पसरला। १५ कीं आकाशीं मेघ एक धार सोडी। त्याचे बिंदु होती लक्ष कोडी। अहंध्वनीसरिसे परवडी। जीव उठिले अपार। १६ जीव शिव हे दोन्ही पक्षी। बैसले या प्रपंचवृक्षीं। शिव पूर्णज्ञानी सर्वसाक्षी। जीव लक्षी विषयांतें। १७ तेणें जीवासी जाहला भ्रम। विसरला आपुलें निजधाम। चौऱ्यायशीं लक्ष योनिग्राम। हिंडतां कष्टी होतसे। १८ त्या जीवाची करावया सोडवण। श्रीकृष्ण तूं झालासी सगुण। तुझ्या कृपावलोकनेंकरून। जीव सकळ उद्धरती। १९ तूं सर्वातीत सर्वश्रेष्ठ। तुजहूनि कोणी नाहीं

पूर्णपंचक है ज्ञानेन्द्रिय पंचक, दूसरा है कर्मेन्द्रिय पंचक। १११ तीसरा है प्राण पंचक। अब सत्त्वगुण ने ज्ञानशक्ति के आधार से एक साथ ज्ञानमय अन्तःकरण पंचक ढाल दिया (उत्पन्न किया)। १२ इस प्रकार के विशिष्ट पाँच पंचक हैं। वे एक दूसरे में पैठते हुए मिल गये। अनन्तर परमपुरुष ने उनका मिश्रण करते हुए उसके दो भाग बना दिये। १३ जो उत्तम भाग है, वह तो केवल सूत्रात्मा है; असार भाग यह विराट् (परन्तु) भंगुर चराचर सृष्टि है। उसने समस्त पिण्ड (पदार्थ)-ब्रह्माड पंचमहाभूतात्मक बना दिया है। १४ जिस प्रकार पारे की शीशी टूट जाए, तो वहाँ पर कोटि-कोटि कणों के रूप में वह परिवर्तित हो जाती है; अथवा अग्नि स्फुलिंगों (अग्निकणों, चिनगारियों) के विराट् समुदाय में जिस प्रकार फैल जाता है, १५ अथवा जिस प्रकार आकाश में से मेघ एक (जल-) धारा निःसृत कर देता है और उसके लाखों-करोड़ों बिन्दु हो जाते हैं, उसी प्रकार अहंध्वनि के साथ ही भाँति-भाँति के असंख्य जीव उत्पन्न हो गये। १६ जीव और शिव-स्वरूप दो पक्षी सृष्टि रूपी वृक्ष पर बैठ गये। शिव तो पूर्ण ज्ञानी तथा सर्वसाक्षी होता है। (उधर) जीव (भोगविलास के) विषयों की ओर देखता रहता है। १७ उससे जीव को भ्रम उत्पन्न हो गया और वह (फलस्वरूप) अपने स्वयं के स्थान को भूल गया। (अतः) वह चौरासी लक्ष योनियों रूपी ग्रामों में घूमते-फिरते कष्ट को प्राप्त हो जाता है। १८ हे श्रीकृष्ण, उस जीव का छुटकारा कर देने के हेतु तुम सगुण (रूप धारण करके यहाँ आ गये हो) हो गये हो। तुम्हारे द्वारा कृपा (दृष्टि) से देखने पर समस्त जीव उबर जाते हैं। १९ तुम सर्वातीत हो, सर्वश्रेष्ठ हो।

वरिष्ठ। तुझ्या मायेचा खेळ उत्कृष्ट। हा जगडंबरपसारा। १२० स्थूळ लिंग कारण महाकारण। विराट् हिरण्यगर्भ चालक पूर्ण। महत्तत्त्व मायेहूनि भिन्न। स्वरूप निर्वाण हरि तुझें। १२१ जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुर्या। सृष्टि-स्थितिप्रलयसर्वसाक्षिणी माया। याहूनि स्वरूप तुझें यादवराया। वेगळेंचि जाण पां। २२ विश्व तैजस प्राज्ञ प्रत्यगात्मा। ब्रह्मा विष्णु रुद्र परमात्मा। यांहूनि वेगळा तूं आत्मारामा। यादवकुळटिळका। २३ नेत्रकंठहृदयमूर्ध्नि। सूर्य ज्योतिर्लोकआदिकरूनी। महर्लोक ब्रह्मस्थानीं। यांसी चक्रपाणी वेगळा तूं। २४ अकार उकार मकार। तीन्ही मिळोनि पूर्ण ओंकार। त्याहून स्वरूप तुझें निर्विकार। पूतनाप्राणशोषका। २५ रज सत्त्व तमोगुण। चौथा शुद्ध सत्त्व निरसोन। तूं सच्चिदानंद निर्वाण। कंसांतका श्रीरंगा। २६ वैखरी मध्यमा पश्यंती परा। चहूं वाचातीत क्षराक्षरपरा। तों तूं परात्पर-सोयरा। कालियामर्दना श्रीकृष्णा। २७ जारज अंडज उद्भिज्ज। चौथी खाणी नांव स्वेदज। त्यांहूनि वेगळा तूं तेजःपुंज। गोपीमानसराजहंसा। २८ ऋग्वेद

तुमसे कोई भी वरिष्ठ (अधिक बड़ा) नहीं है। जगत का आडम्बर (दिखावा) -युक्त विस्तार तुम्हारी माया का उत्तम खेल (मात्र) है। १२० स्थूल, लिंग, कारण और महाकारण नामक चार देहों का परिपूर्ण रूप में चालक है विराट् हिरण्यगर्भ (ब्रह्म)। महत्तत्व (ब्रह्म) माया से भिन्न है। हे हरि, वह तुम्हारा ही सर्वोपरि रूप है। १२१ जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या नामक चार अवस्थाओं तथा सृष्टि (निर्मिति), स्थिति और प्रलय (विनाश) जैसी तीन अवस्थाओं की सर्वसाक्षिणी है (तुम्हारी) माया। (परन्तु) हे यादवराज श्रीकृष्ण, समझ लो कि तुम्हारा रूप इससे भिन्न ही है। २२ हे यादवकुल-तिलक, हे आत्माराम, विश्व, तेजस्, प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, परमात्मा —इन सबसे तुम भिन्न ही हो। २३ हे चक्रपाणि, नेत्र, कंठ, हृदय, मस्तक, सूर्यलोक, ज्योतिर्लोक आदि से महर्लोक, ब्रह्मस्थान —इन से तुम भिन्न हो। २४ अ-कार, उ-कार, म-कार —तीनों से मिलकर पूर्ण ॐ-कार होता है। हे पूतना के प्राणों को सोख लेनेवाले श्रीकृष्ण, तुम्हारा स्वरूप उनसे भिन्न निर्विकार है। २५ हे कंस का वध करने वाले श्रीरंग कृष्ण, रजस्, सत्त्व, तमस् —इन तीन गुणों तथा चौथे शुद्ध सत्त्वगुण का निराकरण करके तुम उनसे परे सच्चिदानन्द हो। २६ हे कालियमर्दन श्रीकृष्ण, तुम वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा नामक चारों वाचाओं के परे हो, क्षर-अक्षर के परे हो; वही तुम परात्पर के सगे-सहायक हो। २७ जीवों के चार भेद हैं— जारज, अण्डज, उद्भिज (ये तीन) और चौथी खान से उत्पन्न जीवों का नाम है स्वेदज। हे गोपियों के मन रूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले राजहंस कृष्ण,

यजुर्वेद सामवेद । चौथा अथर्वण प्रसिद्ध । त्यांहूनि वेगळा तूं ब्रह्मानंद । वृंदावन-विलासिया । २९ स्थूळ प्रविविक्त स्वरूपभाव । स्वरूपानंदादि भोग सर्व । त्यांहूनि वेगळा तू स्वयमेव । गोवर्धनगिरिधरा । १३० सलोकता समीपता । सरूपता सगुणसायुज्यता । त्यांहूनि वेगळा तू तत्त्वतां । अघबकनाशका गोपाळा । १३१ विजातिस्वजातिस्वगतभेद । त्यांहूनि वेगळा तूं जगदंकुरकंद । अज अजित तूं शुद्धबुद्ध । राधिकामानसमोहना । ३२ जहल्लक्षण अज-हल्लक्षण । तिसरें जहदजहल्लक्षण । त्यांहूनि स्वरूप तूं निर्वाण । क्षीरसागर-विहारिया । ३३ द्वैत अद्वैत महाद्वैत भू । नीर अनळ नभातीत । तोचि पूर्णब्रह्म शाश्वत । कमलोद्भवजनक तूं । ३४ तूं पंचविषयांवेगळा । गंधविषय उर्वीपासून जाहला । याहूनि तूं निराळा । इंदिरावरा श्रीहरि । ३५ रस-विषय आपापासूनी । रूपविषय तेजस्थानीं । त्याहूनि वेगळा तूं मोक्षदानी । वैकुंठपुरनिवासिया । ३६ स्पर्शविषय समीरीं । शब्दविषय जाहला पुष्करीं । याहूनि वेगळा तूं निर्विकारी । गोपीवसनहारका । ३७ अन्नमय प्राणमय

तुम उनसे भी न्यारे तेज-पुंज हो । २८ हे वृन्दावन में विलास करने-वाले कृष्ण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद —ये तीन और चौथा विख्यात वेद है अथर्व । तुम ब्रह्मानन्द उनसे न्यारे हो । २९ हे गोवर्धनगिरिधर, स्थूल, प्रविविक्त, स्वरूपभाव और स्वरूपानन्द नामक चार आनन्दभाव आदि के समस्त भोगों से तुम स्वयमेव न्यारे हो । १३० हे अघ-बक जैसे असुरों का नाश करनेवाले, हे गोपाल, सलोकता, समीपता, सरूपता और सगुण सायुज्यता नामक चारों मुक्तियों से तुम सचमुच न्यारे हो । १३१ हे राधा के मन को मोहित करनेवाले श्रीकृष्ण, विजाति, स्वजाति जैसे स्वगत भेदों से तुम जगत के अंकुर के बीज-स्वरूप कन्द न्यारे हो । तुम अज हो, अजित हो, शुद्धबुद्धि हो । ३२ लक्षणों के अनुसार प्राणियों के भेद हैं जहल्लक्षण, अजहल्लक्षण और इनके अतिरिक्त तीसरा है जहदजह-ल्लक्षण । हे क्षीरसागरविहारी, इनसे सर्वोपरि स्वरूप वाले तुम हो । ३३ द्वैत, अद्वैत, महाद्वैत अवस्थाओं, भूमि, जल, अनल, अनिल, नभ जैसे पंच महाभूतों से जो परे है, वही तुम ब्रह्मा के पिता, शाश्वत पूर्णब्रह्म हो । ३४ तुम इन्द्रियों के (शब्द-रूप-रस आदि) विषयों से न्यारे हो । हे इन्दिरापति श्रीहरि, (नाक ज्ञानेन्द्रिय का) गन्ध विषय पृथ्वी से उत्पन्न हुआ । इससे तुम न्यारे हो । ३५ (जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय का) रस विषय जल से और (नेत्र ज्ञानेन्द्रिय का) रूप विषय तेज (महत्तत्त्व से) उत्पन्न है । हे वैकुण्ठपुर-निवासी, मोक्ष के दाता, तुम इससे भिन्न हो । ३६ हे गोपी वस्त्र-हारी, (त्वचा ज्ञानेन्द्रिय का) स्पर्श विषय पवन से और (कर्णेन्द्रिय का) शब्द विषय पुष्कर (आकाश) से उत्पन्न है । तुम निर्विकारी इससे भिन्न हो । ३७ हे जगद्वंद्य, हे सर्वेश, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय,

मनोमय। विज्ञानमय आनंदमय। पंचकोशांहूनि तूं अव्यय। जगद्वंद्या सर्वेशा। ३८ अन्नापासून स्थूळदेह। तो कोश जाण अन्नमय। याहूनि वेगळा तूं निश्चय। गजास्यजनकप्रियकरा। ३९ प्राण आणि अपान। व्यान समान उदान। हा प्राणमय कोश नव्हेसी तूं पूर्ण। मधुमुरनरकनाशना। १४० वाचा पाणि पाद शिश्न गुद। मनसहित मनोमयकोश प्रसिद्ध। यांहूनि वेगळा तूं पूर्णानंद। गोपीकुचकुंकुमांगमर्दना। १४१ श्रोत्र त्वचा चक्षु जिव्हा घ्राण। बुद्धिसहित विज्ञानमयकोश जाण। यांहूनि वेगळां तूं नारायण। श्रीकुचदुर्गविहारा। ४२ सर्वांचें जें कां कारण। अविद्याचातुर्यअज्ञान। हा आनंदमय कोश तूं यासीं भिन्न। गोरसचोरा गोपति। ४३ त्याग अत्याग त्यागात्याग। त्यांहून परता तूं सारभाग। निर्विकार तूं अज अव्यंग। मुरलीधरा मनमोहना। ४४ साकार साभास आभास। चौथें जाणिजे निराभास। याहूनि पर तूं परात्पर हंस। तृणावर्तप्राणहरणा। ४५ अविद्यामय

विज्ञानमय और आनन्दमय-जैसे पंचकोशों से तुम अव्यय-स्वरूप भिन्न हो। ३८ अन्न से स्थूल देह उत्पन्न है; (अतः) उस (देह-स्वरूप) कोश को अन्नमय समझो। हे गजानन के पिता शिवजी के प्रियवर भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण, तुम निश्चय ही इससे भिन्न हो। ३९ प्राण और अपान, व्यान, समान और उदान —ये पाँच प्राण हैं। फिर भी हे मधु-मुर-नरकासुर को नष्ट करनेवाले, तुम, पूर्णतः यह प्राणमय कोश नहीं हो, उन प्राणों से परे हो। १४० वाणी, हस्त, पद, शिश्न, और गुदा तथा मन-सहित यह विख्यात मनोमय कोश है। हे गोपीकुचकुंकुमांगमर्दन कृष्ण, पूर्णानन्दस्वरूप उनसे न्यारे हो। १४१ इसे कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक और बुद्धि-सहित विज्ञानमय कोश समझो। परन्तु श्री (लक्ष्मी)-कुचदुर्गविहारी, नारायणस्वरूप तुम इनसे परे हो। ४२ अविद्या-अचातुर्य-अज्ञान, जो इन सबकी निर्मिति आदि का कारण है, आनन्दमय कोश है। हे गोरस को चुरानेवाले, हे गोपति (गोपाल), तुम इनसे बढ़कर, परे हो। ४३ त्याग, अत्याग (परिग्रह), त्यागात्याग —इन (सब) से परे तुम सारभाग (सारतत्त्व) हो। हे मुरलीधर, हे मनमोहन, तुम निर्विकार, अजन्मा और दोषरहित हो। ४४ साकार (आकार-सहित शरीर), साभास (प्रतिबिम्ब), आभास (बिम्ब) और (इन तीन तत्त्वों के अतिरिक्त) चौथा तत्त्व निराभास, अर्थात निराकार-निर्गुण ब्रह्म —इन (तत्त्वों) को समझ लो। हे तृणावर्त दैत्य के प्राणों का हरण करनेवाले (श्रीकृष्ण), तुम इनसे परे हो, परात्पर हंस (ब्रह्म) हो। ४५ चार प्रलय अविद्यामय हैं; पाँचवां (प्रलय) तो केवल ज्ञानमय होता है[1]। हे गोपीजनों के नेत्र-

---

१ पंच प्रलय— जिसमें समस्त सृष्टि का विनाश होता है, उसे 'प्रलय' कहते हैं। नित्य (समस्त भूतमात्र में प्रतिक्षण होनेवाला सूक्ष्म परिवर्तन), नैमित्तिक (कल्पान्त में*

चारी प्रलय। पांचवा केवळ ज्ञानमय। यांहूनि वेगळा तूं अद्वय। गोपीनयनाब्जदिनेशा। ४६ पिंडींच नित्य प्रळय ते निद्रा। मरणासम ते अवधारा। निद्रेविरहित तूं यादवेंद्रा। समरधीरा केशवा। ४७ महाप्रळय तें मरण। स्थूळदेह जाय नासोन। तूं षड्विकाररहित पूर्ण। जन्ममरणमोचका। ४८ अस्ति जायते वर्धते। विपरिणमते अपक्षीयते। हे दामोदरा यादवपते। याहूनि परतें स्वरूप तुझें। ४९ विनश्यति विकार सहावा। षड्विकाररहित तूं कमलाधवा। जगद्व्यापका तूं आदि सर्वां। मायाचक्रचाळका। १५० असो ब्रह्मांडींचा नित्य प्रळय पाहें। चारी युगें सहस्र वेळां जाय। तो एक दिन ब्रह्मयाचा होय। दानवशिक्षाकारणा। १५१ याचप्रमाणें रात्रि निद्रा। परमेष्ठी करी अवधारा। तों सृष्टि बुडे एकसरा। ऐक उदारा श्रीपति। ५२ बत्तीस लक्ष गांवें चढे पाणी। इतुकें ब्रह्मांड जाय बुडोनी। सप्त चिरंजीव

कमलों को विकसित कर देनेवाले सूर्य (स्वरूप कृष्ण), तुम इनसे बढ़कर (पूर्णतः) अद्वय हो। ४६ पिण्ड (शरीर) गत नित्य प्रलय निद्रा (रूप) होता है। समझ लो कि वह मृत्यु के समान होता है। परन्तु हे यादवेन्द्र, हे समरधीर केशव, तुम तो (वस्तुतः) निद्रा (नामक प्रलय से) रहित हो। ४७ मृत्यु महाप्रलय है। उसमें स्थूलदेह नष्ट हो जाती है। हे जन्म और मरण से मुक्त कर देनेवाले, तुम (स्वयं तो) छः विकारों से[1] पूर्णतः रहित हो। ४८ (देह के उन छः विकारों में से ये पाँच हैं—) अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते और अपक्षीयते। हे दामोदर, हे यादवपति, तुम्हारा स्वरूप इनसे भिन्न है। ४९ (उन विकारों में से) छठा विकार है 'विनश्यति'। हे कमलापति विष्णुस्वरूप कृष्ण, इन छः विकारों से तुम रहित हो। हे जगद्-व्यापक, हे मायाचक्र के चालक, तुम तो सबके 'आदि' (आद्य निर्माता, मूल स्रोत) हो। १५० अस्तु। ब्रह्माण्ड के नित्य प्रलय को देखो (समझ लो)। हे दानवों को दण्ड देने के हेतु (उत्पन्न), (जब) चार युग[2] (एक) सहस्र बार बीत जाते हैं, तो वह (काल) ब्रह्मा का एक दिन (के समान) होता है। १५१ इसी प्रकार, ध्यान से सुनो, हे उदार श्रीपति, सुन लो। जब ब्रह्मा (अपनी) रात में सो जाता है, तो सृष्टि एकदम डूब जाती है। ५२ बत्तीस लाख योजन पानी बढ़ जाता

* ब्रह्मा के निद्राधीन हो जाने पर होनेवाला जगत का विनाश), महाप्रलय अथवा प्राकृत (ब्रह्मा की आयु के समाप्त हो जाने पर ब्रह्माण्ड का प्राकृति में विलीन हो जाना), आत्यन्तिक (विविध साधनाओं द्वारा जीवों को मिलनेवाली मुक्ति) —ये चार अविद्यामय प्रलय हैं। पाँचवाँ प्रलय है विवेक प्रलय अथवा ज्ञानमय प्रलय।

१ देह के षड् विकार: जायते (उत्पत्ति, जन्म), अस्ति (अस्तित्व होना), वर्धते (वृद्धि होना), विपरिणमते (तारुण्य की प्राप्ति), अपक्षीयते (वृद्धत्व को प्राप्त होना), विनश्यति (नष्ट होना, मृत्यु)।

२ चार युग – सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि।

शशितरणी। ज्ञाती लोपोनि सर्वेशा। ५३ मागुती ब्रह्मा जागा होत। यथापूर्वमकल्पयत। पुन्हां तैसेंच्च रची निश्चित। तुझा सुत परमात्मया। ५४ हा ब्रह्मांडींचा नित्यप्रलय जाण। ऐक महाप्रळयाची खूण। येथें ब्रह्मादिकां संहरण। होय ऐक श्रीकरधरा। ५५ आधीं अनावृष्टि शतसंवत्सर। तेणें होईल जीवसंहार। द्वादशार्क निरंतर। तपती तेव्हां शकटांतका। ५६ सप्त सागर शोषूनि वडवानळ। जाळील सर्व उर्वीमंडळ। सप्त पाताळें जळतील। शेषमुखाग्नीनें सर्वेशा। ५७ मग वारणशुंडेऐसी धार। मेघ वर्षतील शत-संवत्सर। पृथ्वीची राखाडी समग्र। विरेल प्रळयीं यादवेंद्रा। ५८ त्या जळासी तेज गिळील। तेजासी प्रभंजन ग्राशोल। त्या समीरासी निराळ। क्षणें ग्रासील पद्मनाभा। ५९ नभासी ग्रासील तमोगुण। तम होय रजीं लीन। रज जाय सत्वीं मिळोन। कमलपत्राक्षा मुरारे। १६० सत्व सामावे महत्तत्वांत।

है; इतना ही (ऊँचा, विशाल) ब्रह्माण्ड (उसमें) डूब जाता है। हे सर्वेश, (उस समय), सातों चिरंजीव[1], चन्द्र, सूर्य लुप्त हो जाते हैं। ५३ (अनन्तर) ब्रह्मा फिर से जाग्रत् हो जाता है और वह पहले की भाँति (फिर से) सृष्टि का निर्माण करता है। फिर से, हे परमात्मा, तुम्हारा वह पुत्र वैसे ही निश्चित रूप से रचना करता है। ५४ इसे ब्रह्माण्ड का नित्य प्रलय समझ लो। (अब) महाप्रलय का लक्षण सुन लो। हे श्रीकरधर (लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले), सुनो, यहाँ (इस प्रलय में) ब्रह्मा आदि का संहार हो जाता है। ५५ (उस काल) पहले सौ वर्ष (तक) अनावृष्टि हो जाती है (सूखा पड़ता है)। उससे (समस्त) जीवों का संहार हो जाएगा। हे शकट (नामक असुर) को मार डालने वाले, तब (उस समय) बारहों सूर्य[2] निरन्तर तपते रहते हैं। ५६ हे सर्वेश, बड़वाग्नि सातों सागरों को सोख लेकर समस्त पृथ्वीमण्डल को जला डालेगी; शेषनाग के मुख में स्थित अग्नि से सातों पाताल जल जाएँगे। ५७ (फिर) तब सौ वर्ष (तक) मेघ हाथी की सूँड़-सी (जल-) धाराएँ बरसाएँगे। हे यादवेन्द्र, उस प्रलय में पृथ्वी की समस्त राख विलीन हो जाएगी। ५८ उस जल को तेज निगल डालेगा। (उस) तेज का प्राशन वायु करेगा। हे पद्मनाभ, उस समीर (वायु) को आकाश क्षण में ग्रस डालेगा। ५९ नभ को तमोगुण निगल डालेगा। तमोगुण रजोगुण में विलीन हो जाएगा। (फिर) हे कमलपत्राक्ष, हे मुरारि, रजोगुण सत्त्व में मिल जाएगा। १६० (तत्पश्चात्) सत्त्वगुण महत्तत्त्व

---

१ सप्त चिरंजीव — अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम। पौराणिक मान्यता के अनुसार ये अमरपुरुष ब्रह्म-कल्प तक जीवित रहते हैं।

२ द्वादश सूर्य — मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूष्णि, हिरण्यगर्भ, मरीचि, आदित्य, सवितृ, अर्क, भास्कर। इन नामों की अन्यान्य सूचियाँ भी मिलती हैं।

तेंही हारपे मूळमायेंत । मूळमाया पुरुषांत मिळत । वेदवंद्या माधवा । १६१
पुरुष तोचि ओंकार । माया तेचि ध्वनि निर्धार । हे स्वरूपीं लीन होती
साचार । तेंचि निर्विकार स्वरूप तूं । ६२ वैकुंठ कैलास क्षीरसागर ।
विरोनि जाहलें निराकार । तें स्वरूप हरि तूं साचार । आतां पुरे काय
पुससी । ६३ ऐसें सांगतां सांदीपन । समाधिस्थ जाहला जगज्जीवन ।
ब्रह्मानंदसागरीं लीन । ऋषीही जाहला तेधवां । ६४ राहिलें गुरुशिष्यपण ।
राहिलें वेदांतनिरूपण । स्वरूपार्णवीं निमग्न । अवघे जाहले एकदांचि । ६५
निरसोनि सकळ आधि । लागली केवळ अक्षय समाधि । हरपलीं मन चित्त
बुद्धि । सर्व उपाधि विराली । ६६ स्वानंदलहरी जिरवून । सावध जाहला
सांदीपन । म्हणे हे कृष्ण वसुदेवनंदन । समाधि ग्रासोनि सावध होईं । ६७
राजीववत् नेत्र चांगले । हरीनें तेव्हां उघडिले । अष्टभाव अंगीं दाटले ।
वेदांसी न कळे सौख्य जें कां । ६८ मग उठोनि पूतनाप्राणहरण । ऋषीसी
साष्टांग केलें नमन । हृदयीं दृढ धरी सांदीपन । मनमोहनासी तेधवां । ६९

में समा जाएगा । वह भी मूलमाया में विलीन हो जाएगा । हे वेदवन्द्य, हे माधव, (तदनन्तर) मूलमाया पुरुष में मिल जाएगी । १६१ पुरुष ही ॐ-कार है । माया ही निश्चित रूप से ध्वनि है । वे सचमुच (तुम्हारे) स्वरूप में लीन हो जाएँगे । तुम वही निर्विकार-स्वरूप हो । ६२ वैकुण्ठ, कैलास, क्षीरसागर के घुल-मिल जाने से निराकार (ब्रह्म-रूप) हो जाता है । हे हरि, तुम सचमुच (वही) स्वरूप हो । अब (और) आगे क्या पूछते हो (पूछकर जानना चाहते हो)" । १६३

सान्दीपनी द्वारा ऐसा कहने पर जगज्जीवन कृष्ण समाधिस्थ हो गये । उस समय (सान्दीपनी) ऋषि भी ब्रह्मानन्द-सागर में लीन हो गये । १६४ (उनके बीच का) गुरु-शिष्यत्व (का नाता दूर धरा) रह गया (नष्ट हुआ) । वेदान्त का निरूपण (भी दूर) रह गया । वे एक ही समय समस्त (ब्रह्म-) स्वरूप रूपी सागर में निमग्न हो गये । ६५ (उनके मन की) समस्त व्यथाओं के नष्ट हो जाने से उनको केवल अक्षय समाधि लग गयी । (उनका) मन, चित्त, बुद्धि नष्ट हो गयी (उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा) । समस्त सांसारिक विकार विलय को प्राप्त हो गये । ६६ स्वानन्द अर्थात आत्मानन्द की लहरों को दबाकर सान्दीपनी सचेत हो गये । वे (फिर) बोले, 'हे वसुदेव-नन्दन कृष्ण, समाधि को दूर करके सचेत हो जाओ ।' ६७ तब कृष्ण ने कमल-सदृश नेत्र भलीभाँति खोले । उनकी देह में आठों (सत्त्वभाव) उत्कटता के साथ उमड़ आये । उन्हें जो सुख अनुभव हो रहा था, वह वेदों (तक) की समझ में नहीं आ सकता । ६८ अनन्तर पूतना के प्राणों का हरण करनेवाले कृष्ण ने (सान्दीपनी) ऋषि को साष्टांग नमस्कार किया, तो तब उन्होंने मनमोहन कृष्ण को हृदय से

सकळ विद्यांमाजी मुकुटमणी। ते हे अध्यात्मविद्या रत्नखाणी। हे ब्रह्मविद्या नेणती ते प्राणी। नाना योनी भोगिती। १७० आत्मविद्या नेणती गूढ। नरक भोगिती अनेक मूढ। नाना शास्त्रांचें काबाड। काय व्यर्थ करूनियां। १७१ जरी केलीं नाना तीर्थें। भस्म लाविलें शरीरातें। काय करूनि तपातें। आत्मप्राप्ति नाहीं जों। ७२ केले जरी कोटि यज्ञ। मेरूइतकें सुवर्णदान। तरी आत्मप्राप्तीवांचून। प्राणी न तरती सर्वथा। ७३ तेणें केलें देहदंडन। पुराणपठण अथवा गायन। काय जटाभार राखोन। आत्मप्राप्तीवांचूनि। ७४ असो संपूर्ण ब्रह्मविद्या। सांदीपन देत जगद्वंद्या। ज्याचें नाम घेतां सकळ अविद्या। तुटोनि जाती क्षणमात्रें। ७५ यावरी स्त्रियेसी सांदीपन। सांगे एकांती जाऊन। घरा आले शेषनारायण। यांसी सेवाकारण सांगू नको। ७६ आमुचें पूर्वपुण्य समर्थ। घरा आला रमानाथ। हा त्रिभुवननायक समर्थ। यांसी कार्य सांगूं नको। ७७ एके दिवशीं सांदीपन।

दृढ़ता के साथ लगा लिया। ६९ समस्त विद्याओं में जो मुकुटमणि (सर्वोपरि) है, वह यह अध्यात्म विद्या रत्न-खनि है। जो इस ब्रह्मविद्या को नहीं जानते, वे नाना योनियों में (जन्म-मरण के भ्रमण-चक्र का कष्टप्रद उपभोग करते रहते हैं। १७० जो गूढ़ आत्मविद्या को नहीं जानते, वे मूढ़ जन अनेक नरकों का भोग करते हैं। (यदि आत्मविद्या का अर्जन न हो, तो) अनेक शास्त्रों को जान लेने का अति श्रम व्यर्थ ही करने से क्या होता है ? १७१ जब तक आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, तब तक यद्यपि नाना तीर्थस्थलों की यात्रा की हो, शरीर में भस्म लगाया हो, तो ऐसे तप का आचरण करने से क्या होता है। ७२ यद्यपि कोटि (-कोटि यज्ञ किये हों, मेरु पर्वत के समान सुवर्ण दान में दिया हो, तो भी प्राणी बग़ैर आत्मज्ञान की प्राप्ति के (भवसागर को) तैरकर बिलकुल नहीं पार कर सकते। ७३ उस (प्राणी) ने (तपाचरण द्वारा) देह-दण्ड कर लिया हो, पुराणों का पठन वा गायन किया हो, जटाओं का भार बढ़ा रखा हो, तो भी बग़ैर आत्मज्ञान की प्राप्ति के क्या होता है। १७४

अस्तु। सान्दीपनी ने उन जगद्वन्द्य श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या प्रदान की, जिनका नाम लेने से क्षणमात्र में समस्त अविद्या टूट-छूट (कर नष्ट हो) जाती हैं। १७५ इसके पश्चात् सान्दीपनी ने जाकर एकान्त में अपनी स्त्री से कहा, 'शेष और नारायण घर में आ गये हैं; उनको कोई सेवा-सम्बन्धी काम न कहो। ७६ हमारे द्वारा पूर्वकाल में किया हुआ पुण्यकार्य समर्थ (बलशाली सिद्ध हुआ) है; (उसके फल-स्वरूप) रमापति घर आ गये हैं। ये त्रिभुवन के समर्थ स्वामी हैं। (अत:) इनको कोई भी काम न बताना। ७७ एक दिन सान्दीपनी अनुष्ठान करने के लिए गये थे। (इधर) पीछे अर्थात तत्पश्चात आश्रम में सुदामा-सहित शेष-

करावया गेला अनुष्ठान। मागें आश्रमीं शेषनारायण। सुदामासहित बैसले। ७८ तों घरांत गुरुपत्नी बोलत। सप्त दिन पर्जन्य वर्षत। काष्ठें नाहींत घरांत। कैसें आतां करावें। ७९ कानीं ऐकतांचि ऐसें वचन। तात्काळ उठिले तिघेजण। शास्त्रपुस्तकें ठेविलीं बांधोन। अरण्याप्रति चालिले। १८० शुष्क काष्ठें मोडूनी। मोळ्या बांधोनि तिघांजणीं। आश्रमा परतले तेचि क्षणीं। तों पर्जन्य पडिला असंभाव्य। १८१ चहूंकडून दाटले पूर। वोहळ गंगा भरल्या समग्र। तिघे मस्तकीं घेऊनि काष्ठभार। तैसेचि येती त्वरेनें। ८२ सांदीपन आला आश्रमासी। तों न दिसती रामहृषीकेशी। मग पुसे स्वस्त्रियेसी। कोठें गेले राम कृष्ण। ८३ कीं तुवां कांहीं सांगितलें कारण। तों ते ऋषिपत्नी बोले वचन। गृहांत काष्ठें नाहींत म्हणोन। मीं बोलिलें स्वभावेंचि। ८४ ऋषि म्हणे याचि कार्यातें। उठोनि गेले अरण्यपंथें। अहा मूर्खे वैकुंठपतीतें। काय कार्य सांगितलें। ८५ परम नष्टा तुम्ही स्त्रिया। महा अशौचा निर्दया। वना धाडिलें यादवराया। अनर्थ थोर केला हो। ८६ महानिर्दय स्त्रियांची जाती। कपटनाटकी असत्य बोलती। कार्याकार्य नोळखती। अहंमती भुलोनियां। ८७ अहा मूर्खे काय केलें। शेषनारायणां

नारायण (बलराम-कृष्ण) बैठे हुए थे। ७८ तब घर के अन्दर गुरुपत्नी बोलीं, 'सात दिन से वर्षा हो रही है; घर में लकड़ियाँ (इन्धन) नहीं हैं। अब कैसे करें (किस प्रकार काम करें)।' ७९ ऐसी बात कानों से सुनते ही वे तीनों जने तत्काल उठ गये। उन्होंने शास्त्रों की पुस्तकें बाँधकर रख दीं और वे अरण्य की ओर चले गये। १८० सूखी लकड़ियाँ तोड़ते हुए उनके गट्ठर बाँधकर वे तीनों जने उसी क्षण आश्रम की ओर चल दिये। तब अनहोने रूप से पानी बरस रहा था। १८१ चारों ओर से पानी के रेले उमड़ने लगे। समस्त नाले-नदियाँ (पानी से) भर गयीं। (फिर भी) सिर पर लकड़ियों के बोझ लिये हुए वे तीनों वैसे ही झट से आ रहे थे। ८२ (इधर) सान्दीपनी आश्रम आये, तो उन्हें बलराम और कृष्ण नहीं दिखायी दिये। तब उन्होंने अपनी स्त्री से पूछा, 'बलराम और कृष्ण कहाँ गये? ८३ अथवा तुमने कुछ काम तो नहीं बताया?' तब वह ऋषिपत्नी यह बात बोलीं, 'मैं स्वाभाविक रूप से (योंही) बोली कि घर में लकड़ियाँ नहीं हैं'। ८४ तो ऋषि बोले, 'इसी काम के लिए वे उठकर अरण्य के मार्ग चले गये होंगे। अहा! मूर्खे, तूने वैकुण्ठपति को क्या काम (करने को) कहा! ८५ तुम स्त्रियाँ परम नीच होती हो। महा अपवित्र निर्दय होती हो। तूने यादवराज को वन भेज दिया। अहो, तूने बहुत बड़ी अनिष्ट बात की है। ८६ स्त्रियों की जाति महा निर्दय होती है। वे कपटी-ढोंगी होती हैं। वे असत्य बोलती हैं। मारे घमण्ड के भुलावे में आकर कार्य-अकार्य को नहीं पहचान पातीं। ८७ अहा मूर्खे, तूने यह क्या

वना धाडिलें। बोलतां ऋषीच्या डोळां अश्रू आले। कंठ दाटला सद्गदित। ८८ अरण्यपंथें ऋषि जात। अष्टभावें सद्गदित। नाम घेऊनि हांका फोडीत। करुणाभरित हृदय जाहलें। ८९ हे रामा हे कृष्णा। हे मुरहरे हे जनार्दना। हे कंसांतका मधुसूदना। कालियामर्दना कैटभारि। १९० हे भक्तजनमानस-राजहंसा। हे कृष्णा अविद्याविपिनहुताशा। हे वैकुंठपते रमाविलासा। कोणे वनीं पाहूं तूतें। १९१ अहा कमलपत्राक्षा श्रीरंगा। मनमोहना कोमलांगा। पुराणपुरुषा मम हृत्पद्मभृंगा। कोणे वनीं पाहूं तूतें। ९२ तों वर्षत घोर घन। दुरूनि येतां देखिला जगज्जीवन। सवें सुदामदेव संकर्षण। काष्ठें घेऊनि येती तिघे। ९३ जैसी धेनु धांवे वत्स देखोन। तैसा धांवला सांदीपन। हरीच्या कंठीं मिठी घालोन। स्फुंदस्फुंदोनि रडतसे। ९४ कृष्णा तुज पूजिती योगीश्वर। आम्हीं माथां दिधले काष्ठभार। तैसेचि आश्रमा आले सत्वर। उतरती भार काष्ठांचे। ९५ तों ऋषिपत्नी बाहेर धांवत। हरीच्या कंठीं मिठी घालीत। स्फुंदस्फुंदोनि रडत। म्हणे अन्याय केला

किया ? शेष-नारायण को वन में भेज दिया।' (इस प्रकार) बोलते हुए ऋषि की आँखों में आँसू (उमड़) आये। बहुत गद्‌गद होकर उनका गला रुँध गया। ८८ (तदनन्तर) ऋषि (सान्दीपनी) अरण्य के मार्ग चले गये। वे आठों भावों से युक्त तथा गद्‌गद हो उठे थे। वे नाम ले (-लेकर) चीख-पुकार रहे थे। उनका हृदय करुणा से भर उठा था। ८९ हे राम, हे कृष्ण, हे मुरहर, हे जनार्दन, हे कंसान्तक, हे मधुसूदन, हे कालियमर्दन, हे कैटभारि, हे भक्तजनों के मानस रूपी मानसरोवर में निवास करनेवाले राजहंस, हे कृष्ण, हे अविद्या रूपी वन को जलानेवाले अग्नि, हे वैकुंठपति, हे रमाविलास, मैं तुझे किस वन में देख लूँ (ढूंढ़ लूँ) ? १९०-१९१ अहो कमलपत्राक्ष, हे श्रीरंग, हे मनमोहन, हे कोमलांग, हे पुराणपुरुष, हे मेरे हृदय-कमल (में स्थित) भ्रमर, मैं तुझे किस वन में देख लूँ (ढूंढ़ लूं)। ९२ तब बादल भीषण रूप से बरस रहे थे। (इतने में) उन्होंने जगज्जीवन कृष्ण को दूर से आते देखा। (उनके) साथ में सुदामा देव और संकर्षण (बलराम) थे। वे तीनों लकड़ियाँ लेकर आ रहे थे। ९३ जिस प्रकार बछड़े को देखते ही गाय दौड़ती है, उसी प्रकार (कृष्ण को देखकर) सान्दीपनी दौड़े। (फिर) कृष्ण के गले में बाँहें डालकर (कृष्ण को गले लगाकर) वे सिसक-सिसककर रोने लगे। ९४ (वे बोले—) 'हे कृष्ण, योगीश्वर तुम्हारा पूजन करते हैं। (फिर भी) हमने (तुम्हारे) सिर पर लकड़ियों के गट्‌ठर धरा दिये।' (तदनन्तर) वे वैसे ही झट से आश्रम आ गये और उन्होंने लकड़ियों के गट्‌ठर उतार दिये। ९५ तब ऋषि की स्त्री दौड़ी (आ गयीं)। उन्होंने कृष्ण के गले में बाँहें डालीं और वे सिसक-सिसकर रोने लगीं। वे बोलीं, 'मैंने

म्यां । ९६ अहा वत्सा माझिया श्रीकृष्णा । कोमलगात्रा शतपत्रनयना । म्यां न सांगतां पीतवसना । कां तूं गेलासी वनातें । ९७ श्रीकृष्ण म्हणे ऐक माते । आम्हीं सेवा करावी भावार्थें । आम्हांसी थोर गुरुदास्यापरतें । आणिक कांहीं नावडे । ९८ ज्यासी गुरुसेवा नावडे यथार्थ । काय जाळावा त्याचा परमार्थ । गुरुसेवेविण विद्या समस्त । अविद्या होती जाण पां । ९९ जो कंटाळे गुरुसेवेसी । किडे पडले त्याच्या ज्ञानासी । जो स्वामीसी आपुल्या द्वेषी । तो महानरकासी जाईल । २०० तो साही शास्त्रें आला पढोन । तेणें केलें दान तप कीर्तन । त्यासी देव जरी आले शरण । न करितां गुरुभजन तरेना । २०१ काय कोरडा करूनि जप । व्यर्थ ध्यान खटाटोप । काय जाळावा । त्याचा प्रताप । गुरुस्वरूप नाठवी जो । २ सद्गुरूचें स्मरण न करी । नाठवी गुरुमूर्ति अंतरीं । तो बुडाला अघोरीं । चंद्रार्कवरी दुरात्मा । ३ सद्गुरूचें नाम सांगतां । लाज येत ज्याच्या चित्ता । त्या चांडाळाचें मुख देखतां । सचैल स्नान करावें । ४ गुरुचरणीं मन न ठेवितां । व्यर्थ काय चाटावी कविता । तो ज्ञान सांगे तें तत्त्वतां । मद्यपियाचें भाषण । ५ असो

(तुम्हारे साथ) अन्याय किया है। ९६ अहो मेरे वत्स श्रीकृष्ण, हे कोमल-गात्र, हे कमलनयन, हे पीताम्बरधारी, मेरे द्वारा न कहने पर (भी) तुम वन क्यों गये'। ९७ (इसपर) श्रीकृष्ण बोले, 'सुनो माँ, हमें (आपकी) भक्ति भावार्थ से सेवा करनी चाहिए। हमें गुरु की बड़ी दासता की अपेक्षा और कुछ अच्छा नहीं लगता। ९८ जिसे वास्तव में गुरु-सेवा नहीं भाती, उसके परमार्थ को क्या जला (नहीं) दें ? समझ लो कि बिना गुरु की सेवा के समस्त विद्याएँ अविद्या हो जाती हैं। ९९ जो गुरु-सेवा से ऊब जाता है, उसके (शास्त्र आदि के प्राप्त) ज्ञान में कीड़े लग गये (समझो)। जो अपने स्वामी से द्वेष करता हो, वह महानरक में पड़ जाएगा। २०० वह छहों शास्त्र पढ़कर आ गया हो, उसने दान, तप, कीर्तन किया हो, देव (तक) उसकी शरण में आये हों, तो भी वह गुरु की भक्ति न करने पर (भवसागर को) नहीं तैर सकेगा (उद्धार को नहीं प्राप्त होगा)। २०१ जो गुरु के स्वरूप का स्मरण नहीं करता, उसके द्वारा रूखा-सूखा (कोरा-नीरा) जाप करने से क्या होता है ? उसका ध्यान (आदि) का उद्योग व्यर्थ है; उसके प्रताप को क्या (नहीं) जला डालें। २ जो सद्गुरु का स्मरण नहीं करता, जो गुरु की मूर्ति को अन्तःकरण में याद नहीं रखता, वह दुरात्मा जब तक चन्द्र और सूर्य अस्तित्व में रहेंगे, तब तक अति घोर नरक में डूबा हुआ रहता है। ३ सद्गुरु का नाम बताने में जिसके चित्त को लज्जा आती है, उस चण्डाल के मुख को देखने पर सचैल स्नान करें। ४ गुरु के चरणों में मन न लगाये, की हुई कविता को क्या व्यर्थ ही चाट लें ? वह जो ज्ञान बताता है, वह वस्तुतः मद्यपी का भाषण होता है। ५ अस्तु। उस समय कृष्ण ने (गुरु-दक्षिणा के रूप में) गुरु

कृष्णें गुरूचें गृहीं। अपार संपत्ति भरिली ते समयीं। जे शक्राचे येथें वस्तु नाहीं। ते ते आणूनि पुरवीतसे। ६ वस्त्रें आभरणें धनाच्या राशी। श्रीकृष्ण देत गुरुपत्नीसी। चौसष्ट दिवस गुरुगृहवासी। शेष श्रीहरि जाहले। ७ मग जोडोनि दोनी कर। उभे राहिले गुरुसमोर। सद्गद होवोनि अंतर। सांदीपनासी बोलती। ८ कांहीं मागा जी गुरुदक्षिणा। ऐसें बोले वैकुंठराणा। सांदीपन बोले जगद्भूषणा। कांहीं वासना नसेचि। ९ तूं आम्हांसी गुरुदक्षिणा देऊनी। जाऊं पाहसी चक्रपाणी। तुज सोडून मन ठेवील जो धनीं। तोचि अभागी जाणिजे। २१० सोडूनियां तुझें ध्यान। क्षुद्र देवतांचें करी भजन। तुझें नामीं विन्मुख पूर्ण। तोचि अभागी जाणिजे। २११ शुभदायक तुझें जन्मकर्म। जो सर्वथा न आयकेचि अधम। तुज टाकूनि इच्छी धनकाम। तोचि अभागी जाणिजे। १२ जगद्वंद्या तुझें विलोकितां मुख। हारपे अपार जन्मींचें दुःख। तुज टाकूनि इच्छी स्वर्गसुख। तोचि अभागी जाणिजे। १३ तूं परम पुरुष निर्गुण। भक्तांलागीं जाहलासी सगुण। तुज टाकूनि करी आणिकांचें ध्यान। तोचि अभागी जाणिजे। १४ असो गुरुपत्नी खेद करी। कृष्णा तूं आमुचा

के गृह में अपार सम्पत्ति भर दी। जो-जो वस्तु इन्द्र के यहाँ (तक) न हो, उस उसको लाकर वे सम्पूर्ति करते रहे। ६ श्रीकृष्ण ने वस्त्र, आभूषण, धन की राशियाँ गुरु-पत्नी को प्रदान कीं। (इस प्रकार) शेष (बलराम) और श्रीहरि गुरु-गृह के चौंसठ दिन निवासी बने रहे। ७ अनन्तर दोनों हाथ जोड़कर वे गुरु के सम्मुख खड़े रहे। वे अन्तःकरण में बहुत गद्गद होकर सान्दीपनी से बोले। ८ वैकुण्ठराज बोले, 'अहो, कुछ भी गुरु-दक्षिणा (के रूप में) माँग लीजिए'। (इस पर) सान्दीपनी जगद्भूषण कृष्ण से बोले, "(मुझे) कोई अभिलाषा है ही नहीं। ९ हे चक्रपाणि, हमें गुरु-दक्षिणा देकर तुम जाना चाहते हो। तुम्हें छोड़कर जो धन में मन (लगाये) रखेगा, उसी को अभागा समझें। २१० तुम्हारे ध्यान को छोड़कर जो क्षुद्र देवताओं की भक्ति करता हो, जो तुम्हारे नाम से पूर्णतः विमुख हो, उसी को अभागा समझें। २११ तुम्हारा जन्म और कर्म शुभ फलदायी है। जो अधम व्यक्ति उसे बिलकुल सुनता ही नहीं, तुम्हें छोड़कर जो धन और काम की इच्छा करता है, उसी को अभागा समझें। १२ हे जगद्वन्द्य, तुम्हारे मुख का अवलोकन करने से अपार जन्मों का दुःख नष्ट हो जाता है। तुम्हें छोड़कर जो स्वर्ग के सुख की इच्छा करता है, उसी को अभागा समझें। १३ तुम परमपुरुष हो, निर्गुण हो, (फिर भी) भक्तों के लिए सगुण हो गये हो। जो तुम्हें छोड़कर किसी अन्य का ध्यान करता है, उसी को अभागा समझें"। १४ अस्तु। गुरु-पत्नी ने खेद अनुभव किया। वे बोलीं, 'हे कृष्ण, तुम हमारे पूर्णतः सहायक-समर्थक हो।

पूर्ण कँवारी। माझा पुत्र बुडाला सागरीं। तो आणूनि देईं दक्षिणा। १५ तेवढाच पुत्र होता जाण। पुढें नाहींच मग संतान। हरि पुत्राविण शून्य सदन। देईं आणून तेवढा। १६ अंधार पडला आमुचे कुळीं। हरि तेवढा दीप उजळीं। सांदीपन म्हणे वनमाळी। करीं आज्ञा येवढीच। १७ हातीं धरूनि सांदीपना। समुद्रतीरीं आला वैकुंठराणा। तों सागर येऊनि लागला चरणा। काय ती आज्ञा मज सांगा। १८ हरि म्हणे गुरुसुत देईं वहिला। तिमिंगिल मत्स्य बोलाविला। तो म्हणे पांचजन्यदैत्यें भक्षिला। त्यासी पुसें श्रीहरि। १९ मग समुद्रांत रिघोन। हरीनें शोधिला पांचजन्य। तयासीं युद्ध करून। शिर त्याचें छेदिलें। २२० पोट तयाचें विदारीत। तों आंत नाहीं गुरुसुत। मग म्हणे हा मारिला व्यर्थ। वर मागत पांचजन्य। २२१ हरि इतुकाच देईं वर। तूं करीं धरीं माझें कलेवर। मजविण जे तुजवरी घालिती नीर। त्यांचें पूजन व्यर्थ व्हावें। २२ हरि म्हणे वर दिधला। मग तो पांचजन्य हातीं घेतला। पुढें मृत्युपुरीस हरि गेला। गुरुपुत्राचियाकारणें। २३

मेरा पुत्र सागर में डूब गया है; उसे लाकर दक्षिणा (के रूप में) दे दो। १५ समझो कि (हमारा) उतना ही (इकलौता) पुत्र था। फिर अनन्तर (हमारे) कोई सन्तान नहीं हुई। हे हरि, बिना पुत्र के घर सूना होता है। (अतः) उतना अर्थात वह (पुत्र) लाकर दे दो। १६ हमारे कुल में (पुत्र के चले जाने से) अन्धकार फैल गया है। हे हरि, उतने अर्थात उस (पुत्र-रूप) दीप को प्रज्ज्वलित कर दो।' तो सान्दीपनी बोले, 'हे वनमाली, इतनी ही आज्ञा (पूरी) कर दो'। १७ (तदनन्तर) सान्दीपनी का हाथ थामकर वैकुण्ठराज कृष्ण समुद्र-तट पर आ गये। तब समुद्र आकर उनके पाँव लगा (और बोला—) 'जो आज्ञा हो कह दीजिए'। १८ (इसपर) कृष्ण बोले, 'झट से गुरु के पुत्र को (लाकर) दे दो'। तो यह सुनकर तिमिंगल मत्स्य को बुला लिया। वह बोला, 'हे श्रीहरि, उस (पुत्र को) पांचजन्य नामक दैत्य ने खा डाला, उससे पूछ लीजिए'। १९ तब समुद्र में पैठकर श्रीहरि ने पांचजन्य को ढूँढ़ लिया और उससे युद्ध करके उसका सिर छेद डाला। २२० (फिर) उन्होंने उसके पेट को विदीर्ण किया; (परन्तु देखा) तो अन्दर गुरु पुत्र नहीं था। फिर वे बोले, 'इसे मैंने व्यर्थ मार डाला'। (तत्पश्चात- पांचजन्य ने (श्रीकृष्ण से) वर माँग लिया। २२१ (वह बोला—) 'हे हरि, तुम मुझे इतना ही (यही) वर प्रदान करना— तुम मेरा कलेवर हाथ में पकड़ लो। बिना मेरे (अर्थात् मुझ पर बिना डाले) जो तुमपर पानी डालेंगे, उनका वह पूजन करना व्यर्थ हो जाए'। २२ हरि बोले, 'मैंने यह वर दे दिया'। अनन्तर उन्होंने पांचजन्य को हाथ में (उठा) लिया। आगे चलकर कृष्ण गुरु-पुत्र के निमित्त यमपुरी के प्रति चले गये। २३

सूर्यसुतें हरीची पूजा करून। उभा ठाकला कर जोडून। हरि म्हणे गुरुसुत आणून। देईं सत्वर आतांचि। २४ मग त्याचें आतिवाहिक देह होतें। लिंगदेह म्हणती त्यातें। यमें शोधूनि निजहस्तें। हरीपासीं आणिलें। २५ हरीनें इच्छामात्रेंकरूनी। दिव्य देह निर्मिला तेचि क्षणीं। गुरुपुत्र हातीं धरूनी। गुरुआश्रमा पातला। २६ संतोषला सांदीपन। कृष्णासी दिधलें आलिंगन। गुरुकांता करी लिंबलोण। कृष्णावरूनि तेधवां। २७ म्हणे हरि तुजवरूनी। मी जाईन ओंवाळूनी। अद्‌भुत केली तुवां करणी। ब्रह्मादिकां अगम्य। २८ असो आज्ञा घेऊनि गुरुपासी। श्रीकृष्ण आले मथुरेसी। आतां उद्धव जाईल गोकुळासी। गोपिकांसी बोधावया। २९ हा अध्याय जो विसावा। तो केवळ संतांचा प्राणविसांवा। अर्थ घेतां जों विसांवा। मंत्र हृदयीं ठसावे। २३० हरिविजयग्रंथ वैरागर। त्यांत विसावा हा हिरा थोर। प्रकाशमय निर्विकार। जोहरी याचे निजभक्त। २३१ ऐसा हा विसावा हिरा। हृदयपदकीं जडावा बरा। जन्ममरण येरझारा। तेणें तुमच्या चुकतील। ३२ कां घेतां जन्ममरणाच्या धांवा। या विसाव्यांत

(वहाँ) सूर्य-पुत्र यम कृष्ण का पूजन करके हाथ जोड़कर खड़ा रह गया, तो कृष्ण बोले, 'मेरे गुरु के पुत्र को अभी झट से लाकर दे दो'। २४ तब (उस पुत्र की) आतिवाहिक देह थी। उसे 'लिंगदेह' कहते हैं। यम (स्वयं) उसे खोजकर अपने हाथों कृष्ण के पास ले आया। २५ (तदनन्तर) कृष्ण ने मात्र इच्छा करके उसी क्षण दिव्य देह का निर्माण किया और उस गुरु-पुत्र का हाथ थामकर वे गुरु के आश्रम के प्रति पहुँच गये। २६ सान्दीपनी (पुत्र को देखकर) सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने कृष्ण का आलिंगन किया। उस पर गुरु-पत्नी ने कृष्ण पर से राईनोन उतार लिया। २७ वे बोलीं, 'हे हरि, मैं तुम पर निछावर हो जाऊँगी। तुमने अद्‌भुत करनी की है —वह ब्रह्मा आदि के लिए (भी) अगम्य है'। २८ अस्तु। गुरु से आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण मथुरा (लौट) आये। अब उद्धव गोपियों को उपदेश देने के हेतु गोकुल जाएँगे। २२९

यह जो बीसवाँ अध्याय है, वह तो सन्तों के लिए केवल प्राणों के विश्राम (-स्थान स्वरूप) है। उसका अर्थ (ध्यान में) लेकर जब विश्राम करें, तो वह मंत्र हृदय में जम जाएगा। २३० श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ रत्नों की खान है। उसके अन्दर यह बीसवाँ अध्याय बड़ा हीरा है। वह प्रकाशमय है, विकारहीन है; भगवान के अपने भक्त इसकी परख करनेवाले जौहरी हैं। २३१ इस प्रकार बीसवाँ अध्याय रूपी हीरा हृदय रूपी पदिक में भली भाँति जड़ दिया जाए। उससे जन्म-मरण-स्वरूप तुम्हारे आवागमन के फेरे चुक जाएँगे। ३२ जन्म-मरण की दौड़ तुम क्यों कर रहे हो। इस बीसवें अध्याय में विश्राम कर लो। उससे

घ्या विसांवा। पूर्ण करवील मनोभावा। आपण श्रीहरि येऊनि। ३३ जे करिती सद्गुरुसेवा। त्यांच्या हाता चढे हा विसांवा। या विसाव्याचा अर्थ घ्यावा। सर्व कार्यें टाकूनियां। ३४ ना ना विसावा हाचि शेष। यावरी पहुडला रमाविलास। जिहीं सांडिले आशापाश। तेचि विसाव्या झोंबती। ३५ कीं विसावा हें पंढरीनगर। येथें विसांवला रुक्मिणीवर। भाव पुंडलिकासमोर। उभा तिष्ठत सर्वदा। ३६ जैसी भारतामाजी गीता थोर। तैसा हरिविजयीं विसावा सार। कीं नक्षत्रांमाजी रोहिणीवर। तैसा साचार विसावा। ३७ कीं रसांमाजी थोर अमृत। तैसा विसावा सुरस बहुत। कीं त्रिदशांमाजी शचीनाथ। विसावा सत्य तैसाचि हा। ३८ कीं भोगियांमाजी दशशतवक्त्र। कीं नवग्रहांमाजी दशशतकर। तैसा विसावा सुंदर। हरिविजयामाजी पैं। ३९ जे प्रवृत्तिशास्त्रें ऐकतां। भागले बहुत ग्रंथ वाचितां। ते विसाव्यांत तत्त्वतां। विसांवती हें साच। २४० ब्रह्मानंदा यादवेंद्रा जगद्व्यापका श्रीकरधरा। हाचि वर देईं सत्वरा। विसावा अंतरामाजी

श्रीहरि स्वयं आकर तुम्हारे मनोभावों को पूर्ण करवाएँगे। ३३ जो सद्गुरु की सेवा करते हैं, उनके हाथ यह विश्राम लग जाता है। समस्त कार्यों को छोड़कर इस बीसवें अध्याय का अर्थ (भली भाँति) समझ लें (ग्रहण करें)। ३४ अथवा यह बीसवाँ अध्याय ही शेष है। इसपर रमाविलास पौढ़े हुए हैं। जिन्होंने आशा रूपी पाशों का त्याग किया है, वे ही इस बीसवें अध्याय की ओर आकृष्ट होकर लपकते हैं। ३५ अथवा यह बीसवाँ अध्याय ही पंढरपुर नगर है। यहाँ रुक्मिणी-वर विश्राम को प्राप्त हो गये हैं। वे भक्ति-भाव रूपी पुण्डलिक के सामने सदा के लिए खड़े होकर ठहरे हुए हैं। ३६ जिस प्रकार महाभारत के अन्दर गीता महान है, उसी प्रकार श्रीहरि-विजय के अन्दर यह सुन्दर बीसवाँ अध्याय है। अथवा नक्षत्रों में जिस प्रकार रोहिणीपति चन्द्रमा है, उसी प्रकार सचमुच श्रीहरि-विजय में यह बीसवाँ अध्याय (शोभायमान) है। ३७ अथवा रसों में जिस प्रकार अमृत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार श्रीहरि-विजय के अध्यायों में यह बीसवाँ अध्याय बहुत सुरस से युक्त (मधुर) है। अथवा देवों में जिस प्रकार शचीपति इन्द्र (श्रेष्ठ) हैं, उसी प्रकार ही श्रीहरि-विजय के समस्त अध्यायों में सचमुच यह बीसवाँ अध्याय (श्रेष्ठ) है। ३८ अथवा सर्पों में सहस्रमुखधारी शेष जिस प्रकार श्रेष्ठ है, अथवा नौ ग्रहों में सहस्रकिरण सूर्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार श्रीहरि-विजय के अन्दर यह बीसवाँ अध्याय (सर्व) सुन्दर है। ३९ यह सत्य है कि जो प्रवृत्तिशास्त्रों (सांसारिक विषयों) को सुनते हुए, (अन्यान्य) बहुतेरे ग्रन्थों को पढ़ते हुए उकता गये हों, वे इस बीसवें अध्याय में सचमुच विश्राम को प्राप्त हो जाते हैं। २४०

भरो। २४१ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। श्रोते चतुर पंडित परिसोत। विंशतितमाध्याय गोड हा ॥ २४२ ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

हे ब्रह्मानन्द (स्वरूप कृष्ण), हे यादवेन्द्र कृष्ण, हे जगद्व्यापक, हे श्रीकरधर अर्थात लक्ष्मीपति, (आप हमें) झट से यही वरदान दीजिए कि यह बीसवाँ अध्याय (हम सबके) अन्तःकरण में (समा जाए) भर जाए। २४१

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। श्रोता, चतुर पंडितजन इसके इस मधुर बीसवें अध्याय का श्रवण करें। २४२

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२१

[उद्धव का गोकुल में आना और नन्द-यशोदा तथा गोपियों से मिलना]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय पुराणपुरुषा दिगंबरा। अवयवरहिता निर्विकारा। मायातीता अगोचरा। वेदसारा श्रीवल्लभा। १ तूंचि जगदानंदमूळकंद। उपाधिरहित अभेद। सच्चिदानंद नामें शब्द। हाही राहे आलीकडे। २ जैसा पुष्करीं सतेज मित्र। तेथें नीळिमा न साहे अणुमात्र। तैसें ज्ञान राहिलें साचार। तुझा निर्धार करूं जातां। ३ जैसा वसुधामरांच्या

श्रीगणेशाय नमः। हे पुराणपुरुष, हे दिगम्बर, हे अवयवरहित (निराकार), हे निर्विकार, हे मायातीत, हे अगोचर (इन्द्रियों के लिए अगम्य-अज्ञेय), हे वेदसार, हे लक्ष्मी-वल्लभ, जय हो, जय हो। १ तुम ही जगत के लिए आनन्द-(उत्पन्न कर देनेवाले बीजस्वरूप) मूलकन्द हो। तुम उपाधिरहित हो, अभेद (एकमेव-अद्वैत) हो। (तुम्हारे गुण आदि का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त) 'सत्', 'चित्', 'आनन्द' जैसे नामस्वरूप शब्द भी (वर्णन करने में अपर्याप्त होकर बहुत) इस पार रहते हैं (इन नामों से भी आपका वर्णन नहीं किया जा पाता)। २ जिस प्रकार आकाश में (जब) तेजस्वी सूर्य होता है, तब वहाँ अणु मात्र (तक) नीलिमा सही नहीं जा पाती (नहीं रह पाती), उसी प्रकार तुम्हारा स्वरूप-निर्धारण करने जाने पर केवल सचमुच (विशुद्ध) ज्ञान रह जाता है (तुम विशुद्ध ज्ञानतत्त्व हो)। ३ जिस प्रकार भू-देवों अर्थात ब्राह्मणों के देवघरों में अतिशूद्र का प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार (तुम्हारे स्वरूप का)

देव्हारां। प्रवेश नव्हे अतिशूद्रा। तैसा तर्क होय माघारा। मार्ग पुढें न सुचेचि। ४ मृगेंद्र देखितांचि जाण। जैसा देह ठेवी वारण। तैसा अहंकृति जाय विरोन। ब्रह्मानंदसागरीं। ५ चंडांशापुढें खद्योत जाण। तेवीं बुद्धीचें शहाणपण। अंबुनिधीमाजी जैसें लवण। तैसें मन होऊनि जाय। ६ अस्ति भाति प्रियरूप नाम। त्रिपुटीविरहित निष्काम। त्रिविधभेदातीत पूर्णब्रह्म। हेंही म्हणणें न साहे। ७ अकळ न कळती याच्या मावा। हालवितां न ये जिव्हा। ध्येय ध्याता ध्यान तेव्हां। सर्वथाही उरेना। ८ ऐसा निर्विकार चित्समुद्र। यदुकुलभूषण यादवेंद्र। गुरुगृहीं राहोनि समग्र। विद्याभ्यास केला हो। ९ विसावे अध्यायीं सुरस। कथा हे जाहली विशेष। यावरी मथुरेंत जगन्निवास। काय करिता जाहला। १० मथुरेंत असतां हृषीकेशी। गोकुळीं नंद यशोदा व्रजवासी। कृष्णप्राप्तीलागीं दिवसनिशीं। उतावेळ मानसीं ते। ११ गोकुळींच्या नितंबिनी। श्रीकृष्णलीला आठवूनी। सद्‌गदित

अनुमान करते समय तर्क की एक भी नहीं चलती, तर्क को पीछे हट जाना पड़ता है, (इस सम्बन्ध में) कोई आगे (का) मार्ग सुझायी ही नहीं देता। ४ समझिए कि जिस प्रकार सिंह को देखते ही हाथी (अपनी) देह को (दुबका) रखता है, उसी प्रकार इसके ध्यान से प्राप्त ब्रह्मानन्द रूपी सागर में अहंकृति नष्ट हो जाती है। ५ समझिए कि सूर्य के सामने जुगनू की जो स्थिति हो जाती है, वही स्थिति इसके स्वरूप के वर्णन करने लगते ही बुद्धि की समझदारी हो जाती है (बुद्धि फीकी पड़ जाती है)। समुद्र में नमक की जैसी स्थिति होती है, वैसी स्थिति मन की हो जाती है। ६ अस्तित्व, प्रिय रूप का होना, नाम —यह इस त्रिपुटी से (अर्थात परस्पर सम्बद्ध तीन बातों के समुच्चय से) रहित है; निष्काम है; सात्त्विक, राजस, तामस अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण जैसे तीन देहों के भेद से परे है; पूर्णब्रह्म है —इसके सम्बन्ध में यह कहना (भी यहाँ) सहन नहीं होता (उचित नहीं जान पड़ता)। ७ यह अगम्य है, इसकी माया (लीलाएँ) समझ में नहीं आतीं। इसमें जिह्वा हिलायी (तक) नहीं जा पाती। तब ध्येय (ब्रह्म) -ध्याता (ध्यान करनेवाला साधक) –ध्यान —यह अवस्था बिलकुल नहीं शेष रह जाती। ८ इस प्रकार के निर्विकार, चित्समुद्र (ब्रह्मस्वरूप) यदुकुलभूषण यादवेन्द्र कृष्ण ने गुरुगृह में रहकर समग्र विद्याओं का अध्ययन किया। ९ बीसवें अध्याय में यह सुरस (से युक्त मधुर) विशिष्ट कथा (निरूपित) हो गयी। इसके पश्चात (सुनिए), जगन्निवास कृष्ण ने मथुरा में क्या किया ? १०

हृषीकेशी कृष्ण के मथुरा में रहते (समय), गोकुल में नन्द, यशोदा, (तथा अन्य समस्त) व्रजवासी जन कृष्ण से मिलने के लिए दिनरात मन में अधीर हो गये थे। ११ गोकुल की नारियाँ श्रीकृष्ण की लीलाओं को

होताती मनीं। अश्रु नयनीं वाहताती। १२ वाटती दशदिशा उदास। वसतें गोकुळ वाटे ओस। लीलावतारी पुराणपुरुष। लागला निजध्यास तयाचा। १३ नावडती सर्व विलासभोग। भोग तितुके वाटती रोग। अंतरीं भरलासे श्रीरंग। भक्तभवभंग दयाळू। १४ चंदन अंगीं र्चाचतां देखा। वाटती जैशा शिखीच्या शिखा। सुमनहार ते देखा। उरगांसमान भासती। १५ गगनीं उगवतां रोहिणीवर। म्हणती यामिनींत कां उगवला मित्र। अंतरीं ठसावतां पंकजनेत्र। विव्हळ होय मानस। १६ गोपी करूं बैसती भोजन। ग्रासोग्रासीं आठवे कृष्ण। करूं जातां उदकपान। जगन्-मोहन आठवे। १७ एवं गोकुळींचे जन। हरिचरणीं ठेवूनि मन। करिती सत्कर्माचरण। निरभिमान सर्वदा। १८ कृष्णप्राप्तीविण करिती कर्म। तरी तोचि तयांसी पडला भ्रम। आम्ही कर्मकर्ते हा परम। अभिमान वाहती। १९ मृत्तिका उदक नासूनी। आम्ही ज्ञाणते ऐसें मिरविती जनीं। परी दुरावला चक्रपाणी। जवळी असोनि अप्राप्त। २० काष्ठामाजी जैसा

स्मरण करके मन में बहुत गद्गद हो जाया करती थीं। (अपनी) आँखों से वे आँसू बहाया करती थीं। १२ उनको दसों दिशाएँ उदास (सूनी-सूनी) जान पड़तीं। लोगों के निवास से भरापूरा गोकुल (अब) उजाड़ लगता। उनको लीलावतारधारी पुराणपुरुष कृष्ण का निदिध्यास (अनवरत चिन्तन, ध्यान) लगा हुआ था। १३ उन्हें समस्त विलास-भोग अच्छे नहीं लगते थे; जितने भोग थे, वे (सब) रोग जान पड़ते थे। उनके अन्तःकरण में भक्तों के सांसारिक ताप को नष्ट करनेवाले दयालु श्रीरंग भरे हुए थे। १४ देखिए, अंग में चन्दन लगाने पर (उसका लेपन) उन्हें आग की ज्वालाओं-जैसा जान पड़ता। देखिए वे सुमनहार साँपों के समान आभासित होते। १५ आकाश में चन्द्रमा के उदित हो जाने पर वे कहतीं (पूछतीं)— रात में सूर्य क्यों उदित हुआ है? उनके अन्तःकरण में कमलनयन कृष्ण के जमे रहने के कारण उनका मन विह्वल हो उठा था। १६ गोपियाँ जब भोजन करने बैठतीं, तब उन्हें कौर-कौर पर कृष्ण याद आ जाते; पानी पीने लगने पर उन्हें जगन्मोहन कृष्ण याद आ जाते। १७ इस प्रकार, गोकुल के लोग कृष्ण के चरणों में मन लगाये रखकर सत्कर्मों का आचरण किया करते थे। वे नित्यकाल अभिमान-रहित थे। १८ यदि (कर्मकाण्डी) लोग कृष्ण की प्राप्ति की इच्छा किये बिना कर्म (-काण्ड) करें, तो उन्हें वही भ्रम हो जाता है (कि हम कर्ता हैं और) वे यह परम अभिमान वहन करते हैं कि हम कर्म-कर्ता हैं। १९ (कर्मकाण्ड के निमित्त) मिट्टी और पानी खराब करके वे (कर्मकाण्डी) लोगों में यह बड़प्पन बघारते हैं कि हम ज्ञाता हैं; परन्तु वस्तुतः चक्रपाणि कृष्ण (उनके लिए) दूरत्व को प्राप्त हो गये थे; पास में होकर भी उन्हें वे अप्राप्त हो गये थे। २० जिस प्रकार काठ में अग्नि होने पर भी

अग्न। असोनि नव्हे प्रकाशमान। तैसा श्रीरंग हृदयीं परिपूर्ण। असोनि जन भूलले। २१ कृष्णप्राप्तीविण दान केलें। जैसें बीज उकीरडां ओतिलें। तें व्यर्थ कुजोनि गेलें। मुक्त टाकिलें अग्नींत जैसें। २२ हरिप्राप्तीविण पठन। वृथा श्रम काय करून। सिकतेचा घाणा गाळून। व्यर्थ जैसी करकर। २३ हरिप्राप्तीविण गायनकळा दावीत। जैसा गोवारी आरडे अरण्यांत। हरि-प्राप्तीविण प्रवृत्तिक ग्रंथ। काय कविता अलवण ते। २४ कृष्णप्राप्तीविण यज्ञ। व्यर्थ काय डोळे धूम्रें भरून। हरिप्राप्तीविण अनुष्ठान। जैसें सोंग नटाचें। २५ भगवत्प्राप्ती कदा नाहीं। एकांतीं गुहा सेविली पाहीं। जैसा मूषक निघाला वईं। व्यर्थ काय एकांत। २६ हरिप्राप्तीविण जटा। व्यर्थ भार वाहे करंटा। एवं सर्व व्यर्थ त्याच्या चेष्टा। हृदयीं वैकुंठा न धरितां। २७ असो हृदयीं धरूनि हृषीकेश। गोपी मथुरेसी विकूं जातां

(वह) प्रकाशमान नहीं होती, उसी प्रकार कृष्ण हृदय में परिपूर्ण रूप से होने पर भी लोग (कर्मकाण्ड आदि में लगे रहने के कारण) उन्हें भूल गये। २१ यदि (किसी ने) कृष्ण की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के दान किया, तो मानो उसने बीज घूरे पर डाल दिया। वह सड़कर व्यर्थ हो गया। उसने जैसे आग में मोती फेंक दिया। २२ हरि की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के (वेद-शास्त्र)-पुराण आदि का पठन करने का परिश्रम व्यर्थ करने से क्या होता है। बालू को कोल्हू में पेरने से जिस प्रकार व्यर्थ किरकिराहट होती है, वह पठन वैसी ही निरर्थक कष्टप्रद ध्वनि (हो जाती) है। २३ जैसे चरवाहा अरण्य में चिल्लाता रहता है, उसी प्रकार श्रीहरि की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के (किसी द्वारा) गानकला को प्रदर्शित करना व्यर्थ होता है। श्रीहरि की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के लिखित प्रवृत्तिपरक ग्रन्थ की कविता लवनहीन, अर्थात रसहीन होती है। २४ कृष्ण की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के यज्ञ करना व्यर्थ है। उसमें व्यर्थ ही आँखों को धुएँ से भरने से क्या होता है। हरि की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के किया हुआ अनुष्ठान अभिनेता के स्वाँग-जैसा होता है। २५ देखिए, किसी ने श्रीहरि की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के एकान्त में गुहा में निवास किया हो, ता भी उसे भगवान की प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकती। जिस प्रकार चूहा बाड़ में से निकलता है, उसी प्रकार वह गुहा में से निकलता है। (फिर) वह एकान्त निवास क्या व्यर्थ (नहीं) है? २६ हरि की बिना प्राप्ति (की इच्छा) के, (जटाधारी) अभागा (साधु) जटाओं का बोझ व्यर्थ ही वहन करता है। इस प्रकार, हृदय में वैकुण्ठ (-पति) को धारण न करने पर की हुई उसकी समस्त चेष्टाएँ व्यर्थ होती हैं। २७ अस्तु। हृदय में कृष्ण को धारण करके गोपियाँ गोरस बेचने के लिए जाती थीं। वे जगद्वन्द्य परमपुरुष कृष्ण का, रमाविलास

गोरस। चित्तीं आठवूनि रमाविलास। परमपुरुष जगद्वंद्य। २८ मथुरेच्या चोहटां बैसती। अंतरीं आठवूनि यदुपती। दधि दुग्ध घ्या म्हणों विसरती। मुखासी येती हरिनामें। २९ दुग्ध घ्या म्हणावें जों या बोला। तों पूर्वीं शक्रें दुग्धाभिषेक केला। तैसाचि हृदयीं आठवतां सांवळा। गोविंद सकळां घ्या हो म्हणती। ३० दधि घ्या म्हणावें जों आतां। दामोदर आठवे चित्ता। जो दह्यानिमित्त तत्त्वतां। मायेनें उखळीं बांधिला। ३१ दावें बांधिलें उदरीं जया। म्हणोनि दामोदर नाम तया। तें ध्यान गोपी आठवूनियां। दामोदर घ्या हो म्हणती। ३२ तों मथुरेच्या गोरटी। ज्यांची केवळ प्रपंचदृष्टी। म्हणती कोठें गे जगजेठी। कायशा गोष्टी बोलतां। ३३ जेणें मीनरूप धरोनी। अवघा समुद्र उडविला गगनीं। तो वेदोद्धारक चक्रपाणी। मडक्यांत कैसा सांठविला। ३४ मंदरोद्धारक जगजेठी। जेणें पृष्ठीवरी धरिली सृष्टी। ज्यासी ध्याय भार्गव परमेष्ठी। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ३५ जेणें हिरण्याक्ष मर्दूनी। दाढेवरी धरिली अवनी। जो क्षीराब्धिवासी मोक्षदानी। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ३६ जो

विष्णुस्वरूप कृष्ण का चित्त में स्मरण करती थीं। २८ वे मथुरा के बाज़ार के चौराहे में बैठती थीं। (परन्तु) अन्तःकरण में यदुपति का स्मरण करते रहने पर वे 'दही-दूध लो' कहना भूल जाती थीं। उनके मुँह में हरि के नाम आ जाते थे। २९ 'दूध लो'—ऐसे शब्दों को जब वे कहने जातीं, तो पूर्वकाल में इन्द्र ने (जिसका) दुग्धाभिषेक किया था, हृदय में सांवले कृष्ण (के उसी रूप के) का स्मरण हो जाता, तो वे सबसे कहतीं, 'अहो गोविंद लो'। ३० (जब) अब 'दही लो' कहना था, तो उनके चित्त को 'दामोदर' कृष्ण का स्मरण हो जाता, जिन्हें दही के निमित्त वस्तुतः माता ने ऊखल से बाँध लिया था। ३१ (उस अवसर पर) जिनके उदर में पगहा बाँध लिया था, अतः जिनका नाम 'दामोदर' हो गया, उनके उस रूप का स्मरण करके, वे कहतीं, 'दामोदर लो'। ३२ तब मथुरा की गोरियाँ (स्त्रियाँ), जिनकी केवल सांसारिक दृष्टि थी, बोलीं, 'जगद्श्रेष्ठ कृष्ण कहाँ हैं? तुम कैसी बातें बोल रही हो? ३३ जिन्होंने (पूर्वकाल में) मत्स्यरूप धारण करके समस्त समुद्र को आकाश में उछाल दिया, वेदों के उन उद्धारक चक्रपाणि भगवान को घड़े में कैसे समाये रखा? ३४ (समुद्र-मन्थन के अवसर पर) जिन्होंने पीठ पर सृष्टि को उठाये रखा, जिनका ध्यान शिवजी तथा ब्रह्मा करते हैं, वे मन्दर पर्वत (रूपी मथानी) के उद्धारक जगद्श्रेष्ठ भगवान घड़े में कैसे समाकर रखे गये? ३५ जिन्होंने हिरण्याक्ष दैत्य का मर्दन करके अपनी दाढ़ पर पृथ्वी को उठाकर रखा, जो क्षीरसागर के निवासी और मोक्षदाता हैं, वे (भगवान) घड़े में कैसे समाकर रखे गये? ३६ जो प्रह्लाद के रक्षणकर्ता नरसिंह हैं,

प्रल्हादरक्षक नरहरी। ज्याचा क्रोध न माये अंबरीं। हिरण्यकश्यपमर्दन मुरारी। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ३७ जेणें दों पायांमाजी सकळ। आटिले स्वर्ग मृत्यु पाताळ। जो बळिदर्पहरण घननीळ। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ३८ त्रिसप्तकें मुळींहूनी। निर्वैर केली जेणें अवनी। परम-प्रतापवासरमणी। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ३९ जो कमलिनीमित्र-कुलभूषण। जो दुष्टपिशिताशनमर्दन। जो रावणांतक रघुनंदन। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ४० तोचि गोकुळीं अवतरला। गोवर्धन नखाग्रीं धरिला। अघासुर ज्याणें उभा चिरिला। तो मडक्यांत कैसा सांठविला। ४१ तों गोकुळींच्या गोपी समाधिस्थ। त्यांसी कृष्णमय जग दिसत। कृष्णमय ब्रह्मांड भासत। नाहीं हेत दूसरा। ४२ ऐशा गोपी व्रजवासिनी। बोलती तेव्हां गजगामिनी। म्हणती सर्व मडक्यांत चक्रपाणी। परिपूर्ण भरला असे। ४३ सर्वां घटीं बिंबोनि तरणी। अलिप्त जैसा वेगळा गगनीं। तैसा सर्वव्यापक मोक्षदानी। बरवें मनीं विचारा। ४४ तुमच्या शरीरघटीं पहा

जिनका क्रोध आकाश (तक) में नहीं समाता रहा, वे हिरण्यकशिपु का मर्दन करनेवाले, मुरारि (भगवान) घड़े में कैसे समाकर रखे गये? ३७ जिन्होंने दो पगों में समस्त स्वर्ग, मृत्यु और पाताल (लोकों) को व्याप्त कर दिया, जो (दैत्यराज) बलि के गर्व का हरण करनेवाले थे, वे घननील भगवान घड़े में कैसे समाकर रखे गये? ३८ जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को मूल से वैरीहीन कर दिया था, वे परम प्रताप रूपी सूर्य (सदृश भगवान) घड़े में कैसे समाकर रखे गये? ३९ जो सूर्यकुलभूषण (अर्थात दशरथपुत्र राम) थे, जो दुष्ट राक्षसों का मर्दन करनेवाले थे, जो रावण का संहार करनेवाले रघुनन्दन राम (के रूप में अवतीर्ण थे), वे घड़े में कैसे समाकर रखे गये? ४० वे ही (भगवान) गोकुल में अवतरित हैं। जिन्होंने गोवर्धन गिरि को नख की नोक पर उठाये रखा, जिन्होंने अघासुर को सीधा चीर डाला, वे घड़े में कैसे समाकर रखे गये?' ४१ तब गोकुल की गोपियाँ समाधिस्थ हो गयीं। उन्हें जगत कृष्णमय दिखायी दे रहा था; समस्त ब्रह्माण्ड कृष्णमय आभासित हो रहा था; उनकी कोई दूसरी इच्छा नहीं थी। ४२ ऐसी वे व्रजवासिनी गोपियाँ तब बोलीं। वे गजगामिनी स्त्रियाँ बोलीं, 'समस्त घटों में चक्रपाणि परिपूर्ण समाये हुए हैं। ४३ जिस प्रकार समस्त घटों में प्रतिबिम्बित होने पर भी सूर्य आकाश में भिन्न होता है, उसी प्रकार मोक्षदाता सर्वव्यापी भगवान हैं— वे समस्त प्राणी रूपों में समाये हुए होने पर भी भिन्न हैं। मन में ठीक से सोचकर तो देखो। ४४ अपने शरीर रूपी घट में पूर्ण रूप से देखो, न्द्रियाँ किसकी सत्ता से व्यवहृत होती हैं। मन में पूरी तरह (भली-भाँति यह बात) लाओ (सोच लो), किसकी सत्ता से स्त्री-पुरुषों के नाम

पुरतें। करणें वर्तती कोणाच्या सत्तें। मिरवितां स्त्रीपुरुषनामातें। आणा पुरतें मनासी। ४५ एक सुवर्ण नाना अलंकार। एक सागर तरंग अपार। बहुत मंदिरें एक अंबर। तैसा यदुवीर सर्वघटीं। ४६ जें जें भक्त बोलती। तें तें यथार्थ करी श्रीपती। सकळ गोपींच्या घटांप्रती। दिसती मूर्ति हरीच्या। ४७ घटाप्रति एकेक सुंदर। श्रीमूर्ति दिसे सुकुमार। गोपी तटस्थ पाहती सादर। विवेकदृष्टीकरूनियां। ४८ म्हणती नवल केलें यादवेंद्रें। सर्व घटीं व्यापिलें हें तों खरें। व्रजवासिनी बोलिल्या उत्तरें। असत्य नव्हती सर्वथा। ४९ भक्तवचना पडतां व्यंग। तेथें आंगें वोडवे श्रीरंग। जो क्षीराब्धिहृदयरत्नरंग। जो अभंग सर्वदा। ५० वाल्मीकें जें जें भाष्य केलें। तें तें राघवें वर्तोनि दाविलें। भक्त जें जें वचन बोलिले। खालीं न पडे सर्वथा। ५१ पाकशासनशत्रूनें नागपाशीं। बांधिलें श्रीरामसौमित्रांसी। भक्तभाष्य सत्य करावयासी। बांधोनि घेतलें रघुवीरें। ५२ जो क्षणें ब्रह्मांड रची ढांसळी। तो श्रीराम पडला शरजाळीं। जो भक्तांचिया वचनासी

धारण करके तुम ठाटबाट से विचरण कर रहे हो। ४५ सुवर्ण एक होता है, (फिर भी उससे निर्मित) आभूषण अनेक होते हैं। समुद्र (-जल) एक होता है, (फिर भी उसमें) लहरें असंख्य होती हैं। घर बहुत होते है, (फिर भी) आकाश एक होता है। उसी प्रकार यदुवीर कृष्ण समस्त (प्राणी रूप) घटों में एक मात्र हैं। (ब्रह्म एक है, फिर भी जीव अनेक हैं)। ४६ भक्त जो-जो कहते हैं, श्रीपति कृष्ण वही-वही यथार्थ रूप से कर देते हैं।' (तब) समस्त गोपियों के घटों में श्रीहरि की मूर्तियाँ दिखायी देने लगीं। ४७ प्रत्येक घट के अन्दर एक-एक सुन्दर सुकुमार श्रीहरि की मूर्ति दिखायी देने लगी। गोपियाँ विवेक दृष्टि से, चकित होकर आदरपूर्वक उन्हें देखने लगीं। ४८ वे बोलीं, 'यादवेन्द्र कृष्ण ने तो चमत्कार कर दिया। यह तो सत्य है कि उन्होंने समस्त घटों को व्याप्त कर लिया है।' गोकुल की निवासिनी गोपियों ने जो उत्तर-स्वरूप बातें कहीं, वे बिलकुल असत्य नहीं थीं। ४९ जो क्षीराब्धि-हृदयरत्न लक्ष्मी-पति हैं, जो नित्य अभंग हैं, वे श्रीरंग कृष्ण, भक्त के वचन में न्यूनता के रहने पर (उसे दूर करने के हेतु) स्वयं आगे आ जाते हैं। ५० (पूर्वकाल में) वाल्मीकि ने जो-जो बात कही, उस-उस को राम ने व्यवहृत कर दिखा दिया। भक्तों ने जो-जो बात कही, वह बिलकुल व्यर्थ सिद्ध नहीं होती। ५१ देवलोकराज इन्द्र के शत्रु, इन्द्रजित ने श्रीराम और लक्ष्मण को नागपाशों में आबद्ध किया। (वस्तुतः उस समय) भक्त की बात को सत्य करने के हेतु रघुवीर राम ने (अपने-आप को बन्धु-सहित नागपाशों में) आबद्ध करवा लिया था। ५२ जो क्षण में ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं, (और) उसे ढहा देते हैं, वे श्रीराम बाण-जाल में (उलझकर) पड़े रहे।

पाळी। सर्गस्थित्यंतकाळीं अक्षय। ५३ गोपी बोलिल्या जें वचन। तें साच करीत जगज्जीवन। असो गोपी गोरस विकून। गेल्या तेव्हां गोकुळा। ५४ श्रीकृष्णलीला मुखीं गात। गोपी करिती प्रपंचकृत्य। आणिक नावडे दुजा हेत। जाहलें चित्त कृष्णरूप। ५५ एक घुसळितां सुंदर। हातीं धरिला रविदोर। वृत्ति जाहली कृष्णाकार। दिवसनिशी नाठवे। ५६ हरिरूपीं तन्मय अबला। वृत्ति विरोनि गेल्या सकळा। जैसा लवणाचा पुतळा। समुद्रामाजी समरसे। ५७ घुसळितां चळती हस्त। परी त्या आपण समाधिस्थ। पंचप्राणाधारें शरीर वर्तत। सत्कर्माचरण करिती। ५८ जो सुखासनीं जाय बैसोन। त्याचें कदा न चळे आसन। परी करी सकळ पर्यटन। भक्त सुजाण तैसेचि। ५९ एवं गोपिका दळितां कांडितां। येतां जातां दुग्ध तापवितां। घुसळितां उदक आणितां। कृष्णनाथ न विसरती। ६० नंद आणि यशोदा। हृदयीं आठविती श्रीमुकुंदा। त्याच्या लीला आठवूनि

जो (भगवान इस प्रकार) भक्तों के वचन का निर्वाह करते हैं, वे सर्ग (निर्माण), स्थिति और अन्त, अर्थात विनाश काल में अक्षय बने रहते हैं। ५३ गोपियों ने जो बात कही; जगज्जीवन कृष्ण ने उसे सत्य कर दिया। अस्तु। तब गोपियाँ गोरस बेचकर गोकुल चली गयीं। ५४ वे मुँह से श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करतीं और घर-गिरस्ती के काम करती रहतीं। उनको कोई दूसरी बात नहीं भाती थी। उनका चित्त (इस प्रकार) कृष्ण-रूप हो गया था। ५५ कुछ एक सुन्दरियों (गोपियों) ने मन्थन करते हुए मथानी का डोर हाथ में पकड़ लिया। तो उनकी मनोवृत्ति कृष्णाकार हो गयी। उन्हें दिन-रात का स्मरण नहीं रहा। ५६ वे स्त्रियाँ श्रीहरि के रूप के साथ एकात्म हो गयीं। उनकी समस्त (सांसारिक) प्रवृत्तियाँ (उस प्रकार कृष्ण में) घुल-मिल गयीं, जिस प्रकार नमक का पुतला समुद्र के अन्दर घुल-मिलकर एकरस हो जाता है। ५७ मथते-मथते उनके हाथ हिल रहे थे, फिर वे स्वयं समाधिस्थ (जैसी) हो गयी थीं। पाँच प्राणों के आधार से उनका (मात्र) शरीर व्यवहार करता था; वे सत्कर्मों का आचरण करती थीं। ५८ जो (इस प्रकार) आत्मसुख के आसन पर बैठकर (घर-गिरस्ती के काम-काज करने के लिए) चला जाता है, उसका वह (भक्ति पर अधिष्ठित) आसन कभी विचलित नहीं होता। फिर भी वह सुजान भक्त वैसे ही (भक्तिभाव में लवलीन रहते हुए) समस्त पर्यटन (व्यवहार के लिए चलना आदि काम) करता रहता है। ५९ इस प्रकार गोपियाँ दलते-पीसते, कूटते, आते-जाते, दूध गर्म करते, मन्थन करते, पानी लाते कृष्णनाथ को नहीं भूल जाती थीं। ६० (इधर) नन्द और यशोदा श्रीमुकुन्द कृष्ण को हृदय में स्मरण करते रहते थे। उनकी लीलाओं का नित्य स्मरण करते

सर्वदा। झुरती भेटीकारणें। ६१ यशोदा करितां मंथन। बाळलीला आठवी संपूर्ण। म्हणे हे कृष्ण मधुसूदन। गेलासी टाकूनि आम्हांतें। ६२ हे पूतनाप्राणशोषणा। हे तृणावर्तअसुरच्छेदना। हे मुरारे शकटभंजना। गेलासी टाकूनि आम्हांतें। ६३ हे गोपीमानसराजहंसा। हे कालियामर्दना पुराणपुरुषा। हे गोवर्धनोद्धारणा हृषीकेशा। गेलासी टाकूनि आम्हांतें। ६४ हे कृष्णा कमळपत्राक्षा। हे मधुकटभारे सर्वसाक्षा। हे केशिप्राणांतका गोपवेषा। गेलासी टाकूनि आम्हांतें। ६५ माझे सांवळे डोळसे सुकुमारे। कृष्णाबाई श्यामसुंदरे। उदारवदन मुरलीधरे। गेलीस टाकूनि आम्हांतें। ६६ ऐसे आठवूनि हरिगुण। यशोदादेवी करी मंथन। नयनीं वाहे अश्रुजीवन। प्रेमें-करूनि सद्गदित। ६७ ऐसा वृत्तांत गोकुळींचा। जाणोनियां सखा प्रेमळांचा। जो कां नृप वैकुंठपुरीचा। काय करिता जाहला। ६८ जो सकळदेवाधिदेव। भक्तवल्लभ करुणार्णव। तेणें जवळी बोलाविला उद्धव। गुजगोष्टी सांगावया। ६९ उद्धव परम चतुर ज्ञाता। सात्त्विक प्रेमळ उदार तत्त्वतां। त्याहीवरी हरीचा आवडता। प्राणाहूनि पलीकडे। ७० हरि म्हणे उद्धवा एक ऐकावें। आपण गोकुळाप्रति जावें। गोपिकांप्रति बोधावें। निर्वाणज्ञान

हुए वे उनसे मिलने के लिए घुल-घुलकर क्षीण होते जाते थे। ६१ मन्थन करते हुए यशोदा (कृष्ण की) सम्पूर्ण बाललीला को स्मरण करती और कहती, " हे कृष्ण, हे मधुसूदन, तू हमें छोड़कर चला गया है। ६२ हे पूतना के प्राणों का शोषण करनेवाले, हे तृणावर्त असुर को मार डालनेवाले, हे मुरारि, हे शकट-भंजन, तू हमें छोड़कर चला गया है। ६३ हे गोपियों के मानस-रूप मानसरोवर में निवास करनेवाले, राजहंस, हे कालिय-मर्दन, हे पुराणपुरुष, हे गोवर्धन पर्वत को उठानेवाले, हे हृषीकेशी, तू हमें छोड़कर चला गया है। ६४ हे कृष्ण, हे कमलपत्राक्ष, हे मधु-कैटभारि. हे सर्वसाक्षी, हे केशी दैत्य को पकड़नेवाले, तू हमें छोड़कर चला गया है। ६५ री मेरी साँवली, सुन्दर आँखों वाली, सुकुमारी, श्यामसुन्दरा कृष्णाबाई, री उदारवदना मुरलीधरा, तू हमें छोड़कर चली गयी है "। ६६ इस प्रकार हरि के गुणों का स्मरण करते हुए यशोदादेवी मन्थन किया करती थी। उसकी आँखों से अश्रुजल बहता रहता। वे प्रेम से बहुत गद्गद हो उठती थी। ६७ जो वैकुण्ठपुरी के राजा हैं, उन प्रेमयुक्त अर्थात श्रद्धालुजनों के मित्र ने गोकुल-सम्बन्धी ऐसे समाचार को सुनकर क्या किया? ६८ जो समस्त देवों के अधिदेवता हैं, भक्तवल्लभ हैं, करुणा-सागर हैं, उन्होंने अपने मन की बातें कहने के लिए उद्धव को अपने पास बुला लिया। ६९ उद्धव परम चतुर, ज्ञाता थे; सचमुच सात्त्विक, प्रेममय उदार (-चरित) थे। तिसपर वे कृष्ण के प्राणों से (भी) अधिक प्यारे (स्नेही) थे। ७० कृष्ण ने कहा, " हे उद्धव, एक बात सुन लेना। तुम

अगम्य जें । ७१ माझा नंद पिता यशोदा जननी । दोघें कंठीं प्राण ठेवूनी । वाट पाहती दिनरजनीं । चकोरचंद्रन्यायेंसी । ७२ परम गोपिका प्रियकरा । सद्भाविका सगुणा उदारा । वाट पाहात असतील सुकुमारा । चातकजलदन्यायेंसीं । ७३ माझे गोकुळींचे गडी । ज्यांचीं निरसिलीं सांकडीं । माझी त्यांवरी बहुत आवडी । धेनुवत्सन्यायेंसीं । ७४ त्यांसी मी सांडोनि आलों सकळिकां । मागें दुःखी जाहल्या गोपिका । जैसें कृपणाचे धन जाय देखा । त्यांच्या दुःखा पार नाहीं । ७५ जा म्हणतां माघाऱ्या न सरती । अक्रूरासी येती काकुळती । त्यापुढें पदर पसरिती । एक पडती मूर्च्छागत । ७६ म्हणती कां नेतोसी आमुचा प्राण । घालिती रथापुढें लोटांगण । एक म्हणती अक्रूर नामाभिधान । कोणें तुज ठेविलें । ७७ तुझें नाम परम क्रूर । निर्दया नेऊं नको यदुवीर । गोकुळींच्या हत्या समग्र । तुजवरी पडतील पैं । ७८ ऐसें गोपिकांचें वर्णितां प्रेम । सद्गद जाहला मेघश्याम । जो भक्तकामकल्पद्रुम । आत्माराम श्रीकृष्ण । ७९ सांगतां गोपिकांची प्रीती । नेत्रीं अश्रुधारा स्रवती ।

गोकुल के प्रति चले जाना (और) गोपियों को उस (मोक्ष-सम्बन्धी अध्यात्म या) वेदान्तज्ञान का उपदेश देना, जो अगम्य है । ७१ मेरे पिता नन्द और जननी यशोदा दोनों चकोर-चन्द्र न्याय के अनुसार, प्राणों को गले तक लाकर दिनरात मेरी बाट जोहते हैं । ७२ गोपियाँ (मेरे लिए) परम प्रिय हैं, वे (मेरे प्रति) सद्भावयुक्त हैं, सद्गुणों से युक्त तथा उदार (-चरित) हैं । वे सुकुमार (गोपियाँ) चातक-मेघ-न्याय के अनुसार मेरी बाट जोहती होंगी । ७३ गोकुल के वे मेरे साथी हैं, जिनके संकटों का मैंने निराकरण किया है । धेनु-वत्स-न्याय के अनुसार मेरा उनसे बहुत प्रेम है । ७४ मैं उन सबको छोड़कर (यहाँ) आ गया हूँ, (और उधर मेरे) पीछे गोपियाँ दुःखी हो गयी हैं । देखो, जिस प्रकार कृपण व्यक्ति का धन (नष्ट हो) जाए, तो उसके दुःख का कोई पार नहीं होता, उसी प्रकार (मेरे यहाँ चले आने से) उनके दुःख का कोई पार नहीं है । ७५ 'जाओ' कहने पर (भी) वे पीछे नहीं हट जाती थीं । अक्रूर से गिड़गड़ाते हुए वे चिरोरी करती थीं । उसके सामने उन्होंने दामन बिछा दिये । कुछ एक तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं । ७६ वे (अक्रूर से) बोलीं, 'हमारे प्राण क्यों ले जा रहे हो ?' वे रथ के सामने लोटती-लुढ़कती रहीं । कुछ एक बोलीं, "रे तुम्हारा नाम 'अक्रूर' किसने रखा ? ७७ तुम्हारा काम तो परम क्रूर है । हे निर्दय, यदुवीर कृष्ण को मत ले जाना । गोकुल की समस्त हत्याएँ तुम पर पड़ेंगी" । ७८ गोपियों के इस प्रकार के प्रेम का वर्णन करते-करते वे घनश्याम श्रीकृष्ण बहुत गदगद हो उठे, जो भक्तजनों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हैं, आत्माराम (परमात्मा) हैं । ७९ गोपियों की प्रीति को बताते हुए उनकी आँखों से

उद्धवाच्या कंठीं श्रीपति। मिठी घालोनि स्फुंदत। ८० उद्धवा तूं आतां वेगें जायें। त्यांची दृढभक्ति कैसी ते पाहें। जे धरिती सदा माझी सोये। मी स्वप्नींही न विसंबें तयांसी। ८१ जे मज न विसरती सर्वथा। मी अखंड भोंवें त्यांभोंवता। मत्स्यकूर्मादि अवतार तत्त्वतां। घेतले भक्तांकारणें। ८२ उद्धवा त्यांची भक्ति पडली सगुणीं। वियोगें प्राण त्यागिती कामिनी। त्यांसी संपूर्ण ज्ञान उपदेशूनी। ब्रह्मवादिनी कराव्या। ८३ अध्यात्मविद्या दुर्लभ पूर्ण। उद्धवा तारी त्यांसी सांगोन। संतांवेगळें निर्वाणज्ञान। कोण उपदेशील दूसरें। ८४ ऐसें बोलोनि रमानाथ। उद्धवाच्या मस्तकीं ठेविला हात। जेणें पूर्वीं देवगुरूपाशीं बहुत। विद्याभ्यास पैं केला। ८५ आधींच बोलका विचक्षण। वरी वाचस्पतीपासीं अध्ययन। विशेष कृष्णकृपा परिपूर्ण। परम सज्ञान उद्धव। ८६ हरिचरणीं माथा ठेवूनी। उद्धव निघाला तेचि क्षणीं। दिव्य रथीं आरूढोनी। गोकुळपंथें चालिला। ८७ पहिल्याचि प्रेमळा गोकुळींच्या गोरटी। विशेष उद्धव चालिला त्यांच्या भेटी। आधींच वाराणसी

अश्रुधाराएँ झर रही थीं। (फिर) उद्धव के गले में बाँहें डालकर श्रीकृष्ण सुबक-सुबककर रोने लगे। ८० (वे बोले—) "हे उद्धव, अब तुम वेगपूर्वक जाना और देखना कि (मेरे प्रति) उनकी कैसी दृढ़ भक्ति है। जो मुझसे नित्य मित्रता धारण करते हैं, मैं उनको स्वप्न (तक) में नहीं भूल जाता। ८१ जो मुझे बिलकुल नहीं भूलते, मैं उनके चारों ओर अनवरत मँड़राता रहता हूँ। मैंने भक्तों के हेतु (ही) वस्तुतः मत्स्य, कूर्म आदि अवतार धारण किये थे। ८२ हे उद्धव, उनकी भक्ति (मेरे) सगुण (रूप) में जड़ी हुई है। वे कामिनियाँ (मेरे) वियोग से प्राणों को त्याग देंगी। (अतः) उनको सम्पूर्ण (ब्रह्म-) ज्ञान का उपदेश देते हुए उनको (निर्गुण) ब्रह्मवादी बना देना। ८३ अध्यात्मविद्या पूर्ण रूप से दुर्लभ है। हे उद्धव, उनको (वही) बताकर तुम उनको उबार दो। सन्तों के अतिरिक्त दूसरा कौन (उन्हें) वेदान्तज्ञान का उपदेश दे सकता है?"। ८४ रमानाथ विष्णुस्वरूप कृष्ण ने इस प्रकार बोलकर उन उद्धव के मस्तक पर हाथ रखा, जिन्होंने पूर्वकाल में देवगुरु बृहस्पति से बहुत विद्याध्ययन किया था। ८५ पहले ही (एक तो) वे (अच्छे) वक्ता थे, विचक्षण (बुद्धिमान) थे। तिसपर उन्होंने बृहस्पति से (विद्याओं का) अध्ययन किया था। (फिर) कृष्ण की उनपर परिपूर्ण विशेष कृपा थी। (इस प्रकार) उद्धव परम ज्ञानवान थे। ८६ उसी क्षण कृष्ण के चरणों पर सिर रखकर (झुकाकर) उद्धव चल दिये। वे दिव्य रथ में आरूढ़ होकर गोकुल के मार्ग से चले गये। ८७ पहले ही गोकुल की गोरियाँ प्रेममय (भक्तिभावपूर्ण) थीं। (फिर) विशेष बात यह कि उद्धव उनसे मिलने के लिए चल दिये। पहले ही से वाराणसी नगरी सुन्दर है;

नगरी गोमटी । त्यावरी जान्हवी आली तेथें । ८८ सुदैवासी सांपडे परिस । पुण्यवंता जोडे निर्दोष यश । दिव्य अंजन पायाळास । अकस्मात लाधे जेवीं । ८९ आधींच वन शोभिवंत । त्याहीवरी आला वसंत । पहिलेचि चतुर पंडित । प्रेमळ भक्त त्याहीवरी । ९० आधींच कौस्तुभ तेजागळा । वरी विष्णूच्या वक्षःस्थळीं मिरवला । आधींच उदार दाता भला । त्याहीवरी सांपडला धनकूप । ९१ तैसा ओढवेल आतां रस । उद्धव आवडता श्रीकृष्णास । विशेष बोधूं चालिला गोपिकांस । तो सुरस रस अवधारा । ९२ असो वातवेगें रथ चालिला । उद्धव गोकुळासमीप आला । तों गाई परतल्या गोकुळा । गोरजें झांकिला रथ तेथें । ९३ गोरजस्नान पुण्यागळें । रथासमवेत उद्धवें केलें । गोभार चहूंकडे दाटले । उद्धवें थोपिलें रथातें । ९४ जे जे कृष्णें लाविली रीती । तैसेचि नित्य गोपाळ वर्तती । वेदाज्ञेप्रमाणें चालती । विद्वज्जन जैसे कां । ९५ पुढें गाईंचे भार चालती । मागें गोप हरिलीला गाती । एक कृष्णवेष घेऊनि हातीं । मुरली धरूनि उभा असे । ९६

तिसपर जाह्नवी गंगा वहाँ आ गयी । ८८ जिस प्रकार, भाग्यवान को पारस मिल गया हो, पुण्यवान को निर्दोष (विशुद्ध) यश प्राप्त हुआ हो, जिस प्रकार, पदजनमे* व्यक्ति को अकस्मात दिव्य अंजन प्राप्त हो जाए; पहले ही वन शोभायमान हो और तिसपर बसन्त ऋतु आयी हो, पहले ही से कोई चतुर पण्डित हो और तिसपर वह प्रेममय भक्त हो, पहले ही कौस्तुभ रत्न तेज में अनोखा होता है, तिसपर वह भगवान विष्णु के वक्षःस्थल पर शोभायमान हो गया है, पहले ही से कोई (व्यक्ति) भला उदारदाता हो, तिसपर उसे धन से भरा-पूरा कूआँ मिल गया हो, उसी प्रकार पहले से गोपियाँ भावुक प्रेममयी थीं और तिसपर उद्धव-जैसे ब्रह्मज्ञानी उनसे मिलने के लिए चले गये थे, तो अब (वहाँ) रस उमड़ उठेगा । उद्धव तो श्रीकृष्ण के बहुत प्यारे थे, फिर विशेष रूप से वे गोपियों को उद्‌बोधित करने के लिए चले जा रहे थे । (अब) वह मधुर रस (की बात) सुनिए । ८९-९२ अस्तु । रथ वायुवेग से जा रहा था । (शीघ्र ही) उद्धव गोकुल के समीप आ गये; तब गायें गोकुल के प्रति लौट रही थीं । (अतः) वहाँ पर रथ गायों के पैरों से उड़ती धूलि में छिप गया । ९३ (तब) उद्धव ने रथ-सहित अनोखा पुण्यप्रद गोरज-स्नान किया । चारों ओर गायों के झुण्डों की भीड़ मच गयी, तो उद्धव ने रथ को रोक लिया । ९४ कृष्ण ने जो-जो रीति (आदत) लगा दी थी (प्रतिष्ठित कर दी थी), गोपाल वैसे ही (उनके अनुसार) नित्य व्यवहार करते थे, जिस प्रकार विद्वज्जन वेदों की आज्ञा के अनुसार चलते हैं । ९५ आगे (-आगे) गायों के झुण्ड चल रहे थे । (पीछे-) पीछे गोप (-बालक) श्रीहरि की लीलाओं का गान कर रहे थे । (उनमें से) एक कृष्ण का [* टिप्पणी देखें पृ० ६०८ पर]

घुमऱ्या पांवे टाळ मृदंग। मधुर गायन राग उपराग। हरिपदीं धरूनि अनुराग। लीला गाती हरीची। ९७ कृष्णवेष जेणें धरिला। केवळ कृष्णचि ऐसा भासला। भोंवता गोपाळांचा मेळा। चामरें वरी ढाळीत। ९८ मुख दिसे त्याचें सांवळें। गोचरणरज त्यावरी बैसले। पांडुरवर्ण मुख शोभलें। तें वर्णिलें नच जाय। ९९ श्रीधर म्हणे मज येथें दृष्टांत। स्फुरला तो ऐका प्रेमळ भक्त। भीमातटविहारी पंढरीनाथ। बुका उधळत तयावरी। १०० उदार मुख चांगलें। त्याहीवरी शुभ्रवर्ण मिरवलें। जैसें इंद्रनीळासी घातलें। काश्मीराचें सतेज कवच। १०१ असो उद्धवें देखोनि तो महोत्सव। अंगीं दाटले अष्टभाव। म्हणे धन्य धन्य या जनांचें दैव। अद्‌भुत पुण्य आचरले। २ धन्य वृंदावनींचे तृणपाषाण। लागले जेथें कृष्ण-चरण। जन्मसार्थक परिपूर्ण। केलें याचि लोकांनीं। ३ गोकुळांत प्रवेशला रथ। राजबिदीनें सत्वर जात। घरोघरीं। कृष्णलीला गात। श्रवणीं ऐकत उद्धव। ४ गाई वाड्यांत प्रवेशतो वेगेंसीं। जे जे गाईसवें जैसी।

वेश धारण करके हाथ में मुरली लिये हुए खड़ा (हो गया) था। ९६ घुमरियाँ, बाँसुरियाँ, झाँझ, मृदंग बज रहे थे। रागों-उपरागों में मधुर गायन चल रहा था। वे कृष्ण के चरणों में अनुराग धारण करके उनकी लीलाओं का गान कर रहे थे। ९७ जिसने कृष्ण-वेश धारण किया था, वह कृष्ण-जैसा ही आभासित हो रहा था। चारों ओर से गोपालों का समुदाय उसके ऊपर चँवरियाँ झुला रहे थे। ९८ उसका मुख साँवला दिखायी दे रहा था। उसपर गायों के पैरों से उड़े हुए धूलिकण बैठे (चिपके) थे। उसका श्वेतवर्ण-मुख शोभायमान था। उसका वर्णन किया ही नहीं जा पाएगा। ९९ (कवि) श्रीधर कहते हैं— हे प्रेममय भक्तो, यहाँ मुझे एक दृष्टान्त सुझायी दिया, उसे सुनिए। वे (मानो) भीमा नदी के तट पर विहार करनेवाले पण्ढरीनाथ हैं। उनपर अबीर उछाल दिया जा रहा था। १०० उसका मुख प्रभावशाली सलोना था; उसी पर शुभ्रवर्ण शोभायमान था, जैसे इन्द्रनील पर केसर का तेजस्वी कवच डाला हो। १०१ अस्तु। उद्धव द्वारा उस बड़े उत्सव को देखकर उसके अंग में (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रुपात, प्रलय जैसे) अष्ट सात्त्विक भाव उमड़ उठे। वे बोले, 'इन लोगों का भाग्य धन्य है, धन्य है। उन्होंने अद्‌भुत पुण्याचरण किया हो। २ जहाँ कृष्ण के चरण लगे हैं, उस वृन्दावन के तृण और पाषाण धन्य हैं। इन्हीं लोगों ने अपने जन्म को परिपूर्ण रूप से सार्थक किया है'। ३ (तदनन्तर) रथ गोकुल में प्रविष्ट हो गया। वह राजमार्ग में शीघ्रतापूर्वक चला जा रहा था। (लोग) घर-घर कृष्णलीला का गान कर रहे थे। उन्हें उद्धव अपने कानों से सुनता (जाता) था। ४

गोपिका रीती दावती तैसी । उद्धव जातां लक्षीतसे । ५ श्रीकृष्णलीला कानीं ऐकतां । गाईंसी पान्हा फुटे तत्त्वतां । कृष्णध्यानगीत गातां । ऐकतां गाई हुंबरती । ६ यालागीं हातीं भरणा घेऊनी । हरिलीला गाय एक कामिनी । म्हणे वैकुंठपति चक्रपाणी । नंदसदनीं अवतरसी तूं । ७ हे रमापते निजकुळ-भूषणा । हे राधावल्लभा गोवर्धनोद्धारणा । हे मुरलीधरा पूतनाप्राणहरणा । दुर्जनभंजना केशवा । ८ ऐशा घरोघरीं गोपी गाती गीत । मग गाईंसी पान्हा फुटत । तें तें उद्धव विलोकीत । प्रेमभरित जाहला । ९ ऐकिल्याविण मुरलीस्वर । एक गाई काढूं नेदी धार । असो उद्धव नंदद्वार । एकाएकीं पावला । ११० नंदें उद्धव देखिला । परमहर्षें पुढें धांविन्नला । क्षेमालिंगन ते वेळां । प्रेमभरें दीधलें । १११ रथ सोडिला बाहेर । नंदें उद्धवाचा धरिला कर । प्रवेशोनि निजमंदिर । उत्तमासनीं बैसविला । १२ उद्धवाची पूजा करून । मग नंद पुसे वर्तमान । म्हणे सुखी कीं मनमोहन । बोलतां नयनीं जल भरे । १३ उद्धवा कृष्ण आतां न ये येथें । उपेक्षूनि गेला

गायें घर (-घर) में वेगपूर्वक प्रवेश करने लगीं। जिस-जिस गाय के साथ (कोई) गोपी जैसी-जैसी आचरण की रीति दिखाती थी, उद्धव जाते-जाते उसे देख रहे थे। ५ कानों से श्रीकृष्ण की लीलाएँ सुनने पर गायें सचमुच पन्हिया उठीं। कृष्ण के ध्यान सम्बन्धी गीत गाने पर उसे सुनते ही गायें रँभाने लगतीं। ६ इसके लिए हाथ में दूधपात्र लेकर कोई एक कामिनी कृष्ण की लीला गाने लगी। वह बोली, 'हे वैकुण्ठपति, चक्रपाणि, भगवान, तुम नन्द के घर अवतरित हुए हो। ७ हे रमापति, हे अपने कुल के आभूषण, हे राधावल्लभ, हे गोवर्धन के उद्धारक, हे मुरलीधर, हे पूतना-प्राणहारक, हे दुर्जनों को मार डालनेवाले, हे केशव'। ८ इस प्रकार गोपियाँ घर-घर गीत गाती थीं। तब गायें पन्हिया उठतीं। उस-उसको उद्धव देखते थे। उसे देखकर वे प्रेम से भर उठे। ९ मुरली का स्वर बिना सुने एक भी गाय दूध दुहने नहीं देती थी। अस्तु। उद्धव नन्द के द्वार पर अनपेक्षित रूप से पहुँच गये। ११० नन्द ने उद्धव को देखा, तो वे परम हर्ष के साथ (अगुवानी के लिए) आगे दौड़े। उन्होंने उस समय प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन किया। १११ रथ को बाहर खोल दिया। फिर नन्द ने उद्धव का हाथ थाम लिया और अपने घर के अन्दर प्रविष्ट होकर उन्हें उत्तम आसन पर बैठा दिया। १२ उद्धव का पूजन करके फिर नन्द ने उनसे (कुशल-) समाचार पूछा। वे बोले, 'मनमोहन कृष्ण सकुशल तो है?' यह बोलते (-बोलते) उनके नयनों में (अश्रु-) जल भर गया। १३ (वे बोले—) 'हे उद्धव, कृष्ण अब यहाँ नहीं आएगा। हमें (उपेक्षा के साथ) छोड़कर वह चला गया है। मुझे कृष्णनाथ (ही) ने साँप के मुख

आम्हांतें। सर्पमुखींहूनि मातें। कृष्णनाथें सोडविलें। १४ पूतना तृणावर्त अघासुर। कालिया मर्दूनि प्राशिला वैश्वानर। गोवर्धन उचलूनि थोर। पराक्रम दावियेला। १५ सद्‌गद होवोनि नंद सांगत। तों यशोदाही आली तेथ। मथुरेचा हरिप्रताप समस्त। उद्धव सांगे तयांसी। १६ गेलिया दिवसापासूनि आघवे। जे जे पुरुषार्थ केले माधवें। ते ते सकळ वर्णिले उद्धवें। ऐकतां दोघें तटस्थ। १७ माया म्हणे काय करूं विचार। हरीविण शून्य दिसे मंदिर। उद्धवा या स्थळीं श्यामसुंदर। जन्मला साचार जाण पां। १८ या पालखीं हरि निजविला। येचि न्हाणिये म्यां न्हाणिला। याचि मंचकावरी पहुडला। मजपुढें उद्धवा तो। १९ याचि डोल्हारां घडीघडी बैसे। पहा शिरींचीं मयूरपिच्छें। वनमाळांचे भार ज्या सुवासें। मंदिर अवघें दुमदुमित। १२० कृष्णाची घोंगडी पांवा काठी। हेचि गुंजांचे हार झळकत होते कंठीं। कृष्णाचीं बाळलेणीं गोमटीं। माया दावीत उद्धवातें। १२१ पदक वाघनखें बिदलीं। काढूनि उद्धवासी दाविलीं। मग करुणास्वरें हांक फोडिली। म्हणे वनमाळी कधीं येसी। २२ गोविंदा कृष्णा

में से छुड़ाया था। १४ पूतना, तृणावर्त, अघासुर (को मार डालकर) और कालिय का मर्दन करके उसने आग को (पीकर) निगल डाला। प्रचण्ड गोवर्धन को उठाकर उसने (महान) शक्ति प्रदर्शित की'। १५ बहुत गद्‌गद होकर नन्द यह कहते जा रहे थे कि (तब) यशोदा भी वहाँ आ गयी। उद्धव ने उनको मथुरा में (कृष्ण द्वारा प्रदर्शित) किया हुआ समस्त प्रताप बता दिया। १६ (गोकुल से) जाने के दिन से कृष्ण ने जो-जो समस्त पुरुषार्थयुक्त प्रताप किये, उन सबका वर्णन उद्धव ने किया। वे दोनों उसको सुनते हुए चकित हो गये। १७ (तदनन्तर) माता (यशोदा) बोली, 'मैं (और क्या) विचार करूँ? कृष्ण के अभाव से घर सूना दिखायी दे रहा है। हे उद्धव, समझ लो, श्यामसुन्दर सचमुच इस स्थान पर जनमा था। १८ मैंने इस पालने में कृष्ण को सुलाया था; इसी स्नानघर में मैंने उसे नहलाया था। हे उद्धव, इसी पलंग पर वह मेरे सामने (पास) पौढ़ता था। १९ वह इसी झूले पर बार-बार बैठता था। देखो ये उसके सिर पर के मयूरपंखों और ये वनमालाओं के ढेर, जिसकी सुगन्ध से सम्पूर्ण घर महकता था। १२० (देखो) यह कृष्ण की कमरिया, बाँसुरी और लकुटिया। ये ही गुंजाहार उसके गले में चमकते हुए सुशोभित होते थे'। (फिर) माता ने कृष्ण के बचपन के सलोने आभूषण उद्धव को दिखा दिये। १२१ उसने पदिक, बघनखे, बिन्दुलियाँ निकालकर उद्धव को दिखा दिये। अनन्तर वह करुण स्वर में चीख़ने-चिल्लाने लगी। वह बोली, 'रे वनमाली, (अब) तू कब आएगा? २२ रे गोविन्द, रे कृष्ण, रे यादव, रे जगमोहन, रे हरि, रे माधव,

यादवा। जगन्मोहना हरि माधवा। तुजविण आम्ही करुणार्णवा। काय येथें करावें। २३ माझिया श्रीरंगा डोळसा। सुकुमारा सांवळ्यां पाडसा। गेलासी टाकूनि राजसा। पुराणपुरुषा श्रीहरे। २४ तुज म्यां बांधिलें उखळीं। म्हणोनि रुसलासी वनमाळी। तुजहातीं गुरें राखविलीं। नेणोनियां सर्वेशा। २५ तुज पायांवरी न्हाणिलें। मृत्तिका भक्षितां ताडिलें। माझे हात हे जळाले। कैसी भ्रांत झाल्यें मी। २६ तुझें स्वरूप नेणो हृषीकेशी। म्हणोनियां रुसलासी। तूं क्षीरसागरविलासी। दटाविती गोपी तूंतें। २७ तुझ्या पोटीं जन्मला परमेष्ठी। हृदयीं ध्याय धूर्जटी। तूं सर्वांवरिष्ठ जगजेठी। झिडकारिती गोपी तूंतें। २८ उद्धवा नलगे घरदार आतां। मी कोठें जाऊं सांग तत्त्वतां। उद्धव या गोष्टी ऐकतां। हृदयीं जाहला सद्गद। २९ उद्धव म्हणे धन्य तुमचा भाव। तुमच्या मंदिरीं क्रीडला रमाधव। नाना विलास कौतुकलाघव। दाविलें सर्व तुम्हांतें। १३० जें गजास्यजनकाचें हृदयरत्न। जें पद्मोद्भवाचें देवतार्चन। जें नारदादिकांचें गायन पूर्ण। सनकादिकांची ध्येय मूर्ति। १३१ जें मूळप्रकृतीचें निजमूळ।

हे करुणासागर, तेरे बिना हम यहाँ क्या करें ? २३ रे मेरे श्रीरंग, रे सुन्दर आँखोंवाले, रे सुकुमार, रे साँवले, रे बछड़े, रे राजस, रे पुराण-पुरुष, रे श्रीहरि, तू (हमें) छोड़कर चला गया है। २४ मैंने तुझे ऊखल से बाँधा था, इसलिए रे वनमाली, तू रूठ गया है। रे सर्वेश, मैंने (तुझे ठीक से) न जानते हुए (अनजाने में) तेरे हाथों गोरुओं की रखवाली करवायी। २५ मैंने तुझे (अपने) पैरों पर (लिटाकर) नहलाया। मिट्टी खाने पर तुझे पीटा। ये मेरे हाथ जल गये (जल जाएँ)। मैं कैसे भ्रम में पड़ गयी थी ? २६ रे हृषीकेशी, हम तेरे स्वरूप को नहीं जानते थे, इसलिए तू रूठ गया है। तू तो क्षीरसागर-विलासी (भगवान) है; (फिर भी) गोपियाँ तुझे डाँटती थीं (डराती-धमकाती थीं)। २७ तेरे उदर से (उदर की नाभि में उत्पन्न कमल-पुष्प में) ब्रह्मा जनमे; शिवजी (अपने) हृदय में (तेरा) ध्यान करते हैं। तू तो सर्वोपरि जगद्श्रेष्ठ है; (फिर भी) गोपियाँ तुझे दुत्कारती थीं। २८ हे उद्धव, अब (मुझे) घर-बार नहीं आवश्यक जान पड़ता (नहीं चाहिए)। सचमुच बता दो, (अब) कहाँ जाऊँ ?' इन बातों को सुनते हुए उद्धव बहुत गद्गद हो उठे। २९ (तदनन्तर) उद्धव बोले, 'तुम्हारी भावना धन्य है। तुम्हारे घर रमापति खेलते रहे। उन्होंने तुम्हें नाना लीला-विलास और माया-चमत्कार —सब दिखा दिया। १३० जो गणेशजी के पिता शिवजी के हृदय में स्थित रत्न हैं, जो कमलोद्भव ब्रह्मा द्वारा पूजन किये जानेवाले देवता हैं, जो नारद आदि के सम्पूर्ण गायन-विषय हैं, जो सनक आदि के लिए ध्यान करने की मूर्ति हैं, जो मूल (आदि) प्रकृति का अपना मूल

जें निगमवृक्षाचें सुपक्क फळ। तो ब्रह्मानंद वैकुंठपाळ। तुमचे घरीं क्रीडला। ३२ ऐसें बोलतां सरली यामिनी। घरोघरीं जाग्या जाहल्या कामिनी। उद्धव प्रातःस्नानासी ते क्षणीं। जाता जाहला यमुनेसी। ३३ तों घरोघरीं हरिस्मरण होत। दीप लाविले लखलखीत। सडासंमार्जन करूनि प्रशस्त। वास्तुपूजा करिताती। ३४ मुखीं गात हरीच्या लीला। गोपी घालिती रंगमाला। अंग प्रक्षालूनि अबला। कनकांबरें नेसती। ३५ दिव्य अलंकारांची प्रभा फांकली। आरक्त कुंकुम शोभे निढळीं। अंजन विराजे नेत्रकमळीं। मुक्तजाळी शिरीं शोभे। ३६ जडिततार्टकें कर्णीं दिसती। घुसळितां सतेज तळपती। कर्णीं मुक्तघोंस ढाळ देती। कृत्तिकापुंज जेवीं गगनीं। ३७ विद्युत्प्राय झळकती चुडे। मंदिरीं घुसळितां प्रभा पडे। कंठीं एकावळी डोलती कोडें। बाहुभूषणें शोभती। ३८ माजीं रत्नजडित कांची। प्रभा फांके मुद्रिकांची। पायीं नूपुरें पैंजणांची। ध्वनि उमटे चालतां। ३९ देखतां त्यांचा वदनचंद्र। देवांगना लाजती समग्र। हंसगमना त्या परम

(बीज, जड़) हैं, जो वेदस्वरूप वृक्ष के सुपक्व फल हैं, वे ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) रूप वैकुण्ठपालक तुम्हारे घर खेलते थे'। १३१-१३२ इस प्रकार बातें करते-करते रात समाप्त हुई। घर-घर में नारियाँ जाग उठीं। उस क्षण उद्धव प्रातःस्नान के लिए यमुना की ओर चल दिये। ३३ तब घर-घर श्रीहरि का स्मरण हो रहा था। (गोपियों ने) जगमगानेवाले दीप जला दिये। वे प्रशस्त रूप से सिंचन-संमार्जन करके वास्तुपूजन कर रही थीं। ३४ गोपियाँ मुख से श्रीहरि की लीलाओं का गान कर रही थीं और रंगोलियाँ सजा रही थीं। (उस समय) स्नान करके स्त्रियों ने पीताम्बर पहने। ३५ (उनके द्वारा पहने) दिव्य आभूषणों की कान्ति फैल गयी थी। उनके भाल पर लाल कुंकुम (-तिलक) शोभायमान था। नेत्रकमलों में अंजन सुशोभित था और सिर पर मोतियों की जालियाँ शोभा दे रही थीं। ३६ कानों में (रत्न-) जटित ताटंक दिखायी दे रहे थे। मन्थन करते समय वे जगमगाते थे। कानों में मोतियों के गुच्छे कान्ति प्रकट कर रहे थे (चमक रहे थे), जैसे आकाश में कृत्तिका नक्षत्रों का पुंज (समुदाय) करता है। ३७ उनकी चूड़ियाँ बिजली-जैसी चमकती थीं; घर में मन्थन करते समय उनका तेज फैल जाता था। कण्ठ में एकावलियाँ (इकलरी मालाएँ) मजे में झूलती थीं; बाहुओं में आभूषण शोभायमान थे। ३८ बीच (कमर) में रत्नजटित करधनी थी। अँगूठियों की प्रभा फैलती थी। चलते समय, पाँवों में पहने हुए नूपुरों और पायलों की ध्वनि उत्पन्न होती थी। ३९ उनके मुखचन्द्रमा को देखकर समस्त देवांगनाएँ लज्जित हो जाती थीं। वे परम चतुर, हंसगामिनी नारियाँ घर-घर मन्थन करती थीं। १४०

चतुर। घरोघरीं घुसळिती। १४० घरोघरीं डेरे घुमघुमती। नाना कृष्ण-लीला गोपी गाती। तें श्रवण करीत यमुनेप्रती। उद्धव भक्त जातसे। १४१ तमारिकन्येचें तीर। उद्धव विलोकी समग्र। म्हणे हे धन्य पाषाण तरुवर। कृष्णदृष्टीं उद्धरले। ४२ तों वासरमणिचक्र प्रकटलें। मंथन गोपिकांचें संपलें। यमुनाजीवनालागीं ते वेळे। घट घेवोनि चालिल्या। ४३ नंदद्वारा-वरूनि गोपी जात। तों तेथें देखिला दिव्य रथ। म्हणती कोणाचा स्यंदन येथ। कोण आला न कळेचि। ४४ म्हणती निर्दय तो अक्रूर। जेणें नेला जगदुद्धार। आतां कोण आला तो समाचार। नेणवेचि साजणी। ४५ ऐसा गोपी तेव्हां बोलती। कृतांतभगिनीप्रति जाती। तों येतां देखिली दिव्य मूर्ती। उद्धवाची तेधवां। ४६ मित्रकन्यातीरीं स्नान केलें। शुद्ध द्वादश टिळे रेखिले। नेसला वसन पिवळें। उत्तरीय वस्त्र रुळे दिव्य। ४७ कृष्णाचसारिखे कृष्णभक्त। अलंकार तैसेचि शोभत। गोपिका निरखूनि पाहत। तों तेथें उद्धव ओळखिला। ४८ जैसा विद्युल्लतेचा भार। तैसा अलंकारमंडित समग्र। गजगामिनी मिळाल्या अपार। उद्धवाभोंवत्या ते

घर-घर में घड़े गूँजते थे। गोपियाँ कृष्ण की नाना लीलाओं का गान करती थीं। उसे सुनते हुए भक्त उद्धव यमुना की ओर जा रहे थे। १४१ सूर्यकन्या यमुना के समग्र तीर का उद्धव ने अवलोकन किया। उन्होंने कहा (माना), 'ये वृक्ष और पाषाण धन्य हैं।' वे कृष्ण की दृष्टि से उबर गये। ४२ तब सूर्यबिम्ब प्रकट हुआ। (इधर) गोपियों का मन्थन समाप्त हुआ। (अनन्तर) उस समय वे घड़े लेकर यमुना नदी का पानी लाने के लिए चल दीं। ४३ (जब) नन्द के द्वार होकर गोपियाँ जा रही थीं, तो उन्होंने एक दिव्य रथ देखा। वे बोलीं, 'यहाँ किसका रथ है? समझ में नहीं आता कि कौन आया है'। ४४ (वे बोलीं—) 'वह अक्रूर निर्दय था, जो जगदुद्धारक (कृष्ण) को ले गया। री सजनी, यह समाचार विदित ही नहीं हो रहा है कि अब कौन आया है'। ४५ तब गोपियाँ इस प्रकार बोल रही थीं। वे यमभगिनी यमुना की ओर चली गयीं। तो उस समय उन्होंने उद्धव की दिव्य मूर्ति को आते देखा। ४६ उन्होंने यमुना तट पर स्नान किया था, (भाल पर) शुद्ध बारह तिलक अंकित किये थे। उन्होंने पीत वस्त्र पहन लिया था। दिव्य उत्तरीय वस्त्र झूलते हुए शोभायमान हो रहा था। ४७ वे कृष्णभक्त कृष्ण ही जैसे थे। (उनके पहने हुए) आभूषण वैसे ही शोभायमान थे। (जब) गोपियों ने निरखकर देखा, तो वहाँ पर उन्होंने उद्धव को पहचान लिया। ४८ जैसा विद्युल्लता का पुंज (जगमगाता) हो, वैसे वे समस्त आभूषणों से मण्डित (जगमगा रहे) थे। उस समय अनगिनत गजगामिनी गोपियाँ उद्धव के चारों ओर इकट्ठा हो गयीं। ४९ जिस प्रकार तारासमूह

वेळां। ४९ अत्रिपुत्रवेष्टित तारागणें। कीं मित्रवेष्टित जेवीं किरणें। उद्धव वेष्टिला प्रकारें तेणें। सर्व कामिनी मिळोनियां। १५० मस्तकीं उदकें पूर्ण घागरी। कोणी रित्याचि घेतल्या शिरीं। देहभाव विसरोनि नारी। कृष्णउपासक वेष्टिला। १५१ उद्धवाचे चरण धरोनि भावें। म्हणती पाठविलासी श्रीमाधवें। गोकुळ टाकोनि मथुरेसी रहावें। बरवें केशवें हें केलें। ५२ मातापितयांचा वृत्तांत। घ्यावया तुज पाठविलें येथ। येऱ्हवीं आणिक त्याचा आप्त। येथें कोणी दिसेना। ५३ तों तेथें एक भ्रमर। अकस्मात पातला सुंदर। रुंजी घालीत क्षणमात्र। गोपिकांनीं देखिला। ५४ अन्योक्तीनें गोपी बोलत। कृष्णापासूनि आलासी त्वरित। तूंही कृष्णवर्ण दिसतोसी सत्य। पाहसी चित्त गोपिकांचें। ५५ कळलासी तूं कृष्णाचा हेर। पाळती घेतोसी समग्र। तूं शठाचा मित्र शठ साचार। कासया येथें रुणझुणसी। ५६ एका कमळावरी चित्त। न बैसे तुझें सावचित्त। दशदिशा हिंडसी व्यर्थ। चंचळ मन सदा तुझें। ५७ तूं ज्यापासूनि आलासी पाहीं। त्याचें मन न बैसे एके ठायीं। भ्रमरा तूं मथुरेसी जाईं। सांग हरीसी जाऊनियां। ५८ म्हणावें मथुरेच्या नारी। आतां भोगीं तूं पूतनारी।

से अत्रिपुत्र (चन्द्रमा) घिरा होता है, अथवा जैसे सूर्य को किरणें घेर लेती हैं, उसी प्रकार समस्त स्त्रियों ने इकट्ठा होकर उद्धव को घेर लिया। १५० (कुछ एक के) मस्तक पर पानी से पूर्ण (भरी हुई) गगरियाँ थीं, तो कुछ एक ने सिर पर रीती ही रखी थीं। उन नारियों ने देहभाव को भूलकर कृष्णोपासक उद्धव को घेर लिया। १५१ भक्तिभाव से उद्धव के चरण पकड़कर वे बोलीं, " श्रीमाधव ने (तुम्हें) भेजा (होगा)। यह अच्छा किया कि गोकुल छोड़कर केशव (कृष्ण) मथुरा में रहा। ५२ माता-पिता का समाचार जान लेने के लिए उसने तुम्हें यहाँ भेजा (होगा)। नहीं तो, उसका और कोई अपना (सगा, मित्र) यहाँ नहीं दिखायी देता "। ५३ तब एक सुन्दर भ्रमर अकस्मात वहाँ आ पहुँचा। वह क्षण भर गुनगुनाते हुए मँड़राता रहा। उसे गोपियों ने देखा। ५४ गोपियों ने अन्योक्ति से कहा, " तू कृष्ण के पास से झट से आ गया है। सचमुच तू भी कृष्णवर्ण दिखायी दे रहा है। तू गोपियों के चित्त को (परखकर) देख रहा है। ५५ तू कृष्ण का गुप्तचर (जासूस) जान पड़ता है। तू सब टोह ले रहा है। शठ का मित्र तू सचमुच शठ है। यहाँ किसलिए रुनझुना रहा है। ५६ तेरा चित्त एक कमल पर नहीं बैठता (स्थिर रहता)। तू दसों दिशाएँ व्यर्थ घूम रहा है। तेरा मन सदा चंचल (बना रहता) है। ५७ देख ले, तू जिसके पास से आया है, उसका मन एक स्थान पर सुख-शान्ति से स्थिर होकर नहीं बैठता। रे भ्रमर, तू मथुरा जा और जाकर कृष्ण से कह दे। ५८ कहना, ' रे पूतनारि, अब तू मथुरा की

आम्हांहूनि कुब्जा सुंदरी। तुवां निवडिली डोळसा।५९ परम अपवित्र कुब्जा। तिशीं रतलासी विश्वबीजा। तुझ्यायोग्य जोडा अधोक्षजा। दासी सर्वथा नव्हेचि।१६० सोनें आणि शेण साच। जोडा नव्हे कांच आणि पाच। तैसी कुब्जा आणि परब्रह्म साच। जोडा नव्हे सर्वथा।१६१ कीं हिरा आणि गार। कीं वायस आणि खगेंद्र। तैसी कुब्जा आणि कमलनेत्र। जोडा नव्हे सर्वथा।६२ समुद्र आणि सौंदणी। कीं खद्योत आणि वासरमणी। तैसी कुब्जा आणि चक्रपाणी। जोडा नव्हे सर्वथा।६३ कीं ओहळ आणि भागीरथी। कीं अजा आणि ऐरावती। तैसी कुब्जा आणि जगत्पती। जोडा नव्हे सर्वथा।६४ कीं पेंड आणि कर्पूर। कीं हंस आणि घुबड अपवित्र। तैसा कुब्जा आणि श्रीधर। जोडा नव्हे सर्वथा।६५ कीं कोळसा आणि कस्तूरी। कीं दरिद्री आणि विष्णूची अंतुरी। तैसी कुब्जा आणि कंसारी। जोडा नव्हे सर्वथा।६६ संत आणि निंदक। पंडित आणि अजारक्षक। तैसी कुब्जा आणि जगन्नायक। जोडा नव्हे सर्वथा।६७ कीं वेदांत आणि कोकशास्त्र। कीं रंक आणि सहस्त्रनेत्र। तैसी कुब्जा आणि

नारियों का उपभोग कर ले। हे सुन्दर आँखों वाले, तूने हमारी अपेक्षा कुब्जा सुन्दरी को (अब) चुना है।५९ रे विश्व-बीज, कुब्जा तो परम अपवित्र है। तू उससे रत रहा है। रे अधोक्षज, वह दासी तेरे जोड़ की बिलकुल नहीं है।१६० सचमुच, सोना और गोबर, काँच और पन्ना जिस प्रकार जोड़ के (बराबरी के) नहीं होते, उसी प्रकार कुब्जा और परब्रह्म (कृष्ण) सचमुच बिलकुल जोड़ के नहीं हैं।१६१ अथवा हीरा और स्फटिक, अथवा कौआ और गरुड़ जिस प्रकार एक-दूसरे के जोड़ के नहीं होते, उसी प्रकार कुब्जा और कमलनयन सब प्रकार से एक-दूसरे के जोड़ के नहीं हो सकते।६२ समुद्र और धोबी का कपड़े धोने का पात्र, अथवा जुगनू और सूर्य जोड़ के नहीं हैं, उसी प्रकार कुब्जा और चक्रपाणि कृष्ण एक-दूसरे के जोड़ के बिलकुल नहीं हैं।६३ अथवा नाला और गंगा, अथवा बकरी और ऐरावत हथिनी जसे एक-दूसरे के जोड़ की नहीं हैं, उसी प्रकार कुब्जा और जगतपति कृष्ण का जोड़ बिलकुल नहीं हो सकता।६४ अथवा खली और कपूर, अथवा हंस और अपवित्र (अशुभ) उल्लू का जिस प्रकार जोड़ (उचित) नहीं है, उसी प्रकार कुब्जा और श्रीधर कृष्ण का जोड़ बिलकुल नहीं हो सकता।६५ अथवा कोयला और कस्तूरी, अथवा दरिद्र व्यक्ति और विष्णुपत्नी लक्ष्मी का जोड़ नहीं हो सकता, उसी प्रकार कुब्जा और कंसारि कृष्ण का जोड़ बिलकुल नहीं हो सकता।६६ सन्त और निन्दक, अथवा पंडित और गड़रिये का जिस प्रकार जोड़ नहीं हो सकता, उसी प्रकार कुब्जा और जगन्नायक कृष्ण का जोड़ बिलकुल नहीं हो सकता।६७ अथवा वेदान्त और कोकशास्त्र, अथवा

घनश्यामगात्र। जोडा नव्हे सर्वथा।६८ कीं अमृत आणि धुवण। कीं परीस आणि पाषाण। इतर खेडीं आनंदवन। जोडा नव्हे सर्वथा।६९ कीं भूत आणि कर्पूरगौर। कीं षंढ आणि प्रतापशूर। तैसी कुब्जा आणि कमलावर। जोडा नव्हे सर्वथा।१७० परमचतुर जगज्जीवन। भाळला कुब्जानारी देखोन। डोळे पिचके मुडे कान। मध्यें नासिक बैसलें।१७१ कोळशाहूनि कुब्जा गोरी। उवा सदा बुजबुजती शिरीं। गुडघे घांस त जाय चांचरी। तीस मुरारी भाळलासी।७२ रडत रडत सदा बोले। टांचा उलल्या खिरडत चाले। लंबस्तन अंग वाळलें। वस्त्र फाटलें चहूंकडे।७३ जैसा मृदंगमध्य देख। तैसा माज तिचा बारीक। मर्कटाऐसें तिचें मुख। तीस रमानायक भाळला।७४ हा तरी नंदाचा गुराखा। ते कंसाची दासी देखा। शोधूनि जोडा नेटका। बरा पाहिला विधीनें।७५ एक बोले बरवंटा। कुब्जा वृद्ध हरि धाकुटा। जो हरि वंद्य नीलकंठा। तिजशीं तो चेष्टा करीतसे।७६ एक म्हणे कुब्जेनें लाविला चंदन। त्यांत

रंक और इन्द्र का जोड़ नहीं हो सकता, उसी प्रकार कुब्जा और घनश्याम देहधारी कृष्ण का जोड़ बिलकुल नहीं हो सकता।६८ अथवा अमृत और धोवन, अथवा पारस और पाषाण, अन्य गाँव और आनन्दवन काशी का बिलकुल जोड़ नहीं हो सकता।६९ अथवा भूत और शिवजी, कायर नपुंसक और प्रतापशूर व्यक्ति का जोड़ नहीं हो सकता, उसी प्रकार कुब्जा और कमलावर विष्णुस्वरूप कृष्ण का जोड़ बिलकुल नहीं हो सकता।१७० परम चतुर जगज्जीवन कृष्ण कुब्जा नारी को देखकर (कैसे) मोहित हो गया? उस (कुब्जा) के नेत्र पिचपिचे हैं, कान मुड़े हुए हैं; नाक तो बीच में दबी हुई है।१७१ कुब्जा कोयले से गोरी है; उसके सिर में जुएँ सदा भीड़ लगाकर बिलबिलाती हैं; वह घुटनों के बल लड़खड़ाती हुई घिसती जाती है। उसपर, रे मुरारि, तू मोहित हो गया है।७२ वह नित्य रोते-रोते बोलती है। उसकी एड़ियाँ फट गयी हैं। उन्हें घसीटकर वह चलती है। उसके स्तन लम्बे हैं। बदन (रूखा-) सूखा हो गया है। चारों ओर से वस्त्र फट गया है।७३ देखो, मृदंग का जिस प्रकार मध्य (-भाग क्षीण) होता है, उसी प्रकार उसकी कमर पतली है। उसका मुँह बन्दर का-सा है। रमानायक कृष्ण उसपर मोहित हो गया है।७४ देखो, यह तो नन्द का चरवाहा है; (और इधर) वह कंस की दासी है। विधाता ने भली-चंगी जोडी खोजकर देखी (निकाली) है"।७५ कोई एक पतिव्रता (गोपी) बोली, 'कुब्जा बूढ़ी है, तो कृष्ण नन्हा है। जो कृष्ण नीलकण्ठ शिवजी के लिए वन्दनीय है, वह उससे हँसी-ठठोली करता है'।७६ कोई एक बोली, 'कुब्जा ने (कृष्ण को) चन्दन लगाया था; (जान पड़ता है कि) उसने

कांहीं घातलें मोहन। तरीच भुलला जगज्जीवन। कौटिल्य पूर्ण केलें तिनें। ७७ गदगदां हांसती गोरटी। ब्रह्मा उद्भवला ज्याचे पोटीं। तो कुब्जेसीं एकांतगोष्टी। करिताहे हें नवल पैं। ७८ कीं तिनें केला प्रेमाचा फांसा। त्यांत गोविलें हृषीकेशा। तिचा भाव देखोनि परमपुरुषा। प्रीति बहुत वाढली। ७९ एक म्हणती तिनें तप केलें बहुत। तरीच वश जाहला भगवंत। आम्ही हीनभाग्य यथार्थ। काय व्यर्थ गोष्टी ह्या। १८० ऐसें बोलतां गोपबाळा। टपटपां आंसुवें आलीं डोळां। म्हणती रे भ्रमरा चंचळा। जाय गोवळ्या सांगावया। १८१ म्हणावें गोपिका समस्त। हरि तुझ्या वियोगें पावल्या मृत्य। प्रेतें तरी येऊनि त्वरित। विलोकीं तूं दयाळा। ८२ सांग गोपिका जाळिल्या सकळिक। जाहली समस्तांची राख। त्या स्थळावरी येऊनि नावेक। मुरली वाजवीं एकदां। ८३ एक म्हणती सांगावें वनमाळी। गोपींची रक्षा उदकीं टाकिली। तूं येऊनि त्या जळीं। स्नान करीं भगवंता। ८४ आम्हांसी जाळिलें ज्या स्थळावरी। तेथें क्षणभरी उभा राहें तरी। पांवा वाजवूनि मुरारी। पाववीं पदा आपुल्या। ८५

उसमें कुछ मोहक (मोहित करनेवाली वस्तु) डाला होगा; तो ही जगज्जीवन कृष्ण उसपर मोहित हो गया है। उसने कोई पूरी कुटिलता (छल-कपट) की है'। ७७ (इसपर) वे गोपियाँ खिलखिलाकर हँसने लगीं। (उन्होंने माना कि) "यह चमत्कार है, जिसके उदर (-नाभि) से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, वह एकान्त में कुब्जा से बातें कर रहा है (एकान्त में साथ में रह रहा है)। ७८ अथवा उसने प्रेम का फंदा (तैयार) किया (होगा) और उसमें हृषीकेशी को उलझा दिया हो। उसकी भावना देखकर परमपुरुष को उसके प्रति प्रीति बहुत बढ़ गयी'। ७९ कुछ एक ने कहा, 'उसने बहुत तपस्या की (होगी), तो ही भगवान उसके वश में हो गया हो। हम सचमुच अभागिनी हैं। (अतः) ये व्यर्थ बातें क्या करें'। १८० उन गोपबालाओं द्वारा ऐसा कहते ही उनकी आँखों में झट से आँसू (भर) आये। वे बोलीं, "रे चंचल भ्रमर, उस ग्वाले के बच्चे को बताने के लिए चला जा। १८१ कह देना, 'रे हरि, समस्त गोपियाँ तुम्हारे वियोग से मृत्यु को प्राप्त हो गयी हैं। रे दयालु, झट से आकर उनके प्रेतों को तो देख लो'। ८२ कह देना, 'समस्त गोपियाँ जला दी गयीं, सबकी राख हो गयी। एक बार उस स्थान पर आकर क्षण भर के लिए मुरली बजा दो'। ८३ कुछ एक बोलीं, 'बता दो रे वनमाली, गोपियों की राख पानी में डाल दी है। रे भगवान, तुम आकर उस जल में स्नान कर लो। ८४ रे मुरारि, हमें जिस स्थान पर जलाया जाए, वहाँ क्षण भर तो खड़ा रहना और मुरली बजाकर अपने पदों को हमें प्राप्त करा देना"।' ८५ गोपियों की ऐसी भक्ति को देखकर

ऐसी गोपिकांची भक्ति देखोनी । उद्धव सद्गद जाहला मनीं । अश्रु पातले नयनीं । म्हणे धन्य कामिनी गोकुळींच्या । ८६ धन्य यांची भक्ति साचार । वश केला कमलावर । तों भ्रमर गेला तेथूनि दूर । स्वइच्छेनें तेधवां । ८७ मग उद्धवासी गोपबाळा । सद्गद बोलती ते वेळां । श्रीरंग आम्हांसी कंटाळला । टाकूनि गेला मथुरेसी । ८८ गोपिका आम्ही वज्राच्या कठिण । अजूनि आमुचे वांचले प्राण । आम्हांसी न ये कदा मरण । कृष्णवियोग होतांचि । ८९ आम्हां काळ न मारीच देख । भोगवीत वियोगाचें दुःख । अंतरला वैकुंठनायक । किती कष्ट भोगावे । १९० उद्धवा तूं जाय मथुरा-पुरा । आठव देईं यादवेंद्रा । म्हणावें विसरूं नको गोपदारा । परम उदारा श्रीपति । १९१ उद्धव अक्रूर तो परम क्रूर । तूं तरी भेटवीं यादवेंद्र । निर्दोष यश जोडेल साचार । तुजलागीं प्राणसखया । ९२ उद्धवा गोकुळ आहे जों जीवंत । तोंवरी भेटवीं रमानाथ । नरदेह गेलिया भगवंत । कैंचा मग आम्हांतें । ९३ घेऊनि तुजदेखतां पाषाण । मस्तक फोडूनि देऊं प्राण । मग तूं श्रीहरीसी सांग जाऊन । पावल्या मरण गोपिका । ९४ तूं जगद्वंद्याचा

उद्धव मन में बहुत गद्गद हो उठे। उनके नयनों में आँसू आ गये। वे बोले (उन्होंने माना)— 'गोकुल की ये नारियाँ धन्य हैं। ८६ इनकी भक्ति सचमुच धन्य है। (इसी के बल) इन्होंने कमलापति को (अपने) वश में कर लिया।' तो उस समय वह भ्रमर अपनी इच्छा से वहाँ से दूर चला गया। ८७ अनन्तर गोपबालाएँ बहुत गद्गद होकर उस समय उद्धव से बोलीं, 'श्रीरंग हमसे ऊब गया; (इसलिए) हमें छोड़कर मथुरा गया। ८८ हम गोपियाँ वज्र की-सी कठिन हैं; (इसलिए तो) हमारे प्राण अब तक बच गये हैं। (इसलिए तो) कृष्ण का वियोग होते ही हमें कभी मृत्यु नहीं आ गयी। ८९ देखो, हमें काल मार ही नहीं डाल रहा है; वह (हमें) वियोग का दुःख भुगवा रहा है। वैकुण्ठनायक कृष्ण (हमसे) अन्तर को प्राप्त हो गये हैं। (अब) हम कितने कष्ट भोग लें। १९० हे उद्धव, तुम मथुरापुर जाओ, यादवेन्द्र को हमारी याद दिला दो और कहो, 'रे परम उदार (-चरित) श्रीपति, (हम) गोपांगनाओं को न भूल जाओ'। १९१ हे उद्धव, वह अक्रूर परम क्रूर है। तुम तो (हमसे) यादवेन्द्र कृष्ण को मिला दो। हे प्राणसखा, सचमुच तुम्हें विशुद्ध यश मिल जाएगा। ९२ हे उद्धव, (जब तक) गोकुल जीवित है, तब तक हमसे रमानाथ कृष्ण को मिला दो। इस नरदेह के चले जाने पर फिर हमारे लिए भगवान क्या है। ९३ तुम्हारे देखते हम पाषाण लेकर अपने मस्तक को तोड़-फोड़कर प्राण त्यज देंगी। अनन्तर तुम जाकर श्रीहरि से कह देना कि गोपियाँ मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। ९४ तुम जगद्वन्द्य कृष्ण के बहुत प्यारे हो, इसलिए तुमसे यह समाचार कह

आवडता बहुत। यालागीं तुज सांगतिला वृत्तांत। तुझ्या वचनें कृष्ण वर्तत। हें आम्हांसी पूर्ण कळलेंसे। ९५ उदकाविण जैसा मीन। तळमळे जाऊं पाहे प्राण। तैसें यदुकुळटिळकाविण। आम्हांसी जाहलें जाण पां। ९६ जैसें कृपणाचें धन गेलें। कीं जन्मांध अरण्यांत पडलें। अक्रूरें आमुचें राज्य बुडविलें। हरीसी नेलें मथुरेसी। ९७ श्रीकृष्ण हाचि रोहिणीवर। तममय कुहू तोचि अक्रूर। आम्हां चकोरांसी निराहार। पाडिलें साचार उद्धवा। ९८ आम्ही चातकें परम दीन। श्रीरंग वोळला कृपाघन। अक्रूर दुष्ट प्रभंजन। मेघश्याम दुरी नेला। ९९ कृष्णवियोगाचा महापूर। त्यांत लोटूनि गेला अक्रूर। उद्धवा तूं चतुर पोहणार। काढीं बाहेर आम्हांतें। २०० हरिवियोगवणवा सबळ। त्यांत जळतों आम्ही सकळ। उद्धवा तूं जलद दयाळ। वर्षें आम्हांवरी पैं। २०१ आमुचें निधान हृषीकेशी। मध्यें अक्रूर आला विवशी। उद्धवा तूं पंचाक्षरी होसी। निधान घरासी आणीं तें। २ हरिवियोगरोग दारुण। तेणें सकळही जाहलों क्षीण। कृष्ण-कृपारसराज देऊन। अक्षय करीं आम्हांतें। ३ उद्धवा तूं जोशी सुजाण।

दिया। हमें पूर्णरूप से यह विदित है कि कृष्ण तुम्हारे कहने के अनुसार व्यवहार करता है। ९५ जिस प्रकार बिना पानी के मछली तड़पती है, और उसके प्राण निकल जाना चाहते हैं, उसी प्रकार, समझ लो, बिना यदुकुलतिलक कृष्ण के हमें हो गया है। ९६ जैसे कृपण का धन (नष्ट हो) गया हो, अथवा कोई जन्मान्ध व्यक्ति अरण्य में (फँस) पड़ा हो। अक्रूर हरि को मथुरा ले गया है, उसने हमारा राज्य डुबो दिया है। ९७ श्रीकृष्ण ही चन्द्रमा है; अक्रूर ही अन्धकार-भरी अमावस की रात है। हे उद्धव, हम चकोरों को सचमुच उसने निराहार छोड़ दिया है। ९८ हम चातक परम दीन (हो गयी) थीं, (फिर) श्रीरंग रूपी कृपाघन (हम पर) प्रसन्न हो गया था; (परन्तु) अक्रूर रूपी दुष्ट प्रभंजन उस मेघश्याम को दूर ले गया। ९९ कृष्ण के वियोग की (मानो) बड़ी बाढ़ आ गयी है; अक्रूर हमें धकेलकर चला गया है। हे उद्धव, तुम चतुर तैरनेवाले हो; हमें बाहर निकाल दो। २०० श्रीहरि की वियोग-रूप दावाग्नि बड़ी प्रचण्ड है। हम सब उसमें जल रही हैं। हे उद्धव, तुम दयालु मेघ हम पर बरस पड़ो। २०१ हृषीकेशी हमारी धन-निधि है। बीच में अक्रूर चुड़ैल-जैसा आ गया। हे उद्धव, तुम (हमारे लिए) ओझा हो। तुम (उस चुड़ैल के प्रभाव को दूर करके) हमारी उस धन-निधि को घर ले आओ। २ श्रीहरि का वियोग (हमारे लिए) दारुण रोग है। उससे हम सभी क्षीण हो गयी हैं। कृष्ण की कृपास्वरूप रसराज देकर हमें तुम अक्षय (क्षयहीन) बना दो। ३ हे उद्धव, तुम सुजान (अच्छे ज्ञानी) ज्योतिषी हो। तुम हमें कृष्ण की

कृष्णप्राप्तीचें देईं लग्न। पांचही पंचकें निरसोन। साधीं कारण हें आधीं। ४ तनमनधनेंसीं अनन्य। उद्धवा तुज आलों शरण। कृष्णप्राप्तीसी कारण। सद्गुरु तूं आम्हांतें। ५ ऐसें बोलोनि कामिनी। लागल्या दृढ तयाच्या चरणीं। तें देखोनियां उद्धवाच्या नयनीं। प्रेमांबुधारा लोटल्या। ६ उद्धव म्हणे यांलागून। कैसें सांगूं ब्रह्मज्ञान। यांनीं दृढ धरिली मूर्ति सगुण। ते कैसी उडवूनि टाकूं मी। ७ सगुण उच्छेदितां देखा। आतांचि प्राण देतील गोपिका। मग म्हणे विरिंचीच्या जनका। बुद्धिदाता तूं होईं। ८ उद्धवें नेत्र झांकून। मनीं आठविले कृष्णचरण। आतां गोपिकांसी दिव्य ज्ञान। उपदेशीं तूं श्रीरंगा। ९ उद्धवें अष्टभाव सांवरोन। म्हणे ऐका वो तुम्ही सावधान। कृष्ण दाखवा सत्वर म्हणोन। कोण म्हणती तुम्हांमाजी। २१० कोण इंद्रियांचा चाळक। कोण आहे बुद्धीचा प्रेरक।

प्राप्ति का मुहूर्त (खोजकर) निकाल दो। पाँचों पंचकों[1] का भी निराकरण (अशुभ-परिहार) करके पहले इस कार्य को सिद्ध कर दो। ४ 'हे उद्धव, हम तन-मन-धन से तुम्हारी शरण में आ गयी हैं। तुम हमारे लिए कृष्ण की प्राप्ति के कार्य को सिद्ध कर देनेवाले सद्गुरु हो'। ५ इस प्रकार बोलकर वे नारियाँ उनके चरणों में दृढ़तापूर्वक लग गयीं। उसे देखकर उद्धव के नयनों में प्रेम (की उत्कटता से उत्पन्न) -अश्रुजल-धाराएँ उमड़ उठीं। ६ उद्धव (मन-ही-मन) बोले, 'इनको मैं ब्रह्म-ज्ञान कैसे बता दूँ? इन्होंने (हृदय में जिस) सगुण मूर्ति को धारण किया है, उसे मैं किस प्रकार उड़ा (उखाड़) डालूँ? ७ देखो, उस सगुण रूप का उच्छेद करते ही गोपियाँ अभी प्राण त्यज देंगी'। फिर वे बोले, 'हे विधाता के पिता भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण, तुम ही (मेरे लिए) बुद्धिदाता बन जाओ (मुझे मार्ग सुझा दो)'। ८ नेत्र मूँदकर उद्धव ने मन में कृष्ण के चरणों का स्मरण किया; (और कहा—) 'हे श्रीरंग, अब तुम गोपियों को दिव्य (ब्रह्म) ज्ञान का उपदेश दो'। ९ (तदनन्तर) उद्धव ने आठों सात्त्विक भावों को सम्हालकर (दबाकर) कहा, 'अहो, तुम सावधान होकर सुनो। तुममें से कौन (-कौन) कहती हैं कि कृष्ण को झट से दिखा दो। २१० इन्द्रियों को चलायमान करनेवाला कौन है? बुद्धि का प्रेरक कौन है? (तुम) सब अन्तःकरण में स्मरण करो (सोच

---

१ पंचक : फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती —इन पाँच नक्षत्रों के समूह को 'पंचक' कहते हैं। इन दिनों किसी नये या शुभ कार्य का आरम्भ निषिद्ध है। उसी प्रकार, विशिष्ट लग्न-संख्या में विगत चान्द्रतिथियों की संख्या को मिलाकर उनके जोड़ को नौ से भाग दें; यदि शेष १, २, ४, ६, ८ रहे, तो वह 'पंचक' कहाता है। इन पाँच पंचकों को 'अशुभ' माना जाता है। उनके विभिन्न नाम हैं।

अंतःकरणीं आठवा सकळिक। कोण धरवी विचारा। २११ तुमच्या नेत्रां कोण दाखवी। पदीं गमनागमन कोण करवी। श्रवणीं गोष्टी ऐकवी। तोचि बरवा शोधावा। १२ पंचवीस तत्त्वांचा जाणता। तो कोण विचारा पुरता। जो स्थावरजंगम जीव निर्मिता। व्यापूनि वेगळा कोण तो। १३ तुमचा देह स्त्रियांची आकृती। परी आंत कोण नांदे निश्चितीं। स्त्री पुरुष नपुंसक व्यक्ती। कोणती स्थिती विचारा। १४ बहुत घागरी रांजण। स्त्री पुरुष नामाभिधान। परी आंत बिंबला चंद्र पूर्ण। स्त्री पुरुष नव्हे तो। १५ जैसे एकाचि सकळ गुणीं। ओंविले नाना जातींचे मणी। परी सूत्र एक अभेदपणीं। चक्रपाणी तसा असे। १६ ऐसें ज्ञान ऐकतां ते क्षणीं। गदगदां हांसल्या नितंबिनी। म्हणती हें सांगावयालागूनी। पाठविलें काय हरीनें। १७ काय करावें कोरडें ज्ञान। नसतेंचि दाविती आम्हांलागून। प्रत्यक्ष हातींचें देऊन। पळत्यापाठीं लागावें। १८ प्रत्यक्ष श्यामसुंदर टाकून। कोठें पाहूं निर्गुण। अचिंत्य अव्यक्त म्हणोन। सांगावया आलासी। १९

लो) कि विचार को कौन धारण करवाता है। २११ तुम्हारे नेत्रों को कौन दिखला देता है? पाँवों से आना-जाना (चलना) कौन करवाता है? कानों से बातें कौन सुनवाता है? उसी को भले खोज लो। १२ यह पूरा सोच लो कि पचीस तत्त्वों[1] का ज्ञाता कौन है? जो अचेतन चेतन (का), जीवों का निर्माता है, जो उन सबको व्याप्त करने पर (भी) उनसे परे है। १३ तुम्हारी देहें, तुम्हारी स्त्री-आकृतियाँ हैं, परन्तु उनके अन्दर निश्चित रूप से कौन रहता है? वह व्यक्ति स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक है? सोच लो, उसकी कौन-सी स्थिति (अवस्था, रूप) है? १४ गगरियाँ और घड़े बहुत होते हैं; स्त्री-पुरुष नामाभिधान से (अनेक) होते हैं। परन्तु उनके अन्दर जो पूर्णचन्द्र बिम्बित है, वह (वस्तुतः) स्त्री अथवा पुरुष नहीं है। १५ जिस प्रकार एक ही समग्र धागे में नाना प्रकार के मनके पिरोये होते हैं; फिर भी (मनकों के अनेक होने पर भी) उनके अन्दर अभेद रूप से सूत्र एक ही होता है। उसी प्रकार चराचर-वस्तुओं के अन्दर, स्त्री-पुरुष के अन्दर अभेद रूप से एकमात्र चक्रपाणि भगवान होता है'। १६ इस प्रकार का ज्ञान सुनते ही उस क्षण वे स्त्रियाँ खिल-खिलाकर हँसने लगीं। वे बोलीं, 'कृष्ण ने (तुम्हें) क्या यह कहने के लिए भेजा है? १७ क्या करें? व्यर्थ (अनचाहा) रूखा ज्ञान हमें दिखा रहे हैं। (क्या) हम प्रत्यक्ष हाथ की (वस्तु) छोड़ देकर भागती के पीछे लग जाएँ। १८ हम प्रत्यक्ष (ठोस, सगुण, जो सामने साकार है) श्यामसुन्दर कृष्ण को छोड़कर (उस) निर्गुण (ब्रह्म) को कहाँ देखें

---

[1] पचीस तत्त्व : ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ, प्रकृति, पुरुष, बुद्धि, अहंकार और मन। (देखिए टिप्पणी ६, पृष्ठ ८१, अ० ३)।

हातींचा परीस टाकोनियां। साधूं जावें धातुक्रिया। सगुणमूर्ति सांडूनियां। निर्गुण वायां कां कथिसी। २२० उद्धव म्हणे ऐका साचार। एक कांचन नाना अलंकार। तैसा व्यापक एक यदुवीर। चराचर भरलासे। २२१ तोचि संचला तुमचे हृदयीं। सर्व व्यापूनि जो सदा विदेही। त्याहूनि रिता ठावचि नाहीं। नसतें प्रवाहीं पडों नका। २२ दिसती मायेचे विकार। तितुके स्वयेंचि निराकार। क्षणिक दिसे जळगार। तत्काळ नीर होय पैं। २३ गोपी म्हणती ते अवसरीं। हातीं घेवोनि सुरस मोहरी। नाचे रासमंडळामाझारीं। तोचि हरी दावीं कां। २४ खोडी करितो वनमाळी। यालागीं माया बांधी उखळीं। मंद मंद रडे नेत्र चोळी। ते मूर्ति सांवळी दावीं कां। २५ आमुच्या घरासी येत घडीघडी। करी नाना परींच्या खोडी। आमुची जडली आवडी। याच रूपीं जाण पां। २६ उद्धव म्हणे ऐका एक। सर्वां घटमठीं निराळ व्यापक। नाना उदकें परी एक अर्क। जगन्नायक तैसा असे। २७ सर्व मातृकांत एक ओंकार। तैसा सर्वव्यापी सर्वेश्वर।

(खोज लें) जिसे तुम अचिन्त्य, अव्यक्त कहकर उसे बताने आ गये हो। १९ हाथ के पारस को फेंककर (क्या) हम कीमिया (ताँबे आदि धातुओं से सोना बनाने की गूढ़ विद्या) की साधना करने जाएँ? (हे उद्धव,) सगुण मूर्ति को छोड़कर तुम निर्गुण का व्यर्थ कथन क्यों कर रहे हो?' २२० (इसपर) उद्धव बोले, 'सच्ची बात सुनो। सोना तो एक होता है; परन्तु (उससे निर्मित) आभूषण अनेकानेक होते हैं। उसी प्रकार एक यदुवीर कृष्ण (स्वरूप ब्रह्म) व्यापक है; वह चराचर में भरा हुआ है। २२१ जो सबको व्याप्त करके (भी) सदा विदेही (देहहीन, निराकार) है, वही तुम्हारे हृदय में संचित है। उससे रिक्त कोई स्थान ही नहीं है। तुम व्यर्थ ही (अनिष्ट विचार-) प्रवाह में न पड़ जाओ। २२ माया के जितने विकार दिखायी देते हैं, वे उतने (ही सब) स्वयं ही (वस्तुतः) निराकार हैं। (पानी का) ओला क्षणिक, अर्थात क्षणभर दिखायी देता है और तत्काल पानी बन जाता है'। २३ उस समय गोपियाँ बोलीं, 'हाथ में सुरस (मधुर बजनेवाली) मुरली लेकर, जो रासमण्डल के बीच नाचता था, वही कृष्ण (हमें) दिखा दो। २४ वनमाली छेड़छाड़ करता था; इसलिए माँ ने उसे ऊखल से बाँधा था। (तब) वह धीरे-धीरे रो रहा था, (हाथ से) आँखें मल रहा था। वह साँवली मूर्ति दिखला दो। २५ वह हमारे घर बार-बार आता था; नाना प्रकार की शरारतें करता था। समझ लो कि उसके इसी रूप में हमारी रुचि (प्रीति) जुड़ गयी'। २६ (इसपर) उद्धव बोले, 'एक बात सुनो। समस्त घटों-मठों में एक आकाश व्याप्त किया हुआ है। पानी (अनेक स्थलों में) अनेक होते हैं, फिर भी उनमें (प्रतिबिम्बित) सूर्य

परी तुम्हांसी न कळे साचार । भ्रम थोर पडियेला । २८ गळां मोतीं असोनि निवाडें । लोकांचिया गळां पडे । तैसें तुम्हांसी पडिलें सांकडें । जवळी हरि असोनियां । २९ गोपी म्हणती ऐका गोष्टी । पीतवसनावरी कांस गोमटी । वनमाळा रुळती कंठीं । आपादपर्यंत साजिऱ्या । २३० उदार श्रीमुख सांवळें । आकर्ण विकासलीं नेत्रोत्पलें । जो वना जाय घेवोनि गोवळे । बिदीवरूनि मिरवत । २३१ जाय छंदें पांवा वाजवीत । हुंबरी घाली गडियांसमवेत । यमुनेच्या वाळवंटीं लोळत । तोचि दावीं आम्हांतें । ३२ हांसे घडीघडी पाहे आम्हांकडे । सुंदर डोळे मोडी वांकडे । तेंचि परब्रह्म रोकडें । दावीं आम्हांसी उद्धवा । ३३ उद्धव म्हणे तुम्हांजवळी असतां । दाखवूं कोणीकडे मागुता । मृग नाभीं कस्तूरी असतां । परी तत्त्वतां न कळे तया । ३४ केलें दर्पणाचें निकेतन । बहुत बिंबें दिसती जाण । आत्मस्वरूप एक असोन । चराचर तैसें भासलें । ३५ एक भिंती चित्रें नाना ।

एक (ही) होता है । जगन्नायक वैसा ही है । २७ (जिस प्रकार) समस्त मात्राओं में एक (मात्र) ॐ-कार होता है; उसी प्रकार (चराचर सृष्ट वस्तुओं में) सर्वेश्वर सर्वव्यापी (सबको व्याप्त किये रहता) है । परन्तु यह सचमुच तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है । (तुम्हें) बड़ा भ्रम हो गया है । २८ (अपने) गले में मोती (-हार बँधा) रहने पर भी उसे न जानते हुए कोई (अनाड़ी) निश्चय के साथ दूसरे के गले पड़ जाता है (कहता है कि वह उसके पास है) । उसी प्रकार कृष्ण तुम्हारे अपने पास होने पर भी (तुम उसे दूर मानती हो) तुम्हें पहेली पड़ गयी'। २९ (यह सुनकर) गोपियाँ बोलीं, 'ये बातें सुनो। (कृष्ण के पहने हुए) पीताम्बर का कछोटा सलोना (दिखायी देता) है। उसके गले में (पहनी) सुन्दर वनमालाएँ पाँवों तक झूलती हुई सुशोभित (दिखायी देती) हैं । २३० उसका साँवला श्रीमुख उदार, अर्थात प्रभावशाली है; उसके नयन-कमल आकर्ण विकसित हैं। वह ग्वाल-बालों को लेकर रास्ते में ठाट-बाट से चलता हुआ वन की ओर जाता था । २३१ वह अपनी ही धुन में बाँसुरी बजाता था; साथियों के साथ हुमरी खेलता था; यमुना के पुलिन पर लोटता-पोटता था। हमें वही (कृष्ण) दिखा दो । ३२ वह बार-बार हँसता था; हमारी ओर देखता था; अपनी सुन्दर आँखों को टेढ़ा करके मचकाता था। हे उद्धव, वही परब्रह्म (कृष्ण हमें) इसी समय (सीधे) दिखा दो'। ३३ (इसपर) उद्धव बोले, 'तुम्हारे पास (उसके) होने पर मैं फिर से उसे किस ओर (कहाँ) दिखा दूँ ? मृग की नाभि में कस्तूरी के होने पर भी उसकी समझ में वह सचमुच नहीं आती । ३४ समझ लो कि किसी ने दर्पण का घर बना लिया हो, तो उसमें बहुत (प्रति-) बिम्ब दिखायी देते हैं । उसी प्रकार, वह ब्रह्म एक

तैसी दिसे चराचररचना। अविनाश एक वैकुंठराणा। सर्गस्थित्यंतकाळींही। ३६ गोपी बोलती ते वेळां। अघासुर जेणें उभा चिरिला। कालियामस्तकावरी नाचला। तो घननीळ दावीं कां। ३७ अंगुलीवरी गोवर्धन। उभा उचलोनि सप्त दिन। द्वादश गांवें अग्नि गिळून। कमळपत्राक्ष अक्षयी। ३८ ठाण मांडूनि वाजवी मुरली। आमुची चित्तवृत्ति तेथें मुराली। संसार-वासना सकळ हरली। परी नाहीं पुरली असोसी। ३९ उद्धव म्हणे ऐका विचार। शरीरविरहित यादवेंद्र। त्यासी नाहींत चरणकर। मुरली कोठें वाजविली। २४० सप्त धातूंविरहित। चहूं देहांसीं अतीत। जो पिंड-ब्रह्मांडातीत। मुरली कोठें वाजवी। २४१ क्षणिक दावावया लीला। सगुण वेष हरीनें धरिला। परी तो सकळ रंगांवेगळा। काळा सांवळा नसे तेथें। ४२ मायेनें रचिलें जगडंबर। परी त्यासी ठाऊक नाहीं समाचार।

मात्र होने पर भी चराचर वैसा ही आभासित होता रहता है। ३५ दीवार एक होती है, (पर) उसपर चित्र अनेकानेक होते हैं। उसी प्रकार, चराचर (सृष्टि) की निर्मिति दिखायी देती है। एक (मात्र) वैकुण्ठराज भगवान सर्ग (उत्पत्ति), स्थिति और विनाश काल में भी अविनाशी बना रहता है'। ३६ (यह सुनकर) उस समय गोपियाँ बोलीं, 'जिसने अघासुर को खड़ा (सीधा) चीर डाला, जो कालिय के मस्तक पर नाचता रहा, वही घननील (कृष्ण) हमें दिखा दो। ३७ अँगुली पर गोवर्धन को उठाकर जो सात दिन (तक) खड़ा रहा था, बारह योजन अग्नि को निगलकर, जो कमलदल-सी आँखों वाला (कृष्ण) अक्षय बना रहा, जो (विशिष्ट मुद्रा में) डटे रहकर वह मुरली बजाता था, हमारी चित्तवृत्ति वहाँ (उसी रूप में) लवलीन हो गयी है। संसार सम्बन्धी (घर-गिरस्ती विषयक) हमारी वासना का पूरा (-पूरा) हरण हो गया; फिर भी (उसे देखने की) हमारी हवस पूरी नहीं हुई'। ३८-३९ उद्धव बोले, 'एक विचार सुनो। यादवेन्द्र कृष्ण तो शरीर-रहित है। उसके पाँव-हाथ नहीं हैं। फिर उसने मुरली कहाँ (कैसे) बजायी। २४० वह सातों धातुओं[1] से रहित है; चारों देहों[2] के परे है। जो पिण्ड-ब्रह्माण्ड के परे है, वह मुरली कहाँ बजाता है। २४१ क्षणिक लीला प्रदर्शित करने के लिए उस (निर्गुण ब्रह्म) कृष्ण ने सगुण वेश धारण किया था। परन्तु वह (वस्तुतः) समस्त रंगों से न्यारा है। वहाँ काला-साँवला वर्ण नहीं है। ४२ (उसकी) माया ने जगदाडम्बर (जगत का दिखावा, दिखायी देनेवाला विस्तार) निर्मित किया।

---

१ सप्त धातु : शरीर के मुख्य तत्त्वों को 'धातु' कहते हैं। ये सात हैं— रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र। (अथवा अस्थि, नाड़ी, मज्जा, मांस, त्वचा, रक्त और नख)।

२ चार शरीर : स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण देह।

पुढें होईल निराकार। हाही हेतु नसेचि। ४३ त्याच्या सत्तेनें जग चाले समस्त। परी तो मन न घाली तेथ। ऐसा तो अवयवरहित। त्यासी सगुणत्व लावूं नका। ४४ गोपी म्हणती उद्धवाप्रती। नागवे उघडे बैसले एकांतीं। तुझें ज्ञान त्यांजप्रती। सांगें जाय उद्धवा। ४५ गुदद्वारीं टांच लावून। कोंडूनि बैसले प्रभंजन। त्यासी सांगें तुझें ज्ञान। आम्हां सगुण हरि दावीं। ४६ ऐकें उद्धवा एक वचन। तूं ज्याच्या कृपेनें बोधितोसी ज्ञान। तो पूतनाप्राणशोषण। दावीं आम्हां एकदां। ४७ जो श्रीकुचदुर्ग-विहार। जो भक्तमंदिरांगणमंदार। मुख सुहास्य अति उदार। यादवेंद्र दावीं तो। ४८ कौस्तुभ झळके वक्षःस्थळीं। दिव्य टिळक विलसे भाळीं। कोटि अनंगांहूनि आगळी। तेचि सांवळी मूर्ति दावीं। ४९ जो वृंदावन-भुवनविलासी। विश्वरूप मुखीं दावी मातेसी। ज्याची लीला वर्णितां सौख्य सर्वांसी। तोचि आम्हांसी दावीं कां। २५० उद्धवा कृष्णप्राप्ति होय। ऐसा सांग आम्हांसी उपाय। कोण्या साधनें यदुवर्य। हातासी ये सांग

परन्तु उसे (इस सम्बन्ध में) कोई समाचार विदित नहीं है। आगे चलकर वह (सब) निराकार हो जाएगा (माया-निर्मित जगत नष्ट होगा), यही हेतु भी (उसे विदित) है ही नहीं। ४३ उसकी सत्ता से समस्त जगत चलता है; परन्तु वह वहाँ (उसमें) मन नहीं लगाता (उसकी ओर ध्यान नहीं देता)। इस प्रकार वह अवयवों (इन्द्रियों) से रहित है। उसे सगुणत्व न लगा दो (उसमें सगुणत्व आरोपित न करो)'। ४४ (तदनन्तर) गोपियों ने उद्धव से कहा, 'हे उद्धव, जो नंग-धड़ंग (होकर) एकान्त में बैठे हों, जाओ, अपना ज्ञान उनको बता दो। ४५ जो गुदद्वार में एड़ी लगाकर अपान वायु को रोके हुए बैठे हों, अपना ज्ञान उन्हें बता दो। हमें तो सगुण कृष्ण दिखा दो। ४६ हे उद्धव, एक बात सुनो। जिसकी कृपा के बल पर तुम इस ज्ञान का (हमें) उपदेश दे रहे हो, वही पूतना के प्राणों का हरण करनेवाला (कृष्ण) हमें एक बार दिखा दो। ४७ जो भक्तों के घर के आँगन का मन्दार (कल्प) वृक्ष है, जिसका मुख सुहास्य से युक्त तथा अति उदार, अर्थात प्रभावशाली है, (हमें) वही यादवेन्द्र कृष्ण दिखा दो। ४८ जिसके वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि चमक रही है, जिसके भाल पर दिव्य तिलक शोभा देता है, जो कोटि (-कोटि) कामदेवों से न्यारी है, वह साँवली मूर्ति (हमें) दिखा दो। ४९ जो वृन्दावन-स्वरूप भुवन में विलास करता था (लीलाएँ प्रदर्शित करते हुए विहार करता था), जिसने (अपनी) माता को (अपने) मुँह में विश्वरूप दिखा दिया था, जिसकी लीलाओं का वर्णन करते हुए सबको सुख अनुभव होता है, वही (कृष्ण) हमें दिखा दो। २५० हे उद्धव, जिससे हमें कृष्ण मिल जाएँ, ऐसा कोई उपाय हमें बता दो। कह दो कि किस साधना से

पां। २५१ उद्धव म्हणे हेंचि साधन। दृढ धरावे संतांचे चरण त्यांच्या वचनीं विश्वास धरून। करावें श्रवण भावार्थे। ५२ करितां सारासार-विचार। तेणें शुद्ध होय अंतर। आत्मरूप चराचर। सहजचि मग दिसतसे। ५३ गोपी म्हणती उद्धवासी। तुवां जें ज्ञान बोधिलें आम्हांसी। तें सर्व आलें प्रत्ययासी। दृष्टांतेंसीं समजलों। ५४ परी सगुणरूप वेल्हाळ। आकर्ण राजीवनयन विशाळ। अतिवेधक तमालनीळ। कैसा विसरूं उद्धवा। ५५ येरू म्हणे जाणोनि निर्वाणज्ञान। मग सगुण निर्गुण दोन्ही समान। अलंकाररूपें मिरवे सुवर्ण। दुजेपण तेथें काय। ५६ तंतुरूपें अंबर साचार। तरंगरूपें एक सागर। तैसा सगुण अवतार सर्वेश्वर। नाहीं विचार दूसरा। ५७ बचकेंत पाणी न सांपडे। परी गाररूपें हाता चढे। तैसें सगुण हरीचें रूपडें। भक्तांलागीं जाहले। ५८ सुवास दाटला मंदिरीं। परी अबलांसी न कळे निर्धारीं। तों दृष्टीं देखिली कस्तूरी। मग अंतरीं

यदुवर कृष्ण (फिर से) हमारे हाथ आएगा'। २५१ (इसपर) उद्धव बोले, 'यही साधना (उपाय) है— सन्तों के चरण दृढ़तापूर्वक पकड़ लें। उनके वचन पर विश्वास धारण करके उसे भक्ति-भाव से श्रवण करें। ५२ सार-असार-विवेक करने पर उससे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। तब चराचर स्वाभाविक रूप से आत्मरूप (ब्रह्ममय) दिखायी देने लगता है'। ५३ तो गोपियाँ उद्धव से बोलीं, 'तुमने हमें जिस ज्ञान का उपदेश दिया, वह सब हमने अनुभव किया। उसे हम दृष्टान्त रूप से समझ गयीं। ५४ परन्तु हे उद्धव, हम उस सगुण रूप-धारी प्यारे-लाड़ले को, आकर्ण विशाल कमल-से नयनवाले को, (मन को) अत्यधिक मोह लेनेवाले तमालनील (वर्णधारी) कृष्ण को हम कैसे भूल जाएँ'। ५५ तो वे (उद्धव) बोले, 'वेदान्त या ब्रह्मज्ञान को जानने पर फिर सगुण और निर्गुण दोनों समान होते हैं। सुवर्ण ही आभूषण के रूप में शोभायमान होता है (फिर भी सुवर्ण और आभूषण दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं)। वहाँ क्या (कैसा) द्वैतभाव हो सकता है। ५६ तन्तु रूपों में एकमात्र वस्त्र होता है; तरंगों के रूपों में एकमात्र सागर होता है; उसी प्रकार एकमात्र सर्वेश्वर (ब्रह्म) सगुण अवतारों को धारण करता है। इसमें कोई अन्य विचार नहीं है। ५७ मुट्ठी में (खुली हथेली में) पानी नहीं पकड़ा जाता। परन्तु वह ओले के रूप में हाथ में आ जाता है; उसी प्रकार (निर्गुण ब्रह्म सामान्य व्यक्ति की समझ में नहीं आता, अतः) भक्तों के लिए कृष्ण का सगुण रूप (सिद्ध) हो गया। ५८ घर में सुगन्ध फैल गयी है, परन्तु निश्चय ही (पहले) वह (अनाड़ी) अबलाओं की समझ में नहीं आती (उन्हें ज्ञात नहीं होता कि वह कहाँ से आ रही है, किसकी है)। अनन्तर वे (जब) आँखों से कस्तूरी को देखती हैं, तो तब अन्तःकरण में उन्हें यह

समजलें। ५९ कस्तूरी दिसतसे सगुण। सुवास तो केवळ निर्गुण। थिजलें विघुरलें घृत पूर्ण। सगुण निर्गुण तैसेंचि। २६० सोन्याचें कडें घालविलें। तरी काय सोनें मोलासी तुटलें। तैसें सगुण अवतरलें। परी तें संचलें परब्रह्म। २६१ गुरुमुखें जाणावें निर्गुण। सगुणीं भजावें आवडीकरून। ऐसें गोपींनीं ऐकोन। धरिले चरण उद्धवाचे। ६२ प्रार्थूनियां उद्धव सखा। चारी मास राहविती गोपिका। ज्या सदा अंतरीं सद्भाविका। यदुनायका न विसरती। ६३ उद्धवाच्या मुखें ब्रह्मज्ञान। गोपी करती नित्य श्रवण। तेणें चित्ताचे मळ तुटोन। दिव्य ज्ञान ठसावलें। ६४ गोपींचा चित्ततवा जाहला। त्रिविधतापमळ बैसला। त्याचाचि उद्धवें आरसा केला। त्यांत स्वरूप बिंबलें। ६५ उद्धव परम पंचाक्षरी। पंचभूतें झांकूनि निर्धारीं। गोपी आणिल्या स्वरूपावरी। साक्षात्कारेंकरूनिया। ६६ उद्धव वैद्य परम सतेज। अर्धमात्रा दिली रसराज। संशयरोग निरसोनि तेजःपुंज। सर्व गोपिका त्या केल्या। ६७ घरोघरीं गोपी नेती। उद्धवाची पूजा करिती।

विदित हो जाता है। ५९ कस्तूरी सगुण दिखायी देती है; (परन्तु) सुगन्ध तो केवल निर्गुण है। जमा हुआ और पिघलकर फैला हुआ घी पूर्ण रूप से (वस्तुतः) एक (ही होता) है। (ब्रह्म का) सगुण और निर्गुण रूप वैसे ही होते हैं। २६० सोने का कड़ा पिघला दिया हो, फिर भी क्या वह मोल में घट गया ? उसी प्रकार ब्रह्म सगुण रूप अवतरित हुआ हो, तो भी उसमें (वस्तुतः) परब्रह्म ही संचित हुआ होता है। २६१ गुरुमुख से निर्गुण को जान लें; (और) सगुण की प्रेमपूर्वक भक्ति करें'। इस प्रकार सुनने पर गोपियों ने उद्धव के चरण पकड़ लिये। ६२ सखा उद्धव से प्रार्थना करके उन गोपियों ने उन्हें (गोकुल में) चार मास (तक) ठहरा लिया, जो अन्तःकरण से तो नित्य सद्भक्त बनी रही थीं और (अतः) जो यदुनायक कृष्ण को नहीं भूल पाती थीं। ६३ (उस अवधि में) उद्धव के मुख से गोपियाँ नित्य ब्रह्मज्ञान को श्रवण किया करती रहीं। उससे उनके चित्त की मैल छूटने से उसमें दिव्य (ब्रह्म) ज्ञान जम गया। ६४ गोपियों का चित्त तवा-रूप हो गया था। उसपर तीन प्रकार के (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) तापों की मैल बैठ गयी थी। उद्धव ने (उस मैल को हटाकर) उसी को दर्पण बना दिया, तो उसमें ब्रह्म-रूप प्रतिबिम्बित हुआ। ६५ उद्धव श्रेष्ठ ओझा थे। वे पंच (महा) भूतों को निश्चयपूर्वक छिपाकर गोपियों को साक्षात्कार द्वारा आत्मरूप (के ध्यान) में ले आये। ६६ उद्धव (मानो) परम तेजस्वी (ज्ञानी) वैद्य थे। उन्होंने रसराज की अर्धमात्रा उन्हें दी; उससे संशय रूपी रोग का निराकरण करके उन्होंने उन समस्त गोपियों को तेजोराशियाँ बना दिया। ६७ गोपियाँ उद्धव को (अपने) घर-घर ले गयीं। उन्होंने

नित्य कीर्तन ऐकती। त्याच्या मुखेंकरूनियां। ६८ उद्धव उठोनि लवलाहें। नित्य गाईंसवें वना जाये। अवलोकूनि हरीचे ठाये। आश्चर्य करी अंतरीं। ६९ जे जे स्थळीं कृष्णें क्रीडा केली। तेथें उद्धव नमस्कार घाली। नित्य सोहळा गोकुळीं। चारी मास जाहला। २७० नंदयशोदेचा निरोप घेतला। पुसोनियां गौळियां सकळां। उद्धव मथुरेसी चालिला। भेटावया हरीतें। २७१ वस्त्रें अलंकार हरीलागीं देखा। देती आणूनि गोपिका। म्हणती उद्धवा सांगें यदुनायका। आम्हांसी कदा न विसरावें। ७२ नंद यशोदा गोपीबाळा। उद्धव समस्तीं बोळविला। म्हणती उत्तम काळ क्रमिला। उद्धवाचे संगतीनें। ७३ रथीं बैसोनि सत्वर। उद्धव पावला मथुरापुर। दृष्टीं देखिला यदुवीर। साष्टांग नमस्कार घातला। ७४ अहेर सकळांचे अर्पून। सांगितलें सर्व वर्तमान। मग उद्धव आपुलें सदन। प्रवेशता जाहला। ७५ हरि-विजय ग्रंथ सुरस। एकविसावा अध्याय सुधारस। सज्जननिर्जर रात्रंदिवस। सावकाशें सेवोत कां। ७६ अहो हा अध्याय एकविसावा। केवळ संतांचा प्राणविसांवा। सदा सर्वदा हाचि

उनका पूजन किया। वे उनके मुख से नित्य (श्रीहरि-) कीर्तन सुनती थीं। ६८ उद्धव झट से (जल्दी) उठकर नित्यप्रति गायों के साथ वन जाया करते थे। (वहाँ) वे श्रीहरि (की लीलाओं) के स्थानों का अवलोकन करके मन में आश्चर्य अनुभव करते थे। ६९ जिस-जिस स्थानों पर कृष्ण ने क्रीड़ा की थी, उद्धव वहाँ (-वहाँ) (दण्डवत) नमस्कार करते थे। इस प्रकार चार मास गोकुल में यह नित्य समारोह हुआ करता था। २७० (तदनन्तर) उद्धव नन्द और यशोदा से बिदा हुए; समस्त ग्वालों को पूछकर, अर्थात उनकी आज्ञा लेकर वे मथुरा की ओर कृष्ण से मिलने के लिए चले गये। २७१ (उनके चलते समय) देखिए, गोपियों ने कृष्ण के लिए वस्त्र और आभूषण लाकर दिये और कहा, 'हे उद्धव, यदुनायक कृष्ण से कहो कि हमें कभी न भूलना'। ७२ नन्द, यशोदा और गोपियों ने— सबने उद्धव को बिदा किया। वे बोले, 'हमने उद्धव की संगति में उत्तम प्रकार से काल बिता दिया'। ७३ रथ में बैठकर उद्धव शीघ्र ही मथुरापुर पहुँच गये। (जब) उन्होंने अपनी आँखों से यदुवीर कृष्ण को देखा, तो उन्होंने उनको दण्डवत नमस्कार किया। ७४ उन्होंने सबके दिये हुए उपहार (कृष्ण को) अर्पित करके समस्त समाचार कह दिया। अनन्तर उद्धव अपने घर में प्रविष्ट हो गये। २७५

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ सुरस (रसमय) है। उसका इक्कीसवाँ अध्याय (मानो) अमृतरस है। साधुजन रूपी देव रात-दिन धीरे-धीरे इसका सेवन करें। २७६ अहो! यह इक्कीसवाँ अध्याय सन्तों

पाहावा। सकळ कार्य टाकूनियां। ७७ ब्रह्मानंदें हा बरवा। केला अध्याय एकविसावा। सांडूनियां सकळ धांवा। येथें विसांवा भक्त हो। ७८ ब्रह्मानंदा परात्परा। पुराणपुरुषा दिगंबरा। भक्तपालका श्रीधरवरा। अढळ अचळ अभंगा। ७९ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। निजभक्त सदा परिसोत। एकविंशतितमोऽध्याय गोड हा। २८०

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

के प्राणों के लिए विश्राम (-स्थान) है। समस्त कार्य को छोड़ सदा नित्य-प्रति (अनवरत) इसी को देख लें। ७७ गुरु ब्रह्मानन्दस्वरूप परब्रह्म ने इस इक्कीसवें अध्याय को बढ़िया बना दिया है। हे भक्तो, समस्त दौड़-धूप छोड़कर यहाँ विश्राम कीजिए। ७८ हे गुरु ब्रह्मानन्द (तथा आनन्द-स्वरूप ब्रह्म), हे परात्पर, हे पुराणपुरुष, हे दिगम्बर, हे भक्त-पालक, हे श्रेष्ठ श्रीधर, हे अव्यय, हे अचल, हे अभंग! २७९

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। आपके भक्त उसके इस मधुर इक्कीसवें अध्याय का श्रवण करें। २८०

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

[टिप्पणी पृष्ठ ५८६ की] * पदजनमा : वह व्यक्ति जो जनमते समय माता के उदर से उसके पाँव पहले बाहर आये हों। इस व्यक्ति को मराठी में 'पायाळू' अर्थात "पदजनमा" कहते हैं। इसमें यह अद्भुत शक्ति पायी जाती है कि जमीन के अन्दर पानी कहाँ मिल सकता है, यह वह बता सकता है; अतः कुआँ खोदते समय अक्सर इसे बुलाया जाता है। इसे बिजली से भय रहता है। पीठ आदि में दर्द हो, या मोच आयी हो, तो उस स्थान का मर्दन इसके पाँवों से इलाज-स्वरूप कराया जाता है।

अध्याय—२२

[जरासन्ध की पराजय और कालयवन की मृत्यु]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय श्रीकृष्ण सर्वसाक्षा । सर्वाद्यमूळ निर्विकल्पकल्पवृक्षा । तुझी करूं जातां विवक्षा । आदि कोणा न सांपडे । १ ऐसा आदिकारण तूं वृक्ष साचार । मुख्य कोंभ तो पयोब्धिजावर । द्वितीय शाखा पिनाकधर । कमलायन तृतीय शाखा । २ सकळ मुनीश्वरांचें मंडळ । या उपशाखा चालिल्या सबळ । ऋग्यजुःसामादि सुकोमळ । पत्रें तयांसी फुटलीं हीं । ३ न्याय मीमांसा सांख्यशास्त्र । पातंजल व्याकरण वेदांत । षट्शास्त्रांचा हा निश्चित । मोहोर आला तयावरी । ४ इंद्र अग्नि यम नैर्ऋत । रसनायक समीर पौलस्तिसुत । शीतांशु चंडांशु भगणांसहित । पुष्पें त्यावरी साजिरीं । ५ अष्टलोकपालां सहित । स्वर्गसुखें वायफुलें समस्त । सलोकतादिमुक्ति अद्भुत । फळें आलीं त्यावरी । ६ लागतां द्वैताचा प्रभंजन । तींही फळें पडती गळोन । निर्गुण सायुज्यता मोक्ष पूर्ण । पक्व फळ अक्षयी । ७ तें फळ भक्षितां निर्धारीं । आपण होय ब्रह्मांडभरी । जेथें

श्रीगणेशाय नमः । हे श्रीकृष्ण, हे सर्वसाक्षी, हे सबके आद्य मूल (उत्पत्ति स्थान), हे निर्विकल्प (अर्थात भेद-रहित अद्वैत अवस्था प्रदान करनेवाले) कल्पवृक्ष, जय हो, जय हो । तुम्हारी (उत्पत्ति, स्थिति आदि सम्बन्धी) विवेचना करने जाने पर किसी को भी तुम्हारी उत्पत्ति (की जानकारी) नहीं मिलती (अर्थात तुम अनादि हो) । १ वस्तुतः तुम (सबके निर्माण के) आदिकारण रूपी वृक्ष हो । उसका मुख्य अंकुर है लक्ष्मीपति भगवान विष्णु । उसकी द्वितीय शाखा है पिनाक धनुर्धारी शिवजी; तीसरी शाखा ब्रह्मा (के रूप में विकसित) है । २ समस्त मुनीश्वरों के मण्डल के रूप में उसकी प्रबल उपशाखाएँ चल (फूट) पड़ी हैं । ऋक्, यजुर्, साम आदि (चार) वेद उन शाखाओं में निकले हुए सुकोमल पत्ते हैं । ३ उसमें निश्चय ही न्याय, मीमांसा, सांख्यशास्त्र, पातंजल योगशास्त्र, व्याकरण, वेदान्त —इन छहों शास्त्रों के रूप में मौर निकला है । ४ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, रसपति वरुण, वायु, पौलस्ति (विश्रवा) सुत कुबेर (तथा ईश) जैसे आठों दिक्पालों और नक्षत्रों-सहित चन्द्रमा तथा सूर्य उसमें आये हुए सुन्दर फूल हैं । समस्त स्वर्गसुख (वस्तुतः) बाँझ पुष्प हैं (—ऐसे फूल, जिनमें कभी फल नहीं आते) । (फिर भी) सलोकता आदि (तीन प्रकार की) मुक्तियाँ उसमें आये हुए अद्भुत फल हैं । ५-६ द्वैतभाव रूपी तेज़ हवा के लगते ही वे फल भी गिरकर (नीचे) पड़ जाते हैं । (परन्तु) निर्गुण सायुज्य मुक्ति रूपी पूर्ण पक्व तथा अक्षय फल उसमें आ जाता है । ७ निश्चय ही उस फल का सेवन

येणें जाणें द्वैत कुसरी। कल्पांतींही घडेना। ८ ऐसा आदिवृक्ष ब्रह्मानंद। मोक्षदायक त्याचें पादारविंद। त्यामाजी श्रीधर मिलिंद। दिव्य आमोद भोगीतसे। ९ निर्विकल्प वृक्ष सद्गुरुनाथ। तो अक्षयफळ दासांसी देत। तें सेवूनि जाहला तृप्त। तरी हरिविजय ग्रंथ पुढें चाले। १० मागें एकविसावा अध्याय जाहला पूर्ण। उद्धवें गोपींसी कथूनि ज्ञान। आला मथुरेसी परतोन। हरिदर्शन घेतलें। ११ यावरी पुढें कथानुसंधान। तें ऐकोन पंडित विचक्षण। जें ऐकतां पापविपिन। होय दहन क्षणमात्रें। १२ मथुरेसी असतां रमानाथ। उग्रसेन हरिकृपें राज्य करीत। दुष्ट निंदक पळाले समस्त। कंसवध होतांचि। १३ जैसें तृण होतांचि दग्ध। त्यासरसा विझे जातवेद। कीं प्राण जातां करणें स्तब्ध। ठायीं ठायीं निचेतन। १४ तैसे कंसासी मारितां जाण। विराले समस्त दुर्जन। मथुरापुरीं प्रजाजन।

करने पर (साधक) स्वयं ब्रह्माण्ड भर व्याप्त हो जाता है, जहाँ (जिस अवस्था में जाने पर फिर से इस संसार में जन्म-मरण रूप से) आना-जाना स्वरूप द्वैतभाव का कला-कौशल कल्पान्त तक भी घटित नहीं होता। (सायुज्य मुक्ति में आत्मा का ब्रह्म में विलीन हो जाना अपेक्षित है; अतः ब्रह्म के विश्वव्यापी होने से उसमें मिली हुई आत्मा भी विश्वव्यापी हो जाती है)। ८ आनन्दस्वरूप ब्रह्म (स्वरूप मेरे गुरु ब्रह्मानन्द) इस प्रकार के आदि वृक्ष हैं। उनमें चरण-कमल मोक्षदाता हैं। उस (चरण-कमल) में यह कवि श्रीधर रूपी भ्रमर दिव्य आमोद (सुगन्ध) का उपभोग (सेवन) कर रहा है। ९ सद्गुरु स्वामी निर्विकल्प (कल्प-)वृक्ष हैं, जो (अपने) दासों को अक्षय फल प्रदान करते हैं। उसका सेवन करके यह दास (कवि श्रीधर) तृप्त हो गया है। (अतः अब) श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ आगे चल रहा है। १० (इससे) पहले इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ। (उसमें कहा गया है कि) गोपियों को (आत्म या ब्रह्म-) ज्ञान बताकर, अर्थात ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर उद्धव मथुरा (लौट) आये और उन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन किये। ११ इसके पश्चात (श्रीहरि-) कथा का क्रमगत आख्यान कहा जाएगा। उस (आख्यान) को बुद्धिमान, ज्ञानी पण्डित सुनें, जिसे सुनने पर पाप रूपी वन क्षण मात्र में जल जाता है। १२ रमानाथ विष्णुस्वरूप कृष्ण के मथुरा में रहते (समय), उग्रसेन उनकी कृपा से राज्य कर रहे थे। कंस का वध होते ही समस्त दुष्ट और निन्दक लोग (वहाँ से) भाग गये। १३ जिस प्रकार घास के जल चुकने ही आग तत्क्षण बुझ जाती है, अथवा प्राणों के निकल जाने पर इन्द्रियाँ अपने-अपने स्थान पर अचेतन होकर अचल हो जाती हैं, उसी प्रकार, समझिए कि कंस के मारे जाने पर समस्त दुर्जन नष्ट हो गये; (अतः) मथुरापुरी में प्रजाजनों के लिए आनन्द-घन (छाये) रहते

आनंदघन नांदती । १५ नाहीं आधि व्याधि मृत्यु आकांत । हरिकृपेनें सकळ भाग्यवंत । यथाकाळीं घन वर्षत । सदा फलित वृक्ष सर्व । १६ तों कंसाच्या दोघी स्त्रिया । अस्ति प्राप्ति नामें तयां । त्या सांगों गेल्या पितया । जरासंधासी तेधवां । १७ दोघी जणी अत्यंत दीन । भेटल्या जरासंधालागोन । पितयाच्या कंठीं मिठी घालोन । रुदन करिती आक्रोशें । १८ जरासंध घाबरला बहुत । म्हणे काय जाहला वृत्तांत । येरी भूमीसी पडती मूर्च्छागत । शब्द न फुटे बोलतां । १९ आक्रोशें बोलती तत्त्वतां । कृष्णें मारिलें तुझ्या जामाता । मुष्टिकचाणूरादि वीरां समस्तां । मृत्युपंथा पाठविलें । २० परमपुरुषार्थी कृष्ण राम । केला मथुरेमाजी पराक्रम । उग्रसेन राज्यीं स्थापिला परम । सुख जाहलें लोकांसी । २१ ऐकतां श्रीकृष्णप्रताप । मागधासी चढला परम कोप । जैसा पाय पडतां खवळे सर्प । नेत्र आरक्त वटारिले । २२ केलें कन्यांचें समाधान । म्हणे मथुरा क्षणमात्रें जाळीन । यादवकुळ सकळ छेदीन । धरूनि आणीन रामकृष्णां । २३ ऐसी जरासंधें

थे । १४-१५ वहाँ (उनके जीवन में) आधि-व्याधि, मृत्यु, अनिष्ट बात (या शोक शेष) नहीं थी । श्रीहरि की कृपा से समस्त (लोग) भाग्यवान (सिद्ध हो गये) थे । मेघ यथायोग्य (काल में और परिमाण में) बरसते थे; समस्त वृक्ष नित्य फलों से युक्त रहते थे । १६ तो (उस समय) कंस के दो स्त्रियाँ थीं । उनके नाम ' अस्ति ' और ' प्राप्ति ' थे । उस समय वे अपने पिता जरासन्ध से (समाचार) कहने के लिए चली गयीं । १७ वे दोनों जनी अत्यन्त दीन (हो गयी) थीं । वे जरासन्ध से मिलीं । वे अपने पिता के गले लगकर आक्रोशपूर्वक रुदन करने लगीं । १८ (यह देखकर) जरासन्ध बहुत घबड़ा गया । वह बोला, ' क्या बात हुई ? ' तो वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गयीं । (सचेत हो जाने पर गला रुँध जाने के कारण उनके मुँह से) बोलने के लिए शब्द नहीं निकल रहा था । १९ (अनन्तर) वे सचमुच आक्रोश के साथ यह बोलीं, ' कृष्ण ने तुम्हारे जामाता को मार डाला; मुष्टिक-चाणूर आदि समस्त वीरों को मृत्यु-पन्थ पर भेज दिया । २० कृष्ण और बलराम परम पुरुषार्थी हैं । उन्होंने मथुरा में शूरता प्रदर्शित की । उन्होंने उग्रसेन को राज्य (-गद्दी) पर प्रतिष्ठित कर दिया । (उससे) लोगों को सुख (प्राप्त) हो गया ' । २१ श्रीकृष्ण के (ऐसे) प्रताप को सुनकर मगधराज जरासन्ध को परम क्रोध आ गया, जैसे (किसी का) पाँव पड़ते ही साँप क्षुब्ध हो उठता है । (मारे क्रोध) के आँखों को लाल करके उसने त्योरियाँ चढ़ायीं । २२ उसने अपनी कन्याओं को सान्त्वना देते हुए आश्वस्त किया और कहा, ' मैं मथुरा को क्षण मात्र में जला डालूँगा; समस्त यादवकुल को छेद डालूँगा (और) बलराम और कृष्ण को पकड़कर लाऊँगा ' । २३ तब ऐसी प्रतिज्ञा करके जरासन्ध ने डंके पर चोट की । उससे पृथ्वी गूँज

होड बांधोनी। घाव तेव्हां घातला निशाणीं। तेणें दुमदुमली अवनी। तेवीस अक्षौहिणी दळ ज्याचें। २४ धडकला वाद्यांचा कल्लोळ। प्रतिध्वनीनें गाजलें निराळें। भयभीत ब्रह्मगोळ। चालिलें दळ मागधाचें। २५ भेरी धडकल्या शशिवदना ते क्षणीं। ऐकतां त्रास उपजे कर्णीं। रणतुरें खणखणती तेणें गगनीं। देवयानें डळमळती। २६ शृंगें बुरंगें पणव काहळ। गोमुखी चळका चौंडकी बुटाळ। मुखवातें सनया रसाळ। गर्जती ढोल गिडबिडी। २७ बावीस सहस्र छत्रपती। जेणे बंदी घातले नृपती। ऐसा जरासंध मागधपती। मथुरा घेऊं चालिला। २८ पदाति दळ पुढें जात। त्यांचे पायीं ब्रीदें झणाणत। पदीं त्यांच्या तोडर गर्जत। हांक फोडीत आवेशें। २९ नाना परींच्या कांसा घालूनी। यमदंष्ट्रा खोविल्या जघनीं। हातीं कुंत असिलता घेऊनी। खेटकें अपार मस्तकावरी। ३० जैसा फुटे कल्पांतींचा सागर। तैसें पायदळ जात अपार। सडका पाश भिंडिमाळा थोर। घेऊनि पुढें धांवती। ३१ बडगे चक्रें शिळा डांगा। घेऊनि बिलगती चमकती वेगा। धनुष्यबाण सुरया

उठी। उसकी सेना तेईस अक्षौहिणी थी। २४ वाद्यों का (कोलाहल-पूर्ण) गर्जन धड़धड़ाने लगा। उसकी प्रतिध्वनि से आकाश गूंज उठा। ब्रह्माण्ड भयभीत हो उठा। मगधराज की सेना चल पड़ी। २५ उसी क्षण चन्द्रवदना अर्थात चन्द्राकार भेरियाँ धड़धड़ाने लगीं। उन्हें सुनते ही कानों में दर्द होने लगा। रणतूर्य खनखनाने लगे। उससे आकाश में (स्थित) देवों के विमान डगमगा उठे। २६ सींग (रनसिंगे), 'बुरंग' नामक वाद्य-विशेष, पणव (मृदंग), काहले (फौजी नगाड़े), गोमुख, 'चलका' नामक वाद्य-विशेष, चौड़ोल, दुझांझ, बजाये जाने लगे। मुखवान (फूंकर) से शहनाइयाँ मधुर बजने लगीं। ढोल गड़गड़ाहट के साथ गरजने लगे। २७ जिसने बाईस सहस्र छत्रपति राजाओं को बन्दीशाला में डाल दिया था, ऐसा (प्रतापवान) वह मगधपति जरासन्ध मथुरा को (जीत) लेने के लिए चल पड़ा। २८ पदाती सेनादल आगे (-आगे) चल रहा था। उनके पाँवों बँधे बिरुद (प्रशस्ति उपाधी-सूचक पट्ट) झनझना रहे थे। उनके पाँवों में (बाँधे हुए) तोड़र गरज रहे थे। वे जोश के साथ चीखते-चिल्लाते थे। २९ नाना प्रकार से कछोटा कसकर उन्होंने कमर में यमदंष्ट्राएँ (खंजर जैसे हथियार) खोंस ली थीं। हाथों में (असंख्य) भाले और तलवारें लेकर जानेवाले उन सैनिकों के मस्तक पर (शिरस्त्राण जैसी) असंख्य ढालें थीं। ३० जिस प्रकार कल्पान्त काल में (प्रलयकारी) समुद्र उमड़ जाता हो, उसी प्रकार वह अपार पदाती दल उछलते-उमड़ते हुए (आगे) जा रहा था। वे (सैनिक) बड़ी लम्बी-सीधी तलवारें, पाश, गोफनें लेकर आगे दौड़ते जा रहे थे। ३१ लट्ठ, चक्र, शिलाएँ, लाठियाँ

उरगा। आकृती ऐशा सतेज ।३२ लघु उल्हाटयंत्रें आधीं। घेऊनि पुढें धांवती खांदीं। उर्वी दणाणे चालतां पदीं। भूधर होय साशंक।३३ मुसळ गदा मुद्गर परिघ। शूळ शक्ति लोहकंदुक अभंग। पट्टिश बाण लोहवृश्चिक उरग। दशघ्न्या आणि शतघ्न्या।३४ लोहार्गळा त्रिशूळ कोयते कातिया। परशु तोमर कुठार घेऊनियां। धांवती पुढें लवलाह्या। मथुरापंथ लक्षूनि।३५ सवें चालिले तुरंगमांचे भार। चपळ नागर मनोहर। मित्ररथींचा जैसा रहंवर। बलाढ्य सुंदर तैसेचि।३६ कित्येक निघाले श्यामकर्ण। ऐका तयांचें लक्षण। काढिले क्षीरसागरीं धुवोन। तैसा वर्ण तयांचा।३७ डोळे आरक्त सुंदर। पुच्छें विद्रुमवर्ण खूर। समीराहूनि गति अपार। तिहीं लोकीं गमन तयां।३८ एक घोडे ढवळवर्ण विशाळ। एक नीळवर्ण अति निर्मळ। एक पिवळेचि केवळ। आरबी चपल चौताळती।३९ एकाची माणिकाऐसी ज्योती। परी वीरां सांवरितां न थारती। ज्या

लेकर वे (एक-दूसरे से) सटते-चिपकते हुए जा रहे थे। वेगपूर्वक जानेवाले उन सैनिकों के हाथों में चमकीले धनुष-बाण, छुरियाँ, सर्पाकार तलवारें चमक-दमक रही थीं।३२ पहले (सबके आगे कुछ सैनिक) कन्धों पर छोटी-छोटी तोपें लेकर दौड़ते जा रहे थे। पाँवों (के आघात) से पृथ्वी दनदना रही थी। (जान पड़ता था कि) उससे शेषनाग आशंकित हो रहा था।३३ मूसल, गदाएँ, मुद्गर, परिघ, शूल, शक्तियाँ, लोहे के (दुर्भेद्य) गोले, पट्टिश, बाण, लोह-वृश्चिक और सर्प (जैसे शस्त्र), दशघ्न, शतघ्न, लोहे की अर्गलाएँ, त्रिशूल, गँड़ासे, हँसिये, परशु, तोमर, कुल्हाड़ियाँ लेकर वे मथुरा के मार्ग को लक्ष्य करके आगे (-आगे) झट से दौड़ते जा रहे थे।३४-३५ साथ में घोड़ों के झुण्ड चल रहे थे। वे चपल, नागर अर्थात प्रशिक्षित तथा संस्कार किये हुए, मनोहारी थे। जिस प्रकार सूर्य के रथ के घोड़े होते हैं, उसी प्रकार वे घोड़े बलशाली और सुन्दर थे।३६ कितने ही प्रकार के श्यामकर्ण घोड़े निकल पड़े थे। उनका लक्षण सुनिए। उनका वर्ण ऐसा (शुभ्र) था कि मानो वे दुग्धसागर में धोकर निकाले गये हों।३७ उनकी आँखें आरक्त तथा सुन्दर थीं। पूंछ और खुर विद्रुम वर्ण के थे। उनकी गति वायु (-गति) से (भी) अपार थी। उनकी पहुँच तीनों लोकों में थी।३८ कुछ एक घोड़े शुभ्र वर्ण के तथा विशाल (शरीरधारी) थे; कुछ एक नीलवर्ण के तथा अति निर्मल थे। कुछ एक तो केवल पीले (वर्णवाले) ही थे। (इस प्रकार के) वे चपल अरबी घोड़े बौखलाकर बेतहाशा दौड़ते जा रहे थे।३९ कुछ एक की मानिक रत्न की-सी कान्ति थी। फिर भी ऐसे वे घोड़े (उनपर सवार) वीरों द्वारा रोके जाने पर भी नहीं रुकते थे। जिस घोड़े की जैसी अंग-कान्ति थी, उसकी छाया

तुरंगाचो जैसी अंगकांती। तद्रूपवर्ण छाया दिसे। ४० सांवळे घोडे कित्येक। एक गर्जती सिंहमुख। एक चकोर परम चाळक। एक कुंकुमकेशरवर्ण। ४१ एक चंदनवर्ण चांगले। एक चंद्रवर्ण सोज्ज्वळे। एक क्षीरवर्ण हंसाळे। चपळ चालती पुढें पुढें। ४२ जंबुद्वीपींचे जांभूळवर्ण। श्वेतद्वीपींचे चंद्रवर्ण। क्रौंचद्वीपींचे पिवळे पूर्ण। चितळे चित्रांगे साजिरे। ४३ शाल्मलिद्वीपींचे बदीर। प्लक्षद्वीपींचे वर्णचकोर। कुशद्वीपींचे सोज्ज्वळ सुंदर। पुष्करींचे श्यामकर्ण। ४४ परम रागीट कुमाईत। बदकश्याम स्थिर चालत। आरबी उदकावरी पळत। खूर न भिजे तयांचा। ४५ नव खंडें छप्पन्न देश। तेथींचे वारू एकाहूनि एक विशेष। चित्रींचीं भांडारें आसमास। उघडिलीं जयापरी। ४६ उचंबळला शृंगारसागर। ज्यांची सुपर्णासमान गति अपार। संकेत दावितां अणुमात्र। परचमूंत प्रवेशती। ४७ चक्राकार वाजी वावरती। अश्वखर्गक्षत्रिय एकजाती। एकरूप होवोनि वर्तती। सपक्ष उडती तुरंग एक। ४८ रत्नजडित वरी पाखरा। चालतां दणाणे वसुंधरा। चरणीं नेपुरें

भी उसके रूपवर्णवाली (दिखायी देती) थी। ४० कितने ही (अनेकानेक) घोड़े साँवले थे; कुछ सिंह के-से मुखधारी घोड़े गरज रहे थे। कुछ एक चकोर के-से वर्णवाले तथा अत्यधिक नटखट थे। कुछ एक कुंकुम तथा केसरवर्ण के थे। ४१ कुछ एक चन्दनवर्ण वाले, बढ़िया थे; कुछ अति उज्ज्वल चन्द्रवर्ण के थे। कुछ एक हंस के-से दुग्धवर्ण वाले थे। ऐसे ये चपल घोड़े आगे-आगे चल रहे थे। ४२ (उस अश्वदल में) कुछ जम्बुद्वीप के जामुनी वर्णवाले थे; श्वेतद्वीप के चन्द्रवर्णवाले थे; क्रौंचद्वीप के पूर्णतः पीले (वर्ण के) थे। तो कुछ चित्तियों से युक्त (देहवाले), चित्र-विचित्र देहवाले, सलोने थे। ४३ कुछ एक शाल्मलि द्वीप के बेर के-से वर्णवाले, प्लक्षद्वीप के चकोरवर्णीय, कुशद्वीप के अति उज्ज्वल सुन्दर वर्णवाले थे और पुष्कर द्वीप के श्यामकर्ण थे। ४४ कुछ एक अत्यधिक गुस्सैल, सारंगवर्ण के थे; कुछ एक बदकशान नगर के शुभ लक्षणधारी घोड़े स्थिर अर्थात निर्धारित गति से चलते थे। अरबी घोड़े पानी पर (भी) दौड़ सकते थे; फिर भी उनके खुर नहीं भीगते थे। ४५ नवों खण्डों और छप्पन देशों के घोड़े एक-से-एक अधिक विशेषता से युक्त थे, जिसके समान, (जान पड़ता था कि) चारों ओर चित्रों के भण्डार (ही) खोले हुए हों। ४६ उनके रूप में साज-सजावट का सागर उमड़ उठा था। जिनकी गति गरुड़ के समान अपार थी, ऐसे वे घोड़े अणु भर संकेत करते ही पर-सेना में पैठ जाते थे। ४७ कुछ घोड़े चक्राकार विचरण करते थे। एक जाति के अर्थात एक प्रवृत्ति के घोड़े, खड्ग तथा क्षत्रिय (सैनिक) एकरूप होकर व्यवहार करते थे (अर्थात उन तीनों में पूर्ण समन्वय था, अनुरूपता थी)। कुछ एक घोड़े (मानो) पक्ष-सहित जैसे होकर उड़ते

मस्तकीं तुरा। रत्नजडित झळकतसे। ४९ मुखीं रत्नजडित मोहाळी। चामरें रुळती तेजागळीं। नृत्य करिती भू-मंडळीं। पाय पुढील न लागती। ५० हिंसती जेव्हां सब ळबळें। तेणें बैसती दिग्गजांचे टाळे। कवच टोप घेऊनि बळागळे। वरी आरूढले राउत। ५१ जैसी सौदामिनी अंबरीं। तैशा असिलता झळकती करीं। ऐसे अश्वभार ते अवसरीं। मथुरापंथें चालिले। ५२ अश्वभारांमागें लिगटले। उन्मत्त नागभार उठावले। ऐरावतासम तुकेले। चौदंत आणि चपळत्वें। ५३ सुवर्णाच्या शृंखळा। खळाळती विशाळा। वरी पाखरा घातल्या। कनकवर्ण सुरेख। ५४ वरी रत्नजडित चवरडोल। ध्वज भेदीत गेले निराळ। फडकती अति तेजाळ। बोलाविती शत्रूंतें। ५५ उर्वीवरी चामरें रुळती। घंटा गर्जतां दिशा दुमदुमती। गजाकर्षक स्कंधीं बैसती। अंकुश सतेज घेऊनियां। ५६ तो जिकडे दावी संकेत। तिकडे चौताळती गज उन्मत्त। झडप हाणोनि पर्वत। चुरा करिती मार्गींचे। ५७ पुढें हिंसत चौताळती तुरंग। मागें सबळ किंकाटती

जाते (जान पड़ते) थे। ४८ उनपर रत्नजटित झूल थी। उनके चलते, पृथ्वी दनदना उठती थी। पाँवों में रत्नजटित नूपुर और मस्तक पर तुर्रे चमकते थे। ४९ उनके मुँह में रत्नजटित लगामें थीं; अनोखे तेजवाले चामर झूलते हुए शोभायमान थे। वे भूमण्डल पर (ऐसे ढंग से) नृत्य करते जा रहे थे कि उनकी आगेवाली टाँगें (भूमि में) मानो लग ही (छू ही) नहीं रही थीं। ५० जब वे बलवान (घोड़े) ज़ोर से हिनहिनाते थे, तब उससे दिग्गजों के कानों के पर्दे फट जाते थे। बल में अनोखे सवार कवच और टोप लेकर उनपर आरूढ़ हो गये थे। ५१ जिस प्रकार बिजली आकाश में चमकती है, उसी प्रकार उनके हाथों में तलवारें चमकती थीं। उस समय इस प्रकार के घोड़ों के दल मथुरा के मार्ग पर जा रहे थे। ५२ उन घोड़ों के झुण्डों के के पीछे सटकर हाथियों के यूथ (झुण्ड) आगे बढ़ रहे थे। वे (हाथी) ऐरावत के समान चार दाँतोंवाले थे तथा चपलता में उसकी बराबरी करते थे। ५३ उनपर (बँधी) सोने की विशाल शृंखलाएँ खनखनाती थीं। उन (की पीठ) पर स्वर्णवर्ण की सुहानी झूलें बिछायी थीं। ५४ ऊपर रत्नजटित चामर झूलते हुए शोभायमान थे। ध्वज आकाश को भेदते जा रहे थे। वे अति तेजस्वी ध्वज फहर रहे थे। वे (मानो) शत्रु को बुला रहे थे। ५५ भूमि पर झूलते हुए चामर शोभायमान थे। घण्टों के गरजने से दिशाएँ गूंजती थीं। हाथीवान (हाथों में) तेजस्वी अंकुश लेकर कन्धे पर बैठे हुए थे। ५६ वे जिस ओर इशारा करते, उस ओर वे उन्मत्त हाथी क्षुब्ध होकर जोर से दौड़ते जाते थे। वे मार्ग में स्थित पर्वतों को झपट्टा मारकर चूर-चूर कर डालते थे। ५७ आगे घोड़े हिनहिनाते हुए क्षुब्धतापूर्वक

मातंग। त्यांपाठीमागें रथ सवेग। घडघडाट चालिले। ५८ रथांचीं रत्नजडित चक्रें। चपळेऐसीं चित्रविचित्रें। साटे घातले जे वज्रें। न फुटती सर्वथा। ५९ मणिमय शोभती स्तंभ। वरील छत्र कनकवर्ण स्वयंभ। ध्वज भेदीत गेले नभ। भिन्नभिन्न स्वरूप पैं। ६० नाना शस्त्रांचे भार। रथीं रचिले अपार। सप्तशत चापें परिकर। भरले तूणीर बाणांनीं। ६१ वरी आरूढले महारथी। पुढें धुरे बैसले चतुर सारथी। जे संकटीं स्वामीसी रक्षिती। जीवित्व मानिती तृणासम। ६२ पुढें जुंपिले सबळ घोडे। जे कां अनिळाहूनि वेगाढे। सारथी संकेत दावी जिकडे। जाती तिकडे चपळत्वें। ६३ असो ऐसा तेवीस अक्षौहिणी। दळभार निघाला तेचि क्षणीं। वाद्यें वाजती तेणें धरणी। उलों पाहे तेधवां। ६४ मध्यभागीं जरासंध। दिव्य रथ परम सुबद्ध। वरी आरूढला भोंवते सन्नद्ध। महावीरीं वेष्टिला। ६५ जैसा शक्रावरी वृत्रासुर। निघाला सहित बळभार। तैसा जरासंध प्रचंड वीर। मथुरेसमीप पातला। ६६ रातोरातीं धांविन्नले। वेगें मथुरापुर वेढिलें।

दौड़ते थे; पीछे बलवान हाथी चिंघाड़ते (हुए जा रहे) थे। उनके पीछे (-पीछे) रथ धड़धड़ाते हुए वेगपूर्वक जा रहे थे। ५८ उन रथों के पहिए रत्नजटित थे; वे बिजली की भाँति जगमगानेवाले और चित्र-विचित्र थे। (रथों की) चौखटें, जो हीरों से बनायी हुई थीं, वे बिलकुल टूट नहीं सकती थीं। ५९ उनके रत्न-मय स्तम्भ शोभायमान थे। ऊपर का छत्र स्वर्णवर्ण का तथा अपने स्वयं के तेज से युक्त (स्वयंप्रकाशी) था। (ऊपर बँधे हुए) ध्वज आकाश को भेदते जा रहे थे। उनका स्वरूप भिन्न-भिन्न (प्रकार का) था। ६० रथों में नाना (प्रकार के) शस्त्रों के असंख्य समूह रख दिये थे। सात सौ सुन्दर धनुष थे। तूणीर बाणों से भरे हुए थे। ६१ उनपर महारथी आरूढ़ हो गये थे। आगे धुरा पर चतुर सारथी बैठे हुए थे, जो संकट (के समय) में अपने स्वामी की रक्षा करते थे और अपने जीवन को तृण-सम मानते थे। ६२ आगे बलवान घोड़े जुते हुए थे। जो वायु से भी अधिक वेगवान थे। सारथी जिस ओर संकेत करते, उस ओर वे चपलता के साथ जाते थे। ६३ अस्तु। इस प्रकार (की) तेईस अक्षौहिणी सेना उसी क्षण चल पड़ी। वाद्य बज रहे थे। उस (गर्जन) से (मानो) धरती उस समय फट जाना चाहती थी। ६४ (इस सेना के) मध्य भाग में जरासन्ध था। उसका दिव्य रथ परम सुबद्ध (सुनिर्मित) था। उस पर वह आरूढ़ हो गया था। चारों ओर से वह शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित महान वीरों से घिरा हुआ था। ६५ जिस प्रकार वृत्रासुर सेना-सहित इन्द्र की ओर चल पड़ा, उसी प्रकार (निकलकर) प्रचण्ड वीर जरासन्ध मथुरा के समीप आ पहुँचा। ६६ वे (सब) रात की रात में वेगपूर्वक दौड़े और उन्होंने मथुरापुर को घेर

सैन्यसमुद्राचें पडिलें। वेष्टण भोंवतें अद्‌भुत। ६७ लोक गजबजले सकळ। म्हणती ओढवला प्रळयकाळ। जरासंध परम सबळ। करील निर्मूळ मथुरेचें। ६८ पळावया नाहीं वाट। प्रजा करिती कलकलाट। महाद्वारें झांकिलीं सदट। न उघडती कोणातें। ६९ कंस मारिला यदुवीरें। म्हणोनि हा आला मथुरे। जामाताच्या कवारें। प्रळय थोर करील। ७० हुडां हुडां वीर चढती। परसैन्यातें विलोकिती। एक बोलती एकाप्रती। बरी गती न दिसे कीं। ७१ कृष्ण आणि संकर्षण। दुर्गावरूनि विलोकिती सैन्य। हरीजवळी आला उग्रसेन। म्हणे कैसें आतां करावें। ७२ सात्यकी उद्धव अक्रूर। म्हणती संकट आलें थोर। भोंवते अवघे दीनवक्त्र। यादवेंद्रें देखिले। ७३ जो महाराज नरवीरपंचानन। जो यादवकुळमुकुटरत्न। जो पूर्णब्रह्म सनातन। इंदिराजीवन श्रीरंग। ७४ जो विश्वपित्याचा जनक। जो सर्गस्थित्यंतकारक। अनंत ब्रह्मांडें देख। इच्छामात्रें घडी मोडी। ७५ तेव्हां अद्‌भुत केलें सर्वेश्वरें। उर्ध्व विलोकिलें श्रीकरधरें।

लिया। उस (नगर) के चारों ओर सेना रूपी समुद्र का अद्‌भुत घेरा पड़ गया। ६७ (यह जानकर) समस्त लोग घबड़ा उठे। उन्होंने कहा (माना)— 'प्रलयकाल आ गया। जरासन्ध परम बलवान है; वह मथुरा का निर्मूलन (जड़-मूल-सहित विनाश) कर डालेगा'। ६८ भाग जाने के लिए कोई रास्ता (शेष) नहीं रहा। प्रजाजन बावेला मचाने लगे। उन्होंने मजबूत दरबाजे बन्द कर लिये। वे किसी के द्वारा भी नहीं खुल सकते थे। ६९ (लोग मानते थे कि) यदुवीर कृष्ण ने कंस को मार डाला। इसलिए यह मथुरा आ गया है। अपने दामाद का पक्षपात करते हुए वह बड़ा प्रलय मचा देगा। ७० (प्राचीर के) बुर्ज-बुर्ज पर वीर (सैनिक) चढ़ गये। वे परकीय (शत्रु-) सेना का निरीक्षण करने लगे। वे एक-दूसरे से बोले, 'अब स्थिति ठीक नहीं दिखायी दे रही है'। ७१ कृष्ण और बलराम दुर्ग पर से सेना का निरीक्षण कर रहे थे। तो उग्रसेन कृष्ण के पास आ गये और बोले, 'अब कैसे करें ?' ७२ सात्यकी, उद्धव और अक्रूर ने कहा (माना), 'बड़ा संकट आ गया !' यादवेन्द्र कृष्ण ने चारों ओर सबको दीनमुख हुए देखा। ७३ जो महाराज (कृष्ण) नर वीरों में सिंह (जैसे) थे, जो यादवकुल के लिए मुकुट-रत्न थे, जो सनातन पूर्णब्रह्म थे, जो इन्दिरा (लक्ष्मी) जीवन श्रीरंग (साक्षात भगवान विष्णु) थे, जो विश्व के पिता ब्रह्मा के जनक हैं, जो निर्माण, स्थिति और अन्त के करनेवाले हैं, जो देखिए, इच्छा-मात्र से अनन्त ब्रह्माण्डों का निर्माण करते हैं और मिटा देते हैं, ऐसे उन सर्वेश्वर (कृष्ण) ने तब एक चमत्कार किया। लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने ऊपर (की ओर) देखा, तो अकस्मात आकाशमार्ग से दो रथ झट से उतर गये। ७४-७६

तों अकस्मात निराळपंथें त्वरें। दोन रथ उतरले। ७६ ते वैकुंठींचे दिव्य रथ। सहस्र मित्रप्रभा भासत। कोणा न वर्णवे तेज अद्भुत। गरुडध्वज झळके वरी। ७७ शारंगशंखचक्रगदामंडित। रथीं असती आयुधें अद्भुत। दारुक सारथी देदीप्यवंत। शस्त्रास्त्रीं मिरवे जो कां। ७८ वरी ठेविले अक्षय भाते। कोण वर्णील तुरंगमांतें। जे अश्व अमृतपानकर्ते। ऐका नामें तयांचीं। ७९ शैब्य सुग्रीव अतिसुस्वरूप। तिजा बहालक चौथा मेघपुष्प। ऐका दुजिया रथाचा प्रताप। संकर्षण आरूढला जेथें। ८० तालध्वजमंडित रथ। चारी वारू चपळ श्वेत। नांगर मुसळ आयुधें समर्थ। तयावरी ठेविलीं। ८१ दोनी रथ मथुरे उतरले। जैसे कां शशिमित्र प्रकटले। दारुकें साष्टांग घातलें। श्रीकृष्णासी दंडवत। ८२ सकळ पाहती जन डोळा। तत्काळ श्रीकृष्ण चतुर्भुज जाहला। चारी आयुधें घेतलीं ते वेळां। रथीं चढला यादवेंद्र। ८३ देव सुमनांचे संभार। वरूनि वर्षती अपार। दुजे रथीं चढला भोगींद्र। हल मुसळ सांभाळिलें। ८४ ऐसें देखोनि तये वेळे। उग्रसेनासी स्फुरण आलें। चतुरंग दळ सिद्ध जाहलें। निशाणीं दिधले घाव वेगीं। ८५ अपार यादवांचे भार। चहूंकडूनि उठावले

वे वैकुण्ठ (लोक) के दिव्य रथ थे। उनकी प्रभा सहस्र सूर्यों की जैसी आभासित हो रही थी। उनके अद्भुत तेज का वर्णन किसी के द्वारा नहीं किया जा सकता। उनपर गरुड़ध्वज झलक रहे थे। ७७ शार्ङ्ग धनुष, शंख, चक्र, गदा से विभूषित उन रथों में अद्भुत आयुध (भरे हुए) थे। उन देदीप्यवान शस्त्रास्त्रों के बीच दारुक नामक सारथी विराजमान था। ७८ उनपर अक्षय भाथे रखे हुए थे। उनके घोड़ों का कौन वर्णन कर सकेगा? जो अश्व अमृत का पान करनेवाले थे, उनके नाम सुनिए। ७९ अति सुस्वरूप शैब्य, सुग्रीव, तीसरा था बहालक और चौथा था मेघपुष्प। अब जहाँ (जिस पर) संकर्षण आरूढ़ हो गये, उस दूसरे रथ का प्रताप सुनिए। ८० वह रथ तालध्वज से विभूषित था। उसके चारों घोड़े चपल और सफ़ेद (वर्ण के) थे। उसपर हल, मूसल जैसे समर्थ आयुध रखे हुए थे। ८१ दोनों रथ मथुरा में उतर गये, जैसे चन्द्र-सूर्य प्रकट हो गये हों। दारुक ने श्रीकृष्ण को दण्डवत साष्टांग नमस्कार किया। ८२ समस्त लोग अपनी आँखों से देख रहे थे— यादवेन्द्र श्रीकृष्ण तत्काल चतुर्भुजधारी हो गये। उस समय उन्होंने चारों आयुध ग्रहण किये और वे रथ पर आरूढ़ हो गये। ८३ देव ऊपर से फूलों की अपार राशियाँ बरसा रहे थे। दूसरे रथ में भोगीन्द्र के अवतार बलराम चढ़ गये। उन्होंने हल और मूसल सम्हाल लिये। ८४ उस समय ऐसा देखकर उग्रसेन स्फुरण (जोश) को प्राप्त हो गये। उनका चतुरंग दल सज्ज हो गया। झट से उन्होंने डंके पर चोट कर दी। ८५ यादवों के असंख्य

समग्र। रथीं बैसले उद्धव अक्रूर। प्रतापशूर प्रचंड जे। ८६ बळिभद्रें आणि घननीळें। सबळ बळें शंख त्राहाटिले। जरासंधाचें सैन्य दचकलें। वीर जाहले भयभीत। ८७ तों वसुदेव निजभारेंसीं ते वेळीं। आला उग्रसेनाजवळी। एकचि घाई लागली। रणतुरांची ते वेळीं। ८८ उल्हाटयंत्रांचे मार। दुर्गावरूनि होती अपार। परसैन्याचे यंत्रगोळ समग्र। दुर्गपरिघामाजी पडती। ८९ उघडिलें मथुरेचें महाद्वार। सिंहनादें गर्जती अपार। यादव निघाले बाहेर। रामकृष्णांसमवेत पैं। ९० दोनी सैन्यां जाहला मेळ। धडकत वाद्यांचा कल्लोळ। डळमळीत उर्वीमंडळ। दिग्गज त्रास पावले। ९१ जाहली एकचि रणधुमाळी। नारद नाचे अंतराळीं। म्हणे भली मांडली येथें कळी। वाजवी टाळी आनंदें। ९२ उतरावया पृथ्वीचा भार। यालागीं अवतरला श्रीधर। तो विजयी हो कां निरंतर। सकळ सुरवर बोलती। ९३ असो पायदळावरी पायदळ। लोटलें तेव्हां अति सबळ। तुरंगारूढ वीर सकळ। तेही मिसळले परस्परें। ९४ गजांवरी गज लोटले। रथांशीं रथ झगटले। एकचि घनचक्र मांडलें। रामकृष्ण पाहती। ९५ जैशा जलदाचिया धारा। तैसे शर येती एकसरां।

सेनादल थे। वे समस्त (दल) चारों ओर से (शत्रु का सामना करने के लिए) सिद्ध हो गये। उद्धव और अक्रूर, जो प्रचण्ड प्रतापी और शूर थे, रथ में बैठ गये। ८६ बलराम और घनश्याम कृष्ण ने पूरे जोर से शंख बजाये, तो (उन्हें सुनकर) जरासन्ध की सेना चौंक उठी। वीर (सैनिक) भयभीत हो गये। ८७ तब वसुदेव अपनी सेना-सहित उस समय उग्रसेन के समीप आ गये। उस समय रणभेरियों का बेजोड़ कोलाहल होने लगा। ८८ क़िले पर से तोपों की अपार मार होने लगी। शत्रु-सेना द्वारा उड़ाये गये सब (तोप-) यंत्र-गोले दुर्ग की चहारदीवारी के अन्दर पड़ते रहे। ८९ (इधर) मथुरा का महाद्वार खोल दिया गया, तो यादव वीर असीम रूप से सिंहनाद कर रहे थे; वे बलराम और कृष्ण के साथ बाहर निकले। ९० दोनों सेनाओं का मिलाप हो गया (सेनाएँ भिड़ गयीं)। वाद्यों का कोलाहल धड़धड़ा रहा था। पृथ्वीमंडल डगमगा उठा। दिग्गज भयभीत हो उठे। ९१ अद्भुत रूप से (बेजोड़) युद्ध हुआ। (इतने में) नारद अन्तराल में नाचने लगे। वे बोले, 'यहाँ अच्छा कलह शुरू किया।' उन्होंने आनन्द से ताली बजायी। ९२ पृथ्वी (पर से पापियों) का भार उतारने के हेतु भगवान विष्णु अवतरित हैं। समस्त देव बोले, 'वे निरन्तर विजयी हो जाएँ'। ९३ अस्तु। तब (विपक्षीय) पदाती दल पर अति बलशाली पदाती दल टूट पड़ा। (एक-दूसरे पक्ष के) समस्त घुड़सवार वीर भी परस्पर घुल मिल गये। ९४ हाथियों पर हाथी टूट पड़े। रथों से रथ भिड़ गये। बेजोड़ घमासान लड़ाई आरम्भ हो गयी।

एक एकासी लागूनि चुरा। होवोनि पडती धरेवरी। ९६ शिरें वीरांचीं उसळती देख। जैसे आकाशपंथें कंदुक। प्रेतें पडती असंख्य। गणना नाहीं अश्वांसी। ९७ शोणिताचे पूर जात। माजी गजकलेवरें वाहत। रथ मोडले असंख्यात। नाहीं गणित अश्वांसी। ९८ कृष्णबळें यादव अनिवार। केला परबळाचा संहार। उठावले जरासंधाचे वीर। शिशुपाळ आणि वक्रदंत। ९९ कृष्णद्वेषी मिळाले अपार। त्यांत रुक्मिया आला भीमककुमर। महाभिमानी दुराचार। अतिनिंदक दुरात्मा। १०० त्यांनीं अपार युद्ध केलें। यादवसैन्य माघारलें। ऐसें रामकृष्णें देखिलें। रथ लोटिले तेधवां। १०१ जैसें वारणचक्र दारुण। त्यांत रिघती दोघे पंचानन। श्रीकृष्णें शारंग चढवून। सोडिले बाण चपळत्वें। २ जैसें पूर्वी श्रावणारिसुतें। जाऊनि वैश्रवणबंधुपुरीतें। किंपुरुषांसहित युद्ध तेथें। प्रतापवंतें केलें जेवीं। ३ कंसांतक तैसाचि येत। परमप्रतापी रणपंडित। असंख्यात बाण सोडीत।

बलराम और कृष्ण यह देख रहे थे। ९५ जिस प्रकार मेघ से (जल-) धाराएँ आती हैं, उसी प्रकार बाण एक साथ आ (छूटते जा) रहे थे। (परन्तु) वे एक दूसरे से लगकर (टकराकर) चूर-चूर होकर धरती पर पड़ जाते थे। ९६ देखिए, वीरों के सिर (कटकर) उछलते थे, जैसे आकाश-मार्ग पर गेंदें (ही उछल) जाती हों। अनगिनत शव गिर गये। (गिरे हुए) अश्वों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। ९७ रक्त के रेले बहते जा रहे थे। उनके अंदर हाथियों के कलेवर बह रहे थे। रथ तो अनगिनत टूट गये। (फिर मरे हुए) अश्वों की कोई गिनती नहीं थी। ९८ कृष्ण के बल से यादव अनिवान हो गये थे। उन्होंने दूसरे के अर्थात शत्रु के दल का संहार कर डाला। तो (उधर) शिशुपाल और वक्रदन्त (नामक) जरासन्ध के वीर (योद्धा) युद्ध के लिए उद्यत हो गये। ९९ कृष्ण से द्वेष करनेवाले असंख्य (लोग) मिल गये। उनमें भीमककुमार रुक्मी (भी) आया (आ मिला)। वह महाभिमानी, दुराचारी था, (कृष्ण का) बड़ा निन्दक और दुरात्मा था। १०० उन्होंने असीम युद्ध दिया। (उन्होंने) यादव-सेना को पीछे हटा दिया। (जब) बलराम और कृष्ण ने ऐसा देखा, तो तब उन्होंने (अपने-अपने) रथ हाँक कर आगे बढ़ा दिये। १०१ जिस प्रकार हाथियों का भयावह समुदाय हो, उसी प्रकार के उस शत्रु दल में बलराम और कृष्ण रूपी सिंह पैठ गये। (फिर) श्रीकृष्ण शार्ङ्ग धनुष चढ़ाकर चपलतापूर्वक बाण चलाने लगे। २ जिस प्रकार पूर्वकाल में (श्रवणारि दशरथ के पुत्र) प्रतापवान राम ने (कुबेर के बन्धु) रावण की पुरी लंका में जाकर वहाँ राक्षसों से युद्ध किया, उसी प्रकार कंसारि कृष्ण (मथुरा के बाहर युद्ध के लिए) आ गये। उन परम प्रतापी रण-पण्डित ने असंख्य बाण चला दिये। उनकी गिनती

नोहे गणित शेषातें। ४ कीं कुंभोद्भव वसुदेवनंदन। रणसागर करूं पाहे प्राशन। कीं मागधसैन्य शुष्क विपिन। त्यासी कृशान श्रीरंग। ५ कीं मागधवीर हेचि नग। त्यांवरी वज्रधर श्रीरंग। हस्तपक्ष छेदूनि सवेग। पाडी मंगळजननीवरी। ६ तेवीस अक्षौहिणी दळ। त्यांत मुख्य मुख्य उरले सबळ। वरकड सैन्य समूळ। कृष्णें आणिलें बाणांवरी। ७ मुकुटरांगाबळी तुटोनी। कां गलटोप पडिले धरणीं। महावीर पाठी देऊनी। पळों लागले तेधवां। ८ गुढारांसहित रिते कुंजर। सैरा धांवती अनिवार। ध्वजांसहित रथ अपार। शून्य पडिले मोडोनि। ९ छत्रें चामरें पताका। तेथें केर पडिला देखा। अशुद्धनदीचा वाहे भडका। घायाळ जींत पोहती। ११० देखोनि पंडितांचें दिव्यज्ञान। पाखंडी पळती घेऊनि वदन। तैसे वीर पृष्ठ दावून। पळते झाले तेधवां। १११ इकडे कृतांत दचके देख। ऐसी बळिभद्रें फोडिली हांक। जरासंधावरी एकाएक। रथासमवेत लोटला। १२ देखोनि बळरामाचा प्रताप। हरपला मागधाचा दारुण दर्प। जैसा शंकरा-

---

शेष द्वारा (भी) नहीं हो पाएगी। ३-४ अथवा वसुदेवनन्दन कृष्णस्वरूप अगस्त्य मुनि युद्धभूमि रूपी समुद्र का प्राशन करना चाहते थे; अथवा मगध की सेना (मानो) शुष्क वन थी; उसके लिए श्रीरंग कृष्ण अग्नि (बने हुए) थे। ५ अथवा मगधवीर ही पर्वत थे; उनपर श्रीरंग कृष्णस्वरूप वज्रधर इन्द्र (चढ़ दौड़े) थे। उन्होंने उन पर्वतों के पंखस्वरूप हाथों को वेगपूर्वक छेदकर पृथ्वी पर गिरा दिया। ६ (जरासन्ध का) वह दल तेईस अक्षौहिणी था। उसमें से मुख्य-मुख्य बलवान (योद्धा) शेष रह गये। कृष्ण अन्य सेना को मूल-सहित बाणों (के मार्ग) पर ले आये (बाणों से मार डाला)। ७ (योद्धाओं के) मुकुट, (घोड़ों की) जालीदार झूलें टूटकर, अथवा गलटोप गिरकर धरती पर गिर पड़े। उस समय महान वीर (भी) विमुख होकर भागने लगे। ८ हाथी अम्मारियों-सहित, फिर भी (आरोही वीर के गिर जाने के कारण) रिक्त चाहे जिधर निरंकुश (बेरोक-टोक) दौड़ने लगे। अनगिनत रथ सूने-सूने होकर (रथीहीन होकर) टूटकर ध्वज-सहित गिर पड़े। ९ देखिए, वहाँ छत्र, चामर, पताकाएँ कूड़े-करकट होकर गिर गये। रक्त की नदी का जोरदार रेला बह रहा था, जिसमें घायल (वीर मानो) तैर रहे थे। ११० पण्डितों के दिव्य ज्ञान को देखकर पाखण्डी जन अपना-सा मुँह लेकर भाग जाते हैं, उसी प्रकार उस समय (जरासन्ध के पक्ष के) वीर पुरुष पीठ दिखाकर भाग गये। १११ इधर, देखिए बलभद्र ऐसे चीख-पुकार उठे कि कृतान्त यम (तक) उससे डर उठा हो। वे यकायक रथ के साथ जरासन्ध की ओर लपक गये। १२ बलराम के प्रताप को देखकर मगधाधिपति जरासन्ध का दारुण घमण्ड छूट गया, जिस प्रकार शिवजी के सामने दहन के समय कामदेव आशंकित हो

पुढें कंदर्प। दहनकाळीं शकला। १३ मुसळ आणि नांगर। हातीं घेऊनि बळिभद्र। रथाखालीं उडी सत्वर। घालूनियां धांविन्नला। १४ नांगर घालूनि ओढी वीर। मुसळघायें करी चूर। झाला बहु वीरांचा संहार। जरासंध पहातसे। १५ धनुष्या चढवोनि गुण। जरासंधें सोडिले बाण। जैसा धारा वर्षे घन। शर निर्वाण सोडिले। १६ ते कृष्णाग्रजें न मानोनि ते वेळीं। धांव घेतली रथाजवळी। नांगर घालूनि तत्काळीं। जरासंध ओढिला। १७ मुसळघायें करावा चूर्ण। तों बोले जगज्जीवन। यासी न मारावें आपण। न्यावा बांधोनि रथासी। १८ तों देववाणी बोले आकाशीं। भीमाहातीं मरण यासी। मग वरुणपाश घालूनि वेगेंसीं। दृढ रथासी बांधिला। १९ जैसा मृगेंद्रें धरिला वारण। तैसा चालविला रथीं बांधोन। विजयी जाहले रामकृष्ण। वृंदारक पुष्पें वर्षती १२० जरासंधाचे वीर ते वेळे। उरले ते अवघेचि पळाले। जैसें यजमानासी संकट ओढवलें। आश्रित पळती दश दिशां। १२१ श्रीरंग म्हणे बळिरामातें। आतां सोडावें जरासंधातें। हा मेळवूनि आणील दैत्यांतें। मागुती त्यांतें संहारूं। २२

गया होगा। १३ बलराम हाथों में मूसल और हल लिये हुए रथ से नीचे कूदकर झट से दौड़े। १४ हल को (आगे) डालकर (बढ़ाकर) वे वीरों को खींचने लगे और मूसल के आघात से चूर-चूर करने लगे। (इस प्रकार) बहुत वीरों का संहार हो गया। जरासन्ध यह देख रहा था। १५ (फिर) धनुष पर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ाकर जरासन्ध बाण चलाने लगा। जिस प्रकार मेघ (जल-) धाराएँ बरसाता है, उसी प्रकार उसने अमोघ बाण चला दिये। १६ उस समय बलराम उनकी परवाह न करते हुए उसके रथ के पास दौड़कर गये। उन्होंने (फिर) हल से तत्काल जरासन्ध को खींच लिया। १७ जब वे मूसल के आघात से उसे चूर-चूर करने जा रहे थे, तब जगज्जीवन कृष्ण बोले, ‘हम इसे न मारें; इसको बाँधकर ले जाएँ’। १८ तब आकाश में देववाणी हुई, ‘भीम के हाथों इसे मौत आनेवाली है’। तब उन्होंने वेगपूर्वक वरुणपाश डालकर उसे रथ से दृढ़ता से बाँध लिया। १९ जिस प्रकार सिंह ने हाथी को पकड़ा हो (और वह उसे खींचकर लिये जा रहा हो), उसी प्रकार (जरासन्ध को) रथ से बाँधकर उन्होंने चला लिया। (इस प्रकार) बलराम और कृष्ण विजेता हो गये, तो देवों ने फूल बरसा दिये। १२० उस समय जरासन्ध के जो वीर शेष (बचकर) रहे थे, वे सभी भाग गये, जिस प्रकार यजमान पर संकट आ पड़े, तो उसके आश्रित दस दिशाओं में भाग जाते हैं। १२१ (तदनन्तर) श्रीकृष्ण बलराम से बोले, ‘अब जरासन्ध को छोड़ दें। (इससे) वह दैत्यों को इकट्ठा करके लाएगा, तो फिर उनका हम संहार करें। २२ पृथ्वी पर जो (-जो) निन्दक,

पृथ्वीवरील जे निंदक खळ। येथें तितुके आणील सकळ। ऐसें बोलतां घननीळ। सोडिला तत्काळ बळरामें। २३ मग अत्यंत करीत खेद। स्वस्थळा पातला जरासंध। म्हणे बावीस सहस्र रायां केला बंध। तो पुरुषार्थ व्यर्थ गेला। २४ मी सेवीन घोर अरण्य। तप करीन तेथें बैसोन। परी नगरासी जाऊनि वदन। काय दावूं लोकांतें। २५ तों रुक्मिया शिशुपाळ वक्रदंत। मार्गीं भेटले अकस्मात। मागधाचें समाधान करीत। तपसंकल्प करूं नको। २६ जय अथवा पराजय। महावीरांसी पडे हा समय। पुरुषें पुरुषार्थ सांडूं नये। करावा उपाय मागुती। २७ जों कायेंत असे प्राण। तों न सोडावी आंगवण। मागुती दळभार घेऊनि। रामकृष्ण धरूनि आणूं। २८ ऐसें जरासंधासी वळविलें। मागुती तितुकेंचि दळ मेळविलें। सवेंचि मागधें धावणें केलें। मथुरेवरी पूर्ववत। २९ मागुती बळिरामें धांवोन। बांधिला वरुणपाश घालून। माधवें दिधला सोडून। पुढती उत्थान आणिक केलें। १३० ऐसा सप्तदश वेळ। संग्राम माजला तुंबळ। सिंहावरी सिंह लोटले सबळ। तैसा फणींद्र धरी त्यातें। १३१ सत्रा वेळ

खल जन हैं, उन सबको यह यहाँ लाएगा।' घननील कृष्ण द्वारा ऐसा कहते ही बलराम ने उसे तत्काल छोड़ दिया। २३ अनन्तर अत्यधिक खेद अनुभव करते हुए जरासन्ध अपने स्थान पहुँच गया। वह बोला (उसने सोचा)— 'मैंने बाईस सहस्र राजाओं को बन्दी बनाया, वह प्रताप व्यर्थ हो गया। २४ मैं (अब) घोर वन में निवास करूँगा। वहाँ बैठकर तपस्या करूँगा; फिर नगर के प्रति जाकर लोगों को (अपना) मुँह क्या दिखाऊँ'। २५ तब मार्ग में रुक्मी, शिशुपाल और वक्रदन्त अकस्मात उससे मिल गये। उन्होंने मगधपति जरासन्ध को सान्त्वना दी (और कहा)— 'तपस्या का निर्णय (प्रण) न करो। २६ महावीरों के लिए जय अथवा पराजय के विषय में कठिनाई का समय आ जाता है। परन्तु (वीर) पुरुष पुरुषार्थ (प्रताप के मार्ग) का त्याग न करे। फिर से वह उपाय (आयोजित) कर ले। २७ जब तक शरीर में प्राण हों, तब तक यत्न करना न छोड़ें। (अतः) फिर से सेनादल लेकर बलराम और कृष्ण को पकड़कर लाएँगे'। २८ इस प्रकार, उन्होंने जरासन्ध को राजी कर लिया। फिर से उतनी ही सेना इकट्ठा की। साथ ही (तत्काल) मगधपति जरासन्ध ने मथुरा पर पहले की भाँति धावा बोल दिया। २९ अनन्तर बलराम ने दौड़कर वरुणपाश डालते हुए उसे बाँध लिया; तो फिर कृष्ण ने उसे छोड़ दिया। तो फिर उस (जरासन्ध) ने और एक (बार) युद्ध के लिए तैयारी की। १३० इस प्रकार सत्रह बार घमासान संग्राम हो गया। बलशाली सिंह पर सिंह लपक गये हों; उसी प्रकार फणीन्द्र शेषावतार बलराम ने (लपककर) उसे पकड़ लिया। १३१ बलराम ने

बळिरामें धरिला। तैसाचि श्रीरंगें सोडविला। तों नारदमुनि पातला। जरासंधाचे भेटीतें। ३२ म्हणे तूं कष्टलासी सत्रा वेळ। तुज नाटोपे राम घननीळ। तरी काळयवन असे सबळ। त्यासी साह्य बोलाविजे। ३३ यादवांचा पराभव संपूर्ण। काळयवनाहातीं असे जाण। त्यासी असे शंकर-वरदान। तें वर्तमान ऐक तूं। ३४ गर्गाचार्य महाऋषी। तो कुळगुरु होय यादवांसी। विद्यासंपन्न तेजोराशी। प्रतिसूर्य दूसरा। ३५ एके यादवें आपुली कन्या। गर्गऋषीसी दिधली जाणा। परी ठाव नाहीं संताना। बहुत दिवस लोटले। ३६ तो यादव विनोदी उदंड। म्हणे गर्गऋषि आहे षंढ। ऐसें ऐकतांचि प्रचंड। क्रोध आला मुनीतें। ३७ म्हणे यादव तुम्ही उन्मत्त। ऐसा निमतों पुरुषार्थी सुत। त्यापुढें पराभव समस्त। होय तुमचा एकदांचि। ३८ परम क्रोधावला ब्राह्मण। केलें हिमाचळीं अनुष्ठान। हिमनगजामात प्रसन्न। तत्काळचि जाहला। ३९ येरू मागे वरदान। ऐसा पुत्र दे मजलागून। जो यादवांसी पराभवून। राज्य हिरोन घेईल। १४० शिव म्हणे तूं करितां अनुष्ठान। म्लेंच्छस्त्री

सत्रह बार उसे पकड़ लिया; वैसे ही (सत्रह बार) कृष्ण ने उसे छुड़वा दिया। तब नारद मुनि जरासन्ध से मिलने के लिए आ गये। ३२ वे बोले, 'तुम सत्रह बार कष्ट को प्राप्त हो गये हो; (फिर भी) बलराम और कृष्ण तुम्हारे द्वारा वश में नहीं किये जा रहे हैं। कालयवन[1] बलवान है; अतः उसे सहायता के लिए बुलाओ। ३३ समझ लो कि यादवों की सम्पूर्ण पराजय कालयवन के हाथों होनेवाली है। उसे शिवजी का वरदान प्राप्त है। तुम वह बात (कथा) सुन लो। ३४ गर्गाचार्य नामक महान ऋषि हैं। वे यादवों के कुलगुरु हैं। वे विद्याओं से सम्पन्न हैं, तेजोराशि हैं; (मानो) प्रतिसूर्य (ही) हों। ३५ समझ लो कि एक यादव ने अपनी कन्या गर्ग ऋषि को (विवाह में) प्रदान की थी। बहुत दिन बीत गये; परन्तु उनके लिए सन्तान का कोई ठिकाना नहीं था (उनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई)। ३६ तो वह यादव बहुत विनोद-प्रिय था। वह बोला, 'गर्गऋषि षण्ढ हैं'। ऐसा सुनते ही मुनि को बहुत बड़ा क्रोध आ गया। ३७ वे बोले, 'तुम यादव उन्मत्त हो। मैं ऐसे प्रतापवान पुत्र का निर्माण करूँगा कि उसके सामने (उससे) तुम सबकी एक बारगी पराजय हो जाएगी'। ३८ वे ब्राह्मण परम क्रोध को प्राप्त हो गये। (तदनन्तर) उन्होंने हिमालय में अनुष्ठान किया। (फलस्वरूप) हिमालय के जामाता शिवजी तत्काल ही प्रसन्न हुए। ३९ तो उन्होंने वरदान माँग लिया— 'मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करो, जो यादवों को पराजित करके उनका राज्य छीन लेगा'। १४० तो शिवजी बोले,

---

१ कालयवन—देखिए टिप्पणी ३, पृ० ५०, अध्याय १।

मागेल भोगदान। तिचे पोटीं पुत्र दारुण। महादुष्ट होईल तुझा। १४१ ब्राह्मणस्त्रीचे पोटीं पुत्र। कदा नव्हे अपवित्र। यथा भूमि तथांकुर। होईल साचार द्विजवरा। ४२ तो तुझा वीर्यनंदन। दुष्टक्षेत्रीं होय निर्माण। असो गर्ग करीत अनुष्ठान। महाविपिन सेविलें। ४३ तों दुष्ट एक म्लेंच्छपती। त्यासी नव्हे पुत्रसंतती। तेणें स्त्री पाठविली गर्गाप्रती। शृंगारूनि एकांतीं। ४४ तीस भोग दिधला जाण। तोचि हा म्लेंच्छ काळयवन। यासी तूं संगें घेऊनि। मथुरेवरी जाय कां। ४५ ऐकतां जरासंध संतोषला। काळयवनापासीं गेला। सर्व वृत्तांत सांगितला। क्रोधावला काळयवन। ४६ तीन कोटी म्लेंच्छ त्याचे। तेवीस अक्षौहिणी दळ मागधाचें। रुक्मिया शिशुपाळ दैत्य साचे। साह्य झाले सत्वर। ४७ ऐसी सेना मेळवूनि सवेग। रजनीमाजी क्रमिती मार्ग। सर्वांतरात्मा श्रीरंग। वर्तमान कळलें तें। ४८ मग भक्तकैवारी रमाधव। समुद्रापासीं मागोनि ठाव। द्वारकानगर अपूर्व। विरिंचिहातीं रचविलें। ४९ द्वारकेची रचना सांगतां समस्त। तरी हा अध्याय वाढेल बहुत। द्वारकावर्णन अद्भुत। पुढें

'तुम्हारे द्वारा अनुष्ठान करते रहते, कोई एक म्लेंच्छ स्त्री सम्भोग का दान माँग लेगी। उसके उदर (गर्भ) से उत्पन्न तेरा पुत्र महा भयावह दुष्ट होगा। १४१ ब्राह्मण स्त्री के उदर से कदापि अपवित्र पुत्र उत्पन्न नहीं होगा। हे द्विजवर, सचमुच जैसी भूमि होती है, वैसा अंकुर (उत्पन्न) होगा। ४२ तेरा वह वीर्यपुत्र दुष्टक्षेत्र में, अर्थात हीन स्त्री के उदर से निर्माण होगा'। अस्तु। गर्ग मुनि ने एक बड़े अरण्य में निवास किया और (वहाँ) वे अनुष्ठान करने लगे। ४३ तब (उसके समीप) कोई एक म्लेंच्छ राजा था। उसके पुत्र-सन्तान नहीं थी। उसने अपनी पत्नी को साज-शृंगार कराकर गर्ग मुनि के पास एकान्त में भेज दिया। ४४ समझिए (कि उसके द्वारा याचना करने पर) गर्ग मुनि ने उसे भोगदान दिया (उससे सम्भोग किया)। (उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ) वही यह म्लेंच्छ कालयवन है। इसे तुम साथ में लेकर मथुरा पर आक्रमण करने क्यों न चले जाओ'। ४५ यह सुनकर जरासन्ध सन्तुष्ट हुआ। वह कालयवन के पास गया। उसने उसे समस्त समाचार बताया, तो कालयवन क्रुद्ध हो उठा। ४६ उसके तीन करोड़ म्लेंच्छ (सैनिक) थे। (इधर) मगधपति जरासन्ध की तेईस अक्षौहिणी सेना थी। रुक्मी, शिशुपाल जैसे दैत्य सचमुच झट से उसके सहायक हो गये। ४७ ऐसी सेना इकट्ठा करके वे वेगपूर्वक रात में मार्ग तय करने लगे। (इधर) सबके अन्तरात्मा-स्वरूप श्रीकृष्ण को यह समाचार विदित हुआ। ४८ अनन्तर भक्तों के पक्षपाती रमापतिस्वरूप कृष्ण ने समुद्र से स्थान माँगकर ब्रह्मा के हाथों अपूर्व (अद्भुत) द्वारका नगर का निर्माण करवाया। ४९ द्वारका की रचना को समग्र बताने पर यह अध्याय बहुत बढ़ जाएगा।

कथन केलें असे पैं । १५० असे जैसी वैकुंठनगरी । तैसीच द्वारका भूमीवरी । कमलोद्भवें निर्मिली ते अवसरीं । श्रीकृष्णाज्ञेंकरूनियां । १५१ जेणें इच्छामात्रें आणिले रथ । तेणेंचि द्वारका रचिली अद्भुत । तेथें नाना संपत्ती समस्त । कुबेरें आणूनि भरियेल्या । ५२ तों रातोरातीं काळयवनें । मथुरेवरी मांडिलें धांवणें । तों मथुरेसी लोक निद्रेनें । आबालवृद्ध व्यापिलें । ५३ परम नाटकी पूतनारी । योगमाया घालोनि वरी । रजनीमाजीं द्वारकापुरीं । समस्त लोक पाठविले । ५४ धनधान्यपशूंसमवेत । गज तुरंग रथ अद्भुत । सहकुटुंबें यादव समस्त । उग्रसेनही पाठविला । ५५ दारुक सारथी रथ आयुधें । तींही पाठविलीं गोविंदें । बळिभद्रही परमानंदें । पाठविला तेधवां । ५६ एक श्रीकृष्णावेगळें । मथुरेंत कोणी नाहीं उरलें । जैसें अयोध्यानगर पूर्वी नेलें । रामचंद्रें वैकुंठीं । ५७ द्वारकेमाजी लोक जागे जाहले । पाहती उगेचि चाकाटले । वस्तुजात तैसेंचि संचलें । परी नगर आपुलें नव्हेचि । ५८ उद्धव अक्रूर उग्रसेन । वसुदेव देवकी संकर्षण । रोहिणी प्रजा सकळ ब्राह्मण । म्हणती हरिविंदान न कळेचि । ५९ मथुरेच्या

(अतः) द्वारका के अद्भुत रूप का (संक्षेप में) वर्णन आगे किया है । १५० अस्तु, जैसी वैकुण्ठनगरी (निर्मित) है, वैसी ही पृथ्वी पर ब्रह्मा ने उस समय द्वारका नगरी श्रीकृष्ण की आज्ञा से निर्मित की । १५१ जो इच्छा मात्र (करने) से रथ लाये, उन्हीं ने अद्भुत द्वारका नगरी का निर्माण किया । कुबेर ने नाना प्रकार की समस्त सम्पत्तियाँ लाकर वहाँ (उसमें) भर दीं । ५२ तब रात-की-रात में कालयवन ने मथुरा पर धावा बोल दिया । तब मथुरा में आबाल-वृद्ध लोगों को निद्रा ने व्याप्त किया था । ५३ पूतनारि कृष्ण तो परम नाटकी थे । उन्होंने सब पर योगमाया (का प्रभाव) करके रात के अन्दर समस्त लोगों को द्वारकापुरी में भेज दिया । ५४ धन-धान्य-पशुओं-सहित, हाथियों-घोड़ों, अद्भुत रथों-सहित, सपरिवार समस्त यादवों को और उग्रसेन को भी भेज दिया । ५५ (वहाँ) सारथी दारुक था, रथ-आयुध थे —कृष्ण ने उन्हें भी भेज दिया । उस समय उन्होंने बलराम को भी परम आनन्द के साथ भेज दिया । ५६ एक श्रीकृष्ण के सिवा मथुरा में कोई भी शेष नहीं रहा । जिस प्रकार पूर्वकाल में भगवान रामचन्द्र अयोध्या नगर को वैकुण्ठ में ले गये, उसी प्रकार श्रीकृष्ण मथुरा को द्वारका में ले गये । ५७ द्वारका में लोग जग गये, और (सब) देखने लगे, तो यों ही चकित हो उठे । (उन्होंने देखा कि) समस्त वस्तुएँ वैसे ही संचित हैं, फिर भी (उन्होंने माना कि) यह नगर अपना है ही नहीं । ५८ उद्धव, अक्रूर, उग्रसेन, वसुदेव-देवकी, बलराम, रोहिणी, प्रजाजन, समस्त ब्राह्मण बोले— श्रीहरि की माया समझ ही में नहीं आती । ५९ मथुरा की अपेक्षा सौ गुना अधिक अच्छा द्वारका

शतगुणें चांगलें। द्वारकानगर आम्हां दिधलें। असो इकडे काय वर्तलें। तेंचि ऐका भाविक हो। १६० जरासंध आणि काळयवन। उगवला नसतां चंडकिरण। वेढा घातला मथुरेसी येऊन। पळेल कृष्ण म्हणोनियां। १६१ जरासंध म्हणे बरें झालें। मज सत्रा वेळां इंहीं गांजिलें। धरोनि आतांचि एक वेळे। संहारीन हरीसहित। ६२ तों सवेंचि उगवला अर्क। नगरांत न दिसती लोक। उल्हाटयंत्रांचे मार अधिक। न होती दुर्गावरोनियां। ६३ नगरद्वार उघडें भणभणित। एकलाचि उभा कृष्णनाथ। नाहीं शस्त्रास्त्रें रथ। वाट पाहत यवनाची। ६४ आश्चर्य करिती समस्त। म्हणती गोवळा कपटी बहुत। यासीच धरावें त्वरित। मग लोक शोधावे। ६५ काळयवनें कृष्ण लक्षिला। शस्त्रेंविरहित चरणीं देखिला। आपण रथाखालीं उतरला। शस्त्रें ठेवूनि समस्त। ६६ जरासंधासी म्हणे काळयवन। आतांचि कृष्ण आणितों धरून। नेऊं रथासी बांधोन। सूड घेईन तुझा आतां। ६७ यवनें भुजा पिटोनि सत्वर। सन्मुख लक्षिला श्रीधर। आवेशें धांव घेतली थोर। तें यदुवीर पाहतसे। ६८ जवळी येतां काळयवन। जगद्वंद्य करी हास्यवदन। करावया गर्गवचन प्रमाण। नारायण चालिला। ६९ जो इच्छामात्रें घडी

नगर हमें दिया है। अस्तु। हे श्रद्धालु जनो, इधर क्या घटित हुआ, उसे सुनिए। १६० कृष्ण भाग जाएगा, इसलिए सूर्य के न निकलने के पहले ही जरासन्ध और कालयवन ने मथुरा आकर घेरा डाला। १६१ जरासन्ध बोला, 'अच्छा हुआ। इन्होंने मुझे सत्रह बार कष्ट दिये। (इन्हें) पकड़कर अभी एक ही समय इनका कृष्ण-सहित संहार कर डालूँगा'। ६२ तो साथ ही (उसी समय) सूर्य उदित हुआ। नगर में लोग नहीं दिखायी दे रहे थे। दुर्ग पर से तोपों की मार (भी) अधिक नहीं हो रही थी। ६३ नगर का द्वार पूरा-पूरा खुला था। (अन्दर) अकेले कृष्णनाथ खड़े थे। (वहाँ) न शस्त्रास्त्र थे, न रथ। वे (काल-) यवन की बाट जोह रहे थे। ६४ सब आश्चर्य अनुभव करने लगे। वे बोले, 'यह ग्वाला बहुत छली है; इसी को झट से पकड़ लें, फिर (अन्य) लोगों को ढूंढ़ लें। ६५ कालयवन ने कृष्ण को देखा। उनको शस्त्र-रहित तथा पदाती देखा, तो वह समस्त शस्त्रों को (रथ ही में) रखकर स्वयं नीचे उतर गया। ६६ कालयवन जरासन्ध से बोला, 'मैं अभी कृष्ण को पकड़कर ले आता हूँ। उसे रथ से बाँधकर ले जाएँगे। मैं अब उससे तुम्हारी ओर से बदला ले लूँगा'। ६७ कालयवन ने (फिर) झट से ताल ठोंककर सामने कृष्ण को लक्ष्य किया और आवेशपूर्वक बड़ी दौड़ लगायी। यदुवीर कृष्ण यह देख रहे थे। ६८ कालयवन के पास में आते ही जगद्वंद्य कृष्ण मुस्कराये। फिर भगवान नारायण (कृष्ण) गर्ग ऋषि के वचन को सच्चा सिद्ध करने के लिए चल पड़े। ६९ जो मात्र

समस्त। तो काळयवनभेणें पळत। परी शिववचनासी मान देत। भक्त-वत्सल म्हणोनियां। १७० असो कायेंतूनि निघे प्राण। तो कदा नव्हे दृश्यमान। अवघ्या दळादेखतां कृष्ण। जाय निघोनि क्षणमात्रें। १७१ जैसी गगनीं झळके चपळा। तैसा हरि वेगें निघाला। काळयवन पाठीं लागला। दळभार राहिला दूरी पैं। ७२ पुढें जात शेषशयन। समीरगती धांवे यवन। उल्लंघिलीं अरण्यें दारुण। महाकठिण पर्वत। ७३ नर्मदा तापी गोदावरी। अनेक नद्या उल्लंघी मुरारी। भीमा उल्लंघूनि कृष्णातीरीं। कृष्ण वेगें पातला। ७४ कृष्णावेणीसंगम सुरंग। ज्यासी म्हणती दक्षिणप्रयाग। तेथें उभा ठाकला श्रीरंग। तों भार्गवराम भेटला। ७५ जाहलें दोघां क्षेमालिंगन। परशुराम पुसे हरीलागून। कोणीकडे जाहलें आगमन। कृष्णें वर्तमान सांगीतलें। ७६ तों जवळी आला काळयवन। पुढें चालिला जगन्मोहन। पूर्ण ब्रह्म सनातन। त्यासी यवन धरूं पाहे। ७७ वाटे जवळी सांपडला दिसे।

इच्छा से समस्त (ब्रह्माण्ड को) गढ़ लेते हैं, वे कालयवन के डर से भागने लगे। फिर भी वे भक्तों के प्रति वत्सलतापूर्ण होने के नाते शिवजी के वचन का सम्मान कर रहे थे। १७० अस्तु। शरीर में से प्राण निकल जाते हैं, फिर भी वे कदापि दृश्यमान नहीं होते। समस्त दल के देखते रहते, कृष्ण क्षण मात्र में निकलकर चले गये (यह किसी की समझ में नहीं आया कि कृष्ण कैसे चले गये)। १७१ जिस प्रकार में आकाश बिजली चमक जाती है, उसी प्रकार अर्थात विद्युद्गति से श्रीहरि वेगपूर्वक निकल गये। कालयवन उनका पीछा करने लगा; (इधर) उसकी सेना दूर (पीछे) रह गयी। ७२ शेषशायी भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण आगे (दौड़ते) जा रहे थे; (उनके पीछे-पीछे) कालयवन वायुगति से दौड़ रहा था। उन्होंने दारुण अरण्यों और महा कठिन (महादुर्गम) पर्वतों को लाँघ लिया। ७३ कृष्ण ने नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी-(जैसी) अनेक नदियों को लाँघ लिया (पार किया)। भीमा को पार करके कृष्ण वेगपूर्वक कृष्णा तीर पर आ पहुँचे। ७४ (वहाँ) कृष्णा-वेण्णा का सुन्दर संगम है, जिसे दक्षिणप्रयाग कहते हैं। कृष्ण वहाँ (रुककर) खड़े रहे, तो उनसे भार्गवराम (परशुराम) मिले। ७५ दोनों का क्षेमालिंगन हो गया। तो परशुराम ने कृष्ण से पूछा, '(इधर) किस ओर (तुम्हारा) आगमन हुआ ?' तो कृष्ण ने (समस्त) समाचार कह दिया। ७६ तब (तक) कालयवन (उनके) पास आ गया, तो जगन्मोहन आगे चले गये। वे तो पूर्ण सनातन ब्रह्म हैं। कालयवन उन्हें पकड़ना चाहता था। ७७ लगता था कि वे पास हैं, ऐसा दिखायी देता था कि मिल गये (पकड़े गये)। परन्तु वे (वस्तुतः) बहुत ही दूर थे। तो कालयवन ने यत्नपूर्वक बड़ी दौड़ लगायी; फिर भी कृष्ण

परी दूरी बहुतचि असे। बहु धांव घेतली सायासें। परी नाटोपे श्रीरंग। ७८ एक सद्भावावांचोन। कोणा नाटोपे जगज्जीवन। त्यासी काय धरील काळयवन। अतर्क्य पूर्ण वेदशास्त्रां। ७९ काळयवन म्हणे रे भ्याडा। किती पळसील दडदडां। तुवां गोकुळीं केला पवाडा। तें मजपुढें न चलेचि। १८० सत्रा वेळ मागधासीं। तूं मथुरेपुढें युद्ध करिसी। मजभेणें कां तूं पळसी। नपुंसक होसी गोविळ्या। १८१ गौळणी बांधिती उखळासी। मज उशीर काय धरावयासी। तूं गोकुळीं चोरी करिसी। तेंचि पाहसी चहूंकडे। ८२ कलिया आणि अघासुर। किरडें मारून जाहलासी थोर। अश्व मारिला केशी वीर। बकासुर पांखरूं। ८३ वल्मीकतुल्य गोवर्धन। पुरुषार्थ भोगिसी उचलून। कंस मारिला कपटेंकरून। आतां धरीन क्षणें तुज। ८४ ऐसे उणे बोल बोलत। बोलां नाटोपे कृष्णनाथ। नाना तपें अनुष्ठान करीत। त्यांसी निश्चित न सांपडे। ८५ दुग्धाहारी फळाहारी। नग्न मौनी जटाधारी। पंचाग्नि साधिती निराहारी। त्यांसी मुरारी नाटोपे। ८६

उसके द्वारा रोके नहीं जा रहे थे। ७८ बिना (केवल) एक सद्भाव (भक्ति) के जगज्जीवन कृष्ण किसी के वश में नहीं आ सकते। जो वेद-शास्त्रों (तक) के लिए भी पूर्ण अतर्क्य हैं, उन्हें कालयवन क्या (कैसे) पकड़ पाएगा। ७९ तो कालयवन बोला, 'अरे भीरु, दनदनाते हुए कितना भागेगा (दौड़ेगा)? तूने गोकुल में वीरतापूर्ण काम किया; (परन्तु) वह मेरे सामने चलेगा ही नहीं (तुम्हारी मेरे सामने एक न चलेगी)। १८० तूने मगधपति जरासन्ध से मथुरा में सत्रह बार युद्ध किया, तो फिर मेरे डर से तू क्यों भाग रहा है? अरे ग्वाले, तू नपुंसक है। १८१ तुझे तो ग्वालिनों ने ऊखल से बांधा था, फिर (तुझे) पकड़ लेने में मुझे क्या देर (लगेगी)? तू गोकुल में चोरी किया करता था। वही तू चारों ओर देख (समझ) रहा है। ८२ कालिय और बकासुर, सँपेले को मारकर तू बड़ा बन गया है। तूने केशी वीर अश्व को, चिड़िया (-से) बकासुर को मार डाला। ८३ गोवर्धन (पर्वत) तो बमीठे जैसा है; उसे उठाकर तू पुरुषार्थ भोग रहा है (अर्थात प्रताप बघार रहा है)। तूने कंस को कपट से मार डाला। (फिर भी) मैं तुझे क्षण में पकड़ लूंगा'। ८४ वह इस प्रकार मर्मभेदी बातें बोल रहा था। परन्तु कृष्णनाथ तो बातों से वश में नहीं आ सकते। जो लोग नाना तपस्याएँ तथा अनुष्ठान किया करते हैं, उन्हें भी निश्चित रूप से वे नहीं मिलते। ८५ (विभिन्न व्रतों को रखते हुए) जो लोग दुग्धाहारी हो जाते हैं, फलाहारी हो जाते हैं, नग्न, मौनी, जटाधारी होते हैं, पंचाग्नि साधना करते हैं; निराहारी होते हैं (जिससे कि भगवान की प्राप्ति हो जाए), श्रीकृष्ण उनके वश में नहीं होते। ८६ कुछ एक वेद-शास्त्रों का पठन करते हैं, कुछ एक योग-साधना

एक करिती वेदशास्त्रपठन। करिती योगसाधन तीर्थाटन। नाना साधनीं करिती शीण। परी मनमोहन नाटोपे। ८७ एका ढेंगेंत ब्रह्मांड आटी। यवन धांवे त्याचिया पाठीं। व्यर्थ पळतां होती हिंपुटी। परी जगजेठी न सांपडे। ८८ क्षण एक अवतारी सगुण। सवेंचि पाहतां तो निर्गुण। म्हणे त्रिविक्रम क्षणें वामन। त्यासी यवन धरील कोठें। ८९ अद्भुत हरीचा वेग होये। तों काळयवन मागें राहे। मागुती हरि त्याची वाट पाहे। जवळी यावा म्हणोनि। १९० कंठींच्या तुलसी आणि सुमनहार। वाटेसी टाकीत जात श्रीधर। तोचि माग पाहूनि असुर। धांवे थोर वेगेंसीं। १९१ पुढें पराशरपर्वत। त्यावरी चढे रमानाथ। तेथें व्यासपिता अनुष्ठान करीत। जगन्नाथ वंदी तया। ९२ त्या पर्वतीं न दिसे कृष्ण। तों उष्णकाळ शुष्क विपिन। यवनें भोंवता लाविला अग्न। ऋषिजन तेणें आहाळती। ९३ ऐसें श्रीकृष्णें जाणोनी। पर्वत दडपिला बळेंकरूनी। उदक वरी आलें उसळोनी। विझविला अग्नि क्षणमात्रें। ९४ तेथूनि मग पश्चिमपंथें। धांव घेतली कृष्णनाथें।

करते हैं, तीर्थाटन करते हैं, नाना साधनाओं को सम्पन्न करते हुए परिश्रम करते हैं। श्रीकृष्ण उनके वश में नहीं होते। ८७ जो एक डग में ब्रह्माण्ड को व्याप्त करते हैं, उनके पीछे कालयवन दौड़ रहा था। इस प्रकार दौड़ते रहने से व्यर्थ ही लोग दुःखी हो जाते हैं। फिर भी जगद्श्रेष्ठ नहीं मिलते। (बिना भक्ति के भगवान की प्राप्ति के लिए की जानेवाली नाना प्रकार की साधनाएँ, व्रत, तपानुष्ठान, तीर्थाटन आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं। इसमें फँसे रहनेवाले को भगवान नहीं मिलते; उन्हें व्यर्थ ही कष्ट या दुःख भोगने पड़ते हैं)। ८८ एक क्षण जो सगुण अवतार धारण करते हैं, तो साथ ही देखते, अर्थात तत्क्षण वे निर्गुण होते हैं। क्षण में जो 'त्रिविक्रम' (तीन पदों में ब्रह्माण्ड को व्याप्त करनेवाले) कहाते हैं, तो क्षण में 'वामन' (नाटे)। उन्हें कालयवन कहाँ पकड़ पाएगा। ८९ श्रीहरि का वेग अद्भुत था, तो कालयवन पीछे रह गया। अनन्तर (बहुत आगे जाकर) कृष्ण उसकी बाट जोहते रहे कि वह पास आ जाए। १९० कृष्ण गले में पहने हुए तुलसी (दलों) के और फूलों के हार मार्ग में फेंकते जा रहे थे। वही पहचान का चिह्न देखकर (टोह लेते हुए) वह असुर (कालयवन) बड़े वेग से दौड़ रहा था। १९१ आगे पराशर पर्वत था। रमानाथ (कृष्ण) उसपर चढ़ गये। वहाँ (महर्षि) व्यास के पिता पराशर अनुष्ठान कर रहे थे। जगन्नाथ कृष्ण ने उनका वन्दन किया। ९२ उस पर्वत पर (कालयवन को) कृष्ण नहीं दिखायी दिये। तब ग्रीष्मऋतु थी। वन सूख गया था। तो कालयवन ने चारों ओर से (उसमें) आग लगा दी। ऋषिजन उससे झुलसने लगे। ९३ श्रीकृष्ण ने ऐसा जानकर उस पर्वत को बलपूर्वक दबा दिया, तो पानी उछलकर उधर

मार्ग दावूनि यवनातें। पुढें पुढें जात असे। ९५ तों तेथें पर्वताचे वरीं। महाभयानक विवरीं। तेथें मुचुकुंदें बहुकाळवरी। निद्रा केली श्रमोनियां। ९६ सूर्यवंशी राजा मांधात। हा मुचुकुंदनामें तयाचा सुत। तेणें स्वर्ग रक्षूनि समस्त। देव सुखी राखिले। ९७ दैत्यांशीं युद्ध अद्भुत। केलें बहुकाळपर्यंत। पुढें स्कंद झाला शिवसुत। तेणें स्वर्गा रक्षिलें। ९८ मुचुकुंद बहुत श्रमला। मग शचीवर प्रसन्न झाला। म्हणे वर मागें वहिला। अपेक्षित असेल जो। ९९ येरू म्हणे श्रमलों प्रबल। निद्रा करीन बहुकाळ। जो माझी निद्रासमाधि मोडील। तो भस्म होवो तेथेंचि। २०० माझे निद्रांतीं जगज्जीवन। भेटो अकस्मात येऊन। तथास्तु म्हणे सहस्रनयन। मग विवरीं जाऊनि निजला पैं। २०१ यालागीं त्याचि विवरांत। प्रवेशला

आ गया और उसने क्षण मात्र में आग बुझा दी। ९४ अनन्तर कृष्णनाथ ने वहाँ से पश्चिम के मार्ग पर दौड़ लगायी। वे कालयवन को मार्ग दिखाते (-दिखाते) आगे-आगे जा रहे थे। ९५ तो वहाँ पर्वत की घाटी की एक महा भयावह गुफा में मुचुकुन्द ऋषि थककर बहुत समय से सो गये थे। ९६ मान्धाता[1] नामक सूर्यवंशीय राजा थे। ये मुचुकुन्द[2] नामक उनके पुत्र थे। उन्होंने स्वर्ग की रक्षा करके समस्त देवों को सुखी-सकुशल रखा। ९७ उन्होंने बहुत काल तक दैत्यों से अद्भुत युद्ध किया। आगे चलकर (परवर्ती काल में) स्कन्द नामक शिवजी के पुत्र (उत्पन्न) हो गये[3]। उन्होंने स्वर्ग की रक्षा की। ९८ मुचुकुन्द बहुत थक गये थे। तब इन्द्र उनपर प्रसन्न हो गये और बोले, 'जो अपेक्षित हो, वह वर झट से माँग लो'। ९९ वे बोले, 'मैं बहुत थक गया हूँ। (अतः) मैं बहुत समय (तक) सो जाऊँगा। जो मेरी निद्रा रूपी समाधि को भग्न करेगा, वह वहीं (जलकर) भस्म हो जाए। २०० मेरी निद्रा के अन्त में जगज्जीवन (भगवान) अकस्मात आकर मुझसे मिलें।' सहस्रनयन इन्द्र (यह सुनकर) बोले, 'तथास्तु'। अनन्तर वे (ऋषि मुचुकुन्द) उस

---

१ मान्धाता— इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न राजा युवनाश्व के उदर में से इसे निकाला गया। इन्द्र ने स्वयं इसका पालन अपना अँगूठा चुसवाकर किया; अतः यह इन्द्र की उक्ति 'माँ-धाता' के आधार पर 'मान्धाता' कहलाया। यह समस्त विद्याओं और शस्त्रों से सम्पन्न हो गया। इसने पृथ्वी को जीतकर सौ राजसूय और अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये। अन्त में मारे घमण्ड के इसने इन्द्र को जीतना चाहा, तो इन्द्र ने इसे लवणासुर से युद्ध करने की प्रेरणा दी। उस युद्ध में यह लवणासुर द्वारा मारा गया।

२ मुचुकुन्द— यह मान्धाता का तृतीय पुत्र था। इसने नर्मदा नदी के तट पर एक नगर बसा लिया, जिसे हैहयराज महिष्मन्त ने जीत लिया। एक बार देवासुर-संग्राम में देवों ने मुचुकुन्द से सहायता की याचना की। मुचुकुन्द ने उसे स्वीकार करके युद्ध में दैत्यों को पराजित किया।

३ स्कन्द : देखिए टिप्पणी १ (षडानन), पृ० १७१, अध्याय ११।

वैकुंठनाथ। तें दुरूनि काळयवन देखत। म्हणे बरा तेथें सांपडला।२ हरि विवरांत पुढें गेला। तों मुचुकुंद बहुकाळ निजला। आपुला पीतांबर काढिला। मग झांकिला तयावरी।३ आपण पुढें जाऊन। गुप्त पाहे जगज्जीवन। तों विवरांत प्रवेशला कालयवन। विलोकून पाहतसे।४ तों देखिला दिव्य पीतांबर। म्हणे येथेंचि निजला यादवेंद्र। म्हणोनि सबळ लत्ताप्रहार। हाणिता जाहला दुरात्मा।५ मुचकुंद उठिला खडबडोन। क्रोधें पाहे विलोकून। तात्काळ तेथेंचि काळयवन। भस्म जाहला क्षणमात्रें।६ सूत्रधारी नारायण। ऐसा मारविला काळयवन। मुचुकुंद पाहे सावधान। तों पीतवसन देखिलें।७ तो सुवास न माये अंबरीं। मुचुकुंद सद्गदित अंतरीं। परतोनि पाहे तों मधुकैटभारी। चतुर्भुज उभा असे।८ उदारवदन मनोहर। कर्णीं कुंडलें मकराकार। दिव्य मुकुट प्रभाकर। तेजें विवर उजळिलें।९ कौस्तुभ हृदयीं झळकत। वैजयंती आपाद डोलत। चतुर्भुज वैकुंठनाथ। पाहतां मन निवालें।२१० ऐसा

विवर में जाकर सो गये।२०१ इसलिए वैकुण्ठनाथ विष्णुस्वरूप कृष्ण उसी विवर में प्रविष्ट हो गये। कालयवन वह दूर से देख रहा था। उसने कहा (माना)— यह अच्छा यहाँ मिल गया।२ कृष्ण विवर में आगे गये। तब मुचुकुन्द वहाँ बहुत समय से सोये थे। उन्होंने अपना पीताम्बर उतार लिया और फिर उन (मुचुकुन्द) पर उढ़ा दिया।३ (फिर) जगज्जीवन कृष्ण स्वयं आगे जाकर गुप्त रूप से देखने लगे। तब कालयवन उस विवर में पैठ गया। वह निरखकर देखता रहा।४ तो उसने उस दिव्य पीताम्बर को देखा और कहा (माना), 'यहीं कृष्ण सोया हुआ है'। इसलिए उस दुरात्मा ने उनपर जोर से लत्ताप्रहार किया (लात जमायी)।५ मुचुकुन्द हड़बड़ाकर जग उठे और क्रोधपूर्वक निरखकर देखने लगे। तत्काल कालयवन वहीं क्षण मात्र में)जलकर भस्म हो गया।६ भगवान नारायण (कृष्ण स्वयं) सूत्रधार थे। उन्होंने इस प्रकार कालयवन को मरवा डाला। (जब) मुचुकुन्द ने सावधानी से देखा तो उन्होंने पीताम्बर देखा।७ उस (पीताम्बर) की सुगन्ध आकाश (तक) में नहीं समा रही थी। मुचुकुन्द (यह देखकर) अन्तःकरण में बहुत गद्गद हो उठे। मुड़कर उन्होंने देखा तो मधुकैटभ के शत्रु, चतुर्भुजधारी भगवान (वहाँ) खड़े थे।८ उनका मुख उदार (उदात्त, प्रभावशाली) तथा मनोहर था। कानों में मकराकार कुण्डल थे। मुकुट प्रभा से युक्त दिव्य था। उसके तेज से वह विवर उज्ज्वलता को (प्रकाश को) प्राप्त हो गया।९ हृदय-स्थल पर कौस्तुभ जगमगा रहा था। वैजयन्ती माला पाँवों तक झूल रही थी। उन चतुर्भुजधारी वैकुण्ठपति को देखते ही उनका मन शान्ति को प्राप्त हो गया।२१०

मुचुकुंदें हरि देखिला। साष्टांग नमस्कार घातला। म्हणे पुराणपुरुषा भक्तवत्सला। तूं परब्रह्म केवळ भाससी। २११ म्यां पूर्वी बहुकाळवरी। स्वर्गी रक्षिलें नाना परी। श्रमोनियां विवराभीतरी। निद्रा केली बहुकाळ। १२ तूं कोण मज सांगें निर्धार। मग सुहास्यवदन यादवेंद्र। म्हणे उतरावया भूमिभार। कृष्णावतार आठवा। १३ मुचुकुंदें धरिले दृढ चरण। दाटला अष्टभावेंकरून। म्हणे शचीवरें दिधलें वरदान। तें सफळ आजि जाहलें। १४ धन्य धन्य आजिचा सुदिन। देखिलें क्षीरसागरींचें निधान। परमपावन जाहले नयन। हरिवदन विलोकितां। १५ धन्य हें जाहलें शरीर। कृष्णें पांघुरविला पीतांबर। निरसोनि अज्ञानअंधकार। सावध केलें मजलागीं। १६ बहुत काळ तममय यामिनी। भ्रांतीं मी पडिलों ये स्थानीं। श्रीकृष्ण उगवला वासरमणी। सरली रजनी अज्ञान। १७ कीं वैद्यराज रमारंग। कृपावलोकनें निरसोनि रोग। सावध करूनि निजांग। माझें मज दाविलें। १८ धन्य पंचाक्षरी यदुवीर। मजवरी झांकूनि पीतांबर। निद्राभूत हें अपस्मार। केलें दूर क्षणार्धें। १९

मुचुकुन्द ने इस प्रकार श्रीकृष्ण को देखा, तो उन्होंने साष्टांग नमस्कार किया और कहा, 'हे पुराणपुरुष, हे भक्तवत्सल, तुम केवल परब्रह्म आभासित हो रहे हो। २११ मैंने पूर्वकाल में बहुत समय तक स्वर्ग की नाना प्रकार से रक्षा की। थक जाने पर मैं इस विवर के अन्दर बहुत समय सो गया। १२ तुम कौन हो, मुझे अवश्य बता दो'। तब यादवेन्द्र मुस्कराकर बोले, 'भूमि का (पाप-) भार उतारने के लिए मैं (भगवान का) आठवाँ अवतार कृष्ण हूँ'। १३ (यह सुनते ही) मुचुकुन्द ने उनके चरण दृढ़तापूर्वक पकड़े। वे आठों भावों से गद्‌गद हो उठे। वे बोले, 'शचीपति इन्द्र ने (मुझे) वरदान दिया था। वह आज सफल हो गया। १४ आज का दिन धन्य है, धन्य है। मैंने क्षीरसागर के निधान (भगवान विष्णु) को देखा। श्रीहरि के मुख का अवलोकन करने से मेरे नयन परम पावन हो गये हैं। १५ (मेरा) यह शरीर धन्य हो गया। मुझे कृष्ण ने पीताम्बर उढ़वा दिया और मेरे अज्ञान रूपी अन्धकार का निराकरण करके मुझे सावधान (सचेत) कर दिया। १६ बहुत काल तक इस (अज्ञान रूपी) अँधियारी रात में इस स्थान पर मैं भ्रम में पड़ा रहा। श्रीकृष्ण रूपी सूर्य का (मेरे सम्मुख) उदय हुआ, तो मेरे लिए अज्ञान रूपी रात समाप्त हुई। १७ अथवा ये रमापति भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण वैद्यराज हैं। उन्होंने कृपा से अवलोकन करते हुए मेरे इस (सांसारिक, अज्ञान रूपी) रोग का निर्मूलन करके, मुझे सावधान करके मेरे अपने अंग स्वरूप को दिखा दिया। १८ वे यदुवीर कृष्ण रूपी ओझा धन्य हैं। उन्होंने मुझे पीताम्बर उढ़ाकर निद्रास्वरूप अपस्मार रूपी

जय जय यदुकुळटिळका। कामांतकध्येया भक्तपाळका। अनंतब्रह्मांडचित्तचालका। कंसांतका श्रीकृष्णा। २२० गोपीमानसराजहंसा। दारुणदुरितविपिनहुताशा। गोवर्धनोद्धारणा बाळवेषा। शकटांतका श्रीहरे। २२१ कमलशयना कमलालया। कमलनेत्रा कमलाप्रिया। कमलभूषणा कमलोद्भवआर्या। प्रतापसूर्या श्रीरंगा। २२ हे कृष्ण वृंदावनविहारा। पुराणपुरुषा निर्विकारा। गोपीमनवसनगोरसचोरा। गोरक्षका गोविंदा। २३ हरि तुझिया स्वरूपावरून। कोटयनुकोटी मीनकेतन। सांडावे निंबलोण करून। मज धन्य आजि केलें। २४ ऐकोनि मुचुकुंदस्तवन। संतोषला जगन्मोहन। वचन बोले प्रीतीकरून। सुहास्यवदन जगदात्मा। २५ तूं बदरिकाश्रमीं राहें जाऊन। तेथें असे सत्यवतीहृदयरत्न। आणीकही विद्वज्जन। तये स्थानीं वसताती। २६ संतसमागमाविण। कदा नव्हे

पिशाच को क्षणार्ध में दूर किया। १९ हे यदुकुलतिलक, कामान्तक शिवजी के ध्येय स्वरूप, हे भक्तपालक, हे अनन्त-ब्रह्माण्ड-चित्त-चालक, हे कंसान्तक, हे श्रीकृष्ण, जय हो, जय हो। २२० हे गोपियों के मानस-रूप मानसरोवर में निवास करनेवाले राजहंस, हे दारुण पाप रूपी वन को जला डालनेवाले अग्निस्वरूप, हे गोवर्धन गिरि को उठानेवाले बालवेशधारी (भगवान), हे शकटान्तक, हे श्रीहरि, (जय हो, जय हो)। २२१ हे कमलशयन (क्षीरसागर के जल में शयन करनेवाले), हे कमलालय (ब्रह्मा के आसन), हे कमलनेत्र, हे कमला (लक्ष्मी के) प्रिय, हे कमलभूषण (कमलपुष्पधारी), हे कमलोद्भव (ब्रह्मा को जन्म देनेवाले), हे आर्य, हे प्रतापसूर्य, हे श्रीरंग (जय हो, जय हो)। २२ हे कृष्ण, हे वृन्दावनविहारी, हे पुराणपुरुष, हे निर्विकार, हे गोपियों के मन, वस्त्र तथा गोरस को चुरानेवाले, हे गोरक्षक, हे गोविन्द, (जय हो, जय हो)। २३ हे हरि, तुम्हारे स्वरूप पर करोड़ों-करोड़ों कामदेवों को राई-नोन करके निछावर करें। तुमने आज मुझे (दर्शन देकर) धन्य कर दिया'। २४ मुचुकुन्द द्वारा की हुई इस स्तुति को सुनकर जगन्मोहन कृष्ण सन्तोष को प्राप्त हुए। (फिर) वे सुहास्य-वदन जगदात्मा बोले। २५ 'तुम बदरिकाश्रम में जाकर रहो। वहाँ सत्यवती-हृदयरत्न अर्थात (सत्यवती के पुत्र) श्री व्यास मुनि हैं। और भी विद्वज्जन उस स्थान पर निवास करते हैं। २६ बिना सन्तों की संगति के मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान कदापि (प्राप्त) नहीं हो सकता। वहाँ (जगत के) सार-असार तत्त्व सम्बन्धी बातों का श्रवण करने पर तुम्हारा मन उन्मनी[1] अवस्था को

---

१ उन्मनी अवस्था— साधक के मन की जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या नामक चार अवस्थाओं के अतिरिक्त वह पाँचवीं अवस्था, जिसमें समस्त प्रवृत्तियाँ माया के प्रभाव से मुक्त हो जाती हैं और ब्रह्म में लीन हो जाती हैं।

निर्वाणज्ञान। तेथें करितां सारासार श्रवण। मन उन्मन होय तुझें। २७ मृगया करूं नको येथूनी। तूं होसील निर्वाणज्ञानी। माझी भक्ति दिनयामिनी। विसंबूं नको सर्वथा। २८ माझिया वेदाची आज्ञा प्रमाण। वर्तावें सदा शिरीं वंदून। सखे करावे संतजन। गुरूसी शरण रिघावें। २९ हृदयीं धरिजे दृढ बोध। न करावा भूतांचा विरोध। माझीं चरित्रें तीर्थमहिमा विशद। कदा उच्छेद न करावा। २३० न करावें कोणाचें हेळण। वादविवाद द्यावा सोडून। सदा कीर्तन श्रवण मनन। निजध्यासीं राहिजे। २३१ लोकांविरुद्ध न करावें कर्म। न आचरिजे कदा परधर्म। न बोलावें कोणाचें वर्म। सदा मम नाम स्मरावें। ३२ प्रवृत्तिशास्त्रें नाना कुमतें। क्षुद्रसाधनें क्षुद्रदेवतें। नाना अनुष्ठानें नाना मतें। उपेक्षावीं मनींहूनि। ३३ ऋषींचे आशीर्वाद घ्यावे। अनुचित कदा न बोलावें। आत्मरूप विश्व पहावें। शिरीं वंदावे गुरुचरण। ३४ ऐसें सांगतां भगवंत। सादर ऐके मांधातृसुत। साष्टांग घातलें दंडवत। सद्‌गदित होय तेधवां। ३५ आज्ञा घेऊनि ते वेळां। विवराबाहेर निघाला। तों द्वापाराचा अंत ते

प्राप्त हो जाएगा। २७ यहाँ (अर्थात उस स्थान पर) मृगया मत करना। तुम निर्वाण अर्थात मोक्ष (सम्बन्धी) ज्ञानी हो जाओगे। (फिर भी) मेरी भक्ति को दिन-रात बिलकुल न भूल जाओ। २८ मेरे (द्वारा कहे) वेद की आज्ञा को प्रमाण मानकर उसका सदा सिर से वन्दन करके व्यवहार करें। सन्तजनों को मित्र बनाएँ और गुरु की शरण में जाएँ। २९ इस उपदेश को हृदय में दृढ़ता से धारण करें। प्राणियों का विरोध (शत्रुत्व) न करें। मेरे चरित्रों-लीलाओं का, तीर्थस्थलों की विशद महिमा उच्छेद (खण्डन, नाश) कभी न करें। २३० किसी का अपमान न करें। वाद-विवाद छोड़ दें। सदा कीर्तन, स्मरण, मनन, ध्यान में लगे रहें। २३१ लोगों के विरुद्ध कोई कर्म न करें; कभी (भी) परधर्म का आचरण न करें। किसी का दोष न कहें। सदा मेरे नाम का स्मरण करें। ३२ सांसारिक बातों सम्बन्धी, अर्थात प्रवृत्ति-शास्त्रों की, नाना प्रकार के कुमतों की, क्षुद्र साधनाओं और क्षुद्र देवों की, नाना प्रकार के अनुष्ठानों और नाना प्रकार के मतों-सिद्धान्तों की मनःपूर्वक उपेक्षा करें। ३३ ऋषियों के आशीर्वाद ग्रहण करें; कभी भी अनुचित न बोलें, विश्व को आत्मस्वरूप देखें (मानें)। गुरु के चरणों का शिर से वन्दन करें'। ३४ भगवान द्वारा ऐसा कहते रहने पर मान्धातासुत मुचुकुन्द आदरपूर्वक सुन रहे थे। उन्होंने उनको साष्टांग दण्डवत (नमस्कार) किया। उस समय वे बहुत गद्‌गद हो गये। ३५ उस समय उनकी आज्ञा लेकर वे विवर के बाहर निकल पड़े। तब उस समय द्वापर युग का अन्त (निकट) था। कलि(युग) निकट (आता हुआ) दिखायी दे

वेळां। कलि जवळीं पुढें दिसे। ३६ खुजीं झाडें खुजे लोक। पापचर्या दिसे अधिक। लोक देखिले परमनिंदक। मुचुकुंदभक्तें तेधवां। ३७ न बोलेचि कोणासीं। पावला वेगें बदरिकाश्रमासी। संतसमागम अहर्निशीं। मुचुकुंदासी जाहला। ३८ असो इकडे विवराबाहेर। निघाला वेगें यादवेंद्र। तों द्वारकेहूनि आला बळिभद्र। समाचाराकारणें। ३९ तों जरासंध चेद्यपाळ। सर्व काळयवनाचें म्लेंच्छदळ। पाठीलागीं आलें तत्काळ। तों रामघननीळ देखिले। २४० म्हणती काय जाहला काळयवन। तो विवरीं गेला भस्म होवोन। मग क्रोधावले अवघे जन। म्हणती धरून नेऊं दोघांतें। २४१ तें देखोनि शेषनारायण। पुढें चालिले दोघेजण। गोमंताचलावरी रामकृष्ण। चढते जाहले तेधवां। ४२ एकादश योजनें उंच पर्वत। त्यावरी जाहले दोघे गुप्त। तों जरासंधादि समस्त। वेढा घालिती पर्वता। ४३ कृष्णद्वेषी परमदुर्जन। अग्नि लाविला चहूंकडून। अग्निशिखा भेदीत गगन। धूम्रें दाटल्या दशदिशा। ४४ पक्षियांचे पाळे पळती। एक माजी आहाळूनि पडती। नाना जीवजाती आरडती। आकांत थोर ओढवला। ४५ तों वैकुंठींहूनि सुपर्ण। आला हरिइच्छेनें धांवोन। केलें

रहा था। ३६ भक्त मुचुकुन्द को छोटे वृक्ष, बौने लोग तथा अधिक पापाचरण दिखायी दिये। उन्होंने परम निन्दक लोग देखे। ३७ (उस समय इस स्थिति में) कोई किसी से नहीं बोल रहा था। (वहाँ से निकलकर) वे (मुचुकुन्द) वेगपूर्वक बदरिकाश्रम पहुँच गये। वहाँ मुचुकुन्द को दिन-रात सन्तों की संगति प्राप्त हुई। ३८ अस्तु। इधर यादवेन्द्र कृष्ण विवर के बाहर वेगपूर्वक निकले। तब बलराम द्वारका से (कृष्ण सम्बन्धी) समाचार प्राप्त करने के लिए आ गये। ३९ तो जरासन्ध, चेदीपाल शिशुपाल तथा साथ में कालयवन का म्लेंच्छ दल तत्काल उनके पीछे आ गये। उन्होंने बलराम और कृष्ण को देखा। २४० उन्होंने कहा (पूछा)— 'कालयवन का क्या हुआ ?' (इसपर कहा गया—) 'वह तो विवर में (जलकर) भस्म हो गया'। तब वे समस्त लोग क्रुद्ध हो उठे और बोले— 'इन दोनों को पकड़कर ले जाएँगे'। २४१ वह देखकर शेष (बलराम) और नारायण (श्रीकृष्ण) दोनों जने आगे चले गये और अनन्तर वे गोमान्तक पर्वत पर चढ़ गये। ४२ वह पर्वत ग्यारह योजन ऊँचा था। उसपर (चढ़ने के पश्चात्) वे दोनों गुप्त हो गये। तब जरासन्ध आदि सबने उस पर्वत के चारों ओर घेरा डाला। ४३ वे कृष्ण के द्वेष्टा थे, परम दुर्जन थे। उन्होंने चारों ओर से (उस पर्वत में) आग लगा दी। आग की ज्वालाएँ गगन को भेदने लगीं। दस दिशाएँ धुएँ से व्याप्त हो गयीं। ४४ पक्षियों के झुण्ड भागने लगे। कुछ एक झुलसकर बीच में गिर जाते थे। नाना जातियों के जीव चीखने-चिल्लाने

श्रीकृष्णासी नमन। हात जोडोन उभा ठाके। ४६ मग गरुडावरी दोघेजण। बैसले शेष आणि नारायण। आकाशपंथें उड्डाण करून। चालिले देखती सर्वही। ४७ हरिवंशीं कथा आन। भीमक आला रथ घेऊन। त्या रथावरी रामकृष्ण। करवीरापासोन बैसले। ४८ असो मथुरेकडे रामकृष्ण। वेगें चालिले दोघेजण। तों दारुक आला रथ घेऊन। द्वारकेहून तेधवां। ४९ त्या रथीं बैसोनि रामहृषीकेशी। वेगें चालिले मथुरेसी। तों जरासंध पाठीशीं। चमूसहित पातला। २५० ऐसें देखोनि नारायण। हातीं घेतलें सुदर्शन। जें सकळ शस्त्रांचा बाप पूर्ण। आज्ञा प्रमाण करावी। २५१ जैसा लक्ष विजांचा एकचि भार। तैसें सुदर्शन आलें दुर्धर। मग पळती महावीर। जरासंध चैद्यादि। ५२ काळयवनाचें दळ। जरासंधाचेंही सकळ। सुदर्शनें संहारिलें तत्काळ। क्षणमात्र न लागतां। ५३ मुख्य मुख्य राजे उरले। वरकड दळ संहारिलें। मग मथुरेंत रामकृष्ण प्रवेशले। द्रव्य काढिलें उग्रसेनाचें। ५४ भूमींत होतें जें भांडार। तेणें भरिले रथगजरहंवर।

लगे। (इस प्रकार) बड़ा संकट आ गया। ४५ तब श्रीहरि की इच्छा के अनुसार वैकुण्ठ से गरुड़ दौड़कर आ गया। उसने कृष्ण को नमस्कार किया और वह हाथ जोड़कर खड़ा रहा। ४६ अनन्तर वे दोनों जने— शेष और नारायण —गरुड़ पर बैठ गये। वे आकाशमार्ग से उड़ान भरकर चले गये। वे (जरासन्ध आदि) सभी यह देखते रहे। ४७ (इस सम्बन्ध में) श्रीहरिवंश पुराण में दूसरी अर्थात भिन्न कथा है। (उसके अनुसार) भीमक रथ लेकर आ गये। बलराम और कृष्ण उस रथ में करवीर में बैठ गये। ४८ अस्तु। बलराम और कृष्ण दोनों जने मथुरा की ओर चले जा रहे थे; तो उस समय दारुक द्वारका से रथ ले आया। ४९ बलराम और कृष्ण उस रथ में बैठकर वेगपूर्वक मथुरा की ओर जा रहे थे, तो जरासन्ध सेना-सहित उनके पीछे पहुँच गया। २५० ऐसा देखकर भगवान नारायण कृष्ण ने हाथ में वह सुदर्शन चक्र धारण किया, जो समस्त शस्त्रों का पूर्णतः पिता है। वह भगवान की आज्ञा को प्रमाण मानता है। २५१ जिस प्रकार लाख (-लाख) बिजलियों का एक ही समुदाय (जगमगाता) हो, उसी प्रकार सुदर्शन चक्र (जगमगाता हुआ) दुर्धर रूप से आ गया, तब जरासन्ध, शिशुपाल आदि महावीर भाग गये। ५२ सुदर्शन चक्र ने कालयवन की समस्त सेना का (और) जरासन्ध की भी समस्त सेना का तत्काल क्षण न लगते संहार कर डाला। ५३ मुख्य-मुख्य राजा शेष रह गये, इधर सेना का संहार कर डाला (गया)। अनन्तर बलराम और कृष्ण मथुरा में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने उग्रसेन का धन निकाल लिया। ५४ भूमि में (गड़ा) जो धन-भण्डार था, उससे रथ, हाथी, घोड़े भर दिये, अर्थात वह रथों, हाथियों और घोड़ों पर लाद दिया। तब बलराम और कृष्ण ने उन

द्वारकेसी चालविले समग्र। रामकृष्णें तेधवां। ५५ मागुती जरासंध धांविन्नला। म्हणे द्रव्य सांडीं सांडीं गोवळ्या। द्रव्य घेऊनि राम द्वारके गेला। कृष्णें मुरडिला रथ तेव्हां। ५६ मागुती धनुष्य घेऊनी। युद्ध करीत चक्रपाणी। जरासंध पराभवोनी। मग गेले द्वारकेसी। ५७ धनुष्य घेऊनि मुकुंदें। केलीं अष्टादश महायुद्धें। सत्रा वेळ मथुरेपुढें जगद्वंद्यें। युद्ध केलें निर्वाण। ५८ असो द्वारकेसी आला यादवेंद्र। जाहला एकचि जयजयकार। तो सोहळा अपार। न वर्णवेचि सर्वथा। ५९ तों आनर्तदेशाधिपति। रैवत नामें महानृपति। तो जाऊनि ब्रह्मयाप्रति। करी विनंति ते ऐका। २६० म्हणे माझी कन्या रेवती। परमसुंदर त्रिजगतीं। तीस वर बरवा निश्चितीं। कोण असे सांग पां। २६१ ब्रह्मा करी अनुष्ठान। राजा उभा कर जोडून। मग कमलासन बोले वचन। बळिरामासी देईं कन्या। ६२ मग आपण घेऊनि चतुरानन। जेथें राम कृष्ण उग्रसेन। गेला दळभारेंसीं घेऊन। आनर्तदेशा प्रती पैं। ६३ विधिपूर्वक अतिप्रीतीं। बळिरामासी दिधली रेवती। चारी दिवस निश्चिती। सोहळा जाहला संपूर्ण। ६४ मग अपार

सबको द्वारका की ओर चला दिया। ५५ पीछे से जरासन्ध दौड़ा। वह बोला, 'अरे ग्वाले, धन छोड़ दे, छोड़ दे'। (फिर भी) बलराम धन लेकर द्वारका के प्रति चला गये। तब (इधर) कृष्ण ने रथ को (मथुरा की ओर) घुमा दिया। ५६ फिर से धनुष लेकर चक्रपाणि कृष्ण ने युद्ध किया; जरासन्ध की पराजय करके वे अनन्तर द्वारका चले गये। ५७ जगद्वन्द्य कृष्ण ने धनुष लेकर (कुल) अठारह महायुद्ध किये। (उनमें से) सत्रह बार अपार युद्ध मथुरा के सामने (समीप) किये थे। ५८ अस्तु। यादवेन्द्र कृष्ण द्वारका आ गये, तो अद्भुत जय-जयकार हो गया। वह आनन्दोत्सव अपार था। उसका वर्णन बिलकुल नहीं किया जा सकता। ५९ रैवत नामक आनर्त देश का महान अधिपति था। उसने जाकर ब्रह्मा के प्रति (जो) विनती की, उसे सुनिए। २६० वह बोला, 'मेरी रेवती नामक कन्या तीनों लोकों में परम सुन्दरी है। कहिए कि उसके लिए निश्चित रूप से कौन अच्छा (अनुरूप) वर है'। २६१ ब्रह्मा अनुष्ठान कर रहे थे। तो राजा हाथ जोड़कर खड़ा था। तब ब्रह्मा ने यह बात कही, 'अपनी कन्या बलराम को दो'। ६२ अनन्तर चतुर्मुख ब्रह्मा जहाँ बलराम, कृष्ण और उग्रसेन थे, वहाँ जाकर सेना को लिये हुए आनर्त देश के प्रति चले गये। ६३ (आनर्तपति ने) अति प्रेम से रेवती (विवाह में) बलराम को विधिपूर्वक प्रदान की। वह (विवाह) समारोह निश्चय ही चार दिन में पूर्ण हो गया। ६४ अनन्तर उन्होंने अपार दायज देकर बलराम और कृष्ण को विदा किया। (फिर) वे रेवती को साथ में लेकर द्वारकापुरी में प्रविष्ट हो गये। २६५

आंदण देऊन। बोळविले रामकृष्ण। समागमें रेवती घेऊन। द्वारकापुरीं प्रवेशले। ६५ पुढें रुक्मिणीस्वयंवरकथा। सुरस असे परम तत्त्वतां। जे उणें आणील अमृता। ऐकिजे श्रोतीं सादर। ६६ हरिवंशीं भागवतीं पाहीं। त्याचि कथा हरिविजयीं। आणि या ग्रंथाचा कर्ता सर्वही। पंढरीनाथ जाणिजे। ६७ तोचि पाठीशीं उभा राहोनि। गोष्टी सांगे ज्या ज्या कानीं। तेसा म्यां लिहिल्या संतजनीं। जाणिजे हें तत्त्वतां। ६८ हा हरिविजय वरद ग्रंथ। करवी आपण पंढरीनाथ। येऱ्हवीं श्रीधर मतिमंद बहुत। लोक सर्व जाणती। ६९ नाहीं वाचिलें संस्कृत। विभक्तिज्ञान नाहीं कळत। मूढाहातीं हा ग्रंथ। पंढरीनाथें करविला। २७० जन म्हणती अद्भुत वक्ता। परी नेणती त्या हृदयस्था। अस्थींची मोळी शरीर पाहतां। त्यासी श्रीधर नाम ठेविलें। २७१ कैंचा कोणाचा श्रीधर। सूत्रधारी रुक्मिणीवर। तो हालवी जेसें सूत्र। तैसींच नाचती चित्रें पैं। ७२ वाजविता न पडोनि ठावा। म्हणती काय गोड वाजे पांवा। परी वाजविणार बरवा। लोक त्यातें नेणती। ७३ पांवयाचे काष्ठासी छिद्र।

इसके आगे रुक्मिणी के स्वयंवर की कथा (कहनी) है। वह सचमुच परम सुरस (मधुर) है। श्रोता आदरपूर्वक उस कथा का श्रवण करें, जो अमृत को भी न्यूनता को प्राप्त कर देती है। २६६ देखिए श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण में जो कथाएँ हैं, वे ही (कथाएँ) श्रीहरि-विजय में हैं। और इस सम्पूर्ण ही ग्रन्थ का कर्ता पण्ढरीनाथ (श्रीविट्ठल) को समझिए। ६७ सन्तजन इसे सत्य समझ लें कि वे ही मेरे (पीठ-) पीछे खड़े रहकर जो-जो बातें (मेरे) कानो में कहते हैं, मैंने उन्हें वैसे ही लिखा है। ६८ श्रीहरि-विजय नामक इस ईप्सित वरदान देनेवाला अथवा कल्याणकारी प्रासादिक ग्रन्थ का निर्माण पण्ढरीनाथ ने स्वयं किया है। नहीं तो, सब लोग यह जानते हैं कि (इसका तथाकथित रचयिता यह) श्रीधर बहुत मन्दमति है। ६९ उसने संस्कृत (भाषा) नहीं पढ़ी है, न ही विभक्ति ज्ञान उसकी समझ में आता है। (वस्तुतः) उस मूढ़ के हाथों इस ग्रन्थ की रचना (स्वयं) पण्ढरीनाथ श्रीविट्ठल ने करायी है। २७० लोग उसे अद्भुत वक्ता कहते हैं; फिर भी वे उसके हृदयस्थ परमेश्वर को नहीं जानते। उन्होंने अस्थियों के गट्ठर-स्वरूप इस शरीर को देखकर उसे 'श्रीधर' नाम प्रदान किया। २७१ यह कैसा, किसका श्रीहरि? सूत्रधारक तो रुक्मिणीपति (कृष्ण) हैं। वे जिस प्रकार सूत्रों को हिलाते हैं, उसी प्रकार चित्र (कठपुतले) नाचते (रहते) हैं। ७२ बजानेवाला कौन है? —इसका पता नहीं विदित होने पर भी कहते हैं— 'कितनी मधुर यह बाँसुरी बजाता है'। परन्तु बजाने वाला (ही) अच्छा होता है— लोग उसे नहीं जानते। ७३ बाँसुरी की

तैसें देहासी नाम ठेवूनि श्रीधर। परी वाजविणार रुक्मिणीवर। भीमातीर-विहारी जो। ७४ ब्रह्मानंदा पुराणपुरुषा। श्रीमद्भीमातटविलासा। श्रीधरवरदायका परेशा। पुढें ग्रंथ चालविजे। ७५ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। सदा परिसोत भाविक भक्त। द्वाविंशतितमाध्याय गोड हा। २७६

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

लकड़ी में छिद्र होता है। वैसे ही इस देह का नाम श्रीधर रख दिया। फिर भी जो भीमा नदी के तीर पर विहार करनेवाले हैं, वे ही रुक्मिणीवर कृष्ण (स्वरूप विट्ठल) बजानेवाले होते हैं। ७४ हे गुरु ब्रह्मानन्द (के रूप में आनन्दस्वरूप ब्रह्म), हे पुराणपुरुष, हे भीमानदी-तट-विलास, हे श्रीधर के वरदाता, हे परेश, अब ग्रन्थ (-रचना) आगे चलाइए। २७५

।। इति ।। श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत हैं। श्रद्धालु भक्त इसके इस मधुर बाईसवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २७६

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

अध्याय—२३

[रुक्मिणी-स्वयंवर]

श्रीगणेशाय नमः।। जय जय जगद्वंद्या वेदसारा। अखिल अद्वया विश्वंभरा। करुणासिंधो परम उदारा। यादवेंद्रा जगद्गुरो। १ कंदर्पदहन-हृदयरत्ना। चतुरास्यजनका मनरंजना। अपारमायाश्रममोचना। निरंजना निर्विकारा। २ तूं दानवकाननवैश्वानर। कीं साधुहृदयारविंदभ्रमर। कीं अज्ञानतमनाशक मित्र। कीं आनंदक्षेत्र पिकलें जें। ३ संसारगजदमन मृगेंद्र।

श्रीगणेशाय नमः। हे जगद्वन्द्य, हे वेदों के सार (-भूत तत्त्व), हे अखिल (परिपूर्ण, अनन्त ब्रह्म), हे अद्वय, हे विश्वम्भर, हे करुणासिन्धु, हे परम उदार, हे यादवेन्द्र (कृष्ण), हे जगद्गुरु, जय हो, जय हो। १ हे कामदेव का दहन करनेवाले शिवजी के हृदय में स्थित रत्न, हे चतुरानन ब्रह्मा के जनक, हे (सबके) मन का रंजन करनेवाले, हे माया-जन्य अपार श्रम से मुक्त करनेवाले, हे निरंजन, हे निर्विकार (जय हो, जय हो)। २ तुम दानव रूपी वन को जला डालनेवाले अग्नि हो, अथवा साधु पुरुषों के हृदय रूपी कमल में स्थित भ्रमर हो, अथवा अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करनेवाले सूर्य हो, अथवा (वह) आनन्द के क्षेत्र हो, जो परिपक्व

भक्तमनचकोरसुधाकर। दुःखपर्वतभंजनवज्रधर। यादवकुळीं अवतरला। ४ देवाधिदेव आत्माराम। अनंतब्रह्मांडफलांकित द्रुम। परात्पर अजित अनाम। मेघश्याम सगुण तूं। ५ असो बाविसावे अध्यायीं कथन। भस्म करूनि काळयवन। जरासंधासी त्रासवून। आला जगज्जीवन द्वारकेसी। ६ तों विदर्भदेशीं राजा भीमक। सुशील सभाग्य सात्विक। जैसा उडुगणांमाजी मृगांक। कीं शचीनायक सुरमंडळीं। ७ कीं धनाढ्यांमाजी कुबेर। कीं अंडजांमाजी द्विजेंद्र। तैसा भीमक नृपवर। जगतीतळीं विख्यात पैं। ८ कीं तो भजनगंगेचा लोट। कीं निश्चयरत्नांचा मुकुट। कीं सत्त्ववैरागरींचा सुभट। दिव्य हिरा प्रकटला। ९ कीं विवेकभूमीचें निधान। कीं दया-काशींचा केवळ घन। कीं आनंदनंदनवन। पक्व फळ तेथींचें। १० ऐसा तो नृपनाथ। त्यासी रुक्मी नामें ज्येष्ठ सुत। त्याहूनि धाकुटा रुक्मरथ। रुक्मबाहु तिसरा पैं। ११ रुक्मकेशी रुक्ममाळी। सहावी जहाली रुक्मिणी-बाळी। स्वरूपसुंदर वेल्हाळी। ज्ञानकळा हरीची ते। १२ हे मूळपीठ-

---

(फलों से युक्त हो गया) है। ३ तुम संसार स्वरूप हाथी का वमन करने वाले सिंह हो, भक्तजनों के मन रूपी चकोरों के लिए (उदित) चन्द्र हो, दुःख रूपी पर्वतों का भंजन करनेवाले वज्रधारी इन्द्र हो। इन विशेषताओं से युक्त तुम यादवकुल में अवतरित हो। ४ तुम देवाधिदेव आत्माराम हो, अनन्त ब्रह्माण्डों रूपी फलों से युक्त वृक्ष हो, परात्पर हो, अजित हो, अनाम हो। मेघ-श्याम (वर्णधारी) तुम सगुण ब्रह्म हो। ५

अस्तु। बाईसवें अध्याय में यह कथन किया गया कि जगज्जीवन कृष्ण कालयवन को भस्म करके, जरासन्ध को पीड़ित करते हुए द्वारका के प्रति आ गये। ६ तब विदर्भ देश के भीमक नामक राजा थे। वे सुशील, भाग्यवान, सात्त्विक (गुणों से युक्त) थे। जिस प्रकार नक्षत्र-गणों में चन्द्र होता है, अथवा देवमण्डल में शचीपति इन्द्र है, अथवा धनवानों में कुबेर है, अथवा पक्षियों में गरुड़ है, उसी प्रकार (जगत के राजाओं में) नृपवर भीमक पृथ्वीतल पर विख्यात थे। ७–८ अथवा वे भक्ति-गंगा का रेला थे, अथवा निश्चय-स्वरूप रत्नों का मुकुट थे; अथवा (उनके रूप में) सत्त्व गुण की खान में बड़ा दिव्य हीरा प्रकट हो गया था। ९ अथवा वे विवेक भूमि में स्थित धन-भण्डार थे, अथवा दया रूपी आकाश के मेघ थे, अथवा आनन्द रूपी नन्दनवन के पक्व फल थे। १० ऐसे (गुणों से युक्त) थे नृपनाथ भीमक। उनके रुक्मी नामक ज्येष्ठ पुत्र था। उससे छोटा (पुत्र) था रुक्मरथ; तीसरा (पुत्र) था रुक्मबाहु। ११ (तदनन्तर) रुक्मकेशी और रुक्ममाली (क्रमशः चौथा और पाँचवाँ पुत्र) था। उनके छठी (सन्तान) हुई रुक्मिणी नामक कन्या। वह स्वरूप सुन्दरी, सलोनी थी। वह श्रीहरि की (साक्षात) ज्ञान-कला थी। १२ यह मूलपीठ-

निवासीनी माया। जियें निर्मिलें देवत्रया। इच्छामात्रें महत्कार्या। घडी मोडी ब्रह्मांडें। १३ अनंतशक्तींची स्वामिनी। जे आदिपुरुषाची मूळध्वनी। महामाया प्रणवरूपिणी। भीमकउदरीं अवतरली। १४ अनंत ब्रह्मांडांची माळ। घेऊनि जप करी वेल्हाळ। जगडंबर मांडूनि खेळ। सर्वेचि लपवी क्षणार्धें। १५ विरिंचि मित्र चंद्र देवराणा। हीं अज्ञान बाळें तिचीं जाणा। पहुडवूनि प्रपंचपाळणां। विषयखेळणें वरी बांधी। १६ डोळे उघडूनि स्वरूपाकडे। पाहों नेदी त्यांसी निवाडें। उत्पत्ति स्थिति प्रळयकोडें। कार्यें करवीं त्यांहातीं। १७ जोचिया स्वरूपावरूनी। करावी कोटिकंदर्पसांडणी। जे त्रैलोक्यलावण्यखाणी। अवनीतळीं अवतरली। १८ तप्त सुवर्ण जैसें सुरंग। तैसें रुक्मिणीचें दिव्यांग। आकर्णनेत्र सुरेख चांग। मुखमृगांक कोण वर्णी। १९ दंततेज जिकडे झळकत। पाषाण ते पद्मराग होत। सहज बोलतां मंदिरांत। प्रकाश होत दंततेजें। २० जगन्माता बोले जे क्षणीं।

निवासिनी माया थी, जिसने (ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक) देवत्रय का निर्माण किया, जो केवल इच्छा से महत्कार्य सम्पन्न करती है, ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है (तथा) विनाश करती है। १३ जो (साक्षात) अनन्त शक्तियों की स्वामिनी है, जो आदिपुरुष की मूल (अर्थात ॐ-कार) ध्वनि है, वह प्रणवरूपिणी महामाया भीमक के यहाँ अवतरित हुई। १४ वह सुन्दरी अनन्त ब्रह्माण्डों की माला लेकर (उसे फेरते हुए) जप करती है; जगत के दिखावटी विस्तार के रूप में खेल आरम्भ करके साथ ही (तत्क्षण) उसे क्षणार्ध में छिपा देती है। १५ समझिए कि ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, देवराज इन्द्र —ये (सब) उसके अज्ञान बालक हैं, उनको मायिक सृष्टि रूपी पालने में लिटाकर उसने (सुखोपभोग के) विषय-स्वरूप खिलौना ऊपर बाँध दिया है। १६ वह उन्हें ठीक से आँखें खोलकर उनके अपने स्वरूप की ओर देखने नहीं देती। वह उनके हाथों (ब्रह्माण्ड की) उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और प्रलय (विनाश) जैसे गूढ़ कार्य करा देती है। १७ जिसके स्वरूप (सौन्दर्य) पर कोटि (-कोटि) कामदेवों को निछावर कर दिया जाए, जो तीनों लोकों में लावण्य की खान (-स्वरूपा) है, वह पृथ्वीतल पर अवतरित हुई। १८ तप्त सुवर्ण जैसा उत्तम वर्ण से युक्त होता है, रुक्मिणी का दिव्य शरीर वैसा ही था। उसके नेत्र सुन्दर, सलोने और आकर्ण (कानों तक फैले हुए, विशाल) थे। उसके मुखचन्द्र का वर्णन कौन कर सकता है। १९ उसके दाँतों का तेज जिस ओर झलकता था, उस ओर के पाषाण (मानो) पद्मराग (मानिक रत्न-से) बन जाते (जान पड़ते) थे। उसके द्वारा घर में यों ही बोलने पर, उसके दाँतों के तेज से प्रकाश हो जाता था (फैल जाता था)। २० जिसके स्वरूप-सौन्दर्य पर ब्रह्माण्ड को ही निछावर कर दें, वह जगन्माता (स्वरूप

वाटे विखुरते रत्नखाणी। जीचिया स्वरूपावरूनी। ब्रह्मांडचि ओंवाळिजे। २१ अंगींच्या सुवासेंकरूनी। गेल्या दश दिशा भरोनी। पाय ठेवी जेथें रुक्मिणी। वसंत भुलोनि तेथें लोळे। २२ महातेज गाळूनि देखें। ओतिलीं कर्णींचीं ताटंकें। नेत्रोत्पलें अतिसुरेखें। अंजन झळके सोगयाचें। २३ मुक्तघोंस तळपती कानीं। कोटि मृगांक उणे वदनीं। भगणें झळकती सुनीळ गगनीं। मुक्तजाळी शिरीं तेवीं। २४ सांडूनि तीव्रता सकळ। वाटे मित्र जाहला शीसफूल। शीतलत्व सांडूनि समूळ। मृगांक शिरीं विलसे पें। २५ कस्तूरीमळवट विलसे भाळीं। नासिकीं दिव्य मौक्तिकें झळाळी। शुभ्र वस्त्र मुक्तलग कांचोळी। एकावळी डोलत। २६ बाहुभूषणें रत्नजडित। वज्रचूडेमंडित हस्त। दशांगुळीं मुद्रिका झळकत। अवतारस्वरूप हरीच्या। २७ चरणीं नूपुरें रुणझुणती। चालतां धन्य जाहलें म्हणे क्षिती। सहज विलोकी जिकडे चिच्छक्ती। ते तत्काळ होती सज्ञान। २८ जिच्या कृपाकटाक्षें देख।

रुक्मिणी) जिस क्षण बोलती थी, तब जान पड़ता था कि रत्नों की खान ही खुलती-फैलती जाती थी। २१ उसके बदन की सुगन्ध से दस दिशाएँ भर गयी थीं। रुक्मिणी जहाँ पाँव रखती थी, वहाँ (जान पड़ता था कि) मोहित होकर वसन्त ऋतु लोट-पोट रही थी। २२ देखिए, महातेज को गलाकर, उसके कानों के ताटंक ढाल दिये गये थे। नेत्र-कमल अति सुन्दर थे। उनमें लगाया हुआ सुरमे का अंजन झलक रहा था। २३ कानों में मोतियों के गुच्छे जगमगाते थे। उसके मुख (रूपी चन्द्र) के सामने कोटि (-कोटि) चन्द्र कम अर्थात घटिया (जान पड़ते) थे। जिस प्रकार सुनील गगन में नक्षत्रगण चमकते हैं, उसी प्रकार उसके मस्तक पर मोतियों की जाली (चमकती) रहती थी। २४ जान पड़ता था कि सूर्य अपनी समस्त प्रखरता को त्याग देकर उसका शीर्षफूल हो गया था (और) समस्त शीतलता का त्याग करके चन्द्र उसके मस्तक पर शोभायमान हो रहा था। २५ उसके भाल पर कस्तूरी का तिलक शोभा दे रहा था; नाक में दिव्य मोती झलक रहे थे। उसका वस्त्र शुभ्र था और कंचुकी मोतियों से जटित हुई थी। (गले में पहनी हुई) एकलड़ी माला झूलती थी। २६ उसके बाहुओं में पहने हुए आभूषण रत्नजटित थे; हाथ हीरे के कंकणों से विभूषित थे। दसों अँगुलियों में श्रीहरि के अवतारों के रूपों को अंकित की हुई मुद्रिकाएँ चमक रही थीं। २७ पाँवों में (पहने) नूपुर रुनझुनाते थे। भूमि कहती (मानती) थी कि मैं उस (रुक्मिणी) के चलने से धन्य हो गयी हूँ। वह चिच्छवित (स्वरूपा रुक्मिणी) स्वाभाविक रूप से (यों ही) जिस ओर देखती थी, वे (उस ओर के स्थानवासी लोग) तत्काल सज्ञान हो जाते थे। २८ देखिए वह वही चिच्छक्ति थी, जिसके द्वारा कृपादृष्टि से देखने पर रंक इन्द्र-पद पर विराजमान हो

इंद्रपदीं बैसले रंक। पर्वत उचली मशक। अपांगपातें जियेच्या। २९ असो ऐसी ते रुक्मिणी। भीमकराजा अंगीं घेऊनी। बैसलासे सभास्थानीं। सकळ नृपांनीं वेष्टिला तो। ३० तों कीर्तिमुखनामा ब्राह्मण। जो चौसष्टकळाप्रवीण। तो करीत पृथ्वीपर्यटण। भीमकसभेसी पातला। ३१ रायें तो द्विज सन्मानूनी। बैसविला उत्तमासनीं। म्हणे द्विजा कोणीकडूनी। येणें जाहलें अकस्मात। ३२ ब्राह्मण म्हणे धरणीपती। म्यां पृथ्वीचे पाहिले नृपती। सहज आलों द्वारावतीप्रती। तेथें श्रीपती देखिला। ३३ ब्राह्मण वर्णीत श्रीकृष्णध्यान। नृपासहित ऐकती सकळ जन। परी भीमकी तेथें सावधान। करी श्रवण सप्रेम। ३४ त्याचिया चरणपंकजकेसरीं। क्षीराब्धितनया जाहली भ्रमरी। तेथूनि जन्मली जन्हुकुमारी। जे कां तारी सकळ जीवां। ३५ अरुण संध्याराग बालार्क। यांचें काढिले रंग सकळिक।

जाते हैं और (कृपा-भरे) दृष्टिपात से मच्छर (तक शक्तिमान होकर) पर्वत उठा सकता है। २९ अस्तु। ऐसी उस (कन्या) रुक्मिणी को राजा भीमक गोद में लेकर सभा-स्थान में बैठे हुए थे। वे समस्त राजाओं द्वारा घिरे हुए थे। ३० तब कीर्तिमुख नामक कोई एक ब्राह्मण, जो चौंसठ कलाओं में[1] प्रवीण था, पृथ्वी (भर) पर्यटन करते-करते भीमक की सभा में आ पहुँचा। ३१ राजा ने उस ब्राह्मण का सम्मान करके उसे उत्तम आसन पर बैठा लिया और कहा, 'हे द्विज, अकस्मात (आपका) कहाँ से आगमन हुआ'? ३२ तो वह ब्राह्मण बोला, 'हे पृथ्वीपति, मैंने पृथ्वी के (समस्त) नृपतियों को देखा है। (फिर) यों ही द्वारका के प्रति गया था। वहाँ श्रीपति कृष्ण को देखा'। ३३ (तदनन्तर) उस ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन किया। उसे राजा (भीमक) सहित समस्त जनों ने सुना। फिर भी वहाँ पर भीमकी (अर्थात भीमकराज की कन्या रुक्मिणी) ने उसे अवधानपूर्वक प्रेम से सुन लिया। ३४ (वह ब्राह्मण बोला—) "उनके चरणकमल के केसर में क्षीराब्धितनया लक्ष्मी भ्रमरी (-सी लुब्ध) हो गयी है। वहाँ से जह्नुकुमारी[2] (अर्थात जाह्नवी, गंगा नदी) जनमी है, जो समस्त जीवों का उद्धार करती है। ३५ जान पड़ता है कि श्रीरंग कृष्ण के तलुवे अरुण, संध्याराग और बालसूर्य के समस्त रंगों को निकालकर, सुन्दरता के साथ

१ चौंसठ कलाएँ— देखिए टिप्पणी ८, पृ० ८०-८१, अध्याय ३।

२ जह्नुकुमारी, जाह्नवी— भगीरथ तपस्या द्वारा प्रसन्न करके गंगा को अपने पूर्वजों का उद्धार कराने के लिए स्वर्ग से धरती पर लाये। ध्यानस्थ बैठे हुए राजा जह्नु की तपस्या में उसके प्रवाह से बाधा पहुँची, तो उन्होंने उसे पी डाला। तत्पश्चात भगीरथ ने जह्नु को प्रसन्न कर लिया, तो उन्होंने उस प्रवाह को कान द्वारा फिर से मुक्त किया। तब से गंगा जह्नु-कन्या अर्थात जाह्नवी कही जाने लगी।

तळवे रेखिले सुरेख। श्रीरंगाचे वाटती। ३६ शरीर कर्वतूनि मृगांकें। चरणीं सुरवाडला निजसुखें। व्यापूनि पदअंगोळिका नखें। दशधा होवोनि राहिला। ३७ पायीं हरीच्या दिसे ध्वज। तरी चरणलक्षण हेंचि जहाज। भक्त तारावया सहज। उदित असे सर्वदा। ३८ शरण येती निजभक्त। त्यांचे फोडावया पापपर्वत। वज्र पायीं लखलखित। वैकुंठनाथें धरियेलें। ३९ पायीं झळके जें पद्म। पद्मा तेथें वसे सप्रेम। आणिकां प्राप्त नाहीं परम। घोर तप आचरतां। ४० ऐश्वर्यमदें मस्त वारण। विद्यामदें गर्वित पूर्ण। त्यांसी आकर्षावयालागून। अंकुश पायीं झळकतसे। ४१ साधकांसी ऊर्ध्वरेखा तत्त्वतां। ऊर्ध्वं गच्छंति म्हणे सत्त्वस्थां। पाय देऊनि मुक्तीचिया माथां। ब्रह्मानंदीं ऐक्य व्हाल। ४२ हरिपद हाचि दिव्य प्रयाग। तळवे आरक्त ब्रह्मकन्या सुरंग। सांड्या गरुडपाचूचे कोंभ चांग। तेथें मित्रकन्या सुरवाडली। ४३ पदीं नेपुरें वाजती गजरीं। तेथें सुखावली जन्हुकुमारी।

अंकित किये हैं (रँग दिये हैं)। ३६ चन्द्र अपने शरीर को आरे से चीर (-चीर) कर उनके चरणों में आत्मसुख में (मग्न होकर) सुखपूर्वक रह रहा है। वह दस खण्डों में विभक्त होकर उनके पाँवों की अँगुलियों और नखों को व्याप्त करके रह गया है। ३७ श्रीहरि के पद में ध्वज[1] (चिह्न अंकित) दिखायी देता है। तो वह चरण (शुभ) चिह्न ही मानो जहाज है— वह भक्तों को (भवसागर में से) तारने के हेतु स्वाभाविक रूप से नित्य उदित होकर रह गया है। ३८ (जो) उनके अपने भक्त शरण में आते हैं, उनके पाप रूपी पर्वतों को तोड़ डालने (नष्ट करने) के लिए वैकुण्ठनाथ भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने पाँव में जगमगाता हुआ वज्र (-चिह्न) धारण किया है। ३९ पाँव में जो कमल झलक रहा है, वहाँ पद्मा अर्थात लक्ष्मी प्रेम के साथ निवास कर रही है। परम कठिन तप करने पर भी वह स्थान दूसरों को प्राप्त नहीं होता। ४० जो लोग ऐश्वर्य के बल पर उन्मत्त हाथी (जैसे) हो गये हैं, जो विद्या के मद से पूर्णतः घमण्डी हो गये हैं, उनको (आकृष्ट करके) वश में करने के लिए उन कृष्ण के पाँव में अंकुश (चिह्न) झलक रहा है। ४१ (श्रीकृष्ण के पद में अंकित) ऊर्ध्वरेखा सचमुच सदाचार-सम्पन्न साधकों को यह बता रही है— 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति।' अर्थात 'तुम मुक्ति के माथे पर पाँव रखकर आनन्द-स्वरूप ब्रह्म के साथ एकता को प्राप्त हो जाओगे'। ४२ श्रीहरि-पद ही दिव्य (स्थल) प्रयाग है। उनके आरक्त सुन्दर रंग वाले तलुवे ब्रह्मा की कन्या अर्थात सरस्वती है; उनकी जाँघें (मानो) इन्द्रनील के उत्तम अंकुर हैं; वहाँ सूर्यकन्या यमुना सुख के साथ निवास कर रही है। ४३ पाँवों में

---

[1] यहाँ भगवान के पाँवों में अंकित ध्वज, वज्र, पद्म आदि शुभ चिह्नों का उल्लेख किया जा रहा है।

वांकीवरी रत्नें जडलीं कुसरीं। तपस्वी मराळ तेचि पैं। ४४ घोटे शोभती वर्तुळ। जैसे यंत्रीं कांतिले इंद्रनीळ। पोटरिया सुनीळ सुढाळ। जेवीं निराळगर्भ काढिले। ४५ सहस्त्र चपळांचा एकसार। पिळूनि रंगविला पीतांबर। दुजा पांघरावया सुंदर। मुक्तलग पदर तयाचे। ४६ कटीं मेखळा विराजमान। वरी रत्नें जैसीं चंडकिरण। सकळ तीव्रता टाकून। हरिजघनीं सुखावले। ४७ जैशा वेदांतींच्या श्रुति स्पष्टा। तैशा रुणझुणती क्षुद्रघंटा। हृदयीं कौस्तुभ सतेज मोठा। मध्यान्हींचा सूर्य जेवीं। ४८ त्रिवळी नाभि वर्तुळ। जेथें जन्मला चतुर्वक्त्रबाळ। विशाळ हरीचें वक्षः-स्थळ। भक्त प्रेमळ राहती तेथें। ४९ वैजयंती डोलत गळां। परी ते लागली चरणकमळा। हरिपदीं प्रताप आगळा। तेथींचा सोहळा भोगीत। ५० कवि आणि गुरु दोघे येऊनी। कुंडलरूपें लागले हरिकर्णीं। कीं निशामणी आणि दिनमणी। पुसती कानीं विचार। ५१ परम उदार

पहने नूपुर गरजते हुए बज रहे हैं; वहाँ जह्नुकुमारी गंगा सुख को प्राप्त हो रही है। बाँकों में कौशल के साथ रत्न जड़े हुए हैं। वे ही (मानो) तपस्वी हंस (विरक्त पुरुष, संन्यासी) हैं। ४४ उनके वर्तुलाकार टखने शोभा दे रहे हैं, वे मानो यंत्र में पन्ना रत्न डालकर खरादे हुए हैं। पिण्डलियाँ घनी नीली, सुघड़ हैं, जैसे आकाश में से गूदे निकाले हुए हों। ४५ सहस्र बिजलियों को एक साथ पेरकर उससे उनके पीताम्बर को रँग दिया है। दूसरा सुन्दर पीताम्बर ओढ़ने के लिए है। उसके छोर (पल्लव, किनारे) मोतियों से गूँथे हुए हैं। ४६ कमर में मेखला विराजमान है। उसपर रत्न (जड़े हुए) हैं, जैसे सूर्य हों। वे (मानो अपनी) समस्त प्रखरता का त्याग कर श्रीहरि की कमर में रहते हुए सुख को प्राप्त हो गये हों। ४७ जिस प्रकार वेदान्त की श्रुतियाँ स्पष्ट (ध्वनि से युक्त) होती हैं, उसी प्रकार (मेखला में बँधी) क्षुद्र घण्टियाँ (घुँघरू) रुनझुनाती हैं। हृदय (-स्थल) पर तेजस्वी बड़ा कौस्तुभ (जगमगा रहा) है, जैसे मध्याह्न का सूर्य हो। ४८ (उनके उदर में) त्रिवली (शोभायमान) है; वर्तुलाकार नाभि है, जहाँ बालक चतुरानन ब्रह्मा जनमा। श्रीहरि का वक्षःस्थल विशाल है; वहाँ प्रेममय भक्त रहते हैं। ४९ (उनके) गले में वैजयन्ती माला झूलती है; फिर भी वह उनके चरण-कमलों को छू रही है। श्रीहरि के पदों का प्रताप न्यारा है। वहाँ के आनन्द-उल्लास से युक्त ठाट-बाट का वह उपभोग कर रही है। ५० कवि शुक्राचार्य और देवगुरु बृहस्पति दोनों आकर श्रीहरि के कानों में कुण्डलों के रूप में लगे (जड़े) हुए हैं (उनके कुण्डल शुक्र और गुरु ग्रहों के समान तेजस्वी हैं)। अथवा चन्द्र और सूर्य (मानो कुण्डलों के रूप में आकर) उनके कान में कोई बात पूछ रहे हैं। ५१ (उनका) मुख परम

वेल्हाळ मुख। कपाळीं मृगमदाचा टिळक। मधुमासींचा सतेज अर्क। तसा मुकुट झळकतसे। ५२ बिंबरंगाऐसे अधर। दंतपंक्ति सुरेख सुंदर। ओळीनें बैसले रोहिणीवर। तैसें तेज झळकतसे। ५३ तैसे श्रीहरीचे दंत। बोलतां ब्रह्मांड उजळत। वदनावरूनि कोटी रतिकांत। ओंवाळूनि टाकावे। ५४ निराळवारणाचे शुंडादंड। तैसे चारी हस्त प्रचंड। हस्तकटकें अति सुघड। यंत्राकार मुद्रिका। ५५ दंडीं कीर्तिवदनें झळकती। तेथें प्रतापकिरणें तळपती। शंखचक्रादि आयुधें विराजती। कोणा मूर्ति वर्णवे ते। ५६ श्यामलांगीं उटी शुभ्र। वाटे भेटूं आला कर्पूरगौर। चंदनरूपें सत्वर। हरिअंगीं मिसळला। ५७ कीं इंद्रनीळाचे मूर्तीवरी। आवरण घातलें काश्मीरी। कीं मित्रकन्येवरी जन्हुकुमारी। कीं निर्मळ अंबरीं शशिप्रभा। ५८ घनश्याम कोमलांग। तैसा चंदन दिसे सुरंग। पूर्ण ब्रह्मानंद श्रीरंग। अक्षय अभंग मूर्ति जे। ५९ कर्णीं भरला जवादि-

---

उदार (उदात्त, प्रभावशाली), सलोना है। भाल पर कस्तूरी का तिलक (शोभायमान) है। जैसे मधु (चैत्र) मास का सूर्य तेजोयुक्त होता है, वैसे (तेज से युक्त) मुकुट झलक रहा है। ५२ अधर बिम्बाफल के रंग जैसे रँगवाले (लाल-लाल) हैं। दन्त-पंक्ति सुडौल और सुन्दर है। (मानो) चन्द्र (एक-एक) पंक्ति में बैठे हों, उसी प्रकार उनका तेज झलक रहा है। ५३ वैसे हैं श्रीहरि के दाँत। उनके बोलने लगते ही ब्रह्माण्ड उज्ज्वलता को प्राप्त हो जाता है। उनके मुख पर कोटि (-कोटि) चन्द्र निछावर कर दें। ५४ जैसे ऐरावत के (चार) शुण्डादण्ड (सूँड़ें) हैं, वैसे प्रचण्ड हैं उनके चार हाथ। हाथों में पहने हुए कड़े अति सुगठित हैं। उनकी मुद्रिकाएँ यन्त्राकार (यन्त्र वा साँचे में ढाली हुई) हैं। ५५ बाहुओं में कीर्तिमुख (नामक आभूषण) चमक रहे हैं। वहाँ (मानो) उनके प्रताप की किरणें जगमगा रही हैं। (हाथों में) शंख, चक्र आदि आयुध विराजमान हैं। ऐसी उस मूर्ति का वर्णन किसके द्वारा किया जा सकेगा ? ५६ उनके श्याम शरीर पर शुभ्र अंगराग (उबटन) लगा हुआ है। लगता है कि उनसे मिलने (गले लगने) के लिए कर्पूरगौर शिवजी आये हों और वे चन्दन के रूप में झट से श्रीहरि के अंग में घुल-मिल गये हों। ५७ अथवा इन्द्रनील रत्न की मूर्ति पर केसर का आवरण डाल हो; अथवा सूर्यकन्या यमुना पर जह्नुकुमारी गंगा (छा गयी) हो, अथवा निर्मल आकाश में चन्द्र की कान्ति (चाँदनी छा गयी) हो। ५८ उनकी कोमल देह घनश्याम वर्ण की है। जिस प्रकार चन्दन सुन्दर रंग से युक्त दिखायी देता है, उसी प्रकार वे पूर्ण ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) श्रीरंग दिखायी दे रहे हैं, जिनकी मूर्ति अक्षय तथा अभंग है। ५९ जवादि बिड़ाल से प्राप्त विशिष्ट सुगन्धयुक्त द्रव्य कणों में भरा हुआ है।

विशेष। अंगींचा जो दिव्य सुवास। सप्तावरण आसमास। भेदूनि जाय पलीकडे। ६० ऐसें द्विजें वर्णितां हरिध्यान। हृदयीं ठसावला जगन्मोहन। भीमकी सद्‌गद होऊन। मूर्च्छा येऊन पडियेली। ६१ नयनीं सुटल्या विमलांबुधारा। अंग कांपत थरथरां। उपमाता धांविन्नल्या सत्वरा। हृदयीं धरिली रुक्मिणी। ६२ एक म्हणती बाधा जाहली। एक म्हणती भूतें घेरली। परी महद्‌भूतें व्यापिली। तें समजलें रायातें। ६३ ऐकतां श्रीकृष्णध्यान। भीमकी पडली मूर्च्छा येऊन। आतां हे करावी कृष्णार्पण। मनीं निर्धार दृढ केला। ६४ राजा सांगे शुद्धमतीतें। रुक्मिणी द्यावी श्रीपतीतें। येरी हर्षली परम चित्तें। म्हणे हेंचि मज आवडे। ६५ तंव रुक्मिया परम कृष्णद्वेषी। वर्तमान हें कळलें त्यासी। ब्राह्मण बोलाविले गणक जोशी। एकांतासी रुक्मियानें। ६६ म्हणे घटितार्थ कृष्णासी।

उनके अंग से जो दिव्य सुगन्ध निकल रही है वह चारों ओर से सातों आवरणों[1] को भेदकर उनके पार जा रही है। ६०

उस ब्राह्मण द्वारा श्रीहरि के रूप का इस प्रकार वर्णन करने पर भीमक राजा की कन्या रुक्मिणी के हृदय में वे जगन्मोहन दृढ़ता से जमकर बैठ गये (उनका रूप उसके हृदय में पक्का अंकित हो गया)। वह बहुत गद्‌गद होते हुए मूर्च्छा के आने से गिर पड़ी। ६१ उसकी आँखों से विशुद्ध (अश्रु-) जल की धाराएँ निःसृत होने लगीं। उसकी देह थर्राहट के साथ काँपने लगी, तो उसकी उपमाताएँ (सौतेली माताएँ, धायें) झट से दौड़ीं (और) उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया। ६२ कुछ एक बोलीं, 'इसे कोई पीड़ा हो गयी है'। कुछ एक ने कहा, 'इसे किसी पिशाच ने घेर लिया (दबोच लिया) है'। फिर भी राजा भीमक की समझ में यह आ गया कि इसे महद्‌भूत अर्थात परमेश्वर (श्रीकृष्ण) ने व्याप्त किया है (प्रभावित करके उसके मन को वश में कर लिया है)। ६३ श्रीकृष्ण के रूप (के वर्णन) को सुनते ही रुक्मिणी मूर्च्छा के आने से गिर पड़ी— (अतः) उन्होंने मन में यह दृढ़ निश्चय किया कि अब इसे श्रीकृष्ण को समर्पित करें। ६४ (अनन्तर) राजा भीमक ने (रानी) शुद्धमति से कहा, 'रुक्मिणी श्रीपति कृष्ण को प्रदान कर दें'। तो वह मन में परम आनन्दित हुई और बोली, 'मुझे यही अच्छा लगता है'। ६५ रुक्मी परम कृष्ण-द्रेष्टा था। तब उसे यह समाचार विदित हुआ, तो उसने (रुक्मी ने) दैवज्ञ ज्योतिषी ब्राह्मणों को एकान्त में बुला लिया। ६६ वह उनसे बोला, 'राजा से कह दो कि वर-वधू की ग्रह-गति कृष्ण पर अनुकूल घटित नहीं हो रही है। (अतः)

---

1 सप्तावरण—देखिए टिप्पणी 1, पृ० ३०८, अध्याय ११।

घडत नाहीं सांगा रायासी। रुक्मिणी द्यावी शिशुपाळासी। ऐक्य उभयतांसी दृढ असे। ६७ रायादेखतां सभेभीतरीं। रुक्मिया कृष्णाची निंदा करी। म्हणे पुरुषार्थी वीर पृथ्वीवरी। धुंडूनि बरा काढिला। ६८ महा कपटी गोरसचोर। गोकुळ चौढाळिलें समग्र। त्रिभुवनामाजी ऐसा जार। धुंडितांही न सांपडे। ६९ चोरी केली गोकुळीं। म्हणोनि गौळणी बांधिती उखळीं। कालिया अघासुर किरडें मारिलीं। म्हणोनि पुरुषार्थी मिरवत। ७० वारुळाऐसा गोवर्धन। उचलोनि बलिष्ठ जाहला कृष्ण। केशी तट्टू मारून। पुरुषार्थी म्हणवी आपणा। ७१ अग्निस्तंभ जाणे कपटकळा। यालागीं वणवा मुखीं गिळिला। कपटेंचि कंस मारिला। परिवारासमवेत। ७२ काळयवनभेणें थोर। तेणें घेतलें गिरिकंदर। मुचुकुंदावरी टाकूनि पीतांबर। आपण पुढें पळाला। ७३ कपटें मारिला काळयवन। भेणें वसविलें द्वारकापट्टण। जरासंध कपटेंकरून। सत्रा वेळ जिंकिला। ७४ नाहीं सिंहासन छत्र। भांडार नाहीं अणुमात्र। नाम रूप ना गोत्र। कैसेनि थोर कृष्ण हा। ७५ हिंडे भक्तांच्या दारोदार। कीर्तनामाजी नाचे

रुक्मिणी शिशुपाल को प्रदान करें। उन दोनों के ग्रहों में दृढ़ एकता (मेल) है'। ६७ राजा के देखते रहते, रुक्मी कृष्ण की निन्दा (राज-) सभा में करने लगा। वह बोला, 'पृथ्वी में ढूँढ़कर अच्छा पुरुषार्थी वीर निकाला है! ६८ वह महाकपटी है, गोरस-चोर है। उसने समग्र गोकुल को धर्म-नीति आदि सम्बन्धी संकेत छोड़कर दुराचार से भर दिया। त्रिभुवन के अन्दर ढूँढ़ने पर भी ऐसा जार नहीं मिलेगा। ६९ इसने गोकुल में चोरी की, इसलिए ग्वालिनों ने इसे ऊखल से बाँध लिया था। इसने कालिय, अघासुर, सँपेलों को मार डाला, इसलिए यह पुरुषार्थी बनकर ठाट-बाट से घूम रहा है। ७० वमीठे जैसे गोवर्धन पर्वत को उठाकर यह कृष्ण बलिष्ठ बन बैठा है। केशी टट्टू को मारकर वह अपने को वीर कहलवा रहा है। ७१ यह अग्नि-स्तम्भन जैसी कपटपूर्ण कला जानता है, इसलिए इसने मुख से दवाग्नि को निगल डाला। इसने कंस को परिवार-सहित कपट से मार डाला। ७२ कालयवन के बड़े डर से उसने गिरि-कन्दरा का आश्रय (ग्रहण) किया (और) मुचुकुन्द पर पीताम्बर डालकर (उढ़ाकर) यह स्वयं आगे भाग गया। ७३ (इस प्रकार) इसने कपट से कालयवन को मार डाला। उसने मारे डर के द्वारका नगर बसा लिया है। इसने जरासन्ध को कपट से सत्रह बार जीत लिया। ७४ इसके न सिंहासन, छत्र है; न अणुमात्र (धन-) भण्डार है। इसके न ही (बड़ा) नाम (कीर्ति), (सुन्दर) रूप (तथा) उच्च गोत्र है। तो यह कृष्ण किस प्रकार बड़ा है। ७५ यह भक्तों के द्वार-द्वार पर घूमता रहता है, कीर्तन में लगन के साथ नाचता है। (यदि) रुक्मिणी के लिए ऐसा वर होगा,

निर्भर। रुक्मिणीसी ऐसा होइजे वर। तरी जितचि आम्ही मेलों। ७६ बाळपणीं पूतना शोषिली। आरंभींच स्त्रीहत्या केली। ऐसियासी वरील रुक्मिणी वेल्हाळी। तरी जितचि आम्ही मेलों। ७७ भक्षूनि मातुळाचें अन्न। त्यासीच मारिलें कपटेंकरून। त्यासीं रुक्मिणीसीं घडेल लग्न। तरी जितचि आम्ही मेलों। ७८ जरी रुक्मिणीचें कृष्णाशीं लागे लग्न। तरी माझी श्मश्रु टाकावी बोडून। हांक फोडी क्रोधेंकरून। लावीन लग्न शिशुपाळाशीं। ७९ कृष्णद्वेषी परम चांडाळ। चालों नेदी रायाचें बळ। नगर श्रृंगारिलें सकळ। लग्न तत्काळ धरियेलें। ८० दमघोषाचिया नगरा। मूळ पाठवी रुक्मिया सत्वरा। ती वार्ता रुक्मिणीच्या कर्णद्वारा। दूतीमुखें प्रवेशली। ८१ वार्ता ऐकतांचि सकळ। हृदयीं दचकली वेल्हाळ। नयनीं वाहे अश्रुजळ। मुखकमळ कोमाइलें। ८२ हृदयीं धडकला चिंताग्न। नाठवे उदक शयन अन्न। म्हणे मायेसी सांगावें वर्तमान। तरी हरीप्राप्ती नव्हे तिचेनी। ८३ कोण जाऊनियां आतां। सत्वर आणील वैकुंठनाथा। तों सुदेवनामा ब्राह्मण तत्वतां। मंदिरासी पातला। ८४ परम सात्त्विक

तो हम जीवित होने पर भी मर गये (जैसे समझें)। ७६ इसने बचपन में पूतना (के प्राणों) को सोख डाला, (इस प्रकार) आरम्भ में ही स्त्री-हत्या की। यदि ऐसे (वर) का सुन्दरी रुक्मिणी वरण करेगी, तो हम जीवित होने पर भी मर गये (जैसे समझें)। ७७ (अपने) मामा का अन्न खाकर इसने उसको ही कपट से मार डाला। उसका और रुक्मिणी का यदि विवाह हो जाएगा, तो हम जीवित होने पर भी मर गये (जैसे समझें)। ७८ यदि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से हो जाए, तो मेरी मूँछ मुँड़वा डालिए।' (फिर) वह मारे क्रोध के चिल्ला उठा, 'मैं (रुक्मिणी का) विवाह शिशुपाल से कर दूँगा'। ७९ वह कृष्ण-द्वेष्टा, परम चण्डाल (दुष्ट) था। उसने राजा का बल (अधिकार) चलने नहीं दिया (राजा की एक भी चलने नहीं दी)। उसने समस्त नगर को सजा दिया और (विवाह-) मुहूर्त तत्काल (खोजकर) निर्धारित किया। ८० (राजा) दमघोष के नगर में रुक्मी ने झट से (विवाह के लिए) आमंत्रण भेज दिया। यह समाचार दूती के मुख से रुक्मिणी के कर्ण-द्वार के अन्दर प्रविष्ट हो गया। ८१ उस समस्त समाचार को सुनते ही वह सुन्दरी चौंक उठी। उसके नयनों से अश्रुजल बह रहा था। उसका मुख-कमल कुम्हला गया। ८२ उसके हृदय में चिन्ता रूपी आग सुलग उठी। उसे पानी (पीने), सो जाने और अन्न खाने का स्मरण (तक) नहीं रहा। वह बोली (उसे लगा)— माँ से यह समाचार कह दें, तो भी उसके द्वारा (मुझे) श्रीहरि की प्राप्ति नहीं हो पाएगी। ८३ अब जाकर वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण को झट से कौन ले आएगा। तो (उस समय) सुदेव नामक एक

ब्राह्मण। रुक्मिणी धरी त्याचे चरण। म्हणे जरी कृष्ण येशील घेऊन। तरीं मी उत्तीर्ण नव्हें तूतें। ८५ नयनीं वाहती अश्रुधारा। जे जगन्माया आदिइंदिरा। ते काकुळती येत द्विजवरा। जाईं त्वरें द्वारकेसी। ८६ बाहेर कळों नेदीं मात। यामिनीमाजी क्रमिजे पंथ। उदय न पावतां आदित्य। कृष्णनाथ आणिजे। ८७ जो कां स्कंदतातहृदयींचें ध्यान। दशशतवदनतनुशयन। जो इंदुभगिनीप्राणजीवन। दितिजभंजन आदित्य जो। ८८ जो पुष्करवर्ण चारुगात्र। जो चोविसावा शेवटील मंत्र। जो मित्रतनयातीरीं सरोजनेत्र। क्रीडला तो आणीं कां। ८९ ज्याचें अंतःकरण पीतवसन। इंदिराबंधु ज्याचें मन। चतुरास्य ज्याची बुद्धि पूर्ण। तोचि घेऊनि येईं कां। ९० हिमनगजामात अहंकार। आखंडल दैवत ज्याचे कर। मित्र ज्याचे दिव्य नेत्र। तो सत्वर आणीं कां। ९१ मग तो द्विज नाम सुदेव। म्हणे घेऊनि येतों वासुदेव। परी तुझे लिखितपत्रभाव। समागमें देईं कां। ९२

ब्राह्मण सचमुच उसके घर आ पहुँचा। ८४ वह ब्राह्मण परम सात्त्विक था। रुक्मिणी ने उसके पाँव पकड़े (और) कहा, 'यदि आप कृष्ण को ले आएँगे, तो मैं आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकती'। ८५ उसके नयनों से अश्रु-धाराएँ बह रही थीं। जो जगन्माया है, जो आदि इन्दिरा है, वह गिड़गिड़ाने लगी; (बोली)— 'हे द्विजवर, झट से द्वारका जाओ। ८६ यह बात किसी को विदित होने न दीजिए। रात के अन्दर ही मार्ग तय कीजिए। सूर्य के उदित न होते (अर्थात सूर्योदय के पहले) कृष्णनाथ को ले आइए। ८७ जो स्कन्द के पिता शिवजी के हृदय द्वारा ध्यान करने का विषय हैं, जो सहस्रवदन शेष के शरीर पर शयन करनेवाले (शेषशायी भगवान विष्णु के अवतार) हैं, जो चन्द्र की भगिनी श्रीलक्ष्मी के प्राण और जीवन हैं, जो दैत्यों को नष्ट करनेवाले सूर्य हैं, जो आकाश-मेघवर्ण तथा चारु-गात्र हैं, जो मंत्रों में से अन्तिम अर्थात चौबीसवें[1] हैं, सूर्यकन्या यमुना के तीर पर जो कमल-नयन (कृष्ण) क्रीड़ा किया करते थे, उन्हें ले आइए। ८८-८९ पीताम्बर-धारी (भगवान) जिनका अन्तःकरण है, चन्द्र जिनका मन है, चतुर्मुख ब्रह्मा जिनकी पूर्ण बुद्धि है, उन्हीं को ले आइए। ९० हिमालय के जामाता शिवजी जिनका अहंकार हैं, इन्द्रदेवता जिनके हाथ हैं, सूर्य जिसके दिव्य नेत्र हैं, उन्हें शीघ्रता से ले आइए'। ९१ तब सुदेष नामक वह ब्राह्मण बोला, 'मैं वासुदेव— कृष्ण —को ले आता हूँ; फिर भी

---

१ चौबीसवां नाम— पूजन, धार्मिक विधि आदि के आरम्भ में विशिष्ट प्रकार से आचमन करना पड़ता है। उस आचमन विधि में भगवान के चौबीस नाम लेकर प्रत्येक नाम के साथ नमस्कार करते हैं। ये नाम हैं— केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि और श्रीकृष्ण।

जे शृंगारकासारमराळिका। जे क्षीराब्धिहृदयकनकलतिका। भीमकराजा हा वृक्ष निका। त्यावरी कृपेनें पसरली। ९३ मग घेतलें हाटकरसपात्र। पुढें धरिलें शुद्धसत्त्वपत्र। लेखणी घेऊनि विचित्र। सप्त श्लोक लिहिले तेव्हां। ९४ पत्र गुंडाळोनि झडकरी। द्विजाहातीं देऊनि चरण धरी। जरी घेऊनि येशील कंसारी। तरीच संसारीं सार्थक। ९५ करूनि मनोवेगाचा रहंवर। त्यावरी बैसोनि धांवे द्विजवर। मित्र उगवतां द्वारकापुर। जवळी केलें वेगेंसीं। ९६ द्वारकाबाह्यप्रदेशीं वन। वृक्ष भेदीत गेले गगन। वासरमणीचे किरण। माजी दिसती हिंडतां। ९७ त्यामाजी कस्तूरीमृग चरती। कोकिळा पंचमस्वर आळविती। पक्षी कृष्णनामें गर्जती। हंस खेळती स्वानंदें। ९८ रहाट पाट शीतल उदक। चातक बदक चक्रवाक। शिखी कीर शब्द सुरेख। कृष्णनामें करिताती। ९९ मलयानिल शीतळ। येत रम्य अतिमंजुळ। कृष्णागर मलयागर परिमळ। देवदार वृक्ष तेथें। १०० नारिकेळी खर्जूरी अशोक। पोफळी वट

तुम अपने विचार-भाव को लिखकर पत्र साथ में ही दे दो'। ९२ वह (मानो) शृंगार-सरोवर में निवास करनेवाली हंसी थी। भीमक राजा (मानो) कोई सुन्दर वृक्ष थे। जो क्षीरसागर के हृदय में उत्पन्न स्वर्ण-लता (स्वरूप) थी, वह रुक्मिणी उसपर कृपा करती हुई फैल गयी। ९३ तब उसने स्वर्णरस का पात्र लिया; सामने शुद्ध (ताज़ा) कमल-पत्र रख दिया। फिर तब उसने विचित्र लेखनी लेकर (उसपर) सात श्लोक लिख लिये। ९४ झट से पत्र लपेटकर उस ब्राह्मण के हाथ में उसे देते हुए उसने उसके चरण पकड़े, (और) कहा, 'यदि आप कंसारि कृष्ण को ले आएंगे, तो ही मैं संसार में चरितार्थ हो जाऊँगी'। ९५ मनोवेग को घोड़ा बनाकर, अर्थात मनोवेग-से वेगवाले घोड़े को लेकर वह द्विजवर उसपर बैठकर दौड़ने लगा (घोड़े को दौड़ाने लगा)। उसने सूर्य के निकलते ही वेग-पूर्वक द्वारकापुर को निकट कर लिया (अर्थात सूर्योदय के समय वह द्वारकापुर के निकट पहुँचा)। ९६ द्वारका के बाह्यप्रदेश में वन था। उसमें वृक्ष गगन को भेदते हुए (ऊपर) गये थे। उसके अन्दर सूर्य की किरणें घूमती हुई दिखायी देती थीं। ९७ उसमें कस्तूरी मृग चरते थे। कोयलें पंचम (अर्थात उच्च) स्वर (में) अलापती थीं। पक्षी कृष्ण नाम लेकर गरजते हुए बोलते थे। हंस आत्मानन्दपूर्वक खेलते थे। ९८ रहँट, छोटी नहरें थीं; शीतल जल था। चातक, बत्तख, चक्रवाक, मोर, तोते कृष्ण नाम लेते हुए सुन्दर अर्थात मधुर शब्द बोलते थे। ९९ शीतल मलय-पवन रम्य, अति मंजुल रूप से बहता था। कृष्णागरु और मलयागरु की सुगन्ध फैली हुई थी। वहाँ देवदारु वृक्ष थे। १०० नारियल, खजूर, अशोक, सुपारी, बरगद, पारिजातक, अंजीर, सुडौल मातुलिंग,

पारिजातक। अंजीर मातुलुंग सुरेख। वृक्ष चंपक विराजती। १०१
शेषवेली प्रवाळवेली सुरूप। स्थळीं स्थळीं द्राक्षमंडप। फणस दाळिंबी अमूप।
सदा फळभारें डोलती। २ मुनि सदैव करिती तप। गंधर्वांचे सुरस आलाप।
जेथें वसे परब्रह्म चित्स्वरूप। तें वन कोणासी वर्णवे। ३ जें समुद्रसंभव
नगर। उपमे न पुरे देवराजपुर। कमलोद्भवाचे कर। जेथें लागले नगर
रचितां। ४ आधि व्याधि मृत्यु दरिद्र। द्वारकेंत नाहीं अणुमात्र। पुराण
कीर्तन विचित्र। अग्निहोत्रें द्विजांघरीं। ५ न्याय मीमांसा सांख्यग्रंथ।
पातंजल व्याकरण वेदांत। वेदाध्ययनें अद्भुत। गृहीं गृहीं होताती। ६
शतखणी दामोदरें बहुत। जातां अडखळे मित्ररथ। अवतारमूर्ति
चरित्रांसहित। गोपुरांवरी जडियेल्या। ७ गरुडपाचूचे कीर। घरोघरीं
बोलती सुकुमार। नीळरत्नांचे मयूर। बिदोबिदीं धांवती। ८ निळ्याचे
केले गज। मुखीं हिऱ्यांचे शोभती द्विज। सुवर्णकमल सुवास सतेज।
रुंजती भ्रमर निळ्याचे। ९ टाळ मृदंग विणे हातीं। लेपें आपण वाजविती।

चम्पक के वृक्ष शोभायमान थे। १०१ सुन्दर नागवल्लियाँ, प्रवालवल्लियाँ थीं। स्थान-स्थान पर अंगूर के मण्डप थे। कटहल, अनार (के वृक्ष) नित्य अपरिमित फलों के भार से डोलते रहते थे। २ (उस वन में) मुनि नित्यप्रति तपस्या करते रहते थे। गन्धर्वों के सुरस मधुर (गान के) अलाप (सुनायी देते) थे। जिसमें चित्स्वरूप परब्रह्म निवास करता था, उस वन का वर्णन किसके द्वारा किया जा सकेगा। ३ जो नगर समुद्र द्वारा उत्पन्न किया हुआ था, जिस नगर की रचना करने में ब्रह्मा के हाथ लगे थे (जिसकी रचना करने में ब्रह्मा ने हाथ बँटाया था), उसकी उपमा देने के लिए देवराजपुरी अमरावती (भी) अपर्याप्त हो जाती है। ४ द्वारका में आधि, व्याधि, मृत्यु, दरिद्रता अणु मात्र भी नहीं थी। (वहाँ) पुराण (-पठन-कथन), कीर्तन अद्भुत रूप से चलता था। ब्राह्मणों के घरों में अग्निहोत्र (चलते) थे। ५ घर-घर न्याय, मीमांसा, सांख्य के ग्रन्थों का, पातंजल (योगशास्त्र), व्याकरण, वेदान्त, वेदों का अद्भुत रूप से अध्ययन चलता था। ६ (उसमें) शतखण्डा मन्दिर बहुत थे। वे इतने ऊँचे थे कि लगता था—) सूर्य का रथ चलते-चलते अटकता-रुकता था। उनके गोपुरों पर चरित्रलीलाओं-सहित (भगवान के) अवतारों की प्रतिमाएँ जड़ायी हुई थीं। ७ गरुड़-पन्ने के सुकुमार तोते घर-घर में बोलते थे। नील रत्नों के (बने हुए)-से मोर रास्ते-रास्ते में दौड़ते थे। ८ नील रत्न के हाथी निर्मित थे। उनके मुख में हीरों के दाँत शोभा देते थे। सुगन्ध से युक्त कान्तिमान सुवर्ण कमल थे। वहाँ नीलरत्न के निर्मित भ्रमर गुनगुनाते रहते थे। ९ गारे (के लेप) से निर्मित प्रतिमाएँ ताल, मृदंग, वीणा अपने हाथों से स्वयं बजाती थीं। ब्रह्मा के हाथों से निर्मित चित्र

चित्रें गाती नाचती। विरिंचिहस्तें निर्मित पैं। ११० घरोघरीं रामायण भारत। चित्रमूर्ति रत्नजडित। शक्तिचरित्रें समस्त। असुरझुंजें रेखिलीं। १११ आळोआळीं सुंदर घरें। गृहीं गृहीं विचित्र गोपुरें। असो ब्राह्मण पावला त्वरें। जेथें यादवेंद्र बैसला। १२ दृष्टीं देखतांचि ब्राह्मण। आसन सोडून पीतवसन। द्विजासी करूनि नमन। निजासनीं बैसविला। १३ षोडशोपचारें पूजा करून। संतोषविला ब्राह्मण। मग एकांतगृहीं दोघेजण। जाऊनियां बैसले। १४ हरि म्हणे विप्रोत्तमा। आजि कृतार्थ केलें आम्हां। कोणीकडूनि या ग्रामा। येणें जाहलें स्वामींचें। १५ देखोनियां मनमोहन। कार्यआठव विसरे ब्राह्मण। मग पद्माक्षीचें पत्र काढून। पद्मनाभाहातीं देत से। १६ म्हणे विदर्भराजकन्यका। तिणें दिधली हे पत्रिका। तुम्हांवांचूनि यदुनायका। न वरी आणिका सर्वथाही। १७ या ब्रह्मांडमंडपामाझारीं। ऐसी दुजी नाहीं सुंदरी। ते अनन्यशरण तुज मुरारी। वाचितां पत्रिका कळेल। १८ मग सुवर्णाक्षरपत्र चांगलें। कमलपत्राक्षें उकलिलें। अक्षर सुरेख मिरविलें। जेवीं भगणें पुष्करीं। १९ सप्तश्लोकीं लिहिलें पत्र।

नाचते-गाते थे। ११० घर-घर में रामायण और (महा-) भारत (का पठन) चलता था। रत्नजटित चित्र-मूर्तियाँ थीं। देवी शक्ति के समस्त चरित्र तथा असुर-युद्ध रेखांकित थे। १११ मुहल्ले-मुहल्ले में सुन्दर घर थे। घर-घर में विचित्र गोपुर थे। अस्तु। वह ब्राह्मण झट से (वहाँ) पहुँच गया, जहाँ यादवेन्द्र कृष्ण बैठे हुए थे। १२ आँखों से उस ब्राह्मण को देखते ही पीताम्बरधारी कृष्ण ने अपना आसन छोड़ते हुए (आसन से उठते हुए) उसे नमस्कार करके अपने आसन पर बैठा लिया। १३ सोलह उपचारों से पूजन करके उस ब्राह्मण को उन्होंने सन्तुष्ट कर दिया। अनन्तर वे दोनों जने एकान्त घर में जाकर बैठ गये। १४ कृष्ण बोले, 'हे विप्रोत्तम, आज आपने हमें (दर्शन देकर) कृतार्थ किया। स्वामी का किस (ग्राम) से इस ग्राम में आगमन हुआ है'? १५ मनमोहन कृष्ण को देखकर ब्राह्मण को अपने कार्य की स्मृति भूल गयी। तब उसने पद्माक्षी रुक्मिणी का पत्र निकालकर पद्मनाभ (भगवान विष्णुस्वरूप) कृष्ण के हाथ में दिया। १६ वह बोला, 'विदर्भराज (भीमक) के एक कन्या है। उसने यह पत्रिका दी है। हे यदुनायक, बिना आपके वह किसी और का वरण बिलकुल ही नहीं करना चाहती। १७ इस ब्रह्माण्ड-मण्डप के अन्दर ऐसी सुन्दरी कोई अन्य नहीं है। हे मुरारि, वह आपकी शरण में अनन्य भाव से आयी है। पत्रिका को पढ़ते ही आपको विदित हो जाएगा'। १८ (यह सुनकर) कमल-दल-नयन श्रीकृष्ण ने सुवर्णाक्षर में लिखित वह सुन्दर पत्र खोल लिया। उसमें सुन्दर अक्षर शोभायमान थे, जैसे आकाश में नक्षत्रगण होते हैं। १९ वह पत्र सात श्लोकों में लिखित था, जिसे सुनने

जें ऐकतां उद्धरती सप्तगोत्र। स्वयें वाची स्मरारिमित्र। तेंचि साचार ऐकिजे। १२० श्लोक। श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्। रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे। (१) टीका। जय जय भुवनसुंदरा यादवेंद्रा। तुझ्या सौंदर्यतेजें चराचरा। विशेष दिसे लावण्यमुद्रा। सुरनरउरगां सर्वही। १२१ तुझी गुणलीला विचित्र। ऐकतां धाली सर्वांचे श्रोत्र। त्रिविधतापच्छेदक पवित्र। गुण तुझे श्रीरंगा। २२ सांडोनियां लौकिक लाज। जगद्वंद्या मी शरण तुज। क्षयरहित तूं अच्युत क्षयी सहज। मी निर्लज्ज तुझे ठायीं। २३ श्लोक। का त्वां मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्। धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम्। (२) टीका। मोक्षदायक तूं यदुनायक। यालागीं मुकुंद नाम सुरेख। स्वरूपासी

पर सात गोत्र उद्धार को प्राप्त हो जाएँगे। कामदेव के शत्रु शिवजी के मित्र विष्णु— कृष्ण उसे पढ़ने लगे। सचमुच उसी (पत्र) को सुनिए। १२०

श्लोकार्थ : हे त्रिभुवन-सुन्दर ! जो सुननेवालों के कानों के विवरों द्वारा हृदय में प्रवेश करके एक-एक अंग के ताप को बुझा देते हैं, ऐसे आपके गुणों का, हे अच्युत, जो नेत्रधारी जीवों के नेत्रों के लिए चारों पुरुषार्थों के फल के लाभ-रूप हैं, ऐसे आपके रूप-सौन्दर्य का श्रवण करके मेरा चित्त लज्जा छोड़कर आप में ही प्रवेश कर रहा है। (१)

हे भुवन-सुन्दर यादवेन्द्र, जय हो, जय हो। आपके सौन्दर्य के तेज से सचेतन-अचेतन को, सभी देवों-नरों-सर्पों को विशिष्ट रूप से लावण्य-मुद्रा प्राप्त हुई दिखायी देती है। १२१ आपके गुणों की लीला विचित्र है। (उसे) सुनते ही सबके कान तृप्त हो जाते हैं। हे श्रीरंग, आपके पवित्र गुण (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक— इन) त्रिविध तापों को छेदकर नष्ट कर देनेवाले हैं। २२ हे जगद्वन्द्य, मैं लौकिक लज्जा (मर्यादा) का त्याग करके आपकी शरण में आयी हूँ। हे अच्युत, आप क्षय-रहित (अक्षय) हैं; मैं स्वाभाविक रूप से क्षयी (क्षय को प्राप्त होने वाली, मर्त्य) हूँ। मैं निर्लज्ज होकर आपके स्थान (आश्रय में) आ गयी हूँ। १२३

श्लोकार्थ : हे मुकुन्द ! कुल, शील, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन, धाम, सभी में आप अपने ही समान हैं (आप इनमें अद्वितीय हैं)। हे पुरुषसिंह ! कौन ऐसी धैर्यवती, कुलवती कन्या होगी, जो आप जैसे नरलोक के लिए मनोभिराम पुरुष का अपने पति के रूप में, (विवाह-योग्य) समय के आने पर वरण न करेगी ? (२)

हे यदुनायक, आप मोक्षदाता हैं। इसलिए आपका 'मुकुन्द (= मुक्ति-दाता)' नाम सुन्दर (उचित एवं सार्थक) है। देखिए, आपसे

तुळितां देख। शफरीध्वज सरी न पवे। २४ जगन्मोहना श्रीकृष्णा। तुझी प्राप्ति व्हावया मधुसूदना। ज्या परमसधना सुकुलीना। तपें करिती तुजलागीं। २५ विद्यावंता वयसा चतुरा। सर्व गुणीं मंडित उदारा। तुजकारणें श्रीकरधरा। अगाध तपें करितातो। २६ ऐसियांसी नव्हे प्राप्ती। माझा पाड तेथें किती। पूर्ण ब्रह्म तूं वैकुंठपती। कीर्ति वर्णिती श्रुतिशास्त्रें। २७ तुज वरावया श्रीपती। सिद्ध असती बहुत युवती। परी मी दीन असें निश्चितीं। पाव यदुपती दयार्णवा। २८ सकळनरलोक-मनोभिरामा। नरवीरांमाजी तूं यदूत्तमा। तुजवांचूनि मेघश्यामा। नव्हेंचि रामा आणिकाची। २९ श्लोक। तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरंग-जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि। मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष। (३) टीका। तूं परात्पर निर्विकारी। उपाधिरहित ब्रह्मचारी। परी मी कायावाचामनें कैटभारी। तुझी अंतुरी जाहलें। १३० माझी दीनाची विनंती। जरी उपेक्षिसी जगत्पती। चतुर्दश

सुन्दरता में तुलना करने पर मकरध्वज कामदेव (आपकी) बराबरी को प्राप्त नहीं हो सकता। १२४ हे जगन्मोहन श्रीकृष्ण, हे मधुसूदन, आपकी प्राप्ति होने के हेतु जो परम धनवान, सुकुलीन (स्त्रियाँ) आपके लिए तप करती रहती हैं, हे विद्यावान, हे तरुण पुरुष, हे चतुर, हे समस्त गुणों से विभूषित, हे उदार (उदात्त, प्रभावशाली), हे श्रीकरधर (लक्ष्मीपति), जो आपके लिए अथाह तपस्या करती रहती हैं, ऐसी (स्त्रियों) को (जहाँ) आपकी प्राप्ति नहीं होती, वहाँ (उनकी तुलना में) मेरी कितनी योग्यता है ? हे वैकुण्ठपति, आप पूर्णब्रह्म हैं। श्रुति-शास्त्र (वेद-शास्त्र) आपकी कीर्ति का वर्णन करते हैं। २५-२७ हे श्रीपति, बहुत युवतियाँ आपका वरण करने के लिए उद्यत हैं। परन्तु, (उनकी तुलना में) मैं निश्चय ही दीन हूँ। हे यदुपति, हे दयार्णव, कृपा करते हुए मुझ पर प्रसन्न हो जाइए (मुझे प्राप्त हो जाइए)। २८ हे समस्त लोगों के लिए मनोभिराम, हे यदुवंशियों में उत्तम (श्रेष्ठ), आप (समस्त) नरवीरों में सिंह हैं। हे मेघश्याम, मैं आपके अतिरिक्त और किसी की स्त्री नहीं हो जाऊँगी। १२९

श्लोकार्थ : इसलिए मैंने आपका पति के रूप में वरण किया है। मैंने आपको आत्मसमर्पण किया है। हे विभु, आप अन्तर्यामी हैं, अतः मेरे मन की बात आपसे छिपी नहीं है। आप यहाँ आकर मुझे पत्नी-रूप में स्वीकार कीजिए। हे अम्बुजाक्ष (कमलनयन), अब जैसे सिंह के भाग को सियार छू जाए, वैसे चेदिनरेश शिशुपाल मुझ आप जैसे वीर के भाग (वस्तु) को स्पर्श न कर जाए। (३)

आप परात्पर, निर्विकारी हैं, उपाधि-रहित ब्रह्मचारी हैं। परन्तु हे कैटभारि, मैं काया, वाणी और मन से आपकी पत्नी हो चुकी हूँ। १३०

लोकींचे नृपति हांसती। होईल अपकीर्ति यादवेंद्रा। १३१ तूं अरिचक्र-वारणपंचानन। तुझें अर्धांग माझें निकेतन। तेथें जंबुक दमघोषनंदन। घेऊनि पळों पाहातसे। ३२ प्रतापदिनकरा अंबुजाक्षा। पुराणपुरुषा निर्विकल्पवृक्षा। सर्वांतरात्मा सर्वसाक्षा। तुझी जाया मी जाहलें। ३३
श्लोक। पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः। आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये। (४)
टीका। पूर्वींचें असेल सुकर्म। याग दान व्रत धर्म। देवब्राह्मणपूजा परम। जरी घडलीं असतील। ३४ सद्‌गुरुपूजन निर्धारीं। जरी केलें असेल जन्मांतरीं। गोभूरत्न दानें नाना परी। जरी घडलीं असतील। ३५ तडाग कूप वापिका। आराम उद्यान पुष्पवाटिका। हरिदिनीआदि व्रतें देखा। जरी घडलीं असतील। ३६ भगवद्भजन हरिगुणकीर्तन। जरी गांठीं असेल महत्पुण्य। तरीच गदाग्रजा येऊन। हातीं धरिशील मजलागीं। ३७

हे जगत्पति, हे यादवेन्द्र, यदि आप मुझ दीन की विनती की उपेक्षा करेंगे, तो चौदह लोकों के राजा (आपको) हँसेंगे और (आपकी) अपकीर्ति हो जाएगी। १३१ आप शत्रुसमूह रूपी हाथियों के लिए सिंह हैं। आपका अर्ध अंग ही मेरा स्थान है। वहाँ (इस स्थिति में) दमघोष नामक चेदि देश के राजा का पुत्र शिशुपाल रूपी सियार मुझे लेकर भाग जाना चाहता है। ३२ हे प्रताप के सूर्य, हे अम्बुजाक्ष (कमलाक्ष), हे पुराणपुरुष, हे निर्विकल्प वृक्ष, हे सर्वान्तरात्मा, हे सर्वसाक्षी, मैं तो आपकी पत्नी हो चुकी हूँ। १३३

श्लोकार्थ : यदि मैंने (जन्म-जन्म में) पूर्त (कुआँ, बावली आदि खुदवाना), इष्ट (यज्ञ आदि करना), दत्त (दान आदि देना), नियम, व्रत, देवता-ब्राह्मण-गुरु की पूजा आदि के द्वारा भगवान परमेश्वर की ही आराधना की हो और वे मुझ पर प्रसन्न हों, तो भगवान श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें और शिशुपाल आदि कोई भी अन्य पुरुष मेरा स्पर्श (तक) न करें। (४)

यदि मेरे द्वारा पूर्वकाल (पूर्वजन्म) का सुकर्म किया हुआ हो, मेरे द्वारा यज्ञ-याग, दान, व्रत, धर्मकार्य, देव-ब्राह्मण की परम पूजा आदि कार्य घटित हुए हों, यदि जन्मान्तर में निश्चय ही मैंने सद्‌गुरु का पूजन किया हो, गाय-भूमि-रत्न का नाना प्रकार से दान-कर्म मेरे द्वारा हुआ हो, देखिए तालाब, कुआँ, वापिका (बावली का उत्खनन), आराम (बाग़), उद्यान-पुष्पवाटिका का निर्माण, एकादशी आदि व्रत यदि मेरे द्वारा घटित हुए हों, यदि भगवद्‌भजन, हरिगुण-कीर्तन आदि का महत्पुण्य मेरी गाँठ में हो, तो ही हे गदाग्रज[1] श्रीकृष्ण, आप आकर मेरा हाथ थाम लेंगे। १३४-१३७

1 गदाग्रज : श्रीकृष्ण। 'गद' श्रीकृष्ण का एक छोटा सगा या सौतेला भाई था।

श्लोक। श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः। निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्। (५) टीका। कमलनाभा कमलापती। सत्वर येइंजे रातोरातीं। गभस्ति नुगवतां यदुपती। कौंडिण्यपुरा येइंजे। ३८ घेऊनि परमार्थसंपत्ती। ज्ञानी प्रपंचदळ रगडिती। तैसे यादवभारेंसीं जगत्पती। चैद्यमागध त्रासिजे। ३९ गुप्तरूपें घेऊनि पृतना। सत्वर यावें जगन्मोहना। राक्षसविधीकरूनि जनार्दना। मज घेऊनि जाइंजे। १४० यथाविधि लग्न नव्हे तत्त्वतां। तरी राक्षसविधीं परिणजे अनंता। त्रिभुवननायका वैकुंठनाथा। धांवें आतां सत्वर। १४१ श्लोक। अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्। पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात्। (६) टीका। तूं अससील निजमंदिरीं। मी

श्लोकार्थ : आप अजित हैं। जिस दिन मेरा विवाह होनेवाला हो, उसके एक दिन पहले आप गुप्त रूप से अपने चारों ओर सेनापतियों-सहित हमारी राजधानी में आ जाइए और शिशुपाल तथा जरासन्ध की सेना को मथकर (नष्ट करके) बलपूर्वक राक्षस विधि से वीर्यशुल्क देकर (वीरता प्रदर्शित करके उसके फलस्वरूप) मेरा पाणिग्रहण कीजिए। (५)

हे पद्मनाभ, हे कमलापति, रात-की-रात में झट से आ जाइए। हे यदुपति, सूर्य के न उदित होते (अर्थात उदित होने से पहले) कौण्डिण्यपुर के प्रति आ जाइए। १३८ जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष परमार्थ-सम्पत्ति (स्वरूप सेना) लेकर सांसारिक कष्ट आदि की सेना को रौंद डालते हैं, उसी प्रकार, हे जगत्पति, यादव सेना (को लाकर उस) से चेदिराज शिशुपाल और मगधराज जरासन्ध को जर्जर कर डालिए। ३९ हे जगन्मोहन, आप गुप्त रूप से सेना लेकर झट से आ जाइए। हे जनार्दन, राक्षस विधि से (बलपूर्वक उठाकर) मुझे लेकर जाइए। १४० वस्तुतः यह (सामान्य) विधि के अनुसार विवाह नहीं होगा; फिर भी हे अनन्त, (मुझसे) राक्षस-विधि से परिणय कीजिए। हे त्रिभुवन-नायक, हे वैकुण्ठनाथ, अब शीघ्र गति से आ जाइए। १४१

श्लोकार्थ : (यदि आप सोचते हों कि) तुम अन्तःपुर में, पहरे के अन्दर रहती हो, तुम्हारे बन्धुओं को मारे बिना मैं तुम्हें उठाकर कैसे ले जा सकता हूँ, तो इसका उपाय (मार्ग) मैं आपको बताती हूँ। (कुलरीति के अनुसार) विवाह के पहले दिन कुलदेवी के दर्शन के लिए बड़ी (शोभा-) यात्रा होती है (जुलूस के साथ जाना होता है), जिसमें नववधू नगर के बाहर गिरिजा देवी के मन्दिर में जाती है। (६)

(आप मानते होंगे—) 'तुम अपने प्रासाद के अन्दर होगी, तो मैं वहाँ तक कैसे आ जाऊँ? तुम्हारे दुष्ट बन्धु सेना-सहित (मुझसे) लड़ने के

कैसा येऊं तेथवरी। तुझे दुष्ट बंधु दळभारीं। सिद्ध होतील झुंजावया। ४२ त्यांचा करितां संहार। तुज होईल दुःख थोर। तरी ऐकावा एक विचार। जगद्वंद्या यदुपति। ४३ नगराबाहेर अंबिकापुरा। आपण यावें श्रीकरधरा। दळभारेंसीं यादवेंद्रा। सिद्ध तेथें असिजे। ४४ आमुचा कुळधर्म ऐसा पुरातन। लग्नाआधीं अंबिकापूजन। मज वेष्टूनि बंधुजन। येतील घेऊन देवालया। ४५ होतांचि अंबिकापूजन। अरिवीरांतें पराक्रम दावून। मज सत्वर जावें घेऊन। कृपा करून यादवेंद्रा। ४६ काम क्रोध मद मत्सर। हेहि चौघे बंधू साचार। पापापासूनि सोडविता प्रतापशूर। तुजवांचूनि कोण असे। ४७ भवपूरीं वाहतां साचार। तूं परतीरीं उभा पोहणार। उडी घालोनि सत्वर। तारीं मज जगद्गुरो। ४८ श्लोक। यस्यांघ्रिपंकजरजः स्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोपहत्यै। यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात्। (७) टीका। तुझिया अंघ्रिपंकजींचे रजःकण। प्राप्त होतां होइजे पावन।

लिए तैयार हो जाएँगे। १४२ उनका संहार करने पर तुम्हें बड़ा दुःख होगा'। तो हे जगद्वन्द्य यदुपति, एक विचार (उपाय की बात) सुनिए। ४३ हे श्रीकरधर (लक्ष्मीपति), आप (हमारे) नगर के बाहर देवी अम्बा के मन्दिर (के निकट) आ जाइए। हे यादवेन्द्र, आप सेना-सहित वहाँ तैयार रहिए। ४४ हमारा ऐसा पुरातन कुलधर्म है कि विवाह के पहले (वधू द्वारा) अम्बिका (पार्वती) का पूजन किया जाता है। मेरे बन्धुजन मुझे घेरकर (मुझे) देवालय के प्रति ले आएँगे। ४५ हे यादवेन्द्र, अम्बिका देवी का पूजन होते ही, आप कृपा करके, अति (शूर) वीरों को (अपना) प्रताप दिखलाते हुए मुझे शीघ्रतापूर्वक ले जाएँ। ४६ काम, क्रोध, मद, मत्सर —ये ही सचमुच चारों बन्धु हैं। पाँचवाँ बन्धु है पाप। उन (के प्रतिरूप मेरे रुक्मी आदि पाँचों बन्धुओं) से छुड़ानेवाला प्रतापवान शूर पुरुष, सिवा आपके (और) कौन है। ४७ भव (नदी) की बाढ़ में सचमुच मेरे बहते रहते, आप (जैसे) तैराक दूसरे तट पर (उस पार) खड़े हैं। हे जगद्गुरु, झट से कूदकर मुझे तार लीजिए (मुझे बचाकर मेरा उद्धार कीजिए)। १४८

श्लोकार्थ : हे कमलनयन, उमापति भगवान शिवजी जैसे बड़े-बड़े महापुरुष भी आत्मशुद्धि के लिए आपके चरण-कमलों की धूलि से स्नान करना चाहते हैं। यदि मैं आपका वह (चरण-धूलि रूपी) प्रसाद (इस जन्म में) नहीं प्राप्त कर सकूँ, तो मैं व्रत द्वारा शरीर को सुखाकर प्राणों का उत्सर्ग कर दूँगी। चाहे (उसकी प्राप्ति के लिए सैकड़ों) अन्य जन्म क्यों न लेने पड़ें, कभी-न-कभी आपका वह प्रसाद अवश्यमेव (मुझे) मिल जाएगा। (७)

अपर्णापति तप दारुण। याचिलागीं आचरे। ४९ पहावया तुझे चरण। नाभिकमळीं सरोजासन। सहस्र वर्षें पाहे उतरोन। मनीं निर्बुजोन वरी आला। १५० ते वेळीं नाहीं देखिले चरण। मग गोकुळीं केलें वत्सहरण। तुवां तेथें सर्व रूपें धरोन। अद्भुत महिमा दाविला। १५१ अभिमान टाकूनि ते वेळां। जगद्वंद्या तुज शरण आला। मग तुवां मस्तकीं हस्त ठेविला। तेणें निवाला विधाता। ५२ तूं शिवब्रह्मादिकां न येसी आया। मी सिद्ध जाहलें तुज-वरावया। परम धीटत्व करूनियां। पत्र लिहिलें नेणतपणें। ५३ आतां श्रीरंगा हाचि पण। तुजचि एक माळ घालीन। नाहीं तरी हा देह त्यागीन। तप आचरेन शतजन्में। ५४ अवघड तप आचरोन। करीन प्राणांचें शोषण। स्थूल लिंग आणि कारण। करीन जाळून भस्म यांचें। ५५ अंतःकरणचतुष्टय जाळून। प्राणपंचक संहारून।

आपके पद (-अंघ्रि = अँगूठा) कमल के रजकणों को प्राप्त होने पर (साधक) पावन हो जाते हैं। इसी के लिए (पदरज की प्राप्ति के लिए) अपर्णापति शिवजी दारुण तपश्चर्या करते हैं। १४९ आपके चरणों को देखने के लिए (चरणों के दर्शन करने के लिए) कमलासन अर्थात ब्रह्मा ने (आपकी) नाभि में उत्पन्न कमल में उतरकर (वहाँ) सहस्रों वर्षों तक (रहकर) देखा (प्रतीक्षा की)। फिर भी मन में लज्जित होकर वे ऊपर आ गये। १५० उस समय वे आपके चरणों को देख नहीं सके। अनन्तर उन्होंने गोकुल में बछड़ों का अपहरण किया। वहाँ (उस समय) आपने समस्त (बछड़ों और चरवाहों के) रूप धारण करके अपना अद्भुत माहात्म्य (बड़प्पन) प्रदर्शित किया। १५१ उस समय, हे जगद्वन्द्य, अभिमान छोड़कर वे आपकी शरण में आ गये; तब आपने उनके मस्तक पर हाथ रखा, तो उससे विधाता शान्ति को प्राप्त हो गये। ५२ आप शिवजी, ब्रह्मा आदि के भी वश में नहीं आ जाते; (इस स्थिति में) मैं आपका वरण करने के लिए तैयार हो गयी हूँ। मैंने अनजाने में असीम ढिठाई बरतते हुए यह पत्र लिखा है। ५३ अब श्रीरंग, मेरा यही प्रण है— मैं आपके ही एक (वर-) माला पहनाऊँगी; नहीं तो इस देह का त्याग करूँगी, मैं (आपकी प्राप्ति के हेतु) शत (-शत) जन्म तप करूँगी। ५४ कठिन तप करके मैं प्राणों का शोषण कर लूँगी। (अपनी) स्थूल, लिंग और कारण देहों को (तपाग्नि में) जलाकर इनका भस्म कर डालूँगी। ५५ जान लीजिए कि चारों अन्तःकरणों[1] को जलाकर, पाँचों प्राणों[2] का संहार

---

१ चार अन्तःकरण (अन्तःकरण चतुष्टय)— देखिए टिप्पणी ३, पृ० १३१, अध्याय ४।

२ पाँच प्राण (पंचप्राण)— देखिए टिप्पणी २, पृ० १३१, अध्याय ४।

दाही करणें विषयपंचक जाण। टाकीन शोषूनि तुजलागीं। ५६ ऐसें शतजन्में तप साचार। आचरीन तुजलागीं दुर्धर। परी न वरीं दुजा वर। तुजविण यादवेंद्रा। ५७ वरकड नवऱ्या विषयपर। इच्छिती भ्रतार आणि संसार। मी आपुला करावया उद्धार। तुज शरण जगद्‌गुरो। ५८ ऐसें सप्तश्लोकी पत्र सुरेख। वाची कमलोद्भवाचा जनक। सद्‌गद जाहला वैकुंठनायक। भाव देखोनि भीमकीचा। ५९ सुदेव म्हणे यदुवीरा। आतां बहुत करावी त्वरा। उशीर होतां ते सुंदरा। प्राण देईल तत्काळ। १६० परम चिंतारोग दारुण। तेणें रुक्मिणी गेली कृश होऊन। हरि तूं धन्वंतरी तेथें येऊन। कृपाहस्तें निववीं तीतें। १६१ शिशुपाळ हाचि विखार। रुक्मिणीस डंखूं पाहे दुराचार। तूं गारुडी गरुडध्वज सत्वर। उडी घालीं ये वेळीं। ६२ चैद्य मागध सर्व बळी। रुक्मिणी पडली भूतांचे मेळीं। तूं पंचाक्षरी जातां वनमाळी। भूतें तत्काळ पळतील। ६३ श्रावणारितनय तूं पूर्वावतारीं। जाऊनि वैश्रवणबंधुपुरीं। प्रतापें सोडविली विदेहकुमरी।

करके, मैं आप (की प्राप्ति) के लिए दसों करणों (इन्द्रियों)[1] और पाँचों विषयों[2] को सोख डालूँगी। ५६ हे यादवेन्द्र, मैं आपके लिए सचमुच शत (-शत) जन्म ऐसा दुर्धर तप करूँगी; परन्तु आपके अतिरिक्त किसी दूसरे वर का वरण नहीं करूँगी। ५७ अन्यान्य वधुएँ (लड़कियाँ भोग-) विषय (सम्बन्धी आकर्षण) से पति और घर-गिरस्ती की अभिलाषा करती हैं। (परन्तु) हे जगद्‌गुरु, मैं अपना उद्धार कराने के लिए आपकी शरण में आयी हूँ। १५८

ब्रह्मा के पिता वैकुण्ठनायक भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने इस प्रकार सप्तश्लोकों में लिखित उस सुन्दर पत्र को पढ़ा, तो वे भीमक-कन्या रुक्मिणी की भावना देखकर बहुत गद्‌गद हो उठे। १५९ (तदनन्तर) सुदेव यदुवीर कृष्ण से बोले, 'अब बहुत शीघ्रता कीजिए। विलम्ब होने पर वह सुन्दरी तत्काल प्राण दे देगी। १६० दुराचारी शिशुपाल ही विषैला सर्प है। वह रुक्मिणी को डसना चाहता है। आप गरुड़-ध्वजी (भगवान कृष्ण) रूपी सँपेरे हैं। इस समय आप झट से कूद पड़िए। १६१ चेदिराज शिशुपाल और मगधराज जरासन्ध सब बलवान हैं। रुक्मिणी उन भूतों के समुदाय में (घिरी) पड़ी है। ६२ हे वनमाली, आप जैसे ओझा के (वहाँ) जाने पर वे पिशाच तत्काल भाग जाएँगे। ६३ आप पूर्व अवतार में (श्रवण के शत्रु) दशरथ के पुत्र राम (के रूप में उत्पन्न) थे,

१ दस करण (इन्द्रियाँ)— देखिए टिप्पणी १, पृ० १११, अध्याय ४।

२ पाँच विषय (पंचविषय)— पाँच विषय ज्ञानेन्द्रियों के = प्रत्येक का एक-एक : रूप (नेत्र का), रस (जिह्वा का), ध्वनि (कर्ण का), गन्ध (नाक का) और स्पर्श (त्वचा का)।

तसेंचि करीं आतांही। ६४ ऐसी ऐकोनियां करुणा। कळवळला वैकुंठराणा। सारथि दारुक तेचि क्षणां। बोलाविला एकांतीं। ६५ म्हणे वेगीं सिद्ध करीं रथ। दुजयासी कळों नेदीं मात। येरें आज्ञा वंदूनि त्वरित। रथ वेगें आणिला। ६६ वरकड न्यावा दळभार। तरी कासया करावा गजर। मी एकलाचि जाऊनि सत्वर। भीमकी आणीन ये क्षणीं। ६७ मिळाले असंख्य दंदशूक। त्यांवरी एकला पडे खगपाळक। किंवा वारणचक्रावरी एक। मृगेंद्र जैसा झपेटे। ६८ कीं शुष्कवनीं कृशान। एकलाचि टाकी भस्म करून। कीं एकला समीरात्मज जाऊन। अशोकवन विध्वंसी। ६९ ऐसें विचारूनि यादवेंद्र। रथीं चढला प्रतापरुद्र। तुरंगीं बैसविला द्विजवर। चालिले सत्वर मनोवेगें। १७० रातोरातीं तत्काळीं। आले कौंडिण्य-

तो आपने कुबेर-बन्धु रावण की लंकापुरी में जाकर विदेहकुमारी को मुक्त किया था। अभी अब भी वैसा ही कीजिए'। ६४ ऐसी करुण विनती सुनते ही वैकुण्ठपति कृष्ण (दुःख से) व्याकुल हो गये। उन्होंने उसी क्षण सारथी दारुक को एकान्त में बुला लिया। ६५ वे बोले, 'झट से रथ को तैयार करो। यह बात किसी दूसरे को विदित न होने दो।' तो वह (उनकी) आज्ञा का वन्दन करके अर्थात आदरपूर्वक स्वीकार करके रथ को झट से वेगपूर्वक ले आया। ६६ (उन्होंने सोचा—) अन्य सेना-दल को ले जाएँ ? पर व्यर्थ ही (ऐसा) क्यों करें ? (अतः) मैं अकेले ही झट से जाकर (वैसे ही प्रतिद्वंद्वियों का संहार करके) रुक्मिणी को इस क्षण ले आऊँगा, जैसे असंख्य सर्प इकट्ठा हुए हों और उनपर अकेला खगराज गरुड़ टूट पड़े, अथवा जैसे हाथियों के झुण्ड पर अकेला सिंह झपट जाता हो, अथवा सूखे वन में अकेली ही आग (सबको) भस्म कर डालती है, अथवा (पूर्वकाल में) अकेले हनुमान ने जाकर अशोक वन को ध्वस्त कर डाला। ६७-६९ इस प्रकार सोचकर प्रताप में रुद्र जैसे यादवेन्द्र कृष्ण रथ में चढ़ गये। उन्होंने ब्राह्मण (सुदेव) को घोड़े पर बैठा दिया और वे दोनों झट से मनोवेग (जैसे वेग) से चले गये। १७० वे रात-की-रात में तत्काल कौण्डिण्यपुर के निकट आ गये। श्रीकृष्ण ने उस नगर का निरीक्षण किया, तो उनकी मनोवृत्ति सन्तुष्ट हो गयी। १७१ (इधर) अष्टवर्ग[1] की सामग्री सिद्ध हो गयी। रुक्मिणी को हलदी

१ अष्टवर्ग— विवाह के अवसर पर की जानेवाली एक लौकिक विधि, जिसके अनुसार बारात के पहले, वर का पिता अपने कुल के आठ व्यक्तियों तथा वर-सहित एक पंक्ति में जलपान या अल्पाहार के लिए बैठता है, उस व्यक्ति-समूह को 'अष्टवर्ग' कहते हैं। केले के पत्ते पर खाद्य वस्तुएँ सजायी जाती हैं। खाना आरम्भ करने से पहले वधू वर की पत्तल से' लेकर अन्तिम व्यक्ति की पत्तल तक घृतधारा अखण्डित रूप से डालती जाती है। अनन्तर बीड़ा देकर वह उनकी आरती उतारती है। तब अष्टवर्ग जलपान या अल्पाहार करते हैं।

पुराजवळी। श्रीकृष्ण नगर न्याहाळी। संतोषली चित्तवृत्ति। १७१ अष्टवर्गाची सामग्री जाहली। रुक्मिणीसी हळद लाविली। मनीं सचित वेल्हाळी। म्हणे न ये वनमाळी काय करूं। ७२ मनीं विचारी राजा भीमक। जरी ये समयीं येईल द्वारकानायक। तरी मजएवढा पुण्यश्लोक। दुजा मग असेना। ७३ म्यां पाठविलें नाहीं पत्र। कैसा येईल वारिजनेत्र। तो घनश्याम कोमलगात्र। सर्वांचें अंतर जाणतसे। ७४ ऐसा सचित राजेंद्र। तों दूत जाणविती समाचार। कीं लग्नासी आला दमघोष नृपवर। निजभार घेऊनियां। ७५ शिशुपाळ वक्रदंत। जरासंध सवें उन्मत्त। मुख्य शिशुपाळ नोवरा मिरवत। आले नगराबाहेरी। ७६ दृष्टीं देखतां विषयसुख। जैसे मनीं दचकती साधक। तैसा राजा भीमक। मनांत असुख मानीतसे। ७७ रुक्मियासी हरिख नावरे। पितयासी म्हणे चला सामोरे। भीमक निजभारेंसीं त्वरें। नगराबाहेर निघाला। ७८ सीमांतपूजा करूनि त्वरित। जानवसा दिधला नगरांत। इकडे काय जाहला वृत्तांत। तोचि ऐका सज्जन हो। ७९ बळिभद्रादि उद्धव अक्रूर। त्यांसी कळला समाचार। कीं रुक्मिणीहरणासी यदुवीर। एकलाचि गुप्त गेला। १८० जरासंध शिशुपाळ। तेथें येतील

लगायी गयी। तो वह सुन्दरी मन में चिन्तित हो गयी। वह बोली, 'वनमाली नहीं आये, (अब) क्या करूँ'? ७२ राजा भीमक ने मन में सोचा, 'यदि इस समय द्वारकापति श्रीकृष्ण आ जाएँगे, तो मुझ जैसा पुण्यश्लोक (पवित्र कीर्तिशाली) फिर दूसरा कोई नहीं है। ७३ मैंने तो उनको पत्र नहीं (लिखकर) भेजा, तो कमल-नयन कैसे आएँगे। (फिर भी) वे घनश्याम कोमलगात्र (श्रीकृष्ण) सबके अन्तःकरण को जानते हैं'। ७४ राजेन्द्र (भीमक) इस प्रकार चिन्तित थे, तब दूतों ने यह समाचार विदित करा दिया कि नृपवर दमघोष अपनी सेना को लेकर विवाह के लिए आया है। ७५ शिशुपाल, वक्रदन्त दोनों आये थे; साथ में उन्मत्त जरासन्ध भी था। उनमें प्रमुख था दूल्हा शिशुपाल। वे ठाटबाट से नगर के बाहर आ गये। ७६ विषय-सुख को आँखों से देखते ही जिस प्रकार साधक मन में चौंक उठते हैं, उसी प्रकार (यह समाचार सुनकर) राजा भीमक मन में दुःख अनुभव करने लगे। ७७ (इधर) रुक्मी द्वारा तो आनन्द को रोका नहीं जा रहा था। वह अपने पिता से बोला, '(अगुवानी के लिए) आगे चलिए।' तो भीमक अपनी सेना-सहित झट से नगर के बाहर (जाने के लिए) निकले। ७८ उन्होंने सीमान्त पूजन करके शीघ्रतापूर्वक नगर में (बारात के लिए) जनवासा सिद्ध किया। इधर क्या बात घटी, हे सज्जनो, उसी को सुन लीजिए। ७९ उद्धव, अक्रूर, बलभद्र आदि को यह समाचार विदित हुआ कि रुक्मिणी का हरण करने के हेतु यदुवीर कृष्ण अकेले ही गुप्त रूप से

वीर सकळ। युद्ध होईल तुंबळ। जिंकील घननीळ तितुकेही। १८१ परी युद्धसमयाकारण। जावें सकळ सेना घेऊन। चतुरंगदळ सिद्ध करून। लागवेगें धांविन्नले। ८२ कौंडिण्यपुरा जों पावे यदुवीर। तों मागूनि आले दळभार। यादववीर प्रतापी थोर। काळासही जिंकिती समरांगणीं। ८३ तों इकडे रुक्मिणी वेल्हाळी। चितासमुद्रीं पडियेली। म्हणे लिखित पाठविलें वनमाळी। नेणवे जाहली परी कैसी। ८४ कृष्ण निर्विषय चैतन्यघन। त्यासी म्यां लिहिलें भार्या होईन। कीं हे बहु चक्रचालक म्हणोन। जगज्जीवन न येचि। ८५ कीं शतजन्में तप करीन। म्यां हा लिहिला अभिमान। यालागीं कंसप्राणहरण। उदास झाला न येचि। ८६ वर्णितां भागला सहस्रवदन। ब्रह्मादिकां दुर्लभ पूर्ण। त्यासी लिखित दिधलें पाठवून। हें अनुचित केलें म्यां। ८७ कीं ब्राह्मण देखोनि जगन्मोहन। विसरला कार्याची आठवण। कीं वधूनें लिखित पाठविलें म्हणोन। मधुसूदन न येचि। ८८ परात्परा उपरी भीमकी। चढूनि चहूंकडे अवलोकी। म्हणे लग्नसमय

गये हैं। १८० (उन्हें विश्वास था कि) वहाँ जरासन्ध, शिशुपाल (जैसे) समस्त वीर पुरुष आ जाएँगे; घमासान युद्ध होगा; फिर भी उन सबको भी घननील कृष्ण जीत लेंगे। १८१ (उन्होंने सोचा—) फिर भी समस्त सेना लेकर युद्ध के विकट समय पर (वहाँ) जाएँ। (अतः) चतुरंग दल तैयार करके वे वेगपूर्वक शीघ्रता से दौड़े। ८२ (उधर) जब यदुवीर कृष्ण कौण्डिण्यपुर पहुँचे, तब (तक) पीछे से सेना-दल आ गये। वे यादववीर बड़े प्रतापवान थे। वे युद्धभूमि में काल को भी जीत सकते थे। ८३ तब इधर सुन्दरी रुक्मिणी चिन्ता-सागर में पड़ गयी थी। वह बोली (उसे लगा), 'मैंने तो वनमाली को लिखित रूप से पत्र भेज दिया था। न जाने क्या और कैसी बात हुई। ८४ कृष्ण तो (भोग-) विषयवासना-हीन हैं, चैतन्य-घन हैं। उनको मैंने लिखा है— मैं आपकी पत्नी हो जाऊँगी। अथवा ये जगज्जीवन बहुत (ब्रह्माण्ड-) चक्रों के चलानेवाले हैं, इसलिए ये नहीं आ रहे हैं। ८५ अथवा मैंने यह अभिमान व्यक्त करते हुए लिखा (अभिमानपूर्वक लिखा) कि मैं शत (-शत) जन्म तप करूँगी; इसलिए कंस के प्राणों का हरण करनेवाले (मेरे इस अभिमान के कारण मेरे प्रति) उदासीन हो गये हों, अतः वे नहीं आ रहे हैं। ८६ सहस्रवदन शेष (भी) जिन (की महिमा) का वर्णन करते हुए थक गया है, जो ब्रह्मा आदि के लिए (भी) पूर्णतः दुर्लभ हैं, मैंने उनको लिखी हुई चिट्ठी भेज दी —मैंने यह अनुचित किया। ८७ अथवा जगन्मोहन को देखते ही वह ब्राह्मण (मेरे) काम की स्मृति भूल बैठा हो, अथवा वधू ने लिखकर पत्र भेज दिया, (उसे अनुचित समझ लिया हो), इसलिए मधुसूदन नहीं आ रहे हैं'। ८८ भीमक-कन्या रुक्मिणी ऊँची अटारी पर चढ़कर

जवळी आला कीं। यदुनायक पावेना। ८९ आसन शयन भोजन पान। अंजन चंदन तांबूल सुमन। क्रीडाकौतुक नृत्य गायन। नावडे पूर्ण सर्वथा। १९० रुक्मिणी भूमीवरी टाकी अंग। म्हणे मज दावा गे श्रीरंग। मज नावडती विषयभोग। वीट येतो देखतां। १९१ चंदन वाटे जैसा पावक। सुमनहार जेवीं दंदशूक। कृष्णप्राप्तीविण भूषणें सुरेख। काय व्यर्थ करूं मी। ९२ नेत्रीं चालिल्या विमलांबुधारा। म्हणे अहा कृष्णा यादवेंद्रा। भक्तवत्सला गोवर्धनोद्धारा। माझी उपेक्षा कां केली। ९३ तों होती उत्तम शकुन। लवों लागला वामनयन। दक्षिणबाहूचें स्फुरण। वेळोवेळां होतसे। ९४ कृष्णप्राप्तीचें मुख्य चिन्ह। प्रकृतिभाग तो वामनयन। तो लवत चालिला संपूर्ण। तरी जगज्जीवन येईल। ९५ दक्षिणबाहु तो केवळ ज्ञान। तेथें स्फूर्ति विशेष पूर्ण। हेंचि कृष्णप्राप्तीचें लक्षण। दिव्य शकुन साधकां। ९६ सुदेवासी म्हणे वासुदेव। तुम्हीं आतां घ्यावी धांव।

चारों ओर परात्पर भगवान कृष्ण को देखने लगी (कि कहीं वे दिखायी देते हैं अथवा नहीं)। उसने कहा (माना)— विवाह-समय (मूहूर्त) निकट आ गया, तो भी यदुनायक नहीं आ पहुँचे हैं। ८९ आसन, शयन (शय्या), भोजन, पान (पानी पीना), अंजन, चन्दन, ताम्बूल (बीड़ा), फूल, क्रीड़ा-कौतुक, नृत्य, गायन उसे पूर्ण रूप से बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। १९० रुक्मिणी ने देह को भूमि पर लुढ़काया (वह लुढ़क गयी) और वह बोली, 'अरी, मुझे श्रीरंग दिखा दो। मुझे विषय-भोग अच्छे नहीं लगते। उन्हें देखते, मुझे उकताहट आती है (अरुचि अनुभव होने लगती है)। १९१ मुझे चन्दन अग्नि जैसा लगता है; पुष्पहार सर्प जैसा लगता है। बिना कृष्ण की प्राप्ति हुए, सुन्दर आभूषणों का मैं व्यर्थ ही क्या (उपयोग) करूँ ?'। ९२ उसकी आँखों से विशुद्ध (अश्रु-) जलधाराएँ बह रही थीं। वह बोली, 'अहो कृष्ण, अहो यादवेन्द्र, हे भक्तवत्सल, हे गोवर्धन-उद्धारक, आपने मेरी (इस प्रकार) उपेक्षा क्यों की ?'। ९३ तब उत्तम (शुभ) शकुन होने लगे। वाम-नेत्र फड़कने लगा; दाहिने बाहु का स्फुरण-स्पन्दन बार-बार होने लगा। ९४ कृष्ण की प्राप्ति का मुख्य (शुभ) लक्षण यह है। प्रकृति अर्थात स्त्री का (भाग्य-सूचक) देहभाग है वामनेत्र। उसकी बायीं आँख सम्पूर्ण फड़कने लगी। (अतः उसे जान पड़ा—) जगज्जीवन कृष्ण आएँगे। ९५ दाहिना बाहु तो केवल ज्ञान (स्वरूप) होता है। वहाँ (उसमें) विशेष (रूप से) स्फुरण होने लगा। (उसने माना—) यही कृष्ण-प्राप्ति का सूचक चिह्न है, यही साधकों के लिए दिव्य शकुन है। ९६ (इधर) वासुदेव कृष्ण सुदेव से बोले, अब आप दौड़ लगाइए (दौड़ते हुए जाइए)। मेरे मन का यह भाव रुक्मिणी को बता दीजिए कि वह कोई चिन्ता न करे'। ९७

रुक्मिणीसी सांगा अंतर्भाव। चिंता कांहीं न करावी। ९७ चिंतार्णवीं पडली वेल्हाळी। दुरोनि द्विज देखिला तये वेळीं। तों ब्राह्मणें बाही उभारिली। म्हणे वनमाळी आला वो। ९८ जहाज बुडतां कडे लागलें। कीं प्राण जातां अमृत जोडलें। तैसें रुक्मिणीसी वाटलें। हर्षे फुगलें सर्वांग। ९९ रुक्मिणी समोर धांवोन। धरिले सुदेवाचे चरण। म्हणे हें शरीर ओंवाळून। तुजवरून टाकावें। २०० तूं माझा सद्‌गुरु निश्चित। तुझेनि मज श्रीकृष्ण प्राप्त। तुज उत्तीर्ण व्हावया पदार्थ। कांही मज दिसेना। २०१ सुरतरु कामधेनु चिंतामणी। तुजवरूनि टाकीन ओंवाळूनी। पुढतीं मिठी घातली चरणीं। म्हणे धन्य त्रिभुवनीं तूं एक। २ सद्‌गद जाहला सुदेव। म्हणे धन्य भीमकी तुझा भाव। तुजकरितां मज वासुदेव। सखा झाला अभेद। ३ उपरी चढोनि भीमकी पाहे। तों गरुडध्वज झळकत आहे। सूर्यप्रभा उणी होये। ऐसा रथ तळपतसे। ४ भोंवतें यादवसैन्य अपार। दिसे जैसा क्षीरसमुद्र। मध्यें शेषशायी यदुवीर। रथासमवेत शोभतसे। ५ भीमकासी कळला समाचार। कीं उत्साह पहावया आला

(इधर) वह सुन्दरी चिन्ता रूपी सागर में पड़ी हुई थी। उस समय उसने ब्राह्मण को दूर से (दूर) देखा। तब उस ब्राह्मण ने हाथ उठाया और कहा, 'अहो वनमाली आ गये'। ९८ जहाज डूबते-डूबते किनारे लग गया हो, अथवा प्राणों के निकलते (समय) अमृत मिल गया हो —रुक्मिणी को ऐसा ही जान पड़ा। मारे हर्ष के उसकी समस्त देह फूल उठी। ९९ सामने (आगे) दौड़कर रुक्मिणी ने सुदेव के पाँव पकड़े और कहा, 'आप पर यह शरीर निछावर कर दें। २०० निश्चय ही आप मेरे सद्‌गुरु हैं। आपके कारण (द्वारा) मुझे श्रीकृष्ण प्राप्त हो रहे हैं। आपके ऋण से मुक्त होने के हेतु (आपको पुरस्कार रूप देने योग्य) कोई पदार्थ मुझे नहीं दिखायी दे रहा है। २०१ कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि रत्न को मैं आप पर निछावर कर डालूँगी।' फिर से वह उनके चरणों में लिपट गयी और बोली, 'आप एक (मात्र) त्रिभुवन में धन्य हैं'। २ (यह सुनकर) सुदेव बहुत गद्‌गद हो उठे और बोले, 'हे भीमकी, तुम्हारा (भक्ति-प्रेम) भाव धन्य है। तुम्हारे लिए (तुम्हारे निमित्त) वासुदेव कृष्ण मेरे अटूट (अभिन्न, एकात्म) सखा हो गये हैं'। ३ (अनन्तर) रुक्मिणी ने ऊँची अटारी पर चढ़कर देखा तो (उसे दिखायी दिया कि) गरुड़-ध्वज झलक रहा है। ऐसा रथ जगमगा रहा था कि (उसके सामने) सूर्य का तेज भी न्यूनता को प्राप्त हो रहा था (फीका पड़ रहा था)। ४ चारों ओर अपार यादव-सेना दिखायी दे रही थी कि जैसे क्षीरसमुद्र (उमड़कर आया) हो। (उसके) बीच में शेषशायी यदुवीर कृष्ण रथसहित शोभायमान थे। ५ यह समाचार भीमक को विदित हुआ कि

यादवेंद्र। सवें बळराम बंधु समग्र। निजभारेंसीं पातले। ६ ऐसें ऐकतां ते समयीं। ब्रह्मानंद दाटला हृदयीं। म्हणे मजएवढा सभाग्य नाहीं। होईल जांवई श्रीकृष्ण। ७ राजा चालिला समोर। तंतवितंतघनसुस्वर। चतुर्विध वाद्यांचे गजर। नादें निराळ दुमदुमलें। ८ आला ऐकूनि वनमाळी। राणी शुद्धमती आनंदली। म्हणे धन्य भीमकी वेल्हाळी। निज भाग्यें समर्थ। ९ आला ऐकोनि कृष्णनाथ। मागध चैद्य खळ समस्त। संतापले हृदयांत। म्हणती अनर्थ ओढवला। २१० रुक्मिया विटला मनांत। जैसा सभेसी येतां महापंडित। मूर्ख होती भयभीत। शब्द न फुटे बोलावया। २११ कीं देखोनियां राजहंस। चित्तीं संतापती वायस। कीं पंचानन येतां सावकाश। श्रृगालांसी सौख्य वाटेना। १२ देखोनि धार्मिकांची संपत्ती। दुर्जनांसी खेद वाटे चित्तीं। कीं देखोनि संतांच्या मूर्ती। निंदक विटती ज्यापरी। १३ कीं ऐकतां हरिनामघोष। भूतप्रेतांसी न वाटे सावकाश।

यादवेन्द्र कृष्ण उत्सव (स्वयंवर-समारोह) को देखने के लिए आये हैं, साथ में बन्धु बलराम अपनी समस्त सेना-सहित आ गये हैं। ६ ऐसा सुनते ही उस समय उनके हृदय में ब्रह्मानन्द व्याप्त हो गया। वे बोले (उन्हें जान पड़ा)— ' मुझ जैसा (मेरे समान) कोई भाग्यवान नहीं है, (जबकि) श्रीकृष्ण मेरे दामाद हो रहे हैं '। ७ राजा भीमक सामने (आगे) चल दिये। तन्त, वितन्त, घन और सुस्वर नामक चतुर्विध वाद्यों[1] का (सुस्वर) गर्जन होने लगा। उसकी ध्वनि से आकाश गूंज उठा। ८ ' वनमाली आये हैं ' —यह सुनकर रानी शुद्धमति आनन्दित हो उठी और बोली, ' भीमकी सुन्दरी धन्य है। वह अपने भाग्य से सामर्थ्यशाली है। ९ ' कृष्णनाथ आये ' —यह सुनकर मगधपति जरासन्ध और चेदिनरेश शिशुपाल जैसे समस्त खल पुरुष हृदय में क्रुद्ध हुए और बोले (उन्हें लगा)— ' विपत्ति आ पड़ी है '। २१० रुक्मी मन में म्लान और हतोत्साह हो गया। जिस प्रकार सभा में महापण्डित के आने पर मूर्ख भयभीत हो जाते हैं, और (उनके मुँह से) बोलने के लिए शब्द नहीं निकलता, अथवा राजहंस को देखकर कौए मन में झल्लाने लगते हैं, अथवा सिंह के शान्ति-पूर्वक आने पर (भी) सियारों को सुख (अच्छा) नहीं लगता; जिस प्रकार धर्मशील व्यक्तियों की सम्पत्ति को देखकर दुर्जनों को मन में खेद अनुभव होता है, अथवा जिस प्रकार सन्तों की मूर्तियों अर्थात सन्तों को प्रत्यक्ष देखकर निन्दकों को क्रोध के साथ अरुचि उत्पन्न हो जाती है, अथवा श्रीहरि के नाम का घोष सुनने पर भूत-प्रेतों को शान्ति नहीं अनुभव होती, उसी प्रकार यह सुनकर कि जगन्निवास श्रीकृष्ण आये हैं, खलजनों को

---

१ चतुर्विध वाद्य— देखिए टिप्पणी १, पृ० १६१, अध्याय १०।

तैसा आला ऐकोनि जगन्निवास। खेद खळांसी वाटला। १४ असो नगराबाहेर राव देखा। सामोरा गेला वैकुंठनायका। तों दृष्टीं देखिला निजसखा। प्रेमळांचा कैवारी। १५ अष्टभावें दाटोनि नृपवर। घातला साष्टांग नमस्कार। प्रीति जाणोनि रामयदुवीर। आलिंगावया पुढें जाहले। १६ साक्षात् शेषनारायण। अवतारपुरुष भेटले पूर्ण। केलें सीमांतपूजन। वस्त्रें भूषणें समर्पिलीं। १७ अंतरीं जाणोनि प्रीती। मूळाविण आला श्रीपती। तूं परात्पर सोयरा निश्चितीं। शब्दाहूनि वेगळा। १८ जानवसा देतां नगराभीतरी। तेथें न राहूं म्हणे कंसारी। मागध चैद्य आमुचे वैरी। दुष्टां दूरी असावें। १९ काम क्रोध मद मत्सर। साधक त्यांसी रक्षिती दूर। विवेकबळें त्यांचा संहार। करूनि विजयी मग होती। २२० तरी कौंडिण्यपुराबाहेरी। जाऊनि राहूं म्हणे कैटभारी। अंबिकापुरीं ये अवसरीं। ठाव आम्हांसी देइंजे। २२१ सांडोनि जागृति स्वप्न सुषुप्ती। तुर्याभूमीसी योगी राहती। तैसा अंबिकापुरीं श्रीपती।

खेद हुआ। २११-२१४ अस्तु। देखिए, नगर के बाहर राजा भीमक वैकुण्ठनायक कृष्ण की अगुवानी के लिए उनके सम्मुख गये, तो उन्होंने अपनी आँखों से भक्तिशील लोगों के अपने सखा तथा सहायक-समर्थक को देखा। १५ नृपवर भीमक ने अष्ट (सात्त्विक) भावों से व्याप्त होकर उन्हें साष्टांग नमस्कार किया, तो उनकी प्रीति को समझकर बलराम और कृष्ण उनका आलिंगन करने के लिए आगे बढ़ गये। १६ साक्षात शेष और नारायण के अवतार पुरुष (बलराम और श्रीकृष्ण) उनसे पूर्णतः (प्रत्यक्ष) मिले। अनन्तर उन्होंने सीमान्त-पूजन किया, उनको वस्त्र और आभूषण समर्पित किये। १७ (उन्होंने माना कि) मेरे अन्तःकरण के प्रेम को जानकर बिना आमंत्रण के श्रीपति (स्वयं) आ गये। (वे बोले—) 'आप निश्चय ही हमारे लिए परात्पर (सर्वोपरि) सगे-इष्टजन हैं, आप शब्दों के परे हैं'। १८ जनवासा नगर के भीतर कर देने लगते ही, कंसारि कृष्ण बोले, 'हम वहाँ न रहेंगे। मगधराज जरासन्ध और चेदिराज शिशुपाल हमारे वैरी हैं। दुष्टों से दूरी पर रहेंगे'। १९ काम, क्रोध, मद, मत्सर वैरी हैं; साधक उन्हें दूर रखकर ही उनसे अपनी रक्षा करते हैं। फिर वे विवेक-बल से उनका संहार करके विजयी हो जाते हैं। २२० अतः कैटभारि विष्णुस्वरूप कृष्ण ने कहा, 'हम कौण्डिण्यपुर के बाहर जाकर रहेंगे। हमें अम्बिकापुरी में (गौरी के मन्दिर में या उसके समीप) इस अवसर पर (रहने के लिए) स्थान प्रदान कीजिए'। २२१ जिस प्रकार जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति (अवस्थाओं) को छोड़कर योगी तुर्या अवस्था रूपी भूमि में रहते हैं, उसी प्रकार श्रीपति कृष्ण भीमक से बोले, 'हम अम्बिकापुर में रहेंगे'। २२ (इसपर)

राहों म्हणे भीमकातें। २२ राजा म्हणे श्रीकरधरा। नगरांतूनि मार्ग अंबिकापुरा। अवश्य म्हणोनि त्या अवसरा। द्वारकानाथ ऊठिला। २३ रथीं बैसला जगन्नायक। आपणाजवळीं बैसविला भीमक। दळभारें मिरवीत देख। नगरांतूनि चालिला। २४ पाहावया श्रीकृष्णवर। नगरजन धांवती समग्र। देखोनि श्रीकृष्णाचा मुखचंद्र। जननेत्रचकोर लुब्धले। २५ एक श्रवणाच्या राजबिदीसी आले। तेथूनि हरिरूप निर्धारिलें। एक कीर्तनाच्या उमाठीं ठाकले। प्रेमें हरिरूप विलोकिती। २६ एक स्मरणाच्या दारवंटा। उभे ठाकूनि लक्षिती वैकुंठा। एक चरणसेवेच्या चोहटा। यादवेंद्रा विलोकिती। २७ एक अर्चनाच्या ओसरीवरी। चढती वंदनाचे मंदिरीं। एक दास्यगवाक्षद्वारीं। तो कंसारी लक्षिती। २८ एक चढती सख्याचे शिडीवरी। एक आत्मनिवेदनाचे उपरी। एक अष्टांगयोगदामोदरीं। षट्चक्रां भेदूनि चढियेले। २९ शुद्धमती विलोकी कृष्णवदन। म्हणे कोटि काम सांडावे ओंवाळून। बोलती नगरींचे जन। रुक्मिणी जगज्जीवन जोडा

राजा भीमक बोले, 'हे श्रीकरधर, अम्बिकापुर के प्रति मार्ग नगर में से जाता है।' 'अवश्य' कहकर उस अवसर पर द्वारकानाथ उठ गये। २३ जगन्नायक कृष्ण रथ में बैठ गये। उन्होंने भीमक को अपने पास बैठा लिया। देखिए, वे ठाटबाट से सेना-सहित घूमते हुए नगर में से (आगे) चले गये। २४ वर श्रीकृष्ण को देखने के लिए समस्त नगर-जन दौड़े। श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र को देखकर लोगों के नेत्र रूपी चकोर लुब्ध हो उठे। २५ कुछ एक श्रवण[1] रूपी राजमार्ग पर आये और वहाँ से उन्होंने श्रीहरि के रूप को (सुनकर ही उसका स्वरूप) निर्धारित किया, तो कुछ एक कीर्तन के द्वार खड़े रहे और (वहाँ से) प्रेम से श्रीहरि के रूप का अवलोकन करने लगे। २६ कुछ एक स्मरण की देहली पर खड़े रहकर वैकुण्ठपति को देखने लगे। कुछ एक चरण-सेवा के चौराहे पर से यादवेन्द्र कृष्ण को देखने लगे। २७ कुछ एक अर्चन (पूजन) के ओसारे (बरामदे) से उन्हें देखने लगे; कुछ एक वन्दन के मन्दिर में चढ़ गये; कुछ एक दास्य रूपी गवाक्ष द्वार से उन कंसारि श्रीकृष्ण को देखने लगे। २८ कुछ एक सख्य की निसेनी पर, कुछ एक आत्मनिवेदन की अटारी पर, तो कुछ एक अष्टांगयोग[2] के मन्दिर में षट्चक्रों[3] को भेदकर चढ़ गये। २९ रानी शुद्धमति ने श्रीकृष्ण के वदन को देखा और कहा (माना)— 'कोटि (-कोटि) कामदेव इन पर निछावर कर दें।' नगर के लोग बोले,

१ यहाँ श्रवण इत्यादि अष्टविधा भक्ति का उल्लेख है। विभिन्न लोग श्रीकृष्ण के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार भक्तिभाव से आकृष्ट हुए।

२ अष्टांगयोग— देखिए टिप्पणी १, पृ० १५६, अध्याय ५।

३ षट्चक्र— देखिए टिप्पणी ८, पृ० १५८, अध्याय ५।

असे। २३० अंबिकापुरीं ते वेळां। निजभारेंसीं राहिला सांवळा। भीमकें पाहुणेर सोहळा। सर्व सामग्री पुरविली। २३१ चैद्य मागध खळां समस्तां। रुक्मिया सांगे निजगुजवार्ता। कृष्णाकडे आमुचा जनिता। जाहली माता तिकडेचि। ३२ समय दिसतो परम कठिण। कृष्ण कपटी घातकी पूर्ण। तुम्हीं दळभार सिद्ध करून। अतिसावधान असावें। ३३ लग्न लागलियावरी। यादव निवटूं क्षणाभीतरी। ऐसें बोलोनि झडकरी। निजमंदिरा पातला। ३४ रुक्मिया म्हणे ते वेळीं। लग्नघटिका जवळी आली। पूजासामग्री सिद्ध केली। वर आणावया कारणें। ३५ तरी आतां सत्वर नृपवरा। चला आणूं शिशुपाल नवरा। तों शुद्धमती म्हणे अवधारा। कुळाचार विसरलेती। ३६ आधीं भीमकीसी नेऊन। करवावें अंबिकापूजन। मग लागेल जी सुलग्न। विधि संपूर्ण ऐसा आहे। ३७ रुक्मिया म्हणे लग्न लावूनियां। मग कन्या नेऊं अंबालया। राजा म्हणे कुळधर्म टाकोनियां। विधि केवीं करावा। ३८ रुक्मिया म्हणे जगदंबापुरीं। परम कपटी यादवेंसीं हरी। हिरोनि नेईल सगुण कुमारी। मग काय करावें। ३९ राजा म्हणे

'रुक्मिणी और जगज्जीवन कृष्ण की (अनुरूप) जोड़ी है'। २३० उस समय श्याम कृष्ण अम्बिकापुरी में अपनी सेना-सहित ठहर गये। (वहीं पर उनके लिए) राजा भीमक ने आतिथ्य-सत्कार-समारोह सम्पन्न करते हुए समस्त सामग्री का सम्पूर्तन किया। २३१ (इधर) रुक्मी ने चेदिराज शिशुपाल, मगधराज जरासन्ध तथा समस्त खल जनों को अपने मन की बात बता दी— हमारे पिता कृष्ण के पक्ष में मिल गये; माता उधर की हो गयी। ३२ यह समय परम कठिन दिखायी देता है; कृष्ण तो पूर्णतः कपटी और घातक (हत्यारा) है। तुम सेनादल को सुसज्जित करके अति सावधान रह जाओ। ३३ विवाह हो जाने पर हम क्षण के भीतर यादवों को समाप्त कर देंगे।' —ऐसा बोलकर वह शीघ्रतापूर्वक अपने प्रासाद चला गया। ३४ उस समय रुक्मी बोला, 'लग्न-घटिका (मुहूर्त) निकट आ गया है; पूजन की सामग्री वर को ले आने के लिए सिद्ध की है। ३५ अतः हे नृपवर, अब झट से चलिए, दूल्हे शिशुपाल को ले आएँगे।' तो शुद्धमति बोली, 'सुनो, कुलाचार को भूल गये हो। ३६ पहले रुक्मिणी को ले जाकर (उससे) गौरी-पूजन करवा दें। तब शुभ विवाह हो जाएगा। सम्पूर्ण विधि ऐसी है'। ३७ (इसपर) रुक्मी बोला, 'विवाह कराकर अनन्तर कन्या को अम्बिका (गौरी) के मन्दिर में ले जाएँगे।' (यह सुनकर) राजा भीमक बोले, 'कुलधर्म छोड़कर (विवाह) विधि कैसे सम्पन्न करें'। ३८ तो रुक्मी बोला, 'जगदम्बापुरी में यादवों-सहित परम कपटी श्रीकृष्ण है। वह गुणवती कुमारी (रुक्मिणी) को छीनकर (हरण करके) ले जाएगा, तब क्या करें'। ३९

तूं षंढ। नव्हेसी पुरुषार्थी प्रचंड। नसतीच करिसी बडबड। शक्तिहीन अभागी तूं। २४० ऐसा हिणविला भीमकें। रुक्मिया बोले अतितवकें। आतांचि पुरुषार्थ माझा देखें। रुक्मिणी नेतों अंबालया। २४१ कृष्णासहित यादववीर। करीन अवघ्यांचा संहार। सिद्ध केले दळभार। उदितशस्त्रें अवघेही। ४२ चैद्यमागधांचे दळभार। रुक्मिया आणवी समग्र। मायेसी पूजावया सत्वर। आदिमाया चालिली। ४३ चरणचालीं निघाली रुक्मिणी। सवें सखिया जिवलग सांगातिणी। मन समर्पित यदुकुळभूषणीं। हंसगती जातसे। ४४ लक्षानुलक्ष महावीर। शस्त्रें नग्न करूनि समग्र। व्यूह रचिला परिकर। भीमकीभोंवता तेधवां। ४५ धनुर्धरांचे असंख्य भार। खिळिले भोंवते महाकुंजर। महारथी उद्भट वीर। त्यांभोंवते रक्षिती। ४६ उल्हाटयंत्रांचे भडिमार। त्यांभोंवते चालती दुर्धर। सैन्य दिसे यंत्राकार। मध्यपीठ रुक्मिणी। ४७ ऐसी रक्षीत अंबिकेजवळी। आणली तेव्हां भीमकबाळी। देउळामाजी प्रवेशली। सखियां समवेत तेधवां। ४८ मग षोडशोपचारेंकरूनी। देवीस पूजित रुक्मिणी। शेवटीं पुष्पांजळी वाहोनी।

राजा भीमक बोले, ‘ तुम षण्ढ हो, तुम बहुत बड़े प्रतापी (वीर) नहीं हो। तुम अनचाही (व्यर्थ) बकवास कर रहे हो। तुम शक्तिहीन— अभागे हो ’। २४० जब भीमक ने इस प्रकार (नीचा दिखाते हुए) लज्जित कर दिया, तो रुक्मी अति आवेशपूर्वक बोला, ‘ अभी मेरा शौर्य देखिए— मैं रुक्मिणी को गौरी-मन्दिर में ले जाता हूँ। २४१ मैं कृष्ण-सहित समस्त यादव वीरों का संहार कर डालूंगा। मैंने सेना को सिद्ध किया है; वे सभी (सैनिक) शस्त्र सज्ज किये हुए हैं ’। ४२ (तदनन्तर) चेदिराज और मगधराज के समस्त सेनादलों को रुक्मी लिवा लाया। (फिर) गौरी माता का पूजन करने के लिए आदिमाया (स्वरूपा रुक्मिणी) झट से चल पड़ी। ४३ रुक्मिणी पैदल ही निकली। उसके साथ में घनिष्ट सखियाँ-सहेलियाँ थीं। उसने यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण को अपना मन समर्पित किया था। वह हंस की-सी गति से जा रही थी। ४४ उस समय लाख-लाख महावीरों ने समग्र शस्त्र नंगे करके रुक्मिणी के चारों ओर सुन्दर व्यूह की रचना की। ४५ धनुर्धरों के असंख्य दल थे। चारों ओर महान हाथी (हस्तिदल के सैनिक) डटे हुए थे। उसके चारों ओर से महारथी उद्भट बीर रक्षा कर रहे थे। ४६ उनके चारों ओर तोपों की भारी दुर्धर मार चल रही थी। सेना यंत्राकार (विशिष्ट व्यूह में) रचित थी। उसके मध्य भाग में रुक्मिणी थी। ४७ इस प्रकार रक्षा करते हुए वे तब रुक्मिणी को अम्बिका (गौरी) के समीप लाये। उस समय वह सखियों-सहित (देवी के) मन्दिर में प्रविष्ट हो गयी। ४८ अनन्तर रुक्मिणी ने

मग मौन विसर्जिलें । ४९ उभी ठाकली रुक्मिणी बाळा । हस्तकमळ जोडी आदिकमळा । लक्षूनि देवीच्या वदनकमळा । स्तवन वेल्हाळी करीतसे । २५० जय जय आदिकुमारिके । जय जय मूळपीठनायिके । सकळकल्याणसौभाग्यदायिके । जगदंबिके मूळप्रकृति । २५१ जय जय भार्गवप्रियभवानी । भयनाशके भक्तवरदायिनी । सुभद्रकारिके हिमनगनंदिनी । त्रिपुरसुंदरी महामाये । ५२ जय आनंदकासारमरालिके । जय चातुर्यचंपककलिके । जय शुंभनिशुंभदैत्यांतके । सर्वव्यापके मृडानी । ५३ जय शिवमानसकनकलतिके । पद्मनयने दुरितवनपावके । जय त्रिविधतापभवमोचके । निजजनपालके अपर्णे । ५४ तव मुखशोभा देखोनी । विधुबिंब गेलें विरोनी ।

सोलह उपचारों[1] से देवी का पूजन किया । अन्त में पुष्पांजलि समर्पित करने के पश्चात उसने मौन छोड़ दिया । ४९ रुक्मिणी बाला खड़ी हो गयी । उस आदिलक्ष्मी (आदिमाया) ने हाथ जोड़े । (फिर) उस देवी के मुखकमल को देखते हुए वह स्तुति करने लगी । २५० 'हे आदिकुमारिका, जय हो, जय हो । हे मूलपीठनायिका, जय हो, जय हो । हे सकलकल्याणसौभाग्यदायिका, हे जगदम्बिका, हे मूलप्रकृति, (जय हो, जय हो) । २५१ हे भार्गवप्रियभवानी[2], हे भयनाशका, हे भक्तवरदायिनी, हे सुभद्रकारिका, हे हिमालयनन्दिनी, हे त्रिपुरसुन्दरी, हे महामाया, जय हो, जय हो । ५२ हे आनन्द रूपी जलाशय में निवास करनेवाली हंसी, जय हो । हे चातुर्यचम्पक-कलिका, जय हो । हे शुम्भ-निशुम्भ[3] नामक दैत्यों का संहार करनेवाली, हे सर्वव्यापका, हे मृड़ानी (पार्वती), जय हो, जय हो । ५३ हे शिवमानस-कनकलतिका, हे पद्मनयना, हे पाप अथवा दुष्कर्म रूपी वन को जलानेवाली अग्नि, जय हो । हे त्रिविध तापों से तथा संसार से मुक्त करनेवाली, हे अपने भक्तों का पालन करनेवाली, हे अपर्णा (पार्वती), जय हो । ५४ तुम्हारे मुख की शोभा (सुन्दरता) को देखकर चन्द्रबिम्ब दुःखी हो गया (दुःख से निस्तेज हो गया) । तुमने ब्रह्मा आदि तीनों देव-स्वरूप बालकों को आत्मानन्द

---

१ सोलह उपचार पूजन के— आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और मंत्रपुष्प ।

२ भार्गवप्रियभवानी— 'भार्गव' शिवजी की उपाधियों में से एक है । इस दृष्टि से 'भार्गवप्रिय (प्रिया)' से पार्वती, भवानी, उमा या अम्बा सूचित है । अप्रत्यक्ष रूप से कवि ने 'भार्गव-प्रिय' शब्द से 'रेणुका देवी' की ओर संकेत किया है, जो कवि की कुलस्वामिनी देवी है । 'भार्गव' अर्थात 'परशुराम' । अतः परशुराम की प्रिय माता 'रेणुका' अथवा भार्गव अर्थात भगुकुलोत्पन्न 'जमदग्नि' । अतः जमदग्नि की प्रिय स्त्री— 'रेणुका' ।

३ शुम्भ-निशुम्भ : देखिए टिप्पणी २, पृ० ३२४, अध्याय १४ ।

ब्रह्मादि देव बाळें तीन्ही। स्वानंदसदनीं निजविलीं। ५५ जीव शिव दोन्ही बाळकें। अंबे तुवां निर्मिलीं कौतुकें। जीव तुझें स्वरूप नोळखे। म्हणोनि पडिला आवर्तीं। ५६ शिव तुझें स्मरणीं सावचित्त। म्हणोनि तो अंबे नित्यमुक्त। ब्रह्मानंदपद हाता येत। कृपेनें तुझ्या जननीये। ५७ मेळवूनि पंचभूतांचा मेळ। तुवां रचिला ब्रह्मांडगोळ। इच्छा परततां तत्काळ। क्षणें निर्मूळ करिसी हें। ५८ अंबे हेंचि मागतें तुजप्रती। मज सत्वर वरू तो श्रीपती। नीलोत्पलमाला अवचितीं। अंबेनें हातीं दीधली। ५९ हेचि नीलोत्पलमाला घेऊनी। नीलोत्पलदलवर्ण वरीं ये क्षणीं। वचनासरसी रुक्मिणी। माथा चरणीं ठेविला। २६० निघोनि देवळाबाहेरी। सभोंवती तेव्हां प्रदक्षिणा करी। भोंवतें पाहे सुंदरी। तों सेना अपार रक्षीतसे। २६१ हंसगती चाले धरणीं। नूपुरें रुणझुणती चरणीं। वस्त्रें नेसली कनकवर्णी। जैसी सौदामिनी अंबरीं हो। ६२ मुक्तलगसुबद्ध कांचोळी। कंठभूषणें रुळती एकावळी। अवतारमुद्रिका दशांगुळीं। झळकताती दिव्यतेजें। ६३

के सदन में सुला दिया। ५५ हे अम्बा, तुमने जीव और शिव —दोनों बालकों को उत्पन्न किया। (इनमें से) जीव तुम्हारे स्वरूप को नहीं पहचानता-जानता; इसलिए वह आवर्त (भँवर) में पड़ गया। ५६ तुम्हारा स्मरण करते रहने में शिव सावधान है, अतः हे अम्बा, वह नित्य मुक्त है। हे जननी, तुम्हारी कृपा से ब्रह्मानन्द पद (आनन्दस्वरूप ब्रह्मपद, मुक्ति पद) हाथ आ जाता है। ५७ पंच महाभूतों का समूह इकट्ठा करके तुमने ब्रह्माण्ड गोल की रचना की। (फिर भी) इच्छा के लौटते अर्थात बदल जाते ही तुम इसे तत्काल क्षण में निर्मूल (जड़-मूल-सहित नष्ट) कर डालती हो। ५८ हे अम्बा, मैं तुमसे यही (वर) माँगती हूँ— वे श्रीपति (श्रीकृष्ण) शीघ्र ही मेरा वरण करें।' तो अकस्मात अम्बा ने नीलकमलों की माला उसके हाथों में (रख) दी। ५९ (उसने कहा—) 'यही नीलकमलों की माला लेकर तुम इस क्षण नीलकमलदल-सदृश वर्णवाले श्रीकृष्ण का वरण करो।' —इस उक्ति को सुनते ही रुक्मिणी ने (देवी के) चरणों में सिर रखा (नवाया)। २६० तब मन्दिर के बाहर निकलकर उसने उसके चारों ओर परिक्रमा की। उस सुन्दरी ने चारों ओर देखा तो (दिखायी दिया कि) अपार सेना रक्षा कर रही है। २६१ वह हंस की-सी गति से धरती पर चल रही थी, तो पाँवों में बँधे नूपुर रुनझुना रहे थे। वह स्वर्णवर्ण के वस्त्र पहनी हुई थी, जैसे आकाश में बिजली ही हो। ६२ उसने मोतियों की लड़ी अच्छी तरह से बाँधी हुई कंचुकी (पहनी) थी। इकलड़ा हार, (तथा अन्य) कण्ठ-भूषण (गले में पहने आभूषण) झूलते हुए शोभायमान थे। दसों अँगुलियों में अवतार चित्रों को अंकित की हुई अँगूठियाँ दिव्य तेज से जगमगाती

विशाळपद्मनयनी। जैसा उडुगणपति आणि दिनमणी। तैसीं ताटंकें दिव्य कर्णीं। मुक्तघोंस डोलती। ६४ चपळसुपाणी नासिकीं मुक्त। नेत्रीं दिव्यांजन ओप देत। शिरीं मुक्तजाळी मिरवत। चंद्रसूर्य झळकती वरी। ६५ दिव्य कुंकुम विलसे भाळीं। असो ते कोणा वर्णवे वेल्हाळी। चैद्यमागधवीरीं सकळी। देखिली बाळी भीमकाची। ६६ स्वरूपें लावण्यसुंदरी। कामास्त्र घातलें सर्वांवरी। मूर्च्छा येऊनि पडती धरेवरी। पंचबाणें विव्हळ। ६७ कामें गेले विव्हळ होऊनी। हातींचीं शस्त्रें पडलीं गळोनी। तों रथीं सिद्ध असे चक्रपाणी। यादवभारांसमवेत। ६८ दुरोनि देखिली रुक्मिणी। दारुकें रथ लोटिला ते क्षणीं। निमिष न लागतां चक्रपाणी। भीमकीजवळी पातला। ६९ सावध पाहे भीमकबाळी। घनश्यामें स्वहस्तें तत्काळीं। उचलोनि घेतली वेल्हाळी। रथावरी क्षणमात्रें। २७० हर्षें घाबरी रुक्मिणी ते वेळां। करींची जे कां नीलोत्पलमाळा। घातली घननीळाचे गळां। चरणीं ठेविलें

थीं। ६३ उसकी आँखें विशाल कमलों-सी थीं। जैसे आकाश में चन्द्र और सूर्य हों, वैसे कानों में दिव्य ताटंक तथा मोतियों के गुच्छे थे; मोतियों के गुच्छे झूमते थे। ६४ नाक में विद्युत् जैसे पानीदार (तेजस्वी) मोती थे। आँखों में दिव्य अंजन कान्ति प्रदान कर रहा था। सिर पर मोतियों की जालियाँ ठाटबाट से शोभायमान थीं। (मानो उसपर) चन्द्र और सूर्य जगमगा रहे थे। ६५ भाल पर दिव्य कुंकुम तिलक शोभायमान था। अस्तु। किसके द्वारा उस सुन्दरी का वर्णन किया जा सकेगा? चेदि और मगध के समस्त वीरों ने भीमक की कन्या को (इस रूप में) देखा। ६६ उस लावण्यवती सुन्दरी ने अपने रूप से सब पर कामास्त्र चला दिया (सबके मन में, फलस्वरूप, कामभाव प्रज्वलित हो उठा)। कामदेव के पंच बाणों[1] से आहत होकर (कामदेव के प्रभाव से) वे विह्वल होते हुए मूर्च्छा आने से धरती पर गिर पड़े। ६७ वे काम-भाव से विह्वल हो गये। उनके हाथ के शस्त्र गिर पड़े। तब चक्रपाणि कृष्ण (उधर) यादवदल-सहित रथ में सिद्ध थे। ६८ (जब) रुक्मिणी को दूर से देखा, तो दारुक ने उस क्षण रथ को दौड़ाया। पल न लगते चक्रपाणि श्रीकृष्ण रुक्मिणी के पास पहुँच गये। ६९ भीमक कन्या रुक्मिणी सतर्कता के साथ यह देख रही थी; तो घनश्याम श्रीकृष्ण ने तत्काल उस सुन्दरी को अपने हाथों से उठाकर क्षणमात्र में रथ में (बैठा) लिया। २७० उस समय रुक्मिणी हर्ष से (हर्ष होने पर भी कुछ) सहमी हुई थी। हाथ में जो नीलकमलों की माला थी, उसे उसने घननील श्रीकृष्ण के गले में पहना दिया और उनके चरणों में अपना मस्तक रखा। २७१

---

१ कामदेव के पंचबाण– देखिए टिप्पणी १, पृ० ३३१, अध्याय ११। कामदेव को 'पंचबाण' भी कहते हैं।

निजमस्तक। २७१ कृष्णें मस्तकीं ठेविला हस्त। दिनपति लग्नघटीं विलोकीत। देवगुरु मंगलाष्टकें म्हणत। पुष्पें वर्षत सुरपति। ७२ ओंपुण्याहं म्हणे कमळासन। असो हरि गेला रुक्मिणी घेऊन। यादवदळेंसीं जगज्जीवन। द्वारकेकडे मुरडला। ७३ हर्षें नाचत नारदमुनी। कृष्णें बरी हरिली रुक्मिणी। आतां युद्ध होईल ये धरणीं। प्रेतें पडतील अपार। ७४ हरिविजय ग्रंथ थोर। मंगलदायक रुक्मिणीस्वयंवर। तो हा तेविसावा अध्याय सुंदर। सर्वशुभकारक। ७५ श्रोतीं पुढें ऐकावें सावधान। यादवमागधां होईल युद्धकंदन। मूळमाधवीं रुक्मिणीचें लग्न। यथासांग होईल। ७६ हें रुक्मिणीस्वयंवर ऐकतां। हरे सगळ संकटव्यथा। सकळमंगळकारक तत्त्वतां। त्रिकाळ पढतां बहु पुण्य। ७७ ब्रह्मानंदा ज्ञानसमुद्रा। श्रीधरवरदा निर्विकारा। रुक्मिणीवल्लभा भीमातटविहारा। दिगंबरा आदिपुरुषा। ७८ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। प्रेमळ परिसोत भाविक भक्त। त्रयोविंशतितमाध्याय गोड हा। २७९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

तो कृष्ण ने उसके मस्तक पर हाथ रखा। सूर्य लग्न-घटिका (मुहूर्त, वेला) देख रहा था। देवगुरु बृहस्पति ने मंगलाष्टक गीत गाये। इन्द्र ने फूल बरसा दिये। ७२ ब्रह्मा ने 'ॐ पुण्याहम्' मंत्र पढ़ा। अस्तु। (अनन्तर) श्रीहरि रुक्मिणी को लेकर गये। यादवदलों-सहित जगज्जीवन कृष्ण द्वारका की ओर मुड़ गये। ७३ नारदमुनि हर्ष से नाच रहे थे। कृष्ण ने ठीक ही रुक्मिणी का हरण किया। अब (इसके फलस्वरूप) इस भूमि पर युद्ध होगा। असंख्य (वीर मारे जाकर) शव गिर पड़ेंगे। २७४

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ महान है। जिसमें मंगल-कारक रुक्मिणी-स्वयंवर (वर्णित) है, वह यह तेईसवाँ अध्याय सुन्दर तथा सर्व शुभकारी है। २७५ श्रोता सावधान होकर आगे सुनें। यादवों-मागधों के बीच प्राणान्तिक (बहुत संहार करनेवाला) युद्ध होगा। मूल माधव क्षेत्र में रुक्मिणी का विवाह यथासांग (अंग-उपांगों सहित विधि के अनुसार) सम्पन्न हो जाएगा। ७६ यह रुक्मिणी-स्वयंवर (आख्यान) सुनने से समस्त संकटों तथा व्यथाओं का हरण हो जाता है। यह सचमुच समस्त मंगलों का कर्ता है। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल —इन तीनों कालों में इसे पढ़ने पर बहुत पुण्य (प्राप्त) हो जाता है। ७७ हे (गुरु) ब्रह्मानन्द (स्वरूप आनन्दस्वरूप ब्रह्म), हे ज्ञानसमुद्र, हे श्रीधर के लिए वरदान देनेवाले, हे निर्विकार (ब्रह्म), हे रुक्मिणी-वल्लभ, हे भीमा नदी के तट पर विहार करनेवाले, हे दिगम्बर, (= विट्ठल) हे आदिपुरुष ! २७८

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेममय, श्रद्धालु भक्त उसके इस तेईसवें मधुर अध्याय का श्रवण करें ॥ २७९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२४

[शिशुपाल और जरासन्ध की पराजय और कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह]

श्रीगणेशाय नमः ॥ ज्याचा पार नेणती मुनी। जो कां वर्णिजे वेदपुराणीं। तो पुराणपुरुष चक्रपाणी। घेऊनि रुक्मिणी गेला हो। १ जो अपारसंसारभयमोचन। जो कां सुरकार्यालागीं सगुण। करावया भूभार हरण। पूर्णब्रह्म अवतरला। २ तेविसावे अध्यायीं कथा शेवटीं। रुक्मिणी घेऊनि गेला जगजेठी। वीर सावध पाहती दृष्टीं। तंव तेथें रुक्मिणी दिसेना। ३ जैसा शरीर सांडूनि जाय प्राण। परी नेणती भोंवते जन। तैसी श्रीकृष्णें रुक्मिण। नेली सर्वांदेखतां। ४ घाबरले वीर ते क्षणीं। सख्यांसी पुसती कोठें रुक्मिणी। त्या गदगदां हांसती नितंबिनी। हिणवोनियां बोलती। ५ इतुके तुम्ही रक्षिलां वीर। शस्त्रें नग्न करोनि समग्र। नोवरी

श्रीगणेशाय नमः। वे पुराणपुरुष चक्रपाणि भगवान कृष्ण रुक्मिणी को लेकर चले गये, जिनके पार (अन्त, थाह, बड़प्पन की चरम सीमा) को मुनि (तक) नहीं जानते, जो वेदों और पुराणों द्वारा वर्णित हैं, जो संसार के अपार भय से (भक्तों को) मुक्त करनेवाले हैं, जो (दुष्कृतों के संहार जैसे) देवों के कार्य को सम्पन्न करने के हेतु, पृथ्वी का (पाप रूपी) भार उतारने के हेतु स्वयं पूर्णब्रह्म सगुण रूप से अवतरित हैं। १-२ तेईसवें अध्याय के अन्त में कथा (यहाँ तक कही गयी) है— जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर चले गये और जब वीर पुरुष (कामास्त्र के प्रभाव के दूर होने पर) सचेत होकर देखने लगे, तो (उनको) वहाँ रुक्मिणी नहीं दिखायी दी। ३ जिस प्रकार प्राण शरीर को छोड़कर (निकल) जाते हैं, फिर भी चारों ओर के लोग उसे नहीं जानते (देख सकते), उसी प्रकार सबके देखते रहते (सबकी आँखों के सामने), श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले गये (फिर भी वह किसी की समझ में नहीं आया)। ४ वे वीर उस क्षण घबड़ा उठे। उन्होंने (रुक्मिणी की) सखियों से पूछा कि रुक्मिणी कहाँ है ? तो वे नारियाँ खिल-खिलाकर हँसने लगीं। फिर वे उन्हें नीचा दिखाते हुए बोलीं। ५ 'तुम इतने वीर समग्र शस्त्रों को नंगा करके उसकी रखवाली कर रहे थे, (फिर भी) एक वीर पुरुष

घेऊनि गेला एक वीर। ऐका चिन्हें तयाचीं। ६ एक पुरुष आला घनश्यामवर्ण। मित्रप्रभेसारिखा ज्याचा स्यंदन। वरी फडके गरुडध्वज पूर्ण। कल्पांतचपळेसारिखा। ७ निमासुर वदन सुंदर। कांसे पिवळा असे पीतांबर। कंठीं वैजयंती मनोहर। तेणें सुंदरी नेली आतां। ८ मुकुट कुंडलें सरळ नासिक। कपाळीं मृगमदाचा टिळक। सर्वानंदसदन ज्याचें मुख। तेणें सुंदरी नेली आतां। ९ शंख चक्र गदा पद्म। चारी आयुधें उत्तमोत्तम। ज्यावरूनि ओंवाळावे कोटि काम। तेणें रुक्मिणी नेली आतां। १० ऐसें ऐकतांचि उत्तर। जाहला एकचि हाहाकार। म्हणती राजकन्या सुंदर। गोरक्षक घेऊनि पळाला। ११ जैसा फुटे कल्पांतींचा समुद्र। तैसे उठावले मागधवीर। रणतुरें खाखाइलीं अपार। उभे म्हणती परवीरां। १२ सिंहनादें गर्जती वीर। ऐकतां मुरडले यादवभार। हलधर आणि श्रीकरधर। रथ मुरडिती सवेग। १३ पायदळावरी पायदळ। मिसळतां जाहला हलकल्लोळ। उसणे घाईं वीर सकळ। हाणिताती परस्परें। १४

दुलहन को लेकर चला गया। उसके लक्षण (परिचय-चिह्न) सुन लो। ६ एक घनश्याम वर्णवाला पुरुष आ गया, जिसका रथ सूर्य के तेज जैसे तेज से युक्त है। उसपर पूर्णतः कल्पान्त (महाप्रलय) काल की बिजली जैसा (जगमगानेवाला) गरुड़ध्वज फहर रहा है। ७ उसका वदन सुन्दर, लावण्ययुक्त (सलोना) है; कटि में पीला पीताम्बर (धारण किया हुआ) है। गले में मनोहारी वैजयन्ती माला (पहनी हुई) है। वह अभी (-अभी) उस सुन्दरी को ले गया। ८ जिसके सिर पर मुकुट है, कानों में कुण्डल हैं, जिसकी नाक सीधी है, जिसके भाल पर कस्तूरी का तिलक है, जिसका मुख (मानो) समस्त आनन्द का (साक्षात) सदन है, वह अभी उस सुन्दरी को ले गया। ९ जिसके हाथों में शंख, चक्र, गदा और कमल —ये चारों उत्तमोत्तम आयुध हैं, जिसपर कोटि (-कोटि) कामदेव निछावर कर दें, वह अभी रुक्मिणी को ले गया'। १० ऐसा उत्तर सुनते ही अपूर्व-अद्‌भुत (बेजोड़) हाहाकार मच गया। वे बोले, 'उस सुन्दर राजकन्या को एक चरवाहा लेकर भाग गया'। ११ जिस प्रकार कल्पान्त काल में (प्रलयकारी) समुद्र उमड़ जाता हो, उसी प्रकार (क्षुब्ध होकर) मागध वीर उठकर तैयार हो गये। उन्होंने असंख्य रणतूर्य गड़गड़ाहट के साथ बजा दिये। वे पर-सेना के वीरों से बोले, 'खड़े रहो (रुक जाओ)'। १२ वीर (योद्धा) सिंहनाद करते हुए गरजने लगे। उसे सुनते ही यादव सेना लौटने के लिए मुड़ गयी। हलधर बलराम और श्रीपति कृष्ण ने रथ को वेगपूर्वक घुमा लिया। १३ पदाली दल पर पदाली दल के (टूट पड़ते हुए) एक-दूसरे में मिल जाने पर भयानक कोलाहल-हाहाकार मच गया। लड़ाई में समस्त वीर मानो ऋण चुकाने के लिए

सुपर्णासमान चपळ घोडे। राऊत मिसळले वेगाढे। असिलता झळकती विजूबेनि पाडें। वाहिले मेढे महावीरीं। १५ घायें हाणिती महावीर। वीरें वीर पडती सत्वर। न विचारिती आपपर। करीत संहार चालिले। १६ हस्तीवरी हस्ती लोटिती। रथांशीं रथ झगटती। जैशा जलदधारा वर्षती। तैसे येती बाण वेगें। १७ जाहलें एकचि घनचक्र। रणधुमाळी माजली थोर। उल्हाटयंत्रांचे भडिमार। धराधर गजबजिला। १८ रक्तगंगा चालिल्या महापूरें। वाहती रथ गजकलेवरें। यादववीर महाघोरें। दाटले तिहीं क्षणभरी। १९ ऐसें देखोनि बळिभद्रें। रथ पुढें लोटिला बळसागरें। यादव भिडती परम निकरें। शिरें परवीरांचीं उडविती। २० कंदुकांऐसीं शिरें उडती। मुखें घ्या घ्या हेंचि बोलती। रणीं कबंध नाचती। शस्त्रें घेऊनि सैरावैरा। २१ नांगर मुसळ घेऊनि हातीं। कृष्णाग्रज उडी घाली रथाखालतीं। शृगालांमाजी भद्रजाती। रेवतीपति तैसा दिसे। २२ देखोनि चैद्य धांविन्नले सवेग। नांवें अंग वंग कलिंग। वक्रदंत शाल्व

एक-दूसरे पर आघात करने लगे। घोड़े गरुड़ के समान चपल थे। वेगवान सवार (एक-दूसरे पक्ष की सेना में) घुल-मिल गये। तलवारें बिजली के समान चमक रही थीं। महावीरों ने धनुष धारण किये थे। १४-१५ वे महावीर प्रहार करते हुए (एक-दूसरे को) मार रहे थे। वीरों से झट से (आघात होने पर) वीर गिरते थे। वे अपने-पराये का विचार नहीं करते थे। वे संहार करते जा रहे थे। १६ हाथियों पर हाथी लपक रहे थे। रथों से रथ छूते-घसीटते जा रहे थे (भिड़ रहे थे)। जिस प्रकार जलधाराएँ बरसती हैं, उसी प्रकार वेग के साथ बाण आ रहे थे। १७ अद्भुत बेजोड़ घमासान युद्ध हो रहा था। बड़ी घोर लड़ाई हो रही थी। तोपों की (भीषण) मार चल रही थी। उससे (पृथ्वी को सिर पर धारण करनेवाला) शेष (तक) भयभीत हो उठा। १८ रक्त की नदियाँ बड़ी बाढ़ से युक्त होकर बह रही थीं। उनमें रथ और हाथियों के शरीर बहते जा रहे थे। यादव वीर क्षण भर के लिए महान चिन्ता से व्याप्त हो गये। १९ ऐसा देखकर बलसागर बलराम ने रथ को आगे वेगपूर्वक हाँक दिया। यादव (शत्रुपक्ष के योद्धाओं से) परम बलपूर्वक भिड़ गये। वे विपक्ष के वीरों के सिर (काटकर) उड़ाने लगे। २० गेंदों जैसे सिर उड़ते-उछलते थे। वे (कटने पर भी) मुख से 'लो', 'लो'—यही बोल रहे थे। रणभूमि में कबन्ध शस्त्र लिये हुए चारों ओर मनचाहे बेतहाशा नाचते थे। २१ तो हाथों में हल और मूसल लेकर कृष्णाग्रज बलराम रथ से नीचे कूद पड़े। (तब) रेवतीपति वैसे ही दीख रहे थे, जैसे सियारों में हाथी (दिखायी देता) हो। २२ यह देखकर चेदि वीर वेगपूर्वक दौड़े। अंग, वंग, कलिंग, (करुषपति) वक्रदन्त,

पौंड्रक। निजभारेंसीं लोटले। २३ केशिक कारूष विदूरथ। जरासंध निजभारेंसीं लोटत। बाणांची वाकुडी वर्षत। मंडप दिसत अंतराळीं। २४ श्रीकृष्णदळीं बळिये वीर। सारण सात्यकी अक्रूर। कृतवर्मा उद्धव कंकवीर। निजभारेंसीं मिसळले। २५ गद आणि बळोद्यत। ठायीं ठायीं युद्ध होत। पौंड्रक कृतवर्मा अद्‌भुत। युद्ध करिती निजबळें। २६ वक्रदंतावरी सात्यकी वीर। रथीं बैसोनि सोडीत शर। आणिक यादववीर अपार। जरासंधावर येती। २७ जरासंधाच्या वीरांप्रती। यादव गर्जोनि बोलती। मागुतीं मुख दावावया आलेती। सत्रा वेळां पळोनियां। २८ बळिरामें तुमचा जरासंध। सत्रा वेळां रथीं बांधिला सुबद्ध। ती लाज विसरूनि सुखें युद्ध। पुन्हां करूं आलेती। २९ शिशुपाळाची पाठी राखावया। आलेती निर्लज्ज मिळोनियां। तरी आतां तुमची जर्जर काया। बळिराम करील निर्धारें। ३० विझवावया

शाल्व, पौंड्रक[1] नामक देशों के वीर तथा इन नामों के धारक वीर अपनी-अपनी सेना-सहित लपक गये। २३ केशिक, कारुष (वक्रदन्त), विदूरथ, जरासन्ध अपने-अपने दल-सहित धँसते हुए आगे बढ़ गये। वे बाणों की लगातार बौछार कर रहे थे। अन्तराल में बाणों के (बने हुए मानो) मण्डप दिखायी दे रहे थे। २४ श्रीकृष्ण की सेना के बलवान वीर सारण, सात्यकि, अक्रूर, कृतवर्मा, उद्धव, कंकवीर अपनी-अपनी सेना-सहित (शत्रु-सेना में) घुल-मिल गये। २५ स्थान-स्थान पर युद्ध हो रहा था। गद और बलोद्यत, कृतवर्मा और पौंड्रक अपनी-अपनी सेना-सहित अद्‌भुत युद्ध करने लगे। २६ वीर सात्यकि रथ में बैठकर वक्रदन्त पर बाण छोड़ रहा था। असंख्य अन्य यादव वीर जरासन्ध की ओर आ गये। २७ गरजते हुए यादव जरासन्ध के वीरों से बोले, 'सत्रह बार भाग जाने पर भी फिर से मुख दिखाने के लिए आये हो। २८ बलराम ने तुम्हारे जरासन्ध को भली भाँति कसकर रथ से सत्रह बार बाँधा था। उस लज्जा (की बात) को भूलकर फिर से सुखपूर्वक युद्ध करने के लिए आ गये हो। २९ तुम (सब) निर्लज्ज (लोग) इकट्ठा होकर शिशुपाल का पक्ष लेकर सहायता करने के लिए आ गये हो। परन्तु बलराम अब

---

१ अंग, वंग, कलिंग देशों के नाम हैं। इन देशों के राजा सेना-सहित जरासन्ध-शिशुपाल-रुक्मी की सहायता के लिए उनके पक्ष में सम्मिलित हो गये थे।

वक्रदन्त— करुष देश का राजा था।

शाल्व— कुछ लोग शाल्व को शिशुपाल का बन्धु मानते हैं, तो कुछ मित्र। प्रारम्भ से ही यह जरासन्ध का पक्षपाती और कृष्ण का द्वेष्टा था।

पौंड्रक— पौंड्रक वासुदेव पुण्ड्र का राजा था, जो जरासन्ध का पक्षपाती था।

विदूरथ— एक वृष्णिवंशीय क्षत्रिय जो वसुदेव की भगिनी श्रुतदेवा का पुत्र था। यह जरासन्ध-शिशुपाल का मित्र था।

वडवानळा। धांविन्नला शुष्कतृणाचा पुतळा। लाक्षादंड हातीं घेतला। ओडण खांदीं चंद्रुसाडें। ३१ त्याच्या साहित्यासी धांविन्नले वीर। कार्पास आणि दुजा कर्पूर। घृतनवनीतांचे पायभार। पुढील तोंडीं भांडती। ३२ वडवानळापुढें अवघेंचि भस्म। तैसें तुम्हांसी करील मेघश्याम। मागध म्हणती तुम्ही पुरुषार्थी परम। मागेचि आम्हां कळलेती। ३३ काळयवनाच्या भेणें तुमचा हरी। पळोनि दडे मुचुकुंदविवरीं। आम्हांभेणें समुद्राभीतरीं। द्वारकापट्टण रचियेलें। ३४ म्हणवितां पुरुषार्थी बळी। तरी कां मथुरा ओस केली। तुम्हीं चोरूनि रुक्मिणी नेली। ते हिरोनि घेऊं आतां। ३५ ऐसें बोलोनि परस्परें। सबळ घायें हाणिती निकरें। यादव वीर माघारे। लोटिले बळें मागधांनीं। ३६ वैरियांचें बळ ते क्षणीं। अधिक देखोनि रुक्मिणी। परम घाबरली मनीं। रण नयनीं देखोनियां। ३७ म्हणे इकडे सासर तिकडे माहेर। दोहींकडे आप्तचि समग्र। रणीं पडतील जरी बंधु वीर। तरी दोहीं पक्षीं हानीच। ३८ थोर अरिष्ट मांडलें। मग श्रीहरिमुख

तुम्हारी देहों को निश्चय ही जर्जर कर डालेंगे। ३० (मानो) बड़वानल को बुझाने के लिए सूखी घास का पुतला दौड़ा हो और उसने लाख का दण्ड हाथ में और राँगे की ढाल को कन्धे पर लिया हो। ३१ उसकी सहायता के लिए (एक) कपास और दूसरा वीर कपूर दौड़ा हो। घी और मक्खन के पदालि दल आगे के स्थान पर संघर्ष कर रहे हों। ३२ जिस प्रकार बड़वानल के सामने समस्त भस्म हो जाता है, उसी प्रकार मेघश्याम कृष्ण तुम्हें (भस्म) बना देंगे।' इस पर मागध वीर बोले, 'हमें पहले (पूर्वकाल में) ही तुम विदित हो गये हो— तुम (किस प्रकार) परम पराक्रमी हो। ३३ तुम्हारा कृष्ण कालयवन के भय से भागकर मुचुकुन्द के विवर में छिप गया। उसने हमारे भय से समुद्र के अन्दर द्वारकापट्टन का निर्माण कर लिया है। ३४ यदि तुम (अपने को) पराक्रमी, बलवान कहाते हो, तो मथुरा को (छोड़कर) उजाड़ क्यों बना दिया। तुम रुक्मिणी को चुराकर ले गये हो; हम अब उसे छीनकर ले लेंगे'। ३५ इस प्रकार एक-दूसरे से बोलकर वे (एक-दूसरे पर) ज़ोर से प्रहार करते हुए मारने-पीटने लगे। मागध वीरों ने (फिर) बलपूर्वक यादव वीरों को पीछे धकेल दिया। ३६ उस क्षण रुक्मिणी वैरियों के बल को अधिक देखकर और अपनी आँखों से युद्ध को देखकर मन में बहुत घबड़ा उठी। ३७ वह बोली (उसे लगा)— इधर ससुराल, उधर मायका है। दोनों ओर समस्त आप्त जन ही हैं। यदि बन्धु और देवर युद्ध-भूमि में गिर जाएँगे (काम आएँगे), तो दोनों ही पक्षों की हानि ही है। ३८ भारी संकट आ पड़ा है। तब उसने श्रीकृष्ण के मुख की ओर देखा। तो श्रीकृष्ण को मन में (उसका भाव) विदित हुआ। उन्होंने

विलोकिलें। श्रीकृष्णासी अंतरीं कळलें। हृदयीं धरिलें रुक्मिणीसी। ३९ म्हणे भय न धरीं वेल्हाळे। यादव मारीत उठावले। चैद्य आणि मागधदळें। संहारूनि टाकिती। ४० असो बळिभद्र ते अवसरीं। नांगर मुसळ घेऊनि करीं। लक्षानुलक्ष वीर संहारी। न उरे उरीं कांहींच। ४१ जैसा पाकशासन घेऊनि वज्र। करी सपक्षनगांचा चूर। तैसाचि बलसमुद्र बळिभद्र। करीत संहार वीरांचा। ४२ अनिवार बळिभद्राचा मार। मागधचैद्यांचे पळती भार। म्हणती यापुढें कोण वीर। उभा ठाकेल समरांगणीं। ४३ अशुद्धें डवरला बळिभद्र। दिसे जैसा कल्पांतरुद्र। हातीं घेऊनि नांगर मुसळ थोर। नाचे निर्भर रणांगणीं। ४४ गजमस्तकीं घालितां नांगर। मुक्तें उसळोनि पडती बाहेर। मुसळघायें रथांचे चूर। करूनियां पाडीतसे। ४५ नांगरें ओढी वीरांचे भार। सव्यहस्तें मुसळाचा मार। चूर्ण होती शिरें समग्र। मृत्तिकाघट फूटे जेवीं। ४६ पळतां गज

उसे हृदय से लगा लिया। ३९ वे बोले, 'अरी सुन्दरी, भय धारण न करो'। (फिर) यादवों ने आघात करते हुए धावा बोल दिया। वे चैद्य और मागध दलों का संहार करने लगे। ४० अस्तु। उस समय बलभद्र ने हाथों में हल और मूसल लेकर लाख-लाख वीरों का संहार कर डाला। (पीछे) शेष कुछ भी नहीं बच गया। ४१ जिस प्रकार देवलोकाधिपति इन्द्र ने वज्र लेकर पक्षों-सहित पर्वतों को चूरचूर कर डाला[1], उसी प्रकार बलसागर बलभद्र ने वीरों का संहार कर डाला। ४२ बलभद्र द्वारा की जानेवाली मार अनिवार थी। (अतः) मागधों और चैद्यों के दल भाग गये। वे (वीर) बोले, 'इसके सम्मुख समरभूमि में कौन वीर खड़ा रह सकेगा'। ४३ बलभद्र रक्त से सन गये। वे कल्पान्त काल के रुद्र जैसे दिखायी दे रहे थे। वे हाथों में बड़ा हल और मूसल लिये हुए रणांगण में बड़े चाव से नाच रहे थे। ४४ (उनके द्वारा) हाथियों के मस्तक पर हल मारते ही (हल का आघात करते ही) मोती उछलकर बाहर निकल जाते थे। मूसल के आघात से वे रथों को चूरचूर कर ढ़हा देते थे। ४५ वे वीरों के समूह (-समूह) को हल से खींचते थे; दाहिने हाथ से मूसल का प्रहार करते थे। तो (उन) समस्त (योद्धाओं के) सिर (वैसे ही) चूरचूर हो जाते थे, जैसे (आघात से) मिट्टी के घड़े टूट जाते हैं। ४६ (कभी) भागते हाथी को, पाँव पकड़कर वे उसपर के

---

१ इन्द्र द्वारा पर्वतों को चूरचूर कर डालना– कहते हैं कि पुरा काल में पर्वतों के पंख थे। उनके बल पर वे चाहे जहाँ उड़कर चले जाते थे। इससे सृष्टि के जीवों की बहुत हानि होती थी। अन्त में मारे घमण्ड के उन्मत्त पर्वतों को दण्ड देने के लिए इन्द्र ने वज्र से उनके पंख मूल-सहित काट डाले। तब से वे 'अचल', 'नग' हो गये।

पायीं धरोनी । वरल्यासकट आपटी मेदिनीं । मृत गज बळें फिरवूनी । स्वारावरी आपटीत । ४७ चपळ चौताळतां रथ । नांगरघायें चूर्ण करीत । वीर म्हणती कल्पांत । आजि काय जाहला । ४८ येणें शस्त्रें सांडूनि समग्र । आम्हांभोंवता आणिला नांगर । हा नांगरील पृथ्वी समग्र । धराभार उतरील पैं । ४९ अनिवार बळिभद्राचा मार । पळों लागले राजे समग्र । विजयी झाले यादववीर । सिंहनादें गर्जती । ५० जरासंध वेगें परतला । तों शिशुपाळ नोवरा उठिला । अर्धांगीं बैसली अवकळा । अपेशमाळा गळां घातली । ५१ नगराबाहेर शिशुपाळ येत । तों प्रेतें भेटलीं असंख्यात । एक घायाळ येती हुंबत । चैद्यनाथ दचकला । ५२ जरासंध म्हणे शिशुपाळा तूं उगाचि परत ये वेळां । आजि जयकाळ नाहीं आपुला । व्यर्थचि काय खटपट । ५३ विचित्र आहे ईश्वरी सूत्र । न कळे मायालाघव साचार । जय पराजय समग्र । त्याचे हातीं असती पैं । ५४ या मायाचक्राभीतरीं । जीव पडिले अनादि अघोरीं । येथींचीं सुखदुःखें नाना परी । भोगिल्याबिण न सुटती । ५५ परम दुःखित शिशुपाळ । दळेंसीं परतला तत्काळ ।

सवार-सहित भूमि पर पटकते थे, तो (कभी) मृत हाथी को बलपूर्वक घुमाकर सवारों पर पटकते थे । ४७ चपलतापूर्वक बेतहाशा दौड़नेवाले रथों को वे हल के प्रहार से चूरचूर कर डालते थे । तो वीर कहते, ' क्या आज कल्पान्त (महाप्रलय) हो गया है । ४८ यह समस्त शस्त्र छोड़कर हमारे चारों ओर (घुमाने के लिए) हल लाया है । यह समग्र पृथ्वी को (उस हल से) जोत लेगा और पृथ्वी के भार को उतार देगा '। ४९ बलभद्र द्वारा किया जानेवाला प्रहार अनिवार था। (यह जानकर) समस्त राजा भागने लगे । (इधर) यादव वीर विजयी हो गये, तो वे सिंहनाद करते हुए गरजने लगे । ५० जरासन्ध वेगपूर्वक लौट गया । तब दूल्हा शिशुपाल उठ गया (तैयार हो गया) । उसके अर्धांग में अप्रतिष्ठा बैठ गयी । उसने उसके गले में अपयश रूपी (वर-) माला पहना दी । ५१ जब नगर के बाहर शिशुपाल आ गया, तो उसे असंख्य शव (देखने को) मिले । कुछ एक घायल (योद्धा) कराहते हुए आ रहे थे । (यह देखकर) चेदिराज हक्का-बक्का हो उठा । ५२ जरासन्ध शिशुपाल से बोला, ' तुम इस समय चुपचाप लौट जाओ । आज अपने लिए विजय का समय नहीं है । (फिर) व्यर्थ ही यत्न क्यों (करें) ' । ५३ ईश्वरीय सूत्र विचित्र होता है । सचमुच उसकी माया का कौशल समझ में नहीं आता । जय-पराजय —समस्त उसके हाथ में है । ५४ इस अनादि मायाचक्र के भीतर जीव घोर संकट में पड़े हुए हैं । यहाँ के सुख-दुःख नाना प्रकार के होते हैं । बग़ैर उनका भोग किये, वे नहीं छूटते । ५५ शिशुपाल परम दुःखी हो गया । वह तत्काल सेना-सहित

जरासंधादि राजे सकळ। नगरा गेले आपुल्या। ५६ ऐसा देखोनि वृत्तांत। रुक्मिया वेगें रथीं बैसत। निजभारेंसीं धांवत। पवनवेगेंकरोनियां। ५७ रणीं जिंकूनि चक्रपाणी। जरी हिरोनि नाणीन माझी भगिनी। तरी गुरुनिंदा करिती जे प्राणी। माझ्या माथां तो दोष। ५८ माता पिता पूज्य संसारीं। आणि पुत्र त्यांसी जिवें मारी। तीं पापें मजचि निर्धारीं। जरी सुंदरी आणीं ना। ५९ रणीं न जिंकितां गोरसचोरा। परतोनि न यें या नगरा। मुख न दाखवीं मातापितरां। हाचि नेम निर्धारीं। ६० निजभारेंसीं रुक्मिया धांवत। सिंहनादें कृष्णासी पाचारीत। म्हणे गोरक्षका माघारा परत। नेसी वस्तु चोरोनियां। ६१ रुक्मिणी सांडोनि गोवळ्या पळें। तुज जीवदान आजि दिधलें। त्वां गोकुळ जैसें चोंढाळिलें। तैसें न चले ये स्थळीं। ६२ चोरी करिसी गोकुळीं। म्हणोनि गौळणी बांधिती उखळीं। ऐसें ऐकतां वनमाळी। निजभारेंसीं मुरडला। ६३ शारंगधनुष्य चढविलें। असंख्यात बाण सोडिले। रुक्मियानें बाणजाळ घातलें। अंबर झांकिलें ते वेळीं। ६४ जें जें शस्त्र रुक्मिया सोडी। तें तें श्रीकृष्ण सर्वेचि तोडी।

लौट गया। (उसी प्रकार) जरासन्ध आदि समस्त राजा अपने (-अपने) नगर के प्रति चले गये। ५६ ऐसी घटना को देखकर रुक्मी वेगपूर्वक रथ में बैठ गया और अपने दल-सहित वह पवन-वेग से दौड़ा (उसने वायुगति से रथ को दौड़ाया)। ५७ (वह बोला—) 'कृष्ण को युद्धभूमि में जीतकर यदि मैं अपनी भगिनी को उससे छीनकर न लाऊँ, तो मेरे सिर पर वही दोष (पाप) लग जाए, जो प्राणी गुरु की निन्दा करते हैं, उनको लग जाता है। ५८ यदि मैं उस सुन्दरी को न लाऊँ, तो जो लोग संसार में माता-पिता जैसे पूज्य लोगों को तथा पुत्रों को प्राणों से मारते हैं, उनको जो पाप लगते हैं, वे पाप मुझे अवश्य लग जाएँगे। ५९ (मेरा) यही निश्चय है कि यदि मैं उस गोरस-चोर को युद्ध में न जीत पाऊँ तो मैं इस नगर के प्रति न लौट आऊँगा, और न माता-पिता को (अपना) मुँह दिखाऊँगा'। ६० (ऐसी प्रतिज्ञा करके) रुक्मी अपनी सेना-सहित दौड़ा। उसने सिंहनाद करते हुए कृष्ण को (ललकारकर) पुकारा। वह बोला, 'रे गोरक्षक, पीछे लौट आ जा। (हमारी) वस्तु को तू चुराकर ले जा रहा है। ६१ रे ग्वाले, रुक्मिणी को छोड़कर भाग जा। मैंने आज तुझे प्राणदान दिया है। तुमने गोकुल को जिस प्रकार दुराचार से भ्रष्ट कर दिया, उस प्रकार यहाँ नहीं चल सकेगा। ६२ तू गोकुल में चोरी किया करता था। इसलिए ग्वालिनों ने तुझे ऊखल से बाँधा था।' ऐसा सुनते ही वनमाली अपनी सेना-सहित मुड़कर लौटे। ६३ उन्होंने शार्ङ्ग धनुष चढ़ा लिया और अनगिनत बाण चला दिये। (इधर) रुक्मी ने उस समय बाणों का जाल निर्मित किया और आकाश को छिपा

रुक्मिया शूरत्व कडोविकडी। बहुताल दावी तेधवां। ६५ कृष्णें दिव्य सहा बाण सोडिले। ऱ्हूनीं चारी वारू छेदिले। एकें सारथियाचें शिर उडविलें। एकें तोडिलें ध्वजासी। ६६ हातींचें धनुष्य छेदिलें ते वेळां। शिरींचा मुकुट खंडविखंड केला। बाणभाता तोडिला। विरथ केला रुक्मिया तेव्हां। ६७ मग हातीं घेऊनि असिलता। रुक्मिया तळपे रथाभोंवता। हा रथ छेदीन आतां। म्हणोनि खालता पिलंगत। ६८ ऐसें देखोनियां गोपाळें। अकस्मात धनुष्य गळां घातलें। बळें ओढूनि ते वेळें। केश धरिले निजहस्तें। ६९ शिर छेदावया दिव्य शस्त्र। वेगें काढी जलजनेत्र। रुक्मिणी पाहे हरीचें वक्त्र। भयभीत होवोनियां। ७० वाचेसी शब्द न फुटे साचार। हरिचरणीं ठेविलें शिर। नेत्रोदकें ते सुंदर। कृष्णचरण क्षालीतसे। ७१ मग म्हणे वनमाळी। ऊठ वेगें भीमकबाळी। याचें शिर छेदीन ये काळीं। बहुत केली निंदा येणें। ७२ निकर देखोनि पद्मनयना। न सोडीच कृष्णचरणां। म्हणे जगद्वंद्या जगज्जीवना। यासी सोडूनि देईजे। ७३ याची जे

दिया। ६४ (परन्तु) रुक्मी जो-जो शस्त्र चला रहा था, उस-उसको श्रीकृष्ण साथ ही (तत्काल) काट देते थे। रुक्मी ने उस समय अपनी शूरता यत्नपूर्वक बहुत दिखा दी। ६५ तदनन्तर कृष्ण ने छः दिव्य बाण चला दिये। (उनमें से) चार से (रुक्मी के रथ के) चारों घोड़ों को छिन्न-भिन्न कर डाला। एक से सारथी के सिर को (छेदकर) उड़ा दिया, तो एक से ध्वज को काट डाला। ६६ उस समय उन्होंने उसके हाथों के धनुष को काट दिया, सिर पर के मुकुट के टुकड़े-टुकड़े कर डाले, बाणों के भाथे को तोड़ डाला। तब (साथ ही) उन्होंने रुक्मी को रथहीन कर दिया। ६७ अनन्तर हाथ में तलवार लेकर रुक्मी उसे चमकाते हुए (कृष्ण के) रथ के चारों ओर घूमने लगा। 'इस रथ को मैं अब तोड़ डालूंगा'—ऐसा कहते (सोचते) हुए वह नीचे लुक-छिपकर आगे बढ़ने लगा। ६८ ऐसा देखते ही श्रीकृष्ण ने अकस्मात अपना धनुष उसके गले में डाल दिया। (फिर रुक्मी को) बलपूर्वक खींचकर उस समय उन्होंने अपने हाथ से उसके बाल पकड़ लिये। ६९ कमलनयन कृष्ण ने उसके सिर को काटने के हेतु झट से दिव्य अस्त्र निकाला, तो भयभीत होकर रुक्मिणी ने कृष्ण के मुख की ओर देखा। ७० सचमुच (भय के कारण) उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहा था। उसने श्रीकृष्ण के चरणों में सिर रखा। वह अपने नयन-जल से श्रीकृष्ण के उन सुन्दर चरणों को धोने लगी। ७१ तब वनमाली बोले, 'हे भीमक-कन्या, झट से उठ जाओ। इस समय मैं इसका सिर काट डालूंगा—इसने बहुत निन्दा की है'। ७२ उनका आवेश देखकर उस कमलनयना ने श्रीकृष्ण के चरणों को नहीं छोड़ा। वह बोली, 'हे जगद्वंद्य, हे जगज्जीवन, इसे छोड़

अहंदेहबुद्धि । तेचि छेदीं कां कृपानिधि । जीवदशा अविद्याउपाधि । वेगें छेदीं श्रीरंगा । ७४ धरिलिया श्रीकृष्णचरण । द्यावें दोन्ही पक्षीं समाधान । समविषम भेदभान । दोहींकडे नसावें । ७५ सासरीं आणि माहेरीं । तूं व्यापक अवघा मुरारी । प्रपंच परमार्थ समसरी । होय श्रीहरी कृपें तुझ्या । ७६ ऐकोनि रुक्मिणीच्या वचना । कृपा आली जगन्मोहना । प्रीतीनें हृदयीं धरिली पद्मनयना । अश्रु पुसिले पीतांबरें । ७७ करें मुख कुरवाळिलें । म्हणे तुझ्या बोलें यासी सोडिलें । मग रुक्मियासी रथीं बांधिलें । शिरीं काढिले पांच पाट । ७८ अर्धदाढी अर्धमिशी । बोडूनि काजळ माखिलें मुखासी । कृष्ण म्हणे रुक्मिणीसी । आरती बंधूसी करीं आतां । ७९ बहु उजळ दिसे याचें वदन । वेगें करीं निंबलोण । रुक्मियाची ऐसी दशा देखोन । पळे सैन्य चहूंकडे । ८० वीर पळती परम तांतडीं । म्हणती वांचली आजि मिशीदाढी । इतुकीच आम्हांसी जाहली जोडी । ऐसें बोलती धांवतां । ८१ असो बळिराम हरीजवळी आला । तों रुक्मियासी रथीं बांधिला । दीनवदन रामें देखिला । काय बोलिला बळिभद्र । ८२

दीजिए । ७३ हे कृपानिधि, इसकी जो अहंदेह-बुद्धि है, उसी को छेद डालिए । हे श्रीरंग, उसकी जीवदशा और अविद्या उपाधी को झट से काट दो (नष्ट कर दो) । ७४ (इसके द्वारा) आप श्रीकृष्ण के चरणों को पकड़ने पर आप दोनों पक्षों को सन्तोष प्रदान कीजिए । समान या ऊँच-नीच सम्बन्धी अन्तर का विचार दोनों ओर न रह जाए । ७५ हे मुरारि, ससुराल में और मैके में आप पूरे-पूरे व्यापक हैं (समाये हुए हैं) । हे श्रीहरि, सांसारिक भाव और परमार्थ आपकी कृपा से एकरूप हो जाएँ' । ७६ रुक्मिणी की इस बात को सुनकर जगन्मोहन को (उसके प्रति) दया अनुभव हुई । उन्होंने उस कमलनयना को हृदय से लगा लिया और अपने पीताम्बर से उसके आँसू पोंछ लिये । ७७ हाथ से उसके मुख को उन्होंने सहला लिया और कहा, 'तुम्हारे कहने से मैंने इसे छोड़ दिया है ।' अनन्तर उन्होंने रुक्मी को रथ से बाँध लिया और उसके सिर पर छुरे से मूँड़कर पाँच धारियाँ बना लीं । ७८ उसकी आधी दाढ़ी और आधी मूँछ को मूँड़कर उसके मुँह में काजल लगा लिया । (फिर) कृष्ण रुक्मिणी से बोले, 'अब अपने भाई की आरती उतार लो । ७९ इसका मुँह बहुत उजला दिखायी दे रहा है, झट से राईनोन उतार लो ।' रुक्मी की ऐसी दशा देखकर सेना चारों ओर भाग गयी । ८० अति शीघ्रतापूर्वक भागते-भागते वीरों ने कहा (माना), 'आज दाढ़ी-मूँछ बच गयी । हमें इतना ही लाभ हो गया ।' दौड़ते-दौड़ते वे इस प्रकार बोल रहे थे । ८१ अस्तु । बलराम श्रीकृष्ण के पास आये तो उन्होंने रुक्मी को रथ से बाँधा था । जब बलराम ने

हा सोयरा कीं आमुचा हृषीकेशी। बोलावूं आला रुक्मिणीसी। तुम्हीं गौरव दिधला बरवा यासी। बोलतां रामासी हंसें आलें। ८३ राम रुक्मिणीकडे पाहे ते वेळां। तों मुखमृगांक अति उतरला। खेद पावली ते वेल्हाळा। जाणोनि बोले बळिभद्र। ८४ म्हणे ऐक रुक्मिणी सती। ज्ञान अज्ञान दोन्ही वृत्ती। अज्ञानसंगें जीव भ्रमती। आत्मस्थिती नेणोनियां। ८५ जेथें ठसावलें पूर्णज्ञान। तेथेंही प्रपंचसहित अज्ञान। नानाविकार भेदभान। कैंचें मग उरेल वो। ८६ तरी तूं हरीची ज्ञानकळा केवळ। हा आकार अवघा तुझा खेळ। जैसे सागरावरी कल्लोळ। नाना परींचे ऊठती। ८७ तुझें तुज ठाऊक असतां। मग खेद कां करावा आतां। बळिभद्र म्हणे कृष्णनाथा। अनुचित केलें एवढें। ८८ वीर सांपडला जरी रणीं। तरी त्यासी वस्त्रें भूषणें देऊनी। पाठवावें गौरवूनी। ऐसी करणी करूं नये। ८९ जय अथवा पराजय। हा अवघ्यांसी पडतां समय। वीरांसी कदा विटंबूं नये। हें अनुचित तुवां केलें। ९० बळिभद्रें आपुल्या हातें सोडून। केलें रुक्मियाचें समाधान। वस्त्रें भूषणें देऊन। पाठविला माघारा। ९१

उसके मुख को दीन हुए देखा, तो वे क्या बोले ? (सुनिए)। ८२ 'यह तो हमारा सगा-सम्बन्धी (नातेदार) है। हे हृषीकेश, यह रुक्मिणी को बुलाने के लिए आया था। तुमने उसका अच्छा गौरव-सत्कार किया।' यह बोलते-बोलते बलराम को हँसी आ गयी। ८३ उस समय बलराम ने रुक्मिणी की ओर देखा; (उसे दिखायी दिया कि) उसका मुखचन्द्र अति उतर गया है (निस्तेज हो गया है)। यह जानकर कि वह सुन्दरी खेद को प्राप्त हो गयी है, बलराम बोले। ८४ वे बोले, 'हे सती रुक्मिणी, सुनो। ज्ञान और अज्ञान दो प्रवृत्तियाँ हैं। अज्ञान की संगति से जीव आत्मस्थिति को नहीं जानकर भ्रमण करते रहते हैं। ८५ जहाँ पूर्ण ज्ञान जमकर डटा रहता है, वहीं अविद्या-सहित अज्ञान, नाना विकार, भेदभाव-विचार फिर कैसे शेष रहेंगे। ८६ तुम तो श्रीहरि की केवल ज्ञानकला हो। यह सृष्टि (का विस्तार-निर्माण और विनाश) समस्त तुम्हारा खेल है, जैसे सागर में नाना प्रकार से लहरें उभरती-उत्पन्न हो जाती हैं। ८७ तुम्हारा अपना स्वरूप तुम्हें विदित होने पर फिर अब खेद क्यों करें'। (अनन्तर) बलराम बोले, 'हे कृष्णनाथ, तुमने इतना तो अनुचित किया है। ८८ यद्यपि कोई वीर पुरुष युद्धभूमि में मिल जाए (पकड़ा जाए), तो भी उसे वस्त्र, आभूषण देकर उसका गौरव करते हुए उसे भेज दें। ऐसी करनी (जैसे तुमने अभी की है) नहीं करें। ८९ जय अथवा पराजय —यह सबके लिए समय पड़ने पर (समय के अनुसार) घटित हो जाती है। (अतः) वीरों की कभी विडम्बना नहीं करें। तुमने यह अनुचित किया है'। ९० (ऐसा कहकर) बलराम ने अपने हाथ से मुक्त करके रुक्मी को

रुक्मिया खेद पावला अंतरीं। म्हणे आतां कैसा जाऊं कौंडिण्यपुरीं। मग भोजकटनगर ते अवसरीं। रचोनि राहिला तेथेंचि। ९२ असो यादवदळेंसीं यादवेंद्र। द्वारकेसी चालला श्रीकरधर। लागला जयवाद्यांचा गजर। नादें अंबर कोंदलें। ९३ सोरटीसोमनाथाजवळी। मूळमाधवीं राहिला वनमाळी। असो भीमकरायासी श्रुत जाहली। वार्ता सकळ वर्तली जे। ९४ परम आनंदला नृपवर। म्हणे धन्य माझे पुण्याचे गिरिवर। पूर्वी केले साचार। जांवई यदुवीर जोडला। ९५ निजभारेंसीं भीमक निघाला। सत्वर मूळमाधवासी आला। साष्टांग नमस्कार घातला। श्रीकृष्णासी तेधवां। ९६ राजा म्हणे सर्वेश्वरा। आतां माघारें चलावें कौंडिण्यपुरा। विधियुक्त विवाह बरा। चारी दिवस संपादिजे। ९७ मग बळिराम म्हणे ते वेळां। येथेंचि स्थळीं करूं लग्नसोहळा। भीमकासी विचार मानला। आनंदला अंतरीं। ९८ नगरासी पत्रें पाठवी नृपति। आणविली सकळ संपत्ति। अपार लोकांशीं शुद्धमति। मूळमाधवा पातली। ९९ कनकमय दिव्य शिबिरें। उभीं करविलीं हो नृपवरें। त्यांहूनि श्रीकृष्णें परिकरें।

सान्त्वना दी। (फिर) उसे वस्त्र और आभूषण देकर लौटा दिया। ९१ रुक्मी अन्तःकरण में खेद को प्राप्त हो गया। वह बोला (उसे लगा), 'मैं अब कौण्डिण्यपुर कैसे जाऊँ?' अनन्तर वह उस समय भोजकट नगर नामक नगर का निर्माण करके (नगर बसाकर) वहीं रह गया। ९२ अस्तु। यादवेन्द्र श्रीपति यादवसेना-सहित द्वारका की ओर चल पड़े। (तब) जय-सूचक वाद्यों का गर्जन होने लगा। उसकी ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया। ९३ वनमाली कृष्ण सोरठी सोमनाथ के निकट मूलमाधव नामक स्थान पर ठहर गये। अस्तु। जो घटित हुआ, उसका समस्त समाचार (इधर) भीमक राजा को विदित हुआ। ९४ तो नृपवर भीमक परम आनन्दित हुए और बोले, 'मैंने यदुवीर को दामाद के रूप में प्राप्त किया, अतः मेरे पुण्य के बड़े-बड़े पर्वत (मेरे द्वारा किये पर्वत जैसे बड़े पुण्य) धन्य हैं, जो मैंने सचमुच किये होंगे। ९५ भीमक अपनी सेना-सहित निकले। वे शीघ्रता से मूलमाधव के प्रति आये। उस समय उन्होंने श्रीकृष्ण को साष्टांग नमस्कार किया। ९६ (अनन्तर) राजा भीमक बोले, 'हे सर्वेश्वर, अब फिर कौण्डिण्यपुर लौटकर चलिए। विधि के अनुसार विवाह अच्छी तरह से चार दिन में सम्पन्न कीजिए'। ९७ फिर उस समय बलराम बोले, 'इसी स्थान पर विवाह-समारोह सम्पन्न करें।' भीमक को यह विचार जँच गया। वे अन्तःकरण में आनन्दित हो गये। ९८ (अनन्तर) राजा ने नगर में पत्र भेज दिये और वे समस्त सम्पत्ति लिवा लाये। रानी शुद्धमति अनगिनत लोगों-सहित मूलमाधव आ गयी। ९९ अहो! उन नृपवर ने कनकमय दिव्य शिबिर निर्मित

वस्त्रमंदिरें दीधलीं । १०० द्वारकेसी पाठविलें मूळ । वऱ्हाडी सिद्ध जाहले सकळ । वाद्यें वाजती तुंबळ । हर्ष सकळ लोकांसी । १०१ उग्रसेन आणि वसुदेव । सिद्ध जाहले वऱ्हाडी सर्व । दिव्य वाहनीं यादव । बैसोनियां चालले । २ देवकी बैसली सुखासनीं । सुभद्रा कृष्णाची भगिनी । परमसुंदर लावण्यखाणी । द्वारकाभुवनीं उपजली ते । ३ चवरडोल गजस्कंधावरी । त्यांत बैसली सुभद्रा सुंदरी । रेवती बळिभद्राची अंतुरी । पालखीमाजी आरूढे । ४ पहावया श्रीकृष्णाचें लग्न । सकळ दैवतें निघालीं सांवरोन । नवकोटी चामुंडा संपूर्ण । चालती वेगें तेधवां । ५ छप्पन्न कोटी कात्यायनी । निघाल्या वृश्चिकांवरी वळंघोनी । नाना भयासुर रूपें धरूनी । पाहतां हांसें येतसे । ६ अवघ्यांपुढें निघाला गजवदन । विशाल दोंदिल सिंदूर चर्चून । मूषकावरी बैसोन । पुढें निर्विघ्न चालिला । ७ नेटका वऱ्हाडी पुढें चालिला । वऱ्हाडणी हांसती सकळा । हा पोट घेऊनि कोठें चालिला । उंदिरावरी बैसोनियां । ८ चामुंडा सर्व वऱ्हाडिणी । या मातृका वृश्चिकासनीं । ऐशा वऱ्हाडिणी देखोनी । व्याही विहिणी हांसती । ९ वऱ्हाडिणी ज्या सुंदरा ।

करवाये । उनसे भी सुन्दर वस्त्रमन्दिर (वस्त्र-गृह, तम्बू) श्रीकृष्ण ने बनवा दिये । १०० उन्होंने द्वारका में आमंत्रण भेज दिया; तो समस्त बाराती (प्रस्थान के लिए) सिद्ध हो गये । वाद्य तुमुल (घोष में) बजने लगे । समस्त लोगों को हर्ष हो गया । १०१ उग्रसेन और वसुदेव, अन्य समस्त बाराती सिद्ध हो गये । यादव दिव्य वाहनों में बैठकर चल पड़े । २ देवकी सुखासन अर्थात पालकी में बैठी । सुभद्रा कृष्ण की भगिनी थी । वह परम सुन्दर थी, लावण्य की (मानो) खान थी । वह द्वारका भुवन (नगरी) में जनमी थी । ३ हाथी के कन्धे पर अम्मारी थी । उसमें सुन्दरी सुभद्रा बैठ गयी । बलराम की स्त्री रेवती पालकी में बैठ गयी । ४ श्रीकृष्ण के विवाह को देखने के लिए समस्त देवता सँवर-सजकर चल पड़े । उस समय समस्त नौ करोड़ चामुण्डाएँ वेगपूर्वक चलने लगीं । ५ नाना (प्रकार के) भयावह रूप धारण करके छप्पन करोड़ कात्यायनियाँ बिच्छुओं पर आरूढ़ होकर निकलीं । उन्हें देखकर हँसी आती थी । ६ सबके आगे गजवदन गणेशजी निकले । उनकी तोंद विशाल थी । सिंदूर लगाकर वे चूहे पर सवार होकर आगे निर्विघ्न रूप से चले जा रहे थे । ७ (गणेशजी के रूप में) अच्छा खासा बाराती आगे (-आगे) जा रहा था । (उसे देखकर) समस्त बारातिनें हँस रही थीं । (उन्हें लगा कि) बड़ा पेट लेकर यह चूहे पर सवार होकर कहाँ जा रहा है । ८ वे बारातिनें चामुण्डादेवी-सहित (जा रही) थीं । ये मातृकाएँ बिच्छुओं रूपी सवारियों पर (बैठी) थीं । ऐसी बारातिनों को देखकर समधी और समधिनें हँसने लगे । ९ (उन्होंने कहा–) 'जो

त्याचि आधीं पुढें करा। ऐसें ऐकतां त्या अवसरा। सकळ दैवतें क्षोभलीं। ११० हिंव ज्वर आणि तरळा। ओकिती वऱ्हाडिणी सकळा। एकींस हगवणी लागल्या। शूळ उठिले पोटांत। १११ पाणी पाणी करिती वऱ्हाडिणी। तो समाचार कळला चक्रपाणी। श्रीकृष्णें सकळ दैवतें सन्मानूनी। मंडपासी आणिलीं। १२ मग तेणें जाहलें निर्विघ्न। आनंदें वऱ्हाडी आले संपूर्ण। दोहीं मंडपीं देवकस्थापन। करिते जाहले तेधवां। १३ आपुल्या शिबिरालागोनी। भीमकें नेली रुक्मिणी। देव बैसोनि विमानीं। तो सोहळा अवलोकिती। १४ हळदी लाविली रुक्मिणी। मग ते शेष पाठविली चक्रपाणी। लागली मंगळवाद्यांची ध्वनी। लग्नघटिका प्रतिष्ठिली। १५ गोभूहिरण्यरत्नदानें। भीमकें विप्रां दिधलीं प्रीतीनें। रुखवत शुद्धमतीनें। सिद्ध करूनि चालिली। १६ आनकदुंदुभि आपुलें मंदिरीं। यथायुक्त दानें तेव्हां करी। तों रुखवत आलें गजरीं। वाद्यें वाजती तेधवां। १७ यादवांसहित श्रीकृष्ण। भोजना बैसला जगन्मोहन।

बारातिनें सुन्दर हों, उन्हीं को पहले आगे कर दें (चलने दें)।' ऐसा सुनते ही उस समय समस्त देवता क्षुब्ध हो उठे। ११० तो उन बारातिनों ने कँपकँपी, बुख़ार और विचूषिका को उगाल दिया। (फलस्वरूप) कुछ एक को दस्त होने लगे। उनके पेट में दर्द होने लगा। १११ वे घरातिनें 'पानी', 'पानी' बोलने लगीं (पानी माँगने लगीं)। जब चक्रपाणि श्रीकृष्ण को वह समाचार विदित हुआ, तो वे समस्त देवताओं का सम्मान करके मण्डप में ले आये। १२ तब वे उससे निर्विघ्न हो गये। वे समस्त बाराती आनन्दपूर्वक आ गये। उस समय दोनों मण्डपों में (कोहबर में) उन्होंने गणेश, मातृकाओं की प्रतिमाओं की स्थापना की। १३ भीमक रुक्मिणी को अपने शिविर ले गये। देव विमानों में बैठकर उस आनन्दोत्सव को देख रहे थे। १४ (स्त्रियों ने) रुक्मिणी को हलदी लगायी। फिर शेष (बची हुई) हलदी चक्रपाणि कृष्ण के लिए भेज दी। मंगल-वाद्यों की ध्वनि आरम्भ हो गयी। विवाह-घटिका (समय सूचित करने के लिए घटिका-पात्र) प्रतिष्ठित की गयी। १५ भीमक ने ब्राह्मणों को गायें, भूमि, सोना, रत्न प्रीतिपूर्वक दान में दिये। (रानी) शुद्धमति भोज्य वस्तुओं के ('रुखवत' के) थाल या टोकरे सिद्ध करके चलने लगी। १६ (इधर) तब आनकदुन्दुभि वसुदेव[1] ने अपने प्रासाद में यथायोग्य दान दिये। तो (वाद्यों के) गर्जन के साथ वे थाल या टोकरे आ गये। उस समय वाद्य बज रहे थे। १७ जगन्मोहन श्रीकृष्ण यादवों-सहित भोजन करने बैठे। यह देखकर शुद्धमति (वहाँ से) निकल गयी। वह (मानो) अपने जीव

१ देवताओं ने वसुदेव के जन्म के समय दुन्दुभियाँ बजायी थीं, इसलिए वसुदेव को 'आनकदुन्दुभि' भी कहते हैं।

शुद्धमति निघाली देखोन। जीवें निंबलोण करूं पाहे। १८ रत्नजडित दीप ठेविले जवळी। जडित आडण्या त्यातळीं। त्यावरी ताटें मांडिलीं। मृगांकमंडलातुल्य जीं। १९ सात्त्विक राजस तामसें। अन्नें वाढिलीं विशेषें। प्रीतीनें जेविजे हृषीकेशें। निजगोडी घेऊनियां। १२० समस्तांचीं भोजनें झालीं। हस्त प्रक्षाळीत वनमाळी। उच्छिष्टपात्रीं टाकिली। मुद्रा हातींची तेधवां। १२१ नमस्कार करूनि श्रीपती। उच्छिष्टपात्रें घेऊनी हातीं। वेगें निघाली शुद्धमती। मंडपासी आपुल्या। २२ कृष्णमुद्रा ते वेळीं। भीमकीचे हातीं दिधली। तिणें देखतांचि मस्तकीं वंदिली। मग घातली करांगुळीं। २३ परात्परउपरी त्वरित। वेगें चढूनि सद्‌गुरुनाथ। सर्वांसी समाधान म्हणत। ऐसा मुहूर्त सांपडेना। २४ सद्‌गुरु म्हणे सावधान। आळसी लोक निद्रार्णवीं निमग्न। वरी श्रीकृष्णभक्त अनुदिन। सावध पूर्ण सर्वदा। २५ तों निजगजरेंसीं फळ। यादव घेऊनि आले तात्काळ। मंडपीं बैसले वऱ्हाडी सकळ। भीमकें तेव्हां पूजियेले। २६ बाहरे आणिली रुक्मिणी। वसुदेव उठोनि ते क्षणीं। वस्त्रें भूषणें फळें समर्पूनी। जगज्जननी अर्चिली। २७ पुरोहित म्हणे भीमकातें। मूळ सत्वर पाठवा

को राईनोन के रूप में उतार देना चाहती थी। १८ पास में रत्नजटित दीप रख दिये थे। उनके तले (रत्न-) जटित तिपाइयाँ थीं। उन पर थालियाँ रखी गयीं, जो चन्द्रमण्डल के समान (गोल और कान्तियुक्त) थीं। १९ (उन थालियों में) सात्त्विक, राजस, तामस-विशिष्ट अन्न परोस दिये। तो श्रीकृष्ण अपनी रुचि के अनुसार प्रीतिपूर्वक भोजन करने लगे। १२० सबका भोजन हो गया। श्रीकृष्ण ने हाथ धोये। तो उस समय अपने हाथ की अँगूठी उन्होंने जूठी थाली में डाल दी। १२१ (तदनन्तर) श्रीकृष्ण को नमस्कार करके शुद्धमति जूठी थालियाँ हाथों में लेकर अपने मण्डप (की ओर) जाने के लिए वेगपूर्वक निकली। २२ उस समय (मण्डप में आने पर) उसने श्रीकृष्ण की मुद्रिका रुक्मिणी के हाथ में दी। उसे देखते ही उसने उसका सिर से वन्दन किया और अनन्तर अपने हाथ की अँगुली में पहनी। २३ सबसे ऊपर के खण्ड (मंजिल) में झट से सद्‌गुरुनाथ कृष्ण वेगपूर्वक चढ़ गये और बोले, ‘जिससे सबको सन्तोष हो, ऐसा मुहूर्त नहीं मिल रहा है’। २४ (फिर भी) सद्‌गुरु अर्थात पुरोहित बोला, ‘सावधान। आलसी लोग (नित्य) निद्रा रूपी सागर में डूबे रहते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण के भक्त प्रतिदिन नित्य पूर्ण सावधान रहते हैं’। २५ अपने वाद्यों का गर्जन करते हुए यादव तत्काल फल ले आये। सब बाराती मण्डप में बैठ गये, तब भीमक ने उनका पूजन किया। २६ वे रुक्मिणी को बाहर ले आये; उस क्षण वसुदेव ने उठकर वस्त्र, आभूषण, फल समर्पित करते हुए उस जगज्जननी का पूजन किया। २७ तो पुरोहित भीमक से बोला, ‘वर को

वरातें। यादव गेले निजमंडपातें। भीमकीचें रूप वर्णित। २८ भीमक हांकारी वऱ्हाडिणी। शांति दया क्षमा उन्मनी। उपरति तितिक्षा मुमुक्षा कामिनी। समाधी आणि सुलीनता। २९ विवेक वैराग्य परमार्थ। अक्रोध निष्काम निरहंकृत। स्वानंद अभेद वऱ्हाडी सत्य। वर आणावया चालिले। १३० ऐसा गजरेंसीं जातां नृपवर। श्रीकृष्ण मंडपासी आला सत्वर। तों सोमकांताचा चौरंग सुंदर। त्यावरी श्रीधर बैसलासे। १३१ शुभ्रवर्ण खालीं चौरंग। त्यावरी घनश्यामवर्ण श्रीरंग। जैसा कैलासावरी नवमेघ। क्षेम द्यावया उतरला। ३२ असो अर्पूनि वस्त्रें अलंकार। तुरंगीं बैसविला श्रीकरधर। पुढें वाद्यांचा गजर। भडिमार नळ्यांचे। ३३ त्याचें मागें चंद्रज्योती। चंद्रासमान प्रकाशती। हवया गगनातें भेदिती। देव पाहती विमानीं। ३४ उग्रसेन वसुदेव बळिभद्र। येती पाठीसीं यादवभार। प्रवेशले मंडपद्वार। तों दासी समोर पातल्या। ३५ माथां कलश भरिले पूर्ण। त्यांसी इच्छिलें देत श्रीकृष्ण। मग प्रवेशले अंतःसदन। वरासनीं कृष्ण बैसविला। ३६ सिद्ध जाहला मधुपर्क देखा। विष्टर दिधला

झट से आमंत्रण भेजिए।' तो यादव रुक्मिणी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अपने मण्डप के प्रति चले गये। २८ (इधर) भीमक ने घरातिनों को पुकारकर बुलाया। वे थीं— शान्ति, दया, क्षमा, उन्मनी, उपरति, तितिक्षा, मुमुक्षा, समाधि और सुलीनता नामक कामिनियाँ। २९ (इधर) विवेक, वैराग्य, परमार्थ, अमोघ, निष्काम, निरहंकार, स्वानन्द, अभेद, सत्य जैसे घराती वर को (बुलाकर) लाने के लिए चले गये। १३० ऐसे गाने-बाजे के साथ नृपवर भीमक निकलकर श्रीकृष्ण के मण्डप में झट से आ गये। तब (वहाँ) चन्द्रकान्त रत्न की (निर्मित) एक सुन्दर चौकी थी। श्रीकृष्ण उसपर बैठे हुए थे। १३१ नीचे शुभ्रवर्ण की चौकी थी। उसपर घनश्यामवर्ण श्रीकृष्ण (विराजमान) थे, (जान पड़ता था) जैसे नवमेघ कैलास पर्वत का आलिंगन करने के लिए उसपर उतर गया हो। ३२ अस्तु। वस्त्र और आभूषण समर्पित करके भीमक ने श्रीपति कृष्ण को घोड़े पर बैठा दिया। (शोभायात्रा के आगे) वाद्यों का गर्जन हो रहा था। नलों जैसे पटाकों का धमाका हो रहा था। ३३ उसके पीछे चन्द्रज्योतियाँ चन्द्र के समान प्रकाशमान हो रही थीं। वे (चन्द्रज्योतियाँ) आकाश को भेदकर (ऊपर) जा रही थीं। देव विमानों में से यह देख रहे थे। ३४ उग्रसेन, वसुदेव, बलभद्र और यादव-समुदाय उनके पीछे (-पीछे) आ रहे थे। वे मण्डप के द्वार पहुँचे, तो (वहाँ) सामने दासियाँ आ गयीं। ३५ उनके मस्तक पर (जल से) पूर्ण भरे हुए कलश थे। श्रीकृष्ण ने उनको मनचाहा (उपहार) दिया। अनन्तर वे अन्दर के गृह (भाग) में प्रविष्ट हो गये। (वहाँ भीमक

जगन्नायका। कृष्णचरणक्षाळणीं भीमका। अतिउल्हास वाटतसे। ३७ शुद्धमति घाली जीवन। राजा प्रक्षाली चरण। सकळ तीर्थें आलीं धांवोन। तळीं माथा ओडविती। ३८ मूळमाधवीं कदंबतीर्थ। अद्यापि असे देखती भक्त। वृक्ष तेथींचें समस्त। मंडपाकार असती पैं। ३९ वेदांचा जनिता कृष्णनाथ। त्यासी घालिती यज्ञोपवीत। शुद्धमति आचमन घालीत। आनंदभरित अंतरीं। १४० षोडशोपचारीं पूजा करूनी। वस्त्रें अळंकार भावें अर्पूनी। हस्तमुद्रा कर्णमुद्रिकेसी मणी। श्रीरंगासी अर्पिले। १४१ दधि मधु करोनि एक। हरिकरीं घालिती देख। मेहुणे हांसती सकळिक। म्हणती भीड धरूं नका। ४२ गोकुळींचें चोरूनि दहीं खावें। आम्हीं अर्पितां कां न सेवावें। लोक भोंवते आघवे। अत्यंत कौतुकें हांसती। ४३ संतजन आश्चर्य करिती। निर्गुणासी गुण लाविती। असो मधुपर्क सेवूनि श्रीपती। करक्षालन पैं केलें। ४४ आचार्य सावधान म्हणत। शेवटींची घडी आली भरत। अंतःपट धरिला त्वरित। मायामय लटिकाचि। ४५ देशिक म्हणे

ने) श्रीकृष्ण को उत्तम आसन पर बैठा दिया। ३६ देखिए, मधुपर्क नामक विधि सिद्ध (सम्पन्न) होने लगी। जगन्नायक श्रीकृष्ण को (बैठने के लिए) कुशासन दिया (गया)। अनन्तर भीमक को श्रीकृष्ण के चरणों को धोने में अति उल्लास अनुभव हो रहा था। ३७ शुद्धमति ने पानी डाला और राजा (भीमक) ने पाँव धोये। समस्त तीर्थ (-स्थल) दौड़ते हुए आ गये और उन्होंने (श्रीकृष्ण के पाँवों के) तले (अपने-अपने) मस्तक को आगे बढ़ाया। ३८ भक्तजन देख सकते हैं कि अब भी मूल माधव में कदम्ब नामक तीर्थ (-स्थल) है। वहाँ के समस्त वृक्ष मण्डपाकार (स्थित) हैं। ३९ वेदों के जो (साक्षात) जनक हैं, उन कृष्णनाथ को यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहना दिया; शुद्धमति ने आचमन करा दिया। वह मन में आनन्द से भरी-पूरी थी। १४० (उन्होंने) सोलह उपचारों से पूजन करते हुए श्रीकृष्ण को वस्त्र और आभूषण (श्रद्धा-) भाव से प्रदान करके हाथ की अँगूठियों और कर्णमुद्रिकाओं-सहित रत्न समर्पित किये। १४१ देखिए, उन्होंने दही और मधु एकत्र मिलाकर श्रीकृष्ण के हाथ पर डाला, तो समस्त श्यालक (साले) हँसने लगे। वे बोले, 'संकोच न करो। ४२ गोकुल के दही को चुराकर खाते थे और हमारे द्वारा अर्पित करने पर उसका सेवन क्यों नहीं करते ?' (यह सुनकर) चारों ओर (उपस्थित) समस्त लोग असीम मौज-मज़े में हँस पड़े। ४३ सन्तजन तो आश्चर्य अनुभव कर रहे थे कि (ये लोग किस प्रकार) निर्गुण (ब्रह्म) में गुण आरोपित कर रहे हैं। अस्तु। श्रीकृष्ण ने मधुपर्क का सेवन करके हाथ धोये। ४४ आचार्य (पुरोहित) बोले, 'सावधान'। अन्तिम घड़ी पूर्ण भरने (रहने) जा रही थी, तो उन्होंने झट से अन्तःपट (वधूवर

सावधान। वादविवादीं न घालावें मन। प्रकृतिपुरुषांचें ऐक्यलग्न। मौनेंचि पूर्ण विलोका। ४६ प्रपंच आणि परमार्थ जाण। उभयपक्षीं सावधान। अनादि कुळदैवत स्मरोन। करावें चिंतन एकत्वें। ४७ ॐपुण्याहं वचनें ते वेळां। आचार्य बोलतां अंतःपट फिटला। वाद्यांचा गजर जाहला। तो सोहळा अद्‌भुत। ४८ भीमकीच्या माथां अक्षता देख। घाली जलजोद्भवाचा जनक। तेव्हांचि मस्तकीं ठेविला हस्तक। जन्मसार्थक जाहलें। ४९ मग बांधिलें ऐक्यकंकण। बाह्यापालवां गांठीं देऊन। आतां नोवरी कडिये घेऊन। चला म्हणती बहुल्यावरी। १५० ऐकोनि हांसे हृषीकेश। मेहुणे म्हणती हा अभ्यास। पूर्वींच आहे कीं तुम्हांस। खेळतां बहु रास यमुनातटीं। १५१ श्रीकृष्ण विदेही चैतन्यघन। अलिप्त परी नवरी उचलोन। बहुल्यावरी बैसवून। विधिविधान सर्व केलें। ५२ अपार वरदक्षिणा जाण। भीमक करी कृष्णार्पण। उभा ठाकला हस्त जोडून। म्हणे चतुर्थहोम येथें कीजे। ५३ शुद्धमतीनें जाऊनियां। देवकी आणिली सूनमुख पहावया। हळदीउटणें करावया। आरंभ केला सर्वेंचि। ५४

के बीच में) धर दिया— वह (वस्तुतः) मिथ्या मायामय ही था। ४५ पुरोहित बोला, 'सावधान! वाद-विवाद में मन न लगाएँ। प्रकृति-पुरुष को एकात्म कर देनेवाले इस विवाह को पूर्ण मौन के साथ ही देखिए। ४६ संसार और परमार्थ को ठीक से जानिए; दोनों पक्षों में (लोग) सावधान हो जाएँ। अनादि कुलदेवता का स्मरण करके एकात्म भाव से चिन्तन करें'। ४७ उस समय आचार्य द्वारा 'ॐ-पुण्याहम्' शब्द बोलते ही अन्तःपट हट गया, तो वाद्यों का गर्जन होने लगा। वह मंगल-समारोह अद्‌भुत था। ४८ देखिए, ब्रह्मा के पिता भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने रुक्मिणी के मस्तक पर अक्षत डाले। तभी उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा, तो (मानो) उसका जन्म (ग्रहण करना, जीवन) चरितार्थ हो गया। ४९ अनन्तर एकता-कंकण बाँधा गया। फिर दोनों (वर-वधू) के पल्लवों के छोरों की गाँठ लगाकर वे (लोग श्रीकृष्ण से) बोले, 'अब दुलहन को गोद में बैठाकर (उठा लेकर) विवाह-वेदी की ओर चलें'। १५० यह सुनकर कृष्ण हँसने लगे, तो साले बोले, 'पहले से ही तुम्हें इसका अभ्यास है। तुम यमुना-तट पर बहुत रास खेलते रहे'। १५१ (वस्तुतः) श्रीकृष्ण तो विदेही थे, चैतन्यघन थे, अलिप्त (विकारों से अछूते) थे। फिर परन्तु उन्होंने दुलहन को उठाकर विवाह-वेदी पर बैठाते हुए समस्त विधियों को सम्पन्न किया। ५२ जान लीजिए, अनन्तर भीमक ने श्रीकृष्ण को अपार वरदक्षिणा समर्पित की और वे हाथ जोड़े खड़े रहकर बोले, 'चतुर्थ होम यहाँ कीजिए'। ५३ (तत्पश्चात) शुद्धमति जाकर देवकी को बहू का मुँह देखने के लिए (मुँह दिखाई के लिए) ले आयी। साथ

हळदीउटणें पहावयासी। सर्व यादव आले वेगेंसीं। वऱ्हाडिणी म्हणती भीमकीसी। नांव घेऊनि पाय मागें। ५५ भीमकी पाहे खालतें। नामरूप नाहीं यातें। अनामासी नाम केउतें। ठेवूं आतां मध्येंचि। ५६ मग म्हणे हा सर्वात्मक। गोइंद्रियांचा चाळक। तेंचि नाम घेऊनि सम्यक। पाय मागें निजभावें। ५७ मग म्हणे गोरक्षका गोपाळा। हळदी लावूं द्या चरणकमळा। हांसे आलें जनां सकळां। एकचि टाळी पिटली पैं। ५८ कृष्णचरणीं माथा ठेवून। हळदी लावी स्वयेंकरून। तों मळी न निघे कदा जाण। निर्मळ पूर्ण श्रीकृष्ण। ५९ तों सुभद्रा आणि रेवती। म्हणती आतां कैसें श्रीपती। नमस्कार भीमकीप्रती। करावा लागेल आतांचि। १६० भीमकीच्या कंचुकीची गांठी। एक हस्तें सोडीं जगजेठी। नाहीं तरी नमस्कार उठाउठी। करावा जी नोवरीतें। १६१ मेहुणे म्हणती जगज्जीवना। कंचुकी सोडावयाच्या खुणा। हा पूर्वींच अभ्यास आपणा। असेल ऐसें वाटतें। ६२ यादव म्हणती श्रीपती। चौघे मेहुणे तुम्हांवरी रुसती। जो मान दिधला रुक्मियाप्रती। तोचि मागती आपणांतें। ६३ हांसें आलें

ही (तत्काल) उसने हलदी और उबटन (सम्बन्धी विधि) करना आरम्भ किया। ५४ समस्त यादव हलदी-उबटन देखने के लिए वेगपूर्वक आ गये। बारात की स्त्रियाँ रुक्मिणी से बोलीं, ‘ (पति का) नाम लेकर (बोलकर) पाँव माँगो ’। ५५ रुक्मिणी नीचे (सिर झुकाये) देखने लगी। (उसे लगा—) इनके तो कोई नाम-रूप नहीं हैं। (अतः) मैं अब बीच में ही अनाम का नाम कैसे रख दूँ। ५६ तब वह बोली (उसने सोचा—) ‘ ये सर्वात्मा हैं; वाक् और (अन्य) इन्द्रियों के चालक हैं। अतः मैं सम्यक् रूप से वही नाम लेकर (बोलकर) अपने भक्ति-भाव से (हलदी लगाने के लिए) पाँव माँग लूँगी। पाँव बढ़ाने को कहूँगी ’। ५७ अनन्तर वह बोली, ‘ हे गोरक्षक ’ हे गोपाल, (अपने) चरण-कमलों को हलदी लगाने दीजिए। ’ तो सब लोगों को हँसी आ गयी। उन्होंने एक साथ बेजोड़ रूप से तालियाँ बजायीं। ५८ रुक्मिणी ने कृष्ण के चरणों में सिर रखकर फिर स्वयं हलदी लगा दी। जान लीजिए, तब मैल तो बिलकुल नहीं छूट रही थी। (क्योंकि) श्रीकृष्ण पूर्णतः निर्मल थे। ५९ अनन्तर सुभद्रा और रेवती बोलीं, ‘ श्रीपति, अब कैसे ? तुम्हें अभी रुक्मिणी को नमस्कार करना पड़ेगा। १६० हे जगद्श्रेष्ठ, रुक्मिणी की कंचुकी की गाँठ को एक हाथ से खोल दो; नहीं तो दुलहन को झट से नमस्कार करो ’। १६१ तो साले बोले, ‘ हे जगज्जीवन (कृष्ण), कंचुकी उतारने की रीतियाँ जानते होगे— लगता है, तुमको तो इसका पहले से अभ्यास रहा होगा ’। ६२ (इसपर) यादव बोले, ‘ हे श्रीपति, ये चारों साले तुमसे रूठे हैं। तुमने जो सम्मान (गौरव) रुक्मी को प्रदान किया, वही ये

रमाधवा। दिव्य वस्त्रें भूषणें तेव्हां। दिधलीं शालकां सर्वां। श्रीकृष्णनाथें ते वेळीं। ६४ रेवती म्हणे कृष्णनाथा। कंचुकीची गांठी सोडावी आतां। बळिभद्र म्हणे अच्युता। भीड कासया धरावी। ६५ कृपादृष्टीं पाहे वनमाळी। तों आपणचि गांठी सुटली। अद्‌भुत लीला हरीनें दाविली। आश्चर्य वाटलें सकळिकां। ६६ सुभद्रा म्हणे माधवा। नांव घेऊनि हळदी लावा। हांसें आलें केशवा। काय तेव्हां बोलत। ६७ मजहूनि विशेषगुणी। रुक्मिणी तूं सगुण शहाणी। ऐकोनि हांसिजे थोरलहानीं। खूण सज्जनीं जाणिजे। ६८ हळदी घेऊनि कृष्णनाथ। रुक्मिणीचीं अष्टांगें निववित। रेवती म्हणे हळूच लावा जी निश्चित। मल्ल मस्त मर्दिले करें। ६९ असो ऐसे चारी दिवस। सोहळा जाहला विशेष। तो वर्णावया शेषास। शक्ति नव्हे सर्वथा। १७० यथासांग साडे जाहले देख। समस्तांसी वस्त्रें देत भीमक।

अपने लिए माँग रहे हैं'। ६३ (यह सुनकर) रमापति श्रीकृष्णनाथ को हँसी आयी। तब उन्होंने उस समय समस्त सालों को दिव्य वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। ६४ अनन्तर रेवती बोली, 'हे कृष्णनाथ, अब कंचुकी की गाँठ खोल देना।' तो बलराम बोले, 'हे अच्युत, संकोच किसलिए धारण कर रहे हो'। ६५ (इधर) जब वनमाली ने कृपा-दृष्टि से देखा, तो वह गाँठ अपने-आप खुल गयी। इस प्रकार श्रीहरि ने अद्‌भुत लीला प्रदर्शित की। (यह देखकर) सबको आश्चर्य अनुभव हुआ। ६६ (अनन्तर) सुभद्रा बोली, 'हे माधव, नाम बोलकर हलदी लगाओ।' तो कृष्ण को हँसी आयी। वे तब क्या बोले। ६७ 'हे रुक्मिणी, तुम मुझसे (अधिक) विशिष्ट गुणों से युक्त हो, सगुण हो, समझदार हो।' यह सुनकर बड़े-छोटे (समस्त लोग) हँस पड़े। सज्जन इस (कथन का) मर्म जान लें। ६८ (अनन्तर) कृष्णनाथ हलदी लेकर रुक्मिणी के आठों अंगों को शमन को प्राप्त कराने लगे, तो रेवती बोली, 'अहो, निश्चय ही हौले-हौले ही लगा दो— तुमने तो अपने हाथों उन्मत्त मल्लों का मर्दन किया'। १६९

अस्तु। इस प्रकार से यह मंगल समारोह विशेष रूप से चार दिन सम्पन्न होता रहा। शेष (तक) में उसका वर्णन करने की बिलकुल शक्ति नहीं है। १७० देखिए, (समस्त) अंगों-सहित विधि के अनुसार (विवाह के चौथे दिन) 'ऐरिणी पूजन'[1] करते हुए वधू को साड़ियाँ प्रदान करने का

---

१ ऐरिणी पूजन–– नामक विधि विवाह-संस्कार के उत्तरार्ध में सम्पन्न की जाती है। यह लौकिक आचार है। महाराष्ट्र में इसे 'झाल' भी कहते हैं। 'ऐरिणी' कहते हैं उस पात्र को जो बाँस की पट्टियों से बनाया जाता है। कन्या का पिता वर की माता को यह पात्र वंशवृद्धि के हेतु प्रदान करना है। इस पात्र में कुछ मिष्टान्न, कच्चे पापड़ आदि भोज्य पदार्थ पत्तल पर सजाकर रखे जाते हैं। उसमें गेहूँ के आटे के बने पन्द्रह दीप प्रज्वलित करके रखते हैं और सोलहवाँ दीप उनके बीच में रखते हैं।*

न्यून पदार्थ कांहीं एक। पडला नाहीं तेथें पैं। १७१ धडा नाचविला निश्चित। तों दळ सिद्ध जाहलें समस्त। शुद्धमतीनें भीमकी त्वरित। वोसंगा घातली देवकीच्या। ७२ इतुके दिवस आम्हीं पाळून। आतां केली कृष्णार्पण। भीमक शुद्धमति गहिवरोन। रुक्मिणीसी निरविती। ७३ लागला वाद्यांचा गजर। द्वारकेसी चालिला यादवेंद्र। आज्ञा घेऊनि भीमक नृपवर। कौंडिण्यपुरा पातला। ७४ द्वारकेसी आला गोविंद। घरोघरीं लोकांसी आनंदानंद। रुक्मिणीसहित परमानंद। गृहप्रवेश पैं केला। ७५ षोडशोपचारेंकरून। भीमकी करी लक्ष्मीपूजन। उग्रसेनें भांडार फोडोन। याचकजन सुखी केले। ७६ रुक्मिणीसहित श्रीकृष्णनाथ। द्वारकाभुवनीं

समारोह[1] सम्पन्न हुआ। (तदनन्तर) भीमक ने सबको वस्त्र प्रदान किये। वहाँ किसी पदार्थ की कोई न्यूनता नहीं जान पड़ी। १७१ निर्धारित रीति से वधू-वर को कन्धे पर लेकर नचाया गया ('धेंडा' नचाया गया)[2]। तब समस्त यादव दल (प्रस्थान के लिए) सिद्ध हो गया। तो शुद्धमति ने रुक्मिणी को देवकी की गोद में डाल दिया। ७२ (वह बोली—) 'हमने इसका पालन करके अब इसे कृष्ण को समर्पित किया है।' (फिर) भीमक और शुद्धमति ने गद्‌गद होकर रुक्मिणी को बिदा किया। ७३ वाद्यों का गर्जन होने लगा। यादवेन्द्र कृष्ण द्वारका के प्रति चले गये। (इधर) बिदा लेकर नृपवर भीमक कौण्डिण्यपुर पहुँच गये। ७४ (जब) श्रीकृष्ण द्वारका में आ गये, तो घर-घर लोगों को आनन्द ही आनन्द हो गया। परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी-सहित घर में प्रवेश किया। ७५ (अनन्तर) रुक्मिणी ने सोलह उपचार-सहित लक्ष्मी का पूजन किया। (इधर) उग्रसेन ने भण्डार खोलकर याचक जनों को (दान देते हुए) सुखी तृप्त

---

*तदनन्तर कन्या के माता-पिता उस पात्र का पूजन करके वर की माता को प्रदान करते हैं। फिर यह 'वंशपात्र' या 'झाल' वरपक्ष के प्रमुख व्यक्तियों के सिर पर बारी-बारी से धरे जाते हैं और वधू को उनकी गोद में बैठाते हैं। इसके पश्चात वधू का पिता वर-पक्ष के गुरुजनों से कन्या का प्रेमपूर्वक पालन करने की विनती करता है। अन्त में वधू सोलह ब्राह्मणों को वायन समर्पित करती है।

१ वधू को साड़ियाँ प्रदान करने की इस विधि को 'साड़े' कहते हैं।

२ 'धेंडा' विवाह-संस्कार में प्रचलित एक लोकाचार। कहीं विवाह के पश्चात बारात के लौटने के समय वधू के यहाँ, तो कहीं बारात वर के घर लौटने के पश्चात वर के घर में यह विधि सम्पन्न करते हैं। इसके अनुसार एक व्यक्ति वर और वधू को कन्धों पर बैठाकर नाचता है और देवी-देवता विषयक गीत गाता है। उस समय मंगल-वाद्य भी बजाये जाते हैं। यह विधि विवाह के निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में सम्पन्न करते हैं। उस नाचनेवाले व्यक्ति को (तथा आचार को भी) 'धेंडा' कहते हैं और उपर्युक्त आचार को 'धेंडा नचाना' बोलते हैं। इस लोकाचार का महत्त्व तब अधिक था, जब समाज में बाल-विवाह प्रथा रूढ़ थी।

सुखें वर्तत। शुक परीक्षितीप्रति सांगत। जाहला गृहस्थ गोपाळ। ७७ हरिविजय ग्रंथ भांडार। त्यांत दिव्यरत्न हें रुक्मिणीस्वयंवर। ते दोन्ही अध्याय साचार। तेविसावा आणि चोविसावा। ७८ आतां श्रोतीं व्हावें सादर। पुढें जांबवतीचें स्वयंवर। ते कथा परम नागर। ऐकती चतुर पंडित पैं। ७९ हा हरिविजय ग्रंथ सुरेख। हाचि अरुवार शेषमंचक। यावरी पहुडे वैकुंठनायक। रुक्मिणीसहित सर्वदा। १८० ब्रह्मानंदा जगदुद्धारा। पंढरीनिवासा श्रीधरवरा। पुराणपुरुषा रुक्मिणीप्रियकरा। सप्रेम भजन देईं तुझें। १८१ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। सदा परिसोत भाविक भक्त। चतुर्विंशतितमाध्याय गोड हा। १८२

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

किया। ७६ (तत्पश्चात) श्रीकृष्णनाथ रुक्मिणी-सहित द्वारका नगर में सुखपूर्वक रहने लगे। शुक मुनि राजा परीक्षित से बोले, (इस प्रकार) गोपाल गृहस्थ बन गये। १७७

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (धन-) भण्डार है। उसके अन्दर 'रुक्मिणी स्वयंवर' (सम्बन्धी यह आख्यान) दिव्य रत्न है। उसके (वर्णन वाले) वे दोनों— तेईसवाँ और चौबीसवाँ —अध्याय (रत्न) हैं। १७८ अब श्रोता तत्पर हो जाएँ। आगे 'जाम्बवती का स्वयंवर' (नामक आख्यान प्रस्तुत किया जा रहा) है। वह कथा परम सुन्दर है। चतुर पण्डित उस कथा का (नित्य) श्रवण करते हैं। ७९ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ सुन्दर-सुघड़ है। यही (मानो) शेष रूपी मृदु पलंग (शय्या) है। इसपर रुक्मिणी-सहित वैकुण्ठनाथ विष्णुस्वरूप कृष्ण सदा पौढ़े हुए हैं। १८० हे (गुरु) ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म), हे जगत के उद्धार-कर्ता, हे पण्ढरपुर में निवास करनेवाले, हे श्रीधरवर, हे पुराणपुरुष, हे रुक्मिणी के प्रियकर, (मुझे) अपनी प्रेमसहित भक्ति दान में दीजिए। १८१

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। श्रद्धाशील भक्त इसके इस मधुर चौबीसवें अध्याय का नित्य श्रवण करें। १८२

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२५

[स्यमन्तक मणि-हरण कथा]

श्रीगणेशाय नमः ।। जो लावण्यामृतसागर । सगुणलीलाविग्रही यदुवीर । मुकुटीं तेज झळके अपार । शशिमित्र झांकुळती । १ दिक्चक्राचिये वदनीं । तें तेज न माये गगनीं । मकराकार श्रवणीं । दिव्य कुंडलें तळपती । २ कीं ते अनंत विजांचे उमाळे । कीं प्रळयाग्नीनें उघडिले डोळे । कीं अनंत बालसूर्य उगवले । प्रकाशलें स्वरूप तैसें । ३ मेरुपाठारीं सुंदर । वाहे सुवर्णनदीचा पूर । तैसा टिळक मनोहर । विशाळ भाळीं झळकतसे । ४ चंदनचर्चित श्यामकांती । सुवासें भरली द्वारावती । जनघ्राणदेवता नाचती । निजानंदेंकरूनियां । ५ मुक्ताफळांच्या रुळती माळा । तेजें झांकती चंद्रकळा । कीं तीं अनंत ब्रह्मांडें गळां । मौक्तिकरूपें डोलती । ६ ऐसा द्वारकेसी मुरहर । रुक्मिणीमनचकोरचंद्र । कीं तो स्वानंदामृतसागर । भक्तांलागीं अवतरला । ७ चोविसावे अध्यायीं चरित्र । झालें रुक्मिणीचें

श्रीगणेशाय नमः । जो लावण्य रूपी अमृत के सागर हैं, जो (वस्तुतः स्वयं निर्गुण होने पर भी) सगुण शरीर रूपों में अवतार ग्रहण करके लीलाएँ करनेवाले यदुवीर श्रीकृष्ण हैं, उनके मुकुट का अपार तेज जगमगाता रहता था; उससे चन्द्र और सूर्य (तक) धुँधले होते (जान पड़ते) हैं । १ उसका वह तेज दिशाओं के मण्डल के मुख में, गगन में नहीं समाता था । उनके कानों में मकराकार दिव्य कुण्डल जगमगाते थे । २ अथवा वे असंख्य बिजलियों के प्रवाह हों, अथवा (उनके रूप में) प्रलयाग्नि ने आँखों को खोला हो, अथवा असंख्य बालसूर्य उदित हुए हों, उसी प्रकार उनका स्वरूप प्रकाशमान हो गया था । ३ (जिस प्रकार) मेरु पर्वत के पठार पर सुवर्ण नदी का प्रवाह बहता हो, उस प्रकार उनके विशाल भाल पर मनोहारी तिलक चमकता था । ४ चन्दन-चर्चित उनकी श्याम देह की कान्ति (शोभायमान) थी । सुगन्ध से द्वारावती नगरी भर गयी थी । लोगों के नाक की अधिष्ठात्री देवियाँ (उस सुगन्ध से तृप्त होकर) आत्मानन्दपूर्वक नाचती थीं । ५ (गले में) मोतियों की मालाएँ शोभा के साथ झूलती थीं । वे अपने तेज से चन्द्रकला को आच्छादित करती थीं (फीकी, धुँधली कर देती थीं) । अथवा उनके गले में अनन्त ब्रह्माण्ड मोतियों के रूप में डोलते-झूमते थे । ६ ऐसे मुरहर भगवान कृष्ण, जो रुक्मिणी के मन रूपी चकोर के लिए चन्द्र हैं, अथवा जो आत्मानन्द रूपी अमृत के सागर हैं, भक्तों के लिए द्वारका में अवतरित थे । ७ चौबीसवें अध्याय में (यहाँ तक) श्रीकृष्ण-चरित का कथन हुआ—

स्वयंवर। विजयी होऊनि श्रीधर। द्वारावतीये पातला। ८ यावरी यादव सत्राजित। परम अनुष्ठानी शुचिष्मंत। प्रसन्न केला तेणें आदित्य। बहुत तप करूनियां। ९ मुख्य दैवत सूर्यनारायण। सूर्यानुष्ठानें श्रेष्ठ ब्राह्मण। वरकड दैवतें कल्पित पूर्ण। चंडकिरण प्रत्यक्ष। १० सूर्यमंडळ विलोकून। नित्य न करिती जे कां नमन। ते अभागी परम अज्ञान। अल्पायुषी जाणावे। ११ व्यासवाल्मीकादि ऋषी सकळ। वर्णिती अद्भुत सूर्यमंडळ। सूर्यउपासक सदा सुशीळ। यम काळ वंदी तया। १२ असो सत्राजितासी सूर्यनारायण। तपांतीं झाला वो प्रसन्न। म्हणे इच्छित माग वरदान। काय वचन बोले तो। १३ म्हणे दर्शनें पूर्ण मनोरथ। ऐकोनि संतोषला आदित्य। मग स्यमंतक मणि अद्भुत। प्रसाद देत सत्राजिता। १४ नित्य प्रसवे अष्टभार सुवर्ण। सूर्यासम प्रभा परिपूर्ण। व्याधि सर्प व्याघ्र अवर्षण। देशांतूनि दूरी जाय। १५ तो मणि घेऊनि त्वरित। नगरासी आला सत्राजित। गजरें महोत्साह करीत। स्वगृहातें प्रवेशला। १६ तों एके

रुक्मिणी का स्वयंवर सम्पन्न हो गया और श्रीधर कृष्ण विजेता होकर द्वारावती नगर में लौट आये। ८ इसके पश्चात अब (यह कहना है)— सत्राजित नामक एक यादव परम अनुष्ठान करनेवाला तथा पवित्र (आचरणवाला) था। उसने बहुत तप करके सूर्य को प्रसन्न कर लिया। ९ सूर्यनारायण मुख्य देवता है। सूर्य के अनुष्ठान से ब्राह्मण श्रेष्ठ हो जाता है। अन्य देवता पूर्णतः कल्पित हैं, (जब कि) चण्डकिरण सूर्य प्रत्यक्ष (यथार्थ रूप) है। १० सूर्यमण्डल को देखकर नित्यप्रति जो नमन नहीं करते, उनको अभागे, परम अज्ञान, अल्पायुषी समझिए। ११ व्यास, वाल्मीकि आदि समस्त ऋषियों ने अद्भुत सूर्यमण्डल का वर्णन किया है। सूर्य का उपासक सदा सच्चरित्र (सच्छील) होता है। यम कालपुरुष उसका वन्दन करते हैं। १२ अस्तु। तपस्या के अन्त में सूर्यनारायण सत्राजित से प्रसन्न हो गया और बोला, 'अपना इच्छित वरदान (में) माँग लो'। तब वह क्या बात बोला। १३ वह बोला, '(तुम्हारे) दर्शन से मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ'। यह सुनकर सूर्य तुष्ट हुआ। तब उसने प्रसाद के रूप में स्यमन्तक नामक अद्भुत मणि सत्राजित को प्रदान की। १४ वह मणि नित्यप्रति आठ भार (एक भार = ८००० तोला) सोने को जन्म देती थी (निर्मित करता थी)। उसकी कान्ति सूर्य की कान्ति के पूर्णतः समान होती थी। (उस मणि के प्रभाव से) व्याधियाँ, सर्प, बाघ, अवर्षण (सूखा) देश से दूर जाते थे। १५ सत्राजित उस मणि को लेकर झट से अपने नगर आ गया। गर्जन-सहित (गाजे-बाजे के साथ) महान उत्सव को सम्पन्न करते हुए वह अपने घर में प्रविष्ट हुआ। १६ अनन्तर एक दिन स्यमन्तक मणि को गले में पहनकर अपनी

विवशीं सत्राजित । गळां घालोनि स्यमंत । निजभारेंसीं त्वरित । द्वारावतीये पातला । १७ दुरूनि देखतां नृपवर । म्हणती उतरला दिनकर । दैत्यें गांजिलें म्हणोनि सत्वर । शरण आला हरीतें । १८ हरीसी सांगती सेवकजन । भेटीसी आला सहस्रकिरण । मग बोले वसुदेवनंदन । सत्राजित येत असे । १९ ऐसें बोलतां वैकुंठनाथ । तों अकस्मात आला सत्राजित । मान देऊनि बहुत । सभेमाजी बैसविला । २० स्यमंतक मणि देखोन । तटस्थ झाले सभाजन । तों नारदमुनि उठोन । कृष्णकर्णीं लागला । २१ म्हणे हा स्यमंतकमणी । तुमचे कंठीं असावा चक्रपाणी । याचें तेज कौस्तुभाहूनी । विशेष मज वाटतसे । २२ हरि म्हणे कैसा येईल हाता । येरु म्हणे मी मागतों सत्राजिता । मग बोले पद्मजातपिता । मणि सर्वथा नेदी तो । २३ मग म्हणे नारदमुनी । तुमच्याचि घरा येईल मणी । यावरी ब्रह्मनंदन तेचि क्षणीं । सत्राजिताजवळी आला । २४ म्हणे धन्य धन्य तूं सत्राजित । तुज प्रसन्न जाहला आदित्य । या स्यमंतक मण्याचें तेज अमित । ऐसी वस्तु तुज दिधली । २५ ऐसा हा मणि सगुण । जरी करिसी कृष्णार्पण । तरी

सेना-सहित शीघ्र गति से द्वारका आ गया । १७ उस नृपश्रेष्ठ (सत्राजित नामक यादव) को दूर से देखकर लोग बोले (लोगों को जान पड़ा)— सूर्य (भूमण्डल पर) उतर आया है । दैत्यों ने तंग किया (होगा), इसलिए यह झट से श्रीकृष्ण की शरण में आ गया है । १८ सेवकजन वसुदेव-नन्दन श्रीहरि से बोले, ' सहस्रकिरण (सूर्य) मिलने आया है ' । तो वे बोले, ' यह तो सत्राजित आ रहा है ' । १९ वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण द्वारा ऐसा बोलते रहते, यकायक सत्राजित (वहाँ) आ गया । तो उन्होंने उसका बहुत सम्मान करके सभा में बैठा लिया । २० सभाजन उस स्यमन्तक मणि को देखकर चकित हो उठे; तब नारद उठकर श्रीकृष्ण के कान लग गये । २१ वे बोले, ' हे चक्रपाणि, यह स्यमन्तक मणि तुम्हारे कण्ठ में होनी चाहिए । मुझे इसका तेज कौस्तुभ से अधिक जान पड़ता है ' । २२ (इसपर) श्रीहरि बोले, ' (परन्तु) यह (मेरे) हाथ कैसे आ जाएगी ? ' तो वे (नारद) बोले, ' मैं सत्राजित से माँग लेता हूँ ' । तब ब्रह्मा के पिता विष्णुस्वरूप कृष्ण बोले, ' वह यह मणि बिलकुल नहीं देगा ' । २३ तब नारदमुनि बोले, ' यह मणि तुम्हारे ही घर आ जाएगी ' । इसके पश्चात ब्रह्मनन्दन नारद उसी क्षण सत्राजित के पास आये । २४ वे बोले, ' हे सत्राजित, तुम धन्य हो, धन्य हो । तुम पर सूर्य प्रसन्न हो गया । इस स्यमन्तक मणि का तेज अपरिमित है । (इसलिए तो) उसने ऐसी वस्तु तुम्हें दे दी । २५ हे राजा, यदि तुम ऐसी यह विशेषतायुक्त मणि श्रीकृष्ण को समर्पित कर दोगे, तो तुम्हारी कीर्ति

त्रिभुवनीं कीर्ति पूर्ण। तुझी राया ठसावेल। २६ ऐकतां ऐसें नारदवचन। सत्राजित जाहला क्रोधायमान। म्हणे तुमच्या सभे आजिपासून। न यों आम्ही सर्वथा। २७ कृष्ण असे गोरसचोर। महाकपटी अकर्मी जार। हाचि काय मणि लेणार। जाहला थोर अवघ्यांत। २८ ऐसें बोलोनि क्रोधें उठिला। स्वभारेंसीं नगरा गेला। मणि नेऊनि देव्हारां ठेविला। मग पूजिला यथासांग। २९ तों रायाचा धाकुटा सहोदर। प्रसेन नामें महावीर। तेणें आपुल्या कंठीं मणि सुंदर। एके दिवशीं घातला। ३० सवें घेऊनि चतुरंग दळ। मृगयेसी प्रसेन निघे तत्काळ। तों एक मृग देखिला चपळ। प्रसेन वेगें धांविन्नला। ३१ दळभार दूरी राहिला। प्रसेन घोर कांतारीं प्रवेशला। परी स्यमंतक तेजागळा। गळां झळके धांवतां। ३२ असंभाव्य तेज देखोन। गिरिदरींतूनि उठिला पंचानन। भयानक हांक देऊन। प्रसेनावरी पडियेला। ३३ अश्वासहित प्रसेन मारून। सिंह चालिला मणि घेऊन। तों जांबुवंत हिंडत विपिन। त्याचि पंथें येतसे। ३४ देखोनि मणियाचें तेज। वेगें धांविन्नला ऋक्षराज। एकयाचि मुष्टिघातें तेणें सहज।

त्रिभुवन में पूर्णतः जम जाएगी'। २६ नारद की ऐसी बात सुनते ही सत्राजित क्रोधायमान हो उठा और बोला, 'आज से हम तुम्हारी सभा में बिलकुल नहीं आएँगे। २७ कृष्ण गोरस-चोर है, वह महाकपटी, पापी, जार है। क्या सबमें मणि धारण करनेवाला यही बड़ा हो गया है?'। २८ ऐसा बोलकर वह क्रोध से उठ गया; अपने दल-सहित अपने नगर गया। (अनन्तर) उसने वह मणि ले जाकर देवघरे में रख दी और फिर उसका अंग-सहित यथाविधि पूजन किया। २९ तो उस राजा का प्रसेन नामक छोटा भाई महान वीर पुरुष था। उसने एक दिन वह सुन्दर मणि अपने गले में पहन ली। ३० साथ में चतुरंग[1] सेना लेकर प्रसेन तत्काल मृगया के लिए चल पड़ा। तब उसने एक चपल मृग को देखा, तो वह (प्रसेन) वेगपूर्वक दौड़ा। ३१ (सेना) दल दूर रह गया; (इधर) प्रसेन (अकेला) घोर वन में प्रविष्ट हो गया। परन्तु तेज में अनोखी अद्‌भुत वह स्यमन्तक मणि उसके दौड़ते (रहने पर), गले में चमक रही थी। ३२ उसके असम्भाव्य तेज को देखकर एक सिंह पर्वत की घाटी में से उठ गया। भयानक रूप से दहाड़ते हुए वह प्रसेन पर टूट पड़ा। ३३ अश्व-सहित प्रसेन को मारकर वह सिंह मणि लेकर चला जाने लगा; तब जाम्बवान वन में विचरण कर रहा था। वह उसी रास्ते से आ रहा था। ३४ उस मणि के तेज को देखते ही ऋक्षराज जाम्बवान वेगपूर्वक दौड़ा और एक ही घूँसे से उसने आसानी से सिंह को मार डाला। ३५

---

१ चतुरंग सेना—पदातिदल, अश्वदल, हस्तिदल और रथदल, इनमें से प्रत्येक प्रकार का दल सेना का 'अंग' कहाता है।

सिंह मारूनि टाकिला । ३५ बाहात्तर कोटी रीस गणित । तयांचा नृप एक जांबुवंत । जेणें मेरूवरूनि उडी अकस्मात । पृथ्वीवरी घातली । ३६ ते वेळीं सूर्यरथींचें चक्र । मांडीस झगटलें अणुमात्र । तो ब्रह्मयाचा अवतार । रामकार्या साह्य जाहला । ३७ श्रीरामाचें परम प्रीतिपात्र । राघव घडिघडी पुसे त्यासी विचार । जो बहुकाळाचा वृद्ध साचार । परम चतुर पंडित जो । ३८ पूर्वीं श्रीरामें रावण मारून । अयोध्येसी आला परतोन । अकरा सहस्र वर्षें पूर्ण । राज्य केलें रघुवीरें । ३९ एके दिवशीं अयोध्यानाथ । सभेसी बैसला असतां समर्थ । तों कर जोडूनि जांबुवंत । विनवीतसे श्रीरामातें । ४० रावण कुंभकर्ण तुम्हीं वधिले । बहुत राक्षस आम्हीं मर्दिले । परी मजशीं मल्लयुद्धासी मिसळे । ऐसा वीर न देखों । ४१ मग बोले जनकजावर । तुजशीं भिडे ऐसा वीर । कोणी दिसतो साचार । सांगें मज सर्वज्ञा । ४२ जांबुवंत म्हणे कौसल्यात्मजा । तुजविण वीर न दिसे दुजा । तुजशीं झोंबी घ्यावी ऐसा माझा । मनोरथ पूर्ण असे पैं । ४३ ऐकोनि हांसिन्नला श्रीराम । गोष्टी बोललासी उत्तम । परी कृष्णावतारीं

रीछ गिनती में (कुल) बहत्तर करोड़ थे । उनका एक मात्र राजा था जाम्बवान, जिसने (पूर्वकाल में) मेरु पर्वत पर से सहसा छलाँग लगायी थी । ३६ उस समय सूर्य के रथ का चक्र उसकी जाँघ से अणुमात्र (जरा-सा) घिसता हुआ छू गया । वही ब्रह्मा का अवतार जाम्बवान प्रभु राम के कार्य में सहायक हो गया । ३७ वह राघव श्रीराम के प्रीति के लिए परम योग्य था । जो सचमुच बहु काल से, अर्थात अवस्था में बड़ा वृद्ध था और परम चतुर पण्डित (विद्वान) था, उस (जाम्बवान) से वे घड़ी-घड़ी (बार-बार) सलाह माँगते (विचार-विमर्श करते) थे । ३८ पूर्वकाल में रघुवीर राम रावण को मारकर अयोध्या लौट आये । और उन्होंने पूर्ण ग्यारह सहस्र साल राज्य किया । ३९ एक दिन अयोध्यानाथ सामर्थ्यशील श्रीराम जब सभा में बैठे हुए थे, तो जाम्बवान ने हाथ जोड़कर उनसे विनती की । ४० (वह बोला—) 'तुमने रावण, कुम्भकर्ण का वध किया । हमने बहुत राक्षसों को रौंद डाला । परन्तु मैं ऐसा वीर (कहीं) नहीं देख रहा हूँ, जो मुझसे मल्लयुद्ध में परम रोषपूर्वक भिड़ सके' । ४१ तब जानकीपति बोले, 'हे सर्वज्ञ, सचमुच जो तुमसे भिड़ सके, ऐसा कोई वीर दिखायी दे रहा हो, तो मुझसे कह दो' । ४२ तो जाम्बवान बोला, 'हे कौसल्यात्मज, तुम्हारे अतिरिक्त, कोई दूसरा वीर नहीं दिखायी दे रहा है । मेरी पूरी मनोकामना है कि तुमसे (हम) नियुद्ध करें (कुश्ती लड़ें)' । ४३ यह सुनकर श्रीराम हँस पड़े (और बोले—) 'तुमने उत्तम बात कही, फिर भी जान लो कि मैं तुम्हारा यह हेतु कृष्णावतार (काल) में पूर्ण करूँगा । ४४ स्यमन्तक मणि के निमित्त

हा नेम। पूर्ण करीन जाण पां। ४४ स्यमंतक मण्याचे काजें। तुम्ही आम्ही भिडों सहजें। त्यावरी मग रघुराजें। अवतार आपुला संपविला। ४५ मग पाताळविवरीं जांबुवंत। बहुत दिवस काळ क्रमीत। सहज बाहेर आला अकस्मात। तंव तो मणि सांपडला। ४६ सिंहावलोकनेंकरून। पहा मागील अनुसंधान। जांबुवंतें मारूनि पंचानन। मणि घेऊनि गेला तो। ४७ प्रवेशला विवराभीतरीं। मणि बांधिला पाळण्यावरी। जांबुवंती नामें कुमरी। बहु आवडे पितयातें। ४८ इतुका वृत्तांत वर्तला। परी आळ श्रीहरीवरी आला। म्हणती प्रसेन कृष्णें मारिला। मणि नेला चोरोनि। ४९ लोकापवाद बोलती जनीं। लागती एक एकाचे कर्णीं। कृष्णें ऐसी करूं नये करणी। मणियासाठीं सर्वथा। ५० सत्राजित पाठवीत सांगून। मणि नेला आमुचा बंधु मारून। कृष्णासी सांगती सेवकजन। वर्तमान जें जाहलें। ५१ मग म्हणे वनमाळी। हा डाग लागला यादवकुळीं। धुवोनियां तत्काळीं। शुद्ध करावा लागेल। ५२ सवें घेऊनि यादवभार। चतुरंग दळ समग्र। शोधावया रुक्मिणीवर। अरण्यामाजी चालिला। ५३ जो वैकुंठपुरींचा सुकुमार। तो शोधीत बहु कांतार। तों देखिलें प्रसेनाचें

हम-तुम यों ही भिड़ जाएँगे'। तदनन्तर फिर रघुराज राम ने अपना अवतार (-कार्य) समाप्त किया। ४५ तब जाम्बवान पाताल के एक विवर में बहुत दिन समय व्यतीत करता रहा। (एक दिन) वह स्वाभाविक रीति से (यों ही) सहसा बाहर आ गया, तब उसे वह मणि मिल गयी। ४६ सिंहावलोकन करते हुए पिछली कथा का क्रम देखिए। (कहा गया है—) जाम्बवान सिंह को मारकर उस मणि को ले गया। ४७ (फिर) वह विवर के भीतर पैठ गया। उसने वह मणि पालने के ऊपर बांध दी। जाम्बवती नामक कन्या अपने उस पिता को बहुत प्यारी लगती थी। ४८ इतनी घटना घटित हुई। फिर भी श्रीकृष्ण पर (मिथ्या) आरोप आ गया। (लोग) कहते थे, 'श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मार डाला और वे मणि चुराकर ले गये'। ४९ जनसमाज में (श्रीकृष्ण की) निन्दा की बातें बोलते थे। लोग एक-दूसरे के कान लगते थे (और कहते), 'मणि के लिए श्रीकृष्ण को ऐसी करनी बिलकुल नहीं करनी चाहिए थी'। ५० सत्राजित ने कहकर (समाचार) भेजा—'हमारे भाई को मारकर (श्रीकृष्ण) मणि ले गया'। सेवक जनों ने कृष्ण से (उस घटना का) समाचार कहा, जो घट गयी थी। ५१ तब वनमाली बोले, 'यादव-कुल में यह दाग़ लग गया है; उसे तत्काल धोकर साफ़ करना पड़ेगा'। ५२ साथ में यादवों के समुदाय और समग्र चतुरंग दल लेकर रुक्मिणी-पति कृष्ण (यथार्थ बात की) खोज करने के लिए अरण्य में चले गये। ५३ जो वैकुण्ठपुर के सुकुमार (राजा) थे, उन्होंने वन में बहुत खोज लिया।

कलेवर। विदारोनि पाडिलें। ५४ माग पाहिला गोपाळें। तों उमटलीं सिंहाचीं पाउलें। मग तैसेचि लोक चालिले। तों सिंहाचें देखिलें प्रेत वाटे। ५५ तेथूनि उमटलीं रिसाचीं पाउलें। मग तैसेचि पुढें चालिले। तों घोर विवर देखिलें। लोक थोपिले तेथेंचि। ५६ विवर दिसे भयानक। सकळांसी म्हणे द्वारकानायक। तुम्हीं द्वारकेसी जावें सकळिक। सैन्य घेऊनि माघारें। ५७ मणियाविण अवधारा। मी सर्वथा न यें द्वारकापुरा। अठ्ठाविसावे दिवशीं माघारा। येईन सत्य जाणिजे। ५८ द्वारकेसी लोक आले समस्त। अवघें नगर चिंताक्रांत। सत्राजितासी शापित। आळ घातला म्हणोनियां। ५९ रुक्मिणी होऊनि व्रतस्थ। देवीचें आराधन करी नित्य। क्षेमें यावा द्वारकानाथ। याचि स्वार्थेंकरूनियां। ६० असो इकडे विवरांत। प्रवेशला कमलोद्भवतात। कृष्णप्रभेनें विवर उजळत। अंधार तेथें कैंचा हो। ६१ विवर क्रमिलें गोपाळें। तों ऋक्षपतीचें नगर देखिलें। पर्वताकार रीस बैसले। महाद्वार रक्षीत। ६२ हातीं धरूनि जपमाळ। अवघे रामउपासक निर्मळ। रामस्मरण सदाकाळ। करिती नेत्र

तो उन्होंने देखा कि प्रसेन का कलेवर विदीर्ण करके गिरा दिया गया है। ५४ जब श्रीकृष्ण ने मार्ग (में) देखा, तो (दिखायी दिया कि) सिंह के पाँव अंकित हैं। अनन्तर लोग वैसे ही चले जाने लगे, तो रास्ते में उन्होंने सिंह का प्रेत (पड़ा हुआ) देखा। ५५ वहाँ से रीछ के पाँव अंकित हुए थे। फिर वे वैसे ही आगे चले गये, तो उन्होंने एक घोर विवर देखा। (अतः) लोग वहीं रुक गये। ५६ वह विवर भयानक दिखायी दे रहा था। तो द्वारकापति सबसे बोले, 'तुम सब सेना को लेकर द्वारका लौट जाओ। ५७ सुनो, मैं बिना मणि को लिये, द्वारकापुरी बिलकुल नहीं आऊँगा। यह सत्य समझ लो कि मैं अट्ठाईसवें दिन लौट आऊँगा'। ५८ (अतः) समस्त लोग द्वारका आ गये। समस्त नगर चिन्ताक्रान्त हो उठा। मिथ्या आरोप लगाया, इसलिए वे सत्राजित को अभिशाप देने लगे। ५९ (इधर) व्रतस्थ होकर (व्रत रखते हुए) रुक्मिणी नित्य देवी की अपने इसी हेतु से आराधना करती रही कि द्वारकापति सकुशल (लौट) आ जाएँ। ६० अस्तु। इधर ब्रह्मा के पिता भगवान विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण विवर में प्रविष्ट हो गये। वह विवर श्रीकृष्ण के तेज से उजाले को प्राप्त हो गया। वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता था। ६१ श्रीकृष्ण ने विवर (के अन्दर का मार्ग) तय किया, तो ऋक्षपति का नगर दिखायी दिया। (वहाँ) पर्वताकार रीछ महाद्वार की रखवाली कर रहे थे। ६२ वे समस्त पाप रूपी मैल से रहित, राम के उपासक थे। हाथ में जप-माला लेकर वे नित्यकाल आँखें मूँदकर राम का स्मरण करते थे। ६३ नगर के चारों ओर पन्ना नामक रत्न की

लावूनियां । ६३ नगराभोंवतीं मर्गजपोंवळी । त्याहीवरी लिहिल्या रामनामावळी । असो तो नाटकी वनमाळी । गुप्तरूपें आंत गेला । ६४ जांबुवंताचे निजमंदिरीं । कमलदलाक्ष तो कंसारी । प्रवेशला तों पालखावरी । मणि बांधिला देखतसे । ६५ तंव त्या जांबुवंताच्या अंगना । दृष्टीं देखती जगन्मोहना । म्हणती याचिया सुंदरपणा । मदन उणा वाटतसे । ६६ दिव्य मुकुट कर्णीं कुंडलें । आकर्णपर्यंत नेत्रोत्पलें । सगुण रूप सांवळें । वदन सुहास्य उदार । ६७ चतुर्भुज तमालनील । गळां वैजयंती देत डोल । पीतवसन वेल्हाळ । कटीं मेखळा शोभतसे । ६८ मदनमनोहर सांवळा । अकस्मात कोठूनि आला । एक लाज सांडूनि ते वेळां । श्रीरंगाशीं बोलत । ६९ त्रैलोक्यसुंदरा मनमोहना । कोमलांगा राजीवनयना । तुज विलोकितां आमुच्या नयनां । समाधान जाहलें । ७० जिचे कुशीं हे मूर्ति निपजली । धन्य धन्य ते तुझी माउली । जे तुझे पाठीं बैसली । किती तपली तप न कळे । ७१ निद्रिस्थ आहे जांबुवंत । तों तूं येथूनि जाय त्वरित । हा जागा झालिया निश्चित । तुज ग्रासील सगळाचि । ७२ जा तुज विधलें

चहारदीवारी थी । उसी पर भी राम की नामावलियाँ लिखित थीं । अस्तु । वे नाटकिये बनमाली गुप्त रूप से अन्दर गये । ६४ जाम्बवान के स्वयं के प्रासाद में जब वे कमलदलाक्ष कंसारि प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने पालने पर वह मणि बँधी हुई देखी । ६५ तब उस जाम्बवान की स्त्रियों ने अपनी आँखों से जगन्मोहन कृष्ण को देखा, तो उन्होंने कहा (उन्हें जान पड़ा), 'इसकी सुन्दरता की तुलना में कामदेव कम (छोटा, घटिया) लगता है'। ६६ (देखा कि) उनका मुकुट दिव्य है; कानों में कुण्डल हैं; नयन-कमल आकर्ण (विशाल) हैं; श्याम रूप ने सगुण देह धारण की है; मुख सुहास्य से युक्त, उदार (प्रभावशाली) है । ६७ वे तमालनील-वर्ण से युक्त तथा चतुर्भुजधारी हैं । गले में वैजयन्ती माला झूल रही है । सुन्दर पीताम्बर धारण किया है । कमर में मेखला शोभा दे रही है । ६८ (उनकी समझ में नहीं आया—) ये मदन के मन का भी हरण करनेवाले साँवले अकस्मात कहाँ से आये ? (फिर उनमें से) कुछ एक लज्जा (-संकोच) को छोड़कर उस समय कृष्ण से बोलीं । ६९ 'हे त्रिलोक-सुन्दर, हे मनमोहन, हे कोमलांग, हे राजीवनयन, तुम्हें देखते ही हमारे नयनों को सन्तोष हुआ । ७० जिसकी कुक्षि से यह मूर्ति उत्पन्न हुई, वह तुम्हारी माता धन्य है, धन्य है । जो तुम्हारी प्राप्ति के लिए मानो पीछे पड़कर हठपूर्वक बैठी हुई थी, उस (तुम्हारी माता) ने, विदित नहीं है कि कितना तप किया था । ७१ जाम्बवान सोये हुए हैं, तब (तक) तुम यहाँ से शीघ्रतापूर्वक चले जाओ । ये जाग्रत हो जाएँ, तो निश्चय ही तुम्हें पूरा ही निगल डालेंगे । ७२ जाओ, तुम्हें जीवदान दिया है । वेगपूर्वक अपने

जीवदाना । वेगीं जाय आपुल्या स्थाना । वाट पाहत असेल तुझी ललना । कंठीं प्राण धरूनियां । ७३ मग बोले द्वारकाविहारी । मी जन्मापासूनि ब्रह्मचारी । राणी मजसीं प्रीति धरी । परी मी उदास सर्वथा । ७४ मी सर्वांचा आदिकर्ता । मज नाहीं मातापिता । मी मायाचक्रापरता । सगुण झालों भक्तांलागीं । ७५ पालखावरी बांधिला मणि । तो मज द्याल जरी सोडूनी । तरी मी उगाचि जाईन येथूनी । न करीं करणी विपरीत । ७६ मग म्हणती रे चतुरा । ह्या गोष्टी तोंवरीच सुकुमारा । जों चेव आला नाहीं महावीरा । जांबुवंतासी जाण पां । ७७ मग हांसोनियां जगजेठी । दृढ घातली माळगांठी । पीतांबराचे पदर पोटीं । खोंवी उचलोनि माघारे । ७८ मग बोले भुजा पिटोन । याचा बळगर्व सर्व हरीन । म्हणूनि वांकींसहित चरण । धरणीवरी आपटी पैं । ७९ तों जागा जाहला जांबुवंत । नेत्र उघडूनि क्रोधें पाहत । तों वीर देखिला अद्भुत । मग पुसत तयासी । ८० तूं कोणाचा रे कोण । हरि म्हणे मणि आणिला चोरून । तुज शिक्षा करावया पूर्ण । विवरामाजी उतरलों । ८१ जांबुवंत म्हणे तुज शिक्षा

स्थान चले जाओ । कण्ठ में प्राणों को (रोके) धरे, तुम्हारी स्त्री प्रतीक्षा कर रही होगी '। ७३ तब द्वारकाविहारी श्रीकृष्ण बोले, ' मैं जन्म से ब्रह्मचारी हूँ । (मेरी) रानी (स्त्री) मुझसे प्रेम करती है; फिर भी मैं (उसके प्रति) सब प्रकार से उदासीन हूँ । ७४ मैं सबका आदिकर्ता (आद्यनिर्माता) हूँ । मेरे माता-पिता नहीं हैं । मैं (वस्तुतः) माया के चक्र से परे हूँ; (फिर भी) भक्तों के लिए सगुणरूपधारी हो गया हूँ । ७५ जो मणि पालने पर टाँगी हुई है, यदि तुम उसे खोलकर मुझे दोगी, तो ही मैं यहाँ से चुपचाप चला जाऊँगा, कोई विपरीत (अनिष्ट) करनी नहीं करूँगा '। ७६ तब वे स्त्रियाँ बोलीं, ' अरे चतुर (समझदार पुरुष), हे सुकुमार, ये बातें तब तक ही होंगी, जब तक इस महापुरुष को जागृति नहीं आ जाती हो । तुम जाम्बवान को (ठीक से) जान लो '। ७७ अनन्तर जगद्श्रेष्ठ कृष्ण ने हँसते हुए (गले में पहनी हुई) माला में दृढ़ता-पूर्वक गाँठ लगायी; पीताम्बर के छोरों को ऊपर उलटे उठाते हुए पेट (के पास कमर) में खोंस लिया । ७८ फिर वे ताल ठोंककर बोले, ' मैं इसके बलसम्बन्धी समस्त घमण्ड का हरण करूँगा (घमण्ड छुड़ाऊँगा) '—ऐसा कहकर उन्होंने वाँकों-सहित पाँव भूमि पर पटके । ७९ तो जाम्बवान जग गया । वह आँखें खोलकर क्रोध से देखने लगा । तो उसने (सामने एक) अद्भुत वीर (कृष्ण) को देखा और फिर उससे पूछा । ८० ' तू किसका है ? कौन है ? ' तो श्रीकृष्ण बोले, ' तुम चुराकर मणि लाये हो । (अतः) तुम्हें पूरी तरह (भली भाँति) दण्ड देने के लिए मैं विवर के अन्दर उतर गया हूँ '। ८१ तो जाम्बवान बोला, ' मैं तुझे दण्ड दूँगा '।

करीन। हरि म्हणे व्यर्थ काय बोलून। ऐसें ऐकतांचि वचन। महावीर लोटला। ८२ बाप भक्तवत्सल भगवंत। निजभक्ताशीं झोंबी घेत। जांबुवंताचे मनोरथ। पूर्ण करावया पातला। ८३ पिळिती एकमेकांचे हात। हृदयावरी हृदय आदळत। सर्वेचि देती मुष्टिघात। वर्मकळा लक्षूनियां। ८४ एकमेकांसी चरणीं धरूनी। दूरी भिरकाविती भवंडूनी। जैसे मेरुमांदार दोन्ही। एके ठायीं मिळाले। ८५ कीं विष्णु आणि शंकर। कीं रोहिणीवर आणि मित्र। कीं राम आणि भार्गववीर। तैसे दोघे दीसती। ८६ कीं सूर्यसुत आणि शक्रकुमार। पूर्वी मल्लयुद्ध केलें थोर। तैसे जांबुवंत आणि यदुवीर। परस्परें युद्ध करिती पैं। ८७ अट्ठावीस दिवस अहोरात्र। दोघे युद्ध करिती महावीर। जांबुवंताचें शरीर। जाहलें चूर युद्ध करितां। ८८ सत्त्वहीन देह होऊनी। मूर्च्छागत पडिला धरणीं। कृष्णें वक्षःस्थळीं बैसोनी। म्हणे मणि देईं वेगें। ८९ जांबुवंत म्हणे हा कोण वीर। प्रचंड पुरुषार्थी दिसे थोर। म्हणवूनि उघडूनि पाहे नेत्र। विलोकीत कृष्णमुख। ९० तों स्वेदबिंदु थबथबले भाळा। तेणें कस्तूरीमळवट

(इसपर) श्रीहरि बोले, 'व्यर्थ बोलने से क्या होता है?' ऐसी बात सुनते ही वे महावीर (कृष्ण) आगे लपक गये। ८२ (सबके) पिता, भक्त-वत्सल भगवान अपने (सन्तान-सदृश) भक्त से नियुद्ध करने (कुश्ती लड़ने) लगे। वे जाम्बवान के मनोरथों को पूर्ण करने के लिए आ गये थे। ८३ वे (कभी) एक-दूसरे के हाथ मरोड़ते थे, (तो कभी) छाती से छाती टकराते थे। साथ ही (उसी समय) मर्मस्थान को लक्ष्य करके घूँसे जमाते थे। ८४ वे एक-दूसरे के पाँव पकड़कर चक्राकार घुमाते हुए उछालकर दूर फेंक देते थे। (जान पड़ता था—) जैसे मेरु और मन्दर दोनों एक स्थान पर मिल गये हों (भिड़ गये हों)। ८५ अथवा विष्णु और शिवजी, अथवा चन्द्र और सूर्य, अथवा राम और वीर भार्गव परशुराम (भिड़ गये) हों, वैसे वे दोनों दिखायी दे रहे थे। ८६ अथवा सूर्यसुत सुग्रीव और इन्द्र-सुत बालि ने पूर्वकाल में बड़ा महायुद्ध किया था, उसी प्रकार जाम्बवान और यदुवीर कृष्ण परस्पर युद्ध कर रहे थे। ८७ वे दोनों महावीर अट्ठाईस दिन दिन-रात युद्ध कर रहे थे। (अन्त में) युद्ध करते-करते जाम्बवान का शरीर चूर-चूर हो गया। ८८ उसकी देह शक्तिहीन होने पर वह मूर्च्छा आने से धरती पर गिर पड़ा। तो कृष्ण उसके वक्षःस्थल पर बैठकर बोले, 'झट से मणि दे दो'। ८९ तो जाम्बवान बोला, 'यह कौन वीर है? यह बहुत प्रचण्ड शक्तिशाली दिखायी दे रहा है'। ऐसा बोल कर उसने उन्हें आँखें खोलकर देखा। वह कृष्ण के मुख की ओर देखता रहा। ९० तो (दिखायी दिया—) उसके भाल पर पसीने की बूँदें छलक रही थीं; उससे कस्तूरी का विलेपन भीग गया; अंग में लगा चन्दन पुँछ

भिजला। अंगींचा चंदन पुसला। तुळसीवनमाळा सुकल्या हो। ९१ जांबुवंत करी रामस्मरण। म्हणे देहांत आला कीं मजलागून। आठविलें रघुपतीचें ध्यान। धनुष्यबाणांसमवेत। ९२ कृष्ण विचारी मानसीं। रामरूप धरावें या समयासी। ऐसें इच्छितां तेजोराशी। राम जाहला श्रीकृष्ण। ९३ सुहास्यवदन राजीवनयन। हातीं विराजे चापबाण। जांबुवंतें तें देखोन। सावध होऊन चरण धरिले। ९४ नयनीं देखतां सीतापती। तत्काळ शरीरीं भरली शक्ती। सवेंचि अवलोकूनि पाहे मूर्ती। वारंवार सप्रेम। ९५ श्रीरामरूप देखतां दृष्टीं। ब्रह्मानंदें भरली सृष्टी। मग राम म्हणे एक गोष्टी। जांबुवंता ऐक पां। ९६ रामअवतारीं युद्धवरदान। तें पावलें कीं तुजलागून। ऐसें बोलोनि जगज्जीवन। जांबुवंतासी भेटला। ९७ सद्‌गदित जाहला जांबुवंत। म्हणे पुरले मनोरथ। जो राम तोचि कृष्णनाथ। अभेदरूप संचलें। ९८ मग श्रीकृष्णासी आसनीं बैसवून। षोडशोपचारें पूजा करून। कृष्णें सांगितलें वर्तमान। स्यमंतक-मणियाचें। ९९ जांबुवंत म्हणे यदुनायका। माझी कन्या जांबुवंती सुरेखा। हे अंगीकारीं कंसांतका। वरी मणि आंदण देईन मी। १०० कार्य जाणोनि

गया; तुलसी की तथा वनमालाएँ सूख गयीं। ९१ जाम्बवान ने राम का स्मरण किया। वह बोला (उसे लगा), मेरी मृत्यु (निकट) आ गयी। उसे धनुष-बाण-सहित रघुपति राम के रूप का स्मरण हुआ। ९२ तो कृष्ण ने मन में विचार किया कि इस समय राम का रूप धारण करें। ऐसी इच्छा करते ही तेजोराशि श्रीकृष्ण राम हो गये। ९३ उनका मुख सुहास्य से युक्त था; नयन कमल जैसे थे। इस रूप को देखकर, जाम्बवान ने सचेत होकर उनके चरण पकड़े। ९४ आँखों से सीतापति श्रीराम को देखने पर तत्काल उसके शरीर में शक्ति भर गयी। तो साथ ही वह उस मूर्ति को प्रेमपूर्वक बार-बार निरखकर देखने लगा। ९५ आँखों से श्रीराम के ऐसे रूप को देखने पर (उसके लिए) सृष्टि ब्रह्मानन्द से भर गयी। तब श्रीराम बोले, ' हे जाम्बवान, एक बात सुनो। ९६ श्रीराम के अवतार (काल) में मैंने तुम्हें युद्ध सम्बन्धी वरदान दिया था, वह तुम्हें सफल रूप से प्राप्त हो गया '। ऐसा बोलकर जगज्जीवन श्रीराम (के रूप में श्रीकृष्ण) जाम्बवान से मिले (श्रीराम ने जाम्बवान को गले लगाया)। ९७ तो जाम्बवान बहुत गद्‌गद हो उठा और बोला, ' मेरे मनोरथ पूरे हो गये; जो श्रीराम थे, वे ही श्रीकृष्णनाथ हैं— दोनों का रूप एक दूसरे (के रूप) में एकात्मता के साथ समाया है '। ९८ अनन्तर आसन पर बैठाकर जाम्बवान द्वारा सोलह उपचारों से श्रीकृष्ण का पूजन करने पर उन्होंने स्यमन्तक मणि सम्बन्धी समाचार कहा। ९९ तो जाम्बवान बोला, ' हे यदुनायक, मेरी कन्या जाम्बवती सुन्दर है। हे कंसान्तक, उसे (पत्नी-रूप में) स्वीकार

हृषीकेश। अवश्य म्हणे जांबुवंतास। तंव तो अत्यंत उत्तम दिवस। लग्न तत्काळ धरियेलें। १०१ जांबुवंतें आपुले वनचर। वऱ्हाडी मेळविले अपार। देखोनि कोटिकामसुंदर। वनचरें तटस्थ पैं होती। २ लग्नघटिका जवळी आली। धांवती वऱ्हाडिणी आस्वली। नवरीस हळदी लाविली। कृष्णासी चर्चिली उरली ते। ३ आस्वल वऱ्हाडी मोठमोठे। भयासुर वदनें विशाळ पोटें। अंतःपट धरिती नेटें। मंगलाष्टकें पैं म्हणती। ४ ॐ पुण्याहं म्हणवून। दोघां लाविलें ऐक्यलग्न। तों नारदमुनि तेथें येऊन। अकस्मात उभा ठाकला। ५ हांसें आलें नारदासी। म्हणे उत्तम केलें हृषीकेशी। नवरी देखतां मानसीं। संतोष मज वाटला। ६ तूं मदनमनोहर तमालनीळ। परी नोवरीपाशीं केश पुष्कळ। ऐसी हे पुढें घेऊनि वेल्हाळ। कैसा निजसी सांग पां। ७ हिचें स्वरूप देखोनी। मज उणी वाटे रुक्मिणी। द्वारकेचे लोक पाहूनी। बहुत संतोषी होतील। ८ बरें आतां क्षणभरी। तुमचें हळदीउटणें पाहूनि निर्धारीं। मग जाईन द्वारकापुरीं। लोकांलागीं सांगावया। ९ तों हळदी

करो। मैं तिसपर दहेज के रूप में मणि प्रदान करूँगा'। १०० अपने कार्य को (सफल होते) जानकर श्रीकृष्ण जाम्बवान से बोले, 'अवश्य'। तब वह उत्तम (शुभ) दिन था। (अतः) उसने तत्काल विवाह (-मुहूर्त) निर्धारित किया। १०१ जाम्बवान ने अपने (पक्ष में) अनगिनत वनचर घराती इकट्ठा किये। वे वनचर कोटि (-कोटि) कामदेव-से सुन्दर श्रीकृष्ण को देखकर चकित हुए। २ लग्न-घटिका अर्थात मुहूर्त निकट आ गया, तो विवाह में आयी हुई घराती रीछ स्त्रियाँ दौड़ीं। उन्होंने दुलहन को हलदी लगायी और बची हुई कृष्ण को लगा दी। ३ विवाह में आये हुए घराती रीछ बड़े-बड़े थे। उनके मुँह भयावह थे, तो पेट विशाल। उन्होंने यत्नपूर्वक अन्तःपट धर दिया और मंगलाष्टक गाये। ४ 'ॐ-पुण्याहम्' मंत्र का उच्चारण करवाकर उन दोनों का विवाह सम्पन्न कर दिया। तब नारद मुनि वहाँ अकस्मात आकर खड़े (उपस्थित) हो गये। ५ नारद को हँसी आयी। वे बोले, 'हे हृषीकेश, तुमने उत्तम (काम) किया। दुलहन को देखने पर मुझे मन में सन्तोष हुआ। ६ तुम तो तमालनील-वर्ण वाले तथा मदन के मन को भी मोहित करनेवाले हो; परन्तु (तुम्हारी) दुलहन के तो बहुत केश हैं। बता तो दो कि ऐसी इस सुन्दरी को पास में लेकर कैसे सो जाओगे। ७ इसके रूप को देखकर मुझे रुक्मिणी भी छोटी जान पड़ती है। द्वारका के लोग इसे देखकर बहुत सन्तुष्ट हो जाएँगे। ८ ठीक है। अब क्षण भर के लिए मैं तुम्हारा हल्दी-उबटन देखने के पश्चात लोगों को बताने के लिए निश्चय ही द्वारका-पुरी जाऊँगा'। ९ तब हल्दी लगाकर वनमाली श्रीकृष्ण दुलहन के अंग

लावूनि वनमाळी। काढीं नवरीच्या आंगींचीं मळी। तुझी सासू हरि म्यां नाहीं देखिली। ऐसें प्रसवली कन्यारत्न।११० मग हांसे चक्रपाणी। म्हणे बैसा क्षणभरी नारदमुनी। कृष्णें तेव्हां हातीं धरूनी। आपणाजवळी बैसविला।१११ हरि म्हणे कांहीं गायन। करावें आजि असे सुदिन। मंगळदायक परमकल्याण। गाऊन श्रवण तृप्त करीं।१२ नेदी हरिवचनासी मान। नारदासी चढला अभिमान। म्हणे कोणापुढें करूं गायन। कोण सुजाण येथें असती।१३ अभिमान जाणोनि माधव। झाडावया नारदाचा गर्व। कौतुक दाविलें अपूर्व। एका रिसा बोलाविलें।१४ चिमणाच आस्वल येऊन। हरीपुढें बैसे आसन घालून। मग त्यासी पुसे भगवान। कांहीं गायन येतें कीं।१५ तो म्हणे हरि तुझे दयेंकरून। करीन मी आतांचि गायन। म्हणे वीणा नारदाचा एक क्षण। मजपाशीं देइंजे।१६ नारद म्हणे दोन्ही तंत। तोडूनि टाकील अकस्मात। हरि म्हणे तो समस्त। कळा जाणत गायनाच्या।१७ मग वीणा त्याचे हातीं दिधला। तेणें स्वरांचा थाट बैसविला। तेणें नारदाचा गर्व हरला। म्हणे नवलकळा येथें असे।१८ तेणें साही राग छत्तीस भार्या। चौसष्टी मूर्च्छना दावनियां।

की मैल छुड़ाने लगे। (तो नारद बोले—) 'हे हरि, तुम्हारी उस सास को नहीं देखा, जिसने ऐसी कन्या को जन्म दिया'।११० तो चक्रपाणि हँस पड़े और बोले, 'हे नारद मुनि, क्षण भर बैठिए तो'। तब श्रीकृष्ण ने उनका हाथ थामकर अपने पास बैठा लिया।१११ (अनन्तर) श्रीहरि बोले, 'कुछ गायन कीजिए। आज अच्छा (शुभ) दिन है, मंगलकारी, परम कल्याणकारी है। गाकर हमारे कानों को तृप्त कीजिए'।१२ (परन्तु) नारद पर अभिमान सवार हुआ, (अत:), उन्होंने श्रीहरि के वचन का सम्मान नहीं किया। वे बोले, 'मैं किसके सामने गाऊँ? यहाँ जानकार कौन हैं'।१३ तो नारद के इस अभिमान को जानकर कृष्ण ने उनके गर्व को दूर करने के लिए एक अपूर्व लीला प्रदर्शित की। उन्होंने एक रीछ को बुला लिया।१४ तो एक नन्हा-सा रीछ आकर आसन जमाकर श्रीहरि के सामने बैठ गया। तब भगवान (श्रीहरि) ने उससे पूछा, 'कुछ गाना आता है'।१५ (इसपर) वह बोला, 'हे हरि, मैं आपकी दया से अभी गायन करूँगा'। फिर वह बोला, 'एक क्षण (भर के लिए) नारद की वीणा मुझे दीजिए'।१६ (यह सुनकर) नारद बोले, 'यह सहसा दोनों तार तोड़ देगा'। तो श्रीहरि बोले, 'वह गायन की समस्त कलाएँ (विधाएँ, अंग) जानता है।१७ अनन्तर (नारद ने) वीणा उसके हाथ में दी, तो उसने स्वरों का मेल (संगति) बैठा दिया। उससे नारद के घमण्ड का परिहार हो गया, तो वे बोले, 'यहाँ तो अद्‌भुत कला है (कला का अद्‌भुत ज्ञान

अनेक उपरागांच्या क्रिया। गाइल्या तेव्हां रिसानें। १९ गीतप्रबंध नृत्यकळा। दावूनि तोषविलें गोपाळा। मग सावडी नामें ते वेळां। हरीची लीला आरंभिली। १२० सावडें सप्रेम गायन। तेथें लुब्धला मनमोहन। हरि डोले आनंदेंकरून। धांवोनि आलिंगन देत तया। १२१ मग नारदेंही उठोन। वंदिले आस्वलाचे चरण। विरोनि गेले पाषाण। त्याचें कीर्तन ऐकतां। २२ हरि म्हणे रे गुणवंता। भागलासी पुरे करीं आतां। तेणें टाळ वीणा तत्काळ ठेविला खालता। तों शिळा गोठल्या सर्वही। २३ वीणा टाळ ते वेळां। शिळेमाजी पैं गुंतला। नारद काढावया गेला। तंव तो सर्वथा न निघेचि। २४ आश्चर्य जाहलें सकळां। म्हणती गायन ऐकतां विरल्या शिळा। मग नारदें गायनाच्या कळा। नाना रीतीं दाविल्या। २५ पर शिळा कदा न विरती। मग म्हणे जय जय श्रीपती।

है)। १८ उस रीछ ने तब छहों रागों, उनकी छत्तीस भार्याओं और चौंसठ मूर्च्छनाओं को (प्रस्तुत कर) दिखाते हुए अनेक उपरागों की क्रियाएँ (विधाएँ)[1] गायीं (गाकर प्रस्तुत कीं)। १९ उसने गीत-प्रबन्ध और नृत्यकला प्रदर्शित करके गोपाल कृष्ण को तुष्ट किया। अनन्तर उस समय उसने 'सावड़ी' नामक श्रीहरि की लीला गाना आरम्भ किया। १२० उसने लीला का प्रेम-सहित अकृत्रिम रूप से गान किया; वहाँ (उससे) मनमोहन श्रीहरि मोहित हो गये। वे आनन्दपूर्वक झूमते थे। फिर उन्होंने दौड़कर उसका आलिंगन किया। १२१ अनन्तर नारद ने भी उठकर उस रीछ के चरणों का वन्दन किया। उसके कीर्तन (गायन) सुनते-सुनते पाषाण पिघल गये। २२ तो श्रीहरि बोले, 'हे गुणवान, तुम थक गये हो। अब समाप्त करो'। (यह सुनकर) उसने झाँझ और वीणा तत्काल नीचे रख दी; तो सभी शिलाएँ (फिर से) जम गयीं। २३ उस समय वीणा और झाँझ एक शिला में उलझ गयीं। (यह देखकर) नारद उन्हें निकालने गये, तब वे बिलकुल नहीं निकल रही थीं। २४ (यह देखकर) सबको अचरज हो गया। वे बोले, 'गायन सुनते (-सुनते) ये शिलाएँ पिघल गयी थीं'। तब नारद ने गायन की कलाओं को नाना रीतियों से प्रदर्शित किया। २५ परन्तु शिलाएँ कदापि नहीं पिघलीं। तब वे बोले, 'श्रीपति जय हो, जय हो। तुम्हारी कार्य की गति-विधि

---

१ राग, उनकी भार्याएँ, मूर्च्छनाएँ इत्यादि— संगीत-शास्त्र के अनुसार कम-से-कम पाँच वादी-संवादी स्वरों का समुदाय, जो विशिष्ट प्रकार के आरोह-अवरोह से श्रवणीय और मनोरंजक हो जाता है, 'राग' कहाता है। मिश्र या उपरागों के विशिष्ट राग-भेद को 'रागिणी' कहते हैं। पुराणों में राग की स्त्री को 'रागिणी' कहा गया है। प्रत्येक राग की पाँच या छः भार्याएँ मानी हैं। यहाँ छः मुख्य रागों और प्रत्येक की छः भार्याओं (कुल ३६) का उल्लेख है। प्रत्येक दो-दो स्वरों के बीच जो तीन-तीन स्वरांश माने गये हैं, उन्हें 'मूर्च्छना' कहते हैं।

तुझी अद्‌भुत कर्तव्यगती। ब्रह्मादिकां नेणवे। २६ मग आणीक एक रीस बोलावून। त्याच्या मुखें करविलें गायन। तत्काळ शिळा गेल्या विरोन। वीणा टाळ काढिला। २७ मग आणीक एक केलें अद्‌भुत। जैसें रंभेचें रूप विराजित। त्याहूनि विशेष जांबुवंती दिसत। नारद विस्मित पाहतसे। २८ असो चारी दिवस जाहला सोहळा। मणि मग आंदण दीधला। कृष्ण जांबुवंती घेऊनि निघाला। वेगें परतला द्वारकेसी। २९ आणिक अश्व गज रथ। जांबुवंत आंदण देत। जांबुवंतीसहित कृष्णनाथ। मिरवत आला द्वारकेसी। १३० सभेसी आणिला मणी। दाविला समस्तांलागूनी। मग सत्राजितासी बोलावूनी। स्यमंतक हातीं दीधला। १३१ परम लज्जित सत्राजित। अधोवदनें खालीं पाहत। म्हणे हा रुसला कीं कृष्णनाथ। म्यां नसता आळ घातला। ३२ मजवरी रुसला हृषीकेश। मग मज कालत्रयीं नाहीं यश। काय करूं ऐसियास। जगन्निवास समजे कैसा। ३३ म्हणे सत्यभामा आणि हा मणी। देऊनि समजावूं चक्रपाणी। मग कृष्णापुढें हात जोडूनी। करी विनवणी सत्राजित। ३४ माझी सत्यभामा सुंदर कन्या। हे अंगीकारीं जगज्जीवना।

अद्‌भुत है। वह ब्रह्मा आदि की भी समझ में नहीं आती'। २६ तब और एक रीछ को बुलाकर उसके मुख से श्रीकृष्ण ने गायन करवाया, तो वे शिलाएँ (फिर से) पिघल गयीं और वीणा तथा झाँझ को उसने निकाल लिया। २७ अनन्तर उन्होंने और एक चमत्कार किया— जैसे रम्भा का रूप शोभायमान है, उससे अधिक (शोभायमान) जाम्बवती दिखायी देने लगी। नारद विस्मित होकर उसे देख रहे थे। २८ अस्तु। चार दिन यह आनन्द-समारोह चल रहा था। फिर जाम्बवान ने मणि दायजे के रूप में दी। (तदनन्तर) कृष्ण जाम्बवती को लेकर निकले और वेगपूर्वक द्वारका लौटे। २९ जाम्बवान ने इसके अतिरिक्त घोड़े, हाथी और रथ उपहार के रूप में दिये, तो कृष्णनाथ जाम्बवती-सहित ठाटबाट से घूमते हुए द्वारका आ गये। १३० वे सभा में मणि ले आये और उन्होंने वह सबको दिखा दी। अनन्तर सत्राजित को बुलाकर वह स्यमन्तक मणि उसके हाथ में थमा दी। १३१ तो सत्राजित परम लज्जित हुआ। वह सिर झुकाये नीचे देखने लगा और बोला, 'ये कृष्णनाथ रूठ गये। मैंने झूठा आरोप लगाया। ३२ हृषीकेश मुझसे रूठ गये हैं, फिर मुझे अब तीनों कालों में कीर्ति नहीं मिल सकती। ऐसी वस्तु को लेकर क्या करूं? जगन्निवास कृष्ण मुझे कैसा (क्या) समझेंगे'। ३३ वह बोला, (उसने तय किया) 'सत्यभामा और यह मणि देकर मैं कृष्ण को समझा दूंगा'। फिर सत्राजित ने कृष्ण के सामने हाथ जोड़कर उनसे विनती की। ३४ 'सत्यभामा नामक मेरे एक सुन्दर कन्या है। हे जगज्जीवन,

कृष्णें मान्य केलें वचना। लग्न धरिलें तत्काळ। ३५ परम उत्साहें लावूनि लग्न। सत्यभामा केली कृष्णार्पण। वरी मणि दिधला आंदण। आणि बहु धन गज रथ। ३६ कृष्ण म्हणे सत्राजिता। तुम्हीं खेद न करिजे आतां। आम्हीं वरदचतुर्थीचा चंद्र अवचितां। देखिला होता गोकुळीं। ३७ गाई घेऊनि येतां देख। गोखुरीं सांचलें उदक। त्यांत बिंबला होता मृगांक। तो म्यां दृष्टीं देखिला। ३८ म्हणोनि आला हा आळ। मग बोले सत्राजित भूपाळ। गणेशचतुर्थीसी चंद्रमंडळ। कायनिमित्त न पहावें। ३९ श्रीकृष्ण म्हणे कैलासीं। प्रदोषकाळीं शिवदर्शनासीं। आपुलाले वाहनीं बैसोनि वेगेंसीं। सुरांचे भार चालिले। १४० इंद्र चंद्र वरुण कुबेर। अष्टवसु गंधर्व किन्नर। मूषकारूढ शिवपुत्र। गजवदन चालिला। १४१ शिवगिरी चढतां झाली दाटणी। गणेश पडिला मूषकावरूनी। मागुती बैसला सांवरोनी। तों चंद्र गगनीं हांसला। ४२ तें गजवदनें जाणोन। शाप दिधला दारुण। जो तुझें करील मुखावलोकन। त्यावरी येती अपजाळ। ४३ ऐसें चंद्रें ऐकिलें। मुख आपुलें आच्छादिलें। मग सकळ देवीं प्रार्थिलें।

आप इसे (पत्नी-रूप में) स्वीकार करें'। कृष्ण ने यह बात स्वीकार की और विवाह-मुहूर्त तत्काल निर्धारित किया। ३५ परम उत्साह के साथ सत्राजित ने विवाह कराकर कृष्ण को सत्यभामा अर्पित की। ऊपर से उसने वह मणि तथा बहुत धन, हाथी और रथ दायजे के रूप में प्रदान किये। ३६ कृष्ण बोले, 'हे सत्राजित, अब तुम खेद न करो। हमने गोकुल में वरद चतुर्थी (गणेश चतुर्थी, भाद्रपद शु. ४) के दिन अकस्मात चन्द्र को देखा था। ३७ देखो, (रास्ते में) गोखुरों से निर्मित गड्ढों में पानी इकट्ठा हुआ था। उसमें चन्द्र प्रतिबिम्बित था। गायों को ले आते हुए अकस्मात उसे मैंने देखा था। ३८ इसलिए मुझपर यह (चोरी का) मिथ्या आरोप आ गया'। तब राजा सत्राजित ने कहा (पूछा), 'गणेश चतुर्थी के दिन चन्द्रमण्डल किस कारण से न देखना चाहिए?' ३९ इसपर श्रीकृष्ण बोले, '(पूर्वकाल में) प्रदोषकाल में देवों के समुदाय अपने-अपने वाहन पर बैठकर शिवजी के दर्शन के लिए कैलास की ओर जा रहे थे। १४० इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर, (द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु नामक) अष्ट वसु, गन्धर्व, किन्नर तथा मूषक पर आरूढ़ होकर शिवपुत्र गणेश जा रहे थे। १४१ कैलास पर चढ़ते-चढ़ते भीड़ मच गयी। (उसमें) गणेशजी मूषक पर से गिर पड़े; फिर से सँभलकर बैठ गये, तो आकाश में (यह देखकर) चन्द्र हँसने लगा। ४२ गजवदन ने वह जानकर (चन्द्र को) दारुण अभिशाप दिया कि जो तुम्हारा मुँह देखेगा, उसपर झूठे आरोप आ जाएँगे'। ४३ जब चन्द्र ने ऐसा सुना, तो उसने अपना मुख छिपा लिया।

गजवदनासी ते वेळे। ४४ केलें देवीं बहुत स्तवन। तेणें गणेश झाला सुप्रसन्न। देव म्हणती चंद्राचें शापमोचन। करावें जी कृपाळुवा। ४५ मग चंद्र आणूनि ते अवसरीं। घातला गणपतीचे पायांवरी। म्हणे माझे वरदचतुर्थीसी निर्धारीं। वदन याचें न पहावें। ४६ वरकड दिवस अवघे मुक्त। परी वरदचतुर्थीस न पहावा सत्य। सत्राजितासी म्हणे कृष्णनाथ। पूर्ववृत्तांत ऐसा असे। ४७ तो चंद्र गोकुळीं पाहिला। यालागीं वृथा आळ आला। मग हरि म्हणे भूपाळा। गोष्ट एक ऐकिजे। ४८ आम्हांसी सत्यभामेऐसें दिधलें रत्न। इतुकेनि आमुचें समाधान। हा मणि तुम्ही जा घेऊन। आग्रहें श्रीकृष्णें दीधला। ४९ मणि घेऊन सत्राजित। आपुल्या ग्रामासीं पातला त्वरित। दिवस लोटले बहुत। तों एक अनर्थ जाहला। १५० शतधन्वा नामें यादव जाण। त्यासी सत्यभामा द्यावी लग्न करून। हा पूर्वीं नेम होता तो सांडून। कन्या दिधली श्रीकृष्णातें। १५१ सत्यभामा माझी ललना। ते कैसी दिधली श्रीकृष्णा। तो द्वेष मनीं धरूनि जाणा। शतधन्वा पातला। ५२ विश्वासोनि आला घरांत। तों निजला होता सत्राजित। त्याचा शिरश्छेद करूनि त्वरित। मणि घेऊनि पळाला। ५३ द्वारकेमाजी असे तो गुप्त। तें सत्यभामेसी जाहलें श्रुत।

तब उस समय समस्त देवों ने गणेश से प्रार्थना की। ४४ देवों ने उनकी बहुत स्तुति की, तो गणेश बहुत प्रसन्न हो गये। देव बोले, 'हे कृपालु, चन्द्र को शाप से मुक्त कीजिए'। ४५ फिर चन्द्र को लाकर उस समय (देवों ने) गणेशजी के पाँवों में डाल दिया, तो वे बोले, 'निश्चय ही मेरी वरद चतुर्थी के दिन इसका मुख नहीं देखें। ४६ अन्य सब दिन मुक्त हैं, परन्तु वरद चतुर्थी को (इसका मुख) सचमुच नहीं देखें'। कृष्णनाथ सत्राजित से बोले, 'पूर्वकाल में घटित ऐसी घटना है। ४७ मैंने वही (उसी दिन के) चन्द्र को गोकुल में देखा था। इसलिए मुझपर व्यर्थ ही झूठा आरोप आ गया'। अनन्तर श्रीहरि बोले, 'हे राजा, एक बात सुनो। ४८ हमको (तुमने) सत्यभामा जैसा रत्न दिया है। इससे हमें सन्तोष हुआ है। तुम यह मणि लेकर जाओ'। (ऐसा कहकर) श्रीकृष्ण ने वह मणि उसे आग्रहपूर्वक दे दी। ४९ मणि लेकर सत्राजित अपने ग्राम शीघ्रतापूर्वक पहुँच गया। (तब से) बहुत दिन बीत गये। तब एक अनिष्ट बात हुई। १५० जान लीजिए कि शतधन्वा नामक एक यादव था। उससे विवाह कराकर सत्यभामा दें —यह पहले (सत्राजित का) हेतु था। उसका त्याग करके उसने कन्या श्रीकृष्ण को दी। १५१ 'सत्यभामा मेरी स्त्री है; वह श्रीकृष्ण को कैसे (क्यों) दी ?' —समझिए कि इस बात को लेकर मन में द्वेष धारण करके शतधन्वा आ गया। ५२ वह विश्वास के साथ घर में आ गया, तो तब सत्राजित सोया हुआ था। उसका झट से शिरच्छेद करके शतधन्वा मणि लेकर भाग गया। ५३

कीं सत्राजिताचा करूनि घात। मणि नेला शतधन्व्यानें। ५४ ते वेळां पांडवांच्या समाचारा। राम कृष्ण गेले होते हस्तिनापुरा। मागें वृत्तांत जाहला तो सत्वरा। सत्यभामेसी कळला पैं। ५५ शरीर टाकिलें धरणीं। पितयाचे गुण आठवूनी। म्हणे सत्राजिता तुज कोणे स्थानीं। येऊनियां भेटों आतां। ५६ बुडालें माझें माहेर। रुक्मिणीसी कळला समाचार। सत्यभामेच्या मंदिरा सत्वर। जगन्माता पातली। ५७ देवकी वसुदेव उग्रसेन। करिती बहु समाधान। मग ते सुखासनीं बैसोन। हस्तिनापुरा चालिली। ५८ संगें घेतली बहुत सेना। येऊनि भेटली जगन्मोहना। सांगोनि सकळ वर्तमाना। शोक करी अद्‌भुत। ५९ शतधन्व्यानें मारिला सत्राजित। ऐकोनि राम हरि जाहले संतप्त। आले द्वारकेसी सत्यभामेसहित। झालें श्रुत शतधन्व्यातें। १६० परम भयभीत जाहला मनीं। अक्रूराचे येथें ठेविला मणी। म्हणे स्यमंतक केवळ तरणी। न लपे कोठें सर्वथा। १६१

वह द्वारका में गुप्त रूप से रहता था। सत्यभामा ने वह (समाचार) सुना कि सत्राजित का वध करके शतधन्वा मणि ले गया है। ५४ उस समय बलराम और श्रीकृष्ण पाण्डवों की कुशल-सम्बन्धी समाचार[१] जानने के लिए हस्तिनापुर गये थे। इधर उनके जाने के पश्चात जो घटना घटी, वह सत्यभामा को झट से विदित हुई। ५५ तो उसने शरीर को धरणी पर लुढ़का दिया और पिताजी के गुणों का स्मरण करते हुए बोली, 'हे (पिता) सत्राजित, मैं अब किस स्थान पर आकर तुमसे मिलूं? ५६ मेरा पीहर डूब गया'। जगन्माता रुक्मिणी को यह समाचार विदित हुआ, तो वह सत्यभामा के प्रासाद के प्रति झट से पहुँच गयी। ५७ देवकी, वसुदेव, उग्रसेन ने उसको बहुत सान्त्वना दी। तब वह पालकी में बैठकर हस्तिनापुर की ओर चली गयी। ५८ उसने साथ में बहुत सेना ली थी। वह आकर जगन्मोहन श्रीकृष्ण से मिली। समस्त समाचार कहकर वह अद्‌भुत रूप से शोक करने लगी। ५९ शतधन्वा ने सत्राजित को मार डाला—यह सुनकर बलराम और श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो उठे। वे सत्यभामा-सहित द्वारका आ गये। शतधन्वा ने यह सुना। १६० वह मन में परम भयभीत हो उठा। उसने अक्रूर के यहाँ मणि रख दी और कहा, 'हे अक्रूर, यह स्यमन्तक नामक मणि केवल सूर्य है; वह कहीं भी बिलकुल छिप नहीं सकती। १६१ हे अक्रूर, तुम परम विश्वासार्ह हो। इसलिए

---

१ धृतराष्ट्र ने कपट से पाण्डवों को लाख से निर्मित भवन में ठहरा दिया था और उसमें आग लगा दी। उसको विश्वास हो गया कि पाण्डव कुन्ती-सहित उस घर में जलकर मर गये। इधर श्रीकृष्ण को भी यह दुःखद समाचार विदित हुआ, तो वे बलराम-सहित हस्तिनापुर गये। उन्होंने पाण्डवों को जलांजलि भी अर्पित की। (श्रीकृष्ण को अनुमान तक नहीं हुआ कि पाण्डव बचकर भाग गये होंगे)।

अक्रूरा तूं परम विश्वासी। म्हणोनि मणि ठेवितों तुजपाशीं। येरू म्हणे हे गोष्टी हृषीकेसी। कळल्या अनर्थ होईल। ६२ द्वारकेबाहेर शतधन्वा पळत। तों तुरंगीं राम कृष्ण बैसत। पूर्वसमुद्रापर्यंत। पळाला तेव्हां शतधन्वा। ६३ मग श्रीरंगें सुदर्शन टाकिलें। शतधन्व्याचें शिर उडविलें। कलेवर समुद्रतीरीं पडिलें। परी मणि नाहीं त्याजवळी। ६४ परतोनि आले द्वारकापुरा। नगरीं पिटिला डांगोरा। कोणें चोरासी दिधला थारा। मणि सत्वर आणिजे। ६५ तें अक्रूरें ऐकोनी। भयभीत जाहला मनीं। मणि आपुल्या संगें घेऊनी। गेला पळोनि वाराणसी। ६६ हेर सांगती चक्रपाणी। अक्रूर घेऊनि गेला मणि। परी निरपराधी भक्तशिरोमणि। भयेंकरोनि बाहेर गेला। ६७ मग बोले यादवेंद्र। अन्याय नसतां अणुमात्र। माझा प्राणसखा अक्रूर। गेला न कळे कोणीकडे। ६८ अक्रूरासारिखें निधान। जो सात्त्विक आणि प्रेमळ पूर्ण। मज न गमे त्या सखयाविण। जगज्जीवन बहु कष्टी। ६९ अक्रूराकारणें श्रीहरी। रात्रंदिवस चिंता करी। तों द्वादश वर्षें द्वारकेवरी। अवर्षण पडियेलें। १७० बहुत केले प्रयत्न। परी कदा न वर्षे घन। तों अंबरीं देववाणी वदे वचन।

मैं यह मणि तुम्हारे पास रख रहा हूँ'। तो वे बोले, 'यह बात हृषीकेश को विदित हो जाने पर संकट आएगा'। ६२ (तदनन्तर) शतधन्वा द्वारका के बाहर भाग गया, तो बलराम और कृष्ण घोड़ों पर बैठ गये। तब शतधन्वा पूर्वसमुद्र तक भाग गया था। ६३ अनन्तर कृष्ण ने सुदर्शन चक्र चला दिया और उससे शतधन्वा के सिर को (काटकर) उड़ा दिया। उसका कलेवर समुद्र में गिर पड़ा। परन्तु मणि उसके पास नहीं मिली। ६४ अतः वे (बलराम और श्रीकृष्ण) लौटकर द्वारका आ गये और उन्होंने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया— किसी ने चोर को ठौर (आश्रय) दिया हो, तो वह मणि को झट से ले आए। ६५ उसे सुनकर अक्रूर मन में भयभीत हो उठा। अपने साथ मणि लेकर वह वाराणसी (की ओर) भाग गया। ६६ गुप्तचरों ने चक्रपाणि श्रीकृष्ण से कहा, 'अक्रूर मणि को लेकर चले गये हैं। परन्तु वे भक्तशिरोमणि निरपराध हैं। वे भय से (भागकर) बाहर चले गये हैं'। ६७ तब यादवेन्द्र कृष्ण बोले, 'यह समझ में नहीं आ रहा है कि अणुमात्र तक अन्याय (अपराध) के न होने पर भी मेरा प्राणसखा अक्रूर किस ओर (कहाँ) गया है। ६८ बिना अक्रूर जैसे (मेरे धन-) निधान के, जो सात्त्विक और पूर्ण प्रेममय है, उस मेरे सखा के बिना, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है'। जगज्जीवन श्रीकृष्ण बहुत दुःखी थे। ६९ श्रीहरि अक्रूर के कारण रात-दिन चिन्ता कर रहे थे। तब द्वारका में बारह वर्ष सूखा पड़ गया। १७० बहुत यत्न किये गये, परन्तु मेघ कदापि बरस नहीं रहे थे। तब आकाश में

समस्त जन ऐकती । १७१ अक्रूर आहे वाराणसीनगरीं । तो जरी आणाल द्वारकापुरीं । तरी जलद वर्षेल निर्धारीं । निश्चय हा जाणिजे । ७२ तों दूतमुखीं वार्ता आली समग्र । कीं आनंदवनीं आहे अक्रूर । मणि सुवर्ण प्रसवे अष्टभार । धर्म अपार करीत से । ७३ भागीरथीचे जे कां घाट । अक्रूरें बांधिले असती सदट । अद्यापि जन देखती स्पष्ट । अक्रूरघाट नाम त्यांचें । ७४ मग श्रीकृष्णें उद्धवासी । वेगें धाडिलें वाराणसीसी । तों अक्रूर जाहला तापसी । कृष्णस्मरणीं रत सदा । ७५ मग उद्धवें वर्तमान सांगोन । आणिला रथावरी बैसवून । भेटले अक्रूर आणि कृष्ण । प्रेमेंकरून तेधवां । ७६ अक्रूरें हरीपुढें मणि ठेवून । सांगितलें सकळ वर्तमान । हरि म्हणे मणि नव्हे हा अग्न । घेतले प्राण बहुतांचे । ७७ दोन वेळां हा मणि । आंदण आला आम्हांलागूनी । प्रसेनसत्राजितांसी मारूनी । आमुचें सदनीं प्रवेशला । ७८ जेथ वसे थोर वस्त । तेथें न प्रार्थितां येती अनर्थ । यालागीं मुनि उपाधिरहित । अरण्यांत वसती हो । ७९ जवळी असतां उपाधी ।

देववाणी हुई, उसे समस्त लोगों ने सुना । १७१ 'अक्रूर वाराणसी नगरी में हैं । यदि उन्हें द्वारकापुरी में ले आएँगे, तो निश्चय ही मेघ बरसेगा । यह निश्चित (बात) समझिए' । ७२ तब दूतों के मुख से (द्वारा) यह समग्र समाचार (सुनने में) आ गया कि अक्रूर आनन्दवन में, अर्थात वाराणसी में हैं । वह मणि (नित्यप्रति) आठ भार सोना निर्मित करती है । उससे अक्रूर अपार दान देते हैं' । ७३ भागीरथी गंगा के (तट पर) अक्रूर ने जो पक्के (मज़बूत) घाट बनवाये हैं, लोग उन्हें आज भी स्पष्ट देख सकते हैं । उनका नाम 'अक्रूर घाट' है । ७४ अनन्तर श्रीकृष्ण ने उद्धव को वेगपूर्वक वाराणसी भेज दिया । तब अक्रूर तापस (संन्यासी, तपस्वी) हो गये थे । वे सदा कृष्ण के स्मरण में मग्न रहते थे । ७५ तब उद्धव ने उनसे समाचार कहा और उन्हें रथ में बैठाकर वे (द्वारका) ले आये । उस समय अक्रूर और कृष्ण (एक-दूसरे से) प्रेमपूर्वक मिल गये । ७६ अक्रूर ने श्रीहरि के सामने मणि रखकर समस्त समाचार कहा; तो श्रीहरि बोले, 'यह मणि नहीं है, अग्नि है । इसने बहुतों के प्राण लिये हैं । ७७ यह मणि हमारे लिए दायजे के रूप में दो बार आयी थी । वह प्रसेन और सत्राजित को मारकर हमारे घर में प्रविष्ट हो गयी । ७८ जहाँ बड़ी मूल्यवान वस्तु होती है, वहाँ प्रार्थना न करने पर (बिना बुलाये) भी विपत्तियाँ आती हैं । इसलिए मुनि (धन आदि का त्याग करके) अरण्य में बिना किसी कष्ट या झंझट के निवास करते हैं । ७९ बड़प्पन अर्थात मूल्यवान वस्तु पास में होने पर अनचाही आधि-व्याधियाँ जुड़ जाती हैं । इसलिए विरक्त पुरुष काया, मन और वाणी से शुद्ध होकर, अनासक्त होकर भ्रमण करते रहते हैं । १८०

नसत्याचि जडती आधिव्याधी। यालागीं विरक्त त्रिशुद्धी। हिंडती उदास होऊनियां। १८० असो कृष्णें सत्यभामेसी बोलावूनी। तिचें बहुत समाधान करूनी। प्रीतीनें हस्तीं दिधला मणि। ठेवीं सदनीं म्हणोनियां। १८१ असो पर्जन्य ते अवसरीं। अद्‌भुत वर्षला द्वारकेवरी। भक्तमहिमा कंसारी। नाना परी वाढवीत। ८२ हे स्यमंतकहरणकथा। गातां अथवा श्रवण करितां। हरे सकळ संकट चिंता। आवडीं धरितां सप्रेम। ८३ हरिविजय ग्रंथ नृपवर। नाना इतिहास त्यांचा दळभार। एक एक प्रचंड वीर। पापसंहार क्षणें करिती। ८४ ऐसा हा हरिविजय भूप सुरेख। श्रवणार्थी भाविक याचक। ते संतुष्ट होती सकळिक। श्रवण मनन करितां हो। ८५ केलें जें सकळ श्रवण। तें मननेंविण व्यर्थ जाण। जैसें जोडिलें बहु धन। परी तें जतन न केलें। ८६ मननाविण श्रवण करी। जैसी कां पालथी घागरी। पर्जन्यांत ठेविली जन्मवरी। परी अंतरीं बिंदु न जाये। ८७ श्रीधरवरद ब्रह्मानंद। जरी कृपा करी तो वेदवंद्य। तरीच हृदयीं ठसावे बोध। भेदाभेद निरसूनियां। ८८ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत

अस्तु। सत्यभामा को बुलाकर श्रीकृष्ण ने उसको बहुत सान्त्वना देते हुए वह मणि यह कहकर उसके हाथ में (रख) दी कि वह अपने सदन में उसे रख ले। १८१ अस्तु। उस समय द्वारका पर अद्‌भुत रूप से मेघ बरसा। (इस प्रकार) कंस के शत्रु श्रीकृष्ण भक्तों की महिमा की वृद्धि नाना प्रकार से किया करते थे। ८२ इस स्यमन्तक-हरण कथा का गान करने पर, अथवा श्रवण करने पर, प्रेमपूर्वक इसके प्रति रुचि धारण करने पर समस्त संकटों और चिन्ताओं का हरण हो जाता है। ८३ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रेष्ठ नृप है। नाना इतिहास उसके सेनादल हैं। उसके एक-एक प्रचण्ड (बलशाली) वीर क्षण में पापों का संहार करते हैं। ८४ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ इस प्रकार का सुन्दर राजा है। उसका श्रवण करने के अभिलाषी श्रद्धालु जन याचक हैं। वे समस्त श्रवण और मनन करने पर सन्तुष्ट हो जाते हैं। ८५ समझिए कि जो समस्त श्रवण किया हो, वह बिना मनन के व्यर्थ हुआ, जैसे बहुत धन इकट्‌ठा किया हो, परन्तु उसकी रक्षा नहीं की हो। ८६ जो बिना मनन के श्रवण करता हो, उसका वह श्रवण करना वैसा ही हो जाता है, जैसे औंधी गगरी जीवन भर बरसात में रखी हो, परन्तु उस कारण से उसके अन्दर एक बूंद (तक) नहीं जाती। ८७ मुझ श्रीधर के लिए जो वरदाता हैं, वे गुरु ब्रह्मानन्द (रूपी आनन्दस्वरूप ब्रह्म), वे वेद-वन्द्य यदि कृपा करें, तो ही भेदाभेद भाव का निराकरण होकर ज्ञानोपदेश हृदय में जमकर डटा रह जाएगा। १८८

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और

हरिवंशभागवत। सदा परिसोत संतभक्त। पंचविंशतितमाध्याय गोड हा। १८९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। सन्त और भक्त उसके इस मधुर पचीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें। १८९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२६

[श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाह और नरकासुर-वध]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जो देवाधिदेव पुरातन। जो पूर्णब्रह्म सनातन। जो मायाचक्रचाळक शुद्ध चैतन्य। तो श्रीकृष्णरूपें अवतरला। १ दानव बहुत माजले। तिहीं भक्तजन गांजिले। यालागीं निर्गुण सगुणत्वा आलें। तेंचि अवतरलें कृष्णरूप। २ वार्ष्णेय गंधर्व उन्मत्त। तोचि धृतराष्ट्र झाला सत्य। गजायुतबल अद्भुत। कुरुकुळीं जन्मला। ३ दुष्ट कलीचें रूप सगळें। तें दुर्योधनरूपें जन्मलें। काम क्रोध मद मत्सर आगळे। हृदयीं जयाच्या नांदती। ४ दुःशासनादि बंधु शतभरी। ते राक्षस प्रकटले अवनीवरी। जे

श्रीगणेशाय नमः। जो पुरातन देवाधिदेव है, जो सनातन (शाश्वत, अनादिसिद्ध) पूर्णब्रह्म है, जो मायाचक्र का चालक है, शुद्ध चैतन्य है, वह श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित था। १ (उस युग में) दानव बहुत उन्मत्त हो गये थे। उन्होंने भक्तजनों को उत्पीड़ित किया था। इसलिए (उनके विनाश के हेतु तथा सद्धर्म की स्थापना के लिए) निर्गुण ब्रह्म सगुणत्व (सगुण-साकार रूप) को प्राप्त हुआ। वही कृष्ण के रूप में अवतरित था। २ वार्ष्णेय नामक एक उन्मत्त गन्धर्व था। वही सचमुच धृतराष्ट्र (के रूप में उत्पन्न) हुआ। दस सहस्र हाथियों के अद्भुत बल से युक्त धृतराष्ट्र कुरुकुल में जन्म को प्राप्त हुआ। ३ दुष्ट कलि पुरुष का समस्त रूप दुर्योधन के रूप में जनमा, जिसके हृदय में काम, क्रोध, मद, मत्सर अनोखे रूप से सुखपूर्वक निवास करते थे। ४ वे राक्षस, जो लंका में रावण आदि के रूप में पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न थे, पृथ्वी पर दुःशासन आदि पूरे एक सौ[1] बन्धुओं के रूप में प्रकट हुए —वे ही हस्तिनापुरी में

१ धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र (कौरव)— दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द। १० दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल। (२०) सत्त्व, सुलोचन, चित्र,

पौलस्त्य लंकेमाझारी। तेचि हस्तिनापुरीं जन्मले। ५ जयविजयांस रावणकुंभकर्ण। तेचि शिशुपाळवक्रदंत दोघेजण। जरासंधादि काळयवन। दैत्यांश सर्व जन्मले। ६ एवं मागध चेद्य कौरव सकळ। भौमासुर बाणादि दुष्ट भूपाळ। हे दैत्यचि सबळ। द्वापारयुगीं जन्मले। ७ वसुवीर्य गंगेच्या

जनमे। ५ रावण और कुम्भकर्ण (वस्तुतः) जय और विजय के अंश (से उत्पन्न) थे। वे ही शिशुपाल और वक्रदन्त दोनों जने हो गये[1]। कालयवन, जरासन्ध आदि सब दैत्यों के अंश से जनमे। ६ इस प्रकार मागध (जरासन्ध), चैद्य (शिशुपाल), समस्त कौरव, भौमासुर, बाणासुर आदि दुष्ट राजा —ये बलशाली दैत्य ही द्वापर युग में जन्म को प्राप्त हुए। ७ गंगा के उदर (गर्भाशय) में वसु का जो वीर्य (प्रविष्ट हो गया) था, वह पृथ्वी पर भीष्म महाराज[2] के रूप में उत्पन्न हुआ; वे प्रतापशूर, ब्रह्मचारी

♦उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्रशरासन (चित्रचाप), दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटायन (विकट)। ३० ऊर्णनाभ, सुनाभ (पद्मनाभ), नन्द, उपनन्द, चित्रबाण (चित्रबाहु), चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विरोचन, अयोबाहु, महाबाहु चित्रांग (चित्रांगद)। ४० चित्रकुण्डल (सुकुण्डल), भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्धन (विक्रम), उग्रायुध, सुषेण, कुण्डोदर, महोदर, चित्रायुध (दृढ़ायुध)। ५० निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध। ६० सद्सुवाक् (सहस्रवाक्), उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी (सेनापति), दुष्पराजय, अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष, दुराधर (दुराधन), दृढ़हस्त। ७० सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी (अनुयायी), कवची, क्रथन, दण्डी। ८० दण्डधार, धनुर्ग्रह, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय (दृढ़रथ), अनाधृष्य। ९० कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा (दीर्घलोचन), दीर्घबाहु, व्यूढोरु, कनकध्वज (कनकांगद), कुण्डाशी (कुण्डज) और विरजा। १०० (इन पुत्रों के अतिरिक्त धृतराष्ट्र की दुःशला नामक एक कन्या थी। उपर्युक्त सूची में से कुछ नामों के स्थान पर अन्य नाम अन्यान्य सूचियों में मिलते हैं। —महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ११६)

१ जय-विजय…रावण-कुम्भकर्ण…शिशुपाल-वक्रदन्त— एक दिन ब्रह्मा के सनकादि मानसपुत्र तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करते हुए वैकुण्ठ में जा पहुँचे। उन नंग-धड़ंग बाल ऋषियों को न पहचानने के कारण भगवान विष्णु के पार्षद जय-विजय ने भीतर जाने से रोका। इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने उन पार्षदों को अभिशाप दिया— तुम पापमयी असुर योनि में जाओ। तो जय-विजय ने क्षमायाचना की। शाप-वश वे वैकुण्ठलोक से नीचे गिरने लगे, तो उन कृपालु ऋषियों ने कहा, 'तीन जन्मों तक इस शाप को भोगकर तुम फिर बैकुण्ठ में वापस आओगे'। इसके अनुसार, प्रथम जन्म में जय-विजय हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष हो गये (जिन्हें विष्णु ने क्रमशः नरसिंह के तथा वराह के रूप में मार डाला), तदनन्तर वे रावण-कुम्भकर्ण हुए (जिनका वध दाशरथी राम ने किया); अन्त में वे शिशुपाल-वक्रदन्त हुए। कृष्ण के हाथों मृत्यु को प्राप्त होकर वे पुनश्च वैकुण्ठलोक में आ गये।

२ वसु-वीर्य से उत्पन्न भीष्म— ब्रह्मा द्वारा अभिशप्त होकर एक बार गंगा नदी पृथ्वी-तल पर आकर पुरुवंशोत्पन्न राजा शान्तनु की स्त्री हुई। तदनन्तर वसिष्ठ*

उदरीं। तो भीष्ममहाराज पृथ्वीवरी। जो प्रतापशूर ब्रह्मचारी। महायोद्धा जन्मला। ८ जो कां देवगुरु बृहस्पती। तोचि द्रोणाचार्य निश्चितीं। कृपाचार्य रुद्रगण क्षितीं। गौतमवीर्यें जन्मला। ९ शिवहृदयींचा जो कां क्रोध प्रबळ। तो अश्वत्थामा बळें सबळ। सूर्यांश तो कर्ण निर्मळ। कुंतीउदरीं अवतरला। १० यम समीर शचीवर। अश्विनौदेव दोघे सुंदर। यांचे धर्म भीम अर्जुन वीर। नकुल सहदेव जन्मले। ११ पंच सूर्य पृथ्वीवरी। अवतरले कुंतीच्या उदरीं। उजळली सकळ धरित्री। प्रतापतेजें ज्यांचिया। १२

और महायोद्धा के रूप में जनमे थे। ८ जो देवगुरु बृहस्पति हैं, वे ही निश्चित द्रोणाचार्य (के रूप में उत्पन्न) थे। गौतम के वीर्य से पृथ्वी पर रुद्रगण के अवतार कृपाचार्य[1] उत्पन्न हुए। ९ शिवजी के हृदय में जो प्रबल क्रोध है, वह बल से युक्त— बलवान अश्वत्थामा था। सूर्य का अंश कर्ण के रूप में निर्मल (निष्पाप) कुन्ती के उदर से अवतरित हुआ। १० यम, वायु, शचीपति इन्द्र, दोनों सुन्दर अश्विनीकुमार —इनके पुत्र (क्रमशः) धर्म, भीम, वीर अर्जुन तथा नकुल-सहदेव जनमे[2]। ११ (मानो) पाँच सूर्य पृथ्वी पर कुन्ती (तथा माद्री) के उदर से अवतरित हुए, जिनके प्रताप के तेज से समस्त धरती उज्ज्वलता को प्राप्त हुई। १२ दुर्वासा[3] ने अपने मुख से

---

* के अभिशाप और इन्द्र के आदेश से अष्ट वसुओं के अंश गंगा से जनमे। उनमें से सात पुत्रों को गंगा ने नदी में डुबो दिया। आठवाँ पुत्र 'द्यु' नामक वसु का अंश था, जिसे शान्तनु ने बचा लिया। यही पुत्र भीष्म है।

१ गौतम···कृपाचार्य— गौतम नामक ऋषि के महा तपस्वी पुत्र शरद्वत की तपस्या में बाधा उत्पन्न करने के लिए इन्द्र ने एक अप्सरा को भेज दिया। उसे देखकर उसका वीर्य स्खलित होकर शर नामक घास के द्वीप पर गिर गया। उससे एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। वन में ये दोनों राजा शान्तनु को मिले। उन्होंने इनका कृपापूर्वक लालन-पालन किया; अतः ये 'कृप' और 'कृपी' कहलाये। इस दृष्टि से कृपाचार्य गौतम के पौत्र सिद्ध होते हैं, न कि पुत्र। एक अन्य कथा के अनुसार, कृपाचार्य रुद्रगण के अवतार माने जाते हैं।

२ कुन्ती के पुत्र—कुन्ती यदुकुलोत्पन्न राजा शूरसेन की पुत्री तथा वसुदेव की भगिनी थी। राजा कुन्तिभोज ने उसे गोद लिया और उसका लालन-पालन किया। उसने उसे अतिथि-सत्कार का कार्य सौंप दिया था। उसने अतिथि दुर्वासा की सेवा करके उसे प्रसन्न कर लिया, फलस्वरूप ऋषिवर ने उसे वशीकरण मंत्र पढ़ाया और कहा, 'इस मंत्र से जिस देवता का आवाहन तुम करोगी, उस देवता की कृपा से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा'। अनन्तर कुन्ती ने जिज्ञासावश सूर्य का आवाहन किया, तो सूर्य से 'कर्ण' का जन्म हुआ, जिसका परित्याग उसने लोकभय से किया। विवाह के पश्चात इसी मंत्र के प्रभाव से कुन्ती ने यम, पवन और इन्द्र से तीन पुत्रों को जन्म दिया और माद्री को वह मंत्र सिखाया। अश्विनीकुमारों से माद्री के दो पुत्र हुए। ये पाँच पुत्र है —राजा पाण्डु के। अतः वे 'पाण्डव' कहाते हैं। 'कर्ण' वस्तुतः कुन्ती का पुत्र था, परन्तु वह परित्यक्त रहा।

३ दुर्वासा द्वारा मंत्र-समीर·····उपर्युक्त टिप्पणी २ देखिए।

दुर्वासमुखें मंत्रसमीरें। फुंकोनि कुंतीच्या कर्णद्वारें। पांचही दीप एकसरें। पाजळले ते धरेवरी। १३ पतंग ते कौरव निश्चितीं। या पंचदीपांवरी झेंपावती। परी पक्षांसहित भस्म होती। राज्यलोभें झुंजतां। १४ श्रीकृष्ण द्वारावतीची भवानी। पांच दिवटिया हातीं घेऊनी। ब्रह्मांडमंडपीं गोंधळ घालूनी। दैत्य सर्व रगडिले। १५ भूगोळदुर्गीं पांचही यंत्रें। स्वसत्ताऔषधीचीं पात्रें। भरोनियां स्मरारिमित्रें। भडकाविलीं दुष्टांवरी। १६ कीं यादवपांडव लोहकुठार। स्वभुजाबळें धरूनि यादवेंद्र। दुष्टकानन समग्र। छेदूनि निर्मूळ केलें पैं। १७ शची मृडानी उभयांश मिळोनी। तेचि द्रौपदी याज्ञसेनी। तिचा कैवारी चक्रपाणी। होऊनि धरणी निर्वीर करी। १८ बाळपणीं गोकुळीं दैत्य मारिले। उरले ते मथुरेसी संहारिले। जरासंधादि दुष्ट पाडिले। भस्म केलें काळयवना। १९

मंत्र रूपी वायु कुन्ती के कर्ण-द्वार में फूंककर उसके द्वारा एक साथ पाँचों ही दीपों को धरती पर प्रज्वलित कर दिया। १३ निश्चय ही कौरव रूपी वे पतंग इन पाँच दीपों पर लपककर कूद पड़े। परन्तु राज्य के लोभ से जूझते हुए वे अपने पक्षों-सहित (जलकर) भस्म हो गये। १४ श्रीकृष्ण (मानो) द्वारावती नगरी की भवानीदेवी थे। उन्होंने इन पाँचों के रूप में मशालें हाथ में लेकर ब्रह्माण्ड रूपी मण्डप में 'गोंधळ'[1] प्रस्तुत किया और समस्त दैत्यों को कुचल डाला। १५ भूगोल(पृथ्वी) रूपी क़िले पर इन पाण्डवों रूपी पाँचों यंत्रों (तोपों) को बैठा दिया, उनमें अपनी सत्ता रूपी ओषधि (गोला-बारूद) के पात्र भरकर कामदेव के शत्रु शिवजी के मित्र भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने उन दुष्टों पर दगवा दिया। १६ अथवा यादव और पाण्डव (मानो) लोहे के कुठार थे। यादवेन्द्र कृष्ण ने उन्हें अपने हाथों के बल से पकड़कर दुष्ट रूपी समग्र वन को काटकर (दुष्टों के) जड़-मूल से रहित कर डाला। १७ इन्द्राणी शची और मृडानी पार्वती दोनों के अंशों के मिलने पर जो उत्पन्न हुई, वही थी याज्ञसेनी द्रौपदी[2]। चक्रपाणि कृष्ण ने उसके सहायक-समर्थक होकर धरती को वीरहीन कर दिया। १८ श्रीकृष्ण ने बचपन में गोकुल में (अनेकानेक) दैत्यों को मार डाला, जो शेष रहे थे, उनका संहार मथुरा में किया। उन्होंने (आगे चलकर)

१ गोंधळ—देखिए टिप्पणी १, पृ० ३६५, अध्याय १४।

२ याज्ञसेनी द्रौपदी— राजा द्रुपद ने सन्तान-प्राप्ति के लिए याज और उपयाज नामक ऋषियों के पौरोहित्य में पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया। उस यज्ञ की अग्नि में से एक पुत्र और एक पुत्री आविर्भूत हुए। उस पुत्र को धृष्टद्युम्न कहते हैं। कन्या भी यज्ञ से आविर्भूत थी, अतः 'याज्ञसेनी' कहलायी। पांचाल नरेश द्रुपद की यह कन्या 'पांचाली', 'द्रौपदी' नामों से भी विख्यात है। इसके कृष्ण वर्ण के कारण इसे 'कृष्णा' भी कहते थे। पौराणिक मान्यता के अनुसार द्रौपदी लक्ष्मी के अंश से आविर्भूत मानी जाती है।

द्वारकेसी येऊनी। चिच्छक्ति परिणिली रुक्मिणी। त्यावरी जाबुवंताशीं युद्ध करूनी। जांबुवंती वरियेली। २० त्यावरी सत्यभामा पर्णूनी। शतधन्वा मारूनि घेतला मणी। पंचविसावा अध्याय संपतां क्षणीं। कथा इतुकी ज्ञाहली। २१ यावरी जें कथानुसंधान। ऐकोत पंडित विचक्षण। एके दिवशीं गजपुराहून। अर्जुन आला हरिदर्शना। २२ क्षेम देऊनि वनमाळी। क्षेमवार्ता सकळ पुसिली। तों मृगयेलागीं ते काळीं। पार्थ कृष्ण निघाले। २३ एके रथीं दोघेजण। आरूढले कृष्णार्जुन। सवें चतुरंग सैन्य। घेऊनि वना चालिले। २४ दारुक सारथी परम चतुर। रथ चालवी समीराहूनि सत्वर। क्रीडा क्रीडत श्रीकरधर। यमुनातीरीं पावला। २५ मध्यान्हा आला असे मित्र। तों कालिंदीतटीं वारिजनेत्र। स्थिरावला हो क्षणमात्र। वन विचित्र विलोकीतसे। २६ कालिंदीतटीं एक कामिनी। परम सुंदर पद्मनयनी। जीचिया अंगुष्ठावरूनी। देवांगना ओंवाळिजे। २७ सकळ लावण्य एकवटलें। कमलोद्भवें हें रूप रचिलें। असो श्रीकृष्णें तीस विलोकिलें। मग बोले किरीटीसी। २८ म्हणे पैल ते कोण ललना। कां

जरासन्ध आदि को मार गिराया और (मुचुकुन्द के कोप का कारण बनाते हुए) कालयवन को (जलाकर) भस्म कर दिया। १९ (तदनन्तर) द्वारका में आकर उन्होंने चिच्छक्तिस्वरूपा रुक्मिणी से परिणय किया। तत्पश्चात जाम्बवान से (मल्ल-) युद्ध करके जाम्बवती का वरण किया। २० तदनन्तर उन्होंने सत्यभामा से विवाह करके और शतधन्वा को मारकर स्यमन्तक मणि ले ली। पचीसवें अध्याय के समाप्त होते क्षण इतनी कथा (वर्णित) हुई। २१ इसके अनन्तर जो कथानुक्रम है उसे विचक्षण पण्डित सुनें। एक दिन हस्तिनापुर से अर्जुन श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए (द्वारका) आ गये। २२ उनका क्षेमालिंगन करके वनमाली कृष्ण ने उनसे समस्त कुशल-समाचार पूछा। (अनन्तर) उस समय अर्जुन और कृष्ण शिकार के लिए निकल गये। २३ कृष्ण और अर्जुन दोनों जने एक रथ में आरूढ़ हो गये। साथ में चतुरंग सेना लेकर वे वन के प्रति जाने लगे। २४ सारथी दारुक परम चतुर था। वह रथ को वायु (की गति) से भी अधिक गति से हाँक रहा था। श्रीकरधर अर्थात लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप कृष्ण क्रीड़ा करते-करते यमुना तट पर जा पहुँचे। २५ सूर्य मध्याह्न पर आ गया था। तब कमलनयन कृष्ण कालिन्दी (यमुना) के तट पर क्षण मात्र स्थिरता को प्राप्त हुए (रुक गये) और उस विचित्र वन को देखने लगे। २६ कालिन्दी के तट पर कोई एक परम सुन्दर कमलनयना कामिनी (तप कर रही) थी, जिसके अँगूठे पर देवांगनाओं को भी निछावर कर दें। २७ उसमें (ब्रह्माण्ड का) समस्त लावण्य इकट्ठा हुआ था। (मानो) ब्रह्मा ने इस रूप का निर्माण किया था। अस्तु। कृष्ण ने उसे

तप करिते आणीं मना। कुळ वर्ण पुसोनि अर्जुना। झडकरी येईं मागुता। २९ शिरीं वंदूनि वचन। तिजजवळी आला अर्जुन। म्हणे कल्याणवती तूं कोण। तप किमर्थ करितेसी। ३० तंव ते बोले पद्मनयना। मी असें जाण सूर्यकन्या। तप करितें मनकामना। पूर्ण व्हावयाकारणें। ३१ तूं म्हणसी कामना कोण। तरी जो श्रीकृष्ण कालियामर्दन। तो पति व्हावयालागीं पूर्ण। तप करितें मी येथें। ३२ संतोषला पार्थवीर। म्हणे तोचि येथें आला श्रीधर। द्वारकाधीश समरधीर। रथीं बैसोनि पातला। ३३ धन्य तूं चंडकिरणकुमारी। तुझें तप फळा आलें ये अवसरीं। तरीच वैकुंठनाथ वनांतरीं। मृगयेलागीं पातला। ३४ ऐसें ऐकतां लावण्यखाणी। ब्रह्मानंद पूर्ण जाहला मनीं। म्हणे धन्य धन्य तुझी वाणी। अमृताहूनि गोड वाटे। ३५ तरी त्या क्षीरसागरविहारा। भेटी करीं मजलागीं सत्वरा। ऐसें ऐकतां अर्जुन माघारा। क्षणें आला हरीपासीं। ३६ सांगितलें सर्व वर्तमान। ऐकतां हांसला जगज्जीवन। तैसाचि रथ लोटून। कालिंदीजवळी पातला। ३७ कालिंदी विलोकी ते वेळां। तों किरीटकुंडलें वनमाळा।

देखा, तो वे किरीटी अर्थात अर्जुन से बोले। २८ वे बोले, 'हे अर्जुन, उस ओर वह कौन स्त्री है? वह क्यों तप कर रही है? —यह मन में लाओ (जान लो)। उसका कुल, वर्ण पूछकर झट से लौट आओ। २९ उनके वचन का सिर से वन्दन करके (उसे नमस्कारपूर्वक स्वीकार करके) अर्जुन उसके समीप आ गये और बोले, 'हे कल्याणवती, तुम कौन हो? तुम किस हेतु से तप कर रही हो?'। ३० तब वह कमलनयना नारी बोली, 'जान लीजिए, मैं सूर्यकन्या हूँ। अपनी मनोकामना पूर्ण होने के उद्देश्य से मैं तप कर रही हूँ। ३१ आप कहेंगे, वह कौन कामना है, तो (जान लीजिए कि) जो कालिय का मर्दन करनेवाले श्रीकृष्ण हैं, वे मेरे पति हो जाएँ, इस हेतु से मैं यहाँ पूर्ण रूप से तप कर रही हूँ'। ३२ (यह सुनकर) वीर पार्थ सन्तुष्ट हो गये। वे बोले, 'वे ही श्रीधर यहाँ आये हैं। (स्वयं) समरधीर द्वारकाधीश रथ में बैठकर (यहाँ) आ पहुँचे हैं। ३३ तुम सूर्यकुमारी धन्य हो। इस समय तुम्हारा तप फल को प्राप्त हुआ है; तभी तो वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण वन के अन्दर मृगया के लिए आ गये हैं'। ३४ ऐसा सुनते ही उस लावण्य की खान (-सी नारी) को मन में पूर्ण ब्रह्मानन्द हुआ। वह बोली, 'आपकी वाणी धन्य है, धन्य है। वह अमृत से अधिक मधुर लग रही है। ३५ अतः उन क्षीरसागर-विहारी से मेरी झट से भेंट करवाइए'। ऐसा सुनने पर अर्जुन क्षण में श्रीहरि के पास आ गये। ३६ उन्होंने समस्त समाचार कहा, तो उसे सुनकर जगज्जीवन श्रीकृष्ण हँसने लगे। (फिर) वे रथ को वैसे ही चलाकर कालिंदी के पास आ पहुँचे। ३७ उस समय कालिन्दी देख रही थी; तो उसने किरीट-कुण्डलों और वनमालाओं

पीतांबरधर मेघसांवळा। चतुर्भुज देखिला श्रीरंग। ३८ जैसा हृदयीं होती ध्यात। तैसाचि देखिला वैकुंठनाथ। दिव्य माळा घेऊनि त्वरित। हरीच्या गळां घातली। ३९ चरणीं माथा ठेविला। कृष्णें आलिंगिली ते वेळां। रथीं बैसवूनि ते अबला। श्रीहरि आला द्वारकेसी। ४० लागला वाद्यांचा गजर। हरि प्रवेशला द्वारकापुर। मग मुहूर्त पाहूनि सुंदर। लग्न केलें यथाविधि। ४१ चारी दिवस एकचि गजर। याचकजन सुखी केले समग्र। यापरी सूर्यकन्या सुकुमार। श्रीकरधरें वरियेली। ४२ यावरी अवंतीचा नृपती। मित्रविंद नामें पुण्यकीर्ती। त्यासी वसुदेवभगिनी सात्वती। दिधली होती पूर्वींच। ४३ त्याची कन्या मित्रविंदा। जिच्या स्वरूपासी नाहीं मर्यादा। तिनें हरिकीर्ति ऐकतां सदा। हृदयीं गोविंदा धरियेलें। ४४ कोणी याचक येती घरा। त्यांसी म्हणे कृष्णकीर्तन करा। उपवर झाली ते सुंदरा। हृदयीं यदुवीरा न विसरे। ४५ राजा कन्येसी वर पाहात। तो तीस कळला वृत्तांत। मग पितयासी विनवीत। वर कृष्णनाथ आणीं कां। ४६ वर वरीन एक जगज्जीवन। इतर पुरुष तुजसमान। ऐसें

को धारण किये हुए, पीताम्बर पहने हुए मेघश्याम चतुर्भुजधारी श्रीकृष्ण को देखा। ३८ जैसे (रूपधारी) का वह मन में ध्यान कर रही थी, वैसे ही (रूपधारी) वैकुण्ठपति को उसने देखा, तो उसने दिव्य माला लेकर झट से श्रीहरि के गले में पहना दी। ३९ (अनन्तर) उसने उनके चरणों पर सिर रखा, तो उस समय कृष्ण ने उसका आलिंगन किया। (तदनन्तर) श्रीकृष्ण उस स्त्री को रथ में बैठाकर द्वारका आ गये। ४० वाद्यों का गर्जन हो रहा था। श्रीकृष्ण द्वारकापुर में प्रविष्ट हो गये। तब सुन्दर (शुभ) मुहूर्त देखकर (निर्धारित करके) उससे यथाविधि विवाह किया। ४१ चारों दिन अद्भुत (आनन्द सूचित करनेवाला) गर्जन हो रहा था। उन्होंने समस्त याचकजनों को सुखी किया। इस प्रकार श्रीपति ने सुकुमार सूर्यकन्या कालिन्दी का वरण किया। ४२ इसके पश्चात अवन्ती नगरी के मित्रविन्द नामक पुण्यकीर्ति (पुण्यश्लोक, पवित्र कीर्ति से युक्त) नृपति थे। उनको पहले ही वसुदेव की भगिनी सात्वती (विवाह में) दी हुई थी। ४३ उनके मित्रविन्दा नामक कन्या थी, जिसकी सुन्दरता की कोई सीमा नहीं थी। उसने श्रीहरि गोविन्द की कीर्ति को सुनकर उन्हें नित्य (के लिए) हृदय में धारण कर दिया। ४४ जब कोई याचक घर आते, तो वह उनसे कहती, ' श्रीकृष्ण का कीर्तन करो '। वह सुन्दरी विवाह योग्य हो गयी थी; वह यदुवीर कृष्ण को हृदय में (कभी) भुला नहीं पाती थी। ४५ राजा कन्या के लिए वर को ढूँढ़ रहे थे। उसे यह समाचार विदित हुआ। तब उसने पिता से विनती की, ' कृष्णनाथ को वर के रूप में लाइए। ४६ मैं एक (मात्र) जगज्जीवन का वर

ऐकोनि कन्येचें वचन। राजा मनीं आनंदला। ४७ तंव तिचे चौघे बंधु सबळ। कृष्णद्वेषी महाखळ। तिहीं वृत्तांत ऐकतां तत्काळ। क्रोधायमान जाहले। ४८ म्हणती आम्ही कृष्णासी न देऊं भगिनी। म्हणोनि सकळ राजे बोलावूनी। सभे बसविले ते क्षणीं। नाना उपचारें पूजोनियां। ४९ कन्येचे हातीं दिधली माळ। म्हणती तुज जो आवडे भूपाळ। त्यासी घालीं तत्काळ माळ। म्हणोनियां उभी केली। ५० तों मित्रविंदा ते अवसरीं। म्हणे श्यामसुंदरा मुरारी। जरी न पावसी झडकरी। तरी हा देह ठेवीं ना। ५१ सर्वांतरात्मा श्रीकृष्ण। जाणे सर्वांची अंतरखूण। तत्काळ रथारूढ होऊन। निजभारेंसीं पातला। ५२ अवंतीनगरासमीप आला वैकुंठनगरींचा भूप। सभेसी बैसले जे नृप। भयभीत जाहले ते। ५३ आला ऐकतां मृगेंद्र। भयभीत होती वनचर। तैसे सभानायक समग्र। चिंतातुर जाहले। ५४ सभेमाजी आला तमालनीळ। तों मित्रविंदा घेऊन उभी माळ। हरि देखतांचि तत्काळ। गळां घातली निमिषार्धें। ५५ तैसीच उचलूनि नोवरी। वेगें घातली स्यंदनावरी। निजभारेंसहित

के रूप में वरण करूँगी। अन्य पुरुष (मेरे लिए) आप (पिता) के समान हैं'। कन्या की ऐसी बात सुनकर राजा मन में आनन्दित हुए। ४७ तब उसके चारों बन्धु बलवान थे। वे कृष्णद्वेष्टा तथा महाखल थे। वे इस समाचार को सुनते ही तत्काल क्रोधायमान हो गये। ४८ वे बोले, 'अपनी भगिनी कृष्ण को नहीं देंगे'। ऐसा कहते हुए उन्होंने उस क्षण समस्त राजाओं को बुलाकर उनका नाना उपचारों से पूजन करते हुए सभा में बैठा लिया। ४९ उन्होंने कन्या के हाथों (पुष्प-) माला दी और कहा, 'हम तुम्हें जो राजा अच्छा लगे, उसके (गले में) तत्काल माला पहना दो'। ऐसा कहकर उन्होंने उसे खड़ा किया। ५० तब उस समय मित्रविन्दा (मन-ही-मन) बोली, 'हे श्यामसुन्दर, हे मुरारि, यदि झट से नहीं आ जाओगे (मुझ पर प्रसन्न होकर प्राप्त न हो जाओगे), तो इस देह को मैं (धारण किये) न रखूँगी'। ५१ श्रीकृष्ण तो सबके अन्तरात्मा थे। वे सबके मन के लक्षण (स्थिति) को जानते थे। वे तत्काल रथ में आरूढ़ होकर अपनी सेना-सहित (वहाँ) जा पहुँचे। ५२ वैकुण्ठ के राजा श्रीकृष्ण अवन्ती नगरी के समीप आ गये, तो सभा में जो राजा बैठे हुए थे, वे भयभीत हो उठे। ५३ 'सिंह आया'—सुनते ही वनचर प्राणी भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार ('श्रीकृष्ण आ गये'—सुनते ही) सभा के नेता (प्रमुख व्यक्ति) चिन्तातुर हो उठे। ५४ (जब) तमालनील श्रीकृष्ण सभा के अन्दर आ गये, तब मित्रविन्दा (वहाँ वर-) माला लेकर खड़ी थी। उसने हरि को देखते ही तत्काल आधे पल में उनके गले में (माला) पहना दी। ५५ तो कंसारि श्रीकृष्ण ने दुलहन को वैसे ही

कंसारी। द्वारकेकडे परतला। ५६ जाहला एकचि हाहाकार। धांविन्नले युद्धासी नृपवर। युद्ध जाहलें घोरांदर। सकळ राजे पराभविले। ५७ नोवरीचे चौघे बंधु ते अवसरीं। युद्ध करूं धांवती झडकरी। त्यांसही कृष्णें बाणांवरी। त्रासूनियां पळविलें। ५८ ऐसा करूनियां पुरुषार्थ। द्वारकेसी आला कृष्णनाथ। चारी दिवसपर्यंत। यथाविधि लग्न केलें। ५९ यावरी राजा यज्ञजित। त्याची कन्या उपवर होत। याज्ञजिती नाम सत्य। रूप विशेष सर्वांहूनि। ६० देखोनियां कन्या सुंदर। जे ते मागों येती नृपवर। राजा म्हणे पृथ्वीवरी जो बलाढ्य वीर। त्यासीच कन्या देईन ही। ६१ अद्भुत पण करी नृपवर। सप्त वृषभ भयंकर। सातही आकळूनि जो वीर। वेसण घाली एकदां। ६२ सात वृषभांचीं नासिकें। एक हस्तें आकळूनि देखें। एकदांचि टोंचील कौतुकें। त्यासींच कन्येचें पाणिग्रहण। ६३ देशोदेशींचे नृपती। कर्णदुर्योधनादिक येती। परी पण भेदवेना निश्चितीं। मग बैसती मूकवत। ६४ कोणी एक वृषभ बळें धरी। शिंगें झाडिती झडकरी। तों तेथें द्वारकापुरविहारी। निजभारेंसीं पातला। ६५ पणाचा वृत्तांत कळला समस्त। मग दृढ कांस घाली रमानाथ।

उठाकर वेगपूर्वक रथ में बैठा दिया और वे अपनी सेना-सहित द्वारका के प्रति लौटे। ५६ तो अद्भुत हाहाकार मच गया। बड़े-बड़े राजा युद्ध के लिए दौड़े। घमासान युद्ध हुआ। उसमें श्रीकृष्ण ने समस्त राजाओं को पराजित किया। ५७ दुलहन के चारों भाई उस समय झट से युद्ध करने के लिए दौड़े। श्रीकृष्ण ने उन्हें भी बाणों से उत्पीड़ित करके भगा दिया। ५८ ऐसा पराक्रम करके कृष्णनाथ द्वारका आ गये। चार दिन तक उन्होंने यथाविधि विवाह (-समारोह) सम्पन्न किया। ५९ इसके पश्चात यज्ञजित नामक एक राजा थे; उनकी कन्या विवाह-योग्य हुई थी। उसका नाम याज्ञजिती था। सचमुच उसका रूप (-सौन्दर्य) सबसे विशेष (अधिक) था। ६० उस सुन्दर कन्या को देखकर जो-जो राजा उसको माँगने के लिए आ जाते, उनसे राजा (यज्ञजित) कहते, 'पृथ्वी पर जो (सर्वाधिक) बलशाली वीर हो, उसी को मैं यह कन्या दूंगा'। ६१ उस नृपवर ने एक अद्भुत प्रण किया— उसके पास सात भयावह बैल थे। जो वीर उन सातों ही को वश में करके उनको एक ही साथ नाथ लेगा, देखिए सातों बैलों की नाकों को एक हाथ से पकड़कर एक ही साथ जो सहजतया (लीलया) बींध ले, उसी के साथ कन्या का विवाह होगा। ६२-६३ कर्ण, दुर्योधन, आदि देश-देश के राजा आ गये, परन्तु उनमें से किसी द्वारा भी निश्चय ही उस प्रण को पूरा नहीं किया जा सका। तो वे मूकवत् (गूँगे की तरह) बैठ गये। ६४ कोई एक उन बैलों को बलपूर्वक पकड़ता भी, परन्तु वे झट से सींग झटके के साथ हिलाने लगते। (तब) वहाँ

व्रजाचे वृषभ भासत। आकळी सर्वांदेखतां। ६६ त्रिभुवनींच्या वीरां नाटोपे पण। तो सिद्धीसी नेला नलगतां क्षण। सातां वृषभांचीं नाकें टोंचून। वेसण घाली एकदांचि। ६७ झाला एकचि जयजयकार। याज्ञजिती माळ घाली सत्वर। तों खवळले दुष्ट नृपवर। युद्धालागीं मिसळले। ६८ सकळ राजे पराभवून। यथाविधि केलें पाणिग्रहण। रायें अपार दिधलें आंदण। मग नारायण बोळविला। ६९ सवें घेऊनि याज्ञजिती। द्वारकेसी आला यदुपती। यावरी मद्ररायाची कन्या मद्रावती। तीस श्रीपति वरिता जाहला। ७० माता पिता बंधुजन। म्हणती पुरुषार्थी नवरा नारायण। त्यासी मद्रावती देऊन। षोडशोपचारें पूजावा। ७१ मग बोलावूनि श्रीपती। यथाविधि दिधली मद्रावती। चारी दिवस सोहळा निश्चितीं। यथासांग जाहला। ७२ देऊनि अपार आंदण। बोळविला यादवकुळभूषण। मद्रावती सवें घेऊन। गजरें पातला निजनगरा। ७३ यावरी राजा लक्ष्मणसेन। त्याची कन्या लक्ष्मणा सुरत्न। तेणें केला दुर्धर पण। मत्स्ययंत्र तेधवां। ७४ अखंड

द्वारकापुरविहारी श्रीकृष्ण अपनी सेना-सहित आ पहुँचे। ६५ उन्हें प्रण सम्बन्धी समस्त समाचार विदित हुआ, तब रमापति विष्णुस्वरूप कृष्ण ने दृढ़ता के साथ काछ लगायी (कमर कस ली)। उनको वे बैल व्रजमण्डल के बैल (जैसे) आभासित हुए। उन्होंने उनको सबके देखते वश में कर पकड़ लिया। ६६ जो प्रण त्रिभुवन के वीरों द्वारा पूरा नहीं हो सका था, उसे उन्होंने क्षण न लगते सिद्धि को प्राप्त करा लिया। उन सातों बैलों की नाकों को बींधते हुए एक साथ सबको नाथ डाला। ६७ तो अद्वितीय रूप से जयजयकार हुआ। याज्ञजिती ने झट से उन्हें माला पहनायी; तब दुष्ट राजा क्षुब्ध हो उठे। वे युद्ध करने के लिए मिलकर इकट्ठा हुए। ६८ श्रीकृष्ण ने समस्त राजाओं को पराजित करके यथाविधि (याज्ञजिती का) पाणिग्रहण किया। राजा ने अपार दायजा दिया और फिर नारायण (श्रीकृष्ण) को बिदा किया। ६९ यदुपति श्रीकृष्ण याज्ञजिती को साथ में लेकर द्वारका आ गये। इसके पश्चात् मद्रराज के मद्रावती नामक कन्या थी। श्रीकृष्ण ने उसका वरण किया। ७० उसके माता-पिता, बन्धुजन कहते थे— नारायण श्रीकृष्ण पराक्रमी वर हैं। उन्हें मद्रावती देकर उनका सोलह उपचारों से पूजन करें। ७१ तब श्रीकृष्ण को बुलाकर उन्होंने मद्रावती (विवाह में) प्रदान की। निश्चित रूप से विवाह-समारोह चारों दिन यथासांग सम्पन्न हुआ। ७२ ऊपर दायजा देकर उन्होंने यादवकुल-भूषण को बिदा किया। वे मद्रावती को साथ में लेकर गर्जनपूर्वक अपने नगर आ पहुँचे। ७३ इसके पश्चात्, लक्ष्मणसेन नामक एक राजा थे। उनकी लक्ष्मणा नामक कन्या सुरत्न (उत्तम कन्या-रत्न) थी। उन्होंने उस समय मत्स्य यंत्र सम्बन्धी (यह) दुर्धर प्रण किया ७४। 'मत्स्ययंत्र

मत्स्ययंत्र फिरत। खालतें पाहोनि उदकांत। नळिकायंत्रें बाण त्वरित। अधोवदनें सोडावा। ७५ भेदावया मत्स्याचा वाम नयन। मर्यादा केली तीन बाण। जो हें लक्ष्य भेदील सुजाण। त्यासी कन्या देईन हे। ७६ मिळाले देशोदेशींचे नृपवर। दुर्योधनकर्णादि शाल्व वीर। निजभारें पार्थ वीर सत्वर। तोही आला तेधवां। ७७ तों धनुष्य देखिलें प्रचंड। शिवधनुष्याऐसें वितंड। नुचले आधीं कोणासी कोदंड। मग यंत्र भेदील कोण पैं। ७८ कोणी धनुष्य उचलूनि पाहती। तों तें कोणा न ढळे निश्चितीं। उगेचि बैसती तटस्थ नृपती। कौतुक म्हणती पाहूं आतां। ७९ मग उठिला वीर कर्ण। आपुलें संपूर्ण बळ वेंचून। धनुष्यासी चढविला गुण। नाना प्रकारेंकरूनियां। ८० खालीं भोंवे उदकाचा आवर्त। वरी चक्राकार मीन फिरत। नलिकाद्वारें न भेदवे निश्चित। म्हणोनि धनुष्य ठेविलें। ८१ स्वस्थानीं बैसला कर्ण। मग उठिला पार्थ आपण। धनुष्या लावूनियां बाण। अधोवदनें सोडिला। ८२ परी चुकलें तेंही संधान। मग धनुष्य खालीं ठेवी अर्जुन। बैसला स्वस्थानीं जाऊन। कोणा पण न भेदवे। ८३ सभा राहिली तटस्थ पूर्ण। कन्या उभी

अनवरत घूमता है। नीचे पानी में (उसका प्रतिबिम्ब) देखते हुए, नीचे मुँह करके नलिकायंत्र में से बाण चलाना है। ७५ मत्स्य के बायें नेत्र को बेधने के लिए तीन बाणों की (संख्या-) मर्यादा निर्धारित की है। जो भी सुजान (धतुर्धर) इस लक्ष्य को भेद लेगा, मैं उसे यह कन्या दूँगा'। ७६ देश-देश के दुर्योधन, कर्ण, शाल्व वीर आदि नृपवर इकट्ठा हुए। वीर अर्जुन अपनी सेना-सहित उस समय झट से आ गये। ७७ उन (सब) ने वह प्रचण्ड धनुष देखा। वह शिवजी के धनुष जैसा प्रचण्ड था। (एक तो) पहले वह धनुष किसी के द्वारा उठाया नहीं जा रहा था। तब उस (मत्स्य-) यंत्र को कौन भेद डालेगा। ७८ कुछ एक धनुष को उठाकर देखने लगे (उठाने का यत्न करके देखने लगे)। तब वह निश्चय ही किसी के द्वारा हिला (तक) नहीं। तो वे राजा चकित होकर चुपचाप बैठ गये। बोले, 'अब मज़ा देखें'। ७९ तब वीर कर्ण उठ गया। उसने अपना सम्पूर्ण बल लगाकर नाना प्रकार से (यत्न करके) धनुष पर डोरी चढ़ा दी। ८० नीचे पानी में भँवर घूमता था। ऊपर मत्स्य चक्राकार घूम रहा था। 'निश्चय ही वह नलिका के द्वार में से (बाण चलाकर) भेदा नहीं जा सकता'—ऐसा कहकर (सोचकर) उसने धनुष रख दिया। ८१ (अनन्तर) कर्ण अपने स्थान पर बैठा; तब अर्जुन स्वयं उठ गया। उसने धनुष पर बाण चढ़ाकर नीचे मुँह करके चला दिया। ८२ परन्तु वह निशाना भी चूक गया। तब अर्जुन ने धनुष नीचे रख दिया और जाकर वह अपने स्थान पर बैठ गया। (इस प्रकार) किसी के द्वारा प्रण (वाला लक्ष्य) भेदा नहीं जा सका। ८३ सभा पूर्ण चकित-स्थिर हो

माळ घेऊन। विलोकी श्रीरंगाचें वदन। प्रेमेंकरूनि सद्गदित। ८४
जाणोनि तियेचें अंतर। सत्वर उठिला यादवेंद्र। धनुष्यबाण घेऊनि सत्वर। ठाण मांडिलें तेधवां। ८५ पूर्वीं रामें केलें त्र्यंबकचापभंजन। त्याहूनि कठिण दिसे हा पण। लीलावतारी जगन्मोहन। न लागतां क्षण भेदिलें। ८६
नलिकाद्वारें बाण गेला। मत्स्यनयन तेव्हां भेदिला। एकचि जयजयकार झाला। निर्जर पुष्पें वर्षती। ८७ ते वेळीं त्या कालियामर्दना। माळ घाली लक्ष्मणा। मग प्रार्थूनि राहविलें जगज्जीवना। लग्न केलें विधिपूर्वक। ८८ चारी दिवस सोहळा झाला अद्भुत। दोन लक्ष वाजी एक लक्ष रथ। एक अयुत गज जैसे पर्वत। आंदण दिधले तेधवां। ८९ लक्ष्मणा घेऊनि सवेग। द्वारकेसी आला श्रीरंग। अष्टनायिका वरिल्या सांग। भक्तभवभंगें यापरी। ९० अष्टनायिकांसहित। नांदे द्वारकेसी वैकुंठनाथ। लीलावतारी रुक्मिणीकांत। प्रताप अद्भुत न वर्णवे। ९१ रुक्मिणी जांबुवंती सत्यभामा सगुणा। कालिंदी मित्रविंदा याज्ञजिती सुजाणा। भद्रावती आणि आठवी लक्ष्मणा। नारायणें वरियेल्या। ९२ ऐसा द्वारकेसी

गयी। कन्या माला लिये हुए खड़ी थी। वह प्रेम से बहुत गद्गद होकर श्रीकृष्ण के मुख की ओर देख रही थी। ८४ उसके मन (के भाव) को जानकर यादवेन्द्र शीघ्रतापूर्वक उठ गये और झट से धनुष-बाण लेकर उस समय विशिष्ट मुद्रा में डटकर बैठ गये। ८५ पूर्वकाल में राम ने शिव-धनुष को तोड़ डाला था। यह प्रण उससे कठिन दिखायी दे रहा था। फिर भी जगन्मोहन कृष्ण तो लीलावतारी हैं। उन्होंने क्षण न लगते उस (मत्स्य) को भेद लिया। ८६ नलिका के द्वार में से बाण चला गया; उसने मत्स्य का नयन भेद डाला; तो बेजोड़ जय-जयकार हो गया। देवों ने फूल बरसा दिये। ८७ उस समय कालिय का मर्दन करनेवाले उन कृष्ण को लक्ष्मणा ने माला पहना दी। अनन्तर (राजा ने) प्रार्थना करते हुए जगज्जीवन को ठहरा लिया और उन्होंने विधिपूर्वक विवाह कर दिया। ८८ चारों दिन अद्भुत (रूप से) समारोह सम्पन्न हुआ। उस समय दो लाख घोड़े, एक लाख रथ, दस हजार पर्वत जैसे हाथी दायजे में दे दिये। ८९ श्रीरंग लक्ष्मणा को लेकर वेगपूर्वक द्वारका आ गये। इस प्रकार, भक्तों के सांसारिक बंधनों को भग्न करनेवाले श्रीकृष्ण ने सभी अंगों-सहित विधि के अनुसार आठ नायिकाओं (स्त्रियों) का वरण किया। ९० वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण, लीलावतार ग्रहण करनेवाले रुक्मिणीकान्त श्रीकृष्ण आठों नायिकाओं-सहित द्वारका में सुखपूर्वक निवास करने लगे। उनके अद्भुत प्रताप का वर्णन नहीं किया जा सकता। ९१ नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी, जाम्बवती, गुणवती सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सुजान याज्ञजिती, भद्रावती और आठवीं (नायिका) लक्ष्मणा का वरण किया। ९२

नांदे जगज्जीवन । तों अकस्मात कमलोद्भवनंदन । हातीं ब्रह्मवीणा घेऊन । ऊर्ध्वपंथें पातला । ९३ सुधर्मासभेसी यादवेंद्र । यादवांसमवेत बैसला उदार । नारद देखितां रुक्मिणीवर । उठोनि उभा ठाकला । ९४ जो व्यासवाल्मीकांचा गुरु साचार । त्यासी षोडशोपचारें पूजी श्रीधर । ब्राह्मणदेव यदुवीर । परम प्रियवर भक्तांसी जो । ९५ तों नारदें स्वर्गींहून । आणिलें पारिजातकसुमन । त्याच्या सुवासेंकरून । द्वारकानगर घुमघुमलें । ९६ चतुर्दश रत्नांमाजी सुरेख । क्षीराब्धिमाजी निघाला पारिजातक । ज्याचें पालन शचीनायक । प्रीतीनें स्वर्गीं करीतसे । ९७ जें पुष्प न सुके कदाकाळीं । परम दुर्लभ भूमंडळीं । तें पुष्प नारदें ते वेळीं । श्रीरंगासी दीधलें । ९८ आश्चर्य करिती सभानायक । त्यापुढें सुवास नेणों आणिक । असो सभा विसर्जिलिया सकळिक । निजमंदिरीं प्रवेशती । ९९ नारद गेला तेथूनी । रुक्मिणीच्या मंदिरीं चक्रपाणी । प्रवेशोनि तेचि क्षणीं । काय करिता जाहला । १०० गजदंताचिया डोल्हारियावरी । बैसोनियां मधुकैटभारी । रुक्मिणी बोलावूनि ते अवसरीं । पुष्प हातीं दीधलें । १०१ परम संतोषली

इस प्रकार जगजजीवन श्रीकृष्ण द्वारका में सुखपूर्वक निवास कर रहे थे । तो ब्रह्मा के पुत्र नारद हाथ में ब्रह्मवीणा लिये हुए अकस्मात ऊर्ध्व (आकाश) मार्ग से आ गये । ९३ उदारचरित रुक्मिणीपति यादवेन्द्र कृष्ण इन्द्र-सभा (जैसी अपनी सभा) में यादवों-सहित बैठे हुए थे । नारद को देखते ही वे उठकर खड़े हो गये । ९४ जो वस्तुतः व्यास और वाल्मीकि के गुरु थे, उन ब्राह्मणदेवता नारद का यदुवीर श्रीधर कृष्ण ने, भक्तों का परम प्रिय करनेवाले श्रीकृष्ण ने सोलह उपचारों से पूजन किया । ९५ तब नारद स्वर्ग से पारिजात का फूल लाये थे । उसकी सुगन्ध से द्वारका नगर महक उठा था । ९६ क्षीरसागर के अन्दर से सुन्दर चौदह रत्नों[1] में से एक के रूप में पारिजात वृक्ष निकला था, जिसका पालन शचीपति इन्द्र स्वर्ग में प्रीतिपूर्वक कर रहा है । ९७ जो फूल किसी भी समय नहीं सूखता (मुरझा जाता), जो भूमण्डल में परम दुर्लभ है, वह फूल नारद ने उस समय श्रीकृष्ण को दे दिया । ९८ सभा में बैठे प्रमुख लोग (उसे देखकर) आश्चर्य करने लगे । (वे बोले—) हम उसके सामने (उसकी तुलना में) कोई अन्य सुगन्ध नहीं जानते । अस्तु । सभा के समाप्त हो जाने पर वे सब अपने-अपने घर में प्रविष्ट हो गये । ९९ नारद वहाँ से चले गये । (इधर) चक्रपाणि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के प्रासाद में प्रविष्ट होकर उस क्षण क्या किया (सुनिए) । १०० हाथीदाँत के बने झूले पर बैठकर मधुकैटभारि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को बुलाते हुए उस समय वह फूल उसके हाथ में (रख) दिया । १०१ वह जगन्माता परम सन्तुष्ट

---

१ चौदह रत्न— देखिए टिप्पणी १, पृ० २५५, अध्याय ६ ।

जगन्माता। परी दूतीच्या मुखें हे वार्ता। सत्यभामेच्या कर्णीं तत्त्वतां। प्रवेशली आद्यंत। २ कीं पुष्प दिधलें रुक्मिणीसी। ऐकतां क्षोभली मानसीं। ताम्रवर्ण जाहला वदनशशी। अश्रु नेत्रांसी पैं आले। ३ काढूनि टाकिले अलंकार। मोकळे रुळती कबरीभार। खेदें विव्हळ सुकुमार। स्वेदें शरीर आर्द्र जाहलें। ४ दिव्य तल्पक सांडून। उर्वीवरी केलें शयन। हृदय गहिंवरलें पूर्ण। श्वासोच्छ्वास टाकीतसे। ५ नयनीं सुटले पाझर। तेणें भिजले पयोधर। वर्जिले सकळ उपचार। विकळ शरीर पडियेलें। ६ सख्यांसी म्हणे त्या चित्तचोरा। नका येऊं देऊं माझ्या मंदिरा। माझा प्राण गेलियाही शरीरा। स्पर्श त्याचा न करावा। ७ हृदय त्याचें परम कठिण। बाळपणीं केलें विषप्राशन। द्वादश गांवें गिळिला अग्न। त्याचें वदन न पाहें मी। ८ तेणें भोगिल्या बहुत युवती। महापतित त्यासी जपती। त्यासी माझिया सदनाप्रती। येऊं देऊं नका हो। ९ परमनाटकी कपटी जार। माझिया सवतीचा प्रियकर। त्याचा स्पर्श अणुमात्र। मज सर्वथा सोसेना। ११० असो हें वर्तमान त्वरा। कळलें त्या भुवनसुंदरा। तत्काळ तिचिया मंदिरा। येता जाहला यादवेंद्र। १११ तिचा परिसोनियां वृत्तांत।

हुई। परन्तु, दूती के मुख से यह समाचार आदि से अन्त तक सत्यभामा के कानों में सचमुच प्रविष्ट हो गया कि (श्रीकृष्ण ने) रुक्मिणी को (पारिजात) फूल दिया है। २ यह सुनते ही वह मन में क्षुब्ध हो उठी। उसका मुखचन्द्र क्रोध से ताम्रवर्ण (लाल) हो गया। उसकी आँखों में आँसू आ गये। ३ उसने आभूषण उतार डाले। उसके केश-भार मुक्त रूप से झूलने लगे। वह सुकुमारी खेद से विह्वल हो गयी। उसका शरीर पसीने से गीला हो गया। ४ दिव्य पलंग छोड़कर वह भूमि पर सो गयी (लेट गयी)। हृदय पूर्णतः गद्गद हो उठा। वह ठण्डी साँस लेने लगी। ५ आँखों से आँसुओं के प्रवाह छूट गये (बहने लगे)। उनसे उसके स्तन भीग गये। उसने समस्त उपचारों का त्याग किया। उसका शरीर विकल होकर (लुढ़क) पड़ा। ६ उसने सखियों से कहा— 'उस चित्तचोर को मेरे घर में मत आने दो। मेरे प्राणों के जाने पर भी मेरे शरीर को उनका स्पर्श न करवा दो। ७ उसका हृदय परम कठोर है। उसने बचपन में विष-प्राशन किया था; बारह योजन अग्नि को निगल डाला था। मैं (अब) उसका मुँह न देखूँगी। ८ उसने बहुत युवतियों का उपभोग किया है। महापतित लोग उसका जाप करते हैं। उसे मेरे घर के प्रति मत आने दो। ९ वह परम स्वाँगी है, कपटी है, जार है। वह मेरी सौत का प्रियकर है। उसका स्पर्श मुझसे अणु मात्र (भी) बिलकुल सहा नहीं जाएगा'। ११० अस्तु। यह समाचार उन भुवन-सुन्दर यादवेन्द्र श्रीकृष्ण को झट से विदित हुआ। तो वे तत्काल उसके

दासींप्रति दावी हस्तसंकेत। बोलूं नका कांहीं मात। उग्याचि असा क्षणभरी। ११२ मौनेंचि येऊनि मोक्षदानी। सत्यभामेचें शिर उचलूनी। उसां आपुली मांडो देऊनी। चक्रपाणी बैसला। ११३ मग बोले कंसारी। आमुची राणी आजि भूमीवरी। निजली असे निर्धारीं। कोण्या क्रोधें कळेना। ११४ मुखचंद्र उतरला देख। भूमीवरी रुळती अलक। कपाळींचा मृगमद सुरेख। घर्मभरें वाहवला। ११५ अंजनओघें पयोधर। कृष्णमुख जाहले समग्र। द्विज समुदाय सकळ वर। विद्रुमाधर सूकले। ११६ परमविशाळ नेत्र अंबुधर। आरक्त झाले झिरपे नीर। निचेष्टित पडले इंद्रियकर। कारभार टाकूनियां। ११७ नयनकपाटें उघडूनी। आम्हांकडे न पाहेचि राणी। खेद तरी धरिला मनीं। कोणे गोष्टीचा न कळेचि। ११८ ऐसे लौकिक विलास। दावी तेव्हां पुराणपुरुष। आपुल्या पीतांबरें हृषीकेश। नेत्रअश्रु पुसी तेव्हां। ११९ मग ते सद्‌गदित होऊन। स्फुंदस्फुंदोनि बोले वचन। जीस तुम्हीं दिधलें सुमन। तिचें समाधान करावें। १२० मजवरी असतें तुमचें मन। तरी कां तीस देतां सुमन। ऐकतांचि ऐसें वचन। हांसे

प्रासाद में आ गये। १११ उसके सम्बन्ध में समाचार सुनकर उन्होंने दासियों को हाथ से संकेत किया (और सुझाया)— 'कोई बात न बोलो; क्षण भर चुप ही रहो'। १२ मौन के साथ आते हुए मोक्षदाता चक्रपाणि श्रीकृष्ण सत्यभामा का सिर उठाकर अपनी जंघा उसके सिरहाने रखते हुए बैठ गये। १३ अनन्तर कृष्ण बोले, 'यह समझ में नहीं आ रहा है कि हमारी रानी निश्चयपूर्वक भूमि पर किस क्रोध से (सोयी हुई) लेटी हुई है। १४ देखो, इसका मुखचन्द्र उतर गया है (फीका पड़ गया है)। भूमि पर बाल लोट-पोट रहे हैं। मस्तक पर की सुन्दर कस्तूरी पसीने की अधिकता से बह गयी है। १५ (आँखों में लगे) अंजन (के बहने) से स्तनाग्र भाग पूरे-पूरे काले हो गये हैं। समस्त उत्तम दन्त-समुदाय तथा विद्रुम-से (लाल वर्ण के) होंठ सूख गये हैं। १६ परम विशाल नेत्र आरक्त हो गये और उन नेत्रों रूपी जलधरों (मेघों से) जल निःसृत हो रहा है। अपने कार्य-भार को छोड़कर हस्तेन्द्रियाँ निश्चेष्ट (स्थिर, अचल) पड़ी (हुई) हैं। १७ (हमारी) रानी नयन-द्वार (पलकों को) खोलकर हमारी ओर देख ही नहीं रही है। समझ ही में नहीं आता कि उसने किस बात के बारे में मन में खेद धारण किया है'। १८ तब पुराणपुरुष हृषीकेश ने इस प्रकार की लौकिक लीलाएँ प्रदर्शित कीं और फिर अपने पीताम्बर से उसकी आँखों के आँसू पोंछ लिये। १९ अनन्तर वह बहुत गद्‌गद होकर सुबकते-सुबकते यह बात बोली, 'जिसको आपने फूल दिया, (जाकर) उसे सान्त्वना दे दीजिए। १२० यदि आपका मन मुझमें (लगा) होता, तो उसको फूल क्यों दे देते'। ऐसी बात सुनते

आलें रमारंगा। १२१ हरि म्हणे नारदें आणिलें सुमन। तें देऊनि केलें तिचें समाधान। परी तुझें द्वारीं आणून। वृक्षचि लावीन अवघा। २२ ऐसें बोलोनि उठविली। आलिंगन देऊनि अंकीं बैसविली। नूतन अलंकार ते वेळीं। स्वहस्तें वनमाळी लेववीत। २३ शीसफूल चंद्र जडोनी। आपुल्या हातें घातली वेणी। वेणीचे नग चक्रपाणी। ठायीं ठायीं गुंफीत। २४ मुख धुवोनि स्वहस्तें। कुंकुम रेखिलें रमानाथें। अंगप्रत्यंगीं भूषणें समस्तें। दिव्य नूतनें लेवविलीं। २५ ऐसें करीत समाधान। तों तेचि वेळीं पाक-शासन। आला गाऱ्हाणें घेऊन। हरिलागीं सांगावया। २६ करूनि साष्टांग नमस्कार। उभा राहिला वज्रधर। भ्रूसंकेतें क्षीराब्धिजावर। वर्तमान पुसे इंद्रातें। २७ तंव तो म्हणे यादवराया। नरकासुर येऊनियां। आमचा मुख्य मुकुट हिरोनियां। घेऊनि गेला निजबळें। २८ आमुची जे कां अदिति माता। तिचीं कुंडलें नेलीं जगन्नाथा। ज्या कुंडलांची प्रभा पाहतां। शशिसूर्य झांकुळती। २९ भूमिपुत्र नरकासुर। असंख्य त्याजवळी दैत्यभार।

ही रमापति कृष्ण को हँसी आयी। १२१ श्रीहरि बोले, 'नारद फूल लाये थे, वह देकर मैंने उसको सन्तुष्ट किया; परन्तु मैं पूरा वृक्ष ही लाकर तुम्हारे द्वार पर लगा दूंगा'। २२ ऐसा बोलकर वनमाली ने उसे उठा लिया; उसका आलिंगन करते हुए उसे गोद में बैठा लिया और उस समय अपने हाथों से नये आभूषण पहना दिये। २३ शीर्षफूल और चन्द्र पहनाते हुए चक्रपाणि कृष्ण ने अपने हाथों उसकी बेनी गूँथी और बेनी में (पहनाये जानेवाले) आभूषण स्थान-स्थान पर गूँथ लिये। २४ रमानाथ कृष्ण ने अपने हाथ ले उसका मुँह धोकर कुंकुम (तिलक) अंकित किया। उसके अंग-प्रत्यंग में समस्त नये-नये दिव्य आभूषण धारण कराये। २५ इस प्रकार उन्होंने उसे सान्त्वना देते हुए तृप्त किया। तब उसी समय स्वर्गाधिपति इन्द्र शिकायत लेकर श्रीकृष्ण से कहने के लिए आ गया। २६ वज्रधर इन्द्र साष्टांग नमस्कार करके खड़ा रहा, तो लक्ष्मीपति कृष्ण ने भौंह (अर्थात आँख) के संकेत से इन्द्र से समाचार पूछा। २७ तब वह बोला, 'हे यादवराज, (स्वर्ग में) आकर नरकासुर अपने बल से हमारा मुख्य मुकुट छीनकर ले गया। २८ हे जगन्नाथ, हमारी जो माता है, उस अदिति के वे कुण्डल वह ले गया, जिनकी प्रभा को देखकर चन्द्र-सूर्य धुँधले हो जाते हैं। २९ नरकासुर भूमिपुत्र[1] है। उसके पास अनगिनत

---

१ भूमिपुत्र नरकासुर— प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरकासुर भूमि से उत्पन्न हुआ था। उसे भौम, भौमासुर भी कहते हैं। माता भूमिदेवी ने विष्णु को प्रसन्न करके उसे वरदान-स्वरूप वैष्णवास्त्र प्राप्त करा दिया था। उससे वह अवध्य हो गया था। पृथ्वी पर की सुन्दर स्त्रियों, रत्नों और वस्त्रों का हरण करके उसने अपने नगर में रखा था। विशेषता यह है कि वह स्वयं इनमें से किसी का उपभोग नहीं करता था।

देवांचीं पदें समग्र। हिरोनि घ्यावया इच्छीतसे। १३० आम्हीं कोणासी जावें शरण। तूं देवाधिदेव सनातन। बाळकें खेद पावतां धांवोन। पितयाच्या गळां पडती पैं। १३१ माता जरी परतें लोटी। परी तिच्या पायीं घालिती मिठी। आम्ही शरण जगजेठी। याचि रीतीं तुज आलों। ३२ कैवारिया यादवेंद्रा। धांवणें करीं प्रतापरुद्रा। दीनबंधु करुणासमुद्रा। ब्रीदें सांभाळीं आपुलीं। ३३ ऐसें ऐकोनि सत्यभामापती। सैन्य सिद्ध करवी शीघ्रगती। यादवभार सिद्ध होती। चतुरंगदळासहित पैं। ३४ त्राहाटिल्या संग्रामसंकेतभेरी। तेणें मंगळजननी थरारी। तों सत्यभामा म्हणे जी कंसारी। मीही येईन समागमें। ३५ ऐकतें तुमच्या संग्रामगोष्टी। परी मीही पाहीन आजि दृष्टीं। गरुडावरी तुमच्या पृष्ठीं। मागें लपोनी राहीन मी। ३६ हरि म्हणे ऐक मृगनयनी। संग्रामाच्या गोष्टी ऐकिजे कानीं। महावीर रण देखोनी। मूर्च्छा येऊनि पडती धरे। ३७ तुज सोसेना अनिल शीतळ। तेथें येती बाणांचे कल्लोळ। तें नव्हे गायन मंजुळ। आरडती सकळ वीर तेथें। ३८ तो नव्हे मृदंग मधुर। होती उल्हाटयंत्रांचे भडिमार। तुज उष्ण न सोसे अणुमात्र। शस्त्रसंभार वर्षती तेथें। ३९

दैत्यों के सैनिक-दल हैं। वह देवों के समस्त पद छीन लेना चाहता है। १३० हम किसकी शरण में जाएँ ? तुम सनातन देवाधिदेव हो। खेद को प्राप्त हो जाने पर बालक दौड़ते हुए पिता के गले पड़ (लग) जाते हैं। १३१ यद्यपि माता पुनः दूर धकेल देती हो, तो भी वे उसके पाँवों में लिपट जाते हैं। हे जगद्श्रेष्ठ, इसी प्रकार हम तुम्हारी शरण में आ गये हैं। ३२ हे सहायक-समर्थक यादवेन्द्र, हे प्रतापरुद्र, दौड़ो। हे दीनबन्धु, हे करुणासमुद्र, अपने बिरुदों को सम्हाल लो'। ३३ ऐसा सुनकर सत्यभामा-पति श्रीकृष्ण ने सेना को शीघ्र गति से सिद्ध करवा दिया, तो चतुरंग दलों-सहित यादवों के दल सिद्ध हो गये। ३४ युद्ध के लिए प्रस्थान का संकेत कर देनेवाली भेरियाँ बजवा दी गयीं। उससे मंगल-जननी अर्थात पृथ्वी थर्राहट के साथ काँप उठी। तब सत्यभामा बोली, 'हे कंसारि, मैं भी साथ में आऊँगी। ३५ तुम्हारे युद्ध की बातें मैं सुनती रही हूँ; परन्तु मैं भी आज अपनी आँखों से देखूँगी। मैं गरुड़ पर तुम्हारी पीठ के पीछे छिपकर (बैठी) रहूँगी'। ३६ इसपर श्रीहरि बोले, 'हे मृगनयना, सुनो। युद्ध की बातें कानों से सुनें। महान वीर (तक) युद्ध को देखते हुए मूर्च्छा के आने से धरती पर गिर पड़ते हैं। ३७ तुमसे तो शीतल पवन (के झोंके) को भी नहीं सहा जाता और वहाँ तो बाणों की (लहरों पर) लहरें आती रहती हैं। वह तो मधुर गायन नहीं है। वहाँ समस्त वीर चीखते-चिल्लाते रहते हैं। ३८ वह मधुर मृदंग (की ध्वनि) नहीं है। वहाँ तोपों की धमाके के साथ भारी मार होती रहती है।

सत्यभामा म्हणे प्रतापशूरा। तुम्ही जवळी असतां यादवेंद्रा। मज न लागे भयवारा। तुमच्या कृपेंकरूनियां। १४० मनीं विचारिलें जगन्नाथें। जरी समागमें न न्यावें ईतें। तरी ही पुन्हां रुसेल मग मातें। सांकडें होईल दूसरें। १४१ स्त्रियेशीं युद्ध केल्याविण। भौमासुरा नाहीं मरण। पुढील भविष्यार्थ जाणोन। सत्यभामा सवें घेतली। ४२ गरुडारूढ जाहला जगजेठी। सत्यभामा बैसविली पाठीं। दळभारेंसीं उठाउठी। दैत्यपुरीसमीप आला। ४३ तों सात दुर्ग तया नगरा। भेदीत गेलीं हो अंबरा। सात परिघ अवधारा। जेथींच्या नीरा अंत न लागे। ४४ महाप्रतापी नरकासुर। भूमंडळींच्या कन्या नागर। एकशत सोळा सहस्र। सांचवूनि ठेविल्या। ४५ तितुक्यांशीं लग्न लावूनियां। करूं इच्छी आपुल्या स्त्रिया। ज्यांच्या स्वरूपावरूनियां। रंभा मेनका ओंवाळिजे। ४६ ऐशा त्या सुंदरा कोंडूनी। नरकासुरें ठेविल्या निजसदनीं। सैन्यासहित चक्रपाणी। वेढा घाली नगरातें। ४७ कळला नरकासुरासी समाचार। कीं इंद्राचा कैवारी यादवेंद्र। युद्धालागीं आला बाहेर। दैत्य थोर कोपला। ४८ आज्ञा देतां

तुमसे अणुमात्र उष्णता नहीं सही जाती; वहाँ तो शस्त्रों के ढेर (के ढेर) बरसते रहते हैं'। ३९ तो सत्यभामा बोली, 'हे प्रतापशूर, हे यादवेन्द्र, तुम्हारे (मेरे) पास रहने पर तुम्हारी कृपा से मुझे भय रूपी हवा (तक) नहीं लग पाएगी'। १४० (यह सुनकर) जगन्नाथ कृष्ण ने मन में विचार किया कि यदि इसे साथ में न ले जाएँ, तो यह फिर से रूठ जाएगी, तब मेरे लिए दूसरा संकट आ पड़ेगा। १४१ बिना स्त्री से युद्ध किये, भौमासुर (नरकासुर) की मृत्यु नहीं होगी —आगे का यह भविष्यार्थ (संकेत, होनी) जानकर उन्होंने सत्यभामा को साथ में ले लिया। ४२ जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण गरुड़ पर आरूढ़ हो गये। उन्होंने सत्यभामा को अपने पीछे बैठा लिया। (फिर) वे सेनादल-सहित तत्काल दैत्यपुरी के समीप आ गये। ४३ तो (देखा कि) उस नगर के (चारों ओर) सात क़िले हैं। वे आकाश को भेदते हुए (ऊपर) गये थे। सुनिए, (उसके चारों ओर) सात परिघ (खन्दक) थे, जहाँ के पानी की कोई थाह नहीं लग रही थी। ४४ नरकासुर महाप्रतापी था। उसने भूमण्डल की सोलह सहस्र एक सौ सुन्दर कन्याओं (का हरण करके उन) को इकट्ठा कर रखा था। ४५ उन सबसे विवाह करके वह उनको अपनी स्त्रियाँ बनाना चाहता था। जिनकी सुन्दरता पर रम्भा-मेनका (जैसी अप्सराओं) को निछावर कर दें, ऐसी उन सुन्दरियों को बन्दी बनाकर नरकासुर ने अपने सदन में रखा था। सेना-सहित चक्रपाणि कृष्ण ने उस नगर को घेर लिया। ४६-४७ जब दैत्य नरकासुर को यह समाचार विदित हुआ कि इन्द्र के सहायक यादवेन्द्र कृष्ण युद्ध के लिए (नगर के) बाहर आये

ते अवसरीं। सेनासिंधु लोटला बाहेरी। रणवाद्यें महागजरीं। वाजों लागलीं तेधवां। ४९ एकाहूनि एक उंच दुर्ग। उल्हाटयंत्रें भडकती वेगें। इंद्रादिक निराळमार्गं। विमानीं बैसोनि पाहती। १५० पायदळावरी पायदळ। एकवटलें परम तुंबळ। एकचि झाला रणकल्लोळ। देखतां काळ भय पावे। १५१ तुरंगांवरी तुरंग लोटती। वीरांशीं वीर झगटती। असिलता करीं लखलखती। क्षणप्रभेसारिख्या। ५२ रथांशीं रथ मिळाले। अश्व दोंपायीं उभे ठाकले। दोन्ही मकरतोंडांशीं घर्षण झालें। कल्पांत मांडला ते वेळे। ५३ सारथ्यांसी सारथी हाणिती। रथियांसी रथी ओढिती। देहआशा टाकोनि भीडती। स्वामिकार्याकारणें। ५४ परमकुशल सारथी। रथ ओढूनि माघारे करिती। पवनवेगें रथ फिरविती। कावे देती सव्य अपसव्य। ५५ कीं त्या रणसागरावरी सहजें। रथ तेचि थोर जहाजें। वरी ध्वज सतेज विराजे। पवनवेगें धांवती। ५६ रणसागरीं मीन चंचळ। तेंचि पायदळ हिंडे चपळ। गज धांवती सबळ। तेचि नाडेसावजें पैं। ५७ रक्तगंगेमाजी शुंडा तुटोन। वाहती ते चपळ विरोले

हुए हैं, तो वह कुपित हो उठा। ४८ (उसके द्वारा) आज्ञा करते ही उस समय, सेना रूपी सागर बाहर उमड़ पड़ा। तब रणवाद्य महागर्जन करते हुए बजने लगे। ४९ दुर्ग एक से एक ऊँचे थे। (उनपर से) तोपें वेगपूर्वक भभककर गोले उगलने लगीं। इन्द्र आदि (देव) विमानों में बैठकर आकाशमार्ग से देख रहे थे। १५० पदाति दल से पदाति दल परम तुमुल युद्ध में भिड़ते हुए इकट्ठा हो गये। युद्ध में अद्‌भुत हाहाकार मच गया। उसे देखते हुए काल भय को प्राप्त हो गया। १५१ घोड़ों पर घोड़े लपक रहे थे। वीरों से वीर संघर्ष कर रहे थे। उनके हाथों में तलवारें बिजली की भाँति चमक रही थीं। ५२ रथों से रथ मिल भिड़ गये। घोड़े (अपनी-अपनी पिछली) दो-दो टाँगों पर खड़े रहे। दो-दो (रथों के) मकराकृति अग्रभागों का घर्षण हो रहा था। उस समय कल्पान्त काल का-सा प्रलय आरम्भ हो गया। ५३ सारथियों पर सारथी आघात करते थे। रथियों को रथी खींचते थे। वे (अपने-अपने) स्वामी के लिए देह की आशा त्यजकर भिड़ते थे। ५४ परम कुशल सारथी (अपने-अपने) रथों को हाँककर पीछे कर लेते थे। वे पवन-वेग से रथों को घुमाते-चलाते थे। वे दायें-बायें फेरे लगाते थे। ५५ अथवा उस युद्धभूमि रूपी समुद्र पर (चलनेवाले) रथ ही (मानो) बड़े-बड़े जहाज थे। उनपर ध्वज तेज के साथ विराजमान थे। वे पवन-वेग से दौड़ते थे। ५६ रणभूमि रूपी सागर में पदाति दल रूपी चंचल मत्स्य थे; वे पदाति दल (रूपी मत्स्य दल) चपलतापूर्वक भ्रमण करथे थे। ५७ जो (हाथियों की) सूंड़ें कटकर रक्त-गंगा में बहती थीं, वे चपल गतिवाले

जाण। छत्रें नीळवर्ण पडती तुटोन। तेचि कूर्म वर्तुळाकार। ५८ असो यादववीरांचा मार थोर। क्षणें काचावले दैत्यभार। हें देखोनि नरकासुर। चंडबळेंसीं धांविन्नला। ५९ जैसी पर्जन्यवृष्टि निरंतर। तैसे बाण वर्षे उर्वीपुत्र। यादव त्रासिले थोर। मार अनिवार तयाचा। १६० ऐसें देखोनियां श्रीरंगें। शारंग चढविलें अति वेगें। सुपर्णवहनें भक्तभवभंगें। बाण हातीं घेतला। १६१ तों सत्यभामा म्हणे ते अवसरीं। मजपाशीं धनुष्य द्या पूतनारी। मी युद्ध करीन क्षणभरी। नरकासुराशीं आजि पैं। ६२ मग सत्यभामेच्या हातीं धनुष्य। देता जाहला द्वारकाधीश। तूणीर पाठीस बांधितां आवेश। चढला तेव्हां सतीतें। ६३ आकर्ण ओढी ओढून। सोडी बाणांपाठीं बाण। वीर आश्चर्य करिती पूर्ण। म्हणती नवल वर्तलें। ६४ कोण्या वीराची पत्नी। युद्ध करी समरांगणीं। परवीरांसी खोंची बाणीं। वर्मे लक्षूनि सवेग। ६५ नेणे कधीं बाहेरील समीर। उभी रणांगणीं धरूनि धीर। जिचें बोलणें अतिसुकुमार। हाकें अंबर गाजवीतसे। ६६ सोडी शरांपाठीं शर। आश्चर्य करी भूमिपुत्र। म्हणे स्त्रियेवरी मी शस्त्र।

जल-साँप थे। जो नीलवर्ण वाले छत्र कटकर पड़ जाते थे, वे ही वर्तुलाकार (उस युद्धभूमि रूपी समुद्र में विचरण करनेवाले) कछुए थे। ५८ अस्तु। यादव वीरों द्वारा होनेवाली मार बड़ी थी। उससे क्षण में दैत्य-समुदाय भयकातर हो गया। यह देखकर नरकासुर प्रचण्ड बल के साथ दौड़ा। ५९ जिस प्रकार पावस की बौछार अनवरत होती है, उसी प्रकार भूमिपुत्र नरकासुर (आते ही) बाणों की बरसाने लगा। उसकी मार ऐसी अनिवार थी कि उससे यादव बहुत उत्पीड़ित हो गये। १६० ऐसा देखकर गरुड़ जिनका वाहन है और जो भक्तों के सांसारिक बन्धनों को भग्न करते हैं, उन श्रीकृष्ण ने अति वेगपूर्वक शाङ्‌र्ग धनुष चढ़ाया और हाथ में बाण लिया। १६१ तो उस समय सत्यभामा बोली, 'हे पूतनारि, मेरे पास धनुष दो। मैं आज क्षण भर नरकासुर से युद्ध करूँगी'। ६२ तब द्वारकाधीश ने सत्यभामा के हाथ में धनुष दिया। तब तूणीर पीठ पर बाँधते ही उस सती को आवेश चढ़ गया (अनुभव होने लगा)। ६३ वह डोरी को कान तक खींचकर बाण पर बाण चलाने लगी; (यह देखकर) वीर पूर्णतः आश्चर्य अनुभव करने लगे। वे बोले (उन्हें लगा), 'यह आश्चर्य घटित हो गया है। ६४ यह किस वीर की स्त्री समरांगण में युद्ध कर रही है ? मर्म-स्थान को लक्ष्य करके विपक्ष के वीरों को वेगपूर्वक बाण चुभा रही है ? ६५ जिसने कभी बाहर की हवा (तक) को नहीं जाना, वह धीरज धारण करके रणांगण में खड़ी हो गयी है; जिसका बोलना अति-सुकुमार है, वह चीख-पुकार से आकाश को निनादित कर रही है। ६६

महावीर कैसा धरूं । ६७ मग रथ पदें लोटिला सत्वर । हरीसी म्हणे मोठा तूं रणधीर । युद्धासी स्त्री केली समोर । लाज अणुमात्र नाहीं तुज । ६८ स्त्रीसमवेत तुज गोवळा । भस्म करीन ये वेळां । म्हणोनि अग्निअस्त्रमंत्र जपला । बाण सोडिला तैसाचि । ६९ ऐसें देखोनि हृषीकेशी । सत्यभामा घाली पाठीसी । धनुष्य ओढूनि वेगेंसीं । पर्जन्यास्त्र सोडिलें । १७० अग्नीसी ग्रासूनि पर्जन्यें । शीतल केलीं सकळ सैन्यें । जैसें सत्संगतीकरून । मोहभ्रम वितळती । १७१ चंडधारा मेघ वर्षत । तेणें नरकासुराची चमू वाहत । मग नरकासुरें वातास्त्र त्वरित । प्रेरितां मेघ वितळला । ७२ वात वाढला प्रबळ । तेणें उडों पाहे यादवदळ । हें देखोनि तमालनीळ । पर्वतास्त्र योजिलें । ७३ तेणें कोंडिला सकळ वात । पर्वत भौमसैन्यावरी पडत । सवेंचि वज्रास्त्र नरक जपत । तेणें पर्वत पिष्ट केले । ७४ ऐसें देखोनि वैकुंठपाळ । म्हणे कां आतां लावावा वेळ । सकळशस्त्रांचा नृप तात्काळ । सुदर्शन हातीं घेतलें । ७५ जैसे उगवले सहस्र मार्तंड । तेजें

वह बाण के पीछे बाण चला रही है '। (ऐसा युद्ध देखकर) भूमिपुत्र नरकासुर आश्चर्य अनुभव करने लगा। वह बोला, ' मैं महावीर, स्त्री पर शस्त्र कैसे चला दूँ '। ६७ तब झट से उसने अपने रथ को पांव से धकेल दिया। वह श्रीहरि से बोला, ' तुम बड़े रणधीर हो; (फिर भी) तुमने युद्ध के लिए एक स्त्री को सामने खड़ा कर दिया है, तुम्हें (इसके लिए) अणुमात्र लज्जा नहीं आ रही है। ६८ मैं इस समय स्त्री-सहित तुम ग्वाले को भस्म कर डालूंगा '। ऐसा कहकर उसने अग्नि-अस्त्र का मंत्र पढ़ा और वैसा ही बाण चला दिया। ६९ ऐसा देखकर हृषीकेश ने सत्यभामा को (पीठ के) पीछे छिपाते हुए धनुष (की डोरी) को खींचकर वेगपूर्वक पर्जन्यास्त्र चला दिया। १७० (फलतः) पर्जन्य (वर्षा) ने अग्नि को निगलकर समस्त सेनादलों को ठण्डा कर दिया, जैसे सत्संगति से मोह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं। १७१ मेघ बड़ी-बड़ी धाराएँ बरसा रहा था। उससे नरकासुर की सेना बहने लगी। तब नरकासुर द्वारा झट से वायु-अस्त्र को प्रेरित करते ही, मेघ (पूर्णतः) पिघल गया (नष्ट हुआ)। ७२ (इधर) वायु प्रबल रूप में बढ़ गयी (चलने) लगी। उससे यादवदल उड़ने जा रहा था। यह देखकर तमालनील कृष्ण ने पर्वतास्त्र आयोजित किया। ७३ उसने समस्त वायु को रोक रखा। पर्वत नरकासुर की सेना पर गिरने लगे, तो साथ ही (तत्काल) नरकासुर ने वज्रास्त्र (मंत्र) का जाप किया; तो उस (अस्त्र) ने पर्वतों को चूर-चूर कर डाला। ७४ ऐसा देखकर वैकुण्ठपाल श्रीकृष्ण ने कहा (माना), ' अब विलम्ब क्यों करें ? ' उन्होंने तत्काल समस्त शस्त्रों के राजा सुदर्शन चक्र को हाथ में लिया। ७५ (जान पड़ा) जैसे सहस्र (-सहस्र) सूर्य

लखलखिलें ब्रह्मांड। निमिष न लागतां प्रचंड। यादवरायें सोडिलें। ७६
नरकासुराचें शिर। छेदिलें न लागतां क्षणमात्र। मागुती परतोनि सत्वर।
हरिहस्तकीं बसिन्नलें। ७७ आश्विन मास वद्य चतुर्दशी। तीन प्रहर
जाहलिया निशी। चंद्रोदयीं नरकासुरासी। मुक्ति दिधली श्रीरंगें। ७८
हरीनें नरकासुरासी दिधला वर। ये समयीं मंगलस्नान न करी जो नर।
तो परमदरिद्री दुराचार। जन्मवरी जाणिजे। ७९ असो नरकासुराचें नगर।
त्या नांव प्राग्ज्योतिषपुर। त्यामाजी प्रवेशला श्रीकरधर। तंव अपूर्व
देखिलें। १८० तेजागळा मणिपुरपर्वत। त्यावरी मंदिरें रत्नखचित। त्यांत
सोळा सहस्र एक शत। गोपी सुंदर देखिल्या। १८१ परम सुंदर लावण्यखाणी।
तिहीं दृष्टीं देखिला चक्रपाणी। म्हणती कोटि काम यावरूनी। ओंवाळूनि
टाकावे। ८२ ऐसा जरी आम्हांसी होईल वर। तरी मग पुण्यासी नाहीं
पार। द्वारकानाथ हा यादवेंद्र। आजि दृष्टीं देखिला। ८३ समीप देखिला
क्षीराब्धिजावर। गोपी सद्‌गद जाहल्या समग्र। करिती हरीसी नमस्कार।
आमुचा उद्धार करीं आतां। ८४ आम्ही अपर्णिता कर्णकुमारी। आमुचा बंध

उदित हुए हों। उसके तेज से ब्रह्माण्ड जगमगा उठा। पल तक न
लगते यादवराज कृष्ण ने उस प्रचण्ड चक्र को चला दिया। ७६ क्षण
मात्र न लगते उसने नरकासुर का सिर काट डाला और फिर से लौटकर
झट से वह श्रीहरि के हाथ में आकर रह गया। ७७ आश्विन मास की
वद्य चतुर्दशी के दिन तीन पहर रात के बीत जाने पर चन्द्रोदय के समय
श्रीकृष्ण ने नरकासुर को मुक्ति प्रदान की। ७८ श्रीकृष्ण ने नरकासुर
को यह वर दिया— इस समय जो नर मंगलस्नान नहीं करेगा, उसे जन्म
भर परम दरिद्र, दुराचारी समझिए। ७९ अस्तु। नरकासुर का जो
नगर था, उसका नाम प्राग्ज्योतिषपुर था। श्रीपति कृष्ण उसके अन्दर
प्रविष्ट हुए। तब उन्होंने एक अपूर्व (अद्‌भुत) बात देखी। १८० (वहाँ)
मणिपुर नामक तेज में अनोखा पर्वत था। उस पर रत्नों से विभूषित
प्रासाद थे। उन्होंने सोलह सहस्र एक सौ गोपियाँ (नारियाँ) देखीं। १८१
वे (स्त्रियाँ) परम सुन्दर थीं, लावण्य की खानें थीं। उन्होंने भी चक्रपाणि
को अपनी आँखों से देखा और कहा (माना), कोटि (-कोटि) कामदेवों
को इन पर न्योछावर कर दें। ८२ यदि ऐसा वर हमें प्राप्त हो, तो फिर
(हमारे) पुण्य का कोई अन्त नहीं है। इन द्वारका के स्वामी यादवेन्द्र
कृष्ण को हमने आज आँखों से देखा। ८३ लक्ष्मीपतिस्वरूप कृष्ण को
(अपने) समीप देखा, तो वे समस्त गोपियाँ (स्त्रियाँ) बहुत गद्‌गद हो उठीं।
उन्होंने श्रीहरि को नमस्कार किया (और कहा—) 'अब हमारा उद्धार
कीजिए। ८४ हम अपरिणीता (उमा-सदृश) क्वारी कन्याएँ हैं। हमारे
बन्धन को खोल दीजिए। हे कंसान्तक श्रीकृष्ण, हम सोलह सहस्र

मुक्त करीं। आम्ही षोडश सहस्र नारी। कंसांतका तुजचि वरूं। ८५ मग कृपाळु यदुवीर। तयांसी दिधला नाभीकर। म्हणे तुमचा मनोभाव समग्र। पुरवीन चिंता न कीजे। ८६ सोळा सहस्र एक शत। आणवी श्रीकृष्ण दिव्य रथ। गोपिका बैसवूनि समस्त। द्वारकेलागीं पाठविल्या। ८७ सर्वे दिधलें समस्त सैन्य। अक्रूर उद्धव रेवतीरमण। जयवाद्यें वाजवून। द्वारकापंथें परतले। ८८ वाटे जातां गोपी भाविती। आम्हांसी वर जोडला श्रीपती। नरकासुरानें उपकार निश्चितीं। आम्हांवरी बहु केला। ८९ तो केवळ आमुचा पिता। तेणें दाखविलें वैकुंठनाथा। असो यावरी कमलोद्भवजनिता। काय करिता जाहला। १९० प्राग्ज्योतिषपुरीं हरि राहिला। तों नरकासुराची स्त्री ते वेळां। पुत्र हातीं घेऊनि तमालनीळा। शरण येती जाहली। १९१ मुकुटकुंडलें ते वेळीं। हरीपुढें आणूनि ठेविलीं। म्हणती आम्ही शरण वनमाळी। कृपा करीं दीनबंधु। ९२ तो नरकपुत्र भगदत्त। हरीसी नमस्कार घालीत। कृपेनें द्रवला रमानाथ। छत्र धरवी तयावरी। ९३ तयासी राज्यीं स्थापून। मुकुटकुंडलें घेऊन। सत्यभामेसहित जगन्मोहन। द्विजेंद्रावरी आरूढला। ९४ क्षण न लागतां इंद्रपदासी।

नारियाँ आपका ही वरण करेंगी'। ८५ तब कृपालु यदुवीर ने उन्हें अभयदान दिया और कहा, 'मैं तुम्हारे मन के समस्त भाव को पूर्ण करूँगा; तुम चिन्ता न करना'। ८६ (तदनन्तर) श्रीकृष्ण सोलह सहस्र एक सौ दिव्य रथों को लिवा लाये। समस्त गोपियों को उनमें बैठाकर उन्होंने द्वारका भेज दिया। ८७ उनके साथ समस्त सेना को भेज दिया। (फिर) अक्रूर, उद्धव, रेवतीपति बलराम जयसूचक वाद्यों को बजाकर द्वारका के मार्ग से लौट चले। ८८ मार्ग में जाते हुए गोपियों ने यह बिचार किया, 'हमें श्रीपति वर (के रूप में) प्राप्त हुए। नरकासुर ने निश्चय ही हमारा बहुत उपकार किया। ८९ वह तो हमारा केवल पिता ठहरा। उसने वैकुण्ठनाथ को दिखा दिया'। अस्तु। इसके पश्चात् ब्रह्मा के पिता विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण ने क्या किया? १९० श्रीहरि प्राग्ज्योतिषपुर में रह गये, तो उस समय नरकासुर की स्त्री पुत्र को हाथों में (साथ में) लिये हुए तमालनील कृष्ण की शरण में आ गयी। १९१ उसने उस समय मुकुट और कुण्डल लाकर श्रीहरि के सामने रख दिये और कहा, 'हे वनमाली, हम (आपकी) शरण में आये हैं। हे दीनबन्धु, (हम पर) कृपा कीजिए'। ९२ (अनन्तर) नरकासुर के भगदत्त नामक उस पुत्र ने रमानाथ श्रीहरि को नमस्कार किया, तो वे उसके प्रति कृपा से द्रवित हो उठे और उन्होंने उसपर (राज-) छत्र धरवा दिया। ९३ उसको राज्यासन पर स्थापित करके जगन्मोहन कृष्ण मुकुट और कुण्डल लेकर सत्यभामा-सहित पक्षिराज गरुड़ पर आरूढ़ हो गये। ९४ क्षीरसागर-विलासी

आला क्षीरसिंधुविलासी। मुकुटकुंडलें सहस्रनेत्रासी। देऊनियां तोषविलें। ९५ मग नाना रत्नें अलंकारीं। इंद्रें पूजिला मधुकैटभारी। आज्ञा घेऊनि ते अवसरीं। द्वारकेसी हरि निघाला। ९६ तों इंद्राचें नंदनवन। परम सुरेख शोभायमान। तेथें पारिजातक दिव्य रत्न। दृष्टीं देखिलें श्रीकृष्णें। ९७ कमळपत्राक्षें ते वेळां। वृक्ष समूळ उपटिला। गरुडावरी पुढें घेतला। तों कोल्हाळ केला वनरक्षकीं। ९८ वनरक्षक सांगती इंद्रातें। कीं वृक्ष नेला द्वारकानाथें। आखंडल ऐकतां क्रोधें बहुतें। युद्धालागीं धांविन्नला। ९९ परम अज्ञानें वेष्टिला इंद्र। नेणवेचि हरिप्रताप अपार। म्हणे उभा रे उभा तूं तस्कर। वृक्ष नेसी चोरूनियां। २०० ऐकोनि सुरडला श्रीरंग। शारंग चढविलें सवेग। तंव वाचस्पति म्हणे श्रीपति अभंग। यासीं युद्धा न पुरसी तूं। २०१ हा पुराणपुरुष नारायण। क्षणांत ब्रह्मांड टाकील जाळून। इंद्र पाहे विचारून। नमस्कार घातला। २ इंद्र गेला परतोन। द्वारकेसी आला नारायण। सत्यभामेच्या द्वारीं नेऊन। पारिजातक लाविला। ३ मणि बापाचा आंदण घरीं। पारिजातक वृक्ष द्वारीं। त्या गर्वें

भगवान विष्णु स्वरूप कृष्ण क्षण न लगते सहस्रनेत्र इन्द्र के स्थान आ गये और उसको मुकुट और कुण्डल देकर सन्तुष्ट किया। ९५ तब नाना रत्नों और आभूषणों से इन्द्र ने मधुकैटभारि श्रीहरि का पूजन किया तब वे उस समय आज्ञा लेकर द्वारका के प्रति जाने के लिए निकले। ९६ तब इन्द्र का नन्दनवन परम सुन्दर शोभायमान था। वहाँ (उसमें) श्रीकृष्ण ने पारिजात रूपी दिव्य रत्न अपनी आँखों से देखा। ९७ कमलदल-से नयन वाले श्रीकृष्ण ने उस समय उस वृक्ष को जड़ों-सहित उखाड़ लिया और (उठाकर) गरुड़ पर अपने आगे (सामने रख) लिया। तब वनरक्षकों ने कोलाहल मचा दिया। ९८ उन वनरक्षकों ने इन्द्र से कहा, 'द्वारकानाथ वृक्ष ले जा रहे हैं'। यह सुनते ही इन्द्र बहुत क्रोधपूर्वक युद्ध करने के लिए दौड़ा। ९९ इन्द्र तो परम अज्ञान से घिरा हुआ था। वह श्रीहरि-प्रताप को जानता ही नहीं था। अतः वह बोला, 'रे चोर, खड़े रहो, खड़े रहो (रुक जाओ, रुक जाओ)। तुम वृक्ष को चुराकर ले जा रहे हो'। २०० यह सुनकर श्रीरंग लौट पड़े और उन्होंने वेगपूर्वक शार्ङ्ग धनुष को चढ़ा लिया। तब गुरु बोले, 'श्रीपति अभंग (अविनाशी) हैं। इनसे युद्ध करने में तुम पर्याप्त नहीं (सिद्ध) होगे। २०१ ये पुराणपुरुष नारायण हैं। ये क्षण में ब्रह्माण्ड जला डालेंगे'। तो इन्द्र ने विचार कर देखा (विचार किया) और उनको नमस्कार किया। २ इन्द्र लौटकर चला गया, तो भगवान नारायण (श्रीकृष्ण) द्वारका आ गये। सत्यभामा के द्वार पर ले जाकर उन्होंने पारिजात वृक्ष लगा दिया। ३ (एक तो) पिता की स्यमन्तक मणि दायजे के रूप में प्राप्त होकर घर में थी; (दूसरे) द्वार पर

सत्राजितकुमारी। कोणासी न मानीच। ४ असो ऐसा करूनि पुरुषार्थ। हरि रुक्मिणीच्या गृहा येत। षोडशोपचारें पूजा करीत। परमपुरुषाची प्रीतीनें। ५ रुक्मिणी म्हणे श्रीहरी। पारिजातक लाविला तिचे द्वारीं। एक पुष्प आम्हां घरीं। आणूनियां दीधलें। ६ कृष्ण म्हणे वृक्ष कासया निश्चित। तुझे द्वारीं पुष्पें अपरिमित। स्वर्गींहूनि अकस्मात। अंगणांत पडतील। ७ ऐसा वर देऊनी। मग काय करी मोक्षदानी। सोळा सहस्र मंदिरें तेचि क्षणीं। उभविलीं हेममयें। ८ त्या मंदिरांची रचना पाहूनी। तटस्थ होती सुधापानी। विश्वकर्मा स्वकरेंकरूनी। निर्मीत हरिआज्ञेनें। ९ नारी षोडस सहस्र एक शत। सुलग्न पाहूनि कमलोद्भवतात। एकेचि घटिकेंत तितुक्यांस वरीत। कर्तव्य अद्भुत हरीचें। २१० सोळा सहस्र एक शत नारी। तितुकीं रूपें धरी कंसारी। सोळा सहस्र मंदिरीं। मंडप दिव्य उभविले। २११ सोळा सहस्रां घरीं। भिन्नभिन्न वसुदेव देवकी सुंदरी। बळिभद्र उग्रसेन सुभद्रा नारी। सर्वां घरीं सारिख्या। १२ सकळ यादवांचे भार। ऋषींच्या मांद्या समग्र। रुक्मिणीचीं रूपें अपार। सर्वां घरीं सारिखीं। १३ इतुकीं रूपें आपण। नटला पूतनाप्राणहरण। पूर्णावतार

पारिजात वृक्ष था। उस अभिमान से सत्राजित-कन्या सत्यभामा किसी को मानती (गिनती) ही नहीं थी। ४ अस्तु। ऐसी वीरता प्रदर्शित करके परमपुरुष श्रीहरि रुक्मिणी के घर आ गये, तो उसने सोलह उपचारों से प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया। ५ (तब) रुक्मिणी बोली, 'हे श्रीहरि, पारिजात वृक्ष को उसके घर में लगा दिया और हमारे घर लाकर एक पुष्प दिया'। ६ इसपर कृष्ण बोले, '(तुम्हें) वृक्ष किसलिए (चाहिए) ? निश्चय ही तुम्हारे द्वार में, आँगन में असंख्य पुष्प स्वर्ग में से गिर पड़ेंगे'। ७ उसे ऐसा वर देकर मोक्षदाता श्रीकृष्ण ने फिर क्या किया ? उन्होंने उसी क्षण सोलह सहस्र (एक सौ) स्वर्णमय प्रासाद निर्मित करवा दिये। ८ उन प्रासादों की रचना को देखकर देव चकित हो गये। श्रीहरि की आज्ञा से विश्वकर्मा (ब्रह्मा) ने अपने हाथों से उनका निर्माण किया था। ९ ब्रह्मा के पिता भगवान विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण ने शुभ मुहूर्त खोजकर एक ही घटिका में उन समस्त सोलह सहस्र एक सौ नारियों का वरण किया। श्रीहरि का यह अद्भुत कार्य था। २१० वे सोलह सहस्र एक सौ स्त्रियाँ थीं। (अतः) कंसारि श्रीकृष्ण ने उतने ही रूप धारण किये। उन्होंने सोलह सहस्र (एक सौ) प्रासादों में दिव्य मण्डपों का निर्माण करवा दिया। २११ उन सोलह सहस्र (एक सौ) गृहों में भिन्न-भिन्न वसुदेव और सुन्दरी (स्त्री) देवकी थे। बलराम, उग्रसेन, नारी सुभद्रा सबके गृहों में सम-समान थे। १२ समस्त यादवों के सेना-दल, समस्त ऋषियों की स्त्रियाँ, रुक्मिणी के अनगिनत रूप सबके घरों में

श्रीकृष्ण। अतिअद्‌भुत लीला त्याची। १४ वैकुंठींची अवघी संपत्ती। आणविली द्वारकेप्रती। शंखचक्रादि आयुधें हातीं। श्रीवत्सलांछन दाविलें। १५ वैकुंठींचे दिव्य रथ। द्वारकेसी आणवी कृष्णनाथ। सुपर्ण कर जोडूनि तिष्ठत। कर्तव्य अद्‌भुत हरीचें। १६ सनक सनंदन सनत्कुमार। नारद विरिंचि रुद्र शचीवर। द्वारकेसी येती वारंवार। हरिदर्शन घ्यावया। १७ वरकड हरीचे अंशावतार। पृथ्वीवरी दाविलें चरित्र। वैकुंठपति इंदिरावर। तैसाचि असे संचला। १८ कृष्णावतारीं आपण। स्वयें अवतरला आदिनारायण। वैकुंठींचीं कपाटें देऊन। राहिला जाण द्वारके। १९ इंद्रादि देवांचीं गाऱ्हाणीं। द्वारकेसी येती क्षणक्षणीं। यालागीं पूर्णावतार चक्रपाणी। भक्तजनीं जाणिजे। २२० म्हणोनि सोळा सहस्र

समान थे। १३ पूतनाप्राणहरण श्रीकृष्ण ने इतने रूप स्वयं धारण किये। श्रीकृष्ण तो पूर्णावतार थे। उनकी लीला अति अद्‌भुत है। १४ वे वैकुण्ठ की समस्त सम्पत्ति को द्वारका में लिवा लाये। उनके हाथों में शंख, चक्र आदि आयुध थे। उन्होंने श्रीवत्सलांछन[1] (चिह्न भी धारण करके) दिखा दिया। १५ श्रीकृष्णनाथ वैकुण्ठ के दिव्य रथ लिवा लाये। (उनके सामने) गरुड़ नित्य हाथ जोड़े खड़ा रहता था। (इस प्रकार) श्रीहरि की करनी अद्‌भुत थी। १६ श्रीहरि के दर्शन करने के लिए सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मा, रुद्र, शचीपति इन्द्र बार-बार द्वारका आया करते। १७ अन्य (अवतार) तो श्रीहरि के अंशावतार[2] थे। (उन सबको लेकर) उन्होंने पृथ्वी में लीला प्रदर्शित की; फिर भी वैकुण्ठपति इन्दिरावर भगवान वैसे ही (सर्वत्र) व्याप्त रहे। १८ कृष्णावतार में आदिनारायण स्वयं अपने ही आप अवतरित हुए। समझिए कि वे वैकुण्ठ के द्वार बन्द करके द्वारका में रह गये। १९ इन्द्र आदि देवों की शिकायतें क्षण-क्षण द्वारका में आती थीं। इसलिए भक्तजन चक्रपाणि श्रीकृष्ण को पूर्णावतार समझ लें। २२० इसलिए सोलह सहस्र (एक सौ) घरों में

---

१ श्रीवत्सलांछन— देखिए टिप्पणी १, पृ० ५८, अध्याय २।

२ अंशावतार और पूर्णावतार— भगवान जब किसी प्राणी या मनुष्य का शरीर धारण करके भूतल पर विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने के हेतु कुछ काल या जीवन भर उस शरीर में निवास करते हैं, तो उस शरीर-धारण को ' अवतार ' कहते हैं। अवतार के दो महत्त्वपूर्ण भेद होते हैं— अंशावतार और पूर्णावतार। छोटे-छोटे उपद्रव के शमन के लिए उतने ही समय के लिए धारण किया हुआ अवतार ' अंशावतार ' कहाता है; इसमें उक्त कार्य के सम्पन्न होने पर वे अन्तर्धान हो जाते हैं। नीतिधर्म का उच्छेद करनेवाले, पृथ्वी के लिए भारभूत (रावण, कंस जैसे) दैत्यों के निर्दालन के लिए भगवान जब अपने शक्ति-व्यूह (शेष, लक्ष्मी, शंख-चक्र-गदा-पद्म, देवसमूह) सहित अवतरित होते हैं, तब उनका वह अवतार ' पूर्णावतार ' कहाता है। तब मुख्य कार्य समाप्त होने पर भी कुछ काल तक भगवान संसार में निवास करते हैं; उदाहरणार्थ राम और कृष्ण।

घरीं। तितुकीं रूपें हरीच धरी। षोडश सहस्र नारी। एक्याचि लग्नीं वरियेल्या। २२१ रत्नजडित बोहलीं। सर्वां घरीं घातलीं। हळदी उटणें वनमाळी। सर्वां घरीं खेळत। २२ उग्रसेन उद्धव अक्रूर। घरोघरीं सारिखेचि समग्र। भांडारें फोडूनि अपार। द्रव्य याचकां वांटिती। २३ ऐसा चारी दिवस सोहळा पूर्ण। वर्णितां भागे सहस्रवदन। सकळ देव येऊन। कामें करिती घरोघरीं। २४ इंद्र अग्नि यम निर्ऋति। रसनायक समीर धनपति। सत्यलोकवासी अपर्णापति। घरोघरीं सारिखेचि। २५ सर्व याचकांसी देकार। घरोघरीं देत कुबेर। सकळ वऱ्हाडियां नीर। रसनायक पुरवीतसे। २६ सभेवरी मलयाद्रीचा सुवास। घेऊनि येत प्राणाधीश। जातवेद धरूनि हर्ष। पाकनिष्पत्ति स्वयें करी। २७ असो यावरी सर्वां सदनीं। राबताती सुधारसपानी। अष्टनायिका येऊनी। सर्वां घरीं नृत्य करिती। २८ ऐसे चारी दिवस संपादूनी। अवघ्यांसी दिधली पाठवणी। अलंकारवस्त्राभरणीं। चारी वर्ण तोषविले। २९ अहो त्या सोळा सहस्र वेदश्रुति। निर्गुणाची न वर्णवे कीर्ति। म्हणोनि आल्या

श्रीहरि ने ही उतने रूप धारण किये। उन्होंने एक ही मुहूर्त पर उन सोलह सहस्र (एक सौ) नारियों का वरण किया। २२१ सबके घरों में रत्नजटित वेदियाँ निर्मित थीं। श्रीहरि ने सबके घरों में हल्दी-उबटन खेला (विधि सम्पन्न की)। २२ घर-घर में एक ही-से (समान) उग्रसेन, उद्धव, अक्रूर ने भण्डारों को खोलकर याचकों को धन बाँट दिया। २३ इस प्रकार चार दिन में समारोह पूरा हुआ। उसका वर्णन करते हुए सहस्र-वदन शेष (भी) थक जाएगा। (उन दिनों) समस्त देव आकर घर-घर में काम कर रहे थे। २४ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, सत्यलोकवासी ब्रह्मा, अपर्णापति शिव घर-घर में समान थे। २५ कुबेर सब याचकों को घर-घर में दान देता था। वरुण समस्त बारातियों को पानी सम्पूर्त करता था। २६ प्राणाधीश वायुदेव सभा में मलयपर्वत से सुगन्ध लाता था। जातवेद अग्निदेव स्वयं हर्ष धारण करके (सहर्ष) रसोई बनाता था। २७ अस्तु। इस प्रकार सब घरों में देव परिश्रम (पूर्वक काम) करते थे। अष्ट नायिकाएँ[1] सबके घरों में नृत्य करती थीं। २८ इस प्रकार चार दिन का समारोह सम्पन्न करके श्रीकृष्ण ने सबको उपहार देते हुए बिदा कर दिया। उन्होंने चारों वर्णों (के लोगों) को वस्त्र और आभूषण देकर सन्तुष्ट किया। २९ अहो! वे सोलह सहस्र (एक सौ नारियाँ वस्तुतः) वेदश्रुतियाँ थीं। निर्गुण (ब्रह्म) की कीर्ति का वर्णन

१ अष्ट नायिकाएँ (श्रीकृष्ण की)— रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि श्रीकृष्ण की उपर्युक्त आठ प्रमुख स्त्रियाँ। तथा देवलोक की आठ अप्सराएँ— देखिए टिप्पणी १, पृ० ३८, अध्याय १। यहाँ पर उन अप्सराओं की ओर संकेत हैं।

द्वारकेप्रति। हरिरूपीं जडावया। २३० कीं हरिकल्पवृक्षावरी देखा। सोळा सहस्र चढिल्या कनकलतिका। सर्वही सुफळसुखदायका। वैकुंठनायका भोगिती। २३१ श्रीकृष्ण मेघसांवळा। सोळा सहस्र तळपती चपळा। दाहकत्व सांडूनि सकळा। हरिरूपीं जडल्या हो। ३२ कीं षोडश सहस्र राजहंसी। हरिपदीं मुक्तता हे मुक्तराशी। मिळाल्या सकळ भोगूं द्वारकेसी। तपें बहुत आचरोनियां। ३३ सर्वां घरीं समसमान। एकचि असे जगज्जीवन। परी मुख्य स्वरूप रुक्मिणीवांचून। सहसा नसे कोठेंही। ३४ एकपत्नीव्रती श्रीकृष्ण। रुक्मिणीवेगळा नव्हे एक क्षण। इच्छारूपें धरून। सोळा सहस्र घरीं वसे। ३५ हा हरिविजय ग्रंथ। परमसुंदर मलयपर्वत। तेथींचा समीरसुवास अद्भुत। निजभक्त सेविती। ३६ ब्रह्मानंदा पंढरीनाथा। श्रीधरवरदा परमसमर्था। निजभक्तांचिया मनोरथा। तुजविण पुरविता कोण असे। ३७ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। सदा परिसोत प्रेमळ भक्त। षड्विंशतितमोऽध्याय गोड हा। २३८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

नहीं किया जा सकता; अतः वे श्रीहरि के रूप में जुड़ जाने के लिए द्वारका में आ गयीं। २३० अथवा देखिए, श्रीहरि रूपी कल्पवृक्ष पर सोलह सहस्र (एक सौ) स्वर्ण-लतिकाएँ चढ़ गयीं। (वहाँ) वे सभी उत्तम फल स्वरूप में सुख देनेवाले वैकुण्ठनायक श्रीकृष्ण (की संगति) का उपभोग करती थीं। २३१ श्रीकृष्ण (मानो) श्याममेघ थे; वे सोलह सहस्र (एक सौ नारियों के रूप में) बिजलियाँ जगमगा रही थीं। अपनी समस्त दाहकता को छोड़कर वे श्रीहरि के रूप में जुड़ गयीं। ३२ अथवा वे सोलह सहस्र (एक सो नारियाँ मानो) राजहंसियाँ थीं। श्रीहरि के पद में पायी जानेवाली मुक्ति (मानो) मोतियों की राशि थी। वे बहुत तप करके द्वारका में इसलिए इकट्ठा हो गयीं कि वे उन मुक्ताओं का उपभोग कर सकें। ३३ सबके घर-घर में एक ही जगज्जीवन श्रीकृष्ण सम-समान (रूप में विद्यमान) थे। परन्तु उन सब में उनका मुख्य स्वरूप रुक्मिणी के अतिरिक्त कहीं भी बिलकुल नहीं था। ३४ श्रीकृष्ण तो एकपत्नीव्रती थे। वे रुक्मिणी से एक क्षण भी अलग नहीं हो जाते थे। वे (केवल) इच्छा-अनुसार (अनेक) रूप धारण करके सोलह सहस्र घरों में निवास करते थे। २३५

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (मानो) परम सुन्दर मलय पर्वत है। वहाँ की अद्भुत सुगन्धमयी वायु का सेवन भगवान श्रीहरि के अपने भक्त किया करते हैं। २३६ हे ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म), हे पण्ढरीनाथ, हे श्रीकृष्ण के लिए वरदाता, हे परम समर्थ, बिना आपके, भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाला (अन्य) कौन है। २३७

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और

श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। उसके इस मधुर छब्बीसवें अध्याय को प्रेममय भक्त नित्य श्रवण करें। २३८

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

अध्याय—२७

[प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का जन्म]

श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीकृष्णा रुक्मिणीनयनचकोरचंद्रा। आनंदसदना करुणासमुद्रा। हरि जांबुवंतीप्राणवरा। दितिजसंहारा श्रीरंगा। १ सत्यभामामनरंजना। कालिंदीप्रिया दुर्जनभंजना। मित्रविंदाप्राणजीवना। कैटभभंजना दयाब्धे। २ याज्ञजितीहृदयपद्मभ्रमरा। भद्रावतीलोचनानंदकरा। लक्ष्मणापति जगदुद्धारा श्रीकरधरा मुरारे। ३ अभिनवजलधरनीलवर्णा। कमलपत्राक्षा पीतवसना। मंगलदायका सुहास्यवदना। भोगींद्रशयना जगद्गुरु। ४ हरि आनकदुंदुभिकुमारा। यदुकुलसरोजदिनकरा। जगद्वंद्या प्रतापशूरा। क्षराक्षरातीत तूं। ५ सगुणलीलाविग्रही पूर्ण। षड्गुणैश्वर्यसंपन्न। षोडश सहस्र गोपी आणून। एक्याचि लग्नें वरियेल्या। ६ एकदां

श्रीगणेशाय नमः। हे श्रीकृष्ण, हे रुक्मिणी के नयन रूपी चकोरों के लिए चन्द्र-स्वरूप, हे आनन्द-सदन, हे करुणा-समुद्र, हे हरि, हे जाम्बवती के प्राणस्वरूप पति, हे दैत्यों के संहारक, हे श्रीरंग। १ हे सत्यभामा के लिए मनोरंजन-स्वरूप (अथवा सत्यभामा का मनोरंजन करनेवाले), हे कालिन्दी के प्रिय (पति), हे दुर्जनों को नष्ट करनेवाले, हे मित्रविन्दा के प्राणों के लिए जीवन-स्वरूप, हे कैटभ का विनाश करनेवाले, हे दया-सागर। २ हे याज्ञजिती के हृदय रूपी कमल में स्थित भ्रमर, हे भद्रावती के लोचनों के लिए आनन्द उत्पन्न करनेवाले, हे लक्ष्मणा के पति, हे जगत के उद्धारक, हे श्री अर्थात लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले, हे मुरारि। ३ हे अभिनव मेघ के-से नीलवर्णवाले, हे कमलपत्रों-से नयनवाले, हे पीताम्बर-धारी, हे मंगल-दायक, हे सुहास्य-वदन, हे भोगीन्द्र शेष पर शयन करनेवाले, हे जगद्गुरु। ४ हे हरि, हे आनक-दुन्दुभि वसुदेव के पुत्र, हे यदुकुल रूपी कमल को (अपने उदय से) विकसित करनेवाले सूर्य, हे जगद्-वन्द्य, हे प्रतापशूर, तुम क्षर और अक्षर के अतीत हो। ५ तुम पूर्ण सगुण लीला-विग्रह के कर्ता हो। तुम छः प्रकार के ऐश्वर्य[1] से सम्पन्न हो। तुमने सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियों को लाकर एक ही मुहूर्त पर उनका वरण

---

१ षडैश्वर्य (ईश्वरीय)— ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य।

रुक्मिणीच्या मंदिरीं। मिळाल्या सोळा सहस्र नारी। सत्यभामा मित्रकुमारी। इतरही वेगें पातल्या। ७ आदिभवानी मूळप्रकृती। तिजसमीप जैशा अनंत शक्ती। तैशा भीमकीवेष्टित युवती। षोडश सहस्र मिळाल्या। ८ विलाससभेसी सकळिका। मिळाल्या चातुर्यचंपककलिका। त्यांमाजी भीमककन्यका। श्रेष्ठासनीं बैसली। ९ ते विलाससभेची अपूर्व स्थिती। विरिंचीनें निर्मिली स्वहस्तीं। तेथील प्रभा पाहतां गभस्ती। आणि उडुपति तटस्थ होती। १० असो तेथें जगत्रयजननी। भीमकी शोभे लावण्यखाणी। तंव सत्यभामा हांसोनी। गोष्टी बोले ऐका ते। ११ आमुचें सदनीं शारंगपाणी। नित्य क्रमीत येऊनि रजनी। मजवरी प्रीति मनींहूनी। तैसी नाहीं इतरांकडे। १२ माझे घरीं पारिजातक। आणूनि लावी म्हणे वैकुंठनायक। एकांतगोष्टी सकळिक। मजचि सांगे जगदात्मा। १३ एक म्हणे लटिके तुझे बोल। मजवरी प्रीति करी घननीळ। स्वमुखींचें तांबूल। मजलागीं रात्रीं दीधलें। १४ उदय पावे जों वासरमणी। गोष्टी सांगे शारंगपाणी। काल हे अलंकार घडोनि। स्वहस्तें मज लेवविले। १५ तंव एक खंजरीटनयनी। म्हणे असत्य बोलतां मुळींहूनी। माझे मंदिरीं

किया। ६ एक समय रुक्मिणी के प्रासाद में वे सोलह सहस्र नारियाँ इकट्ठा हुईं। तो सत्यभामा, मित्रविन्दा (आदि) अन्य नारियाँ भी वेगपूर्वक (वहाँ) आ गयीं। ७ जैसे आदिभवानी मूलप्रकृति के समीप अनन्त शक्तियाँ एकत्रित हुई हों, वैसे ही रुक्मिणी को घेरकर सोलह सहस्र युवतियाँ इकट्ठा हुईं। ८ वे समस्त नारियों रूपी चातुर्य चम्पक-कलिकाएँ (उस प्रासाद के) विलास-सभा (-गृह) में मिल गयीं। उनके बीच भीमक-कन्यका रुक्मिणी श्रेष्ठ आसन पर बैठ गयी। ९ उस विलास-सभा (-गृह) की स्थिति (स्वरूप) अपूर्व थी। विधाता ने अपने हाथों से उसका निर्माण किया था। वहाँ की (उस सभा की) कान्ति को देखकर सूर्य और चन्द्र चकित हो जाते थे। १० अस्तु। वहाँ त्रिभुवन-जननी, लावण्य की खनि-स्वरूप रुक्मिणी शोभायमान थी। तब सत्यभामा ने हँसकर जो बात कही, उसे सुनिए। ११ 'शाङ्‌र्गपाणि श्रीकृष्ण हमारे सदन में नित्य आकर रात बिताते हैं। उनके मन में मुझसे जैसी प्रीति है, वैसी किसी अन्य से नहीं है। १२ जगदात्मा वैकुण्ठपति ने पारिजात वृक्ष लाकर मेरे घर (के आँगन) में लगा दिया है; वे समस्त गुह्य बातें मुझको ही बताते हैं'। १३ (यह सुनकर) एक (अन्य नारी) बोली, 'तुम्हारी बात झूठी है। घननील मुझसे प्रीति करते हैं। (कल) रात को उन्होंने अपने मुख का बीड़ा मुझे (खिला) दिया। १४ शाङ्‌र्ग-पाणि (मुझसे) सूर्य के उदित हो जाने तक बातें कह रहे थे। उन्होंने कल ये आभूषण गढ़कर (गढ़वाकर) अपने हाथों से मुझे पहना दिये'। १५

कैवल्यदानी। आजि होते निर्धारीं। १६ हरीचे मांडीवरी शिर ठेवूनी। मीं निजलें होतें कौतुकेंकरोनी। हें शीसफूल नवें घडोनि। कृष्णेंचि रात्रीं आणिलें। १७ गोष्टी सांगितल्या आजि गहन। जों उदय पावे चंडकिरण। तुम्ही लटक्याचि वार्ता सांगोन। संपादणी करितां गे। १८ एक बोले गजगमना। मजविण न गमे कंसमर्दना। धणी न पुरे माझिया नयनां। हरिवदन विलोकितां। १९ कृष्णें मज सांगातें घेऊन। आजि रात्रीं केलें भोजन। हें पदक जडित नूतन। गळां घातलें माझिया। २० एक बोले नितंबिनी। रत्नजडित डोल्हारीं बैसोनी। सारीपाट अवघे रजनीं। दोघेंजणें खेळलों हो। २१ माझी वेणी आपुल्या हातें। गुंफिली रात्रीं कृष्ण-नाथें। अंजन सोगयाचें स्वहस्तें। कंसांतकें रेखिलें। २२ माझें कपाळीं कस्तूरी रेखिली। हे रत्नमाळा गळां घातली। मजवरी प्रीति हरीची जडली। ऐसी नाहीं कोठेंही। २३ तों एक पद्मनेत्री बोले वचन। बाउगें काय व्यर्थ बोलोन। म्यां रात्रीं स्वकरेंकरून। हरीसी चंदन लाविला। २४ कस्तूरीटिळक कपाळीं। म्यां आजि रेखिला हरीचे भाळीं। सत्य कीं असत्य नेत्रकमळीं। जाऊनियां पहा गे। २५ तों एक हंसगमना बोले। माझें

तब एक खंजन-नयना स्त्री बोली, 'तुम मूल (आरम्भ) से असत्य बोल रही हो। मेरे भवन में कैवल्य-दाता आज निश्चय ही (रहे) थे। १६ श्रीहरि की गोद में सिर रखकर मैं आनन्दपूर्वक सो गयी थी। कृष्ण ही यह शीर्षफूल गढ़कर (गढ़वाकर) रात को लाये थे। १७ वे आज मुझसे गहन (गूढ़) बातें सूर्य के उदित हो जाने तक कह रहे थे। अरी, तुम झूठी बातें कहकर स्वाँग रच रही हो'। १८ तो एक गजगामिनी नारी बोली, 'मेरे बिना, कंसमर्दन को चैन नहीं आता। श्रीहरि के बदन को देखते-देखते मेरी आँखों की तृप्ति नहीं होती। १९ कृष्ण ने मुझे साथ में लेकर आज रात को भोजन किया। उन्होंने यह नया जड़ाऊ पदिक मेरे गले में पहना दिया'। २० तो एक नितम्बिनी (स्त्री) बोली, 'हम दोनों जने पूरी रात भर रत्न-जटित झूले में बैठकर चौसर खेल रहे थे। २१ कृष्ण-नाथ ने अपने हाथों से रात को मेरी बेनी गूँथ दी। कंसान्तक कृष्ण ने अपने हाथ से सुरमा का अजन लगा लिया। २२ मेरे भाल पर कस्तूरी अंकित की; यह रत्नमाला गले में पहना दी। श्रीहरि की प्रीति मुझसे जैसी जुड़ गयी है, वैसी और कहीं (किसी अन्य से) नहीं है'। २३ तब एक कमल-नयना ने यह बात कही, 'व्यर्थ ही अनुचित (झूठ) बोलकर क्या करें (क्यों बोलें)? मैंने रात को अपने हाथ से श्रीहरि को चन्दन लगा लिया। २४ मैंने आज श्रीहरि के भाल पर कस्तूरी का तिलक अंकित किया। अरी, जाकर अपने नेत्र-कमलों से देख लो कि यह सत्य है अथवा असत्य है'। २५ तब एक हंस-गमना स्त्री बोली, 'मेरे भवन में श्रीहरि

मंदिरीं हरि निजले । अवघी रात्र चरण चुरिले । आपुल्या हातेंकरोनियां । २६ एक बोले काय वचन । आजि माझ्या सदनीं गायन । करूनि मोहिलें माझें मन । तें सुख पूर्ण न वर्णवे । २७ एक म्हणे पयोधरेंकरोनी । हरिचरण अवघे रजनीं । म्यां निर्वाविले साजणी । चक्रपाणी साक्ष असे । २८ ऐशा षोडश सहस्र युवती । बोलतां कदाही न राहती । एकीसी एक उडविती । न मिळती विचारा । २९ जैसीं नाना शास्त्रें अनेक । घेऊनि उठती बहुत तर्क । एक कर्म स्थापिती मीमांसक । औपासन एक स्थापिती । ३० एक स्थापीतसे योग । दुजा म्हणे करावा याग । एक म्हणे स्वर्गभोग । लाभे ऐसें आचरावें । ३१ एक न्याय स्थापिती कैसा । एक स्थापिती मीमांसा । पातंजलापरतें सहसा । साधन नाहीं एक म्हणे । ३२ एक म्हणती इंद्र थोर । एक स्थापिती महेश्वर । एक म्हणती इंदिरावर । त्यापरता थोर नाहींच । ३३ एक स्थापिती थोर गभस्ती । एक म्हणे भजावें शक्ती । एक

सो गये थे । मैं सारी रात (भर) अपने हाथों से उनके पाँव चाँप रही थी'। २६ (इसपर) एक (अन्य नारी) क्या बात बोली, 'आज मेरे सदन में उन्होंने गायन करते हुए मेरे मन को मोहित कर डाला । उस सुख का पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता'। २७ (यह सुनकर किसी) एक ने कहा, 'अरी सजनी, मैंने अपने स्तनों (से लगाकर) श्रीहरि के चरणों का पूरी रात (भर ताप-) शमन किया । (इसके लिए) चक्रपाणि (स्वयं) साक्षी हैं'। २८ इस प्रकार वे सोलह सहस्र युवतियाँ बोलते हुए कदापि चुप नहीं रह जाती थीं । वे एक-दूसरी (की बात) को उड़ा रही थीं, अर्थात काट रही थीं । वे एक-दूसरी के विचार में मिल नहीं रही थीं (एक-दूसरी से एक-मत नहीं हो रही थीं) । जैसे नाना शास्त्र अनेक विचारों (सिद्धान्तों) को लेकर, बहुत तर्क लेकर उठते हैं । कुछ एक मीमांसक कर्मकाण्ड की स्थापना करते हैं, तो कुछ औपासन अग्नि की पूजा, उपासना आदि के विधान का निर्धारण करते हैं । २९-३० कोई एक योग की स्थापना करता है, तो दूसरा कहता है कि यज्ञ-याग करें । (तीसरा कोई) एक कहता है, जिससे स्वर्ग के (सुख आदि) भोगों का लाभ हो, ऐसा आचरण करें । ३१ कुछ न्याय की स्थापना कैसे करते हैं ? कुछ एक मीमांसा की स्थापना करते हैं; तो कोई एक कहता है, 'पातंजल (योग) से (बड़ा) कोई (अन्य) साधन बिलकुल नहीं है'। ३२ कुछ एक कहते हैं, 'इन्द्र बड़ा है', तो कुछ एक महेश्वर शिवजी की (महिमा की) स्थापना करते हैं । तो कुछ एक कहते हैं, इन्दिरावर श्रीविष्णु (सर्वश्रेष्ठ हैं, उन) से कोई बड़ा है ही नहीं । ३३ कुछ एक सूर्य को बड़ा प्रतिपादित करते हैं, तो कोई एक कहता है, 'शक्ति की भक्ति करें'। कुछ एक कहते हैं, 'गणेश (सबसे) बड़े हैं; जीव-भाव से उसकी अर्चना

म्हणती थोर गणपती। जीवेंभावें अर्चिजे। ३४ ऐसीं शास्त्रें खटपटती। एकाचें एक न मानिती। षोडश सहस्र युवती। तैशा जल्पती परस्परें। ३५ जैसीं वनचरें अपारें। तैसीं बोलती इतर शास्त्रें। वेदांतसिंह गर्जतां गजरें। गर्भगळित सर्व होती। ३६ जैसा देवांत वंद्य वैकुंठनाथ। तैसा सर्वांसी मान्य वेदांत। शस्त्रांत सुदर्शन लखलखित। नवग्रहांत मित्र जैसा। ३७ कीं रत्नांमाजी कौस्तुभमणी। कीं नद्यांमाजी मंदाकिनी। कीं काद्रवेयकुळांत मुकुटमणी। भोगिनायक श्रेष्ठ तो। ३८ तैसें शास्त्रांमाजी विख्यात। संत जाणती वेदांत। तेथींचें बोलणें मान्य बहुत। जन्ममरणमोचक जें। ३९ असो नाना मतांचीं बोलणीं। तैशा जल्पती इतर कामिनी। वेदांतशास्त्र जैसी रुक्मिणी। श्रेष्ठपणें बोलत। ४० ते आदिमाया मूळप्रकृती। कीं ते अनंतवल्ली स्वयंज्योती। जे इच्छामात्रें निश्चितीं। घडी मोडी ब्रह्मांड हें। ४१ हे पुराणपुरुषाची ज्ञानकळा। काय बोलिली ते वेळां। म्हणे ऐका गे तुम्ही

करें'। ३४ इस प्रकार शास्त्र (अपने-अपने मत की बड़ाई स्थापित करने का) यत्न करते हैं। कोई एक भी दूसरे की बात नहीं मानते। उसी प्रकार वे सोलह सहस्र युवतियाँ परस्पर अपनी-अपनी बड़ाई बघारते हुए बकवास कर रही थीं। ३५ जिस प्रकार वनचर (प्राणी) असंख्य होते हैं (अपने-आप को बड़ा मानते हैं), परन्तु सिंह का दहाड़ना सुनते ही भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार अन्यान्य शास्त्र (अपना-अपना बड़प्पन स्थापित करते हुए) बोलते रहते हैं; परन्तु वेदान्त रूपी सिंह द्वारा गर्जन के साथ दहाड़ने पर सब गलित-गर्भ हो जाते हैं, अर्थात मारे भय के मानो सबके गर्भ गिर जाते हैं। ३६ देवों में जैसे वैकुण्ठनाथ श्रीविष्णु (सबके लिए) वन्द्य हैं, वैसे ही सबके द्वारा वेदान्त स्वीकार करने योग्य है। जिस प्रकार शस्त्रों में सुदर्शन चक्र (सर्वाधिक) जगमगानेवाला तेजस्वी होता है, जिस प्रकार नव ग्रहों में सूर्य (सर्वश्रेष्ठ) है, अथवा रत्नों में कौस्तुभ मणि (सर्वश्रेष्ठ) है, अथवा नदियों में गंगा है, अथवा (जिस प्रकार) काद्रवेय अर्थात सर्प-कुल में भोगावती नगरी के नायक शेष मुकुटमणि जैसे श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सन्त जानते हैं कि शास्त्रों में वेदान्त (सर्वाधिक) विख्यात है। वहाँ का (उस वेदान्त का) सिद्धान्त, जो जन्म और मृत्यु से मुक्ति देनेवाला है, बहुत मान्य (स्वीकार करने योग्य) है। ३७-३९ अस्तु। नाना प्रकार के मतों को लेकर जैसी उक्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार अन्य कामिनियाँ घमण्ड के साथ बकती-बड़बड़ाती रहीं। (अन्त में) वेदान्त-शास्त्र जैसी रुक्मिणी श्रेष्ठता के साथ बोली। ४० वह तो आदिमाया मूलप्रकृति है, अथवा वह तो अनन्त वल्ली है, स्वयं (प्रकाशवती) ज्योति है, जो केवल इच्छा से निश्चय ही इस ब्रह्माण्ड का निर्माण करती है और विनाश करती है। ४१ यह तो पुराणपुरुष की ज्ञानकला है। उस समय वह क्या

सकळा। व्यर्थ गलबला करूं नका। ४२ तुमच्या सोळा सहस्त्र मंदिरीं। व्यापक एकचि कंसारी। जैसें नाना घटमठांतरीं। एकचि अंबर व्यापक। ४३ तैसा तुमच्या गे निजसदनीं। एकचि व्यापला चक्रपाणी। अनंत ब्रह्मांडें भरोनी। उरला असे परिपूर्ण। ४४ सर्वव्यापक पूतनारी। समान नांदे सर्वां मंदिरीं। हा निर्धार नेणोनि भेदकुसरी। कां गे व्यर्थचि भांडतां। ४५ ऐसी निर्वाण गोष्ट रुक्मिणी। सांगतां तन्मय जाहल्या कामिनी। पुढें बोलावया भेदवाणी। सहज खुंटली तेधवां। ४६ ऐकतां सद्‌गुरूचें वचन। साधक शिष्य निवती पूर्ण। तैसें रुक्मिणीच्या बोलें समाधान। सर्वांचेंही जाहलें। ४७ असो सत्यभामा बोले ते क्षणीं। म्हणे ऐक वो भीमकनंदिनी। आधीं पुत्र झाला तुजलागोनी। तरी मी वेणी देईन तुज। ४८ मज जरी पुत्र जाहला आधीं। तरी मज तूं वेणी देईं त्रिशुद्धी। ऐसें सत्यभामा बोलतां शब्दीं। जगन्माता हांसली। ४९ मग वस्त्रें विडे दिधलीं सकळां। आपुलाल्या निकेतना गेल्या अबला। तों नारदमुनि ते वेळां। सहज आला द्वारके। ५० मनीं म्हणे नारदमुनी। बहुत आहेत कृष्णकामिनी। परी

बोली ? (सुनिए—) वह बोली, 'अरी तुम सब सुन लो। व्यर्थ कोलाहल न करो। ४२ जिस प्रकार नाना प्रकार के घटों और मठों के अन्दर एक ही आकाश व्याप्त किये रहता है, उसी प्रकार तुम्हारे सोलह सहस्त्र भवनों में एक ही कंसारि कृष्ण सर्वव्यापी (सबको व्याप्त किये हुए) हैं। ४३ उसी प्रकार, अरी तुम्हारे अपने-अपने सदन में एक ही चक्रपाणि व्याप्त किये हुए हैं। वे अनन्त ब्रह्माण्डों को भरकर (भी) परिपूर्ण रूप से शेष रहे हैं। ४४ पूतनारि श्रीकृष्ण सर्वव्यापक हैं। वे सबके भवनों में समान रूप से रहते हैं। यह निर्णय न जानते हुए भेदभाव वाली कलाओं— प्रवृत्तियों को लेकर व्यर्थ ही क्यों झगड़ रही हो'। ४५ रुक्मिणी द्वारा ऐसी अन्तिम— सर्वोपरि बात कहने पर वे नारियाँ तन्मय हो गयीं। उस समय आगे (अधिक) बोलने में भेद-सम्बन्धी बात करनेवाली वाणी स्वाभाविक रूप से कुण्ठित हो गयी। ४६ सद्‌गुरु की बात सुनते ही साधक, शिष्य तृप्ति-शान्ति को पूर्णतः प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार रुक्मिणी के कथन से सन्देह का निराकरण होने पर सबको सन्तोष हुआ। ४७ अस्तु। उस क्षण सत्यभामा बोलने लगी। वह बोली, 'सुनो हे भीमक-नन्दिनी, यदि (मुझसे) पहले तुम्हारे पुत्र हो जाए, तो मैं तुम्हें अपनी बेनी दूँगी। ४८ यदि (तुमसे) पहले मेरे पुत्र हो जाए, तो तीन बार प्रतिज्ञापूर्वक कहते हुए तुम मुझे अपनी बेनी दो'। सत्यभामा द्वारा शब्दों में ऐसा बोलते ही जगन्माता रुक्मिणी हँस पड़ी। ४९ अनन्तर उसने सबको वस्त्र और बीड़े दिये, तो वे स्त्रियाँ अपने-अपने घर गयीं। तब उस समय नारद मुनि यों ही द्वारका आ गये। ५० नारद मुनि ने मन में कहा (सोचा), 'कृष्ण के

यांमाजी ज्ञानखाणी। निवडूं आतां कोण ते। ५१ एक्या गोपीच्या मंदिरीं। नारद प्रवेशला ते अवसरीं। तिनें पूजा करोनि निर्धारीं। मुनीश्वर तोषविला। ५२ नारद पुसे तिजलागून। परपुरुषीं जडलें तुझें मन। तंव ते बोले क्रोधायमान। ब्रह्मपुत्रासी तेधवां। ५३ म्हणे बरें हें तुमचें जी ध्यान। आम्हांसी कृष्णावेगळें नाहीं ज्ञान। म्हणतां परपुरुषीं मन। नवल हेंचि वाटतें। ५४ मग हांसिन्नला नारदमुनी। प्रवेशला दुसरें सदनीं। तीस पुसे परपुरुषीं कामिनी। तुझें मन आहे कीं। ५५ ते म्हणे तुम्ही चळलेती। नसतेंचि पुसतां आम्हांप्रती। सत्यभामेसमवेत युवती। याचि प्रकारें शोधिल्या। ५६ जे ते लागे नारदाचे पाठीं। परी अर्थीं कोणी न घाली दृष्टी। जैसे संत बोलती निर्वाण गोष्टी। पाखंडी घेती कुतर्क। ५७ ऐसा मुनि हिंडतां झाला हिंपुटी। रुक्मिणीच्या गृहा आला शेवटीं। तिनें नारद देखतां दृष्टीं। उठाउठी समोर येत। ५८ करूनि नारदासी नमन। केलें षोडशोपचारें पूजन। नारदमुनि बोले वचन। परपुरुषीं मन आहे कीं। ५९

बहुत स्त्रियाँ हैं। परन्तु अब मैं परीक्षा करके निर्णय करूँगा कि इनमें से ज्ञान की खनि कौन है'। ५१ (ऐसा सोचकर) नारद उस समय एक गोपी के भवन में प्रविष्ट हुए। तो उसने पूजन करके निश्चय ही उन मुनीश्वर को तुष्ट किया। ५२ (अनन्तर) नारद ने उससे पूछा (कहा), 'तुम्हारा मन पर-पुरुष (अर्थात परमपुरुष, पुरुषोत्तम) में जुड़ गया है'। तब वह (नारद की बात को ठीक से न समझने के कारण) क्रोधायमान होकर ब्रह्मा के उन पुत्र से बोली। ५३ वह बोली, 'अहो, आपका यह ढंग अच्छा है! हमें कृष्ण के अतिरिक्त किसी का ज्ञान नहीं है और आप कहते हैं कि हमारा मन पर-पुरुष में लगा है —यही मुझे आश्चर्य हो रहा है'। ५४ तब नारद मुनि हँसने लगे और दूसरे भवन में प्रविष्ट हुए। उस (घर की) स्त्री से उन्होंने कहा, 'हे कामिनी, तुम्हारा मन पर-पुरुष (परमपुरुष) में लगा है'। ५५ (यह सुनकर) वह बोली, 'आप बहक गये हैं। झूठ-मूठ की बात हमसे पूछ (कह) रहे हैं'। नारद मुनि ने सत्यभामा-सहित (अन्य समस्त) युवतियों की खोज की (परीक्षा की)। ५६ हर कोई नारी नारद के पीछे पड़ गयी। परन्तु किसी ने (उनकी बात के) अर्थ में आँखों से (गहरे झाँककर) नहीं देखा (और वे तर्क करती रहीं), जिस प्रकार सन्त तो निर्वाण अर्थात ब्रह्मज्ञान (वेदान्त-ज्ञान) की बातें कहते हैं, और (उन्हें सुनकर) पाखण्डी कुतर्क करने लगते हैं। ५७ इस प्रकार मुनि घूमते-घूमते दुःखी हो गये और अन्त में रुक्मिणी के घर आ गये। नारद को आँखों से देखते ही झट से वह (उनकी अगुवानी करने के लिए) आगे (सामने) आ गयी। ५८ नारद को नमस्कार करके उसने उनका सोलह उपचारों से पूजन किया। तो नारद मुनि ने यह

ऐसें नारदमुनि बोलतां। विचारूनि बोले जगन्माता। म्हणे परपुरुषाविण तत्त्वतां। मज क्षणभरी न रहावे। ६० आसनीं भोजनीं शयनीं। परपुरुषासी न विसंबें नारदमुनी। परपुरुषासी न धरितां मनीं। मग जिणें व्यर्थ गेलें। ६१ जो चहूं वाचांहूनि पर। जो वेदशास्त्रांसी अगोचर। तो हाचि स्वामी यादवेंद्र। परात्परसोयरा हो। ६२ ऐकोनि नारद सुखावला। प्रेमें वंदिली रुक्मिणी बाळा। म्हणे तूं हरीची ज्ञानकळा। तुझी लीला अगम्य। ६३ तुझिया वो अपांगपातें। सकळ संत होती ज्ञाते। ऐसें स्तवोनि रुक्मिणीतें। नारद गेला स्वर्गासी। ६४ तंव सभा विसर्जूनि समस्त। रुक्मिणीच्या मंदिरा कृष्णनाथ। येता जाहला त्रिभुवनसमर्थ। विलाससभेसी एकांतीं। ६५ मंदिरा आला वैकुंठनाथ। त्रिभुवनजननी ऐकतां त्वरित। उठोनि सामोरी प्रेमें येत। अंचळ रुळत चपळेऐसा। ६६ पदसरोजीं मस्तक ठेवूनी। निंबलोण उतरी हरीवरूनी। विलाससभेसी नेऊनी। डोल्हारां बैसवी कृष्णातें। ६७ जे अनंतशक्तींची स्वामिणी। जे त्रिभुवनपतीची पट्टराणी। जे प्रणवाची मूळपीठवासिनी। ज्ञानखाणी रुक्मिणी ते। ६८ शत चारी परिचारिका सत्वर। पूजासामग्री देती परिकर। आपुल्या

बात कही, ' (तुम्हारा) मन पर-पुरुष में (लगा) है '। ५९ नारद मुनि द्वारा ऐसा बोलते ही जगन्माता रुक्मिणी विचार करके बोली, ' बिना पर-पुरुष के, मुझसे क्षण भर भी नहीं रहा जाता। ६० हे नारद मुनि, आसन में (बैठते हुए), भोजन में, शयन में मैं पर-पुरुष को नहीं भूल जाती। पर-पुरुष को मन में धारण न करने पर फिर जीना ही व्यर्थ हो गया। ६१ अहो, जो (परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक) चारों वाणियों से परे हैं, जो वेद-शास्त्रों के लिए भी अगोचर (अज्ञेय) है, यही वे स्वामी यादवेन्द्र कृष्ण हैं, (मेरे लिए) परात्पर रूप में आप्तजन हैं '। ६२ यह सुनकर नारद सुख को प्राप्त हुए; उन्होंने उस नारी रुक्मिणी का वन्दन किया और कहा, ' तुम श्रीहरि की ज्ञानकला हो; तुम्हारी लीला अगम्य है। ६३ अहो, तुम्हारे दृष्टि-पात से समस्त सन्त ज्ञानी हो जाते हैं '। इस प्रकार रुक्मिणी की स्तुति करके नारद स्वर्गलोक में गये। ६४ तब समस्त (राज-) सभा विसर्जित करके त्रिभुवन में सामर्थ्यशील कृष्णनाथ रुक्मिणी के भवन की विलास-सभा (-गृह) में एकान्त में आ गये। ६५ त्रिभुवनजननी रुक्मिणी यह सुनकर कि वैकुण्ठनाथ घर में आये हैं, झट से प्रेमपूर्वक सामने आ गयी। उसका आँचल बिजली जैसा शोभायमान था। ६६ श्रीहरि कृष्ण के पदकमलों में मस्तक रखकर उसने राईनोन उतार लिया और विलास-सभा में उन्हें ले जाकर झूले पर बिठा दिया। ६७ जो (वस्तुतः) अनन्त शक्तियों की स्वामिनी है, जो त्रिभुवनपति की पटरानी है, जो प्रणव की मूलपीठवासिनी है, वही ज्ञानखनि रुक्मिणी

हातें यादवेंद्र। पूजी तेव्हां भीमकी। ६९ आनकदुंदुभीचा महापुण्यमेरु। तोचि हा श्रीकृष्ण जगद्‌गुरु। जो मायाचक्रचाळक उदारु। कैवल्यज्ञानदायक। ७० शुभ्र लघुचीर हातीं घेऊनी। हरीवरूनि वारीत रुक्मिणी। जिचिया पदनखांवरूनी। कोटि मकरध्वज ओंवाळिजे। ७१ इच्छामात्रेंकरूनी। अनंत ब्रह्मांडें रची ते क्षणीं। ब्रह्मादिक बाळें निर्मूनी। निजोदरीं पाळी जे। ७२ जे त्रिभुवनलावण्यमांदुस। तप्तसुवर्णवर्णी डोळस। जिणें वेधिलें आदिपुरुषास। निजगुणें आपुलिया। ७३ सहज बोलतां जगन्माता। दंतप्रकाश पडे अवचिता। पाषाण ते हिरे तत्त्वतां। होती सतेज तत्काळ। ७४ ब्रह्मांड भेदूनि विशेष। धांवणें करी आंगींचा सुवास। आकार ग्रासूनि समरस। स्वस्वरूपीं होइजे। ७५ सहज चालतां हंसगती। पदतळमुद्रा जेथें उमटती। तेथें सुवासकमळें विकसती। धन्य क्षिती जाहलें म्हणे। ७६ तया कमळावरी वसंत। भ्रमर होऊनि रुंजी घालीत। चालतां पदभूषणें

है। ६८ चार सौ सेविकाओं ने झट से पूजा की सुन्दर सामग्री (लाकर) दी, तो रुक्मिणी ने अपने हाथों से यादवेन्द्र कृष्ण का पूजन किया। ६९ जो आनकदुन्दुभि (वसुदेव) के (द्वारा किये हुए) महापुण्य के मेरुपर्वत हैं, जो माया के चक्र के चालक हैं, जो प्रभावशाली हैं, जो कैवल्य (मुक्ति) के, ज्ञान के दाता हैं, वे ही ये जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण हैं। ७० हाथ में शुभ्र लघुचीर (रूमाल जैसा वस्त्र) लेकर (वही) रुक्मिणी श्रीहरि पर झुलाने लगी (हवा करने लगी), जिसके पद-नखों पर कोटि (-कोटि) कामदेवों को निछावर करें। ७१ जो केवल इच्छा से अनन्त ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है, जो उसी क्षण ब्रह्मा आदि बालकों को जन्म देकर अपने उदर (गर्भ) में उनका पालन करती है, जो त्रिभुवन के लावण्य की तिजोरी है, जो तप्त सुवर्ण के-से वर्ण वाली है, जो सुन्दर आँखों वाली है, जिसने अपने स्वयं के गुणों से आदिपुरुष को (अपनी ओर) आकृष्ट (मोहित) कर लिया है, ऐसी उस जगन्माता रुक्मिणी द्वारा स्वाभाविक रूप से बोलने लगते ही अकस्मात उसके दाँतों का प्रकाश पृथ्वी पर पड़ (फैल) जाता था और जो पाषाण थे, वे सचमुच तत्काल तेजोयुक्त हीरे बन जाते (जान पड़ते) थे। ७२-७४ उसके अंग की सुगन्ध ब्रह्माण्ड को भेदकर विशेष (उस पार) दौड़ती थी। आकार से युक्त ब्रह्माण्ड को निगलकर (व्याप्त करके) वह अपने ब्रह्मस्वरूप में समरस हो सकती थी। ७५ हंस की-सी गति से चलनेवाली (वह स्त्री) जब सहजतया चलने लगती, तब जहाँ उसके पद-चिह्न अंकित हो जाते, वहाँ सुगन्धयुक्त कमल विकसित हो जाते थे। तो भूमि कहती, 'मैं धन्य हो गयी हूँ'। ७६ उन कमलों पर वसंत भ्रमर होकर गुनगुनाते हुए घूमता रहता था। उसके चलते समय, उसके पदों में (पहने हुए पायल जैसे) आभूषण गरजते थे। उन्हें देखकर

गाजत। देखोनि मन्मथ नृत्य करी। ७७ दिनपति आणि रोहिणीपती। काढिल्या तयांच्या अंतर्ज्योती। तैसीं कर्णपुष्पें तळपती। डोल देती मुक्तघोंस। ७८ आकर्ण विशाळ पद्मनयन। अंजन सोगयाचें विराजमान। तडित्प्राय झळके पीतवसन। शोभे मुक्तलग कंचुकी। ७९ वज्रचूडेमंडित हस्त। अवतारमुद्रा दाही झळकत। पाचूचें पदक कंठीं तळपत। मुक्ताहार पीतवर्ण दिसती। ८० असो ऐसी ते ज्ञानकळा सुंदर। हातीं घेऊनि लघुचीर। क्षीराब्धीची लहरी परिकर। उडवितां वस्त्र तैसें दिसे। ८१ हस्त हालतां किंचित। पयोधर होती कंपित। हरिस्वरूप देखतां लज्जित। कृष्णमुख ते जाहले। ८२ हरिकरप्रताप देखोनि निवाड। लपाले दिव्य कंचुकीआड। सुकुमार दोघे परम भ्याड। पल्लवें झांकी जगन्माता। ८३ असो लघुचीर उडवितां रुक्मिणी। बोले हरीसी सुहास्यवदनी। तुम्हां योग्य मी नव्हें चक्रपाणी। चातुर्य कांहीं समजेना। ८४ तुमची सेवा करूं नेणें सर्वथा। गुण नव्हती बरवे पाहतां। रूप तुमचें जगन्नाथा। सर्वांहूनि विशेष। ८५ मी अत्यंत रूपहीन। तुमचेंही मजवरी नाहीं मन। आतां गोपी अत्यंत

कामदेव नृत्य करता था। ७७ सूर्य और चन्द्र के अन्दर से ज्योतियाँ निकाली गयी हों (तो वे जिस प्रकार जगमगाती हों), उसी प्रकार उसके कर्णफल जगमगाते थे। मोतियों के गुच्छे झूमने-डोलने को प्राप्त हो जाते थे। ७८ उसके कमल-से नेत्र आकर्ण विशाल थे; उनमें सुरमे का अंजन शोभायमान था। उसका पीले रंग का वस्त्र विद्युत् जैसा था। मोतियों से जड़ी हुई कंचुकी शोभायमान थी। ७९ उसके हाथ हीरों की चूड़ियों से विभूषित थे। भगवान के अवतारों के चित्र अंकित की हुई दसों मुद्रिकाएँ चमकती थीं। पन्ने का पदिक गले में जगमगाता था। मुक्ताहार पीले वर्ण के दिखायी देते थे। ८० अस्तु। इस प्रकार की उस (भगवान की) सुन्दर ज्ञानकला द्वारा हाथ में रूमाल लेकर झुलाते समय वह (रूमाल) क्षीरसागर की सुन्दर लहर जैसा दिखायी दे रहा था। ८१ उसके द्वारा हाथों को जरा-से हिलाने पर उसके स्तन कम्पायमान हो जाते थे। श्रीहरि के मुख को देखते हुए वे लज्जित होकर कृष्णमुख हो गये (स्तनाग्र काले हो गये)। ८२ वे (स्तन) श्रीहरि के करों का प्रताप जानकर सचमुच उसकी दिव्य कंचुकी की ओट में छिप गये। वे दोनों सुकुमार थे; (परन्तु) परम भीरु थे; अत: जगन्माता रुक्मिणी ने उन्हें आँचल से ढँक दिया। ८३ अस्तु। रूमाल को झुलाते-झुलाते सुहास्य-वदना रुक्मिणी श्रीहरि से बोली, ‘ हे चक्रपाणि, मैं आपके योग्य नहीं हूँ। मेरी समझ में चातुर्य (बुद्धिमत्ता, कृतित्व) कुछ भी नहीं आता। ८४ मैं आपकी सेवा करना बिलकुल नहीं जानती; देखने पर (मुझमें) अच्छे गुण नहीं हैं। हे जगन्नाथ, आपका रूप तो सब (के रूप) से अधिक है। ८५

तरुण। तयांसी भोग देइंजे। ८६ वरकड गोपी जैशा आवडती। तैसी इकडे नाहीं प्रीती। पट्टराणी नाम निश्चितीं। कोरडेंचि ठेविलें। ८७ जुनें वस्त्र होतां निश्चित। दूरी करिती भाग्यवंत। यावरी भीमकजामात। मंदहास्यमुखें बोलतसे। ८८ ऐसें काय बोलसी रुक्मिणी। कोण सुंदर आहे तुजहूनी। तूं सकळचातुर्यखाणी। ऐशी शाहाणी कोण असे। ८९ ज्याचें भाग्य परिपूर्ण। त्याकडे होय तुझें विलोकन। तुझें जेथें न होय आगमन। दरिद्रेंकरूनि व्यापती। ९० तुवां नेणोनियां अबले। मज कासया वरिलें। तुझें रूप सर्वांहूनि आगळें। राजे भुलले पृथ्वीचे। ९१ शिशुपाळ वक्रवंत भूपाळ। जरासंधादि बहुत नृपाळ। तुझ्या मनासी आवडेल त्यासी माळ। आतां तरी घालीं कां। ९२ बाळपणींची सकळ कीर्ती। तुवां ऐकिली असेल निश्चितीं। गोपी उखळासी बांधिती। चोरी केली म्हणोनियां। ९३ आम्ही रानचे रानवट गोवळ। परनारी भोगिल्या केवळ। सवें मेळवूनि गोपाळ। हुंबळी घातली तयांशीं। ९४ सकळ राजे आम्हांसी हांसती।

मैं अत्यन्त रूपहीन हूँ। आपका भी मन मुझपर नहीं है। अब (अन्य) गोपियाँ अत्यन्त तरुण हैं; उनको उपभोग प्रदान कीजिए। ८६ अन्य गोपियाँ आपको जिस प्रकार अच्छी लगती हैं, वैसी प्रीति इधर (मुझसे) नहीं है। (जान पड़ता है—) आपने 'पटरानी' नाम निश्चय ही मुझे कोरा ही (बिना किसी अर्थ के) रखा है। ८७ भाग्यवान (धनी-मानी) लोग वस्त्र के पुराने हो जाने पर निश्चय (ही) उसे दूर कर देते हैं (फेंक देते हैं)'। इसपर भीमक राजा के दामाद श्रीकृष्ण मन्द मुस्कराहट से युक्त मुख से बोले। ८८ 'अरी रुक्मिणी, यह इस प्रकार क्या (क्यों) बोल रही हो? तुमसे कौन (अधिक) सुन्दर है? तुम समस्त चातुर्य की खान हो। (तुम जैसी चतुर, सयानी, समझदार हो) वैसी समझदार कौन है? ८९ जिसका भाग्य परिपूर्ण है, उसकी ओर ही तुम्हारे द्वारा देखना होता है (उसकी ओर तुम देखती हो)। जहाँ (जिनकी ओर) तुम्हारा आगमन नहीं होता, वे दरिद्रता से व्याप्त हो जाते हैं। ९० अरी अबला, तुमने यह न जानते हुए मेरा किसलिए वरण किया? तुम्हारा रूप सबसे न्यारा है। उससे पृथ्वी के राजा मोहित हो गये थे। ९१ शिशुपाल, वक्रदन्त राजा हैं। जरासन्ध आदि (अन्य) अनेक राजा हैं। उनमें से तुम्हारे मन को जो भाएगा, उसे अब भी (वर-) माला पहना दो। ९२ मेरी बचपन की समस्त कीर्ति तुमने निश्चय ही सुनी होगी। मैंने चोरी की— इसलिए गोपियों ने मुझे ऊखल से बाँधा था। ९३ हम वन के वन्य (जंगली) ग्वाले हैं। हमने परनारियों का केवल उपभोग किया। साथ में गोपालों को इकट्ठा करके हमने उनसे हुमरी खेली थी। ९४ समस्त राजा हमको हँसते हैं। मेरे पास कोई (राज-) छत्र

छत्र सिंहासन नाहीं मजप्रती। याति कुळ धर्मकर्मस्थिती। आंगीं नसे अणुमात्र। ९५ पुरुषार्थी जरी म्हणती वीर। तरी काळयवनें पीडिलें थोर। दैवें लागलें मुचुकुंदविवर। म्हणोनियां बरें जाहलें। ९६ धुतलीं अर्जुनाचीं घोडीं। धर्माघरीं उच्छिष्टें काढीं। पार्थाचा सारथी हे प्रौढी। बरी न दिसे लोकांत। ९७ बैसावया नाहीं वाहन। पक्ष्यावरी आरोहण। न मिळे कांहीं आंथरुण। सर्पावरी शयन करीं। ९८ ऐकतां सद्भक्तांचें कीर्तन। नाचतों लाज सोडून। मी काळा तूं गोरी सगुण। स्वरूप गांठी पडेना। ९९ मज काम नाहीं निःशेष। असें एकाकी निःसंग उदास। सर्वां घटीं जैसा चंडांश। व्यापोनियां अलिप्त। १०० ऐसीं उदास वाक्यें ऐकोनी। मनीं गजबजली त्रिभुवनजननी। अश्रुधारा लोटल्या नयनीं। वाटे कल्पांत लोटला। १०१ रुक्मिणीसी कैसा समय वाटला। कीं अंगावरी पर्वत कोसळला। कीं वर्षल्या प्रळयचपळा। शब्दरूपें रुक्मिणीवरी। २ लघुचीर उडवितां अकस्मात। तैसीच पडली मूर्च्छागत। प्राण व्याकुळ जाहले

और सिंहासन नहीं है। जाति, (वंश), कुल, धर्म तथा कर्म के सम्बन्ध में हमारे पास ज़रा भी (अच्छी) स्थिति नहीं है। ९५ यद्यपि मुझे पराक्रमी, वीर कहते हैं, तो भी हमें कालयवन ने बहुत पीड़ित किया था। दैव से मुचुकुन्द का (निवासस्थान वाला) विवर (मार्ग में) मिला, इसलिए अच्छा हो गया। ९६ मैंने अर्जुन के घोड़ों को नहलाकर साफ़ किया; धर्म के घर जूठन इकट्ठा किये (जूठी थालियाँ उठायीं)। मैं पार्थ का सारथी हूँ —यह बड़ाई लोगों में अच्छी नहीं दिखायी देती। ९७ (मेरे पास) बैठने के लिए कोई वाहन नहीं है, (अतः) मैं एक पक्षी पर आरोहण करता हूँ (सवार हो जाता हूँ)। कोई भी बिछौना नहीं मिलता, इसलिए (शेष जैसे) सर्प पर मैं शयन करता हूँ। ९८ सद्भक्तों द्वारा किया हुआ कीर्तन सुनकर मैं लज्जा को त्यजकर नाचता हूँ। मैं काला हूँ, तुम गोरी हो, गुणवती हो। (इस दृष्टि से) स्वरूप को लेकर भी कुछ गाँठ में नहीं पड़ जाता (कुछ पल्ले नहीं पड़ता)। ९९ मुझे कोई भी बिलकुल काम नहीं है। मैं (सबके साथ होने पर भी) एकाकी, संगी-साथी-हीन, उदासीन हूँ, जिस प्रकार सब घटों में व्याप्त रहने पर भी सूर्य अलिप्त रहता है'। १०० ऐसे खिन्नतापूर्ण वाक्य सुनते ही, त्रिभुवनजननी रुक्मिणी मन में भयभीत हुई। उसके नयनों में अश्रुधाराएँ उमड़ उठीं। उसे जान पड़ा कि (अब) कल्पान्त (काल का प्रलय) लपकता हुआ (निकट) आ गया। १०१ यह (विपत्ति का) समय रुक्मिणी को कैसा जान पड़ा? जैसे कि शरीर पर पर्वत गिर पड़ा हो, अथवा प्रलयकालीन बिजलियाँ शब्दों के रूप में रुक्मिणी पर बरस रही हों। २ (तब) रूमाल को झुलाते-झुलाते वह अकस्मात मूर्च्छित होकर वैसी ही गिर गयी। उसके समस्त

समस्त। श्वासोच्छ्‌वास कोंडले। ३ कोटिकंदर्पलावण्यसुंदर। जगदानंदकंद यदुवीर। डोल्हारियाखालीं उडी सत्वर। टाकोनियां पातला। ४ मग श्रीहरि म्हणे ते वेळीं। कैंची आम्हांसी आठवली रळी। म्हणोनि रुक्मिणी हृदयीं धरिली। आलिंगिली प्रीतीनें। ५ मी सहज विनोदेंकरूनी। बोलिलों जाण रुक्मिणी। तुवां निकरचि लावण्यखाणी। केला बहुत आम्हांवरी। ६ रुक्मिणी तुजविण एक क्षण। न गमे मज सर्वथा जाण। तूं आवडती जैसा प्राण। सत्य वचन सुकुमारे। ७ दितिसुतांच्या भारेंकरूनी। पीडिली सर्व मंगळजननी। परममंगळकारके रुक्मिणी। अवतरलों म्हणोनि तुम्ही आम्ही। ८ शृंगारसरोवरमराळिके। चराचरउदयचंपककळिके। परमकल्याणी भीमककन्यके। सुखदायके नेत्र उघडीं। ९ मग रुक्मिणीसी कडियेवरी। उचलूनि घेत मधुकैटभारी। निजविली डोल्हारियावरी। पूतनारि हालवीत। ११० विंजणा घेऊनि भगवंत। मंद समीर वरी घालीत। म्हणे शुभानने एक मात। मजशीं बोल ये क्षणीं। १११ कर्णीं कर्पूर तेव्हां श्रीधरें। शीतळ फुंकिला आपुल्या करें। मुखशशांककलंक यादवेंद्रें।

प्राण व्याकुल हो उठे। उसकी साँस घुटने लगी। ३ तो (यह देखकर) कोटि (-कोटि) कामदेवों के समान लावण्य-सुन्दर, जगत के लिए आनन्द के कन्द यदुवीर कृष्ण झूले पर से झट से कूदकर (उसके समीप) आ पहुँचे। ४ तब उस समय वे उससे बोले, 'हमें यह कैसी हँसी-ठठोली याद आयी?' ऐसा कहते हुए उन्होंने रुक्मिणी को हृदय से लगा लिया और प्रेमपूर्वक उसका आलिंगन किया। ५ (वे बोले—) 'हे रुक्मिणी, समझ लो; मैं यों ही मज़े में बोला। हे लावण्य-खनि, तुमने हमारे प्रति हठपूर्वक क्रोध ही कर दिया है। ६ अरी रुक्मिणी, जान लो कि तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण (तक) बिलकुल अच्छा नहीं लगता। तुम (मेरे लिए) प्राणों के समान प्यारी हो। हे सुकुमारी, यह बात सत्य है। ७ दिति के पुत्रों— दैत्यों के (पापों के) बोझ से यह समस्त पृथ्वी उत्पीड़ित हो रही है; इसलिए, हे परममंगलकर्त्री रुक्मिणी, तुम और हम अवतरित हैं। ८ हे शृंगार रूपी सरोवर में रहनेवाली हंसी, चराचर-उदय (निर्माण) कर देनेवाली चम्पक-कलिका, हे परमकल्याणी, हे भीमक राजा की कन्या, हे सुखदायिनी, आँखें खोलो'। ९ अनन्तर मधु-कैटभारि और पूतनारि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को गोद में उठा लिया और झूले में लिटा लिया। वे उस झूले को हिलाने लगे। ११० भगवान (फिर) पंखा लेकर मन्द (-मन्द) हवा करने लगे और बोले, 'हे शुभानने, मुझसे इस क्षण एक बात बोलो'। १११ तब यादवेन्द्र श्रीकृष्ण ने उसके कानों में कपूर-जैसी शीतल मंत्र या उपदेश की बात कही और अपने हाथों पीताम्बर से उसके मुख-चन्द्रमा में लगी कालिमा को पोंछ लिया। १२ अनन्तर आँखें खोलकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण

पीतांबरें पूसिला। १२　मग नेत्र उघडोनि रुक्मिणी। दृढ लागली हरीच्या चरणीं। म्हणे त्रिभुवननायका चक्रपाणी। तुझा महिमा न वर्णवे। १३ अनंतजन्मींचें सुकृत। एकदांचि फळलें अद्‌भुत। तरीच अर्धांग पावलें सत्य। जगन्निवासा तूमचें। १४　मग बोले जगज्जीवन। वसुदेव देवकी दोघेंजण। त्यांची वाहतों यथार्थ आण। मज तूं पूर्ण आवडसी। १५　माझें ठायीं तुझें अत्यंत मन। बाळपणीं तुवां सुदेव पाठवून। पद्मनेत्रे तुझ्या पत्रेंकरून। कौंडिण्यपुरा मी आलों। १६　ऐसें नाना परी बोलोन। केलें रुक्मिणीचें समाधान। लीलावतारी श्रीकृष्ण। ब्रह्मानंद अवतरला। १७　पूर्ण एकांत देखोन। रुक्मिणी हांसोनि बोले वचन। म्हणे मज नाहीं पुत्रसंतान। शून्य सदन दिसतसे। १८　ज्यांचे उदरीं नाहीं पुत्र। व्यर्थ गेला त्यांचा संसार। अंतीं प्राप्ति नाहीं परत्र। ऐसें शास्त्र बोलतसे। १९　परमचतुर सुंदर। मदनाऐसा व्हावा पुत्र। जो प्रचंड प्रतापशूर। ज्यासी जगत्‌त्रय धन्य म्हणे। १२०　जैसी वेदआज्ञा प्रमाण। तैसें वंदी मातृपितृवचन। निजांगें सेवा करी अनुदिन। तो पुत्र धन्य संसारीं। १२१　अपूर्व जे कां

के चरणों में दृढ़तापूर्वक लग गयी और बोली, ‘ हे त्रिभुवन-नायक चक्रपाणि, तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। १३　हे जगन्निवास, अनन्त जन्मों का (मेरा किया हुआ) पुण्य एक ही बार अद्‌भुत फल को प्राप्त हुआ। इसीलिए तो मैं तुम्हारे अर्धांग को सचमुच प्राप्त हो गयी हूँ, (आपकी अर्धांगिनी हो गयी हूँ) ’। १४　तब जगन्निवास श्रीकृष्ण बोले, ‘ मैं वसुदेव और देवकी दोनों जनों की यथार्थ रूप से शपथ करता हूँ— तुम मुझे पूर्णतः अच्छी (प्यारी) लगती हो। १५　तुम्हारा मन मुझमें अत्यधिक (लगा) है। बचपन में तुम्हारे द्वारा सुदेव (नामक ब्राह्मण) को भेजने पर, हे कमल-नयन, तुम्हारे पत्र के कारण मैं कौण्डिण्यपुर आ गया ’। १६　नाना प्रकार से ऐसा बोलकर उन्होंने रुक्मिणी को सान्त्वना देते हुए (उसके सन्देह का निराकरण करते हुए) तृप्त किया। लीलावतार धारण करनेवाले ब्रह्मानन्द ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित थे। १७　सम्पूर्ण एकान्त को देखकर रुक्मिणी ने हँसते हुए यह बात कही। वह बोली, “ मेरे कोई पुत्र-सन्तान नहीं है। (अतः) घर सूना दिखायी देता है। १८　शास्त्र इस प्रकार कहता है, ‘ जिसके उदर से पुत्र उत्पन्न न हुआ हो, उसकी घर-गिरस्ती व्यर्थ हो गयी। अन्त में उसे परलोक में अच्छी गति प्राप्ति नहीं होती (मुक्ति नहीं मिलती)’। १९　मेरे परम चतुर कामदेव जैसा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हो जाए, जो प्रचण्ड प्रतापी और शूर हो और जिसे तीनों लोक धन्य कहें ’। १२०　जो माता-पिता के वचन को वेदों की आज्ञा के समान प्रमाण मानता है, अपने शरीर से प्रतिदिन उनकी सेवा करता है, वही पुत्र जगत में धन्य होता है। १२१　जो वस्तु अपूर्व

वस्त। आणूनि मातापितयांसी अर्पिजेत। जोडली जोड न वेंची सत्य। तो पुत्र धन्य संसारीं। २२ माझीं मातापिता वृद्ध केवळ। वांचोत ऐसीं बहुत काळ। मानी जैसीं उमाजाश्वनीळ। तो पुत्र धन्य संसारीं। २३ माता पिता सद्गुरु देव। येथें समान ज्याचा भाव। नित्य नूतन आवडी स्वयमेव। तो पुत्र धन्य संसारीं। २४ शुक्तीच्या पोटीं मुक्ताफळ। कीं रंभागर्भीं कर्पूर निर्मळ। कीं वैरागर हिरा तेजाळ। तो पुत्र धन्य संसारीं। २५ धन्य त्या पुत्राची जननी। जिची कीर्ति मिरवे त्रिभुवनीं। तेचि सर्व ऐश्वर्याची खाणी। पुत्र ऐसा प्रसवे जे। २६ इतरा सूकरी खरी शुनी देखा। अपवित्र पुत्र त्या निपुत्रिका। पुढें भोगिती त्या अनेक नरकां। नाहीं सुटका तयांसी। २७ जो मातापितयांसी घाली बाहेरी। श्वशुरवर्गासी सांठवीं घरीं। जो स्त्रीलंपट दुराचारी। त्याच्या भारें दुःखी धरा। २८ व्यर्थ काय करावे बहु सुत। जैसे एकदांचि पडिले जंत। जे परम अविचारी उन्मत्त। त्यांच्या भारें दुःखी धरा। २९ दाराकुमारां सर्व वेत।

हो, वह लाकर अपने माता-पिता को समर्पित करता है; जो पूंजी इकट्ठा की हो, उसे वह सचमुच खर्च नहीं करता। ऐसा वह पुत्र संसार में धन्य होता है। २२ 'मेरे माता-पिता केवल वृद्ध हैं, वे ऐसे ही बहुत काल बचे (जीवित) रहें', ऐसा कहते हुए उन्हें जो उमा और शिवजी जैसे मानता है, वह पुत्र जगत में धन्य होता है। २३ जिसकी (श्रद्धा-) भावना अपने माता-पिता, सद्गुरु और देवता में समान होती है, जो नित्य (उनके विषय में) स्वयं नयी (-नयी) प्रेम के साथ रुचि (लगाव) धारण करता है, वह पुत्र संसार में धन्य होता है। २४ जिस प्रकार सीपी के उदर में (से) मोती (उत्पन्न हो जाता) है, अथवा (कपूरकदली नामक विशिष्ट) केले के गर्भ में निर्मल कपूर होता है, और खान में तेजस्वी हीरा निकलता है, उसी प्रकार (निर्मल आचरण करनेवाला, तेजस्वी) पुत्र संसार में धन्य होता है। २५ उस पुत्र की वह जननी धन्य है, जिसकी कीर्ति त्रिभुवन में फैल जाती है; जो ऐसे पुत्र को जन्म देती है, वही (जननी) समस्त ऐश्वर्य की खान होती है। २६ अन्य उन सूअरियों, गधियों, कुतियों (स्त्री-माताओं) को देखिए, जिनके पुत्र अपवित्र (आचरण करनेवाले, पापी) हैं अथवा जो (दुराचारी पुत्रों के कारण पुत्रवती होकर भी) पुत्रहीन (-स्त्री मानी जाती) हैं। आगे चलकर वे अनेक नरकों का उपभोग करती हैं। उनको मुक्ति नहीं प्राप्त हो जाती। २७ जो माता-पिता को (घर से) बाहर निकाल देता है, और ससुर वर्ग (अर्थात ससुर-सास आदि) को घर में इकट्ठा कर लेता है, जो स्त्री-लम्पट, दुराचारी है, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुःखी हो जाती है। २८ वे बहुत व्यर्थ पुत्र क्या करें? वे वैसे ही हैं, जैसे एकबारगी केंचुए उत्पन्न होकर गिर पड़े हैं। जो परम अविचारी, उन्मत्त हों, उनके बोझ से यह पृथ्वी दुःखी हो जाती है। २९ जो अपनी

मातापितयासी दरिद्र भोगवीत। कुशब्दवाणी हृदय भेदीत। त्याच्या भारें दुःखी धरा। १३० आपुलीच वस्तु पिता मागे। त्यावरी डोळे फिरवी रागें। म्हणे मी तुमचें काय ऋण लागें। त्याच्या भारें दुःखी धरा। १३१ पिता सांगे हितावबोध। म्हणे हा सन्निपातला वृद्ध। हृदय उले ऐसा बोले शब्द। त्याच्या भारें दुःखी धरा। ३२ म्हणे पिता माझा मूर्ख। मी त्याहूनि चतुर अधिक। मातेसी म्हणे करंटी देख। त्याच्या भारें दुःखी धरा। ३३ माता पिता दोघेजण। मेली करितां अन्न अन्न। मग करूं धांवे गयावर्जन। त्याच्या भारें दुःखी धरा। ३४ असतां न बोले धड वचन। करविलें नाहीं उदकपान। मग लोकांसी दावी करूनि तर्पण। त्याच्या भारें दुःखी धरा। ३५ पूर्वीं केला अपमान। मग श्राद्धीं करीत शतभोजन। लटकेंचि लोकां दावी रडून। त्याच्या भारें दुःखी धरा। ३६ म्हणोनि सर्वगुणीं संपन्न। पुत्र व्हावा जैसा मदन। ऐकतां ऐसें भगवान। तपालागीं चालिला। ३७ बळिभद्र उग्रसेन। दोघांसी म्हणे नगरी करा जतन। मग

स्त्री और पुत्रों (बच्चों) को सब (कुछ) देता है और माता-पिता को दरिद्रता भुगवाता है, बुरे शब्दों और वाणी से उनके हृदय को भेद डालता है, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुःखी हो जाती है। १३० पिता उससे अपनी ही वस्तु माँगता हो, तो भी जो क्रोध से आँखों को तरेरता है और कहता है, 'मैं तुम्हारा क्या कोई ऋण लगता हूँ ?' उसके बोझ से यह पृथ्वी दुःखी हो जाती है। १३१ पिता हितकारी उपदेश देता हो, तो जो कहता है कि यह वृद्ध सन्निपात ज्वर को प्राप्त हो गया है (इसलिए बक रहा है), और ऐसे शब्द बोलता है, जिनसे उनका हृदय खण्ड-खण्ड हो जाता है, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुखी हो जाती है। ३२ जो कहता है कि मेरा पिता मूर्ख है, मैं उससे अधिक चतुर हूँ, देखिए, जो माता को अभागिन कहता है, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुखी हो जाती है। ३३ जिसके माता-पिता दोनों जने 'अन्न', 'अन्न' कहते (अर्थात भूखों) मर गये हों और अनन्तर जो गया में जाकर पिण्डप्रदान-सहित तीर्थ-श्राद्ध करने के लिए दौड़ता हो, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुखी हो जाती है। ३४ माता-पिता के जीवित रहते हुए जो उनसे ठीक (से) बात तक नहीं करता था, जिसने उनको पानी तक नहीं पिलाया, और (उनके मरने के) पश्चात जो लोगों को तर्पण करके दिखाता हो, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुखी हो जाती है। ३५ जिसने (अपने माता-पिता का) पहले अपमान किया हो, परन्तु (उनकी मृत्यु के) अनन्तर श्राद्ध में शतभोजन (सौ ब्राह्मणों को भोजन) कराता हो, जो झूठमूठ ही लोगों को रुदन करके दिखाता हो, उसके बोझ से यह पृथ्वी दुखी हो जाती है। ३६ इसलिए मेरे समस्त गुणों से सम्पन्न, कामदेव जैसा पुत्र हो" —(रुक्मिणी से) ऐसा सुनते ही भगवान श्रीकृष्ण तपस्या के लिए चल पड़े। ३७

हिमाचळीं जाऊन। मांडिलें अनुष्ठान पुत्रइच्छें। ३८ एक संवत्सरपर्यंत। निराहार तप करीत। आराधिला उमाकांत। पंचवदन विरूपाक्ष जो। ३९ तपांतीं येऊनि कर्पूरगौर। भेटी दिल्ही पुरस्कार। म्हणे श्रीरंगा माग वर। इच्छित मनीं असेल तो। १४० सुकुमार तूं रुक्मिणीवर। श्रम जाहला बहु थोर। एवढा किंनिमित्त निर्धार। तप कासया मांडिलें। १४१ तूं वैकुंठनाथ जगदुद्धार। तुज मी हृदयीं ध्यातों निरंतर। कासया तप मांडिलें दुर्धर। द्वारकाधीशा यदुपति। ४२ हरि म्हणे पंचवदना। विरूपाक्षा त्रिपुरच्छेदना। उमावल्लभा नागभूषणा। वरदान देईं मज आतां। ४३ केवळ जैसा मकरध्वज। ऐसा पुत्र देईं सतेज। ऐकोनि म्हणे कैलासराज। उदरा येईल मदनचि। ४४ पूर्वीं म्यां जो दग्ध केला। तो अनंग होऊनि राहिला। तो तुझिया उदरीं घननीळा। पुत्र होईल प्रद्युम्न। ४५ शिवें शापावया काय कारण। ते कथा ऐका भक्तजन। पूर्वीं दक्षाच्या यागीं जाण। देह समर्पिला पार्वतीनें। ४६ मग तो दक्ष शिवें मारिला। त्यावरी निःसंग शिव एकला।

उन्होंने बलभद्र और उग्रसेन दोनों से कहा, 'नगरी की रखवाली कीजिए।' अनन्तर उन्होंने पुत्र (प्राप्ति) की कामना से हिमालय में जाकर अनुष्ठान आरम्भ किया। ३८ उन्होंने एक वर्ष तक निराहार रहकर तपस्या की और जो विरूपाक्ष पंचवदन उमाकान्त शिवजी हैं, उनकी आराधना की। ३९ तपस्या के अन्त में कर्पूरगौर शिवजी पुरस्कार रूप में उनसे मिले और बोले, 'हे श्रीरंग, मन में जो इच्छित हो, वर माँग लीजिए। १४० आप रुक्मिणी-पति श्रीकृष्ण हैं। आपको बहुत बड़े कष्ट हुए हैं। यह इतना निश्चय किस कारण (किया) है ? तप किसलिए आरम्भ किया है। १४१ आप वैकुण्ठनाथ हैं, जगत के उद्धारक हैं। मैं आपका निरन्तर ध्यान करता हूँ। हे द्वारकाधीश यदुपति, यह दुर्धर तप किसलिए आरम्भ किया है'। ४२ (इसपर) श्रीहरि बोले, 'हे पंचवदन, हे विरूपाक्ष, हे त्रिपुर का नाश करनेवाले, हे उमावल्लभ, हे नागभूषण (नाग वा सर्प जिन्होंने आभूषण की भाँति गले में धारण किया है), मुझे अब यह वरदान दीजिए। ४३ मुझे केवल मकरध्वज कामदेव जैसा (सुन्दर तथा) तेजस्वी पुत्र दीजिए'। यह सुनकर कैलास-पति शिवजी बोले, "(स्वयं) कामदेव ही आपसे उत्पन्न होगा। ४४ जिसे मैंने पूर्वकाल में जला डाला था, वह 'अनंग (अंगहीन)' होकर रह गया है; हे घननील, वही तुम्हारे यहाँ 'प्रद्युम्न' नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न होगा"। १४५

हे भक्तजनो, शिव द्वारा अभिशाप देने का क्या कारण हुआ ? —वह कथा सुनिए। जान लीजिए, पूर्वकाल में दक्ष के यज्ञ (-मण्डप) में पार्वती ने देह को त्यज दिया। १४६ अनन्तर, शिवजी ने उस दक्ष को मार डाला। तत्पश्चात शिवजी ने अकेले हिमालय में जाकर संगहीन (अवस्था

बहुत काळ तप आचरला। हिमाचळीं जाऊनियां। ४७ पार्वती हिमाचळाचे पोटीं। पुनः अवतरली ते गोरटी। तिनें आराधिला धूर्जटी। वर व्हावा म्हणोनियां। ४८ नारद म्हणे हिमाद्रीप्रती। हे शिवप्रिया जाण पार्वती। हे त्यासीचि देईं मागुती। निश्चयेंसीं नगोत्तमा। ४९ तें हिमाद्रीसी मानलें वचन। मग येऊनि सरोजासन। शिवगौरीचें लाविलें लग्न। सर्व देव मिळोनियां। १५० तंव पुढें जाहला तारकासुर। जो त्रैलोक्यासी अनिवार। सकळ देव करिती विचार। केवीं संहार होय याचा। १५१ मग बृहस्पति बोलत। शिवासी होईल जेव्हां सुत। त्याच्या हातें पावेल मृत्य। तारकासुर निर्धारें। ५२ तरी शिव असे व्रतस्थ। कामत्यागें तप करीत। त्यासी काम उद्भवेल सत्य। तरीच सुत होय पैं। ५३ मग देवीं पाठविला मदन। वेगीं भुलवीं पंचवदन। यावरी तो हिमाचळीं येऊन। पार्वतीजवळी राहिला। ५४ जेथें शिव करी अनुष्ठान। वसंतें शृंगारिलें तें वन। पार्वती कामासहित येऊन। शिवाजवळी उभी ठाके। ५५ मदन शिवाच्या हृदयीं भरला। तेणें ध्यानासी विक्षेप केला। क्रोधें तृतीय नेत्र उघडिला। प्रळय वाटला सकळांसी। ५६ आंतूनि निघाला प्रळयाग्न। जाळूनि भस्म केला

में, अकेले) दीर्घ काल तप किया। ४७ (यथाकाल) गौरी पार्वती हिमालय के यहाँ (कन्या-रूप में) अवतरित हुई। उसने, शिवजी अपने पति हों, इस उद्देश्य से उनकी आराधना की। ४८ नारद ने हिमालय से कहा, ' इस पार्वती को शिवजी की प्रिया समझिए। हे पर्वतोत्तम, इसे निश्चय ही उन्हीं को फिर से (पत्नी-रूप में) प्रदान कीजिए '। ४९ वह बात हिमालय को जँच गयी। तब ब्रह्मा ने समस्त देवों को मिलाकर शिवजी और गौरी का विवाह सम्पन्न करा दिया। १५० तब आगे तारकासुर नामक एक दैत्य उत्पन्न हुआ, जो त्रि-लोक के लिए अनिवार था। तो समस्त देवों ने विचार किया कि इसका संहार किस प्रकार हो सकता है। १५१ तब बृहस्पति बोले, ' जब शिवजी के पुत्र उत्पन्न होगा, तो उस (पुत्र) के हाथों तारकासुर दैत्य निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त होगा। ५२ फिर भी शिवजी तो व्रतस्थ हैं। वे कामभाव का त्याग करके तप कर रहे हैं। उनमें कामभाव उत्पन्न होगा, तो ही सचमुच उनके पुत्र (उत्पन्न) होगा '। ५३ तब देवों ने कामदेव को (यह बताकर) भेज दिया— ' शीघ्र ही पंचवदन शिवजी को मोहित करो '। इसके पश्चात वह हिमालय में आकर पार्वती के पास रह गया। ५४ जहाँ शिवजी अनुष्ठान कर रहे थे, वसन्त ने उस वन को सजा लिया। तो पार्वती कामदेव-सहित आकर शिवजी के पास खड़ी रह गयी। ५५ कामदेव शिवजी के हृदय में व्याप्त हो गया। उसने उनके ध्यान में बाधा उत्पन्न की, तो (शिवजी ने) क्रोध से तीसरा नेत्र खोला। सबको प्रलय जैसा जान पड़ा। ५६ अन्दर से प्रलयाग्नि निकल पड़ी।

मदन। मग शिव पाहे विचारून। पंचबाण व्यर्थ जाळिला। ५७ हा कार्यासी देवीं पाठविला। त्यां व्यर्थ जाळूनि भस्म केला। तों मदनस्त्री ते वेळां। रति आली धांवूनि। ५८ शिवापुढें रति सुंदरी। करुणस्वरें शोक करी। शिव म्हणे कृष्णाच्या उदरीं। पति तुझा जन्मेल। ५९ मग ते रति अरण्यांत। पतीलागीं शोक करीत। मृगयेसी आला शंबर दैत्य। रती तेथें देखिली। १६० म्हणे कोणाची तूं सुंदरी। एकली हिंडसी वनांतरीं। तूं माझी कन्या निर्धारीं। चाल माझिया मंदिरा। १६१ असो शंबराचिया घरीं। रति नित्य स्वयंपाक करी। शंबर तिचा विश्वास धरी। आपुली कन्या म्हणोनियां। ६२ इकडे हरि द्वारकेसी आला। पुढें रुक्मिणीसी गर्भ राहिला। तों सत्यभामेसी धाक उपजला। पुत्र होईल म्हणोनियां। ६३ मी बोललें वेणीचा पण। तो आतां आम्हांवरी येईल परतोन। जैसा आपुल्या सदनीं अग्न। आपणचि लावी मूर्खपणें। ६४ तंव नव मास भरतां पूर्ण। प्रसूत जाहली रुक्मिणी जाण। पोटासी आला पंचबाण। स्वरूपलावण्य कोण वर्णी। ६५ प्रद्युम्न उपजला जेव्हां। एकचि वाद्यघोष लागला तेव्हां। भांडार फोडूनि याचकां सर्वां। द्रव्य अपार वांटिलें। ६६

उसने कामदेव को जलाकर भस्म कर डाला। तब शिवजी ने सोचकर देखा (यह माना कि)— मैंने पंचबाण कामदेव को व्यर्थ जला डाला। ५७ इसे तो देवों ने अपने कार्य के लिए भेजा था; मैंने इसे व्यर्थ जलाकर भस्म कर डाला'। तो उस समय कामदेव की स्त्री रति दौड़ती हुई (वहाँ) आ गयी। ५८ सुन्दरी रति शिवजी के सामने करुण स्वर में शोक करने लगी। तो शिवजी बोले, 'तुम्हारा पति कृष्ण के यहाँ (पुत्र के रूप में) जन्म ग्रहण करेगा'। ५९ अनन्तर रति अरण्य में पति के लिए शोक करने लगी, तब शम्बर नामक दैत्य शिकार के लिए आ गया था। उसने वहाँ रति को देखा। १६० वह बोला, 'तुम किसकी सुन्दरी (स्त्री) हो? तुम अकेली वन के भीतर (क्यों) घूम रही हो? निश्चय ही तुम मेरी कन्या (के समान) हो —मेरे घर चलो'। १६१ अस्तु। (तदनन्तर) रति शम्बर के घर में (रहकर) नित्य रसोई बनाने लगी। उसे अपनी कन्या कहकर (मानकर) शम्बर ने उसके प्रति विश्वास धारण किया। ६२ इधर श्रीकृष्ण द्वारका आ गये। अनन्तर रुक्मिणी ने गर्भ धारण किया, तो सत्यभामा को (मन में) आतंक उत्पन्न हुआ कि उसके पुत्र हो जाएगा। ६३ मैंने वेनी को लेकर प्रण किया था, वह अब उलटकर हम पर गुजरेगा। (यह वैसे ही होगा) जैसे कोई मूर्खता से अपने ही घर में आग लगाता है। ६४ समझिए कि तब नौ मास पूर्ण होने पर रुक्मिणी प्रसूत हो गयी। उसके पंचबाण कामदेव (पुत्र-रूप में) जनमा। उसके रूप-लावण्य का कौन वर्णन कर सकेगा। ६५ जब प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ, तब अद्भुत वाद्यघोष

द्वारीं मंडप उभविले। श्रीकृष्णें पुत्रमुख पाहिलें। तें मदनस्वरूप देखिलें। उपमा न चले दूसरी। ६७ शिववरेंकरून। पोटासी आला पंचबाण। शिवें अनंग केला जाळून। तो हा प्रद्युम्न मूर्तिमंत। ६८ असो पांचवे दिवशीं श्रीकृष्ण। देवीचा नवस करावया पूर्ण। शक्तिवनासी जगज्जीवन। यादवांसहित गेला हो। ६९ नारद सत्यभामेच्या सदना आला। तिनें सर्व समाचार श्रुत केला। म्हणे रुक्मिणीसी पुत्र जाहला। कैसें करावें सांग पां। १७० म्हणे म्यां वेणीचा केला पण। मग हांसे कमलोद्भवनंदन। ज्यासी भूत भविष्य वर्तमान। सर्व ज्ञान ठाउकें। १७१ सत्यभामेसी म्हणे मुनीश्वर। मदनशत्रु असे शंबर। त्यासी हें वर्तमान समग्र। श्रुत करूं जाऊनियां। ७२ मग शंबराचिये मंदिरासी। नारद पावला वेगेंसीं। म्हणे तुझा मृत्यु द्वारकेसी। जन्मला असे जाण पां। ७३ विषवल्लीचा मोड लहान। आहे तों टाकावा खुडोन। लहान म्हणों नये कृशान। आधीं विझवून टाकावा। ७४ परम कपटी शंबर। द्वारावतिये आला सत्वर। रुक्मिणीच्या मंदिरांत तस्कर। गुप्तरूपें प्रवेशला। ७५ सूत्रधारी यादवेंद्र। करावया दैत्यांचा संहार। तेणें हें रचिलें मायाचरित्र। म्हणोनि शंबर

हो गया। भण्डार खोलकर समस्त याचकों को अपार धन बाँट दिया। ६६ श्रीकृष्ण ने द्वार पर मण्डप छवाये; उन्होंने पुत्रमुख को देखा; उस कामदेव के स्वरूप को देखा। (यहाँ पर किसी अन्य से) कोई दूसरी उपमा नहीं चलेगी (घटित होगी)। ६७ शिवजी के वर से पंचबाण कामदेव जनमा। शिवजी ने जिस (कामदेव) को जलाकर 'अनंग' बना डाला था, यह (बालक) प्रद्युम्न वही मूर्तिमान (कामदेव) था। ६८ अस्तु। पाँचवें दिन जगज्जीवन श्रीकृष्ण देवी की मनौती पूरी करने के लिए यादवों-सहित शक्तिवन में गये। ६९ (उधर) नारद सत्यभामा के सदन आये। उसने उनसे समस्त समाचार सुनकर जान लिया, तो वह बोली, 'रुक्मिणी के पुत्र हुआ, (अब) बताइए, कैसे करें'। १७० वह (फिर) बोली, 'मैंने बेनी के सम्बन्ध में प्रण किया था'। तब जिन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान के सम्बन्ध में समस्त ज्ञान विदित है, वे ब्रह्मनन्दन मुनि नारदजी हँसने लगे। १७१ मुनीश्वर नारद सत्यभामा से बोले, 'शम्बर कामदेव का शत्रु है; हम जाकर यह समस्त समाचार उसको सुना दें'। ७२ अनन्तर नारदजी वेगपूर्वक शम्बर के भवन पहुँच गये और बोले, 'जान लो कि तुम्हारी मृत्यु द्वारका में जनमी है। ७३ जब तक छोटा हो, तभी तक विषवल्ली के अंकुर को खोंट डालो। आग को छोटी न कहें, उसे पहले बुझा डालें'। ७४ (यह सुनते ही) परम कपटी शम्बर झट से द्वारावती आ गया और वह चोर रुक्मिणी के भवन में गुप्त रूप से प्रविष्ट हो गया। ७५ (वस्तुतः) यादवेन्द्र श्रीकृष्ण (सबके) सूत्रधार हैं। दैत्यों का संहार करने के हेतु

प्रवेशला । ७६ असो शंबरें उचलोनि बाळ । घेऊन गेला तात्काळ । परम सुंदर वेल्हाळ । जो भीमकीउदरीं जन्मला । ७७ दैत्य समुद्रतीरा आला सत्वर । चरणीं धरिला पंचशर । शंबर परम दुराचार । भवंडोनि सागरीं टाकिला । ७८ तें रुक्मिणीचें गर्भरत्न । मत्स्यें गिळिलें न लगतां क्षण । द्वारकेसी काय जाहलें वर्तमान । भीमकी जागी जाहली । ७९ पुढें न दिसेचि कुमर । जाहला एकचि हाहाकार । भीमकी शोक करी अपार । द्वारकानगर गजबजिलें । १८० तों शक्ति पूजोनि सत्वर । द्वारकेसी आला यदुकुलदिनकर । कुमर नेला तें कारण समग्र । अंतरीं कळलें तेधवां । १८१ देवाधिदेव यादवराय । सकळ जाणत्यांचा गुरु होय । परी लीलावेष अभिप्राय । ठायीं ठायीं संपादी । ८२ असो रुक्मिणीचिया मंदिराप्रती । येता जाहला वैकुंठपती । तंव ते शोक करिती लोकरीती । सकळ स्थिती जाणोनियां । ८३ बहुत तपें व्रताचरण । करितां देखिलें पुत्रनिधान । पूर्वकर्माचें फळ पूर्ण । प्राप्त जाहलें हें दिसे । ८४ अहा हारपलें दिव्य रत्न । माझें चोरूनि नेलें निधान । वंशवल्लीचें रोप उपडोन । कोणीं नेलें

उन्होंने इस मायाचरित्र की (लीला की) रचना की । इसलिए शम्बर (वहाँ) प्रविष्ट हो सका । ७६ अस्तु । शम्बर उस बालक को उठाकर तत्काल ले गया । वह बालक रुक्मिणी के गर्भ से जनमा था, वह परम सुन्दर सलोना था । ७७ वह दैत्य झट से समुद्र-तट पर आ गया । उसने कामदेव (प्रद्युम्न) के पाँव पकड़े थे । शम्बर तो परम दुराचारी था । उसने उसे घुमाते हुए सागर में फेंक दिया । ७८ रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न उस रत्न को एक मत्स्य ने क्षण न लगते निगल डाला । (इधर) द्वारका में क्या घटना हुई ? रुक्मिणी जग गयी । ७९ उसे पास में बालक नहीं दिखायी दिया, तो अद्‌भुत हाहाकार हो गया । रुक्मिणी अपार शोक कर रही थी । उससे द्वारका नगर में भय से खलबली मची । १८० तब यदुकुलसूर्य श्रीकृष्ण शक्तिदेवी का पूजन करके झट से द्वारका आ गये । उस समय उनको मन में वह समग्र कारण विदित हुआ, जिससे बालक को (चुराकर)ले जाया गया । १८१ यादवराज श्रीकृष्ण तो देवाधिदेव थे, समस्त ज्ञानियों के गुरु थे । फिर भी वे स्थान-स्थान पर विशिष्ट हेतु से लीला-वेश धारण किया करते थे । ८२ अस्तु । वैकुण्ठपति श्रीकृष्ण रुक्मिणी के भवन में आ गये । तब वे समस्त स्थिति को जानकर लोक-रीति के अनुसार शोक करने लगे । ८३ (रुक्मिणी बोली)— ‘बहुत तप और व्रतों का आचरण करने पर मैंने पुत्र रूपी धननिधि को देखा । यह दिखायी दे रहा है कि पूर्वकृत कर्म का यह पूर्ण फल प्राप्त हुआ है । ८४ अहा ! दिव्य रत्न खो गया । मेरे निधान को चुराकर (कौन) ले गया ? समझ में नहीं आ रहा है कि वंशवल्ली के पौधे को कौन उखाड़कर ले गया ? ८५

कळेना । ८५ यदुकुळीं दिव्य दीप लाविला । सर्वेचि कोण्या दुष्टें विझविला । पयोधरीं पान्हा फुटला । पाजूं कोणा ये वेळे । ८६ श्रीरंग म्हणे रुक्मिणी । तूं शोक सांडीं ये क्षणीं । पुन्हां पुत्र देखसी नयनीं । द्वादश वर्षांनंतरें । ८७ असो इकडे सागरीं पंचशर । टांकोनि गेला शंबर । मत्स्यें गिळिला कृष्णकुमार । तेथें श्रीधर रक्षी तया । ८८ जो अनंत ब्रह्मांडें रक्षिता । त्यासी पुत्र रक्षावया काय अशक्यता । जो मायाचक्रचाळिता । मायेपरता विश्वंभर । ८९ शुक्रशोणितांचे पुतळे । जननीजठरीं कोणें रक्षिले । नेत्रकर्णादि अवयव कोरिले । ठायींचे ठायीं कोणें हो । १९० जठराग्नि अन्न भस्म करी वेगें । परी त्या गर्भासी धक्का न लागे । तेथें उदरनिर्वाह श्रीरंगें । केला कैसा नेणे कोणीं । १९१ उपजलियावरी बाहेरी । जननीच्या वक्षःस्थळाभीतरी । दुग्धरस निर्माण करी श्रीहरी । कोणेपरी कळेना । ९२ नवछिद्र वपु भग्न । माजी वायुरूपें वसे प्राण । तो कदा न निघे मर्यादेविण । ऐसें करणें हरीचें । ९३ शरीरीं कैसा घातला प्राण । जातां कदा नव्हे दृश्यमान । सकळ करणांचा चाळक पूर्ण । याविण कोण दूसरा । ९४ ऐसा

(इधर) यदुकुल में दिव्य दीप प्रज्वलित किया, तो उसे साथ ही (तत्काल) किस दुष्ट ने बुझा डाला ? मेरे स्तन पन्हिया गये हैं, मैं इस समय किसे पिलाऊँ'। ८६ श्रीरंग बोले, 'तो रुक्मिणी, इस क्षण तुम शोक करना छोड़ दो (बन्द करो)। बारह वर्षों के पश्चात तुम पुत्र को फिर से देख पाओगी'। ८७ अस्तु। इधर शम्बर कृष्ण के पुत्र कामदेव (प्रद्युम्न) को सागर में फेंककर चला गया, तो एक मत्स्य ने उसे निगल डाला। वहाँ भी श्रीकृष्ण उसकी रक्षा कर रहे थे। ८८ जो अनन्त ब्रह्माण्डों के रक्षक हैं, जो मायाचक्र के चालक हैं, जो माया से परे हैं, विश्वम्भर हैं, उनके लिए अपने पुत्र की रक्षा करना क्या असम्भव है। ८९ माता के उदर में शुक्र और रक्त के पुतलों की रक्षा किसने की है ? वहाँ (उन पुतलों में) नेत्र, कर्ण आदि इन्द्रियों को (उचित) स्थान के स्थान (यथास्थान) किसने खराद लिये ? १९० जठराग्नि वेगपूर्वक अन्न को (जलाकर) भस्म कर देती है; फिर भी उस गर्भ को धक्का नहीं लगता। यह किसी ने नहीं जाना कि वहाँ (माता के उदर में) श्रीरंग ने (उस गर्भस्थ शिशु का) उदर-निर्वाह कैसे किया। १९१ यह समझ में नहीं आता कि (बालक के) पैदा होकर बाहर आते ही जननी के वक्षःस्थल के भीतर श्रीहरि किस प्रकार दुग्धरस का निर्माण करते हैं। ९२ श्रीहरि की ऐसी (अद्भुत) करनी है कि यह शरीर नौ छिद्रों से भग्न (जान पड़ता) है; (फिर भी) उसमें प्राण निवास करते हैं। वे मर्यादा को छोड़कर कभी बाहर नहीं निकलते। ९३ शरीर में प्राण कैसे डाल दिये ? उनके निकलते समय वे कभी भी दृश्यमान नहीं होते। समस्त इन्द्रियों का पूर्ण

जो सर्वनियंता। तेणें मत्स्योदरीं रक्षिलें मन्मथा। मत्स्यघ्नें तो अवचिता। जाळें घालोनि धरियेला।९५ परम तेजस्वी दिसे मीन। अंतरीं वसे मीनकेतन। मनीं भावी मत्स्यघ्न। हा रायासी नेऊन मत्स्य द्यावा।९६ मग तात्काळ तो मत्स्य नेऊनी। शंबरासी दिधला ते क्षणीं। दैत्य आश्चर्य करी मनीं। मीन देखोनि तेधवां।९७ मग रतीजवळी ते वेळे। मत्स्य पाठविला पाकशाळे। मत्स्यकलेवर तिनें चिरिलें। आंतूनि निघालें दिव्य बाळ।९८ जैसा बालसूर्य प्रकटला। तैसा स्वकांत रतीने देखिला। हर्षें निर्भर झाली बाला। म्हणे कैसें करूं आतां।९९ शंबरासी कळतां मात। तो मनीं मानील विपरीत। तंव नारदमुनि अकस्मात। गुप्तपणें प्रवेशला।२०० रतीसी म्हणे सावधान। तुझा भ्रतार हा ओळखें मदन। यासी करीं तूं बहुत जतन। कृष्णनंदन हा असे।२०१ नारदें रतीसी दिधला मंत्र। म्हणे हा तुजचि दिसेल किशोर। वरकडांसी नव्हे गोचर। ऐसा वर दीधला।२ कामधेनु नित्य येऊन। यासी करवील स्तनपान। ऐसें सांगोनि चतुर्मुखनंदन। स्वर्गपंथें पैं गेला।३ मग तो आपुला भ्रतार

संचालन करनेवाला इन (श्रीहरि) के अतिरिक्त और कौन है ? ९४ जो इस प्रकार सबका नियमन करनेवाले हैं, उन्होंने मत्स्य के उदर में कामदेव (प्रद्युम्न) की रक्षा की। एक मछुए ने अकस्मात जाल डालकर उसे पकड़ लिया। ९५ वह मत्स्य परम तेजस्वी दिख रहा था। (क्योंकि) उसके अन्दर मीनकेतन (कामदेव) निवास कर रहा था। उस मछुए ने मन में सोचा कि यह मत्स्य ले जाकर राजा को दे दें। ९६ तब उसने तत्काल उस मत्स्य को ले जाकर उसी क्षण शम्बर को प्रदान किया। तब उस मछली को देखकर दैत्य ने मन में आश्चर्य अनुभव किया। ९७ फिर उस समय उसने वह मछली रसोईघर में रति के पास भेज दी। उसने उस मछली के शरीर को चीर डाला, तो अन्दर से एक दिव्य बालक निकला। ९८ अपने पति को (बालक-रूप में) रति ने वैसे ही देखा, जैसे बालसूर्य प्रकट हुआ हो। वह स्त्री हर्षविभोर हो गयी। वह बोली, 'अब कैसे करूँ'? ९९ शम्बर को (इस सम्बन्ध में) बात (समाचार) विदित होने पर वह मन में विपरीत (बुरा) मानेगा। तब नारदमुनि (वहाँ) गुप्त रूप से अकस्मात प्रविष्ट हुए। २०० वे रति से बोले, 'सावधान। इसे अपना पति कामदेव जान लो। इसकी तुम बहुत रखवाली करना। यह श्रीकृष्ण का पुत्र है'। २०१ नारद ने रति को एक मंत्र दिया। वह बोले, 'वह तुम्हें ही किशोर (रूप में) दिखायी देगा; वह दूसरों को (दृष्टि-) गोचर नहीं होगा'। उन्होंने उसे ऐसा वर प्रदान किया। २ 'नित्य कामधेनु आकर इसे स्तनपान कराएगी'। ऐसा कहकर ब्रह्मनन्दन नारदजी स्वर्गमार्ग से चले गये। ३ अनन्तर रति अपने

निश्चितीं। पाळणां घालोनि हालवी रती। जैसा शुक्लपक्षीं रोहिणीपती। वाढे तैसा त्वरेनें। ४ द्वादश वर्षपर्यंत। रतीनें वाढविला मन्मथ। नारद क्षणक्षणां येत। सांभाळीत कृष्णसुता। ५ नारदें सुदिन पाहोन। तत्काळ लाविलें गांधर्वलग्न। आपुल्या हातें शेंस भरून। रतिमदनां ऐक्य केलें। ६ ऐसा कांहीं काळ लोटला। रतीसी तत्काळ गर्भ राहिला। तो शब्द बाहेरी प्रकटला। कर्णीं आला दैत्याच्या। ७ रतीनें गुप्त पुरुष आणूनी। भोगितां ज्ञाहली गर्भिणी। शंबराच्या मनीं क्रोधाग्नी। परम पेटला तेधवां। ८ मंत्रास्त्र धनुष्य बाण। नारदें मदनासी दिधले आणून। शंबरें दळभारेंसीं सिद्ध होऊन। रतिमंदिर वेढिलें। ९ रति ज्ञाहली भयभीत। म्हणे स्वामी आतां कैसा वृत्तांत। तुम्ही एकले दैत्य अद्भुत। थोर अनर्थ ओढवला। २१० तंव यदुकुलवर्धन कुमार। प्रचंडप्रतापी रणधीर। रतीसी म्हणे चिंता अणुमात्र। शुभवदने करूं नको। २११ पर्वताच्या दरीमधून। जैसा अकस्मात निघे पंचानन। द्वाराची अर्गळा हातीं कवळून। हांक देत प्रकटला। १२ काळेंचि काय फोडिली हांक। ऐकतां दचकलें दैत्यकटक।

पति को निश्चय ही पालने में रखकर झुलाती। जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्र बढ़ता जाता है, उसी प्रकार वह (बालक) शीघ्र गति से बढ़ता रहा। ४ बारह वर्ष तक रति ने कामदेव को (इस प्रकार) बढ़ा दिया, अर्थात लालन-पालन करते हुए बड़ा किया। नारदजी क्षण-क्षण आते थे और कृष्ण के उस पुत्र की देखभाल करते थे। ५ नारदजी ने शुभ दिन देखकर उनका गान्धर्व (पद्धति से) विवाह करा दिया। (फिर) अपने हाथों (उसके भाल पर) सिंदूर लगाकर (विवाह-विधि सम्पन्न कराते हुए) रति और कामदेव का मिलन करा दिया। ६ इस प्रकार कुछ काल बीत गया, तो रति को गर्भ रहा। वह बात बाहर प्रकट हो गयी और दैत्य (शम्बर) के कानों तक आ गयी। ७ 'रति गुप्त रूप से पुरुष को लाकर उससे उपभोग कराते हुए गर्भवती हो गयी।' —(ऐसा समाचार सुनने पर) उस समय शम्बर के मन में परम क्रोधाग्नि सुलग गयी। ८ तो नारदजी ने कामदेव को मंत्रास्त्र और धनुष-बाण दिये। (इधर) शम्बर ने सेनादल सहित सिद्ध होकर रति के भवन को घेर लिया। ९ तो रति भयभीत हो उठी और बोली, 'अब कैसी बात होगी। तुम अकेले हो और दैत्य अद्भुत (रूप से बलशाली) हैं। बड़ा संकट आ गया है'। २१० तब यदुकुल-वर्धन, प्रचण्ड प्रतापवान रणधीर कुमार (प्रद्युम्न) रति से बोला, 'अरी शुभवदना, अणुमात्र भी चिन्ता मत करो'। २११ जिस प्रकार पर्वत की घाटी में से अकस्मात कोई सिंह निकल आता हो, उसी प्रकार वह द्वार की अर्गला (अगरी) हाथ में दृढ़तापूर्वक पकड़कर चीखते-चिल्लाते हुए प्रकट हुआ। १२ (लगता था कि) क्या काल ही पुकार उठा है? उसे सुनते ही

शुष्क वनांत पावक। भीमकीतनुज प्रकटला। १३ पवनगती फिरे पंचशर। अर्गळाघातेंकरी वीरांचा चूर। जैसे बहुत अजांचे भार। एकला व्याघ्र विभांडी। १४ शंबर म्हणे रे तस्करा। कां हिंडतोसी सैरावैरा। ऐसें ऐकतांचि सत्वरा। धनुष्य सज्जिलें पंचबाणें। १५ वर्म लक्षूनियां शंबर। सोडी शरापाठीं शर। परी नाटोपे पंचशर। पंचवक्त्रशत्रु तो। १६ केलें बहुत शस्त्रांचें प्रेरण। तृणाऐसें भस्म करी मदन। युद्ध केलें सप्त दिन। सेना संपूर्ण आटिली। १७ आधींच कृष्णाचें वीर्य विशेष। त्याहीवरी नारदाचा उपदेश। दैत्यप्राण घ्यावया निःशेष। दिव्य बाण घेतला। १८ धनुष्य ओढूनि आकर्ण। पंचशरें सोडिला बाण। शंबराचें शिर छेदून। आकाशपंथ उडविलें। १९ जाहला एकचि जयजयकार। वृंदारक वर्षती पुष्पसंभार। जयवंत जाहला कृष्णकुमर। वाद्यगजर लागले। २२० संगें घेऊनि दळभार। दिव्य रथीं आरूढे कृष्णकुमर। रतीसी रथीं बैसवोनि सत्वर। द्वारावतिये चालिला। २२१ द्वारकेजवळी आला मदन। वाद्यगजरें गाजे गगन। पुढें पाठविले बंदीजन। श्रीकृष्णासी सांगावया। २२

दैत्य सेना चौंक उठी। (मानो दैत्य दल रूपी) सूखे वन में रुक्मिणी-तनुज प्रद्युम्न रूपी अग्नि प्रकट हो गयी। १३ कामदेव वायुगति से घूमता रहा। वह अगरी के आघात से वीरों को चूरचूर करता जाता था, जैसे अकेला बाघ भेड़ों के बहुत झुण्डों को मार डालता है। १४ (यह देखकर) शम्बर बोला, 'अरे तस्कर, क्यों मनमाना इधर-उधर घूम रहा है?' ऐसा सुनते ही कामदेव ने झट से धनुष सुसज्जित किया। १५ मर्मस्थान को लक्ष्य करके शम्बर बाण पर बाण चला रहा था; फिर भी पंचमुख शिवजी का शत्रु कामदेव रोका नहीं जा सका। १६ (शम्बर ने) बहुत शस्त्रों का चालन किया; फिर भी कामदेव ने उन्हें घास जैसे जलाकर भस्म कर डाला। उसने सात दिन युद्ध किया। (तब तक शम्बर की) समस्त सेना नष्ट हो गयी। १७ पहले ही (उसमें) कृष्ण का विशेष (रूप में तेजस्वी) वीर्य था। तिसपर (उसे) नारदजी का उपदेश (प्राप्त हुआ) था। उसने उस दैत्य के प्राणों को निःशेष रूप से लेने के हेतु एक दिव्य बाण निकाल लिया। १८ धनुष (की डोरी) को कान तक खींचकर कामदेव ने बाण चला दिया और उससे शम्बर के मस्तक को छेदकर आकाशमार्ग पर उड़ा दिया। १९ तो अद्‌भुत जयजयकार हुआ। देवों ने फूलों की राशियाँ बरसा दीं। कृष्ण-कुमार प्रद्युम्न विजयी हो गया, तो वाद्यों का गर्जन होने लगा। २२० साथ में सेना को लेकर कृष्णकुमार दिव्य रथ में आरूढ़ हो गया। उस रथ में रति को झट से बैठाकर वह द्वारावती की ओर जाने लगा। २२१ (जब) कामदेव प्रद्युम्न द्वारका के पास आ गया, तो वाद्यों के गर्जन से आकाश गूँज उठा। उसने बन्दीजनों

श्रीकृष्णासी सांगती हेर। विजयी होऊनि तुमचा कुमर। भेटावया आला सत्वर। रतीसहित श्रीकृष्णा। २३ उग्रसेन उद्धव अक्रूर। भोगींद्र आणि यादवेंद्र। सहित प्रजा दळभार। आले बाहेर भेटावया। २४ जैसा कृष्ण तैसा प्रद्युम्न। किरीटकुंडलें घनश्यामवर्ण। चतुर्भुज पीतवसन। दुसरा श्रीकृष्ण लोक म्हणती। २५ प्रद्युम्नें साष्टांग नमस्कार घातला। सप्रेम श्रीकृष्णासी भेटला। उग्रसेनवसुदेवें आलिंगिला। बळिभद्रादि सर्व यादवीं। २६ नारदें तत्काळ येऊन। सांगितलें सर्व वर्तमान। मग रतीसी हातीं धरून। भीमकीसदना चालिला। २७ रुक्मिणीच्या घरीं गोपिका। मिळाल्या सकळ कृष्णनायिका। तों रतिसहित मदन देखा। समीप देखिला समस्तीं। २८ गोपींसी कैसें भासत। कीं नूतन स्त्री घेऊनि कृष्णनाथ। आला भाविती समस्त। रुक्मिणीसी वाटे तैसेंचि। २९ भीमकी सरसावी अंचळ। तों मदनें धरिलें चरणकमळ। श्रीकृष्णही आला तत्काळ। घननीळ मग बोले। २३० पुत्रासी भेटे रुक्मिणी। अश्रु लोटले तिचे नयनीं। पान्हा फुटला निजस्तनीं। हृदयीं धरिलें मदनातें। २३१ सासूसासरियां ते वेळे।

को श्रीकृष्ण को बताने के लिए आगे भेज दिया। २२ गुप्तचरों ने (भी) श्रीकृष्ण से कहा, 'हे श्रीकृष्ण, आपका पुत्र विजयी होकर आपसे मिलने के लिए रति-सहित शीघ्रता से आ रहा है'। २३ तो उग्रसेन, उद्धव, अक्रूर, भोगीन्द्रावतार बलराम और यादवेन्द्र कृष्ण प्रजा और सेना-सहित (नगर के) बाहर उससे मिलने के लिए आ गये। २४ जैसे श्रीकृष्ण थे, वैसा ही प्रद्युम्न था। उस प्रद्युम्न को (देखकर) लोगों ने किरीट-कुण्डल धारण किया हुआ, घनश्याम वर्णवाला, चतुर्भुज, पीताम्बरधारी दूसरा श्रीकृष्ण कहा। २५ प्रद्युम्न ने साष्टांग नमस्कार किया, और वह प्रेमपूर्वक कृष्ण से मिला। (अनन्तर) उग्रसेन, वसुदेव, बलभद्र आदि समस्त यादवों ने उसका आलिंगन किया। २६ नारद ने तत्काल आकर समस्त समाचार कहा। तब रति (के हाथ) को हाथ से थामकर वह रुक्मिणी के सदन की ओर चला गया। २७ (इधर) रुक्मिणी के घर में गोपिकाएँ तथा समस्त कृष्ण-नायिकाएँ इकट्ठा हुई थीं। देखिए, तो उन्होंने रति-सहित कामदेव को समीप (आते हुए) देखा। २८ गोपियों को वह कैसे आभासित हुआ? सबको जान पड़ा कि कृष्णनाथ किसी नयी स्त्री को लेकर आ गये हैं। रुक्मिणी को वैसे ही प्रतीत हुआ। २९ रुक्मिणी ने (मर्यादाभाव से) आँचल खींच लिया, तो कामदेव प्रद्युम्न ने उसके चरणकमलों को पकड़ लिया। घननील श्रीकृष्ण भी तत्काल (वहाँ) आ गये। तब वे बोले। २३० 'रुक्मिणी अपने पुत्र से मिलो'। तो उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये। उसके स्तन पन्हिया गये। उसने कामदेव को गले लगा लिया। २३१ उस समय रति ने सास और ससुर को तथा (अन्य) सबको

समस्तांसी रतीनें नमस्कारिलें। मग दिव्य मंडप उभे केले। भीमकीचें द्वारीं तेधवां। ३२ भांडार फोडिलें बहुत। याचक सुखी केले समस्त। तों नवमास भरतां प्रसूत। रति जाहली संभ्रमें। ३३ बाळ जाहला सुकुमार। अनिरुद्ध नाम ठेवी यदुवीर। तोही घनश्याम सुंदर। मदनावतार दूसरा। ३४ श्रीकृष्ण मदन अनिरुद्ध। तिघांचें एकचि रूप प्रसिद्ध। ऐसा द्वारकेमाजी ब्रह्मानंद। आनंदकंद नांदतसे। ३५ सोळा सहस्र कृष्णनायिका। तितुक्यांसही पुत्र जाहले देखा। दहा पुत्र एक कन्यका। समसमान सर्वांतें। ३६ एक लक्ष साठ सहस्र। श्रीकृष्णासी जाहले पुत्र। द्वारकेसी सोहळा निरंतर। पुत्रोत्साह होतसे। ३७ तितुक्या पुत्रांचीं मौंजीबंधनें। करूनियां नारायणें। देशोदेशींचे नृप कन्यारत्नें। आणोनि देती तयांसी। ३८ सोळा सहस्र कुमारी। तितुक्यांसी वर पाहोनि देत मुरारी। नित्य सोहळा घरोघरीं। नाना प्रकारें होतसे। ३९ कुटुंबवत्सल जगज्जीवन। नित्य नित्य सोहळा नूतन। इंद्रादि देव संपूर्ण। त्रिकाळ येती दर्शना। २४० पूर्णावतार श्रीरंग। जो क्षीराब्धिजाहृदयपद्मभृंग। पूर्ण ब्रह्मानंद निःसंग।

नमस्कार किया। तब रुक्मिणी के द्वार पर उस समय दिव्य मण्डप छवा लिये। ३२ बहुत भण्डार खोल दिये। समस्त याचकों को दान देकर सुखी (प्रसन्न) किया। तो नौ मास पूरे होने पर रति सम्मानपूर्वक प्रसूत हो गयी। ३३ उसके एक सुकुमार पुत्र उत्पन्न हुआ। यदुवीर श्रीकृष्ण ने उसका नाम 'अनिरुद्ध' रखा। वह भी घनश्याम था, सुन्दर था। (मानो) कामदेव का दूसरा अवतार था। ३४ श्रीकृष्ण, कामदेव प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तीनों का एक(-सा) ही सुविख्यात रूप था। इस प्रकार द्वारका में आनन्दकन्द ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) सुखपूर्वक निवास करने लगे। ३५ श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र स्त्रियाँ थीं। देखिए, उन सभी के पुत्र हो गये —सबके (प्रत्येक के) दस (-दस) पुत्र तथा एक-एक कन्या —सम-समान उत्पन्न हुए। ३६ (इस प्रकार) श्रीकृष्ण के एक लाख साठ सहस्र पुत्र हुए। द्वारका में अनवरत पुत्र-जन्मोत्सव का समारोह चल रहा था। ३७ नारायण श्रीकृष्ण ने उतने ही पुत्रों की जनेऊ-विधि सम्पन्न की तो देश-देश के राजाओं ने अपने-अपने कन्यारत्न लाकर उनको (विवाह में) प्रदान किये। ३८ मुरारि श्रीकृष्ण के सोलह सहस्र कन्याएँ थीं। उन्होंने उतनी ही (सभी) को (सुयोग्य) वरों की खोज करके (विवाह में) दिया। घर-घर में नित्य नाना प्रकार से आनन्दोत्सव हो रहा था। ३९ जगज्जीवन कृष्ण (इस प्रकार) कुटुम्ब-वत्सल हो गये थे। उनके यहाँ नित्य-नित्य नये-नये आनन्दोत्सव होते थे। इन्द्र आदि समस्त देव तीनों काल उनके दर्शन के लिए आ जाते थे। २४० श्रीकृष्ण पूर्णावतार थे। (वस्तुतः) जो क्षीरसागर कन्या लक्ष्मी के हृदय-कमल के

द्वारावतिये पातला। २४१ हरिविजयग्रंथ हाचि कस्तूरी। सुवासें निजभक्तांसी तृप्त करी। परम सभाग्य ते वंदिती शिरीं। अहोरात्र न विसंबिती। ४२ निंदक सदा वटवटती परम। जे परम अपवित्र दर्दुर। परदोषकर्दमीं लोळणार। कस्तूरी साचार नावडे त्यां। ४३ या मृगमदाचे भोक्ते भाग्यवंत। ज्या घरीं दैवी संपत्ति विराजित। त्यांसी हरिविजयग्रंथ आवडत। कायावाचामनेंसीं। ४४ ब्रह्मानंदा भक्तवत्सला। मन्मथजनका तमालनीळा। श्रीधरवरदा अतिनिर्मळा। अभंगा अढळा जगद्गुरो। ४५ इति श्रीहरिविजयग्रंथ। संमत हरिवंश भागवत। प्रेमळ पंडित परिसोत। सप्तविंशतितमाध्याय गोड हा। २४६

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

लिए भ्रमर-स्वरूप (भगवान विष्णु) थे, जो आनन्द-स्वरूप ब्रह्म थे, निःसंग थे, वे द्वारावती में अवतार ग्रहण करके आ गये थे। २४१

श्रीहरि-विजय नामक यही ग्रन्थ (मानो) कस्तूरी है; वह अपनी सुगन्ध से भगवान के अपने भक्तों को तृप्त करता है। जो उसका सिर से वन्दन करते हैं, जो दिन-रात उसका विस्मरण नहीं होने देते, वे परम भाग्यवान हैं। २४२ निन्दक सदा अपार बकते रहते हैं। जो (निन्दक रूपी) परम अपवित्र मेंढक हैं, वे दूसरे के दोष रूपी कीचड़ में लोटते-पोटते रहेंगे। उनको सचमुच कस्तूरी नहीं भाती। ४३ इस कस्तूरी के भोक्ता भाग्यवान होते हैं। जिन (के) घरों में दैवी सम्पत्ति विराजमान हो, उनको काया-वाक्-मन से श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ प्रिय लगता है। ४४ हे आनन्द-स्वरूप ब्रह्म (-स्वरूप गुरु ब्रह्मानन्द), हे भक्त-वत्सल, हे कामदेव के पिता, हे तमालनील, हे श्रीधर कवि को वरदान देनेवाले, हे अतिनिर्मल, हे अभंग, हे अविचल, हे जगद्गुरु। २४५

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक एक ग्रन्थ श्रीहरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवतपुराण से सम्मत है। प्रेममय पण्डित उसके इस मधुर सत्ताईसवें अध्याय का श्रवण करें। २४६

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२८

[ऊषा-अनिरुद्ध-विवाह]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय श्रीरंगा उदारा। पीतवसना

श्रीगणेशाय नमः। हे श्रीरंग, हे उदार (-चरित), हे पीताम्बर-धारी, हे कौस्तुभ मणि-धारी, हे मेघवर्ण, हे कोमल शरीर वाले, हे गदाधर,

कौस्तुभधरा। अंबुदवर्णा कोमलशरीरा। गदाधरा सुपर्णवहना। १ मन्मथजनका मधुसूदना। मुरसंहारा मनमोहना। अनंगदहना आनंदसदना। अरविंदनयना आदिपुरुषा। २ कलियुगीं श्रेष्ठ साधन सुगम। श्रीहरि तुझें एक नाम। योग याग तप धर्म। सिद्धि नवजे साधितां। ३ कृतयुगीं ध्यानें प्राप्ती। त्रेतायुगीं महामख करिती। द्वापारीं राजोपचारें पूजा करिती। तुज समर्पिती श्रीवल्लभा। ४ कलियुगीं नामसंकीर्तन। हरि तुज आवडे मनींहून। तुझ्या नामीं विश्वास ठेवून। भक्तजन वर्तती। ५ क्रतु करावे विधियुक्त पूर्ण। तेथें उभें ठाके नसतें विघ्न। द्रव्याविरहित भक्तजन। तुझें नामधन रक्षिती। ६ करावें जरी तप अनुष्ठान। तरी कलियुगीं अन्नगत प्राण। यालागीं भक्त निर्वाण। नामीं विश्वास ठेविती। ७ करावें तीर्थाटन बहुत। शरीर अशक्त न चले पंथ। यालागीं भगवद्भक्त। नामअर्थ विचारिती। ८ करावें जरी वेदशास्त्रपठण। तों आधिव्याधि

हे गरुड़वाहन, जय हो, जय हो। १ हे मन्मथ अर्थात कामदेव (के अवतार प्रद्युम्न) के पिता, हे मधुसूदन, हे मुर दैत्य के संहारक, हे मनमोहन, हे कामदेव को जलानेवाले शिवजी के लिए आनन्द के सदन-स्वरूप, हे कमल-नयन, हे आदिपुरुष, (जय हो, जय हो)। २ हे श्रीहरि, कलियुग में (मुक्ति की प्राप्ति करने का सबसे) एक सुगम साधन है तुम्हारा नाम। योग, (यज्ञ-) याग, तप, धर्म से साधना करने पर सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती। ३ कृत अर्थात सत्ययुग में (तुम्हारी वा मुक्ति की) प्राप्ति ध्यान से होती थी। त्रेतायुग में उसके लिए महायज्ञ करते थे। द्वापरयुग में राजोपचार से, अर्थात छत्र, चामर आदि के साथ राजोचित उपचारों से (उसके लिए) पूजन करते थे और हे लक्ष्मी-वल्लभ, (सब कुछ) तुम्हारे समर्पित करते थे। ४ हे हरि, कलियुग में (अपने) नाम का संकीर्तन (जप, स्मरण, महिमा-गान आदि) तुम्हें मनःपूर्वक अच्छा लगता है। (अतः) तुम्हारे नाम का विश्वास करके भक्तजन आचार-व्यवहार करते हैं। ५ यज्ञ विधियुक्त पूर्ण करने चाहिए; परन्तु उसमें (उनके सम्पन्न करने में) अनचाहा विघ्न खड़ा हो जाता है (आ जाता है)। (यज्ञ के लिए धन चाहिए; परन्तु) धन से रहित (होने पर भी) भक्तजन तुम्हारे नाम रूपी धन की रक्षा करते हैं। ६ यदि तप, कोई अनुष्ठान करें, तो कलियुग में प्राण तो अन्नगत हो गये हैं (अन्न हो, तो ही प्राण शरीर में रह सकते हैं)। इसलिए अन्त में भक्त (तुम्हारे) नाम का ही विश्वास करते हैं। ७ यदि बहुत तीर्थाटन करें, तो शरीर शक्ति-हीन हो जाता है, उससे मार्ग पर चला नहीं जाता। इसलिए भगवद्भक्त नाम रूपी अर्थ का विचार करते हैं। ८ यदि वेदों और शास्त्रों का पठन करने लगें, तो दारुण आधि-व्याधियाँ पीड़ित करती हैं। इसलिए सद्भक्त रात-दिन नाम-स्मरण करते

पीडिती दारुण। यालागीं सद्भक्त यामिनीदिन। नामस्मरण करिताती। ९ म्हणोनि सर्वांत तुझें नाम सार। हा विद्वज्जनीं केला निर्धार। तुझ्या नामीं जे विन्मुख नर। तेचि पामर आत्मघाती। १० सत्ताविसावा अध्याय संपतां तेथें। शंबर दैत्य वधूनि मन्मथें। रतिसहित आला द्वारकेतें। मग अनिरुद्ध जन्मला। ११ तो श्रीकृष्णाचा पौत्र। जैसा शुक्लपक्षीं वाढे चंद्र। तैसा दिवसेंदिवस झाला थोर। उदार धीर शूर पैं। १२ यावरी शोणितपुरनगरीं। बाणासुर प्रतापें राज्य करी। तो शिववरें उर्वीवरी। कोणा समरीं नाटोपे। १३ पूर्वीं हिरण्यकश्यप दितिनंदन। त्याच्या उदरीं प्रल्हादरत्न। त्याचा पुत्र बिरोचन। बळी त्यापासूनि जाहला। १४ बळीचा पुत्र बाणासुर। जो दैत्यांमाजी म्हणवी इंद्र। शिवप्रसादें भुजा सहस्र। पावला तो बलाढच पैं। १५ नित्य सहस्र कमळें आणूनी। शिवार्चन करी प्रीतीकरूनी। प्रतिदिनीं बिमानारूढ होवोनी। शिवदर्शना जाय तो। १६ शिवें आपुला

हैं। ९ इसलिए विद्वज्जनों ने यह निर्णय किया है कि तुम्हारा नाम सबमें श्रेष्ठ है। जो लोग तुम्हारे नाम से विमुख होते हैं, वे ही पामर (जन) आत्मघाती होते हैं। १० सत्ताईसवें अध्याय के समाप्त होते-होते वहाँ (उसमें) कहा है कि कामदेव प्रद्युम्न शम्बर दैत्य का वध करके रति-सहित द्वारका आ गया। अनन्तर अनिरुद्ध जनमा। ११ श्रीकृष्ण का वह (अनिरुद्ध नामक) पोता जसे शुक्लपक्ष में चन्द्र बढ़ता जाता है, वैसे ही दिन-ब-दिन बढ़ते हुए बड़ा, उदार (प्रभावशाली), धीर, शूर हो गया। १२ इसके पश्चात (अब यह कहना है कि) शोणितपुर (नामक) नगर में बाणासुर प्रताप-पूर्वक राज कर रहा था। वह शिवजी के वरदान से पृथ्वी पर युद्ध में किसी के द्वारा भी वश में नहीं किया जाता था (पराजित नहीं किया जाता था)। १३ पूर्वकाल में दिति के हिरण्यकशिपु नामक पुत्र हुआ। उसके प्रह्लाद नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र था विरोचन। उससे बलि (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ। १४ बलि का पुत्र था बाणासुर, जो दैत्यों में (अपने-आपको) इन्द्र (अर्थात इन्द्र के समान प्रतापी राजा) कहलाता था। उस बलशाली (दैत्य) ने शिवजी की कृपा (रूपी प्रसाद) से एक सहस्र हाथ प्राप्त किये। १५ वह नित्य एक सहस्र कमल लाकर प्रीतिपूर्वक शिवजी का पूजन करता था। वह प्रतिदिन विमान में आरूढ़ होकर शिवजी के दर्शन के लिए जाता था। १६ एक सहस्र हाथों से युक्त बाणासुर को शिवजी ने अपना वरद-पुत्र[1] कहलवा लिया था। पूर्वकाल

[1] वरदपुत्र बाणासुर— बाणासुर ने पूजन द्वारा शिवजी को प्रसन्न कर लिया। एक बार शिवपुत्र स्कन्ध को देखकर वह हर्ष-विभोर हुआ। तो उसे यह अभिलाषा हुई कि उसके समान मुझे भी शिवपुत्र माना जाए। तब उसने उग्र तपस्या करके शिवजी से यह वरदान माँग लिया, 'पार्वतीजी मुझे कार्तिकेय के समान अपना पुत्र ♦

वरदपुत्र । म्हणविला तो सहस्रकर । जैसा पूर्वीं सहस्रार्जुन वीर । किंवा दिनकर दूसरा । १७ जैसा पूर्वीं प्रतापी रावण । तैसाचि द्वापारीं बलोन्मत्त बाण । त्याच्या पोटीं उखा निधान । दिव्य कन्या जाहली । १८ परम सुंदर चातुर्यखाणी । पद्मनेत्री सुवर्णवर्णी । चित्ररेखा तिची सांगातिणी । प्राणाहूनि आवडे । १९ चित्ररेखेसमवेत देखा । नित्य विमानीं बैसोनि उखा । पूजावयालागीं अंबिका । शिवलोकाप्रति जाय । २० षोडशोपचारें पूजन । उखा करी स्वकरेंकरून । करी जगदंबेचें स्तवन । मागुती येत स्वनगरा । २१ ऐसें असतां एके दिनीं । सारीपाट खेळतां शिवमृडानी । तों उखा आली तेचि क्षणीं । कर जोडूनि उभी पुढें । २२ मनामाजी उखा

में जैसा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन[1] वीर पुरुष था, वैसा ही वह सहस्रकर बाणासुर था; अथवा वह मानो दूसरा सूर्य ही था । १७ पूर्वकाल में (त्रेतायुग में) रावण जैसा प्रतापी था, वैसा ही बल से उन्मत्त द्वापरयुग में बाण था । उसके ऊषा (उखा, ओखा नामक) धन-निधि-सी दिव्य कन्या हो गयी । १८ वह परम सुन्दर थी, चातुर्य की खान थी; कमल-नयना, सुवर्ण-वर्णा थी । चित्ररेखा उसकी सखी थी, जो उसे प्राणों से भी प्यारी लगती थी । १९ देखिए, नित्य चित्ररेखा-सहित विमान में बैठकर ऊषा देवी अम्बिका (पार्वती) का पूजन करने के लिए शिवलोक के प्रति जाती थी । २० ऊषा अपने हाथों से सोलह उपचारों-सहित जगदम्बा का पूजन करती, उसकी स्तुति करती और फिर अपने नगर आ जाती थी । २१ इस प्रकार चलते रहते एक दिन शिवजी और पार्वती चौसर खेल रहे थे । तो उसी क्षण ऊषा (वहाँ) आ गयी । वह हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़ी हो गयी । २२ ऊषा मन में यह विचार कर रही थी कि बिना पति के जीवित रहना व्यर्थ

♦ मानें ' । शिवजी ने ' तथास्तु ' कहा । इस प्रकार वरदान से पुत्र के समान माना जानेवाला शिवजी का यह मुँहबोला पुत्र वरदपुत्र कहलाया । (अधिक जानकारी के लिए देखिए— टिप्पणी २, पृ० ५०, अध्याय १) ।

१ कार्तवीर्य सहस्रार्जुन— हैहयाधिपति कृतवीर्य नामक राजा ने चतुर्थी व्रत सम्पन्न करते समय जमुहाई ली, परन्तु उसके प्रायश्चित्त रूप में यथाविधि आचमन नहीं किया; अतः उसके जो एक पुत्र जनमा, वह कर-विहीन था । इससे उसके माता-पिता बहुत दुःखी थे । तदनन्तर श्रीदत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त मंत्र से उन्होंने बारह वर्ष गणेशजी की उपासना की । प्रसन्न होकर उन्होंने उस पुत्र की देह को सुन्दर बनाते हुए उसे एक सहस्र हाथ भी प्रदान किये । तबसे यह पुत्र सहस्रार्जुन, सहस्रकर कहाने लगा । कृतवीर्य का यह पुत्र ' कार्तवीर्य ' भी कहा जाता था । इसने कर्कोटक नाग की राजधानी माहिष्मती अथवा भोगावती को जीत लिया; तो भगवान दत्त और नारायण ने इसका अभिषेक सम्पन्न किया । इसने रावण तथा अनेक राजाओं को पराजित किया; सैकड़ों यज्ञ करके फलस्वरूप एक ध्वज और एक रथ प्राप्त किया । तदनन्तर राज्यश्री से उन्मत्त होकर यह प्रजा को उत्पीड़ित करने लगा । फलस्वरूप भगवान विष्णु ने परशुरामावतार ग्रहण करके अन्य क्षत्रियों-सहित इसका वध किया ।

भावीत। भ्रताराविण जिणें व्यर्थ। सारीपाट भ्रतारासमवेत। खेळेन मी कधीं ऐसी। २३ म्हणोनि श्वासोच्छ्वास टाकीत। भवानीसी कळला वृत्तांत। म्हणे उखे तुज वर होईल प्राप्त। केवळ मन्मथ दूसरा। २४ वैशाख शुद्ध द्वादशीस। जो स्वप्नीं देखसी दिव्य पुरुष। तो तुझा वर विशेष। प्रतापी पूर्ण ओळखें। २५ ऐसा वर हिमनगनंदिनी। देती झाली उखेलागोनी। येरी मस्तक ठेवी चरणीं। आनंद मनीं न समाये। २६ मग तें बाणाचे हृदयरत्न। अपर्णेची पूजा करून। निघाली विमानीं बैसोन। आज्ञा घेऊनि दुर्गेची। २७ उखा पावली स्वमंदिर। तंव कैलासा गेला बाणासुर। प्रीतीनें पूजोनि मृडानीवर। स्तवन अपार करीतसे। २८ जय पंचवदनां विरूपाक्षा। विश्वंभरा कर्माध्यक्षा। भक्तवल्लभा सर्वसाक्षा। मायाचक्रचाळका। २९ गंगाधरा हिमनगजामाता। गजास्यजनका विश्वनाथा। विष्णुवल्लभा प्रतापवंता। त्रिपुरांतका त्रिलोचना। ३० विशाळभाळ कर्पूरगौरा। नीलग्रीवा सुहास्यवक्त्रा। दक्षमखदलना विश्वेश्वरा। गजांतका स्मरारे। ३१ हे भव भवांतका भवानीवरा।

है; मैं तो पति के साथ इस प्रकार चौसर कब खेलूँगी। २३ इस प्रकार कहकर (सोचते हुए) वह साँस लेने लगी (उसने आह भरी)। (इधर) भवानी को यह बात विदित हुई। वह बोली, 'ऊषा, तुझे वर प्राप्त होगा; वह निश्चय ही दूसरा कामदेव होगा। २४ वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन जिस दिव्य पुरुष को तू स्वप्न में देखेगी, उसे अपना विशेष पूर्ण प्रतापवान वर जान ले'। २५ हिमालय-नन्दिनी पार्वती ने ऊषा को ऐसा वर दिया, तो उसने अपना मस्तक उसके चरणों में रखा। उसके मन में आनन्द नहीं समा रहा था। २६ अनन्तर दुर्गा पार्वती का पूजन करके बाण के हृदय के लिए रत्न-सी वह कन्या ऊषा आज्ञा लेते हुए विमान में बैठकर वहाँ से निकली। २७ ऊषा अपने घर आ गयी। तब बाणासुर कैलास पर गया। उसने पार्वती-पति शिवजी का प्रीतिपूर्वक पूजन करके उनकी (इस प्रकार) अपार स्तुति की। २८ 'जय हो हे पंचवदन, हे विरूपाक्ष, हे विश्वम्भर, हे कर्माध्यक्ष (सबके कर्मों का नियमन करनेवाले), हे भक्त-वल्लभ, हे सर्वसाक्षी, हे मायाचक्र के चालक, हे गंगाधर, हे हिमालय के जामाता, हे गजानन के पिता, हे विश्वनाथ, हे विष्णु-वल्लभ, हे प्रतापवान, हे त्रिपुर का नाश करनेवाले, हे त्रिलोचन, हे विशाल भाल से युक्त, हे कर्पूरगौर, हे नीलकण्ठ, हे सुहास्यवदन, हे दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करनेवाले, हे विश्वेश्वर, हे गजान्तक,[1] हे स्मर (कामदेव) के शत्रु, हे भव, हे भवान्तक

---

१ गजान्तक शिवजी— महिषासुर के 'गज' नामक पुत्र हुआ। उसने तपस्या द्वारा शिवजी को प्रसन्न करके अमरत्व का वरदान प्राप्त किया। यह तारकासुर का सैनिक था। फिर भी उसने शिवजी के हाथों मृत्यु को प्राप्त होने की इच्छा अभिव्यक्त॥

भोगिभूषणा महाभयहरा। हे भर्ग भक्तजनप्रियकरा। अंधकसंहारा वृषभध्वजा। ३२ ऐसी ऐकोनियां स्तुती। संतोषला कैलासपती। म्हणे बाणा माग निश्चितीं। वर अपेक्षित असेल जो। ३३ मग वदे बाणासुर। मज भुजांचा वाटतो भार। त्यांचें सार्थक होय समग्र। ऐसा झुंजार देईं कां। ३४ शिव म्हणे रे तामसा। काय वर मागितला ऐसा। कर्मानुसार बुद्धि सहसा। न टळेचि काळत्रयीं। ३५ तुझ्या ध्वजस्तंभींचा शिखी पाहीं। उन्मळोनि पडेल महीं। महाझुंजार ते समयीं। तुजशीं युद्धा भिडेल। ३६ नगरा परतोनि येत बाण। कुंभक प्रधान परम निपुण। त्यासी सांगे वर्तमान। शिवें वर दिधला जो। ३७ प्रधान म्हणे अहा राया। काय वर मागितला वायां। जैसें आपुल्या सदना लवलाह्या। आपणचि अग्न लाविला। ३८ पाषाण थोर बांधोनि पायीं। उडी टाकिली महाडोहीं।

(सांसारिक ताप आदि का नाश करनेवाले), हे भवानीवर, हे भोगी-भूषण (सर्प-भूषण), हे महाभय का हरण करनेवाले, हे भर्ग, हे भक्तजनों का प्रिय (हित) करनेवाले, हे अन्धक[1] का संहार करनेवाले, हे वृषभध्वज, (जय हो, जय हो)'। २९-३२ इस प्रकार की स्तुति सुनकर कैलास-पति शिवजी सन्तुष्ट हुए और बोले, 'हे बाण, जो वर अपेक्षित हो, वह अवश्य माँग लो'। ३३ तब बाणासुर बोला, 'मुझे अपने हाथ बोझ प्रतीत हो रहे हैं। (अर्थात उन हाथों से लड़ने के लिए सुयोग्य प्रतिद्वन्द्वी के अभाव में मेरे हाथ मेरे लिए बोझ जैसे जान पड़ते हैं।) उनका पूरा-पूरा सार्थक हो जाए, ऐसा योद्धा (लाकर) देना'। ३४ शिवजी बोले, 'अरे तामस, ऐसा क्या वर माँग लिया? कर्म के अनुसार बुद्धि तीनों कालों में बिलकुल नहीं टलती। ३५ देखो, जब तुम्हारे ध्वजस्तम्भ पर स्थित मोर[2] उखड़कर भूमि पर गिर जाएगा, उस समय कोई महान योद्धा तुमसे युद्ध के लिए भिड़ जाएगा'। ३६ (तदनन्तर) बाण अपने नगर लौटा। उसका कुम्भक नामक परम निपुण मंत्री था। उसने उससे उस वर के सम्बन्ध में बात कही, जो शिवजी ने उसे दिया था। ३७ (उस पर) मंत्री बोला, 'हे राजा, व्यर्थ ही क्या (कैसा) वर माँग लिया? जैसे अपने घर में स्वयं

---

‡ की थी। अन्ततः उनके त्रिशूल से आहत होकर इसकी मृत्यु हुई। इसकी इच्छा के अनुसार 'गजान्तक' शिवजी ने इसकी 'कृत्ति' अर्थात 'चर्म' को धारण किया और अपने लिए 'कृत्तिवासस्' नाम स्वीकार किया। गजासुर का वध काशी में हुआ, अतः काशी के शिवलिंग को 'कृत्तिवासेश्वर' भी कहते हैं।

१ अन्धक— देखिए टिप्पणी १, पृ० ५३१, अध्याय १९।

२ ध्वज पर मयूर— पार्वती द्वारा बाणासुर को कार्तिकेय के समान अपना पुत्र मानने पर, शिवजी ने उसे कार्त्तिकेय के जन्मस्थान का रक्षक नियुक्त किया और प्रसन्नतापूर्वक तेजस्वी ध्वज और वाहन मयूर प्रदान किया। उस ध्वज में मयूराकृति अंकित थी। उस मयूरचिह्न में मुखाकृति मोर की न थी, मनुष्य-मुख-सी थी।

सर्प धरूनि लवलाहीं। दंश आपण करविला। ३९ जाणतां जाणतां विष। बळेंचि घेतला कैसा ग्रास। मैंदाचिया गृहीं वास। हठेंचि केला जाऊनि। ४० असो इकडे उखा लावण्यराशी। चिंताक्रांत अहर्निशीं। तंव वैशाख शुद्ध द्वादशी। जवळी आली तेधवां। ४१ उखेनें शृंगारिलें मंदिर। लेइलीं अलंकारवस्त्रें सुंदर। दिव्य मंचकीं ते सुकुमार। पहुडली साक्षेपें। ४२ तंव स्वप्न देखिलें ते वेळां। एक पुरुष दिव्य आला। जैसा मन्मथाचा पुतळा। संभोग केला उखेसीं। ४३ उखेसी न वाटे ऐसें। कीं हें स्वप्न देखतसें। गोष्टी करी रतिरसें। बोलतसे ओसणतां। ४४ म्हणे प्राणेश्वरा गोष्टी ऐका। मज टाकूनि जाऊं नका। जवळी ऐके चित्ररेखा। जें जें उखा बोलतसे। ४५ सवेंचि अरुणोदय होत। उखा जाहली जागृत। तंव शेजे नाहीं प्राणनाथ। घाबरी पाहे चहूंकडे। ४६ म्हणे उभे उभे प्राणनाथा। मज सांडूनि कोठें जातां। म्हणोनि द्वाराजवळी तत्वतां। धांवत आली पाहावया। ४७ तंव कोठेंचि न दिसे कांहीं। म्हणे चित्ररेखे करूं काई।

ही (आप ने) आग लगायी हो। ३८ अथवा पाँव में बड़ा पत्थर बाँधकर बड़े दह में छलाँग लगायी हो, अथवा सर्प को पकड़कर झट से स्वयं (अपने आपको) दंश करवाया हो। ३९ विष को जानकर भी जान-बूझकर उसका बलात् कौर ग्रहण किया हो, अथवा बटमार के घर में जाकर हठपूर्वक निवास किया हो'। ४० अस्तु। इधर लावण्यराशि ऊषा दिन-रात चिन्ता से व्याकुल रहती थी। तो उस समय वैशाख शुक्ल द्वादशी निकट आ गयी। ४१ ऊषा ने अपना घर सजा लिया; सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहन लिये। वह सुकुमारी दिव्य मंचक पर जान-बूझकर पौढ़ी। ४२ तब उसने उस समय एक सपना देखा— एक दिव्य पुरुष वहाँ आ गया —जैसे वह कामदेव का पुतला हो। उसने ऊषा के साथ सम्भोग किया। ४३ ऊषा को ऐसा नहीं जान पड़ा कि मैं यह सपना देख रही हूँ। वह प्रेमरस से भरी-पूरी होकर उससे बातें करने लगी। वह नींद ही में बोल रही थी। ४४ वह बोली, 'हे प्राणेश्वर, मेरी बात सुनिए। मुझे छोड़कर न जाइए'। जो-जो ऊषा बोल रही थी, उस-उसको पास में (ही) चित्ररेखा सुन रही थी। ४५ साथ ही अरुणोदय हुआ, तो ऊषा जग गयी। तब (उसने देखा कि) प्राणनाथ शय्या पर नहीं थे, तो घबड़ाकर वह चारों ओर देखने लगी। ४६ वह बोली, 'हे प्राणनाथ, खड़े रहिए, खड़े रहिए (रुक जाइए, रुक जाइए)। मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?' —ऐसा कहकर वह सचमुच दरवाज़े के पास दौड़कर उसे देखने के लिए (खोजने के लिए) आ गयी। ४७ तब कहीं भी कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। तो वह बोली, 'री चित्ररेखा, (अब) मैं क्या करूँ?' उस समय (मारे दुःख के) वह छाती पीटने

हृदय पिटी ते समयीं। टाकीत महीं शरीर पें। ४८ चित्ररेखा म्हणे सुंदरी। काय जाहलें सांग झडकरी। म्हणोनि सांवरोनि पुढें धरी। अश्रु पुसिले नेत्रींचे। ४९ उखा म्हणे चारी प्रहर। शेजेवरी होता प्राणेश्वर। रूप आठवतें मनोहर। तोचि सत्वर दावीं कां। ५० शोधितां गे चराचर। ऐसा पुरुष नाहीं सुंदर। परम चतुर सुकुमार। जैसा रतिवर दूसरा। ५१ जातात गे माझे प्राण। लौकरी दावीं त्याचें वदन। ऐसें बोलतां मूर्च्छा येऊन। निचेष्टित पडियेली। ५२ मग शीतल उपचार ते अवसरीं। करूनि केली सावध ते सुंदरी। म्हणे मी चित्रें लिहितें भिंतीवरी। त्रिभुवनींचीं प्रत्यक्ष। ५३ त्यामाजी तुझा प्राणेश्वर। ओळखोनि सांगें सत्वर। तोचि आणीन क्षणमात्र। न लागतां तुजजवळी। ५४ नारदाच्या दयेकरून। मज असे त्रिभुवनींचें ज्ञान। ऐसें उखेनें ऐकोन। धरी चरण तियेचे। ५५ मग चित्रशाळा सुंदर सुरेख। सतेज मुक्तांचा करूनि पंक। भिंती लिंपोनियां देख। घोंटूनि सुढाळ केलिया। ५६ सप्त रंगांचीं भरूनि पात्रें। सिद्ध केलीं

लगी। उसने भूमि पर देह को लुढ़का दिया। ४८ (तब) चित्ररेखा बोली, 'अरी सुन्दरी, झट से बता तो दो कि क्या हुआ'। ऐसा कहते हुए उसने उसे सम्हालकर अपने आगे अर्थात हृदय से लगाया और उसके नयनों के आँसू पोंछ लिये। ४९ तो ऊषा बोली, 'मेरे प्राणेश्वर (मेरे पास) चार पहर शय्या पर थे। उनका मनोहर रूप मुझे याद आता है। झट से उन्हीं को दिखा दो। ५० अरी, चराचर (में) खोजने पर भी ऐसा सुन्दर पुरुष (कहीं अन्य) नहीं होगा। वह परम चतुर, सुकुमार है, जैसे दूसरा रतिपति कामदेव हो। ५१ अरी, मेरे प्राण जा रहे हैं। (इसलिए) झट से उसका मुख दिखा दो'। ऐसा बोलते-बोलते मूर्च्छा के आने से वह गिरकर अविचल हो गयी। ५२ अनन्तर उस समय शीतल उपचार करके चित्ररेखा ने उस सुन्दरी को सचेत किया। वह बोली, 'मैं भित्ति पर त्रिभुवन के (पुरुषों के) चित्र प्रत्यक्ष अंकित करती हूँ। ५३ उनमें से अपने प्राणेश्वर को पहचानकर झट से बता दो, तो मैं क्षण मात्र न लगते उसी को तुम्हारे पास ले आऊँगी। ५४ नारदजी की दया से मुझे त्रिभुवन का ज्ञान (प्राप्त) है'। ऐसा सुनकर ऊषा ने उसके पाँव पकड़े। ५५ तब (वहाँ) एक सुन्दर सुघड़ चित्रशाला थी। देखिए, उसने तेजस्वी मोतियों का गारा बनाकर उसे घोंट-घोंटकर, उसकी भित्तियों को लीपते-पोतते हुए सुन्दर बना लिया। ५६ उसने सातों रंगों[1] से पात्र भरकर क्षण मात्र में सिद्ध किये। (फिर) चित्ररेखा अन्तर्दृष्टि से (सुन्दर-सुन्दर पुरुषों को) देखकर (-देखकर उन भित्तियों पर उनके)

---

१ सप्त रंग : लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, कत्थई और जामुनी। ये रंग मुख्य माने जाते हैं।

क्षणमात्रें। चित्ररेखा लिही चित्रें। अंतर्दृष्टीं विलोकूनि। ५७ प्रथम लिहिला गजवदन। ब्रह्मतनया रेखिली पूर्ण। मग नारदाचें स्वरूप लिहून। केलें नमन तयासी। ५८ वैकुंठलोक समस्त। रेखिला चित्रीं रमाकांत। कैलासगिरि अद्भुत। अपर्णेसहित शंकर। ५९ ब्रह्मलोक लिहिला विचित्र। त्रिदशांसहित सहस्त्रनेत्र। गण गंधर्व यक्ष किन्नर। विद्याधर काढिले। ६० मरुद्गण पितृगण देख। एकादश रुद्र द्वादशार्क। अष्ट वसु पितृलोक देख। देव अर्यमादिक मुख्य ते। ६१ अष्ट दिक्पाळ लोकसमवेत। ऋषिमंडळी लिहिली समस्त। सप्त पाताळें भोगींद्रासहित। रेखूनियां दावीतसे। ६२ जितुकीं दाविलीं उखेप्रती। ते म्हणे यांत नाहीं प्राणपती। मग भूमंडळींचे नृपती। चित्रीं रेखीत चित्ररेखा। ६३ नव खंडें सप्त द्वीपें। छप्पन्न देशींच्या रायांचीं स्वरूपें। संतमहंतांचीं सद्रूपें। रेखिलीं कविगुरुव्यासादि। ६४ रचना दाविली समस्त। उखा म्हणे न दिसे येथ।

चित्र अंकित करने लगी। ५७ (सबसे) पहले उसने गणेश (का चित्र) अंकित किया। (फिर) ब्रह्माकुमारी सरस्वती को पूर्ण रूप से रेखांकित किया। अनन्तर नारद का रूप चित्रित करके उन्हें नमस्कार किया। ५८ समस्त वैकुण्ठलोक को दिखाते हुए उस चित्र में रमाकान्त भगवान विष्णु को अंकित किया। अद्भुत कैलास गिरि को चित्रित करके अपर्णा-सहित शिवजी को रेखांकित किया। ५९ विचित्र (रूप धारी) ब्रह्मलोक चित्रित किया। (समस्त) देवों-सहित इन्द्र और गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, विद्याधर-गण चित्रित किये। ६० देखिए, मरुद्गण और पितृगण, एकादश रुद्र, बारह सूर्य। देखिए आठों वसु और पितृलोक को, उन अर्यमा आदि मुख्य देवों को[1]। ६१ लोकों-सहित आठों दिक्पालों, समस्त ऋषि-मण्डली को चित्रित किया। उसने भोगीन्द्र शेष-सहित सातों पातालों[2] को रेखांकित करके दिखाया। ६२ उसने ऊषा को जितने चित्र दिखाये, उन्हें देखकर वह बोली, 'इनमें (मेरा) प्राण-पति (प्राणेश्वर) नहीं है'। तब चित्ररेखा भू-मण्डल के राजाओं को चित्रों में अंकित करने लगी। ६३ उसने नवों खण्डों, सातों द्वीपों, छप्पनों देशों के राजाओं के स्वरूप को, सन्त-महन्तों के

१ एकादश रुद्र : देखिए टिप्पणी २, पृ० ८१, अध्याय ३।

बारह सूर्य : देखिए टिप्पणी २, पृ १८८, अध्याय ७।

अष्ट वसु : देखिए टिप्पणी २, पृ १४२, अध्याय ५।

अष्ट दिक्पाल : पुराणों के अनुसार आठ दिशाओं के पालक-रक्षक आठ देवता हैं जिन्हें 'दिक्पाल' कहते हैं। ये दिक्पाल हैं— इन्द्र (पूर्व), अग्नि (आग्नेय), यम (दक्षिण), नैऋत (नैऋत्य), वरुण (पश्चिम), कुबेर वा सोम (उत्तर), वायु (वायव्य), ईश (ईशान्य)।

२ सप्त पाताल : देखिए टिप्पणी १, पृ० १४६, अध्याय ५।

आतां मी प्राण देतें गे सत्य। चित्ररेखे जाण पां। ६५ म्हणोनि भूमीवरी अंग घाली। चित्ररेखेनें सांवरिली। म्हणे सखे द्वारका एक राहिली। चित्रीं लिहितें हें पहा। ६६ मग ते द्वारावती रेखीत। सप्तदुर्गें गगनचुंबित। भोंवता समुद्र उचंबळत। गोमती वाहत समीप पैं। ६७ वसुदेव देवकी उग्रसेन। उद्धव अक्रूर रेवतीरमण। छप्पन्न कोटी यादव लिहून। स्वरूपें संपूर्ण दाविलीं। ६८ सोळा सहस्र अंतःपुरें। रत्नखचित दिव्य मंदिरें। उखा पाहत आदरें। स्वरूपें सर्व न्याहाळूनि। ६९ मग रुक्मिणीसहित श्रीकृष्ण। चित्रीं लिहिला जगन्मोहन। चतुर्भुज सुहास्यवदन। किरीटकुंडलें मंडित। ७० चित्ररेखा म्हणे उखे। हा होय काय ओळखें। येरी म्हणे याच्या वंशींचा देखें। होय ऐसें वाटतें। ७१ मग चित्रीं लिहिला प्रद्युम्न। श्यामसुंदर कृष्णनंदन। हा सासरा होय म्हणोन। उखा लज्जित जाहली। ७२ मग म्हणे याच्याचि उदरीं देखें। अवतरला तो चित्ररेखे। म्हणे सखे हा

और कविगुरु (वाल्मीकि), व्यास आदि को रेखांकित किया[1]। ६४ उस समस्त (चित्र-) रचना को जब चित्ररेखा ने दिखाया तो ऊषा बोली, 'इनमें वह नहीं दिखायी दे रहा है। (अतः) अरी चित्ररेखा, जान लो, मैं अब सचमुच प्राण त्यज देती हूँ'। ६५ ऐसा कहकर उसने भूमि पर अपनी देह को लुढ़का दिया, तो चित्ररेखा ने उसे सम्हाल लिया और कहा, 'सखी, एक द्वारका रह गयी है। यह देखो, मैं उसे चित्र में अंकित कर देती हूँ'। ६६ अनन्तर उसने द्वारावती का चित्रण किया। (उसमें) गगन को (मानो) चूमनेवाले सात दुर्ग थे; चारों ओर समुद्र उमड़ रहा था। पास में गोमती नदी बहती थी। ६७ उसने वसुदेव, देवकी, उग्रसेन उद्धव, रेवती-पति बलराम, छप्पन करोड़ यादवों को चित्रित करते हुए उनके सम्पूर्ण रूप दिखा दिये। ६८ (उन चित्रों में) सोलह सहस्र (एक सौ) अन्तःपुर थे; रत्न-जटित दिव्य प्रासाद थे। ऊषा ने उन समस्त रूपों को आदरपूर्वक निरखकर देखा। ६९ तब (चित्ररेखा ने) रुक्मिणी-सहित चतुर्भुजधारी, सुहास्य-वदन, किरीट-कुण्डलों से विभूषित जगन्मोहन श्रीकृष्ण को चित्र में अंकित किया। ७० (तदनन्तर) चित्ररेखा बोली, 'ऊषा, क्या यह वह (तुम्हारा प्राणेश्वर) है? पहचान लो'। तो वह बोली, 'देखो, ऐसा लगता है कि इनके वंश का वह हो सकता है'। ७१ तब उसने चित्र में श्याम-सुन्दर कृष्णनन्दन प्रद्युम्न को रेखांकित किया, तो ऊषा इसलिए (उसे देखकर) लज्जा को प्राप्त हो गयी कि यह (उसका अपना) ससुर है। ७२ तब वह बोली, 'देखो, चित्ररेखा, इसके (सन्तान-रूप में)

---

१ नव खण्ड : देखिए टिप्पणी ४, पृ० १४२, अध्याय ५।
सात द्वीप : देखिए टिप्पणी ५, पृ० १४२, अध्याय ५।
छप्पन देश : देखिए टिप्पणी १, पृ० १४३, अध्याय ५।

तरी ओळखें। म्हणोनि अनिरुद्ध काढिला। ७३ देखतांचि मदनकुमर। म्हणे हाचि प्राणेश्वर। आतां तो भेटवीं सत्वर। न धरवे धीर माझेनि। ७४ चित्ररेखा म्हणे स्थिर माये। आतां तो आणितें लवलाहें। मग चित्ररेखा द्वारावतीये। निराळमार्गें चालिली। ७५ अकरा सहस्र योजनें दूर। तेथूनि असे द्वारकापुर। यामिनी होतां दोन प्रहर। द्वारकेजवळी पातली। ७६ द्वारका देखोनि नयनीं। आश्चर्य करी पूर्ण मनीं। तों अकस्मात नारदमुनी। अंतरिक्षें भेटला। ७७ दृष्टीं देखिला गुरुनाथ। केला साष्टांग प्रणिपात। सांगितला सर्व वृत्तांत। नारदाप्रति तेधवां। ७८ म्हणे द्वारकेभोंवतें सुदर्शन भोंवे। डोळ्यांचें पातें जंव लवे। तों एकवीस आवर्तनें स्वभावें। होती तेथें स्वामिया। ७९ तेथें माझा प्रवेश नव्हे सर्वथा। अनिरुद्धही न ये हाता। जाणोनि पुढील भविष्यार्था। विरिंचिपुत्र बोलतसे। ८० माझें करीं तूं स्मरण। तुज वाट देईल सुदर्शन। मोहनमंत्र तयेलागून। नारद देता जाहला। ८१ याचि मंत्रेंकरून। अनिरुद्धावरी घालीं मोहन। मंचका सहित उचलोन। वेगीं नेईं शोणितपुरा। ८२ चित्ररेखा निघाली आज्ञा घेऊन। तों पुढें भोंवतें सुदर्शन। म्हणे तुज

वह अवतरित हुआ होगा'। तो अनिरुद्ध का चित्र अंकित करके वह बोली, 'सखी, इसे तो पहचान लो'। ७३ कामदेव (प्रद्युम्न) के उस पुत्र को देखते ही वह बोली, 'ये ही प्राणेश्वर हैं। अब इन्हें झट से मिला दो; मुझसे धीरज नहीं धरा जाता'। ७४ तो चित्ररेखा बोली, 'अरी मैया, शान्त रह जाओ। मैं उसे अब झट से लाती हूँ'। तब चित्ररेखा आकाशमार्ग से द्वारावती की ओर चली गयी। ७५ वहाँ से द्वारकापुर ग्यारह योजन दूर था। दो पहर रात होते-होते वह द्वारका के पास पहुँच गयी। ७६ द्वारका को आँखों से देखकर उसने मन में पूर्णतः आश्चर्य अनुभव किया; तो नारद मुनि अकस्मात उससे अन्तरिक्ष में मिल गये। ७७ उसने गुरुनाथ नारद को आँखों से देखा, तो उनसे साष्टांग नमस्कार किया और उनसे तब समस्त समाचार कहा। ७८ वह बोली, 'द्वारका के चारों ओर सुदर्शन चक्र घूम रहा है। हे स्वामी, जब तक आँख की पलक (एक बार) झपती है, तब तक वहाँ उसके स्वाभाविक (रूप से, गति से) इक्कीस आवर्तन (फेरे) हो जाते हैं। ७९ वहाँ मेरा बिलकुल प्रवेश नहीं हो पाएगा— तो अनिरुद्ध भी हाथ नहीं आएगा'। आगे की होनी को जानकर ब्रह्मा के पुत्र (नारद) बोले। ८० 'तुम मेरा स्मरण करो, तो सुदर्शन तुम्हें मार्ग देगा'। (फिर) नारद ने उसे मोहन मंत्र प्रदान किया। ८१ (वे बोले—) 'इसी मंत्र से अनिरुद्ध पर मोहिनी डालो और उसे पलंग-सहित उठाकर वेगपूर्वक शोणितपुर ले जाओ'। ८२ (तदनन्तर) चित्ररेखा उनसे आज्ञा लेकर निकली (और आगे बढ़ी) तो

नारदाची आण। मार्ग देईं मजलागीं। ८३ मग सुदर्शन स्थिर राहत। चित्ररेखा प्रवेश आंत। अनिरुद्धाच्या सदनांत। अकस्मात उतरली। ८४ तों दिव्य मंदिरीं मदनकुमर। दिव्य तल्प मणिमय विचित्र। त्यावरी निजला महावीर। निमासुरवदन पैं। ८५ देखोनि चित्ररेखा निवाली। म्हणे धन्य धन्य ते वेल्हाळी। ऐसा दिव्य पुत्र प्रसवली। प्रभा सदनीं न माये। ८६ मग गुरुमंत्र जपोनि देखा। तत्काळ उचलिलें तल्पका। तळहातीं घेऊनि चित्ररेखा। अंतरिक्षें जात असे। ८७ अकरा सहस्र योजनें मार्ग। क्रमूनि घटिकेंत सवेग। तों उखा मंदिरीं सुरंग। शृंगारूनि वाट पाहे। ८८ तों अकस्मात मंचक घेऊनी। सखी आली देखे नयनीं। धांवोनि चित्ररेखेचे चरणीं। मिठी घाली उखा ते। ८९ म्हणे तुज उतराई। काय होऊं ये समयीं। मग दोघींनीं मंचक लवलाहीं। मंदिरांत पैं नेला। ९० मग मोहन काढूनि त्वरित। सावध केला मन्मथसुत। येरू घाबरा चहूंकडे पाहत। तंव बोलत चित्ररेखा। ९१ मग सर्व वृत्तांत ते वेळां। मदनपुत्रासी सांगीतला। म्हणे भवानीवर उखेसी जाहला। म्हणोनि आणिलें तुज येथें। ९२ मग उखेनें दिव्य माळा। अनिरुद्धाच्या तत्काळ गळां।

(देखा कि) सामने सुदर्शन घूम रहा है। वह बोली, 'तुम्हें नारद की शपथ है, मुझे मार्ग दे देना'। ८३ तब सुदर्शन अचल हो गया; (तब) चित्ररेखा ने (द्वारका के अन्दर) प्रवेश किया और वह अचानक अनिरुद्ध के सदन में उतर गयी। ८४ तब उस दिव्य भवन में रत्नमय विचित्र (अद्‌भुत) पलंग पर वह सुन्दरवदन महावीर कामदेव-पुत्र (अनिरुद्ध) सोया हुआ था। ८५ उसे देखकर चित्ररेखा सन्तुष्ट हुई और (मन-ही-मन) बोली 'धन्य है, धन्य है वह सुन्दरी जिसने ऐसे दिव्य पुत्र को जन्म दिया'। उसकी कान्ति उस सदन में नहीं समा रही है। ८६ तब, देखिए, उसने गुरु-मंत्र का जाप करके तत्काल पलंग को उठा लिया। उसे करतल पर लिये हुए चित्ररेखा अन्तरिक्ष से चली गयी। ८७ तब ऊषा भवन में पलंग सजाकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। तो उसने अपनी आँखों से देखा कि ग्यारह सहस्र योजन मार्ग एक घड़ी में वेगपूर्वक तय करके सखी पलंग को लिये हुए, अकस्मात आ गयी है। तो ऊषा दौड़कर चित्ररेखा के चरणों में लिपट गयीं। ८८-८९ वह बोली, 'इस समय मैं तुमसे ऋण-मुक्त क्या (कैसे) हो सकती हूँ?' तब वे दोनों झट से उस मंचक को भवन के अन्दर ले गयी। ९० फिर मोहिनी (मंत्र के प्रभाव) को हटाकर उसने झट से कामदेव के उस पुत्र को सचेत किया, तो वह घबड़ाकर चारों ओर देखने लगा। तब चित्ररेखा बोली। ९१ तब उसने उस समय कामदेव (प्रद्युम्न) के पुत्र (अनिरुद्ध) को समस्त समाचार बता दिया और कहा, 'भवानी अर्थात पार्वती का वर ऊषा को प्राप्त हुआ, इसलिए मैं

घालूनियां परम मंगळा। गांधर्वलग्न लाविलें। ९३ धरूनि उखेचा हात। मंचकीं पहुडे मदनसुत। चारी मासपर्यंत। सुखसोहळा भोगिला। ९४ कोणासी न कळे बाहेर। तों उखा जाहली गरोदर। सभेसी बैसला बाणासुर। तंव ध्वनि जाहली अंतरिक्षीं। ९५ म्हणे बाणा आतां सावधान। आलें तुज महाविघ्न। तंव ध्वजस्तंभींचा मयूर उलथोन। भूमीवरी पडिला हो। ९६ तंव रायासी सांगती परिचारिका। गरोदर झाली तुमची उखा। गुप्त एक पुरुष देखा। आणोनि ठेविला दामोदरीं। ९७ ऐकतांचि ऐसें वचन। दैत्येंद्र कोपला जैसा प्रळयाग्न। पुढें उभा कुंभक प्रधान। म्हणे वेढा सदन उखेचें। ९८ कोण असे वरता तस्कर। बांधोनि आणा तो सत्वर। धांवले महावीरांचे भार। वेढिलें मंदिर उखेचें। ९९ उखा परम चिंताक्रांत। भयें चळचळां कांपत। कामसुताचे चरण धरीत। म्हणे घात थोर म्यां केला। १०० मी तुमची केवळ वैरिणी। संकटीं घातलें आणोनी। जैसा राजहंस नेऊनी। पंकगर्तेंत बुडविजे। १ अग्नींत घातलें दिव्य मुक्ताफळ। कूपांत कोंडिला मृगेंद्र सबळ। सुधारस आणोनि निर्मळ।

तुम्हें यहाँ लायी हूँ'। ९२ अनन्तर ऊषा ने परम मंगल दिव्य माला अनिरुद्ध के गले में तत्काल पहना दी और (इस प्रकार) गान्धर्व (पद्धति से) विवाह किया। ९३ (अनन्तर) ऊषा का हाथ थामकर कामदेव-पुत्र पलंग पर पौढ़ गया। (तब से) उन्होंने चार महीनों तक सुख-समारोह (सुख) का उपभोग किया। ९४ यह बाहर किसी को विदित नहीं हुआ। तो ऊषा गर्भवती हुई। (एक दिन) बाणासुर सभा में बैठा था, तो अन्तरिक्ष में यह ध्वनि (आकाशवाणी) हुई। ९५ वह बोली, 'हे बाण, अब सावधान हो जाओ। तुम्हारे लिए महान संकट आ गया है'। तब ध्वज-स्तम्भ पर स्थित मोर उखड़कर भूमि पर गिर पड़ा। ९६ तब परिचारिकाओं ने राजा से कहा, 'आपकी ऊषा गर्भवती हुई है। देखिए एक गुप्त पुरुष को (अर्थात एक पुरुष को गुप्त रूप से) लाकर उसने अन्तःपुर में रखा है'। ९७ ऐसी बात को सुनते ही वह दैत्यराज प्रलयाग्नि जैसा क्रुद्ध हो उठा। उसके सामने कुम्भक नामक मंत्री खड़ा था। उससे (बाण ने) कहा, 'ऊषा के सदन को घेर लो। ९८ वहाँ कौन चोर है? उसे झट से बाँधकर ले आओ'। (यह सुनते ही) महावीरों के दल दौड़े और उन्होंने ऊषा के भवन को घेर लिया। ९९ (यह जानकर) ऊषा परम चिन्तातुर हो उठी। वह भय से थर्राहट के साथ काँपने लगी। उसने कामदेव-प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध के पाँव पकड़े और कहा, 'मैंने बड़ा धोखा दिया। १०० मैं तुम्हारी केवल बैरन हो गयी हूँ। तुम्हें (यहाँ) लाकर संकट में डाल दिया, जैसे राजहंस को कोई ले जाकर कीचड़ की खाईं में डुबो दे। १०१ (मानो मैंने) आग में दिव्य मोती डाल दिया;

भस्मगर्तेत ओतिला। २ ऐसी मी परम पापिणी। तुमचा घात केला आणूनी। आतां माझा वध आधीं करूनी। मग बाहेरी जाइंजे। ३ मग बोले मीनकेतनपुत्र। उखे भय न धरीं अणुमात्र। आम्ही यादववीर अनिवार। श्रीकृष्णबळें पृथ्वीवरी। ४ जेणें नखाग्रीं धरिला गोवर्धन। द्वादश गांवें गिळिला अग्न। अघ बक केशी विभांडून। मथुरापुर घेतलें। ५ जरासंध सप्तदश वेळ। बांधोनि आणिला जेणें सबळ। रजनीमाजी मथुरा सकळ। द्वारकेसी आणिली। ६ चैद्यमागधांसी त्रासूनी। जेणें आणिली मन्मथजननी। नरक मर्दूनि नितंबिनी। सोळा सहस्र आणिल्या। ७ ऐसा तो यदुकुळार्क। माझिया जनकाचा जनक। त्याच्या कृपेनें सकळिक। दळें आटीन पाहें पां। ८ ऐसें अनिरुद्ध बोलत। तों भोंवता पडिला सैन्याचा आवर्त। एक उखेचें कपाट मोडीत। आरोळ्या दैत्य फोडिती। ९ उखे उघडीं गे द्वार। आंत घेऊनि बैसलीस चोर। ऐसें ऐकतां रतिपुत्र। प्रतापशूर उठावला। ११० जवळी शस्त्र नाहीं निश्चितीं। दारींची अर्गळा घेतली हातीं। उपरी चढला उखापती। सैन्य क्षितीं विलोकीतसे। १११

कुएँ में बलवान सिंह को बन्द कर दिया; निर्मल अमृतरस लाकर भस्म-भरे गड्ढे में उँड़ेल दिया। २ मैं ऐसी परम पापिनी हूँ। (तुम्हें यहाँ) लाकर मैंने तुम्हारा विनाश कर डाला। (अतः) अब पहले मेरा वध करके फिर बाहर जाना'। ३ तब कामदेव का पुत्र अनिरुद्ध बोला, 'ऊषा, अणु मात्र तक भय धारण न करो। हम यादववीर श्रीकृष्ण के बल से पृथ्वी में दुर्धर्ष हैं। ४ जिन्होंने अपने नख की नोक पर गोवर्धन पर्वत को उठाकर रख लिया, जिन्होंने बारह योजन (फैली हुई) अग्नि को निगल डाला, जिन्होंने अघ, बक, केशी (जैसे असुरों) को छिन्न-भिन्न करके मथुरापुर को (जीत) लिया, जो बलवान जरासन्ध को सत्रह बार आबद्ध कर ले आये, जो रात के अन्दर समस्त मथुरा को द्वारका ले आये, जो चैद्य जरासन्ध और मगधपति शिशुपाल को उत्पीड़ित करके कामदेव-प्रद्युम्न की जननी को अर्थात रुक्मिणी को (हरण करके) लाये, जो नरकासुर का मर्दन करके सोलह सहस्र (एक सौ) नारियों को ले आये, ऐसे वे यदुकुल-सूर्य (श्रीकृष्ण) मेरे पिता (प्रद्युम्न) के पिता हैं। देखो, उनकी कृपा से मैं समस्त दलों को नष्ट कर डालूँगा'। ५-८ इस प्रकार अनिरुद्ध द्वारा बोलते रहते समय, उस (भवन) के चारों ओर सेना का घेरा पड़ गया। कुछ एक (सैनिक) ऊषा के (भवन के) द्वार को तोड़ने लगे। दैत्य (उस समय) चीखते-चिल्लाते थे। ९ (वे बोले—) 'अरी ऊषा, दरवाजा खोलो। अन्दर चोर को लेकर तुम बैठी हो'। ऐसा सुनते ही रतिपुत्र प्रतापशूर अनिरुद्ध (लड़ने के लिए) सिद्ध हो गया। ११० उसके पास निश्चय ही कोई शस्त्र नहीं था। इसलिए ऊषा के उस पति ने दरवाज़े

उदयाचळावरी बालदिनकर। तैसा दिसे मदनकुमर। उडी घातली सत्वर। सैन्यसागरीं तेधवां। १२ कीं देखोनियां दंदशूक। अकस्मात कोसळ खगपाळक। चपळेऐसा तळपे देख। अर्गळा हातीं घेऊनियां। १३ अर्गळाघातेंकरून। वीरांचीं मस्तकें करी चूर्ण। अश्वांसहित वीरकंदन। एकसरें मांडिलें। १४ प्रतापार्क अनंगनंदन। गजकलेवरें केलीं चूर्ण। तीन कोटी वीर झोडून। प्रेतें करून पाडिलीं। १५ केला बहुतांचा संहार। जाहला एकचि हाहाकार। वीर म्हणती कोपला प्रळयरुद्र। तेणेंचि अवतार धरियेला। १६ एक म्हणती दिसतो बाळ। परी महायोद्धा प्रळयकाळ। बाणाचें दळ आटिलें सकळ। वीरांसी पळ सुटलासे। १७ ऐसें देखोनि बाणासुर। कोण कोठील न कळे वीर। रथारूढ होऊनि असुर। आला समोर वेगेंसीं। १८ बाण म्हणे हा क्षणप्रभे ऐसा। तळपतो वीर सांपडे कैसा। मग पंचशत धनुष्यां। गुण चढविले क्षणार्धें। १९ बाणासुर सहस्रकर। सोडीतसे बाणांचा पूर। परी तो कामसुत चपळ थोर।

की अर्गला (अगरी) हाथ में ली और वह ऊपर चढ़ गया। वह (वहाँ से) भूमि पर स्थित सेना को देखने लगा। १११ कामदेव प्रद्युम्न-पुत्र वैसे ही दिखायी दे रहा था, जैसे उदयाचल पर बालसूर्य उदित हुआ हो। उस समय उसने (ऊपर से नीचे) सेना रूपी सागर में झट से छलाँग लगायी। १२ अथवा सर्पों को देखते ही सहसा पक्षिराज (उनपर) झपट पड़ा हो। देखिए, वह अगरी को हाथ में लिये हुए बिजली-जैसा जगमगा रहा था। १३ अगरी के आघातों से उसने वीरों के मस्तक चूरचूर कर डाले। उसने एक साथ अश्वों-सहित वीरों का संहार करना आरम्भ किया। १४ कामदेव प्रद्युम्न-नन्दन (मानो) प्रताप का सूर्य था। उसने हाथियों के शरीरों को चूरचूर कर डाला। तीन करोड़ वीरों को पीट (-पीट) कर उनको शव बनाकर गिरा दिया। १५ उसने बहुतों का संहार कर डाला, तो अद्‌भुत हाहाकार मच गया। (शत्रुपक्ष के) वीरों ने कहा (माना)— प्रलयकाल का रुद्र (ही) क्रुद्ध हो उठा है; उसी ने (अनिरुद्ध के रूप में) अवतार ग्रहण किया है। १६ कुछ एक ने कहा, 'यह तो बच्चा दिखायी दे रहा है, फिर भी यह महायोद्धा, प्रलयकारी काल (-पुरुष-जैसा जान पड़ता) है'। बाण का समस्त सेनादल नष्ट होने लगा, तो वीर पलायन को प्राप्त हो गये (वीरों में भगदड़ मच गयी)। १७ कौन कहाँ का वीर (योद्धा) है, यह समझ में नहीं आ रहा था। ऐसा देखकर बाणासुर रथ पर आरूढ़ होकर वायु-वेग से आ गया। १८ बाण ने कहा (सोचा)— यह बिजली-जैसा चमक रहा है। यह वीर कैसे मिल जाएगा (पकड़ में आ जाएगा)? अनन्तर उसने क्षण मात्र में (अपने एक सहस्र हाथों से) पाँच सौ धनुषों पर डोरियाँ चढ़ा दीं। १९ बाणासुर

एकशर लागों नेदी । १२० क्षण न लागतां जात बाण । बाणाहूनि चपळ तो पूर्ण । कोणे दिशेसी उभा पंचबाणनंदन । लक्षा न येचि बाणातें । १२१ मग सर्पास्त्र अनिवार । जपोनि बाण सोडी सत्वर । नागपाशीं मदनकुमार । अकस्मात सांपडला । २२ तत्काळ केलें दृढ बंधन । भोंवतें मिळालें सकळ सैन्य । जवळी येऊनि पाहे बाण । म्हणे पुरुषार्थ पूर्ण केला येणें । २३ बाण वध करूं पहात । तंव कुंभक प्रधान बोलत । हा जाहला तुमचा जामात । याचा वध न करावा । २४ मग बंधन करूनि सुबद्ध । बंदिशाळे रक्षिला अनिरुद्ध । उखा करी परम खेद । म्हणे कां मुकुंद न पावेचि । २५ अहा द्वारकेसी जाऊनि त्वरित । कोण करील हरीसी श्रुत । असो कृष्णनगरीं वृत्तांत । वर्तला तो परिसिजे । २६ कोणें नेला मदनसुत । रति रुक्मिणी शोक करीत । तों नारदमुनि अकस्मात । कृष्णसभेंत पातला । २७ म्हणे काय पाहतां निवांत । बाणें बांदिशाळेआंत । बांधोनि घातला मदनसुत । सर्व वृत्तांत सांगितला । २८ ऐसें ऐकतां ते अवसरीं । यादव उठावले

सहस्र-हस्त था । वह बाणों का (मानो) रेला चला रहा था । परन्तु कामदेव-पुत्र अनिरुद्ध बड़ा चपल था । वह एक (भी) बाण लगने नहीं दे रहा था । १२० क्षण न लगते बाण (पर बाण) जा रहे थे; (परन्तु) वह बाण से भी पूर्णतः चपल था । बाणासुर के यह ध्यान में नहीं आ रहा था कि पंचबाण-(कामदेव) नन्दन किस दिशा में (किस ओर) खड़ा है । १२१ अनन्तर बाण ने (मंत्र का) जाप करते हुए दुर्धर्ष सर्पास्त्र झट से चला दिया, तो यकायक मदनकुमार प्रद्युम्न नाग-पाश में फँस गया । २२ तो (बाण ने) उस बन्धन को तत्काल दृढ़ कर दिया; समस्त सेना चारों ओर इकट्ठा हो गयी । (फिर) बाण ने निकट आकर देखा और कहा, ' इसने पूरा-पूरा पराक्रम (प्रदर्शित) किया ' । २३ (जब) बाण उसका वध करने जा रहा था, तब मंत्री कुम्भक बोला, ' यह तो आपका जामाता हुआ है, (अतः) इसका वध न करें ' । २४ तब उस पाश को अच्छी तरह कसते हुए बाँधकर (उसे दृढ़ करते हुए) उसने अनिरुद्ध को बन्दीशाला में डाल दिया । (यह) जानकर ऊषा ने अत्यधिक दुःख (अनुभव) किया । वह बोली, ' श्रीकृष्ण (इस समय) क्यों नहीं प्रसन्न हो (कर) आ रहे हैं । २५ अहा, झट से द्वारका जाकर (यह समाचार) हरि को कौन सुनाएगा ' । अस्तु । (इधर) कृष्ण के नगर (द्वारका) में जो घटना हुई, उसे सुनिए । २६ प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को कौन ले गया ? (यह विदित न होने से) रति और रुक्मिणी शोक कर रही थीं । तब नारद मुनि अकस्मात कृष्ण की सभा में आ गये । २७ वे बोले, ' चुपचाप (बैठकर) क्या देख रहे हैं ? बाण ने कामदेव प्रद्युम्न के पुत्र को आबद्ध करके बन्दीशाला में डाल दिया है ' । (फिर) उन्होंने समस्त समाचार

दळभारीं । ठोकिल्या युद्धसंकेतभेरी । वीर अश्वांवरी आरूढले । २९ त्वरा करा म्हणती वीर । पालथें घालूं शोणितपुर । उद्धव सात्यकी अक्रूर । कृष्णकुमर सिद्ध जाहले । १३० रतिवर रेवतीवर । स्यंदनारूढ होती सत्वर । सांब जांबुवंतीचा कुमर । निजभारेंसीं धांवती । १३१ उघडलीं सर्वही द्वारें । सैन्यसमुद्र चालिला त्वरें । दाटी झाली एकसरें । पंथ न दिसे चालावया । ३२ क्षीरसागरविलासी । खगेंद्रावरी बैसे वेगेंसीं । तीन प्रहर होतां निशी । शोणितपुरासी पावले । ३३ छप्पन्न कोटी यादववीर । सुबद्ध वेढिलें शोणितपुर । मदनें टाकिलें अग्निअस्त्र । ग्रामावरी सक्रोध । ३४ धडधडां जळत नगर । होती उल्हाटयंत्रांचे मार । दुर्गहुडे खचती समग्र । जैसे भूधर कोसळती । ३५ नगरीं एकचि आकांत । लोकांसी पळावया नाहीं पंथ । भोंवता सैन्याचा आवर्त । तों आदित्य उगवला । ३६ बाणें करूनियां

कहा । २८ ऐसा सुनते ही उस समय यादव सेनादलों-सहित सिद्ध हो गये । उन्होंने युद्ध-सम्बन्धी संकेत करनेवाली भेरियाँ बजा दीं, तो वीर पुरुष घोड़ों पर आरूढ़ हो गये । २९ वे वीर बोले, 'जल्दी करो। शोणितपुर को उलट देंगे'। उद्धव, सात्यकि, अक्रूर, कृष्ण-कुमार प्रद्युम्न (प्रस्थान के लिए) सिद्ध हो गये । १३० रति-पति प्रद्युम्न, रेवतीपति बलराम झट से रथों में आरूढ़ हो गये । जाम्बवती का पुत्र साम्ब[1], (सब) अपनी-अपनी सेना-सहित दौड़ने लगे । १३१ (नगरी के) समस्त द्वार खोल दिये, तो सेना-समुद्र शीघ्रता से (उमड़कर आगे) चल पड़ा । एक साथ भीड़ मच गयी । चलने के लिए मार्ग (तक) नहीं दिखायी दे रहा था । ३२ (इधर) क्षीरसागरविलासी विष्णु के अवतार कृष्ण पक्षिराज गरुड़ पर बैठ गये और (वे सब) वेगपूर्वक तीन पहर रात हो जाते शोणितपुर पहुँच गये । ३३ यादव वीर (संख्या में) छप्पन करोड़ थे । उन्होंने शोणितपुर को अच्छी तरह कसकर घेर लिया। (तब) कामदेव प्रद्युम्न ने उस ग्राम पर क्रोध से अग्नि-अस्त्र चला दिया । ३४ वह नगर धगधग जलने लगा । तोपों (के गोलों) की मार होने लगी, तो क़िले के समस्त बुर्ज़ ढह गये, जैसे पर्वत ढहकर गिर रहे हों । ३५ नगर में अद्भुत बावेला मच गया । लोगों को भाग जाने के लिए मार्ग नहीं (मिल रहा) था । चारों ओर (यादव-) सेना का घेरा था । तब सूर्य उदित हुआ । ३६ (इधर) स्नान करके बाण शिवजी का पूजन

---

१ साम्ब— उपमन्यु की सूचना के अनुसार कृष्ण ने पुत्र-प्राप्ति के लिए तपस्या की । उससे शिवजी उनपर प्रसन्न हुए और उनके वरदान से कृष्ण के जाम्बवती से पुत्र उत्पन्न हुआ । शिवजी का अंशावतार होने के कारण उसे '**साम्ब**' कहने लगे । यह बहुत प्रतापी था और अनेक युद्धों में उसने वीरता प्रदर्शित की । (कहीं-कहीं इसे रुक्मिणी-सुत भी कहा है, जो सही नहीं जान पड़ता ।)

स्नान। करीत बसला शिवार्चन। तों पुढें कुंभक प्रधान। वर्तमान सांगतसे। ३७ यादवळेंसीं यादवेंद्र। वेढोनि जाळिलें शोणितपुर। व्यर्थ धरिला त्याचा कुमर। आतां तरी सोडावा। ३८ जैसा प्रळयीं क्षोभे कृतांत। तैसा बळिसुत जाहला क्रोधयुक्त। दळभारेंसीं प्रतापवंत। बाहेर निघता जाहला। ३९ पर्जन्यास्त्र घालोनी। अग्नि विझविला ते क्षणीं। चतुरंगदळें त्वरें सिद्ध करूनी। नगराबाहेर निघाला। १४० उदय पावला सहस्रकर। तैसा रथारूढ जाहला बाणासुर। लोटला कल्पांतसमुद्र। तैसीं दळें मिळालीं। १४१ मांडिलें एकचि घनचक्र। गजबजिला खाली धराधर। अशुद्धनद्यांचे पूर। जाती सिंधुदर्शना। ४२ घे घे म्हणती वीरांसी वीर। उसणें घाई फेडिती सत्वर। दोन्ही दळें अनिवार। अलोट वीर एकएकां। ४३ ऐसें देखोनि विष्णुसुतनंदन। गेला कैलासा धांवोन। शिवासी म्हणे यादववीरीं तुझा बाण। वेढिला पूर्ण संग्रामीं। ४४ बाण तुझा वरदपुत्र। ये समयीं न घेसी कैवार। तरी तुझें ब्रीद समग्र। अपेश समुद्रीं

करने बैठ गया था। तो मंत्री कुम्भक ने (उसके) सम्मुख (आकर) यह समाचार कह दिया कि यादवेन्द्र कृष्ण ने यादव-सेना-सहित शोणितपुर को घेरकर जला डाला। उसके पुत्र को व्यर्थ पकड़ लिया— अब भी उसे छोड़ दें। ३७-३८ (यह सुनते ही) जैसे प्रलयकाल में कृतान्त यम क्षुब्ध हो उठता हो, वैसे ही दैत्यराज बलि का पुत्र बाणासुर क्रोधयुक्त हो उठा। वह प्रतापवान (पुरुष) सेनादल-सहित बाहर निकल पड़ा। ३९ उसने उस क्षण पर्जन्यास्त्र चलाकर आग को बुझा डाला। अपनी चतुरंग सेना को (सेना के पदाति, अश्व, हाथी और रथ —चारों दलों को) झट से सिद्ध करके वह नगर के बाहर निकल पड़ा। १४० जैसे सूर्य उदय को प्राप्त हुआ हो, वैसे ही बाणासुर रथ में आरूढ़ हो गया। (जान पड़ता था प्रलय से) कल्प का अन्त करनेवाला समुद्र उमड़ उठा हो, वैसे (सेनाओं के) दल मिल गये (भिड़ गये)। १४१ उन्होंने अद्‌भुत घमासान युद्ध शुरू किया। (पृथ्वी को सिर पर उठाये रखनेवाला) शेषनाग (तक) चौंककर उलझन में पड़ गया। रक्त की नदियों के रेले (मानो) समुद्र-दर्शन के लिए जाने लगे। ४२ वीर (विपक्षी) वीरों से कहते थे— 'लो', 'लो'। तो युद्ध में वे झट से (एक-दूसरे का) उधार चुका रहे थे। दोनों सेनाएँ दुर्धर्ष थीं। वीर (योद्धा भी) एक-दूसरे के लिए दुर्निवार थे। ४३ ऐसा देखकर (विष्णु-सुत ब्रह्मा के पुत्र) नारदजी दौड़ते हुए कैलास गये। वे शिवजी से बोले, 'तुम्हारे (पुत्र-सदृश) बाण को युद्ध में यादव-वीरों ने पूर्णतः घेर लिया है। ४४ बाण तुम्हारा वरदपुत्र है। इस समय यदि तुम उसका पक्ष लेकर उसकी सहायता न करोगे तो (समझ लो कि) तुम्हारा समग्र प्रण अपयश रूपी समुद्र में डूब गया'। ४५ (यह सुनते ही)

बुडालें । ४५ साठ कोटि गणांसमवेत । वेगी धांवला कैलासनाथ । सवें गजास्य आणि अग्निगर्भस्थ । स्वामिकार्तिक निघाला । ४६ शोणितपुरासी तात्काळ आले । बाणें शिवासी वंदिलें । शिवें नंदी वाहन लोटिलें । हांकारिलें गोविंदा । ४७ स्वामिकार्तिक आणि मदन । युद्धा मिसळले दोघेजण । कुंभक आणि रेवतीरमण । युद्धकंदन करिताती । ४८ इकडे श्रीकृष्णावरी बाण । सोडी अपर्णामनमोहन । शारंग चढवूनि गरुडवाहन । तोडी बाण शिवाचे । ४९ नारद नाचे भूमंडळीं । गिरक्या घेत वेळोवेळीं । म्हणे भली माजली रणधुमाळी । वाजवी टाळी आनंदें । १५० शिवें सोडिलें जातवेदास्त्र । जळों लागले यादवभार । ऐसें देखोनि श्रीकरधर । पर्जन्यास्त्र सोडीत तेथें । १५१ पर्जन्य माजला अद्‌भुत । बाणाचें कटक वाहत । शिवें सोडिला तत्काळ वात । तेणें जलद वितुळला । ५२ सुटला झंझामारुत । यादवसैन्य उडों पाहत । कृष्णें घातले पर्वत । वात अद्‌भुत कोंडिला । ५३ शिवसैन्यावरी अचळ । कोसळले पाहतां तत्काळ । वज्र सोडिलें सबळ । उमावल्लभें तेधवां । ५४ ब्रह्मास्त्र कृष्णें सोडोन । केलें वज्राचें प्राशन ।

कैलासनाथ शिवजी साठ करोड़ गणोंसहित वेगपूर्वक दौड़े । साथ में गणेशजी और अग्नि-गर्भस्थ कार्तिक स्वामी (स्कन्द) निकल पड़े । ४६ वे तत्काल शोणितपुर आ गये । (उन्हें देखकर) बाण ने शिवजी का वन्दन किया । (तदनन्तर) शिवजी ने अपने वाहन नन्दी को आगे बढ़ा लिया और कृष्ण को पुकारकर बुलाया । ४७ (इधर) कार्तिक स्वामी और कामदेव प्रद्युम्न दोनों जने युद्ध करने के लिए भिड़ गये; (उधर) कुम्भक और रेवतीरमण बलराम संहारात्मक युद्ध करने लगे । ४८ इधर अपर्णा-मनमोहन शिवजी गरुड़-वाहन श्रीकृष्ण पर बाण छोड़ने लगे, तो वे शाङ्‌र्ग धनुष चढ़ाकर शिवजी के बाणों को काटने लगे । ४९ (यह देखकर) नारद भूमण्डल पर नाचते रहे । वे समय-समय पर (अपने ही चारों ओर) चक्कर लगा रहे थे । वे बोले, 'भली घमासान लड़ाई हो रही है' । वे आनन्दपूर्वक ताली बजाते थे । १५० (इधर) शिवजी ने अग्नि-अस्त्र चला दिया, तो यादवसेना-दल जल जाने लगे । ऐसा देखकर (श्रीकरधर लक्ष्मीपतिस्वरूप) कृष्ण ने वहाँ पर्जन्यास्त्र चला दिया । १५१ (उसके फलस्वरूप वहाँ) अद्‌भुत वर्षा हुई । बाण की सेना बह जाने लगी, तो शिवजी ने तत्काल वातास्त्र चला दिया । उससे मेघ (तितर-बितर होकर) नष्ट हो गये । ५२ (तब) झंझावात चलने लगा, तो यादव-सेना उड़ने जा रही थी । (यह देखकर) कृष्ण ने पर्वतास्त्र चला दिया, तो वह अद्‌भुत वायु रोकी गयी । ५३ अपनी सेना पर पर्वत गिर रहे हैं, यह देखते ही उमा-वल्लभ शिवजी ने तब तत्काल बलशाली वज्र (-अस्त्र) चला दिया । ५४ तो कृष्ण ने ब्रह्मास्त्र चलाकर वज्र का प्राशन कर

षडास्यजनकें देखोन। ब्रह्मास्त्रचि प्रेरिलें। ५५ दोन्ही ब्रह्मास्त्रें एके ठायीं। मिळतां अदृश्य जाहलीं पाहीं। शिवें हिमज्वर लवलाही। यादवांवरी घातला। ५६ हिमज्वरें यादव सकळ। शस्त्रें सोडूनि पडती विकळ। कृष्णें उष्णज्वर घालोनि तत्काळ। शीतज्वर पळविला। ५७ मग कृष्णें आगळें केलें। निद्रास्त्र शिवावरी घातलें। तेणें शंकरासी आकर्षिलें। शयन केलें नंदीवरी। ५८ आवघें कटक निद्रिस्थ। निद्राभरें जांभया देत। निजवहनीं वीर घोरत। शिवासहित अवघेही। ५९ इकडे मदन आणि शिवकुमर। रणीं भिडती अनिवार। अस्त्रें घाली शिवपुत्र। तितुकीं मदन भस्म करी। १६० कुमारें सर्पास्त्र घातलें वाड। कामें सोडिला त्यावरी गरुड। पापास्त्र परम प्रचंड। षडाननें सोडिलें। १६१ मदनें हरिनामास्त्र परम। सोडूनि केलें पाप भस्म। महिषासुर अतिदुर्गम। स्वामिकार्तिकें सोडिला। ६२ शक्तिअस्त्र मदनें घातलें। महिषासुर सर्व मर्दिले। रोगास्त्र कुमारें सोडिलें। मदनें सोडिलें औषधास्त्र। ६३ स्वामीनें सोडिलें सागरास्त्र।

डाला, (तब) षडानन स्कन्द के पिता शिवजी ने यह देखकर ब्रह्मास्त्र ही प्रेरित किया (चला दिया)। ५५ देखिए, दोनों ब्रह्मास्त्रों के एक स्थान पर मिलते (भिड़ते) ही अदृश्य हो गये। (अनन्तर) शिवजी ने झट से यादवों पर शीतज्वर फैला दिया। ५६ उस शीतज्वर से समस्त यादव शस्त्र डालकर विकल होते हुए भागने लगे, तो कृष्ण ने उष्णज्वर फैलाकर तत्काल शीतज्वर को भगा दिया। ५७ अनन्तर कृष्ण ने अनोखी बात की। उन्होंने शिवशंकर पर निद्रास्त्र चला दिया, उससे उन्हें वश में कर लिया। तो शिवजी ने नन्दी पर (ही) शयन किया। ५८ (इधर) समस्त सेना निद्राधीन हुई। वे (सैनिक) मारे नींद के जम्हुआते रहे। शिवजी-सहित सभी वीर अपने-अपने वाहन पर खर्राटे भरने लगे। ५९ (इधर) कामदेव प्रद्युम्न और शिवकुमार कार्तिक स्वामी युद्धभूमि में एक-दूसरे से अनिवार रूप से भिड़ गये। शिवजी का पुत्र (जितने) अस्त्र चला रहा था, उतने सबको कामदेव प्रद्युम्न भस्म करता जा रहा था। १६० कुमार स्कन्द ने भयावह सर्पास्त्र चलाया, तो कामदेव ने उसपर गरुड़ (-अस्त्र) चला दिया। तो षडानन स्कन्द ने पापास्त्र चलाया। १६१ (उधर से) कामदेव ने परम (प्रभावशाली) हरि-नामास्त्र चलाते हुए पाप को (जलाकर) भस्म कर डाला। अनन्तर कार्तिक स्वामी ने अतिदुर्गम महिषासुर (नामक अस्त्र) चला दिया। ६२ (उसके प्रत्युत्तर में) कामदेव ने शक्ति-अस्त्र चलाया और (षडानन के अस्त्र के फलस्वरूप निर्मित) समस्त महिषासुरों का मर्दन किया। (तब स्कन्द) कुमार ने रोगास्त्र चलाया, तो कामदेव ने ओषधि-अस्त्र चला दिया। ६३ कार्तिक स्वामी ने सागरास्त्र, चलाया, तो कामदेव ने झट से (अगस्त्य-अस्त्र से) अगस्त्य का निर्माण

मदनें अगस्ति निर्मिला सत्वर। तेणें प्राशिला सागर। आश्चर्य सुरवर पाहती। ६४ मदन क्रोधावला बहुत। म्हणे हा माझ्या शत्रूचा सुत। यासी पळवीन त्वरित। रणामधूनि पैं आतां। ६५ घातलें स्त्रियास्त्र दारुण। सात सहस्र स्वर्गींहून। दिव्य स्त्रियांनीं उतरोन। रथ वेढिला स्वामीचा। ६६ एक करिती गायन। एक देती आलिंगन। एक त्या देती चुंबन। एक चंदन लाविती। ६७ एक म्हणती घ्या जी विडा। स्वामिकार्तिक पाहे चहुंकडा। म्हणे हा अनर्थ मांडिला रोकडा। कोणापुढें सांगूं पां। ६८ मी आजपर्यंत ब्रह्मचारी। हा अनर्थ किमर्थ मजवरी। रथशस्त्रें टाकोनि झडकरी। स्वामिकार्तिक ऊठला। ६९ भस्माचा बटवा कांखेसी घेऊनी। स्वामी पळत तये क्षणीं। दक्षिणदिशेप्रति जाऊनी। कपाटामाजी दडाला। १७० स्त्रिया येतील धांवोनी। म्हणोनि शाप देत तेचि क्षणीं। म्हणे माझ्या दर्शना येतील कामिनी। त्या विधवा होतील सप्त जन्म। १७१ ऐसा पळाला कुमार। गदगदां हांसती यादववीर। इकडे कुंभक प्रधान अनिवार। बळिभद्राशीं भिडतसे। ७२ बळिभद्रें नांगर घातला। मुसळघायें

किया। उसने सागर का प्राशन कर डाला। (आकाश में स्थित) देव यह आश्चर्य (-कारी घटना) देख रहे थे। ६४ (तदनन्तर) कामदेव प्रद्युम्न बहुत क्रोध को प्राप्त हो गया, और बोला (उसने निर्णय किया), 'यह मेरे शत्रु का पुत्र है। मैं अब इसे रणभूमि में से झट से भगा दूँगा'। ६५ (ऐसा निश्चय करके) उसने दारुण स्त्री-अस्त्र चलाया। (उसके फल-स्वरूप) स्वर्ग से सात सहस्र दिव्य स्त्रियों ने उतरकर कार्तिक स्वामी के रथ को घेर लिया। ६६ कुछ एक (स्त्रियाँ) गायन करने लगीं; कुछ एक (उसका) आलिंगन करने लगीं; कुछ एक (उसका) चुम्बन करने लगीं, तो कुछ एक चन्दन लगाने लगीं। ६७ कुछ एक बोलीं, 'अहो, बीड़ा लीजिए'। तो कार्तिक स्वामी ने चारों ओर देखा; (और) कहा (माना)— 'यह तो सीधा संकट निर्मित किया है; (इसके विषय में) मैं किससे कहूँ। ६८ मैं आज तक ब्रह्मचारी हूँ; मुझपर यह संकट किसलिए आ गया है?' (ऐसा सोचकर) रथ और शस्त्र छोड़कर कार्तिक स्वामी झट से उठ गया। ६९ भस्म का बटुआ बगल में दबाकर कार्तिक स्वामी उस क्षण भाग गया और दक्षिण दिशा की ओर जाकर एक गुफा में छिप गया। १७० (उसे लगा) वे स्त्रियाँ दौड़ती हुई आ जाएँगी, इसलिए उसी क्षण उसने अभिशाप दिया। वह बोला, 'जो नारियाँ मेरे दर्शन के लिए आएँगी, वे सात जन्म विधवा हो जाएँगी'। १७१ इस प्रकार (जब) कुमार (स्कन्द) भाग गया, तो यादववीर खिल-खिलाकर हँसने लगे। इधर मंत्री कुम्भक अनिवार्य रूप से बलराम से भिड़ गया। ७२ बलराम ने हल का प्रहार किया और मूसल के आघात से उसे चूरचूर कर डाला।

चूर्ण केला। कुंभकाचा संसार संपला। मग बाण उठला हांक देत। ७३ रथ प्रेरिला कृष्णावरी। शस्त्रास्त्रीं भिडती समोरी। बहुत युद्धकळाकुसरी। बाणासुर दावीतसे। ७४ मग अंतरीं विचारी मुरहर। आतां कासया लावावा उशीर। बंदिशाळेंत मदनकुमार। श्रम थोर पावला। ७५ सहस्रमित्रतुल्य प्रभा पूर्ण। हरीनें सोडिलें सुदर्शन। म्हणे दोन भुजा राखोन। वरकड छेदीं तत्काळ। ७६ ऐसें बोले राजीवनयन। निमिष न लागतां गेलें सुदर्शन। जें धांवत्या वायुचें खंडन। क्षणमात्रें करणार। ७७ भुजा छेदिल्या समस्त। दोन राखिल्या तयांत। बाणासुर विकळ पडत। पूर वाहत अशुद्धाचे। ७८ सिंदूरें डवरिला पर्वत। कीं मधुमासीं किंशुक फुलत। तैसा बाणाचा देह दिसत। अतिआरक्त दुरोनि। ७९ तों सावध जाहला शूलपाणी। पाहे बाणाकडे विलोकूनि। तंव भुजा पडिल्या छेदोनि धरणीं। शिव मनीं विचारीत। १८० हा साक्षात आदिनारायण। यापुढें कायसा बाण। खद्योत आणि चंडकिरण। समसमान कधीं न होती। ८१

(इस प्रकार) कुम्भक का जगत समाप्त हुआ। तब चीखते-चिल्लाते हुए बाण उठ गया। ७३ उसने कृष्ण की ओर अपना रथ चला दिया। वे दोनों शस्त्रास्त्रों से (एक-दूसरे के) आमने-सामने भिड़ गये। बाणासुर ने बहुत युद्ध-कला-कौशल प्रदर्शित किया। ७४ अनन्तर मुरारि कृष्ण ने मन में विचार किया— 'अब क्यों विलम्ब करें। (उधर) बन्दीगृह में मदन-कुमार अनिरुद्ध बहुत कष्ट को प्राप्त हुआ (होगा)'। ७५ श्रीहरि ने (तब) सहस्रों सूर्यों की-सी प्रभा (तेज) से पूर्ण सुदर्शन चक्र चला दिया। उन्होंने कहा '(बाणासुर की भुजाओं में से केवल) दो भुजाओं को (शेष) रखकर अन्य (भुजाओं) को तत्काल छेद डालो'। ७६ राजीव-नयन श्रीकृष्ण ऐसा बोले, तो पल न लगते वह सुदर्शन चक्र चला गया, जो चलती हुई वायु का क्षण मात्र में खण्डन करनेवाला था (करने में समर्थ था)। ७७ उसने (अपने स्वामी के आदेश के अनुसार) बाणासुर की समस्त भुजाओं को छेद डाला —उनमें से (केवल) दो को (शेष बचाये) रख लिया। (फलस्वरूप) बाणासुर विकल होकर गिर पड़ा। रक्त के रेले बहने लगे। ७८ बाण का शरीर दूर से अति लाल वैसे ही दिखाई दे रहा था, जैसे पर्वत को सिंदूर से पोत दिया हो, अथवा जैसे चैत्र में पलाश वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है। ७९ तब (तक) शूलपाणि शिवजी सचेत हो गये। उन्होंने बाण की ओर ध्यान से देखा, तो उन्हें दिखाई दिया कि उसकी भुजाएँ कटकर धरती पर गिर पड़ी हैं। (तब) शिवजी ने मन में विचार किया कि ये (श्रीकृष्ण) साक्षात् आदिनारायण हैं; इनके सामने (इनकी तुलना में) बाण क्या है। जुगनू और सूर्य कभी भी सम-समान नहीं होते। १८०-१८१ अनन्तर शिवजी ने बाण को सचेत कर लिया और

मग शिवें बाण सावध केला। श्रीकृष्णाजवळी आणिला। पायांवरी हरीच्या घातला। काय बोलिला सदाशिव। ८२ प्रल्हादापासूनि बळीपर्यंत। याचे पूर्वज तुझे भक्त। याच्या माथां कृपाहस्त। ठेवीं आतां नारायणा। ८३ यावरी आतां कृपा करावी। आपल्या हातें हरी उठवीं। याच्या गर्वाची सरिता आघवी। आटोनि गेली गोविंदा। ८४ करुणार्णव जगज्जीवन। कृपेनें उठविला बळिनंदन। हृदयीं तयासी धरून। अभयवचन दीधलें। ८५ मग बोले बाणासुर। आतां नगरांत चला समग्र। सहित बळराम यादवेंद्र। पावन मंदिर करावें। ८६ मग उमावर आणि रमावर। नगरांत आणी बाणासुर। अनिरुद्ध सोडूनि सत्वर। वस्त्रें भूषणें लेवविलीं। ८७ ब्रह्मदेव येऊनि जाण। तत्काळ काढिलें उत्तम लग्न। मनीं परम हर्षला बाण। मंडप पूर्ण उभे केले। ८८ वोहरें दोघें शृंगारिलीं। मंडपामाजी आणिलीं। कमलासनें ते वेळीं। लग्न लाविलें यथाविधि। ८९ बाणें भांडार फोडोन। सुखी केले याचकजन। आपुल्या हस्तेंकरून। करी पूजन कृष्णाचें। १९० शिव म्हणे बाणा ऐक वचन। बळीनें धुतले हरीचे चरण। तुझें भाग्य

वे उसे श्रीकृष्ण के पास ले आये। उन्होंने उसे श्रीकृष्ण के चरणों पर डाल दिया। (फिर) सदाशिवजी क्या बोले? ८२ 'हे नारायण, प्रह्लाद से लेकर बलि तक इसके पूर्वज तुम्हारे भक्त थे। (अतः) अब इसके माथे पर अपना कृपाहस्त रखो। ८३ इस पर अब कृपा करना। हे हरि, इसे अपने हाथों से उठा लो। हे गोविन्द, इसके घमण्ड की नदी समस्त सूख गयी है'। ८४ जगज्जीवन श्रीकृष्ण तो करुणा के सागर थे। उन्होंने (दैत्यराज) बलि के पुत्र को कृपापूर्वक उठा लिया और उसे हृदय से लगाकर अभयवचन दिया। ८५ अनन्तर बाणासुर बोला, 'अब हे यादवेन्द्र, बलराम तथा सबके सहित नगर के अन्दर चलिए और मेरे भवन को पावन कर दीजिए'। ८६ तब उमावर शिवजी और रमा (स्वरूपा रुक्मिणी-) वर श्रीकृष्ण को बाणासुर नगर के अन्दर ले आया। उसने अनिरुद्ध को झट से मुक्त करके उसे वस्त्र और आभूषण पहना दिये। ८७ समझिए कि ब्रह्मदेव ने आकर तत्काल उत्तम विवाह-मुहूर्त (खोजकर) निकाला (निर्धारित किया)। बाणासुर मन में परम आनन्दित हुआ। उसने पूरे (प्रशस्त) मण्डप छवा दिये। ८८ वर और वधू दोनों को शृंगार सजवा दिया; उन्हें मण्डप में वह लिवा लाया। कमलासन ब्रह्मा ने उस समय यथाविधि (उनका) विवाह कर दिया। ८९ (तत्पश्चात्) बाण ने भण्डार खोलकर (धन आदि दान देते हुए) याचकजनों को सुखी कर दिया; (और) उसने अपने हाथों से श्रीकृष्ण का पूजन किया। १९० शिवजी बोले, 'हे बाण, (मेरी एक) बात सुनो। (पूर्वकाल में) बलि ने श्रीहरि के पाँव धोये थे। तुम्हारा भाग्य परिपूर्ण है। (अतः भगवान)

परिपूर्ण। आला नारायण घरासी। १९१ चारी दिवस जाहला सोहळा। आंदण बहुत देत ते वेळां। तों दळभार सिद्ध जाहला। घोष लागला वाद्यांचा। ९२ तेव्हां आज्ञा घेऊनि त्वरित। निघाला हिमनगजामात। वोहरें संगती घेऊनि कृष्णनाथ। द्वारावती येऊं निघाला। ९३ दूर बोळवीत आला बाण। मग आज्ञा देत नारायण। शोणितपुरासी परतोन। बळिनंदन पावला। ९४ द्वारके पावला श्रीपती। उखा अनिरुद्ध मिरवती। रतिरुक्मिणींसी वंदिती। आलिंगिती सप्रेम। ९५ हरिविजयग्रंथ पूर्ण। हाचि कनकाद्रि शोभायमान। नाना दृष्टांतरत्नें जाण। तेणेंकरून मंडित। ९६ नाना इतिहास हेचि देव। यांच्या आश्रयें राहती सर्व। मुख्य वैकुंठपति रमाधव। तोचि येथें वसतसे। ९७ ब्रह्मानंदा द्वारकाधीशा। रुक्मिणीमानसराजहंसा। श्रीधरवरदा आदिपुरुषा। भीमातटवासा

नारायण (-श्रीकृष्ण स्वयं) तुम्हारे घर आ गये हैं'। १९१ चारों दिन (विवाह-) समारोह (सम्पन्न) होता रहा। उस समय बाणासुर ने बहुत दायज दिया; तब (यादवों के) दल (प्रस्थान के लिए) सिद्ध हो गये। वाद्यों का गर्जन होने लगा। ९२ तब हिमालय पर्वत के दामाद (शिवजी) आज्ञा लेकर झट से चल पड़े। (इधर) कृष्णनाथ (नव) दम्पती को साथ में लेकर द्वारावती के प्रति आ जाने के लिए निकले। ९३ बाण उन्हें बिदा करते हुए दूर (तक) आया था; तब नारायण अर्थात श्रीकृष्ण ने (लौट) जाने की आज्ञा दी। फिर बलिनन्दन (बाणासुर) लौटकर शोणितपुर जा पहुँचा। ९४ (उधर) श्रीपति श्रीकृष्ण द्वारका पहुँचे। ऊषा और अनिरुद्ध ठाट-बाटपूर्वक (शोभायात्रा के साथ घूमकर) आये, तो उन्होंने रति और रुक्मिणी का वन्दन किया, तो उन्होंने उन दोनों को प्रेमपूर्वक गले लगाया। १९५

श्रीहरि-विजय नामक यह पूर्ण ग्रन्थ ही (मानो) शोभायमान स्वर्ण पर्वत (मेरु) है। समझिए कि (उसमें प्रस्तुत) नाना दृष्टान्त रत्न हैं। उनसे वह (ग्रन्थ रूपी पर्वत) विभूषित है। १९६ नाना इतिहास ही (मानो) देव हैं। वे सब इसके आश्रय में रहते हैं। उन (सब देवों) में मुख्य हैं वैकुण्ठपति रमापति भगवान विष्णु। वे ही यहाँ (अपने श्रीकृष्ण अवतार-रूप में) निवास करते हैं। ९७ हे ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) हे द्वारकाधीश, हे रुक्मिणी के मन रूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले राजहंस, हे श्रीधर-वरदाता, हे आदिपुरुष, हे भीमानदी के तट पर (पंढरपुर नामक नगर में) निवास करनेवाले (भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण-स्वरूप) पाण्डुरंग। १९८

पांडुरंगा । ९८ इति श्रीहरिविजयग्रंथ । संमत हरिवंश भागवत । प्रेमळ परिसोत पंडित । अष्टविंशतितमाध्याय गोड हा । १९९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेममय (हृदय वाले) पण्डित जन इसके मधुर अट्ठाईसवें अध्याय का श्रवण करें। १९९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—२९

[श्रीकृष्ण-सुदामा-भेंट]

श्रीगणेशाय नमः ॥ शोधितां त्रिभुवन समग्र । जें जें दिसे तें मायाविकार । तितुकियासी भय असे साचार । नाशवंत म्हणोनिया । १ भोग बहुत भोगितां । तेथें रोगाचें भय तत्त्वतां । सौख्य बहुवस वाढतां । दुःख सवेंचि उद्भवे । २ बहुसाल सांचितां धन । राजचोरभय त्यालागून । विद्या होतां परिपूर्ण । वादक येऊन छळती हो । ३ तपासी विघ्न करी शचीनाथ । रूपवंता योषिता छळित । मित्रत्व जाहलें बहु तेथ । भय होत

श्रीगणेशाय नमः । समग्र त्रिभुवन में खोजने पर जो-जो दिखायी देता है, वह माया-निर्मित विकार है। उतने सबको इसलिए सचमुच (विनाश का) भय (अनुभव) होता रहता है कि वे नाशवान हैं। १ बहुत भोगों का उपभोग करने पर वहाँ (भोक्ता के लिए) सचमुच रोग का भय होता है; सुख के बहुत बढ़ जाने पर (सुखानुभव करनेवाले के लिए) उसके साथ ही दुःख का उद्भव होता है। २ (किसी के द्वारा) बहुत धन संचित करने पर, उसके लिए राजा और चोर से भय होता है। (राजा से भय इसलिए होता है कि वह कर आदि से उस धन को धनवान आदमी से छीन सकता है।) विद्या (के अर्जन) के परिपूर्ण हो जाने पर (उस व्यक्ति को) वाद-विवाद करनेवाले व्यक्ति आकर तंग कर सकते हैं। ३ शचीपति इन्द्र तपस्या में विघ्न उत्पन्न करता है। (यह इसलिए कि इन्द्र नित्य आतंकित रहता है कि कोई व्यक्ति तपस्या के बल पर इन्द्रपद को शायद छीन ले; इसलिए वह तपस्वी के तप में विघ्न उत्पन्न करते हुए उसे विचलित और तपभ्रष्ट करने का यत्न करता है। उदाहरणार्थ— विश्वामित्र-, मेनका की कथा देखिए।) सुन्दर रूपवाले पुरुष को स्त्री छल-कपट से धोखा देती है। जहाँ बहुत मित्रता होती है, वहाँ अर्थ अर्थात धन के

अर्थसंबंधें। ४ ज्ञान जों संपूर्ण होय। तेथें अभिमानाचें भय। सकळांमाजी निर्भय। हरीचे पाय असती। ५ यालागीं अच्युतचरणउपासन। निर्भय असे परिपूर्ण। जें सकळ दुःखदरिद्रभंजन। निर्वाणपददायक। ६ अठ्ठाविसाव्या अध्यायीं कथा सुबद्ध। उखेनें वरिला अनिरुद्ध। वोहरें घेऊनि गोविंद। द्वारकेसी पावला। ७ आधि व्याधि दुःख दरिद्र। दूर करणार यादवेंद्र। त्याचें भजनीं जे तत्पर। त्यांसी साचार नुपेक्षी तो। ८ कालयवनाच्या राज्याभीतरी। हरिचरणोद्भव गंगेच्या तीरीं। कपिला-नाम नगरी। अवनीवरी विख्यात। ९ तेथें सुदामदेव ब्राह्मण। अत्यंत दरिद्री अकिंचन। ज्यांचे घरीं मुष्टिभर कण। संग्रह नाहीं सर्वथा। १० नित्य करूनि कोरान्न। मेळवूनि आणी कण। त्यांमाजी अतिथिपूजा पंचग्रासकरून। यथान्याय करीतसे। ११ ब्रह्मचारी यतीश्वर। उपवासी किंवा निराहार। नित्य दोनप्रहरां घेऊन समाचार। सुदामा विप्र भोजन करी। १२ दुसरिया दिवसालागून। न उरे मुष्टिभर अन्न। बाळें पीडती

व्यवहार-सम्बन्ध से (मित्रता शत्रुता में बदल जाने का) भय होता है। ४ जब ज्ञान (का अर्जन) सम्पूर्ण हो जाता है, तब वहाँ (उस ज्ञानी व्यक्ति में) अभिमान (उत्पन्न हो जाने) का भय होता है। (वस्तुतः) श्रीहरि के चरण (ही) इन सबमें (ऐसे किसी प्रकार के) भय से रहित होते हैं। ५ इसलिए भगवान अच्युत (नारायण, विष्णु, कृष्ण) के चरणों की वह उपासना परिपूर्ण रूप से भय-रहित होती है, जो समस्त दुःख और दरिद्रता को नष्ट कर देनेवाली होती है, तथा जो निर्वाण (मोक्ष) पद प्रदान करनेवाली होती है। ६ अट्ठाईसवें अध्याय में यह कथा भली भाँति (शब्दों में) आबद्ध की गयी— ऊषा ने अनिरुद्ध का वरण किया; (नव) दम्पती को लेकर श्रीकृष्ण द्वारका में आ गये। ७ यादवेन्द्र श्रीकृष्ण आधि-व्याधि, दुःख-दरिद्रता को दूर करनेवाले हैं। उनकी भक्ति में जो तत्पर होते हैं, उनकी वे सचमुच उपेक्षा नहीं करते। ८ कालयवन के राज्य के अन्दर श्रीहरि के चरणों से उत्पन्न गंगा के तीर पर (बसी हुई) कपिला नामक नगरी पृथ्वी में विख्यात थी। ९ वहाँ सुदामदेव नामक एक ब्राह्मण अत्यधिक दरिद्र तथा निर्धन था, जिसके घर में मुट्ठी भर (अन्न-) कण (तक) बिलकुल संग्रहीत नहीं थे। १० वह नित्य सूखी भिक्षा माँगकर (कुछ) कण इकट्ठा करके लाया करता था। उन्हीं से बनाये अन्न के यथारीति पाँच कौर, अर्थात विभाग बनाकर उनसे अतिथि-पूजन करता था। ११ कोई ब्रह्मचारी, यतिश्रेष्ठ, उपवास करनेवाले, अथवा निराहारी व्यक्ति की नित्यप्रति दोपहर को पूछताछ करके (और यदि कोई ऐसा आया हो, तो उसे भोजन कराते हुए तत्पश्चात स्वयं) विप्र सुदामा भोजन करता था। १२ (इससे) दूसरे दिन के लिए मुट्ठी भर

क्षुधेंकरून। न उरे अन्न तयांसी। १३ सुदामदेवाची गृहिणी। परम पतिव्रताशिरोमणी। सदा सादर पतिभजनीं। शुचिष्मंत सर्वदा। १४ उभयतांचें एक चित्त। गृहस्थाश्रमीं वर्तत। दोघांचे अंतरीं दया बहुत। सदा हेत धर्मावरी। १५ ऐसी जे स्त्री धर्मानुकूल। तेचि पतिव्रता सती निर्मळ। त्या घरीं राहे घननीळ। लक्ष्मीसहित सर्वदा। १६ भ्रताराचें भाग्य देखती। लटकीच प्रीति वरिवरी दाविती। ज्या ओढाळी अत्यंत करिती। भ्रताराशीं वंचनार्थ। १७ एक तोंडाळ अत्यंत। एक खटचाळ मलिन बहुत। भ्रतार देखतां क्षोभे मनांत। तिचा त्याग अवश्य कीजे। १८ अखंड जे क्रोधमुखी। दुर्भगा दुःशीला एकी। घरीं सर्व असोनि ते दैन्य भाकी। तिचा त्याग अवश्य कीजे। १९ दर्पण घेऊनि हातीं। सदा दांत दाढा सोलिती। पतिआधीं ज्या अन्न भक्षिती। त्यांचा त्याग अवश्य कीजे। २० करिती पतीची निंदा। परघरीं ज्या वसती सदा। ज्यांच्या बोलासी नाहीं मर्यादा। त्यांचा त्याग अवश्य कीजे। २१ जारजारिणींची

(तक) अन्न नहीं बचता था। बच्चे भूख से पीड़ित हो जाते थे। उनके लिए अन्न नहीं बचता था। १३ सुदामादेव की गृहिणी परम पतिव्रता-शिरोमणि थी, वह पति-भक्ति में सदा आदर-सहित तत्पर रहती थी; वह नित्य पवित्र (आचार-विचारवाली) थी। १४ उन दोनों का चित्त (मानो) एक था। वे गृहस्थाश्रम के अनुसार (आचरण-व्यवहार करते हुए) रहते थे। उन दोनों के अन्तःकरण में बहुत दया थी। उन्हें धर्म के प्रति नित्य प्रेम था। १५ ऐसी स्त्री, जो सदा धर्म के अनुकूल (धर्मानुसार) आचरण करनेवाली होती है, निर्मल (पाप की मैल से रहित) पतिव्रता, सती होती है। उस घर में घननील वर्ण वाले भगवान विष्णु सदा लक्ष्मी-सहित रहते हैं। १६ कुछ एक नारियाँ ऐसी होती हैं कि जो पति का भाग्य देखती हैं और झूठमूठ की प्रीति ऊपर-ऊपर से प्रदर्शित करती हैं, जो पति से वंचना करने के हेतु अत्यन्त झूठा प्रेम करती हैं। (ऐसी स्त्रियों का अवश्य त्याग करें)। १७ कोई एक अत्यधिक मुँहफट होती है; कोई एक नटखट या हठी, बहुत मलिन (पापी) होती है। पति को देखने पर वह मन में क्षुब्ध हो जाती है। उसका त्याग अवश्य कीजिए। १८ जो अखण्डित रूप से क्रोधमुखी हो, जो कोई एक दुर्भगा (भाग्यहीना), दुःशीला (दुश्चरित) हो, जो घर में सब कुछ होने पर भी दीनतापूर्वक (दूसरों से) कहती रहती हो, उसका त्याग अवश्य कीजिए। १९ जो हाथ में दर्पण लेकर नित्यप्रति दाँतों और डाढ़ों को कुरेदती-छीलती रहती हैं, जो अपने-अपने पति से पहले अन्न भक्षण करती हैं, उनका त्याग अवश्य कीजिए। २० जो (अपने-अपने) पति की निन्दा करती हैं, जो सदा दूसरे के घर निवास करती हैं, जिनकी बात की कोई सीमा नहीं है, उनका

संगती धरी। मना आवडे तेथें निद्रा करी। एकली ग्रामा ज्ञाले दुराचारी। तिचा त्याग अवश्य कीजे। २२ चीरें आणि अलंकार। घेऊनि वेळोवेळां करी शृंगार। उदकीं रूप पाहे वारंवार। तिचा त्याग अवश्य कीजे। २३ भलत्याशीं एकांतगोष्टी। जार न्याहाळी सदा दृष्टीं। सुख मानी पति होतां कष्टी। तिचा त्याग अवश्य कीजे। २४ सदा उघडे पयोधर। सवेंचि हांसे झांकी पदर। निरिया सरसावी वारंवार। तिचा त्याग अवश्य कीजे। २५ दुष्ट स्त्रियेसीं करणे संसार। अज्ञान गुरु आणि मूर्ख पुत्र। यजमान कृपण कपटी मित्र। सुख अणुमात्र नसे तेथें। २६ धनी निर्धन षंढ भ्रतार। वक्ता तामसी श्रोता पामर। अंध सांगाती पंथ दूर। सुख अणुमात्र नसे तेथें। २७ राजा कोपिष्ट अविचारी प्रधान। भांडारी तस्कर मोडकें सदन। शिष्य अभाविक गुरु मलिन। मग दुःख न्यून काय तेथें। २८ पैशुन्यवादियाचा विश्वास। पोहणाराविण धरी त्याची कांस। रोगिष्ट वैद्याचे औषधास। न ये यश कल्पांतीं। २९ खोटें नाणें मोडकें शस्त्र। अबद्ध पुस्तक अशुचि

त्याग अवश्य कीजिए। २१ जो जार-जारिणियों की संगति करती है, जहाँ मन को भाए, वहाँ सो जाती है, जो दुराचारिणी स्त्री अकेली दूसरे ग्राम चली जाती है, उसका त्याग अवश्य कीजिए। २२ जो वस्त्र और आभूषण लेकर समय-समय पर शृंगार सजती है, अपने रूप-सौन्दर्य को बार-बार पानी में (झाँककर प्रतिबिम्बित) देखती है, उसका त्याग अवश्य कीजिए। २३ जो पराये व्यक्ति से एकान्त में बातें करती है, आँखों से सदा जार को निहारती है, पति के दुःखी हो जाने पर जो सुख मानती है, उसका त्याग अवश्य कीजिए। २४ जो सदा अपने स्तनों को अनावृत करती है, परन्तु साथ ही (तत्क्षण) हँस देती है और पल्लव से छिपाती है, (साड़ी की) चुन्नटों को बार-बार खींचती-निकालती है, उसका त्याग अवश्य कीजिए। २५ (जहाँ) दुष्ट स्त्री के साथ घर-गिरस्ती निबाहना हो, जहाँ गुरु अज्ञान और पुत्र मूर्ख हो, यजमान कृपण और मित्र कपटी हो, वहाँ अणु मात्र (भी) सुख नहीं होता। २६ (जहाँ) स्वामी निर्धन हो, पति षण्ढ हो, वक्ता तामसी तथा श्रोता पामर (क्षुद्र-मना) हो, अन्धा संगी हो और मार्ग दूर का (लम्बा) हो, वहाँ अणु मात्र (भी) सुख नहीं होता। २७ (जहाँ) राजा गुस्सैल हो, और मंत्री विवेकहीन हो, भाण्डारपाल (खजांची) चोर हो, घर टूटा-गिरा हो, शिष्य श्रद्धाहीन और गुरु मलीन अर्थात पापाचार रूपी मैल से युक्त हो, तब वहाँ दुःख क्या कम होगा। २८ चुगलखोर का विश्वास (करनेवाले) को, जो तैरनेवाले (तैरना जाननेवाले) के सिवा किसी दूसरे का आधार ग्रहण करता हो, उसे (नदी आदि को पार करने में) तथा रोगिष्ट वैद्य की ओषधि को कल्पान्त काल तक में सफलता नहीं प्राप्त होती। २९ खोटे सिक्के को, टूटे-कटे शस्त्र को, अशुद्धियों

दानपात्र। पढला परी समयीं नाठवे शास्त्र। त्यासी यश न ये कल्पांतीं। ३० असो सुदामदेवाची गृहिणी। परम पवित्र सर्वगुणी। दरिद्री पति निशिदिनीं। आज्ञा नुल्लंघी तयाची। ३१ आधीच दरिद्रें पीडिलीं सबळ। त्यावरी पडिला दुष्काळ। सत्त्व टाकिती भाग्यवंत सकळ। चोर पुष्कळ सूटले। ३२ लोक देशधडी जाहले। दुष्काळें राष्ट्र वोस पडिलें। सदनें टाकूनि लोक गेले। मार्ग न चले कोठेंही। ३३ वोस पडिल्या आळ्या सकळिक। भरले आळीस जाती लोक। आपुली झोंपडी सोडूनि देख। सुदामाही चालिला। ३४ तंव दरिद्रियासी ठाव तत्त्वतां। कोणीच न देती सर्वथा। जेथें जेथें घरपांग पाहतां। बाहेर घालिती पिटोनी। ३५ एकाचिया अंगणांत। राहिला तो स्त्रीपुत्रांसमवेत। अपत्यें अन्नाविण पीडती बहुत। कोरान्न न मिळे कोठेंही। ३६ जरी तृणबीज मिळे किंचित। वैश्वदेव औपासन करीत। त्याहींमाजीं आला अतिथ। त्यासही देत विभाग पैं। ३७

(तथा असंगतियों) से युक्त पुस्तक को तथा अपवित्र याचक को, जो व्यक्ति पढ़ा हुआ हो, फिर भी समय पर जिसे (पठित) शास्त्र का स्मरण नहीं हो जाता, उसे कल्पान्त काल तक में सफलता नहीं प्राप्त होती। ३०

अस्तु। सुदामा की गृहिणी परम पवित्र (आचरण से युक्त) थी, समस्त गुणों से सम्पन्न थी। उसका पति दरिद्र था; (फिर भी) वह उसकी आज्ञा का रात-दिन (कभी भी) उल्लंघन नहीं करती थी। ३१ पहले से ही दरिद्र लोग बहुत पीड़ा को प्राप्त हुए थे; तिसपर अकाल पड़ गया। समस्त भाग्यवान लोगों ने अपना सत्त्वगुण (सच्चरित्र) छोड़ दिया। बहुत चोर मुक्त (रूप से घूम रहे) थे। ३२ लोग देश-विदेश में (जीविका के लिए) घर-घर भीख माँगते हुए घूम रहे थे। अकाल के कारण देश उजाड़ हो गया। घर छोड़कर लोग चले गये। कहीं भी (जीविका चलाने के लिए) मार्ग नहीं मिल रहा था। ३३ समस्त मुहल्ले उजड़ गये। लोग भरे (आबाद, खुशहाल) मुहल्ले की ओर जाने लगे। देखिए, सुदामा भी अपनी झोंपड़ी को छोड़कर चल पड़ा। ३४ तब किसी दरिद्र व्यक्ति को कोई भी सचमुच बिलकुल ठौर (आश्रय) नहीं देता था। (इसी न्याय से) जहाँ-जहाँ वह (सुदामा) जाता, तो उसकी दरिद्रता को देखकर लोग उसे पीटकर बाहर निकाल देते थे। ३५ (एक समय) वह स्त्री और पुत्रों-सहित किसी एक (घर) के आँगन में ठहर गया। उसके बच्चे अन्न के अभाव से पीड़ित हो गये थे। उसे कहीं भी सूखा अन्न (अनाज) नहीं मिला। ३६ यदि उसे कहीं किंचित् (ज़रा-से) तृण-बीज (घास के बीज) मिलते, तो वह (पहले) वैश्वदेव और औपासन (स्मार्ताग्नि, गृह्याग्नि विधि) करता। इसके बीच (इस स्थिति में) कोई अतिथि आता, तो उसे भी उसका हिस्सा दे देता। ३७ उसके बच्चे सुन्दर थे,

लेंकरें सुंदर सगुण। कृश जाहलीं दिसती दीन। डोळां उरलासे प्राण। पतिव्रतेच्या तेधवां। ३८ म्हणे मज जरी असतें माहेर। तरी लेंकरें धाडित सत्वर। पतीस म्हणे तुमचा मित्र। द्वारकाधीश असे कीं। ३९ सुदामा म्हणे बाळपणीं। परम प्रीति करी चक्रपाणी। कृतांतभगिनीतीरीं जाऊनी। गोरक्षण करीतसे। ४० त्याहीवरी गुरुगृहीं विद्याभ्यास। मी आणि राम हृषीकेश। लीलावतारी जगन्निवास। कर्तव्य अद्‌भुत तयाचें। ४१ गुरुपुत्र मृत्यु पावला। कमलपत्राक्षें ते वेळां। तात्काळ माघारा आणिला। यमलोकासी जाऊनियां। ४२ गृहींहूनि न जावा वैकुंठराणा। सांदीपनें जाऊनि तत्क्षणा। मागीतली गुरुदक्षिणा। न मिळे कोणा सर्वथा। ४३ मृत्यु पावला दिवस बहुत। तो आणिला गुरुसुत। आज्ञा घेतां रमानाथ। गुरु सद्‌गद जाहला। ४४ अवंतीनगरीं होता सांदीपन। तेथें कृष्णपदांकतीर्थाभिधान। अद्यापि असे सकळ जन। करितां स्नान मुक्त होती। ४५ त्या तीर्थासमीप उत्तम। अद्यापि आहे गुरूचा आश्रम। तेथें श्रीकृष्णमूर्ति सप्रेम। सांदीपनें स्थापिली। ४६ तैंचा मित्र माझा जगज्जीवन। तों

गुणवान थे; (परन्तु अन्न न मिलने के कारण) वे दुबले-पतले हुए थे; वे दीन दिखायी देते थे। तब उस पतिव्रता (नारी) की आँखों में प्राण बचे थे। ३८ उसने कहा (सोचा)— यदि मेरे मायका होता, तो बच्चों को झट से भेज देती। अनन्तर वह पति से बोली, 'तुम्हारे मित्र (अब) द्वारकाधीश हैं'। ३९ (इसपर) सुदामा बोला, 'बचपन में चक्रपाणि कृष्ण (मुझसे) परम प्रीति करता था। वह यमुना-तट पर जाकर गायों की रखवाली करता था। ४० उसी के पश्चात मैं और बलराम, हृषीकेश कृष्ण गुरु के घर में विद्याध्ययन करते थे। जगन्निवास श्रीकृष्ण लीलावतारी (पुरुष) है। उसकी करनी अद्‌भुत है। ४१ गुरु (सान्दीपनी) का पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ था; (परन्तु) कमलपत्राक्ष श्रीकृष्ण (गुरुदक्षिणा के रूप में) उस समय यमलोक जाकर तत्काल उसे लौटा लाया। ४२ वैकुण्ठराज भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण गुरु-गृह से नहीं जाए —इस हेतु से सान्दीपनी ने जाकर ऐसी गुरु-दक्षिणा माँगी, जो किसी को बिलकुल नहीं मिल सकती थी। ४३ (फिर भी) गुरु-पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसे बहुत दिन हो गये थे; कृष्ण उसे ले आया। (अनन्तर) रमानाथस्वरूप श्रीकृष्ण द्वारा (जाने की) आज्ञा माँगने पर (बिदा होते समय) गुरु (सान्दीपनी) बहुत गद्‌गद हो उठे। ४४ सान्दीपनी अवन्ती नगरी में (रहते) थे। वहाँ कृष्णपदांक नामक तीर्थ अब भी (विद्यमान) है। उसमें समस्त जन स्नान करने पर मुक्त हो जाते हैं। ४५ उस उत्तम तीर्थ के समीप अब भी गुरु का आश्रम है। वहाँ सान्दीपनी ने प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण की मूर्ति की स्थापना की थी। ४६ ऐसा

पतिव्रता बोले वचन। स्वामी अवश्य घ्यावें दर्शन। द्वारकेसी जाऊनियां। ४७ विप्र म्हणे रिक्तहस्तें। कैसा भेटूं जगद्गुरूतें। देवाधिदेवा नृपश्रेष्ठातें। उणें तेथें काय असे। ४८ मग पतिव्रता उठली ते क्षणीं। शेजारिणीचे येथें जाऊनी। मुष्टिभर पोहे उसणे आणूनी। विप्राहातीं देतसे। ४९ स्वामी हाचि शकुन होये। उसणे मिळाले मुष्टि पोहे। ब्राह्मण उठिला लवलाहें। हर्ष न माये पोटांत। ५० मुष्टि पोहे बांधावयासी। वस्त्र धड नाहीं त्यापाशीं। जीर्ण चिंध्या पांघरावयासी। विप्राचे मानसीं लाज वाटे। ५१ ठायीं ठायीं गांठोडिया करूनी। पोहे बांधिले तेचि क्षणीं। जातां पतिव्रतेचिया नयनीं। अश्रु आले तेधवां। ५२ म्हणे स्वामी तुम्हांविण। मी केवळ परदेशी अनाथ दीन। लवकरी यावें परतोन। म्हणोनि चरण धरियेले। ५३ तृणबीज उसने मागोनी। अपत्यें जगवीन दिवस दोनी। आपण हरिदर्शन घेऊनी। सत्वरचि परतावें। ५४ असो वेगें निघाला ब्राह्मण। स्त्रियेचें समाधान करून। तों पुढें जाहले उत्तम शकुन। सव्य जाती वायस। ५५

मेरा मित्र है जगज्जीवन श्रीकृष्ण'। (यह सुनने पर) तब वह पतिव्रता नारी यह बात बोली, 'हे स्वामी, द्वारका जाकर उनके दर्शन अवश्य कीजिए'। ४७ तो वह ब्राह्मण बोला, 'मैं जगद्गुरु श्रीकृष्ण से रिक्त हाथों कैसे मिलूं (मिलने जाऊँ) ? (वस्तुतः) देवाधिदेव नृपश्रेष्ठ (श्रीकृष्ण) के लिए वहाँ क्या कम होगा'? ४८ अनन्तर वह पतिव्रता स्त्री उस क्षण उठ गयी और पड़ोसिन के यहाँ जाकर मुट्ठी भर चिउड़ा उधार लाते हुए उसने उस विप्र के हाथों में रख दिया। ४९ (वह बोली—) 'हे स्वामी, यही शुभ शकुन हो गया है कि मुट्ठी भर चिउड़ा उधार मिला है'। तो वह ब्राह्मण झट से उठ गया। वह फूले नहीं समा रहा था। ५० उसके पास मुट्ठी भर चिउड़ा बाँधकर रखने के लिए अखण्डित (अनफटा) पूरा कपड़ा नहीं था। (उसके यहाँ तो) ओढ़ने के लिए फटी-पुरानी धज्जियाँ थीं। (अतः) उस ब्राह्मण के मन में लज्जा अनुभव हो रही थी। ५१ (फिर भी) स्थान-स्थान पर गठरियां बनाते हुए उसने उसी क्षण चिउड़ा बाँध लिया। तब उसके (निकल) जाते (समय) उस पतिव्रता के नयनों में आँसू आये। ५२ वह बोली, 'हे स्वामी, (यहाँ) मैं आपके बिना पूर्णतः परदेसिन, अनाथ, दीन हूँ। (अतः) शीघ्रता से लौट आइए'। ऐसा कहते हुए उसने उनके पाँव पकड़े। ५३ (फिर वह बोली—) 'तृणबीज उधार में माँगकर मैं दो दिन बच्चों को जीवित रखूंगी। आप श्रीहरि के दर्शन करके शीघ्रता-पूर्वक लौट आना।' ५४ अस्तु। वह ब्राह्मण स्त्री को सान्त्वना देते हुए (धीरज धारण कराते हुए) वेगपूर्वक चल पड़ा, तो आगे (मार्ग में) उत्तम शुभ शकुन हो गये। कौए दाहिनी ओर चले गये। ५५ आगे (जाने पर

पूर्ण कलश माथां घेऊनी। पुढें भेटल्या दिव्य कामिनी। असो चिंध्यांच भार पांघरोनी। विप्र जात त्वरेनें। ५६ मार्गीं जातां द्विजवर। मनीं करी नाना विचार। कृष्णाच्या द्वारीं देव समग्र। जोडोनि कर उभे राहती। ५७ भर्ग मित्र विधि रोहिणीवर। गीष्पति धनपति त्रिदशेश्वर। हे हरीच्या द्वारीं तिष्ठती निरंतर। दाटी अपार राजयांची। ५८ जातां कृष्णाच्या दर्शना। मुकुटीं मुकुट आदळती खणखणां। तेथें मज दीना ब्राह्मणा। प्रवेश कैसा होईल। ५९ श्रीकृष्णललना चतुरा बहुत। माझा विनोद करितील समस्त। मी दुर्बळ तेथें बहुत। ब्राह्मण ऐसें चिंतीतसे। ६० वाटे जातां घडीघडी। पाहे पोह्यांची गांठोडी। मनांत म्हणे घरीं बाळें रोकडीं। उपवासी मरतील। ६१ ऐसा त्वरेनें जातां विप्र। तंव समीप देखिलें द्वारकापुर। जें विरिंचीनें रचिलें नगर। ऐका सादर चतुर हो। ६२ चोवीस योजनें सविस्तर। रमणीय दिसे द्वारकानगर। सप्त दुर्गें भोंवतीं परिकर। महाविशाळ प्रचंड। ६३ सुवर्णमय दुर्गें दिसती। चरव्या झळकती शेषफणाकृती। रजनीमाजी वाटती। नक्षत्रें वरी जडियेलीं। ६४ रत्नजडित

पानी से) पूर्ण (भरे) कलश लेकर (जानेवाली) दिव्य स्त्रियाँ मिल गयीं। अस्तु। चिथड़ों के भार ओढ़कर वह विप्र शीघ्रता से जा रहा था। ५६ मार्ग में जाते (जाते) वह विप्रवर मन में नाना (प्रकार के) विचार कर रहा था। 'कृष्ण के द्वार पर समस्त देव हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। ५७ शिवजी, सूर्य, विधाता, चन्द्र, बृहस्पति, कुबेर, देवराज इन्द्र —ये (सब) श्रीहरि के द्वार पर अनवरत खड़े रहते हैं। राजाओं की अपार भीड़ हो जाती है। ५८ श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए (जानेवाले राजाओं के) मुकुट खनखन (बजते हुए) टकराते हैं, वहाँ मुझ (जैसे) दीन ब्राह्मण को प्रवेश प्राप्त कैसे हो जाएगा। ५९ श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ बहुत चतुर हैं। वे समस्त मेरी हँसी उड़ाएँगी। मैं वहाँ बहुत दुर्बल (सिद्ध) हो जाऊँगा।' —वह ब्राह्मण इस प्रकार सोचता जा रहा था। ६० मार्ग में जाते-जाते वह बार-बार चिउड़े की पोटली (की ओर) देखता था। वह मन-ही-मन बोला, 'घर में बच्चे सीधे साफ़ निराहार मर जाएँगे। ६१ इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक जाने पर उस ब्राह्मण ने तब द्वारकापुर को समीप (आया) देखा। ब्रह्मा ने जिस नगर की रचना की, हे चतुर (श्रोताओ), उसके विषय में आदरपूर्वक (तत्परता से) सुनिए। ६२ चौबीस योजन विस्तार वाला वह द्वारका नगर रमणीय दिखायी देता था। उसके चारों ओर महाविशाल और प्रचण्ड, सात सुन्दर दुर्ग थे। ६३ वे दुर्ग सुवर्णमय दिखायी दे रहे थे। तोपों के लिए निर्मित झरोखे शेष के फन के आकार के थे। रात में जान पड़ता था कि ऊपर नक्षत्र जटित हैं। ६४ रत्न-जटित चक्र (ऐसे) दिखायी देते थे, जैसे सूर्य पंक्ति में बैठे हुए हों। चारों

चक्रें दिसती। जैसे पंक्तीनें बैसले गभस्ती। भोंवता खंदक सरितापती। असंभाव्य उचंबळे। ६५ जैसे कनकाद्रीचे पुत्र पाहीं। तैसे हुडे झकळती ठायीं ठायीं। वरवरते सर्वदाही। गर्जताती कृष्णनामें। ६६ वरी ठेविलीं उल्हाटयंत्रें। शस्त्रें झळकताती अपारें। हुडोहुडीं मंगळतुरें। रात्रंदिवस गर्जती। ६७ तंत वितंत घन सुस्वर। वाद्यें वाजती मनोहर। त्या नादें गोपुरें समग्र। दुमदुमती सर्वदा। ६८ दुर्गावरूनि एक पंक्ती। कल्पवृक्ष दिव्य झळकती। चपळेऐसे ध्वज निश्चिती। लखलखती अपार। ६९ महाद्वारें विशाळ झळकती। नवरत्नांचीं चक्रें वोप देती। ऐरावतारूढ अमरपती। येत जात संभ्रमेंसीं। ७० मठ मंडप चौबार झळकती। मदालसाजडित विराजती। दामोदरें उंच लखलखती। सोळा सहस्र गोपिकांचीं। ७१ शतखणी दामोदरें विशाळें। वाटे आकाशासी टेंकण दिधलें। कीं मित्ररथ अडखळे। निराळपंथ क्रमितां हो। ७२ हिरेपाचूचीं सोपानें। एकावरी एक विराजमानें। अवतारचरित्रें ओळीनें। भिंतीवरी जडियेलीं। ७३ चर्यांवरी द्विज आणि श्वापदें। रत्नजडित नाना विधें। पाचूचे रावे विविध

ओर समुद्र रूपी खंदक अति अद्भुत रूप से उमड़ रहा था। ६५ देखिए, स्थान-स्थान पर बुर्ज़ उसी प्रकार जगमगाते थे, जिस प्रकार कनक-पर्वत (मेरु) के पुत्र (जगमगाते) हों। वे (सब) ऊपर-ही-ऊपर से कृष्णनाम लेते हुए गर्जन करते (जान पड़ते) थे। ६६ उन पर तोपें रखी हुई थीं। शस्त्र अपार चमकते थे। बुर्ज़-बुर्ज़ पर मंगल-तूर्य रात-दिन गरजते रहते थे। ६७ तन्त, वितन्त, घन और सुस्वर (जैसे चारों प्रकार के) मनोहर वाद्य बजते रहते थे। उस नाद से समस्त गोपुर नित्य गूँजते रहते थे। ६८ दुर्ग के ऊपर एक पंक्ति में दिव्य कल्पवृक्ष झलकते थे। निश्चय ही ध्वज विद्युत् जैसे अपार चमकते-दमकते थे। ६९ विशाल महाद्वार चमकते थे। नवरत्नों[1] के बने हुए चक्र कान्ति (उत्पन्न करते हुए) प्रदान कर रहे थे। ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर अमरपति इन्द्र आदरपूर्वक (वहाँ) आता-जाता था। ७० मठ, मण्डप, चौराहे चमकते थे। स्त्री-प्रतिमाओं से जटित वे विराजमान थे। सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियों के ऊँचे (-ऊँचे) प्रासाद चमकते-दमकते थे। ७१ जान पड़ता था कि उन विशाल शतखण्डे प्रासादों के रूप में आकाश के लिए टेकान दिया हो। अथवा आकाश-मार्ग तय करते हुए सूर्य का रथ अटकता-रुकता हो। ७२ हीरे और पन्ने के सोपान एक पर एक विराजमान थे। भगवान के अवतारों के चरित्र (-लीलाएँ) एक (-एक) पंक्ति में दीवारों पर जड़े हुए थे। ७३ (उन प्रासादों-दीवारों की) रचना पर नाना प्रकार के पक्षी और श्वापद रत्नों से जटित थे। पन्ने के निर्मित तोते विविध प्रकार के स्वरों में कृष्ण

1 नवरत्न-- देखिए, टिप्पणी 1, पृ० ५५, अध्याय २।

शब्दें। कृष्णलीला गर्जती। ७४ रत्नजडित कळस वरी। अपार दिसती एकसरी। खणोखणीं पुतळ्या सुस्वरी। गाती नाचती संगीत। ७५ त्या सर्व अंगोळिका धरूनियां। गिरक्या घेती पुतळिया। सर्व अलंकारीं डौरलिया। सजीव त्या भासती। ७६ घरोघरीं सजीव सरोवर। नाना तीर्थांचीं कारंजीं अपार। नीळरत्नांचे मयूर। धांवताती स्वइच्छें। ७७ एकाहूनि एक विचित्रें। आळोआळीं सुंदर घरें। गृहीं गृहीं दामोदरें। प्रभाकरें लखलखती। ७८ दामोदरांप्रति कळस। कळसांप्रति रत्नकुंभ विशेष। कुंभांप्रति रत्नें राजस। त्यांवरी हंस खेळती। ७९ हंसांप्रति मुखीं मुक्तमाळा। भक्त भोगिती मुक्तसोहळा। सोहळा हाचि होत आगळा। कीर्तनीं लीला वर्णिती। ८० कीर्तन ऐकतां होती सप्रेम। प्रेमरंगीं उभा मेघश्याम। मेघश्याम तेथें विश्राम। संतजन पावती। ८१ संत तेथें पूर्णज्ञान। ज्ञान तेथें आनंदघन। आनंद तेथें समाधान। समाधानीं सुख असे। ८२ सुख तेथेंचि समाधि। समाधि तेथें तुटे आधि। आधि तुटतां

की लीलाओं का गर्जन (पूर्वक गान) करते थे। ७४ (उन प्रासादों के) ऊपर एक पंक्ति में सम-समान अपार रत्नजटित कलश दिखायी देते थे। खण्ड-खण्ड में प्रतिमाएँ सुस्वर संगीत गाती थीं और नृत्य करती थीं। ७५ वे सब पुतलियाँ (एक-दूसरी की) अँगुलियों को पकड़कर चक्कर लगाती (जान पड़ती) थीं। वे समस्त आभूषणों से सजी हुई थीं और सजीव आभासित होती थीं। ७६ घर-घर जीवित अर्थात पानी भरे सरोवर थे। नाना तीर्थों के अपार फौवारे थे। नील रत्नों से निर्मित मोर अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दौड़ते थे। ७७ गली-गली में एक-से-एक विचित्र सुन्दर घर थे। घर-घर में दालान सूर्य (की किरणों) से जगमगा रहे थे। ७८ प्रासादों पर कलश थे। उन कलशों पर रत्नों से निर्मित विशिष्ट प्रकार के कुम्भ थे। उन कुम्भों में राजस रत्न (जड़े हुए) थे। उनपर हंस खेलते थे। ७९ हंसों के मुँह में मोतियों की मालाएँ थीं। भक्त जन मानो मुक्ति के आनन्दोत्सव का भोग करते थे (आनन्द लूटते थे)। वह आनन्द-समारोह ही अनोखा होता था। (कीर्तनिये) कीर्तन में (श्रीकृष्ण की) लीलाओं का वर्णन करते थे। ८० (लोग) कीर्तन को सुनते (-सुनते) प्रेम से भरे-पूरे हो जाते थे। उनके प्रेम के उस रंग में (मानो) जान पड़ता था कि घनश्याम कृष्ण खड़े हैं। सन्तजन जहाँ श्याम अर्थात कृष्ण हों, वहाँ विश्राम को प्राप्त हो जाते हैं। ८१ जहाँ सन्त हों, वहाँ पूर्ण (आत्म-ब्रह्म-) ज्ञान होता है; जहाँ (ऐसा) ज्ञान हो, वहाँ आनन्द रूपी घन होता है; जहाँ आनन्द हो, वहाँ सन्तोष होता है; (ऐसे) सन्तोष में (आत्म-) सुख होता है। ८२ जहाँ सुख हो, वहीं समाधि होती है; जहाँ समाधि हो, वहाँ आधि (मानसिक कष्ट, चिन्ता

जीवउपाधि। न उरेचि कोठें शोधितां। ८३ उपाधि तुटतां होइजे अभेद। अभेद तेथेंचि पूर्णबोध। बोध तेथें ब्रह्मानंद। परिपूर्ण ठसावला। ८४ ऐसी द्वारका अद्‌भुत। विप्र जातसे विलोकीत। घरोघरीं वेदध्वनी बहुत। शास्त्रचर्चा करिताती। ८५ न्याय मीमांसा सांख्य अद्‌भुत। पातंजल व्याकरण वेदांत। घरोघरीं अष्टमहासिद्धि तिष्ठत। नवनिधींसहित पैं। ८६ आळोआळीं देवालयें सुरंगें। दिव्य हिऱ्यांचीं विशाळ लिंगें। माणिकांचे गणेश आरक्तरंगें। बाळसूर्यवत दिसती। ८७ दोन्ही सुरेख हाटवटिया। रत्ननिबद्ध वोवरिया। व्यवहारिक कस्तूरी घेऊनियां। यथान्यायें विकिती। ८८ घरोघरीं वृंदावनें। हिरियांचीं प्रकाशमानें। वरी तुलसी शोभे हिरवीं पानें। गरुडपाचूंचीं जेवीं जडलीं। ८९ ऐसें तें द्वारकानगर। सर्वलक्षणयुक्त सुंदर। श्रीकृष्णसभेचें मणिमय द्वार। पावला विप्र तेथवरी। ९० द्वारपाळ पुसती तूं कोण।

टूटकर) नष्ट हो जाती है। आधि के नष्ट हो जाने पर खोजने पर भी जीव के लिए उपाधि कहीं शेष रहती नहीं (मिलती)। ८३ उपाधि के टूट जाने पर अभेद (आत्मा-परमात्मा में अद्वैत भाव अनुभव) होता है; जहाँ (ऐसा) अभेद भाव हो, वहीं पूर्ण (आत्म-ब्रह्म-) बोध (ज्ञात) होता है। जहाँ आत्मबोध हो, वहाँ परिपूर्ण रूप से ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) जम गया (समझिए)। ८४ विप्र (सुदामा) ऐसी द्वारका का अवलोकन करते हुए जा रहा था। (उसने देखा कि) घर-घर वेद (-पठन-) की ध्वनि हो रही है; (लोग) शास्त्र सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे। ८५ अद्‌भुत रूप से न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातंजल (योगशास्त्र), व्याकरण और वेदान्त की चर्चा (अथवा पठन-अध्ययन) चल रही थी। घर-घर अष्ट महासिद्धियाँ[1] नवनिधियों[2] सहित प्रतिष्ठित थीं। ८६ गली-गली (मुहल्ले-मुहल्ले) में सुन्दर देवालय थे। (उनके अन्दर) दिव्य हीरों के (बने) विशाल (शिव-) लिंग थे; मानिक रत्न के (बने) लाल रंग वाले गणेशजी बाल सूर्यों जैसे दिखायी देते थे। ८७ दोनों (ओर) सुन्दर हाट (बाज़ार) थे। (वहाँ दूकानों के लिए) रत्न-जटित ओसारे थे। व्यावसायिक लोग (व्यापारी) कस्तूरी लेकर यथान्याय (उचित रूप से) बेचते थे। ८८ घर-घर हीरों के (बने) प्रकाशमान (तुलसी) वृन्दावन थे। उनमें तुलसी के पौधे हरे-हरे पत्तों-सहित शोभायमान थे, मानो वे (पत्ते) गरुड़ पन्नों के पत्तों जैसे जड़े हुए हों। ऐसा था वह (सुन्दरता के) समस्त लक्षणों से युक्त, सुन्दर द्वारका नगर। (रास्ते से आगे बढ़ते-बढ़ते हुए और अवलोकन करते-करते) विप्र सुदामदेव वहाँ तक जा पहुँचा, जहाँ श्रीकृष्ण की

१ अष्ट महासिद्धियाँ—देखिए टिप्पणी २, पृ० ३४, अध्याय १।

२ नव निधियाँ— महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व।

ब्राह्मण अवचितां बोले भिऊन। मी कृष्णाचा बंधु पूर्ण। ऐकोनि सर्व हांसती। ९१ एक म्हणती आर्ष ब्राह्मण। एक म्हणती सत्य वचन। जगद्बंधु रमारमण। आश्चर्य यांत कोणतें। ९२ आडकाठी नाहीं हरीचे द्वारीं। विप्र आंत गेला झडकरी। तों सुधर्मसभा देखिली एकसरी। जेथें मुरारी बैसला। ९३ तेथें शुद्ध पाचूंचीं जोतीं। वरी हिरियांचे स्तंभ झळकती। माणिकांचीं उथाळीं शोभती। पाहतां भुलती शशिसूर्य। ९४ शातकुंभाचीं तुळवट। गरुडपाचूंच्या किलच्या सदट। ते सभेसी वैकुंठपीठ। प्रसन्नवदन बैसला। ९५ किरीटकुंडलेंमंडित पूर्ण। सरळ नासिक आकर्ण नयन। मुख सुहास्य विराजमान। पाहतां मन तन्मय। ९६ कौस्तुभ वैजयंतीवनमाळा। चतुर्भुज मेघसांवळा। पीतांबर झळके जैसी चपळा। कटीं मेखळा वरी विलसे। ९७ चरणीं वांकी तोडर। जो दितिजदर्पहरण समरधीर। सनकसनंदनसनत्कुमार। भक्तसभाशोभित जो। ९८ नारदतुंबरादि प्रमुख।

(राज-) सभा का रत्नमय द्वार था। ८९-९० (उसे देखकर) द्वारपालों ने पूछा, 'आप कौन हैं ?' तो ब्राह्मण यकायक सहमकर बोला, 'मैं श्रीकृष्ण का पूर्ण रूप से बन्धु हूँ'। यह सुनकर सब हँसने लगे। ९१ कुछ एक बोले, 'यह कोई आर्ष (मूर्ख, विक्षिप्त) ब्राह्मण हैं'। कुछ एक बोले, 'यह बात सत्य होगी। रमारमण भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण जगत के बन्धु हैं। (अतः) इसमें कौन-सा आश्चर्य है'। ९२ श्रीहरि के द्वार पर कोई रोकटोक नहीं थी। (अतः) वह ब्राह्मण झट से अन्दर गया। तो उसने अकस्मात सुधर्म (इन्द्रसभा-सी) सभा देखी, जहाँ मुरारि कृष्ण बैठे हुए थे। ९३ वहाँ शुद्ध पन्ने के बने चबूतरे थे। उनपर हीरों के खम्भे जगमगाते थे; मानिक के उत्तलकुम्भ शोभायमान थे। उन्हें देखकर चन्द्र-सूर्य मोहित हो जाते हों। ९४ विशुद्ध सोने की धरनें थीं; गरुड़ पन्ने की बड़ी घनी खपचियाँ थीं। उस सभा (-गृह) में वैकुण्ठपीठ के स्वामी प्रसन्नवदन बैठे हुए थे। ९५ वे किरीट-कुण्डलों से पूर्णतः विभूषित थे; उनकी नाक सीधी थी; नयन आकर्ण (कानों तक फैले, विशाल) थे। मुख पर सुहास्य विराजमान था। उन्हें देखकर (देखनेवाले का) मन तन्मय हो जाता था। ९६ भगवान श्रीकृष्ण ने कौस्तुभ मणि, वैजयन्ती माला, वनमालाओं को धारण किया था। वे चतुर्भुजधारी थे। उनका वर्ण मेघ का-सा साँवला था। (उनका धारण किया हुआ) पीताम्बर विद्युत् जैसा झलक रहा था। ऊपर से (इसके अतिरिक्त) कटि में मेखला शोभायमान थी। ९७ पाँवों में वाँकें और तोड़र पहने थे। जो दैत्यों के घमण्ड का हरण करनेवाले तथा युद्धभूमि में धीर पुरुष (सिद्ध हो चुके) हैं, जो सनक-सनन्दन-सनत्कुमार तथा (अन्य) भक्तों की सभा में शोभायमान होते हैं, उनके सामने नारद-तुम्बरू आदि प्रमुख अतिरसिक

गाती सुस्वर अतिरसिक। उद्धव अक्रूर द्वयभागीं देख। लघु चीर उडविती। ९९ वरूनि ओंवाळिजे कोटि कंदर्प। तैसें दिसे हरीचें जाज्वल्य स्वरूप। कीं अनंत चपळा सांडूनि तीव्र ताप। ऐक्यासी आलिया। १०० ऐसा सभामंडपीं द्वारकाधीश। विप्रें देखिला पुराणपुरुष। द्विजाच्या अंतरीं न माये हर्ष। सप्रेम पुढें चालिला। १०१ हरीनें द्विज देखिला नयनीं। आसन सांडूनि चक्रपाणी। पुढें धांविन्नला ते क्षणीं। विप्राचे चरणीं मिठी घातली। २ द्विजें धरिले दोन्ही कर। आलिंगनीं मिसळला सत्वर। उभयतांचे नेत्रीं प्रेमपूर। न धरत लोटले तेधवां। ३ सुदामा बाळपणींचा मित्र। अत्यंत हरीचें प्रीतिपात्र। म्हणूनि हृदयीं राजीवनेत्र। दृढ धरी न सोडीच पैं। ४ ऐसें आलिंगन दोघांजणीं। दिधलें परी न पुरे धणी। मग हरीनें विप्र हातीं धरूनी। आपुलें आसनीं बैसविला। ५ विप्राचें चरणप्रक्षालन। करी रुक्मिणीमनमोहन। म्हणे वाटेनें चालतां चरण। बहुत तुमचे भागले। ६ पूजा करूनि सकळ। वाद्यगजरेंसीं घननीळ। विप्राचा हस्त धरूनि तत्काळ। सभा विसर्जूनि चालिला। ७ रुक्मिणीच्या

भक्त महिमा, सुस्वर गा रहे हैं और देखिए, उनके दोनों ओर उद्धव और अक्रूर लघुचीर (रूमाल) हिला रहे हैं (हवा कर रहे हैं)। ९८-९९ उनके रूप पर करोड़ों कामदेवों को निछावर कर दें— श्रीहरि का अति तेजस्वी स्वरूप ऐसा दिखायी दे रहा था। अथवा (जान पड़ता था कि) असंख्य बिजलियाँ अपनी प्रखर गर्मी को छोड़कर (उनके रूप में) एक (रूप)-ता को प्राप्त हो गयी हों। १०० विप्र सुदामा ने सभा-मण्डप में ऐसे उन पुराणपुरुष द्वारकाधीश श्रीकृष्ण को (विराजमान) देखा। उस ब्राह्मण के अन्तःकरण में हर्ष नहीं समा रहा था। वह प्रेमपूर्वक आगे चला गया। १०१ (जब) चक्रपाणि श्रीहरि ने अपनी आँखों से उस ब्राह्मण को देखा, तो वे उस क्षण आसन को छोड़कर आगे दौड़े और उसके चरणों में लिपट गये। २ उस ब्राह्मण ने उनके दोनों हाथ थाम लिये और झट से उनका आलिंगन करते हुए वह उनसे मिल गया। उन दोनों के नयनों से प्रेमाश्रुओं के वेगवान प्रवाह रुक नहीं रहे थे; वे तब उमड़ उठे। ३ सुदामा श्रीहरि का बचपन का मित्र था, वह उनका प्रीति-भाजन था। इसलिए कमलनयन कृष्ण ने उसे हृदय से दृढ़तापूर्वक लगा रखा; वे उसे छोड़ ही नहीं रहे थे। ४ इस प्रकार दोनों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया; फिर भी उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हो रही थी। अनन्तर श्रीहरि ने उस विप्र को हाथ पकड़कर अपने आसन पर बैठा लिया। ५ रुक्मिणी-मन-मोहन श्रीकृष्ण ने उस विप्र के चरण धोये और कहा, 'मार्ग में चलते-चलते तुम्हारे चरण बहुत थक गये हैं'। ६ अनन्तर समस्त वाद्यों के गर्जन-सहित उसका पूजन करके घननील श्रीकृष्ण उसका हाथ थामते

गृहाप्रति देख। चालिला जलजोद्भवाचा जनक। रत्नजडित डोल्हारा सुरेख। त्यावरी बैसती दोघेही। ८ सुदामदेव ते अवसरीं। चिंध्यांचे भार सांवरी। पोह्यांची गांठोडी झडकरी। चांचपोनि पाहतसे। ९ दूतीप्रती म्हणे चक्रपाणी। सत्वर बोलावीं रुक्मिणी। येरी निघोनि तेचि क्षणीं। त्रिभुवनजननीजवळी आली। ११० तंव भ्रूसंकेतेंकरूनी। दूतीप्रति पुसे रुक्मिणी। येरी म्हणे शारंगपाणी। बोलाविती आपणातें। १११ पुसे हरीजवळी आहे कोण। येरी म्हणे एक दीन ब्राह्मण। चिंध्यांचे भार दरिद्री पूर्ण। त्यासी जगज्जीवन भेटले। १२ त्यासी न विसंबती क्षणभरी। बैसविला डोल्हारियावरी। ऐसें ऐकतां भीमककुमारी। उठे झडकरी तेधवां। १३ विद्युल्लता जैसी झळकत। तैसा अंचळ भूमीवर रुळत। हंसगती चमकत। हरीजवळी पातली। १४ हरिपदीं करूनि नमन। सवेंचि वंदिला तो ब्राह्मण। येरू देत आशीर्वचन। अनंत कल्याण तुजलागीं हो। १५ श्रीरंग म्हणे रुक्मिणीसी। जैसा बळिभद्र बंधु आम्हांसी। तैसाचि गुरुबंधु निश्चयेंसीं। सुदामदेव जाणिजे। १६ येरी म्हणे जैसा गोरक्षक। तैसेंचि

हुए तत्काल सभा विसर्जित करके चल पड़े। ७ देखिए, कमलोद्भव-जनक विष्णु-स्वरूप कृष्ण रुक्मिणी के भवन के प्रति चले गये। वहाँ रत्न-जटित सुघड़ झूला था। वे दोनों भी उस पर बैठ गये। ८ उस समय सुदामा चिथड़ों के गट्ठर सम्हाल रहा था। वह (समय-समय पर) चिउड़े की गठरी टटोल (-टटोल) कर देख रहा था। ९ चक्रपाणि कृष्ण ने दूती से कहा, 'झट से रुक्मिणी को बुलाओ'। तो वह निकलकर उसी क्षण त्रिभुवन-जननी रुक्मिणी के पास आ गयी। ११० तब भौंह (आँख) के इशारे से रुक्मिणी ने दूती से पूछा; तो वह बोली, 'शाङ्‌र्गपाणि (भगवान श्रीकृष्ण) आपको बुला रहे हैं'। १११ उसने पूछा, 'श्रीहरि के पास कौन है?' तो वह बोली, 'कोई एक दीन ब्राह्मण है। उसके पास चिथड़ों के गट्ठर हैं; वह पूर्ण दरिद्र (जान पड़ता) है। जगज्जीवन श्रीकृष्ण उससे मिले हैं। १२ वे उसे क्षण भर के लिए (भी) दूर नहीं कर रहे हैं। उन्होंने उसे झूले पर बैठा लिया है'। ऐसा सुनते ही भीमक-कुमारी तब झट से उठ गयी। १३ जैसे विद्युल्लता चमकती है, वैसे ही चमकनेवाला उसका आँचल भूमि पर शोभा के साथ झूल रहा था। उस विद्युत्प्राय आंचल के कारण चमकती हुई (-सी जान पड़नेवाली) रुक्मिणी हंसगति से श्रीहरि के पास आ पहुँची। १४ श्रीहरि के पदों को नमस्कार करके, साथ में ही उसने उस ब्राह्मण का वन्दन किया, तो उसने आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारा अनन्त कल्याण हो'। १५ तो श्रीकृष्ण रुक्मिणी से बोले, 'जिस प्रकार बलराम हमारा बन्धु है, उसी प्रकार निश्चय ही सुदामा को (हमारा) गुरु-बन्धु समझो'। १६ तो वह बोली,

दिसतें याचें मुख। आपुला बंधु होय निःशंक। बाळपणींचा वाटतसे। १७ आजिपर्यंत हें रत्न। होतें कोठें ठेविलें झांकून। हरि म्हणे करीं पूजन। आपुल्या हस्तेंकरूनियां। १८ येरी म्हणे द्वारपाळांनीं येतां। पूजा केली असेल तत्त्वतां। हांसें आलें जगन्नाथा। म्हणे विनोद सर्वथा न कीजे। १९ रुक्मिणीनें उदक आणूनि। विप्रपद धुतले ते क्षणीं। म्हणे गुरें राखिलीं बाळपणीं। हिंडतां वनीं उलल्या टांचा। १२० मग नापित आणूनी। श्मश्रुकर्म करविलें ते क्षणीं। नेसावया उत्तम पडदणी। देती आणूनी तेधवां। १२१ त्याच्या चिंध्या गोळा करून। ग्रंथि बांधी जगज्जीवन। रुक्मिणीसी म्हणे मनमोहन। बहुत जतन करून ठेवीं। २२ मार्जन जाहलिया सत्वर। द्विजासी दिधलीं वस्त्रें अलंकार। यादव भोजना बोलाविले समग्र। श्रीकरधरें तेधवां। २३ सोळा सहस्र गोपी नारी। बोलाविल्या त्या अवसरीं। ब्राह्मणाची वार्ता घरोघरीं। श्रुत जाहली तेधवां। २४ आश्चर्य करिती गोपिका। थोर लहान नाहीं वैकुंठनायका। दीनजनांचा पाठिराखा। ब्रीद साच हरीचें। २५ तत्काळ रुक्मिणीच्या

'जैसा कोई गोरक्षक (गोपाल, चरवाहा) हो, उसके जैसा ही इनका मुख दिखायी दे रहा है। निःसन्देह ये आपके बन्धु होंगे, बचपन के (गुरु-बन्धु) जान पड़ते हैं। १७ आपने आज तक इस रत्न को कहाँ छिपाकर रखा था?' (इसपर) श्रीहरि बोले, 'अपने हाथों से इसका पूजन करो'। १८ तो वह बोली, '(इनके) आते (-आते) द्वारपालों ने इनकी सचमुच पूजा की होगी'। (यह सुनकर) जगन्नाथ श्रीकृष्ण को हँसी आयी। वे बोले, 'हँसी-ठठोली बिलकुल न करो'। १९ तो उस क्षण पानी लाकर उस विप्र के चरणों को रुक्मिणी धोने लगी। वह बोली, 'इन्होंने बचपन में गोरू की रखवाली की है; (अतः) वन में घूमते-घूमते इनकी एड़ियाँ फट गयी हैं'। १२० तदनन्तर नाई को लाकर (श्रीकृष्ण ने) उस ब्राह्मण का उस क्षण श्मश्रुकर्म करवाया। तब स्नान के समय पहनने की बढ़िया धोती लाकर उसे पहनने के लिए दे दी। १२१ जगज्जीवन मन-मोहन कृष्ण ने उसके चिथड़े इकट्ठा करके गाँठ लगायी (गट्ठर बना लिया) और रुक्मिणी से कहा, 'इन्हें बहुत रक्षा करके रख दो। २२ स्नान हो जाने पर उन्हें वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। तब श्रीपति कृष्ण ने समस्त यादवों को भोजन के लिए बुला लिया। २३ उस समय पर उन्होंने सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियों— अपनी स्त्रियों को बुलाया और तब ब्राह्मण सम्बन्धी समाचार घर-घर श्रुत (सुनकर विदित) हो गया। २४ गोपिकाओं ने यह जानकर आश्चर्य अनुभव किया। वैकुण्ठ-नायक श्रीकृष्ण के लिए बड़ा-छोटा कोई नहीं है (उनके लिए सब समान हैं); श्रीहरि का यह बाना सच्चा है —वे दीन जनों के सहायक-समर्थक

सदना। आल्या सोळा सहस्र ललना। नमस्कारिती ब्राह्मणा। एक मृगनयना हांसती। २६ आशीर्वाद देतां भागला विप्र। गोपींची दाटी ज्ञाहली थोर। म्हणती भावोजी सत्वर। कंचुक्या आणा आम्हांतें। २७ एक म्हणती आशीर्वाद पाहीं। यांनीं फुकाचा दिधला नाहीं। येथें कंचुक्या कैंच्या कांहीं। पुरवितील तें कळेना। २८ छप्पन्न कोटी यादवांसहित। भोजना बैसला रमानाथ। तितुक्यांसी रुक्मिणी वाढीत। जैसी तळपत चपळा तो। २९ जैसें आंसांत चक्र फिरे। तैसी भीमकी वाढी त्वरें। चुडे झळकती एकसरें। उजेड पडे सर्वांवरी। १३० जेथें वाढीत जगन्माता। देवांसी दुर्लभ तें अन्न तत्वतां। वर्णावें कासया आतां। व्यर्थ ग्रंथ कां वाढवूं। १३१ असो भोजन झालिया ते क्षणीं। विडे दिधले त्रयोदशगुणी। मग श्रीकृष्ण म्हणे विप्रालागुनी। आम्हांसी वहिनीनें काय धाडिलें। ३२ अष्ट नायिका जेवूनि सर्वही। हरीपाशीं आल्या पाहीं। भावोजीनें आणिलें

हैं। २५ तत्काल सोलह सहस्र (एक सौ) ललनाएँ रुक्मिणी के सदन में आ गयीं। उन्होंने उस ब्राह्मण को नमस्कार किया। कुछ एक मृग-नयना स्त्रियाँ हँसने लगीं। २६ उनको आशीर्वाद देते-देते वह विप्र थक गया। (वहाँ पर) उन गोपियों की बड़ी भीड़ हो गयी। वे बोलीं, 'देवरजी, हमारे लिए झट से चोलियाँ लाइए'। २७ कुछ एक बोलीं, 'देखिए, इन्होंने मुफ़्त का आशीर्वाद (तक) नहीं दिया, तो यहाँ (इस स्थिति में) समझ में नहीं आता कि (हमारे लिए) ये कैसे (और कैसी) कुछ कंचुकियों की आपूर्ति करेंगे'। २८ रमानाथ (श्रीकृष्ण) छप्पन करोड़ यादवों-सहित भोजन के लिए बैठ गये; उतनों को (उन सबके लिए) रुक्मिणी परोस रही थी। वह बिजली जैसी चमकती-दमकती थी। २९ जैसे धुरे में (धुरे के चारों ओर) पहिया घूमता है, वैसे (चारों ओर घूमते हुए) रुक्मिणी शीघ्र गति से (चारों ओर बैठे हुए लोगों की थालियों में) परोसती जाती थी। उसकी चूड़ियाँ एक साथ जगमगा रही थीं। (अतः) सब पर प्रकाश पड़ रहा था। १३० जहाँ (साक्षात) जगन्माता परोस रही थी, वहाँ वह अन्न सचमुच देवों के लिए भी दुर्लभ था। अब उसका वर्णन किसलिए करें? (वैसा करके) मैं ग्रन्थ को व्यर्थ क्यों बढ़ा दूँ। १३१ अस्तु। भोजन के हो जाने पर (होते ही) उस क्षण तेरह गुणों से युक्त बीड़े[1] दिये। अनन्तर श्रीकृष्ण उस विप्र से बोले, 'भाभी ने हमारे लिए क्या भेजा है'। ३२ आठों (मुख्य) नायिकाएँ (स्त्रियाँ) —सभी भोजन के हो जाने पर, देखिए, श्रीकृष्ण के पास आ गयीं। (उन्हें लगा—) देवर जी कुछ लाये होंगे —(इसलिए) वे झट से गठरी ले

---

१ त्रयोदशगुणयुक्त बीड़ा—देखिए टिप्पणी १, पृ० ११२, अध्याय ४।

असेल कांहीं। गांठोडें लवलाहीं आणिलें। ३३ रुक्मिणी खूणगांठी दावीत। म्हणे बंधूची संपत्ति पहा त्वरित। श्रीकृष्ण स्वहस्तें सोडीत। गोपी पाहती भोंवत्या। ३४ मग गांठोडिया सोडून सकळिक। पोहे घेत जगन्नायक। एक ग्रास मुखीं घेतला देख। तंव हस्त धरी रुक्मिणी। ३५ मनांत तर्क करी रुक्मिणी। तीन ग्रास पोहे भक्षूनी। त्रिभुवनांचें राज्य यालागूनी। देईल आतां परमात्मा। ३६ म्हणवूनि एक ग्रास घेतां गोविंदें। रुक्मिणीनें हस्त धरिला विनोदें। म्हणे भोंवतीं ललनांची वृंदें। त्यांसी प्रसाद देइंजे। ३७ तों सत्यभामा म्हणे ते क्षणीं। आम्हीं सोळा सहस्र जणी। एक एक दाणा मोडूनी। वांटितांही पुरेना। ३८ म्हणे वो द्विजवरा एक ऐकावें। पुनरपि गांवासी परतोनि जावें। अवघ्यांपुरते पोहे आणावे। ऐशाचि ग्रंथी बांधोनियां। ३९ पोहे न देतां निवाडें। नेदूं तुमचें गांठोडें। कालिंदी म्हणे कासया कोडें। इतुकें यांसी घालितां। १४० इतुकेंचि करा सुदामदेवा। कंचुक्यांचा विचार पहावा। आम्हां अवघियां गौरवा। नाहींतरी गांवा जाऊं नेदूं। १४१ तों जांबुवंती म्हणे ते क्षणीं। या चिध्यांच्या तारा वेगळ्या

आयीं। ३३ रुक्मिणी ने वे (सब) संकेत गाँठें (ऐसी गाँठें जो किसी बात का स्मरण दिलाने के लिए वस्त्र में लगायी जाती हैं) दिखायीं और बोली, 'अपने बन्धु की सम्पत्ति झट से देख लीजिए'। तो श्रीकृष्ण ने (उनको) अपने हाथों से खोल डाला। चारों ओर से (खड़ी) गोपियाँ यह देख रही थीं। ३४ अनन्तर समस्त गठरियों को खोलकर जगन्नायक कृष्ण ने (उनके अन्दर रखा हुआ) चिउड़ा ले लिया। देखिए, उन्होंने एक कौर (मुट्ठी भर चिउड़ा) मुँह में डाल दिया, तो रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया। ३५ रुक्मिणी मन में अनुमान कर रही थी कि तीन कौर चिउड़ा खाकर परमात्मा श्रीकृष्ण इनको अब त्रिभुवन का राज्य प्रदान करेंगे। ३६ इसलिए गोविन्द द्वारा एक कौर ग्रहण करते ही रुक्मिणी ने हँसी-हँसी में उनका हाथ पकड़ लिया। और कहा, 'चारों ओर स्त्रियों के वृन्द (टोलियाँ) खड़े हैं, उनको तो प्रसाद दीजिए'। ३७ तो उस क्षण सत्यभामा बोली, 'हम सोलह सहस्र (एक सौ आठ) जनी हैं। एक एक दाने को काटकर (तोड़कर) बाँटने से भी यह पर्याप्त नहीं होगा'। ३८ वह (फिर) बोली, 'हे द्विजवर, आप फिर से अपने ग्राम लौटकर जाइए; (और) सबके लिए (पर्याप्त) चिउड़ा ऐसी ही गाँठें (गठरियाँ) बाँधकर ले आइए। ३९ ठीक से चिउड़ा न देने पर आपका यह गट्ठर हम नहीं देंगी'। तो कालिन्दी बोली, 'इनके लिए इतनी पहेली क्यों बुझा रही हो। १४० हे सुदामजी, आप इतना ही करें। कंचुकियों का विचार करके देखिए। (कंचुकियाँ देकर) हम सबका गौरव कीजिए। नहीं तो आपको ग्राम जाने नहीं देंगी'। १४१ तब उस क्षण जाम्बवती ने कहा,

करूनी। घ्या वांटूनि अवघ्याजणी। कांहीं मनीं रुसूं नका। ४२ तों लक्ष्मणा म्हणे विप्रातें। कुंकुमचि द्यावें आम्हांतें। तों मित्रविंदा म्हणे द्विजातें। पहा वरतें आम्हांकडे। ४३ आजिचा दिवस क्षमा केली जाणा। उदयीक पहा चोळ्यांची विचारणा। याज्ञजिती म्हणे वो ब्राह्मणा। गांठोडें ठेवा मजपाशीं। ४४ भद्रावती म्हणे चोरूनी। धोतराच्या तारा जाईल घेऊनी। म्हणे भावोजी गांठोड्यासी खूणगांठ देऊनी। माझ्याचि आधीन करावें। ४५ तंव रेवती म्हणे यादवेंद्रा। या गांठोड्यावरी करावी खूणमुद्रा। बंधूचें ठेवणें जतन करा। ऐकतां श्रीधरा हास्य आलें। ४६ मग श्रीकृष्णें गांठोडें बांधिलें। रुक्मिणीच्या स्वाधीन केलें। सत्यभामा म्हणे तंतु मोजिले। आहेत किती ते श्रीरंगा। ४७ लज्जित खालीं पाहे विप्र। कोणासी नेदी प्रत्युत्तर। सत्यभामेसी म्हणे दामोदर। किती विनोद कराल गे। ४८ हा बळिरामापरीस अधिक। सुदामा बंधु माझा देख। सभे बैसला जगन्नायक। सुदाम्यासी घेऊनियां। ४९ वस्त्रें करोनि केशरी। मृगमदाचे ठसे त्यावरी। नेसल्या सोळा सहस्र नारी। वास

'इन धज्जियों के तार (धागे) अलग (-अलग) करके सब जनी बाँट लो। मन में कुछ रूठ न जाना'। ४२ तो लक्ष्मणा उस विप्र से बोली, 'हमें कुंकुम ही दे दें'। तब मित्रविन्दा उस ब्राह्मण से बोली, 'ऊपर हमारी ओर देखिए। ४३ समझिए कि आज के दिन क्षमा किया। (फिर भी) कल चोलियों की बात सोचकर देखिए'। (इसपर) याज्ञजिती बोली, 'हे ब्राह्मण, गठरी मेरे पास रख दीजिए'। ४४ तो भद्रावती बोली, 'ये तो धोती के धागे चुराकर ले जाएँगे'। फिर वह बोली, 'देवरजी, इस गट्ठर में स्मरण दिलानेवाली संकेत-गाँठ लगाकर इसे मेरे ही अधीन कर दीजिए (मेरे ही हवाले कर दीजिए)। ४५ तब रेवती बोली, 'हे यादवेन्द्र, इस गठरी पर (पहचानने के लिए) संकेत-मुद्रा अंकित कीजिए और अपने बन्धु की धरोहर की रक्षा कीजिए'। यह सुनते ही श्रीकृष्ण को हँसी आयी। ४६ अनन्तर श्रीकृष्ण ने उस गठरी को बाँध लिया और उसे रुक्मिणी के हवाले कर दिया। तो सत्यभामा बोली, 'हे श्रीरंग, (क्या) आपने गिन तो लिया (न) कि तन्तु कितने हैं'। ४७ (ये सारी बातें सुनते समय) लज्जित होकर वह विप्र नीचे देख रहा था। उसने किसी को प्रत्युत्तर नहीं दिया। तो श्रीकृष्ण सत्यभामा से बोले, 'अरी, कितनी हँसी-ठठोली करोगी। ४८ देखो, बलराम से भी अधिक (प्रिय) यह मेरा बन्धु सुदामा है'। (तदनन्तर) जगन्नायक श्रीकृष्ण सुदामा को लेकर सभा में बैठ गये। ४९ (श्रीकृष्ण की) सोलह सहस्र (एक सौ आठ) नारियाँ वस्त्रों को केसरिया बनाकर (रंगकर) उनपर कस्तूरी की मुद्राएँ अंकित करके पहन गयीं थीं। उनकी सुगन्ध आकाश

अंबरीं न समाये। १५० तों सभेसी आलीं कळापात्रें। श्रीची लीला वर्णिती विचित्रें। त्या गौरविल्या राजीवनेत्रें। वस्त्रें भूषणें देवोनियां। १५१ सभारंग झालिया वरी। सुदामदेवा धरूनि करीं। श्रीहरि प्रवेशले मंदिरीं। मंचकावरी निजविला। ५२ ब्राह्मणासी आपुले हातें। रगडिलें श्रीकृष्णनाथें। हृदयीं धरिलें द्विजपदांतें। श्रीवत्सलांछन मिरवी जो। ५३ ब्राह्मणसेवा नारायण। स्वयें करीतसे आपण। जो ब्राह्मणाचा करी अपमान। तो अनेक पतनें भोगील। ५४ ब्राह्मणतीर्थ नित्य घेतां। महारोग जाती तत्त्वतां। जो पुरवी ब्राह्मणमनोरथां। रमानाथा आवडे तो। ५५ धन धान्य वस्त्रें अलंकार। देवोनि सुखी करिती विप्र। त्यांचे मंदिरीं श्रीधर। राहे सदा सर्वदा। ५६ समयीं आलिया ब्राह्मण। त्यासी अगत्य द्यावें भोजन। यथाशक्ति द्यावें दान। तेणें जगज्जीवन संतोषे। ५७ नेणे कांहीं आचारविचार। एक ब्राह्मणभक्ति उदार। कंसारि त्याचा संसार। आपण

में भी नहीं समा रही थी। १५० तब कलाकार स्त्रियाँ (नर्तन-गायन कला में निपुण नारियाँ) सभा (-गृह) में आ गयीं। उन्होंने श्रीकृष्ण की विचित्र लीला का वर्णन किया। तो कमलनयन श्रीकृष्ण ने उन्हें वस्त्र और आभूषण देकर गौरवान्वित किया। १५१ सभा का मनोरंजन (कार्यक्रम) समाप्त हो जाने पर श्रीहरि सुदामा (के हाथ) को अपने हाथ में लिये हुए अपने प्रासाद में प्रविष्ट हो गये और उसे उन्होंने पलंग पर पौढ़ा दिया। ५२ जो अपने हृदयस्थल पर श्रीवत्सलांछन (चिह्न)[1] अभिमानपूर्वक अंकित रखे हुए घूमते हैं, उन श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से उस ब्राह्मण का मर्दन किया। (फिर) उस ब्राह्मण के चरणों को हृदय से लगाये रखा। ५३ भगवान नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण ने (इस प्रकार) स्वयं ब्राह्मण की सेवा की। जो ब्राह्मण का अपमान करता है, वह अनेक प्रकार के अधःपात (नरक-वास) का उपभोग करेगा। ५४ ब्राह्मण के (चरण-) तीर्थ को नित्य ग्रहण करने पर सचमुच बड़े-बड़े रोग (नष्ट हो) जाते हैं। जो ब्राह्मणों के मनोरथों को पूर्ण करता है, वह रमानाथ भगवान को प्रिय लगता है। ५५ जो धन, धान्य, वस्त्र, आभूषण देते हुए विप्रों को सुखी कर देता है, भगवान श्रीधर (लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप कृष्ण) उनके भवनों में नित्यप्रति निवास करते हैं। ५६ (भोजन के) समय पर किसी ब्राह्मण के आ जाने पर उसे अवश्य (प्रेमपूर्वक) भोजन करा दें। उसे यथाशक्ति दान दें। उससे जगज्जीवन भगवान (श्रीकृष्ण) सन्तोष को प्राप्त हो जाते हैं। ५७ जो कोई भी (धर्म-सम्बन्धी) आचार-विचार नहीं जानता हो, फिर भी वह (व्यक्ति) ब्राह्मण-भक्ति जैसी एक बात करता हो, तो भी कंसारि श्रीकृष्ण उसकी घर-

१ श्रीवत्सलांछन— देखिए टिप्पणी १, पृ० ५८, अध्याय २।

अंगें गोड करी । ५८ ब्राह्मणाचा अपमान । सत्पात्रीं नेदी कदा दान । वेश्येसी अर्पी अर्थ प्राण । तो वैरी पूर्ण श्रीहरीचा । ५९ जयाचे मुखीं तृप्त जगन्नाथ । आणि हृदयीं मिरवी पदांकित । त्याचा जो अव्हेर करीत । तो वैरी पूर्ण श्रीहरीचा । १६० नावडे श्रवण कीर्तन । सत्समागम द्विजपूजन । ब्राह्मण देखतांचि विटे मन । तो वैरी पूर्ण श्रीहरीचा । १६१ कीर्तनीं जाय तों निद्रा येत । सदा सर्वदा व्यसनासक्त । सत्पात्र देखतांचि विन्मुख होत । तो वैरी पूर्ण श्रीहरीचा । ६२ मी एक विष्णुभक्त बहुत । म्हणोनि शिवाची निंदा करीत । शिवभक्त येतां तिरस्कारीत । तो वैरी पूर्ण श्रीहरीचा । ६३ मी शिवभक्त सदाचारी । म्हणोनि विष्णूची निंदा करी । जो गुरुवचनीं विश्वास न धरी । तो वैरी पूर्ण श्रीहरीचा । ६४ हें असो बोलणें बहुत । श्रीहरि सुदामदेवाचे पाय चुरीत । विप्र धरी हरीचे हस्त । म्हणे तूं रमानाथ जगद्गुरु । ६५ हरि पहुडला मंदिरीं । मन्मथजननीचे सेजेवरी । निद्रा न

गिरस्ती स्वयं अपने हाथों मधुर (सुखपूर्ण) बना देते हैं । ५८ जो ब्राह्मण का अपमान करता हो, सुयोग्य (सत्पात्र) व्यक्ति को कभी भी दान नहीं देता हो और (उधर) किसी वेश्या को अपना धन और अपने प्राण अर्पित करता हो, वह श्रीहरि का पूर्ण वैरी होता है (माना जाता है) । ५९ जिसके मुख से (भोजन करने से) भगवान जगन्नाथ तृप्त हो जाते हैं और भृगु ऋषि के पद-चिह्न हृदय पर धारण करते हैं, उसका जो अनादर करता हो, वह श्रीहरि का पूर्ण वैरी होता है । १६० जिसे श्रवण और कीर्तन, सत्समागम (सन्तों, साधु पुरुषों की संगति), ब्राह्मण का पूजन नहीं भाता, ब्राह्मण को देखते ही जिसका मन अरुचि या घिन को प्राप्त हो जाता है, वह श्रीहरि का पूर्ण वैरी होता है । १६१ (जब) कीर्तन में जाता है, तो, तब जिसे निद्रा आती है, जो सदा व्यसन में आसक्त होता है, सत्पात्र (दान या आदर, भक्ति करने योग्य) व्यक्ति को देखते ही जो उससे विमुख होता है (उससे मुँह फेरता है), वह श्रीहरि का पूर्ण वैरी होता है । ६२ ऐसा कहकर कि मैं एक बड़ा विष्णुभक्त हूँ, जो शिवजी की निन्दा करता है, शिव-भक्त के आने पर उससे जो तिरस्कार करता है, वह श्रीहरि का पूर्ण वैरी होता है । ६३ 'मैं शिवभक्त हूँ, सदाचारी हूँ' —ऐसा कहते हुए जो विष्णु की निन्दा करता है, जो गुरु के वचन पर विश्वास नहीं धारण करता, वह श्रीहरि का पूर्ण वैरी होता है । ६४ यह तो बहुत बोलना हुआ । (इधर) श्रीहरि सुदामा के पांव दबाने लगे, तो उस ब्राह्मण ने श्रीहरि के हाथ पकड़े और कहा, 'तुम तो रमानाथ हो, जगद्गुरु हो' । ६५ श्रीहरि मुरारि (तदनन्तर) अपने प्रासाद में कामदेव प्रद्युम्न की जननी रुक्मिणी की शय्या पर पौढ़े, तो उन्हें

येचि मुरारी। चिंता करी तेधवां। ६६ म्हणे रुक्मिणी परियेसीं। सुदामयाचें कुटुंब उपवासी। अन्नाविण अहर्निशीं। पीडताती अपत्यें। ६७ सेजे उठोनि गोविंद। जो जगद्गुरु मूलकंद। विश्वकर्म्यासी परमानंद। आज्ञा करीत तेधवां। ६८ म्हणे द्वारकापुरी सुंदर। तैसेंचि करीं सुदामपुर। सर्व संपदा भरोनि सत्वर। शीघ्र येईं रजनीमाजी। ६९ ऐसें सुवर्णनगर चांगलें। तत्काळ तेणें रचिलें। सर्व संपदा भरिल्या ते वेळे। विचित्र केलें तेधवां। १७० असो एक मासपर्यंत। सुदाम्यासी राहविलें तेथ। घरोघरीं विप्रासी नेत। पाहुणेर करावया। १७१ सत्यभामादि समस्त नारी। नित्य सोहळा करिती घरोघरीं। विप्र अत्यंत चिंता करी। कुटुंबाची तेधवां। ७२ हरीसी विनवी सुदामा। आतां आज्ञा द्यावी जी आम्हां। हरि म्हणे विप्रोत्तमा। अवश्य जावें आतांचि। ७३ परी एक ऐका जी सुदामदेवा। हे अलंकार वस्त्रें फेडूनि ठेवा। चिध्यांचें गांठोडें तेधवां। जवळी ठेविलें विप्राचें। ७४ ब्राह्मणें चिध्या घेऊनी। वस्त्रें अलंकार ठेविले तेचि क्षणीं। परम शीण पावला मनीं। म्हणे कर्माची करणी दुर्धर। ७५ आम्हांसी भोगणें

निद्रा नहीं आ रही थी। वे तब चिन्ता कर रहे थे। ६६ वे बोले, 'सुनो हे रुक्मिणी! सुदामा का परिवार निराहार है। बच्चे बिना अन्न के दिन-रात पीड़ा को प्राप्त हो रहे हैं'। ६७ जो जगद्गुरु हैं, जो जगत् के मूल कन्द हैं, उन परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ने तदनन्तर शय्या पर से उठकर विश्वकर्मा अर्थात ब्रह्मा को उस समय आज्ञा दी। ६८ वे बोले, '(तुम्हारे द्वारा निर्मित यह) द्वारकापुरी सुन्दर है। सुदामा के नगर को वैसे ही कर दो। (वहाँ जाकर) समस्त सम्पत्तियाँ उसमें भरकर रात (ही) में शीघ्रता से आ जाओ'। ६९ (तदनुसार) उस (विधाता) ने तत्काल एक अच्छा सुवर्ण-नगर निर्मित किया। उस समय उसमें सब (प्रकार की) सम्पत्तियाँ भर दीं। तब उसने उसे विचित्र रूप दिया। १७० अस्तु। श्रीकृष्ण ने सुदामा को वहाँ (द्वारका में) एक मास तक ठहरा लिया। वे उस विप्र का आतिथ्य कराने के लिए घर-घर ले जाते थे। १७१ सत्यभामा आदि समस्त स्त्रियों ने घर-घर नित्यप्रति आनन्दोत्सव सम्पन्न किया। (परन्तु इधर) उस समय वह ब्राह्मण अपने परिवार-सम्बन्धी अत्यधिक चिन्ता करता रहा। ७२ (एक दिन) सुदामा ने श्रीहरि से विनती की, 'अहो, हमें अब आज्ञा दो'। तो श्रीहरि बोले, 'हे विप्रोत्तम, अवश्य, अभी चले जाना। ७३ परन्तु हे सुदामा, एक (बात) सुनो। ये आभूषण और वस्त्र उतारकर रख दो'। उस समय उस विप्र का चिथड़ों का गट्ठर (उसके) पास (अर्थात उसके सामने) रख दिया। ७४ उस ब्राह्मण ने धज्जियों को लेकर उसी क्षण वस्त्रों और आभूषणों को उतारकर रख दिया। वह (इससे) मन में परम दुःख को

पूर्ण दरिद्र । त्यासी काय करील यादवेंद्र । शिवाआंगीं ज्रडले फणिवर । परी समीर आहार चुकेना । ७६ कीं शिवमस्तकीं मृगांक । परी न जाय त्याचा कलंक । माझें अदृष्ट पाठमोरें देख । कमलानायक काय करी । ७७ घेऊनि चिंध्यांचे भार । दडदडां चाले विप्र । बोळवीत आला यदुवीर । नगराबाहेर बंधूसी । ७८ विप्र सद्‌गद होऊनी । म्हणे जी रहावें आतां शारंगपाणी । मग श्रीकृष्णमूर्ति विलोकूनी । अश्रु नयनीं आणिले । ७९ आज्ञा घेऊनि त्वरित । वेगें विप्र असे जात । म्हणे जाहला असेल कुटुंबघात । एक मास लोटला । १८० नगराजवळीं आला त्वरित । तों द्वारकावती समीप आली वाटत । दिव्य दामोदरें लखलखत । कळस झळकत चहूंकडे । १८१ म्हणे रे जगदीशा चुकलों पंथ । कीं दृष्टि तरळते निश्चित । अहा कृष्णा मी जाहलों भ्रमित । आप आपणातें विसरलों । ८२ वेडावला पाहे ब्राह्मण । कां मी द्वारकेसी आलों परतोन । तंव लोक येती गांवांतून । त्यांसी विप्र पुसतसे । ८३ ग्रामाचें नाम सांगा झडकरी । लोक म्हणती हे

प्राप्त हुआ । वह बोला (उसे लगा), ‘ कर्म की करनी दुर्धर होती है । ७५ हमें पूर्ण दरिद्रता का भोग करना है, उसके लिए (उसमें) यादवेन्द्र क्या कर सकेंगे । शिवजी के शरीर में सर्प जड़ गये हैं (लिपट गये हैं), फिर भी उन (सर्पों) के लिए वायु का आहार नहीं टलता । ७६ अथवा शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा (विराजमान) है; फिर भी उस (चन्द्र) का कलंक नहीं मिट गया है । देखिए, मेरा दैव मेरे प्रति विमुख हो गया है, तो उसमें कमलापति भगवान विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण क्या कर सकते हैं ’ । ७७ धज्जियों के उन गट्ठरों को लिये हुए वह विप्र शीघ्र गति से चल पड़ा, तो यदुवीर श्रीकृष्ण अपने उस (गुरु-) बन्धु को बिदा करते हुए नगर के बाहर आ गये । ७८ तो वह विप्र बहुत गद्‌गद होकर बोला, ‘ अहो, शाङ्‌र्गपाणि, अब रुक जाओ ’ । अनन्तर श्रीकृष्ण की मूर्ति को देखकर वह नयनों में (जल) भर लाया —अर्थात उसके नयनों में आँसू आ गये । ७९ झट से उनसे आज्ञा लेकर (बिदा होकर) वह विप्र वेगपूर्वक जाने लगा । उसने कहा (सोचा)— ‘ परिवार का नाश हुआ होगा— एक मास बीत गया है ’ । १८० वह शीघ्रता से (अपने) नगर के पास आ गया, तो उसे द्वारावती समीप आयी हुई जान पड़ी । (उसमें) दिव्य प्रासाद जगमगा रहे थे । चारों ओर कलश चमक-दमक रहे थे । १८१ वह बोला, ‘ हे जगदीश, मैं मार्ग भूल गया हूँ । अथवा मेरी दृष्टि (आँखें) निश्चय ही चौंधिया जा रही हैं । अहा, कृष्ण, मैं भ्रम में पड़ा हूँ, अपने-आप को भूल गया हूँ ’ । ८२ देखिए, वह ब्राह्मण (मानो) मूढ़ता को प्राप्त हुआ । (उसने सोचा—) क्या मैं द्वारका के प्रति लौटकर (तो नहीं) आया हूँ ? तब लोग उस ग्राम के अन्दर से आ रहे थे । उस विप्र ने उनसे पूछा । ८३

सुदामपुरी। ब्राह्मण म्हणे अंतरीं। विनोद करिती माझा हे। ८४ तों भेटले गोरक्षक समोर। त्यांसी पुसे हें कोणाचें खिल्लार। येरू म्हणती सुदामदेव विप्र। त्याचीं साचार गोधनें हीं। ८५ मग ब्राह्मण चहूंकडे पाहे स्तब्ध। म्हणे हे अवघेचि करिती विनोद। तंव दळभार करूनि सिद्ध। प्रधान येती सामोरे। ८६ गज तुरंग महारथ। देखोनि ब्राह्मण भयभीत। म्हणे माझें कुटुंब समस्त। काय जाहलें कळेना। ८७ माझी झोंपडी होती ये स्थळीं। ती कोणीं मोडूनि टाकिली। माझी बाळें बहुतेक मेलीं। महादुष्काळेंकरूनियां। ८८ तंव जवळीं आले प्रधान। करिती साष्टांग नमन। दिव्य देह पावला ब्राह्मण। जाहला सुलक्षण नृपवर। ८९ दिव्य वस्त्रें अलंकार। प्रधान लेवविती सत्वर। पुढें होत वाद्यांचा गजर। तंव प्रजा समस्त नमस्कारिती। १९० गजस्कंधीं बैसविला विप्र। मागें पुढें वेष्टित दळभार। मिरवत चालिला निजमंदिर। तंव पुढें पुत्र देखिले। १९१ सुलक्षण अतिसुंदर। लेवविलीं वस्त्रें अलंकार। मनांत आनंदला विप्र। म्हणे श्रीधर तुष्टला। ९२ तंव बाहेर आली ती ललना। जैसी स्वर्गाहूनि

'इस ग्राम का नाम झट से बताइए'। तो लोग बोले, 'यह तो सुदामपुरी है'। (वह सुनकर) ब्राह्मण मन में बोला, 'ये मेरी हँसी उड़ा रहे हैं'। ८४ तब सामने गोरक्षक (चरवाहे) मिले, उनसे उसने पूछा, 'यह किसका रेवड़ है?' तो वे बोले, 'सुदामा नामक विप्र हैं। सचमुच उनके ये गोधन हैं'। ८५ तब वह ब्राह्मण चौंककर चारों ओर देखने लगा और बोला, 'ये सब हँसी कर रहे हैं'। तब सेनादल सिद्ध (सुसज्जित) करके मंत्री (अगुवानी के लिए) सामने आये। ८६ वह ब्राह्मण हाथियों, घोड़ों, महारथों को देखकर भयभीत हो उठा और बोला, 'समझ में नहीं आ रहा है कि मेरे समस्त परिवार का क्या हुआ। ८७ इस स्थान पर मेरी झोंपड़ी थी, उसे किसने तोड़ डाला! कदाचित मेरे बच्चे इस बड़े अकाल के कारण मर गये होंगे'। ८८ तब मंत्री पास आ गये। उन्होंने साष्टांग नमस्कार किया। (इधर) ब्राह्मण (सुदामा) दिव्य देह को प्राप्त हुआ; वह सुलक्षणों से युक्त नृपवर हो गया। ८९ मंत्रियों ने उसे दिव्य वस्त्र और आभूषण झट से धारण करवाये। आगे (-आगे) वाद्यों का गर्जन हो रहा था। तब समस्त प्रजाजनों ने उसे नमस्कार किया। १९० उन्होंने उस विप्र को हाथी के कन्धे पर बैठा दिया; पीछे और आगे सेना-दल ने उसे घेर लिया था। (इस प्रकार) ठाटबाट से घूमता हुआ वह अपने प्रासाद के प्रति चला जा रहा था। तब उसने सामने अपने पुत्रों को देखा। १९१ वे शुभ लक्षणों से युक्त, अति सुन्दर (दिखायी दे रहे) थे। उन्हें (दिव्य) वस्त्र और आभूषण पहना दिये गये थे। (यह देखकर) विप्र सुदामा मन में आनन्दित हो उठा। वह बोला,

उतरली देवांगना । वेगें करी निंबलोणा । लागे चरणां पतीच्या । ९३ प्रधानीं मुहूर्त पाहोनी । विप्र बैसविला सिंहासनीं । वरी छत्र धरियेलें ते क्षणीं । तो उत्साह पाहती जन । ९४ जैसा परीस झगटतां तत्काळीं । लोह सुवर्ण होय ते वेळीं । तैसी सुदाम्याची दशा जाहली । पूर्ण वनमाळी तुष्टला । ९५ ऐका नवल केलें गोपाळें । मुष्टिभर पोहे भक्षिले । इंद्रपदतुल्य राज्य दिधलें । सुदामयासी प्रीतीनें । ९६ हरिविजय ग्रंथ समग्र । हेंचि केवळ द्वारकापूर । रुक्मिणीसहित यादवेंद्र । नांदे तेथें सर्वदा । ९७ नाना दृष्टांत परिकर । हेचि केवळ यादवभार । पूर्ण ब्रह्मानंद अतिउदार । श्रीधरवरद अभंग सदा । ९८ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । प्रेमळ भक्त सदा परिसोत । एकोनत्रिंशतितमाध्याय गोड हा । १९९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

'श्रीधर श्रीकृष्ण (मुझपर) तुष्ट हो गये हैं'। ९२ तब (तक) उसकी स्त्री बाहर आयी, जैसे स्वर्ग से देवांगना उतर आयी हो । उसने शीघ्रता-पूर्वक राई-नोन उतार लिया और वह अपने पति के चरणों में लग गयी । ९३ (इधर) मंत्रियों ने मुहूर्त देखकर (खोजकर निर्धारित करके) विप्र सुदामा को सिंहासन पर बैठा दिया । उस क्षण (उसके ऊपर राज-) छत्र धरवा दिया । लोग उस समारोह को देख रहे थे । ९४ जिस प्रकार पारस के घिसते ही लोहा तत्काल, उसी समय सोना बन जाता है, उसी प्रकार सुदामा की स्थिति हो गयी । वनमाली श्रीकृष्ण उसपर पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गये । ९५ सुनिए, गोपाल कृष्ण ने (क्या) चमत्कार किया । मुट्ठी भर चिउड़ा खाया (और) प्रीतिपूर्वक सुदामा को इन्द्रपद-तुल्य राज्य प्रदान किया । ९६ (इस ग्रन्थ में प्रस्तुत) नाना सुन्दर दृष्टान्त ही केवल यादव-दल हैं । भगवान श्रीकृष्ण रूपी आनन्दस्वरूप ब्रह्म पूर्णतः अति उदार हैं । (मुझ) श्रीधर के वे वरदाता सदा अभंग हैं । १९७-१९८

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । प्रेममय भक्त उसके इस मधुर उन्तीसवें अध्याय का श्रवण करें । १९९

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३०

[सत्यभामा-गर्व-हरण]

श्रीगणेशाय नमः ।। जय जय वेदवंद्या सकळसारा । मन्मथजनका त्रिभुवनसुंदरा । ब्रह्मानंदा अतिउदारा । द्वारकानगरविलासिया । १ तुझें उदारपण अति थोर । बिभीषणें केला एक नमस्कार । त्यासी त्वां दिधलें लंकानगर । जोंवरी शशिमित्र असती पैं । २ आणि सुदामा अत्यंत दरिद्री । त्यासी द्वारकातुल्य दिधली नगरी । पूर्वीं कंस मारूनि मथुरापुरीं । उग्रसेन स्थापिला । ३ सुग्रीवासी दिधली किष्किंधा । वाली पाठविला निजपदा । पांडवपालका गोविंदा । भक्त निजपदा स्थापिसी । ४ पूर्वाध्यायीं कथन जाहलें । सुदामयासी राज्य दिधलें । यावरी द्वारावतीसी वर्तलें । तेंचि परिसा श्रोते हो । ५ द्वारकेसी असतां अनंत । जो सच्चिदानंदमूर्ति अमूर्त । रात्रिवेळे कृष्णनाथ । मंदिरा येत सत्यभामेच्या । ६ तंव तो मित्रविंदेचा दिवस । विसरोनियां हृषीकेश । सत्यभामेच्या मंदिरास । अवचित आला

श्रीगणेशाय नमः । हे वेद-वन्द्य, हे सकल (चराचर सृष्टि) का सार (तत्त्व), हे मन्मथ अर्थात कामदेव-प्रद्युम्न के पिता, हे त्रिभुवन-सुन्दर, हे आनन्दस्वरूप ब्रह्म (हे ब्रह्मानन्द), हे अति उदार (-चरित, प्रभावशाली), हे द्वारका नगर में विलास करनेवाले, जय हो, जय हो । १ आपकी उदारता अति महान है । विभीषण ने आपको नमस्कार किया, तो आपने (उससे उसपर प्रसन्न होकर) जब तक चन्द्र और सूर्य होंगे, तब तक के लिए लंका नगर (का राज्य) प्रदान किया । २ और सुदामा तो अत्यधिक दरिद्र था; उसे द्वारका-तुल्य नगरी प्रदान की । पूर्वकाल में कंस को मारकर मथुरापुर में (राजगद्दी पर) उग्रसेन की प्रतिष्ठापना की । ३ आपने पूर्वकाल में (रामावतार काल में) सुग्रीव को किष्किन्धा नगरी दी; वालि को अपने पद को भेज दिया अर्थात सलोकता नामक मुक्ति प्रदान की । हे पाण्डवों के पालक, हे गोविन्द, आप भक्तों को अपने पद पर स्थापित करते हैं । ४ (इसके) पूर्ववर्ती अध्याय में यह कथन हुआ कि (श्रीकृष्ण ने) सुदामा को (सुदामपुरी का) राज्य प्रदान दिया । हे श्रोताओ, अब वही सुनिए जो इसके पश्चात द्वारावती में घटित हुआ । ५

द्वारका में रहते समय अनन्त कृष्णनाथ, जो (वस्तुतः) सत्, चित् और आनन्द की (साक्षात) मूर्ति हैं, (वस्तुतः) अमूर्त (होने पर भी भक्तों के लिए मूर्त रूप धारण किए हुए) हैं, (एक दिन) रात के समय सत्यभामा के भवन आ गये । ६ तब तो वह मित्रविन्दा (के यहाँ व्यतीत करने) का (नियमानुसार) दिन था । (फिर भी) हृषीकेश अप्रत्याशित रूप में यह

चुकोनि । ७ तों दोन्ही हस्त ठेवूनि कटीवरी । सत्यभामा उभी द्वारीं । तीस देखोनि मुरारी । काय वचन बोलिला । ८ सत्यभामा न जाणोनि गोविंदें । म्हणे सुखी आहेस कीं मित्रविंदे । तुजकारणें मी मुग्धे । रात्रीं आलों जाण पां । ९ ऐकतां ऐसें वचन । क्षोभलें सत्यभामेचें मन । म्हणे मज सवतीचें नाम ठेवून । बोलावी कपटी नायक हा । १० माझें नाम टाकूनि सुंदर । मित्रविंदा म्हणे यादवेंद्र । तरी याच्या नांवाचा उच्चार । मीही विपरीत करीन । ११ मग श्रीकृष्णासी म्हणे सुंदरा । यावें यावें जी कंसासुरा । मथुरा सांडोनि द्वारकापुरा । किमर्थ येणें जाहलें । १२ ऐकोनि वैरियाचें नाम । परम क्षोभला पुरुषोत्तम । म्हणे कां वो तुज पडला भ्रम । कंस कैसें मज म्हणसी । १३ तूं जाहलीस काय पिशी । कंसनामें मज बाहसी । सत्यभामा म्हणे श्रीहरीसी । डोळे पुसूनि पाहें पां । १४ कोठें आहे मित्रविंदा । लौकरी दावा जी गोविंदा । हांसें आलें मुकुंदा । एकोनि शब्द तियेचा । १५ ऐसा सत्यभामेचा गर्व जाणोन । गुप्त जाहला जगन्मोहन । सत्यभामा पाहे भोंवतें विलोकून । म्हणे समजावीन हरीसी । १६ तों हातींचा गेला माधव । जेवीं साधका होतां ज्ञानगर्व । निजात्मप्राप्तीचा

भूलकर सत्यभामा के भवन आ गये । ७ तो (उस समय) दोनों हाथ कमर पर टिकाये सत्यभामा दरवाज़े पर खड़ी थी । उसे देखकर मुरारि क्या बात बोले ? (सुनिए) । ८ सत्यभामा को न पहचानते हुए गोविन्द बोले, ‘ अरी मित्रविन्दा, सकुशल तो हो ? जान लो अरी मुग्धा, मैं तुम्हारे लिए (यहाँ) इस रात आ गया हूँ ’ । ९ ऐसी बात सुनते ही सत्यभामा का मन क्षुब्ध हुआ । वह बोली (उसे जान पड़ा)— ‘ मुझे मेरी सौत का नाम रखकर (लेकर) ये कपटी नायक (पति जान-बूझकर) बुला रहे हैं । १० मेरा सुन्दर नाम छोड़कर यादवेन्द्र मुझे मित्रविन्दा कह रहे हैं । ’ (अतः उसने निर्णय किया—) मैं भी इनके नाम का उच्चारण विपरीत (रूप से) करूँगी । ११ तब वह सुन्दरी श्रीकृष्ण से बोली, ‘ आइए, आइए, हे कंसासुर ! मथुरा को छोड़कर द्वारकापुर किसलिए आना हुआ?’ १२ अपने बैरी का नाम सुनते ही पुरुषोत्तम कृष्ण क्षुब्ध हुए और बोले, ‘ अरी, तुम्हें भ्रम हो गया है क्या ? मुझे कंस कैसे कह रही हो । १३ तुम पागल हो गयी हो क्या, जो मुझे कंस नाम से बुला रही हो ’ । तो सत्यभामा श्रीहरि से बोली, ‘ आँखें पोंछकर (साफ़ करके) तो देखिए । १४ अजी गोविन्द, झट से दिखाइए तो मित्रविन्दा कहाँ है ’ । तो मुकुन्द श्रीकृष्ण को उसका बोलना (बात) सुनकर हँसी आयी । १५ सत्यभामा के ऐसे घमण्ड को जानकर जगन्मोहन कृष्ण गुप्त हो गये । तो सत्यभामा चारों ओर देखने लगी और बोली (उसने सोचा)— मैं श्रीहरि को समझाऊँगी (मना लूँगी) । १६ (फिर भी) तब माधव श्रीकृष्ण उसके हाथ से निकल गये

अनुभव। कैंचा मग तयासी। १७ ज्ञानगर्व बहुत नाडले। सत्यभामेसी तैसें जाहलें। म्हणे हातींचें निधान गेलें। भ्रांत जाहलें कैसी मी। १८ दिव्य रत्न गोफणिलें। आहा अमृतपात्र उलंडिलें। कीं परब्रह्म घरा आलें। म्यां अव्हेरिलें पापिणीनें। १९ कामधेनु आली मंदिरीं। ती मूर्खें पिटूनि घातली बाहेरी। तैसेंचि म्यां केलें ये अवसरीं। गेला कंसारी हातींचा। २० विकळ पडिली सत्यभामा। सख्यांसी म्हणे भेटवा मेघश्यामा। घरा आला परमात्मा। अव्हेर केला जाणोनि। २१ मग आणावया इंदिरावरा। सत्यभामा दूती पाठवी सत्वरा। ते सत्वर येऊनि यदुवीरा। काय प्रार्थिती जाहली। २२ दूती म्हणे जगज्जीवना। चला सत्यभामेच्या निकेतना। तुम्हांलागीं राजीवनयना। विकळ बहुत जाहली। २३ दिव्य सुमनांचे हार। तीस भासतो जैसे विखार। शून्य दिसतें मंदिर। तुम्हांविण यादवेंद्रा। २४ देऊनि वस्त्रें आभरणें। दूती गौरविली मधुसूदनें। म्हणे गजगमने माझें येणें। नव्हे आतां सर्वथा। २५ तों इकडे सत्यभामा मंदिरीं।

थे। जिस प्रकार साधक को ज्ञान का अभिमान हो जाने पर उसे तब आत्मज्ञान की प्राप्ति की अनुभूति कैसे हो सकती है ? (उसी प्रकार सत्यभामा को अपने लाभ की बात उसके अपने अभिमान से नहीं विदित हुई)। १७ ज्ञान के घमण्ड से बहुत (साधक) पीड़ित हुए हैं। सत्यभामा के बारे में वैसे ही (अनुभव) हुआ। वह बोली, हाथ की धननिधि चली गयी (खो गयी)। मैं कैसे भ्रम में पड़ गयी। १८ मैंने दिव्य रत्न (मिलने पर उसे) गोफन में लगाकर फेंक दिया। अहा, मैंने अमृत-पात्र उलट डाला। अथवा परब्रह्म (स्वयं) घर आया, (फिर भी) मैं पापिनी ने उसको उपेक्षापूर्वक अस्वीकार किया। १९ (किसी के घर) कामधेनु आयी, तो उस मूर्ख ने उसे पीटकर बाहर निकाल दिया। मैंने इस अवसर पर ऐसा ही किया। कंसारि श्रीकृष्ण (अब) हाथ से निकल गये। २० (ऐसा सोचते-सोचते) सत्यभामा विकल होकर गिर पड़ी। वह सखियों से बोली, 'मुझसे मेघश्याम कृष्ण मिला दो। वे परमात्मा घर आये थे, (फिर भी) मैंने जान-बूझकर उनकी उपेक्षा करते हुए अस्वीकार किया'। २१ अनन्तर सत्यभामा ने (इन्दिरापति विष्णु के अवतार) कृष्ण को ले आने के लिए झट से दूती को भेज दिया, तो उसने शीघ्रतापूर्वक आकर यदुवीर से क्या प्रार्थना की ? (सुनिए)। २२ दूती बोली, 'हे जगज्जीवन, सत्यभामा के घर चलिए। वह कमलाक्षी आपके लिए बहुत व्याकुल हुई है। २३ दिव्य सुमनों के हार उसे विषैले सर्पों जैसे आभासित हो रहे हैं। हे यादवेन्द्र, बिना आपके उसे अपना भवन सूना दिखायी दे रहा है'। २४ मधुसूदन कृष्ण ने वस्त्र और आभूषण देते हुए उस दूती को गौरवान्वित किया और कहा, 'हे गजगमना, अब मेरा (वहाँ) आना बिलकुल नहीं

हरिप्राप्तीलागीं खेद करी। घडिघडी येऊनि पाहे द्वारीं। म्हणे कां मुरारी न येचि। २६ शेजेवरी अरळ सुकले। चंदनागरगंध विटले। आणि शेषवल्लीचीं दलें। सुकलीं सकळ दीसती। २७ प्रभाहीन दिसे सदन। नावडे सुस्वर गायन। दीप जाहले तेजोहीन। हरिलें मन मुरहरें। २८ अहा माधव कोठें गुंतला। कोणे सवतीशीं रतला। चक्रचालक हो भ्रतार आपुला। न म्हणावा कदाही। २९ कीं माझ्या सदना येतां वनमाळी। कोणी ललना वाटेस भेटली। सखी बोलावूं पाठविली। तिची जाहली काय गति। ३० अहो न लोटेचि आजिची यामिनी। न ढळती नक्षत्रें गगनीं। अहा न उगवेचि वासरमणी। चक्रवाकें न बाहती कां। ३१ ऐसी चिंता करितां सती। तों दूती आली अवचिती। तीस म्हणे कां वो श्रीपती। आले नाहींत सांग पां। ३२ श्वासोच्छ्वास विशेष तुज। कां दाटला सांग मज। येरी म्हणे धांवलें सहज। म्हणोनि धांपा टाकितें। ३३ तुझ्या मस्तकींचे कुरळ कां चळले। येरी म्हणे हरिपायीं शिर ठेविलें। वरिच्यावरी

होगा'। २५ तो इधर सत्यभामा अपने भवन में श्रीहरि की प्राप्ति न होने के कारण खेद अनुभव कर रही थी। वह बार-बार द्वार पर आकर देखती थी। उसने कहा (वह सोचती रही), 'मुरारि क्यों नहीं आ रहे हैं?' २६ शय्या पर (बिछाये) पुष्पहार सूख गये। चन्दन तथा अगरु की गन्ध फीकी पड़ गयी (नष्ट हुई)। और नागवल्ली के समस्त पत्ते सूख गये दिखायी दे रहे थे। २७ घर प्रभा-हीन (निस्तेज) दिखायी दे रहा था। उसे सुस्वर गायन अच्छा नहीं लग रहा था। दीप तेजोहीन (हुए-से) जान पड़ रहे थे। मुरारि कृष्ण ने उसके मन का (इस प्रकार) हरण किया। २८ (वह मन-ही-मन बोली—) 'अहा, माधव कहाँ उलझ गये? किस सौत के साथ रत हुए हैं? मेरे पति (माया के) चक्र के चालक हैं— उनको कभी भी अपने न कहें। २९ अथवा मेरे सदन आते (-आते) वनमाली से मार्ग में कोई ललना मिली हो। मैंने (जिस) सखी को उन्हें बुलाने के लिए भेज दिया है, उसकी क्या स्थिति हुई। ३० अहो, आज की यह रात बीत ही नहीं जाएगी। आकाश में नक्षत्र नहीं ढलेंगे (वे अस्त को प्राप्त नहीं होंगे)। अहा, सूर्य उदित ही नहीं होगा— फिर चक्रवाक उसे क्यों न पुकारते रहें'। ३१ वही स्त्री इस प्रकार चिन्ता कर थी, तो अकस्मात वह दूती आ गयी। (सत्यभामा) उससे बोली, 'अरी, बता तो दो कि श्रीपति क्यों नहीं आये। ३२ मुझे बता दो, तेरी सांस-उसाँस विशेष रूप से क्यों घुट रही है (तुम हाँफती क्यों हो)?' तो वह बोली, 'मैं यों ही दौड़ी, इसलिए हाँफ रही हूँ'। ३३ (सत्यभामा ने पूछा—) 'तुम्हारे मस्तक के घुँघराले केश क्यों बिखर गये?' तो वह बोली, 'श्रीहरि के पाँवों में सिर रखा (रखने जा रही थी), तो श्रीकृष्ण ने

श्रीकृष्णें धरिलें। केश चळले म्हणोनियां। ३४ तुझें सुकुमार चीर। कां भिजलें सांग समग्र। काय करूनि आलीस विचार। तोही निर्धार कळेना। ३५ येरी म्हणे मत्स्यावतार। हरि धरूनि शोधी सागर। मी तेथें प्रवेशतां समग्र। शेला भिजला साजणी। ३६ तुझी दृष्टी कां झाली घूर्णित। निद्रा मोडली दिसे सत्य। तूं हरिरूपीं जाहलीस रत। चिन्हें सर्व दीसती। ३७ म्हणे कमठ जाहला तुझा भ्रतार। कूर्मदृष्टीं पाहतां परम तीव्र। त्याच्या दर्शनें शरीर-। भाव सकळ राहिले। ३८ भामा म्हणे तुझे अधर जाण। तेथें दंश केला देतां चुंबन। येरी म्हणे हरि सूकर जाहला जाण। अवचितांचि दांत लागला। ३९ भामा म्हणे तुझे पयोधर। तेथें नख रुतलीं परम तीव्र। म्यां दुग्ध रक्षावया मांजर। पाठविलें शहाणीनें। ४० दूती दे प्रत्युत्तर। नरसिंह जाहला तुझा भ्रतार। म्यां त्याचा धरिला कर। चला सत्वर म्हणोनियां। ४१ तंव तो क्रोधी दैत्यमर्दन। लोटिलें स्वकरेंकरून। तेणें नखें रुतलीं जाण। नसतेंचि दूषण लावूं नको। ४२ म्हणे तुज सत्वर

(उसे) ऊपर ही ऊपर पकड़ लिया। इसलिए केश बिखर गये'। ३४ (सत्यभामा बोली, 'बता दो, तुम्हारा सुकुमार वस्त्र पूरा क्यों भीग गया ? तुम क्या बात करके आयी हो, वह भी निश्चय ही समझ में नहीं आ रहा है'। ३५ तो वह बोली, 'श्रीहरि मत्स्यावतार धारण करके सागर में खोजने लगे। मेरे द्वारा वहाँ प्रवेश करते ही, हे सजनी, पूरा-पूरा सेला (दुशाला) भीग गया'। ३६ (इस पर सत्यभामा बोली—) 'तुम्हारी आँखें (मदियाती हुई) घूमती-सी क्यों हो गयी हैं ? सचमुच (तुम्हारी) निद्रा उचट गयी दिखायी दे रही है। तुम श्रीहरि के रूप में रत हुई हो— (उसी के) ये सब चिह्न दिखायी दे रहे हैं'। ३७ (इसपर) वह बोली, 'तुम्हारे पति कछुआ हो गये; देखने में कूर्म-दृष्टि परम तीव्र होती है। उनके देखने से समस्त देहभाव (ऐसे होकर) रह गये (भुलाये गये)'। ३८ तो सत्यभामा बोली, 'अपने अधरों को जान लो (देख लो)। चुम्बन करते हुए उन्होंने दंश किया (उन्हें काट लिया)'। तो वह बोली, 'श्रीहरि शूकर (वराह) हो गये, तो जान लो, अकस्मात ही उनका दाँत लग गया'। ३९ सत्यभामा बोली, 'ये हैं तुम्हारे स्तन। वहाँ (उनमें) परम तीव्र (पैने) नख (काटते-चुभते हुए) चुभ गये हैं। मैं सयानी ने दूध की रखवाली करने के लिए बिल्ली को भेजा'। ४० इसका प्रत्युत्तर दूती ने दिया— 'तुम्हारे पति नरसिंह हो गये। मैंने उनका हाथ यह कहकर थाम लिया कि— झट से चलिए। ४१ तब (हिरण्यकशिपु) दैत्य का मर्दन करनेवाले उन क्रुद्ध (भगवान नरसिंह-स्वरूप) कृष्ण ने अपने हाथ से (मुझे) धकेल दिया। समझ लो कि उससे नख गड़ गये। झूठमूठ का दोष न लगाओ'। ४२ (तो सत्यभामा ने

पाठविलें। तरी एवढा वेळ कोठें क्रमिलें। दूती उत्तर काय बोले। संपादणी ते ऐका। ४३ तुझा भ्रतार घननीळ। जाहला बळीचा द्वारपाळ। शोधीत गेलें रसातळ। म्हणोनि वेळ लागला। ४४ अगे दिव्य पट्टकूल आणि चोळी। मज कदापि नेदी वनमाळी। सनकादिकां न लागे चरणधुळी। वस्त्रें दिधलीं तुज कैसीं। ४५ तुझा पति परशुधर। क्षत्रिय वधोनि जय पावला थोर। ते वेळीं मीही जाऊनि सत्वर। उभी पुढें ठाकलें। ४६ बाई मी तुझी सखी म्हणोनि। मजलागीं दिधली पाठवणी। तुज विश्वास न वाटे मनीं। खूण म्हणोनि आणिली हो। ४७ तुझे भाळींचा अर्धचंद्रटिळा। तो कैसेनि सांग चळला। मग प्रतिउत्तर या बोला। काय बोले दूती ते। ४८ श्रीरामें बंदींचे सोडविले निर्जर। त्यांत राहूही सुटला परम क्रूर। त्यासी देखतांचि हा चंद्र। भिऊनियां चळला जी। ४९ तरी मलयागर चंदन शीतळ। तुझे अंगीं चर्चिला पातळ। तो वाहवला सकळ। काय निमित्तें सांग पां। ५० द्वादश गांवें अग्नि अद्भुत। गिळी क्षण न लागतां कृष्णनाथ।

कहा—) 'तुम्हें शीघ्रतापूर्वक (लौटने के लिए) भेजा था; तो भी इतना समय तुमने कहाँ बिता दिया ?' इसपर उस दूती ने क्या उत्तर दिया ? वह बहाना सुनिए। ४३ तुम्हारे पति घननील कृष्ण बलि के द्वारपाल हो गये; उन्हें खोजते हुए मैं रसातल गयी। इसीलिए देर लग गयी'। ४४ (यह सुनकर सत्यभामा बोली—) 'अरी, वनमाली ने मुझे दिव्य रेशमी वस्त्र और चोली कभी नहीं दी। (ब्रह्म-नन्दन) सनक आदि के हाथ भी (कभी) उनकी चरण-धूलि नहीं लगती। तो उन्होंने तुम्हें ये वस्त्र कैसे दिये ?' ४५ (तब दूती बोली—) तुम्हारे पति परशुधारी (राम) हो गये; वे क्षत्रियों का वध करके बड़ी विजय को प्राप्त हो गये। उस समय मैं भी झट से जाकर (उनके सम्मुख) खड़ी हो गयी। ४६ हे देवी, मैं तुम्हारी सखी हूँ— इसलिए उन्होंने मुझे बिदा करते समय उपहार दिया। तुम्हें मन में (मेरे प्रति) विश्वास न होगा— इसलिए यह चिह्न (साक्षी-स्वरूप) ले आयी हूँ'। ४७ (सत्यभामा बोली—) 'बता दो, तुम्हारे भाल पर का वह अर्धचन्द्राकार (कुंकुम) तिलक कैसे बिखर गया ?' तब उस दूती ने इस बात का प्रत्युत्तर क्या दिया ? (सुनिए)। ४८ 'श्रीराम ने बन्दीशाला में से देवों को मुक्त किया। उनमें परम क्रूर राहु भी छूट गया। उसे देखते ही यह चन्द्र डरकर विचलित हुआ'। ४९ (सत्यभामा बोली—) 'तुम्हारे बदन में शीतल मलयागरु चन्दन पतला-पतला लगाया था; बता दो, वह सब किस निमित्त (धुलकर) बह गया'। ५० (दूती बोली—) 'बारह योजन अद्भुत (रूप से) अग्नि (फैली हुई) थी। कृष्णनाथ ने उसे क्षण न लगते निगल डाला। उस समय उन्हें बहुत स्वेद (पसीना) आ गया। इसलिए चन्दन भ्रष्ट हुआ (बह गया)'। ५१

ते समयीं स्वेद आला बहुत। म्हणोनि चंदन भ्रंशला। ५१ तुवां तेथें बहुत उशीर। लावावया काय विचार। दूती म्हणे बौद्धावतार। पति तुझा झाला गे। ५२ शस्त्रवस्त्रविरहित। अरण्यांत नग्न फिरत। कोठें न दिसेचि अव्यक्त। म्हणोनि उशीर लागला। ५३ कां तुझा उतरला मृगांक। अंजन वाहवलें सुरेख। सत्य तुवां भोगिलें कृष्णसुख। संपादणी व्यर्थ करितेसी। ५४ दूती म्हणे ऐका सावकाश। पहावया गेलें तुझ्या पतीस। तों त्यासी क्रोध चढला विशेष। देखोनि उत्कर्ष म्लेच्छांचा। ५५ मग हातीं घेऊनियां कुंत। तुरंगीं बैसावया जाहला उदित। तो क्रोधायमान मजसीं मात। एकही बाई न बोले। ५६ हरि न बोले म्हणून। बाई मग मज आलें रुदन। तेणें वाहवलें अंजन। मुखमृगांक उतरला। ५७ मग बोले भामा सती। भली संपादणी जाणसी वो दूती। बहुत कष्टलीस गे निश्चितीं। सुखें निद्रा करीं आतां। ५८ कपाट देऊनियां सेजेवरी। निजे सत्राजितकुमारी। वियोगानळ जाळी अंतरीं। अश्रु नेत्रीं चालिले। ५९ मग म्हणे कृष्णा जगदुद्धारा। मनमोहना वसुदेवकुमरा। यादवकुलटिळक भुवनसुंदरा।

(सत्यभामा बोली—) 'वहाँ बहुत विलम्ब करने के लिए क्या कारण हुआ?' (इसपर) दूती बोली— 'तुम्हारे पति बौद्धावतार (-धारी) हो गये थे। ५२ वे नग्न तथा अस्त्र-शस्त्र-विरहित अरण्य में घूम रहे थे। वे अव्यक्त (ब्रह्म) कहीं दिखायी ही नहीं दे रहे थे। इसलिए (उन्हें खोजने में) देर लग गयी'। ५३ (सत्यभामा ने पूछा—) 'तुम्हारा मुखचन्द्र क्यों उतर गया (फीका, निस्तेज हो गया) है? (आँखों का) सुन्दर अंजन बह गया है। सचमुच तुमने कृष्ण (संग) के सुख का उपभोग किया है (और) व्यर्थ बहाना बना रही हो'। ५४ तो दूती बोली, 'धीरे से सुनो। तुम्हारे पति को देखने (खोजने) गयी, तो म्लेच्छों का उत्कर्ष देखकर उनपर बहुत क्रोध सवार हुआ था। ५५ तब हाथ में भाला लेकर वे घोड़े पर बठने के लिए उद्यत हुए। तो हे देवी, वे क्रोधायमान (श्रीकृष्ण) मुझसे एक भी बात नहीं बोले। ५६ श्रीहरि नहीं बोल रहे थे, इसलिए तब मुझे रुलाई आयी। उससे अंजन बह गया और मुखचन्द्र उतर गया'। ५७ अनन्तर सती सत्यभामा बोली, 'अरी दूती, भली बहानेबाजी जानती हो। अरी, निश्चय ही तुम (मेरे लिए) बहुत कष्ट को प्राप्त हुई हो। अब सुखपूर्वक नींद लो'। ५८

(तदनन्तर) द्वार बन्द करके सत्राजित-कुमारी सत्यभामा शय्या पर लेट गयी। उसके अन्तःकरण में उसे वियोगाग्नि जला रही थी। आँखों से आँसू बहते जा रहे थे। ५९ वह बोली, 'हे कृष्ण, हे जगत का उद्धार करनेवाले, हे वसुदेव-कुमार, हे यादवकुल-तिलक, हे भुवन-सुन्दर, इस समय दौड़ो, मुझे प्राप्त हो जाओ (मुझपर प्रसन्न हो जाओ)। ६० उसके

धांवें पावें ये समयीं। ६० तें जाणोनियां अंतरभाव। तत्काळ पावला दयार्णव। कपाटावरी श्रीकेशव। अंगुळीअग्र वाजवी। ६१ तें जाणोनि सत्यभामा बाळी। मागुती करी हरीसीं रळी। म्हणे कोण तस्कर ये वेळीं। कपाटावरी हाणितो। ६२ हरि म्हणे वो कुटिले। मी माधव आलों ये वेळे। निद्रेनें काय भ्रमले डोळे। पुसूनि होईं सावध। ६३ मग सत्यभामा बोलत। माधव नामें वसंत। तरी वसंतें वसावें वनांत। येथें किमर्थ आगमन। ६४ हरि म्हणे मी चक्रधर। तुजलागीं पावलों सत्वर। येरी म्हणे तूं कुलाल निर्धार। रात्रीं कासया आलासी। ६५ हरि म्हणे मी धरणीधर। येरी म्हणे तूंचि फणिवर। कोणासी डंखावया साचार। रात्रीं एवढ्या आलासी। ६६ कृष्ण म्हणे काळिया सर्प अघासुर। त्यासी संहारिता मी महावीर। येरी म्हणे तूं द्विजेंद्र। किमर्थ येथें आलासी। ६७ मग बोले पूतनारी। मी भोगवेळीं पातलों हरी। गदगदां हांसे सुंदरी। तरी वानर निर्धारें। ६८ आपुल्या सांडोनि कांतारा। कां आलासी येथें कपींद्रा। तरी तूं जाय माघारा। माझा भ्रतार येईल आतां। ६९ तो आहे परमपुरुषार्थी।

अन्तःकरण के भाव को जानकर दयार्णव श्रीकेशव कृष्ण तत्काल प्रसन्न हो उठे और दरवाज़े पर उन्होंने अँगुली के अग्रभाग (नोक) से खटखटाया (अँगुली के अग्र से दरवाजा खटखटाया)। ६१ तो सत्यभामा बाला ने उसे जानकर फिर से श्रीहरि से हँसी-ठठोली की। वह बोली, 'इस समय कौन चोर दरवाज़े पर आघात कर रहा है'? ६२ तो श्रीहरि बोले, "अरी कुटिला, मैं माधव (= कृष्ण) इस समय आया हूँ। क्या निद्रा से आँखें भ्रम को प्राप्त हो गयी हैं? पोंछकर (मलकर) सचेत हो जाओ"। ६३ तब सत्यभामा बोली, "'माधव' नामवाला वसन्त है। वसन्त को वन में रहना चाहिए। यहाँ किसलिए उसका आगमन हुआ"? ६४ तो श्रीहरि बोले, 'मैं चक्रधर (= सुदर्शन चक्रधारी) हूँ। तुम पर झट से प्रसन्न हो गया हूँ'। तो वह बोली, 'तो तुम चक्रधर अर्थात कुम्हार हो। रात में किसलिए आये हो'। ६५ तो कृष्ण बोले, 'मैं धरणीधर (= कूर्म-रूप में पृथ्वी को उठानेवाला) हूँ'। वह बोली, 'तुम्हीं फणिवर (बड़े नाग) हो। इतनी रात सचमुच किसे डसने के लिए आ गये हो'। ६६ (यह सुनकर) कृष्ण ने कहा, 'मैं कालिय सर्प तथा अघासुर का संहार करनेवाला महावीर हूँ'। तो वह बोली, 'तो तुम द्विजेन्द्र (पक्षियों के राजा, गरुड़) यहाँ क्यों आये हो'? ६७ अनन्तर पूतनारि कृष्ण बोले, "मैं 'हरि' भोग (लगाने) के समय आ पहुँचा हूँ"। यह सुनकर वह सुन्दरी हँसने लगी (और बोली)— 'तो निश्चय ही तुम (हरि अर्थात) वानर हो। ६८ अपने वन को छोड़कर हे कपीन्द्र (वानरराज), यहाँ क्यों आ गये हो? अतः तुम लौट जाओ। मेरे पति

शिक्षा लावील तुजप्रती । सत्यवादी एकपत्नीव्रती । ऐसा नाहींच दूसरा । ७०
श्रीकृष्णासी हांसें आलें । सत्यभामेनें कपाट उघडिलें । श्रीमुखावरूनि निंबलोण केलें । दृढ धरिले हरिचरण । ७१ म्हणे आदिपुरुषा नारायणा । मी बहुत उद्धट बोलिलें वचना । क्षमा करावी मनमोहना । मी दासी तुझी अन्यायी । ७२ हातीं धरूनि मधुकैटभारी । सत्यभामा आणी सेजेवरी । मग पूजा षोडशोपचारीं । करिती जाहली तेधवां । ७३ सत्यभामा म्हणे ते वेळां । एवढा वेळ कोठें क्रमिला । मग बोले घनसांवळा । मृगयेसी लागला उशीर । ७४ सत्यभामा म्हणे तुमच्या अंगास । येतो दुसरा सुवास । मग बोले हृषीकेश । जो कां डोळस चातुर्यसिंधु । ७५ म्हणे वनीं नाना पुष्पमाळा । भक्तीं गुंफोनि घातल्या गळां । म्हणोनि वास दुसरा आला । तुजलागीं मृगनयने । ७६ भामा म्हणे हृषीकेशी । घर्म आला शरीरासी । बहु श्रम जाहला तुम्हांसी । आजि मज वाटतसे । ७७ हरि म्हणे धांवतां वनांतरीं । तेणें घर्म आला सुंदरी । मग म्हणे जी कंसारी । आश्चर्य एक वाटतें । ७८ तुमचे अधर जसे विद्रुम । ते कुंचावया काय काम । हरि म्हणे शंख त्राहाटिला परम । तेणें ओष्ठ श्रमले गे । ७९ म्हणे या गोष्टी सत्य म्हणोन ।

अब आएँगे । ६९ वे परम पराक्रमी हैं । वे तुम्हें दण्ड देंगे । (उनके समान) ऐसा सत्यवादी, एकपत्नीव्रती कोई दूसरा है ही नहीं '। ७० (यह सुनकर) श्रीकृष्ण को हँसी आयी । (इधर) सत्यभामा ने दरवाजा खोला । (श्रीकृष्ण के) श्रीमुख पर से राईनोन उतार लिया और उनके चरण दृढ़ता से पकड़ लिये । ७१ वह बोली, ' हे आदिपुरुष, हे नारायण, मैंने बहुत उद्धत बात कही । हे मनमोहन, क्षमा कीजिए । मैं आपकी अन्याय-कारिणी दासी हूँ ' । ७२ (फिर) सत्यभामा मधु-कैटभारि श्रीकृष्ण को हाथ पकड़कर शय्या पर ले आयी । अनन्तर तब उसने उनकी षोडशोपचारों से पूजा की । ७३ उस समय सत्यभामा बोली, ' इतना समय कहाँ बिता दिया ? ' तो तब घनश्याम बोले, ' शिकार में देर लग गयी ' । ७४ सत्यभामा बोली, ' तुम्हारी देह से दूसरे प्रकार की सुगन्ध आ रही है ' । तब जो सावधान-समझदार तथा चातुर्य के सागर हैं, वे हृषीकेश बोले । ७५ वे बोले, ' भक्तों ने वन में अनेकानेक पुष्पमालाएँ गूँथकर गले में पहना दीं । इसलिए, हे मृगनयना, दूसरे प्रकार की गन्ध तुम्हें आ गयी ' । ७६ सत्यभामा बोली, ' हे हृषीकेश, शरीर में स्वेद आ गया है । मुझे आज लगता है, आप बहुत श्रम को प्राप्त हो गये हैं ' । ७७ तो श्रीहरि बोले, ' हे सुन्दरी, वन में दौड़ते रहने से स्वेद आ गया ' । तब वह बोली, ' जी कंसारि, एक अचरज हो रहा है । ७८ तुम्हारे होंठ मूँगे जैसे हैं । उनपर चुनन पड़ने का क्या कारण है ? ' तो श्रीहरि बोले, मैंने अत्यधिक ज़ोर से शंख बजाया । अरी, उससे होंठ श्रम को प्राप्त हो गये ' । ७९

कराल कांहीं येथें प्रमाण। हरि म्हणे समुद्रांत टाकीं नेऊन। सत्य असेल तरी तरेन मी। ८० येरी म्हणे काय हें प्रमाण। तुम्ही समुद्रमाजी करितां शयन। हरि म्हणे महासर्प आणोन। कुंभामाजी घालीं कां। ८१ मी हस्त घालूनि काढीन सत्वर। सत्य असेल तरी न डंखो विखार। येरी म्हणे तुम्ही सर्पावरी निजणार। काय विषधर करील तुम्हां। ८२ हरि म्हणे चेतवीं महअग्न। आंत निःशंक मी प्रवेशेन। येरी म्हणे द्वादश गांवें कृशान। तुम्हीं गिळिला बाळपणीं। ८३ मग म्हणे वनमाळी। खडतर दैवत असेल भूमंडळीं। त्याच्या देवळांत मज घालीं। सत्य असत्य निवडेल तेथें। ८४ सत्यभामा म्हणे देव समस्त। राबती तुम्हांपुढें होऊन भृत्य। हरि म्हणे तुलायंत्र करूनि त्वरित। मज त्यांत बैसवीं। ८५ घाय हाणितां कळेजवळी। पारडें उचलेल अंतराळीं। सत्य असत्य सकळी। निवडेल तेथें गजगमने। ८६ मग बोले ते गोरटी। अनंत ब्रह्मांडें तुमचे पोटीं। तुमचें वजन करावया जगजेठी। तुला कोठूनि आणूं मी। ८७ तुम्हांजवळी मागतां प्रमाण।

तो सत्यभामा बोली, 'ये बातें सत्य हों, तो उनकी सत्यता सिद्ध करने के लिए क्या यहाँ कुछ प्रमाण प्रस्तुत करेंगे ?' तो श्रीहरि बोले, '(मुझे) लेकर समुद्र में फेंक दो। यदि (मेरी बात) सत्य हो, तो मैं तैर जाऊँगा (डूब न जाऊँगा)'। ८० तो वह बोली, 'आप तो समुद्र के अन्दर शयन करते हैं'। (इसपर) श्रीहरि बोले, '(फिर) महासर्प लाकर उसे किसी कुम्भ में डाल दो। ८१ मैं (उसमें) हाथ डालकर उसे झट से निकाल लूँगा। यदि मेरी बात सत्य हो, तो वह विषैला सर्प मुझे नहीं डसेगा'। वह बोली, 'आप सर्प पर सोनेवाले हैं, तो विषधर (सर्प) आपको क्या (हानि) करेगा'? ८२ श्रीहरि ने कहा, 'तो महा अग्नि प्रज्वलित कर दो, मैं अन्दर बिना किसी आशंका के प्रविष्ट हो जाऊँगा'। (इसपर) वह बोली, 'आपने बचपन में बारह योजन (फैली हुई) आग को निगल डाला था'। ८३ अनन्तर वनमाली बोले, 'भूमण्डल पर जो भी (सबसे) कठोर-कष्टप्रद देवता हो, उसके मन्दिर में मुझे डाल (रख) दो— वहाँ (वही देवता) सत्य और असत्य का चयन करेगा (निर्णय करेगा)'। ८४ इसपर सत्यभामा बोली, 'समस्त देव आपके सामने सेवक बनकर परिश्रम करते हैं'। तो श्रीहरि बोले, 'तुला-यंत्र (तराजू) बनाकर झट से मुझे उसमें बैठा दो। ८५ हे गजगामिनी, काँटे के पास आघात करते ही, पलड़ा अन्तराल (आकाश) की ओर उठ जाएगा और वहाँ सत्य-असत्य का चयन होगा (निर्णय होगा)। ८६ तब वह गोरी बोली, 'आपके उदर में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। (अतः) हे जगद्श्रेष्ठ, तुम्हारा भार नापने के लिए मैं तराज़ू कहाँ से लाऊँ। ८७ आपसे प्रमाण (सबूत) माँगने पर सभी अप्रमाण (झूठ सिद्ध) हो जाएगा'। —ऐसा कहकर उसने उनके

सर्वही होईल अप्रमाण। म्हणोनि दृढ धरिले चरण। महिमा पूर्ण कळेना। ८८ असो एकांतसुखशयनीं। सत्यभामा भोगी चक्रपाणी। सच्चिदानंद मोक्षदानी। लीला दावी भक्तांसी। ८९ कमलोद्भवसुत एके दिवसीं। आला सत्यभामेच्या गृहासी। येरी धांवोनि लागे चरणांसी। बैसावयासी आसन देत। ९० पूजा करूनि षोडशोपचार। म्हणे परिसा जी एक विचार। जन्मोजन्मीं श्रीकृष्ण भ्रतार। व्हावा ऐसें वाटतसे। ९१ यासी कवण व्रत कवण दान। ऐकोनि हांसे चतुरास्यनंदन। म्हणे हरिमहिमा नेणोन। जन्मपंक्ती इच्छीतसे। ९२ हे श्रीकृष्णाची पत्नी होऊन। इचें अद्यापि नव जाय अज्ञान। बर्बुर कमळाजवळी बैसोन। सुवास नेणोन चिखलीं लोळे। ९३ तरी इचा अभिमान झडे समूळ। ऐसा करावा कांहीं खेळ। पात्र पाहूनि कुशळ। वादार्थ माजी सांठविती। ९४ नारद म्हणे जरी कृष्णदान देसी। तरी तो जन्मोजन्मीं पावसी। तरी हें पुसोनियां हृषीकेशी। आणीं मनासी आधीं बरें। ९५ हरीसी एकांतीं पुसे सत्यभामा। तुम्हांसी दान देईन मी पुरुषोत्तमा। ऐकतां हांसें आलें मेघश्यामा। पूर्णकामा सर्वेशा। ९६

चरण दृढ़ता से पकड़े। (उसकी) समझ में (भगवान कृष्ण की) महिमा नहीं आयी थी। ८८ अस्तु। एकान्त में सुख-शय्या पर सत्यभामा ने चक्रपाणि का (संग) उपभोग कर लिया। सच्चिदानन्द मोक्षदाता श्रीकृष्ण (इस प्रकार अपने) भक्तों को लीला प्रदर्शित करते थे। ८९ एक दिन ब्रह्मा के पुत्र नारद जी सत्यभामा के घर आ गये, तो वह दौड़कर उनके पाँव लगी। (अनन्तर) उसने (उनको) बैठने के लिए आसन दिया। ९० उनकी षोडशोपचार पूजा करके वह बोली, 'अजी एक बात सुनिए। मुझे लगता है कि जन्म-जन्म श्रीकृष्ण (ही) मेरे पति हों। ९१ इसके लिए मैं कौन-सा व्रत रखूं? क्या दान करूँ?' यह सुनकर विधाता-पुत्र नारदजी हँसने लगे। उन्होंने कहा (सोचा)— श्रीहरि की महिमा न जानते हुए वह जन्म (-जन्म) की पंक्ति अर्थात जन्म-जन्म के चक्र की अभिलाषा कर रही है। ९२ इसके श्रीकृष्ण की पत्नी होने पर इसका अज्ञान नहीं (नष्ट हो) गया है। मेंढक कमल के पास बैठकर भी सुगन्ध को न जानने से कीचड़ में ही लोटता-पोटता रहता है। ९३ अतः ऐसी कुछ लीला करें, जिससे इसका अहंकार समूल झड़ जाए। योग्य विद्वान को देखकर चतुर लोग वाद-विवाद के लिए (अपने पास) इकट्ठा करके रख लेते हैं। ९४ (अनन्तर) नारद बोले, 'यदि कृष्ण को दान में दोगी, तो तुम उसे जन्म-जन्मान्तर में प्राप्त हो जाओगी। इसलिए भले ही पहले यह हृषीकेश से पूछकर ही मन में इसे लाओ (इसका विचार करो)'। ९५ (तत्पश्चात) सत्यभामा ने श्रीहरि से एकान्त में कहा, 'हे पुरुषोत्तम, मैं आपको दान में दूंगी'। यह सुनते ही पूर्णकाम सर्वेश

सत्यभामेसी म्हणे कृपानिधी। हे मज मानली तुझी बुद्धी। तरी दानासी उशीर न करावा आधीं। उठाउठीं देइंजे। ९७ भामा पुसे द्विजांसी जाऊन। दान घेतां काय श्रीकृष्ण। विप्र म्हणती तो गोवळ पूर्ण। आम्ही ब्राह्मण सोंवळे। ९८ परम कपटी चोर जार। आमुचे गृहीं त्याचा न व्हावा संचार। यासी उत्तम वस्त्रें अलंकार। कैंचे आम्हीं पुरवावे। ९९ कृष्णदानाचा अंगीकार। कदा न करिती कोणी विप्र। अविद्येनें वेष्टिले साचार। कृष्णमहिमा नेणती। १०० अनंत जन्मींचें तपाचरण। तरीच हाता येईल श्रीकृष्ण। असो सत्यभामा परतोन। नारदाजवळी पातली। १०१ म्हणे कोणीच दान न घेती तत्त्वतां। तूं तरी अंगीकार करीं आतां। कृष्णदानासी ब्रह्मसुता। पात्र धन्य तूंचि पैं। २ नारद म्हणे अवश्य। मी दान घेतों जगन्निवास। पूर्णब्रह्म पुराणपुरुष। अनायासें ये हाता। ३ सत्यभामा म्हणे यदुवीरा। दानासी पात्र नारद बरा। हें मानलें कीं तुमच्या विचारा। हरी म्हणे त्वरा करावी। ४ पुण्यार्क योग उत्तम बहुत। ऐसा पुढें न साधे मुहूर्त। नारदाजवळी आला श्रीकृष्णनाथ। वस्त्राभरणीं शृंगारूनि। ५

मेघश्याम कृष्ण को हँसी आयी। ९६ कृपानिधि कृष्ण सत्यभामा से बोले, 'तुम्हारी बुद्धि (बात) मुझे अच्छी लगी है। अतः दान में देर न करो। पहले झट से दे दो'। ९७ तो सत्यभामा ने जाकर ब्राह्मणों से पूछा, 'क्या आप श्रीकृष्ण को दान में (स्वीकार कर) लेंगे?' तो वे विप्र बोले, 'वह तो पूरा-पूरा ग्वाला है (और) हम पूरे-पूरे पावन-पवित्र, अनछुए ब्राह्मण हैं। ९८ वह परम कपटी है, चोर है, जार है। हमारे घर में उसका संचार नहीं होना चाहिए। हम इसके लिए उत्तम वस्त्र और आभूषण किस प्रकार सम्पूर्त करें'। ९९ (इस प्रकार कहते हुए) किन्हीं भी ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण का दान कदापि नहीं लिया। वे सचमुच अविद्या माया द्वारा घिरे हुए थे; (अतः) वे कृष्ण की महिमा को नहीं जानते थे। १०० यदि अनन्त जन्मों की तपस्या का आचरण (गाँठ में) हो, तो ही श्रीकृष्ण हाथ आएँगे (प्राप्त होंगे)। अस्तु। सत्यभामा लौटकर नारद के पास आ गयी। १०१ वह बोली, 'सचमुच कोई भी दान नहीं ले रहा है। अब आप तो उसे स्वीकार कर लीजिए। हे ब्रह्म-नन्दन, आप ही कृष्ण-दान के लिए योग्य हैं; आप ही धन्य हैं'। २ इसपर नारद बोले, 'अवश्य! मैं जगन्निवास श्रीकृष्ण को दान में लेता हूँ। बिना किसी प्रयास के पुराणपुरुष परब्रह्म हाथ आ रहे हैं'। ३ (अनन्तर) सत्यभामा यदुवीर से बोली, 'दान के लिए योग्य (व्यक्ति) नारद अच्छे हैं। क्या यह बात आपके विचार को जँचती है?' तो श्रीहरि बोले, 'शीघ्रता कर लो। ४ (आज का) यह पुण्यार्क योग बहुत उत्तम (मुहूर्त) है। आगे ऐसा मुहूर्त सिद्ध (प्राप्त) नहीं होगा'। (अनन्तर) श्रीकृष्णनाथ

संकल्प करूनि यथासांग। नारदकरीं देत श्रीरंग। जो क्षीराब्धिहृदयरत्नरंग। पूर्ण निःसंग परब्रह्म। ६ नारद म्हणे वनमाळी। हा ब्रह्मवीणा घेईं कां जवळी। तंतु तुटों नेदीं निजमूळीं। श्रुतिस्वर सांभाळिजे। ७ एक मुळींचा तुटतां तंत। तेणें नाश होईल बहुत। कृष्णा माझा भावार्थ। तुज ठाउका असे कीं। ८ माझी देवतार्चनाची पेटी। जतन करीं कां जगजेठी। नारद चालिला उठाउठी। पाहे दृष्टीं सत्यभामा। ९ पुढें जातो कमलोद्भवपुत्र। मागें चाले शतपत्रनेत्र। जो मेघश्याम कोमलगात्र। सहस्रवक्त्र वर्णी जया। ११० द्वारकेचे म्हणती जन। जगद्वंद्य हा जगज्जीवन। त्याच्या खांदां ओझें देऊन। नारदमुनि नेतसे। १११ नारद म्हणे हृषीकेशी। कां रे हळुहळू चालतोसी। गृहआशा अजूनि न सोडिसी। कैसा साधिसी परमार्थ। १२ असो ऐसा शारंगपाणी। नारद दूरी गेला घेऊनी। तों सत्यभामा निजसदनीं। वियोगानळें आहाळली। १३ तळमळली विरहेंकरून। म्हणे हातींचें गेलें निधान। हे कृष्ण हे कृष्ण म्हणोन। वियोगानळें आहाळत। १४ सत्यभामा करी रुदन। आतां कैं देखेन मधुसूदन। ठकवूनि

वस्त्रों और आभूषणों से सजकर नारद के पास आये। ५ समस्त अंगों-सहित यथाविधि संकल्प करके (सत्यभामा ने) उन श्रीरंग कृष्ण को नारद के हाथ प्रदान किया, जो (वस्तुतः) क्षीरसागर के हृदय-रत्न-रंग अर्थात लक्ष्मी-पति हैं, पूर्ण निःसंग परब्रह्म हैं। ६ (अनन्तर) नारद बोले, 'हे वनमाली, क्या यह ब्रह्मवीणा अपने पास (हाथ में) लेंगे ? उसके अपने मूल (आधार) से कोई भी तन्तु (तार) टूटने न दीजिए, श्रुति-स्वरों को सम्हाल लीजिए। ७ मूल में से एक भी तन्तु के टूट जाने पर उससे बहुत नाश हो जाएगा। हे कृष्ण, मेरी बात का भावार्थ आपको विदित है। ८ हे जगद्श्रेष्ठ, मेरी यह देवताओं के अर्चन (सामग्री) की पिटारी क्या सुरक्षित रख लेंगे ?' तब नारद झट से निकल गये। सत्यभामा यह अपनी आँखों से देखती रही। ९ आगे (-आगे) ब्रह्मा के पुत्र नारद जा रहे थे; (उनके पीछे-) पीछे वे कमल-नयन श्रीकृष्ण जा रहे थे, जो मेघश्याम वर्ण के तथा कोमल गात्रधारी थे, सहस्रमुख शेष जिन (की महिमा) का वर्णन करता है। ११० द्वारका के लोग (उन्हें देखकर) बोले, 'ये कृष्ण जगज्जीवन, जगद्वन्द्य हैं। (फिर भी) नारद जी उनके कन्धों पर बोझ रखकर उन्हें ले जा रहे हैं। १११ (फिर) नारद बोले, 'हे हृषीकेश, धीरे-धीरे क्यों चल रहे हैं ? घर की आशा अभी तक नहीं छोड़ रहे हैं, तो परमार्थ को कैसे साध लेंगे'। १२ अस्तु। इस प्रकार नारद शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्ण को दूर ले गये, तो (इधर) सत्यभामा अपने घर में विरह की आग में झुलसने लगी। १३ वह विरह से तड़पने लगी। बोली, 'हाथ की धरोहर चली गयी। हे कृष्ण, हे

गेला ब्रह्मनंदन। भुली पूर्ण घातली। १५ मग सत्यभामेचिया सदनीं। मिळाल्या सकळ कृष्णकामिनी। म्हणती भली गे करणी। दान चक्रपाणी दीधला। १६ जांबुवंती म्हणे आम्ही इतुक्याजणी। जवळी असतां कृष्णकामिनी। दान द्यावयालागूनी। तूंचि धनीण झालीस। १७ अज अजित जगत्पती। त्यासी कैंच्या जन्मपंक्ती। तुज कोणीं दिधली ही मती। दुःखदायक अत्यंत। १८ मग बोलिली सत्राजितकुमारी। बरा मत्सर साधिला सुंदरी। तुवां आपुलें हित तरी। काय विचारिलें सांग पां। १९ पायांवरी घालूनि पाषाण। मोडिले जैसे आपुले चरण। जैसा आपणचि रुईचीक भरून। नेत्र बळें दवडिले। १२० कीं आपुलेंचि छेदूनियां घ्राण। वैरियांसी केला अपशकुन। जैसें आपुलेंचि तान्हें मारून। आळ घातला सवतीवरी। १२१ कौतुकें केलें विषप्राशन। परी न कळे जवळी आलें मरण। तैसें तुवां श्रीकृष्णदान। करूनि केलें अनहित। २२ मित्रविंदा बोले वचन। जळलें तुझें शहाणपण। निर्विकार वस्तु श्रीकृष्ण। त्यासी

कृष्ण !' कहते हुए वह विरह की आग में जलती रही। १४ सत्यभामा रुदन करने लगी। वह बोली, 'अब (फिर) मधुसूदन को कब देख सकूँगी ? ब्रह्मनन्दन नारद (मुझे) ठगकर चले गये। उन्होंने पूरी-पूरी मोहिनी डाल दी'। १५ अनन्तर कृष्ण की समस्त स्त्रियाँ सत्यभामा के सदन में इकट्ठा हुईं। वे बोलीं, 'अरी, तुमने भली करनी की। चक्रपाणि को दान में दे डाला'। १६ जाम्बवती बोली, 'हम इतनी जनी श्रीकृष्ण की स्त्रियों के पास में होने पर उन्हें दान में देने के लिए तुम (अकेली) ही स्वामिनी (सिद्ध) हो गयी। १७ श्रीकृष्ण अजन्मा, अजित, जगत्पति हैं। उनके लिए कैसे जन्म-जन्म की पंक्तियाँ (फेरे) ? तुम्हें यह अत्यधिक दुःखदायी बुद्धि (मंत्रणा) किसने दी ?' १८ अनन्तर सत्राजित-कुमारी सत्यभामा बोली, 'अरी सुन्दरी, भला (सौतिया) मत्सर साध लिया'। (इसपर फिर जाम्बवती बोली—) 'बता दो, तुमने इसमें अपने किस हित का तो विचार किया था। १९ जैसे पैरों पर (स्वयं) पाषाण डालकर अपने ही पैरों को (तुमने) तोड़ डाला। जैसे स्वयं ही आक का दूध भरकर (डालकर) अपने नेत्रों को हठात खो बैठी हो। १२० अथवा अपनी ही नाक को काटकर वैरियों को अपशकुन किया। (अथवा) अपने ही दुधमुँहे बच्चे को मार डालकर सौत को झूठा दोष लगा लिया। १२१ हँसी में विष पी डाला, परन्तु यह समझ में नहीं आ रहा था कि मौत पास आ रही है। वैसे ही तुमने श्रीकृष्ण-दान देकर अहित कर लिया'। २२ (अनन्तर) मित्रविन्दा ने यह बात कही, '(हे सत्यभामा), तुम्हारा सयानापन जल गया। श्रीकृष्ण जो निर्विकार वस्तु अर्थात ब्रह्म हैं। उन्हें तुम जन्म-मृत्यु (का विकार) लगा रही हो (उनके

जन्ममरण लाविसी। २३ वैकुंठनाथ पूर्णावतारी। त्यावरी तुझ्या बापें घातली चोरी। प्रतापवंत कंसारी। पाताळकुहरीं शोधूं गेला। २४ मग युद्धीं जिंकूनि ऋक्षपती। मणि आणि जांबुवंती। घेऊनि आला जगत्पती। ऐसी ख्याति तुझी वो। २५ लक्ष्मणा म्हणे तुझें ज्ञान। आजि कळलें संपूर्ण। नरकासुराशीं नेऊन। जगज्जीवन भिडविला कीं। २६ सोळा सहस्र सवती पूर्ण। निर्लज्जे तूंचि आलीस घेऊन। शेवटीं हरि दिधला दान। शहाणपण वाहवलें। २७ याज्ञजिती म्हणे ते वेळां। बरा सवतीमत्सर साधिला। दाना श्रीरंग दिधला। कोणीं सांगितला शास्त्रार्थ। २८ नारदें आणिलें स्वर्गसुमन। तें रुक्मिणीसी दिधलें म्हणोन। तुवां अनर्थ केला पूर्ण। तुझे गुण जाणों आम्ही। २९ कीं घडिघडी क्षुधा लागते म्हणोन। उदरचि टाकिलें फाडून। जैसें देवळाचें शिखर पाडून। पोंवळी भोंवतीं रचियेली। १३० कीं गांठीं असतां कांहीं धन। म्हणोनि तोडूनी टाकिले स्वचरण। वसतें मोडूनियां सदन। मांडव पुढें घातला। १३१ तैसेंचि हें तुवां केलें पूर्ण। दानासी दिधला जगन्मोहन। तों भद्रावती बोले

जन्म-मृत्यु की कल्पना कर रही हो)। २३ वे वैकुण्ठनाथ हैं, पूर्ण अवतारी हैं। तुम्हारे पिता (सत्राजित) ने चोरी लगा दी (चोरी का आरोप लगाया)। कंसारि श्रीकृष्ण (उस दोषारोप से मुक्त होने के हेतु) स्यमन्तक मणि को खोजने के लिए पाताल तक पहुँची हुई गुफा में गये। २४ अनन्तर ऋक्षपति जाम्बवान को युद्ध में जीतकर वे जगत्पति उस मणि को और जाम्बवती को ले आये। तुम्हारी ऐसी ख्याति (हो गयी) है'। २५ लक्ष्मणा बोली, 'तुम्हारा ज्ञान आज पूरा-पूरा समझ में आ गया। तुमने उन्हें ले जाकर नरकासुर से भिड़ा दिया था। २६ री निर्लज्ज, सोलह सहस्र (एक सौ) सौतें (उसके फलस्वरूप) तुम्हीं ले आयी हो और अन्त में श्रीहरि दान में दे डाले। बह गया तुम्हारा सयानापन'। २७ उस समय याज्ञजिती ने कहा, 'सौतिया डाह अच्छा साध लिया और श्रीरंग दान में दे डाले। तुम्हें किसने शास्त्रार्थ बता दिया ? २८ नारद स्वर्गपुष्प (पारिजात) लाये थे; (श्रीकृष्ण ने) वह रुक्मिणी को दिया था। इसलिए तुमने मत्सर से यह पूर्ण विनाश कर डाला। हम तुम्हारे गुण जानती हैं। २९ अथवा (जैसे) बार-बार भूख लगती है, इसलिए (उसे दूर करने के लिए किसी ने) पेट ही फाड़ डाला। अथवा जैसे देवालय का शिखर (कलश) गिराकर उसके चारों ओर प्राचीर का निर्माण किया। १३० अथवा गाँठ में कुछ धन होने से अपने ही पाँवों को (किसी ने) काट डाला; अथवा सुखपूर्ण बसा हुआ घर तोड़कर उसके सामने मण्डप छवा दिया। १३१ तुमने पूर्णतः उसी प्रकार यह किया है— दान में जगन्मोहन दे दिये।' तब भद्रावती यह बात

वचन। तुझें ज्ञान दग्ध जाहलें। ३२ ज्या हरीचें करितां स्मरण। तुटे जन्मसंसारबंधन। जो सर्वद्रष्टा अचिंत्य निर्गुण। तयासी गुण लाविसी तूं। ३३ तों देवकी धांवली तत्काळ। म्हणे तुवां दानासी दिधलें माझें बाळ। नव मास पोटीं वाहिला घननीळ। जो कां निर्मळ अंतर्बाह्य। ३४ मी जवळी असतां जननी। आणि या सोळा सहस्र कामिनी। दान द्यावया स्वामिनी। तूंचि कैसी जाहलीस। ३५ जेणें तुझा पिता मारिला। तो शतधन्वा पूर्वीं वर योजिला। तो सांडूनि त्वां कृष्ण वरिला। मणि आणिला म्हणोनियां। ३६ सत्यभामा अधोवदन। कोणासी नेदी प्रतिवचन। जैसें तस्करासी होतां वृश्चिकदंशन। तो कळ सोसूनि उगाचि राहे। ३७ किंवा चोराची जननी। रडों न लागे प्रकट जनीं। असो बळिभद्रें ऐकिलें कर्णीं। ब्रह्मनंदनें हरि नेला। ३८ सिद्ध करूनि चतुरंग दळभार। धांवण्या निघाला बळिभद्र। वसुदेव उद्धव अक्रूर। उग्रसेन धांवतसे। ३९ म्हणती नारद भैंद पूर्ण। सत्यभामेसी घालूनि मोहन। श्रीकृष्ण जगाचें जीवन। नेतो चोरून सर्वांसी। १४० दूरी देखोनि

बोली, 'तुम्हारा ज्ञान जल गया। ३२ जिन श्रीहरि का स्मरण करने पर जन्म और संसार का बन्धन टूट जाता है, जो सर्वद्रष्टा हैं, अचिन्त्य, निर्गुण हैं, उन्हें तुम गुण लगा रही हो (उनको गुणधर्म-युक्त मान रही हो)'। ३३ तब देवकी तत्काल दौड़ी (आयी)। और बोली, 'तुमने दान में मेरे बच्चे को दे डाला। मैंने नौ मास उस घननील को उदर में बहन किया है, जो अन्तर्बाह्य रूप से निर्मल (दोष-रहित) है। ३४ मुझ माता के पास में होते हुए और इन सोलह सहस्र (एक सौ सात अन्य) स्त्रियों के होते हुए दान देने के लिए तुम ही स्वामिनी कैसे हो गयी। ३५ जिसने तुम्हारे पिता को मार डाला, वह शतधन्वा तुम्हारे लिए वर (रूप में) पहले निर्धारित था। उसे छोड़कर तुमने कृष्ण का इसलिए वरण किया कि वह स्यमन्तक मणि को (लौटा) लाया'। ३६ सत्यभामा (यह सुनते हुए) अधोवदन थी (सिर झुकाये हुए थी)। उसने किसी को प्रत्युत्तर नहीं दिया, जिस प्रकार चोर को बिच्छू द्वारा काटने पर वह वेदना को सहते हुए चुप ही रहता है, अथवा चोर की माता प्रकट रूप से लोगों में (अपने पुत्र के दुःख आदि से, भेद खुल जाने के डर से) रो नहीं सकती। अस्तु। (इधर) बलराम ने कानों से सुना कि ब्रह्मनन्दन नारद श्रीहरि को ले गये हैं। १३७-१३८ चतुरंग सेनादल को सिद्ध करके बलराम दौड़ते हुए (जाने के लिए) निकले, (यह जानकर) वसुदेव, उद्धव, अक्रूर, उग्रसेन (भी) दौड़े। ३९ उन्होंने कहा, 'नारद पूर्णतः लुटेरा है। सत्यभामा पर मोहिनी डालकर वे जगज्जीवन श्रीकृष्ण को सबके समक्ष चुराकर ले जा रहे हैं। १४० सेनादल को दूरी पर देखकर यदुवीर

दळभार। नारदासी म्हणे यदुवीर। आमुचे वडील आले समग्र। शिक्षा थोर करिती आम्हां। १४१ नारद म्हणे हृषीकेशी। तूं भिऊं नको मानसीं। मी प्रत्युत्तर देतों समस्तांसी। तूं असें पाठीशीं माझिया। ४२ तों जवळी आले वसुदेव संकर्षण। म्हणती श्रीकृष्ण आमुचें जीवन। सत्यभामेसी वचनीं गोवून। कैसा नेतोसी दयार्णवा। ४३ नारद म्हणे ऐका समस्त। मी काय ठकवूनि नेतों कृष्णनाथ। पाठीशीं कां आलां धांवत। दळभार सिद्ध करूनियां। ४४ मी तरी एकला ब्राह्मण। मजसीं करूं पाहतां भांडण। सत्यभामेनें दिधलें दान। तुम्ही परतोन मागतां। ४५ मज म्हातारपण निश्चितीं। म्हणोनि हरि घेतला सांगाती। येरू म्हणती आणिक तुम्हांप्रती। सेवक देऊं दूसरा जी। ४६ नारद म्हणे कासया व्यर्थ। आमुच्या मनोगतें चाले कृष्णनाथ। त्रिभुवन शोधितां समस्त। ऐसा सांगाती मिळेना। ४७ यादव घालिती नमस्कार। नारदापुढें पसरिती पदर। तूं जे वस्तु मागसी साचार। ते देऊं कृष्णा पालटा। ४८ नारद म्हणे कृष्णपालटाशीं। कोणती वस्तु मागूं तुम्हांपाशीं। नाशवंत देऊन अविनाशी। नेऊं म्हणतां ठकवूनियां। ४९ श्रीकृष्णाच्या मुखावरूनी।

नारद से बोले, 'हमारे समस्त ज्येष्ठ जन आ रहे हैं। वे हमें बड़ा दण्ड देंगे'। १४१ तो नारद बोले, 'हे हृषीकेश, आप मन में मत डरिए। मैं प्रत्युत्तर दूँगा। आप मेरे पीठ पीछे रहिए। ४२ तब वसुदेव और बलराम निकट आये और बोले, 'श्रीकृष्ण हमारे जीवन (-स्वरूप) हैं। सत्यभामा को बातों में उलझाकर उन दयार्णव को कैसे ले जा रहे हैं'। ४३ तो नारद बोले, 'आप सब सुनिए। क्या मैं कृष्णनाथ को ठगकर ले जा रहा हूँ? आप (लोग) सेनादल को सिद्ध करके हमारे पीछे (पीछा करते हुए) क्यों आ गये हैं। ४४ मैं तो अकेला ब्राह्मण हूँ (और इतने सब) मुझसे झगड़ा करना चाहते हैं। सत्यभामा ने (श्रीकृष्ण को मुझे) दान (में) दिया है; आप उसे फिर से माँग रहे हैं। ४५ निश्चय ही मुझे बुढ़ापा आया है, इसलिए श्रीहरि को (साथ में) संगी के रूप में मैंने लिया है'। तो वे बोले, 'हम आपको दूसरा कोई अन्य सेवक देंगे'। ४६ तो नारद ने कहा, 'व्यर्थ क्यों (दे रहे हैं)? श्रीकृष्णनाथ हमारी इच्छा के अनुसार चल रहे हैं। समस्त त्रिभुवन में ढूँढ़ने पर भी ऐसा संगी-साथी नहीं मिलेगा'। ४७ यादवों ने नारद को (दण्डवत) नमस्कार किया; उनके सामने दामन फैलाया और बोले, 'आप कृष्ण के बदले में जो वस्तु माँग लेंगे, हम सचमुच वह दे देंगे'। ४८ (इसपर) नारद बोले, 'कृष्ण के बदले में मैं आपसे कौन-सी वस्तु माँग लूँ? आप मुझे ठगकर नाशवान देकर अविनाशी को ले जाने की कह रहे हैं (ले जाना चाहते हैं)। ४९ श्रीकृष्ण के मुख पर कोटि (-कोटि) कामदेवों को निछावर कर दें।

कोटि काम सांडिजे ओंवाळूनी । ऐसा सांगाती त्रिभुवनीं । न मिळे शोधितां सर्वथा । १५० यादव म्हणती स्यमंतकमणी । घेऊनि सोडा जी चक्रपाणि । मग म्हणे नारदमुनी । नलगे सर्वथा आम्हांतें । १५१ त्या मण्याचे पायीं अनर्थ बहुत । मेले प्रसेन सत्राजित । तैसाचि आमुचाची होईल घात । न घें मणि सर्वथा तो । ५२ यादव म्हणती दिव्य सुवर्ण । हरीच्या भारोभार देऊं पूर्ण । मग म्हणे ब्रह्मनंदन । अवश्य आणून देइंजे । ५३ तुळा उभविली सत्वर । पारडीं बैसविला यादवेंद्र । तों भामा म्हणे श्रीधर । मीचि सोडवीन तत्त्वतां । ५४ माझ्या बापाचा मणि आंदण । नित्य प्रसवे आठ भार सुवर्ण । मज धनासी नाहीं वाण । जगज्जीवन सोडवितें । ५५ अहंकार धरूनि पूर्ण । घातलें सकळ संग्रहसुवर्ण । सत्यभामा पाहे अधोवदन । सरलें धन सर्वही । ५६ कृष्णनायिका एक शत षोडश सहस्त्र । एकदांचि उठिल्या समग्र । सुवर्ण घालिती सत्वर । अणुमात्र न ठेविती । ५७ शेवटीं अंगावरील सुवर्ण । गोपी घालिती नेऊन । द्वारकेचें राज्यभांडार संपूर्ण । आणूनि तेथें घातलें । ५८ समुद्रामाजी पडलें हरळ ।

खोजने पर त्रिभुवन में ऐसा साथी बिलकुल नहीं मिलेगा '। १५० (यह सुनकर) यादव बोले, 'अजी, स्यमन्तक मणि लेकर चक्रपाणि को छोड़ दीजिए'। तब नारदमुनि बोले, 'हमें वह बिलकुल नहीं चाहिए। १५१ उस मणि के कारण बहुत संकट आते हैं। प्रसेन और सत्राजित (उसके निमित्त) मर गये। वैसे ही हमारा भी नाश हो जाएगा। (इसलिए) मैं उस मणि को बिलकुल नहीं लूँगा'। ५२ तो यादव बोले, 'श्रीहरि के पूर्ण भार के बराबर दिव्य सुवर्ण देंगे'। तब ब्रह्मनन्दन नारद ने कहा, 'तो अवश्य लाकर दीजिए'। ५३ (तदनन्तर) झट से उन्होंने तुला-यंत्र (तराजू) स्थापित करवा दिया और एक पलड़े में यादवेन्द्र श्रीकृष्ण को बैठा दिया। तब सत्यभामा बोली, 'श्रीधर (कृष्ण) को सचमुच मैं ही छुड़ाऊँगी। ५४ दायजे में मिली हुई मेरे पिताजी की (स्यमन्तक) मणि नित्यप्रति (प्रतिदिन) आठ भार सुवर्ण उत्पन्न करती है। (अतः) मुझे धन की कोई कमी नहीं है— मैं जगज्जीवन को छुड़ा लेती हूँ'। ५५ (इस प्रकार) पूर्ण अहंकार धारण करते हुए उसने अपना सग्रहीत समस्त सुवर्ण (दूसरे पलड़े में) डाल दिया।' सत्यभामा अधोवदन (सिर झुकाये) देखने लगी। उसका सभी धन समाप्त हुआ। ५६ तो श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र (एक सौ) नायिकाएँ (स्त्रियाँ) सब (की सब) एक साथ उठ गयीं। उन्होंने (अपना-अपना) सोना झट से (पलड़े में) डाल दिया; (अपने पास) अणुमात्र (शेष) नहीं रखा। ५७ अन्त में शरीर पर पहने हुए सोने (के आभूषणों) को ले जाकर उन गोपियों ने डाल दिया। द्वारका का सम्पूर्ण राज्य-भण्डार (से स्वर्ण) लाकर वहाँ (उस पलड़े में) डाल

तैसें सुवर्ण जाहलें सकळ। मशकाचेनि भूगोळ। उलथोनि कैसा पाडवे। ५९ उंच आहे किती नभ। हें काय गणूं शके शलभ। आदित्यमंडळ सुप्रभ। मोजवे केवीं तमातें। १६० मेरूचिया वजनासी पाहीं। कांटिया घातली जैसी राई। तैसें द्वारकेचें धन सर्वही। तुळेमाजी हळवट। १६१ सकळ नगरींचे लोक धांविन्नले। त्यांहीं आपुलें सुवर्ण घातलें। गुंजभरी नाही उरलें। द्वारकेमाजी कांचन। ६२ आनकदुंदुभीची पत्नी। जिच्या उदरीं जन्मला चक्रपाणी। तिनें सुवर्ण घातलें आणोनी। मोहेंकरूनि तेधवां। ६३ रुपें कांसें तांबें पितळ। अष्टधातु घातल्या प्रबळ। जन आश्चर्य करिती सकळ। नवल अद्भुत देखोनि। ६४ पहा वृक्षशाखेवरी देखा। भार घालूनि बैसे पिपीलिका। तैसा अष्टधातु सकळिका। तुळेमाजी दीसती। ६५ अनंत ब्रह्मांडें ज्याच्या पोटीं। तो पारडां बैसविला जगजेठी। एक म्हणती हरि नाटकी कपटी। जड बहुत जाहला। ६६ नारद आणि हा गोविंद। दोघांनीं मांडिला हा विनोद। एक भोंदू एक मैंद। सत्यभामेसी

दिया। ५८ जैसे समुद्र में कंकड़ पड़ गया हो, वैसे समस्त सोना (उस पलड़े में) हो गया। मच्छड़ द्वारा भूगोल (पृथ्वी) को उलटकर कैसे गिरा दिया जाएगा। ५९ क्या टिड्डी (टिड्डी) यह नाप सकती है कि आकाश कितना ऊँचा है। अन्धकार द्वारा किस प्रकार यह नापा जा सकता है कि सूर्य-मण्डल कितना प्रभायुक्त (कान्तिमान, प्रकाशमान) है। १६० देखिए, मेरु पर्वत के वजन (करने) के लिए जिस प्रकार तुलायंत्र में राई डाल दी गयी हो, (वह जिस प्रकार हलकी सिद्ध होगी), उसी प्रकार द्वारका का सभी धन उस तुलायंत्र में हलका (सिद्ध) हुआ। १६१ (यह देखकर) समस्त नगरी के लोग दौड़े। उन्होंने अपना (-अपना) सोना डाल दिया। द्वारका के अन्दर (किसी के यहाँ) गुंजा भर (भी) सोना शेष नहीं रहा। ६२ जिसके उदर से श्रीकृष्ण जनमे, उस (आनकदुन्दुभी) वसुदेव की पत्नी देवकी ने (भी श्रीकृष्ण के मोह से) उस समय सुवर्ण लाकर डाल दिया। ६३ (तत्पश्चात्) उन्होंने रूपा, कांस्य, ताँबा, पीतल —आठों धातुएँ[1] प्रबल (बड़े) प्रमाण में डाल दीं। उस अद्भुत चमत्कार को देखकर समस्त लोग आश्चर्य (अनुभव) करने लगे। ६४ देखिए, जिस प्रकार वृक्ष की शाखा पर अपना (पूरा) भार डालकर चींटी बैठ जाए, (तो वह जैसे दिखायी देगी) उसी प्रकार (लोगों द्वारा) तराजू में (डाली हुई) समस्त अष्ट धातुएँ दिखायी दे रही थीं। ६५ जिसके पेट के अन्दर अनन्त ब्रह्माण्ड (समाये हुए) हैं, वे जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण पलड़े में बैठाये गये थे। कुछ एक बोले, 'श्रीहरि नाटकिया है, कपटी है। वे (जान-बूझकर) बहुत भारी बन गये हैं। ६६ नारद और ये गोविन्द

---

१ अष्ट धातुएँ— सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, शीशा, लोहा और पारा।

मिळाले। ६७ एक चहाड एक चोर। एक कळिलावा एक जार। एक उदास एक उदार। अनिवार दोघेही। ६८ न उचले पारडें देखोनी। देवकी रडे धाय मोकलूनी। म्हणे सत्यभामे वैरिणी। अघटित करणी त्वां केली। ६९ भ्रताराचें केलें दान। हें जाहलें नाहीं अद्यापि श्रवण। देवकी धरी नारदाचे चरण। मज पुत्रदान देईं कां। १७० नारद म्हणे आली नाहीं रुक्मिणी। जे त्रिभुवनपतीची पट्टराणी। सुवर्ण बहुत आहे तिचे सदनीं। तीस बोलावूं पाठवा जी। १७१ सकळांसी मानली गोष्टी। उद्धव पाठविला उठाउठी। तों दृष्टीं देखली गोरटी। जिचे पोटीं मन्मथ जन्मला। ७२ रत्नजडित चौकी चांगली। त्यावरी जगन्माता बैसली। शुभ्र वस्त्र मुक्तलग चोळी। कंठी एकावळी डोलत। ७३ ऐसी ते भीमकहृदयरत्न। उद्धवभक्तें दृष्टीं देखोन। केलें साष्टांग नमन। वर्तमान निवेदिलें। ७४ ऐकतां साद्यंत वर्तमान। केलें किंचित हास्यवदन। तैसीच वृंदावनीं जाऊन। केलें नमन तुळशीसी। ७५ त्रिवार प्रदक्षिणा करून।

—दोनों ने यह हँसी-ठठोली आरम्भ की है। (उनमें से) एक ढोंगी है, तो एक (दूसरा) लुटेरा है —ये दोनों सत्यभामा से मिल गये। ६७ एक चुग़लखोर है, तो एक (दूसरा) चोर है। एक कलहकारी (झगड़ा लगानेवाला) है, तो एक (दूसरा) जार है। एक उदासीन (विरक्त) है, तो एक (दूसरा) उदार— प्रभावशाली है। दोनों भी अनिवार्य हैं। ६८ पलड़ा नहीं उठ रहा था। यह देखकर ढाढ़ मारकर देवकी रोने लगी। वह बोली, ' अरी बैरिन सत्यभामा, तूने अद्भुत करनी कर दी है। ६९ (किसी ने) पति दान में दिया है —यह अभी तक (हमने) नहीं सुना है '। (यह कहते हुए) देवकी ने नारद के चरण पकड़े और कहा, ' मुझे पुत्र-दान दीजिए '। १७० तो नारद बोले, ' जो त्रिभुवन-पति श्रीकृष्ण की पटरानी है, वह रुक्मिणी (अभी तक) नहीं आयी। उसके घर में बहुत सोना है। उसे बुलाने के लिए भेज दीजिए '। १७१ सबको यह बात जँच गयी। (उन्होंने) झट से उद्धव को भेज दिया। (उसके यहाँ जाकर) उद्धव ने अपनी आँखों से उस गोरी को देखा जिसके उदर से कामदेव (प्रद्युम्न) जनमा। ७२ (वहाँ) रत्नजटित चौकी थी। उस पर जगन्माता (रुक्मिणी) बैठी हुई थी। उसने शुभ्र वस्त्र और मोती-गूँथी हुई चोली पहनी थी। उसके गले में एकलड़ा हार झूल रहा था। ७३ भक्त उद्धव ने ऐसी भीमक के हृदय-रत्न (स्वरूप रुक्मिणी) को आँखों से देखकर उसे साष्टांग नमस्कार किया और (समस्त) समाचार कह दिया। ७४ आदि से लेकर अन्त तक सहित उस समाचार को सुनकर उसने मुख को किंचित हास्य से युक्त किया, अर्थात् वह किंचित मुस्करायी। वैसे ही (झट से) उसने वृन्दावन में जाकर तुलसी को नमस्कार किया। ७५ तीन बार परिक्रमा करके उसने (उस तुलसी से) प्रार्थना

घेतलें पक्वदळ प्राथून। रत्नताटीं घालून। वरी दिव्य वस्त्र झांकिलें। ७६ हंसगती चमकत। मन्मथजननी आली तेथ। श्रीकृष्ण आणि कमलोद्भवसुत। षोडशोपचारें पूजिले। ७७ रुक्मिणीचा भाव निर्मळ। तुळेवरी ठेविलें तुळसीदळ। श्रीकृष्णाचें पारडें तत्काळ। आपोआप उचललें। ७८ सकळांमाजी श्रेष्ठ भाव। भावें सोडविला माधव। विमानीं तटस्थ पाहती देव। पुष्पवर्षाव करिताती। ७९ धन्य धन्य भीमकराजकुमारी। तुळसीदळ ठेवूनि तुळेवरी। सोडविला मधुकैटभारी। जो कंसारी भक्तवत्सल। १८० जे आदिपुरुषाची ज्ञानशक्ती। अनंत शक्ती जियेपुढें राबती। ब्रह्मादिक बाळें निश्चितीं। नाचवी रात्रंदिवस जे। १८१ ब्रह्मसुखाचा समुद्र। माजी बुडाले जीव समग्र। तेथींची गोडी अणुमात्र। चाखों नेदी कोणातें। ८२ जिकडे करी कृपावलोकन। तो तत्काल होय ज्ञानसंपन्न। देहींच विदेही होवोन। कैवल्यपद पावे तो। ८३ असो सोनें जाहलें बहुत। तें काढिती हातोहात। गोपी धांवती समस्त। माझें माझें म्हणोनि। ८४ गुळावरी बैसती मक्षिका। तैशा गोपी झोंबती सकळिका।

करते हुए एक पक्वदल (पका पत्ता तोड़) लिया; उसे रत्न की थाली में रखकर उसपर दिव्य वस्त्र आच्छादित किया (फैला दिया)। ७६ कामदेव प्रद्युम्न की जननी (रुक्मिणी) हंसगति से चलकर चमकती-दमकती हुई वहाँ आ गयी। उसने श्रीकृष्ण और ब्रह्मनन्दन नारद का सोलह उपचारों से पूजन किया। ७७ रुक्मिणी का (मनो-) भाव निर्मल (घमण्ड आदि की मैल से रहित) था। उसने तुलायंत्र (के पलड़े) में तुलसीदल रखा, तो श्रीकृष्ण वाला पलड़ा अपने-आप तत्काल उठ गया। ७८ सबमें (भक्ति) भाव श्रेष्ठ होता है। उसने भक्ति-भाव से श्रीकृष्ण को छुड़ा लिया। देव विमानों में (बैठकर) चौंककर देख रहे थे। उन्होंने पुष्पों की बौछार की। ७९ भीमक-राजकुमारी धन्य है, धन्य है। उसने तुला-यंत्र में तुलसीदल रखकर मधु-कैटभ के शत्रु विष्णु-स्वरूप उन श्रीकृष्ण को मुक्त कर दिया, जो कंस के शत्रु हैं, भक्त-वत्सल हैं। १८० जो आदिपुरुष की (साक्षात रुक्मिणी-रूपी) ज्ञानशक्ति हैं, जिसके सम्मुख अनन्त शक्तियाँ कष्ट (सेवा) करती हैं, जो निश्चय ही ब्रह्मा आदि बालकों को रात-दिन नचाती है, वह जिसमें समग्र जीव डूब गये हैं, उस ब्रह्म-सुख के समुद्र की मधुरता अणु मात्र तक किसी को चखने नहीं देती। १८१-१८२ वह जिसकी ओर कृपापूर्वक अवलोकन करती है, वह तत्काल (आत्म-) ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है और वह इसी देह में विदेही होकर कैवल्य पद को प्राप्त हो जाता है। ८३ अस्तु। सोना बहुत (इकट्ठा) हो गया था। (लोग) उसे हाथों से शीघ्रतापूर्वक निकालने लगे, तो समस्त गोपियाँ 'मेरा है', 'मेरा है', कहते हुए

रुक्मिणी नारद श्रीरंग देखा। कौतुक पाहती तयांचें। ८५ यापरी जन नाडले देख। श्रीकृष्णभजनीं जाहले विन्मुख। खरें मानूनि धनदारसुख। झाले भ्रांत अहंमतें। ८६ एक म्हणती माझी सरी देख। एक म्हणे माझें पदक। एक म्हणे माझा चितांक। सोडीं वेगें आलगटे। ८७ एक म्हणे शीसफूल चंद्ररेखा। तो माझा मजकडे टाका। मूव राखडी गळ्याच्या टिका। तानवडें वोळखा माझीं हीं। ८८ चुडे दोरे हातसर। माझीं वंडकडीं बाजुबंद सुंदर। माझ्या मुद्रिका परिकर। मुक्ताहार माझे हे। ८९ सत्यभामा धांवे लोभेंकरून। म्यां पर्वतासमान घातलें सुवर्ण। माझें गुंजभर होतां न्यून। अनर्थ पूर्ण होईल। १९० षोडश सहस्र स्नुषा देखा। देवकी म्हणे तुम्ही आवघ्या मूर्खा। माझे अलंकार मजपुढें टाका। हांसती गोपिका गदगदां। १९१ म्हणती म्हातारपणीं सोस। कां हो सुटला तुम्हांस। आतां हे अलंकार सुनांस। वांटा आम्हांस मामिसें। ९२ नारदें वंदिलें भीमकीस। माते तूंचि भोगीं जगन्निवास। प्रदक्षिणा करूनि दोघांस। ऊर्ध्वपंथें

दौड़ीं। ८४ जिस प्रकार गुड़ पर मक्खियाँ बैठती हैं, उसी प्रकार समस्त गोपियाँ (सोने को प्राप्त करने के लिए इकट्‌ठा होकर) लड़ने-झगड़ने लगीं। देखिए, रुक्मिणी, नारद और श्रीकृष्ण उनकी इस लीला को देखते थे। ८५ देखिए, इस प्रकार लोग (माया के प्रभाव में) फँसकर पीड़ित हो गये हैं और वे श्रीकृष्ण की भक्ति से विमुख हो गये हैं। वे धन-दारा (स्त्री) सम्बन्धी सुख को सत्य मानकर अहंकार से भ्रान्त हो गये हैं। ८६ कुछ एक कहती थीं— 'देखो यह मेरी हँसली है', कोई एक बोली, 'यह मेरा पदिक है'। तो किसी एक ने कहा, 'यह मेरा चितांक (गल-पट्टा) है, अरी दुष्टा, झट से उसे छोड़ दो'। ८७ कोई एक बोली, वह शीर्षफूल मेरा है, वह चन्द्ररेखा मेरी है, मेरी ओर फेंक दो'। तो (किसी-) किसी ने कहा, 'पहचान लो, यह स्वर्णमोदक, राखी, गले की टीक, तमवटिका मेरे हैं। चूड़े, डोर, हथलरियाँ मेरी हैं; बाहु-कड़े, सुन्दर बाजूबन्द मेरे हैं; ये सुन्दर मुद्रिकाएँ मेरी हैं; ये मुक्ताहार मेरे हैं। ८८-८९ (उधर) सत्यभामा लोभ से दौड़ी (और बोली—) 'मैंने पर्वत के समान सोना डाल दिया। मेरा सोना गुंजा भर (भी) कम होने से पूरा नाश हो जाएगा'। १९० देखिए, देवकी ने उन सोलह सहस्र (एक सौ सात) बहुओं से कहा, 'तुम सब मूर्ख हो। मेरे आभूषण मेरे सामने रख दो'। (यह सुनकर) गोपियाँ खिल-खिलाकर हँसने लगीं। १९१ वे बोलीं, 'बुढ़ापे में आपको यह प्यास क्यों (लगी) है। माताजी, अब ये आभूषण हम बहुओं में बाँट दीजिए'। ९२ (तत्पश्चात्) नारद ने रुक्मिणी की वन्दना की— 'हे माता, आप ही जगन्निवास श्रीकृष्ण (की संगति) का उपभोग कीजिए'। (अनन्तर) उन दोनों की परिक्रमा

चालिला । ९३ जन सर्वही गुंतले धना । रुक्मिणी घेऊनि जगन्मोहना । पूर्ण ब्रह्मानंद वैकुण्ठराणा । अगाध लीला दावीत । ९४ हरिविजय ग्रंथ परिस पूर्ण । जीव केवळ लोह कठिण । या परिसासी झगटती येऊन । तरी तत्काळ सुवर्ण होती पैं । ९५ सदा सर्वदा हरिविजयश्रवण । हेंचि लोहपरिसाशीं संघटण । अहंकृतिकाळिमा जाळून । केवळ सुवर्ण होती ते । ९६ श्रीमद्भीमातटविलासिया । ब्रह्मानंदा पंढरीराया । श्रीधरवरदा करुणालया । विसांविया जगद्गुरु । ९७ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । प्रेमळ भक्त सदा परिसोत । त्रिंशत्तमाध्याय गोड हा । १९८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

करके वे ऊर्ध्व मार्ग से चले गये । १९३ (उधर) सभी लोग धन में फँस गये थे, तो (इधर) रुक्मिणी ने जगन्मोहन श्रीकृष्णस्वरूप पूर्ण ब्रह्मानन्द-स्वरूप वैकुण्ठराज को लेकर अथाह लीला प्रदर्शित की । १९४

श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से पारस है (जब कि) जीव केवल कठिन लोहा है । वे यदि आकर इस पारस को छू लेंगे, तो वे तत्काल सुवर्ण हो जाएँगे । १९५ सदा नित्यप्रति श्रीहरि-विजय का श्रवण ही लोहे का पारस से होनेवाला संगठन (घर्षण, स्पर्श) है । अहंकृति रूपी कालिमा को जलाकर वे विशुद्ध सुवर्ण ही हो जाएँगे । १९६ हे श्रीमद्-भीमा नदी के तट पर विलास करनेवाले, आनन्दस्वरूप ब्रह्म रूपी पंढरीराज (श्री विट्ठल), हे श्रीधर के वरदाता, हे करुणालय, हे विश्राम (-स्थान), हे जगद्गुरु । १९७

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । प्रेममय भक्त उसके इस मधुर तीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें । १९८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३१

[हनुमान को श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराम के रूप में दर्शन देना]

श्रीगणेशाय नमः ॥ ओं नमो जी सद्गुरुपंचाक्षरा । श्रीब्रह्मानंदा

श्रीगणेशाय नमः । ॐ नमः । हे सद्गुरु रूपी (ॐ नमःशिवाय अथवा ऐसा ही कोई पाँच अक्षरों वाला मंत्र पढ़कर भूत-पिशाचों की बाधा को दूर करनेवाले) ओझा, हे श्रीगुरु श्रीब्रह्मानन्दस्वरूप आनन्दमय ब्रह्म,

सौख्यसमुद्रा। तूं परात्परसोइरा। नामरूपातीत जो। १ नाम रूप गुण वर्ण। तुझे ठायीं नाहींत मुळींहून। सच्चिदानंदघन पूर्ण। हेंही बोलणें न साहे। २ अनंत ब्रह्मांडें कडोविकडी। माया तुझी घडी मोडी। परी तूं तिकडे एक घडी। न पाहसी विलोकूनि। ३ परी जीव पडिले अविद्येच्या फांसा। त्यांसी उद्धरावया जगदीशा। द्वारकेमाजी पुराणपुरुषा। अवतरलासी म्हणोनि। ४ सांडोनियां योगनिद्रा। सगुण जाहलासी यादवेंद्रा। मन्मथजनका त्रिभुवनसुन्दरा। विश्वोद्धारा विश्वेशा। ५ तिसाविये अध्यायीं कथन। सत्यभामेनें केलें कृष्णदान। तुळेवरी तुळसीपत्र ठेवून। रुक्मिणीनें कृष्ण सोडविला। ६ यावरी एकदां कमलोद्भवसुत। जो व्यासवाल्मीकांचा गुरु सत्य। ध्रुव प्रल्हाद परम भक्त। ज्याच्या अनुग्रहें उद्धरले। ७ चतुर्दश विद्या चौसष्ट कळा। करतळामळ जयासी सकळा। ज्याची ऐकतां गायनकळा। ब्रह्मा हरि हर डुल्लती। ८ चारी वेद मुखोद्गत। सर्व शास्त्रीं पारंगत। सामर्थ्य तयाचें अद्भुत। त्रैलोक्य वंदी जयासी। ९ भूतभविष्यवर्तमानज्ञान। हें ज्यापुढें उभें कर जोडून।

हे सौख्य-समुद्र, आप, जो (वस्तुतः) नाम और रूप से परे हैं, (सबके) परात्पर सगे-आप्तजन हैं। १ आपके यहाँ (आपमें) नाम, रूप, गुण, वर्ण मूल से ही नहीं हैं। आपको 'पूर्ण सच्चिदानन्द' कहना भी सहा नहीं जा पाता (कहना बिलकुल उचित नहीं है)। २ आपकी माया कौशल के साथ अनन्त ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है और उन्हें भग्न कर डालती है। फिर भी आप उधर एक घड़ी (एक बार) भी ध्यान से नहीं देखते। ३ फिर भी जीव अविद्या के फन्दे में (उलझ) पड़े हैं। हे जगदीश, हे पुराण-पुरुष, उनका उद्धार करने के लिए आप द्वारका में अवतरित थे। ४ हे यादवेन्द्र, हे कामदेव-प्रद्युम्न के पिता, हे त्रिभुवन-सुन्दर, हे विश्व का उद्धार करनेवाले, हे विश्वेश, आप योगनिद्रा को त्याग कर सगुण हो गये। ५ तीसवें अध्याय में यह कथन किया गया कि सत्यभामा ने श्रीकृष्ण-दान दिया; (परन्तु) रुक्मिणी ने तुला-यंत्र में तुलसी-पत्र रखकर उन्हें मुक्त कर लिया। ६ इसके पश्चात, जो व्यास, वाल्मीकि के सचमुच गुरु हैं, जिनके अनुग्रह से (भगवान के) ध्रुव, प्रह्लाद (जैसे) परम भक्त उद्धार को प्राप्त हो गये, जिनके लिए समस्त चौदह विद्याएँ और चौंसठ कलाएँ[1] हथेली पर रखे हुए आमले की भाँति सुस्पष्ट हो गयी हैं, जिनकी गायन-कला को सुनते हुए ब्रह्मा, विष्णु और शिव डोलने लगते हैं, चारों वेद जिसके मुखोद्गत (कण्ठस्थ) हैं, जो समस्त शास्त्रों में पारंगत हैं, जिनकी सामर्थ्य अद्भुत है, जिनकी वन्दना तीनों

---

१ चौदह विद्याएँ और चौंसठ कलाएँ— देखिए टिप्पणियाँ ७ और ८, पृ० ८०-८१, अध्याय ३।

न लागतांचि एक क्षण। ब्रह्मांड मोडोनि रची पुढती। १० अन्याय देखतांचि सत्वरा। जो शिक्षा करी विधिहरिहरां। ज्ञानी कृपाळु ऐसा दूसरा। ब्रह्मांडोदरामाजी नसे। ११ ऐसा तो नारद मुनीश्वर। तीर्थें करीत समग्र। दक्षिणसमुद्रीं रामेश्वर। तेथें सत्वर पातला। १२ तों तेथें देखिला समीरसुत। जो ज्ञानी भक्त विरक्त। जो श्रीरामाचा प्रियपात्र। प्राणांहूनि पलीकडे। १३ तो दक्षिणसमुद्रीं करी अनुष्ठान। अंतरीं आठविलें श्रीरामध्यान। नेत्रीं वाहे प्रेमळ जीवन। वेधलें मन श्रीरामीं। १४ तों ब्रह्मनंदन आला तेथें। तें अंतरीं कळलें हनुमंतातें। ध्यान विसर्जूनि नारदातें। भेटावया धांविन्नला। १५ घरा आलिया संतजन। जे हरीसी आवडती प्राणांहून। त्यांचा अव्हेर करूनियां जाण। जो कां ध्यान करूं बसे। १६ तोची दुरात्मा खळ निर्धारीं। हरि म्हणे तो मुख्य माझा वैरी। जो माझ्या संतांचा अपमान करी। मी नाना प्रकारें निर्दाळीं त्यातें। १७ करूनि संतांचा अनादर। जो माझी पूजा करी पामर। पूजा नव्हे तो लत्ताप्रहार। तेणें मज समर्पिला। १८ ओलांडूनि पूजा

लोक करते हैं, भूत-भविष्य-वर्तमान का ज्ञान (त्रिकाल-ज्ञान) जिनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा है, जो एक क्षण (तक) न लगते ब्रह्माण्ड को नष्ट करके उसे फिर से निर्मित करते हैं, अन्याय को देखते ही जो झट से ब्रह्मा, विष्णु और शिव (तक) को दण्ड देते हैं, जिनके समान ज्ञानी और कृपालु ब्रह्माण्ड के उदर में ऐसा दूसरा कोई नहीं है, ऐसे वे विधाता के पुत्र मुनीश्वर नारद समग्र तीर्थ-स्थलों की यात्रा करते-करते दक्षिण समुद्र के तट पर (जहाँ) रामेश्वर है, वहाँ शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे। ७-१२ तब उन्होंने वहाँ पवनकुमार हनुमान को देखा, जो ज्ञानी भक्त है, विरक्त है, जो श्रीराम का प्राणों से भी अधिक प्रिय पात्र (प्रेम करने योग्य, प्यारा) है। १३ वह दक्षिण समुद्र के (तट के) पास अनुष्ठान कर रहा था। उसने अन्तःकरण में राम के रूप का स्मरण किया; उसकी आँखों से उत्कट प्रेम से अश्रु-जल बहने लगा। १४ उसका मन श्रीराम में आकृष्ट (होकर लवलीन) हो गया। तब ब्रह्मनन्दन नारद वहाँ आ गये; वह हनुमान को अन्तःकरण में विदित हुआ, तो ध्यान समाप्त करके वह नारद से मिलने के लिए दौड़ा। १५ समझिए कि जो श्रीहरि को प्राणों से भी प्यारे लगते हैं, ऐसे सन्त पुरुष घर आने पर जो व्यक्ति उनका अनादर करके ध्यान करने बैठता है, वही निश्चय ही दुरात्मा, खल जन है। श्रीहरि कहते हैं, 'जो मेरे सन्तों (भक्तों) का अपमान करता है, वह मेरा मुख्य वैरी है। मैं नाना प्रकार से उसका निर्दालन करता हूँ। १६-१७ सन्तों का अनादर करके जो पामर मेरी पूजा करता है, (उसके द्वारा की हुई) वह पूजा, पूजा नहीं, वह तो उसने मुझपर लत्ताप्रहार समर्पित किया है। १८

समग्र। जो संतांचा करी परमादर। तेणें कोटि मखांचें फळ निर्धार। मज समर्पिलें ते दिवसीं। १९ असो उठोनियां हनुमंत। प्रेमें नारदाचे चरण धरीत। दोघे भेटले तेव्हां अद्भुत। प्रेमरस न सांवरे। २० दोघेही योगी परम निर्धारीं। दोघेही बाळब्रह्मचारी। दोघेही आवडती श्रीहरी। इंदिरेहूनि अत्यंत। २१ दोघेही केवल भक्त। दोघेही ज्ञानी अति विरक्त। दोघेही विचरती नित्यमुक्त। पुरुषार्थ अद्भुत दोघांचा। २२ एक हरि एक उमावर। कीं एक मृगांक एक मित्र। तसे दोघे नारद वायुकुमर। क्षेमालिंगन पैं देती। २३ हनुमंतें तृणासन घालून। वरी बैसाविला ब्रह्मनंदन। प्रेमेंकरूनि चरणक्षालन। केलें पूजन यथाविधि। २४ नारद म्हणे हनुमंतातें। कैसा तूं काळ क्रमितोसी येथें। ऐसें ऐकतां वायुसुतें। सप्रेम चित्त होवोनि बोले। २५ श्रीरामअवतार संपलियावरी। मी राहिलों दक्षिणसागरीं। श्रीरामचरित्र आठवितां अंतरीं। हृदय होत सद्गद। २६ एकबाण एकवचन। एकपत्नीव्रत रघुनंदन। जो सत्याचा सागर पूर्ण।

समग्र पूजा को लाँघकर, (अधूरी या पूर्णतः छोड़कर), जो सन्तों का परम आदर करता है, उसने उस दिन कोटि (-कोटि) यज्ञों का फल निश्चय ही मुझे समर्पित किया (समझिए)। १९ अस्तु। हनुमान ने उठकर नारद के प्रेमपूर्वक चरण पकड़े। जब वे दोनों (एक-दूसरे से) मिल गये (गले लग गये), तब अद्भुत प्रेमरस रोका नहीं जा रहा था (उनके हृदय में समा नहीं रहा था)। २० निश्चय ही वे दोनों भी परम योगी थे; दोनों भी बाल ब्रह्मचारी थे; दोनों भी श्रीहरि को लक्ष्मी से भी अत्यधिक प्यारे लगते थे। २१ वे दोनों भी केवल (विशुद्ध) भक्त थे; वे दोनों भी ज्ञानी तथा अति विरक्त थे; वे दोनों भी नित्य मुक्त (अवस्था में) विचरण करते रहते थे। उन दोनों का प्रताप अद्भुत है। २२ (मानो उनमें से) एक श्रीहरि और एक (दूसरा) उमापति शिवजी, अथवा एक चन्द्रमा और एक (दूसरा) सूर्य हो। वैसे (ही जान पड़नेवाले) उन दोनों ने— नारद और पवनकुमार ने एक-दूसरे का क्षेमालिंगन किया। २३ (तदनन्तर) हनुमान ने तृणासन (कुशासन) बिछाकर उस पर ब्रह्मनन्दन नारद को बैठा लिया और उनके चरणों का प्रेमपूर्वक प्रक्षालन करके यथा-विधि पूजन किया। २४ (तत्पश्चात) नारद हनुमान से बोले, 'यहाँ तुम समय कैसे बिता रहे हो?' ऐसा (प्रश्न) सुनते ही वायुकुमार चित्त के प्रेमयुक्त होने से बोला, 'श्रीराम का अवतार (-काल) समाप्त होने पर (तब से) मैं दक्षिण समुद्र के पास रह रहा हूँ। जो सत्य के पूर्ण सागर थे, जिनका रूप आत्मानन्द-घन (जैसा) था, जो एक-बाण, एक-वचन, एक-पत्नीव्रत (के धारी) श्रीरघुनन्दन थे, उन श्रीराम का चरित्र अन्तःकरण में स्मरण होने पर मेरा हृदय बहुत गद्गद हो जाता

स्वानंदघन रूप ज्याचें । २७ ऐसें सांगतां हनुमंत । प्रेमभरें दाटला अत्यंत । नारद म्हणे रामकथामृत अद्भुत । तेथें बुडी देईं सदा । २८ आणि पृथ्वीवरी तीर्थें बहुत । तीं एकदां विलोकीं समस्त । तीर्थीं भेटती साधुसंत । जे कां डुल्लती ब्रह्मानंदें । २९ संतदर्शन सर्वांत सार । यालागीं तीर्थें करीं समग्र । ऐसें बोलोनि ब्रह्मपुत्र । निराळपंथें चालला । ३० मुखीं श्रीरामगुण गात । द्वारकेसी आला अकस्मात । कृष्णें देखतां जलजोद्भव-सुत । आसनीं बैसवूनि पूजिला । ३१ हरि पुसे सकळ वर्तमान । नारद म्हणे धुंडिलें त्रिभुवन । कृष्णा तीर्थें करितां संपूर्ण । सेतुबंधासी पावलों । ३२ तेथें देखिला श्रीरामभक्त । महायोगी वीर हनुमंत । काय वर्णूं त्याचे गुण अद्भुत । ऐसा विरक्त दुसरा नाहीं । ३३ तो तीर्थें करीत यादवेंद्रा । येईल तुमच्या निजनगरा । हरि शोधितां या ब्रह्मांडोदरा । ऐसा दुसरा न भेटे । ३४ ऐसें ऐकतां जगजेठी । नारदाचे कंठीं घातली मिठी । म्हणे तो केव्हां देखेन दृष्टीं । सांगसी गोष्टी जयाच्या । ३५ नारदा ऐसिया भक्तावरून । वाटे ओंवाळूनि टाकावा प्राण । सद्गद जाहला जगज्जीवन ।

है' । २५-२७ ऐसा कहते हुए हनुमान (का हृदय) प्रेम से भरा होने से अत्यधिक गद्गद हो उठा । तो नारद बोले, 'रामकथा रूपी अमृत (-का सागर) अद्भुत है; वहाँ नित्य डुबकी लगाये रहो । २८ और पृथ्वी में बहुत तीर्थस्थान हैं; उन सबको एक बार देख लो । (ऐसे) तीर्थस्थलों में साधु-सन्त मिलते हैं, जो ब्रह्मानन्द से डोलते रहते हैं । २९ सन्तों के दर्शन सबसे सुन्दर हैं । इसलिए समस्त तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करो' । ऐसा बोलकर ब्रह्मा के पुत्र नारद आकाशमार्ग से चले गये । ३० (तत्पश्चात) श्रीराम के गुणों का गान करते-करते वे अप्रत्याशित रूप से द्वारका आ गये । कृष्ण ने उन ब्रह्मा-नन्दन को देखते ही आसन पर बैठाकर उनका पूजन किया । ३१ श्रीहरि ने समस्त समाचार पूछा, तो नारद बोले, 'हे कृष्ण, मैंने त्रिभुवन में ढूँढ़ लिया; समस्त तीर्थों की यात्रा करते-करते मैं सेतुबन्ध जा पहुँचा । ३२ मैंने श्रीराम के भक्त, महायोगी वीर हनुमान को वहाँ देखा । उसके अद्भुत गुणों का वर्णन मैं क्या करूँ? ऐसा विरक्त (पुरुष) दूसरा कोई नहीं है । ३३ हे यादवेन्द्र, वह तीर्थ-क्षेत्रों की यात्रा करते-करते आपके नगर आएगा । हे श्रीहरि, इस ब्रह्माण्ड के उदर में खोजने पर (भी कहीं) ऐसा दूसरा (विरक्त ज्ञानी भक्त) नहीं मिलेगा' । ३४ जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने ऐसा सुनते ही नारद के गले में बाँहें डालकर उन्हें गले लगा लिया और कहा, 'जिसकी बातें आप कह रहे हैं, उसे मैं अपनी आँखों से कब देख पाऊँगा ? ३५ हे नारद, लगता है, ऐसे भक्त पर प्राणों को निछावर कर दें' । (यह कहते-कहते) जगज्जीवन श्रीकृष्ण बहुत गद्गद हो उठे । तब ब्रह्मनन्दन बोले । ३६

मग ब्रह्मनंदन बोलिला। ३६ भक्तवल्लभा राजीवनयना। तो त्वरितचि येईल तुमच्या दर्शना। असो इकडे हनुमंत तीर्थाटना। निघता जाहला तेधवां। ३७ संपूर्ण पाहोनि दक्षिणमानस। हनुमंत आला गौतमीतीरास। ज्योतिर्लिंग त्र्यंबक विशेष। महिमा ज्याचा न वर्णवे। ३८ देखोनि पंचवटीस्थान। हृदयीं गहिंवरे वायुनंदन। म्हणे येथें माझ्या स्वामीनें राहून। दंडकारण्य उद्धरिलें। ३९ पुढें पश्चिमपंथें चालिला मारुती। तों दृष्टीं देखिली द्वारावती। जैसी अयोध्या पूर्वीं देखिली होती। तैसी निश्चितीं दिसे हे। ४० लक्षावधि कळस एकसरें। झळकती रत्नखचित गोपुरें। अहोरात्र मंगळतुरें। द्वारकेमाजी गर्जती। ४१ चित्रविचित्र मंदिरें। आळोआळीं झळकती सुंदरें। नीळरत्नांचीं मयूरें। प्राण नसतां धांवती। ४२ पाचूंचे रावे घरोघरीं। नाना शब्द करिती कुसरी। कल्पवृक्ष दारोदारीं। अहोरात्र डुल्लती। ४३ ऐसी द्वारकापुरी देखोन। संतोषला अंजनीहृदयरत्न। पुढें गोमतीतीरीं येऊन। उभा ठाकला नावेक। ४४ तों ऋषि ध्यानस्थ बैसले सकळ। जैसे गभस्ती उगवले निर्मळ। कीं

'हे भक्त-वल्लभ, हे राजीव-नयन, वह आपके दर्शन के लिए (स्वयं) शीघ्र ही आएगा'। अस्तु। तब इधर हनुमान तीर्थाटन के लिए चल पड़ा। ३७ सम्पूर्ण दक्षिण मानस (अर्थात मानसरोवर जैसे दक्षिण के पवित्र तीर्थस्थलों) को देखकर हनुमान गौतमी गोदावरी के तीर पर आ गया। (वहाँ) त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग है, जिसकी विशिष्ट महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। ३८ पंचवटी स्थान को देखकर वायुनन्दन हनुमान हृदय में बहुत गद्‌गद हो उठा। वह बोला, 'मेरे स्वामी ने यहाँ पर रहकर दण्डकारण्य का उद्धार किया'। ३९ अनन्तर हनुमान पश्चिम दिशा के मार्ग से चला गया, तो उसने अपनी आँखों से द्वारावती (द्वारका) को देखा। (उसे लगा—) पूर्वकाल में जैसी अयोध्या नगरी देखी थी, निश्चय ही वैसी (नगरी) यह दिखायी दे रही है। ४० लाख-लाख कलश एक समान थे; रत्नजटित गोपुर जगमगा रहे थे। द्वारका में दिन-रात मंगल तूर्य गरज रहे थे। ४१ गली-गली में चित्र-विचित्र सुन्दर प्रासाद चमक-दमक रहे थे। प्राण नहीं होने पर भी नीलरत्न के (निर्मित) मयूर दौड़ रहे थे। ४२ पन्ने के तोते घर-घर में नाना प्रकार उत्तम कौशल के साथ बोल रहे थे। द्वार-द्वार पर दिन-रात कल्पवृक्ष झूम रहे थे। ४३ ऐसी उस द्वारकापुरी को देखकर अंजना वानरी का हृदय-रत्न हनुमान सन्तोष को प्राप्त हुआ। अनन्तर वह आगे गोमती नदी के तट पर आकर क्षण भर के लिए खड़ा रहा। ४४ (उसने) तब (देखा कि)— समस्त ऋषि ध्यानस्थ बैठे हुए थे, जैसे निर्मल सूर्य (उनके रूप में) उदित हो गये हों, अथवा जैसे मानसरोवर में हंस पंक्ति में

मानससरोवरीं मराळ। ओळीनें जैसे विराजती। ४५ हनुमंतें सारूनि संध्यास्नान। केलें रघुनाथाचें ध्यान। मग सकळ द्विजांसी कर जोडून। करी नमन हनुमंत। ४६ परम नम्र विनीत होऊन। द्विजांसी पुसे वायुनंदन। म्हणे या नगराचें नाम कवण। सांगावें जी आम्हांतें। ४७ कोण राजा नांदतो येथें। काय नाम या तीर्थातें। देखोनि विचित्र वानरातें। आश्चर्य ऋषींतें वाटत। ४८ म्हणती वानरवेष दिसत। परी चतुर ज्ञानी पंडित। बोलका जैसा अंगिरासुत। महाविरक्त दिसतो हा। ४९ संतोषोनि मुनि बोलती। नगरा नाम द्वारावती। येथें नृप यदुपती। पूर्णावतार आठवा। ५० नदी नाम गोमती सत्य। पैल चक्रतीर्थ पुण्यवंत। येथें ज्या प्राणियाच्या अस्थि पडत। चक्रें होती तयांचीं। ५१ असो ब्राह्मणांसी करूनि नमन। द्वारकेभोंवतें दिव्य जें वन। लोकप्राणेशनंदन। फळें देखोनि संतोषला। ५२ सदाफळ वृक्ष विराजत। उंच गेले गगन भेदीत। त्यांमाजी प्रवेशला श्रीरामभक्त। फळभक्षणार्थ तेधवां। ५३ दिव्य वृक्षावरी बैसोन। केलें यथेष्ट फळभक्षण। महातरूंच्या शाखा मोडून। फळें

विराजमान हो गये हों। ४५ (तत्पश्चात) हनुमान ने स्थान और सन्ध्या-विधि पूर्ण करके रघुनाथ का ध्यान धारण किया। फिर समस्त ब्राह्मणों को हनुमान ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। ४६ वायुनन्दन ने (अनन्तर) परम नम्र विनीत होकर उन ब्राह्मणों से पूछा। वह बोला, 'अजी, हमें बताइए कि इस नगर का क्या नाम है ? ४७ यहाँ कौन राजा रहता है ? इस तीर्थस्थल का क्या नाम है ?' उस विचित्र वानर को देखकर उन ऋषियों को आश्चर्य हुआ। ४८ वे बोले (उन्हें जान पड़ा), इसका वेश वानर का तो दिखायी देता है। फिर भी यह चतुर, ज्ञानी, पंडित (विद्वान्), अंगिरासुत (बृहस्पति) जैसा वक्ता, महाविरक्त दिखायी देता है। ४९ मुनि सन्तुष्ट होकर बोले, 'इस नगर का नाम द्वारावती है। यहाँ के राजा यदुवीर श्रीकृष्ण हैं, जो (भगवान विष्णु के) आठवें पूर्णावतार हैं। ५० सत्य ही इस नदी का नाम गोमती है; उस पार पुण्यमय चक्रतीर्थ है। यहाँ किसी (भी) प्राणी की जो अस्थियाँ पड़ती हैं (डाली जाती हैं), उनसे चक्र (निर्मित) हो जाते हैं'। ५१ अस्तु। ब्राह्मणों को नमस्कार करके (आगे जाने पर) लोकप्राणेश अर्थात वायु का पुत्र हनुमान द्वारका के चारों ओर जो दिव्य वन था, वहाँ के फल देखकर सन्तोष को प्राप्त हुआ। ५२ (उस वन में) सदाफल वृक्ष विराजमान थे। वे गगन को भेदकर ऊपर गये थे। तब श्रीराम-भक्त हनुमान फल खाने के लिए उसके अन्दर प्रविष्ट हो गया। ५३ एक दिव्य वृक्ष पर बैठकर हनुमान ने यथेष्ट फल-भक्षण किया। (तदनन्तर) बड़े-बड़े वृक्षों की शाखाओं को तोड़कर, उसने फलों को पीट-पटककर फेंक

झोडून टाकिलीं। ५४ फळें घेऊनि निजकरीं। वनरक्षकांवरी झुगारी। वांकुल्या दावी नाना परी। नेत्र वटारी तयांकडे। ५५ चक्राकार मारी उडी। पुच्छ नाचवी कडोविकडी। मान घुलकावी घडिघडी। मग वनकर तांतडी धांवले। ५६ वानरें विध्वंसिले तरुवर। वनरक्षक मिळाले अपार। म्हणती कैंचें आलें हें वानर। बहुत चार मांडिले। ५७ म्हणती वानरा ऐक वचन। तुवां विध्वंसिलें दिव्य वन। तुज ताडितील राजनंदन। मीनकेतन सांबादि। ५८ राघवप्रिय म्हणे तयांप्रती। कोण येथें नांदतो नृपती। येरु म्हणती राम आणि श्रीपती। अतिपुरुषार्थी बंधु दोघे। ५९ ऐसें वनकर बोलती। मग वज्रदेही बोले तयांप्रती। श्रीराम एक दाशरथी। सूर्यवंशीं अवतरला। ६० माझ्या रामाचा नामधारी। ऐसा कोण आहे उर्वीवरी। नांव सांगा रे झडकरी। नाहींतरी नगरी न उरेचि। ६१ पाषाण लागतां श्रीरामचरणा। उद्धरली गौतमाची ललना। जे सरसिजोद्भवाची कन्या। ते रघुनंदनें तारिली। ६२ माझ्या रामाचें नाम घेतां। गणिका

दिया। ५४ (फिर) अपने हाथों में फल लेकर उसने वन के रक्षकों पर उछालकर फेंक दिये। नाना प्रकार से वह मुँह बनाता था; उनकी ओर आँखें फाड़कर देखता था। ५५ वह चक्राकार छलाँग लगाता था; अपनी पूँछ को ज़ोर-ज़ोर से नचाता था। बार-बार गरदन हिलाता था। तब वनरक्षक झट से दौड़े। ५६ (यह देखकर कि) वानर ने वृक्षों को उद्ध्वस्त किया है, असंख्य वनरक्षक इकट्ठा हुए। वे बोले, ' यह कैसा (विचित्र) वानर (यहाँ) आया है। इसने बहुत पागल की-सी चेष्टाएँ आरम्भ की हैं '। ५७ वे बोले, ' रे वानर, (हमारी) बात सुन। तूने दिव्य वन को उद्ध्वस्त कर डाला है। (अतः) मीनकेतन कामदेव प्रद्युम्न, साम्ब आदि राजपुत्र तेरा ताड़न करेंगे '। ५८ तो राघवप्रिय हनुमान उनसे बोला, ' यहाँ कौन राजा रहता है ? ' तो वे बोले, ' (यहाँ) राम और श्रीपति (राजपुरुष) हैं। वे दोनों बन्धु अति प्रतापवान हैं '। ५९ वनरक्षकों ने (जब) ऐसा कहा, तो वज्रदेही हनुमान उनसे बोला, ' एक दाशरथी श्रीराम सूर्यवंश में अवतरित थे। ६० मेरे (स्वामी) राम का नाम धारण करनेवाला पृथ्वी में ऐसा कौन (पुरुष) है ? उसका नाम झट से बता दो। नहीं तो यह नगरी बचेगी ही नहीं। ६१ श्रीराम के चरणों में पाषाण के लग जाते ही गौतम ऋषि की स्त्री[1], जो ब्रह्मा की कन्या थी, उद्धार को प्राप्त हो गयी। श्रीरघुनन्दन ने उसे उबारा। ६२ मेरे राम का नाम लेते ही सचमुच एक गणिका[2]

---

१ गौतम की स्त्री अहल्या का उद्धार— देखिए टिप्पणी १, पृ० १३८, अध्याय ५।

२ गणिका का उद्धार— पद्मपुराण (क्रियायोगखण्ड, अध्याय १५) के अनुसार,‡

उद्धरली तत्त्वतां। जेणें मर्दिलें पौलस्तिसुता। देवां समस्तां सोडविलें। ६३ एक जानकी वेगळीकरून। सकळ स्त्रिया कौसल्येसमान। त्या रामाचें नामाभिधान। धरील कोण दूसरा। ६४ तों वनकर बोलती ते वेळां। तो राम पूर्वीं आम्हीं ऐकिला। दशरथें बाहेर घातला। सवें मेळा मर्कटांचा। ६५ सीते सीते म्हणोन। आलिंगी वनीं वृक्षपाषाण। आमुचा बळिराम बळकट पूर्ण। यदुवंशीं अवतरला। ६६ ऐसें ऐकतांचि वचन। क्रोधावला सीताशोकहरण। भीमरूप अंजनीनंदन। प्रकट करिता जाहला। ६७ म्हणे हे द्वारकानगरी। पालथी घालीन समुद्रीं। पुच्छ आपटिलें धरणीवरी। प्रतिशब्द अंबरीं ऊठिला। ६८ वानर देखोनि विशाळ। वनकर पळाले सकळ। म्हणती आला महाकाळ। कृष्णाजवळी सांगों गेले। ६९ तों येरीकडे मेघश्याम। करीत स्नानसंध्यादि सत्कर्म।

उद्धार को प्राप्त हुई। जिन्होंने पौलस्त्य के पुत्र रावण का मर्दन कर डाला, (उसके द्वारा बन्दीशाला में रखे हुए) समस्त देवों को छुड़ा दिया, जिनके लिए एक जानकी को अलग करके (छोड़कर अन्य) समस्त स्त्रियाँ (माता) कौसल्या के समान थीं, उन राम का नामाभिधान दूसरा कौन धारण कर सकता है'। ६३-६४ तब वनरक्षक उस समय बोले, 'वह राम अर्थात उस राम के विषय में हमने पहले सुना है। दशरथ ने उसे (घर के) बाहर निकाला (निष्कासित किया)। उसके साथ बन्दरों का झुण्ड रहा था। ६५ 'सीते', 'सीते', कहता-पुकारता हुआ वह राम वृक्षों और पाषाणों का आलिंगन करता था। (परन्तु) हमारे ये बलराम पूर्णतः बलवान हैं। वे यदुवंश में अवतरित हैं'। ६६ ऐसी बात सुनते ही सीता के शोक का हरण करनेवाला हनुमान क्रोध को प्राप्त हुआ। उस अंजना-नन्दन ने (तब) प्रचण्ड भयावह रूप प्रकट किया। ६७ (अनन्तर) वह बोला, 'मैं इस द्वारका नगरी को उलटकर समुद्र में डाल दूंगा'। (फिर) उसने पूँछ को धरती पर पटका, तो उसकी प्रतिध्वनि आकाश में गूंज उठी। ६८ उस विशाल (रूपधारी) वानर को देखते ही समस्त वनरक्षक भाग गये। वे बोले, (उन्होंने माना)— (साक्षात) महाकाल (इसके रूप में) आया है। अनन्तर वे कृष्ण के पास यह (समाचार) कहने के लिए चले गये। ६९ तब (इधर) मेघ-

---

‡ जीवन्ती नामक एक तरुण वैश्य विधवा व्यभिचारिणी बन गयी। उसके कोई सन्तान नहीं थी। एक बार किसी व्याध से एक तोता खरीदकर वह उसका अपने पुत्र का-सा लालन-पालन करने लगी। वह उस तोते को हर रोज़ 'राम', 'राम' शब्द पढ़ाती थी। राम-नाम के प्रताप से उसका समस्त पाप धुल गया। मृत्यु के पश्चात जब यमदूत उसके प्राणों को ले जाने लगे, तो भगवान विष्णु के पार्षदों ने उन्हें रोक लिया और युद्ध में उन्हें पराजित करके वे उस वेश्या के जीव को विष्णु-लोक ले गये। इस प्रकार, अनजाने में भी लिये हुए राम-नाम के प्रताप से उसका उद्धार हो गया।

देवाची पूजा परब्रह्म। स्वयें आपण करीतसे। ७० एकदां अवघे भक्त मिळोनि। हरीसी विनविती कर जोडूनी। म्हणती तूं जगज्जीवन कैवल्यदानी। पुराणपुरुष जगद्गुरू। ७१ तरी तुम्ही एकांतीं बैसोन। नित्य करितां देवार्चन। तूं देवाधिदेव परिपूर्ण। करिसी ध्यान कवणाचें। ७२ तेथें उपकरणसामग्री आणूनी। स्वयें देत मन्मथजननी। तरी देवतार्चन नयनीं। आम्हांलागूनि दाविजे। ७३ मग उघडिलें देवसदन। आंत आले भक्तजन। तों रत्नजडित देव्हारा संपूर्ण। मूर्ती सगुण भक्तांच्या। ७४ प्रल्हाद नारद पराशर। व्यास वाल्मीक सनत्कुमार।

श्याम श्रीकृष्ण ने स्नान-सन्ध्या आदि (नित्य) कर्म पूर्ण किये और (तदनन्तर) वे परब्रह्म (श्रीकृष्ण) स्वयं देवों का पूजन करने लगे। ७० एक समय समस्त भक्तों ने मिलकर श्रीहरि से हाथ जोड़कर विनती की। वे बोले, ' आप तो जगज्जीवन हैं, कैवल्य-दाता हैं, पुराणपुरुष जगद्गुरु हैं। ७१ फिर भी एकान्त में बैठकर आप नित्यप्रति देव-पूजन किया करते हैं। आप परिपूर्ण देवाधिदेव किसका ध्यान करते हैं। ७२ वहाँ मन्मथजननी रुक्मिणी स्वयं पूजा के उपकरण एवं सामग्री लाकर देती है। तो आपका अपना (किया जानेवाला) देव-पूजन हमें हमारी आँखों से देखने दीजिए '। ७३ तब (श्रीकृष्ण ने) देव-सदन (गर्भगृह, घर के अन्दर का वह स्थान जहाँ घर के नित्य पूजन की देवप्रतिमाएँ स्थापित रहती हैं) को खोला, तो भक्तजन अन्दर आ गये। तो (उन्होंने देखा कि) वह गर्भगृह सम्पूर्ण रत्न-जटित था; उसके अन्दर (भगवान के) सगुण (रूप की भक्ति करनेवाले) भक्तों की मूर्तियाँ थीं। ७४ प्रह्लाद, नारद, पराशर[1], व्यास, वाल्मीकि, सनत्कुमार, अम्बरीष[2], रुक्मांगद[3], हरिश्चन्द्र

---

१ पराशर— पराशर ऋषि व्यास का पिता था। उसने राजा जनक को कल्याण-प्राप्ति के साधनों का उपदेश दिया था; वही उपदेश भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के लिए पुनरुक्त हुआ। उसे ' पराशर गीता ' कहते हैं। पराशर धर्मशास्त्र और एक स्मृति का कर्ता माना जाता है।

२ अम्बरीष— अयोध्या के सूर्यवंश का एक राजा, जो परम विष्णुभक्त था। एक समय एकादशी व्रत के पारण की वेला में दुर्वासा के आतिथ्य के लिए उसने विष्णु का चरण-तीर्थ प्राशन करके व्रत तोड़ दिया, तो दुर्वासा ने उसपर क्रोधपूर्वक एक कृत्या छोड़ दी। विष्णु ने उससे अम्बरीष की रक्षा की। अन्त में उसने दुर्वासा को सन्तुष्ट करके अपना व्रत पूर्ण किया। इस बीच उसे एक वर्ष भूखों रहना पड़ा। विष्णु की भक्ति के बल पर उसे मुक्ति प्राप्त हुई।

३ रुक्मांगद— अयोध्या का एक सूर्यवंशोत्पन्न राजा। यह परम विष्णुभक्त था और श्रद्धापूर्वक एकादशी का व्रत रखता था। ब्रह्मा ने उसे व्रत से भ्रष्ट करने के हेतु उसके पास मोहिनी नामक अप्सरा को भेज दिया। उसने अनेक बार उसे विचलित करने का यत्न किया; फिर भी रुक्मांगद अविचल रहा। मोहिनी ने उसे *

अंबरीष रुक्मांगद हरिश्चंद्र। मूर्ती सुंदर भक्तांच्या।७५ भीष्म दाल्भ्य शुक शौनक। ध्रुव धर्म भीमार्जुनादिक। भरत विदूरथ गुहक। परम सात्त्विक भक्तमूर्ती।७६ बळी उपमन्यु बिभीषण। उद्धव अक्रूर वायुनंदन। सुग्रीव जांबुवंत वालिनंदन। मूर्ती सगुण भक्तांच्या।७७ ऐसें हरीचें देवतार्चन। समस्त भक्तीं देखोन। सकळ प्रेमें दाटती पूर्ण। धरिती चरण हरीचे।७८ म्हणती हरि कमलपत्राक्षा। सच्चिदानंदा सर्वसाक्षा। परात्मया निर्विकल्पवृक्षा। कौतुकदीक्षा दाविली।७९ हरि म्हणे भक्तांविण। मी कवणाचें करूं ध्यान। भक्तांविण चिंतन। मज नाहीं दुजयाचें।८० असो अग्निहोत्रादिक कर्में। गोभूहिरण्यदानसंभ्रमें। त्या श्रीकृष्णें आत्मयारामें। वेदाज्ञेनें चालिजे।८१ दिव्य वस्त्रें अलंकार सर्व।

जैसे भक्तों की सुन्दर मूर्तियाँ थीं।७५ भीष्म, दाल्भ्य, शुक, शौनक, ध्रुव, धर्म, भीम, अर्जुन आदि (पाण्डव), भरत, विदूरथ, गुहक[1] जैसे परम सात्त्विक भक्तों की मूर्तियाँ थीं।७६ बलि, उपमन्यु[2], विभीषण, उद्धव, अक्रूर, वायुनन्दन हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवान, वालिनन्दन अंगद जैसे सगुण भक्तों की मूर्तियाँ थीं।७७ श्रीहरि का इस प्रकार का देवार्चन देखकर समस्त भक्त प्रेम से पूर्ण गद्गद हो उठे। उन्होंने श्रीहरि के पाँव पकड़े।७८ वे बोले, 'हे कमलपत्राक्ष श्रीहरि, हे सच्चिदानन्द, हे सर्वसाक्षी, हे परमात्मा, हे निर्विकल्प-वृक्ष, आप लीला प्रदर्शित करने के हेतु इस भक्त-पूजन की दीक्षा ग्रहण करके दिखा रहे है।७९ इसपर श्रीहरि बोले, "मैं भक्तों के सिवा किसका ध्यान करूँ? मुझे भक्तों के अतिरिक्त और किसी दूसरे का चिन्तन करना नहीं है"।८० अस्तु। अग्निहोत्र आदि कर्मों, गाय-भूमि-स्वर्ण के सम्मानपूर्वक कर्मों को वे आत्माराम श्रीकृष्ण

---

* उसके पुत्र धर्मांगद का मस्तक काटने को कहा। वह वैसा करने ही जा रहा था, तो विष्णु ने प्रकट होकर उसे इस कार्य से परावृत्त किया और उसकी भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर उसे अनेक वर प्रदान किये।

१ दाल्भ्य— उत्तम नामक मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

शुक— देखिए टिप्पणी २, पृ० ४२, अध्याय १।

शौनक— शौनक गृत्समद सुविख्यात ऋषि, आचार्य, ग्रन्थ-कर्ता तथा अनेक यज्ञों का कर्ता था। उसने ऋग्वेद की अनुक्रमणी तैयार की। उसे व्याकरणकार, शिक्षाकार, दार्शनिक भी माना जाता है।

विदूरथ— एक यादव वंशोत्पन्न राजा।

गुहक— शृंगवेरपुर का अधिपति, जो राम-भक्त था।

२ उपमन्य (उपमन्यु)— वसिष्ठ कुलोत्पन्न व्याघ्रपाद का यह पुत्र गुरुभक्त था। वह अन्धा हो गया था, परन्तु उसकी गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने उसे दिव्य दृष्टि प्रदान की। वह शिवजी का परम भक्त था। उसने कृष्ण को 'शिवसहस्रनाम' बताया।

लेववितीं अक्रूर उद्धव। सभेसी चालिला दयार्णव। रमाधव ते वेळे। ८२ उद्धव अक्रूरांचा धरूनि कर। स्थिर स्थिर चालत यादवेंद्र। गवाक्षद्वारें गोपी समग्र। हरीचें वक्त्र विलोकिती। ८३ उद्धवासी म्हणे भगवंत। आजि उत्तम शकुन होती बहुत। वामनेत्र घडिघडी लवत। बाहु स्फुरत वेळोवेळां। ८४ वक्षःस्थळीं येतें स्फुरण। न कळे कवणासी आजि भेटेन। वाटतें बहुत समाधान। तों उद्धव वचन बोलत। ८५ जगद्वंद्या जगज्जीवना। पद्मजजनका मनमोहना। भक्तप्रियकरा मधुसूदना। न कळे कोणा भेटसी। ८६ असो सभेसी येतां भगवंत। जयजयकारें घोष होत। दुंदुभी गजरें वाजत। बंदीजन गर्जती। ८७ उठोनि उभे ठाकले समस्त। हरि सिंहासनीं बैसत। नारदसनत्कुमारादि भक्त। वाट पाहत हरीची। ८८ सामगायन परम सुंदर। करिती नारद आणि तुंबर। तंव ते वनकर समग्र। गाऱ्हाणें सांगों पातले। ८९ हरीसी करूनि नमस्कार। बद्धांजळी ठाकले समग्र। मग भ्रूसंकेतें श्रीधर। तयांप्रती पुसतसे। ९० तंव ते म्हणती

वेदों की आज्ञा के अनुसार किया करते थे। ८१ तदनन्तर अक्रूर और उद्धव ने समस्त दिव्य वस्त्र और आभूषण पहना दिये, तो उस समय दयार्णव रमापति विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण सभा के प्रति चले गये। ८२ उद्धव और अक्रूर का हाथ थामे हुए यादवेन्द्र धीरे-धीरे चल रहे थे। समस्त गोपियाँ खिड़कियों में से श्रीहरि के मुख को देख रही थीं। ८३ (मार्ग में) भगवान श्रीकृष्ण उद्धव से बोले, 'आज बहुत उत्तम शकुन हो रहे हैं। बायीं आँख बारबार फड़क रही है। समय-समय पर बाहु भी स्फुरण को प्राप्त हो रहे हैं। ८४ वक्षःस्थल (छाती) में स्फुरण हो रहा है। समझ में नहीं आ रहा है कि मैं आज किससे मिलूँगा। बहुत सन्तोष अनुभव हो रहा है।' तो उद्धव ने यह बात कही। ८५ 'हे जगद्वन्द्य, हे जगज्जीवन, हे पद्मज अर्थात ब्रह्मा के पिता, हे मनमोहन, हे भक्तों के प्रिय-कर्ता, हे मधुसूदन, समझ में नहीं आता कि आप किससे मिलेंगे'। ८६ अस्तु। सभा(-गृह) में भगवान के आ जाने पर जय-जयकार का घोष हुआ। दुन्दुभियाँ गरज-गरजकर बजने लगीं। बन्दीजन भी गरजने लगे, (गरज-गरजकर स्तुति करने लगे)। ८७ सब उठकर खड़े हो गये। तो श्रीहरि सिंहासन पर बैठ गये। नारद, सनत्कुमार आदि भक्त श्रीहरि की प्रतीक्षा कर रहे थे। ८८ (तदनन्तर) नारद और तुम्बरू ने परम सुन्दर सामवेदानुसार गायन किया। तब (तक) वे समस्त वन-रक्षक शिकायत करने के लिए आ पहुँचे। ८९ श्रीहरि को नमस्कार करके वे सब बद्धांजलि होकर (हाथ जोड़कर) खड़े रहे। तब भौंह (अर्थात आँख) के संकेत से श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा। ९० तब वे बोले, "हे जगज्जीवन, अहो, एक वानर वन में

जगज्जीवना। एक वानर आलें जी वना। फळें भक्षूनि वृक्ष नाना। मोडूनियां टाकिले। ९१ तेणें पुसिलें आम्हां समस्तांतें। कोण नृप नांदतो येथें। त्याचीं वचनें ऐकोनि आम्हांतें। परम आश्चर्य वाटलें। ९२ बोलका जैसा बृहस्पती। तेजस्वी जैसा गभस्ती। वानरवेष परी शक्ती। कृतांततुल्य दिसतसे। ९३ तुमचा तयासी पुरुषार्थ। आम्हीं सांगितला जी बहुत। कीं बळिराम आणि कृष्णनाथ। अद्‌भुत महायोद्धे येथें। ९४ रामाचें नाम ऐकतां साचार। क्षोभला जैसा प्रळयरुद्र। म्हणे एक रविवंशीं राम थोर। जेणें दशकंधर मारिला। ९५ त्या रामाचें नाम धरी। ऐसा कोण आहे पृथ्वीवरी। आतां बंधूचें नाम सांडा झडकरी। नातरी गति बरी न दिसे। ९६ आश्चर्य करी श्रीधर। तुम्ही बहुत एकला वानर। येरू म्हणती त्यासमोर। मशक वनकर सर्व आम्ही। ९७ कोण समोर पाहील त्यास। सर्वांचा एकदांचि करील ग्रास। ऐसें ऐकतां जगन्निवास। गरुडाकडे विलोकित। ९८ गरुडाचे मनीं गर्व थोर। कीं मी एक पुरुषार्थी द्विजेंद्र। हें जाणोनि इंदिरावर। वचन काय बोलिला। ९९ म्हणे सुपर्णा

आया है। उसने फल खाकर नाना वृक्षों को तोड़ डाला। ९१ उसने हम सबसे पूछा—'यहाँ कौन राजा निवास करता है?' उसकी बातें सुनकर हमें परम आश्चर्य हो गया। ९२ वह बृहस्पति जैसा वक्ता है; सूर्य जैसा तेजस्वी है। वानर-वेश होने पर भी उसमें कृतान्त काल की-सी शक्ति दिखायी देती है। ९३ हमने उससे आपका प्रताप बहुत बताया— (कहा कि—) "यहाँ बलराम और कृष्णनाथ अद्‌भुत महायोद्धा हैं'। ९४ राम का नाम सुनते ही वह सचमुच प्रलयकारी रुद्र जैसा क्षुब्ध हो उठा और बोला, 'रविवंश में एक महान राम हो गये, जिन्होंने दशानन को मार डाला। ९५ जो उस राम का नाम धारण कर सकता है, ऐसा पृथ्वी में (दूसरा) कौन है?' अब झट से अपने बन्धु का नाम त्यज दीजिए (बदल दीजिए)। नहीं तो स्थिति ठीक नहीं दिखायी दे रही है"। ९६ (यह सुनकर) श्रीकृष्ण ने आश्चर्य अनुभव किया। (वे बोले—) 'तुम (लोग) बहुत थे (जब कि) वह वानर अकेला था'। तो वे बोले, 'उसके सामने हम समस्त वनरक्षक मच्छड़ (जैसे) थे। ९७ उसे सामने (से) कौन देखे पाएगा? वह सबका एक ही बार कौर करेगा (सबको एक साथ एक कौर जैसा निगल डालेगा)'। ऐसा सुनते ही जगन्निवास श्रीकृष्ण ने गरुड़ की ओर देखा। ९८ गरुड़ के मन में यह घमण्ड था कि मैं एक (अकेला) प्रतापी पक्षिराज हूँ। यह जानते हुए (ही) इन्दिरापति विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण क्या बात बोले? ९९ वे बोले, 'हे सुपर्ण, तुम परम पराक्रमी हो। तुम्हारे जैसा (प्रतापी) त्रिभुवन में (अन्य) कोई नहीं है।

तूं परम पुरुषार्थी। तुजऐसा नाहीं त्रिजगतीं। सत्वर जाऊनि वनाप्रती। वानर धरूनि आणावें। १०० तूं एकलाचि त्यासी आणिसी। कीं दळभार कांहीं संगें नेसी। आवेश आला उरगरिपूसी। काय हरीसी बोलत। १०१ पडल्या आकाशासी धीर। बळें देणार मी पक्षींद्र। त्या मज पाठवितां आणावया वानर। हेंचि अपूर्व वाटतें। २ पहा सभानायक सकळ। धरूनि आणितों गोलांगूळ। हरीसी नमूनि तत्काळ। निराळमार्गें उडाला। ३ वेगें वनांत प्रवेशे सुवर्ण। तों पाठमोरा बैसला वायुनंदन। फळ झेलीत कौतुकेंकरून। श्रीरामगुण मुखीं गात। ४ तों खगपति म्हणे रे वानरा। वन विध्वंसिलें तुवां पामरा। पळविलें सकळ वनकरां। फळें सकळ भक्षिलीं। ५ परम अन्यायी तूं वानर। तुज शिक्षा लावीन साचार। ऐसें बोलतां वायुपुत्र। हास्यवक्त्र बोलिला। ६ मग समीरात्मज बोले तयातें। बहुत जल्पसी तूं पुरुषार्थें। परी तुझें नाम सांग आम्हांतें। कोणें तूतें पाठविलें। ७ येरू म्हणे माझा पुरुषार्थ। जाणे त्रिभुवन समस्त। मी द्विजेंद्र कश्यपसुत। असें दूत श्रीरंगाचा। ८ म्यां देव विभांडूनि समस्त।

(इसलिए) झट से वन के प्रति जाकर उस वानर को पकड़कर ले आना। १०० तुम अकेले ही उसे ला सकोगे, अथवा साथ में कुछ सेनादल (भी) ले जाओगे?' (यह सुनते ही) सर्परिपु गरुड़ को आवेश आ गया। वह श्रीहरि से क्या बोला। (सुनिए)। १०१ 'गिरते आकाश को अपने बल से ढाढ़स बँधानेवाला मैं पक्षियों का राजा हूँ। ऐसे मुझे वानर को ले आने के लिए भेज रहे हैं, यही मुझे अभूतपूर्व (अद्‌भुत) बात जान पड़ती है। २ देखिए, हे समस्त सभानायको, मैं उस गोलांगुल (वानर) को (कैसे) पकड़कर लाता हूँ'। (यह कहकर) श्रीहरि को नमस्कार करके वह तत्काल आकाश मार्ग से उड़ गया। ३ सुपर्ण गरुड़ ने वेगपूर्वक उस वन में प्रवेश किया, तो (देखा कि) वायुनन्दन पीठ फेरकर बैठा हुआ था। वह लीलापूर्वक फलों को (उछालकर) खेल रहा था और मुख से श्रीराम के गुणों का गान कर रहा था। ४ तब (यह देखकर) खगपति गरुड़ बोला, 'अरे वानर, तू पामर ने इस वन का विध्वंस कर डाला। समस्त वनरक्षकों को भगा दिया और समस्त फल खा डाले। ५ तू परम अन्याय-कर्ता वानर (ठहरा) है। मैं तुझे सचमुच दण्ड दूंगा'। उसके इस प्रकार बोलने पर वायुपुत्र हनुमान हास्य से युक्त मुख से कहा (हँसते हुए कहा)। ६ तब पवनकुमार उससे बोला, 'तुम प्रताप (के बल) से बहुत बक रहे हो। फिर भी हमें अपना नाम तो बता दो। तुम्हें किसने भेजा है?' ७ वह बोला, 'मेरे पराक्रम को समस्त त्रिभुवन जानता है। मैं कश्यप का पुत्र; पक्षिराज (गरुड़) हूँ, श्रीकृष्ण का दूत हूँ। ८ मैं समस्त देवों को

पुरुषार्थें नेलें अमृत। माझ्या भेणें भोगींद्र भयभीत। पृथ्वीखालीं दडाला। ९ हनुमंत म्हणे स्वमुखेंकरून। जो आपुला पुरुषार्थ वर्णी आपण। तो शतमूर्खांहूनि अज्ञान। परम दूषण तयासी। ११० बळ यश कीर्ति धर्म। पुरुषार्थ विद्या आपुली परम। आत्ममुखें वर्णी तो अधम। तुज ऐसा जाण पां। १११ गरुड म्हणे गोलांगूला। मरणसमयीं तुज फांटा फुटला। हनुमंत म्हणे रे पांखरा तोंडाळा। समीप मृत्यु आला तुज। १२ ऐसें ऐकतांचि खगेंद्र। अंबरीं उडोनि गर्जे थोर। तेणें नादें अंडज वनचर। भयभीत जाहले। १३ हनुमंतावरी अकस्मात। वेगें लोटला विनतासुत। जबडा चंचूनें झडपीत। परी किंचित न हाले। १४ जैसा पर्वतावरी भ्रमर देखा। कीं महावृक्षावरी मक्षिका। कीं गजस्कंधीं पिपीलिका। वायुसुता तैसें वाटे। १५ ऐसा क्षण एक जाहला। हनुमंतें सुपर्ण पायीं धरिला। कंठीरवें उचलिला। वारण जैसा अकस्मात। १६ कासावीस गरुड होत। नेत्र मिचकावूनि मुख पसरीत। हनुमंतें भोवंडूनि अकस्मात। समुद्रामाजी टाकिला। १७ द्वारकेपासूनि भिरकाविला। साठ सहस्र योजनें दूर पडिला। बहुत कासावीस जाहला। बुडों लागला सागरांत। १८ श्वासोच्छ्वास

पराजित करके पराक्रम से अमृत ले गया था। मेरे भय से भोगीन्द्र शेष पृथ्वी के नीचे छिप गया'। ९ तो हनुमान बोला, 'जो अपने पराक्रम का स्वयं वर्णन करता है, वह शतमूर्ख से (भी अधिक) अज्ञान होता है। उसे परम दूषण लगता है। ११० जो अपने बल, कीर्ति, धर्म, पुरुषार्थ, अपनी परम विद्या का अपने मुख से वर्णन करता हो, उसे अपने समान अधम जान लो'। १११ तो गरुड़ बोला, 'रे गोलांगुल, मृत्यु के समय तू पागलपन को प्राप्त हुआ है'। तो हनुमान बोला, 'रे मुँह फट पँखेरू, मौत तुम्हारे समीप आयी है'। १२ ऐसा सुनते ही गरुड़ ने आकाश में उड़कर बहुत गर्जन किया। उस नाद से पक्षी और वनचर प्राणी भयभीत हो उठे। १३ फिर वह विनता-पुत्र (गरुड़) अकस्मात हनुमान पर लपक गया और उसके जबड़े को अपनी चोंच से नोचने-कोंचने लगा; फिर भी वह ज़रा भी नहीं हिला। १४ देखिए, पर्वत पर जैसे भौंरा हो, अथवा महावृक्ष पर मक्खी हो, अथवा हाथी के कन्धे पर चींटी हो, वायुकुमार को (गरुड़ अपने ऊपर) वैसा ही जान पड़ता था। १५ इस प्रकार एक क्षण हो गया, तो हनुमान ने सुपर्ण के पाँव पकड़े और उसे (अकस्मात) वैसे ही उठा लिया, जैसे किसी सिंह ने अकस्मात हाथी को उठा लिया हो। १६ (फलतः) गरुड़ कसमसा उठा; आँखों को बन्द करके उसने मुँह फैलाया। फिर हनुमान ने उसे चक्राकार घुमाते हुए सहसा समुद्र में फेंक दिया। १७ उसने उसे द्वारका से उछालकर फेंक दिया, तो वह साठ सहस्र योजन दूर (जाकर) गिर गया। वह

कोंडोन । मागुती वरता येत सुपर्ण । म्हणे म्यां जो केला अभिमान । तें फळ पूर्ण पावलों । १९ कोणी विद्यामदें जाहले मस्त । एक धनमदें बहु उन्मत । त्यांसी शिक्षा करी भगवंत अभिमान किंचित धरितांचि । १२० असो गरुड स्मरण करी । म्हणे धांव धांव मधुकैटभारी । भक्तवत्सला श्रीहरी । कां मजवरी कोपलासी । १२१ दिशा न कळती गरुडालागूनी । तों द्वारावतीचें तेज देखे नयनीं । मग तैसाचि उडाला गगनीं । श्रीकृष्णस्मरण करीतचि । २२ म्हणे वनावरूनि जातां । तरी तो धरील मागुतां । म्हणूनि तो मार्ग सांडोनि तत्वतां । आणिका पंथें चालिला । २३ चांचरी जात सुपर्ण । महाद्वारीं पडे मूर्च्छा येऊन । हरीसी जाणविती सेवकजन । लोळे सुपर्ण महाद्वारीं । २४ सेवकीं लवलाहीं उचलोनि । आणोनि घातला हरिचरणीं । मग सावध करी चक्रपाणी । उदक नेत्रीं लावूनियां । २५ म्हणे काय जाहला रे वृत्तांत । गरुड थरथरां कांपत । वदनीं बोबडी वळत । शब्द त्रुटित येतसे । २६ म्हणे जी पुराणपुरुषोत्तमा । जरी क्रोध आला होता तुम्हां । तरी मज येथेंचि मेघश्यामा । शिक्षा करावी

बहुत व्याकुल हो उठा और समुद्र में डूबने लगा । १८ साँस के घुँटने पर सुपर्ण फिर से ऊपर आ गया और बोला— मैंने जो अहंकार (धारण) किया था, उसके पूर्ण फल को मैं प्राप्त हो गया हूँ ' । १९ कोई-कोई विद्या के मद से उन्मत्त हो जाते हैं, कुछ एक धन के मद से बहुत उन्मत्त हो जाते हैं; (परन्तु) उनके द्वारा (इस प्रकार) किंचित अहंकार धारण करते ही भगवान उन्हें दण्ड देते हैं । १२० अस्तु । गरुड़ ने (श्रीकृष्ण का) स्मरण किया और कहा, ' हे मधु-कैटभारि, दौड़िए, दौड़िए । हे भक्त-वत्सल श्रीहरि, मुझ पर क्यों कुपित हुए हैं ? १२१ (पहले) गरुड़ की समझ में दिशाएँ नहीं आ रही थीं । तो (अब) उसने अपनी आँखों से द्वारावती के तेज को देखा । तब श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए वैसे ही आकाश में उड़ गया । २२ वह बोला (उसने सोचा)— वन पर से जाने पर तो वह (वानर) फिर से पकड़ लेगा । इसलिए उस मार्ग को सचमुच टालकर वह दूसरे मार्ग से चला गया । २३ सुपर्ण गरुड़ झूमता-लड़खड़ाता जा रहा था । महाद्वार में वह मूर्च्छा आने से गिर पड़ा । सेवक जनों ने यह समाचार श्रीहरि को विदित करा दिया कि सुपर्ण महाद्वार में लोट-पोट रहा है । २४ सेवकों ने उसे झट से उठाकर लाते हुए श्रीकृष्ण के चरणों पर डाल दिया । तब चक्रपाणि श्रीकृष्ण ने उसे आँखों में पानी लगाकर सचेत कर लिया । २५ (अनन्तर) वे बोले, ' अरे, क्या घटना घटित हुई । ' तो गरुड़ थरथर काँपने लगा । उसकी बोलती बन्द हो गयी; टूटे-फूटे शब्द (उसके मुँह से) आ रहे थे । २६ वह बोला, ' जी पुराण-पुरुषोत्तम, यद्यपि आपको

होती स्वहस्तें । २७ मज वानराहातीं मार । करविला आजी प्रचंड थोर । मग हास्यमुखें बोले श्रीधर । गरुडाप्रति तें ऐका । २८ काय गरुडा बोलतोसी । कीं विनोदें आम्हां हांससी । तुझेनि बळें मी कोणासी । इंद्रादिकांसी न गणींच । २९ तुझिया बळेंकरूनी । मी बळकट जाहलों त्रिभुवनीं । त्वां बहुतेक वानर आणिलें बांधोनी । मिथ्या संपादणी करितोसी । १३० तुजयोग्य नव्हे हें काज । परी म्यां तुज पाठविलें सहज । गरुडा तुझें प्रतापतेज । न सोसवेचि कोणातें । १३१ कीं वानर जिवें मारिलें । किंवा उठवूनि पळविलें । गरुडें डोळां अश्रु आणिले । हांसों लागले सभाजन । ३२ गरुड म्हणे मजवरी । कां कोप अजूनि कंसारीं । हरि म्हणे ना भीं धीर धरीं । वर्तमान तरी सांगें कां । ३३ येरू म्हणे हरि तो कृतांत । वानरवेषें आला येथ । आतां हे द्वारका समस्त । घालील समुद्रांत पालथी । ३४ त्यासीं भिडे समरांगणीं । ऐसा वीर न दिसे त्रिभुवनीं । मज सागरीं दिधलें भिरकावूनी । पायीं धरूनि सर्वेशा । ३५ हरि म्हणे खगेशा । तुझा आम्हांसी थोर भरंवसा । तुझी जाहली ऐसी दशा । आम्हां तो कैसा आटोपे । ३६ नारदाकडे पाहोनी । क्षणक्षणां हांसे

क्रोध आया था, तथापि, हे घनश्याम, आपको मुझे यहाँ ही अपने हाथों से दण्ड देना चाहिए था । २७ आपने मुझे उस वानर के हाथों भारी प्रचण्ड मार करवा दी '। तो श्रीकृष्ण हास्ययुक्त मुख से (हँसते हुए जो) गरुड़ से बोले, उसे सुनिए । २८ ' हे गरुड़, तुम क्या बोल रहे हो ? अथवा हँसी-ठठोली में हमें हँस रहे हो ? तुम्हारे ही बल से मैं इन्द्र आदि किसी को गिनता ही नहीं । २९ तुम्हारे बल से मैं त्रिभुवन में बलवान (सिद्ध) हो गया हूँ । तुम बहुधा वानर को बाँधकर लाये हो; (फिर भी) झूठमूठ का बहाना बना रहे हो । १३० यह काम तुम्हारे योग्य तो नहीं था । फिर भी मैंने तुम्हें यों ही भेज दिया । हे गरुड़, तुम्हारे प्रताप का तेज किसी के द्वारा सहा ही नहीं जा सकता । १३१ (बता दो—) तुमने उस वानर को प्राणों से मार डाला अथवा उठाकर भगा दिया ? ' (यह सुनकर) गरुड़ आँखों से आँसू भर लाया तो सभाजन हँसने लगे । ३२ गरुड़ बोला, ' हे कंसारि, मुझ पर अब भी क्रोध क्यों है '। तो श्रीहरि बोले, ' डरो मत, धीरज धारण करो । (पहले) समाचार तो बता दो '। ३३ (तब) वह बोला, ' हे श्रीहरि, वह कृतान्त यमराज यहाँ वानर के वेश में आया है । अब वह इस समस्त द्वारका को उलटकर समुद्र में डाल देगा । ३४ समरांगण में उससे भिड़ सकता हो, ऐसा कोई वीर त्रिभुवन में नहीं दिखायी दे रहा है । हे सर्वेश, मेरे पाँव पकड़कर उसने मुझे सागर में फेंक दिया '। ३५ तो श्रीहरि बोले, ' हे खगेश, हमें तो तुम्हारा बड़ा भरोसा था । (परन्तु) तुम्हारी ऐसी दशा हो गयी,

चक्रपाणी। तंव तो विनोदेंकरूनी। शेंडी कांडोळी घडोघडी।३७ नारद म्हणे नाम सांडिल्याविण। तो कदापि न जाय तेथून। हरि म्हणे बळकट आमुचा सुपर्ण। त्याची गति हे जाहली।३८ मग बळिरामासी म्हणे श्रीधर। कैसा करावा आतां विचार। क्रोधें बोले बळिभद्र। क्षणांत वानर आणितों मी।३९ एक्याचि घायें सदट। आतांचि चूर्ण करीन मर्कट। तों हरीचा पुत्र वरिष्ठ। प्रद्युम्न बोलता जाहला।१४० काय काढिलें वानर। मज आज्ञा करावी सत्वर। न लागतांचि क्षणमात्र। धरूनि आतां आणितों।१४१ तयांचा गर्व जाणोनि माधव। म्हणे तुम्ही जा रे सर्व यादव। प्रद्युम्न सांबादि पुत्र सर्व। सिद्ध जाहले तेधवां।४२ सिद्ध केलें चतुरंगदळ। धडके वाद्यांचा कल्होळ। लोक पाहों धांवती सकळ। अद्भुत नवल वर्तलें।४३ निजभारेंसी यादव। समुद्रतीरा आले सर्व। तंव तो हनुमंत बलार्णव। समस्त वीरीं देखिला।४४ तो दशकंठरिपूचें प्रियपात्र। उन्मनींत लावूनियां नेत्र। मर्मीं आठवूनि रामचरित्र। पाठिमोरा बैसला।४५ निज भुजादंड कवळी। घडि घडी पाठ कुरवाळी।

तो वह हमसे कैसे वश में किया जा पाएगा'।३६ (इधर) नारद की ओर देखकर चक्रपाणि क्षण-क्षण हँस रहे थे, तब वह मौज में बार-बार (ही) अपनी शिखा (चोटी) को सहलाते-खुजलाते थे।३७ तो नारद बोले, 'नाम बिना छोड़ दिये (बदले) वह कदापि यहाँ से नहीं जाएगा'। (इसपर) श्रीहरि ने कहा, 'हमारा सुपर्ण बलवान है; उसकी यह दशा हो गयी'।३८ अनन्तर श्रीकृष्ण बलराम से बोले, 'अब किस प्रकार विचार करें (क्या आयोजन करें)?' तो बलराम क्रोध से बोले, 'मैं उस वानर को क्षण में लाता हूँ।३९ एक ही जोर के आघात से मैं अभी उस मर्कट को चूर-चूर कर डालूंगा'। तो श्रीहरि का ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न बोला।१४० 'वानर की क्या बात निकाली (छेड़ दी)? मुझे झट से आज्ञा दीजिए। क्षण मात्र न लगते मैं उसे अब पकड़कर लाता हूँ'।१४१ उनके घमण्ड को जानकर श्रीकृष्ण बोले, 'अहो, तुम सब यादव चले जाना'। तो प्रद्युम्न, साम्ब आदि समस्त पुत्र उस समय सिद्ध हो गये।४२ उन्होंने चतुरंग दल सिद्ध किया। वाद्यों का गर्जन धड़धड़ाने लगा। समस्त लोग देखने के लिए दौड़े। अद्भुत चमत्कार हो गया।४३ (तत्पश्चात) अपने सेनादल-सहित समस्त यादव समुद्र-तट पर आ गये। तब उन समस्त वीरों ने बलसागर हनुमान को देख लिया।४४ वह दशकण्ठ रावण के शत्रु श्रीराम का प्रिय पात्र था। उन्मनी अवस्था में नेत्रों को मूंदकर वह राम के चरित्र का स्मरण करते हुए पीठ फेरकर बैठा हुआ था।४५ वह अपने बाहुदण्डों को पकड़ रहा था; बार-बार पीठ को सहला रहा था; समय-समय पर (पीछे) मुड़कर

यादवांसी वांकुल्या वेळोवेळीं। परतोनियां दावीतसे। ४६ यादव म्हणती वानरा धीटा। रामाचें नांव सोडवितोसी मर्कटा। तुवां बहुत मांडिल्या चेष्टा। शिक्षा आतां लावूं तूतें। ४७ गदगदां हांसे हनुमंत। वीर तरी येथें आले बहुत। अत्यंत असती जल्पत। गति बहुत न दिसे बरी। ४८ हनुमंत म्हणे तुम्हांत मुख्य कोण। तें सांगा आधीं नामाभिमान। मग बोले रुक्मिणीनंदन। नाम प्रद्युम्न माझें असे। ४९ माझा प्रताप अद्‌भुत। पिता जाणे श्रीकृष्णनाथ। जेणें बाळपणीं मारिले दैत्य। अघ-बक-केशी-कंसादि। १५० जरासंध सत्रा वेळ धरिला। द्वारका रचिली अवलीळा। नरकासुर वधूनि सकळा। गोपी आणिल्या सोळा सहस्र। १५१ मग बोले अनिलकुमर। सांगसी पितयाचा बडिवार। परी तुवां पराक्रम थोर। कोठें केला सांग पां। ५२ एकदांचि अवघेजण। कां आलेति मारावयालागून। तुम्हां लेंकरांशीं युद्ध पूर्ण। लाजे मन करावया। ५३ तंव ते म्हणती रे वानरा। आगळें बोलसी पालेखाइरा। तुज आतां धाडूं मृत्युपुरा। तरीच कृष्णाचे कुमर आम्ही। ५४ ऐसें बोलोनि ते वेळे। सर्वीं धनुष्यीं बाण

यादवों को मुँह बनाकर दिखाता था। ४६ तो यादव बोले, 'अरे ढीठ वानर, राम के नाम को छुड़वा (बदलवा) रहा है। रे मर्कट, तूने बहुत हँसी-ठठोलियाँ की हैं। अब हम तुझे दण्ड देंगे'। ४७ (यह सुनकर) हनुमान खिल-खिलाकर हँसने लगा। (उसने सोचा—) यहाँ वीर तो बहुत आये हैं। वे अत्यधिक बक रहे हैं। यह स्थिति अच्छी नहीं दिखायी दे रही है। ४८ (अनन्तर) हनुमान बोला, 'तुम (लोगों) में मुख्य कौन है? उसका नामाभिधान पहले बता दो'। तब रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्न बोला, 'मेरा नाम प्रद्युम्न है। ४९ मेरा प्रताप अद्‌भुत है। जान ले, मेरे पिता हैं श्रीकृष्णनाथ, जिन्होंने अघ, बक, केशी, कंस आदि दैत्यों को बचपन में ही मार डाला। १५० उन्होंने जरासन्ध को सत्रह बार पकड़ लिया था। उन्होंने द्वारका की लीलया (बहुत आसानी से) रचना की। (अनन्तर) नरकासुर का वध करके समस्त सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियों को वे ले आये'। १५१ तब पवनकुमार बोले, 'तुम अपने पिता का बड़प्पन कह रहे हो, फिर भी यह तो बता दो कि तुमने कहाँ(-कहाँ)बड़ा पराक्रम किया है? ५२ तुम सब जने एक ही बार (साथ मुझे मार डालने के लिए क्यों आये? तुम बच्चों से युद्ध करने में मेरा मन पूर्णतः लज्जित हो रहा है'। ५३ तब वे बोले, 'अरे वानर, तू पत्ते-खवैया अनोखी बात बोल रहा है। तुझे अभी हम मृत्युपुर भेज देंगे, तो ही हम कृष्ण के पुत्र हैं'। ५४ ऐसा बोलते हुए उस समय उन सबने (अपने-अपने) धनुष पर बाण सन्धान किये और हनुमान पर बाणों की

योजिले। बाणांचा पर्जन्य बळें। हनुमंतावरी पडियेला। ५५ अमर्याद येती शर। गदगदां हांसे वायुकुमर। वांकुल्या दावी वारंवार। यादवांतें लक्षूनियां। ५६ शुष्क तृण पडतां बहुत। कदा न हाले जैसा पर्वत। कीं पुष्पें वर्षतां अद्‌भुत। ऐरावत न मानी जेवीं। ५७ कीं संसारदुःख लागतां सबळ। ज्ञानी न ढळे जैसा अचळ। कीं धुळी उडतां प्रबळ। निर्मळ निराळ न मळेचि। ५८ तैसाचि सीताशोकहरण। न मानी यादवांचे बाण। मग पुच्छ कौतुकेंकरून। सोडिलें जाण भूमीवरी। ५९ पुच्छ देखतांचि यादववीर। म्हणती सांपडलें रे वानर। पुच्छासी झोंबती समग्र। ओढिती बळेंकरूनियां। १६० एक म्हणती खालता पाडावा। ओढीत तैसाचि सभेसी न्यावा। म्हणोनि मिठ्या घालिती तेधवां। यादव दृढ पुच्छासी। १६१ ओढितां ओढितां कृष्णकुमर। पुच्छ वाढूं लागलें अपार। तों द्वारकेमाजी पुच्छ सत्वर। प्रवेशतें जाहलें ते वेळीं। ६२ कौतुक वर्तलें अद्‌भुत। आळोआळीं पुच्छ धांवत। ज्यांचे अंतरीं गर्व देखत। त्यांसी बांधीत आंवळोनी। ६३ एक भाग्यमदें जाहले मस्त। कोणासी न लेखिती

वर्षा ज़ोर से होने लगी। ५५ अनगिनत बाण आ रहे थे, तो भी वायुकुमार खिल-खिलाकर हँस रहा था। बार-बार वह यादवों को लक्ष्य करके मुँह बनाता था। ५६ जिस प्रकार सूखी घास के बहुत पड़ने पर भी पर्वत कदापि हिलता (विचलित) नहीं हो जाता, अथवा फूलों के अद्‌भुत रूप से गिरते रहने पर भी ऐरावत उन्हें जिस प्रकार गिनता नहीं (उनकी परवाह नहीं करता), अथवा बड़े-बड़े सांसारिक दुःखों के होने पर भी जिस प्रकार ज्ञानी व्यक्ति पर्वत जैसा (अचल रहकर) नहीं डिगता (विचलित नहीं होता), अथवा (जिस प्रकार) प्रचण्ड रूप से धूल के उड़ने पर भी निर्मल आकाश मलिन होता ही नहीं; उसी प्रकार सीता-शोक-हरण हनुमान यादवों के बाणों को मानता-गिनता ही नहीं था। जान लीजिए, अनन्तर उसने लीलया अपनी पूंछ को भूमि की ओर छोड़ दिया (बढ़ा दिया)। ५७-५९ पुच्छ को देखते ही यादव वीर बोले, 'अरे (अब) वानर मिल गया'। वे सब पुच्छ से लिपट गये और उसे बलपूर्वक खींचने लगे। १६० कुछ एक बोले, 'इसे नीचे गिरा दें और वैसे ही खींचते हुए (घसीटते हुए) सभा के प्रति ले जाएँ'। ऐसा कहते हुए उस समय यादव दृढ़तापूर्वक पुच्छ से लिपट गये। १६१ श्रीकृष्ण के पुत्रों द्वारा खींचते रहने पर वह पुच्छ अपार बढ़ने लगा। तो (अंत में) द्वारका के अन्दर झट से वह पुच्छ उस समय प्रविष्ट हो गया। ६२ (वहाँ) अद्‌भुत लीला घटित हुई। वह पुच्छ गली-गली में दौड़ने लगा और जिनके अन्तःकरण में बहुत घमण्ड हुआ देखता, उसको वह कसकर बांधता जा रहा था। ६३ कुछ एक भाग्य के मद से मत्त हुए थे, वे

उन्मत्त। शिबिकेमाजी बैसोनि येत। तंव पुच्छ त्वरित देखिलें। ६४ भोई पळाले चहूंकडे। पालखी टाकिती पुच्छापुढें। पुच्छें घालूनियां वेढे। शिबिकेसहित आंवळिले। ६५ बीर बैसले तुरंगांवरी। तोडा तोडा म्हणती झडकरी। तंव पुच्छें वरिच्यावरी। अश्वांसहित आंवळिले। ६६ जयासी हरिनामीं नाहीं भाव। परम उन्मत्त गायक गंधर्व। तेही पुच्छें बांधिले सर्व। अहंभाव जाणोनियाँ। ६७ वृक्षीं बैसला वायुनंदन। तेथूनि चळलें नाहीं आसन। परी ज्यांसी गर्व शापिलें पूर्ण। त्यांसी बंधन केलें पुच्छें। ६८ एकाएकीं पुच्छ उचलिलें। यादवबीर लोंबती खालें। हनुमंतें मुख पसरिलें। अति विक्राळ तेधवां। ६९ तंव ते अवघे डोळे झांकिती। हनुमंत म्हणे तयांप्रती। कां रे युद्ध न करा निश्चिती। शस्त्रें गळती सांवरा रे। १७० तंव तिहीं झांकिले नयन। म्हणती यासी देतां प्रतिवचन। आतांचि गिळील न लागतां क्षण। अनर्थ पूर्ण ओढवला। १७१ एक म्हणती आम्हीं गर्व केला। म्हणोनि ईश्वरें हा प्रेरिला। कीं वानसवेषें प्रकटला। कृतांतचि आपण। ७२ एक एकासी दाविती खूण। यासी देऊं

उन्मत्त लोग किसी को गिनते (ही) नहीं थे। वे पालकियों में बैठकर आ रहे थे, तो उस पूँछ ने उन्हें झट से देखा। ६४ कहारों ने पूँछ के सामने पालकी को फेंक दिया और वे चारों ओर भाग गये; तो पूँछ ने घेरे डालकर उन्हें पालकी-सहित कसकर बाँध लिया। ६५ (कुछ) बीर घोड़ों पर बैठे और बोले 'झट से (पूँछ को) काट दो, काट दो'। तब पूँछ ने उन्हें ऊपर ही ऊपर से अश्वों-सहित कसकर बाँध लिया। ६६ जिनको श्रीहरि के नाम के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी, ऐसे परम उन्मत्त गायक गन्धर्व (वहाँ) थे। उनके अहंकार को जानकर उस पूंछ ने उन्हीं सबको बाँध लिया। ६७ (इधर) वायु-नन्दन वृक्ष पर बैठा था, वहाँ से उसका आसन (बैठने की मुद्रा) विचलित नहीं हुआ। परन्तु जिनको अहंकार ने पूर्णतः अभिशप्त किया था, उसकी पूँछ ने उन्हें आबद्ध कर लिया। ६८ (अनन्तर) उसने यकायक पूँछ को उठा लिया, तो यादव बीर नीचे (की ओर) लटकने लगे। उस समय हनुमान ने अपने मुख को अति विकराल (रूप से) फैला दिया। ६९ तब उन सबने (मारे डर के) आँखें मूँद लीं। हनुमान ने उनसे कहा, 'अब निश्चय ही युद्ध क्यों नहीं कर रहे हो। शस्त्र गिर रहे हैं, उन्हें सम्हाल लो'। १७० तब उन्होंने आँखें मूंद लीं। उन्होंने कहा (सोचा), 'इसे प्रत्युत्तर देने पर, यह क्षण न लगते अभी निगल डालेगा। पूरी-पूरी बिपत्ति आ पड़ी है'। १७१ कुछ एक बोले, 'हमने अहंकार किया, इसलिए ईश्वर ने इसे प्रेरित किया। अथवा कृतान्त (यमदेव) ही स्वयं इस वानर-वेश में प्रकट हुआ हो'। ७२ एक दूसरे को वे संकेत

नका रे प्रतिवचन। एकदां वांचवा प्राण। हरिचरण पाहों द्या। ७३ एक हळूचि मिठी सोडविती। समुद्रामाजी उडी टाकिती। ऐसें देखोनि मारुती। पुच्छ समुद्रीं बुडवीत। ७४ वृक्षीं बैसला सावकाश। तेथूनचि हेलकावी पुच्छ। यादव होती कासावीस। धांवा करिती हरीचा। ७५ अवघे करिती कृष्णस्मरण। गळोनि गेला अभिमान। मुक्त जाहले अवघेजण। एकामागें एक पळती पैं। ७६ भुभुःकारें गर्जे वायुनंदन। यादव मागें न पाहती परतोन। एक वाटे पडती अडखळोन। वस्त्रें भूषणें गळालीं। ७७ एकासी हुडहुडी येत। एकाची दांतखिळी बैसत। ऐसे सभेसी आले धांवत। कृष्णनंदन सर्वही। ७८ तों सिंहासनीं क्षीराब्धिजावर। आकर्णनयन मुख उदार। हांसे विस्मित श्रीधर। निजकुमार देखोनियां। ७९ यादव म्हणती जगन्नायका। आतां कदा न उरे द्वारका। तो वानरवेषें देखा। कृतांतचि पातलासे। १८० श्रीकृष्ण बोले नारदमुनी। कैसी करावी आतां करणी। तंव तो विनोदें करूनी। टाळी वाजवूनि बोलत। १८१ नांव सांडावें सत्वर।

(करते हुए दिखाने, सूचित) करने लगे — 'अरे इसे प्रत्युत्तर मत दो। एक बार प्राणों को बचा लो और श्रीहरि के चरणों को देखने दो'। ७३ कुछ एक ने धीरे से लपेट को छुड़ा लिया और वे समुद्र में कूद पड़े। ऐसा देखकर हनुमान ने पूँछ को समुद्र में डुबो दिया। ७४ वह आराम से वृक्ष पर बैठा हुआ था। वह वहीं से पुच्छ को हिलाने लगा, तो यादव आकुल-व्याकुल हो गये और श्रीहरि को सहायता के लिए पुकारने लगे (श्रीकृष्ण की दुहाई देने लगे)। ७५ वे सब श्रीहरि का स्मरण करने लगे, तो उनका अभिमान नष्ट हुआ। वे सब जने मुक्त हो गये और एक के पीछे एक दौड़ने लगे। ७६ तो वायुनन्दन भुभुकार करते हुए गरज उठा, तो भी यादवों ने मुड़कर पीछे नहीं देखा। कुछ एक रास्ते में अटकते हुए गिर पड़े। (कुछ एक के) वस्त्र और आभूषण छूट-टूटकर गिर गये। ७७ किसी एक को कँपकँपी होने लगी; किसी एक की घिग्घी बँध गयी। इस प्रकार कृष्ण के सभी पुत्र दौड़ते हुए सभा (-गृह) के प्रति आ गये। ७८ तब लक्ष्मी-पति विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण-श्रीधर सिंहासन पर (विराजमान) थे। उनके नेत्र आकर्ण थे (कानों तक फैले हुए, विशाल थे), मुख उदार (प्रभावशाली) था। अपने पुत्रों को देखकर वे विस्मित होते हुए हँसने लगे। ७९ तो यादव बोले, 'हे जगन्नायक, अब द्वारका कदापि नहीं बचेगी। देखिए, उस वानर-वेश से कृतान्त यमदेव ही आ पहुँचा है'। १८० (यह सुनकर) श्रीकृष्ण बोले, 'हे नारद मुनि, अब कैसी कृति करें? तब वे हँसी में ताली बजाकर बोले। १८१ '(राम) नाम झट से त्यज दो, नहीं तो वह वानर विनाश कर डालेगा'।

नाहीं तरी अनर्थ करील वानर। बळिरामाजवळी आला ब्रह्मकुमर। कर्णीं गोष्टी सांगतसे। ८२ म्हणे हा रामभक्त हनुमंत। येणें त्रासिला लंकानाथ। नगर जाळूनि समस्त। अशोकवन विध्वंसिलें। ८३ लक्ष्मणासी लागली जेव्हां शक्ती। गिरि द्रोण आणिला नुगवतां गभस्ती। शंभर गांवें अपांपती। ढेंगेमाजी उडाला। ८४ पुच्छाचें दुर्ग करूनी। वानर रक्षिले सुवेळास्थानीं। पाताळीं अहिमही त्रासूनी। राघव जेणें सोडविला। ८५ बळवंत विरक्त ब्रह्मचारी। चिरंजीव आणि वज्रशरीरी। ऐसा कोण आहे उर्वीवरी। जो युद्ध करी तयाशीं। ८६ बळिराम म्हणे ऐशियालागूनी। काय करूं मी नारदमुनी। येरू म्हणे हें जाणे चक्रपाणी। मज हें कांहीं समजेना। ८७ गेला सर्वांचा अहंकार। मग काय बोले क्षीराब्धिजावर। रामरूप दाविल्याविण साचार। तो वानर समजेना। ८८ अद्‌भुत केलें गोपाळें। तात्काळ रामरूप प्रकटविलें। आकर्ण विराजती नेत्रोत्पलें। करीं शोभले धनुष्यबाण। ८९ बळिभद्र जाहला लक्ष्मण। भरत जाहला पांचजन्य। सुदर्शन जाहला शत्रुघ्न। नवल विंदान दाखविलें। १९० मग म्हणे

(अनन्तर) ब्रह्म-नन्दन नारद बलराम के पास आ गये और उनके कान में कोई बात कहने लगे। ८२ वे बोले, 'यह (वानर) रामभक्त हनुमान है। इसने लंकानाथ रावण को उत्पीड़ित कर डाला था। उसने समस्त (लंका) नगर को जलाकर अशोकवन का विध्वंस कर डाला था। ८३ जब लक्ष्मण को शक्ति लग गयी, तो वह सूर्य के उदित न होते (सूर्योदय के पहले) द्रोणगिरि लाया था। वह सौ योजन जलपति (समुद्र) पर से एक छलाँग में उड़ गया था। ८४ पुच्छ का दुर्ग बनाकर इसने सुवेल नामक स्थान पर वानरों की रक्षा की थी। जिसने पाताल में अहि-मही को उत्पीड़ित करके राम को मुक्त किया, वह हनुमान बलवान है, विरक्त है, ब्रह्मचारी है, चिरंजीवी और वज्रशरीरी है। जो उससे युद्ध कर सके, ऐसा पृथ्वी में कौन है'? ८५-८६ तो बलराम बोले, 'हे नारद मुनि, ऐसे (व्यक्ति) के लिए मैं क्या कर सकता हूँ?' तो वे बोले, 'यह तो चक्रपाणि जानते हैं। मेरी समझ में यह कुछ नहीं आता'। ८७ (यह देखकर कि) सबका अहंकार नष्ट हो गया तो तब क्षीराब्धिजा लक्ष्मी के पति विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण क्या बोले, 'बिना राम-रूप दिखाये वह वानर सचमुच नहीं समझ पाएगा'। ८८ (तत्पश्चात) श्रीकृष्ण ने एक अद्‌भुत बात (चमत्कार) की। उन्होंने तत्काल श्रीराम-रूप प्रकट किया। उनके नेत्र-कमल आकर्ण शोभायमान थे, हाथ में धनुष-बाण सुशोभित थे। ८९ बलराम लक्ष्मण हो गये। पाञ्चजन्य (शंख) भरत बन गया; सुदर्शन चक्र शत्रुघ्न हो गया। इस प्रकार उन्होंने अद्‌भुत करनी प्रदर्शित की। १९० अनन्तर नारद मुनि बोले, 'सत्यभामा को

नारदमुनी। सत्यभामेसी सांगावें कानीं। वेगें जानकीचें रूप धरोनी। सभामंडपीं येइंजे। १९१ स्वयें आपणचि निघाला। अंतःपुरामाजी प्रवेशला। म्हणे सत्यभामेसी ते वेळां। वेगें जानकी व्हावें तुम्हीं। ९२ भेटीसी येतो हनुमंत। तुम्ही जानकीचा वेष धरा त्वरित। कृष्णजी जाहले रघुनाथ। तुम्हीं अगत्य चलावें। ९३ मग श्रृंगार करूनि ते अवसरीं। सभेसी आली सत्यभामा नारी। तों श्रीरामरूप देखिलें नेत्रीं। आश्चर्य करी मानसीं। ९४ मग बोलिजे रमाधवें। हें जानकीचें रूप नव्हे। दर्पणीं न्याहाळूनि पाहें बरवें। मागुती यावें परतोनि। ९५ येरी परतली ते वेळां। दुसरा आणीक श्रृंगार केला। दासीस पुसे ते वेळां। म्हणे बरा बाणला वेष कीं। ९६ श्रीरंग म्हणे सुभद्रेसी। वेगें आणावें जानकीसी। तंव ते येऊनि राणिवशासी। काय तियेसी बोलत। ९७ चाल गे किती करिसी श्रृंगार। कोरडा दाविसी बडिवार। तुज पाचारितो श्रीधर। म्हणोनि करीं धरियेली। ९८ तांतडी जाहली श्रृंगारासी। काजळ ठायीं ठायीं माखलें मुखासी। तैसीच सुभद्रेनें धरूनि वेगेंसीं। समोर सभेसी आणिली। ९९ तें पाहोनियां श्रीरंग। म्हणे पहा रे आलें सोंग। जाहला सत्यभामेचा

कान में बता दो— झट से जानकी का रूप धारण करके सभामण्डप में आ जाओ'। १९१ (फिर भी) वे स्वयं ही निकले और अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गये। उस समय वे सत्यभामा से बोले, 'तुम झट से जानकी बन जाओ। ९२ हनुमान मिलने के लिए आ रहा है। तुम झट से जानकी का वेश धारण करो। कृष्णजी रघुनाथ राम बन गये हैं— तुम अवश्य चलो'। ९३ तब उस समय श्रृंगार सजकर सत्यभामा (नामक वह) नारी सभा में आ गयी। तब उसने अपनी आँखों से श्रीराम-रूप देखा; तो वह मन में आश्चर्य अनुभव करने लगी। ९४ तब रमापतिस्वरूप श्रीकृष्ण बोले, 'यह जानकी का रूप नहीं है; दर्पण में भली भाँति ध्यान से देखो और फिर लौटकर आ जाओ'। ९५ वह उस समय लौट गयी। उसने दूसरे प्रकार से श्रृंगार सज लिया और उस समय अपनी दासी से पूछा। वह बोली, 'क्या यह वेश अच्छा बन गया है ?' ९६ (इधर) श्रीकृष्ण सुभद्रा से बोले, 'जानकी को वेगपूर्वक ले आना'। तब वह अन्तःपुर में आकर उससे क्या बोली ? ९७ 'चलो री, कितना श्रृंगार सज लोगी। रूखा-सूखा बड़प्पन दिखा रही हो। तुम्हें श्रीकृष्ण बुला रहे हैं। ऐसा कहते हुए उसने उसका हाथ पकड़ लिया। ९८ श्रृंगार सजने में जल्दी हो गयी, इसलिए स्थान-स्थान पर मुख में काजल पुत गया था। (तो भी) सुभद्रा उसे पकड़कर वेगपूर्वक सभा में ले आयी। ९९ वह देखकर श्रीकृष्ण ने कहा, 'देखिए, कैसा स्वाँग आया है'। तो सत्यभामा का अहंकार भग्न हो गया। उसे लगा— प्राण-

गर्वभंग। वाटे प्राणत्याग करावा। २०० हांसती सकळ सभाजन। सत्यभामा अधोवदन। मग बोले कमलोद्भवनंदन। रुक्मिणीतें बोलावा। २०१ मग सत्यभामेसी म्हणे सर्वेश्वर। तूं आणि गोपी सोळा सहस्र। रुक्मिणीच्या गृहा जाऊनि सत्वर। तीस घेऊनि येईंजे। २ मग सत्यभामेसहित सकळा। भीमकीच्या सदना आल्या ते वेळा। तों देखिली जानकी वेल्हाळा। दिव्यरूप बैसली। ३ तप्तहाटकवर्ण चारुगात्री। सुहास्यवक्त्री आकर्णनेत्री। सत्यभामा देखोनि अंतरीं। आश्चर्य करी तेधवां। ४ शुभ्र कंचुकी शुभ्र वस्त्र। कंठीं शुभ्र मोतियांचे हार। सर्व भूषणांनीं विराजे सुकुमार। जे आदिमाया अवतरली। ५ मग सत्यभामा बोले वचन। तुम्हांसी बोलाविती जगज्जीवन। ऐकतांचि अवश्य म्हणोन। हंसगती चालिली। ६ सभामंडपीं येऊनी। अर्धांगीं बैसली विश्वजननी। राम मेघवर्ण हे सौदामिनी। अक्षयप्रभा झळकतसे। ७ मग सर्वेश्वर म्हणे गरुडातें। आतां घेऊनि येईं तयातें। म्हणे श्रीरामें बोलविलें तुम्हांतें। भेटावयासी आदरें। ८ तंव तो गरुड अधोवदन। स्फुंदस्फुंदोनि करी रुदन। म्हणे तो आतां माझा घेईल प्राण। थोर निर्वाण मांडिलें। ९ मग कुमारांसी म्हणे तुम्ही जाऊन। वेगें आणा

त्याग कर लें। २०० समस्त सभाजन हँसने लगे, तो सत्यभामा अधोवदन (सिर झुकाए खड़ी) रही। तब ब्रह्मा के पुत्र नारद बोले, 'रुक्मिणी को बुलाओ'। २०१ अनन्तर सर्वेश्वर कृष्ण सत्यभामा से बोले, 'तुम और (अन्य) सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियाँ रुक्मिणी के घर जाकर झट से उसे ले आना'। २ फिर उस समय सत्यभामा-सहित वे समस्त (स्त्रियाँ) भीमकी रुक्मिणी के घर आ गयीं। तो उन्होंने देखा— दिव्यरूपा सुन्दरी जानकी बैठी है। ३ वह तप्तस्वर्ण-वर्ण वाली, चारुगात्री, सुहास्यवदना, आकर्ण-नयना है— तब उसे देखकर सत्यभामा ने अन्तःकरण में आश्चर्य अनुभव किया। ४ जो (साक्षात) आदिमाया (ही) अवतरित थी, वह रुक्मिणी शुभ्र कंचुकी, शुभ्र वस्त्र, गले में शुभ्र मोतियों के हार पहने हुए थी। वह सुकुमारी समस्त आभूषणों से शोभायमान (होकर बैठी) थी। ५ तब सत्यभामा ने उससे यह बात कही, 'जगज्जीवन तुम्हें बुला रहे हैं'। यह सुनते ही 'अवश्य (चलूँगी)' कहकर वह हंसगति-सी गतिवाली चली। ६ सभा-मण्डप में आकर विश्वजननी (रुक्मिणी सीता के रूप में श्रीराम-रूपधारी श्रीकृष्ण के) अर्धांग में (बायीं गोद में) बैठ गयी। श्रीराम मेघवर्ण थे, तो यह विद्युत् थी— उसकी अक्षय प्रभा झलक रही थी। ७ तब सर्वेश्वर (श्रीकृष्ण) गरुड़ से बोले, 'अब उसे लेकर आओ। कह दो— श्रीराम ने तुम्हें मिलने के लिए आदरपूर्वक बुलाया है'। ८ तो गरुड़ अधोवदन (सिर झुकाये हुए) सुबक-सुबककर रोने लगा। वह बोला, 'अब

वायुनंदन। तंव ते म्हणती आम्हांसी देखोन। पुढती सागरीं बुडवील। २१० मग अक्रूर आणि उद्धव। तयांसी म्हणे रमाधव। माझा हनुमंत भक्तराव। तुम्हीं जावोनि आणिजे। २११ सांगातें न्यावें गरुडासी। आदरें घेऊनि यावें तयासी। मग नमस्कारोनि रघुपतीसी। तिघेजण चालिले। १२ पुढें जाती उद्धव अक्रूर। मागें हळूचि येत खगेंद्र। उद्धवासी म्हणे तो वानर। अतिक्रोधें पाहतसे। १३ दुरूनि बोलावा आधीं पूर्ण। विश्वासूं नका दोघेजण। तों वृक्षावरी सीताशोकहरण। उन्मनींत नयन लाविले। १४ समीप येऊनि उद्धव अक्रूर। घालिती साष्टांग नमस्कार। तैसाचि दुरूनि नमी खगेंद्र। अंतरीं भय वाटतसे। १५ उद्धव अक्रूर म्हणती मारुती। तुम्हांसी बोलावितो अयोध्यापती। ऐसें ऐकतांचि प्रेम चित्तीं। न सांवरेचि तयातें। १६ उद्धव अक्रूरांच्या चरणांवरी। हनुमंत लोटला ते अवसरीं। आलिंगन दिधल्यावरी। नेत्रीं अश्रुधारा लोटल्या। १७ मज सत्वर दावा रघुनाथ। म्हणोनि पुढती पाय धरीत। मग हनुमंताचे दोन्ही हस्त। उद्धव अक्रूरीं धरियेले। १८ पुढें सत्वर तिघे जाती। मागें येत खगपती। मनीं

वह मेरे प्राण लेगा। उसने बड़ा उत्पात मचाया है'। ९ तब श्रीकृष्ण ने अपने पुत्रों से कहा, 'जाकर तुम वेगपूर्वक वायुनन्दन को ले आओ'। तो वे बोले, 'हमें देखकर वह फिर से हमें समुद्र में डुबो देगा'। २१० तब रमापतिस्वरूप राम-रूपधारी श्रीकृष्ण अक्रूर और उद्धव से बोले, 'मेरे भक्तराज हनुमान को तुम जाकर ले आओ। २११ (अपने) साथ में गरुड़ को ले जाना। उसे आदरपूर्वक ले आओ'। तो श्रीराम को नमस्कार करके वे तीनों जने चल पड़े। १२ उद्धव और अक्रूर आगे(-आगे) चल रहे थे; उनके पीछे(-पीछे) धीरे-धीरे गरुड़ चल रहा था। वह उद्धव से बोला, '(देखिए) वह वानर बहुत क्रोध से देख रहा है। १३ पहले आप उसे दूर से बुलाइए; आप दोनों जने उसका पूर्ण विश्वास न करें'। तो सीताशोकहरण हनुमान ने उन्मनी अवस्था में वृक्ष पर बैठकर आँखें मूंद ली थीं। १४ उद्धव और अक्रूर ने उसके समीप आकर साष्टांग नमस्कार किया; गरुड़ ने दूर से वैसा ही नमस्कार किया। उसे मन में भय अनुभव हो रहा था। १५ उद्धव और अक्रूर बोले, 'हे हनुमानजी, आपको अयोध्यापति राम ने बुलाया है।' ऐसा सुनते ही उसके द्वारा चित्त में प्रेम रोका नहीं जा रहा था। १६ उस समय उद्धव और अक्रूर के चरणों में हनुमान लुढ़क गया। उनके द्वारा उसका आलिंगन करने पर आँखों से अश्रुधाराएँ वेगपूर्वक बहने लगीं। १७ 'मुझे झट से रघुनाथ दिखा दीजिए'—कहते हुए उसने फिर से उनके पाँव पकड़े। तब अक्रूर और उद्धव ने हनुमान के दोनों हाथ पकड़े। १८ अनन्तर वे तीनों झट से आगे चले जाने लगे। उनके पीछे गरुड़ जा रहा था।

म्हणे सभेसी रघुपती। न देखतां मारुती क्षोभेल। १९ जरी हरी जाहला असेल कृष्णनाथ। तरी मग करील हा अनर्थ। मज्ञा तों पुरला अंत। हे मज निश्चित समजलें। २२० अद्‌भुत हरीची करणी। द्वारका अयोध्या केली ते क्षणीं। रामचरित्रें नितंबिनी। घरोघरीं गाताती। २२१ पुढें देखिला दिव्य मंडप सतेज। सिंहासनीं बैसला रघुराज। ऐसें देखोनि वायुतनुज। लोटांगण घातलें। २२ दृष्टीं देखतां हनुमंत। सप्रेम जाहला सीताकांत। जैसा इंदु देखतां सरितानाथ। परमानंदें उचंबळे। २३ रामपदीं मस्तक ठेवी हनुमंत। नयनोदकें चरण क्षाळीत। दोन्ही हातें उचलोनि वायुसुत। सीताधवें आलिंगिला। २४ मस्तकीं ठेविला वरद हस्तक। कुरवाळीत मारुतीचा मुखमृगांक। कंठींचा मुक्ताहार सुरेख। गळां घातला तयाच्या। २५ वामांगीं बैसली सीता। सव्यांगीं बैसविलें हनुमंता। येरें चरणीं ठेविला माथा। तों अद्‌भुत वर्तलें। २६ वरतें पाहे जों अंजनीपुत्र। तों श्रीकृष्ण देखे राजीवनेत्र। उद्धव अक्रूर रेवतीवर। द्वारकानगर पूर्ववत। २७ चंचळ जाहला अनिलसुत। मग काय बोले रमानाथ। हनुमंता आठवीं हृदयांत।

वह मन में बोला (उसे लगा)— 'सभा में रघुपति राम को न देखने पर हनुमान क्षुब्ध हो उठेगा। १९ यदि श्रीहरि फिर से कृष्णनाथ हो गये हों, तो यह विनाश कर देगा। (तब) तो मेरा पूरा अन्त हुआ। यह मेरी समझ में निश्चय ही आ गया। २२० श्रीहरि की करनी अद्‌भुत है। उन्होंने उस क्षण द्वारका को अयोध्या बना दिया। (उसमें) नारियाँ घर-घर में राम के चरित्र (लीलाएँ) गा रही थीं। २२१ आगे (चलकर) हनुमान ने दिव्य तेजोयुक्त मण्डप देखा। सिंहासन पर रघुराज बैठे हुए थे। ऐसा देखकर वायुकुमार ने साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। २२ आँखों से हनुमान को देखते ही सीतापति श्रीराम उस प्रकार प्रेमयुक्त हो गये, जैसे चन्द्र को देखने पर सरितापति समुद्र परमानन्द से उमड़ उठता है। २३ हनुमान ने श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखा; अपने नयनों के (अश्रु-) जल से उनके चरण धो लिये। तो दोनों हाथों से उठाते हुए सीतापति राम ने पवनकुमार का आलिंगन किया। २४ (अनन्तर) श्रीराम ने उसके मस्तक पर वरद-हस्त रखा; उसके मुखचन्द्र को उन्होंने सहला दिया। अपने गले का सुन्दर मोती-हार उसके गले में पहना दिया। २५ उनके वामाङ्ग में सीता बैठी थी; दाहिनी ओर उन्होंने हनुमान को बैठा लिया। जब उसने उनके चरणों पर मस्तक रखा तो एक चमत्कार हो गया। २६ जब अंजनी-पुत्र ने ऊपर देखा, तो उन्होंने (श्रीराम के स्थान पर) राजीव-नयन श्रीकृष्ण को देखा। उद्धव, अक्रूर, रेवती-पति बलराम, द्वारकानगर सब पहले की भाँति हो गया। २७ (यह देखकर) पवनकुमार विचलित हो उठा। तब रमानाथस्वरूप

रामअवतारींची गोष्ट पैं। २८ कीं द्वापारीं कृष्णअवतार। तैं तुज भेट देईन साचार। मग बोले निरालोद्भवपुत्र। होय साचार स्वामिया। २९ परी श्रीरामरूप धरोनि। मज बोळवावें ये क्षणीं। ऐसें बोलतां तो चापपाणी। अयोध्यानाथ बैसला। २३० मग नाना उपचारें तत्त्वतां। रामें गौरविलें हनुमंता। म्हणे तुझे उपकार वायुसुता। कदाकाळीं न विसरें मी। २३१ तुवां लंकेसी केला प्रताप पूर्ण। ऐकतांचि चकित होय त्रिभुवन। तूं मज आवडसी जैसा प्राण। नावडे आन पदार्थ। ३२ तों भीतरी झालिया पंक्ती। जवळी बैसवोनि मारुती। भोजन करीत रघुपती। सीता सती वाढीतसे। ३३ भोजनें झालिया संपूर्ण। सभेसी बैसे रघुनंदन। हनुमंत उभा ठाकला कर जोडून। म्हणे मज न विसरावें। ३४ सर्वेश्वर म्हणे मारुती। मी होईन अर्जुनाचा सारथी। तूं ध्वजस्तंभीं बैसें प्रीतीं। भूभार निश्चितीं उतरूं हा। ३५ अवश्य म्हणे वायुकुमर। घातला साष्टांग नमस्कार। पुढें तीर्थें पहावया सत्वर। कपिवर चालिला। ३६ नारद म्हणे सीताशोकहरणा। मीहो सवें येतों तीर्थाटना। नमोनियां जगन्मोहना।

श्रीकृष्ण ने क्या कहा? (सुनिए)। वे बोले— 'हे हनुमान, हृदय में रामावतार (-काल) की इस बात का स्मरण करो। २८ (मैंने कहा था—) द्वापर युग में कृष्णावतार (-काल) में मैं तुमसे सचमुच भेंट करूँगा'। तब पवनकुमार बोला, 'हे स्वामी, वह सत्य है; फिर भी श्रीराम-रूप धारण करके मुझे इस क्षण विदा कीजिए'। उसके ऐसा कहने पर चक्रपाणि श्रीकृष्ण (फिर से) अयोध्यानाथ श्रीराम होकर बैठे। २२९-२३० अनन्तर सचमुच नाना उपचारों से श्रीराम ने हनुमान का गौरव किया और कहा, 'हे वायु-सुत, तुम्हारे उपकारों को मैं किसी भी समय नहीं भूलूँगा। २३१ तुमने लंका में जो पूरा प्रताप किया, उसे सुनते ही त्रिभुवन चकित हो जाता है। तुम मुझे प्राण जैसे प्यारे लगते हो —तुम्हारे समान मुझे अन्य पदार्थ नहीं अच्छे लगते। ३२ तो अन्दर (भोजन की) पंगतें लग गयीं। रघुपति राम ने हनुमान को अपने पास बैठाकर भोजन किया। (उस समय) सती सीता परोस रही थी। ३३ भोजन पूर्ण हो जाने पर रघुनन्दन राम सभा में बैठ गये। तो हनुमान हाथ जोड़कर खड़ा रहा। वह बोला, 'मुझे न भूल जाएँ'। ३४ तो सर्वेश्वर ने कहा, 'हे हनुमान, (जब मैं) अर्जुन का सारथी बन जाऊँगा, तो तुम प्रीतिपूर्वक उसके ध्वजस्तम्भ पर बैठ जाओ। निश्चय ही पृथ्वी का यह भार हम उतार देंगे'। ३५ तो वायुकुमार ने कहा, 'अवश्य'। उसने श्रीराम को साष्टांग नमस्कार किया। (तदनन्तर) वह कपिवर तीर्थ-क्षेत्रों को देखने के लिए झट से निकला। ३६ तब नारद बोले, 'हे सीता-शोक-हरण, मैं भी तुम्हारे साथ तीर्थाटन के

बोधेजण चालिले । ३७ नगराबाहेर सीताकांत । जावोनि बोळविला वायुसुत । सद्गद जाहला रघुनाथ । हनुमंत गेला देखोनि । ३८ नगरलोक जाहले संतुष्ट । म्हणती मोठें टळलें अरिष्ट । ब्रह्मानंद जनांसी वरिष्ठ । आनंद करिती गृहीं गृहीं । ३९ हनुमंतासी बोळवून । परतोनि आला जगज्जीवन । वर्णीत हनुमंताचे गुण । उद्धव अक्रूरांजवळी पैं । २४० सत्यभामा यादव आणि सुपर्ण । केलें सर्वांचें गर्वहरण । भक्तांसी बाधक अभिमान । म्हणोनि विंदान केलें हें । २४१ हरिविजय ग्रंथ जाण । हेंचि केवळ नंदनवन । नाना इतिहास वृक्ष घन । प्रेमरसें सदा फळे । ४२ ब्रह्मानंदा द्वारकाधीशा । श्रीधरवरदा आदिपुरुषा । अक्षया अभंगा अविनाशा । निजदासासी रक्षीं तूं । ४३ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । सदा परिसोत प्रेमळ भक्त । एकत्रिंशतितमाध्याय गोड हा । २४४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

लिए आ जाता हूँ'। तब जगन्मोहन को नमस्कार करके वे दोनों जने चले गये । ३७ (तदनन्तर) सीताकान्त श्रीराम ने नगर के बाहर जाकर पवनकुमार को बिदा किया । हनुमान जा रहा है, यह देखकर श्रीरघुनाथ बहुत गद्गद हो उठे । ३८ नगर के लोग सन्तुष्ट हो गये । वे बोले, 'एक बड़ा संकट टल गया । वरिष्ट जनों को ब्रह्मानन्द हो गया । घर-घर लोग आनन्द मनाते रहे । ३९ हनुमान को बिदा करके जगज्जीवन लौट आये । उद्धव और अक्रूर से उन्होंने हनुमान के गुणों का वर्णन करके सुनाया । २४० (श्रीकृष्ण ने इस प्रकार) सत्यभामा, यादव और सुपर्ण गरुड़ —सबके गर्व का हरण कर दिया । भक्तों को अहंकार बाधक (सिद्ध) होता है । इसलिए उन्होंने यह अद्भुत करनी (लीला) की । २४१

समझिए कि श्रीहरि-विजय नामक ग्रन्थ केवल नन्दनबन है । नाना इतिहास (उसमें उत्पन्न) घना वृक्ष है । वह प्रेमरस से सदा फलता है । २४२ हे ब्रह्मानन्द, हे द्वारकाधीश, हे श्रीधर-वरद, हे आदिपुरुष, हे अक्षय, हे अभंग, हे अविनाश, आप अपने दासों की रक्षा करते हैं । २४३

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । प्रेममय भक्त उसके इस मधुर इकतीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें । २४४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३२

[श्रीकृष्ण द्वारा नारद के मोह का निराकरण; प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, साम्ब हे और सुभद्रा का विवाह]

श्रीगणेशाय नमः ॥ जय जय क्षीरसागरविहारा। मत्स्यरूपिया वेदोद्धारा। महाकपटिया शंखासुरा। वधूनि धर्म वाढविला। १ मंदराचळ धरूनि पृष्ठीवरी। चौदा रत्नें काढिलीं सागरीं। कूर्मवेष मधुकैटभारी। भक्तकैवारी तूं साच। २ रसातळा पृथ्वी जातां। सकळ देवीं धांवा करितां। वराहवेषें रमानाथा। उर्वी दाढेवरी धरियेली। ३ स्तंभ भेदूनि एकसरा। विदारूनि टाकिलें महासुरा। प्रल्हादरक्षका सर्वेश्वरा। नरहरिवेषधारका। ४ दानें तपें व्रतें बळी। त्यापाशीं याचक तूं वनमाळी। त्रिभुवन दाटलें पायांतळीं। वामनवेषा कमलेशा। ५ नाहीं सेवक सदन पृतना कांहीं। तीन सप्तकें निर्वीर मही। करूनियां चिरंजीव विजयी। अद्यापि पाहीं

श्रीगणेशाय नमः। हे क्षीरसागर-विहारी (भगवान विष्णु), हे मत्स्य-रूप (अवतार-) धारी, हे वेदों के उद्धारक, जय हो, जय हो। आपने महान कपटी शंखासुर का वध करके धर्म को विकास (उत्कर्ष) को प्राप्त कर दिया था। १ आपने (समुद्र-मन्थन) के अवसर पर कूर्म-वेश धारण करके अपनी पीठ पर मन्दर पर्वत (जो मथानी के रूप में प्रयुक्त था) को धारण करके सागर से चौदह रत्न[1] निकाले थे। हे मधुकैटभारि, आप सचमुच भक्तों के सहायक-समर्थक हैं। २ पृथ्वी के रसातल जाते समय, सकल देवों ने आपकी दुहाई देते हुए पुकारते ही, हे रमानाथ, आपने वराह-वेश से पृथ्वी को अपनी डाढ़ पर (उठाकर) धारण किया। ३ हे प्रह्लाद के रक्षक, हे सर्वेश्वर, हे नरसिंह का वेश (रूप, अवतार) धारण करनेवाले, आपने स्तम्भ को एकदम भेदकर (प्रकट होते हुए) हिरण्यकशिपु नामक महान असुर को विदीर्ण कर डाला था। ४ हे वनमाली (कृष्णावतार धारण करनेवाले), हे वामन-वेश (रूप, अवतार) धारण करनेवाले, हे कमला (लक्ष्मी) पति, दान, तप, व्रत से दैत्यराज बलि बलशाली हो गया था। उसके पास याचक बनकर जाते हुए आपने त्रिभुवन को अपने पदों के तले दबा दिया था। ५ (आपके अपने परशुराम-अवतार-काल में) आपके न कोई सेवक था, न घर था, न कुछ सेना थी; फिर भी तीन सप्तक अर्थात इक्कीस बार पृथ्वी को वीर-हीन करके चिरंजीवी, विजयी होकर, देखिए, आप अब भी विचरण कर रहे

१ चौदह रत्न —देखिए टिप्पणी १, पृ० २५५, अध्याय ६।

विचरत। ६ वैश्रवणबंधु दशास्य। तेणें बंदीं घातले त्रिदश। मग तुवां धरूनियां श्रीरामवेष। अदितिपुत्र सोडविले। ७ तोचि तूं आनकदुंदुभिसुत। द्वारकाधीश मन्मथतात। तांडव करूनि अद्भुत। पांडव रक्षिले निजबळें। ८ कलियुगीं लोक परम धनांध। जिहीं जवळी रक्षिले कामक्रोध। तयांसी तूं बोलसी बोध। लीला अगाध दाविसी। ९ पुढें म्लेच्छ माजती दारुण। टाकिती सत्कर्मं मोडून। मग तूं कलंकीवेष भगवान। तुरंगवहनीं धांवसी। १० तोचि तूं सर्वेशा भीमातीरीं। दोन्ही कर ठेवूनि कटावरी। प्रत्यक्ष नांदसी पंढरीं। ब्रह्मानंदा जगद्गुरो। ११ एकतिसावे अध्यायीं कथन। सत्यभामा आणि प्रद्युम्न। सर्व यादव आणि सुपर्ण। गर्वहरण केलें त्यांचें। १२ यावरी एके दिवशीं नारदमुनी। स्नान करितां सुरनदीजीवनीं। तों मत्स्य आणि मत्स्यिणी। रमतां दृष्टीं देखिलीं। १३ काय संसार स्त्रीविण। नाहीं देखिलें पुत्रवदन। आतां विवाह करावा येथून। तरी स्त्री कधीं वाढेल। १४ तरी आतां घेऊं कृष्णदर्शन। सोळा

हैं। ६ वैश्रवण कुबेर के एक बन्धु रावण था। उसने देवों को बन्दीशाला में डाल दिया। तब आपने दाशरथी श्रीराम का वेश (अवतार, रूप) धारण करके (रावण आदि राक्षसों का संहार करके) अदिति के पुत्रों—देवों को मुक्त किया था। ७ आप वे ही आनकदुन्दुभि वसुदेव के पुत्र, कामदेव प्रद्युम्न के पिता, द्वारका के अधिपति श्रीकृष्ण (के रूप में अवतरित) थे। अपने अद्भुत ताण्डव करके अपने बल से पाण्डवों की रक्षा की। ८ कलियुग में लोग परम धनान्ध हो गये हैं। जिन्होंने काम-क्रोध (आदि विकार) अपने पास (मानो रखवाली करते हुए) रखे हैं, उनको आपने (बुद्धावतार धारण करके) उपदेश किया और अथाह लीला प्रदर्शित की है। ९ आगे चलकर म्लेंच्छ दारुण रूप से उन्मत्त हो जाएँगे, वे सत्कर्मों का उच्छेद कर डालेंगे। हे भगवान, तब आप कलंकी वेश (अवतार) धारण करके अपने वाहन घोड़े पर आरूढ़ होकर दौड़ेंगे। १० हे ब्रह्मस्वरूप गुरु ब्रह्मानंद, हे जगद्गुरु, हे सर्वेश, वे ही साक्षात आप भीमा नदी के तट पर पंढरपुर में (श्री विट्ठल के रूप में) दोनों हाथ कटि पर टिकाये हुए निवास करते हैं। ११ इकतीसवें अध्याय में यह कथन किया गया कि (श्रीकृष्ण ने) सत्यभामा और प्रद्युम्न, समस्त यादवों और गरुड़ का गर्व हरण किया। १२

इसके पश्चात एक दिन नारद मुनि ने सुरनदी गंगा के पानी में स्नान करते समय एक मत्स्य और मत्स्यी को रमण करते अपनी आँखों से देखा। १३ (तब उन्होंने सोचा—) विना स्त्री के संसार क्या है? मैंने पुत्र का मुख नहीं देखा है (तो यह संसार क्या है)। अब यहाँ से आगे (यथाशीघ्र) विवाह करें, तो स्त्री कब बढ़ेगी (बड़ी होगी)। १४ इसलिए

सहस्र रामा त्यालागून। एक द्यावी आतां मागून। करूं संतानवृद्धि कांहीं। १५ विसरला जप तप अनुष्ठान। जवळी घेतला कमंडलु जीवन। हातीं ब्रह्मवीणा घेऊन। मुक्तिपुरीसी पावला। १६ जे अनंतशक्तींची स्वामिनी। ते आदिमाया मन्मथजननी। तिचे मंदिरीं शारंगपाणी। बैसला होता तेधवां। १७ तेथेंचि आला नारदमुनी। तों दृष्टीं देखिला मोक्षदानी। हातीं चामर घेऊनी। नारी रुक्मिणी वारीतसे। १८ नारद देखतां जगज्जीवनें। क्षेमालिंगन दिधलें प्रीतीनें। जवळी बैसवूनि मधुसूदनें। पूजा केली यथाविधि। १९ हरि म्हणे जलजोद्भवनंदना। कांहीं मज करावी आज्ञा। आजि स्वामींची वासना। परम चंचळ दिसतसे। २० नारद म्हणे घननीळा। व्यर्थ आमुचा काळ गेला। गृहस्थाश्रम नाहीं केला। पुत्र कलत्र न देखों। २१ तरी तुज बहुत स्त्रिया जगन्मोहना। मज एक देईं अंगना। स्त्रीदान करी त्याचिया पुण्या। पार नाहीं सर्वथा। २२ हास्यवदन जगन्नायक। म्हणे नारदें मांडिलें कौतुक। ते समयीं यादवकुळटिळक। काय बोलिला ऐका तें। २३ म्हणे जे गृहीं नसें मी

अब श्रीकृष्ण के दर्शन करें। उनके सोलह सहस्र (एक सौ) स्त्रियाँ हैं। उनमें से एक माँगकर लें। (इस प्रकार) कुछ सन्तान वृद्धि कर लूँगा। १५ (ऐसा सोचते-सोचते) वे जप, तप, अनुष्ठान भूल गये। उन्होंने साथ में कमण्डलु भर पानी लिया और हाथ में ब्रह्मवीणा लेकर वे मुक्ति (देनेवाली) पुरी द्वारका जा पहुँचे। १६ जो अनन्त शक्तियों की स्वामिनी है, वह आदिमाया, कामदेव प्रद्युम्न की जननी रुक्मिणी थी। उस समय शाङ्‍र्गपाणि श्रीकृष्ण उसके भवन में बैठे थे। १७ नारद मुनि वहीं आ गये, तो उन्होंने मोक्ष-दाता श्रीकृष्ण को आँखों से देखा। हाथ में चामर लेकर उनकी स्त्री रुक्मिणी झुला (कर हवा कर) रही थी। १८ नारद को देखते ही जगज्जीवन मधुसूदन श्रीकृष्ण ने उनका क्षेमालिंगन किया। (तदनन्तर) उन्होंने उनका यथाविधि पूजन किया। १९ फिर श्रीहरि बोले, 'हे ब्रह्म-नन्दन, मुझे कुछ आज्ञा करें। आज स्वामी की इच्छा (मनोवृत्ति) परम चंचल दिखायी दे रही है'। २० तो नारद बोले, 'हे घननील, हमारा (जीवन-) काल व्यर्थ बीत गया। हमने गृहस्थाश्रम नहीं स्वीकार किया, (अतः) पुत्र और स्त्री को नहीं देखा। २१ तो हे जगन्मोहन, आपके बहुत स्त्रियाँ हैं। (उनमें से) एक स्त्री मुझे दे दीजिए। जो स्त्रीदान करता है, उसके पुण्य का कोई पार बिलकुल नहीं है'। २२ मुस्कराहट से युक्त मुख से जगन्नायक श्रीकृष्ण ने कहा (सोचा), 'नारद ने हँसी-विनोद आरम्भ किया है'। उस समय यादवकुलतिलक क्या बोले? उसे सुनिए। २३ वे बोले, 'ब्रह्मनन्दन, जिस घर में मैं न होऊँ, वहाँ से स्त्री को अवश्य ले जाइए'। 'ठीक है'

ब्रह्मनंदना। तेथूनि अवश्य न्यावी ललना। बरें म्हणोनि ते क्षणां। सांवरोनि वीणा ऊठिला। २४ गेला दुसरिया गृहाप्रती। तों तेथें बैसलासे जगत्पती। उद्धव अक्रूर उभे असती। विंझणें हातीं घेऊनियां। २५ हरि म्हणे यावें नारदमुनी। आलिंगन दिधलें प्रीतीकरूनी। म्हणे येणें जाहलें कोठूनी। कांहीं आज्ञा करावी मज। २६ नारद विचारी अंतरीं। परम लाघवी कपटी मुरारी। आतां होता रुक्मिणीचे घरीं। आला लवकरी विवरद्वारें। २७ तेथूनि उठे नारदमुनी। प्रवेशे दुसरे सदनीं। तों फांसे हातीं घेऊनी। सारीपाट खेळतसे। २८ हरि म्हणे यावें नारदमुनी। म्हणोनि उभा ठाके चक्रपाणी। पूर्ववत पूजा करूनि। क्षेमवार्ता पुसतसे। २९ नारद म्हणे नाटकी पूर्ण। येथेंही बैसला त्वरें येऊन। मग प्रवेशे आणिक सदन। तों मनमोहन निजलासे। ३० नारद प्रवेशला सदनांतरीं। म्हणे कोण निजला मंचकावरी। येरी म्हणे स्वामी मुरारी। बैसा क्षणभरी नारदमुनि। ३१ तों तेथें खेळती लेंकुरें। दृष्टीं देखिलीं मुनिवरें। एक सदनीं यादवेंद्र। मंगळस्नान करीतसे। ३२ एके घरीं घेतलें अग्निहोत्र। स्वयें होम देत वारिजनेत्र। एके गृहीं वेदांतशास्त्र। काढूनि वाची

कहकर उस क्षण नारद ब्रह्मवीणा को सम्हालकर उठ गये। २४ वे दूसरे घर गये, तो (देखा कि) वहाँ जगत्पति कृष्ण बैठे हुए हैं; उद्धव और अक्रूर (अपने-अपने) हाथ में पंखा लिये हुए खड़े हैं। २५ श्रीहरि बोले, 'आइए नारद मुनि'। उन्होंने उनका प्रेमपूर्वक आलिंगन किया और कहा, 'कहाँ से आना हुआ ? मुझे कुछ आज्ञा कीजिए'। २६ तो नारद ने मन में विचार किया, 'ये मुरारि परम नाटकिये, कपटी हैं। अभी रुक्मिणी के घर में थे। (जान पड़ता है—) विवर-द्वार (सुरंग) से झट से (यहाँ) आ गये हैं'। २७ नारद मुनि वहाँ से उठे और दूसरे घर में प्रविष्ट हुए तो (उन्हें वहाँ दिखायी दिया कि) श्रीकृष्ण हाथ में पाँसे लेकर चौसर खेल रहे हैं। २८ श्रीहरि बोले, 'आइए नारद मुनि'। —यह कहकर चक्रपाणि खड़े हुए और पहले की भाँति उनका पूजन करके उन्होंने कुशल-समाचार पूछा'। २९ नारद ने कहा (सोचा), 'ये पूरे-पूरे नाटकिये हैं। झट से आकर ये यहाँ भी बैठे हैं।' वे अनन्तर और एक सदन में पैठ गये, तो (देखा कि) मनमोहन श्रीकृष्ण सोये हुए हैं। ३० (तदनन्तर) नारद घर के अन्दर प्रविष्ट हो गये और बोले, 'पलंग पर कौन सोये हुए हैं ?' तो वह (स्त्री) बोली, 'स्वामी मुरारि (सोये हैं)। 'हे नारद मुनि क्षण भर बैठ जाइए'। ३१ तो मुनिवर ने आँखों से देखा कि वहाँ बच्चे खेल रहे हैं। दूसरे एक सदन में (नारद ने देखा कि) यादवेन्द्र कृष्ण मंगल-स्नान कर रहे हैं। ३२ एक घर में (उन्होंने देखा कि) कमल-नयन कृष्ण ने अग्निहोत्र व्रत स्वीकार किया है और वे स्वयं होम

जगदात्मा। ३३ एके घरीं करीत कन्यादान। कोठें करीत पुत्राचें लग्न। कोठें सुना माहेरा पाठवून। लेंकी आणीत गोपाळ। ३४ कोठें कन्या सासुरीं बोळवीत। सद्गद जाहलासे जगन्नाथ। कोठें शास्त्रांचे मथितार्थ। काढूनि सांगत भक्तांसी। ३५ कोठें असे गात नाचत। कोठें प्रेमें श्रवण करीत। कोठें विद्याभ्यास दावीत। विद्या शिकवीत पुत्रांतें। ३६ चतुर्दश विद्या चौसष्ट कळा। गृहीं गृहीं दावीत लीला। कोठें वेदघोष आगळा। करी सांवळा आदरें। ३७ कोठें बैसला उगाचि शांत। कोठें उदास विरक्त। कोठें राजयोग दावीत। हठनिग्रह टाकूनियां। ३८ कोठें यम नियम प्राणायाम। प्रत्याहार करी पुरुषोत्तम। कोठें कृपण कोठें उदारपण। पूर्णकाम जाहलासे। ३९ कोठें आचरे कर्मकांड। कोठें उपासना दावी प्रचंड। कोठें ज्ञान कथी वितंड। परम मूढां जीवांसी। ४० ऐसा जे गृहीं रिघे नारद। तिकडे व्यापलासे गोविंद। म्हणे विश्वव्यापक ब्रह्मानंद। रिता ठाव न दिसेचि। ४१ मग लज्जित जाहला ब्रह्मनंदन। म्हणे

में आहुति अर्पित कर रहे हैं। एक घर में (उन्हें दिखायी दिया कि) जगदात्मा कृष्ण वेदान्त-शास्त्र (सम्बन्धी ग्रन्थ) निकालकर (लेकर) पढ़ रहे हैं। ३३ (नारद ने देखा कि) किसी एक घर में श्रीकृष्ण कन्यादान दे रहे हैं, तो कहीं (अन्य घर में) अपने पुत्र का विवाह करा रहे हैं; कहीं गोपाल बहुओं को मैके भेजकर अपनी कन्याओं को (घर) ला रहे हैं। ३४ जगन्नाथ कहीं कन्या को ससुराल में (जाने के लिए) विदा कर रहे हैं; वे उस समय बहुत गद्गद हो उठे हैं। वे कहीं शास्त्रों का मथितार्थ (निचोड़, सार) निकालकर भक्तों को (समझाकर) कह रहे हैं। ३५ वे कहीं गा-नाच रहे हैं, तो कहीं प्रेमपूर्वक श्रवण कर रहे हैं, कहीं विद्याध्ययन कर दिखा रहे हैं, तो कहीं पुत्रों को विद्याएँ पढ़ा रहे हैं। ३६ चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं का अध्ययन चल रहा है। (इस प्रकार) वे घर-घर में लीला प्रदर्शित कर रहे हैं। कहीं श्याम (स्वयं) आदरपूर्वक ज़ोर से वेद-घोष कर रहे हैं। ३७ कहीं वे चुप, शान्त ही बैठे हुए हैं, तो कहीं उदासीन-विरक्त होकर बैठे हैं; कहीं हठयोगात्मक निग्रह को छोड़कर राजयोग (का आचरण) दिखा रहे हैं। ३८ कहीं पुरुषोत्तम कृष्ण यम-नियम, प्राणयाम, प्रत्याहार कर रहे हैं; कहीं वे कृपण बने हुए हैं। कहीं वे उदारता दिखा रहे हैं, तो कहीं वे पूर्णकाम हुए हैं। ३९ कहीं वे कर्मकाण्ड का आचरण कर रहे हैं; कहीं वे प्रचण्ड रूप में उपासना करते हुए दिखा रहे हैं; कहीं परम मूढ लोगों को परम बड़ा ज्ञान (की बातें) कह रहे हैं। ४० इस प्रकार नारद जिस-जिस घर में प्रविष्ट हुए, वहाँ (उस-उस घर में) गोविन्द श्रीकृष्ण व्याप्त थे। तो वे बोले, 'ब्रह्मानन्द श्रीकृष्ण विश्वव्यापक हैं; उनसे रिक्त कोई भी स्थान दिखायी ही नहीं दे

विश्वव्यापक जगज्जीवन। मज कर्में नाडलें पूर्ण। अज्ञानआवरण पडियेलें। ४२ मग तैसाचि वेगें निघाला। भागीरथीतीरासी आला। अनुतापें तप्त जाहला। स्नानासी चालिला ब्रह्मपुत्र। ४३ जळीं करितां अघमर्षण। तों मायेनें दाविलें विदाण। स्त्रीस्वरूप आपण। नारद जाहला तेधवां। ४४ रंभेऐसें रूप सुंदर। नारदी जाहला मुनीश्वर। तेथें एक पुरुष आला साचार। कामातुर होऊनियां। ४५ तेणें संग देतांचि तत्काळ। गरोदर झाली वेल्हाळ। नव मास भरतां समूळ। प्रसूत जाहली तेधवां। ४६ तत्काळ जाहले साठी पुत्र। प्रभवविभवादि संवत्सर। नारदमुनि करी विचार। म्हणे अनर्थ थोर जाहला। ४७ मज लागलें स्त्रियेचें ध्यान। तेंचि मी जाहलों न लगतां क्षण। मग करीत हरिस्मरण। सोडवीं येथूनि दयाळुवा। ४८ करितांचि कृष्णचिंतन। पूर्ववत जाहला ब्रह्मनंदन। बाहेर आला स्नान करून। मग तप दारुण आचरला। ४९ यम नियम प्राणायाम करून। पावला स्वरूपीं समाधान। ज्ञानाग्नि धडधडीत पूर्ण। दोषतृण दग्ध जाहलें। ५० जैसा पर्वत संदीप्त होय।

रहा है'। ४१ तब ब्रह्मनन्दन लज्जित हुए और बोले, 'जगज्जीवन कृष्ण विश्वव्यापक हैं। मुझे कर्म ने पूर्णतः पीड़ित किया; मुझपर अज्ञान का आवरण पड़ गया'। ४२ तब वे ब्रह्मनन्दन वैसे ही वेगपूर्वक निकले और गंगा के तीर पर आ गये। वे पश्चात्ताप से तप्त हो गये। फिर वे स्नान के लिए चले गये। ४३ जल में उनके द्वारा पापक्षालनार्थ स्नान करते ही, माया ने चमत्कार दिखाया। तब नारद स्वयं स्त्री-रूप हो गये। ४४ उनका रूप रम्भा का-सा सुन्दर हो गया। मुनीश्वर नारद, 'नारदी' बन गये। तो वहाँ सचमुच एक पुरुष कामातुर होकर आ गया। ४५ उसके द्वारा संग अर्थात उपभोग कर देते ही वह सुन्दरी (नारदी) गर्भवती हो गयी। तब नौ मास मूल (आरम्भ) से पूर्ण होने पर वह प्रसूत हो गयी। ४६ उसके तत्काल प्रभव, विभव आदि (नामधारी) साठ संवत्सर पुत्र उत्पन्न हो गये। तो नारद मुनि ने विचार किया— बड़ा विनाश हो गया। ४७ मुझे स्त्री का ध्यान लग गया, तो मैं ही क्षण न लगते स्त्री हो गया हूँ। तब वे श्रीहरि का स्मरण करने लगे और बोले, 'हे दयालु, यहाँ से (इस स्थिति से मुझे) मुक्त कीजिए'। ४८ श्रीकृष्ण का चिन्तन करते ही ब्रह्मनन्दन नारद पूर्ववत (पुरुष, मुनि) हो गये। वे स्नान करके बाहर आ गये। अनन्तर उन्होंने कठोर तप किया। ४९ वे यम-नियम-प्राणायाम करके आत्मरूप में तृप्ति को प्राप्त हो गये। (उनके हृदय में) ज्ञानाग्नि धगधगाहट से जलने लगी, तो (अज्ञान-जन्य) दोष रूपी तृण जल गया। ५० जिस प्रकार पर्वत प्रज्वलित हो जाने पर फिर मृग (पशु) और पक्षी उसका आश्रय नहीं करते, उसी

मग मृगपक्षी न धरिती आश्रय। तैसाचि ब्रह्मविद होय। निःसंदेह ब्रह्मपुत्र। ५१ जैसे स्वप्नींचे दोष अपार। जागा होतां होती संहार। तैसा तो नारद ज्ञानसागर। कैंचा विकार उरेल पैं। ५२ कैंचा कलंक रविमंडळीं। पाप नुरेचि जान्हवीजळीं। सदा पवित्र ज्वाळामाळी। त्यासी ओवळें कोण म्हणे। ५३ धुळीनें कदा न मळे अंबर। कीं सर्वत्र फिरतां निर्मळ समीर। कीं ढेंकुळ पडतां सागर। न डहुळेचि कदापि। ५४ नारद तोचि श्रीकृष्ण। दोघांसी नाहीं भेदभान। सावध करावया जन। कौतुक पूर्ण दाविलें। ५५ आतां ऐका सावधान। द्वारकेसी काय जाहलें वर्तमान। रुक्मिणीचा बंधु रुक्मिया जाण। भोजकटनगरीं वसे पैं। ५६ त्याची कन्या परम सुकुमार। लावण्यवल्ली नामें चतुर। ते प्रद्युम्नासी दिधली सुंदर। यथाविधी-करूनियां। ५७ श्रीकृष्ण बळिराम रुक्मिणी। छप्पन्न कोटी यादवश्रेणी। रुक्मियानें नगरासी नेऊनी। सोहळा केला अपार। ५८ भगिनीपुत्र प्रद्युम्न। त्याहीवरी तो साक्षात मदन। जामात सुंदर देखोन। अपार आंदणें दीधलीं। ५९ वोहरें सांगातीं घेऊनी। द्वारकेसी आले चक्रपाणी। जो

प्रकार निःसन्देह ब्रह्मा के पुत्र नारद फिर से ब्रह्मवेत्ता हो गये (उनमें कोई दोष-विकार शेष नहीं रहा)। ५१ जिस प्रकार स्वप्न में (उत्पन्न और अनुभूत) अपार दोष, जाग्रत् हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार नारद के ज्ञान का समुद्र हो जाने पर उनमें कैसा विकार शेष रह सकता है। ५२ सूर्य-मण्डल में कैसा कलंक (शेष रहेगा)? गंगा के जल में पाप शेष बचेगा ही नहीं। ज्वालामाली अर्थात अग्नि सदा पवित्र होता है। उसे अपावन कौन कह सकता है? ५३ धूलि से आकाश कदापि मैला नहीं हो जाता; अथवा सर्वत्र विचरण करते रहने पर भी वायु निर्मल ही रहता है; अथवा मिट्टी के ढेले के पड़ने पर समुद्र कदापि मटमैला नहीं होता। ५४ नारद ने कहा— वे ही श्रीकृष्ण हैं; उन दोनों को भेदभाव का भान नहीं होता। फिर भी लोगों को सचेत करने के हेतु उन्होंने यह पूरी लीला प्रदर्शित की। ५५

अब अवधानपूर्वक सुनिए, द्वारका में क्या घटना घटित हुई। जान लीजिए कि रुक्मिणी का बन्धु रुक्मी भोजकट नामक नगर में रहता था। ५६ उसके लावण्यवल्ली नामक एक परम सुकुमार तथा चतुर कन्या थी। वह सुन्दरी यथाविधि विवाह में प्रद्युम्न को दी गयी। ५७ रुक्मी ने श्रीकृष्ण, बलराम, रुक्मिणी तथा छप्पन करोड़ यादवों के समुदाय को अपने नगर में ले जाकर असीम रूप से (विवाह-) समारोह सम्पन्न कर दिया। ५८ प्रद्युम्न (एक) तो उसका भगिनी-पुत्र (भागिनेय, भानजा) था; तिस पर वह साक्षात कामदेव था। ऐसे उस सुन्दर दामाद को देखकर अपार दायज दिये। ५९ जो आदिपुरुष हैं, कैवल्यदानी हैं, वेद-पुराणों के लिए

आदिपुरुष कैवल्यदानी। वेदपुराणीं वंद्य जो। ६० पुढें रुक्मियाचा पुत्र। रुक्मध्वज नामें शूर। त्याची कन्या पद्माक्षी चतुर। अनिरुद्धासी वोधली। ६१ सकळ यादव आणि दळभार। श्रीकृष्ण प्रद्युम्न आणि रोहिणीकुमार। रुक्मिणी रेवती उखा समग्र। लग्नालागीं आणिल्या। ६२ आणि देशोदेशींचे नृपवर भले। रुक्मियानें लग्नासी आणिले। यथाविधि लग्न लाविलें। द्रव्य वेंचिलें अपार। ६३ वस्त्रें मंडप शोभिवंत। ठायीं ठायीं रजतस्तंभ विराजित। ते सभेसी राजे समस्त। कौतुकार्थ बैसले। ६४ बळिराम आणि यादव बैसले। तों रुक्मिया तेव्हां काय बोले। या जी द्यूत खेळों वहिलें। अवश्य म्हणे कृष्णाग्रज। ६५ रुक्मिया आणि बळिराम खेळती। भोंवते नृप पाहती। रुक्मिया म्हणे पण करा निश्चिती। तरीच रंग खेळाचा। ६६ प्रथम केला सहस्राचा पण। अवश्य म्हणे संकर्षण। पहिला डाव भीमकनंदन। जिंकिता जाहला तेधवां। ६७ सहस्र द्रव्य ते वेळां। बळिराम देता जाहला। मग लक्षाचा पण घातला। तो डाव जिंकिला बळिभद्रें। ६८ तों रुक्मिया असत्य स्वार्थ बोले। म्हणे ये वेळे म्यां जिंकिलें। तों रेवतीवर म्हणे आगळें। असत्य न बोलें कपटिया। ६९

जो वन्द्य हैं, वे चक्रपाणि कृष्ण नवदम्पती को साथ में लेकर द्वारका (लौट) आये। ६० इसके पश्चात रुक्मी के रुक्मध्वज नामक एक शूर पुत्र था। उसकी पद्माक्षी नामक चतुर कन्या अनिरुद्ध को विवाह में प्रदान की। ६१ (उधर रुक्मी) समस्त यादव और उनका सेना-दल, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और रोहिणीकुमार बलराम, रुक्मिणी, रेवती, ऊषा, सबको विवाह के लिए ले आया। ६२ और देश-देश के भले-भले नृपवरों को रुक्मी विवाह (-समारोह) में ले आया। उसने यथाविधि विवाह कर दिया। उसमें अपार धन खर्च किया। ६३ वस्त्र और मण्डप शोभायमान थे। स्थान-स्थान पर चाँदी के खम्भे विराजमान थे। उस सभा में समस्त राजा मौज (देखने) के लिए बैठे हुए थे। ६४ बलराम और यादव (जहाँ) बैठे हुए थे, तो तब वहाँ रुक्मी क्या बोला? (सुनिए।) 'आइए जी, पहले द्यूत खेलें।' तो कृष्णाग्रज बलराम ने कहा, 'अवश्य'। ६५ (तदनुसार) रुक्मी और बलराम खेलने लगे; चारों ओर से राजा देख रहे थे। तो रुक्मी बोला, 'प्रण निर्धारित कीजिए, तो ही खेल में रंग आएगा। ६६ मैंने पहले एक सहस्र का प्रण किया'। बलराम बोले, 'अवश्य'। तब पहला दाँव भीमक-नन्दन रुक्मी ने जीत लिया। ६७ उस समय बलराम ने सहस्र द्रव्य अर्थात मुद्राएँ दीं। अनन्तर एक लक्ष का प्रण निर्धारित हुआ। वह दाँव बलराम ने जीत लिया। ६८ तो रुक्मी स्वार्थपूर्वक असत्य बोला। उसने कहा, 'इस समय (भी) मैं जीत गया हूँ'। तो रेवतीपति बलराम न्यारी बात बोले—

रुक्मिया म्हणे तूंचि असत्य। म्यां डाव जिंकिला यथार्थ। परम क्षोभला रोहिणीसुत। मग पुसे समस्त रायांसी। ७० तेही रुक्मियाऐसें बोलत। असत्य साक्ष देती समस्त। म्हणती रुक्मियानें जिंकिलें यथार्थ। आम्ही भोंवते पाहतसों। ७१ रुक्मिया म्हणे असत्य बोलतां। तुमचा जन्म गेला तत्त्वतां। तुम्ही गोकुळीं गुरें राखितां। असत्य तेथें शिकलेती। ७२ तुम्ही दोघे असत्याचीं घरें। परम कपटी चोर जार। कपटेंचि घेतलें मथुरानगर। कंसासुर वधूनियां। ७३ मग कालयवनभेणें देखा। समुद्रांत रचिली द्वारका। कपटेंकरूनि भीमककन्यका। चोरूनि नेली तस्कर हो। ७४ तैसें तुम्ही पाहतां येथें। परी मी शिक्षा लावीन तुम्हांतें। द्वारका उचलूनि स्वहस्तें। समुद्रामाजी टाकीन। ७५ म्यां जिंकिला आतां डाव। साक्ष देती अवघे राव। तों देववाणी अंबरीं अपूर्व। एकाएकीं गर्जली। ७६ म्हणे बळिरामें जिंकिला यथार्थ। समस्त राजे पाहती चकित। तंव क्रोधावला रेवतीकांत। परी आयुध जवळी दिसेना। ७७ रुक्मिया घेऊनि खड्ग बोडण। उभा ठाकला सरसावून। बळिरामें मंडपाचा स्तंभ भवंडून। तत्काळ हातीं सरसाविला। ७८ बळें भवंडून ते वेळां। रुक्मियाचे मस्तकीं

'अरे कपटी, असत्य मत बोलो'। ६९ इसपर रुक्मी बोला, 'तुम ही असत्य (बोल रहे) हो। मैंने यथार्थ रूप से दाँव जीत लिया'। (यह सुनकर) रोहिणी-सुत बलराम परम क्रुद्ध हो उठे। अनन्तर उन्होंने सब राजाओं से पूछा। ७० वे भी रुक्मी की भाँति बोले। सबने असत्य साक्षी प्रस्तुत की। वे बोले, 'सचमुच रुक्मी ने जीत लिया है। हम चारों ओर से देख रहे हैं'। ७१ रुक्मी ने कहा, 'झूठ बोलते-बोलते तुम्हारा सचमुच जन्म (जीवन) बीत गया। गोकुल में गोरू चराते-चराते तुम वहाँ असत्य (बोलना) सीख गये हो। ७२ तुम दोनों असत्य के घर हो, परम कपटी हो, चोर हो, जार हो। तुमने कपट से ही कंसासुर का वध करके मथुरा नगर (जीत) लिया। ७३ अनन्तर कालयवन के भय से, देखिए, समुद्र में द्वारका का निर्माण किया। फिर रे चोर, तुम कपट से भीमक-कन्या रुक्मिणी को चुराकर ले गये हो। ७४ तुम यहाँ उसी प्रकार देख रहे हो (करना चाहते हो); परन्तु मैं तुम्हें दण्ड दूँगा; द्वारका को अपने हाथों से उठाकर समुद्र में फेंक दूँगा। ७५ मैंने अब दाँव जीता है। सब राजा इसकी साक्षी दे रहे हैं'। तो आकाश में देववाणी अकस्मात अपूर्व रूप से गरज उठी। ७६ वह बोली, 'बलराम ने (प्रण) यथार्थ रूप से जीता है'। तो समस्त राजा चकित होकर देखने लगे। तब रेवती-पति बलराम क्रोध को प्राप्त हो गये; परन्तु उन्हें पास में कोई आयुध नहीं दिखायी दे रहा था। ७७ (तब तक) रुक्मी खड्ग और ढाल लेकर आगे बढ़कर खड़ा हो गया, तो बलराम

घातला। शतचूर्ण मस्तक जाहला। प्राणासी मुकला तत्काळ।७९
जाहला एकचि हाहाकार। राजे पळों पाहती सत्वर। बळिरामें त्यांचे मुखीं
मुष्टिप्रहार। बळेंकरूनि दीधले।८० समस्तांचे पाडिले दांत। भडभडां
अशुद्ध वाहत। तैसेचि नृप पळाले समस्त। महा अनर्थ देखोनियां।८१
निजमंडपीं होता रुक्मिणीवर। जो त्रिभुवनचाळक सूत्रधार। तेथें धांवोनि
आला सत्वर। तों रुक्मियाचें प्रेत देखिलें।८२ मग अग्नींत शरीर घातलें।
त्याच्या पुत्रावरी छत्र धरिलें। वोहरें घेऊनि ते वेळे। द्वारकेसी आले
रामकृष्ण।८३ यावरी जांबुवंतीचा कुमर। सांब नामें परम वीर।
महायोद्धा अनिवार। तेणें विचित्र एक केलें।८४ दुर्योधन हस्तिनापुरीं।
त्याची कन्या रूपवती सुंदरी। तिचें स्वयंवर होतें ते अवसरीं। राजे समस्त
मिळाळे।८५ दिव्य सभा परिकर। तेथें बैसले समस्त नृपवर। रथारूढ
होऊनि कृष्णकुमर। सांब तेथें पातला।८६ तोही बैसला सभेभीतरी।
तंव शृंगारूनि आणिली नोवरी। दुर्योधन म्हणे कुमारी। पाहें राजे

ने मण्डप का खम्भा तोड़कर हाथ में तत्काल तोल लिया।७८ बलपूर्वक उस (स्तम्भ) को घुमाते हुए बलराम ने रुक्मी के मस्तक पर मारा। तो उसका मस्तक शतशः छिन्न-चूर्ण हो गया। (फलस्वरूप) वह तत्काल प्राणों को खो बैठा।७९ तो अद्भुत हाहाकार हो गया। (अन्य) राजा झट से भागना चाहते थे। फिर भी बलराम ने बलपूर्वक उनके मुख पर घूँसे जमा दिये।८० उन सबके दांत गिरा दिये; रक्त झरझर बहने लगा; वैसे ही उस महान संकट को देखकर समस्त राजा भाग गये।८१ रुक्मिणी-पति (श्रीकृष्ण उस समय) अपने मण्डप में थे। जो त्रिभुवन के चालक हैं, (समस्त घटनाओं के) सूत्रधार हैं, वे (श्रीकृष्ण यह सुनकर) झट से दौड़ते हुए वहाँ आ गये। तो उन्होंने रुक्मी के शव को देखा।८२ अनन्तर उन्होंने अग्नि में वह शरीर (शव) डाल दिया (उसका दाह-संस्कार कर लिया)। उसके पुत्र पर राजछत्र धर दिया और उस समय नवदम्पती को लेकर बलराम और कृष्ण द्वारका आ गये।८३

इसके पश्चात जाम्बवती के साम्ब नामक परम वीर पुत्र था। वह अनिवार्य महायोद्धा था। उसने एक विचित्र (काम) किया।८४ दुर्योधन हस्तिनापुर में था। उसकी कन्या रूपवती, सुन्दरी थी। उसका स्वयंबर आयोजित था। उस अवसर पर समस्त राजा इकट्ठा हो गये।८५ वह दिव्य (स्वयंवर-) सभा थी। वहाँ समस्त नृपवर बैठे हुए थे। तो कृष्ण-पुत्र साम्ब रथ में आरूढ़ होकर वहाँ आ पहुँचा।८६ वह भी सभा में बठ गया। तब वधू को सजाकर लाया (गया)। तो दुर्योधन बोला, 'हे कुमारी, इन राजाओं को निर्धार-

निर्धारीं हे । ८७ यांमाजी आवडेल जो सुंदर । त्यासीच माळ घालीं सत्वर । ती राजे विलोकीत समग्र । स्थिर स्थिर जातसे । ८८ त्यांतूनि सांब उठिला तत्काळ । म्हणे कोणासी न कळे घालील माळ । सत्वर धांवला तो चपळ । उतावीळ होऊनियां । ८९ तत्काळ नोवरी उचलिली । निमिषार्धें रथावरी घातली । द्वारकापंथें ते वेळीं । पवनवेगें जातसे । ९० जंबुकांचे सभेमधून । भाग आपुला नेत पंचानन । कीं सुधारसघट घेऊन । जात सुपर्ण अकस्मात । ९१ जाहला एकचि हाहाकार । आत्मदळेंसीं धांवती नृपवर । शतबंधूंशी दुर्योधन सत्वर । पाठिलागा धांविन्नला । ९२ कौरव म्हणती हा एवढा धीट । ऐसा वंश त्याचा तिखट । चोर जार परम नष्ट । असत्य कपट सर्ववेषें । ९३ तों अवघे राजे धांवती । सांब आटोपिला समस्तीं । ऐसें जाणोनि त्वरितगतीं । रथ मुरडिला कृष्णसुतें । ९४ क्षण न लगतां धनुष्य चढविलें । असंभाव्य बाण सोडिले । प्रेतांचे पर्वत पाडिले । नवल केलें तेधवां । ९५ धन्य धन्य राजे म्हणत । बहुतांशीं एकला झुंजत । मग मुख्य मिळाले

पूर्वक (ठीक विचारपूर्वक) देख लो । ८७ इनमें से जो सुन्दर नृप तुम्हें अच्छा लगेगा, उसी को झट से वरमाला पहना दो । वह समस्त राजाओं को देखते हुए धीरे-धीरे चली जा रही थी । ८८ तो उनमें से (फिर भी) साम्ब तत्काल उठ गया । वह बोला (उसको लगा)— न जाने यह किसे वरमाला पहना देगी । (अतः) वह चपल (वीर) उतावला होकर झट से दौड़ा । ८९ उसने तत्काल वधू को उठा लिया, आधे पल में उसे रथ में बैठा दिया और वह द्वारका के मार्ग से उस समय पवन-वेग से जाने लगा (रथ को दौड़ाने लगा) । ९० जैसे सियारों की सभा में से सिंह अपना भाग उठाकर ले गया हो; अथवा जैसे सुपर्ण गरुड़ अकस्मात (आकर) अमृत-घट को लेकर चला गया (उसी प्रकार साम्ब उस कन्या का अपहरण करके चला गया) । ९१ तो (वहाँ) अद्भुत हाहाकार मच गया । अपनी-अपनी सेना-सहित नृपवर दौड़ने लगे (दौड़ते हुए पीछा करने लगे) । अपने सौ बन्धुओं-सहित दुर्योधन पीछा करने के लिए झट से दौड़ा । ९२ (यह देखकर) कौरव बोले, ‘ यह इतना ढीठ है ’ —ऐसा (ही) होगा इसका वंश चोर, जार, परम नष्ट । पूरा असत्य कपट-वेश से तीखा (उग्र) होगा । ९३ तो सब राजा दौड़ते रहे । सबने साम्ब को रोक लिया । ऐसा जानकर शीघ्र गति से उस कृष्णकुमार ने रथ को घुमा लिया । ९४ उसने क्षण न लगते धनुष को चढ़ा लिया और असम्भाव्य रूप से (अनगिनत) बाण चलाना आरम्भ किया । उससे प्रेतों के पर्वत बना दिये । (इस प्रकार) उसने चमत्कार किया । ९५ वे (दर्शक) राजा बोले— ‘ धन्य है, धन्य है । यह अकेला बहुतों से जूझ रहा है ’ । अनन्तर समस्त प्रमुख राजा इकट्ठा हुए और चारों ओर से अस्त्र चलाने

समस्त। अस्त्रें घालिती चहूंकडोनि। ९६ अंगीं रुतले बहुत शर। तेव्हां विकळ जाहला कृष्णकुमर। मग पाश घालूनि सत्वर। दुर्योधनें धरियेला। ९७ हस्तिनापुरासी आणूनी। बंदीं घातला ते क्षणीं। आपुलिया स्वस्थळालागूनी। राजे गेले तेधवां। ९८ कन्या तैसीच ठेवी घरीं। तों नारद गेला द्वारकापुरीं। हरिसी म्हणे ते अवसरीं। सांब पुत्र कोठें तुझा। ९९ तों श्रीरंग म्हणे ते वेळे। कोठें गेला आहे तें न कळे। नारद म्हणे बंदिशाळे। दुर्योधनें रक्षिला। १०० सांगितला समस्त समाचार। परम कोपला यादवेंद्र। वेगें सिद्ध केला दळभार। वाद्यांचे गजर लागले। १०१ तों पुढें कर जोडूनि प्रद्युम्न। विनवी श्रीकृष्णालागून। काय मशक दुर्योधन। त्यावरी आपण नव जावें। २ जंबुकावरी पंचानन। कीं अळिकेवरी सुपर्ण। खद्योतावरी चंडकिरण। युद्धा संपूर्ण निघाले। ३ मी आतां जातों जी त्वरें। घेऊनि येईन दोघें वोहरें। समस्त कौरवांचीं शिरें। बंधूच्या कैवारें छेदीन। ४ ऐसें बोलतां मीनकेतन। तों जवळी आला संकर्षण। म्हणे कासया पाठवितां प्रद्युम्न। मी जाऊन आणितों। ५ कौरवपांडव आप्तवर्ग। त्यांशीं न करावा युद्धप्रसंग। मग काय बोले

लगे। ९६ कृष्णकुमार साम्ब के शरीर में बहुत बाण चुभ गये, तब वह विकल हो उठा। अनन्तर दुर्योधन ने पाश डालकर उसे पकड़ लिया। ९७ उसे हस्तिनापुर में लाकर उसने उस क्षण बन्दीशाला में डाल दिया। तब (अन्य) राजा अपने-अपने स्थान को चले गये। ९८ (दुर्योधन ने) कन्या को वैसे ही घर में रखा, तो (उधर) नारद द्वारकापुर गये और उस समय श्रीहरि से बोले, 'आपका पुत्र साम्ब कहाँ है'? ९९ तो उस समय श्रीकृष्ण बोले, 'समझ में नहीं आ रहा है कि वह कहाँ गया है'। तो नारद ने कहा, 'उसे दुर्योधन ने बन्दीशाला में रक्षा करते हुए रखा है'। १०० (तदनन्तर) नारद ने समस्त समाचार कहा, तो यादवेन्द्र कृष्ण परम कुपित हो उठे। उन्होंने वेगपूर्वक सेना को सिद्ध (सज्ज) किया। वाद्यों का गर्जन होने लगा। १०१ तो सामने हाथ जोड़कर प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण से विनती की, 'दुर्योधन क्या, मच्छड़ है! आप उसपर चढ़ न जाएँ। २ (आपका जाना वैसे ही सिद्ध होगा) जैसे सियार पर सिंह, अथवा इल्ली पर गरुड़, अथवा जुगनू पर सूर्य सम्पूर्ण युद्ध के लिए चढ़ दौड़ने निकला हो। ३ अजी मैं शीघ्रतापूर्वक अभी जाता हूँ। मैं वर-वधू दोनों को ले आऊँगा। अपने बन्धु की सहायता-समर्थन में मैं समस्त कौरवों के सिर काट दूँगा'। ४ कामदेव प्रद्युम्न के द्वारा ऐसा बोलने पर बलराम उनके पास आये और बोले, 'प्रद्युम्न को क्यों भेज रहे हो? मैं जाकर साम्ब को (वधू-सहित) लाता हूँ। ५ कौरव और पाण्डव आप्तवर्गीय जन हैं। उनसे प्रसंगवशात् (भी) युद्ध न करें'। तो

रमारंग। भोगींद्रासी तेधवां। ६ जरी ते तुमचें न मानिती वचन। तरी आम्हीं यावें कीं धांवोन। हांसोनि बोले रेवतीरमण। ऐसें जाण नव्हेचि। ७ माझें वचन न मानिती पामर। तरी पालथें घालीन हस्तिनापुर। मग रथारूढ झाला शेषावतार। उद्धवअक्रूरांसहित पैं। ८ मग गजपुरासमीप येऊनी। बळिराम राहिला उपवनीं। दुर्योधनासी धाडिलें सांगोनी। आम्हांसी भेटोनि जाइंजे। ९ मग समस्त बंधु घेऊन। बाहेर आला दुर्योधन। बळिराम भेटला उठोन। सन्मान देऊन बैसविला। ११० म्हणे नेणतपणें आमुचा कुमर। पाहों आला येथें स्वयंवर। कन्या घेऊनि गेला सत्वर। परी तुम्हीं विचार नाहीं केला। १११ समस्त मिळोनि बाळ धरिला। आकर्षोनि बंदीं घातला। हें ऐकोनि बहुत कोपला। रुक्मिणीवर तुम्हांवरी। १२ दळभार सिद्ध करून। पाठवीत होता तुम्हांवरी मदन। मग आम्ही तयातें वारून। दर्शना आलों तुमच्या। १३ तंव दुर्योधन क्रोधावला बहुत। तुम्ही बहुत झालेत रे उन्मत्त। आमुच्या धर्में द्वारकेआंत। नांदतां सुखें तें नेणां। १४ बळेंकरूनि न्यावी नोवरी। हा कुळधर्म तुमचे

फिर रमापतिस्वरूप श्रीकृष्ण उस समय भोगीन्द्रावतार बलराम से क्या बोले। ६ 'यदि वे तुम्हारी बात न मानेंगे, तो क्या हम दौड़ते हुए आ जाएँ?' तो हँसकर बलराम बोले, 'समझ लो, ऐसा नहीं होगा। ७ वे पामर यदि मेरी बात न मानेंगे, तो मैं हस्तिनापुरी को उलट दूँगा'। अनन्तर शेषावतार बलराम उद्धव और अक्रूर-सहित रथ पर आरूढ़ हो गये। ८ तब हस्तिनापुर के समीप आकर बलराम उपवन में ठहर गये। उन्होंने दुर्योधन को कहलवा दिया— 'हमसे मिलकर जाइए (हमसे मिलने आइए)'। ९ अनन्तर समस्त बन्धुओं को लेकर दुर्योधन (नगर के) बाहर आया, तो बलराम उठकर उससे मिले। फिर उसको (सम्मान करके) सम्मानपूर्वक बैठा लिया। ११० वे बोले, 'हमारा पुत्र अनजाने में यहाँ स्वयंवर देखने के लिए आ गया और कन्या को लेकर झट से चला गया। फिर भी आपने कोई विचार नहीं किया। १११ आप सबने मिलकर बच्चे को पकड़ लिया और खींचकर उसे बन्दीशाला में डाल दिया। यह सुनकर रुक्मिणीवर श्रीकृष्ण तुमपर बहुत कुपित हुए हैं। १२ वे सेना सिद्ध करके तुम पर (आक्रमण करने के लिए) प्रद्युम्न को भेज रहे थे; तब हम उनको रोककर तुम्हारे दर्शन के लिए आये हैं'। १३ तो (यह सुनते ही) दुर्योधन परम क्रोध को प्राप्त हुआ (और बोला—) 'अरे तुम बहुत उन्मत्त हुए हो। हमारी कृपा से द्वारका के अन्दर सुखपूर्वक रह रहे हो, इसे तुम नहीं जानते। १४ यह तुम्हारे घर का कुलधर्म (जान पड़ता) है कि बलपूर्वक वधू को (उठाकर) ले जाएँ— हमें (भी) तुमने वही रीति दिखायी। (अब) तुम्हारी द्वारकापुरी रहने

घरीं। आम्हांसी दावितां ते परी। द्वारकापुरी राहूं नेदूं। १५ तुमचा कृष्ण आणि प्रद्युम्न। येऊं द्या युद्धालागून। एक्याचि बाणेंकरून। करीन कंदन समस्तांसी। १६ ऐसें बोलोनि दुर्योधन। बंधूंसहित गेला उठोन। म्हणे दळभार सिद्ध करून। द्वारकापट्टण घेऊं आतां। १७ येरीकडे शेषावतार। निजबळें फिरवी नांगर। हस्तिनापुरासी सत्वर। मध्यभागीं रोंविला। १८ हालवितां निजबळें। सकळ नगर डळमळिलें। सदनें खचती ते वेळे। लोक पळती बाहेर। १९ बाळें घेऊनि कडियेवरी। नगराबाहेर धांवती नारी। म्हणती रसातळा जाते धरित्री। कल्पांतकाळ ओढवला। १२० मग भीष्म आणि द्रोण। दुर्योधन धरी त्यांचे चरण। म्हणे कोपला रेवतीरमण। तो आतां शांत करा जी। १२१ गंगात्मज बोले उत्तर। व्यर्थ धरिला त्याचा कुमर। कैंचा शांत होईल भोगींद्र। अनिवार क्रोध तयाचा। २२ मग भीष्म द्रोण विदुर। दुर्योधनादिक कौरव समग्र। नगराबाहेर आले सत्वर। करिती नमस्कार रामातें। २३ दुर्योधन लागे चरणीं। क्षमा करावी ये क्षणीं। राम म्हणे समुद्रीं नेऊनी। नगर पालथें घालीन। २४ तों कौरव म्हणती तुमचा नंदन। तोही आंत पावेल मरण।

नहीं देंगे। १५ तुम्हारे कृष्ण और प्रद्युम्न को युद्ध करने के लिए आने दो। एक ही बाण से सबका संहार कर डालूंगा'। १६ ऐसा बोलकर दुर्योधन उठकर बन्धुओं-सहित चला गया। उसने कहा—'सेना सिद्ध करके अब द्वारकापट्टन (जीत) लेंगे'। १७ इधर शेषावतार बलराम अपने बल से हल चलाने लगा। उन्होंने हस्तिनापुर (आकर उस) के मध्य भाग में झट से उसे रोप दिया। १८ उसे अपने बल से हिलने लगते ही समस्त नगर डगमगाने लगा। (उसके अन्दर) उस समय घर ढहने लगे, तो लोग बाहर भाग गये। १९ बच्चों को गोद में लेकर नारियां नगर के बाहर दौड़ीं। वे बोलीं, 'यह धरती रसातल जा रही है; कल्पान्त का काल आ गया है'। १२० अनन्तर दुर्योधन ने भीष्म और द्रोण के पांव पकड़े और कहा, 'रेवतीरमण बलराम कुपित हुए हैं। अजी, उन्हें अब शान्त कीजिए'। १२१ तो गंगात्मज भीष्म बोले, 'तुमने उसके पुत्र को व्यर्थ पकड़ लिया। भोगीन्द्र (शेष का अवतार) बलराम शान्त कैसे हो जाएगा? उसका क्रोध अनिवार्य है'। २२ अनन्तर भीष्म, द्रोण, विदुर, दुर्योधन आदि समस्त कौरव नगर के बाहर झट से आ गये और उन्होंने बलराम को नमस्कार किया। २३ दुर्योधन उनके पांव लगा और बोला, 'इस क्षण क्षमा कीजिए'। तो बलराम बोले, 'नगर को ले जाकर समुद्र में उलट दूंगा'। २४ तो कौरव बोले, 'तुम्हारा पुत्र (जो इस नगर के अन्दर है, वह) भी (समुद्र के) अन्दर मौत को प्राप्त हो जाएगा'। तब रेवतीरमण—वसुदेव-पुत्र बलराम बोले। २५ 'हमारे

मग बोले वसुदेवनंदन। रेवतीरमण तेधवां। २५ आमुचा कुमर पावतां मरण। तरी समुद्रचि देईल आणून। कृष्णें गुरुपुत्र देऊन। सांदीपन तोषविला। २६ गोकुळीं असतां जगज्जीवन। नंद यमुनेसी करी स्नान। घेऊनि गेला जळीं वरुण। कृष्णें माघारा आणिला। २७ नंद शक्तिवनीं सर्पें गिळिला। तो हरीनें तत्काळ सोडविला। द्वादश गांवें अग्नि गिळिला। गौळी सकळ रक्षिले। २८ अघासुर मुख पसरून। म्हणे गोकुळ अवघेंचि गिळीन। तो कृष्णें उभा चिरोन। गोपाळ अवघे रक्षिले। २९ कालियाविषोदककल्लोळें। नव लक्ष गोपाळ मृत्यु पावले। कृपाकटाक्षें हरीनें उठविले। मग दवडिलें कालियातें। १३० सातवे वर्षीं गोवर्धन। आंगोळियेवरी घे सप्त दिन। त्यासी आणावया नंदन। उशीर काय लागेल पां। १३१ निकर देखोनि बहुत। चरणीं लागे गंगासुत। म्हणे अन्याय जाहला तो समस्त। घालीं पोटांत ये वेळे। ३२ मग संतोषोनि बळिभद्र। तत्काळ उपटिला नांगर। तंव बंदींचा सोडूनि कुमर। विवाह केला यथाविधि। ३३ वोहरें घेऊनि सांगातें। बळिराम आला द्वारकेतें।

पुत्र के मर जाने पर तो समुद्र ही उसे (लौटाकर) ला देगा। कृष्ण ने (पूर्वकाल में समुद्र के अन्दर से मृत) गुरुपुत्र को लाकर देते हुए सान्दीपनी को सन्तुष्ट किया। २६ जगज्जीवन कृष्ण के गोकुल में रहते समय नन्द यमुना में स्नान कर रहे थे। वरुण उन्हें जल के अन्दर (नीचे) ले गया था, तो कृष्ण उन्हें लौटा लाये। २७ शक्तिवन में नन्द को एक सांप ने निगल डाला था, तो श्रीहरि ने उन्हें तत्काल मुक्त किया। उन्होंने बारह योजन (फैली हुई) आग को निगल डाला और (उस आग से) समस्त ग्वालों को बचा लिया। २८ अघासुर ने मुंह बाये कहा (सोचा)— ‘सभी गोकुल को निगल डालूंगा’ तो कृष्ण ने उसे सीधे (खड़े) चीरकर समस्त गोपालों की रक्षा की। २९ कालिय नाग के विष से युक्त पानी की लहरों से नौ लाख गोपाल मृत्यु को प्राप्त हुए, (परन्तु) श्रीहरि ने उन्हें कृपा-दृष्टि से (पुनर्जीवित करते हुए) उठा लिया और अनन्तर कालिय को (वहाँ से) भगा दिया। १३० (अपनी अवस्था के) सातवें वर्ष में उन्होंने गोवर्धन गिरि को अपनी उँगली पर सात दिन उठाये रखा। उन्हें (अपने) पुत्र (साम्ब) को लाने में क्या देर लगेगी?’ १३१ संकटकाल को देखकर गंगासुत भीष्म उनके चरण लगे और बोले, ‘जो अन्याय हुआ है, उस समस्त को इस समय क्षमा कीजिए’। ३२ तब सन्तुष्ट होकर बलराम ने तत्काल हल (के फाल) को उखाड़ लिया, तो (दुर्योधन ने) बन्दीगृह से कुमार साम्ब को मुक्त करके उसका यथाविधि विवाह सम्पन्न कर दिया। ३३ नव दम्पती को साथ में लेकर बलराम द्वारका आ गये। तब उद्धव और अक्रूर ने

वर्तमान सांगितलें हरीतें। उद्धवअक्रूरें तेधवां। ३४ यावरी धर्मराज इंद्रप्रस्थीं असतां। अपूर्व वर्तली एक कथा। द्रौपदीस पांच पति तत्त्वतां। पूर्वीं निर्मिले श्रीव्यासें। ३५ ते कथा सांगतां समस्त। तरी वर्णावें लागेल भारत। पसरेल असंभाव्य ग्रंथ। यालागीं ध्वनितार्थ बोलिलों। ३६ असो द्रौपदी वरिली पांचां जणीं। नारदें दिवस दिधले वांटूनी। दोन मास बारा दिन सदनीं। एकएकाच्या वर्तत। ३७ एकाचे होतां पूर्ण दिन। मग अग्निमाजी करी स्नान। दिव्य शुचिर्भूत होऊन। मग जाय दुजियाकडे। ३८ जे कां येती धर्माचे दिन। त्यांत चौघां मातेसमान। असो द्विज आला धांवोन। अर्जुनाजवळी सांगावया ३९ म्हणे माझ्या गाई वळूनी। आतां नेल्या दैत्यांनीं। कोण सोडवील तुजवांचूनी। पंडुनंदना सांग पां। १४० गोब्राह्मण प्रतिपाळका। धांव धांवें रणपंडिता। तों आवेश न धरवे कुंतीसुता। सेवकां शस्त्रें मागतसे। १४१ सेवक म्हणती पार्थाप्रती। धर्मद्रौपदी आहेत एकांतीं। संकट पडलें निश्चितीं। पार्थवीरास तेधवां। ४२ मनामाजी विचारीत अर्जुन। दैत्य करितील गोहनन। आपण जाऊनि

समस्त समाचार श्रीहरि से कह दिया। ३४ इसके पश्चात इन्द्रप्रस्थ नगरी में धर्मराज के रहते हुए एक अद्भुत घटना घटी थी। श्रीव्यास ने द्रौपदी के लिए पूर्वकाल में ही पाँच पतियों को सचमुच उत्पन्न किया था। ३५ उस समस्त कथा को कहने लगें, तो समस्त भारत का वर्णन करना पड़ेगा। ग्रन्थ असीम बढ़ जाएगा, इसलिए सूचित रूप में बात कही है। ३६ अस्तु। द्रौपदी का वरण उन पाँच जनों ने किया था। नारद ने (उनमें से प्रत्येक के लिए) दिन विभाजित करके (निर्धारित कर) दिये थे। वह (द्रौपदी) दो मास बारह दिन एक-एक पति के घर में रहती थी। ३७ एक के (यहाँ निर्धारित) दिनों के पूर्ण हो जाने पर वह अनन्तर अग्नि में स्नान करती और दिव्य रूप से शुचिर्भूत (पवित्र) होकर फिर वह दूसरे के यहाँ जाती थी। ३८ जो (निर्धारित) धर्मानुसार (नियमानुसार) जिसके दिन होंगे, उसके अतिरिक्त अन्य चारों के लिए वह माता के समान थी। अस्तु। (एक दिन) एक ब्राह्मण दौड़ते हुए अर्जुन के पास कुछ कहने के लिए आ गया। ३९ वह बोला, 'दैत्य मेरी गायों को हाँककर अब ले गये हैं। हे पाण्डुनन्दन, बताइए, आपके अतिरिक्त उन्हें और कौन छुड़ा पाएगा। १४० हे गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक, हे रण-पण्डित, दौड़िए, दौड़िए'। तो कुन्ती-सुत अर्जुन द्वारा आवेग को रोका नहीं जा पाया। उन्होंने सेवकों से शस्त्र माँग लिये। १४१ तो सेवक पार्थ (अर्जुन) से बोले, 'धर्म और द्रौपदी एकान्त में हैं'। तब वीर अर्जुन के सामने निश्चय ही संकट आ पड़ा। ४२ अर्जुन ने मन में यह विचार किया— दैत्य गायों का वध करेंगे; अतः घर

धनुष्यबाण। सदनांतून आणावे। ४३ पार्थ प्रवेशला सदनीं। तों गुंतलीं संभोगव्यसनीं। तों दचकली याज्ञसेनी। लज्जित मनीं जाहली। ४४ शस्त्र घेऊनि गेला पार्थवीर। रथारूढ धांवे प्रतापशूर। दैत्य संहारूनि समग्र। गाई सोडविल्या द्विजाच्या। ४५ परतोनि आला कुंतीसुत। पंडितांसी सांगे वृत्तांत। स्त्रीपुरुषांचा एकांत। देखतां दोष काय असे। ४६ तंव ते विचारूनि सांगती। बाळहत्या घडली त्याप्रती। त्यासी प्रायश्चित्त निश्चिती। तीर्थक्षिती हिंडावी। ४७ घेऊनि धर्माची आज्ञा। पार्थ चालिला तीर्थाटणा। तापसी होऊनियां जाणा। पार्थवीर हिंडतसे। ४८ वनें तपोवनें शैल सरिता। महानद्या जान्हवी आदि समस्ता। शिवविष्णु-क्षेत्रें पाहतां। तन्मय होय अर्जुन। ४९ केदार हरिद्वार बदरी। द्वादश ज्योतिर्लिंगें पृथ्वीवरी। तितुकीं पार्थ अनुक्रमें करी। स्नानें दानें विधि-युक्त। १५० काम्यकवनीं प्रवेशला पार्थ। तों शिवाचें अनुष्ठानस्थळ तेथ।

के अन्दर स्वयं जाकर धनुष-बाण ले आएँ। ४३ तो जब पार्थ घर के अन्दर प्रविष्ट हुए, तो वे (धर्म और द्रौपदी) सम्भोग-क्रिया में मग्न थे। तब याज्ञसेनी (द्रौपदी) चौंक उठी, वह मन में लज्जित हो गयी। ४४ (इधर) प्रतापशूर वीर पार्थ शस्त्र ले गये और रथ पर आरूढ़ होकर दौड़े। उन्होंने समस्त दैत्यों का संहार करके उस ब्राह्मण की गायों को मुक्त किया। ४५ (तदनन्तर) कुन्ती-कुमार अर्जुन लौट आये; और उन्होंने पण्डितों से समाचार कहा (और पूछा—) 'स्त्री-पुरुष के एकान्त (सम्भोग) को देखने पर क्या दोष (पाप) लग जाता है'। ४६ तब उन्होंने विचार करके कहा— '(समझिए कि) उसके लिए बाल-हत्या घटित हुई। उसके लिए निश्चय ही यह प्रायश्चित्त है कि वह महातीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करें'। ४७ तो धर्म से आज्ञा लेकर पार्थ तीर्थाटन के लिए चले गये। समझ लीजिए कि वीर पार्थ तापस बनकर भ्रमण करने लगे। ४८ वनों, तपोवनों, पर्वतों, नदियों, जाह्नवी (गंगा) आदि समस्त महानदियों तथा शिवजी और भगवान विष्णु के क्षेत्रों को देखते हुए अर्जुन तन्मय हो गये। ४९ अर्जुन ने केदार, हरिद्वार, बदरी (नारायण), पृथ्वी पर के बारह ज्योतिर्लिंग[1] —सबकी यात्रा अनुक्रमपूर्वक की। उन्होंने (स्थान-स्थान पर) विधियुक्त (यथाविधि) स्नान किया, दान दिये। १५० (घूमते-घूमते) वे काम्यक वन में प्रविष्ट हुए।

---

१ द्वादश ज्योतिर्लिंग— सोमनाथ (सौराष्ट्र–गुजरात), मल्लिकार्जुन (आन्ध्र), महाकालेश्वर (उज्जयिनी, मध्यप्रदेश), अमलेश्वर (ओंकारमान्धाता–मध्य०), वैद्यनाथ (बिहार) अथवा परली वैजनाथ (महाराष्ट्र), भीमाशंकर (महाराष्ट्र), रामेश्वर (तमिलनाडु), नागेश्वर (महाराष्ट्र), काशी विश्वेश्वर (वाराणसी, उत्तर प्रदेश), त्र्यम्बकेश्वर (महाराष्ट्र), केदारेश्वर (उत्तर प्रदेश), घृष्णेश्वर (महाराष्ट्र)।

शिव नसतां कुंतीसुत। जावोनि बैसे ते ठायीं। १५१ अर्जुन बैसला ध्यानस्थ। तों उमाधव पातला तेथ। तापसिया देखोनि म्हणत। तूं कोण येथें बैसलासी। ५२ मग बोले अर्जुन। तुज बोलावया काय कारण। शिव म्हणे माझें हें स्थान। तूं कोण येथें बैसावया। ५३ अर्जुन म्हणे ते वेळां। काय ठाव तुझा आंखिला। ऐकतां विषकंठ क्षोभला। म्हणे तुजलागीं मारीन। ५४ अर्जुनें गांडीव चढविलें। निर्वाण बाण वरी योजिले। शिवें पिनाक सांभाळिलें। युद्ध मांडिलें निर्वाण ५५ शिवें अग्निअस्त्र टाकिलें। पार्थें पर्जन्यास्त्र सोडिलें। शिवें शक्तिअस्त्र प्रेरिलें। पार्थ कार्तवीर्यास्त्र सोडी। ५६ असो अस्त्रें होतीं बहुतें। तितुकीं घातलीं हिमनगजामातें। अवघीं निवारिलीं पार्थें। निजसामर्थ्येंकरूनियां। ५७ मग संतोषला अपर्णावर। म्हणे धन्य धन्य तूं महावीर। प्रसन्न जाहलों मागें वर। नाम खूण सांग तुझें। ५८ येरू म्हणे मी पंडुनंदन। श्रीकृष्णदास नाम अर्जुन। मग शिवें कवच किरीट कुंडलें जाण। प्रसाद दीधला अर्जुना। ५९ मग शिवासी करूनि नमस्कार। पुढें तीर्थें पाहे पंडुकुमर।

वहाँ तो शिवजी का अनुष्ठान-स्थान है। शिवजी के न होने पर कुन्ती-पुत्र अर्जुन उस स्थान पर जाकर बैठे। १५१ जब अर्जुन ध्यानस्थ बैठे हुए थे, तब उमापति शिवजी वहाँ आ पहुँचे। उस तापसी को देखते ही वे बोले, 'तू कौन यहाँ बैठा है?' ५२ तब अर्जुन बोले, 'तुम्हें ऐसा बोलने के लिए (पूछने के लिए) क्या कारण है?' तो शिवजी बोले, 'यह मेरा स्थान है। तू यहाँ बैठने के लिए आया हुआ (बैठनेवाला) कौन है?'। ५३ उस समय अर्जुन ने कहा, 'क्या तुम्हारा स्थान रेखांकित (निर्धारित) है?' ऐसा सुनते ही विषकण्ठ शिवजी क्षुब्ध हुए और बोले, 'मैं तुझे मार डालूँगा'। ५४ तो अर्जुन ने गाण्डीव धनुष को चढ़ा लिया। उसपर अति प्रखर बाण आयोजित किये, तो शिवजी ने पिनाक धनुष सम्हाल लिया और घमासान युद्ध छेड़ा। ५५ शिवजी ने अग्नि-अस्त्र चलाया, तो पार्थ ने पर्जन्यास्त्र छोड़ दिया। शिवजी ने शक्ति-अस्त्र प्रेरित किया, तो पार्थ ने कार्तवीर्य-अस्त्र चलाया। ५६ अस्तु। अस्त्र बहुत थे। उतने सबको शिवजी ने प्रयुक्त किया और (उधर) पार्थ ने उन सबका निवारण अपनी सामर्थ्य से कर लिया। ५७ तब अपर्णावर शिवजी सन्तुष्ट हुए और बोले, 'तुम महावीर धन्य हो, धन्य हो। मैं प्रसन्न हुआ हूँ; वर माँग लो। अपना नाम, (गोत्र-वंशादि का) चिह्न बता दो'। ५८ तो वे बोले, 'मैं पाण्डु का पुत्र हूँ, श्रीकृष्ण का दास (भक्त) हूँ, नाम है अर्जुन'। तो समझिए कि शिवजी ने अर्जुन को कवच, किरीट, कुण्डलों के रूप में प्रसाद दिया। ५९ अनन्तर शिवजी को नमस्कार करके पाण्डुकुमार अर्जुन आगे (अन्य) तीर्थक्षेत्रों को

तंव आला जेथें रामेश्वर। दक्षिणसमुद्रतीराकडे। १६० करूनियां स्नानदान। घेतलें रामेश्वराचें दर्शन। तों तेथें अंजनीनंदन। महावीर देखिला। १६१ पुढें सेतु पाहिला अद्भुत। शत योजनें लंकेपर्यंत। हनुमंतासी पुसे पार्थ। कोणीं सेतु बांधिला। ६२ मारुति सांगे पूर्ववर्तमान। या मार्गें गेला रघुनंदन। तो प्रतापी रविकुळभूषण। तेणें सेतु बांधिला। ६३ हांसोनि बोले वीर पार्थ। अहो जी रामाचें एवढें सामर्थ्य। निजबाणें कां न बांधिला सेत। शिळा किंनिमित्त घातल्या। ६४ हनुमंत म्हणे बाणांचा सेत। भंगेल हें जाणोनि रघुनाथ। एकएक वानर जैसा पर्वत। कैसा सेतु तगेल पें। ६५ पार्थ म्हणे मजऐसा असता। तरी शरांचा सेतु बांधिता। तों क्रोध आला हनुमंता। बांधीं तत्त्वतां सेतु आतां। ६६ मी जरी एकला चढेन। तरी तुझ्या शरांचा सेतु मोडीन। पार्थ थोडासा सेतुबंधन। करिता जाहला तेधवां। ६७ प्रचीत पाहावया पूर्ण। सेतु बांधिला एक योजन। म्हणे उडी घालीं बळेंकरून। कैसा मोडोनि पडे पाहूं। ६८ अर्जुन म्हणे हेचि शपथ। जरी मोडोनि पडेल सेत। तरी मी

देखने गये। तो वे (वहाँ) गये, जहाँ दक्षिण समुद्र तट पर रामेश्वर (स्थित) है। १६० उन्होंने (समुद्र-) स्नान करके और दान देकर रामेश्वर के दर्शन किये; तब उन्होंने महावीर अजनी-नन्दन हनुमान को वहाँ देखा। १६१ आगे (चलकर) उन्होंने वह अद्भुत सेतु देखा; वह लंका तक शत योजन (लम्बा) था। तो पार्थ ने हनुमान से पूछा, 'यह सेतु किसने बना लिया?' ६२ हनुमान ने पूर्वकाल में घटित यह घटना कही, 'इस मार्ग से रघुनन्दन राम (लंका) गये। वे प्रतापवान रविकुलभूषण थे। उन्होंने वह सेतु बना लिया'। ६३ (यह सुनते ही) वीर पार्थ हँसकर बोले, 'अहो, राम की इतनी सामर्थ्य थी, तो उन्होंने अपने बाण से सेतु का निर्माण क्यों नहीं किया? किस निमित्त शिलाओं को डाल दिया?' ६४ तो हनुमान बोला, बाणों का सेतु भग्न हो जाएगा, यह जानकर रघुनाथ ने पाषाणों का सेतु निर्मित किया। एक-एक वानर पर्वत-जैसा था, तो सेतु कैसे बच सकता था'। ६५ तब पार्थ बोले, 'मुझ जैसा कोई होता, तो बाणों का सेतु बना देता'। तो (यह सुनकर) हनुमान को क्रोध आ गया और बोला, 'सचमुच अब सेतु बना दीजिए। ६६ मैं यद्यपि अकेला चढ़ जाऊँ, तो भी आपके बाणों का सेतु भग्न कर दूँगा'। तब पार्थ ने सेतु को थोड़ा-सा (सेतु का छोटा-सा भाग) निर्मित किया। ६७ उन्होंने प्रमाण देखने के लिए एक योजन सेतु बना लिया और, 'बलपूर्वक छलाँग लगा दो; मैं (भी) देख लूँगा कि (यह सेतु) कैसे टूटकर गिर जाएगा'। ६८ फिर अर्जुन बोले, 'यही शपथ है, यदि सेतु टूटकर गिर जाएगा, तो सत्य ही

अग्निकाष्ठें भक्षीन सत्य। तूंही निश्चित बोल पां। ६९ हनुमंत म्हणे मज तों नाहीं मरण। जरी सेतु न मोडे माझेन। तरी मी तुझे ध्वजीं बैसेन। तुजआधीन होऊनियां। १७० मग पार्थें धनुष्य चढवूनी। बाण सोडिला अभिमंत्रूनि। अभंग सेतु केला ते क्षणीं। म्हणे मोडूनि टाकीं आतां। १७१ हनुमंत उडोनि गगना गेला। सेतुवरी येऊनि पडियेला। सेतु मोडूनि चूर्ण केला। मारुति गर्जला भुभुःकारें। ७२ मोडिला सेतु देखोनी। पार्थें धनुष्य ठेविलें धरणीं। बहुत काष्ठें मेळवूनी। ढीग केला असंभाव्य। ७३ जातवेद चेतविला तत्काळ। आकाशपंथें जाती ज्वाळ। पार्थें स्नान करूनि सकळ। नेम आपुला सारिला। ७४ करूनि अग्नीसी प्रदक्षिणा। हृदयीं आठविलें कृष्णध्याना। किरीटकुंडलमंडितवदना। पीतवसना चतुर्भुजा। ७५ म्हणे श्रीकृष्णा द्वारकाधीशा। हे मधुकैटभारे जगन्निवासा। हे माधवा क्षीराब्धिवासा। शेषशायी मुरहरा। ७६ हे रुक्मिणीवल्लभा जनार्दना। हे कंसारे नरकमर्दना। हे मधुसूदना सुखवर्धना। मन्मथजनका श्रीरंगा। ७७ हे भक्तवत्सला यादवेंद्रा। हे केशवा दुरितकाननवैश्वानरा। हे दानवारे समर-

---

मैं अग्निकाष्ठ भक्षण करूँगा। तुम भी निश्चित रूप से (शपथ-पूर्वक) बोलो'। ६९ हनुमान बोला, 'मुझे मृत्यु नहीं (आनेवाली) है। यदि मुझसे सेतु न टूट जाएगा, तो मैं आपके अधीन होकर आपके ध्वज पर बैठ जाऊँगा'। १७० अनन्तर पार्थ ने धनुष चढ़ाकर एक बाण को अभिमंत्रित करके चला दिया। उस क्षण उन्होंने अभंग सेतु का निर्माण किया और कहा, 'अब इसे तोड़ डालो'। १७१ तो हनुमान उड़कर गगन में गया और (वहाँ से) आकर सेतु पर (कूदकर) गिर पड़ा। उसने सेतु को तोड़कर चूरचूर कर डाला। फिर हनुमान भुभुकार करते हुए गरज उठा। ७२ सेतु को तोड़े हुए देखकर पार्थ ने धनुष धरती पर रख दिया और बहुत-सी लकड़ियाँ इकट्ठा करके असम्भाव्य रूप से उनका ढेर बना लिया। ७३ उन्होंने तत्काल अग्नि को प्रज्वलित किया; उसकी ज्वालाएँ आकाश मार्ग पर जा रही थीं। (अनन्तर) पार्थ ने स्नान करके अपने समस्त नेम (व्रत आदि) को सम्पन्न किया। ७४ अग्नि की परिक्रमा करके उन्होंने हृदय में किरीट-कुण्डलों से मण्डित मुख वाले, पीताम्बर-धारी चतुर्भुज श्रीकृष्ण के रूप का स्मरण किया। ७५ वे बोले, 'हे श्रीकृष्ण, हे द्वारकाधीश, हे मधुकैटभारि, हे जगन्निवास, हे माधव, हे क्षीराब्धि में निवास करनेवाले, हे शेषशायी, हे मुरहर, हे रुक्मिणी-वल्लभ, हे जनार्दन, हे कंसारि, हे नरकासुर-मर्दन, हे मधुसूदन, हे सुखवर्धन, हे मन्मथस्वरूप प्रद्युम्न के जनक, हे श्रीरंग, हे भक्त-वत्सल, हे यादवेन्द्र, हे केशव, हे दुरितों अर्थात पापों के वन को जला डालनेवाले वैश्वानर (अग्नि), हे दानवारि, हे समर-धीर, हे इन्दिरावर, हे श्रीहरि,

धीरा। इंदिरावरा श्रीहरि। ७८ हे माधवा नवपंकजपत्राक्षा। अनंगदहन-हृदयसाक्षा। वेदवंद्या कर्माध्यक्षा। कोणा परीक्षा नव्हे तुझी। ७९ तों द्वारकेसी जगन्नाथ। कळलें संकटीं पडिला पार्थ। भक्तकैवारी रमाकांत। आला धांवत सेतुबंधीं। १८० द्विजवेष धरिला सर्वेशें। हनुमंतालागीं साक्षेपें पुसे। हा कोण अग्निप्रवेश करीतसे। वर्तमान कैसें सांगा हें। १८१ हनुमंतें सांगितलें वर्तमान। याउपरी बोले ब्राह्मण। या गोष्टीसी साक्ष कोण मजलागून सांगा तें। ८२ मारुति म्हणे साक्ष नाहीं। द्विज म्हणे असत्य सर्वही। साक्ष नसतां व्यर्थ पाहीं। वेदवचन ऐसें बोले। ८३ तरी मजदेखतां रचा सेतु। वरी उडी घालीं अकस्मातु। मग पार्थाहातीं त्वरितु। मागुता सेतु रचविला। ८४ गुप्तरूपें जगज्जीवन। खालीं घाली सुदर्शन। मग ऊर्ध्व उडे अंजनीनंदन। निराळपंथें तेधवां। ८५ उडी घातली अकस्मात। परी तैसाचि अभंग असे सेत। वरी आदळोन हनुमत। एकीकडे पडियेला। ८६ जैसा शिळेवरी गोटा पडे। तो उसळोनि जाय एकीकडे। पार्थ निरखूनि पाहे ब्राह्मणाकडे। तों द्वारकाधीश ओळखिला। ८७ ब्राह्मण म्हणे वायुसुता।

हे माधव, हे नवकमलपत्राक्ष, हे अनंग-दहन (शिवजी) के हृदयसाक्षी, हे वेद-वंद्य, हे कर्माध्यक्ष, तुम्हारी परख किसी के द्वारा भी नहीं हो सकती'। १७६-१७९ तब जगन्नाथ श्रीकृष्ण द्वारका में थे। उनको विदित हुआ कि पार्थ संकट में पड़े (फँसे) हुए हैं। तो वे भक्तों के सहायक रमाकान्तस्वरूप श्रीकृष्ण दौड़ते हुए सेतुबन्ध वाले स्थान आ गये। १८० सर्वेश श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण-वेश धारण किया और जान-बूझकर हनुमान से पूछा, 'यह कौन अग्नि में प्रवेश कर रहा है? यह बता दो कि क्या बात है'। १८१ तो हनुमान ने समस्त समाचार कहा। इसपर वह ब्राह्मण बोला, 'मुझे यह बता दो कि इस बात के लिए कौन साक्षी है'। ८२ हनुमान बोला, 'कोई साक्षी नहीं है'। तो ब्राह्मण बोला, 'तो यह सभी असत्य है। देखो, साक्षी के नहीं होने पर (सब) व्यर्थ होता है। वेद-वचन ऐसा कहता है। ८३ अतः मेरे देखते (मेरे सामने) सेतु का निर्माण करो; ऊपर से सहसा कूद जाओ'। तब (उसने) पार्थ के हाथों झट से फिर से सेतु का निर्माण करवाया। ८४ जगज्जीवन कृष्ण ने गुप्त रूप से उसके नीचे सुदर्शन चक्र रखा। तब हनुमान ऊपर की ओर आकाश मार्ग से उड़ गया। ८५ (वहाँ से), अकस्मात वह कूद पड़ा; फिर भी सेतु वैसे ही अभंग (बना) रहा। (इधर) ऊपर टकराकर हनुमान एक ओर (उसी प्रकार उछल कर) गिर पड़ा, जिस प्रकार शिला पर कंकड़ गिर पड़े, तो वह उछलकर एक ओर चला जाता है। पार्थ ने ब्राह्मण की ओर निरखकर देखा, तो उन्होंने द्वारकाधीश कृष्ण को पहचान लिया। १८६-१८७ तो

याचे ध्वजस्तंभीं बैसें आतां। तेव्हां आपुलें स्वरूप तत्त्वतां। प्रकट केलें गोविंदें। ८८ अर्जुनासी धरूनि वनमाळी। मारुतीचे हातीं देत ते वेळीं। म्हणे यासी तूं सांभाळीं। कृपा करूनि सर्वदा। ८९ जाहला पृथ्वीसी दैत्यभार। तुम्ही आम्ही पार्थवीर। करूं दुष्टांचा संहार। अकर्मकार सर्वही। १९० रामावतारीं तुवां सेवा करून। मजवरी केला उपकार पूर्ण। आतां सांभाळीं अर्जुन। ध्वजीं बैसोनि पाठी राखीं। १९१ तुज जिंकी ऐसा कोणी। वीर नसे या त्रिभुवनीं। हनुमंत लागला हरिचरणीं। म्हणे आज्ञा प्रमाण तुझी हे। ९२ गुप्त जाहला भगवान। आला द्वारकावती लागून। हनुमंताची आज्ञा घेऊन। चालिला अर्जुन तेथोनियां। ९३ तों सुभद्रा श्रीकृष्णाची भगिनी। देऊं केली होती अर्जुनालागुनी। पार्थ तीर्थें करावया मेदिनीं। बहुत दिवस गेला असे। ९४ त्यावरी बळिभद्रें केली विचारणा। कीं सुभद्रा द्यावी दुर्योधना। परी तें न ये श्रीरंगाच्या मना। अंतरीं वासना पार्थाकडे। ९५ बळिभद्रें निश्चय केला सत्य। जों आला नाहीं वीर पार्थ। तों दुर्योधनासी द्यावी त्वरित। निश्चयार्थ पूर्ण केला। ९६ इच्छित श्रीकृष्णाचें मन। ऐशा समयीं यावा अर्जुन। तो

ब्राह्मण बोला, 'हे वायु-कुमार, इसके ध्वज-स्तम्भ पर अब बैठो'। तब श्रीकृष्ण ने सचमुच अपना रूप प्रकट किया। ८८ उस समय अर्जुन (के हाथ) को हाथ में थामते हुए वनमाली ने उसे हनुमान के हाथों (थमा) दिया और कहा, 'तुम कृपा करके इसे नित्य सम्हाल लेना (इसकी) रखवाली करना। ८९ पृथ्वी पर दैत्यों का भार हो गया है; तुम, हम और वीर पार्थ उन दुष्टों का संहार कर लें —वैसे तो वे सभी कुकर्म, पाप करनेवाले हैं। १९० रामावतार (काल) में तुमने मेरी सेवा करके मेरा परिपूर्ण उपकार किया था; अब अर्जुन की रखवाली करो; उसके ध्वज पर बैठकर उसकी रक्षा करो। १९१ इस त्रिभुवन में ऐसा कोई वीर नहीं है, जो तुम्हें जीत सके'। (यह सुनकर) हनुमान श्रीहरि के पाँव लगा और बोला, 'आपकी यह आज्ञा मेरे लिए प्रमाण है'। ९२ तो भगवान गुप्त हो गये और वे द्वारका (लौट) आये। हनुमान की आज्ञा लेकर (विदा होकर) अर्जुन वहाँ से चल पड़े। ९३ तब श्रीकृष्ण की भगिनी सुभद्रा अर्जुन को (विवाह में) देने की बात तय हुई थी। (इधर) पार्थ पृथ्वी पर तीर्थ-यात्रा करने के लिए बहुत दिन तक गये हुए थे। ९४ तत्पश्चात बलराम ने यह विचार किया कि सुभद्रा दुर्योधन को दें। परन्तु वह भगवान कृष्ण के मन को नहीं जँचा; क्योंकि उसके मन में उसे पार्थ को देने की इच्छा थी। ९५ बलराम ने (अब) सचमुच निश्चय किया कि जब तक वीर पार्थ आते नहीं हैं, तब तक (उसके पहले ही) वह झट से दुर्योधन को दें। उन्होंने

वैकुंठनाथ ब्रह्मसनातन। इच्छामात्रें सर्व करी। ९७ तों तीर्थें करीत पार्थ। द्वारावतीसी आला अकस्मात। महातापसी वल्कलें वेष्टित। नोळखे निश्चित कोणीही। ९८ श्रीकृष्णासी हेर सांगत। नगराबाहेरी एक महंत। महातपोधन प्रतापवंत। तीर्थें करीत पातला। ९९ ऐसें ऐकतां जगज्जीवन। घेऊं महंताचें दर्शन। द्वारकेबाहेर येऊन। भेटता जाहला तापसियासी। २०० अंतरीं कळली खूण। आला प्राणसखा अर्जुन। बाहेर पुसे तुम्ही कोण। कोणे आश्रमीं राहतां। २०१ पार्थ म्हणे आम्ही ब्रह्मचारी। स्वइच्छें क्रीडतों धरणीवरी। हरी म्हणे आमुचे नगरीं। चार मास क्रमिजे पैं। २ तापसी राहिला चारी मास। श्रीकृष्ण आले मंदिरास। सांगे वसुदेवदेवकीबळिरामास। महातापसी आला असे। ३ बळिराम आणि यादववीर। तापसिया भेटले समग्र। परी हा भगिनीचा पुत्र। न जाणे कोणीही। ४ प्रार्थूनियां देवकीनाथें। गृहासी आणिलें महंतातें। सर्वही भजती भावार्थें। नवल तेथें वर्तलें। ५ रैवतकपर्वतीं महाशक्ती।

इसका पूर्ण निश्चय किया। ९६ श्रीकृष्ण का मन तो चाहता था कि ऐसे समय अर्जुन आ जाएँ। वे वैकुण्ठनाथ, सनातन ब्रह्म इच्छा मात्र से ही सब कुछ कर लेते हैं। ९७ तब तीर्थ-स्थलों की यात्रा करते-करते पार्थ सहसा द्वारावती आ गये; वे वल्कलों से आवृत महातापसी (बने हुए) थे। उन्हें कोई भी निश्चय ही नहीं पहचान पाता था। ९८ (इधर) श्रीकृष्ण से गुप्तचरों ने कहा, 'नगर के बाहर, कोई एक महान तपोधन, प्रतापवान महन्त तीर्थस्थलों की यात्रा करते हुए आ पहुँचे हैं'। ९९ ऐसा सुनते ही जगज्जीवन कृष्ण बोले, 'उस महन्त के दर्शन करें'। तो द्वारका के बाहर आकर वे उस तापस से मिल गये। २०० उनके अन्तःकरण में संकेत (चिह्न) ज्ञात हुआ कि ये प्राणसखा अर्जुन ही आये हैं। (फिर भी) बाहर (ऊपर से) उन्होंने पूछा, 'आप कौन हैं? किस आश्रम में रहते हैं?' २०१ पार्थ बोले, 'हम ब्रह्मचारी हैं। अपनी इच्छा के अनुसार धरती पर क्रीड़ा करते हैं'। तो श्रीहरि बोले, 'हमारे नगर में चार मास व्यतीत कीजिए'। २ वे तापस (वहाँ) चार मास (पर्यन्त) ठहर गये। (इधर) श्रीकृष्ण अपने प्रासाद आये और वसुदेव-देवकी और बलराम से बोले, 'कोई महान तापसी आये हैं'। ३ तो बलराम और समस्त यादव वीर उन तापस से मिले; फिर भी यह कोई भी जान नहीं सका कि वे भगिनी (कुन्ती) के पुत्र हैं। ४ देवकी के पति वसुदेव प्रार्थना करके उन महन्त को अपने घर ले आये। सभी श्रद्धा भाव से उनकी भक्ति (सेवा) करने लगे। वहाँ एक चमत्कार हुआ। ५ रैवतक पर्वत पर महाशक्ति थी (महाशक्ति का मन्दिर था)। उसके मेले में यादव जा रहे थे। बलराम, रमापति

तिचे यात्रे यादव जाती। संकर्षण आणि रमापती। निघती उग्रसेन वसुदेव। ६ शृंगारिला चतुरंग दळभार। बळिये यादव संपत्तिसागर। वाद्यें वाजती अपार। सनया सुस्वर वाजती। ७ देवकी मुख्य यादववनिता। चातुर्यराशी सौभाग्यसरिता। शृंगारनभींच्या विद्युल्लता। दिव्ययानारूढ जाती। ८ त्यांमाजी श्रीरंगभगिनी। सुभद्रा देखिली लावण्यखाणी। देवांगना पद्मिनी नागिणी। स्वरूपावरूनि ओंवाळिजे। ६ दमयंती सुलोचना पंचशरदारा। मयकन्या रूपवती तारा। जिच्या विलोकितां मुखचंद्रा। लाजोनि जाती तत्काळ। २१० ब्रह्मांडमंडप शोधितां। सुंदर नाहीं कृष्णापरता। त्याची भगिनी वसुदेवदुहिता। तिचें स्वरूप अद्‌भुत। २११ सघन नक्षत्रें नभमंडळीं। तैसी मस्तकीं मुक्ताजाळी। बिजवरा मिरवे भाळीं। आकर्णनेत्री सुभद्रा। १२ कविगुरुतेजासी उणें आणी। तेवीं मुक्तें डोलती कर्णीं। उघडी आदित्यखाणी। तैसी दशनीं प्रभा फांके। १३ नेत्रीं सोगयाचें अंजन। नाचे शफरीध्वज देखोन। चपळेहूनि झळके वदन। पायीं पैंजण नेपुरें। १४ असो ऐसा चालिला दळभार।

स्वरूप श्रीकृष्ण, उग्रसेन, वसुदेव चल पड़े। ६ उन्होंने चतुरंग सेनादल सजा लिया। बलवान यादव (मानो) सम्पत्ति के सागर थे। अनगिनत वाद्य बजने लगे। शहनाइयाँ सुस्वर (मधुर स्वर में) बज रही थीं। ७ देवकी तथा मुख्य-मुख्य यादव-स्त्रियाँ (मानो) चातुर्य की राशियाँ थीं; सौभाग्य की सरिताएँ थीं, शृंगार के आकाश की विद्युल्लताएँ थीं। वे दिव्य यानों में आरूढ़ होकर चली जा रही थीं। ८ उनमें श्रीकृष्ण की भगिनी लावण्य की खान सुभद्रा को (तापस ने) देखा। उसके स्वरूप पर देवांगनाओं, पद्मिनी जाति की और नाग जाति की स्त्रियों को निछावर कर दें। ९ उसके मुखचन्द्र को देखते ही दमयन्ती, (इन्द्रजित की स्त्री सती) सुलोचना, कामदेव की स्त्री रति, मयकन्या मन्दोदरी, रूपवती तारा तत्काल लज्जित हो जातीं। २१० ब्रह्माण्ड-मण्डप में ढूँढ़ने पर भी श्रीकृष्ण जैसा कोई सुन्दर (पुरुष) नहीं था। उन्हीं की भगिनी, वसुदेव की कन्या सुभद्रा थी। उसका रूप (-सौन्दर्य) अद्‌भुत था। २११ आकाश-मण्डल में सघन नक्षत्र होते हैं; उसी प्रकार उसके मस्तक पर (तारों-से चमकनेवाले) मोतियों की जाली थी। उसके भाल पर चन्द्र (नामक गहना) शोभायमान था। सुभद्रा आकर्ण-नेत्रा थी। १२ जो (कवि) शुक्र और (गुरु) बृहस्पति के तेज में न्यूनता ला दें, ऐसे मोती कानों में झूमते थे। दाँतों की कान्ति वैसे ही फैलती (जान पड़ती) थी, जैसे सूर्य की खान खुल गयी हो। १३ आँखों में सुरमा का अंजन लगा हुआ था, जिसे देखकर (मानो) मकरध्वज कामदेव नाचने लगता था। विद्युत से (भी) अधिक उसका मुख चमकता-दमकता

यादवललना चालिल्या सुंदर। सुवर्णशिबिकेंत सुकुमार। आरूढ होऊनि जातसे। १५ तों उभयतां पार्थ कृष्ण एके रथीं। चमूमाजीं मिरवत जाती। जेवीं पुरंदर आणि वाचस्पती। एकासनीं बैसले। १६ सुवर्णयानीं सुभद्रारत्न। कपिध्वज लक्षीत दुरून। मनसिजेंचि व्यापिलें मन। वेधले नयन तिकडेचि। १७ देखोनियां हास्यवदन। मन्मथजनक बोले वचन। अजा तटस्थ काद्रवेय देखोन। तसें पाहतां कोणीकडे। १८ ब्रह्मचारी तुम्ही महंत। भलतेकडे गुंतलें चित्त। मग म्हणे वीर पार्थ। स्थिर होय ऐसें करीं। १९ राजकोशींचीं रत्नें तत्त्वतां। तीं केवीं येती दुर्बळाच्या हाता। यावरी कमलोद्भवपिता। कर्णीं सांगे पार्थाच्या। २२० यात्रेहूनि परततां जाण। माझिया दिव्य स्यंदनीं बैसोन। हरूनियां सुभद्रारत्न। पवनाहून जाय त्वरें। २२१ किरीटी डोलवी मान। यावरी रैवताचळा जाऊन। शक्ती पूजोनि वनभोजन। लहानथोरीं संपादिलें। २२ समय पाहोनि क्षीराब्धिजानाथ। धनंजयासी दावी भ्रूसंकेत। तों सुभद्रेचेंही चित्त।

था। पाँवों में पायल और नूपुर (पहने हुए) थे। १४ अस्तु। इस प्रकार यादवों का दल चला जा रहा था। यादवों की सुन्दर ललनाएँ जा रही थीं। सुकुमारी (सुभद्रा) सोने की शिबिका में आरूढ़ होकर जा रही थी। १५ तब सेना के बीच में पार्थ और कृष्ण दोनों एक रथ में बैठकर ठाटबाट से जा रहे थे, जैसे इन्द्र और गुरु एक आसन पर बैठे हुए हों (वैसे वे दोनों जान पड़ते थे)। १६ कपिध्वज अर्जुन ने सुभद्रा रूपी रत्न को स्वर्ण-यान में (विराजमान) दूर से देखा, तो उसके मन को कामदेव ने व्याप्त कर दिया। उसके नयन उधर ही आकृष्ट हो गये। १७ उन्हें देखकर प्रद्युम्न के पिता सुहास्य से युक्त वदन से (मुस्कराते हुए) यह बात बोले, 'जिस प्रकार बकरी साँप को देखकर चौंक उठती है, उसी प्रकार (चौंककर) आप कहाँ देख रहे है। १८ आप ब्रह्मचारी महन्त हैं। (फिर भी) आपका चित्त अनुचित (वस्तु) में उलझ गया (जान पड़ता) है'। तो तब वीर पार्थ बोले, 'ऐसा (कुछ) करो, जिससे वह (चित्त) स्थिर हो जाए। १९ राज-भंडार के रत्न सचमुच दुर्बल (-दरिद्र) के हाथ कैसे आएँगे ?' इस पर ब्रह्मा के पिता विष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण ने अर्जुन के कान में कहा। २२० 'समझ लीजिए, मेले से लौटते समय मेरे दिव्य रथ में बैठकर आप सुभद्रा रूपी रत्न का हरण करके पवन से (भी) अधिक शीघ्र (गति) से चले जाइए'। २२१ तो अर्जुन ने सिर हिलाया (और स्वीकृति सूचित की)। इसके पश्चात रैवतक पर्वत पर जाकर शक्ति का पूजन करके छोटे-बड़ों ने वन-भोजन किया। २२ (उचित) अवसर देखकर लक्ष्मीपतिस्वरूप श्रीकृष्ण ने भौंह (आँख) से धनंजय (अर्जुन) को संकेत किया; तब सुभद्रा का चित्त

पार्थस्वरूपीं वेधलें। २३ सुभद्रा भावी मनांत। पार्थऐसा दिसतो महंत। नोवरी नेऊनि अकस्मात। स्यंदनावरी घातली। २४ त्रुटी न वाजतां अर्जुन। जात सुरेशप्रस्थमार्ग लक्षून। अश्व जाती मनोवेगेंकरून। शैब्यसुग्रीवादि चारी। २५ मागें हांक जाहली एकसरसी। सुभद्रा घेऊनि गेला तापसी। पुढें प्रळयजळराशी। तैसे यादव धांवले। २६ प्रद्युम्न-सांबादिक कृष्णकुमर। म्हणती धरा धरा पळतो तस्कर। देखोनि यादवांचा भार। मुरडिला रहंवर अर्जुनें। २७ पार्थें आपुलें स्वरूप प्रकटिलें। जें वस्त्राभरणीं निरवलें। सीतासंतापहरण ते वेळे। ध्वजीं येऊनि बैसला। २८ गांडीवचाप टणत्कारोन। सोडिले बाणापाठीं बाण। जैसा धारा वर्षे घन। गेले भुलोन यादव। २९ दारुण अर्जुनाचा मार। कोणी उभे न राहती समोर। रेवतीवल्लभासी समाचार। श्रुत जाहला सर्वही। २३० तापसी नव्हे श्वेतवाहन। समोर नाटोपे कोणालागून। रणपंडित सुजाण। यादवसैन्य मोडिलें। २३१ परम कोपला बळिभद्र।

पार्थ के स्वरूप की ओर आकृष्ट हुआ था। २३ तो सुभद्रा ने मन में सोचा, 'ये महन्त तो पार्थ जैसे दिखायी दे रहे हैं'। (इतने में) अकस्मात (उन महन्त ने) वधू (सुभद्रा) को ले जाकर रथ पर बैठा दिया। २४ चुटकी तक न बजते (पल से भी बहुत कम समय में) अर्जुन इन्द्रप्रस्थ मार्ग को लक्ष्य करके चले गये। (उनके रथ के) शैब्य, सुग्रीव आदि चारों घोड़े मनोवेग (-से वेग) से जा रहे थे। २५ (इधर) पीछे एकदम शोर मच गया कि तापसी सुभद्रा को ले गया। तो तदनन्तर प्रलय-जल की राशि (प्रलयकालीन समुद्र)-से यादव (उमड़कर) दौड़े। २६ कृष्ण के प्रद्युम्न, साम्ब आदि पुत्र बोले, 'पकड़ो, पकड़ो। चोर भाग रहा है'। तो यादवों के दल को देखते ही अर्जुन ने रथ को घुमा लिया। २७ (तापसरूपधारी) पार्थ ने अपना रूप प्रकट किया, जो वस्त्रों और आभूषणों से शोभायमान था। उस समय सीता-सन्ताप हरण हनुमान आकर उनके ध्वज पर बैठ गया। २८ अर्जुन ने गाण्डीव धनुष की टनत्कार करते हुए बाण पर बाण चला दिये, जैसे मेघ जलधाराएँ बरसा रहा हो। तो यादव (अपनी वीरता) भूल गये। २९ अर्जुन की मार भयावह थी; कोई भी यादव उसके सामने खड़े नहीं रह पाये। (इतने में) यह सभी समाचार रेवती-वल्लभ बलराम के सुनने में आया (विदित हुआ)। २३० वह तापस नहीं है, श्वेत-वाहन अर्थात अर्जुन हैं। वे रण-पण्डित, (युद्ध-कला के) ज्ञाता थे, अतः वे सामने से किसी के द्वारा रोके नहीं जा रहे थे। यादव-सेना भग्न हो गयी (तितर-बितर हो गयी)। २३१ (यह जानकर) बलराम परम कुपित हो उठे। उन्होंने मूसल और हल सम्हाल लिये। (यह देखकर) श्रीकृष्ण मन में (यह सोचकर) हँसने लगे— इनके द्वारा

सांवरी मुसळ नांगर।। मनांत हांसे श्रीधर। यासी तो वीर नाटोपे। ३२ परम कोपला रेवतीरमण। म्हणे निष्पांडवी पृथ्वी करीन। शक्रप्रस्थासी उचलून। पालथें घालीन सागरीं। ३३ वीर क्रोधावले समस्त। परी निवांतरूप पाहे अच्युत। मग हलधर बोलत। काय मनांत योजीतसां। ३४ हरि म्हणे पूर्वींचा संकल्प होतां। कीं सुभद्रा द्यावी वीर पार्था। संकर्षण म्हणे अच्युता। सर्वही करणें तुझेंचि हें। ३५ हांसोनि बोले क्षीराब्धिजा-रमण। किरीटीहूनि वरिष्ठ कोण। सुभद्रेसारिखें रत्न। आणोनि द्यावें कोणासी। ३६ निंदूनियां राजहंसा। मुक्ताफळें काय अर्पावीं वायसा। उपेक्षूनि परीक्षक डोळसा। जन्मांधाहातीं रत्न द्यावें। ३७ पंडित सत्पात्र दवडून। शतमूर्खा द्यावें अर्घ्यदान। कोंदणीं पाच शोभायमान। चिखलीं रोवून व्यर्थचि। ३८ सांडूनि पार्थवीर नरेश। कोणता लक्षणयुक्त आहे पुरुष। शक्राहूनि विशेष। धैर्य वीर्य जयाचें। ३९ भार्गव किंवा उमारमण। तेवीं धनुर्धरपंडित सुजाण। तेजस्वी जैसा चंडकिरण। खळदंडणीं कृतांत। २४० सौंदर्य तारुण्य देखोन। खालीं पाहे मीनकेतन। सर्वविषयीं सुलक्षण। तृतीय तनय पंडूचा। २४१ त्यावरी आनकदुंदुभि-

---

भी वह वीर वश में नहीं किया जा सकता। ३२ रेवतीरमण बलराम परम कुपित हुए। वे बोले, 'मैं पृथ्वी को पाण्डवहीन कर दूंगा और इन्द्रप्रस्थ को उठाकर समुद्र में उलट दूंगा'। ३३ समस्त वीर क्रोध को प्राप्त हुए, फिर भी अच्युत श्रीकृष्ण शान्त रूप से यह देख रहे थे, तो हलधर बलराम बोले, 'मन में क्या आयोजित कर रहे हो ?' ३४ श्रीकृष्ण बोले, 'पहले वाला यह संकल्प था कि सुभद्रा वीर पार्थ को दें'। तो संकर्षण बलराम बोले, 'अरे अच्युत (कृष्ण), यह सभी तुम्हारी करतूत है।' ३५ (इसपर) लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण हँसकर बोले, 'अर्जुन से कौन वरिष्ठ है ? सुभद्रा जैसा रत्न लाकर किसे दें ? ३६ राजहंस की निन्दा करके क्या मोती कौए को समर्पित करें ? (क्या) सुन्दर आँखोंवाले परीक्षक की उपेक्षा करके रत्न जन्मान्ध के हाथ दें ? ३७ सुयोग्य पण्डित को भगाकर (क्या) शतमूर्ख को अर्घ्यदान दें ? पन्ना रत्न सम्पुट में शोभायमान होता है। उसे कीचड़ में गड़ाकर व्यर्थ ही कर डालें। ३८ जिनका धैर्य और वीर्य इन्द्र से भी विशेष (अधिक) है, ऐसे उन पार्थवीर नरेश (नरश्रेष्ठ) को छोड़कर (और) कौन पुरुष (शुभ) लक्षणों से युक्त है ? ३९ भार्गव परशुराम अथवा उमापति शिवजी जैसे वे सुज्ञानी धनुर्धर-पण्डित हैं। वे सूर्य जैसे तेजस्वी हैं। खलों को दण्ड देने में कृतान्त यम (जैसे) हैं। २४० उनके सौंदर्य और यौवन को देखकर कामदेव (तक लज्जित होकर) नीचे देखने लगता है। ये पण्डुराजा के तृतीय पुत्र (अर्जुन) समस्त विषयों में सुलक्षणों से युक्त हैं। २४१ तिसपर वे

भगिनीसुत। धीर उदार प्रतापवंत। ऐसा आप्त टाकूनि पार्थ। कोणासी देतां सुभद्रा। ४२ हांसोनि बोले जनार्दन। जरी यासी भिडावें जाऊन। अनिवार तो पंडुनंदन। मजला कदा नाटोपे। ४३ यादव मोडिले सकळ। मज तत्काळ धरूनि नेईल। मग तुम्हांसी संकट पडेल। सोडवावयाचें पुढती। ४४ ऐसें ऐकतां वचन। उगा राहिला संकर्षण। वीरश्रीअनल गेला विझोन। हरिवचनमेघ वर्षतां। ४५ तों वसुदेव देवकी येऊन। करिती बळिरामाचें समाधान। आम्हीं सुभद्रा दिधली पार्थालागून। यथाविधि लग्न करावें। ४६ ऐसें समाधान केलें। किरीटीसी बोलावूं पाठविलें। राम वसुदेव पुढें गेले। मिरवीत आणिलें पार्थासी। ४७ यथासांग लग्न लाविलें। उग्रसेनें भांडार फोडिलें। चारी दिवस गोड जाहले। आंदण दिधलें अपार। ४८ मग बोळविला श्वेतवाहन। निघे सवें सुभद्रा घेऊन। एक संवत्सर पूर्ण। पुष्करक्षेत्रीं क्रमियेला। ४९ द्वादश वर्षें पूर्ण होतां। शक्रात्मज आला शक्रप्रस्था। धर्मभीममाद्रीसुतां। ब्रह्मानंद उचंबळे। २५० धर्मासी साष्टांग नमून। आदरें दिधलें आलिंगन। जैसे भरत आणि

वसुदेव की भगिनी (कुन्ती) के पुत्र हैं; धीर, उदार, प्रतापवान हैं। ऐसे आप्तजन पार्थ को छोड़कर तुम सुभद्रा किसे देना चाहते हो ? ' ४२ फिर जनार्दन श्रीकृष्ण हँसकर बोले, ' यदि जाकर इनसे भिड़ जाएं, तो ये पण्डु-नन्दन अनिवार्य हैं। मुझसे (भी) ये कदापि वश में नहीं किये जा सकते (रोके नहीं जा सकते)। ४३ यादव तो सब तितर-बितर हो गये हैं। वे मुझे तत्काल पकड़कर ले जाएँगे। तब (मुझे) छुड़ा लेने का संकट तुम पर फिर आ पड़ेगा '। ४४ ऐसी बात सुनकर बलराम चुप रह गये। उनकी वीरश्री रूपी अग्नि श्रीहरि के वचनस्वरूप मेघ के बरसने पर बुझ गयी। ४५ अनन्तर वसुदेव-देवकी ने आकर बलराम (के सन्देह) का समाधान (निराकरण) किया और कहा, ' हमने सुभद्रा पार्थ को प्रदान की है; अतः यथाविधि विवाह सम्पन्न करें '। ४६ इस प्रकार बलराम को सन्तुष्ट किया; अर्जुन को आमंत्रण भेज दिया। बलराम और वसुदेव (अगुवानी के लिए) आगे गये और वे पार्थ को ठाटबाट से ले आये। ४७ उन्होंने समस्त अंगों-सहित विधिपूर्वक विवाह करा दिया। तो उग्रसेन ने भण्डार खोला। चार दिन मधुरता के साथ बीत गये (सुख-सन्तोष-आनन्द में बीत गये)। उन्होंने अपार दायजा दिया। ४८ अनन्तर श्वेतवाहन अर्जुन को बिदा किया। वे साथ में सुभद्रा को लेकर निकले। (मार्ग में) पुष्कर क्षेत्र में उन्होंने एक वर्ष व्यतीत किया। ४९ बारह वर्ष पूर्ण होने पर इन्द्रपुत्र अर्जुन इन्द्रप्रस्थ आ गये, तो धर्म, भीम और माद्री के पुत्रों— नकुल-सहदेव के हृदय में ब्रह्मानन्द उमड़ उठा। २५० धर्म को साष्टांग नमस्कार करके उन्होंने (अर्जुन ने) उनका आलिंगन किया, जैसे

रघुनंदन। चतुर्दश वर्षीं भेटले ।।२५१ ।। मघवा आलिंगी अंगिरासुत। तेवीं भीमें धरिला पार्थ। कंठ जाहला सद्गदित। एकासी एक भेटती। ५२ गजास्य आणि षडास्य। यांसी आलिंगी व्योमकेश। तैसा नकुळसहदेवांस। पार्थ भेटे प्रीतीनें। ५३ कृष्णजनकभगिनी। साष्टांगीं नमी पाकशासनी। सुभद्रा समस्तांचे चरणीं। मस्तक ठेवी आदरें। ५४ वर्तमान सर्व सांगोन। सुभद्रेसी हातीं धरोन। पांचाळीकडे गेला अर्जुन। बोले हांसोनि तेधवां। ५५ अंतरीं संतोष अद्भुत। वरी रुसोनि द्रौपदी बोलत। आतां इकडे यावयाचा कार्यार्थ। कांहींच नाहीं जाणिजे। ५६ सद्यस्तप्त घृत सांडून। जुनयाचें काय कारण। नूतन केलें परिधान। राहिलें जीर्ण सहजचि। ५७ तों कृष्णेचिये चरणीं। सुभद्रा लागे प्रेमेंकरूनी। पांचाळीनें हृदयीं धरूनी। आलिंगिली सप्रेम। ५८ म्हणे माझ्या भाग्यासी नाहीं अंत। आम्ही कृष्णभगिनी दोघी विख्यात। आनंदला वीर पार्थ। हर्ष गगनीं नः समाये। ५९ ब्रह्मानंदमहाराजदिनमणी। उदय पावला हृदयचिद्गगनीं। श्रीधरसूर्यकांतवनीं। तो उन्मेषअग्नि प्रकटला। २६०

पूर्वकाल में भरत और रघुनन्दन राम चौदह वर्षों के पश्चात मिले थे। २५१ जैसे इन्द्र ने अंगिरा-सुत बृहस्पति का आलिंगन किया हो, वैसे भीम ने पार्थ को (हृदय से लगा) रखा। उनका कण्ठ बहुत गद्गद हो उठा। वे एक-दूसरे से (इस प्रकार) मिल गये। ५२ जिस प्रकार व्योमकेशी शिवजी ने गजानन और षडानन का आलिंगन किया हो, उसी प्रकार पार्थ ने नकुल और सहदेव को प्रीतिपूर्वक गले लगाया। ५३ (कृष्ण-जनक वसुदेव की भगिनी) कुन्ती को इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने साष्टांग नमस्कार किया। (फिर) सुभद्रा ने भी सबके चरणों में आदरपूर्वक मस्तक रखा। ५४ (तत्पश्चात) समस्त समाचार कहकर अर्जुन सुभद्रा का हाथ थामे हुए पांचाली द्रौपदी के पास गये। वे हँसते हुए उससे बोले। ५५ (वस्तुतः) अन्तःकरण में अद्भुत सन्तोष ही अनुभव हो रहा था, फिर भी ऊपर से रूठकर द्रौपदी बोली— 'समझिए, अब इधर आने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। ५६ अभी-अभी तप्त घी को छोड़कर पुराने से क्या काम ? नूतन (वस्त्र) को धारण करने पर (पुराना) जीर्ण वस्त्र स्वाभाविक रूप से पड़ा रहता है'। ५७ तब सुभद्रा प्रेमपूर्णक पांचाली कृष्णा अर्थात द्रौपदी के पाँव लगी, तो उसने उसे हृदय से लगाकर प्रेम के साथ उसका आलिंगन किया। ५८ वह बोली, 'मेरे भाग्य का कोई अन्त नहीं है। हम दोनों कृष्ण की विख्यात भगिनियाँ हैं'। (यह सुनते ही) वीर पार्थ आनन्द को प्राप्त हो गये। उनका हर्ष गगन में नहीं समा रहा था। २५९

गुरु ब्रह्मानन्द महाराज रूपी सूर्य (मेरे) हृदय रूपी चिद्गगन में उदित हुए हैं। श्रीधर-सूर्यकान्त वन में वे उन्मेष रूपी अग्नि (जैसे)

तेणें जाळिलें दुरितकानन। तों रुक्मिणीचित्तचालक-घन। वर्षला स्वानंदजीवन। शीतळ केलें सर्वत्र। २६१ पांडवपाळका पांडुरंगा। ब्रह्मानंदा अभंगा। श्रीधरवरदायका निःसंगा। कथा रसिक चालवीं पुढें। ६२ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। चतुर परिसोत प्रेमळ पंडित। द्वात्रिंशत्तमाध्याय गोड हा। २६३

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

प्रकट हुए हैं। २६० उन्होंने पाप रूपी वन को जला डाला, तो रुक्मिणी-चित्त-चालक श्रीकृष्ण रूपी मेघ ने स्वानन्द रूपी जल बरसा दिया और सब ओर (सबको) शीतल कर दिया। २६१

हे पाण्डवों के पालन (रक्षण) कर्ता, हे पाण्डुरंग, हे ब्रह्मानन्द, हे अभंग (अविनाशी), हे श्रीधर-वरद, हे निःसंग, इस रसमय कथा को आगे (मेरे द्वारा) चला दीजिए। २६२

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। चतुर प्रेममय पण्डित जन इसके इस मधुर बत्तीसवें अध्याय का श्रवण करें। २६३

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३३

[भीम द्वारा जरासन्ध का वध करना और धर्मराज द्वारा राजसूय यज्ञ का आरम्भ करना]

श्रीगणेशाय नमः ॥ हृदयडोल्हारा सुंदर। मन बुद्धि चित्त अहंकार। चारी चरण अक्षय परिकर। दृढ जडले सर्वदा। १ धर्मार्थकाममोक्ष गंभीर। हेचि चहूंकडे लाविले दोर। त्यांवरी भाव बेसकार। अतिमवाळ पसरिला। २ त्यावरी प्रेमाची गादी सुघड। पाठीशीं धैर्याचें केलें लोड।

श्रीगणेशाय नमः। हृदय (मानो) सुन्दर झूला है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार उसके सुघड़ अक्षय चार चरण उसमें नित्यप्रति दृढ़तापूर्वक जुड़े हुए हैं। १ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (नामक चार पुरुषार्थ रूपी) गम्भीर अर्थात (दृढ़) डोर ही चारों ओर बाँधे हुए हैं। उसपर श्रद्धाभाव रूपी अति मृदु आसन फैलाते हुए बिछा दिया है। २ उसपर प्रेमस्वरूप सुघड़ गद्दी (बिछायी हुई) है। पीठ के पीछे धैर्यरूप गावतकिया बनाया गया है। ऊपर आनन्दस्वरूप अखण्डित प्रकाशमय चँदोवा

वरी आनंदछांदवा अखंड । प्रकाशमय लाविला । ३ ऐसिया डोल्हारियावरी समर्थ । अखंड बैसवू श्रीगुरुनाथ । जो अवयवरहित अमूर्तमूर्त । श्रीदेव दत्त दयाळू । ४ ब्रह्मानंद मुरोनि समूळ । तें ओतलें गुरुरूप निखळ । जें षड्विकाररहित निर्मळ । अचळ अमळ अढळ जें । ५ ऐसा परात्पर सर्वादि निर्गुण । तो द्वारकेमाजी होऊनि सगुण । पांडवपालक नारायण । भक्त-कैवारी गोविंद । ६ तेणें लीला दाविली बहुत । बत्तिसावे अध्यायीं गतकथार्थ । सुभद्राहरण करूनि पार्थ । इंद्रप्रस्थासी पैं गेला । ७ कृष्ण-कृपेचें बळ अभिनव । शक्रप्रस्थीं सुखी असती पांडव । पुढें वृत्तांत जो जाहला अपूर्व । तो श्रोते सर्व परिसोत । ८ कमलोद्भवनंदन नारदऋषी । एकदां आला यमसभेसी । सूर्यसुतें सन्मानूनि तयासी । पूजा केली आदरें । ९ तों यमसभेसी पंडुराज । नारदें देखिला तेजःपुंज । तो पुण्यदेह पावोनि सहज । सुखरूप बैसला । १० पंडु म्हणे नारदासी । जरी स्वामी मृत्युलोका जासी । तरी शक्रप्रस्थीं मम पुत्रांसी । इतुकीच आज्ञा करावी । ११ जरी कराल राजसूययज्ञ । तरी मी इंद्रसभेसी बैसेन ।

लगाया हुआ है । ३ ऐसे झूले पर उन समर्थ दयालु श्रीगुरुनाथ श्री दत्त देवता को अनवरत रूप से बैठा देंगे, जो (वस्तुतः) अवयव-रहित तथा अमूर्त होने पर भी मूर्त (स्वरूप धारण किये हुए) हैं । ४ जो (वस्तुतः) छहों विकारों[1] से रहित हैं, निर्मल हैं, अचल, अमल तथा अक्षय हैं, उस आनन्द-स्वरूपब्रह्म को (ब्रह्मानन्द को) मूल-सहित, अर्थात पूर्णतः गलाते हुए उसे शुद्ध गुरु (ब्रह्मानन्द) के रूप में ढाला (गया) है । ५ ऐसा परात्पर, सबका आद्य (बीज), निर्गुण (ब्रह्म) द्वारका में सगुण (रूप में अवतरित) होकर पाण्डवों के पालक, भक्तों के सहायक भगवान नारायण, गोविन्द अर्थात श्रीकृष्ण के रूप में स्थित था । ६ उन्होंने (वहाँ) बहुत लीलाएँ प्रदर्शित कीं । बत्तीसवें अध्याय में कथित कथा का यह भावार्थ है कि अर्जुन सुभद्रा का हरण करके इन्द्रप्रस्थ लौट गये । ७ कृष्ण की कृपा का यही अभिनव बल (सिद्ध हुआ) था कि पाण्डव (अनेक संकटों में फँसे हुए रहने पर भी) इन्द्रप्रस्थ में सुखी (सकुशल) थे । आगे चलकर जो अपूर्व घटना घटित हुई, उसे समस्त श्रोता (ध्यान से) सुनें । ८ एक समय कमलोद्भव ब्रह्मा के पुत्र नारद सूर्य-पुत्र यम की सभा में आ गये; तो उसने उनका सम्मान करते हुए आदर-पूर्वक पूजन किया । ९ तब यम की सभा में नारद ने तेजःपुंज पण्डुराज को देखा । वे (मृत्यु के पश्चात) स्वाभाविक रूप से पुण्यदेह को प्राप्त होकर सुख के साथ (वहाँ) बैठे हुए थे । १० पण्डु ने नारद से कहा, " हे स्वामी, यदि आप मृत्युलोक जाएँ, तो इन्द्रप्रस्थ में मेरे पुत्रों को इतनी ही आज्ञा करें । ११ 'यदि तुम राजसूय यज्ञ करोगे, तो मैं इन्द्र

१ षड् विकार— देखिए टिप्पणी १, पृ० ६४, अध्याय २ ।

यम मज बहुत करितो मान। परी माझें मन विटतसे। १२ येथें जिवांसी जाचणी होत। कुंभीपाकादि यातना बहुत। तेणें खेद पावे सदा चित्त। न घडे परमार्थसाधन। १३ जरी राजसूययज्ञ पुत्र करी। तरी पुरंदर आपणाशेजारीं। ठाव देऊनि निर्धारीं। नाना परी सुख देत। १४ मग बोले विरिंचिनंदन। अवश्य धर्मासी मी सांगेन। तत्काळ उठिला तेथून। वीणा वाहून ऊर्ध्वपंथें। १५ मस्तकीं रुळती जटाभार। गौरवर्ण जैसा शीतकर। यज्ञोपवीत रुळे सुंदर। उत्तरीयवस्त्र झळकतसे। १६ क्षीरसमुद्रीं धुतलें। तसें प्रावरणवस्त्र दिव्य शोभलें। द्वादश टिळे सतेज मिरवले। सिद्धपादुका सतेज युगुळीं। १७ दिव्य गंधीं दिव्य सुमनीं। जो सदा पूजिजे देवगणीं। ऐसा महाराज नारदमुनी। इंद्रप्रस्थासी पैं आला। १८ धर्मं देखिला नारदमुनी। साष्टांग नमिला प्रेमेंकरूनी। दिव्य सिंहासनीं बसवूनी। षोडशोपचारें पूजिला। १९ जोडूनियां दोन्ही कर। धर्म उभा

की सभा में बैठ सकूँगा'। (यहाँ यमलोक में) यम मेरा (वैसे तो) बहुत सम्मान करता है, फिर भी मेरा मन (यहाँ रहते) अरुचि को प्राप्त हो रहा है (उचट रहा है)। १२ यहाँ जीवों को कष्ट होता है। (यहाँ) कुम्भीपाक आदि (नरकों) में बहुत यातनाएँ हैं। उससे (मेरा) चित्त सदा खेद को प्राप्त हो जाता है। उससे (मेरे द्वारा) परमार्थ (मोक्ष) साधना नहीं हो रही है। १३ (कहते हैं—) यदि (किसी का) पुत्र राजसूय यज्ञ करे, तो इन्द्र उस (व्यक्ति) को निश्चय ही अपने पड़ोस में (पास ही) स्थान देते हुए नाना प्रकार से सुख प्रदान करता है"। १४ तब ब्रह्म-नन्दन नारद बोले, 'मैं धर्म से यह अवश्य कहूँगा।' (ऐसा कहकर) वे तत्काल वीणा को लेकर ऊर्ध्वमार्ग से जाने के लिए (वहाँ से) उठ गये। १५ उनके मस्तक पर जटाओं के भार शोभायमान थे। वे चन्द्रमा जैसे गौर-वर्ण (से युक्त) थे। (उनके गले में) सुन्दर जनेऊ शोभा के साथ झूलता था। उनका उत्तरीय वस्त्र चमकता-दमकता था। १६ उनका दिव्य उत्तरीय वस्त्र वैसे ही शोभा दे रहा था, जैसे क्षीरसमुद्र में वह धोया हुआ था। (उनके भाल पर) बारह तिलक तेज-सहित शोभायमान थे। वे दोनों पाँवों में तेजस्वी सिद्ध-पादुकाएँ[1] पहने हुए थे। १७ दिव्य सुगन्ध से, दिव्य सुमनों से जो देवगणों द्वारा सदा पूजित होते हैं, ऐसे वे महाराज नारद मुनि इन्द्रप्रस्थ आ गये। १८ जब धर्म ने नारद मुनि को देखा, तो उन्होंने उन्हें प्रेमपूर्वक साष्टांग नमस्कार किया। (तदनन्तर) दिव्य सिंहासन पर बैठाकर उन्होंने उनका सोलह उपचारों से पूजन किया। १९ दोनों हाथ जोड़कर धर्म उनके सामने खड़े रहे और बोले, 'हमने आज अपनी

[1] सिद्ध पादुकाएँ— ऐसी पादुकाएँ कि जिन्हें पहनकर खड़े होने पर व्यक्ति क्षण में अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है।

राहिला समोर। म्हणे आजि भाग्य थोर। दृष्टीं देखिले नारदमुनि। २०
नारद म्हणे ते वेळां। मज पंडुराज स्वर्गी भेटला। तेणें निरोप तुम्हांसी सांगितला। राजसूययज्ञ करा वेगें। २१ त्या पुण्येंकरूनि सहज। शक्राशेजारीं बैसे पंडुराज। तुम्ही पुत्र त्याचे तेजःपुंज। करावें काज एवढं। २२
ऐसें धर्मरायासी सांगून। ऊर्ध्वपंथें गेला ब्रह्मनंदन। धर्मराजें बंधु बोलावून। विचारासी बैसले। २३ म्हणे सुफळ न होतां पितृवचन। व्यर्थ मग काय वांचोन। त्याचें वृथा गेलें धर्मदान। तपाचरण कायसें त्याचें। २४ वृथा गेला पितृवचनार्थ। तो पुत्र नव्हे प्रत्यक्ष जंत। तो वांचूनि भूभार व्यर्थ। अनुपकारी अभागी। २५ पितृवचनीं उपजे त्रास। सद्गुरूशीं करी द्वेष। कुशब्द बोले मातेस। तो अल्पायुषी जाणिजे। २६
भक्त देखतां करी उपहास। साधूसी लावी नसते दोष। सद्गुरूनि म्हणे मीच विशेष। तो नर अल्पायुषी जाणिजे। २७ सत्पुरुषांची करी निंदा। अपमानी जो ब्रह्मवृंदा। विद्याबळें प्रवर्ते वादा। तो नर अल्पायुषी जाणिजे। २८ निंदी सदा तीर्थक्षेत्रें। असन्मानी हरिहरचरित्रें। सर्वदा

आँखों से नारद मुनि को देखा— (यही) आज हमारा बड़ा सौभाग्य है'। २० उस समय नारद बोले, 'मुझसे स्वर्ग में पण्डुराज मिले थे। उन्होंने आपके लिए यह सन्देश दिया है कि झट से आप राजसूय यज्ञ (सम्पन्न) करें। २१ उस(से प्राप्त) पुण्य के बल पर पण्डुराज इन्द्र के पड़ोस में (पास) बैठ सकेंगे। आप उनके तेजोराशि पुत्र हैं। (अतः) इतना कार्य (अवश्य) करें'। २२ धर्मराज से ऐसा कहकर ब्रह्मनन्दन नारद ऊर्ध्वमार्ग से चले गये। तो धर्मराज बन्धुओं को बुलाकर उनसे विचार-विमर्श करते बैठे। २३ वे बोले, "पितृवचन के सफल न होने पर व्यर्थ ही बचकर (जीवित रहकर) क्या होगा। उस (व्यक्ति) का धर्मदान व्यर्थ हो गया। उसका तपाचरण भी कैसा (होगा)। २४ जिसके पिता के वचन का भाव व्यर्थ हो गया हो, वह पुत्र नहीं, वह तो साक्षात केंचुआ है। वह जीवित रहकर व्यर्थ ही भूमि के लिए भार बन जाता है। वह अनुपकारी, अभागा (सिद्ध) हो जाता है। २५ जिसे पिता के वचन (की पूर्ति) में कष्ट उत्पन्न हुआ जान पड़ता हो, जो सद्गुरु से द्वेष करता हो, जो माता से बुरे शब्द कहता हो, उस नर को अल्पायुषी समझिए। २६ जो भक्त को देखने पर उसका उपहास करता हो, जो साधु पुरुष को झूठे दोष लगाता हो, जो कहता है— मैं ही सद्गुरु से विशेष (बड़ा) हूँ, ऐसे नर को अल्पायुषी समझिए। २७ जो सत्पुरुषों की निंदा करता हो, जो ब्रह्म-वृन्द का अपमान करता हो, जो विद्या के बल पर वाद-विवाद के लिए प्रवर्तित होता हो, उस नर को अल्पायुषी समझिए। २८ जो सदा तीर्थ-क्षेत्रों की निन्दा करता हो, श्रीहरि और शिवजी के चरित्रों का अनादर

निंदी वेदपुराणशास्त्रें। तो नर अल्पायुषी जाणिजे। २९ कायावाचामन। परपीडा हिंसा करणें। भूतद्रोह करी जारणमारणें। तो अल्पायुषी जाणिजे। ३० निंदी महापुरुषांचे ग्रंथ। नसतेच काढी कुतर्क अर्थ। विद्यामदें उन्मत्त। त्यासी अधःपात सुटेना। ३१ मी विष्णुभक्त आहें मोठा। म्हणवून निंदी नीलकंठा। तपस्वी देखोनि करी चेष्टा। त्यासी अधःपात सुटेना। ३२ श्रीहरीचें गुणकीर्तन। जो अव्हेरी न करी श्रवण। टाकी विष्णुभक्तां उच्छेदून। त्यासी अधःपात सुटेना। ३३ मी शिवभक्त अतिनिर्मळ। जो विष्णुनिंदा करी चांडाळ। नसते कुमार्ग स्थापी खळ। त्यासी अधःपात सुटेना। ३४ होतां साधूंचा अपमान। संतोष वाटे मनांतून। करी वृद्धांचें मानखंडण। त्यासी अधःपात सुटेना। ३५ सभेमाजी दुरुक्ती बोले। जेणें भल्याचें हृदय उले। जठर विष्ठेनें सदा माखलें। त्यासी अधःपात सुटेना। ३६ निर्नासिक आरसा न पाहे। तोंवरी रूपाचा अभिमान वाहे। म्हणे माझ्या रूपाची तुलना न ये। रतिवराही पाहतां। ३७ मी एक ज्ञाणता सर्वज्ञ। ऐसा सदा धडके अभिमान। सकळ मूर्खांहूनि नीच पूर्ण। कर्म

करता हो, जो सदा वेदों, पुराणों, शास्त्रों की निन्दा करता हो, उस पुरुष को अल्पायुषी समझिए। २९ जो काया, वाणी और मन से परपीड़ा और हिंसा करता हो, जो जारण-मारण (विद्या से) प्राणियों का द्रोह करता हो, उसे अल्पायुषी समझिए। ३० जो महान पुरुषों के ग्रन्थों की निन्दा करता हो, जो कुतर्क करते हुए झूठे अर्थ निकालता हो, जो विद्यामद से उन्मत्त हो, उसे अधःपात नहीं टलता। ३१ 'मैं बड़ा विष्णु-भक्त हूँ'—ऐसा कहलाकर जो नीलकण्ठ शिवजी की निन्दा करता हो, जो तपस्वी को देखकर उसकी हँसी उड़ाता हो, उसे अधःपात नहीं टलता। ३२ जो श्रीहरि के गुणों के कीर्तन की उपेक्षा करता हो और उसका श्रवण नहीं करता हो, जो भगवान विष्णु के भक्तों का उच्छेद कर डालता हो, उसे अधःपात नहीं टलता। ३३ 'मैं अतिनिर्मल (पवित्र) शिवभक्त हूँ' ऐसा मानकर जो चण्डाल विष्णु की निन्दा करता हो, जो खल झूठमूठ के कुमार्गों (कुमतों) की स्थापना करता हो, उसे अधःपात नहीं टलता। ३४ साधुओं का अपमान होने पर जिसे मन में सन्तोष होता हो, जो वृद्धों के सम्मान को खण्डित कर देता हो (अवमान करता हो), उसे अधःपात नहीं टलता। ३५ जो सभा में ऐसे दुर्वचन बोलता हो कि जिससे भले मनुष्य का हृदय विदीर्ण हो जाता हो, जिसका जठर सदा विष्ठा से सना हुआ हो, उसे अधःपात नहीं टलता। ३६ जब तक नासिकाहीन (व्यक्ति) दर्पण में नहीं देखता, तब तक वह अपने रूप पर अभिमान वहन करता है। रतिवर कामदेव को भी देखने पर वह कहता है, 'मेरे रूप की बराबरी उससे नहीं हो पाती'। ३७ 'मैं एक (अकेला) ज्ञाता हूँ, सर्वज्ञ हूँ'—ऐसा घमण्ड (जिसके अन्दर)

करी त्यांतुल्य । ३८ असोत हे आतां बोल । जो पितृवचन न करी सुफळ । तो अभागी केवळ । महाखळ जाणावा । ३९ नारदें सांगितलें येऊन । कीं करावा राजसूययज्ञ । तों बोलिले भीमार्जुन । उत्तम वचन तें ऐका । ४० पृथ्वीचे राजे जिंकोन । द्रव्य आणावें बळेंकरून । तरी सिद्धी पावेल सकळ यज्ञ । बहुत कठिण कार्य दिसे । ४१ तरी द्वारकानाथ श्रीकृष्ण । जो आनकदुंदुभिहृदयरत्न । तो जगद्गुरु आलियाविण । कार्यसिद्धि नव्हेचि । ४२ मग श्रीकृष्णासी दिव्य पत्र । पाठवी धर्मराज पंडुपुत्र । दूत पाठविले सत्वर । द्वारकाधीश बोलवावया । ४३ तों जरासंधाचे बंदिशाळेप्रती । पडिले बावीस सहस्र नृपती । तिहीं पत्र लिहिलें श्रीहरीप्रती । आम्हांसी जगत्पति सोडवीं । ४४ दोन्हीकडूनि आलीं पत्रें । तीं स्वयें वाचिलीं वारिजनेत्रें । मग काय केलें स्मरारिमित्रें । तें विचित्र परिसा पां । ४५ मनीं विचारी कमलोद्भवपिता । आधीं जावें शक्रप्रस्था । भेटूनि यावें पंडुसुतां । कार्य तत्वतां साधावें । ४६ तों इकडे धर्में काय केलें । चहूं दिशांप्रति ते वेळे । चौघे बंधु पाठविले । राजयांप्रति

सदा गर्जन करता रहता है, वह मनुष्य (वस्तुतः) समस्त मूर्खों से पूर्ण नीच होता है और उनके समान कर्म करता रहता है । ३८ (अस्तु ।) रहने दो इन बातों को । जो पितृवचन को पूर्ण नहीं कर देता, उसे निरा अभागा, महाखल समझें ' । ३९ नारद ने आकर कहा कि राजसूय यज्ञ करो, तो भीम-अर्जुन (जो) बोले, उनकी वह उत्तम बात सुनिए । ४० ' पृथ्वी के राजाओं को जीतकर बलपूर्वक धन ले आएँ, तो ही समस्त यज्ञ सिद्धि को प्राप्त हो जाएगा । यह कार्य बहुत कठिन दिखाई देता है । ४१ फिर भी जो आनकदुन्दुभि वसुदेव के हृदय-रत्न हैं, उन जगद्गुरु द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के बिना आये, कार्य-सिद्धि हो ही नहीं पाएगी ' । ४२ अनन्तर पण्डुपुत्र धर्मराज ने श्रीकृष्ण को एक दिव्य पत्र (लिखकर) भेज दिया । उन्होंने द्वारकाधीश को बुलाने के लिए (पत्र देकर) झट से दूत भेज दिये । ४३ तो जरासन्ध की बन्दीशाला में बाईस सहस्र नृपति पड़े हुए थे, उन्होंने श्रीकृष्ण के नाम एक पत्र लिखा (और विनती की)— ' हे जगत्पति, हमें (बन्दीगृह से) छुड़ाइए ' । ४४ दोनों ओर से पत्र आये, उन्हें कमल-नयन श्रीकृष्ण ने स्वयं पढ़ लिया । अनन्तर कामदेव के शत्रु शिवजी के मित्र भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ने क्या किया ? उस विचित्र बात को सुनिए । ४५ ब्रह्मा के पिता विष्णुस्वरूप कृष्ण ने मन में यह विचार किया कि पहले इन्द्रप्रस्थ जाएँ और पण्डु के पुत्रों (पाण्डवों) से मिलकर आ जाएँ और फिर सचमुच वह कार्य सिद्ध कर लें । ४६ इधर धर्म ने क्या किया ? उन्होंने चारों बन्धुओं को राजाओं को जीतने के लिए चारों

जिकावया । ४७ सैन्य अपार मिळवून । उत्तर दिशेसी गेला अर्जुन । तेणें सकळ राजे जिंकोन । द्रव्य अपार आणिलें । ४८ पूर्वेसी पाठविला भीम । तेणें थोर केला पराक्रम । राजे जिंकोनि बळोत्तम । द्रव्य आणिलें तेधवां । ४९ दक्षिणेसी पाठविला सहदेव । तेणें पुरुषार्थ करूनि अपूर्व । भूपति जिंकोनियां सर्व । आणिलें द्रव्य तेधवां । ५० पश्चिमेसी पाठविला नकुळ तेणें । नृपति जिंकोनियां सकळ । द्वारकेसी आला प्रबळ । सैन्या-सहित तेधवां । ५१ नगराबाहेर राहोन । हरीसी पत्र पाठविलें लिहोन । माथां धर्माची मुद्रिका करून । दूताहातीं धाडिलें । ५२ श्रीरंगें पत्र उकलिलें देखा । तों धर्माचा असे मस्तकीं शिक्का । श्रीकृष्णें वंदिलें मस्तका । हृदयीं धरिलें सप्रेम । ५३ म्हणे मी अजित निर्गुण । परी मज भक्तीं जिंकिलें पूर्ण । मी सदा तयांआधीन । त्यांचें वचन मानीत मी । ५४ जे दाविती धनविद्या-तपबळ । त्यांसी नातुडे तमालनीळ । मी भक्तां आधीन सदाकाळ । जे प्रेमळ अंतरींचे । ५५ अनंत जन्म तप केलें । पांडवीं पूर्वींच मज जिंकिलें । हरीनें द्रव्य अपार ते वेळे । आणूनि दिधलें माद्रीसुता । ५६ द्वारकेबाहेर येऊनि

दिशाओं में भेज दिया । ४७ अपार सेना इकट्ठा करके अर्जुन उत्तर दिशा में गये; वे समस्त राजाओं को जीतकर अपार धन (साथ में) ले आये । ४८ (धर्म ने) भीम को पूर्व दिशा में भेजा । उन्होंने बड़ा पराक्रम किया; बल में श्रेष्ठ राजाओं को जीतकर वे तब धन ले आये । ४९ उन्होंने दक्षिण में सहदेव को भेज दिया । तब अपूर्व पराक्रम करके वह समस्त राजाओं को जीतकर धन ले आया । ५० उन्होंने पश्चिम में नकुल को भेजा । तब वह समस्त नृपतियों को जीतकर अपनी प्रबल सेना-सहित द्वारका आ गया । ५१ नगर के बाहर ठहरकर उस (नकुल) ने श्रीहरि के नाम एक पत्र लिखकर भेजा । उसके शीर्षस्थान पर धर्मराज की मुद्रा अंकित करके वह पत्र दूत के हाथों (श्रीहरि के पास) भेज दिया । ५२ देखिए, श्रीरंग श्रीकृष्ण ने उस पत्र को खोला, तो (देखा कि) उसके शीर्ष-स्थान पर धर्मराज की मुद्रा (अंकित) थी, तो उन्होंने उसे सिर से नमस्कार किया और प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया । ५३ वे बोले, 'मैं अजित हूँ, निर्गुण हूँ; परन्तु भक्तों ने मुझे पूर्णतः जीत लिया है । मैं नित्य उनके अधीन (रहता) हूँ; मैं उनकी बात मान लेता हूँ । ५४ जो धन, विद्या, तप का बल प्रदर्शित करते हैं, मैं तमालनील उन्हें प्राप्त नहीं होता हूँ । जो अन्तःकरण से प्रेममय हैं, मैं ऐसे उन भक्तों के अधीन नित्य काल रहता हूँ । ५५ पाण्डवों ने अनन्त जन्म तप किया; उससे उन्होंने मुझे पहले ही जीत लिया'। (ऐसा कहकर) उस समय श्रीहरि ने अपार धन लाकर माद्री-सुत नकुल को प्रदान किया । ५६ द्वारका के बाहर आकर श्रीकृष्ण तत्काल नकुल से मिले, तो उसने उस समय उन जगद्वन्द्य के

गोपाळ। नकुळा भेटला तात्काळ। नकुळें दृढ धरिलें पदकमल। जगद्वंद्याचें तेधवां। ५७ नयनींचें अश्रुजीवन। तेणें प्रक्षाळिले कृष्णचरण। कंठ दाटला प्रेमेंकरून। जगज्जीवन हृदयीं धरी। ५८ नकुळ म्हणे श्रीकरधरा। ब्रह्मांडनायका भुवनसुंदरा। कंसांतका मधुसंहारा। समरधीरा गोविंदा। ५९ तुझा मी दासानुदास विश्वंभरा। म्यां पत्राचे शिरीं केली मुद्रा। विरिंचिजनका प्रतापरुद्रा। अन्याय क्षमा करीं हा। ६० श्रीरंग म्हणे सखया ऐक। तुम्हीं निजप्रेम देऊनि अलौकिक। मज विकत घेतलें देख। सत्य सत्य त्रिवाचा। ६१ नकुळ द्वारकेमाजी नेला। दिव्य वस्त्राभरणीं गौरविला। द्रव्य अपार देत ते वेळां। जें भोगींद्रासी न गणवेचि। ६२ नकुळासी म्हणे राजीवनेत्र। मजही धर्में धाडिलें पत्र। मीही आतां येतों सत्वर। पुढें जाय तूं वेगेंसीं। ६३ आज्ञा घेऊनि माद्रीसुत। इंद्रप्रस्थासी आला त्वरित। धर्मासी वंदूनि समस्त। वृत्तांत सांगे द्वारकेचा। ६४ सद्गदित जाहला धर्म। म्हणे आमुचा ऋणी पुरुषोत्तम। तंव तो विश्वमनोभिराम। येता जाहला शक्रप्रस्थासी। ६५ पुढें जाऊनि धर्मराजें। वंदिलीं हरीचीं चरणांबुजें। वर्तमान जाहलें तें सहजें। सर्व

चरण-कमलों को दृढ़ता से पकड़ा। ५७ उसने नयनों के अश्रु-जल से श्रीकृष्ण के चरणों का प्रक्षालन किया। उसका कण्ठ प्रेम से रुँध गया; (तब) जगज्जीवन श्रीकृष्ण ने उसे हृदय से लगा लिया। ५८ तो नकुल बोला, 'हे श्री (लक्ष्मी)-कर-धर, हे ब्रह्माण्ड-नायक, हे भुवन-सुन्दर, हे कंसान्तक, हे मधु-संहारक, हे समरधीर गोविन्द। ५९ हे विश्वम्भर, मैं आपका दासानुदास हूँ। हे ब्रह्मा के पिता, हे प्रताप-रुद्र, मैंने पत्र के शीर्ष-स्थान पर (धर्मराज) की मुद्रा (अंकित) की, मेरे इस अन्याय को क्षमा कीजिए'। ६० तो श्रीरंग बोले, 'हे सखा, सुन लो। देखो, यह त्रिवाक्-पूर्वक सत्य है कि तुमने अपना अलौकिक प्रेम प्रदान करके मुझे खरीद लिया है'। ६१ (तदनन्तर) वे नकुल को द्वारका के अन्दर ले गये; उन्होंने दिव्य वस्त्रों और आभरणों से उसका गौरव (सम्मान) किया और उसे उस समय अपार धन प्रदान किया, जिसकी गिनती भोगीन्द्र शेष द्वारा भी नहीं हो पाती। ६२ फिर कमल-नयन श्रीकृष्ण नकुल से बोले, 'धर्म ने मुझे भी पत्र भेज दिया था। (अतः) मैं भी शीघ्र ही आ जाता हूँ। तुम वेगपूर्वक आगे जाओ'। ६३ तो माद्री-सुत नकुल आज्ञा लेकर शीघ्रता से इन्द्रप्रस्थ आ गया और उसने धर्मराज का वन्दन करके द्वारका का समस्त समाचार कह दिया। ६४ (उसे सुनकर) धर्मराज बहुत गद्गद हो उठे और बोले, 'पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हमारे ऋणी (स्नेही) हैं।' तब तक वे विश्वमनोभिराम (श्रीकृष्ण) इन्द्रप्रस्थ में आ गये। ६५ तो आगे जाकर धर्मराज ने श्रीहरि के चरणकमलों का वन्दन किया और जो घटित हुआ,

कथिलें हरीप्रति। ६६ एक जरासंध वेगळा करून। सर्व राजे जिंकिले पूर्ण। मग बोले कंसप्राणहरण। तरी यज्ञ कैसा होईल। ६७ जरासंध परम सबल। मथुरेसी धरिला सतरा वेळ। परी त्याच्या मरणाचा काळ। समीप असे यावरी। ६८ मग भीम आणि अर्जुन। संगें घेऊनि जगज्जीवन। सर्वेचि त्रिवर्ग निघोन। येते जाहले मागधपुरा। ६९ दुर्ग ढांसळूनि बळें। आडमार्गें ग्रामांत गेले। तों भेरी निशाण देखिलें। भीमें फोडिलें हाणोनि। ७० ब्राह्मणवेष तिघीं धरिले। जरासंधाचे मंदिरासी गेले। तों बळिहरण टाकावया ते वेळे। बाहेर आला जरासंध। ७१ तों देखिले तिघे ब्राह्मण। जरासंध करी तयांसी नमन। तंव ते न बोलती धरिलें मौन। आशीर्वचन न देती। ७२ जरासंधाचे यज्ञशाळेंत जाऊन। मौनें बैसले तिघे जण। राजा म्हणे ब्राह्मण। कांहीं वचन न बोलती। ७३ जरासंध म्हणे द्विज हो सांगा। काय इच्छा असेल तें मागा। हरि म्हणे युद्धभिक्षा देई वेगा। तिघांमधूनि एकाशीं। ७४ जरासंध पाहे हस्त विलोकून। तों देखे गोधांगुळीचिन्ह। म्हणे हे नव्हेति ब्राह्मण। महाक्षत्रिय आहेती। ७५ जरासंध

वह सब स्वाभाविक ढंग से उनको बता दिया। ६६ (धर्मराज बोले)— 'एक जरासन्ध को छोड़कर मैंने समस्त राजाओं को पूर्णतः जीत लिया है'। तब कंस के प्राणों का हरण करनेवाले श्रीकृष्ण बोले, 'तो यज्ञ कैसे होगा ?' ६७ जरासन्ध परम प्रबल है। उसे मैंने सत्रह बार मथुरा के समीप पकड़ा था। फिर भी (इससे जान पड़ता है कि) इसके पश्चात उसकी मौत का समय निकट (आया) है'। ६८ अनन्तर जगज्जीवन श्रीकृष्ण ने भीम और अर्जुन को अपने साथ लिया और तत्काल वे तीनों जने मागधपुर आ गये। ६९ प्राचीर को बलात् ढहाते हुए वे दूर के अर्थात उपमार्ग से नगर के अन्दर गये, तो उन्होंने नगाड़ा और ध्वज देखा। भीम ने उसपर प्रहार करके उसे तोड़ डाला। ७० उन तीनों ने ब्राह्मण वेश धारण किया और वे जरासन्ध के प्रासाद गये; तब उस समय वैश्वदेव बलि डालने के लिए जरासन्ध बाहर आ गया। ७१ तो उसने इन तीन ब्राह्मणों को देखा। जरासन्ध ने उनको नमस्कार किया। तब वे नहीं बोले; उन्होंने मौन धारण किया। उन्होंने (उसे) कोई आशीर्वाद नहीं दिया। ७२ राजा जरासन्ध की यज्ञशाला में जाकर वे तीनों जने मौन धारण करके बैठे, तो उसने कहा (सोचा), 'ये कैसे ब्राह्मण हैं ! कोई बात बोलते (ही) नहीं'। ७३ (फिर) जरासन्ध बोला, 'हे द्विजो, बताइए। जो इच्छा हो, वह माँग लीजिए'। तो श्रीहरि बोले, 'हम 'तीनों में से किसी एक को युद्ध-भिक्षा दीजिए'। ७४ जरासन्ध ने उनके हाथ को निरखकर देखा, तो उसने उसपर (धनुर्धर द्वारा प्रयुक्त) अंगुलित्राण का (गोधा का) चिह्न (अंकित) देखा। तो वह बोला (उसे विदित

बोले वचन। म्यां भिक्षा दिधली तुम्हांलागून। परी तुम्ही तिघेजण। आहां कोण सांगा तें। ७६ मग स्वरूपें प्रकटविलीं तिघां जणीं। तों भीम अर्जुन चक्रपाणी। जरासंध हांसोनी। काय बोले तेधवां। ७७ हा गोवळा कपटी कंसारी। ह्याशीं मी तों युद्ध न करीं। अर्जुनही पाहतां समरीं। वृष्टीं माझे भरेना। ७८ कांहीं भीम तगेल मजशीं। मी युद्ध करीन तयाशीं। मग नगरबाह्यप्रदेशीं। चौघेजण चालिले। ७९ युद्धभूमिका नीट करून। जरासंध आणि भीमसेन। उभे ठाकले गदा पडताळून। गगनीं सुरगण पाहती। ८० गदा खणखणां वाजती। बळें उद्भट हांका देती। निराळीं प्रतिशब्द उठती। दुमदुमिती देवयानें। ८१ चक्राकार उड्या घेती। वर्मीं गदाघाय हाणिती। सिंहावरी सिंह लोटती। तैसे झगटती एकमेकां। ८२ करूनि चक्राकार मंडळ। तितुक्यांत युद्ध करिती कल्लोळ। नऊ सहस्र नागांचें बळ। दोघांसही समानचि। ८३ जैसे मेरु आणि मांदार। तैसे सबळ दोघे शूर। कीं पूर्वीं शक्रसुत आणि सूर्यकुमर। अलोट जैसे भीडती। ८४ एकीकडे चमक दावूनी। सवेंचि गदा हाणिती फिरोनी। सर्वांग चूर

हुआ) कि ये ब्राह्मण नहीं हैं; कोई महान क्षत्रिय हैं। ७५ जरासन्ध बोला, 'मैंने (आपकी माँगी हुई) भिक्षा प्रदान की (समझिए)। फिर भी यह कहिए कि आप तीनों जने कौन हैं'? ७६ तब उन तीनों जनों ने अपने-अपने रूप प्रकट किये। तो वे भीम, अर्जुन, चक्रपाणि श्रीकृष्ण थे। जरासन्ध हँसकर तब क्या बोला (सुनिए)। ७७ 'यह तो ग्वाला है, कपटी है, कंस का शत्रु है, इससे मैं तो युद्ध नहीं करूँगा। अर्जुन भी युद्ध-भूमि में (युद्ध करने की दृष्टि से) देखने पर मेरी दृष्टि को नहीं जँचता। ७८ भीम मुझसे कुछ निभ पाएगा। मैं उससे युद्ध करूँगा'। अनन्तर वे चारों जने नगर के बाह्यप्रदेश में चले गये। ७९ युद्ध-स्थान को ठीक करके जरासन्ध और भीम (अपने-अपने) हाथ में गदा लेकर खड़े हो गये। आकाश से देवगण यह देख रहे थे। ८० गदाएँ ठनठन बजने लगीं। वे महान योद्धा बलपूर्वक एक-दूसरे को पुकार-ललकार रहे थे। आकाश में उसकी प्रतिध्वनि हो रही थी। देवों के यान घहरा रहे थे। ८१ वे चक्राकार कूदते-फाँदते थे; (एक-दूसरे के) मर्म-स्थान पर गदा से प्रहार करते थे। जैसे सिंह की ओर सिंह लपकता जाता हो, वैसे वे एक-दूसरे से भिड़कर जूझते थे। ८२ वे चक्राकार मण्डल बनाकर, उसके अन्दर उछल-कूद करते हुए युद्ध कर रहे थे। दोनों में ही समान रूप से नौ-नौ सहस्र हाथियों का बल था। ८३ जैसे मेरु और मन्दार हैं, वैसे वे दोनों बलवान और शूर थे, अथवा पूर्वकाल में जैसे इन्द्र-सुत बालि और सूर्य-पुत्र सुग्रीव लड़े थे, वैसे ही वे एक-दूसरे से अनिवार्य रूप से भिड़ गये थे। ८४ एक ओर चकमा देकर साथ ही तत्काल वे

होऊनी। छिन्न भिन्न जाहलें। ८५ वीरश्रीमदें माजले जेव्हां। शरीरव्यथा नाठवे तेव्हां। पार्थ आणि रुक्मिणीधवा। अति आश्चर्य वाटत। ८६ नव दिवस नव रात्री। दोघेही न ढळती वीर क्षत्री। दोघे धांवतां दणाणे धरित्री। उठे अंबरीं प्रतिशब्द। ८७ अंतरीं विचारी क्षीराब्धिजावर। जरासंध हा अनिवार। भीमासी संकेतें सर्वेश्वर। दाविता झाला तेधवां। ८८ तृण-काडी हातीं धरूनी। भीमासी दाविली चिरोनी। धर्मानुजें तोचि संकेत जाणूनी। तैसेंचि केलें तेधवां। ८९ जरासंध बळें धरिला। पायांतळीं घालूनि चिरिला। दूरी भिरकावूनि दीधला। परी सांधा जडला पुनरपि। ९० मागुती हांक देऊनि जरासंध। भीमाशीं भिडे सुबद्ध। सवेंचि संकेत दावी गोविंद। धड विषम टाकीं कां। ९१ मागुती भीमें उभा चिरिला। एक भाग दक्षिणेकडे टाकिला। दुजा उत्तरेकडे भिरकाविला। प्राणासी मुकला जरासंध। ९२ जाहला एकचि जयजयकार। सुर वर्षती सुमनसंभार। विजयी जाहला पंडुकुमर। पार्थयदुवीर भेटती। ९३ बंदिशाळा फोडिली तये वेळे। बावीस सहस्र राजे सोडविले। तितुकेही स्वस्थळा पाठविले।

मुड़कर गदा से प्रहार करते थे। उनमें से प्रत्येक का अंग चूर-चूर होकर छिन्न-भिन्न हो गया। ८५ जब वे वीर-श्री के मद से उन्मत्त हो उठे, तब शरीर में होनेवाली व्यथा का उन्हें भान नहीं हो रहा था। पार्थ और रुक्मिणीपति को (यह देखकर) आश्चर्य हो रहा था। ८६ वे दोनों ही वीर क्षत्रिय नौ दिन और नौ रात (एक-दूसरे के सामने से) नहीं हट रहे थे। दोनों के दौड़ने पर धरती दनदना उठती थी। आकाश में उसकी प्रतिध्वनि हो रही थी। ८७ क्षीराब्धि के जामाता विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण मन में सोचने लगे— यह जरासन्ध अनिवार्य है। तब उन सर्वेश्वर ने भीम को संकेत कर दिखाया। ८८ उन्होंने घास का एक तिनका हाथ में लेकर धर्मानुज भीम को उसे चीरकर दिखाया। तो उन्होंने उस संकेत (के अर्थ) को समझकर उस समय वैसा ही किया। ८९ उन्होंने बलपूर्वक जरासन्ध को पकड़ लिया। फिर उसे पाँव-तले रखकर चीर डाला और उछालकर उसे दूर फेंक दिया। फिर भी सन्धि फिर से जुड़ गयी। ९० फिर से जरासन्ध पुकार-ललकारकर भीम से दृढ़तापूर्वक लड़ने लगा; तो साथ ही तत्काल श्रीकृष्ण ने संकेत कर दिखाया— धड़ को भिन्न-भिन्न स्थान पर फेंक दो। ९१ भीम ने उसे फिर से सीधा चीर डाला और एक भाग को दक्षिण की ओर फेंक दिया, तो दूसरा उत्तर की ओर उछाल दिया। (इससे) जरासन्ध के प्राण निकल गये। ९२ तो अद्‌भुत जय-जयकार हो गया। देवों ने फूलों की राशियाँ बरसा दीं। पण्डुकुमार भीम विजयी हो गये। अनन्तर उनसे अर्जुन और यदुवीर श्रीकृष्ण मिले। ९३ उस समय बन्दीशाला को तोड़ दिया (खोल दिया)।

वस्त्रें भूषणें देऊनियां। ९४ राजभांडारीं द्रव्य असंख्यात। तें इंद्रप्रस्था नेलें समस्त। सहदेव जरासंधाचा सुत। त्यासी राज्य दीधलें। ९५ ऐसा पुरुषार्थ करूनी। शक्रप्रस्था आले परतोनी। द्वारकेसी गेला शारंगपाणी। रथीं बैसोनि तेधवां। ९६ ऐसे दिवस कांहीं लोटले। धर्मराजा बंधूंप्रति बोले। हें करभारद्रव्य आणिलें। याचें सार्थक करावें। ९७ पडिले द्रव्याचे पर्वत। सहस्र गज भरूनि वेंचिलें नित्य। तरी सहस्र वर्षंपर्यंत। द्रव्य न सरे सर्वथा। ९८ सर्व सामग्री सिद्ध जाहली। याग आरंभावा या वेळीं। आप्त सोयिरे सुहृद सकळी। पाचारावे यज्ञातें। ९९ पाचारावे ब्राह्मण समस्त। शापानुग्रहसमर्थ। वेदोनारायण साक्षात। नांदे हृदयीं जयांच्या। १०० जे सप्तपुऱ्या तीर्थें अगाधें। जेथें वसती ब्रह्मवृंदें। जे वेदांतज्ञानी ब्रह्मानंदें।

और बाईस सहस्र राजाओं को मुक्त कर दिया। (तदनन्तर) उन सबको ही वस्त्र और आभूषण देकर उनके अपने-अपने स्थान भेज दिया। ९४ राजभण्डार में अपार धन था। उस सबको वे इन्द्रप्रस्थ में ले गये। जरासन्ध के सहदेव नामक पुत्र था। उन्होंने उसे राज्य दिया। ९५ इस प्रकार पराक्रम करके वे लौटकर इन्द्रप्रस्थ आ गये। तब रथ में बैठकर शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्ण द्वारका चले गये। ९६ ऐसे ही कुछ दिन बीत गये, तो धर्मराज बन्धुओं से बोले, 'यह धन कर-भार रूप में लाये हो। उसको सार्थक कर दें। ९७ धन के पर्वत (-से ऊँचे ढेर) लग गये थे। यद्यपि नित्य-प्रति एक सहस्र हाथियों पर लादकर खर्च कर दिया जाए, तो भी एक सहस्र वर्षों तक वह धन बिलकुल समाप्त न हो जाएगा। ९८ (यज्ञ की) समस्त सामग्री सिद्ध हो गयी है। इस समय यज्ञ का आरम्भ करें। यज्ञ में समस्त आप्त जनों, सगे सम्बन्धियों, मित्रों को बुला लें। ९९ जो अभिशाप (द्वारा हानि पहुँचा) देने अथवा अनुग्रह (द्वारा लाभ) कर देने में समर्थ हों, साक्षात वेदोनारायण भगवान जिनके हृदय में निवास करते हों, उन समस्त ब्राह्मणों को बुला लें। १०० अथाह महिमावाली सप्त पुरियों[1] तथा तीर्थक्षेत्रों में जो ऐसे ब्राह्मणों के (वृन्द-समुदाय, समाज) निवास करते हैं, जो वेदान्त के ज्ञाता हैं, जो ब्रह्मानन्दपूर्वक आत्मसुख के साथ डोलते-झूमते रहते हैं, उन (ब्राह्मणों) को, छियान्नबे कुलों[2] के राजाओं

---

१ सप्त पुरियाँ— पौराणिक मान्यता के अनुसार प्राचीन काल से निम्नलिखित सात नगरियाँ अत्यधिक पावन मानी जाती हैं। इनका माहात्म्य पुराणों में भी वर्णित है। अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जयिनी), द्वारावती (द्वारका)।

२ छियान्नब्बे कुल— क्षत्रियों के सूर्य और चन्द्र नामक दो मुख्य वंश या कुल माने गये हैं। इन दोनों के कुल ९६ उपकुल या शाखाएँ हैं। सह्याद्रि खण्ड के अन्तर्गत अनुज, देवक, जय आदि छियान्नबे राजा परम प्रतापी थे।

निजसुखें डुल्लती। १०१ शाण्णव कुळींचे भूपाळ। आप्त सोयरे द्रुपदादि सफळ। विराटादि महानृपाळ। यज्ञालागीं पाचारा। २ द्वारकेसी आधीं पाठवावे दूत। जगद्वंद्य आमुचें कुळदैवत। तो स्वामी श्रीकृष्णनाथ। रुक्मिणीसहित पाचारा। ३ द्रोणाचार्य कृपाचार्य। धृतराष्ट्र भीष्मादि महाआर्य। जे केवळ ज्ञानसूर्य। ते पाचारा आधीं येथें। ४ दुर्योधनादि बंधु सर्व। पाचारावे ते कौरव। विदुर महाज्ञानी कृपार्णव। आधीं येथें बोलवावा। ५ ऐसी आज्ञा देतां धर्मभूपती। लक्षानुलक्ष दूत धांवती। धर्माची आज्ञा सर्वां सांगती। नृप निघती वेगेंसीं। ६ तों दैव उदेलें अद्‌भुत। दूत न पाठवितांचि अकस्मात। निजभारेंसी वैकुंठनाथ। नगराजवळी पातला। ७ दूत धांवत आले धर्माजवळी। सांगती जवळी आले वनमाळी। कुंजरभेरी गर्जतो निराळीं। प्रतिशब्द गगनीं न समाये। ८ ऐकतां धर्मराजा गहिंवरला। दूत म्यां अजूनि नाहीं धाडिला। अंतर ओळखोनि धांविन्नला। स्वामी माझा मजलागीं। ९ एक प्रेमें धरिता हरिपायीं। मुळेंविण येतो लवलाहीं। माझ्या भाग्यासी अंत नाहीं। आला जांवई भीमकाचा। ११० बंधूंसहित धर्मराव। नगराबाहेरी घेतसे धांव।

को द्रुपद आदि समस्त आप्त जनों और सगे-सम्बन्धियों, विराट आदि महान राजाओं को यज्ञ के लिए आमंत्रित करें। १०१-१०२ पहले द्वारका में दूत भेजें। हमारे कुलदेवता जगद्वन्द्य स्वामी श्रीकृष्णनाथ हैं। उनको रुक्मिणी-सहित बुलाएँ। ३ जो केवल ज्ञान के सूर्य हैं, उन द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म आदि महान आर्य पुरुषों तथा धृतराष्ट्र को यहाँ पहले बुलाएँ। ४ दुर्योधन आदि समस्त कौरव बन्धुओं को बुलाएँ। महाज्ञानी तथा कृपा के सागर विदुर को यहाँ पहले बुलाएँ'। ५ इस प्रकार धर्मराज द्वारा आज्ञा करते ही लक्ष-लक्ष दूत दौड़े। उन्होंने धर्मराज की आज्ञा (सन्देश, विनती) सबसे कह दी, तो वे राजा वेगपूर्वक चल पड़े। ६ तब अद्‌भुत भाग्य का उदय हुआ। दूतों को नहीं भेजने पर भी वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण अपने सेना-दल-सहित नगर के समीप अकस्मात आ पहुँचे। ७ (यह जानकर) दूत दौड़ते हुए धर्म के पास आ गये और बोले, 'वनमाली कृष्ण (नगर के) पास आ गये हैं। कुंजर-भेरियाँ (हाथियों पर रखी हुई भेरियाँ नगर के बाहर के) खुले स्थान में गरज उठीं। उनकी प्रतिध्वनि गगन में नहीं समा रही थी। ८ यह सुनते ही धर्मराज गद्‌गद हो उठे और बोले (उन्होंने सोचा)— 'मैंने अभी तक (उनको बुलाने के लिए) दूत नहीं भेजा। (फिर भी) हमारे मन के भाव को जानकर वे मेरे स्वामी मेरे लिए दौड़े। ९ श्रीहरि के चरणों में एक (-निष्ठ) प्रेम धारण करने पर वे (भगवान) बिना आमंत्रण के (बिना बुलाये) आ जाते हैं। मेरे भाग्य का कोई अन्त नहीं है; (क्योंकि बिना

तों सेनेसहित इंदिराधव। पंडुपुत्रीं देखिला। १११ सर्वे सोळा सहस्र कामिनी। मुख्य रुक्मिणी विश्वजननी। छप्पन्न कोटी यादव श्रेणी। तितुक्यांच्या कामिनी आलिया। १२ एक लक्ष साठ सहस्र कुमर। कन्या स्नुषा आलिया समग्र। चौदा सहस्र भेरी प्रचंड थोर। गजपृष्ठावरी धडकती। १३ गज तुरंग पदाति रथ। अनुपम अलंकारें मंडित। ध्वज अपार लखलखित। जेवीं पुष्करीं सौदामिनी। १४ मित्राऐसीं शतपत्रें। चंद्रमंडळातुल्य तळपती छत्रें। नीळरक्तवर्णें विचित्रें। संख्यारहित दीसती। १५ कुंचे चामरें झळकती। गज महानादें किंकाटती। हिरे जडिले दांतोदांतीं। कर्णीं डुल्लती मुक्तघोस। १६ रत्नजडित पाखरा सुरेख। घंटा गर्जती अधोमुख। मग पाहतां ते कृष्णउपासक। हरिनामें किंकाटती। १७ अतिरथी उद्भट वीर। पाठीसीं चालती कृष्णकुमर। महारणपंडित धनुर्धर। प्रचंड वीर हरीचे। १८ गजस्कंधीं बैसोनि बंदीजन। हरिप्रताप वाखाणिती गर्जोन। पुढें कनकवेत्रधारी धांवोन। वाव करिती

बुलाये) भीमक राजा के जामाता आ गये हैं'। ११० (अनन्तर) पाण्डुपुत्र धर्मराज बन्धुओं-सहित नगर के बाहर दौड़ लगाकर (दौड़ते हुए) आ गये। तो उन्होंने इन्दिरापति विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण को सेना-सहित (आये हुए) देखा। १११ उनके साथ उनकी सोलह सहस्र (एक सौ) स्त्रियाँ थीं, उनमें मुख्य विश्वजननी रुक्मिणी थी। छप्पन कोटि यादवों की श्रेणियाँ (टोलियाँ) थीं— उन सबकी स्त्रियाँ (भी) आयी थीं। १२ (श्रीकृष्ण के) एक लक्ष साठ सहस्र पुत्र, समस्त कन्याएँ और बहुएँ आ गयीं। हाथियों की पीठ पर रखी हुई बड़ी प्रचण्ड भेरियाँ धड़धड़ा रही थीं। १३ गज, अश्व, पदाति, रथ चारों दलों के सैनिक अनुपम आभूषणों से विभूषित थे। अनगिनत ध्वज चमक-दमक रहे थे, जैसे आकाश में बिजलियाँ चमकती हैं। १४ सूर्य जैसे शतपत्र (सूर्यपत्र), चन्द्र-मण्डल के समान छत्र चमकते थे। वे पत्र नील तथा लाल वर्ण के थे, असाधारण थे और (संख्या में), अनगिनत जान पड़ते थे। १५ मोरछत्र, चामर चमक-दमक रहे थे; हाथी उच्च स्वर में चिंघाड़ते थे; उनके दाँत-दाँत में हीरे जटित थे और कानों में मोतियों के गुच्छे झूमते थे। १६ उनपर रत्न-जटित सुन्दर झूलें थीं। अधोमुख घण्टिकाएँ गर्जन करती थीं। तब देखने पर (लगता था कि मानो) वे कृष्ण की उपासक हरि-नाम लेते हुए गरज रही थीं (घोष कर रही थीं)। १७ बलशाली अतिरथी वीर श्रीकृष्ण-पुत्र पीछे (-पीछे) चल रहे थे। श्रीहरि के वे प्रचण्ड धनुर्धारी वीर महा रण-पण्डित (युद्धकला में निपुण) थे। १८ हाथियों के कंधों पर बैठकर बन्दीजन श्रीहरि के प्रताप का गरज-गरजकर स्तुति-सहित बखान करते थे। आगे-आगे दौड़ते हुए कनकवेत्रधारी (चोबदार) चलने के लिए मार्ग खुला

चालावया। १९ कृष्णाभोंवते राजे घनदाट। आदळती मुकुटांसी मुकुट। ऐसा द्वारकानाथ वरिष्ठ। धर्मराजें देखिला। १२० पांचही जणांसी ते काळीं। क्षेम देत वनमाळी। धर्में हरीचे अंघ्रिकमळीं। मस्तक ठेविलें आदरें। १२१ हरि म्हणे तूं दीक्षित सहजीं। तुझीच पूजा करावी आजी। धर्में श्रीरंग नगरामाजी। मंदिरासी आणिला। २२ चौदा सहस्र मत्त वारण। आणिले द्रव्य अलंकार भरोन। नानारत्नवस्त्रीं पंडुनंदन। द्वारकाधीशें पूजिला। २३ तों सकळ देशींचे नृपवर। घेऊनि पातले करभार। अट्ठ्यायशीं सहस्र ऋषीश्वर। शिष्यांसहित पातले। २४ जरासंधाचे बंदीं पडले। बावीस सहस्र राजे सोडविले। तितुकेही यज्ञ पाहावया आले। करभार घेऊनियां। २५ धनाच्या राशी अपार। स्वर्गाहूनि पाठवी कुबेर। त्रिदशांसहित सुरेश्वर। विमानारूढ पाहतसे। २६ नव ग्रह सुप्रसन्न। जय लाभ उभे कर जोडून। श्रीरामभक्त बिभीषण। आनंद पाहों पातला। २७ सप्त द्वीपें छप्पन्न देश। नव खंडींचे नराधीश।

करते जा रहे थे। १९ श्रीकृष्ण के चारों ओर राजाओं की घनी भीड़ थी। मुकुट मुकुटों से टकराते (छीलते) थे। धर्मराज ने इस प्रकार (आनेवाले) श्रेष्ठ द्वारकानाथ श्रीकृष्ण को देखा। १२० उस समय वनमाली कृष्ण ने पाँचों ही जनों का क्षेमालिंगन किया। तो धर्म ने श्रीहरि के चरण-कमलों पर आदर-पूर्वक मस्तक रखा। १२१ (तब) श्रीहरि बोले, 'आप स्वाभाविक रूप से दीक्षित (दीक्षा ग्रहण किये हुए) हैं। इसलिए आज आप का ही पूजन करें'। (तदनन्तर) धर्मराज कृष्ण को नगर के अन्दर प्रासाद में ले आये। २२ द्वारकाधीश श्रीकृष्ण चौदह सहस्र मत्त हाथियों को (उनपर) धन और आभूषण लादकर ले आये थे। उन्होंने नाना (प्रकार के) रत्न और वस्त्र प्रदान करते हुए पण्डु-नन्दन धर्मराज का पूजन किया। २३ तब (तक) समस्त देशों के नृपवर करभार लेकर आ पहुँचे और अठासी सहस्र श्रेष्ठ ऋषि (अपने-अपने) शिष्यों-सहित आ गये। २४ जरासन्ध के बन्दीगृह में पड़े हुए बाईस सहस्र राजाओं को श्रीकृष्ण ने (भीम द्वारा उसका वध कराते हुए) मुक्त कर दिया था। वे सभी करभार लेकर यज्ञ देखने के लिए आ गये। २५ कुबेर ने स्वर्ग से धन की अपार राशियाँ भेज दी थीं। सुरेश्वर इन्द्र देवों-सहित विमान में आरूढ़ होकर (आकाश से) देख रहे थे। २६ नवों ग्रह[1] तथा साक्षात जय और लाभ (शुभ कामना व्यक्त करते हुए) सुप्रसन्न होकर हाथ जोड़े खड़े थे। श्रीराम का भक्त विभीषण यह आनन्दोत्सव देखने के लिए आ पहुँचा। २७ सातों

१ नवग्रह— देखिए टिप्पणी १, पृ० ४६, अध्याय १।

भीष्मद्रोणादि कौरवेश । पुत्रांसहित धृतराष्ट्र । २८ जे जे आले नरेश्वर । त्यांसी धर्म जावोनि समोर । बहुत करोनियां आदर । इंद्रप्रस्थासी आणिलें । २९ कोटि शिल्पकारीं अगोदर । चंदनसदनें निर्मिलीं विचित्र । सकळ ऋषिराजयांसी पवित्र । तींच राहावया दिधलीं । १३० धर्म म्हणे सहदेवातें । धौम्य पुरोहिताचेनि अनुमतें । जे जे सामग्री लागे यज्ञातें । ते ते सिद्ध करीं सत्वर । १३१ मग भीष्म आणि जगन्मोहन । एकासनीं बैसवून । कृष्णपदीं मस्तक ठेवून । धर्मराज विनवीतसे । ३२ जें जें मनीं इच्छिलें । तें तें हरीनें पुरविलें । सकळ राजे भृत्य जाहले । द्रव्य संचलें असंभाव्य । ३३ तरी येथें कार्य वांटिल्याविण । सिद्धी न पावे कदा यज्ञ । तरी कोणा योग्य कोण कारण । तूं नारायण जाणसी । ३४ आम्ही नेणतीं लेंकुरें श्रीरंगा । आम्हांसही एक कार्य सांगा । कंसांतका भक्तभवभंगा । आज्ञा करावी सत्वर । ३५ मग बोले श्रीकरधर । मी चतुर नव्हें नृपवर । नंदाचा गोरक्षक साचार । मज हा विचार समजेना । ३६ यावरी अर्जुनाचा

द्वीपों, छप्पनों देशों, नवों खण्डों[1] के नरपति आ गये । कौरवराजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों तथा भीष्म-द्रोण आदि सहित आ गया । २८ जो-जो नरपति आ गये, उन-उनकी अगुवानी करने के लिए आगे जाकर धर्मराज उनका बहुत आदर करते हुए उन्हें इन्द्रप्रस्थ में ले आये । २९ पहले ही कोटि (-कोटि) शिल्पियों ने चन्दन के अद्भुत (असाधारण) भवनों का निर्माण किया था । (धर्म ने) समस्त ऋषियों और राजाओं को रहने के लिए वे ही दे दिये । १३० (तदनन्तर) धर्म ने सहदेव से कहा, ' पुरोहित धौम्य ऋषि की अनुज्ञा के अनुसार, जो-जो सामग्री यज्ञ के लिए आवश्यक है, है, उस-उसको झट से सिद्ध कर दो ' । १३१ अनन्तर धर्मराज ने (आचार्य) भीष्म और जगन्मोहन श्रीकृष्ण को एक आसन पर बैठाकर, श्रीकृष्ण के चरणों पर मस्तक रखते हुए विनती की । ३२ ' मैंने मन में जिस-जिसकी इच्छा की, उस-उसको (आप) श्रीहरि ने सम्पूर्ण किया । समस्त राजा मेरे सेवक हुए हैं । धन (भी) असम्भाव्य रूप से इकट्ठा हुआ है । ३३ तो यहाँ कार्य को बग़ैर बाँट दिये, यज्ञ कदापि सिद्धि को नहीं प्राप्त हो पाएगा । फिर हे नारायण, किसके लिए कौन काम योग्य है, इसे आप जानते हैं । ३४ हे श्रीरंग, हम बच्चे अज्ञान हैं । हमें भी कोई एक काम (करने को) कहिए । हे कंसान्तक, हे भक्तों के सांसारिक बन्धनों-दुःखों को नष्ट करनेवाले, झट से आज्ञा कीजिए ' । ३५ तब श्रीकरधर (श्रीकृष्ण) बोले, ' हे नृपवर, मैं चतुर नहीं हूँ । मैं सचमुच नन्द

---

१ सप्त द्वीप— देखिए टिप्पणी ५, पृ० १४२, अध्याय ५ । छप्पन देश— देखिए टिप्पणी १, पृ० १४३, अध्याय ५ । नवखण्ड— देखिए टिप्पणी ४, पृ० १४२, अध्याय ५ ।

सारथि होय। हें तों जाणे भुवनत्रय। धर्में धरिले दृढ पाय। तरी मी काय करूं आतां। ३७ हरि म्हणे मी एक कार्य करीन। द्विजांचीं चरणांबुजें प्रक्षाळीन। आणि उच्छिष्ट पात्रें काढीन। इतुकें कारण मज दीजे। ३८ ऋषींसी लागतील जे जे उपचार। ते ते पुरवावे समग्र। द्रोणआज्ञेनें द्रोण-पुत्र। अश्वत्थामा करो हें। ३९ द्रव्य लागेल जें अपार। तें विदुरें द्यावें समग्र। राजपूजनासी चतुर। संजय शिष्य व्यासाचा। १४० अपार आल्या राजसेना। त्यांसी भक्ष्यभोज्याची विचारणा। हें कार्य सांगा दुःशासना। अवश्य म्हणे धर्मराज। १४१ ब्राह्मणांसी दक्षिणा सहज। देईल द्रोणाचार्य महाराज। जो प्रतापसूर्य तेजःपुंज। वेदज्ञ आणि रणपंडित। ४२ आणिताती राजे बहु धनें। तीं दृष्टीसीं पाहोनि दुर्योधनें। मग भांडारीं ठेविजे यत्नें। अवश्य म्हणे पंडुपुत्र। ४३ यज्ञासी येतील नाना विघ्नें। तितुकीं निवारावीं अर्जुनें। ब्राह्मणांसी प्रार्थना भीमसेनें। भोजनवेळे करावी। ४४ सुमनमाळा गंधाक्षता। धूपादि परिमळद्रव्य तत्त्वतां। हीं अर्पावीं समस्तां। नकुळालागीं सांगितलें। ४५ घृत मधु दधि पंचामृतें। हीं सहदेवें वाढिजे

का गोरक्षक (चरवाहा) हूँ। मुझे यह बात सुझायी नहीं दे रही है। ३६ इसके पश्चात मैं अर्जुन का सारथी (हो जानेवाला) हूँ। यह तो त्रिभुवन जानता है'। (यह सुनकर) धर्म ने दृढ़तापूर्वक उनके पाँव पकड़े (और कहा)— 'तो मैं अब क्या करूँ?'। ३७ तो श्रीहरि बोले, 'मैं एक काम करूँगा। मैं ब्राह्मणों के पाँव धोऊँगा और जूठे पात्र उठा लूँगा। मुझे इतना काम (करने को) दीजिए। ३८ ऋषियों को जो-जो उपचार (साधन-सामग्री) आवश्यक होंगे, उन सबको सम्पूर्ण कीजिए। द्रोण की आज्ञा से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा इसे करें। ३९ जो अपार धन लगेगा, वह सब विदुर दें। राजाओं के पूजन के लिए चतुर (कुशल) हैं व्यास के शिष्य संजय। १४० अपार राजसेनाएँ आयी हुई हैं। उनके लिए भक्ष्य-खाद्य सम्बन्धी पूछताछ (व्यवस्था) करनी है, यह काम दुःशासन को बताइए'। तो धर्मराज बोले, 'अवश्य'। १४१ (श्रीकृष्ण बोले—) 'जो तेजःपुंज और प्रताप-सूर्य हैं, वेदों के ज्ञाता और रण-पण्डित हैं, वे द्रोणाचार्य महाराज ब्राह्मणों को स्वाभाविक रूप से दक्षिणा प्रदान करेंगे। ४२ राजा बहुत धन ला रहे हैं। दुर्योधन उसे अपनी आँखों से देखकर, अनन्तर भण्डार-गृह में यत्न-पूर्वक रखें'। (इसपर) पण्डु-पुत्र धर्म बोले, 'अवश्य'। ४३ यज्ञ में अनेकानेक विघ्न आ जाएँगे। अर्जुन उन सबका निवारण करें। भीमसेन भोजन के समय ब्राह्मणों से विनती करें (विनती करते हुए यथेष्ट भोजन करा दें)'। ४४ श्रीकृष्ण ने नकुल के लिए यह काम (निर्धारित करते हुए) कहा— 'पुष्पमालाएँ, चन्दन-अक्षत, धूप आदि सुगन्धि-युक्त द्रव्य वे सचमुच सबको समर्पित करें। ४५

एकचित्त । न्यून पूण होईल तेथें । गंगात्मजें विलोकिजे । ४६ विप्र-राजयांच्या बैसती पंक्ती । त्यांसी वाढील द्रौपदी सती । अन्नपूर्णा केवळ भगवती । करील तृप्त समस्तां । ४७ प्रतिविंध्यादि राजकुमर । अत्यंत सुगंध करूनि नीर । भोजनकर्त्यांसी वारंवार । पुरविजे तयांनीं । ४८ त्रयोदशगुणी विडे विचित्र । एक तांबूल सहस्रपत्र । हें धृष्टद्युम्नासी सांगा साचार । युधिष्ठिर अवश्य म्हणे । ४९ धर्मराया तूं यजमान । भोंवते घेऊनि दिव्य ब्राह्मण । यथासांग करीं यज्ञ । जेणें त्रिभुवन धन्य म्हणे । १५० ॠत्विज नेमिले चौघेजण । कमलोद्भव मुख्य पूर्ण । दुजा सत्यवतीहृदय-रत्न । वेदाब्जसूर्य केवळ जो । १५१ तिजा ब्रह्मनंदन वसिष्ठ । चौथा याज्ञवल्क्य वरिष्ठ । हे चौघे ॠत्विज स्पष्ट । धर्मराया योजीं कां । ५२ राजा आणि भणंग दीन । सर्वांसी अन्न समान । हें मुख्य प्रभूचें लक्षण । यज्ञ पूर्ण होय तेणें । ५३ ऐसी आज्ञा देऊनि सकळां । मग यज्ञासी आरंभ केला । दीक्षाग्रहणीं धर्म बैसला । विप्रांसहित मखाजवळी । ५४ एक

घी, मधु, दही (तथा दूध और शक्कर) —ये पंचामृत सहदेव एकाग्रचित्त से परोसें । भीष्म देखें कि (जहाँ) कमी हो, तो (उसकी सम्पूर्ति करते हुए) वह (वस्तु) पूर्ण (पर्याप्त) हो जाए । ४६ (भोजन करने के लिए) विप्रों और राजाओं की पंगतें होंगी । उनको द्रौपदी सती (भोज्य वस्तुएँ) परोस देगी । वह केवल (साक्षात) भगवती अन्नपूर्णा है । वह सबको तृप्त कर देगी । ४७ प्रतिविन्ध्य आदि राजकुमार पानी को अत्यधिक सुगन्धित बनाकर भोजनकर्ताओं को बार-बार सम्पूर्त करें । ४८ सचमुच धृष्टद्युम्न को यह बताया जाए कि असाधारण रूप से त्रयोदश गुणों से युक्त बीड़े (सिद्ध) हों । एक-एक बीड़ा सहस्र पत्तों का हो '। तो युधिष्ठिर बोले, 'अवश्य'। ४९ "हे धर्मराज, आप यजमान हैं । अपने चारों ओर दिव्य ब्राह्मणों को लेकर समस्त अंगों-सहित यथाविधि यज्ञ सम्पन्न करें, जिससे त्रिभुवन (आपको तथा आपके यज्ञ को) 'धन्य' कहें । १५० ये चारों जन ॠत्विज नियुक्त कर दिये (जाएँ)— उनमें कमलोद्भव ब्रह्मा पूर्ण रूप से मुख्य हों; दूसरे (ॠत्विज) हों सत्यवतीहृदयरत्न व्यासजी, जो केवल वेदों रूपी कमलों के लिए सूर्य हैं; तीसरे होंगे ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ और चौथे होंगे वरिष्ठ ॠषि याज्ञवल्क्य । हे धर्मराज, इनको नियुक्त कीजिए । १५१-१५२ राजा और दीन भिखमंगा —सबके लिए अन्न-समान हो । मुख्य प्रभु अर्थात यजमान के लिए यह आवश्यक लक्षण है । उससे वहाँ (अर्थात ऐसे समदृष्टि यजमान द्वारा किया हुआ) यज्ञ (ही) पूर्ण हो जाता है "। ५३ सबको इस प्रकार आज्ञा देकर अनन्तर धर्मराज ने यज्ञ आरम्भ किया । वे यज्ञ के पास ब्राह्मणों-सहित दीक्षा-ग्रहण के लिए बैठ गये । ५४ एक संवत्सर अर्थात बर्ष तक वसुधारा (पूर्णाहुति के

संवत्सरपर्यंत। वसुधारा अखंड चालत। जातवेद जाहला तृप्त। न्यून पदार्थ एकही न दिसे। ५५ विभाग पावोनि समस्त। जयजयकारें देव गर्जत। असंभाव्य पुष्पवृष्टि होत। शक्रप्रस्थावरी पैं। ५६ ऋषि राजे थोरलहान। रत्नताटीं करिती भोजन। षड्रस अन्न जेविती पूर्ण। जें दुर्लभ सुरांतें। ५७ तों विप्रांसी प्रार्थना करी भीमसेन। बोले परम कठोर वचन। म्हणे टाकाल जरी अन्न। तरी बांधीन शेंडीसी। ५८ उदरापुरतें मागोनि घ्यावें। पात्रीं सांडितां बरें नव्हे। म्हणे माझे स्वभाव ठावे। तुम्हां आहेत सर्वही। ५९ भीमाच्या धाकेंकरून। ब्राह्मण जेविती किंचित अन्न। विप्र गेले शुष्क होऊन। तें जगज्जीवनें जाणिलें। १६० भीमासी म्हणे जगज्जीवन। गंधमादनऋषि निपुण। त्यासी सत्वर आणा बोलावून। अगत्य कारण आहे त्याचें। १६१ भीमाचे ठायीं अभिमान। मीच एक बळें आगळा पूर्ण। वृकोदर जात वेगेंकरून। गंधमादन आणावया। ६२ तों वाटेसी जैसा महापर्वत। वृद्धवेष धरूनि बहुत। बैसला असे हनुमंत। पुच्छ आडवें टाकूनियां। ६३ त्यासी भीम बोले प्रौढी। वानरा वाटेचें पुच्छ

समय अर्पित की जानेवाली घी की अखण्ड धारा) अखण्ड रूप से चलती रही; तो अग्नि (देव) तृप्त हो गये। (यज्ञकर्म की विधि आदि में) एक पदार्थ की भी कमी नहीं दिखायी दी। ५५ समस्त देव अपने-अपने हविर्भाग को प्राप्त होकर जय-जयकार करते हुए गर्जन करते रहे। इन्द्रप्रस्थ पर असम्भाव्य रूप से पुष्प-वृष्टि होती रही। ५६ बड़े-छोटे (समस्त) ऋषि और राजा रत्नमय थालियों में भोजन करते थे। जो देवों के लिए (भी) दुर्लभ हो, ऐसे छहों रसों से पूर्णतः युक्त अन्न का सेवन वे करते थे। ५७ तब (एक दिन) भीमसेन ने विप्रों से प्रार्थना की। वे परम कठोर वचन बोले। उन्होंने कहा, 'यदि (थाली में) अन्न छोड़ दें, तो मैं उसे शिखा में बाँध दूंगा। ५८ पेट के लिए पर्याप्त (भर-पेट) माँग लें; पात्रों में छोड़ने पर ठीक नहीं होगा'। वे (फिर) बोले, 'मेरे सभी स्वभाव (के गुण-दोष) आपको विदित हैं'। ५९ (फलतः) भीम की इस धमकी के कारण ब्राह्मण थोड़ा-सा अन्न खाने लगे; अतः वे शुष्क अर्थात सूखकर दुबले (कृश) हो गये। उसे जगज्जीवन श्रीकृष्ण ने जान लिया। १६० तो वे जगज्जीवन श्रीकृष्ण भीम से बोले, 'गन्धमादन ऋषि निपुण हैं। उनको झट से बुलाकर ले आओ। उनके लिए महत्त्वपूर्ण कार्य है'। १६१ भीम में यह अभिमान था कि बल में मैं ही एक (मात्र) पूर्ण अनोखा (व्यक्ति) हूँ। तो वृकोदर (अर्थात) भीम गन्धमादन ऋषि को लाने के लिए वेगपूर्वक चले गये। ६२ तो मार्ग में हनुमान बूढ़े का वेष धारण करके अपनी पूँछ को आड़े रखकर महापर्वत जैसा बैठा था। ६३ भीम उससे घमण्ड के साथ बोले, 'अरे वानर, मार्ग से

काढीं। मज जाणें आहे तांतडी। ऋषिदर्शनाकारणें। ६४ तों हनुमंत बोले नम्र वचन। भीमा मज आलें वृद्धपण। हें पुच्छ जड जाहलें पूर्ण। आतां माझेनी उचलेना। ६५ तरी तूं बळिया भीमसेन। एकीकडे ठेवीं पुच्छ उचलून। अवश्य म्हणे कुंतीनंदन। पुच्छ उचलूं पाहतसे। ६६ नव सहस्र वारणांचें बळ। तें भीमसेनें वेंचिलें सकळ। परी पुच्छ न ढळे अढळ। जैसा अचल पडियेला। ६७ बळहत जाहला भीमसेन। गदगदां हांसे वायुनंदन। म्हणे धर्मानुजा गर्व सांडोन। कृष्णभजनीं राहें तूं। ६८ मग भीमें स्तवूनि हनुमंता। म्हणे तूं आवडसी रघुनाथा। दशास्यबळदर्पहंता। सीताशोकहर्ता तूंचि पें। ६९ निरभिमानी भीमासी देखिलें। मग पुच्छ हनुमंतें काढिलें। गंधमादन पर्वतासी ते वेळे। धर्मानुज पातला। १७० दृष्टीं देखिला गंधमादन। अंग जैसें दिव्य सुवर्ण। परी तयासी सूकराचें वदन। दुर्गंध पूर्ण येतसे। १७१ भीमें केला नमस्कार। उभा राहिला जोडूनि कर। म्हणे तुम्हांसी पाचारी यादवेंद्र। याग होत धर्मसदनीं। ७२ मग बोले गंधमादन। हें परमदुर्गंधि सूकरवदन। मी तेथें न यें घेऊन।

पूंछ को हटा ले। मुझे ऋषि (गन्धमादन) के दर्शन के निमित्त झट से जाना है'। ६४ तो हनुमान नम्रता से युक्त यह बात बोले, 'हे भीम, मुझे बुढ़ापा आ गया है। यह पूंछ पूर्णतः भारी हुई है— अब मुझसे वह उठायी नहीं जाती। ६५ तो तुम भीमसेन बलवान हो। पूंछ को उठाकर एक ओर रख दो'। कुन्ती-नन्दन भीम बोले, 'अवश्य'। अनन्तर वे पूंछ को उठाने (का यत्न करने) लगे। ६६ भीमसेन में नौ सहस्र हाथियों का बल था। उन्होंने उस समस्त बल को लगा दिया; फिर भी वह पुच्छ डिगा (तक) नहीं, जैसे कोई अडिग पर्वत पड़ा हुआ हो। ६७ इससे भीम हत-बल हो गये (उनका बल नष्टप्राय हुआ)। तो वायुनन्दन हनुमान खिल-खिलाकर हँसने लगा। वह बोला, 'हे धर्मानुज, घमण्ड को छोड़कर तुम श्रीकृष्ण की भक्ति में लगे रहो (मग्न रहो)'। ६८ अनन्तर हनुमान की स्तुति करते हुए भीम बोले, 'तुम रघुनाथ राम को प्रिय लगते हो। तुम ही दशानन के बल-सम्बन्धी घमण्ड को नष्ट करनेवाले और सीता के शोक का हरण करनेवाले (सिद्ध हुए) हो'। ६९ हनुमान ने भीम को घमण्ड-रहित हुए देखा, तब पुच्छ को हटा लिया। उस समय धर्मानुज भीम गन्धमादन पर्वत जा पहुँचे। १७० भीम ने गन्धमादन को अपनी आँखों से देखा। उनका शरीर दिव्य सुवर्ण जैसा था; फिर भी उनका मुख सूअर का-सा था। उससे पूरी (अत्यधिक) दुर्गन्धि आ रही थी। १७१ भीम ने उन्हें नमस्कार किया और वे हाथ जोड़कर खड़े रहे। बोले, 'आपको यादवेन्द्र श्रीकृष्ण ने बुलाया है। धर्मराज के भवन में यज्ञ हो रहा है'। ७२ तब गन्धमादन बोले, 'मैं परम दुर्गन्धि से

उपहासिती सर्वही । ७३ भीम म्हणे महाऋषी । तुमची कांति सुवर्णऐसी। ऐसें तुमचें मुख व्हावयासी । काय कारण सांगा पां ७४ । येरू म्हणे ऐक सावधान । पूर्वी मी होतों बहुत सधन । सर्व दानें केलीं पूर्ण । यथाविधी-करूनियां । ७५ परी ब्राह्मणाचा जाय प्राण । ऐसें बोलिलों कठोर वचन। त्यालागीं जाहलें ऐसें वदन । पंडुनंदना जाण पां । ७६ भीमा तूं तरी सावधान । नको बोलूं कठोर वचन । मनांत दचकला भीमसेन । आला परतोन इंद्रप्रस्था । ७७ मग विप्रांसी म्हणे तो तेव्हां । स्वामी सावकाश जी जेवा । न रुचे त्याचा त्याग करावा । प्रसाद ठेवावा निजपात्रीं । ७८ विप्र म्हणती नवल जाहलें । यासी हे गुण कोणीं लाविले । प्रार्थना करितो नम्र बोलें । आमुचें फळलें भाग्य वाटे । ७९ असो धर्माची संपदा बहुत । देखतां दुर्योधन संतापत । म्हणे याचा सहाकारी कृष्णनाथ । याचेनि पूर्ण सर्व होय । १८० श्रीकृष्णासी म्हणे दुर्योधन । तुझें पांडवांवरी बहुत मन । तूं एवढा देव होऊन । समता नसे तुझे ठायीं । १८१ पांडवांकडे धरिसी प्रीती। तसी आम्हांकडे नाहीं वृत्ती । तुझे ठायीं द्वैत श्रीपती । नवल मज

युक्त अपने इस शूकर-मुख को लेकर वहाँ नहीं आऊँगा। सभी मेरा उपहास करेंगे '। ७३ (इसपर) भीम बोले, ' हे महान ऋषि, आपकी कान्ति तो सुवर्ण की-सी है; फिर कहिए, आपके मुख के इस प्रकार होने का क्या कारण है '। ७४ तो वे बोले, ' सावधान होकर सुनो। पहले मैं बहुत धनवान था। मैंने यथाविधि समस्त दान पूर्णतः प्रदान किये। ७५ परन्तु मैंने ऐसा कठोर वचन कहा, जिससे एक ब्राह्मण के प्राण चले गये। हे पण्डु-नन्दन, यह जान लो कि उसके कारण मेरा मुख ऐसा हो गया। ७६ हे भीम, तुम तो इससे सावधान (सतर्क) रहो। (किसी से कोई) कठोर वचन मत बोलो '। (यह सुनते ही) भीमसेन मन में चौंक उठे। वे लौटकर इन्द्रप्रस्थ आ गये। ७७ अनन्तर वे फिर ब्राह्मणों से बोले, ' अजी स्वामियो, धीरे-धीरे जीमिए। जो अच्छा नहीं लगे, उसे त्यज दें और प्रसाद-रूप में अपने पात्र में रख दें '। ७८ तो विप्रों ने कहा (सोचा)— ' चमत्कार हो गया। इन्हें ये (सद्गुण) किसने धारण कराये। ये तो विनम्र शब्दों में प्रार्थना कर रहे हैं। लगता है, हमारा भाग्य फल को प्राप्त हुआ है '। ७९ अस्तु। धर्म की सम्पदा बहुत थी। उसे देखकर दुर्योधन कुपित हो उठा। वह बोला (उसे लगा)— इसके सहायक कृष्णनाथ हैं। इसलिए इससे यह सारा पूरा हो रहा है। १८० दुर्योधन श्रीकृष्ण से बोला, ' तुम्हारा पाण्डवों पर बहुत मन (लगा) है। तुम्हारे इतने बड़े देवता होने पर भी तुममें समता भाव नहीं है। १८१ तुमने जिस प्रकार पाण्डवों के प्रति प्रीति धारण की है, उसी प्रकार की तुम्हारी मनोवृत्ति हमारे प्रति नहीं है। हे श्रीपति, तुममें

वाटतसे। ८२ हरि म्हणे दुर्योधना। मी समसमान अवघियांसी जाणा। एकासी अधिक एकासी उणा। सर्वथा नाहीं विचारीं। ८३ दरिद्री राजा हो कां रंक। सर्वांसी समान जैसा अर्क। किंवा गंगेचें उदक। सर्वांसही सम जैसें। ८४ कीं सर्वां घटीं समान अंबर। कीं समान जैसा समीर। कीं गगनीं उगवतां रोहिणीवर। शीतळ जैसा सर्वांतें। ८५ तैसा मी दुर्योधना जाण। परी जे कां कुटिल जन। ते सम विषम पूर्ण। माझ्या ठायीं भाविती। ८६ भक्त धरिती अत्यादर। त्यांसी जवळी वाटें मी यादवेंद्र। मी समीप असोनि साचार। अभक्त दूरी भाविती। ८७ त्याची पावावया प्रचीती। दुर्योधनासी म्हणे यदुपती। एक कारण आहे निश्चितीं। तें तूं ऐक सुयोधना। ८८ इतुके बैसले ब्राह्मण। यांत एक सत्पात्र निवडोन। लवकरी आणीं उत्तम दान। देणें असे तयातें। ८९ दुर्योधन चालिला पाहावया। मग बोलाविलें धर्मराया। द्विजांत एक नष्ट निवडूनियां। वेगें आणीं आतांचि। १९० धर्म पाहे जो ब्राह्मण। तो केवळ दिसे सूर्य-

---

ऐसा द्वैतभाव है —मुझे इससे आश्चर्य हो रहा है'। ८२ तो श्रीहरि बोले, 'हे दुर्योधन, जान लो कि मैं सबके प्रति सम-समान हूँ। विचार-भावों में मैं एक के लिए अधिक और (दूसरे) एक के लिए कम बिलकुल नहीं हूँ। ८३ जिस प्रकार, कोई दरिद्र हो, राजा हो अथवा रंक-धनहीन हो, तो भी सूर्य सबके लिए समान होता है, अथवा जिस प्रकार गंगा का उदक सभी के लिए समान होता है, अथवा आकाश समस्त घटों के लिए समान होता है, अथवा पवन (सबके लिए) समान होता है, अथवा जिस प्रकार आकाश में उदित हो जाने पर रोहिणी-पति चन्द्र सबके लिए (समान रूप से) शीतल होता है, उसी प्रकार, हे दुर्योधन, मुझे (सबके लिए सम-समान) जान लो। परन्तु जो कुटिल (दुष्ट, कपटी) लोग होते हैं, वे मुझमें पूर्ण रूप से सम वा विषम भाव (का अस्तित्व) मानते हैं। ८४-८६ भक्त (मेरे प्रति) अति आदर धारण करते हैं; मैं यादवेन्द्र उनको निकट (प्रिय) जान पड़ता हूँ; (परन्तु) मेरे सचमुच निकट होने पर भी अभक्त मुझे (अपने से) दूर मानते हैं'। ८७ यदुपति दुर्योधन से बोले, 'इस सम्बन्ध में विश्वास प्राप्त करने के लिए निश्चय ही एक कार्य है। हे सुयोधन, उसे तुम सुन लो। ८८ (यहाँ) इतने ब्राह्मण बैठे हुए हैं। इनमें से एक सत्पात्र ब्राह्मण को चुनकर झट से ले आओ। उसे उत्तम दान देना है'। ८९ (यह सुनकर) दुर्योधन देखने (खोजने— चयन करने) के लिए चला गया। अनन्तर (श्रीकृष्ण ने) धर्मराज को बुला लिया (और कहा)— 'इन ब्राह्मणों में से एक खल, दुष्ट को चुनकर शीघ्रता से अभी ले आना'। १९० तो धर्म ने जिस किसी ब्राह्मण को देखा, तो उन्हें वह विशुद्ध सूर्यनारायण (जैसा) दिखायी दिया; हर एक महातपस्वी,

नारायण। महातपस्वी पुण्यपरायण। नष्ट एकही दिसेना। १९१ परतोनि आला हरीपाशीं। म्हणे हे अवघेचि पुण्यराशी। अपवित्र गुण एकापाशीं। न दिसे कोठें सर्वथा। ९२ इकडे दुर्योधन शोधीत। अवघी ऋषिमंडळी न्याहाळीत। म्हणे एकही धड नाहीं त्यांत। दूषणें बहुत दीसती। ९३ हरीजवळी आला सत्वर। म्हणे हे अवघेचि अपवित्र। एकही न दिसे सत्पात्र। दोषी सर्वत्र असती पैं। ९४ दुर्योधनासी म्हणे जगज्जीवन। तुझें हृदय कपटमलिन। सदोषिया निर्दोष जाण। त्रिभुवनीं दिसेना। ९५ दुरात्मा जो दुर्बुद्धि खळ। त्यासी अवघे दिसती अमंगळ। दृष्टीं कोणी न दिसे निर्मळ। पापें समूळ वेष्टिला। ९६ वेश्येचिये नयनीं। सकळ स्त्रिया दिसती जारिणी। तैसा तूं दुरात्मा पापखाणी। मलिन मनीं सर्वदा। ९७ धर्मासी अवघे दिसती पुण्यवंत। तेचि तुज दोषी भासत। दुर्योधन न बोले तटस्थ। जो अति उन्मत्त विषयांध। ९८ असो एक वर्षपर्यंत। राजसूय-यज्ञोत्साह होत। तों नवल वर्तलें एक तेथ। श्रोते सावचित्त ऐका पां। ९९

पुण्यपरायण दिखायी दिया; उन्हें एक भी खल-दुष्ट नहीं दिखायी दिया। १९१ तो वे लौटकर श्रीहरि के पास आये और बोले, 'ये तो समस्त पुण्य-राशि-स्वरूप हैं। कहीं कोई खल-दुष्ट बिलकुल नहीं दिखायी दे रहा है'। ९२ इधर दुर्योधन खोजता (जा रहा) था— वह समस्त ऋषि-मण्डली को निरख रहा था। वह बोला (उसे जान पड़ा)— 'उनमें एक भी अच्छा नहीं है। (प्रत्येक में) अनेक दोष दिखायी दे रहे हैं'। ९३ वह झट से श्रीहरि के पास आ गया और बोला, 'ये सभी अपवित्र हैं; एक भी सत्पात्र नहीं दिखायी दे रहा है। सब ओर दोष-युक्त (पापी, दुराचारी) हैं'। ९४ (यह सुनकर) जगज्जीवन श्रीकृष्ण दुर्योधन से बोले, 'तुम्हारा हृदय कपट से मलिन है। जान लो कि दोष-युक्त (मनुष्य) को त्रिभुवन में कोई भी दोषहीन (मनुष्य) नहीं दिखायी देता। ९५ जो (स्वयं) दुरात्मा हो, दुर्बुद्धि-युक्त, खल हो, उसे सब अमंगल दिखायी देते हैं। उसकी दृष्टि को कोई भी निर्मल नहीं दिखायी देता। (क्योंकि) वह (स्वयं) पाप से मूलसहित घिरा हुआ होता है। ९६ वेश्या के नयनों को समस्त स्त्रियाँ जारिणी दिखायी देती हैं। उसी प्रकार तुम दुरात्मा हो, पाप की खान हो, मन से नित्य मलिन (रहते) हो। (अतः तुम्हें सब दुरात्मा, पापी दिखायी देते हैं)। ९७ धर्म को सब पुण्यवान दिखायी दिये। वे भी तुम्हें दोषी (पापी) आभासित हो गये'। (यह सुनकर) जो अति उन्मत्त, विषयान्ध था, वह दुर्योधन कुछ नहीं बोला। वह चौंक उठा। ९८ अस्तु। एक वर्ष तक राजसूय यज्ञोत्सव चल रहा था। तब वहाँ एक आश्चर्य हो गया। हे श्रोताओ, उसे अवधानपूर्वक सुनिए। ९९ जान लीजिए कि गंगा के

जान्हवीचे तीरीं जाण। कोणी एक तपस्वी ब्राह्मण। अरण्यामाजी गुंफा बांधोन। स्त्रियेसहित राहतसे। २०० परम तेजस्वी देदीप्यमान। सदा करी शिवउपासन। नित्य कैलासाहूनि विमान। माध्यान्ह-समयीं येत तया। २०१ तया विमानीं बैसोनि दोघें। नित्य कैलासासी जाती वेगें। शिवार्चन करिती निजांगें। येती परतोनि आश्रमा। २ ऐसें असतां एके काळीं। दोघें हिंडती वनस्थळीं। विमान यावयाची वेळ जाहली। पुष्पें तोडिलीं सवेग। ३ तों एकांत वन देखोन। कामातुर जाहला ब्राह्मण। स्त्रियेसी म्हणे भोगदान। देईं मज येथेंचि। ४ तंव ते म्हणे भ्रतारासी। चंडांशु आला माध्यान्हासी। पुढें जाणें शिवपूजेसी। हे गोष्टी मनीं धरूं नका। ५ तुम्ही सर्व शास्त्रीं निपुण। बरवें पहा विचारून। तंव तो कामें व्यापिला पूर्ण। घूर्णित नयन जाहले। ६ अंतर भरलें अनंगें। पंथ सोडूनि जाय आडमार्गें। तों काळसर्पें डंखिला वेगें। प्राण गेला तत्काळ। ७ अचेतन पडिलें शरीर प्रेत। जवळी स्त्री आली धांवत। अट्टहासें शोक करीत। तों नारद तेथें पातला। ८ नारद पुसे काय जाहलें। येरीनें जें जाहलें तेंचि कथिलें। नारद म्हणे काय केलें। कां वचन मोडिलें

तीर पर अरण्य में गुफा बनाकर कोई एक तपस्वी ब्राह्मण अपनी स्त्री-सहित रहता था। २०० वह परम तेजस्वी, देदीप्यमान था। वह नित्य शिवजी की उपासना करता था। मध्याह्न के समय उसके लिए नित्य-कैलास से विमान आता था। २०१ वे दोनों उस विमान में बैठकर नित्य प्रति वेगपूर्वक कैलास पर जाते; अपने हाथों शिवजी का पूजन करते और लौटकर अपने आश्रम आ जाते। २ ऐसा होते हुए (इस स्थिति में) एक समय वे दोनों वनस्थल में विचरण कर रहे थे। विमान के आने का समय हो गया। (यह देखकर) उन्होंने झट से फूल तोड़ लिये। ३ तब एकान्त वन को देखकर वह ब्राह्मण कामातुर हो गया। वह स्त्री से बोला, 'मुझे यहीं भोग-दान दे दो'। ४ तब वह पति से बोली, 'सूर्य मध्याह्न समय पर आ गया है। (हमें) आगे (अब) शिव-पूजन के लिए जाना है। (अतः) यह बात मन में न लाओ (सोचो)। ५ तुम सब शास्त्रों में निपुण हो। भला, विचार करके तो देखो'। तब वह कामभाव से पूर्णरूप से व्याप्त हो गया था। उसके नेत्र घूर्णित (नशे में चूर) हो गये थे। ६ उसका अन्तःकरण कामभाव से भर गया था। वह मार्ग छोड़कर उपमार्ग से जाने लगा। तो उसे शीघ्र ही कालसर्प ने काट लिया। (अतः) उसके प्राण तत्काल निकल गये। ७ उसका शरीर अचेतन होकर प्रेतस्वरूप पड़ा रहा। उसकी स्त्री दौड़ती हुई पास आ गयी। वह ढाढ़ मारकर शोक करने लगी; तो (अकस्मात) नारद वहाँ आ पहुँचे। ८ नारद ने (उसे देखकर) पूछा, 'क्या हुआ ?' तो उस (स्त्री)

भ्रताराचें। ९ तंव ती म्हणे नारदमुनी। कांहीं उपाय सांगा ये क्षणीं। येरू म्हणे शक्रप्रस्थासी घेऊनी। प्रेत जाईं सवेग। २१० पुढें चाले नारदमुनी। मागें येत प्रेत घेऊनी। यज्ञमंडपांत आणूनी। अकस्मात टाकिलें। २११ यज्ञापाशीं टाकिलें प्रेत। तेथें मिळाले श्रेष्ठ समस्त। म्हणती पैल तें इंद्रप्रस्थ। उचलीं कुणप वेगेंसी। १२ म्हणे सर्पदंश जाहला भ्रतारासी। कोणी उठवा सत्वर यासी। तरीच मख सुफळ पुण्यराशी। देखोनि युधिष्ठिर घाबरला। १३ म्हणे यज्ञासी विघ्न ओढवलें। जैसें दुग्धामाजी सैंधव पडलें। स्वाहाकार खोळंबले। हस्त आंखडिले ब्राह्मणीं। १४ धर्मराज झाला दीनवदन। समस्तां विनवी कर जोडून। कोणी तपस्तेज वेंचून। उठवा शीघ्र कुणप हें। १५ तटस्थ पाहती सभाजन। कोणी न बोलती वचन। धर्मराज उदकें भरूनि नयन। जगद्वंद्याकडे पाहे। १६ म्हणे कैवारिया भक्तवत्सला। शेवटीं हा अनर्थ ओढवला। जैसा विदेशाहूनि गांवा आला। वेशींत नागविला तस्करीं। १७ हातासी जों लागावें निधान। तों तेथें विवशी पडे

ने जो हुआ था वही कह दिया। (उसे सुनकर) नारद बोले, 'यह क्या किया ? पति की बात (आज्ञा) क्यों अस्वीकार की'। ९ तब वह बोली, 'हे नारद मुनि, इस क्षण कोई उपाय बताइए'। तो वे बोले, 'इस शव को लेकर वेगपूर्वक इन्द्रप्रस्थ जाओ'। २१० नारद मुनि आगे (-आगे) चले जाने लगे ; उनके पीछे शव को लेकर (आते हुए) उस स्त्री ने यज्ञ-मण्डप में लाकर सहसा उसे रख दिया। २११ उसने यज्ञ के पास शव को रख दिया। वहाँ समस्त श्रेष्ठ पुरुष इकट्ठा हुए थे। वे बोले, 'उस ओर वह (देखो) इन्द्रप्रस्थ है। झट से इस शव को उठा लो'। १२ तो वह बोली, 'पति को सर्प-दंश हुआ है। आपमें से कोई इन्हें (पुनर्जीवित करके) झट से उठा लें। तो ही यह यज्ञ सुफल-युक्त पुण्य-राशि (सिद्ध) हो जाएगा'। यह देखकर युधिष्ठिर घबड़ा गये। १३ वे बोले, 'यज्ञ में विघ्न आ टपका, जैसे दूध में लवण पड़ गया हो'। (तदनन्तर) स्वाहाकार रुक गये। ब्राह्मणों ने हाथ खींच लिये। १४ (फलतः) धर्मराज दीनवदन हो गये। हाथ जोड़कर उन्होंने सबसे विनती की, 'कोई अपने तप के तेज को लगाकर इस शव को झट से उठा लें'। १५ सभाजन चौंककर देखते रहे। कोई भी कोई बात नहीं बोले। तो धर्मराज ने (अश्रु-) जल से आँखों को भरकर जगद्वन्द्य श्रीकृष्ण की ओर देखा। १६ वे बोले, 'हे (मेरे) सहायक, हे भक्त-वत्सल, अन्त में यह संकट आ गया। जैसे कोई विदेश से अपने ग्राम (तक-सकुशल) आया हो, फिर भी सीमावर्ती (नगर-) द्वार पर उसे चोरों ने लूट लिया हो। १७ (जैसे बहुत यत्न, तपस्या करने पर) धनभण्डार ज्योंही हाथ लग गया, त्योंही वहाँ डाइन आकर प्रस्तुत हो गयी। हे

येऊन। मायबाप तूं जगज्जीवन। तुझा यज्ञ तूं सांभाळीं। १८ मी किंकर तुझा दीन। तूं सांभाळी आपुला यज्ञ। मी यज्ञकर्ता म्हणवीन। तरी जिव्हा झडो हे। १९ ऐकोनि धर्माचें करुणावचन। गहिंवरले भक्तजन। शिशुपाळादि कौरव दुर्जन। हर्ष पूर्ण मानिती। २२० खुणाविती एकासी एक। बरें म्हणती झालें कौतुक। चांडाळ दुरात्मे देख। उणें पाहती भक्तांचें। २२१ परी धर्माचा पाठिराखा थोर। वैकुंठपुरींचा सुकुमार। तो उणें पडों नेदी अणुमात्र। कमलनेत्र कमलापति। २२ मेघगंभीरगिरा गर्जोन। बोले रुक्मिणीप्राणजीवन। मन्मथजनक जनार्दन। पांडवजन-रक्षक। २३ म्हणे वेंचावें कांहीं निजतप। तरीच उठेल हें कुणप। यावरी विरिंचीचा बाप। काय करिता जाहला। २४ पीतवसन श्रीकरधर। सुरंग रुळे उत्तरीय वस्त्र। मंदहास्य वारिजनेत्र। प्रेताजवळी पातला। २५ हातीं घेतली रत्नजडित झारी। सव्य करीं ओती पुण्यवारी। कृष्णद्वेषी जे पापकारी। हांसों लागले गदगदां। २६ शिशुपाळादि कौरव दुर्जन।

जगज्जीवन, (अब) अपने यज्ञ को (स्वयं) आप सम्हाल लीजिए (रक्षा कीजिए)। १८ मैं तो आपका दीन सेवक हूँ; आप अपने यज्ञ को सम्हाल लीजिए। यदि मैं (अपने-आपको) यज्ञकर्ता कहा लूं, तो (मेरी) यह जिह्वा झड़ जाए'। १९ धर्म की यह करुणा-भरी बात सुनकर भक्तजन गद्‌गद हो उठे। तो शिशुपाल आदि दुर्जन तथा कौरवों ने इसमें पूरा आनन्द अनुभव किया। २२० वे एक-दूसरे को संकेत करने लगे। बोले, 'अच्छा खेल (तमाशा) हो गया'। देखिए, चण्डाल (-से) दुरात्मा भक्तों का न्यून (दोष) देखते हैं। २२१ परन्तु वैकुण्ठपुर के सुकुमार कमल-नयन कमलापति (श्रीकृष्ण) धर्म के बड़े सहायक-समर्थक थे। उन्होंने अणुमात्र तक कमी पड़ने नहीं दी। २२ रुक्मिणी के प्राणों के लिए जीवनस्वरूप, मन्मथ (प्रद्युम्न) के पिता, जनार्दन, पाण्डव जनों के रक्षक श्रीकृष्ण ने मेघ की-सी गम्भीर वाणी में गरजकर कहा। २३ वे बोले (उन्होंने सोचा)— 'अपने तप (जन्म पुण्य) में से कुछ ख़र्च करें, तो ही यह शव उठ जाएगा'। इसके पश्चात ब्रह्मा के पिता भगवान नारायण-स्वरूप श्रीकृष्ण ने क्या किया। २४ लक्ष्मी-पति विष्णुस्वरूप कृष्ण पीताम्बरधारी थे। उनका अच्छे रंग से युक्त उत्तरीय वस्त्र झूलते हुए शोभायमान था। कमलनेत्र श्रीकृष्ण ने मन्दहास्य किया और वे उस शव के पास आ पहुँचे। २५ उन्होंने रत्न-जटित झारी हाथ में ली और दाहिने हाथ से उन्होंने पवित्र जल उँड़ेल दिया। (यह देखकर) जो (शिशुपाल, दुर्योधन आदि लोग) कृष्ण का द्वेष करनेवाले तथा पाप करनेवाले थे, वे खिल-खिलाकर हँसने लगे। २६ शिशुपाल आदि दुर्जन (तथा) कौरव बोले, 'इसने क्या पुण्य किया है? जन्म से लेकर आज तक इसने क्या

म्हणती हा काय आचरला पुण्य। कौतुक तप केलें निर्वाण। जन्मादारभ्य आजिवरी। २७ महाकपटी चोर जार। गोवळ्यांचीं उच्छिष्टें खाणार। एक म्हणती धरा धीर। कौतुक पाहों उगेचि। २८ तों काय बोले मधुकटभारी। मी आजिपर्यंत ब्रह्मचारी। तों अवघे हांसती दुराचारी। हस्त हस्तीं हाणोनियां। २९ ब्रह्मचर्यसंकल्प करून। ब्राह्मणाचे मुखीं जीवन। कृष्णें घालितांचि खडबडून। उठिला विप्र ते वेळीं। २३० जाहला एकचि जयजयकार। देव वर्षति सुमनसंभार। प्रेमें दाटला युधिष्ठिर। भक्त अपार स्तविती तेव्हां। २३१ सकल दुर्जन ते वेळीं। अधोवदन जाहले सकळी। आनंदली भक्तमंडळी। पिटिली टाळी सकळिकीं। ३२ असो उठिला तो ब्राह्मण। धर्मं केलें त्याचें पूजन। स्त्रीसहित गौरवून। वस्त्रें भूषणें अर्पिलीं। ३३ तों यज्ञामधूनि एक जंबुक। अकस्मात निघाला एकाएक। कुंडवेदिकेवरी बैसोनि देख। पुढील भविष्य वाखाणी। ३४ गर्जोनि बोले शब्द। येथें एकाचा होईल शिरच्छेद। पुढें दिसतो मोठा विरोध। कलह अगाध माजेल। ३५ येथूनि तेरा वर्षें अवधारा। निर्वीर होईल वसुंधरा।

उग्रतम कौतुक (अद्भुत कार्य) और तप किया है। २७ यह तो महाकपटी है, चोर है, जार है। ग्वालों का जूठन खानेवाला है'। तो कुछ एक बोले, 'धीरज धारण करो। चुपचाप मज़ा देखो'। २८ तब मधुकैटभारी (श्रीकृष्ण) क्या बोले, 'मैं आज तक ब्रह्मचारी हूँ'। तो वे समस्त दुराचारी लोग एक-दूसरे के हाथ पर हाथ मारते अर्थात ताली बजाते हुए हँसने लगे। २९ ब्रह्मचर्य सम्बन्धी संकल्प करते हुए श्रीकृष्ण द्वारा उस ब्राह्मण के (शव के) मुख में पानी डालते ही वह ब्राह्मण उस समय चौंककर उठ गया। २३० तो अद्भुत जय-जयकार हो गया। देवों ने फूलों की राशियाँ बरसा दीं। युधिष्ठिर तो प्रेम से गद्गद हो उठे। तब भक्तजनों ने (श्रीकृष्ण की) अपार सराहना की। २३१ उस समय वे समस्त दुर्जन अधोबदन हो गये (सिर झुकाये बैठे)। भक्तमण्डली आनन्दित हो उठी। सबने तालियाँ बजायीं। ३२ अस्तु। वह ब्राह्मण (पुनर्जीवित होकर जब) उठ गया, तो धर्म ने उसका पूजन किया और उसको स्त्री-सहित गौरवान्वित करते हुए उन्हें वस्त्र और आभूषण समर्पित किये। ३३ तब अनपेक्षित रूप से यज्ञ में से एक सियार सहसा निकल (कर बाहर) आया। देखिए, यज्ञ-कुण्ड की वेदी पर बैठकर उसने आगे की भविष्यवार्ता कही (होनी का बयान किया)। ३४ वह गरजते हुए ये शब्द बोला, 'यहाँ पर किसी एक का शिरच्छेद होगा; आगे बड़ा विरोध भाव दिखायी दे रहा है। उससे अथाह कलह उत्पन्न होगा। ३५ सुनिए, यहाँ से (आगे) तेरह वर्षों में पृथ्वी वीर-हीन हो जाएगी। जितने राजा धर्म के इस प्रासाद में आ गये हैं, उतने सब नष्ट

जितुके नृप आले धर्ममंदिरा। तितुके पुढें आटती। ३६ ऐसें तो जंबुक बोलिला। तेथेंचि मग अदृश्य जाहला। असो पुढें स्वाहाकार चालिला। ब्राह्मणहस्तेंकरूनियां। ३७ हें जैमिनिभारतींचें संमत। श्रोतीं पाहिजे ऐसें यथार्थ। श्रीकृष्णें उठविलें प्रेत। हें कथानक तेथेंचि। ३८ कथा हे गोड ऐकिली। म्हणवूनि हरिविजयीं योजिली। पुढें शिशुपाळाचें शिर बनमाळी। छेदील तें परिसा आतां। ३९ पुढिले अध्यायीं कथा सुरस। द्रौपदी वाढील समस्तांस। तेथें कौतुक एक विशेष। जगन्निवास दाखवील। २४० हरिविजय करितां श्रवण। सर्वदा विजयी होईल पूर्ण। एक ग्रंथासी करितां आवर्तन। सकळ मनोरथ पुरतील। २४१ संपत्ति विद्या पुत्र धन। कामिक पावती करितां श्रवण। हें श्रीविट्ठलें वरदान। पंढरियेसी दीधलें। ४२ पंढरीनगरींच यथार्थ। प्रकट जाहला हरिविजय ग्रंथ। श्रवणें सकळ संकट वारीत। सत्य सत्य श्रोते हो। ४३ श्रीधरवरदा अभंगा। रुक्मिणीवल्लभा पांडुरंगा। पांडवरक्षका भक्तभवभंगा। अव्यय निःसंगा सुखाब्धि। ४४

हो जाएँगे'। ३६ वह सियार इस प्रकार बोला और अनन्तर वहीं अदृश्य हो गया। अस्तु। ब्राह्मणों के हाथों स्वाहाकार आगे चलने लगा। ३७ श्रोताओं को इसे यथार्थ मानना चाहिए— यह कथा जैमिनी भारत द्वारा सम्मत है। श्रीकृष्ण ने शव को (पुनर्जीवित करके) उठा लिया, यह कथावस्तु वहीं (प्रस्तुत की हुई) है। ३८ मैंने यह मधुर कथा सुनी थी, इसलिए श्रीहरि-विजय में (कहने के लिए) उसकी योजना की। अब आगे वह सुनिए— आगे चलकर वनमाली श्रीकृष्ण शिशुपाल का सिर (किस प्रकार) छेद डालेंगे। ३९ आगे के अध्याय में सुरस (से युक्त अर्थात मधुर) कथा है। द्रौपदी सबके लिए भोज्य वस्तुएँ परोसेगी। वहाँ जगन्निवास श्रीकृष्ण एक लीला प्रदर्शित करेंगे। २४०

श्रीहरि-विजय का श्रवण करने पर (श्रोता) नित्यप्रति पूर्ण विजयी हो जाएगा। इस ग्रन्थ का एक आवर्तन करने पर (पठनकर्ता के) समस्त मनोरथ पूर्णता को प्राप्त हो जाएँगे। २४१ इसका श्रवण करने पर अभिलाषी जन (इच्छित) सम्पत्ति, विद्या, पुत्र, धन को प्राप्त हो जाएँगे। श्रीविट्ठल ने यह वरदान पण्ढरपुर में दिया है। ४२ यथार्थ रूप में पण्ढरपुर नगरी में ही श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ प्रकट हो रहा है। इसका श्रवण करने पर वह समस्त संकटों का निवारण करता है। हे श्रोताओ, यह सत्य है, सत्य है। ४३ हे श्रीकर-वरद, हे अभंग, हे रुक्मिणी-वल्लभ, हे पाण्डुरंग, हे पाण्डवों के रक्षक, हे भक्तों के सांसारिक तापों-बन्धनों को भग्न करनेवाले, हे अव्यय, हे निःसंग, हे सुखाब्धि। २४४

इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंशभागवत। परिसोत प्रेमळ पंडित। त्रयस्त्रिशतितमाध्याय गोड हा। २४५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेममय पण्डित जन उसके इस मधुर तेंतीसवें अध्याय का श्रवण करें। २४५

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३४

[भोजन-मण्डप में श्रीकृष्ण द्वारा द्रौपदी की मर्यादा का रक्षण करना; मय-सभा-वर्णन; धर्मराज द्वारा श्रीकृष्ण का अग्रपूजन करना]

श्रीगणेशाय नमः॥ बाप धर्माचा पाठिराखा। कमलोद्भवाचा जनक देखा। प्रेमळांचा निजसखा। सारथि पार्थाचा निर्धारें। १ द्रौपदीचा पूर्ण कैवारी। नंदाचे घरींचा खिल्लारी। दुर्जनांचा संहार करी। सहाकारी साधूंचा। २ जो क्षीराब्धितनयेचा प्रियकर। जो आनकदुंदुभीचा कुमर। जो यादवकुळभास्कर। मन्मथशत्रु ध्याय जया। ३ जो काळासही शासनकर्ता। जो हरिहरब्रह्मादिकांसी निर्मिता। जो महामायेचा निजभर्ता। कर्ता हर्ता पाळिता जो। ४ जो क्षीरसिंधूचा जामात। जेणें धर्माचे घरीं

श्रीगणेशाय नमः। देखिए, कमलोद्भव ब्रह्मा के वे पिता (भगवान विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण) धर्मराज के महान सहायक-रक्षक थे, प्रेममय भक्तों के अपने सखा थे; वे निश्चय ही पार्थ के सारथी (निर्धारित) थे। १ वे द्रौपदी के पूर्णतः सहायक पक्षपाती थे। वे नन्द के घर के गोरक्षक (चरवाहे) थे। उन्होंने दुर्जनों का संहार किया। वे साधुओं (सज्जनों) के सहायक थे। २ जो क्षीराब्धि-तनया लक्ष्मी के प्रियकर हैं, जो आनक-दुन्दुभि वसुदेव के पुत्र थे, जो यादवकुल के लिए सूर्य (जैसे) थे, कामदेव के शत्रु शिवजी जिनका नित्य ध्यान करते हैं, जो काल को भी दण्ड देने में समर्थ हैं, जो विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि (देवों) के निर्माता हैं, जो महामाया के अपने पति हैं, जो (ब्रह्माण्ड के) कर्ता (निर्माता), हर्ता (संहार-कर्ता) और पालनकर्ता हैं, जो क्षीर-सिन्धु के दामाद हैं, जिन्होंने धर्मराज के घर में चमत्कार किया, उन्होंने अपनी इच्छा से शव को पुनर्जीवित करके उठा लिया। गत अध्याय में कथित कथा का भावार्थ इतना (विदित) हो गया। ३-५ राजसूय यज्ञ गर्जन (गाजे-बाजे) के साथ सम्पन्न हो रहा था। नित्यप्रति उत्तम अन्न-सन्तर्पण होता था। ऋत्विज और ब्राह्मण

केलें अद्भुत। तेणें स्वसंकल्पें उठविलें प्रेत। गतकथार्थ इतुका जाहला। ५ गजरें होत राजसूययज्ञ। नित्य उत्तम अन्नसंतर्पण। जेविती ऋत्विज ब्राह्मण। नामस्मरणें गर्जती। ६ जेथें पुरविता भगवान। तें मी काय वर्णूं दिव्य अन्न। त्या अन्नाच्या सुवासेंकरून। सुरगण लाळ घोंटिती। ७ त्या अन्नसुवासा वेधोन। वसंत करी भोंवतीं प्रदक्षिण। नित्य जेविती ऋषिगण। परी वीट न ये सर्वथा। ८ जैसा सोमकांताचा अचळ। तैसा भात शुभ्र निर्मळ। जैसा सुवर्णभाग पीत निखिळ। तैसें वरान्न पडियेलें। ९ अमृतास आणिती उणें। ऐसीं पंचभक्ष्यें परमान्नें। विप्र जेविती नामस्मरणें। वारंवार गर्जती। १० दधिमधुदुग्धघृतसरोवर। शाका सुवासें भरिती अंबर। जेथें पुरविता इंदिरावर। तेथींची गोडी काय वर्णूं। ११ तेथें वाढीत याज्ञसेनी। जे कृष्णाची प्रिय भगिनी। जैसी झळके सौदामिनी। तैसी वाढी

भोजन करते थे। वे (भगवान श्रीकृष्ण के) नाम का स्मरण करते हुए गरजते थे। ६ जहाँ भगवान (स्वयं) सम्पूर्ति करनेवाले हों, वहाँ के दिव्य अन्न का मैं क्या वर्णन करूँ। उस अन्न की सुगन्धि के कारण देव-समुदाय की (भी) लार टपकती थी। ७ उस अन्न की सुगन्ध से आकर्षित होकर वसन्त उसके चारों ओर परिक्रमा करता रहता था। ऋषिगण नित्य भोजन किया करते थे; फिर भी उन्हें कोई उकताहट (अरुचि) बिलकुल नहीं अनुभव होती थी। ८ जैसे चन्द्रकान्त मणि का पर्वत (उज्ज्वल वर्ण से युक्त) हो, वैसे (वहाँ का) भात शुभ्र तथा निर्मल था। उस पर वरान्न (दाल) वैसे ही पड़ा (हुआ दिखायी देता) था, जैसे सुवर्णभाग विशुद्ध पीतवर्ण का होता है। ९ जो अमृत (तक) को न्यूनता को प्राप्त करा देती थी (जिनकी तुलना में अमृत घटिया सिद्ध हो सकता था), ऐसे पंच भक्ष्य[1] पदार्थों, मिष्टान्नों का सेवन (भक्षण) ब्राह्मण करते थे। वे बार-बार भगवान का नाम-स्मरण करते हुए गर्जन करते थे। १० (वहाँ) दही, मधु, दूध, घी के सरोवर थे। शाक (साग-सब्जियाँ) अपनी सुगन्ध से आकाश को व्याप्त करते थे। जहाँ (स्वयं) इन्दिरापति भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण (इन पदार्थों की) सम्पूर्ति करनेवाले हों, वहाँ की मधुरता (सरसता) का मैं क्या वर्णन करूँ? ११ जो श्रीकृष्ण की प्रिय भगिनी (मानी जाती) थी, वह याज्ञसेनी द्रौपदी वहाँ (भोज्य पदार्थ) परोसती थी। जिस प्रकार बिजली (चपलतापूर्वक) चमकती है, उसी

---

१ पंच भक्ष्य— १ भक्ष्य— दाँतों से काट-काटकर खाये जानेवाले मालपूए, लड्डू जैसे पदार्थ; २ भोज्य— दाँतों का विशेष रूप से आश्रय न लेकर केवल जिह्वा के व्यापार से जिसे खाते हैं, जैसे हलुआ, भात; ३ पेय— पीये जानेवाले पदार्थ, जैसे दूध; ४ चोष्य— चूसने योग्य वस्तु, जिसका रस मात्र ग्रहण किया जाता है, जैसे आम; ५ लेह्य— चाटते हुए सेवन किये जानेवाले पदार्थ जैसे रायता, चटनी, चाट इत्यादि।

चपळत्वें । १२ अन्नें वाढितां निवाडें । उभय हस्तींचे झळकती चुडे। जेविती तयांवरी उजेड पडे । दिव्य रूपडें द्रौपदीचें । १३ जे सुंदर घन-श्यामवर्णा । म्हणोनि द्रौपदीतें म्हणती कृष्णा । जे सुभद्रेहूनि आवडे जगज्जीवना । ते पूर्ण अन्नपूर्णा अवतरली । १४ विशाळभाळी पद्मनेत्री। सुहास्यवदना चारुगात्री । जे द्रुपदराजनिजपुत्री । ख्याती तिची त्रिभुवनीं । १५ कोसकोसपर्यंत । जिचे अंगींचा सुवास धांवत । बोलतां हिऱ्यांऐसे द्विज झळकत । किंवा विखरत रत्नखाणी । १६ ऐसी ते केवळ अन्नपूर्णा । सदा अन्न वाढीत ब्राह्मणां । जिच्या करपात्रींचिया अन्ना । तुटी नाहीं कल्पांतीं । १७ द्रौपदी कैसी चपळत्वें वाढीत । तें धर्म श्रीकृष्ण विलोकीत । कृष्णरंगें रंगली सत्य । श्रम कल्पांतीं न बाधी । १८ लक्षानुलक्ष जेविती ब्राह्मण । कृष्णा एकली वाढी आपण । घडी घडी श्रीकृष्णवदन । विलोकी परतोन सप्रेमें । १९ न्याहाळूनि पाहे हरिरूप सुरेख । तों स्वेदें डवडविलासे

प्रकार चपलता के साथ वह परोसती जाती थी । १२ खाद्य पदार्थों को निश्चयपूर्वक परोसते समय, उसके दोनों हाथों की चूड़ियाँ (इस प्रकार) चमकती-दमकती रहती थीं कि जो वहाँ जीमते थे, उनपर उनका प्रकाश पड़ता था । द्रौपदी का स्वरूप दिव्य था । १३ जो सुन्दर घनश्याम वर्ण से युक्त थी, इसलिए जिस द्रौपदी को 'कृष्णा' कहते थे, जो जगज्जीवन श्रीकृष्ण को अपनी (सगी बहन) सुभद्रा से भी अधिक प्रिय लगती थी, (वस्तुतः) उस द्रौपदी के रूप में (स्वयं) अन्नपूर्णा पूर्णतः अवतरित थी । १४ उसका भालप्रदेश विशाल था; वह कमल-नयना, सुहास्य-वदना, चारुगात्री थी । जो द्रुपद राजा की (ऐसी सुन्दर) अपनी पुत्री थी, उस (द्रौपदी) की ख्याति त्रिभुवन में (व्याप्त) थी । १५ जिसकी देह की सुगन्ध कोस-कोस तक दौड़ती-फैलती जाती थी, जिसके दाँत हीरों जैसे चमकते थे, अथवा बोलते-मुस्कराते समय दाँतों की चमक-दमक के कारण जान पड़ता था कि रत्नों की खान ही खुलती-उघरती है, ऐसी वह द्रौपदी (वस्तुतः) विशुद्ध अन्नपूर्णा थी । जिसके हाथों के पात्रों में अन्न की कल्पान्त काल तक में कमी नहीं हो सकती थी, वह साक्षात अन्नपूर्णा-स्वरूपा द्रौपदी ब्राह्मणों के लिए अन्न नित्य परोसा करती थी । १६-१७ धर्म और श्रीकृष्ण यह देखते रहते थे कि द्रौपदी किस प्रकार चपलता के साथ परोसती रहती थी । वह श्रीकृष्ण के रंग में सचमुच रँग गयी थी । (इसलिए) श्रम (थकावट) कल्पान्त काल तक में उसे बाधा नहीं पहुँचा सकता था । १८ लक्ष-लक्ष ब्राह्मण जीमते थे । (फिर भी) अकेली कृष्णा (द्रौपदी) स्वयं परोसती थी । वह बार-बार मुड़ (-मुड़) कर प्रेम के साथ श्रीकृष्ण के मुख को देखती रहती थी । १९ वह श्रीहरि के सुन्दर रूप को निरखकर देखती थी । तब उनका मुख-चन्द्र स्वेद (पसीने) से

मुखमृगांक। मृगमदतिलक सुवासिक। घर्मकरूनि भिजलासे। २० सुरंग विराजे पीतांबर। गळां डोल देती मुक्तहार। कौस्तुभतेजें अंबर। परिपूर्ण कोंदलें। २१ जो गोपीमानसराजहंस। जो स्वानंदक्षीरसागरविलास। जो जगद्वंद्य पुराणपुरुष। तो याज्ञसेनी विलोकी। २२ जें वैकुंठपीठींचें निधान। जें जलजोद्भवाचें देवतार्चन। जें सनकादिकांचें हृदयरत्न। प्रिय ठेवणें स्मरारीचें। २३ जो भक्तपालक दीनबंधु। त्याचा विलोकूनि वदनइंदु। पुढें वाढीत ब्रह्मानंदु। हृदयीं आनंदु न समाये। २४ ब्राह्मण जेवूनि उठती। सवेंचि नृपांच्या बैसल्या पंक्ती। दुर्योधनादि कौरव दुर्मती। तेही बैसले भोजना। २५ पांडव आणि जगत्पती। तितुकेचि मागें राहती। वरकड बैसले एक पंक्तीं। जेवावया कारणें। २६ वाढावयालागीं पुढती। सरसावली द्रौपदी सती। जैसा मेघ वर्षोनि मागुती। वर्षाव करी अद्भुत। २७ किंवा अमृतक्षीरसागरीं। येती लहरींवर लहरी। तैसी द्रौपदी राजकुमरी। उठाव करी दुसरेनें। २८ जैसे शब्दीं नाद निघत। त्यांचा न कळे जैसा अंत। तैसी द्रौपदी सती

छलककर डबडबा रहा था। पसीने से उनका कस्तूरी का सुगन्धियुक्त तिलक भीग गया था। २० (उनके द्वारा पहना हुआ) सुन्दर रंग वाला पीताम्बर शोभायमान था। गले में मोतियों के हार झूलते थे। कौस्तुभ मणि के तेज से आकाश परिपूर्ण रूप से भर गया था। २१ जो गोपियों के मन रूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले राजहंस थे, जो आत्मानन्द रूपी क्षीरसागर में निवासस्वरूप विलास करते हैं, जो जगद्वन्द्य पुराणपुरुष (माने जाते) थे, उन्हें याज्ञसेनी द्रौपदी देखती जाती थी। २२ जो वैकुण्ठपीठ के निधान (धनभण्डार) हैं, जो कमलोद्भव ब्रह्मा के लिए पूजन के योग्य देवता हैं, जो सनकादि के हृदय में स्थित रत्न हैं, जो कामदेव के शत्रु शिवजी के लिए प्रिय धरोहर हैं, जो भक्तों के पालक और दीनों के लिए बन्धु (जैसे) हैं, उनका मुखचन्द्र देखते हुए वह आगे परोसती जाती थी। उसके हृदय में ब्रह्मानन्द-सा आनन्द नहीं समाता था। २३-२४ (पहले) ब्राह्मण भोजन करके उठ जाते, तो साथ ही (तत्काल) राजाओं की पंगतें लग जातीं। दुर्योधन आदि दुर्मति कौरव भी भोजन के लिए बैठ जाते। २५ पाण्डव और जगत्पति श्रीकृष्ण —इतने ही पीछे रह जाते। अन्य (समस्त लोग) भोजन करने के लिए एक पंक्ति में बैठ गये। २६ सती द्रौपदी परोसने के लिए आगे बढ़ गयी। जिस प्रकार मेघ (एक बार बरसने पर) फिर से अद्भुत बौछार कर देता है, अथवा अमृत से युक्त क्षीरसागर में लहरों पर लहरें (उत्पन्न होकर) आती रहती हैं, उसी प्रकार राजकुमारी द्रौपदी एक के पश्चात एक दूसरी बार परोसने के लिए (पदार्थों की) सिद्धता करती जा रही थी। २७-२८ जिस प्रकार शब्दों में ध्वनियाँ निकलती रहती हैं, उनका अन्त समझ में नहीं आता, उसी

वाढीत। परी अन्न न सरे पात्रींचें। २९ जैशा जलदांचिया धारा। वर्षती न कळे अपारा। तैसी ते कृष्णा सुंदरा। वाढी पात्रें असंख्य। ३० परी क्षण-क्षणां परतोन। विलोकी जगज्जीवनाचें वदन। तों आंगींची उटी घर्मेकरून। ठायीं ठायीं पुसलीसे। ३१ भक्तांचे जे कष्ट सर्व। आपण आंगें सोशी माधव। उणें पडों नेदी केशव। जो दयार्णव जगदात्मा। ३२ सुखरूप वाढी द्रौपदी। श्रम आंगीं कदा न बाधी। आंगें सोशी कृपानिधी। कष्ट सर्वही भक्तांचे। ३३ असो द्रौपदी पाहे मागुती। तों अनुपम्य दिसे कृष्णमूर्ती। जिची त्रिभुवनीं अगाध कीर्ती। वर्णितां नेति म्हणे वेद। ३४ ब्रह्मींचें तेज गोळा होऊन। हें कृष्णरूप ओतिलें सगुण। तों सच्चिदानंदतनु पूर्ण। भक्तजनप्रतिपाळक। ३५ ऐसें वाढितां द्रौपदीस। काय बोले जगन्निवास। बाई आजि बहु भागलीस। प्राणसखये द्रौपदी। ३६ तिचे पृष्ठीवरूनि हात। उतरी कमलोद्भवाचा तात। तों द्रौपदीसी आनंद बहुत। मनामाजी न सांठवे। ३७ परतोनि पाहे हरीचें वदन। किरीटकुंडलें मंडित पूर्ण। सरळ

प्रकार द्रौपदी (अनवरत) परोसती जाती थी; फिर भी पात्र का अन्न समाप्त नहीं होता था। २९ जिस प्रकार मेघों की धाराएँ अपार बरसती हैं, उनका अन्त समझ में नहीं आता, उसी प्रकार सुन्दरी कृष्णा अनगिनत पात्रों से परोस रही थी। ३० परन्तु वह क्षण-क्षण मुड़-मुड़कर जगज्जीवन श्रीकृष्ण के मुख को देखती जाती थी; तो (उसे दिखायी देता था कि) उनके शरीर में लगा अंगराग (उबटन) पसीने से स्थान-स्थान पर पुँछ गया है। ३१ भक्तों के जो-जो कष्ट हैं, उन सबको श्रीकृष्ण स्वयं अपने शरीर द्वारा झेलते रहते थे। केशव श्रीकृष्ण, जो दयासागर जगदात्मा हैं, किसी भी वस्तु की कमी अनुभव होने नहीं दे रहे थे। ३२ द्रौपदी सुख (प्रसन्नता) पूर्वक परोसती रही। उसके शरीर में श्रम कोई बाधा नहीं पहुँचा रहा था। (क्योंकि) कृपानिधि श्रीकृष्ण भक्तों के सभी कष्टों को अपने शरीर द्वारा सहन करते (झेलते) थे। ३३ अस्तु। द्रौपदी ने फिर से देखा, तो उसे श्रीकृष्ण की मूर्ति अनुपम दिखायी दी, जिनकी त्रिभुवन में अथाह कीर्ति (फैली हुई) है। उनका वर्णन करते हुए वेद 'न इति', 'न इति' कहते हैं। ३४ (वस्तुतः) ब्रह्म के तेज के इकट्ठा होने पर यह सगुण कृष्ण-रूप ढला हुआ है। वे सम्पूर्ण रूप से सच्चिदानन्द-शरीर हैं; भक्तजनों का प्रतिपालन करनेवाले हैं। ३५ इस प्रकार परोसते रहने पर जगन्निवास श्रीकृष्ण द्रौपदी से क्या बोले ? (सुनिए। वे बोले), 'हे देवी, प्राणसखी द्रौपदी, तुम आज बहुत थक गयी हो'। ३६ ब्रह्मा के उन पिता ने उसकी पीठ पर हाथ फेर दिया, तो द्रौपदी को बहुत आनन्द हुआ। उनके मन में वह समाया नहीं जा रहा था। ३७ उसने मुड़कर श्रीहरि के मुख को देखा। वह किरीट-कुण्डलों से पूर्णतः मण्डित

नासिक आकर्ण नयन। अत्यंत वदन सुरेख। ३८ मुकुटाभोंवता दाटला घर्म। देखतां जाहली सप्रेम। म्हणे मजलागीं परब्रह्म। बहुत श्रम पावतसे। ३९ मी काय होऊं उतराई। माझे सांवळे कृष्णाबाई। ऐसें बोलतां ते समयीं। सद्गद जाहली याज्ञसेनी। ४० प्रेमें आंग फुगत। दोन्ही उरीं तटतटित। बिरडें तुटलें अकस्मात। कौरवपंक्तींत वाढितां। ४१ पल्लव जाहला विगलित। वक्षःस्थळ उघडें पडत। आकर्षोनियां कृष्णा हात। घाबरी पाहत चहूंकडे। ४२ शकुनि सुयोधन कर्ण। एकाकडे एक दाविती खूण। नाना विनोद दुर्जन। करिते जाहले तेधवां। ४३ लगबग करिती अवघे। एकासारिखें एक न मागे। म्हणती येथें उभी कां गे। अन्न आणीं सत्वर। ४४ एक म्हणती उठा रे सकळ। आजि असे अन्नाचा दुकाळ। परम लज्जित वेल्हाळ। मुखकमळ कोमाइलें। ४५ नेत्रीं वाहती अश्रुधारा। भोंवतीं वाट पाहे सुंदरा। म्हणे श्रीरंगा यादवेंद्रा। तुज हें कां न कळेचि। ४६ हांक फोडिती अवघेजण। अन्य पदार्थ मागती भिन्न भिन्न। जैसे सहस्र व्याघ्र

था; उनकी नाक सीधी थी; नयन आकर्ण (कानों तक फैले, विशाल) थे। उनका मुख अत्यधिक सुन्दर था। ३८ उस मुकुट के चारों ओर पसीना डबडबाया था। उसे देखकर वह प्रेम से भर उठी। वह बोली (उसे लगा)— मेरे कारण परब्रह्म श्रीकृष्ण बहुत कष्ट को प्राप्त हो रहे हैं। ३९ (वह बोली—) 'हे मेरी साँवली कृष्णस्वरूप मैया, मैं तुमसे क्या ऋण-मुक्त हो जाऊँगी ?' ऐसा बोलते (सोचते) हुए द्रौपदी बहुत गद्गद हो उठी। ४० प्रेम से उसका बदन फूल गया। कौरवों की पंक्ति में परोसते समय उसके दोनों उरोजों के फूलने से डोरी की गाँठ अकस्मात खुल गयी। ४१ उसकी साड़ी का पल्लव (छोर) गिर गया। उसका वक्षःस्थल अनावृत हो गया। तो द्रौपदी हाथ खींचकर, घबड़ायी हुई चारों ओर देखने लगी। ४२ शकुनि, सुयोधन, कर्ण एक-दूसरे को संकेत करने लगे। उस समय दुर्जन नाना प्रकार से हँसी-ठठोली करने लगे। ४३ वे सब जल्दी करने लगे। एक जैसा दूसरा (व्यक्ति) कोई पदार्थ नहीं माँग रहा था। वे बोले, 'अरी, खड़ी क्यों हो ? झट से अन्न लाओ। ४४ कुछ एक ने कहा, 'अरे सब उठ जाओ। आज अन्न का अकाल (अभाव) हो गया है'। (यह सुनते हुए) वह सुन्दरी परम लज्जित हो गयी। उसका मुख कुम्हला गया। ४५ उसकी आँखों से अश्रु-धाराएँ बहने लगीं। वह सुन्दरी चारों ओर से (सहायता की) प्रतीक्षा करने लगी। वह (मन-ही-मन) बोली, 'हे श्रीरंग, हे यादवेन्द्र, तुम्हारी समझ में यह क्यों नहीं आ रहा है ? ४६ ये सब जने चिल्ला रहे हैं। वे भिन्न-भिन्न अन्य पदार्थ माँग रहे हैं। (मेरी स्थिति वैसी ही हो गयी है) जैसे सहस्र (-सहस्र) बाघों द्वारा दहाड़ते रहने पर (उनके बीच फँसी हुई अकेली)

करितां गर्जन । हरिणीचा प्राण जाऊं पाहे । ४७ कीं आरडतां तान्हें बालक । त्यासी ताडिती सहस्र वृश्चिक । कीं क्षत देखोनि बहुत काक । उकरावया धांवती । ४८ कीं चोहटां पडिलें अन्न । तेथें एकदांचि धांवती श्वान । तैसे कौरव चैद्य दुर्जन । नसतेंचि जाण मागती । ४९ एक म्हणे भात आणीं । एक म्हणे आजि हरिदिनी । एक म्हणती ऐका हो वहिनी । तुम्हांसी दोन्ही कष्ट पडती । ५० एक वृक्षावरी धडका हाणितां । डाहळिया डळमळती समस्ता । एक कर्दळीसी पांच गज भिडतां । मग तिची अवस्था नुरेचि । ५१ तैसें रजनीमाजी तत्त्वतां । पांचांशीं सुरतयुद्ध करितां । गात्रें ढिलीं पडतां । शक्ति नाहीं वाढावया । ५२ ऐसें संकट देखोन । परतोनि विलोकी हरीचें वदन । म्हणे कृष्णा लपावयासी सदन । तुजवांचून नाहीं कोठें । ५३ तेचि दुरात्मे पापमती । जे भक्तांचें उणें पाहती । द्रौपदीचा सहाकारी जगत्पती । म्हणे ना भीं ना भीं याज्ञसेनी । ५४ तो यादवेंद्र मनमोहन । द्रौपदीच्या अंतरीं प्रवेशोन । भुजांवरी भुजा निर्माण । करिता जाहला तये वेळीं । ५५ बिरडें घालूनि सत्वर । सवेंचि सरसाविला पदर । टवटविला मुखचंद्र ।

हरिणी के प्राण निकलते जा रहे हों । ४७ अथवा दुधमुँहे बच्चे द्वारा रुदन करने लगने पर उसे सहस्र (-सहस्र) बिच्छू काटने लगे हों; अथवा (किसी प्राणी के शरीर में) घाव को देखकर अनेक कौए उसे कुरेदने के लिए दौड़े हों; अथवा चौराहे पर अन्न के पड़ने पर वहाँ एक ही समय कुत्ते दौड़े हों; समझिए कि वैसे ही (मुझे कठिनाई में उलझी हुई देखकर) कौरव और शिशुपाल आदि दुर्जन अनावश्यक (वस्तुएँ) माँग रहे हैं । ४८ कोई एक कहता है, 'भात लाओ'; कोई एक कहता है, 'आज हरिदिनी एकादशी है'; तो कोई एक कहता है, 'अरी भाभी, तुम्हें तो दोनों (प्रकार के) कष्ट हो रहे हैं । ४९-५० किसी एक वृक्ष पर आघात करने पर उसकी समस्त शाखाएँ (-टहनियाँ) जोर से हिलने लगती हैं; किसी कदली से पाँच हाथियों के भिड़ने पर फिर उसकी दशा (उसका स्वास्थ्य) अच्छी शेष रहती ही नहीं । ५१ उसी प्रकार रात के अन्दर सचमुच पाँचों से सुरत-युद्ध करने से तुम्हारे गात्रों के ढीले पड़ जाने पर तुममें परोसने के लिए शक्ति नहीं रही है' । ५२ ऐसे संकट को देखकर उसने मुड़कर श्रीहरि के मुख की ओर देखा और (मन-ही मन) कहा, 'हे कृष्ण, छिप जाने के लिए तुम्हारे अतिरिक्त (और) कहीं घर (स्थान) नहीं रहा है' । ५३ जो भक्तों की त्रुटि (दोष) को देखते हैं, वे ही दुरात्मा, पापमति हैं । (यह जानकर) द्रौपदी के सहायक जगत्पति श्रीकृष्ण बोले, 'हे याज्ञसेनी, डरो नहीं, डरो नहीं' । ५४ (अनन्तर) उस समय मनमोहन यादवेन्द्र ने द्रौपदी के अन्दर प्रविष्ट होकर उसके हाथों के ऊपर (और दो) हाथों का निर्माण किया । ५५ तो (कंचुकी के डोर में) झट से गाँठ लगाते हुए

द्रौपदीचा तेधवां । ५६ बाप भक्तवत्सल कृपानिधी । चतुर्भुज केली द्रौपदी । दुर्जन जे कां मंदबुद्धी । अधोवदनें पाहती हो । ५७ द्रौपदी आणि कृष्ण । पात्रीं पात्रीं भिन्न भिन्न । जें जयांसी पाहिजे अन्न । तें तें तयांसी ओपीत । ५८ उगवतां जैसा दिनकर । लाजोनि पळे अंधकार । कीं विष्णु-सहस्रनामें दोषसंहार । होय जैसा एकाएकीं । ५९ कीं मस्तकीं उर्वी धरितां । सर्षपप्राय भोगिनाथा । कीं वातात्मजें द्रोणाद्रि आणितां । श्रम सहसा न वाटे । ६० तैसें द्रौपदीस वाटे जाण । म्हणे किती मागतील दुर्जन । हें त्रिभुवन संपूर्ण । जेवूं घालीन एकदांचि । ६१ कीं शुंभनिशुंभ मारूनी । यशस्वी जाहली भवानी । तैसी विजयी याज्ञसेनी । कौरवगर्व निवटूनियां । ६२ कीं जान्हवीचा होतां स्पर्श । एकदांचि विरती सर्व दोष । हरिनाम ऐकतां भूतप्रेतांस । उपजे त्रास पळ घेती । ६३ जो जो कोणी मागेल पदार्थ । त्यापुढें टाकी अन्नाचा पर्वत । भीमासी क्रोध दाटला

द्रौपदी ने तत्काल आंचल को उठाकर सम्हाल लिया; तब उसका मुखचन्द्र खिल उठा । ५६ (इस प्रकार) पिता (पालक-रक्षक) स्वरूप भक्तवत्सल कृपानिधि श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को चार भुजाओं से युक्त बना दिया, तो जो मन्दमति दुर्जन थे, वे सिर झुकाकर देखते रहे । ५७ (तदनन्तर) द्रौपदी और कृष्ण भिन्न-भिन्न पात्रों (थालियों) में जिनको जो अन्न (-पदार्थ) चाहिए था, उनके लिए वह परोसने लगे । ५८ जिस प्रकार सूर्य के निकलने पर अँधेरा लज्जित होकर भाग जाता है, अथवा विष्णु-सहस्रनाम (स्तोत्र का पठन करने) से यकायक दोषों (पापों) का संहार हो जाता है, अथवा पृथ्वी को मस्तक पर धारण करते रहने पर वह शेष के लिए सरसों (के दाने) जैसी लगती रहती है, अथवा पवनकुमार द्वारा द्रोणाद्रि को (उठाकर) लाते हुए (जिस प्रकार) उसको बिलकुल कष्ट नहीं अनुभव हुआ, उसी प्रकार, समझिए कि द्रौपदी को जान पड़ा । वह (मन-ही-मन) बोली, 'ये दुर्जन कितना माँग लेंगे ? मैं तो उन्हें यह सम्पूर्ण त्रिभुवन (भर अन्न) एक ही समय खिला सकूंगी '। ५९-६१ अथवा जिस प्रकार भवानी देवी शुम्भ-निशुम्भ का वध[1] करके सफलता (और कीर्ति) को प्राप्त हुई, उसी प्रकार द्रौपदी ने कौरवों के घमण्ड को छुड़ाकर उनको एक साथ भोजन करा दिया । ६२ अथवा गंगा का स्पर्श होते ही एकदम (तत्काल) समस्त दोष (पाप) नष्ट हो जाते हैं; अथवा श्रीहरि के नाम को सुनते ही भूतों-प्रेतों के लिए कष्ट उत्पन्न हो जाता है और वे भाग जाते हैं (उसी प्रकार श्रीकृष्ण के द्वारा कृपापूर्वक सहायता करने पर द्रौपदी ने कौरवादि दुर्जनों के घमण्ड को पूर्णतः छुड़ा दिया) । ६३ जो-जो कोई पदार्थ माँगता था, उसके सामने (थाली में) वह अन्न का पर्वत डालती-

---

१ शुम्भ-निशुम्भ— देखिए टिप्पणी २, पृ० ३६४, अध्याय १४ ।

अद्‌भुत। काय बोलत दुर्जनांप्रती। ६४ म्हणे अन्न सांडितां निश्चितीं। शिखा उपटोनि देईन हातीं। सकळ दुरात्मे खालीं पाहती। प्रत्युत्तर न देती कोणीही। ६५ अंतरमलिन ते दुरभिमान। त्यांत बुडाले अवघे दुर्जन। भीमाचा क्रोध देखोन। कोणासी वचन न काढवे। ६६ कीं चोरट्यांसी मारमारूनी। शुष्क काष्ठें झोडिती रानीं। तैसे कौरव दिसती तेचि क्षणीं। तेजहीन दुरात्मे। ६७ कीं दिव्य देतां खोटा होय। कीं समरीं पावे पराजय। तैसे दुरात्मे यादवराय। अपमानिता झाला तेधवां। ६८ भक्त बोलती ते वेळीं। धन्य हे कृष्णा वेल्हाळी। कृष्णें आपणाऐसीच केली। चतुर्भुज प्रत्यक्ष। ६९ हे मंगळदायक भवानी। ईस वर मागा प्रार्थूनी। हे कोपलिया निर्वाणीं। कुळक्षय करील तुमचा। ७० इचे ठायीं कल्पितां विपरीत। तरी भस्म व्हाल समस्त। परी ते नायकती उन्मत्त। महापापिष्ठ विषयांध। ७१ असो द्रौपदी गेली घरांत। तिजमागें गेला वैकुंठनाथ। पायीं मिठी तेव्हां

परोसती गयी। भीम को (यह देखकर) अद्‌भुत रूप से क्रोध आ गया। वह उन दुर्जनों से क्या बोला ? (सुनिए)। ६४ वह बोला, '(थाली में) अन्न छोड़ देने पर निश्चय ही मैं (उस व्यक्ति की) शिखा को उखाड़कर हाथों में थमा दूंगा'। तो समस्त दुरात्मा नीचे देखने लगे। किसी ने भी इसका प्रत्युत्तर नहीं दिया (प्रतिवाद नहीं किया)। ६५ वे लोग अन्तःकरण में मलिन (पाप-विचार से युक्त) थे, दुरभिमानी थे। वे समस्त दुर्जन उस (पाप-विचार) में डूब गये थे। भीम के क्रोध को देख कर किसी के द्वारा भी कोई बात कही नहीं जा पायी। ६६ अथवा चोरों को मार-मारकर अन्त में (लोग मारे आवेश से) वन में सूखी लकड़ियों को पटकते-पीटते रहते हैं, उसी प्रकार दुरात्मा कौरव उसी क्षण तेजोहीन दिखायी देने लगे (कोई काम नहीं रहने पर आवेशपूर्वक अपना क्रोध दूसरे पर उतारने की सोचने लगे)। ६७ अथवा किसी के दिव्य करने लगने पर वह खोटा (पापी, दोषी) सिद्ध हो जाए, अथवा युद्ध में कोई पराजय को प्राप्त हो जाए, उसी प्रकार यादवराज श्रीकृष्ण ने उस समय उन दुरात्माओं को (खोटा और पराजित सिद्ध करते हुए) अपमानित कर डाला। ६८ उस समय भक्तजन बोले, 'यह सुन्दरी कृष्णा (द्रौपदी) धन्य है। श्रीकृष्ण ने उसे अपनी भाँति साक्षात चतुर्भुजधारी बना दिया। ६९ यह मंगल-दायिनी भवानी है। इससे प्रार्थना करते हुए वर माँग लीजिए। इसके कुपित हो जाने पर अन्त में यह आपके कुल का नाश कर डालेगी। ७० इसमें किसी विपरीत (अनुचित) बात की कल्पना कर रहे हैं। इसलिए आप सब (इसकी क्रोधाग्नि में जलकर) भस्म हो जाएँगे'। परन्तु उन उन्मत्त महापापी विषयान्धों ने इसे नहीं सुना (नहीं माना)। ७१ अस्तु। द्रौपदी घर के अन्दर गयी। उसके पीछे (-पीछे) वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण (भी)

घालीत। प्रेमें स्फुंदत द्रौपदी। ७२ कुंती पांडव ते वेळे। सदनामाजी प्रवेशले। म्हणती श्रीरंगे माउले। थोर वारिलें संकट आजी। ७३ धर्म म्हणे जगन्नाथा। कोणते उपकार आठवूं आतां। माता पिता भयत्राता। तुजपरता दिसेना। ७४ भीम आणि अर्जुन। स्फुंदस्फुंदोनि करिती रुदन। त्यांसी हृदयीं धरूनि मधुसूदन। करी समाधान तयाचें। ७५ द्रौपदीसी गहिंवर न सांवरे। नेत्रीं वाहती जीवनझरे। म्हणे श्रीकृष्णा भुवनसुंदरे। उपकार न विसरें जन्मवरी। ७६ श्रीकृष्णाचे निजकंठीं। कुंती येऊनि घाली मिठी। म्हणे कृपाळुवा जगजेठी। द्रौपदीसी समजावीं। ७७ मग द्रौपदीसी म्हणे चक्रपाणी। वाढितां कष्टलीस गे मायबहिणी। तूं सद्गुणरत्नांची खाणी। प्राणाहूनी आवडसी। ७८ द्रौपदी बोले वचन। मी कोटिकोटी जन्म घेईन। परी तूंचि बंधु होईं पूर्ण। पाठिराखा कैवारी। ७९ ऐसा एक संवत्सर। राजसूययज्ञ हे त थोर। नित्य जेविती किती विप्र। लेखा नाहीं तयांतें। ८० सकळांसी भोजनें झालियावरी। पांडवांसहित पूतनारी। कुंती द्रौपदी सुंदरी। पंक्तीसी बैसती आठजण। ८१ कृष्ण-पंक्तीसी भोजन।

गये, तब वह प्रेमपूर्वक उनके चरणों में लिपट गयी और सिसकने लगी। ७२ उस समय कुन्ती और पाण्डव घर के अन्दर प्रविष्ट हुए और बोले, 'हे मैया, आज तुमने बड़े संकट का निवारण किया'। ७३ (अनन्तर) धर्म बोले, 'हे जगन्नाथ, आपके किन (-किन) उपकारों का अब मैं स्मरण करूँ? आपके अतिरिक्त (हमारा) कोई अन्य माता-पिता, भय से रक्षण करने-वाला नहीं दिखायी देता'। ७४ भीम और अर्जुन सिसक-सिसककर रुदन करने लगे, तो मधुसूदन कृष्ण ने उनको हृदय से लगाकर उनको (सान्त्वना देते हुए) तृप्त किया। ७५ द्रौपदी अपने-आपको गद्गद हो जाने से रोक नहीं पा रही थी। उसके नेत्रों से (अश्रु-) जल के झरने बह रहे थे। वह बोली, 'हे श्रीकृष्ण, हे भुवन-सुन्दर, मैं जन्म भर आपके उपकारों को नहीं भूल पाऊँगी'। ७६ कुन्ती ने आते हुए श्रीकृष्ण के गले में बाँहें डालीं और कहा, 'हे कृपालु जगद्श्रेष्ठ, द्रौपदी को समझाइए'। ७७ तब चक्रपाणी द्रौपदी से बोले, 'री मैया, बहिन, परोसते-परोसते तुम कष्ट को प्राप्त हो गयी हो। तुम सद्गुण रूपी रत्नों की खान हो; मुझे प्राणों से भी प्रिय लगती हो'। ७८ तो द्रौपदी ने यह बात कही, 'मैं कोटि-कोटि जन्म ग्रहण करूँगी; फिर भी (प्रत्येक जन्म में) आप ही मेरे बन्धु हो जाइए— पूर्ण रक्षक-सहायक, पक्षपाती हो जाइए'। ७९ इस प्रकार एक वर्ष तक वह महान राजसूय यज्ञ सम्पन्न होता रहा। नित्यप्रति कितने ब्राह्मण भोजन करते थे; उनकी कोई गिनती ही नहीं (हो सकती) थी। ८० सबके भोजन हो जाने पर पाण्डवों-सहित पूतनारि श्रीकृष्ण, कुन्ती और सुन्दरी द्रौपदी— आठों जने एक पंगत में (भोजन के लिए) बैठ जाते। ८१

ब्रह्मादिकां न घडे पूर्ण। धन्य धन्य पंडुनंदन। जगज्जीवन वश ज्यांतें। ८२ नित्य ब्राह्मणांच्या होती पंक्ती। स्वयें उच्छिष्ट काढी श्रीपती। ज्यासी वेदशास्त्रें वाखाणिती। अगाध कीर्ती अनुपम्य। ८३ ठेवोनियां थोरपणाची प्रौढी। द्वारकाधीश पात्रें काढी। लाहेंलाहें तांतडी। पुढती पंक्ती बैसावया। ८४ विद्युल्लताप्राय पीतवसन। सोगा त्याचा वरता खोंवून। कौस्तुभवनमाळा मागें टाकून। उच्छिष्ट काढी तांतडीनें। ८५ उच्छिष्टें काढितां जगन्मोहन। ठायीं ठायीं लेपिलें अन्न। अन्नब्रह्मरूप मी पूर्ण। ऐक्यरूप दावीतसे। ८६ एके पंक्तीसी लक्ष ब्राह्मण। ऐशा अमित पंक्ती पूर्ण। कोटिसंख्या होतां जाण। स्वर्गघंटा वाजे एकवां। ८७ त्यावरूनि केलें गणित। मग धर्मराजा संतोषित। म्हणे श्रीकृष्णा हो तुजप्रीत्यर्थ। विश्वंभरा विश्वेशा। ८८ तो महोत्साह पाहावया जाण। तेथें आला वेदव्यासनंदन। जो योगियांमाजी मुकुटरत्न। चंडकिरण दूसरा। ८९ कामक्रोध जेणें जिंकिले। रंभेनें नाना परी छळिलें। परी अणुमात्र नाहीं चळलें। मन जिंकिलें जयानें। ९० जो चिदंबरींचा निशाकर। कीं अपरोक्ष-

श्रीकृष्ण की पंक्ति में (बैठकर) भोजन करना (जैसा सौभाग्य) ब्रह्मा आदि को (तक) बिलकुल घटित नहीं होता। जिसके वश में (इस प्रकार) जगज्जीवन कृष्ण हो गये थे, वे पण्डुनन्दन धन्य हैं, धन्य हैं। ८२ ब्राह्मणों की पंगतें नित्य लग जातीं। जिनकी वेद और शास्त्र स्तुति करते हैं, जिनकी कीर्ति अथाह, अनुपम है, वे श्रीपति स्वयं जूठन उठाते (बटोरकर हटा देते)। ८३ बड़प्पन के अभिमान को दूर रखकर द्वारकाधीश आगे की पंगत के बैठने के लिए झट से बार-बार (स्वयं जूठे) पात्र (पत्तलें, थालियाँ) उठाते रहते। ८४ उनका पीताम्बर बिजली जैसा था। उसके छोर को ऊपर खोंसकर, कौस्तुभ और वनमालाओं को पीछे डालकर वे झट से जूठन उठाते-हटाते जाते। ८५ जूठन उठाते-उठाते जगन्मोहन कृष्ण स्थान-स्थान पर अन्न इकट्ठा करते (राशियाँ बनाते) जाते। वे यह अद्वय रूप प्रदर्शित करते रहते कि मैं पूर्णतः अन्न-ब्रह्म रूप हूँ। ८६ एक पंक्ति में एक लाख ब्राह्मण बैठते। इस प्रकार की अनगिनत पंक्तियाँ पूर्ण हो जाती थीं। उनकी संख्या एक करोड़ हो जाने पर स्वर्ग में घण्टा एक बार बज जाता था। ८७ उससे उसकी गिनती की। तब धर्मराज सन्तोष को प्राप्त हो जाते थे। वे बोले, 'हे श्रीकृष्ण, हे विश्वम्भर, हे विश्वेश, यह सब आपके लिए (समर्पित) हो'। ८८ जान लीजिए कि उस महान समारोह को देखने के लिए वेदव्यास-नन्दन शुकाचार्य वहाँ आ गये, जो योगियों में मुकुटमणि थे, जो (तेजस्विता में) दूसरे सूर्य थे, जिन्होंने काम-क्रोध को जीत लिया था, जिनको रम्भा ने नाना प्रकार से (छल-पूर्वक) तंग किया, फिर भी जिनका मन अणुमात्र विचलित नहीं हुआ,

ज्ञानाचा समुद्र। कीं शांतीचें पूर्ण आगर। सुखें सुखरूप कोंदला। ९१
असो मंडपद्वारीं क्षण एक। उभा राहिला श्रीशुक। तों मंडपघसणी होतसे
देख। मार्ग न दिसे जावया। ९२ शुक विचारी मनांत। धर्म केवळ कृष्ण-
भक्त। येथींचा प्रसाद होईल मज प्राप्त। तरीच सार्थक जन्माचें। ९३
कृष्णजी जेथें उच्छिष्टें काढीत। पडिले पत्रावळींचे पर्वत। शुकयोगींद्र
बैसोनि तेथ। उच्छिष्ट शितें वेंचीतसे। ९४ मुखीं घालितां एक ग्रास।
स्वर्गीं घणघणी घंटाघोष। कदा न राहे आसमास। गजर विशेष
जाहला। ९५ श्रीकृष्णासी धर्मराज बोलत। हें काय जी वर्तलें अद्‌भुत।
घंटा घणघणी कोण अर्थ। तें सांगा स्वामी यादवेंद्रा। ९६ कोटि ब्राह्मण
पंक्तीसी जेवितां। एक नाद होय तत्त्वतां। आतां न राहे वाजतां।
जगन्नाथा नवल हें। ९७ हरि म्हणे येथें तत्त्वतां। जेविला असेल ब्रह्मवेत्ता।
ब्रह्मवेत्त्यासी वंदिती माथां। ब्रह्मादिक सहस्राक्ष। ९८ ब्राह्मण जे कां याति-
मात्र। ते एकशतभरी साचार। त्यांतुल्य एक वेदज्ञ विप्र। ग्रंथत्रयीं ज्ञान

जिन्होंने अपने मन को जीत लिया था; जो ज्ञान रूपी आकाश के चन्द्रमा थे, अथवा प्रत्यक्ष (आत्म-) ज्ञान के समुद्र थे, अथवा शान्ति के पूर्ण आगार थे, जो (आत्म-) सुख से सकुशल व्याप्त हो गये थे। ८९-९१ अस्तु। श्रीशुक मुनि मण्डप के द्वार पर एक क्षण खड़े रहे। तो देखिए, (वहाँ) मण्डप में भीड हुई थी; अन्दर जाने के लिए (उन्हें) मार्ग नहीं दिखायी दे रहा था। ९२ (यह देखकर) शुकजी ने (मन में) विचार किया— धर्म तो विशुद्ध कृष्ण-भक्त हैं। यदि यहाँ का प्रसाद मुझे प्राप्त हो जाए तो ही (मेरे) जन्म की सार्थकता है। ९३ जहाँ श्रीकृष्ण जूठन उठाते थे, और पत्तलों के जहाँ पर्वत (जैसे ढेर) लगे हुए थे, वहाँ योगीन्द्र शुकजी बैठकर जूठे अन्नकण बीनने लगे। ९४ (उनके द्वारा) एक कौर मुख में डालने पर स्वर्ग में घण्टे का घनघनाहट के साथ गर्जन होने लगा। वह बिलकुल रुक नहीं रहा था। (इस प्रकार) विशेष प्रकार से गर्जन हो गया। ९५ (यह देखकर) धर्मराज श्रीकृष्ण से बोले, 'अजी, यह क्या चमत्कार घटित हो रहा है? घण्टा घनघनाहट के साथ बज रहा है। हे स्वामी यादवेन्द्र, वह बताइए कि इसका क्या अर्थ है? ९६ पंक्ति में एक करोड़ ब्राह्मणों के भोजन करने पर वस्तुतः एक बार (ही) घण्टा-ध्वनि हो जाती है। हे जगन्नाथ, यह आश्चर्य है कि अब वह बजने से रुकता नहीं है'। ९७ (इसपर) श्रीहरि बोले, 'सचमुच (यहाँ) किसी ब्रह्म-वेत्ता ने भोजन कर लिया हो। इन्द्र, ब्रह्मा आदि ब्रह्म वेत्ता का सिर से वन्दन करते हैं। ९८ जो केवल जाति से ब्राह्मण हैं, उन एक सौ भर ब्राह्मणों के बराबर अर्थात ऐसे एक सौ ब्राह्मणों की तुलना में कोई एक वेदवेत्ता ब्राह्मण

ज्याचें। ९९ वेदज्ञाहूनि शतगुणें बहुत। जो वेदार्थ करणार पंडित। त्याहूनि अनुष्ठानी क्रियावंत। शतगुणें आगळा। १०० अनुष्ठानी शतगुणें आगळा। एक इंद्रियजित बोलिला। त्या गुणें विष्णुभक्त सत्त्वाथिला। जो भेदरहित निर्मत्सर। १०१ त्याहूनि शतगुणें विशेष शुद्ध। एक जाण पां ब्रह्मविद। ज्याचे दृष्टीसी भेदाभेद। जाणपण दिसेना। २ ऐसा ज्ञानी तुझे घरीं। तृप्त झाला आजि निर्धारीं। ऐक चौघेजण जाण या पृथ्वीवरी। ब्रह्मज्ञानी अद्भुत। ३ कपिल याज्ञवल्क्य शुक। श्रीदत्तात्रेय चौथा देख। जो परिपूर्ण ज्ञानार्क। अत्रितनय अवतरला। ४ धर्म हरिचरण दृढ धरोत। जो येथें जाहला तृप्त। तो मज दाखवावा निश्चित। म्हणवूनि आळ घेतली। ५ मग धर्माज्ञा धरूनि हस्त। वेगें दोघे बाहेर येत। तों रूप पालटूनि व्याससुत। वेगें वेंचोत उच्छिष्ट शितें। ६ श्रीहरि म्हणे धर्मा देख। व्यासपुत्र हा महाराज शुक। ऐकतां धांवूनि निःशंक। चरण धरिले तयाचे। ७ शुक मागें पाहे परतोन। तों उभा देखिला जगन्मोहन।

होता है, जिसके पास ग्रन्थत्रय[1] का ज्ञान होता है। ९९ ऐसे वेदों के ज्ञाता से सौ गुना अधिक (महान) बेदों का अर्थ अर्थात व्याख्या करनेवाला विद्वान होता है। उससे सौ गुना अधिक न्यारा होता है कर्मशील अर्थात नित्य के कर्मों को यथाविधि सम्पन्न करनेवाला, अनुष्ठान करने वाला। १०० अनुष्ठान करनेवाले से सौ गुना न्यारा वह एक होता है, जो जितेन्द्रिय कहा जाता है। उससे भी सौ गुना अधिक होता है सत्त्व-गुण से युक्त विष्णु-भक्त, जो भेद-भाव-रहित और मत्सर-हीन होता है। १०१ उससे भी एक ब्रह्म-वेत्ता को सौ गुना अधिक बड़ा समझिए, जिसकी आँखों को भेद-अभेद-भाव तथा ज्ञाताभाव नहीं दिखायी देता। २ ऐसा कोई ब्रह्म-ज्ञानी आपके घर में (भोजन करके) निश्चय ही तृप्त हुआ है। सुनिए, इस पृथ्वी पर चार जनों को अद्भुत रूप से ब्रह्मज्ञानी समझ लीजिए। ३ (एक हैं) कपिल मुनि; (दूसरे हैं) याज्ञवल्क्य ऋषि; (तीसरे हैं) शुक मुनि। देखिए चौथे हैं श्रीदत्तात्रेय, जो परिपूर्ण ज्ञान-सूर्य अत्रि ऋषि के पुत्र-रूप में अवतरित थे'। ४ (यह सुनकर) धर्म ने श्रीहरि के चरण पकड़े और यह कहकर हठ किया कि जो (मेरे) यहाँ (भोजन करके) तृप्त हुआ है, वह मुझे निश्चित रूप से दिखा दीजिए। ५ अनन्तर धर्म का हाथ पकड़कर वे दोनों (श्रीकृष्ण और धर्म) वेगपूर्वक बाहर आ गये, तो (उन्हें दिखायी दिया कि) वेश बदलकर व्यास-सुत शुक वेगपूर्वक जूठे अन्नकण चुन रहे थे। ६ श्रीहरि बोले, 'देखिए हे धर्म, ये व्यास-पुत्र शुक महाराज हैं।' यह सुनते ही (धर्म ने) बिना किसी हिचक के दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये। ७ शुकजी ने पीछे मुड़कर देखा, तो

---

1 ग्रन्थत्रय— तीन वेद : ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद।

दोघांसी पडिलें आलिंगन। प्रेमेंकरून सद्गद। ८ सवेंचि धर्मासी भेटला। धर्में शुकाचा हस्त धरिला। मंडपासी आणूनि पूजिला। बैसविला व्यासापाशीं। ९ शुक देखतांचि दृष्टीं। आनंदल्या ऋषींच्या कोटी। मग धर्माहातीं जगजेठी। पूजन करी शुकाचें। ११० असो एक संवत्सर लोटला। राजसूययज्ञ संपूर्ण जाहला। तेथींचा वर्णावया सोहळा। शेषही शक्त नव्हेचि। १११ भीष्म निरोपी धर्मातें। अहेर अर्पिजे समस्तांतें। सकळ बैसवूनि मयसभेतें। तेथींचीं कौतुकें दावावीं। १२ मयासुर पांडवांचा मित्र। जो दैत्यांमाजी विधीचा अवतार। तेणें ती सभा रचिली सुंदर। जे अनुपम्य त्रिभुवनीं। १३ तेथें सभा वर्णिली अद्भुत। म्हणोनि सभापर्व म्हणती पंडित। जनमेजयासी वैशंपायन सांगत। श्रीभारतग्रंथामाजी। १४ सभा रचिली ते वेळीं। आठही आय साधिले तळीं। अष्ट दिक्पाळ महाबळी।

उन्होंने जगन्मोहन श्रीकृष्ण को देखा। प्रेम से बहुत गद्गद होने पर एक-दूसरे का आलिंगन हो गया। ८ वे साथ ही तत्काल धर्म से मिले (उन्होंने धर्म को गले लगाया)। फिर धर्म ने उनका हाथ थाम लिया; मण्डप में उन्हें ले आकर पूजन किया और व्यासजी के समीप बैठा लिया। ९ आँखों से शुकजी को देखते ही ऋषियों की श्रेणियाँ अर्थात ऋषि-समुदाय आनन्दित हुए। अनन्तर जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने धर्म के हाथों शुकजी का पूजन करा लिया। ११० अस्तु। (इस प्रकार) एक वर्ष व्यतीत हुआ। राजसूय यज्ञ पूर्ण सम्पन्न हुआ। वहाँ का (उस यज्ञोत्सव का) वर्णन करने में शेष तक समर्थ नहीं है। १११ (तत्पश्चात) भीष्म ने धर्म से निवेदन किया, 'सबको उपहार (नेग) दीजिए। (फिर) सबको मयसभा में बैठाकर वहाँ की अद्भुत बातें दिखाइए'। १२ जो दैत्यों में विधाता का अवतार (माना जाता) था, वह मयासुर पाण्डवों का मित्र था। उसने उस सुन्दर सभा (-गृह) का निर्माण किया, जो त्रिभुवन में अनुपमेय थी। १३ वहाँ (महाभारत के उस पर्व में) उस अद्भुत सभा (-भवन) का वर्णन किया गया है, इसलिए पण्डित जन उसे 'सभापर्व' कहते हैं। जनमेजय[1] से श्री (महा) भारत ग्रन्थ में वह वैशम्पायन[2] ने कहा है। १४ उस समय (मयासुर ने) सभा का निर्माण किया। तल में आठों आय सिद्ध किये गये। उसकी नींव के पाये में महाबलवान अष्ट दिक्पालों को

---

१ जनमेजय— जनमेजय कुरुवंशोत्पन्न राजा परीक्षित के पुत्र थे। 'जनमेजय' का अर्थ है, 'लोगों पर धाक जमानेवाला'। तक्षक नाग द्वारा डसने के कारण परीक्षित की मृत्यु हुई, अत: उससे बदला लेने के लिए उन्होंने तक्षशिला पर आक्रमण किया। वहाँ से विजय प्राप्त करके लौटने पर उन्होंने हस्तिनापुर में सर्पयज्ञ का आरम्भ किया। वैशम्पायन ने उनको 'भारत' सुनाया था।

२ वैशम्पायन— देखिए टिप्पणी २, पृष्ठ ५२, अध्याय १।

पायाचे मूळीं स्थापिलें। १५ विद्रुमशिळा आरक्तवर्ण। तेणें पाया आणिला भरून। स्फटिकशिळा शुभ्रवर्ण। त्याचीं पोंवळीं लखलखित। १६ सप्तरंगी पाषाण। चक्रें झळकती आंतून। अंतर्बाह्य देदीप्यमान। पाहतां जन विस्मित। १७ शेषफणांची आकृती। हिरेजडित झळकती। जेवी उगवले गभस्ती। बैसले पंक्ती एकदां। १८ इंद्रनीळांचे वारण। हिऱ्यांचे द्विज सतेज पूर्ण। ते खालते जडून। त्यांवरी मंडप रचियेला। १९ तळीं पद्मरागांचे तोळंबे सबळ। वरी हिऱ्यांचे खांब विशाळ। निळ्यांचीं उथाळीं सुढाळ। तेजाचे कल्लोळ दीसती। १२० सुवर्णाचे तुळवट अखंड। माणिकांचे दांडे प्रचंड। गरुडपाचूंच्या किलच्या दृढ। अभेदपणें जडियेल्या। १२१ पेरोज्यांचे उंबरे तळवटीं। पुष्कराजांच्या चौकटी। गजास्य जडिले मध्यपाटीं। आरक्तवर्ण माणिकांचे। २२ घोंटीव जे मर्गजपाषाण। तेणें साधिलें मंडपांगण। वरी कनकवर्ण वृक्ष रेखून। तटस्थ नयन पाहतां। २३ हिऱ्यांच्या मवलसा विशाळ। त्यांवरी मोतियांचे मराळ। वदनीं विद्रुमलतेचे किरळ। अतिचपळ दीसती। २४ नीळरत्नांचे शिखी साजिरे। गरुडपाचूंचे

स्थापित किया। १५ विद्रुम (मूँगे) की आरक्तवर्ण शिलाओं (फ़र्शों) से नींव को भर दिया। शुभ्र वर्ण की स्फटिक शिलाएँ लेकर उनसे चमकदार प्राचीर बनाये गये। १६ सात रंगों के पाषाण लेकर उनके बनाये हुए चक्र अन्दर चमक-दमक रहे थे। (इस प्रकार) वह सभा अन्तर्बाह्य देदीप्यमान थी। लोग उसे देखकर विस्मित हो जाते थे। १७ शेष-फन की-सी हीरों से जटित आकृतियाँ (वैसे) चमकती थीं (कि जान पड़ता था) जैसे सूर्य उदित हुए और एक साथ एक पंक्ति में बैठ गये हों। १८ इन्द्र-नील के हाथी थे। उनके हीरों के दाँत पूर्णतः तेजोयुक्त थे। उन्हें नीचे जड़कर (बैठाकर, स्थापित करके) उनके ऊपर मण्डप का निर्माण किया था। १९ तल में पद्मराग के दृढ़ तलाधार थे। उनके ऊपर हीरों के विशाल स्तम्भ थे। नील रत्न के सुघड़ ऊर्ध्वाधार थे। उनके तेज की (राशियों-सी) लहरें (निकलकर फैलती हुई) दिखायी देती थीं। १२० सुवर्ण की अखण्डित धरनें थीं। मानिक के प्रचण्ड डाँड़ थे। (उनके बीच) गरुड़ पन्ने की दृढ़ खपचियाँ अभेद रूप से (एकात्म) जड़ायी थीं। १२१ तलभाग में फीरोज़े की देहलियाँ थीं। पुष्कराज की चौखटें थीं। मध्य भाग में मानिक के आरक्त वर्ण गज-मुख जड़े थे। २२ मण्डप का आँगन ऐसे मरकत रत्नस्वरूप पाषाणों से सिद्ध किया था, जो छोटे हुए अर्थात चिकने-चमकदार थे। उनपर स्वर्ण-वर्ण के वृक्ष रेखांकित थे। उनको देखने पर नेत्र चकित हो जाते थे। २३ हीरों के विशाल चँदोवे थे। उनपर मोतियों के राजहंस थे। उनके मुख में प्रवाल के बने अंकुर थे। वे अति चपल दिखायी देते थे। २४ नील रत्न के सलोने मोर थे; गरुड़ पन्ने के

कीर बरे। रत्नमणियांचीं सुंदरें। जांबुळें मुखीं आकर्षिलीं। २५ धन्य मयासुराची करणी। शुक पाचूंचे बोलती क्षणक्षणीं। मयूर नाचती आनंदोनी। पुतळ्या खणोखणीं नाचती। २६ प्रत्यक्ष रत्नपुतळे बोलती। सभेसी आलिया बैसा म्हणती। एक पुतळे आनंदें गाती। पुरे म्हणतां होती तटस्थ। २७ नवल कर्तयाची करणी। पुढें सेवक वेत्रपाणी। धांवा म्हणतां सभाजनीं। चपळ चरणीं धांवती। २८ मेष कुंजर जटिल एकलहरी। आज्ञा होतां घेती झुंझारी। टाळ मृदंग वाजतां कुसरी। रागोद्धार करिती पैं। २९ घटिकेनें घटिका भरतां दिवस। एक पुतळे पिटिती तास। देवांगनांचीं रूपें विशेष। नृत्य करिती संगीत। १३० हिऱ्यांच्या स्तंभांतरीं। नृसिंहमूर्ती गर्जती हुंकारीं। कौस्तुभमणी झळकती एकसरीं। स्तंभांप्रति जडियेले। १३१ कोठें जडियेले स्यमंतकमणी। कीं एकदांचि उगवले तरणी। दिवस किंवा यामिनी। ते स्थानीं नसे कोणा। ३२ एकावरी एक शत खण।

अच्छे-चंगे तोते थे। उन्होंने मुख में रत्नों के मनकों के सुन्दर जामुन आकृष्ट किये हुए अर्थात पकड़े हुए थे। २५ मयासुर की करनी (कृति) धन्य है। पन्ने के बने तोते क्षण-क्षण बोलते थे; मयूर आनन्दित होकर नाचते थे। पुतलियाँ खण्ड-खण्ड में नाचती थीं। २६ रत्नों के पुतले प्रत्यक्ष (सचमुच) बोलते थे। सभा में आने पर वे बोलते, 'बैठिए'। कुछ एक पुतले आनन्द-पूर्वक गाते थे और 'बस, पर्याप्त हो गया' कहने पर चुप हो जाते थे। २७ इस प्रकार उस कर्ता (निर्माता मयासुर) की करती चमत्कार थी। आगे वेत्रधारी (चोबदार) सेवक थे। सभा जनों द्वारा 'दौड़ो' कहने पर चपल चरणों से (गति) से वे दौड़ते थे। २८ आज्ञा (प्राप्त) होते ही मेष (मेढ़े), हाथी, सिंह और एक लहरिया जाति के सर्प[1] जूझना आरम्भ करते थे। झाँझ, मृदंग बजते हुए कौशल-पूर्वक राग अलापते थे। २९ घड़ी पर घड़ी बीतते दिन के पूर्ण होने पर कुछ एक पुतले घण्टों पर प्रहार करके बजाते थे। देवांगनाओं (अप्सराओं) के विशिष्टता युक्त रूप (प्रतिमाएँ) संगीत के साथ नृत्य करते थे। १३० हीरों के स्तम्भों में नरसिंहाकार मूर्तियाँ हुंकार भरकर गरजती थीं। उन स्तम्भों में जटित कौस्तुभ मणियाँ एक साथ चमकती थीं। १३१ कहीं (-कहीं) स्यमन्तक मणियाँ जड़ी हुई थीं। (जान पड़ता था कि) सूर्य एक साथ उदित हुए हों, (अतः) किसी के लिए दिवस अथवा रात उस स्थान पर नहीं थी (नित्य दिवस ही था)। ३२ एक पर एक निर्मित शत (-शत) खण्ड थे। उनमें प्रतिदिन, लीपकर बनायी हुई प्रतिमाएँ मंगल तूर्य बजाती थीं। इस प्रकार (उस सभा-भवन के) निर्माता ने अद्भुत

---

१ एकलहरिया सर्प की विशिष्ट जाति है। ऐसे सर्प द्वारा काटने पर वेदना की केवल एक लहर शरीर में आती है और मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मंगळतुरें अनुदिन। लेपें वाजविती नवल विदान। कर्तयानें दाविलें। ३३ चपळा तळपती एकसरी। तेशा पताका झळकती अंबरीं। कलशजडित नाना परी। हिराविती गगनातें। ३४ गरुडपाचूंचीं जोतीं। चित्रशाळा विशाळ दिसती। गोलांगुलें सारीं उडती। जीव नसतां चपळत्वें। ३५ चतुर्दश भुवनें नृपांसहित। भिंतीवरी पुतळे रत्नजडित। त्यांची जैसी आकृति सत्य। प्रत्यक्ष तैसे काढिले। ३६ नीळरत्नांचें वैकुंठ। हिऱ्यांचें कैलासपीठ। पुष्कराजांचें स्पष्ट। केलें वरिष्ठ ब्रह्मसदन। ३७ इंद्र अग्नि यम निऋर्ती। वरुण समीर कुबेर मृडानीपती। त्यांच्या तनूंची विशेष दीप्ती। प्रत्यक्ष मूर्ति दिक्पाळांच्या। ३८ मित्र रोहिणीवर भूमिसुत। सोमसुत गुरु शुक्र शनीसहित। राहु केतु नवग्रह मूर्तिमंत। पाहतां तटस्थ जन होती। ३९ मत्स्य कूर्म वराह नृसिहमूर्ति। वामन भार्गव राघवाकृती। कृष्ण बौद्ध कल्की अवतारस्थिती। चरित्रा-समवेत प्रत्यक्ष पैं। १४० अतळ सुतळ वितळ। शेष वासुकी फणिपाळ। सप्त पाताळें निर्मळ। लोकांसहित रेखिलीं। १४१ सप्त द्वीपें नव खंडें। छप्पन्न देश काननें प्रचंडें। सरिता सागर तीर्थें उदंडें। पापसंहारक रेखिलीं। ४२ शिवचरित्रें विष्णुचरित्रें। शक्तिआख्यानें अतिविचित्रें।

चमत्कार प्रदर्शित किया। ३३ जैसे बिजलियाँ एक साथ जगमगाती हों, वैसे आकाश में पताकाएँ (ध्वज) चमकती-दमकती थीं। नाना प्रकार के कलशों पर जटित वे पताकाएँ आकाश को (मानो) आच्छादित करती थीं। ३४ चित्रशालाओं के गरुड़ पन्ने के बने चबूतरे विशाल दिखायी देते थे। समस्त वानर, प्राणों के नहीं होते हुए भी चपलतापूर्वक उड़ान भरते थे। ३५ राजाओं-सहित चौदहों भुवन चित्रित थे। दीवारों पर उन राजाओं के रत्नजटित पुतले थे। उन (राजाओं की) जैसी आकृतियाँ (डीलडौल) थीं, सचमुच प्रत्यक्ष वे अंकित थे। ३६ नीलरत्नों का (निर्मित) वैकुण्ठ-लोक था; हीरों का कैलासपीठ था; पुष्कराज का श्रेष्ठ ब्रह्मसदन (ब्रह्म-लोक) स्पष्ट रूप से (चित्रित) था। ३७ (वहाँ) इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, मृडानीपति शिवजी थे। उनके शरीर की कान्ति वैशिष्ट्यपूर्ण थी। वहाँ आठों दिक्पालों की साक्षात मूर्तियाँ (निर्मित) थीं। ३८ सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि-सहित राहु, और केतु —इन नवग्रहों को मूर्तिमान देखते हुए लोग चकित हो जाते थे। ३९ मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह की मूर्तियाँ, वामन, भार्गव परशुराम, राघव राम की आकृतियाँ, कृष्ण, बौद्ध, कल्की के अवतार-रूप उनकी चरित्र-लीलाओं-सहित प्रत्यक्ष चित्रित थे। १४० अतल, सुतल, वितल आदि निर्मल सप्त पातालों को तथा शेष, वासुकि जैसे नागराजाओं को उनके लोकों-सहित रेखांकित किया। १४१ सप्त द्वीप, नौ खण्ड, छप्पन देश, प्रचण्ड वन, नदियाँ, सागर, बड़े-बड़े पाप-संहारक तीर्थ-स्थल चित्रित किये। ४२ शिव-

सोमकांतपाषाणीं सरोवरें। सोपानें सुंदर बांधिलीं। ४३ उष्णोदकाच्या पुष्करिणी। मंगळस्नान करितां जनीं। तनूवरी राजकळा ये ते क्षणीं। नवल करणी तयाची। ४४ स्फटिकभूमी देखोन। भुलती पाहावया नयन। भरलें तेथें जीवन। वस्त्रें सांवरोन चालती। ४५ जेथें भरलें असे जळ। ते भूमी ऐसी दिसे केवळ। वस्त्रें सांवरिती अकुशळ। तों सभा सकळ हांसे वरी। ४६ अंतर्बाह्य निर्मळ दिसती। सतेज काश्मीरांच्या भिंती। मार्ग म्हणवूनि बरळ धांवती। तों ते आदळती भिंतीसी। ४७ केलीं हिऱ्यांचीं कवाडें कडोविकडी। झांकिलीं कीं न कळती उघडीं। प्रवेशतां संशय पाडी। मग हस्तेंकरूनि चांचपती। ४८ सरोवरीं सुवर्णकमळें सुवास। हे कळा दाविली विशेष। वरी नीळयांचे भ्रमर सावकाश। रुंजी घालिती आनंदें। ४९ हिऱ्यांचे मीन तळपती। पाचूंचीं कांसवें आंग लपविती। काश्मीरांचे बक धांवती। मत्स्य धरावयाकारणें। १५० त्रिभुवनसौंदर्य एकवटलें। तें मयसभेवरी ओतिलें। तें सभास्थल जेणें विलोकिलें। तेणें

चरित्रों, विष्णु-चरित्रों, अतिविचित्र शक्ति-चरित्रों को चित्रांकित किया। चन्द्र-कान्त पाषाण के सरोवर तथा उनके सुन्दर सोपान बना लिये। ४३ उष्ण (गर्म) पानी की पुष्करिणियाँ बना लीं, जिनमें स्नान करने पर (स्नान-कर्ता) लोगों के शरीर में उसी क्षण राजा की-सी कान्ति उत्पन्न हो जाती थी। (इस प्रकार) मयासुर का रचना-कार्य अद्‌भुत था। ४४ स्फटिक भूमि को देखकर (लोगों के) नयन देखने में भूल कर देते थे। (उन्हें लगता था कि) वहाँ पानी भरा हुआ है; (भीग न जाएँ) इसलिए वे वस्त्रों को सम्हालकर चलने लगते थे। ४५ जहाँ (वस्तुतः) पानी भरा हुआ था, वह (स्थान) विशुद्ध भूमि जैसा दिखायी देता था। अनजान लोग जब वस्त्र सम्हालने लगते, तो समस्त सभा ऊपर से हँसने लगती। ४६ संगमरमर (विशुद्ध स्फटिक) की बनी भित्तियाँ अन्तर्बाह्य निर्मल और तेजस्वी दिखायी देती थीं। उन्हें मार्ग कहकर भ्रम में पड़े हुए लोग दौड़ने लगते, तो वे भित्ति से टकरा जाते थे। ४७ हीरों के किवाड़ कौशल-पूर्वक बनाये थे। यह समझ में नहीं आता था कि वे बन्द किये हुए हैं अथवा खुले हैं। प्रवेश करने लगने पर सन्देह (भ्रम) उत्पन्न हो जाता, तो वे हाथों से टटोलने लगते। ४८ सरोवर में सुगन्धयुक्त सुवर्ण-कमल (निर्मित) थे। यह विशिष्ट कौशल दिखाया था। उनपर नीलम के भ्रमर गुनगुनाते हुए धीरे-धीरे आनन्द के साथ मँड़राते थे। ४९ (उस सरोवर में) हीरे की मछलियाँ चमकती थीं, पन्ने के कछुए अपने-अपने शरीर को छिपाते-सिकोड़ते थे। स्फटिक (अथवा संगमरमर) के बगुले मछलियों को पकड़ने के लिए दौड़ते थे। १५० त्रिभुवन का सौन्दर्य (वहाँ) इकट्ठा हुआ और वह मयसभा में उँड़ेल दिया गया। जिसने उस सभा-

देखिलें ब्रह्मांड। १५१ सभेसी जातां मार्गीं भले। चंदनाचे सडे घातले। पुष्पभार विखुरले। मृगमदें लेपिले भित्तिभाग। ५२ सभासौंदर्य हाचि समुद्र। पाहातयांचे चक्षू पोहणार। ते न पावती पैलपार। आलीकडे बुडकळती। ५३ कीं सभा सागराचें पैलतीर। मनविहंगम चपळ थोर। पाहावया नाहीं धीर। तेजावर्ती पडे पैं। ५४ ज्या ज्या पदार्थाकडे पाहे प्राणी। तिकडेचि चित्त जाय जडोनी। दिवस किंवा आहे रजनी। पाहातयांसी समजेना। ५५ स्वर्ग मृत्यु पाताळ शोधितां। ऐसी सभा नाहीं तत्त्वतां। धन्य तो मयासुर निर्मिता। विरिंचिअंश सत्य पैं। ५६ आरक्तपटांचे चांदवे दिसती। मुक्तघोंस भोंवते शोभती। दिव्य आस्तरणें पसरिलीं क्षितीं। गाद्या झळकती विचित्र। ५७ पिकदानें ऊर्ध्वमुखें। तांबूलपत्रे अतिसुरेखें। परिमळ-द्रव्यें मृगमदांकें। पेट्या झळकती तयांच्या। ५८ असो राजसूययज्ञासी जे जे आले। तितुके मयसभेवरी चढविले। राजे ऋषी सर्व बैसले। ठायीं ठायीं सन्मानें। ५९ धर्में अहेर सिद्ध केले। वस्त्रांबरांचे पर्वत पडिले। मुख्य सिंहासन मध्यें घातलें।

स्थल को देखा हो, उसने (मानो) समस्त ब्रह्माण्ड को देखा। १५१ उस सभा की ओर जानेवाले रास्तों में चन्दन का छिड़काव किया था; पुष्पसम्भार बिखेर दिये थे; भित्तियों के भाग कस्तूरी से लीपे-पोते थे। ५२ सभा का सौन्दर्य ही समुद्र था; देखनेवालों के नेत्र तैरनेवाले थे; परन्तु वे उस (दूसरे) तीर को प्राप्त नहीं हो जाते थे, इस पार डूबकर तल्लीन हो जाते थे। ५३ अथवा यह (मय-) सभा (मानो) सागर का दूसरा तट था। मन रूपी पक्षी (यद्यपि) बहुत चपल है, फिर भी उसमें उस ओर देखने तक के लिए धैर्य नहीं था। वह तो (बीच में ही) प्रकाश के आवर्त (भँवर) में उलझता था। ५४ कोई प्राणी (मनुष्य) जिस-जिस पदार्थ की ओर देखता, उसकी ओर (उधर ही) उसका चित्त लग जाता। देखनेवालों की समझ में नहीं आता था कि वह दिन है अथवा रात है। ५५ स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल में खोजने पर भी ऐसी सभा सचमुच कहीं नहीं (मिल सकती) थी। वह निर्माता मयासुर धन्य था। वह सचमुच विधाता का अंश (अवतार) था। ५६ लाल वस्त्रों के चँदोवे दिखायी देते थे। चारों ओर मोतियों के गुच्छे शोभायमान थे। भूमि पर दिव्य आस्तरण (वस्त्रासन) बिछे हुए थे। विचित्र गद्दियाँ चमकती-दमकती थीं। ५७ ऊर्ध्वमुख पिकदान थे; अतिसुन्दर ताम्बूलपात्र थे। सुगन्धित द्रव्य और कस्तूरी के चिह्नों से युक्त उनकी मंजूषाएँ चमकती-दमकती थीं। ५८ अस्तु। राजसूय यज्ञ के लिए जो-जो आये, उन सबको मयसभा में चढ़ाया अर्थात ले जाकर बैठाया गया। समस्त राजा और ऋषि सम्मान के साथ स्थान-स्थान पर बैठ गये। ५९ धर्म ने उपहार सिद्ध

अग्रपूजा करावया। १६० भीष्म म्हणे धर्मराया। आचार्यऋत्विजऋषिवर्यां। यथायोग्य पाहोनियां। पूजा समग्र समर्पी। १६१ पुरुषांलागीं सप्तभूषणें। तींही वस्त्रें कनकवर्णें। द्वादशांगीं अलंकारलेणें। स्त्रियांसी देणें तसेचि। ६२ अंतर्वसन बाह्यवसन। कंचुकीवरूनि प्रावरण। पंचवसनें संपूर्ण। स्त्रियांलागीं देईं कां। ६३ तों धर्म म्हणे कुरुनायका। माझिया जनकाचिया जनका। अग्रपूजेचा अधिकारी देखा। कोण मज निरोपीं। ६४ भीष्म म्हणे पंडुसुता। या कृष्णाहूनि कोण परता। हें ब्रह्मांड शोधितां। श्रेष्ठ नाहीं आणिक। ६५ हा जलजोद्भवाचा पिता। अपर्णापति वंदी माथां। शक्रासी शक्रपद हाता। येणें कृपेनें दिधलें। ६६ जो जगदंकुरकंद। जो त्रिभुवनमंदिरस्तंभ अभेद। जो विश्वंभर ब्रह्मानंद। त्याहूनि थोर कोण असे। ६७ हृदयवैकुंठपीठाआंत। जें विरिंचीचें आराध्यदैवत। अंतःकरण-सांबळीमाजी वाहत। सनकादिक अत्यादरें। ६८ हाचि मूळमायेचा भर्ता। हाचि अनंतब्रह्मांडकर्ता। कैवल्यभांडारींचें ठेवणें तत्त्वतां। सगुण झालें भक्तांलागीं। ६९ वेद पुराणें शास्त्र। अर्थ करिती विचित्र। तोचि जाणा

किये। वस्त्रों-प्रावरणों के पर्वत लग गये। तो अग्रपूजा करने के लिए मुख्य सिंहासन मध्यभाग में स्थापित किया। १६० भीष्म बोले, 'हे धर्मराज, आचार्यों, ऋत्विजों और ऋषिवरों में यथायोग्य व्यक्ति को देखकर उसे समग्र पूजा समर्पित कीजिए। १६१ पुरुषों को सातों आभूषण तथा कनक-वर्ण वस्त्र अर्थात पीताम्बर ही, उसी प्रकार स्त्रियों को द्वादश-अंग आभूषण-वस्त्र प्रदान करना। ६२ स्त्रियों को अन्तर्वस्त्र, बाह्यवस्त्र, कंचुकी, ऊपर से ओढ़ लेने के लिए दुशाला —ये सम्पूर्ण पंचवस्त्र देना'। ६३ तो धर्म बोले, 'हे कुरु-नायक, मेरे पिता के पिता (पितामह, दादा), देखिए और मुझे बताइए कि अग्रपूजा के लिए अधिकारी (यथायोग्य) व्यक्ति कौन है ?'। ६४ (इसपर) भीष्म बोले, 'हे पण्डुसुत, ब्रह्माण्ड में खोज करने पर भी श्रीकृष्ण से अधिक श्रेष्ठ कोई अन्य नहीं है। ६५ ये ब्रह्मा के पिता हैं, शिवजी इनका सिर से वन्दन करते हैं; इन्होंने कृपा करते हुए इन्द्र के हाथों इन्द्रपद दिया। ६६ जो जगत के अंकुर के मूलकन्द हैं, जो त्रिभुवन के मन्दिर के अभेद्य स्तम्भ हैं, जो विश्वम्भर हैं, ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) हैं, उनसे कौन बड़ा है ? ६७ जो विधाता के हृदय रूपी वैकुण्ठ-पीठ में स्थित उनके अपने आराध्य देवता हैं, सनक आदि जिनको अति आदरपूर्वक अन्तःकरण रूपी छोटी मंजूषा में वहन करते हैं, ये ही आदि-माया के पति हैं, ये ही अनन्त ब्रह्माण्डों के निर्माता हैं, कैवल्य रूपी भण्डार की सचमुच धरोहर हैं, ये ही भक्तों के लिए सगुण (रूपधारी) हो गये हैं। ६८-६९ वेद, पुराण, शास्त्र जिनके नाम, रूप आदि के विचित्र अर्थ (व्याख्या) बताते हैं, समझिए कि वे ही हैं ये कमल-नयन, कोमल-गात्र

राजीवनेत्र। कोमलगात्र श्रीरंग। १७० त्वंपद तत्पद असिपद। त्याहूनि वेगळा सुबुद्ध। ऐसा वेदांत गाजे अगाध। तो हा गोविंद ओळखें। १७१ मीमांसक स्थापिती कर्म। आचरावे ज्यालागीं धर्म। तो हा जाण पुरुषोत्तम। उच्छिष्ट काढी तुमचे येथें। ७२ नैयायिक म्हणती कर्ता ईश्वर। जीवासी न कळे स्वरूपपार। तोचि जाण श्रीकरधर। सारथी जाण पार्थाचा। ७३ प्रकृतिपुरुषांचा ऐक्यार्थ। सांख्यशास्त्र असे गर्जत। तोचि हा क्षीराब्धि-जामात। द्रौपदीचा कैवारी। ७४ व्याकरणशास्त्री सप्त विभक्ती। नाना सूत्रें नामें ध्याती। तोचि हा कंसांतक यदुपती। खिल्लारी म्हणती नंदाचा। ७५ अष्टांगयोगादि साधन। पातंजल शास्त्राचेंही कथन। योग साधूनि पावावे चरण। याचेचि जाण पंडुसुता। ७६ शैव यासी म्हणती

श्रीरंग। १७० अथाह वेदान्त[1] गरजकर कहता है, 'त्वं-पद तत्पद असिपद' अर्थात 'त्वं तदसि (तुम वही ब्रह्म हो)' से जो सुबुद्धि-सहित न्यारे हैं, जान लीजिए, ये वे ही गोविन्द हैं। १७१ मीमांसक कर्म की स्थापना करते हैं। उनके अनुसार जिनके लिए विभिन्न धर्मों-कर्मों का आचरण करना चाहिए, समझिए कि वे ही ये पुरुषोत्तम आपके यहाँ उच्छिष्ट उठा रहे हैं। ७२ नैयायिक कहते हैं— ईश्वर कर्ता है; जीव की समझ में अपना रूप तथा उसका रूप नहीं आता। वे ही (ईश्वर) श्रीकरधर— श्रीकृष्ण को समझिए। समझिए कि वे ही अर्जुन के सारथी हैं। ७३ सांख्य-शास्त्र गर्जनपूर्वक प्रकृति और पुरुष का अभेद (एकत्व) कहता है। वे ही (पुरुष) ये क्षीरसागर के जामाता विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, (जो) द्रौपदी के सहायक-रक्षक हैं। ७४ व्याकरण-शास्त्री (वैयाकरण) जिनका सात विभक्तियों[2], तथा नाना सूत्रों और अभिधानों (संज्ञाओं) से ध्यान करते हैं, वे ही हैं ये कंसान्तक यदुपति श्रीकृष्ण, जिनको नन्द का चरवाहा कहते हैं। ७५ योगशास्त्र अष्टांग योग[3] आदि की साधना बताता है। हे पण्डुसुत, उस पातंजल योगशास्त्र का भी यह कथन है कि योग की

---

१ यहाँ पर कवि ने वेदान्त, मीमांसा, न्याय आदि का उल्लेख करते हुए यह सूचित करना चाहा है कि यद्यपि ये शास्त्र ब्रह्म-परमात्मा तथा आत्मा-जीव आदि के विषय में विभिन्न धारणाएँ रखते हैं, फिर भी वे सब वैदिक परम्परा का अनुसरण करते हैं और ब्रह्म, पुरुष जैसे किसी सर्वोपरि वस्तु का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इन समस्त शास्त्रों में समन्वय स्थापित करके दार्शनिक एक ही वस्तु की विभिन्न प्रकार से व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। वही वस्तु, जिसे ब्रह्म, पुरुष आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता है, कृष्ण-भक्तों के मत में श्रीकृष्ण हैं।

२ व्याकरण के अनुसार कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण और सम्बोधन कारकों के चिह्नों को विभक्तियाँ कहते हैं। ने, से, को, में आदि विभक्तियाँ हैं।

३ अष्टांग योग— देखिए टिप्पणी १, पृष्ठ २३८, अध्याय ८।

सदाशिव। वैष्णव भाविती रमाधव। सौर म्हणती सविता स्वयमेव। तो हा माधव जाण पां। ७७ गाणपत्य म्हणती गणेश। तो जाण द्वारकाधीश। शाक्त म्हणती शक्तिविशेष। हरि मायाविलासी हा। ७८ संतांचें हृदयजीवन। जो समरधीर दुष्टभंजन। तुमचे दृष्टीसी सोयरा पूर्ण। जगद्भूषण दिसतो हा। ७९ जे दुर्जन दुरात्मे पामर। ते यासी म्हणती कपटी दुराचार। हा जगद्गुरु यादवेंद्र। जो मुरहर मधुसूदन। १८० त्या श्रीकृष्णासी टाकून। कोणाचें येथें करिसी पूजन। ऐसें बोलतां गंगानंदन। सहदेवें पूजा सिद्ध केली। १८१ अग्रोदकाचा भरूनि कलश। षोडशोपचार जे जे विशेष। पूजावया परमपुरुष। धर्मराज सिद्ध जाहला। ८२ सुगंधचंदन पात्र घेऊन। उठावला भीमसेन। सुवासपुष्पमाळा घेऊन। पार्थ उभा

साधना करते हुए इन्हीं के चरणों को प्राप्त हो जाएँ। ७६ शैव[1] जिन्हें सदाशिव कहते हैं, वैष्णव जिन्हें रमापति भगवान विष्णु मानते हैं, सौर जिन्हें स्वयमेव सविता (सूर्य) कहते हैं, जान लीजिए कि वे ये (ही) माधव— श्रीकृष्ण हैं। ७७ गाणपत्य जिन्हें गणेश कहते हैं, समझिए कि वे ये ही द्वारकाधीश श्रीकृष्ण हैं। शाक्त जिन्हें विशिष्ट शक्ति कहते हैं, वे ये (ही) माया-विलासी श्रीहरि हैं। ७८ जो सन्तों के हृदय के लिए जीवनस्वरूप हैं, जो समरधीर हैं, दुष्टों का विनाश करनेवाले हैं, ये जगद्भूषण श्रीकृष्ण आपकी दृष्टि में पूर्णतः सगे— इष्ट जन हैं। ७९ जो दुर्जन, दुरात्मा, पामर हैं, वे इन्हें कपटी, दुराचारी कहते हैं। फिर भी जो मुरारि, मधुसूदन (कहे जाते) हैं, वे ही ये जगद्गुरु यादवेन्द्र हैं। १८० उन श्रीकृष्ण को छोड़कर यहाँ आप किसका पूजन करते हैं? गंगानंदन भीष्म द्वारा ऐसा कहने पर सहदेव ने पूजा अर्थात पूजा की सामग्री सिद्ध कर दी। १८१ शुद्ध जल से कलश को भरकर, जो-जो विशिष्ट सोलह उपचार[2] हैं, उन्हें इकट्ठा करके धर्मराज परमपुरुष श्रीकृष्ण का पूजन करने के लिए सिद्ध हो गये। ८२ भीमसेन सुगन्धयुक्त चन्दन का पात्र लेकर उठ गये (उद्यत हुए)। सुगन्धित पुष्पों की मालाओं को लेकर पार्थ प्रेम से खड़े

---

१ जिस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में विभिन्न मतों में समन्वय स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार भक्ति के शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, शाक्त आदि सम्प्रदायों में भी समन्वय किया जाता है। एक ही परब्रह्म को महाशिव, महाविष्णु, सूर्य, गणपति आदि नामों से विभिन्न सम्प्रदाय सम्बोधित करते हैं। विविधता तथा अनेकता में एकता की अनुभूति भारतीय दर्शन तथा भक्ति सम्प्रदायों की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है।

२ सोलह उपचार— षोड़शोपचार पूजन के : आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन ५, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प १०, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और मंत्रपुष्प १६।

आवडीनें। ८३ हि-यांची चवकी अढळ। लाहेंलाहें घाली नकुळ। वरी क्षीरोदकवस्त्र निर्मळ। घडी घातली तयावरी। ८४ धर्म म्हणे श्रीरंगा यदुकुळटिळका। या चौरंगीं बैसा मन्मथजनका। भक्तवत्सला वैकुंठपालका। कर्ममोचका मुरारे। ८५ पुढील कार्य जाणोनि साचार। आग्रह न धरीच श्रीधर। पूजासनीं बैसला यादवेंद्र। जयजयकार जाहला। ८६ प्रतिविंध्यादि द्रौपदीचे कुमर। वेगें धरिती छत्रचामर। वाळ्याचे विंझणे सुखकर। दोहींकडे वारिती। ८७ सुभद्रेचा पुत्र अभिमन्य। उभा ठाकला पादुका घेऊन। भीष्म विदुर अवघे भक्तजन। उभे ठाकले आवडीनें। ८८ वैष्णव कीर्तनें करिती। हरिरंगें आनंदें नाचती। विष्णुचरित्रें अद्भुत गाती। टाळ्या वाजविती आनंदें। ८९ विमानीं बैसोनि सुरवर। वर्षती सुमनांचे संभार। सनकादिकांचे नेत्र। प्रेमजळें पूर्ण भरले। १९० नाना वाद्यांचे गजर होत। बंदीजन यदुवंश वर्णीत। षोडशोपचारें इंदिराकांत। धर्म पूजीत तये वेळीं। १९१ हरिचरण धरूनि हातीं। प्रेमें क्षाळी धर्मनृपती। जे जान्हवीची उत्पत्ती। सप्तपाताळीं होती सिंधुकन्या। ९२ सद्गुरूसी

हो गये। ८३ नकुल ने हीरे की अडिग चौकी झट से स्थापित की और ऊपर क्षीर-समुद्र के उदक-से श्वेत निर्मल वस्त्र को तह करके बिछा दिया। ८४ (तत्पश्चात) धर्म बोले, 'हे यदुकुल-तिलक, हे मन्मथ (प्रद्युम्न) के पिता, हे भक्त-वत्सल, हे वैकुण्ठ-पालक, हे कर्ममोचक, हे मुरारि, इस चौकी पर विराजिए। ८५ आगे के कार्य को जानकर सचमुच यादवेन्द्र श्रीकृष्ण ने कोई (पूजा स्वीकार न करने की बात कहते हुए तब) हठ नहीं किया। वे पूजा के आसन पर विराजमान हो गये, तो जय-जयकार हो गया। ८६ द्रौपदी के प्रतिविन्ध्य आदि पुत्रों ने छत्र और चामर धर दिये। वे खस का पंखा दोनों ओर हिलाने लगे। ८७ सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु पादुकाएँ लेकर खड़ा हो गया। भीष्म, विदुर तथा समस्त भक्तजन प्रेम के साथ खड़े हो गये। ८८ वैष्णव जन कीर्तन करने लगे और श्रीहरि के प्रेम से आनन्दपूर्वक नाचने लगे। वे भगवान विष्णु के अद्भुत चरित्रों (लीलाओं) का गान करने लगे। वे आनन्द के साथ तालियाँ बजाते रहे। ८९ देव विमानों में बैठकर फूलों की राशियाँ बरसाते थे। सनक आदि के नेत्र (उत्कट) प्रेम से उत्पन्न अश्रु-जल से भर गये। १९० अनेकानेक वाद्यों का गर्जन हो रहा था। बन्दीजन यदुवंश (की महिमा) का वर्णन कर रहे थे। उस समय धर्म ने इन्दिरा-कान्त भगवान विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण का सोलह उपचारों से पूजन किया। १९१ धर्मराज ने श्रीहरि के उन चरणों को हाथों में लेकर प्रेम-पूर्वक धो लिया, जो गंगा का उत्पत्ति-स्थान हैं। (जब गंगा की उत्पत्ति हुई, तब) सिन्धु-कन्या लक्ष्मी सप्त पातालों में (अर्थात क्षीरसागर में)

शरण जाऊन। ज्ञानें ओळखिजे निर्गुण पूर्ण। परी त्यापरीस गोड सगुण। भक्तांलागीं अवतरलें। ९३ जो पुराणपुरुष परात्पर। तो आनकदुंदुभीचा कुमर। हरिभजनीं वारंवार। हृदयीं ध्यास जयासी। ९४ केवळ ब्रह्मानंद मुरोन। मूर्ति ओतिली सगुण। श्रुतींसीही न वर्णवे पूर्ण। बुडे मन सहित-करणें। ९५ तों अलंकारमंडित पूर्ण। किरीटकुंडलें सुहास्य-वदन। कृपा-कटाक्षेंकरून। निजभक्तां न्याहाळी जो। ९६ कपाळीं मृगमदाचा टिळक। आंगीं केशरी उटी सुरेख। वैजयंतीचें तेज अधिक। हृदयीं पदक झळकतसे। ९७ मनोहर पीतवसन। मुक्तलग पदर विराजमान। उत्तरीय वस्त्र झळके पूर्ण। जेवीं चपळा निराळीं। ९८ चरणीं ब्रीदें तोडर रुळती। असुरांवरी गजर करिती। ऐसा तो यादवेंद्र जगत्पती। धर्मराय पूजी तया। ९९ वेदशास्त्रग्रंथ विलोकून। ज्यांचे शिणले सदा नयन। ते श्रीकृष्ण-मूर्ति सदा पाहोन। ब्रह्मानंदें डुल्लती। २०० जे वैराग्यें जाहले तप्त। जे तीर्थें हिंडती विरक्त। तिहीं देखतां द्वारकानाथ। श्रमरहित जाहले। २०१

थी। ९२ सद्गुरु की शरण में जाकर (उनके द्वारा प्रदान किये हुए) ज्ञान के बल पर निर्गुण ब्रह्म को पूर्णतः जान लीजिए। फिर भी उसके समान वही निर्गुण ब्रह्म भक्तों के लिए मधुर सगुण रूप में अवतरित हैं। ९३ जो (वस्तुतः) परात्पर पुरुष हैं, वे ही ये उस आकनदुन्दुभि वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण हैं, जिसको हृदय में श्रीहरि की भक्ति का ध्यान बार-बार लगा रहता है। ९४ विशुद्ध ब्रह्मानन्द को गलाकर श्रीकृष्ण की यह सगुण मूर्ति ढाली हुई है। उन (की सुन्दरता, महत्ता) का वर्णन श्रुतियों द्वारा भी पूर्णतः नहीं किया जा पाता। (उनको देखकर उनके सौंदर्य-सागर में) मन इन्द्रियों-सहित डूबकर मग्न हो जाता है। ९५ जो अपने भक्तों की ओर कृपा-दृष्टि से देखते थे, वे आभूषणों से पूर्णतः विभूषित थे; वे किरीट-कुण्डलों को धारण किये हुए थे। उनका मुख सुहास्य से युक्त था। ९६ उनके भाल पर कस्तूरी का तिलक था। शरीर में सुहाना केसरिया उबटन लगा था। वैजयन्ती माला का तेज अधिक (बहुत, अनोखा) था। हृदय पर पदिक चमक रहा था। ९७ उनका पीताम्बर मनोहारी था; उसका मोती-जटित छोर शोभायमान था। उनका उत्तरीय वस्त्र पूर्णतः चमकता-दमकता था, जैसे आकाश में बिजली चमकती रहती है। ९८ चरणों में बिरुद और तोड़र शोभायमान थे। (मानो) वे असुरों के प्रति गरज रहे थे। ऐसे उन यादवेन्द्र जगत्पति श्रीकृष्ण का पूजन धर्मराज ने किया। ९९ वेद-शास्त्र आदि ग्रन्थों को देखकर (पढ़कर) जिनके नेत्र थकावट को प्राप्त हुए, वे नित्य श्रीकृष्ण की मूर्ति को देखते हुए ब्रह्मानन्द से डोलते-झूमते हैं। २०० जो वैराग्य से तप्त हुए, जो विरक्त पुरुष तीर्थक्षेत्रों में भ्रमण करते थे, वे भी द्वारकानाथ श्रीकृष्ण को

जप तप अनुष्ठान। कर्मकुशल करिती यज्ञदान। जे एकांतीं गुहा बैसले सेवून। तेही हरिरूप पाहूनि निवाले। २ हेलावला सौंदर्यसमुद्र। कीं आनंदाचा लोटला पूर। श्रीकृष्ण देखूनि पूर्णचंद्र। भक्तचकोर वेधले। ३ तो वैकुंठींचा नृपवर। ब्राह्मणदेव अतिउदार। जो ब्रह्मादि देवांचें माहेर। जो भ्रतार इंदिरेचा। ४ कोट्यनुकोटी मीनकेतन। नखांवरूनि सांडावे ओंवाळून। त्याचें आपुले हातीं पूजन। पंडुनंदन करीतसे। ५ वस्त्रें भूषणें अलंकार। अर्पी सोळाही उपचार। करणेंसहित मन सुकुमार। सुमनें चरणीं समर्पिलीं। ६ डोळे भरूनि हरि पाहिला। तैसाचि मग हृदयीं रेखिला। जैसा निवांतस्थानीं दीप ठेविला। तो कदापि न हाले। ७ ऐसा पूजिला यादवेंद्र। परी दुर्जन क्षोभले समग्र। आतां शिशुपाळाचें शिर। उडवील साचार श्रीकृष्ण। ८ शत शिव्या देईल सभेंत। शेवटीं तयासी मोक्ष प्राप्त। ते सुरस कथा परिसोत पंडित। अत्यादरेंकरूनियां। ९ श्रीधरवरद

देखने पर कष्ट-रहित हो गये। २०१ जो जप, तप, अनुष्ठान करते थे, जो कर्मकाण्ड में कुशल व्यक्ति यज्ञकर्म सम्पन्न करते हुए दान देते थे, जो एकान्त में गुहा का आश्रय लेकर बैठते थे, वे भी श्रीहरि के रूप को देखकर शान्त-तृप्त हो गये। २ (मानो श्रीकृष्ण के रूप में) सौंदर्य-समुद्र उमड़ उठा था; अथवा आनन्द का रेला वेगपूर्वक प्रवाहित हुआ। श्रीकृष्ण रूपी पूर्णचन्द्र को देखकर भक्त रूपी चकोर आकर्षित (मोहित) हो गये। ३ जो ब्रह्मा आदि देवों का मायका है, जो इंदिरा के पति हैं, वे वैकुण्ठ के नृपवर भगवान विष्णुस्वरूप कृष्ण ब्राह्मणों को देव माननेवाले थे, अति उदार थे। ४ जिनके नखों पर करोड़ों कामदेवों को निछावर कर दिया जाए, उन (श्रीकृष्ण) का पूजन पण्डुनन्दन धर्मराज अपने हाथों से कर रहे थे। ५ उन्होंने वस्त्र, आभूषण, अलंकार, सोलहों उपचार समर्पित किये। अपनी इन्द्रियों-सहित अपने सुकोमल मन को तथा फूलों को उनके चरणों में समर्पित किया। ६ उन्होंने आँखें भरकर श्रीहरि को देखा और अनन्तर उन (के रूप) को अपने हृदय में वैसे ही रेखांकित किया। जिस प्रकार शान्त स्थान पर (जहाँ हवा नहीं चल रही हो) दीप रख दिया जाए, तो वह कदापि विचलित नहीं होता (ज्योति नहीं हिलती, नहीं बुझती), धर्मराज के मन में श्रीकृष्ण का रूप उसी प्रकार स्थित हो गया। ७ इस प्रकार (धर्मराज ने) यादवेन्द्र का पूजन किया; परन्तु समस्त दुर्जन क्षुब्ध हो उठे। (देखिए) अब श्रीकृष्ण शिशुपाल के मस्तक को काटकर उड़ा देंगे। ८ वह सभा में सैकड़ों गालियाँ देगा। (फिर भी) अन्त में उसे मोक्ष प्राप्त हो जाएगा— पण्डित जन (इस सम्बन्ध में) उस रसमय कथा को अति आदरपूर्वक सुनें। ९ जो श्रीधर (कवि) के वर-दाता (गुरु) ब्रह्मानन्द (आनन्दस्वरूप ब्रह्म) हैं,

ब्रह्मानंद। जो अभंग अक्षय अगाध। तो हरिविजयामाजी जगदंकुरकंद। विराजे सदा स्वानंदें। २१० इति श्रीहरिविजय ग्रंथ। संमत हरिवंश भागवत। सदा परिसोत प्रेमळ भक्त। चतुस्त्रिंशतितमोऽध्याय गोड हा। २११

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

जो अभंग हैं, अथाह हैं, अक्षय हैं, वे जगत के अकुर के मूलकन्द (श्रीकृष्ण) श्रीहरि-विजय नामक इस ग्रन्थ में आत्मानन्द के साथ सदा विराजमान हैं। २१०

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेममय भक्त उसके इस मधुर चौंतीसवें अध्याय का सदा श्रवण करें। २११

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३५

[श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल-वक्रदन्त का वध करना]

श्रीगणेशाय नमः॥ माझें हृदय दिव्य कमळ। जें तेजोमय परम निर्मळ। अष्टकर्णिका अतिकोमळ। मध्यें घननीळ विराजे। १ हृत्पद्म मध्यें गंभीररेखा। श्रीरंग नांदे भक्तसखा। अष्टकर्णिकांवरी अष्टनायिका। त्याही स्थापूं निजध्यानीं। २ रुक्मिणी जांबुवंती सत्यभामा। कालिंदी मित्रविंदा मनोरमा। याज्ञजिती लक्ष्मणा पूर्णकामा। मद्रावती आठवी। ३ मध्यभागीं श्रीकरधर। कर्णिकांवरी नायिका सुकुमार। ऐसा हृदयकमळीं यादवेंद्र। सर्वदाही पूजावा। ४ चौतिसावे अध्यायीं कथा जाणा। धर्में

श्रीगणेशाय नमः। मेरा हृदय वह दिव्य कमल है, जो तेजोमय तथा परम निर्मल है। उसकी आठों कर्णिकाएँ (दल, पँखुड़ियाँ) अति कोमल हैं। उनके बीच घननील श्रीकृष्ण विराजमान हैं। १ इस हृदय-कमल के अन्दर एक गम्भीर रेखा है। (वहाँ) भक्त-सखा श्रीरंग निवास करते हैं। मैं (श्रीकृष्ण की) आठों नायिकाओं को भी अपने ध्यान के विषय के रूप में उन आठों कर्णिकाओं पर प्रतिष्ठित कर देता हूँ। २ (ये नायिकाएँ हैं—) रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मनोरमा मित्रविन्दा, याज्ञजिती, पूर्णकामा लक्ष्मणा (ये सात) और आठवीं है मद्रावती। ३ मध्यभाग में श्रीकरधर श्रीकृष्ण हैं और (चारों ओर) कर्णिकाओं पर सुकुमार नायिकाएँ (विराजमान) हैं। हृदय रूपी कमल में (विराजमान) यादवेन्द्र कृष्ण का नित्य ही पूजन करें। ४ जान

अग्रपूजा दिधली कृष्णा। तेणें क्षोभ आला दुर्जनां। शिशुपाळादिकांसी। ५ चैद्य आणि कौरव। एके सभेसी बैसले सर्व। क्षुद्रदृष्टीं लक्षिती माधव। परम द्वेषी दुरात्मे। ६ शिवलिंग देखतां दृष्टीं। शिवद्वेषी होती जेवीं कष्टी। कीं विष्णुप्रतिमा पाहतां पोटीं। दुःख कपाळीं जंगमां। ७ कीं देखतां साधूंचें पूजन। परम क्षोभती जैसे कुजन। कीं पतिव्रतेची राहटी पाहोन। जारिणी जेवीं निंदिती। ८ कीं दृष्टीं देखतां राजहंस। कावळियांसी उपजे त्रास। कीं पंचानना देखूनि सावकाश। जंबुकांसी आनंद वाटेना। ९ कीं सभेंत देखोनि पंडित। मूर्ख मतिमंद संतापत। कीं दृष्टीं देखतां समीरसुत। वाटे अनर्थ रजनीचरां। १० कीं ऐकतां हरिनामघोष। भूतप्रेतांसी उपजे त्रास। तैसें पूजितां श्रीरंगास। दुर्जन परम संतापले। ११ अंतरींच कष्टी कौरव संपूर्ण। परी चैद्यांमाजी दमघोषनंदन। परम दुखावला दुर्जन। काळसर्प ज्यापरी। १२ भीष्मासी म्हणे कुंतीनंदन। आतां कोणाचें करूं

लीजिए कि चौंतीसवें अध्याय में यह कथा (कही गयी) है— धर्म ने श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की; उससे शिशुपाल आदि दुर्जनों को बौखलाहट अनुभव हुई। ५ चेदिराज शिशुपाल और कौरव— सब एक सभा में बैठे हुए थे। वे परम द्वेष्टा, दुरात्मा श्रीकृष्ण को तुच्छतापूर्ण दृष्टि से देखते थे। ६ आँखों से शिवलिंग को देखने पर जिस प्रकार शिवजी के द्वेष्टा कष्ट को प्राप्त हो जाते हैं, अथवा श्रीविष्णु की प्रतिमा को देखकर जंगमों[1] के पेट और सिर में दर्द होने लगता है, अथवा साधुओं के पूजन को देखकर दुर्जन जिस प्रकार क्षुब्ध हो जाते हैं, अथवा पतिव्रता का आचरण देखकर जारिणियाँ जिस प्रकार उसकी निन्दा करती हैं, अथवा राजहंस के दिखायी देते ही कौओं को कष्ट उत्पन्न हो जाता है, अथवा यकायक सिंह को देखकर सियारों को आनन्द नहीं अनुभव होता, अथवा सभा में विद्वान को देखकर मन्दमति मूर्ख क्रुद्ध हो उठते हैं, अथवा पवनकुमार हनुमान को देखते ही राक्षसों को संकट लगता था, अथवा श्रीहरि के नाम का घोष सुनते ही भूत-प्रेतों को कष्ट उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार श्रीरंग का पूजन करने पर दुर्जन परम क्रोध को प्राप्त हुए। ७-११ कौरव तो अन्तःकरण ही में सम्पूर्ण रूप से कष्ट को प्राप्त हो गये; परन्तु चैद्यों में दमघोषनन्दन दुर्जन शिशुपाल कालसर्प जैसा परम दुःख को प्राप्त हुआ। १२ (इधर) कुन्तीनन्दन धर्म गंगात्मज भीष्म से बोले, 'अब मैं किसका पूजन

---

१ जंगम— 'लिंगायत' नामक शैव सम्प्रदाय के अनुयायियों के गुरुओं को 'जंगम' कहते हैं। प्रत्येक लिंगायत के लिए गुरु की आवश्यकता होती है; इसलिए इस सम्प्रदाय में जंगम वर्ग का बहुत महत्त्व माना जाता है। गुरुस्थल (विवाहित) और विरक्त नामक जंगमों के दो प्रमुख भेद हैं। गुरुस्थल लिंगायतों का पौरोहित्य करते हैं, तो विरक्त धार्मिक विषयों का अध्ययन-अध्यापन करते हैं।

पूजन । गंगात्मज बोले वचन । तों शिशुपाळ जल्पे मलतेंचि । १३ म्हणे रे धर्मा ऐक बचन । तुम्ही नीच मूर्ख अवघेजण । गोरक्षक आधीं पूजून । अपेश माथां घेतलें । १४ योग्यायोग्य विचार । मूढा तुज न कळे साचार । अग्रपूजेसी अधिकारी जार । करितां पामर पांडव तुम्ही । १५ दोघे जनक त्या गोरक्षकातें । पंच तात तुम्हां पांडवांतें । यालागीं दोघांचीं चित्तें । एक जाहलीं परस्परें । १६ परम मूर्ख युधिष्ठिर । बुद्धिभ्रष्ट जाहला गंगाकुमर । पूजेसी अधिकारी तस्कर । केला साचार यज्ञमंडपीं । १७ ऋत्विज सांडूनि सत्यवतीकुमर । कपिल याज्ञवल्क्य वसिष्ठ ब्रह्मपुत्र । द्रोण कृपाचार्य गुरुवर । टाकूनि जार पूजिला । १८ धृतराष्ट्र सांडूनि वृद्ध । सोयरा सांडूनि द्रुपद । कोण्या विचारें बुद्धिमंद । हा गोविंद पूजिला । १९ अश्वत्थामा गुरुनंदन । पूजावा होता सूर्यसुत कर्ण । पृथ्वीपति सुयोधन ।

करूँ ?' तो वे यह बात बोलने जा रहे थे कि शिशुपाल अनुचित (अनिष्ट) बात बकने लगा । १३ वह बोला, ' अरे धर्म, मेरी बात सुनो । तुम सब जने नीच और मूर्ख हो । तुमने एक गोरक्षक का पहले पूजन करके माथे पर अपयश (अपकीर्ति, बदनामी) लगा लिया । १४ अरे मूढ़, सचमुच तुम्हारी समझ में योग्य-अयोग्य का विचार नहीं आता । तुम पामर पाण्डवों ने एक जार को अग्रपूजा का अधिकारी मान लिया है । १५ उस गोरक्षक के दो जनक[1] हैं; तुम पाण्डवों के पाँच पिता[2] हैं । इसलिए तुम दोनों के चित्त (मत) परस्पर एक हो गये । १६ यह युधिष्ठिर परम मूर्ख है; यह गंगाकुमार भीष्म बुद्धि भ्रष्ट हो गया है । (अतः) उन्होंने यज्ञमण्डप में सचमुच एक चोर को पूजा का अधिकारी बना लिया । १७ सत्यवती-कुमार व्यास, कपिल[3], याज्ञवल्क्य, ब्रह्म-पुत्र वसिष्ठ —इन ऋत्विजों को छोड़कर, द्रोण, कृपाचार्य जैसे गुरुवरों को छोड़कर उन्होंने एक जार का पूजन किया । १८ धृतराष्ट्र जैसे वृद्ध को छोड़कर, द्रुपद जैसे सगे-सम्बन्धी को छोड़कर किस विचार से इस मन्दबुद्धि श्रीकृष्ण का पूजन किया ? १९ अश्वत्थामा जैसे गुरुपुत्र का अथवा सूर्यसुत कर्ण का पूजन

---

१ श्रीकृष्ण के दो जनक— १ वसुदेव (जन्मदाता) और २ नन्द (लालन-पालन-कर्ता) ।

२ पाण्डवों के पाँच पिता— (धर्म का) यम, (भीम का) पवन, (अर्जुन का) इन्द्र, (नकुल और सहदेव के) दो अश्विनीकुमार ।

३ कपिल मुनि— कर्दम ऋषि के देवहूति से उत्पन्न पुत्र कपिल निवृत्ति मार्गीय थे । वे ब्रह्मज्ञानी थे; सांसारिक पाशों से ये मुक्त हुए और पाताल में जाकर रहने लगे । इन्हें सांख्यशास्त्र का प्रवर्तक माना जाता है । इन्होंने पाताल में सगर के पुत्रों को क्रोधाग्नि में जला डाला था । सांख्यसूत्र, कपिलगीता, कपिलस्मृति आदि इनके द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ हैं । विद्वज्जनों की मान्यता के अनुसार कपिल नामधारी व्यक्ति एक से अधिक हो गये हैं ।

सांडूनि कृष्ण पूजिला। २० भीमक बाल्हीक वृद्ध थोर। शल्य एकलव्य भगदत्त वीर। जयद्रथ शकुनि महावीर। सांडूनि तस्कर पूजिला। २१ पूज्य अपमानूनि थोर थोर। अपूज्यासी पूजिलें साचार। येणें तुमचें यश कीर्ति पुण्य समग्र। बुडोनि भ्रष्ट जाहलें। २२ येणें कोणतें केलें अनुष्ठान। कीं केलें जप तप व्रत साधन। किंवा येणें केलें वेदपठन। म्हणोनि आधीं पूजिला। २३ यासी म्हणावें रायासमान। तरी नाहीं छत्रसिंहासन। आचार्य नव्हे हा ब्राह्मण। भ्रष्टपूजन व्यर्थ केलें। २४ आम्ही बैसलों असतां नृपवर। आधीं पूजिला गोपाळकुमर। आमुचें घ्राण छेदिलें समग्र। परम अपवित्र पांडव तुम्ही। २५ पूजणें होतें जरी गोवळा। तुवां कुष्ठपुत्रा अमंगळा। आम्हांसी कां आणिलें खळा। यज्ञ गेला वृथा तुझा। २६ म्यां तुज दिधला करभार। कीं दुर्बळ तू कुष्ठपुत्र। धर्मकृत्यासी साह्य करावें

करना चाहिए। (उनको और) पृथ्वीपति सुयोधन को छोड़कर उन्होंने कृष्ण का पूजन किया। २० भीमक, बाह्लीक[1] वृद्ध और बड़े हैं; शल्य, एकलव्य, भगदत्त[2] वीर हैं; जयद्रथ, शकुनि महावीर हैं; उनको छोड़कर एक तस्कर का पूजन किया। २१ बड़े-बड़े पूजनीय व्यक्तियों का अपमान करके सचमुच उन्होंने अपूजनीय का पूजन किया। इससे तुम्हारी सफलता, कीर्ति, समग्र पुण्य डूबकर भ्रष्ट हो गया। २२ इसने कौन-सा अनुष्ठान किया है? अथवा (क्या) जप, तप, व्रत, साधना की है अथवा (क्या) इसने वेद-पठन किया है, जिससे इसका पहले पूजन किया है? २३ यदि इसे राजा के समान कहें, तो इसके तो कोई छत्र और सिंहासन नहीं हैं। न यह आचार्य है, न ब्राह्मण। उन्होंने व्यर्थ ही ऐसे भ्रष्ट व्यक्ति का पूजन किया है। २४ हम नृपवरों के बैठे होने पर उन्होंने पहले गो-पाल (ग्वाले) के पुत्र का पूजन किया है। हमारी समग्र नाक को काट डाला है— तुम पाण्डव परम अपवित्र हो। २५ हे अमंगल कुष्ठपुत्र[3], हे खल, तुम्हें यदि एक ग्वाले का पूजन करना था, तो तुम हमें क्यों (बुलाकर) लाये? तुम्हारा यज्ञ व्यर्थ हो गया। २६ मैंने तुम्हें इसलिए करभार प्रदान किया कि तुम दुर्बल कुष्ठपुत्र हो। विवेकवान नर कहते हैं कि धर्म-कार्य में

१ बाह्लीक— कुरुवंशोत्पन्न राजा बाह्लीक अतिरथी परम प्रतापी पुरुष था। वह दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना में से एक अक्षौहिणी सेना का प्रमुख था। धृष्टकेतु, द्रुपद आदि से इसने युद्ध किया और अन्त में वह भीम के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ।

२ भगदत्त— नरकासुर का परम प्रतापी पुत्र भगदत्त प्राग्ज्योतिषपुर का अधिपति था। अर्जुन ने इसे पराजित किया। वह कौरवों का पक्षपाती था।

३ कुष्ठपुत्र— राजा पाण्डु 'पाण्डुरोग' से पीड़ित था। यह रोग श्वेतकुष्ठ जैसा है। शिशुपाल ने इसलिए पाण्डु-पुत्र धर्मराज को 'कुष्ठपुत्र' कहा है।

साचार। विवेकी नर बोलती। २७ तुवां अपमानिलें भूपाळां। येथें थोर केला गोवळा। इतुकेनि आम्हां नीचत्व सकळां। सर्वथाही नव्हेचि। २८ यज्ञपुरोडाश अरण्यांत पडिला। तो एका जंबुकासी लाधला। तितुकेनें काय तो श्रेष्ठ झाला। मृगेंद्राहूनि थोर पैं। २९ जैसी राजकन्या परम सुंदर। षंढाप्रति दिधली साचार। हिंसकासी गोदान निर्धार। दिधलें तुवां पंडुपुत्रा। ३० जन्मांधासी दर्पण दाविला। सूकर सिंहासनीं बैसविला। येणें जरासंध कपटें मारिला। कोणता केला पुरुषार्थ। ३१ ऐसें बोलोनि पापमती। खड्ग गवसवूनि आपुले हातीं। म्हणे उठा रे आमुचे सांगाती। जे असाल तितुकेही। ३२ ऐसें बोलतां शिशुपाळ। तात्काळ उठिले अवघे खळ। कृष्णद्वेषी परम चांडाळ। अति कोल्हाळ करिती ते। ३३ धर्में धांवोनि तात्काळ। हृदयीं कवळिला शिशुपाळ। म्हणे तूं आमुचा बंधु केवळ। यज्ञ हा सकळ तुझा असे। ३४ ऋषि तपस्वी वृद्ध राजेंद्र। कृष्ण पूजितां त्यांसी आनंद थोर। तंही कृष्णभजनीं सादर। अनन्य होईं शिशुपाळा। ३५ परम जाणता गंगानंदन। वृद्ध वडील सर्वमान्य।

सचमुच सहायता करें। (तुम जैसे दुर्बल की सहायता करना धर्म-कार्य है)। २७ तुमने राजाओं को अपमानित किया है और यहाँ पर एक ग्वाले को महान कर दिया है। इतने से हम सबको नीचत्व (छोटापन) बिलकुल ही नहीं आ रहा है। २८ कोई यज्ञ-पुरोडाश (यज्ञ-हविर्भाग) अरण्य में गिर पड़ा (और) वह (संयोग से) एक सियार को प्राप्त हुआ, तो क्या वह इतने से सिंह से बड़ा हो गया ? २९ जिस प्रकार किसी ने परम-सुन्दर राजकन्या सचमुच एक षण्ढ को प्रदान की हो, किसी ने हिंसक (क़साई) को निश्चयपूर्वक गो-दान किया हो, उसी प्रकार हे पण्डु-पुत्र, तुमने (यह पूजा-दान) दिया है। ३० (तुमने तो) जन्मान्ध को दर्पण दिखाया; सूअर को सिंहासन पर बैठा दिया। इसने कपट से जरासन्ध को मार डाला। इसने कौन-सा पराक्रम किया है ?' ३१ इस प्रकार बोलते हुए वह पापमति (शिशुपाल) अपने हाथ में खड्ग लेकर बोला, 'अहो हमारे जितने भी, जो भी साथी हों, वे सभी उठ जाएँ (सिद्ध हो जाएं)'। ३२ शिशुपाल द्वारा ऐसा बोलने पर समस्त खल जन तत्काल उठ गये (सिद्ध) हो गये। वे परम कृष्णद्वेष्टा, चण्डाल (दुष्ट) थे। वे अति कोलाहल करने लगे। ३३ तो धर्म ने तत्काल दौड़कर शिशुपाल को हृदय से लगा लिया और कहा, 'तुम तो हमारे बन्धु मात्र हो। यह समस्त यज्ञ तुम्हारा है। ३४ कृष्ण का पूजन करने पर ऋषियों, तपस्वियों, वृद्धों, राजेन्द्रों को बड़ा आनन्द हुआ। हे शिशुपाल, तुम भी कृष्ण की भक्ति में आदर-सहित एकनिष्ठ हो जाओ। ३५ गंगानन्दन भीष्म परम ज्ञानी हैं; वे वृद्ध, ज्येष्ठ हैं, सबके लिए सम्मान्य हैं। उनकी आज्ञा से मैंने पूजन किया है,

त्याचे आज्ञेनें म्यां केलें पूजन । तूं कां दूषण ठेविसी । ३६ तुजहूनि जाणते पंढित । कृष्णपूजनें ते आनंदत । तुझे हृदयीं हा अनर्थ । काय म्हणोनि प्रवेशला । ३७ तंव भीष्म यथार्थ बोले वचन । परम नष्ट हा दमघोषनंदन । त्याचें कासया करिसी शांतवन । त्यासी मरण जवळी असे । ३८ कां याचें करिसी समाधान । कदा न मानी तो तुझें वचन । जैसीं वस्त्रें भूषणें प्रेतासी पूर्ण । काय लेववून सार्थक । ३९ मतिमंदापुढें ठेविलें शास्त्र । षंढाहातीं दिधलें शस्त्र । मसणीं मंडप विचित्र । व्यर्थ जैसे उभारिले । ४० वायसासी अमृतफळें । कीं उष्ट्रासी समर्पिलें केळें । कीं रासभाच्या अंगासी लिंपिलें । मृगमदाचें उटणें हो । ४१ द्राक्षफळें अर्पिलीं सूकरा । आदर्श दाविला जन्मांध नरा । कीं कृमियांसी समर्पिली शर्करा । तैसा या पामरा काय बोध । ४२ भग्नपात्रीं जीवन । कां श्रमावें व्यर्थचि घालून । दुग्धामाजी हरळ रांधून । काय व्यर्थचि जाण पां । ४३ उकिरडां ओतिलें सुधारसा । सुमनशेजेवरी निजविला म्हैसा । दुग्धें न्हाणिलें वायसा । शुभ्र नव्हे कदापि । ४४ तैसा हा सुबुद्धि न धरी पामर । जैसा तस्कर विटे देखोनि निशाकर । हिंसकासी

तो तुम क्यों दोष लगा रहे हो । ३६ तुमसे (भी) जो (अधिक) ज्ञानी, विद्वान हैं, वे (भी) कृष्ण के पूजन से आनन्दित हुए । (परन्तु) तुम्हारे हृदय में यह अनुचित भाव किसलिए पैठ गया ' । ३७ तब भीष्म ने यथार्थ रूप से यह बात कही, ' यह दमघोषनन्दन शिशुपाल परम दुष्ट है । उसका अनुनय आप क्यों कर रहे हैं ? उसकी मौत निकट (आयी) है । ३८ इसके क्रोध का निराकरण आप क्यों कर रहे हैं ? वह आपकी बात कभी नहीं मानेगा । जैसे प्रेत को पूरे वस्त्र-आभूषण पहनाकर क्या सार्थकता होगी (उसी प्रकार शिशुपाल को समझाना अर्थहीन है) । ३९ यह वैसे ही व्यर्थ है, जैसे किसी ने मन्दमति व्यक्ति के सामने शास्त्र (के ग्रन्थों अथवा विचारों) को प्रस्तुत किया, (अथवा) षण्ढ के हाथों शस्त्र (थमा) दिया, अथवा श्मशान में अद्‌भुत मण्डप जैसे व्यर्थ ही छवा दिये । कौए को अमृत (जैसे मधुर) फल दिये, अथवा ऊँट को केला समर्पित किया, अथवा गधे के शरीर में कस्तूरी का उबटन लगा लिया, अथवा सूअर को अंगूर के फल समर्पित किये, जन्मान्ध मनुष्य को दर्पण दिखाया अथवा कृमियों को शक्कर समर्पित की —यह जिस प्रकार अर्थहीन है, उसी प्रकार इस पामर के लिए उपदेश देने से क्या होगा (वह व्यर्थ ही सिद्ध होगा) । ४०-४२ टूटे बर्तन में पानी डालकर व्यर्थ ही श्रम को क्यों प्राप्त हों ? जान लीजिए कि दूध में कंकड़ों को पकाकर क्या व्यर्थ ही श्रम को प्राप्त हों ? ४३ घूरे पर अमृत-रस उँड़ेल दिया, फूलों के बिछौने पर भैंसे को सुला दिया (लिटा दिया) । कौए को दूध से नहलाया, तो भी वह कभी सफ़ेद नहीं होगा । ४४ उसी प्रकार, (आपके द्वारा समझाये-बुझाये जाने पर, उपदेश

धर्मशास्त्र साचार। कदा नावडे जाण पां। ४५ आम्हीं ज्याचें केलें पूजन। त्यासी हृदयीं ध्यात ईशान। जलजोद्भव सहस्त्रनयन। अनन्यशरण जयासी। ४६ जो जगद्गुरु इंदिरावर। जो प्रतापमित्र समरधीर। ऐसा कोण असे पामर। जो पूजा इच्छी त्याआधीं। ४७ जो भवगजविदारक पंचानन। सनकादिक ज्यासी शरण। त्यासी आधीं पूजितां पूर्ण। कां हा दुर्जन दुखावला। ४८ जो अनंतब्रह्मांडनायक। भोगींद्र जाहला ज्याचा तल्पक। तो पुराणपुरुष निष्कलंक। जगद्वंद्य अनादि जो। ४९ हा एवढी आगळीक बोलत। कोठें यानें केला पुरुषार्थ। महागज देखोनि भुंकत। श्वान जेवीं अनिवार। ५० ऐसें बोलतां शंतनुकुमर। तों सहदेवासी आवेश वाटला थोर। जैसा कां गजांत मृगेंद्र। उभा राहोनि बोले ते वेळीं। ५१ आम्हीं सभास्थानीं निश्चित। यथार्थ पूजिला वैकुंठनाथ। असह्य मानी त्याचे पूर्वज समस्त। चरणातळीं माझिया। ५२ जो कृष्णासी निंदी दुर्जन। त्याची जिव्हा घ्राण छेदीन। रासभावरी बैसवून। पिटीन जाण

देने पर भी) यह पामर सुबुद्धि को धारण नहीं करेगा। (वह उसी प्रकार उकता जाएगा) जिस प्रकार चोर चन्द्रमा को देखकर अरुचि को प्राप्त हो जाता है। यह जान लीजिए कि हिंसक को धर्मशास्त्र सचमुच कभी भी अच्छा नहीं लगता। ४५ हमने जिनका पूजन किया है, शिवजी अपने हृदय में उनका ध्यान करते हैं, ब्रह्माजी, इन्द्र उनकी शरण में अनन्य भाव से जाते हैं। ४६ जो जगद्गुरु इन्दिरापति भगवान विष्णुस्वरूप हैं, जो प्रताप के सूर्य हैं, समरधीर हैं, ऐसा कौन पामर है, जो उन (श्रीकृष्ण) के पहले अपना पूजन (कराना) चाहता है। ४७ जो संसार (-पाश रूपी) हाथी को विदीर्ण करनेवाले सिंह हैं, सनक आदि जिनकी शरण में आते हैं, उनका पूजन पहले पूर्ण करने पर यह दुर्जन (शिशुपाल) दुःख को क्यों प्राप्त हुआ ? ४८ जो अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक हैं, भोगीन्द्र शेष जिनके लिए बिछौना बन गया है, जो जगद्वन्द्य हैं, अनादि हैं, वे ये पुराणपुरुष श्रीकृष्ण कलंक-रहित हैं। ४९ यह (शिशुपाल) इतना (चिढ़ाने के हेतु) छेड़ते हुए निन्दास्पद बोल रहा है, परन्तु इसने कहाँ पराक्रम किया है ? (यह उस प्रकार बोल रहा है) जैसे महान हाथी को देखकर कुत्ता अनिवार्य होकर भूँकता है'। ५० तो शन्तनुकुमार भीष्म द्वारा ऐसा कहने पर सहदेव को बहुत बड़ा आवेश उमड़ आया। उस समय जैसे गजान्तक मृगेन्द्र (सिंह) दहाड़ता हो, वैसे खड़े रहकर वे बोले। ५१ 'हमने सभास्थान में वैकुण्ठ-नाथ का यथार्थ पूजन निश्चय ही किया है। जो इसे असहनीय समझता है, उसके समस्त पूर्वज मेरे चरणों के तले हों। ५२ जो दुर्जन श्रीकृष्ण की निन्दा करेगा, मैं उसकी जिह्वा और नाक को काट डालूँगा। समझ लीजिए कि मैं उसे गधे पर बैठाकर दिगन्त तक पीटता जाऊँगा'। ५३

दिगंतरीं। ५३ ऐसें सहदेव बोलतां आगळें। जयजयकारें देव गर्जले। पुष्पांजुळी वोपिते झाले। माद्रीपुत्रावरी तेधवां। ५४ आकाशीं देववाणी गर्जत। धन्य धन्य सहदेव भक्त। नारद म्हणे ऐका समस्त। मोठा अनर्थ होईल आतां। ५५ जेणें निंदिला द्वारकानाथ। त्याजवळी आला रे अनर्थ। तो प्रेतप्राय निश्चित। जननी व्यर्थ प्रसवली। ५६ ऐसें ऐकोनि ते वेळां। शिशुपाळ अत्यंत क्षोभला। घेऊनि दुर्जनांचा मेळा। उभा ठाकला संग्रामा। ५७ म्हणे या वेळे पांडव भीम। कृष्णासमवेत करीन भस्म। अवघे खळ निघोनि परम। कोल्हाळ करिती तेधवां। ५८ जैसा दृष्टीं देखतां राजहंस। एकदांचि कोल्हाळ करिती वायस। युधिष्ठिर म्हणे भीष्मास। कैसें आतां करणें जी। ५९ मग बोले गंगाकुमर। तूं स्वस्थ राहीं न सांडीं धीर। कैसा तरेन मी सागर। कुंभोद्भवें विचार करावा कां। ६० निद्रिस्थ श्रीकृष्णपंचानन। तंववरीच हे जंबुक करिती गर्जन। अरे हा धडधडित कृशान। दुर्जनकानन जाळील पैं। ६१ श्रीकृष्णवडवानळावरी एक वेळे। चैद्य उठले तृणाचे पुतळे। शिशुपाळ कर्पूर बळें। पुढें धांवतो

सहदेव द्वारा ऐसी अनोखी बात बोलने पर देव जय-जयकार करते हुए गरजने लगे। उन्होंने तब माद्री-पुत्र सहदेव को पुष्पांजलियाँ अर्पित कीं। ५४ आकाश में देववाणी गरज उठी— 'भक्त सहदेव धन्य हैं, धन्य हैं।' तब नारद बोले, 'आप सब (लोग) सुनिए। अब बड़ा उपद्रव मचेगा। ५५ जिसने द्वारकानाथ की निन्दा की, उसके पास संकट आ गया, निश्चय ही उसकी जननी उसे प्रेत जैसा व्यर्थ ही जनी हो'। ५६ ऐसा सुनते ही उस समय शिशुपाल अत्यधिक क्षुब्ध हो उठा। वह दुर्जनों का समुदाय (साथ में) लेकर युद्ध के लिए खड़ा हो गया। ५७ वह बोला, 'मैं इस समय कृष्ण-सहित भीम आदि पाण्डवों को भस्म कर डालूँगा'। तब समस्त खल पुरुष चल पड़ते हुए (उस प्रकार) परम कोलाहल मचाने लगे, जिस प्रकार राजहंस को आँखों से देखने पर एक साथ कौए कोलाहल करते हैं। तो युधिष्ठिर भीष्म से बोले, 'अब कैसे (क्या) करना है?' ५८-५९ तब गंगाकुमार भीष्म बोले, 'आप चुप रहिए, धीरज नहीं छोड़िए। कुम्भोद्भव अगस्त्य ऋषि इसका क्यों विचार करें कि मैं सागर को किस प्रकार तैरकर पार कर सकूँगा। ६० (जब तक) श्रीकृष्ण रूपी पंचानन (सिंह) सोये हुए हैं, तब तक ही ये जम्बुक (सियार) गरज रहे हैं। अहो, वह धधकता हुआ अग्नि दुर्जन रूपी कानन को जला डालेगा'। ६१ श्रीकृष्ण रूपी बड़वाग्नि पर एक ही समय चैद्य रूपी घास के पुतले युद्ध करने के लिए सिद्ध हो गये। शिशुपाल रूपी कपूर उस (बड़वाग्नि) को बुझाने के लिए बलात् आगे दौड़ा। ६२ उसका जो समस्त परिवार (सहायकों का समूह) था, यह तो जैसे मोम की गुड़ियाँ थीं। श्रीरंग मानो ज्वालामाली

विझवावया। ६२ याचा परिवार जो सकळी। हीं मेणाचीं जैसीं बाहुलीं। श्रीरंग हा ज्वाळामाळी। भस्म करील क्षणार्धें। ६३ ऐसें ऐकतां शिशुपाळ। क्रोधें खवळला जैसा व्याळ। कुशब्द तेंचि टाकी गरळ। भीष्मासी समोर लक्षूनियां। ६४ म्हणे रे भीष्मा दुष्टा वृद्धा। परम हीना बुद्धिमंदा। कपटिया आमुची करतोसी निंदा। तुझी जिव्हा कां झडेना। ६५ कोणता कृष्णें केला पुरुषार्थ। म्हणोनि जल्पसी सभेआंत। पूतना वृद्ध स्त्री मारिली सत्य। म्हणोनि वाढीव बोलसी। ६६ केशी अश्व मारिला देख। काळिया अघासुर दंदशूक। बकासुर पक्षी एक। मारूनि पुरुषार्थी जाहला। ६७ गोवर्धन तरी एक वल्मीक। कपटी म्हणोनि गिळिला पावक। कपटेंच कंस काळयवनादिक। मारिले येणें गोवळें। ६८ तस्करांमाजी अतिश्रेष्ठ। जारांमाजी परम वरिष्ठ। कपटी नाटकी परम नष्ट। स्वधर्मभ्रष्ट गोवळा। ६९ अरे भीष्मा तूं परम दुर्जन। काशीपतीच्या कन्या नेल्या हिरून। त्यांत एके स्त्रीनें दिधला प्राण। तुजवरी नपुंसका। ७० लोकांसी

(अग्नि) थे। वे उन्हें क्षणार्ध में भस्म कर सकते थे। ६३ ऐसा सुनते ही शिशुपाल क्रोध से साँप जैसा बौखला उठा। वह (साँप) सामने भीष्म को लक्ष्य करके कुशब्द (गालियाँ) रूपी विष डालने (उगलने) लगा। ६४ वह बोला, 'रे दुष्ट वृद्ध भीष्म, रे परम हीन, बुद्धिमन्द, रे कपटी, तू हमारी निन्दा करता है, तेरी जिह्वा झड़ क्यों नहीं जाती। ६५ कृष्ण ने कौन-सा पराक्रम किया है, जिससे तू इस सभा में जल्पना (बकवास) कर रहा है? यह सच है कि उसने पूतना नामक एक बूढ़ी स्त्री को मार डाला। इसलिए ऐसी बड़ी बात कह रहा है। ६६ देख, उसने केशी नामक घोड़े को मार डाला। कालिय-अघासुर जैसे सर्प, बकासुर नामक एक पक्षी को मारकर वह पराक्रमी बन बैठा है। ६७ गोवर्धन गिरि तो एक बमीठा है (जिसे उसने उठाया)। वह कपटी है, जिससे उसने आग को निगल डाला (ऐसा स्वाँग रचा)। इस ग्वाले ने कपट से ही कंस, कालयवन आदि को मार डाला। ६८ यह चोरों में अतिश्रेष्ठ हैं; जारों में परम वरिष्ठ है, वह कपटी, नाटकिया (ढोंगी-स्वाँगी), परम दुष्ट, स्वधर्म से भ्रष्ट ग्वाला है। ६९ अरे भीष्म, तू तो परम दुर्जन है। काशिपति की कन्याओं (अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका) का अपहरण करके उन्हें तू ले गया। हे नपुंसक, उनमें से एक ने तुझपर (तेरे कारण) प्राण त्यज दिये[1]। ७०

१ भीष्म द्वारा काशिपति की कन्याओं का अपहरण— भीष्म ने अपने पिता शान्तनु के सत्यवती से उत्पन्न चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक पुत्रों का पुत्रवत् पालन किया। शान्तनु की मृत्यु के पश्चात चित्रांगद युद्ध में एक गन्धर्व द्वारा मारा गया। तो भीष्म ने विचित्रवीर्य को राज्यासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। काशिराज की कन्याओं के— अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका के स्वयंवर में जाकर भीष्म ने उनका अपहरण किया और समस्त राजाओं को पराजित करके वे हस्तिनापुर लौटे। वहाँ उनमें से अम्बिका और*

निरोपिसी धर्म। मूढा तूंचि करिसी अधर्म। ऐसी निंदा ऐकतां भीम। गदा सांवरोनि सरसावला। ७१ जैसा केवळ खदिरांगार। तैसे आरक्त दिसती नेत्र। म्हणे हे दुर्जन अपवित्र। चूर्ण करीन गदाघायें। ७२ भीष्में धरूनि भीमाचा हात। म्हणे क्षण एक राहें तूं स्वस्थ। याचें आयुष्य उरलें किंचित। जवळीं अनर्थ पातला। ७३ शिशुपाळ भीष्मासी म्हणे अवधारीं। सोडीं भीम येऊं दे मजवरी। जातवेद पतंगासी भस्म करी। तैसें करीन निर्धारें। ७४ कृष्ण भीम अर्जुन। तिघे येऊं दे एकदांचि शस्त्र घेऊन। विलंब करितां षंढ पूर्ण। नाम तुझें निर्धारीं। ७५ ऐसीं दुष्टोत्तरें बोलत। तीं क्षमा करूनि गंगासुत। भीमासी म्हणे ऐक वृतांत। पूर्वीचा तुज सांगतों। ७६ दमघोषाची पत्नी सात्वती। ते वसुदेवाची भगिनी होय निश्चितीं। तिचे उदरीं हा पापमती। शिशुपाळ जन्मला। ७७ उपजतांचि

लोगों को तू धर्म बताता है (धर्म का उपदेश देता है)। (फिर भी) हे मूढ़, तू ही अधर्म कर रहा है।' ऐसी निन्दा सुनते ही भीम गदा सम्हालते हुए आगे बढ़े। ७१ जैसे विशुद्ध खदिरांगार (खदिर की लकड़ियों की आग) हो, वैसे उनके आरक्त नेत्र दिखायी दे रहे थे। वे बोले, 'हे अपवित्र दुर्जन, गदा के आघात से तुझे चूरचूर कर डालूंगा (पीस डालूंगा)'। ७२ तो भीष्म ने भीम का हाथ थामकर कहा, 'एक क्षण तुम शान्त (चुप) रहो। इसकी आयु किंचित (बहुत अल्प) शेष रही है। इसके पास भारी विपत्ति (विनाश) आ पहुँची है'। ७३ (फिर) शिशुपाल भीष्म से बोला, 'सुन, भीम को छोड़ दे, उसे मेरी ओर आने दे। आग पतंग को जिस प्रकार भस्म कर डालती है, वैसे निश्चय ही मैं कर दूंगा। ७४ कृष्ण, भीम, अर्जुन तीनों को शस्त्र लेकर एक साथ आने दे। विलम्ब करने पर तेरा नाम पूर्णतः निश्चय ही षण्ढ होगा'। ७५ वह दुष्टता से इस प्रकार के वचन बोला, फिर भी गंगासुत भीष्म उन्हें क्षमा करके भीम से बोले, 'सुनो, पूर्वकाल की एक घटना (सम्बन्धी समाचार) मैं तुम्हें बताता हूँ। ७६ (चेदिराज) दमघोष की पत्नी सात्वती वस्तुतः वसुदेव की भगिनी है। उसके उदर से (गर्भ से) यह पापमति शिशुपाल जनमा। ७७ उस (स्त्री) ने अपनी आँखों से जन्मतः ही शिशु को देखा— उस (शिशु) के दोनों बाहुओं पर (और दो)

---

* अम्बालिका का विवाह उन्होंने विचित्रवीर्य से करा दिया। अम्बा ने शाल्व का प्रेम-पूर्वकवरण किया था; यह जानकर भीष्म ने उसे वापस भेजा, तो शाल्व ने उसे अपहृत मानकर उसे अस्वीकार किया। तब वह भीष्म के पास आयी और विवाह में स्वीकार करने की विनती की। भीष्म ने इस विनती को ठुकरा दिया। अन्त में बदला लेने की इच्छा से वह तपस्या करने लगी। शिव ने उसे शिखण्डी के रूप में उत्पन्न होने का वरदान दिया। उस रूप में वह भीष्म की मृत्यु का कारण बननेवाली थी। फिर अम्बा ने आग में कूदकर देहत्याग कर दिया।

बाळ पाहे नयनीं। भुजांवरी भुजा दोन्ही। कपाळीं नेत्र अवगुणी। हा पापखाणी उपजला। ७८ लोक म्हणती अवचिन्ह। माता म्हणे टाका बाहेरी नेऊन। तों आकाशीं बोले देववाणी वचन। न टाकीं बाळ सर्वथा। ७९ हा होईल महाभूपती। शिशुपाळ नाम ठेवी याप्रती। माता विस्मित जाहली चित्तीं। काय पुढती बोलत। ८० कोणाचे हातें याचा मृत्यु। हें देवदूता वदें निश्चित। तों आणिक प्रतिध्वनि होत। माय ऐकत सादरें। ८१ ज्या पुरुषाचे दृष्टीकरून। दोन भुजा आणि तिजा नयन। खालीं पडेल गळोन। यासी मरण त्याहातीं। ८२ ऐसी बोलोनि आकाश वाणी। गुप्त राहिली तेचि क्षणीं। मग बाळ घेती जाहली जननी। विरूप रूपें चतुर्बाहु। ८३ देशोदेशींचे भूपती। बाळ पाहावयालागीं येती। प्रचीत विलोकावया सात्वती। शिशुपाळ देत त्यांपुढें। ८४ बळिभद्र आणि घननीळ। तेही पाहावया आले बाळ। बंधुपुत्र देखतां तुंबळ। आनंद झाला सात्वतीतें। ८५ शिशुपाळ आणि वक्रदंत। दोघे कृष्णापुढें आले रांगत। कृष्णदृष्टी पडतां अकस्मात। भुजा गळोनि पडियेल्या। ८६ कपाळींचा तिजा नयन।

बाहु थे और भाल में एक अवगुण (अशुभता) सूचक (तीसरा) नेत्र था। इस प्रकार यह पाप की खान (शिशुपाल) जनमा। ७८ तो लोग बोले, 'यह अशुभ लक्षण (से युक्त) है'। (यह जानकर) माता बोली, इसे बाहर ले जाकर फेंक दो'। तो आकाश में देववाणी ने यह बात कही, 'इस बालक को बिलकुल न फेंक दो। ७९ यह महान राजा हो जाएगा। इसका नाम शिशुपाल रखो'। (यह सुनकर) माता मन में विस्मित हुई। उसने आगे (फिर) क्या कहा? (सुनिए)। ८० 'हे देवदूत, निश्चित रूप से यह बता दो कि किसके हाथों इसकी मृत्यु होगी'। तब और प्रतिध्वनि हो गयी। उसे माता ने आदरपूर्वक सुना। ८१ 'जिस पुरुष की दृष्टि से (जिसके द्वारा देखने पर) इसके दो बाहु और तीसरा नयन गिरकर नीचे पड़ जाएँगे, उसके हाथों इसकी मौत होगी'। ८२ इस प्रकार बोलकर उसी क्षण आकाशवाणी चुप हो गयी। अनन्तर माता ने विकृत रूपवाला वह चतुर्भुजधारी बालक ले लिया। ८३ बालक को देखने के लिए देश-देश के राजा आ जाते थे; तो (आकाशवाणी द्वारा सूचित बात की) सच्चाई देखने के लिए सात्वती उनके सामने शिशुपाल को रख देती। ८४ (एक दिन) बलभद्र और घननील कृष्ण भी बालक को देखने के लिए आ गये। अपने बन्धु (वसुदेव) के उन पुत्रों को देखकर सात्त्वती को असीम आनन्द हुआ। ८५ शिशुपाल और वक्रदन्त दोनों घुटनों के बल चलते-चलते कृष्ण के सामने आ गये, तो कृष्ण की दृष्टि के अकस्मात पड़ते ही (शिशुपाल की दोनों अतिरिक्त) भुजाएँ गिर पड़ीं। ८६ उसके भाल में स्थित तीसरा नयन तत्काल ही लय को प्राप्त

तत्काळचि गेला जिरोन। मातेसी चिंता दारुण। प्राप्त जाहली तेधवा। ८७ मग हरीपुढें पदर पसरून। पितृभगिनी मागे पुत्रदान। म्हणे यासी तूं न मारीं म्हणोन। भाष देईं मजलागीं। ८८ श्रीकृष्ण बोले साच वचन। शत अपराध क्षमा करीन। अधिक जाहलिया बोळवीन। मोक्षसदना निर्धारें। ८९ ऐसें बोलतां गोविंद। मातेसी जाहला आनंद। म्हणे कासया करील शत अपराध। मग रामसुकुंद बोळविले। ९० यालागीं ऐक भीमा निश्चित। त्या शत अपराधांचें होय गणित। यालागीं श्रीकृष्ण निवांत। वाट पाहात समयाची। ९१ हे शिशुपाळ वक्रदंत। पूर्वीचे दैत्य उन्मत्त। रावण कुंभकर्ण निश्चित। रामावतारीं वधिले जे। ९२ येणें पूर्वीं येऊनि मिथिलेसी। धांवला वरावया सीतेसी। भार्गवचाप नुचलें मानसीं। परम खेद पावला। ९३ तोचि शिशुपाळ पापखाणी। वरावया धांवला रुक्मिणी। तेणें पराजय पावला रणीं। जरासंधासमवेत। ९४ तो द्वेष धरूनि मनांत। दुर्जन कृष्णनिंदा करीत। तरी शत अपराध आले भरत। जवळी अनर्थ यासी आला। ९५ ऐकतां भीष्माचें वचन। क्रोधें धडकला दमघोषनंदन।

हुआ। तब माता को दारुण चिन्ता प्राप्त हो गयी (अनुभव हुई)। ८७ अनन्तर श्रीहरि के सामने दामन बिछाकर (श्रीकृष्ण की) पितृ-भगिनी (फूफी) ने पुत्र-दान माँगा। वह बोली, 'मुझे अभिवचन दो कि इसे मैं नहीं मार डालूँगा'। ८८ (उसपर) श्रीकृष्ण ने यह सच्ची बात कही, 'मैं (इसके) सौ अपराध क्षमा करूँगा। (उनसे) अधिक हो जाने पर मैं निश्चय ही उसे (बिदा करके) मोक्ष-सदन भेज दूँगा'। ८९ श्रीकृष्ण द्वारा ऐसा कहने पर माता को आनन्द हुआ। वह बोली, 'यह सौ अपराध किसलिए करेगा?' अनन्तर उसने बलराम और कृष्ण को बिदा किया। ९० इसलिए हे भीम, निश्चित रूप से सुन लो। उन सौ अपराधों का गणित (हिसाब पूरा) हो गया है। इसलिए श्रीकृष्ण शान्ति के साथ (उचित) समय की बाट जोह रहे हैं। ९१ ये शिशुपाल और वक्रदन्त पूर्वकाल के निश्चय ही रावण और कुम्भकर्ण नामक दैत्य हैं, जिनका राम ने अपने अवतार-काल में वध किया। ९२ पूर्वकाल में यह मिथिला में आकर सीता का वरण करने के लिए दौड़ा। (परन्तु) उसकी स्वयंवर-सभा में वह शिव-धनु को नहीं उठा पाया। (अतः) वह मन में परम खेद को प्राप्त हुआ। ९३ वही पाप-खनि शिशुपाल रुक्मिणी का वरण करने दौड़ा; उससे वह रणभूमि में जरासन्ध-सहित पराजय को प्राप्त हुआ। ९४ मन में उस (के कारण) द्वेष को धारण करके यह दुर्जन कृष्ण की निन्दा कर रहा है। अतः सौ अपराध पूरे होते आये हैं, (इसलिए) इसके निकट विनाश आ गया है'। ९५ भीष्म का यह वचन सुनकर दमघोष-नन्दन शिशुपाल क्रोध से भभक उठा, जिस प्रकार घी से

जसा स्नेहें शिंपितां कृशान । अधिक अधिक प्रज्वळे । ९६ म्हणे रे बंदीजना नपुंसका । किती रे वाखाणिसी त्या गोरक्षका । जे जे येथें स्तवनासी योग्य देखा । न वाखाणिसी तयांसी । ९७ चोर जार कपटी केवळ । बहुत माजला हा गोपाळ । गोकुळ चौंढाळिलें सकळ । कपटी अमंगळ नष्ट हा । ९८ जालंधराची पत्नी वृंदा सती । येणें ते भगिनी मानिली होती । तिशींच रतला निश्चितीं । न भी चित्तीं पापातें । ९९ परदारागमनी आणि कपटी । यासमान दुजा नाहीं सृष्टीं । ऐसियाची काय वाखाणिसी गोष्टी । वारंवार मूढा तूं । १०० मग म्हणे उठा अवघे जण । आधीं घेऊं या भीष्माचा प्राण । तिलप्राय कुटके करून । येथेंचि याचे टाकावे । १०१ मिळोनि भोंवते । यज्ञपशु वधिती मुष्टिघातें । तैसें वधावें या वृद्धातें । येणें आम्हांतें निंदिलें । २ तैल तप्त कढईंत तावूनि उत्तम । हा जितचि आंत घालावा भीष्म । कीं शस्त्रें तावूनि परम । खंडें याचीं करावीं । ३ मग बोले गंगासुत । बोलिलें जो न करी सत्य । त्याचे पूर्वज समस्त ।

सींचने पर अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित हो जाती है । ९६ वह बोला, ' रे बन्दीजन, रे नपुंसक, उस गोरक्षक को कितना सराहेगा । देख, जो-जो यहाँ स्तवन करने योग्य हैं, उनकी सराहना तू नहीं कर रहा है । ९७ यह यथार्थ रूप से चोर, जार, कपटी है । यह गोपाल बहुत मदियाया है । इसने समस्त गोकुल को सदाचार से भ्रष्ट कर डाला । यह कपटी, अमंगल है, दुष्ट है । ९८ जलन्धर की पत्नी वृन्दा सती (पतिव्रता) थी । इसने उसे भगिनी माना था । (परन्तु) निश्चय ही उससे यह रत हुआ[1] । यह पाप (करने) से मन में नहीं डरता । ९९ इसके समान परदारागामी और कपटी सृष्टि में दूसरा कोई नहीं है । रे मूढ़, तू ऐसे (व्यक्ति) की बात की बार-बार क्या सराहना कर रहा है ' । १०० अनन्तर वह बोला, ' सब जने उठ जाओ (सिद्ध हो जाओ) । पहले इस भीष्म के प्राण ले लें । इसके तिल जैसे टुकड़े-टुकड़े करके यहीं फेंक दें । १०१ (जिस प्रकार) चारों ओर याज्ञिक मिलकर यज्ञ (में बलि-रूप चढ़ाये जानेवाले) पशु का घूँसों से वध करते हैं, उसी प्रकार इस वृद्ध का वध करें । इसने हमारी निन्दा की है । २ (अथवा) कड़ाई में तेल अत्यधिक तपाकर तप्त करके इस भीष्म को अन्दर जीवित ही डाल दें, अथवा शस्त्रों को परम तप्त करके इसके खण्ड-खण्ड कर दें ' । ३ तब भीष्म बोले, ' जो अपने कहे

---

१ जलन्धर की पत्नी वृन्दा से रत होना— जलन्धर दैत्य अपनी स्त्री वृन्दा के सतीत्व के बल पर अपराजेय हो गया था । शिवजी तक उसे पराजित नहीं कर सके । तो विष्णु ने जलन्धर का मायावी रूप धारण करके छलपूर्वक वृन्दा से रमण किया । जब भेद खुल गया तब वृन्दा ने विष्णु की भर्त्सना करते हुए उन्हें अभिशाप दिया । वही वृन्दा ' तुलसी ' बन गयी । आगे चलकर विष्णु-स्वरूप ' शालिग्राम ' से उसका विवाह हुआ ।

महानरकीं पडतील । ४ तुझिया माथ्याचा मुकुट । तो म्यां पदघातें केला पिष्ट । जरी बोलिलें वचन स्पष्ट । खरें करूनि दावीसना । ५ भीष्म-सिंहापुढें जंबुक समस्त । करितां युद्धाची तुम्ही मात । वज्रधारा धगधगित । तृणेंकरूनि खंडे केवीं । ६ अजा जयाची जननी । तो सिंहाशीं भिडों पाहे रणीं । पिपीलिका म्हणे थडक हाणोनी । दिग्गज खालीं पाडीन । ७ बळें उडोनि आळिका । विदारूनि मारीन म्हणे विनायका । मशक म्हणे हाणोनि धडका । मेरुमांदार डोलवीन । ८ घुंगरुडाऐसें वदन । म्हणे पर्वत सगळा ग्रासीन । पतंग अग्नीसी म्हणे तुज गिळीन । सूड घेईन खांडववनाचा । ९ स्वतंतुसूत्रेंकरूनी । ऊर्णनाभि झांकीन म्हणे धरणी । वृश्चिक अभिमान वाहे मनीं । ताडूनि फोडीन वज्रातें । ११० कीं रासभें ब्रीद बांधोन । नारदापुढें मांडिलें गायन । कीं मूषक टवकारून । वासुकी धरूं पातला । १११ कीं सज्ञान

को सत्य नहीं कर देता, उसके समस्त पूर्वज महानरक में गिर पड़ेंगे । ४ (मान लो) तुम्हारे माथे के मुकुट को मैंने अपने पदों के आघातों से पीस डाला, यदि तुम अपनी कही बात को स्पष्ट रूप से सत्य करके नहीं दिखाओगे । ५ भीष्म-सिंह के सम्मुख तुम समस्त जम्बुक युद्ध की बात कर रहे हो । वज्र की अति तीक्ष्ण धार घास (के तिनके) से किस प्रकार खण्डित हो जाएगी । ६ बकरी जिसकी माता है, वह युद्धभूमि में सिंह से भिड़ना चाहता है । पिपीलिका (चींटी) कहती है— मैं धक्का लगाकर दिग्गज को नीचे गिरा दूंगी । ७ इल्ली कहती है कि मैं बलपूर्वक उड़कर गरुड़ को विदीर्ण कर डालूंगी । मच्छड़ कहता है कि मैं टक्कर लगाते हुए मेरु-मन्दर को हिला दूंगा । ८ मच्छड़ का-सा मुख कहता है कि मैं समस्त पर्वत को निगल डालूंगा । पतिंगा अग्नि से कहता है— मैं तुझे निगल डालूंगा और खाण्डव वन[1] के विषय में तुझसे बदला लूंगा । ९ मकड़ी कहती है कि मैं अपने तन्तुओं के धागे से धरती को आवृत कर दूंगी । बिच्छू मन में यह घमण्ड वहन (धारण) करता है कि मैं ताड़न करते हुए वज्र को तोड़ डालूंगा । ११० अथवा गधे ने बिरुद-पट्ट बांधकर (प्रतिज्ञा करके) नारद के सम्मुख गायन आरम्भ किया, अथवा चूहा चौकन्ना होते हुए आँखों को फाड़कर वासुकि नाग को पकड़ने के

---

१ खाण्डव वन का बदला— प्राचीन काल का यह विख्यात वन हस्तिनापुर के निकट यमुना के तट पर था । इस वन में भयानक जीव-जन्तु, पशु-पक्षी रहते थे । इस वन में तक्षक नाग ने आश्रय लिया था । वह इन्द्र का मित्र था । इसलिए इंद्र नित्य उसकी रक्षा करते थे । अग्निदेव ने इस वन को अनेक बार जलाने का यत्न किया; फिर भी वह असफल रहा । अन्त में कृष्ण और अर्जुन की सहायता से उसने इस वन को जलाकर भस्म कर डाला । उस आग में कोटि-कोटि प्राणी जलकर मर गये । उस समय अर्जुन आदि ने मयासुर को बचा लिया । इसी स्थान पर इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया गया ।

पंडितापुढें। बोलावया आलीं मूढें। कीं जंबुक आपुले पवाडे। व्याघ्रापुढें दावीत। १२ मजपुढें काय आदित्य। म्हणवूनि निंदा करी खद्योत। मरण-काळीं होय सन्निपात। तैसें तुज जाहलें रे। १३ काळमृत्यूची छाया पडली। मृत्युवेळ जवळी आली। ऐकोनि शिशुपाळ ते वेळीं। अधिकचि आवेशला। १४ शस्त्र काढूनि वेगेंसीं। म्हणे कृष्ण ऊठ रे झुंज मजसीं। नपुंसका काय बैसलासी। लाज कैसी नुपजे तूतें। १५ तुझें रुसणें समजणें दोन्ही। मी शिशुपाळ तृणप्राय मानीं। गोरक्षका तुज अजूनी। लज्जा कां रे न वाटे। १६ उपजोनियां तुवां गोवळा। वृष्णिकुळासी डाग लाविला। तुवां चोरूनि नेली रुक्मिणी वेल्हाळा। ते नवरी माझी निर्धारें। १७ रुक्मिणी आधीं अर्पिली मातें। म्यां मनींच भोगिलें तीतें। मग ते प्राप्त जाहली तूतें। माझें उच्छिष्ट गुराखिया। १८ जैसें भोगिलें वस्त्र बहुत। तें भाटासी देती भाग्यवंत। तैसी रुक्मिणी म्यां भोगिली निश्चित। तुज ते प्राप्त जाहली। १९ पुष्पहार भोगूनि टाकिला। तो भणगें जैसा उचलूनि नेला। कीं रावणें

लिए आ पहुँचा। १११ अथवा ज्ञानी पण्डितों के सामने मूढ़ व्यक्ति बोलने (विवाद करने) के लिए आ गये अथवा सियार अपनी बड़ाई (शूरता) बाघ के सामने दिखाता रहा है। १२ जुगनू यह कहकर कि मेरे सामने (तुलना में) सूर्य क्या है, उसकी निन्दा करता है। (तुम्हारा व्यवहार इसी प्रकार हो रहा है।) मृत्यु के समय सन्निपात हो जाता है [तो मरणासन्न व्यक्ति अनर्गल (बेतुकी) बकवास करने लगता है]। तुम्हें वैसा ही हुआ है। १३ मृत्यु-काल की छाया पड़ गयी है, मृत्यु-बेला निकट आ गयी'। यह सुनकर शिशुपाल उस समय अधिक ही आवेश को प्राप्त हुआ। १४ वह वेगपूर्वक शस्त्र निकालकर (तौलकर, सिद्ध करके) बोला, 'रे कृष्ण, उठ जा, मुझसे जूझ ले। रे नपुंसक, बैठा क्या है? तुझे लज्जा कैसे नहीं आ रही है। १५ मैं शिशुपाल तेरे रूठने-समझने (मान जाने) दोनों को घास (तिनके) जैसा मानता हूँ। अरे गोरक्षक, तुझे अब भी लज्जा क्यों नहीं आ रही है। १६ अरे तुझ ग्वाले ने उत्पन्न होने पर वृष्णि-कुल में कालिमा लगा दी। सलोनी रुक्मिणी को चुराकर तू ले गया। निश्चय ही वह मेरी वधू थी। १७ रुक्मिणी पहले मुझे अर्पित की हुई थी। मैंने मन-ही-मन उसे भोग लिया। अनन्तर वह तुझे प्राप्त हुई। रे चरवाहे, वह मेरी उच्छिष्ट (जूठन) है। १८ जिस प्रकार वस्त्र का बहुत उपभोग करने पर उसे भाटों को भाग्यवान लोग प्रदान करते हैं, उसी प्रकार मैं (भाग्यवान) ने निश्चय ही (जिस) रुक्मिणी का उपभोग किया है, वह तुझे प्राप्त हुई है। १९ किसी ने पुष्पहार का उपभोग (उपयोग) करके फेंक दिया और उसे कोई भिखमँगा उठाकर ले गया, अथवा रावण सीता को चुराकर ले गया (और फिर वह राम को

चोरूनि नेली जनकबाळा। तैसी रुक्मिणी तुवां नेली। १२० शाल्व पवित्र तुजपरीस। कदा नातळे अंबेस। नवरी ज नेमिली आणिकास। ते सर्वथा न पर्णावी। १२१ ज्याचे नांवें जें पात्र वाढिलें। आणिका नेतां तें उच्छिष्ट जाहलें। हे धर्माधर्म शास्त्रीं बोलिले। तुज न कळती कर्मभ्रष्टा। २२ श्रीकृष्ण म्हणे रे दुर्जना। महानिंदका दुष्टा मलिना। तूं अग्रपूजा इच्छितोसी हीना। तरी आतांचि घेईं निर्धारें। २३ ऐसें बोलोनि क्षीराब्धिजारमण। केलें सुदर्शनाचें स्मरण। तंव अकस्मात येऊन। कृष्णहस्तकीं संचरलें। २४ जैसा कल्पांतींचा आदित्य। तैसें सुदर्शन धगधगीत। शिशुपालावरी सोडिलें अकस्मात। वैकुंठनाथें तेधवां। २५ तत्काळ शिशुपाळाचें छेदिलें शिर। निराळपंथें उडालें सत्वर। मुख गर्जना करी थोर। म्यां यदुवीर जिंकिला। २६ शिर मागुतें उतरलें। तें श्रीकृष्णचरणाजवळी पडिलें। अंतर्ज्योति निघाली ते वेळे। कृष्णरूपीं प्रवेशली। २७ बाळसूर्यासारिखें तेज

प्राप्त हुई), उसी प्रकार तू रुक्मिणी को (जूठन जैसी) ले गया है। १२० शाल्व तेरे जैसा पवित्र था। उसने कभी अम्बा को नहीं स्पर्श किया[1]। जो दूसरे के लिए वधू (रूप में) निर्धारित रही हो, उससे बिलकुल परिणय नहीं करें। १२१ जिसके नाम पर जो पात्र सजाया गया हो, उसे किसी अन्य द्वारा ले जाने पर वह जूठा हो जाता है (माना जाता है)। ये धर्म-अधर्म शास्त्र में कहे हैं। रे कर्म-भ्रष्ट, यह तेरी समझ में नहीं आ रहा है'। २२ तो श्रीकृष्ण बोले 'अरे दुर्जन, हे महानिन्दक, हे दुष्ट, हे मलिन (पापी), हे हीन, तुम अग्रपूजा चाह रहे हो, तो अभी उसे अवश्य ले लो'। २३ ऐसी बात कहकर लक्ष्मी-रमण विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। तो वह एकदम (तत्क्षण) आकर श्रीकृष्ण के हाथ में संचरित हुआ। २४ कल्पान्त काल का सूर्य जैसा होता है, वह सुदर्शन चक्र वैसा ही धधकता था। वैकुण्ठनाथ ने तब सहसा उसे शिशुपाल की ओर चला दिया। २५ उसने शिशुपाल का सिर तत्काल काट डाला। वह (सिर) आकाशमार्ग से उड़ गया, (फिर भी) वह मुख यह बड़ी गर्जना कर रहा था कि मैंने यदुवीर को जीत लिया। २६ वह सिर फिर उतर गया और श्रीकृष्ण के चरणों के समीप गिर पड़ा। उस समय (उसमें से) अन्तर्ज्योति निकली और श्रीकृष्ण के रूप में प्रविष्ट हुई। २७ उस ज्योति का तेज बालसूर्य का-सा अद्‌भुत था। वह श्रीकृष्ण के

१ शाल्व-अम्बा— काशिराज की अम्बा नामक कन्या ने शिशुपाल के भाई (अथवा मित्र) का वरण किया था। परन्तु स्वयंवर-सभा में भीष्म ने उसकी अम्बिका और अम्बालिका नामक अन्य दो बहिनों के साथ उसका भी अपहरण किया। तदनन्तर भीष्म की अनुमति से वह शाल्व के पास लौटी, परन्तु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया।

अद्भुत। ज्योति श्रीकृष्णहृदयीं प्रवेशत। जैसें लवण जळीं विरत। कीं गगनांत नाद जैसा। २८ सांडूनि जीवदशा संपूर्ण। शिशुपाळ जाहला कृष्ण। त्वंपद तत्पदीं जाय हारपोन। तैसा लीन जाहला। २९ कीं पूर्ण जळीं जळबिंदु पडिला। तो माघारा नाहीं परतला। तैसा शिशुपाळ गोवळा जाहला। नाहीं उरलें वेगळेपण। १३० हे वैकुंठींचे द्वारपाळ। जय विजय निर्मळ। सनकादिकीं शापितां तत्काळ। दैत्ययोनीं अवतरले। १३१ हेचि हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप जाण। हेचि जाहले रावण कुंभकर्ण। तेचि हे शिशुपाळ वक्रदंत पूर्ण। कृष्णावतारीं जन्मले। ३२ परम भक्त शिशुपाळ। बळेंचि हरिरूप जाहला तत्काळ। हातींची वस्त आसडूनि नेत बाळ। तैसेंचि केलें यथार्थ। ३३ तिसरे जन्मीं निश्चितीं। कृष्णें दिधली अक्षय मुक्ती। हृदयीं ठेविली अंतर्ज्योती। महाभक्त म्हणोनि। ३४ असो जाहला जयजयकार। पुष्पवृष्टि वर्षती संभार। दुष्ट पळाले समग्र। वक्रदंतासहित पैं। ३५ कौरव अंतरीं चिंताक्रांत। म्हणती आमुचें उणें पडिलें बहुत। एक

हृदय में प्रविष्ट हुई, (और उससे एकात्म हुई) जिस प्रकार लवण पानी में गल (कर एकरूप हो) जाता है अथवा आकाश में ध्वनि विलय को प्राप्त हो जाती है। २८ अपनी जीवदशा को सम्पूर्ण रूप से छोड़कर शिशुपाल कृष्ण (-मय) हो गया, 'त्वं' पद 'तत्' पद में विलीन हो गया; वैसे ही वह (श्रीकृष्ण में) विलीन हुआ। (अविद्या के प्रभाव से 'तू' और 'वह' का भेद निर्मित हुआ था, परन्तु अब 'तू' से सूचित अलग पड़ा हुआ जीव 'उस ब्रह्म' में एकात्म हो गया; उसके जीव को सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई)। २९ अथवा सम्पूर्ण जल में पानी का एक बिन्दु गिर जाए, तो वह वहाँ से पुनः लौट नहीं जाता, उसी प्रकार शिशुपाल ग्वाला (गोपाल कृष्ण) बन गया; उनमें कोई अलगाव नहीं रहा। १३० ये (शिशुपाल और वक्रदन्त दोनों मूलतः) वैकुण्ठ के जय और विजय नामक निर्मल (-चरित्र) द्वारपाल थे। सनक आदि द्वारा अभिशप्त होने पर वे तत्काल दैत्ययोनि में अवतरित हुए (जन्म को प्राप्त हुए)। १३१ (प्रथम जन्म में) जान लीजिए वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु (हो गये) थे। वे ही (द्वितीय जन्म में) रावण और कुम्भकर्ण हो गये। वे ही (तृतीय जन्म में) कृष्णावतार-काल में इन शिशुपाल और वक्रदन्त के रूप में पूर्णतः जन्म को प्राप्त हुए। ३२ शिशुपाल परम भक्त था। वह हठपूर्वक तत्काल हरि-रूप हो गया। जैसे बालक किसी के हाथ की वस्तु खींचकर ले जाता है, वैसे ही उन्होंने यथार्थ रूप से कर दिया। ३३ तीसरे जन्म में निश्चय ही कृष्ण ने उसको अक्षय मुक्ति प्रदान की और महाभक्त होने से उसकी अन्तर्ज्योति अपने हृदय में रख दी। ३४ अस्तु। जय-जयकार हो गया। (देवों ने) पुष्पों की राशियों की बौछार की। तो वक्रदन्त-

आनंदें टाळिया वाजवीत। बरें जाहलें म्हणोनियां। ३६ ऐसा शिशुपाळ पावला निजधाम। पार्थाप्रति निरोपी धर्म। म्हणे याचें प्रेत करा भस्म। जातवेदामाझारीं। ३७ मग शिशुपाळाचें राज्य होतें। तें दिधलें त्याच्या पुत्रातें। धर्मराजें समस्त रायांतें। वस्त्रें अलंकार समर्पिले। ३८ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र। अवघियांसी गौरवी युधिष्ठिर। पूजा मान पावोनि समग्र। गेले नगरा आपुलाले। ३९ धर्में अवभृथस्नान केलें। तेथें सकळ लोक सुस्नात जाहले। सहपरिवारेंसीं ते वेळे। श्रीकृष्ण निघाले द्वारकेसी। १४० धर्मासी म्हणे कमलोद्भवपिता। आम्हांसी निरोप देईं आतां। धर्में चरणीं ठेविला माथा। कंठ जाहला सद्‌गदित। १४१ धर्मराज प्रेमें स्फुंदत। जा ऐसें न म्हणेचि सत्य। पुढती लौकरी यावें म्हणत। धन्य भक्त धर्मराज। ४२ भीम अर्जुन नकुळ सहदेव। तयांसी पुसत वासुदेव। कुंती द्रौपदी सुभद्रेप्रति माधव। स्नेहआज्ञा मागतसे। ४३ तंव ते म्हणती श्रीपती। जेथें पद तुझे उमटती। तेथें आमुचें मस्तक असो निश्चितीं। ऐसेंचि करीं रमावरा। ४४ हृदयांतूनि आमुच्या श्रीपती। परता जाऊं नको निश्चितीं।

सहित समस्त दुष्ट भाग गये। ३५ (यह देखकर) कौरव अन्तःकरण में चिन्ताक्रान्त हो उठे। वे बोले, 'हमारे लिए बड़ी कमी हो गयी। तो (दूसरी ओर) कुछ (लोग) 'अच्छा हुआ' कहते हुए आनन्द के साथ तालियाँ बजाते रहे। ३६ इस प्रकार शिशुपाल अपने मूलधाम (विष्णुलोक) को प्राप्त हुआ। (तदनन्तर) धर्म ने अर्जुन से कहलवा दिया (कहा), 'अग्नि के अन्दर इसके शव को (डालकर) भस्म कर दो'। ३७ अनन्तर शिशुपाल का जो राज्य था, वह उसके पुत्र को प्रदान कर दिया। (फिर) धर्म ने समस्त राजाओं को वस्त्र और आभूषण समर्पित किये। ३८ युधिष्ठिर (धर्म) ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों —सबको गौरवान्वित किया। (इस प्रकार) पूजा और सम्मान को प्राप्त होकर वे अपने-अपने नगर चले गये। ३९ (अनन्तर) धर्म ने अवभृथ स्नान किया। वहाँ समस्त लोगों ने भली भाँति स्नान किया। (फिर) उस समय परिवार-सहित श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए निकले (तैयार हुए)। १४० (तब) ब्रह्मा के वे पिता धर्म से बोले, 'अब हमें बिदा कीजिए'। तो धर्म ने उनके चरणों में सिर रखा। उनका कण्ठ रुँध गया। १४१ धर्मराज प्रेम से सिसकते रहे। सचमुच उनसे ऐसा कहा नहीं जा पा रहा था कि जाइए। तो वे बोले, 'फिर शीघ्र ही आ जाइए'। भक्त धर्मराज धन्य हैं। ४२ वासुदेव कृष्ण ने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव से बिदा ली। माधव कृष्ण ने कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा से जाने की स्नेहपूर्वक आज्ञा माँगी। ४३ तब वे (सब) बोले, 'हे श्रीपति, हे रमावर, आप ऐसा ही कीजिए कि जहाँ आपके चरण अंकित

ज्या ज्या भूताकृति भासती। तुझें स्वरूप भासो तें। ४५ श्रीकृष्णासी बोळवूनी। पांडव आले परतोनि सदनीं। जागृतिसुषुप्तिस्वप्नीं। श्रीकृष्ण-चिंतनीं सादर। ४६ राजसूययज्ञ जाहला समाप्त। द्वारकेसी पावला वैकुंठनाथ। तों पौंड्रक आणि वक्रदंत। वेढा घालिती नगरातें। ४७ शिवें दिधलें वरविमान। त्यांत वक्रदंत सेनेसहित बैसून। द्वारकेवरी येऊन। युद्ध करिती शस्त्रास्त्रीं। ४८ तों इतुकियांत पावला जगज्जीवन। तत्काळ सोडिलें सुदर्शन। वक्रदंताचें शिर छेदून। आकाश पंथें उडविलें। ४९ पौंड्रक सेनेसमवेत। हरीनें संहारिला तेथ। ऐसा प्रताप करूनि अद्भुत। कृष्णें शस्त्रें ठेविलीं। १५० मुख्य वधिले शिशुपाळ वक्रदंत। इतुकेनि आमुचें मनोगत। अवतारकृत्य जाहलें यथार्थ। या दोघांसी मारितां। १५१ आम्हांसी शस्त्र धरणें नाहीं आतां। उरले जे दैत्य तत्वतां। ते सारथ्य करूनि पार्था। त्याहातीं पुढें वधावे। ५२ जनमेजयासी सांगे वैशंपायन। धन्य धन्य अवतार श्रीकृष्ण। गोकुळीं अपार दैत्य मारून। कंस वधिला

होते हैं, वहाँ हमारे मस्तक निश्चय ही रह जाएँ। ४४ हे श्रीपति, हमारे हृदय में से निश्चय ही आप दूर न जाएँ; जो-जो प्राणियों की आकृतियाँ दिखायी देती हैं, वे आपके रूप आभासित होती रहें'। ४५ श्रीकृष्ण को बिदा करके पाण्डव लौटकर अपने भवन में आ गये। (तब से) वे जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न में श्रीकृष्ण के चिन्तन में आदरसहित लगे रहे। ४६ (इस प्रकार) राजसूय यज्ञ समाप्त हुआ। (इधर) वैकुण्ठनाथ कृष्ण द्वारका आ पहुँचे, तो पौण्ड्रक और वक्रदन्त ने नगर के चारों ओर घेरा डाला। ४७ शिवजी ने वक्रदन्त को एक श्रेष्ठ विमान प्रदान किया था। उसमें सेनासहित बैठकर द्वारका पर (लपककर, आक्रमण करते हुए) आकर वे अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करने लगे। ४८ तो इतने में वहाँ जगज्जीवन आ पहुँचे। तत्काल उन्होंने सुदर्शन चक्र चलाकर वक्रदन्त के सिर को छेदते हुए आकाश-पन्थ पर उड़ा दिया। ४९ श्रीहरि ने वहाँ पौण्ड्रक का (भी) सेना-सहित संहार किया। ऐसा अद्भुत प्रताप (प्रदर्शित) करके श्रीकृष्ण ने शस्त्र (नीचे) रख दिये। १५० हमारा मतलब इतना ही है कि मुख्यतः (श्रीकृष्ण ने) शिशुपाल और वक्रदन्त का वध किया। इन दोनों को मार डालने से उनका अवतार-कार्य यथार्थ रूप से सम्पन्न हुआ। १५१ (तदनन्तर उन्होंने सोचा—) हमें अब शस्त्र धारण नहीं करना है। जो दैत्य शेष हैं, पार्थ का सारथ्य करके उनके हाथों सचमुच उनका वध कर दें। १५२

वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा, 'श्रीकृष्ण-अवतार धन्य है, धन्य है। उन्होंने गोकुल में अनगिनत दैत्यों को मारकर (तदनन्तर) मथुरा में कंस का वध किया। १५३ उन्होंने जरासन्ध को सत्रह बार कष्ट को प्राप्त

मथुरेसी । ५३ जरासंध सतरा वेळां त्रासिला । द्वारका वसविली अवलीला। नरकासुर मारूनि सहस्र सोळा । गोपी आणिल्या घरासी । ५४ आतां श्रोतीं व्हावें सावचित्त । पुढें छत्तिसावा अध्याय गोड बहुत । छत्तिसाव्यापासून हरिविजय ग्रंथ । संपूर्ण यथार्थ जाहला । ५५ जैसा मुकुटावरी मणी । तैसा छत्तिसावा ऐका श्रवणीं । हरिविजय हिरियांची खाणी । सज्जन जोहरी येथींचे । ५६ श्रीधरवरदा जगन्निवासा । ब्रह्मानंदा पंढरीशा । भक्तमानस-राजहंसा । पुराणपुरुषा जगद्वंद्या । ५७ इति श्रीहरिविजय ग्रंथ । संमत हरिवंशभागवत । चतुर परिसोत प्रेमळ पंडित । पंचत्रिंशत्तमाध्याय गोड हा । १५८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

करा दिया; कौशल के साथ द्वारका नगरी को बसा लिया । वे नरकासुर को मार डालकर सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियों को अपने घर ले आये '। १५४

अब श्रोता सावधान हो जाएँ । आगे बहुत मधुर छत्तीसवाँ अध्याय है । छत्तीसवें अध्याय से श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ यथार्थ रूप से सम्पूर्ण हो गया (समझिए; हो जाएगा) । १५५ जैसे मुकुट पर मणि होती है, वैसे ही इन समस्त पैंतीस अध्यायों के ऊपर यह छत्तीसवाँ अध्याय (मुकुट-मणि जैसा) है । उसे कानों से (ध्यानपूर्वक) सुनिए । श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ हीरों की खान हैं और आप सज्जन (श्रोता) यहाँ के जोहरी हैं । ५६ हे श्रीधरवरद, हे जगन्निवास, हे ब्रह्मानन्द, हे पण्ढरीश, हे भक्त-मानस-राजहंस, हे पुराणपुरुष, हे जगद्वन्द्य । १५७

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है । चतुर प्रेममय पण्डित जन उसके इस मधुर पैंतीसवें अध्याय का श्रवण करें । १५८

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अध्याय—३६

[श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र-गमन और वहाँ गोकुल-वासियों से मिलना। ग्रन्थ का उपसंहार]

श्रीगणेशाय नमः ॥ ओं नमो सद्गुरु अवधूता। परब्रह्मा अपरिमिता। पुराणपुरुषा अव्यक्ता। मायातीता अगम्या। १ आदिपुरुषा विश्वंभरा। अवयवरहिता दिगंबरा। सदानंदरूपा निर्विकारा। आत्मयारामा कृपानिधे। २ अमलरूपा परमगंभीरा। ब्रह्मानंदा परात्परा। सहजानंदा अगोचरा कल्याणवासा जगद्गुरो। ३ पूर्णानंदा अपरिमिता। दत्तात्रेया षड्विकाररहिता। ब्रह्मानंदा ज्ञानभरिता। भीमातीरविलासिया। ४ रुक्मिणीहृदयाब्जमधुकरा। दाक्षायणीवरप्रिया मनोहरा। पांडवकैवारिया दीनोद्धरा। शिशुपाळांतका श्रीपते। ५ पंचत्रिंशति अध्यायीं कथा परिकर। छेदूनि शिशुपाळाचें शिर। विजयी जाहला श्रीकरधर। धर्मरक्षक परमात्मा। ६ आतां छत्तिसावा बहु सुरस। हरिविजयाचा पूर्ण कळस।

श्रीगणेशाय नमः। ॐ नमः। हे सद्गुरु, हे अवधूत (संन्यासी गुरु ब्रह्मानन्द, आपको नमस्कार है।) हे अपरिमित परब्रह्म, हे पुराणपुरुष, हे अव्यक्त, हे मायातीत, हे अगम्य (आपको नमस्कार है)। १ हे आदि-पुरुष, हे विश्वम्भर, हे अवयव-रहित, हे दिगम्बर, हे सदा आनन्द-स्वरूप (सदानन्द-रूप), हे निर्विकार[1], हे आत्माराम, हे कृपानिधि, हे अमल-रूप, हे परम गम्भीर, हे ब्रह्मानन्द (आनन्द-स्वरूप ब्रह्म), हे परात्पर, हे सहजानन्द, हे अगोचर, हे कल्याण-वास (कल्याण के निवास-स्थान), हे जगद्गुरु, हे पूर्णानन्द, हे अपरिमित, हे षड्विकारों[2] से रहित दत्तात्रेय, हे ब्रह्मानन्द, हे ज्ञान-भरित, हे भीमा-तीर-विलासी (श्रीविट्ठल-स्वरूप श्रीकृष्ण), हे रुक्मिणी के हृदय रूपी कमल में स्थित भ्रमर, हे दक्ष प्रजापति की कन्या दाक्षायणी अर्थात सती के पति शिवजी के प्रिय, हे मनोहर, हे पाण्डवों के समर्थक-सहायक, हे दीनों के उद्धार-कर्ता, हे शिशुपालान्तक, हे श्रीपति, आपको नमस्कार है। २-५ पैंतीसवें अध्याय में यह सुन्दर कथा कही है कि श्रीकरधर (लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप), धर्मरक्षक परमात्मा श्रीकृष्ण शिशुपाल के मस्तक को छेदकर विजेता हो गये। ६ अब यह छत्तीसवाँ अध्याय बहुत सरस है। वह श्रीहरि-विजय (नामक इस ग्रन्थ)

१ निर्विकार— काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ तथा मोह —इन छः विकारों से रहित।

२ षड्विकार-रहित— अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति —इन छः विकारों से रहित। इन विकार-सूचक संज्ञाओं के अर्थ के लिए देखिए टिप्पणी १, पृ० ६४, अध्याय २।

जो भोजनाच्या शेवटीं गोड ग्रास। तैसा विशेष छत्तिसावा। ७ छत्तिसावे अध्यायीं ग्रंथ आघवा। परी मुकुटमणि छत्तिसावा। तो भक्तजनीं परिसावा। प्रेमादरेंकरूनियां। ८ द्वारकेसी नांदतां रुक्मिणीरमण। तों पुढें आलें सूर्यग्रहण। कुरुक्षेत्रासी जावें म्हणोन। निश्चय केला श्रीवल्लभें। ९ तों यापूर्वींच बळिभद्र। गोकुळासी पाठवी यादवेंद्र। जो महाबळिया भोगींद्र। धराधर अवतरला। १० गोकुळासी जाऊनि रोहिणी-सुत। यशोदा नंद गौळी समस्त। तयांसी भेटला रेवतीप्राणनाथ। सौख्य अद्‌भुत समस्तां। ११ चार मासपर्यंत। बळिभद्र राहिला स्वस्थ। श्रीकृष्णप्रताप अद्‌भुत। जाहला तो समस्त सांगितला। १२ मथुरेहूनि गेला कृष्णनाथ। कोण कोण मारिले दैत्य। कैशा अष्टनायिका झाल्या प्राप्त। आणि सोळा सहस्र कामिनी। १३ तें चरित्र मुळींहून। सांगे बळिभद्र आपण। कैसा जाहला राजसूययज्ञ। कैसा शिशुपाळ मारिला। १४ तीं चरित्रें ऐकतां श्रवणीं। तटस्थ होती गौळी गौळणी। म्हणती ऐसा पुराण-पुरुष चक्रपाणी। कें आम्हांलागूनि भेटेल। १५ बळिभद्र नित्य वनासी

का पूर्ण कलश है (चरमोच्च बिन्दु है)। भोजन के अन्त में जैसे मधुर कौर होता है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ के अन्त में यह छत्तीसवाँ अध्याय विशिष्ट (महत्ता से युक्त) है। ७ इस छत्तीसवें अध्याय में यह ग्रन्थ समाप्त हो रहा है। फिर भी यह छत्तीसवाँ अध्याय (समस्त पूर्व अध्यायों के लिए) मुकुट-मणि है। (प्रार्थना है कि) भक्तजन उसे प्रेम और आदर के साथ सुनें। ८ रुक्मिणी-रमण श्रीकृष्ण के द्वारका में (सुख-सुविधा के साथ) रहते (समय), आगे (चलकर) सूर्यग्रहण आया। तो श्रीपति श्रीकृष्ण ने निर्णय किया कि (उस अवसर पर) कुरुक्षेत्र जाएँ। ९ तब यादवेन्द्र ने इससे पहले ही उन बलराम को गोकुल में भेज दिया था, जो (वस्तुत:) महाबलशाली भोगींद्र धराधारी शेष ही अवतरित थे। १० रोहिणी के पुत्र तथा रेवती के प्राणों के स्वामी बलराम गोकुल में जाकर नन्द, यशोदा और समस्त ग्वालों से मिल गये। तो उन सबको अद्‌भुत सुख हुआ। ११ बलराम (वहाँ) चार मास तक सुख-शान्ति के साथ ठहरे और उन्होंने श्रीकृष्ण ने जो अद्‌भुत प्रताप (प्रदर्शित) किया था, वह सब (उन लोगों को) बता दिया। १२ मथुरा से कृष्ण किस प्रकार और क्यों चले गये; उन्होंने किन-किन दैत्यों को मार डाला; उन्हें आठ नायिकाएँ और सोलह सहस्र (एक सौ) स्त्रियाँ किस प्रकार प्राप्त हुईं, राजसूय यज्ञ कैसे हुआ, शिशुपाल को कैसे मार डाला, वह सब चरित्र (समाचार) उन्होंने स्वयं आरम्भ से (उन लोगों को) बता दिया। १३-१४ उन (सब) चरित्र-लीलाओं (घटनाओं) को कानों से सुनकर ग्वाले और ग्वालिनें चकित हो उठे। वे बोले, ‘ऐसे वे पुराणपुरुष चक्रपाणि

जाय । विलोकी हरीचे क्रीडाठाय । कुंजवनीं क्रीडा केली पाहें । गडियां-समवेत हलधर । १६ तों माध्यान्हासी आला चंडकिरण । जलक्रीडा करूं इच्छी संकर्षण । यमुना दूर होती तेथून । तीस रेवतीरमण बोलावी । १७ म्हणे आलीकडे येईं सूर्यनंदिनी । तों ते वाहे निजछंदेंकरूनी । बळिराम क्षोभला ते क्षणीं । नांगर घालूनि ओढिली । १८ ओघ मुरडोनि सगळा । आपणाकडे रामें आणिला । गगनीं देव पाहती डोळां । नवल गोपाळां वाटतसे । १९ जलक्रीडा करूनि बळिभद्र । गोकुळासी आला सत्वर । चार मास झालिया हलधर । जाता जाहला द्वारकेसी । २० संपूर्ण गोकुळींचें वर्तमान । कृष्णासी सांगे रेवतीरमण । तों पुढें ग्रहणयात्रेसी जगज्जीवन । निघता जाहला कुरुक्षेत्रासी । २१ निघाले छप्पन्न कोटी यादव । उग्रसेन बळिभद्र वसुदेव । प्रद्युम्न अनिरुद्ध अक्रूर उद्धव । सांब भानुमंत निघाले । २२ रुक्मिणीसहित अष्टनायिका । निघाल्या सोळा सहस्र गोपिका । चतुरंगदळ देखा । सिद्ध जाहलें ते काळीं । २३ लागले वाद्यांचे गजर । असंभाव्य चालिला दळभार । कृष्णनायिका समग्र । सुखासनीं आरूढल्या । २४

श्रीकृष्ण हमसे कैसे मिल सकेंगे'। १५ (उन दिनों) हलधर बलराम नित्यप्रति वन में जाया करते और श्रीहरि के उन खेलने— लीलाएँ करने के स्थानों को देखते। उन्होंने कुंजवन के उन स्थानों को भी देखा, जहाँ श्रीकृष्ण ने अपने साथियों-सहित क्रीड़ा की थी। १६ तो (एक दिन) सूर्य मध्याह्न पर आ गया। रेवती-रमण बलराम ने जलक्रीड़ा करना चाहा। वहाँ से यमुना नदी तो दूर थी। उसे उन्होंने पास बुलाया। १७ वे बोले, 'हे सूर्य-नन्दिनी, इस ओर आ जाओ'। परन्तु वह तो अपनी इच्छा के अनुसार बह रही थी। (वह पास नहीं आ रही है, यह देखकर) उस क्षण बलराम क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने हल डालकर उसे खींच लिया। १८ बलराम उसके समस्त प्रवाह को मोड़कर अपनी ओर ले आये। आकाश से देव यह अपनी आँखों से देख रहे थे। गोपालों को (यह देखकर) आश्चर्य अनुभव हुआ। १९ बलराम जलक्रीड़ा करके झट से गोकुल आ गये। चार मास हो जाने पर बलराम द्वारका चले गये। २० (तत्पश्चात) रेवतीरमण ने गोकुल का समस्त समाचार श्रीकृष्ण को बता दिया। तब (यथासमय) जगज्जीवन श्रीकृष्ण ग्रहण-यात्रा करने के लिए कुरुक्षेत्र जाने के लिए चल पड़े। २१ (उनके साथ) छप्पन करोड़ यादव निकले। उग्रसेन, बलराम, वसुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अक्रूर, उद्धव, साम्ब, भानुमन्त चल पड़े। २२ रुक्मिणी-सहित आठों नायिकाएँ, सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियाँ निकलीं। उस समय, देखिए, चतुरंग सेना (भी प्रस्थान के लिए) तैयार हो गयी। २३ वाद्यों का गर्जन होने लगा। असम्भाव्य (अनगिनत) सेनादल चलने लगा। श्रीकृष्ण की समस्त

रेवकी देवती रोहिणी। सत्यभामा कालिंदी रुक्मिणी। ज्यांचिया वहनांपुढें कनकवेत्रपाणी। लक्षावधि धांवती। २५ ओळीनें चालिले पर्वत। तैसे गजभार येती डोलत। त्यांवरी यादव बैसले रणपंडित। कृतांतही भीत तयांतें। २६ पुढें चालती पायदळभार। मागें तुरंग चालती सत्वर। त्यांचे पाठीमागें कुंजर। किंकाट करीत जाताती। २७ श्रीकृष्णाचे भद्रजाती। शुंडादंड ऊर्ध्व करिती। वाटे आकाश कवळों पाहती। हिरे दांतीं जडियेले। २८ त्यांचे पाठीमागें रथांचे भार। निजरथीं विराजे यादवेंद्र। जो कोटि अनंगांहूनि सुंदर। लावण्यसागर श्रीहरि। २९ देशोदेशींचे नृपती। निज-भारेंसी सर्व चालती। दाटी जाहली हरीभोंवतीं। वारी नसे दर्शना। ३० राजयांचे मुकुट रत्नजडित। त्यांसहित कृष्णपदीं नमित। एक एका मुकुट आदळत। रत्नें विखुरत सभोंवतीं। ३१ जैसा सौदामिनीचा एकमेळ। तैसे मुकुट दिसती तेजाळ। पहावयालागीं घननीळ। मंडपघसणी होतसे। ३२ निजभारेंसी कौरव पांडव। तेही येते जाहले सर्व। भीष्म द्रोण भक्तराव। विदुरही पातला। ३३ तों इंद्रादि देव ते क्षणीं। पाहों

नायिकाएँ पालकियों में आरूढ़ हो गयीं। २४ रेवती, देवकी, रोहिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, रुक्मिणी (पालकियों में विराजमान होकर) जा रही थीं, जिनके वाहनों के आगे लाख-लाख सुवर्ण-दण्डधारी (चोबदार) दौड़ रहे थे। २५ हाथियों के दल झूमते-झूमते वैसे ही आ रहे थे, जैसे पर्वत (ही एक) पंक्ति में चल रहे हों। यादव रण-पण्डित उनपर बैठे हुए थे। कृतान्त (यम) तक उनसे डरता था। २६ आगे पदाति-दल चल रहे थे। (उनके) पीछे (-पीछे) घोड़े शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उनके पीछे हाथी चिंघाड़ते हुए जा रहे थे। २७ श्रीकृष्ण के हाथी अपनी-अपनी सूंड़ रूपी दण्ड को ऊपर उठाते थे। लगता था कि वे आकाश को लिपट लेना चाहते थे। उनके दाँतों में हीरे जटित थे। २८ उनके पीछे रथों के दल थे। जो यादवेन्द्र श्रीहरि कोटि (-कोटि) कामदेवों से (अधिक) सुन्दर थे, लावण्य के सागर थे, वे अपने रथ में विराजमान थे। २९ उनके साथ देश-देश के राजा अपनी-अपनी सेना-सहित चले जा रहे थे। श्रीहरि के चारों ओर भीड़ मच गयी थी। उनके दर्शन की कोई गुंजाइश नहीं थी। ३० राजाओं के मुकुट रत्न-जटित थे। वे उनके साथ श्रीकृष्ण के चरणों में (सिर को) नवा रहे थे। तब एक-दूसरे से मुकुट (जब) टकराते थे; तो रत्न चारों ओर बिखर जाते थे। ३१ जैसे बिजलियों का एक समुदाय हो, वैसे वे मुकुट तेजोमय दिखायी दे रहे थे। घननील श्रीकृष्ण को देखने के लिए मण्डप में बहुत भीड़ हो गयी थी। ३२ कौरव और पाण्डव भी सब अपने-अपने दल-सहित आ गये। भीष्म, द्रोण, भक्तराज विदुर भी आ पहुँचे। ३३ तब उस क्षण इन्द्र आदि

इच्छिती चक्रपाणी। तों हरीभोंवतीं नृपांची दाटणी। वारी दर्शना नव्हेचि। ३४ पहावया हरिवदनचंद्र। सर्वांचे नेत्र जाहले चकोर। योगी तापसी मुनीश्वर। तेहीष मुरहर पाहों येती। ३५ आला इतुक्यांसमवेत मुरारी। येऊनि उतरला कुरुक्षेत्रीं। शिबिरें उभीं केलीं ते अवसरीं। सोळा सहस्र पृथक् पृथक्। ३६ पुढें लक्षूनि जान्हवीतीर। निजभारें उतरले नृपवर। तों दूर्वींच श्रीकृष्णें दूत सत्वर। गोकुळासी धाडिला होता। ३७ यशोदा नंद गोपिका गौळी। यात्रेसी पातले तये वेळीं। बाळपणींचे सखे सकळी। येते जाहले हरिदर्शना। ३८ असंख्य गौळी आनंदेंकरून। निघाले गोरसकावडी भरून। पुढें गोपाळ पांवे घेऊन। आनंदेंकरून नाचती। ३९ मृदंग टाळ [illegible]मरी घाई। मोहऱ्या घुमऱ्या वाजे सनई। हरीची बाळलीला गाती नवलाई। येती लवलाहीं गोपाळ। ४० चित्रविचित्र घोंगडी। पांघुरले कृष्णाचे गडी। एक नाचती कडोविकडी। हांसती घडिघडी स्वानंदें। ४१ श्रीकृष्णासी जाणविती दूत। कीं गोकुळवासी आले समस्त। श्रीनिवास झाला आनंदभरित। वेगें सांगत रुक्मिणीसी। ४२ माझीं मातापितरें दोन्ही।

देव चक्रपाणि श्रीकृष्ण को देखना चाहते थे। तो श्रीहरि के चारों ओर राजाओं की भीड़ इकट्ठा हुई थी। उनके दर्शन के लिए जाना ही नहीं हो सकता था। ३४ श्रीहरि के मुख-चन्द्र को देखने के लिए सबके नेत्र (मानो) चकोर हो गये। योगी, तापसी, मुनीश्वर भी मुरारि को देखने के लिए आ गये। ३५ इतनों के साथ मुरारि श्रीकृष्ण आकर कुरुक्षेत्र में ठहर गये। उस समय सोलह सहस्र (एक सौ) अलग-अलग शिविर लगा दिये। ३६ आगे गंगा (अर्थात यमुना) नदी के तट को देखकर राजा अपने-अपने दल-सहित ठहर गये। तब पहले ही श्रीकृष्ण ने झट से दूत को गोकुल भेजा था। ३७ यशोदा, नन्द, गोपियां, ग्वाले उस समय मेले के लिए आ पहुँचे। बचपन के समस्त सखा श्रीहरि के दर्शन के लिए आ गये। ३८ असंख्य ग्वाले गोरस से कांवरें भरकर आनन्द-पूर्वक (गोकुल से) निकले थे। आगे (-आगे) गोप (-बाल) मुरलियाँ लेकर (बजाते हुए) आनन्द के साथ नाचते थे। ३९ मृदंग, झाँझें, गुंजरियाँ, डफलियाँ, मुँहरियाँ, घुमरियाँ, शहनाइयाँ बज रही थीं। वे गोपाल श्रीहरि की आश्चर्यकारी बाललीलाओं को गाते थे। वे झट से (कुरुक्षेत्र) आ गये। ४० श्रीकृष्ण के वे साथी चित्र-विचित्र कम्बल ओढ़े हुए थे। कुछ एक कौशल के साथ नाच रहे थे। वे बार-बार आनन्द-पूर्वक हँस रहे थे। ४१ श्रीनिवास श्रीकृष्ण को दूतों ने विदित करा दिया कि गोकुल के समस्त निवासी आ गये हैं, तो वे हर्ष-विभोर हो उठे और उन्होंने झट से रुक्मिणी को बता दिया। ४२ 'मेरे माता-पिता दोनों, तथा मेरे बचपन के मित्र गोकुल से आ गये हैं। अरी रुक्मिणी, ये मुझे बलराम

बाळमित्र आले गोकुळींहूनी। मज ते आवडती बहुत रुक्मिणी। बळिरामाहूनी अधिक पैं। ४३ रुक्मिणीसहित कृष्णप्रिया समग्र। सिद्ध जाहल्या पाहावया सर्व। गौळियांसी यादवेंद्र। कैसा भेटतो म्हणवूनि। ४४ तों लक्षानुलक्ष गाडे। गौळियांचे धांवती वेगाढे। वरी गोपिका बैसल्या निवाडें। हरिलीला गात येती। ४५ तों हरीचे संवगडे समग्र। त्यांपुढें आले गोपिकांचे भार। त्यांसंमुख जाहला यादवेंद्र। हरिनायिका समग्र पाहती। ४६ घवघवीत देदीप्यमान। गोपांनीं देखिला जगज्जीवन। समस्तीं घातलें लोटांगण। प्रेमेंकरून स्फुंदती। ४७ तितुक्यांसही कैवल्यदानी। भेटे तेव्हां प्रेमेंकरूनी। गोपाळ म्हणती चक्रपाणी। तुझी करणी कळली आम्हां। ४८ तुझी बाळपणींहूनि प्रकृती। आम्हांसी ठाउकीच जगत्पती। आमुचीं मनें चोरूनि निश्चितीं। घेऊनि श्रीपती गेलासी पैं। ४९ तूं परम नाटकी चित्तचोर। तुझा विश्वास नाहीं अणुमात्र। तुज भाग्य आलें थोर। बाळमित्र विसरलासी। ५० आमुच्या संगतीनें जगज्जीवना। गाई राखिल्या तुवां मनमोहना। तूं यशोदेचा तान्हा। आम्ही कान्हा म्हणवूनि बाहूं। ५१ गाई राखितां हृषीकेशी। तूं आम्हांसांगातें जेविसी। आमुच्या शिदोऱ्या

से (भी) बहुत अधिक प्रिय लगते हैं'। ४३ तो रुक्मिणी-सहित श्रीकृष्ण की समस्त प्रियाएँ (स्त्रियाँ) सब यह देखने के लिए तैयार हो गयीं कि यादवेन्द्र श्रीकृष्ण ग्वालों से किस प्रकार मिलते हैं। ४४ तो (उधर) ग्वालों की लाख-लाख (बड़ी-बड़ी) गाड़ियाँ दौड़ रही थीं। उनमें गोपियाँ बैठी हुई थीं। वे उल्लास-पूर्वक श्रीहरि की लीलाओं का गान करती हुई आ रही थीं। ४५ तब श्रीहरि के समस्त साथियों के आगे गोपियों के वृन्द (झुण्ड) आ गये। यादवेन्द्र श्रीहरि (अगुवानी के लिए) उनके सम्मुख गये। उनकी समस्त स्त्रियाँ यह देख रही थीं। ४६ गोपों ने जगज्जीवन को हृष्ट-पुष्ट देदीप्यमान देखा; उन सबने दण्डवत नमस्कार किया और वे प्रेम से सिसकते रहे। ४७ तब कैवल्य-दाता कृष्ण उन सभी से प्रेमपूर्वक मिले; तो गोपाल बोले, 'हे चक्रपाणि, तुम्हारा कार्य हमें विदित हुआ। ४८ हे जगत्पति, हमें तुम्हारा स्वभाव बचपन से ज्ञात ही है। हे श्रीपति, निश्चय ही हमारे मन को चुराकर तुम ले गये थे। ४९ तुम परम नाटकिया (स्वाँगी) हो, चित-चोर हो। हमें तुम्हारे प्रति अणु मात्र तक विश्वास नहीं है। तुम बड़े भाग्य को प्राप्त हो गये, तो (अपने) बचपन के मित्रों को भूल गये। ५० हे जगज्जीवन, हे मनमोहन, हमारी संगति में तुमने गायों की रखवाली की। तुम यशोदा के दुधमुँहे को हम 'कान्हा' नाम से प्रकारते थे (कान्हा कहते थे)। ५१ हे हृषीकेश, गायों की रखवाली करते समय तुम हमारे साथ में जीमते थे। हमें ठगकर हमारे सम्बल खाया करते थे। उसमें

ठकवूनि खासी। न लाजसी तोचि कीं तूं। ५२ हुतुतू हमामा हुमली। आम्हांसीं घालिसी वनमाळी। तुज बुक्यांवरी सकळीं। डाई लागलिया मारूं गडचा। ५३ कृष्णा तूं मोठा चोर होसी। तुज मायेनें बांधिलें उखळीसी। तेव्हां उद्धरिलें यमलार्जुनां दोघांसी। आठवतें कीं हृषीकेशा। ५४ कृष्णा तुज भाग्य आलें थोर। येऱ्हवीं तूं नंदाचा किशोर। तुझ्या गोकुळींच्या खोडी समग्र। न वर्णवती शेषातें। ५५ वासुरें चारितां गोविंदा। वळत्या न देसी तूं कदा। मग तुज मारूं आम्ही मुकुंदा। तें तुज आठवतें कीं। ५६ आमुच्या शिदोऱ्या एकत्र करूनी। काला वांटिसी तूं चक्रपाणी। तें तूं आंबिल ताक घटघटोनी। पीत होतासी गोपाळा। ५७ आतां बहुत जाहलासी सुकुमार। तें विसरलासी तूं समग्र। अरे तूं परम होसी निष्ठुर। माया अणुमात्र नाहीं तूतें। ५८ तें तुझे अंगासी माखे शेण। आतां चर्चिला उत्तम चंदन। तेव्हां धांवसी घोंगडी पांघरून। पीतवसन आतां झळके। ५९ तें मयूरपिच्छें शिरीं शोभत। आतां रत्नकिरीट विराजत। तें गुंजांचे हार डोलत। आतां कौस्तुभपदकें झळकती। ६० तें तूं विसरलासी गोपाळा। आतां भाग्य आलें घननीळा। ऐकतां कृष्णनायिका

जो लज्जा को नहीं प्राप्त हो जाते थे, वही तुम हो। ५२ हे वनमाली, कबड्डी, हमरी-हुमरी (चरवाहों के विशिष्ट खेल), तुम हमसे कराते थे और हम सब तुमपर दाँव लगने से, हे साथी, तुम्हें घूंसे जमाकर पीटते थे। ५३ हे कृष्ण, तुम बड़े चोर थे। (इसलिए दण्ड-स्वरूप) माता ने तुम्हें ऊखल से बाँध दिया था। हे हृषीकेश, तुम्हें स्मरण है, तुमने यमलार्जुन —दोनों का उद्धार किया था। ५४ हे कृष्ण, तुम्हें बड़ा भाग्य प्राप्त हुआ है; नहीं तो तुम नन्द (ग्वाले) के पुत्र हो। शेष द्वारा तक तुम्हारे गोकुलवाले समस्त अधम-उपद्रवों (शरारतों) को वर्णन नहीं किया जा पाएगा। ५५ बछड़ों को चराते समय तुम हमको कभी पारी नहीं दिया करते थे, तब हे मुकुन्द, क्या वह तुम्हें स्मरण आता है कि तब हम तुम्हें पीटते थे। ५६ हे चक्रपाणि, हमारे सम्बल इकट्ठा करके तुम वह मिश्रण बाँट देते थे। हे गोपाल, तब तुम मँडुए की कढ़ी और छाछ गटगट पी डालते थे। ५७ अब तुम बहुत सुकोमल बन गये हो; उस सबको तुम भूल गये हो। अरे, तुम परम निष्ठुर हो गये हो। तुम्हें (हमारे प्रति) अणु मात्र (तक) ममता नहीं रही है। ५८ तब तुम्हारे बदन में गोबर सन जाता था, अब उत्तम चन्दन लगाया है। तब तुम कम्बल ओढ़कर दौड़ते थे, अब (तुम्हारे द्वारा पहना हुआ) पीताम्बर झलक रहा है। ५९ तब तुम्हारे सिर पर मोर के पर शोभायमान थे; अब किरीट विराजमान है। तब गुंजाओं के हार झूमते थे; अब कौस्तुभ और पदिक झलक रहे हैं। ६० हे गोपाल, तुम उसे भूल

वेळोवेळां। हांसती रुक्मिणीसहित पैं। ६१ एक गोपाळ म्हणे हृषीकेशी। जैं तूं कालियाच्या डोहीं बुडालासी। आम्हीं गोंगाट त्या समयासी। हरि केला तुजकारणें। ६२ आमुचा गोंगाट ऐकतां भेणें। मग तुज सोडिलें कालियानें। आम्हीं तुज वांचविलें प्राणें। ऐकतां कृष्णें हास्य केलें। ६३ शिळाधारीं इंद्र वर्षला। आम्हींच मग गोवर्धन उचलिला। तुवां एकटीच अंगोळी गोपाळा। लावूनि ठकविसी आम्हांतें। ६४ ऐशा संवगडियांच्या गोष्टी। ऐकतां तोषला जगजेठी। तों आल्या गोकुळींच्या गोरटी। देखिल्या दृष्टीं कृष्ण-नाथें। ६५ परम सुंदर लावण्यखाणी। किंवा उतरल्या सौदामिनी। किंवा आल्या स्वर्गाहूनी। देवांगना साक्षात। ६६ तटस्थ पाहती कृष्णनायिका। म्हणती धन्य गोकुळींच्या गोपिका। परम सुकुमार लावण्यलतिका। वैकुंठ-नायका भाळल्या। ६७ असो गोकुळींच्या युवती। कृष्णचरण दृढ धरिती। सप्रेम कृष्णासी भेटती। प्रेम चित्तीं न समाये। ६८ म्हणती वेधका वनमाळी। आम्हांसी टाकूनि गोकुळीं। तुम्हीं द्वारका वसविली। नाहीं दिधली भेटी कदा। ६९ असो गोपिकांचें करूनि समाधान। गौळियांसी

गये हो। हे घननील, अब तुम्हें भाग्य प्राप्त हो गया है'। यह सुनते हुए रुक्मिणी-सहित श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ बार-बार हँस रही थीं। ६१ एक ग्वाला बोला, 'हे हृषीकेश, जब तुम कालिय वाले दह में डूब गये थे (डूब जानेवाले थे), तो उस समय हमने तुम्हारे लिए कोलाहल किया। ६२ हमारे कोलाहल को सुनते ही तब (कहीं) कालिय ने मारे भय के तुम्हें छोड़ दिया। हमने तुम्हें प्राणों से (तुम्हारे प्राणों को) बचा लिया था।" तो यह सुनकर श्रीकृष्ण हँस पड़े। (किसी दूसरे ग्वाले ने कहा)— 'इन्द्र ने शिलाओं-सी जलधाराएँ बरसा दीं, तब हमीं ने गोवर्धन को उठा लिया। (फिर) हे गोपाल, तुमने एक मात्र उँगली लगाकर हमको ठग लिया'। ६३-६४ (बचपन के) सगियों की ऐसी बातें सुनकर जगद्श्रेष्ठ श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हुए। तब गोकुल की गोरियाँ आ गयीं। कृष्णनाथ ने उन्हें अपनी आँखों से देखा। ६५ (उन्हें जान पड़ा कि) —वे परम सुन्दर लावण्य-खनियाँ हैं; अथवा (आकाश से) बिजलियाँ (भूमि पर) उतर गयी हैं, अथवा स्वर्ग से साक्षात देवांगनाएँ आ गयी हैं। ६६ श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ चौंककर देखने लगीं। उन्होंने कहा, 'गोकुल की गोपिकाएँ धन्य हैं। वे परम सुकुमार लावण्यलतिकाएँ वैकुण्ठनायक श्रीकृष्ण पर मोहित हो गयीं'। ६७ अस्तु। गोकुल की उन युवतियों ने कृष्ण के चरणों को दृढ़ता से पकड़ा। वे प्रेम के साथ कृष्ण से मिलीं। उनका प्रेम चित्त में नहीं समाता था। ६८ वे बोलीं, 'हे (मन-) मोहक वनमाली, हमको गोकुल में छोड़कर तुमने द्वारका को बसा लिया (और वहाँ जाने पर फिर से) कभी नहीं मिले'। ६९

भेटला श्रीकृष्ण। तों नंदयशोदा देखतां दुरोन। धांवोनि चरण हरि धरी। ७० तो पुराणपुरुष जगत्पाळक। यशोदेचें पदीं ठेवी मस्तक। येरीनें हरीचे धरोनि हस्तक। क्षेमालिंगन पैं दीधलें। ७१ यशोदेचे पयोधर। तेथें पान्हा फुटला सत्वर। ज्यांतील अमृत क्षीराब्धिजावर। बाळपणीं प्याला असे। ७२ यशोदा म्हणे राजीवनेत्रा। निराळवर्णा कोमलगात्रा। मज सांडूनि सुकुमारा। बहुत दिवस गेलासी। ७३ कृष्णा तुजविण एक क्षण। झाला आम्हांसी पहा युगासमान। हरि तुझी बाळलीला आठवून। आम्हीं प्राण रक्षिले। ७४ उखळीं बांधिलें तुज हृषीकेशी। म्हणोनि मजवरी रुसलासी। मज टाकूनि परदेशीं। तूं द्वारकेसी वसतोस पैं। ७५ श्रीकृष्ण म्हणे जननीलागून। तुम्हांपासीं लागलें माझें मन। तो नंद आला जवळी धांवोन। कृष्णें चरण वंदिले। ७६ जो कमलोद्भवाचा जनिता। तेणें आलिंगिला नंद पिता। म्हणे सखया श्रीकृष्णनाथा। दूर टाकिलें आम्हांतें। ७७ असो हातीं धरूनि नंदयशोदेसी। आणिलीं वसुदेवदेवकी-पाशीं। क्षेमालिंगनें एकमेकांसी। प्रेमादरें देती तेव्हां। ७८ तों अष्ट-नायिका आल्या धांवोनी। आणि सोळा सहस्र नितंबिनी। दृढ लागती

अस्तु। गोपियों को तृप्त करके श्रीकृष्ण ग्वालों से मिले, तो नन्द और यशोदा को दूर से देखकर उन्होंने दौड़कर उनके पाँव पकड़े। ७० पुराण-पुरुष जगत्पालक श्रीहरि ने यशोदा के चरणों पर मस्तक रखा, तो उसने उनके हाथों को थामते हुए उनका क्षेमालिंगन किया। ७१ वहाँ यशोदा के वे स्तन झट से पन्हिया उठे, जिनसे लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण ने बचपन में अमृत पिया था। ७२ तो यशोदा बोली, 'हे राजीव-नेत्र, आकाश-से नील वर्ण वाले, हे कोमलगात्र, मुझे छोड़कर तुम बहुत दिन (दूर) गये। ७३ हे कृष्ण, देखो, तुम्हारे बिना, हमारे लिए एक (-एक) क्षण युग (-युग) के समान हुआ। हे हरि, तुम्हारी बाल-लीलाओं को स्मरण कर (-कर) के हमने अपने प्राणों की रक्षा की। ७४ हे हृषीकेश, मैंने तुम्हें ऊखल से बाँधा था, इसलिए तुम मुझसे रूठ गये और मुझे छोड़कर परदेश में (अब) द्वारका में रहते हो'। ७५ तो श्रीकृष्ण माता से बोले, 'हमारा मन तुम्हारे प्रति (ही) लगा हुआ है'। तब नन्द दौड़कर पास आये। तो श्रीकृष्ण ने उनका वन्दन किया। ७६ जो ब्रह्मा के पिता हैं, उन्होंने पिता नन्द का आलिंगन किया। नन्द बोले, 'हे सखा श्रीकृष्णनाथ, हमें तुमने दूर छोड़ दिया (अपने से दूर रखा)'। ७७ अस्तु। श्रीकृष्ण नन्द और यशोदा के हाथ थामकर वसुदेव-देवकी के पास ले आये। तब उन्होंने प्रेम और आदर से एक-दूसरे का क्षेमालिंगन किया। ७८ तब (श्रीकृष्ण की) आठों नायिकाएँ और सोलह सहस्र (एक सौ) अन्यान्य स्त्रियाँ दौड़कर आयीं। वे यशोदा के दृढ़तापूर्वक पाँव लगीं और आदर

यशोदेचे चरणीं। मस्तक ठेविती आदरें। ७९ सोळा सहस्रांमाजी पट्टराणी। लावण्यखाणी मन्मथजननी। तिणें यशोदेचे चरणीं। मस्तक ठेविलें आदरें। ८० यशोदेनें रुक्मिणी हृदयीं धरिली। आनंद न माये दिग्मंडळीं। जैसी कौसल्येनें सीता आलिंगिली। तैसीच रीति झाली येथें। ८१ असो यावरी ग्रहणीं करूनि स्नान। कृष्णें यात्रा केली सांग दान। आनकदुंदुभि उग्रसेन। भिन्न भिन्न दानें देती। ८२ अमर्याद भांडार फोडून। सुखी केले याचकजन। याचकांचें सदा तृप्त मन। हरिवदन पाहतां। ८३ गोकुळींचे जन आले। तितुके श्रीकृष्णें गौरविले। दिव्य वस्त्राभरणीं ते वेळे। पूजिले गोवळे गोपाळें। ८४ रुक्मिणी म्हणे यादवेंद्रा। बंधूंची बरवी पूजा करा। माझा हेत आजि पुरला खरा। संवगडे तुमचे पाहूनि। ८५ दिव्य वस्त्रें अलंकार जे चांगले। गोकुळींच्या गोपीकांसी ते वेळे। स्वहस्तें दीधले घननीळें। देखतां हांसों आलें रुक्मिणीसी। ८६ श्रीकृष्णासी म्हणे ते वेळां। बरव्या गौरवा जी गोपीबाळा। आपुली पूर्व ओळखी सांभाळा। केला सोहळा जो

से उन्होंने उसके चरणों पर सिर रखा। ७९ यशोदा ने रुक्मिणी को हृदय से लगा लिया। उसका आनन्द दिशाओं के मण्डल में नहीं समा रहा था। लावण्य-खनि मन्मथ-(प्रद्युम्न) जननी रुक्मिणी सोलह सहस्र (एक सौ आठ) स्त्रियों में पटरानी थी। उसने यशोदा के चरणों में आदर के साथ मस्तक रखा। ८० जिस प्रकार (पूर्वकाल में वनवास से लौटने पर) कौसल्या ने सीता का आलिंगन किया, वैसी ही रीति यहाँ पर हो गयी। ८१ अस्तु। इसके पश्चात उन्होंने ग्रहण के समय स्नान करके दान देते हुए अंग-सहित यथाविधि यात्रा पूर्ण की। वसुदेव और उग्रसेन ने (भी) भिन्न-भिन्न (प्रकार के) दान दे दिये। ८२ उन्होंने अपरिमित (धन-) भण्डार को खोलकर (दान देते हुए) याचक जनों को सुखी कर दिया। (वैसे तो) श्रीहरि के वदन को देखकर याचक जनों का मन सदा तृप्त होता ही जाता था। ८३ गोकुल के जितने लोग आ गये, गोपाल श्रीकृष्ण ने उन सबको गौरवान्वित किया; उस समय उन्होंने दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से ग्वालों का पूजन किया। ८४ (उस समय) रुक्मिणी बोली, 'हे यादवेन्द्र, अपने भाइयों का अच्छा पूजन (आतिथ्य, सम्मान) कीजिए। आपने साथियों को देखकर मेरी अभिलाषा आज सचमुच पूरी हो गयी'। ८५ जो वस्त्र दिव्य और आभूषण अच्छे थे, स्वयं घननील श्रीकृष्ण ने वे अपने हाथों से गोकुल की गोपियों को प्रदान किये। यह देखकर रुक्मिणी को हँसी आयी। ८६ उस समय वह श्रीकृष्ण से बोली, 'अजी इन गोपबालाओं का अच्छा गौरव कीजिए। बचपन में आपने तो (इनके साथ) आनन्दोत्सव मनाया था। (उसमें हुई) अपनी

बाळपणीं । ८७ ऐकतां रुक्मिणीच्या वचना । हांसों आलें जगन्मोहना । सत्यभामादि सोळा सहस्र ललना । हांसती तेव्हां आनंदे । ८८ नंदयशोदेचें पूजन । आपण करीत श्रीकृष्ण । बहुत अलंकार धन । नंदयशोदेसी समर्पिलें । ८९ कृष्णनायिका समग्र । यशोदेसी देती वस्त्रें अलंकार । श्रीकृष्णाचे पुत्रपौत्र । यशोदेसी भेटले । ९० देवकी म्हणे यशोदेलागून । त्वां देखिलें हरीचें बाळपण । कृष्णासी करविलें स्तनपान । तूंचि धन्य त्रिभुवनीं । ९१ कंसें आपटिलीं सहा बाळें । कृष्णाऐसीं सुंदर सांवळें । सांगतां देवकीसी रुदन आलें । दुःख आठवलें बंदिशाळेचें । ९२ देवकी म्हणे यदुवीरा । तुवां गुरुपुत्र आणिला माघारा । तुजहूनि ज्येष्ठ सुकुमारा । कंसें पूर्वीं मारिलीं । ९३ तीं माझीं मज आणूनी । सत्वर भेटवीं चक्रपाणी । मग बोले कैवल्यदानी । देवकीप्रति तेधवां । ९४ माते आतांचि पाहें नवल । तुज भेटवितों साही बाळें । यमासी आज्ञा करी घननीळ । तेणें तत्काळ आणिलीं । ९५ साही बाळें आणूनी । देवकीपुढें देत मोक्षदानी । आश्चर्य करिती दोघीजणी । देवकी आणि यशोदा । ९६ साही बाळें ते वेळीं । देवकीनें हृदयीं धरिलीं । जन आश्चर्य करिती सकळी । अद्भुत करणी केली

पहले वाली पहचान (मित्रता) का निर्वाह कीजिए '। ८७ रुक्मिणी की इस बात को सुनकर जगन्मोहन को हँसी आयी । सत्यभामा आदि सोलह सहस्र (एक सौ) स्त्रियाँ तब आनन्द से हँसने लगीं । ८८ (अनन्तर) श्रीकृष्ण ने नन्द और यशोदा का स्वयं पूजन किया और उन (दोनों) को बहुत आभूषण और धन समर्पित किया । ८९ श्रीकृष्ण की समस्त (मुख्य) स्त्रियों ने यशोदा को वस्त्र और आभूषण दिये । (तदनन्तर) श्रीकृष्ण के पुत्र और पौत्र यशोदा से मिले । ९० तो देवकी यशोदा से बोली, ' तुमने श्रीहरि का बचपन देखा; श्रीकृष्ण को स्तनपान करा दिया । (अतः) तुम ही त्रिभुवन में धन्य हो । ९१ (मेरे) कृष्ण जैसे (अन्य) सुन्दर साँवले बच्चों को कंस ने पटक डाला '। यह कहते हुए देवकी को रुलाई आ गयी । उसे बन्दीशाला वाला दुःख स्मरण हुआ । ९२ देवकी बोली, ' हे यदुवीर, तुम गुरुपुत्र को लौटा लाये । कंस ने पूर्वकाल में तुमसे ज्येष्ठ सुकुमार बच्चों को मार डाला । ९३ हे चक्रपाणि, उन मेरे बच्चों को लाकर झट से मुझसे मिला दो '। तब कैवल्य-दाता श्रीकृष्ण देवकी से बोले । ९४ ' हे माता, अभी चमत्कार देख लो । छहों बच्चों को तुमसे मिला देता हूँ '। (तब) घननील श्रीकृष्ण ने यम को आज्ञा दी, तो वह उन्हें तत्काल ले आया । ९५ (इस प्रकार) मोक्षदाता श्रीकृष्ण ने छहों बच्चों को लाकर देवकी के सामने रख दिया । तो देवकी और यशोदा दोनों जननियों ने आश्चर्य अनुभव किया । ९६ उस समय उन छहों बच्चों को देवकी ने हृदय से लगाया ।

हो । ९७ पंक्तीं घेऊनि गोकुळींचे जन । श्रीकृष्णें सारिलें भोजन । पांच रात्री तेथें क्रमून । सुख दिधलें समस्तां । ९८ याउपरी श्रीकृष्णाची आज्ञा घेऊन । नंद यशोदा गौळीजन । गोकुळासी गेले परतोन । श्रीकृष्णासी आठवीत । ९९ सकळ दळभारेंसीं मधुसूदन । द्वारकेसी आला परतोन । ग्रहणयात्रा जाहली संपूर्ण । ब्रह्मानंदेंकरूनियां । १०० यावरी एके दिनीं कृष्णसुत । वनक्रीडेसी गेले समस्त । कंदुक खेळत खेळत । अरण्यांत धांवती । १०१ कंदुक खेळतां उसळला । महाकूपामाजी पडिला । सकळ यादव ते वेळां । कूपाआंत विलोकिती । २ आंत किंचित नसे नीर । माजी सरड पडिला पर्वताकार । महाविशाळ भयंकर । उघडूनि नेत्र विलोकीत । ३ यादव म्हणती जन्मवरी पाहीं । एवढा सरड देखिला नाहीं । एक धांवूनि लवलाहीं । कृष्णासी सांगती नवल हें । ४ बळसहित कमलावर । तेथें पहावया आले सत्वर । कूपामाजी कौस्तुभधर । पाहे सादर विलोकूनि । ५ कृष्णदृष्टी पडतां साचार । तत्काळ जाहला त्याचा उद्धार । पावोनियां दिव्य शरीर । कूपाबाहेर पातला । ६ जो ब्रह्मादिकां वंद्य पूर्ण ।

समस्त लोगों ने आश्चर्य अनुभव किया । (इस प्रकार) श्रीहरि ने अद्भुत करनी कर दी । ९७ श्रीकृष्ण ने गोकुल के समस्त जनों को (अपने पास) पंक्ति में बैठाकर भोजन समाप्त किया । उन्होंने वहाँ पर पाँच रातें बिताकर सबको सुख प्रदान किया । ९८ इसके पश्चात् श्रीकृष्ण से आज्ञा लेकर (बिदा होकर) नन्द, यशोदा और गोपजन श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए गोकुल के प्रति लौट गये । ९९ (इधर) समस्त सेनादलों को लेकर मधुसूदन श्रीकृष्ण द्वारका के प्रति लौट आये । (इस प्रकार) ग्रहण-यात्रा ब्रह्मानन्दपूर्वक पूरी हुई । १००

इसके पश्चात एक दिन श्रीकृष्ण के समस्त पुत्र वनक्रीड़ा के लिए चले गये । (उस समय) गेंद से खेलते-खेलते वे अरण्य में दौड़ रहे थे । १०१ खेलते-खेलते गेंद उछल गयी और एक बड़े कुएँ में गिर पड़ी । उस समय समस्त यादव उस कुएँ के अन्दर (झाँककर) देखने लगे । २ अन्दर थोड़ा-सा भी पानी नहीं था । उसके अन्दर एक पर्वताकार महाविशाल भयावह गिरगिट पड़ा हुआ था । वह आँखें खोलकर देख रहा था । ३ यादव बोले, 'देखो, जन्म भर में इतना (प्रचण्ड पर्वताकार) गिरगिट नहीं देखा था'। तो किसी एक ने दौड़कर (जाते हुए) कृष्ण से यह चमत्कार झट से कह दिया । ४ बलराम-सहित कमलापति (श्रीकृष्ण) झट से वहाँ देखने के लिए आ गये । वे कौस्तुभधारी श्रीकृष्ण अन्दर तत्परतापूर्वक निरखकर देखने लगे । ५ श्रीकृष्ण की दृष्टि पड़ते ही सचमुच तत्काल उसका उद्धार हो गया । तो वह दिव्य शरीर को प्राप्त होकर कुएँ के बाहर आ गया । ६ जो ब्रह्मा आदि के लिए पूर्णतः वन्द्य

क्षीराब्धिवासी नारायण। त्याचे धरिले दृढ चरण। प्रेमेंकरून तयानें। ७
उभा ठाकला जोडूनि कर। मग तयासी पुसे श्रीधर। तूं कोण येथें सांग वीर। काय प्रत्युत्तर बोले तो। ८ म्हणे माझें नांव नृग नृपवर। पुण्यपंथें वर्ततां साचार। मध्यें एक अपाय घडला थोर। जाहला कहर मजवरी। ९ एक्या महापर्वकाळीं। ब्राह्मण बोलावूनि सकळी। तयांसी सहस्र गोदानें अर्पिलीं। सवत्स विधिप्रकारें। ११० पूजासान पावोनि ब्राह्मण। गेले आश्रमासी गाई घेऊन। त्यांत एक्या ऋषीची गाय पळोन। आली कळपांत आमुच्या। १११ तों दुसरे दिवशीं करूनि स्नान। अवचित एक ब्राह्मणा जाणून। तेचि गाय दिधली नेणोन। मग तो ब्राह्मण आला पहावया। १२ तेणें येऊनि ती गाय धरिली। म्हणे हे माझी पळोनि आली। ब्राह्मण म्हणे मज आतां दिधली। मी न सोडीं सर्वथा। १३ एकासीं एक भांडती ब्राह्मण। म्यां धरिले दोघांचे चरण। पहिल्या ब्राह्मणासी सहस्रगोदान। द्यावया सिद्ध जाहलों। १४ तो म्हणे मी न घेईं सर्वथा। माझीच मज देईं आतां। तो दुसऱ्या ब्राह्मणासी प्रार्थितां। तोही सर्वथा नायके। १५ दोघेही विप्र

हैं, जो (वस्तुतः) क्षीराब्धि-निवासी नारायण हैं, उनके उसने प्रेमपूर्वक दृढ़ता से चरण पकड़े। ७ वह हाथ जोड़कर खड़ा रह गया। तब श्रीकृष्ण ने पूछा, 'हे वीर, बता दो, तुम कौन हो, यहाँ कैसे आये हो?' तो उसने क्या प्रत्युत्तर दिया (सुनिए)। ८ वह बोला, 'मेरा नाम नृपवर नृग है। सचमुच पुण्यमार्ग पर मेरे रहते हुए बीच में एक बड़ी हानि हुई। मेरे लिए विकट समय आ गया। ९ एक महापर्व के अवसर पर मैंने समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर उनको यथाविधि सहस्र सवत्स गोदान अर्पित किये। ११० वे पूजा और सम्मान को प्राप्त होने पर गायों को लेकर अपने-अपने आश्रम चले गये। उनमें से एक ऋषि की गाय भागकर हमारे झुण्ड में आ गयी। १११ तो दूसरे दिन स्नान करके मैंने अनजाने में वही गाय एक अन्य ब्राह्मण को प्रदान की। तब (इधर) वह ब्राह्मण अपनी गाय को देखने (खोजने) के लिए (मेरे यहाँ) आ गया। १२ उसने आकर उस गाय को पकड़ लिया और कहा, 'यह मेरी (गाय) भागकर (यहाँ) आ गयी है'। तो वह दूसरा ब्राह्मण बोला, 'मुझे यह अब (ही) दी (हुई) है। मैं इसे बिलकुल नहीं छोड़ूँगा'। १३ वे (दोनों ब्राह्मण) एक-दूसरे से झगड़ने लगे, तो मैंने उनके चरण पकड़े। मैं (उस गाय के बदले में) एक सहस्र गायें दान में देने के लिए सिद्ध हुआ। १४ तो वह बोला, 'मैं बिलकुल नहीं लूँगा; मुझे मेरी अपनी ही अब दीजिए'। तब दूसरे ब्राह्मण से प्रार्थना करने पर उसने भी बिलकुल नहीं माना। १५ उन दोनों विप्रों के झगड़ते रहते, उन्हें शान्त करने का यत्न करने पर भी वे शान्त नहीं हो जाते थे (मनाने

भांडतां। न राहतीच राहवितां। दोघे क्षोभोनि कृष्णनाथा। मज शापशस्त्रें ताडिलें। १६ म्हणती महासरड होऊन। कूपामाजी पडें बहुत दिन। म्यां धरिले त्यांचे चरण। मागुती वचन बोलिले। १७ पुढें अवतरेल श्रीकृष्ण। जो पूर्णब्रह्म सनातन। त्याची दृष्टी पडतां उद्धरोन। जासील तेव्हां स्वर्गातें। १८ यादवांसी म्हणे कृष्णनाथ। पहा अन्याय तरी किंचित। केवढा जाहला अनर्थ। पुण्यपुरुषा रायातें। १९ यालागीं ब्राह्मणासीं भिऊन। वर्ता तुम्ही सावधान। हें असो तत्काळ विमान। रायाकारणें पातलें। १२० नमस्कारूनि हरीचे चरण। नृगराजा गेला उद्धरोन। हरिपदप्रसादेंकरून। इंद्रभुवनीं राहिला। १२१ द्वारकेंत प्रवेशला कृष्णनाथ। तों भेटीसी आला वीर पार्थ। चतुर रणपंडित सुभद्राकांत। आवडे बहुत श्रीकृष्णा। २२ श्रीकृष्णें आवडी करून। हृदयीं आलिंगिला अर्जुन। परम प्रीति दोघांलागून। पंक्तीसी भोजन शेजारीं। २३ एका आसनीं दोघांसी बैसणें। एके तल्पकीं निद्रा करणें। गुह्य गोष्टी बोलणें। दोघांजणीं एकांतीं। २४ तों द्वारकेमाजी एक

पर भी नहीं मानते थे)। हे कृष्णनाथ, उन दोनों ने क्षुब्ध होकर शाप रूपी अस्त्र से मेरा ताड़न किया। १६ वे बोले, 'तुम बड़ा गिरगिट होकर बहुत दिन कुएँ में पड़े रहजाओगे'। मैंने उनके चरण पकड़े, तो उन्होंने फिर यह बात कही। १७ 'आगे श्रीकृष्ण अवतरित हो जाएँगे जो सनातन पूर्णब्रह्म हैं, उन (श्रीकृष्ण) की दृष्टि के पड़ते ही तुम उद्धार को प्राप्त होकर स्वर्ग जाओगे'। १८ (अनन्तर) श्रीकृष्ण यादवों से बोले, 'देखो, अन्याय (अपराध) तो अत्यल्प था, (परन्तु उसके कारण) उस पुण्यवान पुरुष पर, राजा पर कितनी बड़ी विपत्ति आयी। १९ इसलिए तुम सावधानी के साथ, ब्राह्मणों से डरकर रहो (आचरण-व्यवहार करो)। यह रहने दो। उस राजा के लिए तत्काल (वहाँ पर) विमान आ गया। १२० श्रीहरि के चरणों को नमस्कार करके (इस प्रकार) नृगराजा उबरकर चला गया और उनके पद-प्रसाद से (तब से) इन्द्र-लोक में रह गया। १२१ (अनन्तर) द्वारका में श्रीकृष्णनाथ प्रविष्ट हुए, तो वीर पार्थ उनसे मिलने के लिए आ गये। श्रीकृष्ण को वे चतुर रण-पण्डित सुभद्रा-पति अर्जुन बहुत प्यारे लगते थे। २२ श्रीकृष्ण ने प्रेम से उन्हें हृदय से लगाते हुए उनका आलिंगन किया। उन दोनों में (एक-दूसरे के प्रति) बहुत प्रेम था। वे (एक-दूसरे के) पास में बैठकर भोजन करते। २३ दोनों का बैठना एक (ही) आसन पर होता (दोनों एक आसन पर बैठा करते), एक ही पलंग पर निद्रा करते; दोनों जने एकान्त में गुह्य बातें किया करते (एक-दूसरे से बोलते)। २४ तब द्वारका में कोई एक (अभागा) ब्राह्मण रहता था। उसके आठ बच्चे छठी देवी

ब्राह्मण । त्याचीं आठ बाळें गेलीं सटवोन । मागुती स्त्री प्रसूत होऊन । नववा पुत्र जाहला । २५ ब्राह्मण श्रीरंगाजवळी आला । बाळांचा वृत्तांत सांगितला । हरि जे पांचवे दिवसीं पुत्र जातात याला । उपाय मजला सांगा कांहीं । २६ आतां स्त्री जाहली प्रसूत । एवढा तरी राखें सुत । तों गर्वें बोले वीर पार्थ । मी रक्षीन बाळ तुझें । २७ ब्राह्मणाच्या घरासी आला अर्जुन । म्हणे मी बाळकाचा रक्षीन प्राण । यम काळ उभे चिरीन । निजसामर्थ्येंकरूनियां । २८ मी असतां सामर्थ्यवंत । काय करितील यमदूत । कैसा सटवेल विप्राचा सुत । तो आजि सत्य पाहेन मी । २९ जरी या बाळाचा जाईल प्राण । तरी मीही अग्निकाष्ठें भक्षीन । ऐसा करूनियां पण । रक्षी अर्जुन सभोंवतें । १३० विप्राच्या गृहावरूनि थोर । दृढ रचिलें बाणांचें मंदिर । दिव्य मंत्र जपोनि सत्वर । दिग्बंधन पार्थ करी । १३१ धनुष्यासी लावूनि बाण । द्वारीं रक्षीत अर्जुन । तों प्रवर्तला पांचवा दिन । गेला प्राण बाळकाचा । ३२ जननी पिटी वक्षःस्थल । अहा रे अर्जुना सटवलें बाळ । पार्थ क्षोभला प्रबळ । गेला तत्काळ यमपुरीं । ३३ यमासी

की अवकृपा से चल बसे थे । अनन्तर स्त्री प्रसूत होकर उसके नौवाँ पुत्र (उत्पन्न) हुआ । २५ तब वह ब्राह्मण श्रीरंग के पास आ गया (और) उसने अपने बच्चों-सम्बन्धी समाचार कहा । (फिर) वह बोला, 'हे श्रीहरि, मेरे पुत्र पाँचवें दिन मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं —मुझे इसका कोई उपाय कहिए । २६ अब (मेरी) स्त्री प्रसूत हुई है । इस पुत्र को तो (जीवित) रखिए'। तो वीर पार्थ घमण्ड से बोले, 'मैं तुम्हारे बच्चे की रक्षा करूँगा'। २७ (अनन्तर) अर्जुन उस ब्राह्मण के घर आ गये और बोले, 'मैं बालक के प्राणों की रक्षा करूँगा । अपनी सामर्थ्य से यम और काल को खड़े (-खड़े अर्थात सीधे) चीर डालूँगा । २८ मुझ सामर्थ्यवान के होते हुए, यमदूत क्या कर सकेंगे । मैं आज सचमुच देख लूँगा कि इस ब्राह्मण के पुत्र पर छठी की कैसे अवकृपा होती है । २९ यदि इस बच्चे के प्राण जाएँगे, तो मैं भी अग्नि-काष्ठ भक्षण करूँगा (आग में जलकर मर जाऊँगा)'। ऐसा प्रण करके अर्जुन चारों ओर से रक्षा करने लगे । १३० अर्जुन ने उस ब्राह्मण के घर पर बाणों का एक दृढ़ घर बना लिया और झट से दिव्य मन्त्र का जाप करके दिशाओं को आबद्ध किया (जिससे कि कोई किसी दिशा से भी पास नहीं आ सके) । १३१ अर्जुन धनुष पर बाण चढ़ाकर द्वार पर (बैठकर) रखवाली करने लगे । तब पाँचवाँ दिन आ गया (और) उस बालक के प्राण निकल गये । ३२ (यह देखकर) माता छाती पीटने लगी । (वह बोली—) 'हे अर्जुन, बालक को छठी ने बाधा पहुँचायी'। (यह सुनकर) पार्थ अतिशय क्षुब्ध हो उठे । वे तत्काल यमपुर गये । ३३ उन्होंने यम से समाचार पूछा, तो

पुसे वृत्तांत। तो म्हणे नवही बाळें येथ। म्यां आणिलीं नाहीं सत्य। जाण यथार्थ कपिध्वजा। ३४ बाळकाकारणें ते वेळे। स्वर्ग मृत्यु पाताळ शोधिले। चौदा लोकांत झाडे घेतले। परी बाळें न सांपडती। ३५ आला द्वारकेसी परतोन। मग चेतविला महाअग्न। प्राण द्यावयासी अर्जुन। सिद्ध जाहला ते काळीं। ३६ वृत्तांत एकोनि सर्वेश्वर। पार्थाजवळी आला सत्वर। कपिध्वजें वृत्तांत समग्र। श्रीरंगासी सांगितला। ३७ मग दिव्य रथ सजवूनि परिकर। श्रीकृष्णें आणविला सत्वर। त्यावरी कमलावर सुभद्रावर। बैसोनियां चालिले। ३८ पवनवेगें रथ जात। पृथ्वीमंडळ उल्लंघी त्वरित। सप्त समुद्र अद्‌भुत। क्रमूनि मागें टाकिले। ३९ सप्तावरणें भेदून। जेथें वसे आदिनारायण। तेथें नेऊनि अर्जुन। उभा केला श्रीकृष्णें। १४० कोटि सूर्यांची प्रभा जाय लपोन। ऐसा शेषशायी नारायण। त्याचिया पदअंगुष्ठावरून। ब्रह्मांडचि ओंवाळिजे। १४१ तें स्वरूपतेज अपार। नेत्रीं पाहूं न शके मित्र। त्याचे स्वरूपीं वसुदेवपुत्र। मिळोनि गेला एकत्वें। ४२ परम घाबरा जाहला अर्जुन। पाहे तंव जवळी नाहीं श्रीकृष्ण। अद्‌भुत तेज न लक्षवे पूर्ण। झांकी नयन भयें तेव्हां। ४३ नयन झांकूनि पंडुसुत।

वह बोला, 'सचमुच मैं यहाँ नवों बालकों को नहीं लाया हूँ। हे कपिध्वज (अर्जुन), इसे यथार्थ जान लीजिए'। ३४ उस समय अर्जुन ने बालकों के लिए स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल को ढूँढ़ लिया। चौदह लोकों में खोज की। परन्तु (कहीं भी) वे बच्चे नहीं मिले। ३५ (अतः) अर्जुन द्वारका लौट आये और अनन्तर महाअग्नि को प्रज्वलित करके उस समय प्राण त्यज देने को सिद्ध हुए। ३६ यह समाचार सुनते ही सर्वेश्वर श्रीरंग झट से कपिध्वज पार्थ के पास आ गये, तो उन्होंने समग्र समाचार कहा। ३७ अनन्तर श्रीकृष्ण एक सुन्दर दिव्य रथ को सजवाकर झट से लिवा लाये। उसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन बैठकर चल पड़े। ३८ वह रथ पवन-वेग से चला। उसने शीघ्र ही पृथ्वीमण्डल को लाँघ लिया; फिर सातों समुद्रों को पार करके पीछे कर दिया (वे आगे बढ़ गये)। ३९ सातों आवरणों को भेदकर श्रीकृष्ण ने जहाँ आदिनारायण रहते हैं, वहाँ अर्जुन को ले जाकर खड़ा कर दिया। १४० शेषशायी नारायण ऐसे हैं कि कोटि(-कोटि) सूर्यों की कान्ति (भी उनके सामने) छिप जाती है। उनके पाँव के अँगूठे पर ब्रह्माण्ड को ही निछावर कर दें। १४१ सूर्य (तक) उस स्वरूप के अपार तेज को अपनी आँखों से देख नहीं सकता। उनके स्वरूप में वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण एक रूप होकर मिल गये। ४२ अर्जुन परम घबड़ा उठे। उन्होंने देखा, तो श्रीकृष्ण पास में नहीं (दिखायी दे रहे) थे। उस अद्‌भुत तेज को उनके द्वारा पूर्ण रूप से नहीं देखा जा रहा था। तब उन्होंने भय से आँखें मूंद

श्रीकृष्णा नामें हांक देत। म्हणे कैवारिया धांव त्वरित। कां मज येथें सांडिलें। ४४ मंगळधामा राजीवनेत्रा। पुराणपुरुषा स्मरारिमित्रा। मन्मथ-जनका देवकीपुत्रा। धांव सत्वर मजलागीं। ४५ जलजोद्भवजनका मधुसूदना। पांडवरक्षका भक्तजनरंजना। समरधीरा दानवभंजना। काढीं मज येथूनि। ४६ कासावीस जाहला पार्थ। मग प्रकटला कृष्णनाथ। दिव्य चक्षु तयासी देत। म्हणे पाहें अद्भुत तेज माझें। ४७ मग पार्थें उघडिलीं नेत्रकमळें। दिव्य स्वरूप न्याहाळिलें। तंव तेथें नवही बाळें। ब्राह्मणाचीं खेळती। ४८ मग स्तवूनि आदिनारायण। नवही बाळें घेतलीं मागोन। रथीं बैसोनि कृष्ण अर्जुन। आले परतोन द्वारकेसी। ४९ अर्जुनाजवळी नवही बाळें। श्रीकृष्णें दिधलीं तये वेळे। मग ब्राह्मणासी बोलाविलें। स्त्रीसहित तेधवां। १५० उभयतांसी पूजूनि पार्थ। समर्पिले नवही सुत। ब्राह्मण आनंदें बहुत। यश वर्णीत पार्थाचें। १५१ ब्राह्मण गेला गृहासी। मग अर्जुन म्हणे हृषीकेशी। तुझी लीला ब्रह्मादिकांसी। पाकशासनासी अगम्य। ५२ श्रीकृष्ण म्हणे पार्था। सर्व स्वरूपें मीच

लीं। ४३ आँखों को मूँदकर पण्डुसुत अर्जुन नाम लेकर श्रीकृष्ण को पुकारने लगे। वे बोले, 'हे रखवाले, झट से दौड़िए। मुझे यहाँ पर क्यों छोड़ दिया ? ४४ हे मंगल-धाम, हे राजीव-नेत्र, हे पुराण-पुरुष, हे कामदेव के शत्रु शिवजी के मित्र, हे मन्मथ (कामदेव के अवतार प्रद्युम्न) के पिता, हे देवकी-पुत्र, मेरे लिए झट से दौड़िए। ४५ हे कमलोद्भव ब्रह्मा के पिता, हे मधुसूदन, हे पाण्डवों के रक्षक, हे भक्तजनों को रिझाने वाले, हे समरधीर, हे दानवों का संहार करनेवाले, मुझे यहाँ से निकाल लीजिए'। ४६ पार्थ कसमसा उठे। तब कृष्णनाथ प्रकट हुए और उन्होंने उनको दिव्य चक्षु प्रदान किये और कहा, 'मेरे अद्भुत तेज को देख लो'। ४७ तब पार्थ ने नेत्रकमल खोले और उनके दिव्य रूप को निरख लिया। (उन्होंने देखा कि) वहाँ उस ब्राह्मण के नवों बालक खेल रहे थे। ४८ तब आदिनारायण की स्तुति करके उन्होंने उनसे वे नवों बालक माँगकर ले लिये। (अनन्तर) रथ में बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन लौटकर द्वारका आ गये। ४९ श्रीकृष्ण ने उस समय वे नवों बच्चे अर्जुन को दिये और तब उसी समय उस ब्राह्मण को स्त्री-सहित बुला लिया। १५० अर्जुन ने उन दोनों का पूजन करके उनके नवों पुत्र उनको समर्पित किये। तो उस ब्राह्मण ने बहुत आनन्द-पूर्वक अर्जुन की कीर्ति का वर्णन किया। १५१ (तत्पश्चात) वह ब्राह्मण अपने घर चला गया। तब अर्जुन बोले, 'हे हृषीकेश, आपकी लीला ब्रह्मा आदि के लिए, इन्द्र के लिए (तक) अगम्य है'। ५२ श्रीकृष्ण पार्थ से बोले, 'मैं ही समस्त रूपों का धारी हूँ। यहाँ किसी दूसरे की कोई बात (गुंजाइश) नहीं है।

धरिता। येथें दुजयाची नाहीं वार्ता। कर्ता हर्ता मीच पैं। ५३ असो आज्ञा घेऊनि अर्जुन। इंद्रप्रस्थासी गेला परतोन। सकळ अभिमान गळून। कृष्णस्मरणीं वर्ततसे। ५४ श्रीधर श्रोतयां विनवीत। संपत आला हरिविजय ग्रंथ। परी एक अनुसंधानीं संमत। पद्मपुराणींचें सूचलें। ५५ पद्मपुराणीं पांडुरंगमाहात्म्य। तेथें ही कथा आहे उत्तम। श्रोतीं परिसिजे सप्रेम। अत्यादरें करूनियां। ५६ शची शक्राची अंगना। ती एकदां गेली विष्णुभुवना। तों देखिला वैकुंठराणा। लक्ष्मीसहित ते वेळां। ५७ करूनियां हरीसी नमन। उभी ठाकली कर जोडून। परी शचीचें इच्छी मन। अर्धांगीं बैसेन हरीच्या। ५८ हा परमात्मा आदिनारायण। जरी मी याच्या अर्धांगीं बैसेन। तरी भाग्य परिपूर्ण। मग जगज्जीवन बोलत। ५९ हरि म्हणे ते अवसरीं। शची तुवां जें इच्छिलें अंतरीं। साठी सहस्र वर्षें तप करीं। हिमगिरिपाठारीं मजलागीं। १६० पुढें मी धरीन कृष्णावतार। गोकुळीं करीन लीलाचरित्र। तूं राधा होऊनि सत्वर। प्रकटें मग व्रजातें। १६१ तेथें मी तुज वरीन। मग मी कंसवधासी जाईन। ते वेळे

मैं ही कर्ता और हरण (विनाश)-कर्ता हूँ'। ५३ अस्तु। अर्जुन आज्ञा लेकर (विदा होकर) इन्द्रप्रस्थ लौट गये। उनके समस्त अहंकार के नष्ट हो जाने पर वे कृष्ण का स्मरण करते हुए रहने लगे। १५४

श्रीधर (कवि) श्रोताओं को विनती-पूर्वक निवेदन करते हैं— श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ (अब) समाप्त होने जा रहा है। फिर भी इस क्रमगत कथा के साथ पद्मपुराण द्वारा सम्मत एक (अन्य) कथा सुझायी दे रही है। १५५ पद्मपुराण में पाण्डुरंग का माहात्म्य (वर्णित) है। वहाँ यह उत्तम कथा (कही हुई) है। श्रोता प्रेम और अति आदर के साथ उसका श्रवण करें। ५६ इंद्र की स्त्री शची एक बार विष्णु-लोक (वैकुण्ठ) गयी थी। उसने उस समय वैकुण्ठराज (भगवान विष्णु) को लक्ष्मी-सहित देखा। ५७ वह श्रीहरि को नमस्कार करके हाथ जोड़कर खड़ी रह गयी। फिर भी शची का मन यह चाहता था कि मैं (शची) श्रीहरि के अर्धांग में (गोद में) बैठ जाऊँ। ५८ ये परमात्मा आदिनारायण हैं। यदि मैं इनके अर्धांग में बैठूँ, तो ही मेरे भाग्य परिपूर्ण होंगे। तब जगज्जीवन बोले। ५९ उस अवसर पर श्रीहरि बोले, 'तुमने मन में जो चाहा है, (उसकी पूर्ति के लिए) मेरे लिए तुम हिमालय की पीठ पर, अर्थात शिखर पर साठ सहस्र वर्ष तपस्या करो। १६० मैं आगे (भविष्य में) कृष्णावतार ग्रहण करूँगा। (तब) मैं गोकुल में लीला-चरित्र सम्पन्न करूँगा। तब तुम राधा होकर झट से ब्रज में प्रकट हो जाओ। १६१ वहाँ मैं तुम्हारा वरण करूँगा। अनन्तर मैं कंस का वध करने के लिए चला

तूं गुप्त होऊन। द्वारके येई वेगेंसीं। ६२ ऐसा वर पावोनि ते अवसरीं। इंद्राणी निर्धारें तप करी। प्रकटली गोकुळाभीतरी। भोगिला मुरारी कुंजवनीं। ६३ मग मथुरेसी जातां हृषीकेशी। वियोग न साहवे राधेसी। गुप्त होऊनि हिमाचळासी। मागुती तपासी ते गेली। ६४ मग ते दिव्य तप करूनी। तेचि आली द्वारकेलागूनी। श्रीकृष्णें राधेसी देखोनी। आलिंगूनि अंकीं बैसविली। ६५ अद्यापि द्वारकेसी जाण। श्रोतीं पहावें जाऊन। होतें राधाकृष्णपूजन। सर्व जन देखती ते। ६६ असो अर्धांगीं राधा घेऊनी। बैसला असतां चक्रपाणी। तेथें आली रुक्मिणी। हरिचरण पहावया। ६७ जरी सोळा सहस्र गोपिका असती। सत्यभामादि सकळ युवती। परी त्याही येतां रुक्मिणी सती। न बैसती हरिअंकीं। ६८ रुक्मिणी येतांचि सकळा। उभ्या राहती गोपबाळा। सर्वांदेखतां चित्कळा। हरिअर्धांगीं बैसत। ६९ सर्वांदेखतां बैसे रुक्मिणी। परी तिजदेखत न बैसे कोणी। हे ज्ञानकळा पट्टराणी। इची सरी कोणी न पावत। १७० असो रुक्मिणी आली जों एकदां। तों हरीचे अर्धांगीं बैसली राधा। न धरी रुक्मिणीची

जाऊँगा। उस समय तुम गुप्त होकर वेगपूर्वक (यथासमय) द्वारका में आ जाओ'। ६२ ऐसा वरदान प्राप्त करके इन्द्राणी ने निश्चयपूर्वक तप किया। (फिर) वह गोकुल के अन्दर प्रकट हुई और कुंजवन में मुरारि कृष्ण का उसने उपभोग किया। ६३ अनन्तर हृषीकेश के मथुरा जाने (लगने) पर राधा द्वारा (श्रीकृष्ण का) वियोग सहा नहीं जा रहा था। तो वह गुप्त होकर फिर से तप के लिए हिमालय में चली गयी। ६४ तब दिव्य तप करके वही (इन्द्राणीस्वरूपा राधा) द्वारका आ गयी। श्रीकृष्ण ने राधा को देखकर उसका आलिंगन करके उसे गोद में बिठा लिया। ६५ जान लीजिए, श्रोता द्वारका में जाकर देख लें कि (वहाँ) अब भी राधा और कृष्ण का पूजन होता है और समस्त लोग उसे देखते हैं। ६६ अस्तु। चक्रपाणि श्रीकृष्ण राधा को अर्धांग में लेकर बैठे थे तब वहाँ रुक्मिणी श्रीहरि के चरणों के दर्शन के लिए आ गयी। ६७ यद्यपि सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियाँ थीं, सत्यभामा आदि समस्त युवतियाँ थीं, फिर भी वे भी सती रुक्मिणी के आने पर श्रीहरि की गोद में नहीं बैठती थीं। ६८ रुक्मिणी के आते ही समस्त गोपियाँ खड़ी हो जाती और सबके देखते (सबके समक्ष), चित्कला स्वरूपा रुक्मिणी श्रीहरि के अर्धांग में बैठ जाती। ६९ रुक्मिणी सबके देखते बैठ जाती, फिर भी उसके देखते (उसके सामने) कोई भी (श्रीकृष्ण की गोद में) नहीं बैठती। यह (रुक्मिणी) तो (साक्षात) ज्ञानकला थी, पटरानी थी। इसकी समानता को कोई भी नहीं प्राप्त हो सकती थी। १७० अस्तु। एक बार जब रुक्मिणी (श्रीकृष्ण के चरणों के दर्शन के लिए) आ गयी, तो

मर्यादा । ऋढली क्रोधा भीमकी । १७१ पुढील भविष्य जाणूनी । तात्काळ रुक्मिणी गेली रुसोनी । दक्षिणदिंडीरवनीं येऊनी । तप करीत बैसली । ७२ दिंडीरवन तेंचि पंढरी । भीमातीरीं भीमकी तप करी । मज येथें पहावया येईल मुरारी । द्वारकेहूनि आपणचि । ७३ मग दिंडीरवनांत । भीमककन्या तप करीत । तों द्वारकेसी कृष्णनाथ । काय करिता जाहला । ७४ रुक्मिणी जातां द्वारकेहूनी । कळाहीन सकळ कामिनी । ते सर्व सौभाग्य-खाणी । गेली रुसोनी भीमातटा । ७५ मग रुक्मिणीकारणें कृष्णनाथ । सर्व उर्वीमंडळ शोधीत । तों गोकुळासी आला त्वरित । बाळवेष धरी तेव्हां । ७६ सर्व गाईगोपाळ घेऊनी । दक्षिण दिशे आला चक्रपाणी । शोधीत वनीं उपवनीं । ते रुक्मिणी चित्कळा । ७७ गोरक्षणाचा वेत्र करीं । तोचि दंड धरी पूतनारी । शंख तो कमंडलु निर्धारीं । संन्यासी हरि जाहला असे । ७८ श्रीवत्सांकित मनोहर । मुकुट कुंडलें मकराकार । नीलजीमूतवर्ण श्रीधर । बाळ दिगंबर जाहला । ७९ शोधीत शोधीत हृषीकेशी । आला लं हदंड

श्रीहरि की गोद में राधा बैठी हुई थी। उसने भीमकी रुक्मिणी का आदर नहीं किया, तो वह क्रोध को प्राप्त हुई। १७१ आगे का भविष्य, अर्थात होनी को जानकर रुक्मिणी तत्काल रूठकर चली गयी। वह दक्षिण दिण्डीर वन में (पण्ढरपुर में) आकर तप करती हुई बैठी रही। ७२ दिण्डीर वन ही पण्ढरपुर है। भीमा नदी के तट पर रुक्मिणी (इस विचार से) तप करती रही कि मुरारि अपने आप मुझे देखने के लिए द्वारका से यहाँ आ जाएँगे। ७३ तब भीमक-कन्या रुक्मिणी दिण्डीर वन में तप कर रही थी, तो श्रीकृष्णनाथ ने द्वारका में क्या किया। ७४ रुक्मिणी के द्वारका से चले जाने पर समस्त स्त्रियाँ तेजोहीना हो गयीं। वह (रुक्मिणी) तो सौभाग्य की खान थी। वह रूठकर भीमा नदी के तट के प्रति चली गयी थी। ७५ तब कृष्णनाथ ने रुक्मिणी के लिए समस्त पृथ्वी-मण्डल को ढूँढ़ लिया। फिर वे झट से गोकुल आ गये। तब उन्होंने (वहाँ) बालवेश धारण किया। ७६ (तत्पश्चात) साथ में गायों और गोपालों को लेकर चक्रपाणि कृष्ण उस चित्कला स्वरूपा रुक्मिणी को वनों में, उपवनों में खोजते हुए दक्षिण दिशा में आ गये। ७७ गायों की रखवाली करते समय ली जानेवाली लकुटिया उनके हाथ में थी। पूतनारि श्रीकृष्ण ने (हाथ में) वही दण्ड रूप में धारण किया। निश्चय ही शंख कमण्डलु स्वरूप (प्रयुक्त) था। (इस प्रकार) श्रीहरि संन्यासी हो गये। ७८ उनका वक्षःस्थल मनोहारी श्रीवत्स-चिह्नांकित था। वे मुकुट और मकराकार कुण्डलों को धारण किये हुए थे। वे श्रीधर नीलमेघ (के-से) वर्ण (से युक्त) थे। वे बाल दिगम्बर संन्यासी हो गये। ७९ (रुक्मिणी को) खोजते-खोजते हृषीकेश लोह-दण्ड क्षेत्र आ

क्षेत्रासी। दिंडीरवन म्हणती त्यासी। तेथें द्वारकावासी प्रवेशला। १८० मागें टाकूनि गाईगोपाळ। त्या वनांत प्रवेशे घननीळ। तों तेथें बैसली वेल्हाळ। तप करीत एकांतीं। १८१ अंकांतरीं धरूनि वेत। दोन्ही कटीं ठेवूनि हस्त। रुक्मिणीचें वदन विलोकीत। उभा राहिला तेथेंचि। ८२ म्हणे पद्मनेत्रे कामिनी। कां बैसलीस येऊनी। मज न गमे तुजवांचूनी। म्हणोनि धांवूनि येथें आलों। ८३ म्हणे प्रिये तुजवांचून। मज युगासमान वाटे क्षण। मग रुक्मिणी बोले वचन। तूं कोण आहेसी सांग पां। ८४ चोरटियासारिखा अकस्मात। उभा ठाकलासी या वनांत। परांगनेसीं बोलावया मात। काय कारण तुज असे। ८५ परनारीसी प्रिया म्हणसी। मज ऐसें वाटतें मानसीं। बहुतेक परद्वारी आहेसी। बाळपणापासूनि। ८६ ऐकोनि भीमकीचें वचन। हास्य करीत मधुसूदन। मग हृदयीं दृढ आलिंगून। केलें समाधान तियेचें। ८७ तों पुढें पुंडलीक भक्त। मातापितयांची सेवा करीत। तेणें तोषला जगन्नाथ। जाऊनि तेथें उभा ठाके। ८८ हरि म्हणे धन्य धन्य पुंडलीका। वर मागें भक्तटिळका। येरें वीट टाकिली वैकुंठनायका। बैसावयाकारणें। ८९ त्या विटेवरी पद जोडूनी। दोन्ही कर

गये। उसे 'दिण्डीर वन' कहते हैं। द्वारका के निवासी श्रीकृष्ण वहाँ (उसमें) प्रविष्ट हो गये। १८० गायों और गोपालों को पीछे छोड़कर घननील श्रीकृष्ण उस वन में प्रविष्ट हो गये। तब (उनको दिखायी दिया कि) वहाँ एकान्त में वह सुन्दरी तप करते हुए बैठी थी। १८१ जंघाओं के बीच लकुटिया टिकाकर और दोनों हाथ कटि पर रखकर वे वहीं रुक्मिणी के मुख को देखते (खड़े) रहे। ८२ वे बोले, 'हे कमलनयना कामिनी, यहाँ आकर क्यों बैठी हो? मुझे बिना तुम्हारे चैन नहीं आ रहा है। इसलिए मैं दौड़ते हुए यहाँ आया हूँ'। ८३ वे बोले, 'हे प्रिया, बिना तुम्हारे मुझे (एक-एक) क्षण युग (-युग) के समान जान पड़ता है'। तब रुक्मिणी ने यह बात कही, 'बता दो, तुम कौन हो। ८४ सहसा चोर की भाँति इस वन में आकर खड़े रह गये हो। परायी स्त्री से बातें करने का तुम्हें क्या कारण है। ८५ तुम पर-स्त्री को प्रिया कह रहे हो। मुझे मन में ऐसा लगता है कि बचपन से तुम बहुधा परदारा-गमनी हो'। ८६ भीमकी की यह बात सुनकर मधुसूदन कृष्ण हँस पड़े। अनन्तर हृदय से लगाते हुए उसका दृढ़ता से आलिंगन किया और उसे तृप्त किया। ८७ तब आगे भक्त पुण्डलीक अपने माता-पिता की सेवा करता था। उससे जगन्नाथ श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हुए। वे वहाँ जाकर खड़े रह गये। ८८ श्रीहरि बोले, 'हे पुण्डलीक, धन्य हो, धन्य हो। हे भक्त-तिलक (भक्तश्रेष्ठ), वर माँग लो'। तो उसने वैकुण्ठ-नायक श्रीकृष्ण को बैठने के लिए एक ईंट फेंक दी। ८९ उस ईंट

कटीं ठेवूनी। उभा राहिला मोक्षदानी। पुंडलिकासी न्याहाळीत। १९० मातापितयांची सेवा करूनी। हरीसमोप आला पुंडलीक मुनी। प्रेमें लागला दृढ चरणीं। मग मोक्षदानी बोलत। १९१ पुंडलिका वर मागें येचि क्षणीं। येरू म्हणे जैसा आहेसी चक्रपाणी। तैसा चिरकाळ ये स्थानीं। उभा राहें भगवंता। ९२ जे तुझ्या दर्शनासी येती। ज्ञानहीन मूढमती। त्यांसी दर्शनें व्हावी मुक्ती। हेचि विनंति माझी असे। ९३ आणि या क्षेत्राचें नाम पंढरीनगर। दक्षिणद्वारका नाम साचार। रुक्मिणीसहित तूं सर्वेश्वर। राहें स्थिर येथेंचि। ९४ विट्ठल नाम अभिधान। चालवावें आतां येथून। मज कोठें न जावें सोडून। कृपाळुवा सर्वेशा। ९५ म्हणून दक्षिणद्वारका पंढरी। जे विख्यात भूमंडळावरी। सकळ द्वारकेची संपदा मुरारी। आणीत तेव्हां पंढरीये। ९६ हा भीमातीरविहारी दिगंबर। आदिपुरुष परात्पर। आनंदसांप्रदाय थोर। तेथूनिया वाढला। ९७ मूळ गुरु आदिनारायण। प्रथम शिष्य चतुरानन। आपुलें जें गुह्य ज्ञान। ठेविलें पूर्ण त्यापासीं। ९८ तेंचि ब्रह्मवंद्य निजज्ञान। अत्रीसी दिधलें प्रीतीकरून।

पर पाँव (विशिष्ट मुद्रा में) रखकर और दोनों हाथ कटि पर टिकाये हुए मोक्ष-दाता श्रीकृष्ण पुण्डलीक को निहारते हुए खड़े रह गये। १९० माता-पिता की सेवा (पूर्ण) करके मुनि पुण्डलीक श्रीहरि के समीप आ गया और प्रेम के साथ उनके पाँव दृढ़ता से लग गया। तब मोक्ष-दाता बोले। १९१ 'हे पुण्डलीक, इसी क्षण वर माँग लो।' तो वह बोला, "हे चक्रपाणि, हे भगवान, जैसे आप अभी (खड़े) हैं, वैसे ही इस स्थान पर चिरकाल खड़े रहिए। ९२ मेरी यही विनती है कि जो ज्ञानहीन, मूढ़मति (लोग) आपके दर्शन के लिए आएँगे, वे आपके दर्शन (मात्र) से मुक्ति को प्राप्त हो जाएँ। ९३ और इस (तीर्थ-) क्षेत्र का नाम पण्ढरीनगर (अर्थात पण्ढरपुर) हो जाए —सचमुच इसका नाम दक्षिण द्वारका हो। आप सर्वेश्वर रुक्मिणी सहित यहीं स्थिर रूप से (सदा के लिए) रह जाएँ। ९४ अब यहाँ से आगे अपने लिए 'विट्ठल' नामक अभिधान चलवाइए। हे कृपालु सर्वेश, मुझे छोड़कर कहीं भी न जाएँ"। ९५ इसलिए पण्ढरपुरी दक्षिण द्वारका नाम से भू-मण्डल में विख्यात है। तब मुरारि श्रीकृष्ण द्वारका की समस्त सम्पत्ति पण्ढरपुर में ले आये। ९६ ये भीमानदी के तट पर विहार करनेवाले दिगम्बर (कृष्णस्वरूप विट्ठल वस्तुतः) परात्पर आदिपुरुष हैं। यहाँ से आगे आनन्द नामक सम्प्रदाय बड़े विकास को प्राप्त हुआ। ९७ (इस सम्प्रदाय में) आदिनारायण आदिगुरु हैं। ब्रह्मा उनके प्रथम शिष्य हैं। अपना जो गुह्य ज्ञान है, उन आदिगुरु ने उनके पास वह सम्पूर्ण ज्ञान (सुरक्षित) रखा। ९८ ब्रह्मा ने वही ब्रह्म-वंद्य आत्मज्ञान अत्रि ऋषि को प्रेमपूर्वक

त्याचें पोटीं परब्रह्म पूर्ण। दत्तात्रेय अवतरला। ९९ अवतार उदंड होऊनि गेले। परी दत्तात्रेयरूप आहे संचलें। अत्रीनें ज्ञान ठेविलें। दत्तात्रेयीं सर्व ते वेळां। २०० त्या दत्तात्रेयापासून। सदानंदीं बिंबलें ज्ञान। तेंचि रामानंदीं ठसावोन। परिपूर्ण पसरलें। २०१ तेथूनि अमळानंद यतीश्वर। जो गंभीरपणें जैसा सागर। तेथूनि ज्ञानसमग्र। ब्रह्मानंद अवतरले। २ तेथूनि सहजानंदमुनी। ज्याची समाधि आहे कल्याणीं। तेथूनि पूर्णानंद पूर्णपणीं अवतरला यतिराज। ३ तेथूनि दत्तानंद तत्त्वतां। जो श्रीधराचे पितयाचा पिता। तो दत्तात्रेयचि मागुता। अवतरला सहजस्थितीं। ४ तेथूनि ब्रह्मानंद सद्गुरु। जो ज्ञानाचा महामेरु। श्रीधरवरद निर्विकारु। भीमातीरविलासी जो। ५ शालिवाहन शके सोळाशेंचोवीस। चित्रभानु नाम संवत्सरास। शुद्ध द्वितीया मार्गशीर्षमास। ते दिवसीं ग्रंथ संपला। ६ श्रीपांडुरंगवरेंकरून। पंढरीसी ग्रंथ जाहला निर्माण। एकदां श्रवण करितां परिपूर्ण। पापें दारुण भस्म होती। ७ तीन आवर्तनें वाचितां पवित्र।

प्रदान किया। उनसे पूर्ण परब्रह्म दत्तात्रेय (के रूप में) अवतरित हुए। ९९ अवतार तो अनेक हो गये। फिर भी दत्तात्रेय रूप (अवतार) वैसे ही (अक्षय) है। उस समय अत्रि (ऋषि) ने वह समस्त ज्ञान दत्तात्रेय के पास रख दिया। २०० उन दत्तात्रेय से ज्ञान (प्राप्त होकर) सदानन्द में बिम्बित हुआ (जम गया)। वही (ज्ञान सदानन्द से) रामानन्द में जमकर परिपूर्ण रूप से फैल गया (विस्तार को प्राप्त हुआ)। २०१ वहाँ से (रामानन्द से दीक्षित होकर) यतीश्वर अमलानन्द हो गये, जो गाम्भीर्य में सागर जैसे ही थे। वहाँ से (उनसे) सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप ब्रह्मानन्द अवतरित हुए। २ उनसे सहजानन्द मुनि (दीक्षित) हुए, जिनकी समाधि कल्याण में है। उनसे पूर्णरूप से यतिराज पूर्णानन्द अवतरित हुए। ३ उनसे तत्त्वतः दत्तानन्द हुए, जो (रचनाकार) श्रीधर के पिता के पिता थे। वे मानो सहजावस्था में (स्वयं) दत्तात्रेय ही फिर से अवतरित थे। ४ उनसे सद्गुरु ब्रह्मानन्द (उत्पन्न) हुए, जो ज्ञान के महामेरु थे, जो श्रीधर के वरदाता, निर्विकार और (साक्षात) भीमातट-विलासी (परब्रह्म) थे। २०५

शालिवाहन शक सोलह सौ चौबीस, चित्रभानु नामक संवत्सर के मार्गशीर्ष मास की शुक्ल द्वितीया के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। २०६ श्रीपाण्डुरंग के वर से यह ग्रन्थ पण्ढरपुर में निर्मित हुआ। उसका परिपूर्ण रूप से श्रवण करने पर (श्रोता के) दारुण पाप (जलकर) भस्म हो जाते हैं। ७ पवित्र (मन से) पठन के तीन आवर्तन करने पर (तीन बार पूर्णतः पढ़ने पर) कुल में दिव्य (गुणों से युक्त) पुत्र उत्पन्न हो जाएगा। यह जान लीजिए कि वह महाचतुर भक्तराज (सिद्ध) हो

कुळीं होय दिव्य पुत्र। तो भक्तराज महाचतुर। होईल ऐसें जाणिजे। ८ एक आवर्तन करितां। हरे घोर संकटचिंता। शत्रुपराजय तत्त्वतां। श्रवण करितां हरिविजय। ६ काम क्रोध मद मत्सर। हेचि शत्रु अनिवार। यांचा पराजय होईल साचार। श्रवण करितां भावार्थं। २१० हरिविजय करितां श्रवण। हरेल सकळ ऋण अथवा रोग दारुण। आपण प्रकटोनि श्रीकृष्ण। संकटें त्यांचीं निरसील। २११ छत्तीस अध्याय ग्रंथ तत्त्वतां। प्रीतीं पावो पंढरीनाथा। या ग्रंथासी मूळकर्ता। पंढरीनाथ जाणिजे। १२ जें जें विट्ठलें कर्णीं सांगितलें। तें तें येथें पत्रीं लिहिलें। न्यून अथवा आगळें। त्याचें तोचि जाणे पैं। १३ दशम आणि हरिवंश। पद्मपुराणींच्या कथा विशेष। त्याचि हरिविजयीं सुरस। श्रोतीं सावकाश परिसाव्या। १४ छत्तीस अध्याय हरिविजय। पांडुरंगासी परम प्रिय। हा ग्रंथ संग्रहितां तें घर निर्भय। सदा विजय होइजे। १५ हरिविजय ग्रंथ भांडार। छत्तीस कोठड्यांचें परिकर। माजी रत्नें भरलीं नाना प्रकार। जोहरी संत परीक्षक। १६ छत्तीस तत्त्वें हीं साचार। कीं छत्तीस खणांचें दामोदर।

जाएगा। ८ एक आवर्तन करने पर (पठन-कर्ता के) घोर संकट और चिन्ता का हरण हो जाता है। श्रीहरि-विजय नामक इस ग्रन्थ का श्रवण करने पर सचमुच शत्रुओं की पराजय हो जाती है। ९ काम, क्रोध, मद, मत्सर (लोभ और मोह जैसे षड्विकार) ही दुर्दम्य शत्रु हैं। श्रद्धाभाव-पूर्वक (इस ग्रन्थ का) श्रवण करने पर इनकी सचमुच पराजय हो जाएगी। २१० श्रीहरि-विजय का श्रवण करने पर समस्त ऋण अथवा दारुण रोगों का हरण हो जाएगा। श्रीकृष्ण स्वयं प्रकट होकर (श्रोता) के संकटों का निवारण करेंगे। २११ छत्तीस अध्यायों में विभक्त यह ग्रन्थ सचमुच श्रीपण्ढरीनाथ (भगवान) विट्ठल (-स्वरूप श्रीकृष्ण) की प्रीति (के अधिकार) को प्राप्त हो जाए। पण्ढरीनाथ को ही इस ग्रन्थ का आदि-निर्माता समझिए। १२ श्रीविट्ठल ने जो-जो कानों में कहा, उस (-उस) को मैंने यहाँ पत्रों (काग़ज़) पर लिख लिया है। वे ही जानते होंगे कि इसमें क्या न्यून है अथवा अधिक है। १३ श्रीमद्भागवत-पुराण के दशम स्कन्ध और श्रीहरिवंश पुराण की, (उसी प्रकार) पद्म-पुराण की विशिष्ट सुरस कथाएँ श्रीहरि-विजय में (कही) हैं। श्रोता उन्हें धीरे-धीरे शान्ति के साथ सुन लें। १४ छत्तीस अध्यायों वाला श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीपाण्डुरंग को परम प्रिय है। इस ग्रन्थ का संग्रह करने पर (संग्रह-कर्ता का) घर भय-रहित हो जाएगा। (वहाँ) नित्य विजय (की प्राप्ति) हो जाएगी। १५ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ छत्तीस अध्याय-स्वरूप प्रकोष्ठों (दालानों) का सुन्दर भण्डार (-गृह) है। उसके अन्दर नाना प्रकार के रत्न भरे हुए हैं। सन्तजन उन रत्नों की

कीं छत्तीस गंगा मिळोनि समग्र। हरिविजयसमुद्र भरलासे। १७ कीं छत्तीस कोहळीं धन। दिधलें ब्रह्मानंद दावून। कीं छत्तीस खणांचें वृंदावन। निजभक्त संपूर्ण तुळसी वरी। १८ कीं हरिविजय ग्रंथ राजेंद्र। हे छत्तीस जाणा त्याचे महावीर। करिती सकळ पापांचा संहार। प्रतापधीर महायुद्धीं। १९ हरिविजय हेंचि आकाश। तेथें हे छत्तीस चंडांश। ब्रह्मांड भेदूनि प्रकाश। पलीकडे जाय पैं। २२० कीं छत्तीस वृक्षांचें वन। कीं छत्तीस क्षेत्रें पिकलीं पूर्ण। कीं हें पदक देदीप्यमान। छत्तीस रत्नांचें जडियेलें। २२१ कीं हा प्रयागराज थोर। भावमाघमास अतिपवित्र। स्नान करी पुण्यवंत नर। अर्थीं बुडी देऊनियां। २२ कीं हा भवरोगावरी दिव्य रस। बुद्धिमंदासी होय मतिप्रकाश। शुक सांगे परीक्षितीस। वारंवार गौरवूनि। २३ प्रथमाध्यायीं मंगलाचरण। गणेशसरस्वतीसंतवर्णन। गुरुमहिमा सांगोन। प्रथमाध्याय संपविला। २४ दैत्य पृथ्वीवरी माजले।

परख करनेवाले परीक्षक हैं। १६ ये छत्तीस अध्याय (मानो) सचमुच छत्तीस तत्त्व ही हैं। अथवा वह छत्तीस खण्डों का भवन है; अथवा छत्तीस गंगाओं के मिल जाने पर श्रीहरि-विजय नामक ग्रन्थ रूपी समुद्र समग्र भर गया है। १७ अथवा गुरु ब्रह्मानन्द ने (इस ग्रन्थ के रूप में) छत्तीस करण्डक (टोकरियाँ, थैलियाँ) धन प्रदान किया है; अथवा यह छत्तीस खण्डों का वृन्दावन (तुलसी चौरा) है। भगवान के अपने भक्त उसमें लगायी हुई परिपूर्ण तुलसी है। १८ अथवा श्रीहरि-विजय ग्रन्थ कोई श्रेष्ठ राजा है। जान लीजिए कि ये छत्तीस अध्याय उसके महान वीर हैं। वे प्रतापवान धीर वीर महायुद्ध में समस्त पापों का संहार करते हैं। १९ श्रीहरि-विजय ग्रन्थ ही आकाश है। वहाँ ये छत्तीस अध्यायस्वरूप सूर्य हैं। उनका प्रकाश ब्रह्माण्ड को भेदकर उस पार चला जाता है। २२० अथवा यह (श्रीहरि-विजय ग्रन्थ) छत्तीस (अध्यायस्वरूप) वृक्षों से युक्त वन है, अथवा ये छत्तीस (अध्यायस्वरूप) खेत पूर्ण पक्वता को प्राप्त हो गये हैं; अथवा यह छत्तीस रत्नों से जटित यह (ग्रन्थ) देदीप्यमान पदिक है। २२१ अथवा यह (ग्रन्थ) महान (तीर्थस्थल) प्रयागराज है। श्रद्धा भाव रूपी अति पवित्र माघ मास है। (इस ग्रन्थ के) अर्थ रूपी जल में डुबकी लगाते हुए पुण्यवान मनुष्य स्नान करता है। २२ अथवा सांसारिक रोगों के लिए (औषधिस्वरूप) यह ग्रन्थ दिव्य रसायन है। मन्द बुद्धि लोगों को इससे बुद्धि का प्रकाश प्राप्त हो जाता है। शुक मुनि ने बार-बार इसका गौरव करते हुए यह परीक्षित से कहा है। २३ (श्रीहरि-विजय के) प्रथम अध्याय में मंगलाचरण प्रस्तुत है। (तत्पश्चात) गणेश, सरस्वती और सन्तों (के माहात्म्य) का वर्णन करके गुरु-महिमा कहते हुए (मैंने) पहला अध्याय समाप्त किया। २४

म्हणोनि देव क्षीरसागरासी गेले। स्तवन करूनि सुरवर परतले। ऐसें हें कथिलें द्वितीयाध्यायीं। २५ देवकीवसुदेवांचें लग्न। अवतरले शेषनारायण। गोकुळासी गेले जगज्जीवन। हें निरूपण तिसऱ्यांत। २६ गर्गं वर्णिलें जातक। पाळणां निजविला वैकुंठनायक। पूतना शोषिली निःशंक। चौथ्यांत हें कथिलें असे। २७ पांचव्यांत तृणावर्त येऊन। श्रीकृष्णासी नेलें उचलोन। नाना क्रीडारस दावून। मोहिलें मन सर्वांचें। २८ सहाव्यांत वनमाळी। चोरीकर्में केलीं गोकुळीं। गोपींनीं गाऱ्हाणीं सांगीतलीं। कौतुकेंकरूनि यशोदेसी। २९ सातव्यांत हें कथन। दशावतारलीला पूर्ण। गोपींसी दावी श्रीकृष्ण। सांगती पूर्ण यशोदेसी। २३० आठव्यामाजी कथन। पद्मपुराणींचें संमत पूर्ण। राधेनें कृष्ण घरासी नेऊन। खेळविला बहुसाल। २३१ नवव्यांत हेचि कथेची प्रौढी। कृष्णें केल्या बहुत खोडी। माया उखळीं बांधी तांतडी। यमलार्जुन उद्धरिले। ३२ दहाव्यांत गोपाळ-काला करून। वनक्रीडा करी नारायण। कमलोद्भवें केलें वत्सहरण।

दैत्य पृथ्वी में उन्मत्त हो गये। इसलिए (उनके भय से) देव क्षीर-समुद्र के प्रति चले गये। वे सुरवर (भगवान की) स्तुति करके लौट गये। दूसरे अध्याय में इस प्रकार कहा है। २५ देवकी और वसुदेव का विवाह हुआ; शेष और नारायण (बलराम और श्रीकृष्ण के रूप में) अवतरित हुए; जगज्जीवन श्रीकृष्ण गोकुल में (लिवा लाये) गये। तीसरे अध्याय में इसका निरूपण (किया गया) है। २६ गर्ग ऋषि ने (बालक के) जातक (भविष्य) का वर्णन किया। वैकुण्ठनायक श्रीकृष्ण को पालने में लिटाया (डाला) गया। उन्होंने निर्भयतापूर्वक पूतना का (प्राण-) शोषण कर डाला। चौथे अध्याय में यह कहा है। २७ पाँचवें अध्याय में कहा है कि तृणावर्त आकर श्रीकृष्ण को उठाकर ले गया। (अनन्तर) नाना प्रकार की क्रीड़ाओं के रस (आनन्द, आनन्दप्रद क्रीड़ाओं) को प्रदर्शित करते हुए (अनुभव कराते हुए) श्रीकृष्ण ने सबके मन को मोहित किया। २८ छठे अध्याय में कहा है कि वनमाली कृष्ण ने गोकुल में चोरियाँ कीं। गोपियों ने यशोदा से आनन्दपूर्वक शिकायतें कीं (दुखड़े रोये)। २९ सातवें में यह कहा है कि श्रीकृष्ण ने गोपियों को सम्पूर्ण दशावतार लीला दिखा दी। उन गोपियों ने यह सब यशोदा से कहा। २३० आठवें में यह कथन किया है, जो पद्मपुराण से पूर्णतः सम्मत है— कृष्ण को अपने घर ले जाकर राधा ने उन्हें अनेक प्रकार से खेलाया। २३१ नौवें अध्याय में इसी कथा की बड़ाई प्रस्तुत है— कृष्ण ने बहुत शरारतें कीं; (फलतः) माता ने झट से उन्हें ऊखल से बाँध दिया। (तब) उन्होंने यमलार्जुन का उद्धार कर दिया। ३२ दसवें अध्याय में कहा है— नारायण श्रीकृष्ण ने गोपालों को इकट्ठा करके उनके सम्बल

करी स्तवन प्रीतीनें । ३३ अकराव्यांत कालियामर्दन । बाराव्यांत गोवर्धनोद्धारण । तेरव्यांत कंसदूत मर्दून । गोरक्षण केलें पैं । ३४ चौदाव्यांत अघासुरमर्दन । नंद यमुनेंत गेला बुडोन । तो माघारा आणिला नारायणें । वरुणापाशीं जाऊनियां । ३५ पंधराव्यांत हेंचि कथन । कृष्णें घेतलें देवकीचें वाण । वनांत मागे राधेसी हरि दान । तेंचि वर्णन बहुत असे । ३६ सोळाव्यांत यज्ञपत्न्यांनीं येऊन । हरीसी समर्पिलें अन्न । रासक्रीडा संपूर्ण । सत्राव्यांत कथियेली । ३७ अठराव्यांत निरूपण । अक्रूर कृष्णासी गेला घेऊन । एकोनविंशति अध्यायीं कंस वधून । राज्य दिधलें उग्रसेना । ३८ विसावा अध्याय अतिसुरस । श्रीकृष्ण शरण सांदीपनास । अद्भुत कथिला ज्ञानरस । गुरुशिष्यलक्षणें । ३९ एकविसाव्यांत उद्धवें येऊन । गोपींसी कथिलें ब्रह्मज्ञान । बाविसाव्यांत जरासंध पराभवून । काळयवन भस्म केला । २४० तेविसावा चोविसावा सार । येथें कथिलें रुक्मिणीस्वयंवर ।

का मिश्रण करते हुए सबको खिलाकर वनक्रीड़ाएँ कीं । (तदनन्तर) ब्रह्मा ने बछड़ों का अपहरण किया और अन्त में (श्रीकृष्ण की) प्रीतिपूर्वक स्तुति की । ३३ ग्यारहवें अध्याय में कालिय-मर्दन की कथा प्रस्तुत हुई । बारहवें अध्याय में गोवर्धन-उद्धरण की कथा है । तेरहवें में कहा है कि श्रीकृष्ण ने (किस प्रकार) कंसों के दूतों का संहार करते हुए गायों की रक्षा की । ३४ चौदहवें अध्याय में अघासुर-मर्दन प्रस्तुत किया है और कहा है कि नन्द जब यमुना में डूब गये, तो श्रीकृष्ण वरुण के पास जाकर उन्हें (किस प्रकार) लौटा लाये । ३५ पन्द्रहवें अध्याय में यह कहा है कि श्रीकृष्ण ने देवकी से वायन स्वीकार किया; वन में श्रीकृष्ण ने राधा से (भोग-) दान माँग लिया । इसी का बहुत वर्णन (प्रस्तुत) है । ३६ सोलहवें अध्याय में कहा है कि यज्ञ करनेवाले ऋषियों की स्त्रियों ने आकर श्रीहरि को अन्न समर्पित किया । सत्रहवें अध्याय में सम्पूर्ण रास-क्रीडा कथित है । ३७ अठारहवें अध्याय में यह निरूपित हुआ है कि अक्रूर (श्रीकृष्ण को) लेकर चले गये । उन्नीसवें अध्याय में कहा है कि श्रीकृष्ण ने कंस का वध करके उग्रसेन को राज्य प्रदान किया । ३८ बीसवाँ अध्याय अति मधुर रस से युक्त है । उसमें कहा है— श्रीकृष्ण सान्दीपनी की शरण में गये, जिन्होंने अद्भुत ज्ञानरस प्रस्तुत किया । उसमें गुरु-शिष्य के लक्षण भी कहे हैं । ३९ इक्कीसवें अध्याय में कहा है कि उद्धव ने आकर गोपियों को ब्रह्मज्ञान बता दिया । बाईसवें अध्याय में कहा है कि श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को पराजित करके कालयवन को (जलवाकर) भस्म कर डाला । २४० तेईसवें और चौबीसवें सुन्दर अध्यायों में रुक्मिणी-स्वयंवर का कथन किया है । पचीसवें अध्याय में यह कहा है कि सर्वेश्वर श्रीकृष्ण (किस प्रकार) जाम्बवती से परिणय

पंचविसाव्यांत सवश्वर। जांबुवंती पर्णूनि आणीत। २४१ सव्विसाव्यांत कृष्णनायिका। आणिल्या षोडश सहस्र गोपिका। सत्ताविसाव्यांत रुक्मिणी विनोद देखा। आणि प्रद्युम्न उपजला। ४२ अट्ठाविसाव्यांत उखाहरण। भुजा छेदूनि त्रासिला बाण। एकुणतिसाव्यांत दरिद्रहरण। सुदामयाचें पैं केलें। ४३ तिसाव्यांत सत्यभामेच्या विनोद। नारदासी दान दिधला गोविंद। एकतिसाव्यांत गरुडाच्या गर्वमद। हनुमंताहातीं हरियेला। ४४ बत्तिसाव्यांत सुभद्राहरण। नारदासी घरोघरीं कृष्णदर्शन। तेहतिसाव्यांत राजसूययज्ञ। जरासंधा मारविलें। ४५ चौतिसाव्यांत कथा निश्चितीं। वाढीत असतां द्रौपदी सती। बिरडें सुटतां श्रीपती। चतुर्भुज करी तेव्हां। ४६ पस्तिसावा अध्याय मयसभावर्णन। शिशुपाळ वक्रदंत वधून। विजयी जाहला मधुसूदन। हेचि कथा असंभाव्य। ४७ छत्तिसाव्यांत ग्रहणयात्रा करून। भेटले गोकुळींचे जन। याउपरी पंढरीसी आला श्रीकृष्ण। हेंचि निरूपण शेवटीं। ४८ ऐसा छत्तीस अध्याय हा ग्रंथ। हरिविजय यथार्थ। सदा

करके उसे ले आये। २४१ छब्बीसवें अध्याय में कहा है कि श्रीकृष्ण (अन्य) नायिकाओं (प्रमुख स्त्रियों) को तथा सोलह सहस्र (एक सौ) गोपियों को (किस प्रकार) ले आये। सत्ताईसवें अध्याय में देखिए रुक्मिणी-विनोद। और यह भी कहा है कि प्रद्युम्न का जन्म हुआ। ४२ अठाईसवें अध्याय में ऊषा-हरण का वर्णन करके कहा कि श्रीकृष्ण ने भुजाओं को काटकर बाणासुर को पीड़ित किया। उन्तीसवें अध्याय में कहा है कि श्रीकृष्ण ने सुदामा की दरिद्रता को दूर किया। ४३ तीसवें अध्याय में कहा है, सत्यभामा-विनोद को प्रस्तुत करते हुए उसने श्रीकृष्ण नारद को दान में दे दिये। इकतीसवें अध्याय में कहा है कि श्रीकृष्ण ने गरुड़ के घमण्ड के मद को हनुमान के हाथों नष्ट कराया। ४४ बत्तीसवें अध्याय में सुभद्रा-हरण की कथा प्रस्तुत है। (तदनन्तर) उसमें कहा है कि नारद को घर-घर श्रीकृष्ण के दर्शन हो गये। तैंतीसवें अध्याय में राजसूय यज्ञ का वर्णन करके कहा है कि श्रीकृष्ण ने (भीम के हाथों) जरासन्ध को मरवा डाला। ४५ चौंतीसवें अध्याय में यह निश्चय ही कथित हुआ है कि सती द्रौपदी द्वारा परोसते समय उसकी कंचुकी की गाँठ खुल जाने पर श्रीकृष्ण ने तब उसे चतुर्भुजधारी बना दिया। ४६ पैंतीसवें अध्याय में मय-सभा का वर्णन करते हुए यही अद्भुत कथा कही है कि (किस प्रकार) शिशुपाल और वक्रदन्त का वध करके मधुसूदन कृष्ण विजय को प्राप्त हुए। ४७ छत्तीसवें अध्याय में कहा है कि श्रीकृष्ण द्वारा ग्रहण-यात्रा करके गोकुल के लोग उनसे मिले। इसके पश्चात अन्त में यही निरूपित किया है कि श्रीकृष्ण पण्ढरपुर में आ गये। ४८ इस प्रकार

अवलोकोत भक्तसंत। विवेकदृष्टीकरूनियां। ४९ पंढरीहून चार योजनें दूर। पश्चिमेसी नाझरें नाम नगर। तेथील देशलेखक साचार। ब्रह्मानंद पूर्वाश्रमीं। २५० पुढें पंढरीसी जाऊन। मग केलें संन्यासग्रहण। त्यावरी भीमातीरींच संपूर्ण। समाधिस्थ निजसुखें। २५१ तो ब्रह्मानंदमहाराज पिता। सावित्री नामें माझी माता। श्रीधरें वंदूनि उभयतां। हरिविजय संपविला। ५२ सकळ श्रोतयांसी आदरें। साष्टांग नमूनि श्रीधरें। ब्रह्मानंदेंकरूनि निर्धारें। हरिविजय विलोकिजे। ५३

इति श्रीहरिविजय ग्रंथ।
संमत हरिवंशभागवत।
सदा परिसोत प्रेमळ पंडित।
षट्त्रिंशत्तमाध्याय शेवटींचा। २५४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

छत्तीस अध्यायों से युक्त यह यथार्थ रूप से श्रीहरि-विजय नामक ग्रन्थ है। भक्त और सन्त विवेकमयी दृष्टि से इसका सदा अवलोकन करें। २४९

पण्ढरपुर से चार योजन दूर 'नाझरें' नामक एक नगर (ग्राम) है। गुरु ब्रह्मानन्द अपने पूर्वाश्रम में (गृहस्थाश्रम में) सचमुच वहाँ के देश-लेखक (भूमि सम्बन्धी हिसाब-किताब रखनेवाले सेवक) थे। २५० आगे चलकर, उन्होंने पण्ढरपुर में जाकर अनन्तर संन्यास ग्रहण किया। तत्पश्चात वे (यथासमय) भीमा नदी के तट पर ही सम्पूर्ण आत्मसुख पूर्वक समाधिस्थ हो गये। २५१ वे ब्रह्मानन्द महाराज मेरे पिता हैं। सावित्री नामक मेरी माता है। उन दोनों का वन्दन करते हुए श्रीधर ने (मैंने) श्रीहरि-विजय नामक इस ग्रन्थ को समाप्त किया। ५२ समस्त श्रोताओं को आदर-पूर्वक साष्टांग नमस्कार करते हुए मैं श्रीधर निश्चय ही ब्रह्मानन्द के साथ निवेदन करता हूँ कि वे श्रीहरि-विजय का अवलोकन करें। २५३

॥ इति ॥ श्रीहरि-विजय नामक यह ग्रन्थ श्रीहरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण से सम्मत है। प्रेममय पण्डित जन उसके इस मधुर छत्तीसवें तथा अन्तिम अध्याय का सदा श्रवण करें। २५४

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

' प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।। '
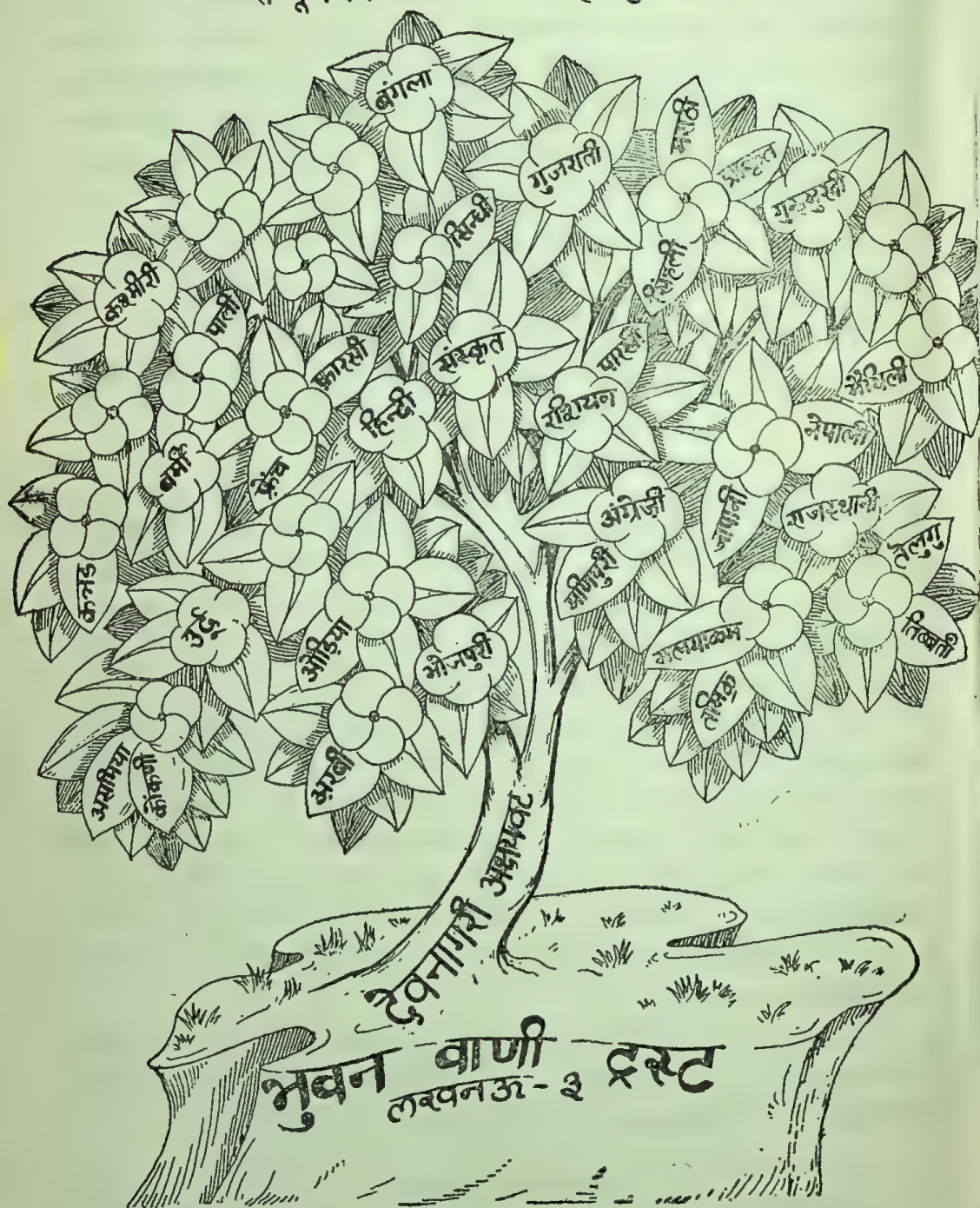
भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ-2

प्रतिष्ठाता— पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी
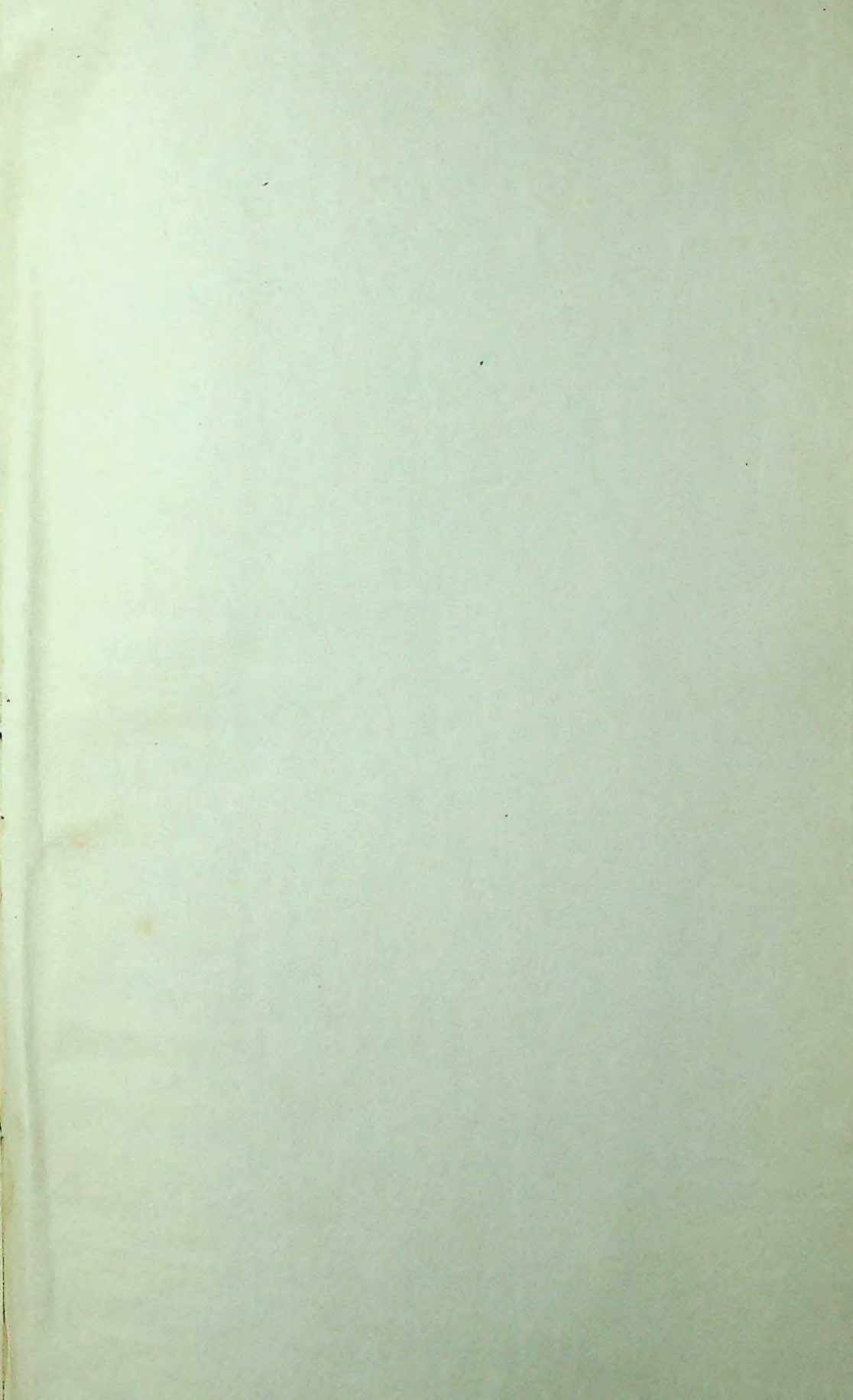
भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चोपटियाँ रोड, लखनऊ-३

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

१—(बंगला) कृत्तिवासरामायण-पाँचकांड नागरी लिप्य०, अवधी पद्यानुवाद मूल्य २५.००
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंकाकाण्ड ,, गद्यानुवाद ,, २०·००
३—(मलयाळम) ॲळुत्तच्छन्‌कृत महाभारत हिन्दी अनु० नागरी लिप्य० ,, ६०·००
४—(,,) ,, अध्यात्मरामायण, उत्तररामायण ,, ,, ४०.००
५—(कश्मीरी) रामावतारचरित—प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत ,, ,, ३०·००
६—(,,) ललद्यद—हिन्दी, संस्कृत अनुवाद सहित ,, १०·००
७—(उर्दू) श्री 'वस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र) नागरी लिपि में ,, ८·००
८—(,,) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर ,, २०·००
९—(गुरमुखी) श्रीगुरुग्रन्थ साहिब चार खण्ड (सम्पूर्ण) ,, १९०·००
१०—(,,) श्री दशम गुरुग्रंथ साहिब—गुरु गोविंदसिंह-कृत प्रथम खंड ,, ५०·००
११—(,,) जपुजी तथा सुखमनी साहिब—ख्वाज: दिलमुहम्मद पद्यानु०,, १०·००
१२—(,,) सुखमनी साहिब मूल गुटका ,, ४·००
१३—(फ़ारसी) सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसी व्याख्या हिन्दी में ,, २०·००
१४—(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन ज़ाद सफ़र (इस्लामी हदीस) प्र० खण्ड ,, १५·००
१५—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् नागरी में मूल, हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद ,, २०·००
१६— ,, कम्ब रामा० बालकां० ४०·०० अयो० अरण्य ७०·०० किष्कि० सुंदर ,, ७०·००
युद्धकाण्ड (पूर्वार्ध) ७०·०० (उत्तरार्ध) ७०·०० (सम्पूर्ण) ३२०·००
१७—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर कृत, हिन्दी अनुवाद सहित ,, ६०·००
१८—(,,) श्रीहरि-विजय—श्रीधर कृत ,, ७०·००
१९—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत सानुवाद ,, २०·००
२०—(तलुगु) मोल्ल रामायण सानुवाद लिप्यन्तरण ,, २०·००
२१—(,,) रंगनाथ रामायण ,, ,, ,, ६०·००
२२—(,,) पोतन्न भागवतमु १-४ स्कन्ध ,, ७०·००
२३—(कन्नड) रामचन्द्र चरित पुराणं—जैनसाहित्य (अभिनव पम्प नागचन्द्रकृत),, ४०·००
२४—(राजस्थानी) रुक्मिणी मंगल—पदम भगत कृत ,, १५·००
२५—(गुजराती) गिरधर रामायण हिन्दी अनुवाद सहित (नागरी लिप्य०) ,, ६०·००
२६—(रामचरितमानस) ओडिआ लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओडिआ गद्य-पद्या०,, ६०·००
२७—(संस्कृत) मानस-भारती—संस्कृत पद्या० सहित रामचरितमानस ,, ५०·००
२८—(,,) अद्भुतरामायण सटीक २०·००
२९—(सिन्धी) स्वामी, शाह, सचल की त्रिवेणी ,, २०·००
३०—(असमिया) माधवकंदली रामायण ,, ६०·००
३१—(ओड़िआ) वैदेहीशविलास—उपेन्द्र भञ्ज कृत ,, ६०·००
३२—(वाणी सरोवर)—बहुभाषाई-त्रैमासिक पत्र—वार्षिक ,, १०·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

३३—(अरबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित मूल्य ४५·००
३४—(,,) केवल मूलपाठ मूल्य २३·०० केवल अनुवाद ,, २३·००
३५—(,,) क़ौरानिक कोश क़ुर्आन के पठनक्रम से शब्दार्थ , १०·००
३६—(,,) क़ुर्आन शरीफ़ तफ़सीर माजिदी पार: १ से ५ ,, ४०·००